श्रीमन्महीधरविरचितः

मन्त्रमहोदधिः

डॉ० सुधाकर मालवीय

महीधर द्वारा रचित मन्त्रमहोदधि नाना ग्रन्थों में विकीर्ण देवमन्त्रों का विधिपूर्वक स्वरूप, अनुष्ठान-विधि आदि आवश्यक तान्त्रिक विषयों का विवरण प्रस्तुत करता है। यह नि:सन्देह तन्त्रशास्त्र का एक श्लाघनीय विश्वकोश है।

महीधर वत्सगोत्रीय अहिच्छत्रीय ब्राह्मण थे। ये मूलत: अहिच्छत्र (उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद मण्डल का रामनगर) के निवासी थे। संसार की असारता से प्रेरित होकर ये काशी चले आए और अपने 'कल्याण' नामधारी पुत्र के कहने से कालीभैरव के समीपस्थ रहकर इन्होंने १६४५ विक्रमी संवत् में इस ग्रन्थ की रचना की।

मन्त्रमहादधि २५ तरङ्गों में विभक्त है। ग्रन्थकार की 'नौका' नामक स्वोपज्ञ टीका भी है जो टिप्पणीमात्र है। कठिन स्थलों का ही इसमें विवेचन है। मन्त्रमहोदधि के प्रथम तरङ्ग में पूजाविषयक सामान्य तथ्यों का निर्देश है। तदनन्तर एक देवता के विषय में सम्पूर्ण एक तरङ्ग विहित है यथा गणेश (२ तरङ्ग), दक्षिण काली (३ तरङ्ग), तारा (४ और ५ तरङ्ग), छिन्नमस्ता (६ त०), नाना यक्षिणी प्रयोग (७ त०), बाला (८ त०) अन्नपूर्णा, गंगा (९ त०), बगलामुखी (१० त०), श्रीविद्या (११ एवं १२ त०), हनुमान् (१३ त०), विष्णु (१४ त०), सूर्य (१५ त०), महामृत्युञ्जय (१६ त०), कार्तवीर्यार्जुन (१७ त०), कालरात्रि (१८ त०), चरणायुधा एवं शास्ता आदि (१९ त०)। बीसवाँ तरङ्ग विशेष रूप से यन्त्र साधन का है। इक्कीसवाँ तरङ्ग पूजातरङ्ग है। इस प्रकार २१ से लेकर २५ तरंग तक नित्य पूजा, विशेष अर्घ्य, मन्शोधन एवं षटकर्म का विस्तृत विवेचन है।

महीधर लक्ष्मीनृसिंह के उपासक थे। उनकी निम्न नृसिंह वन्दना सप्तविभक्ति से समन्वित होने से नितान्त मनमोहक है–

राजा लक्ष्मीनृसिंहो जयति, सुखकरं श्रीनृसिंहं भजेयं
दैत्याधीशा महान्तोऽहसत नृहरिणा श्रीनृसिंहाय नौमि।
सेव्यो लक्ष्मीनृसिंहादपर इह नहि श्रीनृसिंहस्य पादौ।
सेवे लक्ष्मीनृसिंहे वसतु मम मन: श्रीनृसिंहाव भक्तम्।।

– मन्त्रमहोदधि २५. १३०, पृ० ७९७

।। श्रीः ।।

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

८३

श्रीमन्महीधरविरचितः

मन्त्रमहोदधिः

स्वोपज्ञ-'नौका' टीकोपेतः 'अरित्र' हिन्दीव्याख्यासहितः

सम्पादक एवं व्याख्याकार

डॉ० सुधाकर मालवीय

एम० ए०, पीएच.डी., साहित्याचार्य,

संस्कृत-विभाग : कला-संकाय,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

प्रकाशक
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. जवाहरनगर, बंगलो रोड
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली-110007
दूरभाष : 23856391; 41530902

पुनर्मुद्रित संस्करण 2009
मूल्य : 500-00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069
वाराणसी-221001

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129
वाराणसी-221001

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002

मुद्रक
ए. के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

The

BRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA
83

MANTRAMAHODADHI

OF

MAHĪDHARA

with own Sanskrit Commentary 'Naukā'
&
'Aritra' Hindi Exposition

By

Dr. SUDHAKAR MALAVIYA

M. A., Ph. D. Sahityacharya
Deptt. of Sanskrit : Arts Faculty,
Banaras Hindu University, Varanasi

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
DELHI

Publishers

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Delhi 110007
Phone : (011) 23856391, 41530902
e-mail : csp_praveen@rediffmail.com

Also can be had from
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box. No. 1069
Varanasi 221001

•

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37/117 Gopal Mandir Lane
Post Box. No. 1129
Varanasi 221001

•

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road, Darya Ganj
New Delhi 110002

Printers
A. K. Lithographers, Delhi

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये ।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ॥

भगवान् विश्वनाथ को समर्पित
श्रद्धा सुमन

प्रस्तावना

श्रीमन्महीधर भट्ट विरचित 'मन्त्रमहोदधि' उनकी स्वोपज्ञ 'नौका' टीका के साथ विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है । इस संस्करण में 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या संयोजित है। यह ग्रन्थ इन्हीं तीनों से पूर्ण होता है । यह ग्रन्थ मन्त्रों का महासमुद्र है, जिसे पार करने के लिए नौका (यान) की आवश्यकता है, किन्तु यह नौका बिना डाँड़े (अरित्र) के नहीं चल सकती थी, इसलिए अरित्र नामक हिन्दी व्याख्या अत्यन्त सजग होकर लिखी गई है । मूल, टीका तथा हिन्दी में एकवाक्यता का सदैव ध्यान दिया गया है । मन्त्रों के अक्षरों की गणना तीनों ही स्थल पर गिन कर एक सी प्रस्तुत की गई हैं । कहीं कहीं इन्हें मन्त्रों के बाद कोष्ठक में दर्शाया भी गया है । मन्त्रों के बीजाक्षरों की वर्तनी का ध्यान पदे-पदे रक्खा गया है । यन्त्रों के चित्र अत्यन्त अशुद्ध थे जिन्हे यथासम्भव शुद्ध करने का प्रयास किया गया है, फिर भी कोई सर्वज्ञ नहीं है, त्रुटि सम्भावित है, अतः बिना गुरु के मन्त्र-दीक्षा लिए इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

प्रारम्भ में एक विस्तृत विषय सूची संस्कृत में प्रस्तुत है । यन्त्र चित्रों की सूची अलग से दी गई है । ग्रन्थ को सरल बनाने के लिए वर्णमातृकाओं की संकेत सूची एवं संख्या सूची भी ग्रन्थारम्भ में दी गई है । ग्रन्थ के अन्त में मातृका कोश परिशिष्ट में रक्खा गया है । इस कोश में मातृकाओं के सांकेतिक शब्दों का संग्रह श्लोकबद्ध है । द्वितीय परिशिष्ट में सम्पूर्ण ग्रन्थ की श्लोकानुक्रमणिका सर्वप्रथम प्रस्तुत की गई है ।

इस ग्रन्थ में आये सात्त्विक मन्त्रों का प्रयोग तो मानव मात्र को करना चाहिए और राजस मन्त्रों का प्रयोग आवश्यकता पड़ने पर करे । किन्तु तामस मन्त्रों का प्रयोग किसी लालचवश या बिना गुरु के कदापि नहीं करना चाहिये । इन तामस मन्त्रों के अनुष्ठान में जरा सी भी त्रुटि रह जाने पर ये साधक का सर्वस्व नाश कर देते हैं । यदा-कदा इन मन्त्रों को किसी को देना या कहना भी नहीं चाहिये ।

आजकल के युग में कोई भी सर्वज्ञ नहीं हो सकता । अतः हर किसी को इन मन्त्रों हेतु गुरु नहीं बनाना चाहिये । इतना बड़ा ग्रन्थ पूर्ण करने में कहीं त्रुटि रह जाना सम्भव है । अतः किसी अनुष्ठान को करने के पहले पुस्तक में आये मूल का यथोचित मनन एवं चिन्तन कर लेना चाहिये और इनसे सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों का भी अवलोकन कर लेना चाहिये ।

तन्त्र प्रयोग में प्रक्रिया का अत्यन्त महत्त्व है । साधक के लिए तन्त्र की पूजापद्धति का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है । इस ग्रन्थ में अनेक स्थल पर आवरण पूजा के संकेत हैं जिन्हें मैंने माधवभट्ट प्रणीत मन्त्रमहार्णव आदि अन्य ग्रन्थों से लेकर हिन्दी व्याख्या में विमर्श के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है । तन्त्र सम्प्रदाय में मुख्य रूप से यन्त्र पर पूजा होती

है, अतः यन्त्र चित्रों को भी मैंने शुद्ध करने का प्रयास किया है । फिर भी साधक को इन्हें बनाने से पहले गुरु से विचार विमर्श अवश्य कर लेना चाहिए ।

तन्त्र सम्प्रदाय के इस ग्रन्थ की हिन्दी व्याख्या एवं सम्पादन करके मैं अपने आप को अत्यन्त भाग्यशाली मानता हूँ क्योंकि मन्त्र तत्त्व के मनन एवं संयोजन में समय का सदुपयोग हुआ । इस ग्रन्थ में जो कुछ भी मेरी गति हो सकी है या मैं इसे समझ सका हूँ उसमें मेरे पूज्य गुरुवर पं० हीरामणि मिश्र जी का ही कृपा प्रसाद है । तन्त्र साहित्य में मुझे गति प्रदान करने वाले उन गुरुवर्य के चरणों में मेरा शतशः प्रणाम है ।

इस संस्करण को सम्पादित करने के लिए काशिराजट्रस्ट से प्राप्त लीथोप्रिंट तथा खेमराज एवं पं० शुकदेव चतुर्वेदी के संस्करणों से सहायता ली गयी है । इसके लिए लेखक उनका अत्यन्त आभारी है । मूल में अनेक भ्रामक स्थलों को मैने अपने मित्र डा० महेशचन्द्र जोशी, का० हि० वि० वि०, पुराण विभाग, से विचार विमर्श करके शुद्ध किया है । इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ ।

मन्त्रशास्त्र का यह अत्यन्त उपादेय ग्रन्थ जो इस रूप में आज विद्वानों के समक्ष आ सका है उसके लिए मैं चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान के संचालक श्री बल्लभदास गुप्त का अत्यन्त आभारी हूँ । ये ही मेरे प्रेरणा श्रोत हैं । यन्त्र चित्रों के संयोजन में श्री सरकार ने मेरी भरपूर सहायता की है, जिसके लिए मैं इनका अनुग्रहीत हूँ । मेरे चिरञ्जीव श्री रामरञ्जन एवं श्री चित्तरञ्जन ने कम्प्यूटर कार्य तथा इस ग्रन्थ के सम्पादन में मेरी सहायता की है । भगवान् शंकर इनका अभ्युदय करें । अन्ततः भगवान् विश्वनाथ से करबद्ध प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ से मानवमात्र का अजस्त्र कल्याण करें ।

पुस्तकाभिकरां वामे दक्षेऽक्षवरधारिणीम् ।
शुक्लां त्रिनयनामाद्यां बालां श्रीत्रिपुरां श्रये ॥

दीपावली, १० नवम्बर, १९९९ — विद्वद्वशंवदः
३१/२१ लंका, वाराणसी — **सुधाकर मालवीय**

भूमिका

सहस्रचन्द्रप्रतिमोदयालुर्लक्ष्मीमुखालोकनलोलनेत्रः ।
दशावतारैः परितः परीतो नृकेसरी मङ्गलमातनोतु ॥

अगणित चन्द्र समूहों के समान कान्तिपुञ्ज से युक्त, दयालु स्वभाव वाले, लक्ष्मी का मुख देखने के लिए पुनः पुनः आकुल नेत्रों वाले, चारों ओर से दशावतारों से घिरे हुये भगवान् नृसिंह हमारा मङ्गल करें ।

मन्त्रयोग

नाम-रूपात्मक विषय जीव को बन्धनयुक्त करते हैं, नाम-रूपात्मक प्रकृति-वैभव से जीव अविद्याग्रस्त हुए रहते हैं । अतः अपनी-अपनी सूक्ष्म प्रकृति और प्रवृत्ति की गति के अनुसार नाममय शब्द तथा भावमय रूप के अवलम्बन से जो योग साधन किया जाय उसको 'मन्त्रयोग' कहते हैं । मन्त्र योगसाधना के निम्न सोलह मुख्य अङ्ग हैं -

भवन्ति मन्त्रयोगस्य षोडशाङ्गानि निश्चितम् ।
यथा सुधांशोर्जायन्ते कलाः षोडश शोभनाः ॥
भक्तिः शुद्धिश्चासनं च पञ्चाङ्गस्यापि सेवनम् ।
आचारधारणे दिव्यदेशसेवनमित्यपि ॥
प्राणक्रिया तथा मुद्रा तर्पणं हवनं बलिः ।
यागो जपस्तथा ध्यानं समाधिश्चेति षोडश ॥

चन्द्रमा की सोलह कलाओं की तरह मन्त्रयोग भी इन सोलह अंगो से परिपूर्ण हैं - १. भक्ति, २. शुद्धि, ३. आसन, ४. पञ्चाङ्गसेवन, ५. आचार, ६. धारणा, ७. दिव्यदेश सेवन, ८. प्राणक्रिया, ९. मुद्रा, १०. तर्पण, ११. हवन, १२. बलि, १३. याग, १४. जप, १५. ध्यान और १६. समाधि ।

शास्त्रों में इन सोलह अंगों का विस्तृत वर्णन किया गया है । १. **भक्ति** का विस्तार से वर्णन भागवत आदि भक्ति शस्त्रों के ग्रन्थों में हैं । २. **शुद्धि** के अनेक भेद हैं। किस दिशा में मुख करके साधना करनी चाहिए ? यह दिक्शुद्धि है । कैसे स्थान में बैठकर साधना करनी चाहिए - यह स्थानशुद्धि है । स्नानादि द्वारा शरीरशुद्धि और प्राणायामादि द्वारा मनःशुद्धि होती है । ३. **आसन** - कैसे आसन पर बैठना चाहिए जैसे कि चैलासन, मृगचर्मासन, कुशासन या कम्बल आदि - यह आसन शुद्धि है । ४. **पञ्चाङ्गसेवन** - अपने इष्ट की गीता, सहस्रनाम, स्तव, कवच और हृदय ये पाँच 'पञ्चाङ्ग' कहलाते हैं । ५. **आचार** के अनेक भेद तन्त्र और पुराणों में कहे गए हैं । ६. **धारणा** - मन को

बाहर मूर्त्ति आदि में लगाने से अथवा शरीर के भीतर स्थान विशेषों में मन के स्थिर रखने को 'धारणा' कहते हैं । ७. **दिव्यदेश** - जिन सोलह प्रकार के स्थानों में पीठ निर्माण कर पूजा की जाती है उनको 'दिव्यदेश' कहते हैं । जैसे - मूर्धास्थान, हृत्प्रदेश, नाभिस्थान, घट, पट, पाषाणादि की मूर्त्तियाँ, वेदी (स्थण्डिल) एवं यन्त्र आदि । ८. **प्राण क्रिया** - मन्त्र शास्त्र में प्राणायामों के अतिरिक्त शरीर के नाना स्थानों में प्राण को ले जाकर साधन करने की आज्ञा है - ये सब साधन 'प्राण क्रिया' कहलाते हैं और 'न्यास' आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं । ९. **मुद्रा** - मन्त्रयोग में अपने-अपने इष्टदेव को प्रसन्न करने के लिए जो विशेष चेष्टाएँ हैं वे 'मुद्रा' कही जाती हैं जैसे शंखमुद्रा, गदामुद्रा आदि। १०. **तर्पण** - अपने इष्टदेव का पदार्थ विशेष द्वारा तर्पण किया जाना - 'तर्पण' कहलाता है । ११. **हवन** - विशेष द्रव्य के द्वारा अग्नि में आहुति देने को 'हवन' कहते हैं। १२. **बलि** - देवताओं के लिए चरु आदि की बलि दी जाती है । यह बलि तीन प्रकार की कही गई हैं - १. आत्मबलि अहंकारादि की, २. इन्द्रियों की बलि तथा ३. काम-क्रोधादि की बलि । १३. **याग** - अन्तर्याग और बहिर्याग भेद से याग दो प्रकार के होते हैं । १४ **जप** - अपने इष्ट के नाम का या उनके मन्त्रों के जप को 'जप' कहते हैं। जप भी वाचनिक, उपांशु और मानसिक-भेद से तीन प्रकार का कहा गया है । १५. **ध्यान** - इष्ट के रूप का मन के द्वारा ध्यान करने से जो साधना निष्पन्न होती है उसे 'ध्यान' कहते हैं । १६. **समाधि** - इष्टदेव की रूपमाधुरी का ध्यान करते-करते अपने अस्तित्व को भूल जाने की जो अवस्था प्राप्त होती है उसे 'समाधि' कहा जाता है । मन्त्रयोग में इसे ही 'महाभावसमाधि' की संज्ञा दी जाती है ।

तन्त्र और आगम

परमशिवप्रोक्त तन्त्र-आगमों की साधना विधि का नाम 'मन्त्रयोग' है । भारतीय दर्शनों ने निगम (वेद), आगम (तन्त्र) को ही स्वतः परम प्रमाण माना है । ईश्वर के निःश्वासभूत होने से **'वेदाः प्रमाणम्'** और शिवप्रोक्त होने से **'आगमाः प्रमाणम्'** इस प्रकार से कहा गया है ।

आगम शब्द का अर्थ है - '**आगच्छति बुद्धिमारोहति यस्मादभ्युदयनिःश्रेयसोपायः स आगमः** ।' जिसके द्वारा इहलौकिक और पारलौकिक कल्याणकारी उपायों का यथार्थ ज्ञान हो वह 'आगम' शब्द से निरूपित होता है । तन्त्र शब्द भी आगम अर्थ का ही वाचक है, इसका शब्दार्थ इस प्रकार किया गया है -

तनोति विपुलानर्थांस्तत्त्वमन्त्रसमाश्रितान् ।
त्राणं च कुरुते पुंसां तेन तन्त्रमिति स्मृतम् ॥

मन्त्र तत्त्वों का विस्तृत विवेचन एवं उसके तात्पर्यार्थ साधना-प्रक्रिया का पूर्णरूप से विपुल प्रतिपादन करता है तथा मानव-जाति का सभी प्रकार के भयों से परित्राण करता है, अतः उसकी तन्त्र-संज्ञा होती है । इस प्रकार तन्त्रागम के विशाल साहित्य की रहस्यमयी साधनाविधि का नाम ही 'मन्त्रयोग' है ।

मन्त्र और मन्त्रशक्ति

मननात् त्रायत इति मन्त्रः, मननत्राणधर्माणो मन्त्राः ।

मन को मननीय शक्ति प्रदान (एकाग्र) करके जप के द्वारा समस्त भयों का विनाश करके पूर्ण रक्षा करने वाले शब्दों को 'मन्त्र' कहा जाता है । मन् और त्र - ये दो शब्द इसमें हैं । 'मन्' शब्द से मन को एकाग्र करना, 'त्र' शब्द से त्राण (रक्षा) करना जिनका धर्म है और जप से जो अभीष्ट फल प्रदान करें, वे 'मन्त्र' कहे जाते हैं ।

तन्त्र का सिद्धान्त

वेदान्त का सिद्धान्त है कि **'जीवो ब्रह्मैव नापरः'** 'जीव ही ब्रह्म है दूसरा नहीं ।' उसी प्रकार तन्त्र-आगमों का सिद्धान्त है - **'आनन्दं ब्रह्मणो रूपम्'** - आनन्द ही ब्रह्म का रूप है, **'आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्'** आदि श्रुतियाँ भी इसी आगम-सिद्धान्त का प्रतिपादन करती हैं । परमानन्दघन परात्पर परमेश्वर पूर्ण ब्रह्म ने अपनी अमोघ संकल्प (इच्छा) शक्ति से **'एकोऽहं बहु स्याम'** - मैं अकेला हूँ बहुत हो जाऊँ, इस विचित्र विश्व की रचना करके इसी में प्रवेश किया - **'तत् सृष्ट्वा तदनु प्राविशत्'** ।

इसी तरह तन्त्र-आगमों के भी दार्शनिक सिद्धान्त हैं । यहाँ ब्रह्म का शिव नाम से व्यपदेश किया गया है । सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् भगवान् परमशिव स्वयं संसाररूपी क्रीडा करने के लिये अपनी सर्वज्ञता और सर्वकर्तृता-शक्ति को संकुचित करके मनुष्य-देह का आश्रयण करते हैं - **'मनुष्यदेहमाश्रित्य छन्नास्ते परमेश्वराः'** ।

मनुष्य-देह में प्रच्छन्न रूप से परमेश्वर ही विद्यमान है, यही गीता-शास्त्र में भी कहा गया है -

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ गीता ९ . ११ ।

यह चराचरात्मक समस्त विश्व उन शिव की क्रीडा है, यह केवल लीलामात्र है - **'क्रीडात्वेनाखिलं जगत्', 'लीलामात्रं तु केवलम्** ।' अतः यहाँ सिद्ध होता है कि वह परमशिव अपनी सर्वज्ञता एवं सर्वकर्तृता-शक्ति को संकुचित करके मनुष्यदेह में अल्पज्ञता और अल्पकर्तृता धारण करके क्रीडा कर रहे हैं । जब वह अपनी शक्ति को संकुचित करते हैं, तब सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि सांसारिक धर्मों से जीव अभिभूत हो जाता है । इसी कारण जीव आधि-व्याधि, शोक-संताप, दीनता-हीनता, दरिद्रता, अहन्ता, ममता, संकल्प-विकल्प आदि आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक संतापों से संतप्त-दुःखित हो भय-विह्वल होकर इनसे मुक्ति चाहता है । बस इसी के लिये शास्त्रों में एवं शास्त्रतत्त्वज्ञ योगीन्द्र, मुनीन्द्र, सिद्ध महात्माओं ने विविध प्रकार की साधना-उपासनाओं के विविध विधानों का प्रतिपादन किया है ।

श्रीशिव-निर्मित तन्त्र-आगम-शास्त्रों में स्वात्मबोध एवं स्वरूप-ज्ञान तथा सांसारिक भयंकर संतापों की निवृत्ति के लिये मन्त्र-साधना को ही सर्वोत्तम मान्यता दी गयी है ।

तन्त्रागम के गम्भीर सिद्धान्तों के तात्त्विक एवं विवेचनात्मक ग्रन्थ 'महार्थमञ्जरी' में मन्त्रस्वरूप का सुन्दर संकलन किया गया है -

मननमयी निजविभवे निजसंकोचभये त्राणमयी ।
कवलितविश्वविकल्पा अनुभूतिः कापि मन्त्रशब्दार्थः ॥

सर्वज्ञता-सर्वकर्तृता-शक्ति-सम्पन्न अपने विभव (ऐश्वर्य) का बोध कराना तथा अल्पज्ञता एवं अल्पकर्तृतारूपी संकुचित शक्ति से समुत्पन्न दीनता, हीनता, दरिद्रता आदि सांसारिक संतापों से मुक्त करना और कुत्सित वासनाओं के संकल्प-विकल्पों का 'ग्रास' (विनाश) करके '**शिवोऽहं**' की भावना से भावित अनुभूति होना ही मन्त्र-शब्द का तात्पर्यार्थ, स्वरूप या प्रयोजन है । इसी भाव को और भी स्पष्ट किया गया है -

मोचयन्ति च संसाराद्योजयन्ति परे शिवे ।
मननत्राणधर्मित्वात्तेन मन्त्रा इति स्मृताः ॥

नेत्र-तन्त्र में बहुत विस्तार से मन्त्र के तात्त्विक रहस्यों का विवेचन किया गया है। सात करोड़ मन्त्र शिव के मुख से विनिर्गत हुए हैं -

'सप्तकोटिमहामन्त्राः शिववक्त्राद्विनिर्गताः ।'

वर्णमातृकाएँ और मन्त्र का स्वरूप

वर्णमाला के 'अ' से लेकर 'क्ष' तक पचास अक्षरों को 'मातृका' कहते हैं । इन मातृका-वर्णों से ही समस्त मन्त्रों का निर्माण हुआ है । मातृका शब्द का अर्थ है माता या जननी । अतः समस्त वाङ्मय की यह जननी है । ये समस्त मन्त्र वर्णात्मक हैं और मन्त्र शक्ति-स्वरूप हैं । यह मातृका की ही शक्ति है और वह शक्ति शिव की है । अतः समस्त मन्त्र साक्षात् शिवशक्ति-स्वरूप हैं । यही सिद्धान्त भगवान् शंकर पार्वती से कहते हैं -

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये ।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ॥

मन्त्र अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न होते हैं । इनके सामर्थ्य की इयत्ता का निर्धारण नहीं किया जा सकता । इसीलिये कहा गया है '**मन्त्राणामचिन्त्यशक्तिता**' (परशुरामकल्पसूत्र), '**अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधिप्रभावः ।**' इन्हीं मन्त्रात्मक वर्णों से ही समस्त विश्व का सृजन हुआ है - '**वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे ।**' इस प्रकार श्रुति वाक्य भी है ।

आगम-दर्शन की मूल भित्ति शिवादि-क्षिति-पर्यन्त छत्तीस तत्त्वों पर आधारित है । ये तत्त्व मातृका के छत्तीस अक्षरों पर आधारित हैं । इन्हीं तत्त्वों से दृश्यमान समस्त चराचरात्मक विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय आदि होते हैं । अतः मन्त्रात्मक अक्षरों

को शब्दब्रह्म कहा जाता है । संसार का व्यवहार भी शब्दों के द्वारा ही होता है, इसलिये शब्द-शक्ति सर्वोपरि मानी गयी है। भगवान् परमशिव ने इन्हीं शब्दों से विचित्र चमत्कारपूर्ण समस्त अभीष्ट प्रदान करने वाले मन्त्रों की रचना करके समस्त सांसारिक जीवों पर कारुण्य-पूर्ण अनुग्रह किया । इन मन्त्रों की साधना से सम्पूर्ण अभीष्टों की सिद्धि सरलता से की जा सकती है । किन्तु इनकी साधना विधिवत् एवं शास्त्रानुमोदित करनी चाहिये ।

तन्त्रों में मन्त्रों के स्वरूप का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है । उसमें तीन जातियाँ एवं चार प्रकार मुख्य हैं । इनका 'शारदातिलक' तन्त्र में इस प्रकार प्रतिपादन किया गया है -

पुंस्त्रीनपुंसकात्मनो मन्त्राः सर्वे समीरिताः ।
मन्त्राः पुंदेवता ज्ञेया विद्या स्त्री देवता स्मृता ॥

पुरुष, स्त्री और नपुंसक - ये तीन जातियाँ मन्त्रों की मानी गयी हैं ।[१] मन्त्र पुरुष-देवतात्मक होते हैं एवं महाविद्या, श्रीविद्या आदि विद्याओं के मन्त्र स्त्री-देवतात्मक कहे जाते हैं । इनके चार प्रकार **नित्यातन्त्र** में इस प्रकार वर्णित हैं -

मन्त्रा एकाक्षराः पिण्डाः कर्तर्यो द्व्यक्षरा मताः ।
वर्णत्रयं समारभ्य नवार्णावधिबीजकाः ॥
ततो दशार्णमारभ्य यावद्विंशतिमन्त्रकाः ।
अत ऊर्ध्वं गता मालास्तासु भेदो न विद्यते ॥

'एक अक्षर वाले मन्त्र की 'पिण्ड' संज्ञा कही गई है, एवं दो अक्षर की 'कर्तरी', तीन अक्षर से नौ अक्षर तक के मन्त्रों को 'बीज' मन्त्र कहा जाता है, दस अक्षर से बीस अक्षर तक का 'मन्त्र' नाम होता है । बीस अक्षर से अधिक संख्या वाले मन्त्रों को 'माला' मन्त्र कहते हैं ।'[२]

साधक के नाम के साथ इन मन्त्रों के मित्र, शत्रु, साध्य, सिद्ध, सुसिद्ध आदि सम्बन्ध होते हैं । अतः मेलापक-प्रक्रिया से विचार करके मन्त्र ग्रहण करने से ही अभीष्ट-सिद्धि होती है । कामना-परक मन्त्रों का अविचारित रूप से अनुष्ठान करना विपरीत फलदायक भी हो सकता है । अतः '**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ**' इस गीतोक्त वचन के अनुसार शास्त्रों के प्रमाण से कर्तव्याकर्तव्य निर्धारण करना आवश्यक है । अतः मन्त्र-साधना तन्त्रशास्त्र प्रतिपादित विधानानुसार करने से ही ऐहिक एवं पारलौकिक अभीष्ट-सिद्धि होती है ।

तन्त्रशास्त्र में कुछ मन्त्र, विद्याएँ कलियुग में सिद्ध मानी गयी हैं । वे सबके लिये उपयोगी हैं । उनमें सिद्धारि आदि मेलापक का विचार आवश्यक नहीं हैं ।

---

१. मन्त्रमहोदधि २४. ६२ ।
२. मन्त्रमहोदधि २४. ७५-७६ ।

मन्त्र-साधन-प्रक्रिया

तन्त्र-आगम-शास्त्र में वर्णित लक्षणों से युक्त गुरु से विधिवत् मन्त्र-दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये । उस मन्त्र को अपने इष्टदेव का स्वरूप ही मानना चाहिये । देवताओं का स्वरूप मन्त्रात्मक ही होता है ।

'मन्त्रा वर्णात्मकाः सर्वे सर्वे वर्णाः शिवात्मकाः ।'

श्रीगुरु के मुखारविन्द से निःसृत मन्त्ररूप इष्टदेव को स्वकीय कर्णों के द्वारा हृदय-प्रदेश में विराजमान करके निरन्तर उसकी परिचर्या में संलग्न हो जाना चाहिये । इस साधना के तीन अंग मुख्य हैं - नित्यकर्म, नैमित्तिककर्म और काम्यकर्म ।

नित्यकर्म - नित्यकर्म में प्रातःस्मरण, शौच, दन्तधावन, स्नान, सन्ध्या, पूजा, स्तोत्रपाठ आदि का विधान शास्त्र से या गुरु से सम्यक् प्रकार से जानकर उसका सम्पादन करना चाहिये । प्रातःकाल से लेकर रात्रि में शयनपर्यन्त सभी क्रियाएँ विधिपूर्वक सम्पन्न होनी चाहिये । नित्यकर्मों का पालन करना मन्त्र-साधक के लिये परमावश्यक है ।

नित्यकर्म का लोप होने से प्रत्यवाय होता है । अतः प्रायश्चित्त का विधान है । मनुष्य स्वभाव-सुलभ प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटवादि दोषों से यदि नित्यकर्म लोप हो जाय तो प्रायश्चित्त करना परमावश्यक है । वैदिक विधानों के अनुसार मन्त्रयोग में चान्द्रायण व्रतादिकों की तरह प्रायश्चित्त का कठोर विधान नहीं है । केवल कर्मवैगुण्य के अनुसार लाघव-गौरव देखकर मूल मन्त्र-जप-संख्या का ही न्यूनाधिक रूप से सरल विधान शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित है । जैसे संध्यालोप होने से मूल मन्त्र का शत-संख्यात्मक एक माला तथा नैमित्तिक कर्म के लोप में सहस्त्र संख्यात्मक दस माला का विधान है ।

नैमित्तिककर्म - विशेष पर्वों पर नैमित्तिक कर्म किए जाते हैं । परशुराम-कल्पसूत्र में पाँच मुख्य पर्व माने गये हैं । पञ्चपर्वो में विशेषार्चा हैं । रात्रिव्यापिनी कृष्णाष्टमी, कृष्णचतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति - इन पञ्च पर्वो पर दिन में व्रत रखकर रात्रि में विशेष पूजा-सामग्री से अर्चन करने का विधान है एवं गुरु का जन्मदिन, व्याप्तिदिन, स्वविद्याग्रहणदिन, पुष्यार्क, नवरात्र आदि पर्वो पर अपनी शक्ति के अनुसार व्रतपूर्वक यथाविभव विशेष उत्सव का आयोजन करना चाहिये । इस नित्य और नैमित्तिक कर्म करने वाले साधक के सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ।

काम्यकर्म - काम्यकर्म उसे कहते हैं जो विशेष कामना-पूर्ति के लिये किया जाता है । अपने मूल मन्त्र का पञ्चाङ्ग-पुरश्चरण करने पर जब मन्त्र-चैतन्य का लक्षण उत्पन्न हो जाय तो भिन्न-भिन्न कामनाओं के लिये पृथक्-पृथक् वस्तुओं से होम करने का विधान शास्त्रों में वर्णित है, उन-उन वस्तुओं से होम करने से तत्-तत् कामनाएँ पूर्ण होती है । परन्तु काम्यकर्म करने का शास्त्रों में निषेध ही किया गया है -

शुभं वाप्यशुभं वापि काम्यं कर्म करोति यः ।
तस्यारित्वं व्रजेन्मन्त्रस्तस्मान्न तत्परो भवेत् ॥

अर्थात् शुभ या अशुभ अभिचारादि काम्य कर्म जो करता है, उसके लिये वही मन्त्र शत्रु-भावापन्न हो जाता है ।[१] इसलिये काम्यकर्म में तत्पर नहीं होना चाहिये ।' कोई अत्यावश्यक कार्य हो तो उसके लिये कदाचित् कर लेने का विधान है । अपने मन्त्र का नित्य-नैमित्तिक कर्म करने मात्र से साधक का जिसमें कल्याण निहित है, उसे मन्त्र के अधिष्ठातृ देवता स्वयं सम्पादित करते रहते हैं ।

निष्काम उपासना से ज्ञान प्राप्ति एवं मुक्ति

उपासना का अर्थ है सेवा । इसके कायिक, वाचिक और मानसिक तीन भेद हैं । कायिक का अर्थ है पाद्य, अर्घ्य, स्नान, धूप, दीप, नैवेद्य आदि पञ्चोपचार या षोडशोपचार से पूजा । वाचिक का अर्थ स्तोत्रपाठ करना है । मानसिक का अर्थ ध्यान-जपादि है ।

अपने इष्टदेव के समक्ष सर्वात्मना-(समर्पण)-शरणागत होकर देवता-प्रीत्यर्थ कर्म करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं, यह शास्त्रसम्मत सिद्धान्त है -

निष्कामो देवतां नित्यं योऽर्चयेद् भक्तिनिर्भरः ।
तामेव चिन्तयन्नास्ते यथाशक्ति मनुं जपन् ॥
सैव तस्यैहिकं भारं वहेन्मुक्तिं च साधयेत् ।
सदा संनिहिता तस्य सर्वं च कथयेत सा ॥
वात्सल्यसहिता धेनुर्यथा वत्समनुव्रजेत् ।
तथानुगच्छेत् सा देवी स्वं भक्तं शरणागतम् ॥

निष्काम भक्तिभाव सहित जो इष्ट देवता का अर्चन करता है और निरन्तर उसका ही चिन्तन करता हुआ यथाशक्ति मन्त्र का जप करता है, उसके सांसारिक जितने कार्य हैं, उन सबका वहन भगवती स्वयं करती हैं और अन्त में मोक्ष-प्रदान भी कर देती हैं । इतना ही नहीं, सदा उसके सन्निहित रहती हैं और सब कुछ बताती रहती हैं । वात्सल्यभाव से युक्त होकर जैसे धेनु अपने बछड़े के पीछे रहती है, उसी तरह वह वात्सल्यमयी माता भगवती शरणागत भक्त के कल्याण करने में निरन्तर तत्पर रहती है । इसलिये गीता[२] में भी कहा गया है -

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

निष्काम कर्म करने वाले का कभी क्रम-भंग नहीं होता और कोई निषिद्ध कर्म की सम्भावना भी नहीं रहती । निष्काम कर्म का स्वल्परूप आचरण करने से महाभय से परित्राण होता है । अतः मन्त्र-चैतन्य के लिये पुरश्चरणादि अनुष्ठान के बाद मन्त्र-सिद्धि हो जाने पर ऐहिक और पारलौकिक समस्त कार्य स्वयं सिद्ध होते रहते हैं ।

---

१. मन्त्रमहोदधि २५. ७३-७४ ।
२. गीता २. ४० ।

मन्त्रसिद्धि के लिए पुरश्चरण

मन्त्रसिद्धि के लिये पञ्चाङ्ग-पुरश्चरण अत्यावश्यक है एवं अन्य प्रकार से ग्रहण आदि में संक्षेप-पुरश्चरणों का भी शास्त्र में विधान किया गया है तथा औषधियों आदि के प्रयोग से भी सरलता से मन्त्र-सिद्धि हो जाती है । पुरश्चरण नहीं करने से मन्त्र सिद्धिप्रद नहीं होता । कहा भी है -

जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः ।
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रो न सिद्धिदः ॥

जैसे जीवहीन देह कोई कर्म करने में समर्थ नहीं होता, वैसे ही पुरश्चरण के बिना मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता । अतः भोग एवं मोक्ष दोनों चाहने वाले साधक को पुरश्चरण करना अनिवार्य है । कुछ महाविद्याएँ श्रीविद्या आदि में पुरश्चरण आवश्यक नहीं है । क्योंकि ये विद्याएँ मोक्ष-प्रधान होती हैं, भोगों की इनमें अप्रधानता होती है -

'भोगा भवन्ति चेद् भवन्तु मा भवन्ति मा भवन्तु ।'

भोगों की प्राप्ति होनी ठीक है, न हो तो उनके लिये विशेष अभिलाषा नहीं होती । वैराग्यवान् साधक इन महाविद्याओं का अनुष्ठान मोक्षैक मात्र-प्राप्ति के लिये करते हैं । अन्य मन्त्रों का पुरश्चरण तो परमावश्यक है । पुरश्चरण करने पर भी मन्त्रसिद्धि के लक्षण उत्पन्न न हों तो द्रावण-बोधनादि मन्त्र के संस्कार करने चाहिये ।[१] इनसे मन्त्र सिद्धि देने वाला हो जाता है ।

द्रावणं बोधनं वश्यं पीडनं पोषशोषणम् ।
दाहनं च बुधः कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥

इन संस्कारों के करने पर भी यदि मन्त्र-सिद्धि न हो तो उस मन्त्र का परित्याग कर देना चाहिये, ऐसा शास्त्रों का मत है । किन्तु महाविद्याओं के परित्याग का विधान नहीं है ।

मन्त्रसिद्धि के लक्षण

तन्त्रान्तरों में मन्त्रसिद्धि के तीन प्रकार के लक्षण बताये गये हैं - उत्तम, मध्यम और अधम ।[२]

उत्तम लक्षण - **'मनोरथानामक्लेशः सिद्धेरुत्तमलक्षणम्'** - बिना क्लेश के सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं । (साधना करने वालों के शुभ भाव, पवित्र विचार, सत्संकल्प और श्रेष्ठ मनोरथ होते हैं ।) अतः सिद्ध हुए मन्त्र के द्वारा सदिच्छा पूर्ण हो जाती है एवं अकाल मृत्यु का भय दूर हो जाता हे । देवता के दर्शन होते हैं एवं और भी अनेक प्रकार की यौगिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ।

---

१. मन्त्रमहोदधि २४. ६८-१०८ ।
२. मन्त्रमहोदधि २५. ६७-१००

मध्यम लक्षण - 'ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम्०' - यश, वाहन, भूषण, आरोग्य, रोगविषापहरण शक्ति, पाण्डित्य, कवित्व, वैराग्य, मुमुक्षुत्व, सर्ववश्यता, त्यागभावना, अष्टाङ्गादि योगों का अभ्यास, भोगों की नगण्य इच्छा, समस्त प्राणियों में दया भाव, सर्वज्ञतादि गुणों का उदय आदि मध्यम सिद्धि के लक्षण हैं ।

अधम लक्षण - ख्याति, वाहन, भूषण आदि वैभव की प्राप्ति तथा धन, पुत्र, दारादि लोकैश्वर्य की प्राप्ति - ये मन्त्रसिद्धि के अधम लक्षण है ।

मन्त्रसिद्धि और योग

मनुष्य में यह योग्यता है कि वह सर्वशक्तिमान् से अपने आत्मा का सम्बन्ध स्थापित कर सकता है । इसके लिए योग की आवश्यकता है । चित्तवृत्ति-निरोध द्वारा आत्मसाक्षत्कार के लिए निर्दिष्ट क्रियाओं का नाम 'योग' है । योग के चार पर्व हैं - १. मन्त्रयोग, २. हठयोग, ३. लययोग, ४. राजयोग । इनमें मन्त्रयोग स्थूल, हठयोग सूक्ष्म, लययोग सूक्ष्मतर और राजयोग सूक्ष्मतम है अर्थात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म है । वस्तुतः आरम्भ मन्त्रयोग से ही होता है । इन चारों का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है - शब्द (मन्त्र एवं अर्थ) तथा मूर्ति - इन दोनों के अवलम्बन से जो योग साधा जाता है वह 'मन्त्रयोग' है। जिन क्रियाओं से चित्तवृत्ति का निरोध किया जाता है वह 'हठयोग' है । पुरुष (आत्मा) में प्रकृति (माया) का लय 'लययोग' है । जो अन्तःकरण (बुद्धि) के द्वारा साधा जाता है वह 'राजयोग' है । योगों में श्रेष्ठ होने के कारण इसको 'राजयोग' कहते हैं । राजयोग में बुद्धि से सम्बन्ध रखने वाली क्रियाओं का अधिक सम्बन्ध है । लययोग में मानसक्रिया का आधिक्य है । 'हठयोग' में वायु-जप क्रिया का प्राबल्य है और 'मन्त्रयोग' में ब्रह्मचर्य रक्षा तथा रेतोधारण पर विशेष आग्रह है ।

मन्त्र के अन्य तत्त्व एवं न्यास

ऋषि - जिन साधक ने सर्वप्रथम शिवजी के मुख से मन्त्र सुनकर विधिवत् उसे सिद्ध किया था, वह उस मन्त्र के 'ऋषि' कहलाते हैं । उन ऋषि को उस मन्त्र का आदि गुरु मानकर श्रद्धा सहित उनका मस्तक में न्यास किया जाता है ।

देवता - जीव मात्र के समस्त क्रिया कलापों को प्रेरित, संचालित एवं नियन्त्रित करने वाली प्राणशक्ति को 'देवता' कहते हैं । यह शक्ति व्यक्ति के हृदय में स्थित होती है । अतः देवता का हृदय में न्यास करते हैं ।

छन्द - मन्त्र को सर्वतोभावेन आच्छादित करने की विधि को 'छन्द' कहते हैं । अक्षर या पदों से छन्द बनता है तथा इनका उच्चारण मुख से होता है । अतः छन्द का मुख में न्यास किया जाता है ।

बीज - मन्त्र शक्ति को उद्भावित करने वाला तत्त्व 'बीज' कहलाता है । अतः बीज का गुप्ताङ्ग (सृजनाङ्ग) में न्यास किया जाता है ।

शक्ति - जिसकी सहायता से बीज मन्त्र बन जाता है, वह तत्त्व 'शक्ति' कहलाता है । उसका पादस्थान में न्यास करते हैं ।

विनियोग - गौतमीय तन्त्र के अनुसार ऋषि एवं छन्द का ज्ञान न होने पर मन्त्र का फल नहीं मिलता तथा उसका विनियोग न करके मात्र जप करने से मन्त्र दुर्बल हो जाता है । मन्त्र को फल की दिशा का निर्देश देना 'विनियोग' कहलाता है । तान्त्रिक परम्परा में ऋषि आदि की जानकारी के साथ साथ उसका यथार्थ विनियोग करना आवश्यक माना गया है । विनियोग में ऋषि, छन्द, देवता, बीज एवं शक्ति के अलावा एक और भी तत्त्व होता है, जिसे कीलक कहते हैं । मन्त्र को धारण करने वाला या मन्त्र शक्ति को सन्तुलित रखने वाला तत्त्व 'कीलक' कहलाता है । इसका सर्वांग में न्यास किया जाता है ।

न्यास - बिना न्यास के मन्त्र जप करने से जप निष्फल और विघ्नदायक कहा गया है । (२१. १५७) संहारन्यास का अर्थ है एक-एक अक्षर का पादादि अंगों में न्यास करना । मन्त्रमहोदधि के ११ वें तरङ्ग में ८ से लेकर ४८ श्लोक तक विभिन्न प्रकार के न्यासों का कथन है ।

अङ्गन्यास - कुलार्णव तन्त्र के अनुसार जो व्यक्ति न्यासरूपी कवच से आच्छादित होकर मन्त्र का जप करता है, उसकी साधना में विघ्न-बाधाएं स्वयं दूर हो जाती हैं, तथा उसे निश्चित सिद्धि मिलती है । जो व्यक्ति अज्ञान या प्रमादवश न्यास नहीं करता उसे पग पग पर विघ्नों का सामना करना होता है । हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं करतल इन छः अंगों में मन्त्र का न्यास करना अंगन्यास कहलाता है।

पंचाङ्ग एव षडङ्गन्यास - शारदा तिलक के अनुसार जहाँ पञ्चाङ्ग न्यास कहा गया हो, वहाँ नेत्र को छोड़कर शेष पूर्वोक्त पाँच अंगों में न्यास करना चाहिए । अन्यथा पूर्वोक्त ६ अंगों में न्यास करना चाहिए ।

मन्त्रमहोदधि के कर्ता

श्रीमन्महीधर भट्ट मन्त्रमहोदधि के कर्ता हैं जो राम भक्त फनू भट्ट के आत्मज हैं । ये वत्सगोत्रीय ब्राह्मण हैं । ये संसार की असारता को समझकर अहिच्छत्र ग्राम से आकर काशी में बस गए थे । इन्होंने अपने कल्याण नामक पुत्र और अन्य विद्वानों के आग्रह के कारण इस ग्रन्थ की रचना की थी[1] । ग्रन्थकार के अनुसार १६४५ ई० में इसे काशी में रचा गया था । श्री मन्महीधर लक्ष्मीनृसिंह के उपासक थे[2] ।

श्री मन्महीधर भट्ट ने 'नौका' नामक स्वोपज्ञ टीका भी लिखी है । यह टीका अत्यन्त उपादेय है । जहाँ कहीं संकेत हैं उन्हें यह अनावृत कर देती है ।

---

१. मं० महो० २५. १२१-१२५ ।
२. मं० महो० २५. १२७-१३२ ।

इस ग्रन्थ के कुल ३३ सौ श्लोक अधिकतर अनुष्टुप् छन्द में विरचित हैं । प्रत्येक तरङ्ग में एक देवता और उनसे सम्बन्धित अन्य उनके भेदोपभेद का वर्णन है । पहले उन देवता का ध्यान बतलाते हैं फिर उनकी पूजा पद्धति और उनमें प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों का उद्धार करते हैं । नौका टीका में शारदातिलक[1] और डामर तन्त्र का उल्लेख होने से ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने यद्यपि इस ग्रन्थ की रचना अन्य ग्रन्थों के भी आधार पर की है किन्तु मुख्यतया ये दो ग्रन्थ इनके लिए उपजीव्य रहे हैं ।

मन्त्रमहोदधि के विषय

मन्त्रमहोदधि में पच्चीस तरङ्ग हैं । प्रथम तरङ्ग में भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, मातृकान्यास, पुरश्चरण और होम की विधि तथा तर्पण का विषय प्रतिपादन किया गया है । द्वितीय तरङ्ग में गणेश के विविध मन्त्र और उनकी सिद्धि के प्रकार कहे गए हैं । तृतीय तरङ्ग में काली तथा काली नाम से अभिहित दक्षिणकाली आदि के अनेक मन्त्र एवं सुमुखी के मन्त्र का प्रतिपादन एवं काम्यप्रयोग कहा गया है । चतुर्थ तरङ्ग में तारा की उपासना तथा पञ्चम तरङ्ग में तारा के भेद कहे गए हैं ।

छठे तरङ्ग में छिन्नमस्ता, शबरी, स्वयम्बरा, मधुमती, प्रमदा, प्रमोदा, बन्दी जो बन्धन से मुक्त करती हैं - उनके मन्त्रों को बताया गया है । सप्तम तरङ्ग में वटयक्षिणी, वटयक्षिणी के भेद, वाराही, ज्येष्ठा, कर्णपिशाचिनी, स्वप्नेश्वरी, मातङ्गी, बाणेशी एवं कामेशी के मंत्रों को प्रतिपादित किया गया है । अष्टम तरङ्ग में त्रिपुरा बाला तथा उनके भेदों का विवेचन विस्तार से किया गया है । नवम तरङ्ग में अन्नपूर्णा, उनके भेद त्रैलोक्यमोहन गौरी एवं ज्येष्ठालक्ष्मी तथा उनके साथ ही प्रत्यंगिरा के भी मन्त्रों का निर्देश किया गया है । दशम तरङ्ग में बगलामुखी तथा वाराही एवं वार्त्ताली को भी बतलाया गया है ।

एकादश तरङ्ग में श्रीविद्या तथा द्वादश तरङ्ग में उनके आवरण पूजा की विधि बताई गई है । त्रयोदश तरङ्ग में भक्तराज हनुमान् के मन्त्रों एवं प्रयोगों का विशद् रूप से प्रतिपादन किया गया है । चतुर्दश तरङ्ग में नृसिंह, गोपाल एवं गरुड मन्त्रों का प्रतिपादन है । पञ्चदश तरङ्ग में सूर्य, भौम, बृहस्पति, शुक्र एवं वेदव्यास के मन्त्रों को बताया गया है ।

षोडश तरङ्ग में महामृत्युञ्जय, रुद्र एवं गङ्गा तथा मणिकर्णिका के मन्त्र कहे गए हैं । सप्तदश तरङ्ग में कार्त्तवीर्यार्जुन के मन्त्र, दीपदान विधि आदि का वर्णन है । अष्टादश तरङ्ग में कालरात्रि के मन्त्र, नवार्णमन्त्र, शतचण्डी और सहस्रचण्डी विधान का सविस्तार वर्णन किया गया है । उन्नीसवें तरङ्ग में चरणायुध मन्त्र, शास्ता मन्त्र, पार्थिवार्चन, धर्मराज, चित्रगुप्त के मन्त्रों का प्रतिपादन करते हुये आसुरी (दुर्गा) मन्त्र की विधि का प्रतिपादन किया गया है । बीसवें तरङ्ग में विविध यन्त्र, स्वर्णाकर्षण भैरव की उपासना विधि तथा अनेक यन्त्रों का वर्णन है ।

---

१. मं० महो० ६. ५२-५३ पर नौका टीका ।

इक्कीसवें तरङ्ग में स्नान से लेकर अन्तर्याग तथा नित्यकर्म का वर्णन है । बाइसवें तरङ्ग में अर्घ्यस्थापन से लेकर पूजन पर्यन्त कृत्य तथा पूजा के भेद बतलाये गए हैं । त्रयोविंशति तरङ्ग में दमनक तथा पवित्रक से इष्टदेव के समर्चन का विधान कहा गया है । चौबीसवें तरङ्ग में मन्त्र शोधन की नाना प्रकार की प्रक्रिया कही गई है । पच्चीसवें तरङ्ग में षट्कर्मों के समस्त विधान का निर्देश है । इस प्रकार मन्त्रमहोदधि के पच्चीस तरङ्गों में मन्त्र सम्बन्धी समस्त विषयों का प्रतिपादन किया गया है ।

भूतशुद्धि

प्रथम तरङ्ग में १० वें श्लोक से लेकर ३४ वें श्लोक तक भूतशुद्धि का विवेचन है जो संक्षेप में इस प्रकार है -

भूतशुद्धि का अर्थ है अव्यय ब्रह्म के संयोग से शरीर के रूप में परिणत पञ्चभूतों का शोधन । भावनाशक्ति और मन्त्रशक्ति के संयोग से क्रियाविशेष द्वारा शरीरस्थ मलिन भूतों को भस्म करके, नवीन दिव्य भूतों का निर्माण करने और स्थूलशरीर और सूक्ष्मशरीर के शोधन में ही इस क्रिया का तात्पर्य है । चित्तशुद्धि के लिए जितनी क्रियाओं का निर्देश किया गया है, उनमें इस क्रिया का स्थान सर्वोपरि है । **वसिष्ठसंहिता** में तो यहाँ तक कहा गया है कि इसके बिना जप-पूजादि कृत्य निरर्थक हो जाते हैं । वास्तव में ऐसी ही बात है । जब तक शरीर अशुद्ध रहेगा, मन में पाप भावनाएँ रहेंगी तब तक एकाग्र भाव से किसी की पूजा, ध्यान आदि कैसे किये जा सकते हैं । मन्त्रमहोदधि में इसकी विधि इस प्रकार बताई गई है -

स्नान, सन्ध्या आदि नित्य कृत्यों से निवृत्त होकर ध्यान के स्थान पर आवे और वहाँ आसन पर बैठकर आचमनादि आवश्यक कृत्य करके अपने चारों ओर जल छिड़के और ऐसी भावना करे कि मेरे चारों तरफ अग्नि की एक दिव्य चहारदीवारी है - ऐसा करते समय अग्नि बीज 'रं' का जप करता रहे और मेरा आसन दृढ़ एवं शरीर स्थिर है, परमात्मा की कृपा से कोई विघ्न-बाधा मुझे अपने संकल्प से विमुख नहीं कर सकेगी इस प्रकार सोंचे । इसके पश्चात् भूतशुद्धि का संकल्प करे -

'ओम् अद्येत्यादि देवपूजाद्यधिकारसिद्ध्यये भूतशुद्ध्याद्यहं करिष्ये ।'

तत्पश्चात् कुण्डलिनी का चिन्तन करे । कुण्डलिनी सहस्त्र सहस्त्र विद्युत् की कान्ति के समान देदीप्यमान है और कमलनालगत तन्तु के समान सूक्ष्म एवं सर्पाकार है । वह मूलाधार चक्र में सोती रहती है । अब वह जग गयी है और क्रमशः स्वाधिष्ठान और मणिपूर चक्र का भेदन करके सुषुम्णामार्ग से हृदय स्थित अनाहत चक्र में आ गयी है । हृदय में दीपशिखा के समान आकार वाला जीव निवास करता है । उसे उसने अपने मुख में ले लिया और कण्ठस्थ विशुद्धचक्र तथा भ्रूमध्यस्थ आज्ञा चक्र का भेदन करके पूर्वोक्त मार्ग से ही सहस्रार में पहुँच गयी । सहस्रार में परमात्मा का निवास है । 'हंसः' मन्त्र के द्वारा वह कुण्डलिनी जीवात्मा के साथ ही परमात्मा में विलीन हो गयी ।

इसके बाद ऐसी भावना करनी चाहिए कि शरीर में पैर के तलवे से लेकर जानुपर्यन्त (१) पृथिवी-मण्डल है । वह चौकोर है और उसका रंग पीला है । उसी में पादेन्द्रिय, चलने की क्रिया, गन्तव्य, स्थान, गन्ध, घ्राण, पृथिवी, ब्रह्मा, निवृत्ति कला एवं समान वायु निवास करते हैं । इनका स्मरण करके **'ॐ ह्रां ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्ति कलात्मने हुं फट् स्वाहा'** इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए कुण्डलिनी के द्वारा उन्हें जलस्थान में विलीन कर देना चाहिए ।

जानु से नाभि पर्यन्त श्वेत वर्ण का अर्द्धचन्द्राकार (२) जलमण्डल है । उसी में हस्त-इन्द्रिय, दानक्रिया, दातव्य, रस, रसनेन्द्रिय, जल, विष्णु, प्रतिष्ठाकला, और उदान वायु निवास करते हैं । उनका स्मरण करके **'ॐ ह्रीं विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने हुं फट् स्वाहा'** । इस मन्त्र का उच्चारण करके कुण्डलिनी के द्वारा उन सबको अग्नि स्थान में विलीन कर देना चाहिए ।

नाभि से लेकर हृदय पर्यन्त रक्तवर्ण का त्रिकोण (३) अग्निमण्डल है। उसमें पायु-इन्द्रिय, विसर्ग क्रिया, विसर्जनीय, रूप, चक्षु, तेज, रुद्र, विद्याकला एवं व्यान वायु निवास करते हैं । उनका स्मरण करके - **'ॐ ह्रूं रुद्राय तेजोऽधिपतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा'** इस मन्त्र का उच्चारण करके कुण्डलिनी के द्वारा वायुमण्डल में विलीन कर देना चाहिए ।

हृदय से भ्रूपर्यन्त काले रंग का गोलाकार छः बिन्दुओं से चिन्हित (४) वायुमण्डल है । उसमें उपस्थ-इन्द्रिय, आनन्द-क्रिया, उस इन्द्रिय का विषय, स्पर्श, स्पर्श का विषय और वायु ईशान, शान्तिकला एवं अपान वायु का निवास है । उनका स्मरण करके - **'ॐ ह्रैं ईशानाय वाय्वधिपतये शान्तिकलात्मने हुँ फट् स्वाहा'** इस मन्त्र का उच्चारण करके आकाशमण्डल में उनको विलीन कर देना चाहिए ।

भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त स्वच्छ (५) आकाशमण्डल है । उसमें वाग्-इन्द्रिय, वचन-क्रिया, वक्तव्य शब्द, श्रोत्र, आकाश, सदाशिव, शान्त्यतीतकला और प्राण वायु का निवास है । उनका स्मरण करके - **'ॐ ह्रौं सदाशिवाय आकाशाधिपतये शान्त्यतीत-कलात्मने हुं फट् स्वाहा'** इस मन्त्र का उच्चारण करके उन सबको कुण्डलिनी के द्वारा अहंकार में विलीन कर दे ।

अहंकार को महत्तत्त्व में और महत्तत्त्व को शब्दब्रह्मरूपा हृदयशब्द के सूक्ष्मतम अथ प्रकृति में विलीन कर दे और प्रकृति को नित्यशुद्धबुद्ध स्वभाव, स्वयं प्रकाश, सत्यज्ञान, अनन्त, आनन्दस्वरूप, परम कारण, ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म परमात्मा में विलीन कर दे ।

इसके पश्चात् पाप पुरुष का शोषण करने के लिये विनियोग करे - **'ॐ शरीरस्यान्तर्यामीऋषिः सत्यं देवता प्रकृतिपुरुषश्छन्दः पापपुरुषशोषणे विनियोगः'** । पहले पाप पुरुष का चिन्तन इस प्रकार करना चाहिए - मेरी वाम कुक्षि में अनादि कालीन पाप मूर्तिमान् पुरुष के रूप में निवास करता है । उसका शरीर अँगूठे के बराबर है । वह

कान्तिहीन है । पाँच महापापों से ही उसके शरीर का निर्माण हुआ है - ब्रह्महत्या उसका सिर है, स्वर्णस्तेय (सोने की चोरी) दोनों हाथ हैं, सुरापान हृदय है, गुरुतल्पगमन कटि है और इन पापों से युक्त पुरुषों का संसर्ग दोनों पैर हैं, अंग-प्रत्यंग पाप से ही बने है । रोम-रोम उपपातक हैं, दाढ़ी और आँखें लाल हैं, उसके हाथों में अविवेक का खड्ग और अहंता की ढाल है, असत्य के घोड़े पर सवार है, चेहरे से पिशुनता प्रकट हो रही है, क्रोध के दाँत हैं, काम का कवच है । गदहे के समान रेंकता है । ऐसा मूढ़ पाप पुरुष व्याधिग्रस्त होने के कारण मरणासन्न हो रहा है ।

इस प्रकार पाप पुरुष का चिन्तन करके उसके शोषण का विनियोग करना चाहिए । ॐ 'यं' - यह वायु-बीज है । इसके किष्किन्ध ऋषि हैं, वायु देवता हैं और जगती छन्द है । पाप पुरुष के शोषण में इनका विनियोग है । नाभि के मूल में षड्बिन्दु चिन्हित एक मण्डल है । उस पर धूम्रवर्ण का वायु बीज 'यं' रहता है । उसकी ध्वजाए चञ्चल होती रहती हैं और उसमें से 'घूं-घूं' शब्द निकलता रहता है । सबको सुखा डालना उसका काम है । इस प्रकार 'यं' बीज का चिन्तन करके और पूरक के द्वारा सोलह बार उसकी आवृत्ति करके उस बीज से उठे हुए वायु के द्वारा पाप पुरुष के समस्त शरीर को सूखा हुआ देखना चाहिए ।

इसके पश्चात् अग्नि-बीज 'रं' का चिन्तन करना चाहिए । इसके कश्यप ऋषि, अग्नि देवता और त्रिष्टुप छन्द हैं । हृदय में रक्तवर्ण का अग्निमण्डल है । उसके देवता रुद्र हैं, विद्याकला का उसी में निवास है । उसमें बीज है 'रं' । ऐसा चिन्तन करके कुम्भक के द्वारा ६४ या ५० बार 'रं' की आवृत्ति करके पाप पुरुष के सूखे हुए शरीर को भस्म कर दे । इसके पश्चात् पूर्वोक्त प्रकार से वायु-बीज 'यं' की ३२ बार आवृत्ति करके रेचक प्राणायाम के द्वारा पापपुरुष का भस्म उड़ा दे ।

इसके पश्चात् वरुण-बीज 'वं' का चिन्तन करे । इसके हिरण्यगर्भ ऋषि हैं, हंस देवता हैं और त्रिष्टुप् छन्द है । सिर में अर्द्धचन्द्राकार दो श्वेत पद्म वाले वरुणदैवत वरुण-बीज 'वं' का चिन्तन करना चाहिए और उससे प्रवाहित होने वाले अमृत से पिण्डीभूत भस्म को आप्लावित अनुभव करना चाहिए ।

इसके पश्चात् पृथिवी-बीज 'लं' का चिन्तन करे । इसके ऋषि ब्रह्मा हैं, देवता इन्द्र हैं और छन्द गायत्री । आधारमण्डल में वज्रलाञ्छित पृथिवी है - चौकोर, कड़ी, पीली और इन्द्रदैवत । उस पर 'लं' बीज का चिन्तन करना चाहिए ।

उसके प्रभाव से शरीर को दृढ़ एवं कठिन चिन्तन करके आकाश-बीज 'हं' का चिन्तन करना चाहिए । आकाश मण्डल वृत्ताकार, स्वच्छ, शान्त्यतीतकला से युक्त, आकाश दैवत एवं 'हं' रूप है । इसकी भावना से शरीर सावकाश एवं व्यूहित हो जाता है । इसमें अपना दिव्य शरीर भावित करके पूर्वोक्त प्रक्रिया से परमात्मा में विलीन तत्त्वों को पुनः अपने-अपने स्थान पर स्थापित करना चाहिए ।

इस प्रकार जब सूक्ष्म शरीर और स्थूलशरीर की दिव्यता सम्पन्न हो जाय, तब 'ॐ सोऽहम्' इस मन्त्र से परमात्मा की सन्निधि से जीव को हृदय-कमल में ले आवे और ऐसा अनुभव करे कि मैं परमात्मा की सत्ता, शक्ति, कृपा, सान्निध्य और सायुज्य का अनुभव करके परम पवित्र और दिव्य हो गया हूँ । मेरा शरीर, पापरहित, नूतन, निर्मल और इष्ट देवता की आराधना के योग्य हो गया है । इसके पश्चात् आगे का अनुष्ठान कार्य प्रारम्भ करे ।

गणेश

गणेश विघ्न निवारण के देवता हैं । इसलिए मन्त्रमहोदधि में भूतशुद्धि आदि के बाद द्वितीय तरङ्ग में इनसे सम्बन्धित मन्त्रों का वर्णन है । यह जल तत्त्व के देवता हैं अतः पञ्चायतन देवों में भी इनकी उपासना पूजा होती है ।

विद्यास्वरूपा महाशक्ति

तृतीय तरङ्ग से लेकर १२वें तरङ्ग तक महाविद्याओं से सम्बन्धित मन्त्रों का विवेचन है । इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

महाशक्ति विद्या और अविद्या दोनों ही रूपों में विद्यमान हैं । अविद्या-रूप में वे प्राणियों के मोह की कारण हैं तो विद्या-रूप में मुक्ति की । शास्त्र और पुराण उन्हें विद्या के रूप में और परम-पुरुष को विद्यापति के रूप में मानते हैं ।

महाविद्याओं का प्रादुर्भाव - दस महाविद्याओं का सम्बन्ध परम्परातः सती, शिवा और पार्वती से है । ये ही अन्यत्र नवदुर्गा, शक्ति, चामुण्डा, विष्णुप्रिया आदि नामों से पूजित और अर्चित होती हैं ।

महाभागवत में कथा आती है कि दक्ष प्रजापति ने अपने यज्ञ में शिव को आमन्त्रित नहीं किया । सती ने शिव से उस यज्ञ में जाने की अनुमति माँगी । शिव ने अनुचित बताकर उन्हें जाने से रोका, पर सती अपने निश्चय पर अटल रहीं। उन्होंने कहा - 'मैं प्रजापति के यज्ञ में अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो अपने प्राणेश्वर देवाधिदेव के लिए यज्ञभाग प्राप्त करूँगी या यज्ञ को ही नष्ट कर दूँगी । यह कहते हुए सती के नेत्र लाल हो गये । वे शिव को उग्र दृष्टि से देखने लगीं । उनके अधर फड़कने लगे, वर्ण कृष्ण हो गया । क्रोधाग्नि से दग्ध शरीर महाभयानक एवं उग्र दीखने लगा । देवी का यह स्वरूप साक्षात् महादेव के लिए भी भयप्रद और प्रचण्ड था । उस समय उनका श्रीविग्रह करोड़ों मध्याह्न के सूर्यों के समान तेजःसम्पन्न था और वे बारंबार अट्टहास कर रही थीं ।

देवी के इस विकराल महाभयानक रूप को देखकर शिव भाग चले । भागते हुए रुद्र को दसों दिशाओं में रोकने के लिए देवी ने अपनी अङ्गभूता दस देवियों को प्रकट किया । देवी की ये स्वरूपा शक्तियाँ ही दस महाविद्याएँ हैं, जिनके नाम हैं - काली, तारा, छिन्नमस्ता, भुवनेश्वरी, बगलामुखी, धूमावती, त्रिपुरसुन्दरी, मातङ्गी, षोडशी और त्रिपुरभैरवी ।

शिव ने सती से इन महाविद्याओं का जब परिचय पूँछा, तब सती ने स्वयं इसकी व्याख्या करके उन्हें बताया -

येयं ते पुरतः कृष्णा सा काली भीमलोचना ।
श्यामवर्णा च या देवी स्वयमूर्ध्व व्यवस्थिता ॥
सेयं तारा महाविद्या महाकालस्वरूपिणी ।
सव्येतरेयं या देवी विशीर्षातिभयप्रदा ॥
इयं देवी छिन्नमस्ता महाविद्या महामते ।
वामे तवेयं या देवी सा शम्भो भुवनेश्वरी ॥
पृष्ठतस्तव या देवी बगला शत्रुसूदनी ।
वह्निकोणे तवेयं या विधवारूपधारिणी ॥
सेयं धूमावती देवी महाविद्या महेश्वरी ।
नैर्ऋत्यां तव या देवी सेयं त्रिपुरसुन्दरी ॥
वायौ या ते महाविद्या सेयं मतङ्गकन्यका ।
ऐशान्यां षोडशी देवी महाविद्या महेश्वरी ॥
अहं तु भैरवी भीमा शम्भो मा त्वं भयं कुरु ।
एताः सर्वाः प्रकृष्टास्तु मूर्तयो बहुमूर्तिषु ॥

'शम्भो ! आपके सम्मुख जो यह कृष्णवर्णा एवं भयंकर नेत्रों वाली देवी स्थित हैं वह **'काली'** हैं । जो श्याम वर्ण वाली देवी स्वयं ऊर्ध्व भाग में स्थित हैं, यह महाकालस्वरूपिणी महाविद्या **'तारा'** हैं । महामते ! बायीं ओर जो यह अत्यन्त भयदायिनी मस्तकरहित देवी हैं, यह महाविद्या **' छिन्नमस्ता'** हैं । शम्भो ! आपके वामभाग में जो यह देवी है, वह **'भुवनेश्वरी'** हैं । आप के पृष्ठभाग में जो देवी है, वह शत्रुसंहारिणी **'बगला'** हैं । आपके अग्निकोण में जो यह विधवा का रूप धारण करने वाली देवी है, वह महेश्वरी-महाविद्या **'धूमावती'** हैं । आप के नैर्ऋत्य कोण में जो देवी है, वह **'त्रिपुरसुन्दरी'** हैं । आप के वायव्यकोण में जो देवी है, वह मतङ्गकन्या महाविद्या **मातङ्गी** हैं । आपके ईशानकोण में महेश्वरी महाविद्या **'षोडशी'** देवी हैं । शम्भो ! मैं भयंकर रूपवाली **'भैरवी'** हूँ । आप भय मत करें । ये सभी मूर्तियाँ बहुत-सी मूर्तियों में प्रकृष्ट हैं ।'

महाविद्याओं के क्रम-भेद तो प्राप्त होते हैं, परन्तु काली की प्राथमिकता सर्वत्र देखी जाती है । यों भी दार्शनिक दृष्टि से कालतत्त्व की प्रधानता सर्वोपरि है । इसलिए मूलतः महाकाली या काली अनेक रूपों में विद्याओं की आदि हैं और उनकी विद्यामय विभूतियाँ ही महाविद्याएँ हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि महाकाल की प्रियतमा काली अपने दक्षिण और वाम रूपों में दस महाविद्याओं के रूप में विख्यात हुई और उनके विकराल तथा सौम्य रूप ही विभिन्न नाम-रूपों के साथ दस महाविद्याओं के रूप में अनादिकाल से अर्चित हो रहे हैं । ये रूप अपनी उपासना, मन्त्र और दीक्षाओं के भेद से अनेक होते हुए भी मूलतः एक ही हैं । अधिकारि भेद से इनके अलग-अलग रूप और उपासना स्वरूप प्रचलित हैं ।

सृष्टि में शक्ति और संहार में शिव की प्रधानता दृष्ट है । जैसे अमा और पूर्णिमा दोनों दो भासती हैं, पर दोनों दोनों की तत्त्वतः एकात्मता और एक दूसरे की कारण-परिणामी हैं, वैसे ही दस महाविद्याओं के रौद्र और सौम्य रूपों को भी समझना चाहिए । काली, तारा, छिन्नमस्ता, बगला और धूमावती विद्यास्वरूप भगवती के प्रकट-कठोर किंतु अप्रकट करुण-रूप हैं तो भुवनेश्वरी, षोडशी (ललिता), त्रिपुरभैरवी, मातङ्गी और कमला विद्याओं के सौम्यरूप हैं ।

बृहन्नील तन्त्र में कहा गया है कि रक्त और कृष्ण भेद से काली ही दो रूपों में अधिष्ठित हैं । कृष्णा का नाम 'दक्षिणा' है तो रक्तवर्णा का नाम सुन्दरी -

विद्या हि द्विविधा प्रोक्ता कृष्णा रक्ता-प्रभेदतः ।
कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता ॥

इस प्रकार उपासना के भेद से दोनों में द्वैत है, परन्तु तत्त्वदृष्टि से अद्वैत है । देवीभागवत के अनुसार सदाशिव फलक हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर उस फलक या श्रीमञ्च के पाये हैं । इस श्रीमञ्च पर भुवनेश्वरी भुवनेश्वर के साथ विद्यमान हैं और सात करोड़ मन्त्र इनकी आराधना में लगे हुए हैं ।

१. काली - दस महाविद्याओं में काली प्रथम हैं । कालिका पुराण के अनुसार एक बार देवताओं ने हिमालय पर जाकर महामाया का स्तवन किया । पुराणकार के अनुसार यह स्थान मतङ्ग मुनि का आश्रम था । स्तुति से प्रसन्न होकर भगवती ने मतङ्ग-वनिता बनकर देवताओं को दर्शन दिया और पूँछा कि 'तुमलोग किस की स्तुति कर रहे हो ।' तत्काल उनके श्रीविग्रह से काले पहाड़ के समान वर्ण वाली दिव्य नारी का प्राकट्य हुआ । उस महातेजस्विनी ने स्वयं ही देवताओं की ओर से उत्तर दिया कि 'ये लोग मेरा ही स्तवन कर रहे हैं ।' वे गाढ काजल के समान कृष्णा थीं, इसीलिए उनका नाम 'काली' पड़ा ।

महाकाली प्रलय काल से सम्बद्ध होने से अतएव कृष्णवर्णा हैं । वे शव पर आरूढ इसीलिए हैं कि शक्तिविहीन विश्व मृत ही है । शत्रुसंहारक शक्ति भयावह होती हैं, इसीलिए काली की मूर्ति भयावह है । शत्रु-संहार के बाद विजयी योद्धा का अट्टहास भीषणता के लिए होता है, इसलिए महाकाली हँसती रहती हैं ।

२. तारा - वास्तव में काली को ही नीलरूपा होने से 'तारा' भी कहा गया है । वचनान्तर से तारा नाम का रहस्य यह भी है कि वे सर्वदा मोक्ष देने वाली - तारने वाली हैं, इसलिए तारा हैं । अनायास ही वे वाक् प्रदान करने में समर्थ हैं, इसलिए 'नीलसरस्वती' भी हैं । भयंकर विपत्तियों से रक्षण कर कृपा प्रदान करती हैं, इसलिए वे उग्रतारिणी या 'उग्रतारा' हैं ।

तारा और काली यद्यपि एक ही हैं तथापि बृहन्नील तन्त्रादि ग्रन्थों में उनके विशेष रूप की चर्चा है । हयग्रीव का वध करने के लिए देवी को नील-विग्रह प्राप्त हुआ ।

शव-रूप शिव पर प्रत्यालीढ मुद्रा में भगवती आरूढ हैं और उनकी नीले रंग की आकृति है तथा नील कमलों की भाँति तीन नेत्र तथा हाथों में कैंची, कपाल, कमल और खड्ग हैं । व्याघ्रचर्म से विभूषित उन देवी के कण्ठ में मुण्डमाला है । वे उग्रतारा हैं, पर भक्तों पर कृपा करने के लिए उनकी तत्परता अमोघ है । इस कारण वे महाकरुणामयी हैं ।

तारा तन्त्र में कहा गया है -

समुद्र मथने देवि कालकूट समुपस्थितम् ॥

समुद्र मन्थन के समय जब कालकूट विष निकला तो बिना किसी क्षोभ के उस हलाहल विष को पीने वाले शिव ही अक्षोभ्य हैं और उनके साथ तारा विराजमान हैं । **शिव शक्ति संगम तन्त्र** में अक्षोभ्य शब्द का अर्थ महादेव ही निर्दिष्ट है । अक्षोभ्य को द्रष्टा ऋषि शिव कहा गया है । अक्षोभ्य शिव ऋषि को मस्तक पर धारण करने वाली तारा तारिणी अर्थात् तारण करने वाली हैं । उनके मस्तक पर स्थित पिङ्गल वर्ण उग्र जटा का रहस्य भी अद्‌भुत है । यह फैली हुई उग्र पीली जटाएं सूर्य की किरणों की प्रतिरूपा हैं । यही एकजटा है । इस प्रकार अक्षोभ्य एवं पिङ्गोग्रैक जटा धारिणी उग्र तारा एकजटा के रूप में पूजित हुईं । वही उग्र तारा शव के हृदय पर चरण रख कर उस शव को शिव बना देने वाली नीलसरस्वती हो गईं । जैसा कि कहा है -

मातर्नीलसरस्वति प्रणमतां सौभाग्य सम्पत्प्रदे ।
प्रत्यालीढपदस्थिते शिवहृदि स्मेराननाम्भोरुहे ॥

शब्दकल्पद्रुम के अनुसार तीन रूपों वाली तारा, एकजटा और नीलसरस्वती एक ही तारा के त्रिशक्ति रूप हैं ।

नीलया वाक्प्रदा चेति तेन नीलसरस्वती ।
तारकत्वात् सदा तारा सुखमोक्षप्रदायिनी ॥
उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता ।
पिङ्गोग्रैकजटायुक्ता सूर्यशक्तिस्वरूपिणी ॥

सर्वप्रथम महर्षि वसिष्ठ ने तारा की उपासना की । इसलिए तारा को 'वसिष्ठाराधिता तारा' भी कहा जाता है । वसिष्ठ ने पहले वैदिक रीति से आराधन की, जो सफल न हो सकी । उन्हें अदृश्य शक्ति से संकेत मिला कि वे तान्त्रिक पद्धति के द्वारा जिसे 'चीनाचार' कहा गया है, उपासना करें । ऐसा करने से ही वसिष्ठ को सिद्धि मिली। यह कथा **'आचार-तन्त्र'** में वसिष्ठ मुनि की आराधना के उपाख्यान में वर्णित है ।

३. छिन्नमस्ता - एक बार भगवती भवानी अपनी सहचरियों जया और विजया के साथ मन्दाकिनी में स्नान करने के लिए गयीं । वहाँ स्नान करने पर क्षुधाग्नि से पीड़ित होकर वे कृष्णवर्ण की हो गयीं । उस समय उनकी सहचरियों ने उनसे कुछ भोजन करने के लिए माँगा । देवी ने उनसे कुछ प्रतीक्षा करने के लिए कहा । कुछ समय प्रतीक्षा करने

के बाद पुनः याचना करने पर देवी ने पुनः प्रतीक्षा करने के लिए कहा । बाद में उन देवियों ने विनम्र स्वर में कहा कि 'माँ तो शिशुओं को तुरन्त भूख लगने पर भोजन प्रदान करती है ।' इस प्रकार उनके मधुर वचन सुनकर कृपामयी ने अपने कराग्र से अपना सिर काट दिया । कटा हुआ सिर देवी के बायें हाथ में आ गिरा और कबन्ध से तीन धाराएँ निकलीं । वे दो धाराओं को अपनी दोनों सहेलियों की ओर प्रवाहित करने लगीं, जिसे पीती हुई वे दोनों प्रसन्न होने लगीं और तीसरी धारा जो ऊपर की ओर प्रवाहित थी उसे वें स्वयं पान करने लगीं । तभी से वे 'छिन्नमस्ता' कही जाने लगीं ।

छिन्नमस्ता भगवती छिन्नशीर्ष (कटा सिर) कर्तरी (कृपाण) एवं खप्पर लिए हुए स्वयं दिगम्बर रहती हैं । कबन्ध-शोंणित की धारा पीती रहती हैं । कटे हुए सिर में नागबद्धमणि विराज रही है, सफेद खुले केशों वाली, नील-नयना और हृदय पर उत्पल (कमल) की माला धारण किए हुए ये देवी सुरतासक्त मनोभव के ऊपर विराजमान रहती हैं ।

४. भुवनेश्वरी - देवी भागवत में वर्णित मणिद्वीप की अधिष्ठात्री देवी हल्लेखा (ह्रीं) मन्त्र की स्वरूपा शक्ति और और सृष्टि क्रम में महालक्ष्मी स्वरूपा - आदि शक्ति भगवती भुवनेश्वरी शिव के समस्त लीला-विलास की सहचरी और निखिल प्रपञ्चों की आदि-कारण, सब की शक्ति और सब को नाना प्रकार से पोषण प्रदान करने वाली हैं । जगदम्बा भुवनेश्वरी का स्वरूप सौम्य और अङ्गकान्ति अरुण है । भक्तों को अभय एवं समस्त सिद्धियाँ प्रदान करना उनका स्वाभाविक गुण है । शास्त्रों में इनकी अपार महिमा बतायी गयी है ।

देवी का स्वरूप 'ह्रीं' इस बीजमन्त्र में सर्वदा विद्यमान है, जिसे देवी भागवत में देवी का 'प्रणव' कहा गया है ।

विश्व का अधिष्ठान त्र्यम्बक सदाशिव हैं, उनकी शक्ति 'भुवनेश्वरी' है । सोमात्मक अमृत से विश्व का आप्यायन (पोषण) हुआ करता है । इसीलिए भगवती ने अपने किरीट में चन्द्रमा धारण कर रखा है । ये ही भगवती त्रिभुवन का भरण-पोषण करती रहती है, जिसका संकेत उनके हाथ की मुद्रा करती है । ये उदीयमान सूर्यवत् कान्तिमती, त्रिनेत्रा एवं उन्नत कुचयुगला देवी हैं । कृपा दृष्टि की सूचना उनके मृदुहास्य (स्मेर) से मिलती है । शासनशक्ति के सूचक अंकुश, पाश आदि को भी वे धारण करती हैं ।

५. श्रीबगला - सत्ययुग में सम्पूर्ण जगत् को नष्ट करने वाला तूफान आया । प्राणियों के जीवन पर संकट आया देखकर महा विष्णु चिन्तित हो गये और वे सौराष्ट्र देश में हरिद्रा सरोवर के समीप जाकर भगवती को प्रसन्न करने के लिए तप करने लगे । श्रीविद्या ने उस सरोवर से निकलकर 'पीताम्बरा' के रूप में उन्हें दर्शन दिया और बढ़ते हुए जल-वेग तथा विध्वंसकारी उत्पात का स्तम्भन किया । वास्तव में दुष्ट वही है, जो जगत् के या धर्म के छन्द का अतिक्रमण करता है । बगला उसका स्तम्भन किंवा नियन्त्रण करने काली महाशक्ति हैं । वे परमेश्वर की सहायिका हैं और

वाणी, विद्या तथा गति को अनुशासित करती हैं । वें सर्वसिद्धि देने में समर्थ और उपासकों की वाञ्छाकल्पतरु हैं ।

श्रीबगला को 'त्रिशक्ति' भी कहा जाता है -

सत्ये काली च श्रीविद्या कमला भुवनेश्वरी ।
सिद्धविद्या महेशानि त्रिशक्तिर्बगला शिवे ॥

श्रीबगला पीताम्बरा को तामसी मानना उचित नहीं, क्योंकि उनके आभिचारिक कृत्यों में रक्षा की ही प्रधानता होती है और यह कार्य इसी शक्ति द्वारा होता है । शुक्ल-आयुर्वेद की माध्यंदिन संहिता के पाँचवें अध्याय की २३, २४, २५वीं कण्डिकाओं में अभिचार-कर्मकी निवृत्ति में श्रीबगलामुखी को ही सर्वोत्तम बताया गया है, । अर्थात् शत्रु के विनाश के लिए जो कृत्याविशेष को भूमि में गाड़ देते हैं, उन्हें नष्ट करने वाली वैष्णवी महाशक्ति श्रीबगलामुखी ही हैं ।

सिद्धेश्वर-तन्त्र के बगलापटल में मन्त्र जपादि के विषय में विशेष विधान बताए गए हैं, जो इस प्रकार हैं -

पीताम्बरधरो भूत्वा पूर्वाशाभिमुखः स्थितः ।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हरिद्राग्रन्थिमालया ॥
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं प्रयतो ध्यानतत्परः ।
प्रियंगुकुसुमेनापि पीतपुष्पैश्च होमयेत् ॥

बगला के जप में पीले रंग का विशेष महत्त्व है । जपकर्ता को पीला वस्त्र पहन कर हल्दी की गांठ की माला से जप करना चाहिए । देवी की पूजा और होम में पीले पुष्पों, प्रियंगु, कनेर, गेंदा आदि के पुष्पों का प्रयोग करना चाहिए । शुचिर्भूत हो पीले कपड़े पहन कर साधक पूर्वाभिमुख बैठ कर ही जप करे । उसे ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्यतः करना चाहिए और सदैव पवित्र रहकर भगवती का ध्यान करना चाहिए ।

श्रीबगला के साधक श्रीप्रजापति ने यह उपासना वैदिक रीति से की और वे सृष्टि की संरचना में सफल हुए । श्रीप्रजापति ने इस महाविद्या का उपदेश सनकादिक मुनियों को किया । सनत्कुमार ने श्रीनारद को तथा श्रीनारद ने सांख्यन नामक परमहंस को बताया तथा सांख्यायन ने ३६ पटलों में उपनिबद्ध **बगला-तन्त्र** की रचना की । दूसरे उपासक भगवान् श्रीविष्णु हुए, जिनका वर्णन **'स्वतन्त्र-तन्त्र'** में मिलता है । तीसरे उपासक श्रीपरशुराम जी हुए तथा श्रीपरशुराम जी ने यह विद्या आचार्य द्रोण को बतायी ।

महर्षि च्यवन ने भी इसी विद्या के प्रभाव से इन्द्र के वज्र को स्तम्भित कर दिया था । श्रीमद्गोविन्दपाद की समाधि में विघ्न डालने वाली रेवा नदी का स्तम्भन श्री शंकराचार्य ने इसी विद्या के बल से किया भा । महामुनि श्रीनिम्बार्क ने एक परिव्राजक को नीमवृक्ष पर सूर्य का दर्शन इसी विद्या के प्रभाव से कराया था । अतः साधकों को चाहिए कि वे श्रीबगला की विधिपूर्वक उपासना करें ।

६. धूमावती - एक बार पार्वती ने महादेव जी से अपनी क्षुधा को निवारण करने का निवेदन किया । महादेव जी चुप रह गये । कई बार निवेदन करने पर भी जब देवाधिदेव ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने महादेव जी को ही निगल लिया । उनके शरीर से धूमराशि निकली । तब शिवजी ने शिवा से कहा कि 'आपकी मनोहर मूर्त्ति बगला अब 'धूमावती' या 'धूम्रा' कही जायगी ।' यह धूमावती वृद्धास्वरूपा, डरावनी और भूख-प्यास से व्याकुल स्त्री-विग्रहवत् अत्यन्त शक्तिमयी हैं । अभिचार कर्मों में इनकी उपासना का विधान है ।

विश्व की अमाङ्गल्यपूर्ण अवस्था की अधिष्ठात्री शक्ति 'धूमावती' हैं । ये विधवा समझी जाती हैं, अतएव इनके साथ पुरुष का वर्णन नहीं है । यहाँ पुरुष अव्यक्त है । चैतन्य, बोध आदि अत्यन्त तिरोहित होते हैं । इनके ध्यान में बताया गया है कि ये भगवती विविर्णा, चञ्चला, दुष्टा एवं दीर्घ तथा गलित अम्बर (वसन) धारण करने वाली, खुले केशों वाली, विरल दन्त वाली, विधवा रूप में रहने वाली, काक-ध्वज वाले रथ पर आरूढ, लम्बे-लम्बे पयोधरों वाली, हाथ में शूर्प (सूप) लिए हुए, अत्यन्त रूक्ष नेत्रों वाली, कम्पित-हस्ता, लम्बी नासिका वाली, कुटिल-स्वभावा, कुटिल नेत्रों से युक्त, क्षुधा, पिपासा से पीड़ित, सदैव भयप्रदा और कलह की निवास-भूमि हैं ।

पुत्र-लाभ, धन-रक्षा और शत्रु-विजय के लिए धूमावती की साधना उपासना का विधान है ।

७. त्रिपुरसुन्दरी - कालिकापुराण के अनुसार शिवजी की भार्या त्रिपुरा श्रीचक्र की परम नायिका है । परम शिव इन्हीं के सहयोग से सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल रूपों में भासते हैं । त्रिपुरभैरवी महात्रिपुरसुन्दरी की रथ वाहिनी हैं, ऐसा उल्लेख मिलता है ।

वास्तव में काली, तारा, छिन्नमस्ता, वगलामुखी, मातङ्गी, धूमावती - ये विद्याएं रूप और विग्रह में कठोर तथा भुवनेश्वरी, षोडशी, कमला और भैरवी अपेक्षाकृत माधुर्यमयी रूपों की अधिष्ठातृ विद्याएँ हैं । करुणा और भक्तानुग्रहाकांक्षा तो सब में समान हैं । दुष्टों के दलन-हेतु विराजित होकर नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करती हैं ।

८. मातङ्गी - मतङ्ग मुनि की कन्या मातङ्गी कही गयी हैं । वस्तुतः वाणी-विलास की सिद्धि प्रदान करने में इनका कोई विकल्प नहीं । चाण्डाल रूप को प्राप्त शिव की प्रिया होने के कारण इन्हें 'चाण्डाली' या 'उच्छिष्ट चाण्डाली' भी कहा गया है । गृहस्थ-जीवन को सुखी बनाने, पुरुषार्थ-सिद्धि और वाग्विलास में पारङ्गत होने के लिए मातङ्गी-साधना श्रेयस्करी है ।

९. षोडशी - प्रशान्त हिरण्यगर्भ या सूर्य शिव हैं और उन्हीं की शक्ति है षोडशी, षोडशी का विग्रह या मूर्त्ति पञ्चवक्त्र अर्थात् पाच मुखों वाली है । चारों दिशाओं में चार और एक ऊपर की ओर मुख होने से इन्हें 'पञ्चवक्त्रा' कहा जाता है । ये पाँचों मुख तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव, अघोर और ईशान-शिव के इन पाँच रूपों के प्रतीक हैं ।

पूर्वोक्त पाँच दिशाओं के रंग क्रमशः हरित, रक्त, धूम्र, नील और पीत होने से मुख भी इन्हीं रंगों के हैं । देवी के दस हाथ हैं, जिनमें वे अभय, टंक, शूल, वज्र, पाश, खड्ग, अंकुश, घण्टा, नाग और अग्नि लिए हैं । ये बोधरूपा हैं । इनमें षोडश कलाएँ पूर्णरूपेण विकसित हैं, अतएव ये 'षोडशी' कहलाती हैं ।

षोडशी माहेश्वरी शक्ति की सबसे मनोहर श्रीविग्रह वाली सिद्ध विद्यादेवी हैं । १६ अक्षरों के मन्त्र वाली उन देवी की अङ्गकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डल की आभा की भाँति हैं । उनके चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं । शान्त मुद्रा में लेटे हुए सदाशिव पर स्थित कमल के आसन पर विराजिता षोडशी देवी के चारों हाथों में पाश, अंकुश, धनुष और बाण सुशोभित हैं । वर देने के लिए सदा-सर्वदा उद्यत उन भगवती का श्रीविग्रह सौम्य और हृदय दया से आपूरित है । जो उनका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनमें और ईश्वर में कोई भेद नहीं रह जाता ।

श्रीविद्या - संस्कृत वाङ्मय में शक्ति उपासना की विविध विद्याएँ प्रचुर रूप से उपलब्ध हैं । इनमें सर्वश्रेष्ठ स्थान है श्रीविद्या साधना का । भारत वर्ष की यह परम रहस्यमयी सर्वोत्कृष्ट साधनाप्रणाली मानी जाती है । ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म आदि समस्त साधनाप्रणालियों का समुच्चय ही श्रीविद्या है । ईश्वर के निःश्वासभूत होने से वेदों की प्रामाणिकता है । अतः सूत्र रूप से वेदों में एवं विशद रूप से तन्त्र - शास्त्रों में श्री विद्या - साधना के क्रम का विवेचन है ।

आचार्य शंकर भगवत्पाद 'सौन्दर्य-लहरी' में इसे इन शब्दों में प्रकट करते हैं -

चतुःषष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसंधाय भुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसवपरतन्त्रैः पशुपतिः ।
पुनस्त्वन्निर्बन्धादखिलपुरुषार्थैकघटना-
स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम् ॥

'पशुपति भगवान् शंकर वाममार्ग के चौंसठ तन्त्रों के द्वारा साधकों की जो-जो स्वाभिमत सिद्धि है, उन सब का वर्णन कर शान्त हो गए । फिर भी भगवती ! आपके निर्बन्ध अर्थात् आग्रह पर उन्होंने सकल पुरुषार्थों अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्रदान करने वाले इन श्रीविद्या-साधना-तन्त्र का प्राकट्य किया ।'

श्रीमत्शंकराचार्य 'सौन्दर्य-लहरी' में मन्त्र, यन्त्र आदि साधनाप्रणाली का वर्णन करते हुए इस श्रीविद्या-साधना की फलश्रुति इस प्रकार कहते हैं -

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा ।
चिरं जीवन्नेव क्षपितपरशुपाशव्यतिकरः
परानन्दाभिख्यं रसयति रसं त्वद्भजनवान् ॥

(सौन्दर्य-लहरी १०१)

'देवि ललिते ! आपका भजन करने वाला साधक विद्याओं के ज्ञान से विद्यापतित्त्व एवं धनाढ्यता से लक्ष्मीपतित्त्व को प्राप्त कर ब्रह्मा एवं विष्णु के लिए 'सपन्त' अर्थात् अपरपति प्रयुक्त असूया का जनक हो जाता है । वह अपने सौन्दर्यशाली शरीर से रतिपति काम को भी तिरस्कृत करता है एवं चिरञ्जीवी होकर पशु-पाशों से मुक्त जीवन्मुक्त - अवस्था को प्राप्त हो कर 'परानन्द' नामक रस का पान करता है ।'

आचार्य शंकर भगवत्पाद ने सौन्दर्य-लहरी में स्तुति व्याज से श्रीविद्या-साधना का सार सर्वस्व बता दिया है और श्रीविद्या के पञ्चदशाक्षरी मन्त्र के एक-एक अक्षर पर बीस नामों वाले ब्रह्माण्डपुराणोक्त 'ललिता-त्रिशती' स्तोत्र पर भाष्य लिखकर अपने चारों मठों में श्रीयन्त्र द्वारा श्रीविद्या साधना का परिष्कृत क्रम प्रारम्भ कर दिया है । जन्म-जन्मान्तरीय पुण्य पुञ्ज के उदय होने से यदि किसी को गुरुकृपा से इस साधना का क्रम प्राप्त हो जाय और वह सम्प्रदाय पुरस्सर साधना करे तो कृतकृत्य हो जाता है, उसके समस्त मनोरथपूर्ण हो जाते हैं और वह जीवन्मुक्त-अवस्था को प्राप्त हो जाता है ।

१०. त्रिपुरभैरवी - क्षीयमान विश्व का अधिष्ठान दक्षिण मूर्त्ति कालभैरव हैं । उनकी शक्ति ही 'त्रिपुरभैरवी' है । उनके ध्यान में बताया गया है कि वे उदित हो रहे सहस्रों सूर्यों के समान अरुण कान्ति वाली और क्षौमाम्बरधारिणी होती हुई मुण्डमाला पहने हैं । रक्त से उनके पयोधर लिप्त हैं । वे तीन नेत्र एवं हिमांशु-मुकुट धारण किए, हाथ में जपवटी, विद्या, वर एवं अभयमुद्रा धारण किए हुए हैं । ये भगवती मन्द-मन्द हास्य करती रहती हैं ।

इन्द्रियों पर विजय और सर्वतः उत्कर्ष की प्राप्ति हेतु त्रिपुर-भैरवी की उपासना का विधान शास्त्रों में कहा गया है । त्रिपुरभैरवी की महिमा का वर्णन करते हुए शास्त्र कहते हैं -

वारमेकं पठन्मर्त्यो मुच्यते सर्वसंकटात् ।
किमन्यद् बहुना देवि सर्वाभीष्टफलं लभेत् ॥

हनुमान् - श्रीहनुमान् जी भगवान् श्रीराम के भक्त हैं । इनका जन्म वायुदेव के अंश से और माता अञ्जनि के गर्भ से हुआ है । श्रीहनुमान् जी बालब्रह्मचारी महान् वीर अत्यन्त बुद्धिमान्, स्वामिभक्त हैं ।

आदि काव्य के अनुसार ब्रह्मा द्वारा प्रेरित हो कर श्रीसूर्यदेव ने बालक हनुमान् को अपने तेज का सौवाँ भाग प्रदान करते हुए आशीर्वाद दिया कि मैं इन्हें शास्त्र ज्ञान दूँगा जिससे यह श्रेष्ठ वक्ता होंगे । शास्त्र ज्ञान में इनकी समता करने वाला कोई नहीं होगा -

तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मि भविष्यति ।
न चास्य भविता कश्चिद् सदृशः शास्त्रदर्शने ॥

(वा. रा. ७. ३६. १४)

श्रीविद्यार्णव तन्त्र में उनके पीताम्बर से अलंकृत रूप का ध्यान इस प्रकार है -

ध्यायेद् बालदिवाकरप्रतिनिभं देवारिदर्पापहं
देवेन्द्रप्रमुखैः प्रशस्तयशसं देदीप्यमानं रुचा ।
सुग्रीवादिसमस्तवानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं
संरक्तारुणलोचनं पवनजं पीताम्बरालङ्कृतम् ॥

(श्रीविद्यार्णवतन्त्र, द्वादशाक्षरमन्त्र ३३. १२)

'जिनके शरीर का वर्ण बालसूर्य के समान अरुण है, जो देव-शत्रुओं के दर्प को चूर्ण करने वाले हैं, देवेन्द्र आदि प्रमुख देवगण जिनका यशोगान करते हैं, जो अपनी कान्ति से उद्भासित हो रहे हैं, सुग्रीव आदि समस्त वानर जिन्हें घेरे हुए हैं, जो सुव्यक्त - श्रीरामतत्त्व के प्रेमी हैं, जिनके नेत्र लाल हैं, उन पीताम्बरधारी पवन नन्दन का ध्यान करना चाहिए ।'

मन्त्र महोदधि के १३वें पटल में हनुमान् जी के मन्त्रों का संग्रह किया गया है । जिसका उपजीव्य नारद पुराण पूर्वखण्ड ७४ अध्याय से ७८ अध्याय तथा सुदर्शन संहिता आदि तन्त्र ग्रन्थों को माना जा सकता है ।

हनुमान् जी समस्त अभीष्ट फलों को प्रदान करने वाले श्रेष्ठ देवता हैं -

हनुमान् देवता प्रोक्तः सर्वाभीष्टफलप्रदः ।

(श्रीविद्यार्णव २८. ११)

महामृत्युञ्जय - मन्त्रशास्त्र में वेदोक्त **'त्र्यम्बकं यजामहे०'** (ऋक् ७। ५९ ।१२, यजु० ३। ६०, अथर्व० १४। १। १७, तैत्ति० सं० १। ८। ६। १२, निरुक्त १४। ३५) इत्यादि को ही मृत्युञ्जय नाम प्राप्त है । पुराणों में, मन्त्रमहोदधि, मन्त्रमहार्णव, शारदातिलक, विविध निबन्ध-ग्रन्थों में तथा मृत्युञ्जय-तन्त्र, मृत्युञ्जय कल्प, मृत्युञ्जय पञ्चाङ्ग आदि में इस मन्त्र का भाष्य, विधान, पटल, पद्धति, स्तोत्र आदि सब कुछ मिलते हैं । शिवपुराण - सतीखण्ड ३८। २१ - ४२ में इसका विस्तृत भाष्य है । वहाँ इसी को शुक्राचार्य की 'मृतसञ्जीवनीविद्या' कहा गया है, (मृतसञ्जीवनी मन्त्रो मम सर्वोत्तमः स्मृतः। - शिवपुराण, रुद्रसंहिता, सतीखण्ड ३८। ३० का पूर्वार्ध) तथा स्वयं शुक्राचार्य ने ही इस मन्त्र का दधीचि को उपदेश किया है । 'विष्णुधर्मोत्तर' आदि में इसके हवनादि के भेद से अनेक अर्थ-कामसाधक आदि दूसरे भी काम्य प्रयोग बतलाए गए हैं । यथा -

त्र्यम्बकं यजामहेति होमः सर्वार्थसाधकः ।
धत्तूरपुष्पं सघृतं तथा हुत्वा चतुष्पथे ॥
शून्ये शिवालये वापि शिवात् कामानवाप्नुयात् ।
हुत्वा च गुग्गुलं राम स्वयं पश्यति शङ्करम् ॥

(विष्णुधर्म० २। १२५। २३ - २५)

ऋग्विधान आदि में भी ऐसा ही बतलाया गया है । 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' प्रकृति खण्ड के ५६ वें अध्याय में कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने अंगिरा की पत्नी को मृत्युञ्जय ज्ञान दिया था ।

पञ्चदेवोपासना क्यों आवश्यक

यह शरीर पृथ्वी, जल आदि पञ्च महाभूतों से निर्मित है । पञ्चमहाभूतों के पाँच देवों का शरीर में निवास है । सूर्य वायु के अधिष्ठातृ देव हैं । विष्णु अकाश तत्त्व हैं । शक्ति अग्नि तत्त्व हैं । ईश क्षिति तत्त्व हैं और जल तत्त्व के देव गणेश हैं । इन पाँच महाभूतों का व्यतिक्रम ही शरीर के अवयवों को प्रभावित करता है और अन्ततः ब्लड प्रेशर आदि रोगों का कारण बनता है । चूंकि इन देवताओं का सम्बन्ध सीधे पञ्च महाभूतों से है और इन्ही पञ्च महाभूतों से शरीर निर्मित है । अतः इनकी अर्चना से शरीर (पञ्च तत्त्वों) का प्रभावित होना स्वाभाविक है । अतः व्यतिक्रम न हो इसलिए पञ्चायतन पूजा आवश्यक है ।

दमनक एवं पवित्र पूजा पद्धति -

दमनक एवं पवित्र पूजा का वर्णन तेइसवें तरङ्ग में किया गया है । इसकी विधि सौ श्लोंकों में बताई गई है । दमनक एक लता (द्रोण लता) है, जिसका प्रादुर्भाव रति के विलाप से गिरे अश्रु कणों से हुआ था । इसका विवेचन ज्ञानदीपविमर्शिनी टीका में विद्यानाथ ने इस प्रकार किया है -

दमनकपद्धतिः

अथ दमनकारोपणं द्विविधं बाह्याभ्यन्तरभेदेन -

हेलावलोकनबलाद्विलयं विधाय
कामं चकार तरसाभिनवं स शम्भुः ।
यद्दीप्तवीर्यविभवाश्रयणेन शक्तिः
साव्यात् त्रिलोकजननी त्रिपुरा जगन्ति ॥
देव्याः करोति परशक्तिमहोदयेन
दिव्यं वसन्तसमये दमनोत्सवं यः ।
कामान् नितान्तमिह कामिजनः समन्ता-
दाप्नोति शश्वदमितान् स्वहृदन्तरस्थान् ॥
दमनकस्य विधिं वक्ष्ये शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
येन सांवत्सरी पूजा साफल्यं भजते नृणाम् ॥
पूर्वं समाधिसंस्थस्य शिवस्यामिततेजसः ।
तपोनिकृत्तये कामः शक्रेण प्रेषितो यदा ॥
तदा ललाटनेत्राग्निज्वालाभिस्तेन शम्भुना ।
भस्मराशीकृतः कोपात् स कामस्तत्र विश्वजित् ॥

रतिः पतिवियोगार्ता प्रीतिः शोकाद् रुरोद च ।
तदश्रुपातादुद्भूता दमनस्य लता शुभा ॥
तद् रामणीयं सौरभ्यं पवित्रत्वं च शङ्करः ।
दृष्ट्वादाय मुद्रा दध्रे मूर्ध्नि तामतिकौतुकात् ॥
रतिप्रीतिशुचं ज्ञात्वा करुणाविष्टमानसः ।
अनङ्गं निर्ममे शम्भुर्भूयः संकल्पमात्रतः ॥
ततो वरं ददौ तस्मै कन्दर्पाय स शक्तिमान् ।
वसन्ते दामर्नी पूजामस्माकं न करोति यः ॥
वत्सरार्चाफलं तस्य तव सर्वं भविष्यति ।
इत्यस्मात्कारणात् सन्तः कुर्वन्ति दमनोत्सवम् ॥

- इति विद्यानन्दनाथः ज्ञानदीपविमर्शिन्याम्, पृ० १३१ - १३२

पवित्र पद्धतिः

अथ पवित्रारोपणं बाह्याभ्यन्तरभेदेन लिख्यते । तत्र मिथुनसंक्रान्तिमारभ्य तुलासंक्रमणपर्यन्तमुभयपक्षचतुर्थ्यष्टमीनवमीचतुर्दशीनामेकस्यां तिथौ -

सौवर्णं राजतं ताम्रं कृतादिषु यथाक्रमम् ।
कलौ कार्पासजं वापि यथाशक्ति पवित्रकम् ॥
कर्तितं द्विजकन्याभिस्त्रिगुणं त्रिगुणीकृतम् ।
धौतं शुक्लं शुभं सूत्रमन्यदप्युपयुज्यते ॥
पट्टवल्कलपद्मोत्थं क्षौमं दार्भं शणोद्भवम् ।
मुञ्जादिसंभवं सूत्रं पवित्राय प्रशस्यते ॥
प्रणवश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्म नागो गुहो रविः ।
सादाख्यः सर्वदेवाश्च क्रमेण नवतन्तुषु ॥

सोमशम्भुग्रन्थोक्तयुक्त्या नवतन्तुसूत्रं विधाय शिरोमन्त्राभिमन्त्रितेन पञ्चगव्येन संशोध्य मदनफलादिजलेन हृन्मन्त्रितेन प्रक्षाल्य पुनरस्त्रेणाभ्युक्ष्य नेत्रेणावरोध्य कवचेन ग्रथित्वा रक्तचन्दनकाश्मीरकस्तूरीचन्द्ररोचनाहरिद्रागैरिककषायकल्कादिना रञ्जयेत् । अन्यतमेन तदेति यथासम्पत्ति शिखामन्त्रेण रञ्जयित्वा समस्तेनाङ्गषट्केनोद्धृत्य मूलमन्त्रेण मण्डपेशाने स्थापयेत् । तत्र पूर्वेद्युरधिवासनार्थं निजबाहुमात्रं पञ्चाशद्गुणमेकग्रन्थि श्रीखण्डमण्डितं पवित्रकं विरच्य ततोऽपरेद्युरारोपणार्थमष्टोत्तरशतचतुःपञ्चाशत्सप्तविंशतिगुणमुत्तमादिक्रमेण षोडशद्वादशनवसंख्याधारग्रन्थि तत्पुर्यष्टकाभिप्रायेण स्वरैः षोडशभिरनपुंसकैर्द्वादशभिर्वर्गाद्यैः सक्षकारैर्नवभिः स्वगुणसंख्याकैरङ्गुलैः प्रतिपर्वमानं वा पवित्रत्रयं कुर्यात् ।

- इति विद्यानन्दनाथः ज्ञानदीपविमर्शिन्याम्, पृ० १२४ - १२५

इस प्रकार वर्ष भर के पूजन की फल प्राप्ति के लिए दमनक पूजा और आरोग्य की प्राप्ति के लिए पवित्र पूजा की जाती है ।

ग्रन्थ के भ्रामक स्थल

(१) द्वितीय तरङ्ग ६२ श्लोक में एक लाख जप कहा गया है । वहीं २.६३ में कृष्णाष्टम्यादितद् ... आदि श्लोक में प्रत्यहं साष्टसाहस्रं कहा गया है । अष्टमी से चतुर्दशी तक ७ दिन में ८५०० प्रतिदिन जप करते हुए मात्र ६० हजार ही जप होता है । यदि यह अर्थ किया जाय कि ८५०० से कम जप न हो तब समाधान हो सकता है ।

(२) त्रयोदश तरङ्ग (५४-७६) में हनुमान् जी का माला मन्त्र ५८८ वर्णों का कहा गया है । इन्हें गिनने में ५८३ ही वर्ण होते हैं । श्लोकों के अनुसार पूर्णरूप से मिलाया गया है किन्तु कहीं भी ५ अक्षरों की कोई गुञ्जाइश नहीं हो सकी । पञ्चकूट को एक-एक अक्षर माना जाता है । 'श्रीरामदूत' कहीं जोड़ दिया जाय तब ५८८ अक्षर हो जायेंगे । 'श्रीरामभक्तितत्पर' के पहले या बाद में इसे जुड़ना चाहिए था। किन्तु यह मूल में नहीं है अतः ५ स्थानों पर मैंने सन्धि तोड़कर इन्हें अलग किया है जिससे ५८८ अक्षर हो जाते हैं । ये स्थल हैं - 'सुत अञ्जना', अक्षकुमार, एहि एहि मूल श्लोक में इनकी सन्धि की हुई है ।

(३) २. ३० में 'पावकगेहिनी' टीका में है जब कि मूल में 'पावकमोहिनी' है । ५. २५ में 'फान्तोलार्घीशबिन्दुयुक्' पाठ न होकर 'मांसार्घीशबिन्दुयुक्' होना चाहिए । ११. ८६ में 'दृष्वा' के स्थान पर 'इष्ट्वा' (= यजन कर) होना चाहिए । १५. २२ में 'प्रोच्य' के स्थान पर 'प्राच्र्य' होना चाहिए । १६.१८ में 'पीयूषोन्ततनुं' के स्थान पर 'पीयूषोऽत्रतनुं' होना चाहिए । १६. ११६ में कृष्णे विन्ध्यात्मिका गलत पाठ है 'कृष्णेश विध यात्मिका' होना चाहिए । २२. ८६ में 'अक्षतानार्कधत्तूर' के स्थान पर 'अक्षतानाकधत्तूर' होना चाहिए ।

मन्त्रमहोदधि के पाठान्तर

पाठान्तरों का उल्लेख स्वयं नौका टीका में ग्रन्थकार ने किया है । भगवान् नृसिंह के ध्यान (१४. ५ श्लोक) में दो पाठान्तर दिए गए हैं । 'घनविरामहिमांशु समप्रभम्' के स्थान पर 'घनसमानलं शशिसमप्रभम्' पाठान्तर है जो छन्दोभंग होने से त्याज्य है । मन्त्रमहोदधि के ५.५२ में ३१ ही नाम हैं सर्वेश्वरी नहीं है । जिसे अन्य ग्रन्थ से जोड़ा गया है ।

ग्रन्थ का प्रयोजन

मन्त्रमहोधिकार श्रीमन्महीधर भट्ट ने स्वयं ग्रन्थ का प्रयोजन इस प्रकार कहा है -

हमने मन्त्र साधकों के सन्तोष के लिए षट्कर्मों (शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण उच्चाटन और मारण) की विधि बताई है । सर्वप्रथम विधिवत् न्यास द्वारा आत्मरक्षा करने के बाद ही काम्य कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए । अन्यथा हानि और असफलता ही प्राप्त होती है । जो व्यक्ति शुभ अथवा अशुभ किसी भी प्रकार का काम्य कर्म करता है मन्त्र उसका शत्रु बन जाता है । इसलिए काम्यकर्म न करे, यही उत्तम है ।

अब प्रश्न होता है कि यदि काम्य कर्म करने का निषेध है तो इतनी बड़ी विधियुक्त पुस्तक के निर्माण का क्या हेतु है ? इसका उत्तर देते हैं -

विषयासक्त चित्त वालों के सन्तोष के लिए प्राचीन आचार्यों ने काम्य कर्म की विधि का प्रतिपादन किया है **किन्तु काम्य कर्म हितकारी नहीं है** । काम्य कर्म करने वालों के लिए केवल कामना सिद्धि मात्र फल की प्राप्ति होती है ।

किन्तु निष्काम भाव से देवताओं की उपासना करने वालों को सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है । केवल सुख प्राप्ति के लिए प्रत्येक मन्त्रों के जितने भी प्रयोग बतलाये गए हैं उनकी आसक्ति का त्याग कर निष्काम रूप से देवता की पूजा करनी चाहिए ।

वेदों में कर्मकाण्ड, उपासना और ज्ञान तीन काण्ड बतलाये गए हैं ।[१] 'ज्योतिष्टोमेन यजेत' यह कर्मकाण्ड है, 'सूर्यो ब्रह्मेत्युपासीत' यह उपासना है, ये दोनों काण्ड ज्ञान के साधन हैं 'अयमात्मा ब्रह्म' यह ज्ञान है जो स्वयं में साध्य है । यही उक्त दोनों का फल भी है । इसलिए ज्ञान प्राप्ति के लिए वेदोदित कर्म और उपासना दोनों में ही वेदोक्त मार्ग के अनुसार प्रवृत्त होना चाहिए । देवता की उपासना से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है । जिससे उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होती है । कार्यकारणसंघात शरीर में प्रविष्ट हुआ जीव ही परब्रह्म है । इसी ज्ञान से साधक मुक्त हो जाता है । अतः मनुष्य देह प्राप्त कर देवताओं की उपासना से मुक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए । जो मनुष्य देह प्राप्त कर संसार बन्धन से मुक्त नही होता, वही महापापी है । भागवत में ऐसा ही कहा भी गया है -

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥

- भाग० ३. २३. ५६

"इस संसार में जिस व्यक्ति का कर्म न तो धर्म के लिए होता है, न वैराग्य के लिए और न तीर्थपाद भगवान् की चरणसेवा के लिए ही होता है वह जीते जी भी मरे हुए के समान है ।"

इसलिए उपासना और कर्म से काम-क्रोधादि शत्रुओं का नाश कर आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सत्पुरुषों को सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए ।

दीपावली, १० नवम्बर, १९९६
३१/२१ लंका, वाराणसी

विद्वद्वशंवदः
सुधाकर मालवीय

१. मन्त्रमहोदधि २५. ७७-८१ ।

विषयानुक्रमणिका

तृतीयः तरङ्गः ७६ – ९५

कालीसुमुखी मन्त्रनिरूपणम्

चतुर्थः तरङ्गः ९६ – १२६

तारा मन्त्रनिरूपणम्

त्रयोदशः तरङ्गः ३९२ – ४१६

हनूमन्मन्त्रनिरूपणम्

चतुर्दशः तरङ्गः ४१७ – ४४८

विष्णूगरुडमन्त्रनिरूपणम्

यन्त्र चित्रानुक्रमणिका

वर्णसंकेतसूची

अक्रूर	अं
अक्षि	इ
अग्नि	र
अग्निबीज	रं
अर्घीश	ऊ
अतिथीश	ॠ
अमरेश	उ
अजपा	हंसः
अन्तिम	क्षं
अत्रि	द
अधर	ए
अर्धनारीश	ढ्
अनन्त	अः
अनलः	रं
अनलान्तिम	ल
अनुग्रह	औ
अमृतबीज	वं
अम्भ	ब
अस्त्र (मन्त्र)	अस्त्राय फट्
आकाशबीज	हं
आत्मभूः	क्लीं
आप्यायनी	ॐ
आषाढी	त
अंकुश	क्रों
औरस	औ
इन्दु	अनुस्वार
इन्धिका	उ
उमाकान्त	ण
उषर्बुधप्रिया	स्वाहा
एकनेत्र	छ
कपोल	लृ
कमण्डलू	ठ
कमला	श्रीं
कर्ण	उ
कवच	हुं
काम (बीज)	क्लीं
कामिका	त
कूर्चं	हूँ
कूर्म	च
कृष्ण	थ
क्लीब (वर्ण)	ऋ ॠ लृ लॄ
क्रोधबीज	हुँ
क्रोधीश	क
क्रिया	लः
खड्गीश	ब
खम्	हं
गणपतिबीज	गं
गणनायक (बीज)	गं
गोविन्द	ई
गदी	खः
गजमुख	गं
गगन	ह
गिरिसुता (बीज)	ह्रीं
गिरिजा	ह्रीं
चक्री	कं
चतुरानन	क
चन्द्र	अनुस्वार
चन्द्रमा	अनुस्वार
जनार्दन	फ
जरासन	ट

जल	व	पावकमो(गे)हिनी	स्वाहा
झिण्टीश	ए	पाश	आं
ठद्वयं	स्वाहा	पाशबीज	आं
णान्त	त	पिनाकी	ल
तन्द्री	म	पुरुषोत्तम	य
तरल	त	प्राण	ह
तर्जनी	न	प्रीती	ध
तार	प्रणव (ॐ)	फान्त	ब
तीव्र	त	बलानुज	ब
तोयं	वः	बिन्दु	अनुस्वार
त्रपा	ही	ब्रह्मा	कः
त्रिध्रुव	प्रणव	भग	ए
त्रिपुरान्तक	ॠ	भगी	ए
त्रिमूर्ति	ईकारं	भानु	म
दक्षपापांगुलीमूल	ढ	भुवनेश्वरी	ह्रीं
दण्डी	तृ	भूबीज	ग्लौं, लं
दहनाङ्गना	स्वाहा	भृगु	स
दारक	ड	भौतिक	ए
दीर्घत्रय	आ ई ऊ	मनु	औ
दीर्घनन्दी	डा	मनोजन्मा	क्लीं
दीपिका	ऊ	मन्मथ	क्लीं
द्युतिसनयना	च्छि	मातृकाद्य	अ
ध्रुव	प्रणव	माधव	इ
नकुल	ह	माया	ह्रीं
नन्दी	ड	मारुत	य
नभ	हं	मीनेश	ध
नभबीज	हं	मुरारी	औ
नील	त	मुसली	छ
नृसिंहाङ्ग	औ	मेघ	घ
पञ्चान्तक	ग	मेरुः	क्षः
पद्मनाभ	ए	मेष	न
पद्मा	श्रीं	मृत्युः	श
परा	ह्रीं	मांस	ल
पावक	र	युग्वसु	र
पावककामिनी	स्वाहा	रमा	श्रीं

रति	ण	व्यापिनी	औ
रात्रीश	अनुस्वार	व्योम	ह
लकुली	ह	शक्ति	ह्रीं
लक्ष्मी	च	शक्तिबीज	ह्रीं
लक्ष्मी (बीज)	श्रीं	शशिशेखर	अनुस्वार
लज्जा	ह्रीं	शार्ङ्गी	ग
लांगलीश	ठ	शान्तिः	ई
लोहित	प	शिखी	फः
वक	श	शिरः	क
वर्म	हूं	शिव	ल
वराह	ह	शिवा	ह्रीं
वह्न्यासन	र	शिवोत्तम	घ
वह्नि	र	शुचिप्रिया	स्वाहा
वह्निकामिनी	स्वाहा	शूर	प
वह्निबीज	रं	शौरी	थ
वह्निवधू	स्वाहा	श्वेत	ष
वाक्	ऐं	सत्यः	द
वागीश	ऐं	सदागति	य
वाणी	ऐं	सदाशिव	ह
वामकर्ण	ऊ	सदृक्	इ
वामकूर्पर	छ	सद्य	ओ
वामनासिका	ऋ	समीरणः	यः
वामनेत्र	ई	सर्ग	विसर्ग
वामाक्षि	ई	सर्गिनन्दज	ठः
वाल	व	सात्वत	ध
वायु	य	सुधाबीज	वं
वायुबीज	यं	सूर्यः	मः
विष	म	सृष्टिः	कः
विधु	अनुस्वार	सृणि	क्रौं
विमल	लं	संकर्षण	औ
वियत्	ह	संवर्तक	क्ष
विशालाक्ष	थ	स्थिरा	ज
वेदादि	ॐ	स्मृति	ग
वैकुण्ठ	म	स्वर्गरितसवल्लभा	स्वाहा
व्याघ्रपाद	ड	हयानन	ह

हरिः	त	हंसः	सः
हाटकरेतस	वह्नि	हृत्	नमः
हिमाद्रिजा	ह्रीं	हृदय	नमः
हुताशन	र	हृल्लेखा	ह्रीं

संख्या संकेत सूची

अक्षि	दो	बाहु	दो
अधर	एक	भुजा	दो
अद्रि	सात	भू	एक
अर्क	बारह	मनु	चौदह
आदित्य	बारह	मुनि	सात
इषु	पाँच	रवि	बारह
क्ष्मा	एक	रस	छः
गुण	तीन	राम	तीन
चन्द्र	एक	रुद्र	एकादश
तिथि	पन्द्रह	वह्नयः	तीन
दिक्	दस	वसु	आठ
धरा	एक	वेद	चार
नक्षत्र	सत्ताइस	शिव	एकादश
नन्द	नौ	सागर	चार
नन्दा	नौ	सायक	पाँच
नेत्र	दो	सूर्य	बारह

मन्त्रमहोदधिः

॥ श्रीः ॥

श्रीमन्महीधरकृतः

मन्त्रमहोदधिः

स्वोपज्ञ-'नौका' टीकोपेतः 'अरित्र' हिन्दीव्याख्याविभूषितश्च

****

अथ प्रथमः तरङ्गः

मङ्गलाचरणम्

प्रणम्य लक्ष्मीनृहरिं महागणपतिं गुरुम् ।
तन्त्राण्यनेकान्यालोक्य वक्ष्ये मन्त्रमहोदधिम् ॥ १ ॥
प्रातरुत्थाय शिरसि ध्यात्वा गुरुपदाम्बुजम् ।
आवश्यकं विनिर्वर्त्य स्नातुं यायात् सरित्तटे ॥ २ ॥

---

* नौका *

नत्वा लक्ष्मीपतिं देवं स्वीये मन्त्रमहोदधौ ।
नावं विरचये रम्यां तरणाय गुणैर्युताम् ॥

तत्र तावन्मन्त्रमहोदधिनामकं तन्त्रं चिकिर्षुराचार्यः शिष्टाचारपरिपालनाय निर्विघ्नग्रन्थसमाप्तये चेष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं ग्रन्थकरणं प्रतिजानीते – **प्रणम्येति**। लक्ष्म्या युक्तो नृहरिर्लक्ष्मीनृहरिः । मध्यमपदलोपीसमासः । गुरुं श्रीनृसिंहाश्रमम् । मन्त्रा एव महान्त्युदकानि धीयन्तेऽस्मिन्निति मन्त्रमहोदधिः ग्रन्थः ॥ १ ॥ तत्र प्रातरारभ्य मन्त्रिणः कृत्यमाह–**प्रातरिति** । स्पष्टम । गुरुपादाम्बुजगलिताऽमृतधारया मानसं स्नानं

---

* अरित्र *

साम्बं सदाशिवं देवं तन्त्रमार्गप्रदर्शकम् । मङ्गलाय च लोकानां भक्तानां रक्षणाय च ॥ १ ॥
विद्याप्रदं गणपतिं सर्वप्रत्यूहनाशकम् । भक्ताभीष्टप्रदातारं बुद्धिजाड्यापहारकम् ॥ २ ॥
तथा श्रेयस्करीं शक्तिं नत्वा मन्त्रमहोदधेः । भाषाटीकां वितनुते मालवीयः सुधाकरः ॥ ३ ॥
नारोचकीं न वा क्लिष्टां नाव्यक्तां न च विस्तृताम् । पदाक्षरानुगां स्पष्टां भावमात्रप्रबोधिनीम् ॥ ४ ॥

लक्ष्मी से युक्त श्रीनृसिंह भगवान्, महागणपति एवं श्रीगुरु (श्रीनृसिंहाश्रम) को नमस्कार कर तथा अनेक तन्त्र ग्रन्थों का आलोडन कर मन्त्र ही जिसमें महान् उदक हैं ऐसे मन्त्रमहोदधि नामक ग्रन्थ का (मैं महीधर) निर्माण करता हूँ ॥ १ ॥

मन्त्रवेत्ता ब्राह्ममुहूर्त में उठकर शिरःप्रदेश में अपने श्रीगुरु के चरणकमलों का ध्यान

श्रौतेन विधिना स्नात्वा मन्त्रस्नानं समाचरेत् ।
स्मार्तसन्ध्यां मन्त्रसन्ध्यां कृत्वा देवं विचिन्तयेत् ॥ ३॥

द्वारपूजाक्रमः

गृहद्वारमथागत्य द्वारपूजां समाचरेत् ।
द्वारमस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य गणेशं चोर्ध्वतो यजेत् ॥ ४॥
महालक्ष्मीं दक्षभागे वामभागे सरस्वतीम् ।
पुनर्दक्षे यजेद् विघ्नं गङ्गां च यमुनामपि ॥ ५॥
पुनर्वामे क्षेत्रपालं स्वः सिन्धुयमुने अपि ।
पुनर्दक्षे तु धातारं विधातारं तु वामतः ॥ ६॥
तद्वन्निधि[1] शङ्खपद्मौ ततोऽर्च्चेद् द्वारपालकान् ।

प्राणायामविधिः

द्वारपूजां विधायेत्थं प्रविश्यार्चनमन्दिरम् ॥ ७॥

कुर्यात् – इत्यादि पूजातरङ्गे (२१) वक्ष्यति ॥ २–३॥ **अस्त्राम्बुना** । अस्त्राय फडित्यभिमन्त्रितजलेन ॥ ४ ॥ *॥ ५–६ ॥ शङ्खपद्मौ निधी तद्वद्दक्षवामयोः द्वारपालांस्तत्तद्देवानां वक्ष्यमाणान् ॥ ७॥ *॥ ८॥

करे । फिर आवश्यक शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर स्नान के लिए किसी नदी तट पर जाए ॥ २॥

सरिता में श्रौतविधि से स्नान कर मन्त्रस्नान करे । तदनन्तर स्मृतिशास्त्रों में कही गयी विधि के अनुसार सन्ध्योपासन करे ॥ ३॥

विमर्श — स्नान तीन प्रकार के कहे गये हैं – १. कायिकस्नान, २. मन्त्रस्नान तथा ३. मानस स्नान । कायिक स्नान जल से, मन्त्रस्नान मन्त्र को पढ़ते हुए भस्मादि द्वारा तथा मानस स्नान गुरु के चरणकमल से निकली हुई अमृतधारा से करना चाहिए । इसका वर्णन पूजा तरङ्ग (२१) में आगे करेंगे ॥ ३॥

द्वारपूजा — तदनन्तर घर के दरवाजे पर आकर द्वार की पूजा करनी चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है - प्रथमतः साधक द्वार को 'अस्त्र-मन्त्र' (अस्त्राय फट्) से अभिमन्त्रित जल से प्रोक्षण करे । तत्पश्चात् उसके ऊपर स्थित श्रीगणेश देवता का पूजन करना चाहिए ॥ ४॥

पुनः द्वार के दक्षिण भाग में महालक्ष्मी तथा वामभाग में महासरस्वती का पूजन करे । फिर दाहिनी ओर विघ्नेश्वर, गङ्गा एवं यमुना का पूजन करे ॥ ५॥

तदनन्तर वाम भाग में क्षेत्रपाल (स्वर्ग) सिन्धु तथा यमुना का पूजन कर दक्षिण भाग में धाता तथा वामभाग में विधाता का पूजन करे । तदनन्तर द्वार के दक्षिण में शङ्खनिधि और वामभाग में पद्मनिधि का पूजन कर आगे कहे जाने वाले द्वार स्थित तत्तद्देवता रूप द्वारपालों का पूजन करे ॥ ६-७॥

---

१. शङ्खनिधये नमः। पद्मनिधये नमः।

उपविश्यासने नत्वा गणेशगुरुदेवताः ।
प्राणानायम्य तारेण पूरकुम्भकरेचकैः ॥ ८ ॥
द्वात्रिंशता चतुःषष्ट्या क्रमात् षोडशसङ्ख्यया ।
देवार्चायोग्यताप्राप्त्यै भूतशुद्धिं समाचरेत् ॥ ६ ॥
मूलाधारस्थितां देवीं कुण्डलीं परदेवताम् ।
बिसतन्तुनिभां विद्युत्प्रभां ध्यायेत् समाहितः ॥ १० ॥
मूलाधारात् समुत्थाप्य संङ्गतां हृदयाम्बुजे ।
सुषुम्नामार्गमाश्रित्यादाय जीवं हृदम्बुजात् ॥ ११ ॥
प्रदीपकलिकाकारं ब्रह्मरन्ध्रगतं स्मरेत् ।
जीवं ब्रह्मणि संयोज्य हंसमन्त्रेण साधकः ॥ १२ ॥
पादादिब्रह्मरन्ध्रान्तं स्थितं भूतगणं स्मरेत् ।
स्ववर्णबीजाकृतिभिर्युक्तं तद्विधिरुच्यते ॥ १३ ॥

द्वात्रिंशद्वारं प्रणवजपन् प्राणं पूरयेत् । चतुःषष्टिवारं जपन् कुम्भयेत्। षोडशवारं जपन् रेचयेदित्यर्थः ॥ ६ ॥ मूलाधारात् कुण्डलिनीमुत्थाप्य समाहितः सन्ध्यायेत् ॥ १० ॥ हृदो जीवं गृहित्वा सुषुम्नामार्गेण ब्रह्मरन्ध्रं नीत्वा ब्रह्मणि स्थापयेदिति गुरूपदेशगम्योऽर्थो योगिना ज्ञेयः। योगाभावे स्मरणमात्रं विधेयम् ॥ ११–१२॥ वर्णाः

प्राणायाम की विधि - इस प्रकार द्वारपूजा संपादन कर पूजागृह में प्रवेश कर आसन पर बैठ कर गणेश, गुरु एवं इष्टदेवता को प्रणाम करना चाहिये । बत्तीस बार प्रणव का जप करते हुए प्राणवायु को ऊपर खींच कर पूरक, चौंसठ बार प्रणव का जप करते हुए प्राणवायु को रोक कर कुम्भक तथा सोलह बार प्रणव का जप करते हुए प्राणवायु को छोड़ते हुए रेचक द्वारा प्राणायाम करे । तदनन्तर देवार्चन की योग्यता प्राप्त करने के लिये 'भूतशुद्धि' की क्रिया करे ॥ ७-६ ॥

विमर्श - 'भूतशुद्धि' वह क्रिया है जिसके द्वारा शरीरगत पृथ्व्यादि पञ्चतत्त्वों को शुद्ध कर अव्यय परमात्मा के अर्चन की योग्यता प्राप्त की जाती है ॥ ६ ॥

भूतशुद्धि - भूतशुद्धि की विधि इस प्रकार है - सर्वप्रथम मूलाधार चक्र में स्थित कमलनाल तन्तु के समान एवं सूक्ष्म विद्युत प्रभा के समान देदीप्यमान परदेवता-स्वरूप कुण्डलिनी का एकाग्रचित्त हो ध्यान करे । पुनः उस कुण्डलिनी का मूलाधार से सुषुम्ना मार्ग द्वारा ऊपर ले जा कर हृदयकमल में स्थापित करे । वहाँ प्रदीप शिखा के आकार वाले जीव से संयुक्त कर पुनः ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रार चक्र में ले जा कर स्थापित कर इस प्रकार ध्यान करना चाहिए । यतः वहाँ परमात्मा परब्रह्म का निवास है, अतः साधक को 'हंसः आदि' मन्त्र का जप करते हुए जीव सहित कुण्डलिनी को उस परमात्मा में संयुक्त कर देना चाहिए ॥ १०-१२ ॥

इस शरीर में पञ्चतत्त्व अपने अपने वर्ण (रंग) आकृति (आकार) एवं बीजाक्षर से युक्त हो कर पैर के तलवे से ले कर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त स्थित हैं । अतः उनके

पादादिजानुपर्यन्तं चतुष्कोणं सवज्रकम् ।
भूबीजाढ्यं स्वर्णवर्णं स्मरेदवनिमण्डलम् ॥ १४ ॥
जान्वाद्यानाभिचन्द्रार्द्धनिभं पद्मद्वयाङ्कितम् ।
वंबीजयुक्तं श्वेताभमम्भसो मण्डलं स्मरेत् ॥ १५ ॥
नाभेर्हृदयपर्यन्तं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम् ।
रंबीजेन युतं रक्तं स्मरेत् पावकमण्डलम् ॥ १६ ॥
हृदो भ्रूमध्यपर्यन्तवृत्तं षड्बिन्दुलाञ्छितम् ।
यंबीजयुक्तं धूम्राभं नभस्वन्मण्डलं स्मरेत् ॥ १७ ॥
आब्रह्मरन्ध्रं भ्रूमध्याद् वृत्तं स्वच्छमनोहरम् ।
हंबीजयुक्तमाकाशमण्डलं प्रविचिन्तयेत् ॥ १८ ॥

पीतादयः । बीजानि लमित्यादीनि । आकृतयश्चतुष्कोणादयः । तद्युक्तं भूतगणम् ॥ १३ ॥ तदेव दर्शयति – **पादादीति** ॥ १४ ॥ भूमण्डले यदिन्द्रियं गमनं घ्राणं गन्धः ब्र ह्मनिवृत्तिः समानः गन्तव्यो देशोऽपि । एवमष्टौ पदार्थाश्चिन्त्या । एवं जलमण्डलम् ॥ १५ ॥ * ॥ १६–२१ ॥

उन उन रंगों, आकृतियों एवं बीजाक्षरों का स्मरण कर भूतशुद्धि करनी चाहिए । उसका विधान इस प्रकार है - ॥ १३ ॥

पैर के तलवे से ले कर जानुपर्यन्त **पृथ्वी** तत्त्व का स्मरण करे । इसकी आकृति चौकोर एवं वज्र के समान है । उसका भू बीज (लं) यह बीजाक्षर है तथा वर्ण स्वर्ण के समान पीला है । इस प्रकार साधक को भू-तत्त्व का ध्यान करना चाहिए ॥ १४ ॥

जानु से ले कर नाभिपर्यन्त **जल** तत्त्व है । जिसकी आकृति अर्धचन्द्राकार तथा उसका वर्ण श्वेत है । इसमें दो कमल के चिन्ह हैं । इसका बीज 'वम्' अक्षर है, इस प्रकार वहाँ सोम - मण्डल का ध्यान करना चाहिए ॥ १५ ॥

नाभि से ले कर हृदय पर्यन्त **अग्नि** तत्त्व है । इसकी आकृति स्वस्तिकयुक्त त्रिकोणाकार है । वर्ण रक्त है तथा 'रम्' यह बीजाक्षर है । इस प्रकार वहाँ अग्निमण्डल का ध्यान करना चाहिए ॥ १६ ॥

हृदय से ले कर भ्रूमध्य पर्यन्त **वायु** तत्त्व है जो गोलाकार एवं षड्बिन्दुओं से युक्त हैं, इसका वर्ण धूम्र के समान है तथा 'यम्' बीजाक्षर है । इस प्रकार वहाँ वायुमण्डल का ध्यान करना चाहिए ॥ १७ ॥

भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त **आकाश** तत्त्व है जो अत्यन्त मनोहर एवं वृत्ताकार है । इसका वर्ण स्वच्छ है । यह 'हम्' बीजाक्षर से युक्त है । इस प्रकार वहाँ आकाशमण्डल का ध्यान करना चाहिए ॥ १८ ॥

विमर्श - इस प्रकार पञ्चमहाभूत के ध्यान से साधक को शुद्धि प्राप्त होती है ॥ १८ ॥

पृथ्वी आदि मण्डलों में अपने गमन एवं आदान आदि विषयों के साथ पाद, हस्त, पायु, उपस्थ एवं वाक् - इन कर्मेन्द्रियों का गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्दादि

पद्धस्तपायूपस्थावाक्क्रमाद्ध्येया धरादिगाः ।
स्वकीय[1]विपर्ययैर्युक्ता गमनग्रहणादिभिः ॥ १६ ॥
घ्राणं च रसना चक्षुः स्पर्शनं श्रोत्रमिन्द्रियम् ।
क्रमाद्ध्येयं धरादिस्थं गन्धादिगुणसंयुतम् ॥ २० ॥
ब्रह्मविष्णुशिवेशानाः सदाशिवइतीरिताः ।
धरादिभूतसङ्केशा ध्येयास्तत्मण्डलेषु ते ॥ २१ ॥
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्याशान्तिश्चतुर्थिका ।
शान्त्यतीतेति पञ्चैव कला ध्येया धरादिगाः ॥ २२ ॥
समानोदानव्यानाश्चापानप्राणौ च वायवः ।
धरादिमण्डलगताः पञ्चध्येयाः क्रमादिमे ॥ २३ ॥
एवंभूतानि[2] सञ्चिन्त्य प्रत्येकं प्रविलापयेत् ।
भुवं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ नभस्यमुम् ॥ २४ ॥
विलाप्य खमहङ्कारे महत्तत्त्वेप्यहङ्कृतिम् ।
महान्तं प्रकृतौ मायामात्मनि प्रविलापयेत् ॥ २५ ॥

हस्तग्रहणग्राह्यरसनारसविष्णुप्रतिष्ठोदानाः । **तेजसि** – पायुविसर्गविसर्जनीयचक्षूरूपं शिवविद्याव्यानाः । **वायौ** उपस्थानदस्त्रीस्पर्शनस्पर्शेशानशान्त्यपानाः । **नभसि** – वाग्वक्तव्यवदनश्रोत्रशब्दसदाशिवशान्त्यतीताप्राणाः ॥ २२–२४ ॥ * ॥ २५–२८ ॥

विषयों का तथा १. नासिका, २. जिव्हा, ३. चक्षु, ४. त्वक् एवं ५. कर्ण - इन सभी पाँच ज्ञानेन्द्रियों का चिन्तन करना चाहिए ॥ १६-२० ॥

इन तत्त्वों के क्रमशः १. ब्रह्मा, २. विष्णु, ३. शिव, ४. ईशान एवं ५. सदाशिव देवता कहे गये हैं । इनकी १. निवृत्ति, २. प्रतिष्ठा, ३. विद्या, ४. शान्ति एवं ५. शान्त्यतीता - ये क्रमशः कलायें हैं तथा १. समान, २. उदान, ३. व्यान, ४. अपान एवं ५. प्राण इनके पञ्च वायु हैं । अतः पृथिव्यादि मण्डलों में क्रमशः इनका भी ध्यान करना चाहिए ॥ २१-२३ ॥

विमर्श - इस प्रकार से निष्कर्ष हुआ कि पृथ्वी आदि मण्डलों में - पञ्चकर्मेन्द्रियों, पाँच विषयों, पञ्चज्ञानेन्द्रियों का चिन्तन कर उन तत्त्वों के पाँच देवता, पाँच कलाएँ और पञ्चवायु का भी ध्यान करे ॥ २१-२३ ॥

इस प्रकार पञ्चभूततत्त्वों का ध्यान कर भूमि को जल में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को अहङ्कार में, अहङ्कार को महत्तत्त्व में,

---

१. स्वकीयविषयसंयुक्तागमनग्रहणादिभिश्च युक्ता इत्यर्थः। **विषयास्तु** – गन्तव्यदेश - ग्राह्यवस्तुविसर्जनीयविटस्त्रीयोनिवक्तव्यवस्तुमात्रात्मकाः । **गमनादयस्तु** – गमनग्रहणविसर्ग–स्त्रीयोनिस्पर्शवर्जनानन्दवदनरूपा इति सांप्रदायिकाः ।

२. एवमिति चतुष्कोणं सवज्रकं भूबीजाढ्यं स्वर्णवर्णपदाद्यष्टकयुक्तभूमण्डलं चिन्तयेत् । एवमेवाग्निमेषु चतुर्ष्विति भावः ।

शुद्धसच्चिन्मयो भूत्वा चिन्तयेत् पापपूरुषम् ।
दक्षकुक्षिस्थितं कृष्णमङ्गुष्ठपरिमाणकम् ॥ २६ ॥
विप्रहत्याशिरो युक्तं कनकस्तेयबाहुकम् ।
मदिरापानहृदयं गुरुतल्पकटीयुतम् ॥ २७ ॥
पापिसंयोगिपद्वन्द्वमुपपातकरोमकम् ।
खड्गचर्मधरं दुष्टमधोवक्त्रं सुदुःसहम् ॥ २८ ॥
वायुबीजं स्मरन् वायुं संपूर्यैनं विशोषयेत् ।
स्वशरीरयुतं मन्त्री वह्निबीजेन निर्दहेत् ॥ २९ ॥
कुम्भके परिजप्तेन ततः पापनरोद्भवम् ।
बहिर्भस्मसमुत्सार्य्य वायुबीजेन रेचयेत् ॥ ३० ॥
सुधाबीजेन देहोत्थं भस्मसंप्लावयेत् सुधीः ।
भूबीजेन घनीकृत्य भस्मतत्कनकाण्डवत् ॥ ३१ ॥
विशुद्धमुकुराकारं जपन्बीजं विहायसः ।
मूर्द्धादिपादपर्यन्तान्यङ्गानि रचयेत् सुधीः ॥ ३२ ॥

वायुबीज यं, वह्निबीजं रम् ॥ २९–३०॥ सुधाबीजं वं, भूबीजं लं, नभो बीजं हं, तेन शरीरं सावयवं कुर्यात् ॥ ३१–३२ ॥

महत्तत्त्व को प्रकृति में तथा प्रकृति को माया में एवं माया को आत्मा में विलीन कर देना चाहिए ॥ २४-२५ ॥

इस प्रकार शुद्ध सच्चिदानन्दमय आत्मस्वरूप हो कर पापपुरुष का ध्यान करना चाहिए । इसका स्वरूप इस प्रकार है - पापपुरुष का निवास वामकुक्षि में है वह कृष्ण वर्ण का तथा अङ्गुष्ठ मात्र परिमाण वाला है, उसके शिर ब्रह्महत्या है, सुवर्णस्तेय उसके हाथ हैं, मदिरापान उसका हृदय है, गुरुतल्पगमन उसकी कटि है, उसके दोनों पैर पापपुरुषों के संसर्ग से युक्त हैं, उपपातक उसके रोम हैं । वह १ खड्ग (अविवेक) एवं २ चर्म (अहङ्कार) धारण किये हुये हैं । वह दुष्ट है तथा मुख नीचे किये रहता है, जो अत्यन्त भयानक भी है ॥ २६-२८॥

अब उसके भस्म करने कर उपाय कहते हैं - वायु बीज 'यं' का स्मरण कर पूरक विधि से उस पापपुरुष का शोषण करे । फिर अग्नि बीज 'रम्' का जप करते हुये साधक अपने शरीर के साथ उसे भस्म कर देवे । तदनन्तर पुनः वायु बीज (यं) का जप कर उस भस्मीभूत पापपुरुष को रेचक द्वारा बाहर निकाल देवे ॥ २९-३०॥

तदनन्तर बुद्धिमान साधक सुधा बीज 'वम्' का जप करते हुए उस देह के भस्म को आप्लावित (आर्द्र) करे । फिर भू बीज 'लम्' इस मन्त्र का जप कर भस्म को घना सोने के अण्डे के समान कठोर बनावे । तदनन्तर विशुद्ध दर्पण के समान स्वच्छ आकाश बीज 'हम्' का जप करते हुए शिर से ले कर पैर तक के अङ्गों का निर्माण करे ॥ ३१-३२॥

आकाशादीनि भूतानि पुनरुत्पादयेच्चितः[1] ।
सोऽहं मन्त्रेण चात्मानमानयेद् हृदयाम्बुजे ॥ ३३ ॥
कुण्डलीं जीवमादाय परसंगात् सुधामयम् ।
संस्थाप्य हृदयाम्भोजे मूलाधारगतां स्मरेत् ॥ ३४ ॥

प्राणप्रतिष्ठा

भूतशुद्धिं विधायैवं प्राणस्थापनमाचरेत् ।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य[2] मुनयोऽजेशपद्मजाः ॥ ३५ ॥
छन्दऋग्यजुषं सामप्राणशक्तिस्तु देवता ।
पाशो बीजं त्रपा शक्तिर्विनियोगोऽसुसंस्थितौ ॥ ३६ ॥
ऋषीञ्छिरसि वक्त्रे तु छन्दांसि हृदिदेवताम् ।

चितः ब्रह्मणः सकाशात् ॥ ३३ ॥ * ॥ ३४–३५॥ पाशः आं । त्रपा ह्रीं । असुसंस्थितौ = प्राणस्थापने विनियोगः ॥ ३६ ॥ * ॥ ३७ ॥

फिर चित्स्वरूप आत्मा से आकाशादि पञ्चभूतों को उत्पन्न कर 'सोऽहम्' इस मन्त्र का जप कर हृदयकमल में आत्मा को स्थापित करे । फिर उस परतत्त्व आत्मा से सुधामयी कुण्डलिनी तथा जीव को ले कर जीव को हृदयकमल में और कुण्डलिनी को मूलाधार में स्थापित कर उनका स्मरण करे ॥ ३३-३४ ॥

प्राणप्रतिष्ठा - इस प्रकार भूतशुद्धि कर उसमें पुनः प्राणप्रतिष्ठा करे । उसके विनियोग की विधि इस प्रकार है - ॐ अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य अजेशपद्मजाऋषयः ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि प्राणशक्तिर्देवता पाश (आं) बीजं त्रपा (ह्रीं) शक्तिः क्रों कीलकं प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः ॥ ३५-३६ ॥

तदनन्तर ऋषियों के नाम ले कर शिर में, छन्द का नाम लेकर मुख में, देवता का नाम ले कर हृदय में, बीजाक्षर का उच्चारण कर गुह्यस्थान में और शक्ति का नाम ले कर पैर में न्यास कर फिर (वक्ष्यमाण रीति से) षडङ्गन्यास करना चाहिये ॥ ३७ ॥

विमर्श - ऋष्यादिन्यास - १. अजेशपद्मजाऋषिभ्यो नमः शिरसि, २. ऋग्यजुःसामछन्देभ्यो नमः मुखे, ३. प्राणशक्तिर्देवतायै नमः हृदि, ४. आं बीजाय नमः गुह्ये, ५. ह्रीं शक्तये नमः

---

१. चित इति । विलापनव्युत्क्रमेण चिदादितो मायादिप्रादुर्भावयेत् । अहङ्कारादित आकाशादीनि भावयेदित्यर्थः ।

२. अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य अजेशपद्मजाऋषयः ऋग्यजुःसामानि च्छन्दांसि प्राणशक्तिर्देवता आं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रौं कीलकं प्राणस्थापने विनियोगः ।

प्रयोगस्तु – ङं कं खं घं गं नभो वाय्वग्निवार्भूम्यात्मने हृदयाय नम इत्यादि एवमेवाग्रेपि स्वस्वजातियुक्तं न्यसेत् ।

तथाहि – ञं चं छं झं जं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने शिरसे स्वाहा । णं टं ठं ढं डं श्रोत्रत्वङ्नयनजिह्वाप्राणात्मने शिखायै वषट् । नं तं थं धं दं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने कवचाय हुं । मं पं फं भं बं वक्तव्यादानगमनविसर्गानन्दात्मने नेत्रत्रयाय वौषट् । शं यं रं वं लं हं षं क्षं सं लं बुद्धिमनोहंकारचित्तात्मने अस्त्राय फट् ।

गुह्ये बीजं पदोः शक्तिं न्यस्य कुर्यात्षडङ्गकम् ॥ ३७ ॥
कवर्गनभआद्यैर्हृच्च शब्दाद्यैः शिरः स्मृतम् ।
टश्रोत्राद्यैः शिखाप्रोक्ता तवर्गाद्यैस्तनुच्छदम् ॥ ३८ ॥
पवक्तव्यादिभिर्नेत्रमस्त्रं येनान्तरिन्द्रियैः ।
आत्मनेतान्मनूनङ्गान् विन्यसेद् हृदयादिषु ॥ ३९ ॥
पञ्चमं प्रथमं पश्चाद् द्वितीयं च चतुर्थकम् ।
तृतीयमित्थं क्रमतो वर्गवर्णान् समुच्चरेत् ॥ ४० ॥
यवर्गेऽप्येवमुच्चार्य नभः श्वेतोऽन्तिमो भृगुः ।
विमलश्चेति चोच्चार्याः क्रमाद्वर्णाः सबिन्दवः ॥ ४१ ॥
नभो वाय्वग्निवार्भूमिनभ आदय ईरिताः ।
शब्दस्पर्शौ रूपरसगन्धाः शब्दादयो मताः ॥ ४२ ॥
श्रोत्रं त्वङ्नयनं जिह्वाघ्राणं श्रोत्रादयः स्मृताः ।
वाक्पाणी पादपायू चोपस्थो वागादयः पुनः ॥ ४३ ॥
वक्तव्यादानगमनविसर्गानन्दसंज्ञकाः ।
वक्तव्याद्या बुद्धिमनोहंकाराश्चित्तसंयुताः ॥ ४४ ॥
अन्तरिन्द्रिय संज्ञाः स्युरेवमुक्तं षडङ्गकम् ।

कवर्गेति क्रमतः पञ्चमममतिप्रयोगः ङं कं खं घं गं आकाशवायुतेजो–जलपृथिव्यात्मने हृदयाय नम इत्यादि ॥ ३८ ॥ * ॥ ३९–४५ ॥

पादयोः, ६. क्रौं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ॥ ३७॥

कवर्ग एवं नभ आदि से हृदय में, चवर्ग एवं शब्दादि से शिर में, टवर्ग एवं श्रोत्रादि से शिखा में, तवर्ग एवं वाक् आदि से कवच में, पवर्ग एवं वक्तव्यादि से नेत्र में, यवर्ग एवं अतीन्द्रियादि से करतल में न्यास करना चाहिए । फिर अपने हृदयादि अङ्गों में इन मन्त्रों का न्यास करना चाहिए ॥ ३८-३९॥

न्यास का प्रकार - न्यास में पहले प्रत्येक वर्ग का पञ्चम वर्ण, फिर क्रमशः प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ तदनन्तर तृतीय वर्ण, इन सभी का अनुस्वार सहित उच्चारण करना चाहिए । यवर्ग में प्रथम शं यं रं वं लं इन पाँच अक्षरों का उच्चारण कर नभ (हं), श्वेत (षं), तिभ (क्षं), भृगु (सं) एवं विमल (लं) इन अक्षरों को सानुस्वार उच्चारण करना चाहिए । श्लोक में नभ आदि का अर्थ नभः 'वाय्वग्निवार्भूमि' है, शब्दादि का अर्थ 'शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध' है श्रोत्रादि का अर्थ 'श्रोत्रत्वङ्नयन जिस्वाघ्राण' है, वाक् आदि का अर्थ 'वाक्पाणि-पादपायूपस्थ' है, वक्तव्यादि का अर्थ 'वक्तव्यादानगमनविसर्गानन्द' है तथा अन्तरिन्द्रिय का अर्थ 'बुद्धिमनोहङ्कारचित्त' है, इस प्रकार इन श्लोकों से षडङ्गन्यास का प्रकार बताया गया है ॥ ४०-४५॥

विमर्श - इन श्लोकों का स्पष्टार्थ निम्नलिखित है -

नाभेरारभ्य पादान्तं पाशबीजं प्रविन्यसेत्॥ ४५॥
नाभ्यन्तं हृदयाच्छक्तिं हृदन्तं मस्तकाच्छृणिम्।
[1]त्वगसृङ्मांसमेदोस्थिमज्जाशुक्राणि विन्यसेत्॥ ४६॥
आत्मने हृदयान्तानि यादिसप्तादिकान्यपि।
ओजः सद्यान्विताकाशपूर्वं प्राणं तु खादिकम्॥ ४७॥
भृग्वादिकं न्यसेज्जीवमेतान् हृदयदेशतः।
यकाराद्या[2] आद्यवर्णाः सर्वेस्युश्चन्द्रभूषिताः॥ ४८॥

शक्तिं ह्रीं श्रृणिं क्रौं ॥ ४६॥ आत्मने इति । आत्मने नम इत्यन्तानि त्वगादीनि हृदि न्यसेत् यादिवर्णपूर्वाणि यं त्वगात्मने नम इत्यादि । सद्य ॐकारस्तदन्वितआकाशो हः तदाद्यमोजः हों ओज आत्मने नमः । खं हः तदादिकं प्राणं हं प्राणात्मने नमः॥ ४७॥ भृगुः सः । तदादिकं जीवात्मने नमः । यादयो

ॐ ङं कं खं घं गं नभोवाय्वग्निवार्भूम्यात्मने हृदयाय नमः ।

ॐ ञं चं छं झं जं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने शिरसे स्वाहा ।

ॐ णं टं ठं ढं डं श्रोत्रत्वङ्नयनजिह्वाघ्राणात्मने शिखायै वषट् ।

ॐ नं तं थं धं दं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने कवचाय हुम् ।

ॐ मं पं फं भं बं वक्तव्यादानगमनविसर्गानन्दात्मने नेत्रत्रयाय वौषट् ।

ॐ शं यं रं वं लं हं षं क्षं लं बुद्धिमनोहंकारचित्तात्मने अस्त्राय फट् ॥ ४०-४५॥

षडङ्गन्यास के पश्चात् नाभि से ले कर पैर के तलवे तक पाश बीज़ (आं) का न्यास करे । हृदय से नाभि तक शक्तिबीज (ह्रीम्) का न्यास करे, मस्तक से हृदय तक श्रृणि (क्रौम्) का न्यास करे ॥ ४५-४६॥

विमर्श - तद् यथा - नाभेरारभ्य पादान्तं पाशबीजं (आं) न्यसामि । हृदयादारभ्य नाभ्यन्तं शक्तिबीजं (ह्रीम्) न्यसामि । मस्तकादारभ्य हृदयान्तं श्रृणिबीजं (क्रौं) न्यसामि ॥ ४५-४६॥

त्वक्, असृज्, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा एवं शुक्र शब्द के आगे 'आत्मने नमः' लगा कर हृदय प्रदेश में न्यास करे । उनके आदि में सानुस्वार यकारादि सात वर्णों का उच्चारण कर तथा फिर सद्य (ओ) से युक्त आकाश (ह) को प्रारम्भ में उच्चारण कर 'ओजात्मने नमः' ख आकाश बीज (हं) के आगे 'प्राणात्मने नमः' लगा कर तथा भृगु (स) के आगे 'जीवात्मने नमः' लगा कर हृदय में न्यास करे । फिर यकारादि समस्त वर्णों को चन्द्र (अनुस्वार) से भूषित कर मूलमन्त्र से मूर्धादि चरणावधि व्यापक न्यास करके तब पीठदेवता का न्यास करे ॥ ४६-४८॥

विमर्श - यथा - ॐ यं त्वगात्मने नमः हृदि, ॐ रं असृगात्मने नमः हृदि, ॐ लं मांसात्मने नमः हृदि, ॐ वं मेदसात्मने नमः हृदि, ॐ शं अस्थ्यात्मने नमः हृदि, ॐ षं मज्जात्मने नमः हृदि, ॐ सं शुक्रात्मने नमः हृदि, ॐ हां ओजात्मने नमः हृदि, ॐ हं प्राणात्मने नमः हृदि, ॐ सं जीवात्मने

---

१. यं त्वगात्मने नमः, रं असृगात्मने नमः इत्यादि ।

२. यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं मूर्द्धादिवरणावधिव्यापकं कुर्यात् ।

ततः समस्तमूलेन मूर्द्धादिचरणावधि ।
विधाय व्यापकन्यासं विन्यसेत् पीठदेवताः ॥ ४६ ॥

पीठदेवतान्यासः

मण्डूकश्चाथ[1] कालाग्नी रुद्र आधारशक्तियुक् ।
कूर्मोधरासुधासिन्धुः श्वेतद्वीपं सुराङ्घ्रिपाः ॥ ५० ॥
मणिहर्म्यं हेमपीठं धर्मो ज्ञानं विरागता ।
ऐश्वर्यं धर्मपूर्वास्तु चत्वारस्ते नञादिकाः ॥ ५१ ॥
धर्मादयः स्मृताः पादाः पीठगात्राणि चेतरे ।
मध्येऽनन्तस्तत्त्वपद्ममानन्दमयकन्दकम् ॥ ५२ ॥
संविन्नालं[2] ततः प्रोक्ता विकारमयकेसराः ।
प्रकृत्यात्मकपत्राणि पञ्चाशद्वर्णकर्णिका ॥ ५३ ॥
सूर्यस्येन्दोः पावकस्य मण्डलत्रितयं[3] ततः ।
सत्त्वं रजस्तमः पश्चादात्मयुक्तोन्तरात्मना ॥ ५४ ॥
परमात्माथ ज्ञानात्मा तत्त्वे [4]मायाकलादिके ।
विद्यातत्त्वं परं तत्त्वं कथिताः पीठदेवताः ॥ ५५ ॥

वर्णाश्चन्द्रेर्णानुस्वारेण भूषिता युताः कार्याः ॥ ४८ ॥ * ॥ ४६ ॥ मण्डूक इत्यादि पीठदेवताः । सुधासिन्धुरित्यत्र समुद्रविशेषं वक्ष्यति ॥ ५० ॥ विरागता वैराग्यम् । नञादिका अधर्माय नम इत्यादि॥ ५१॥ *॥ ५२–५६॥

नमः हृदि । इस प्रकार उक्त मन्त्रों का उच्चारण कर हृदय में न्यास करे । तत्पश्चात् 'ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं मूर्धादिचरणावधि व्यापकं करोमि' - पढ़ कर व्यापक न्यास करे ॥ ४६॥

अब **पीठ देवता का न्यास** कहते हैं - सानुस्वार अपने नाम के आद्यक्षर सहित तत्तद् पीठ देवताओं का न्यास पीठ के मध्य में करना चाहिए - मण्डूक, कालाग्निरुद्र, आधारशक्ति, कूर्म, पृथ्वी, सुधासिन्धु (क्षीरसागर), श्वेतद्वीप, कल्पवृक्ष, मणिमण्डप, स्वर्ण सिंहासन, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य ये पीठ के देवता हैं । जिसमें धर्म से लेकर अनैश्वर्य पर्यन्त पीठ के पाद कहे गये हैं, शेष पीठ के अङ्ग हैं पीठ के मध्य में रहने वाले अनन्त, पद्म, आनन्द, मयकन्दक, संविन्नाल, विकारमयकेसर, प्रकृत्यात्मकपत्र, पञ्चाशद्वर्ण कर्णिका, सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल, अग्निमण्डल, सत्त्व, रजस्, तमस्, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, मायातत्त्व, कलातत्त्व, विद्यातत्त्व एवं परतत्त्व - ये सभी पीठ देवता कहे गये हैं ॥ ५०-५५ ॥

---

१. मं मण्डूकाय नमः, कं कालाग्निरुद्राय, हों ओजात्मने, हं प्राणात्मने सञ्जीवात्मने । एवं सर्वत्राधर्मपूर्वेषु चतुर्षु नञ्समासः । अं अधर्माय, अं अज्ञानाय, अं अवैराग्याय, अं अनैश्वर्याय नमः।

२. सं संविन्नालाय नमः, विं विकारमयकेसरेभ्यो नमः ।

३. सं सूर्यमण्डलाय, चं चन्द्रमण्डलाय, अं अग्निमण्डलाय ।

४. मं मायातत्त्वाय, कलातत्त्वाय ।

पूजने सर्वदेवानां पीठे ताः परिपूजयेत्।
न्यासस्थानानि चैतासां शरीरे बहिरर्चने ॥ ५६ ॥
पूजातरङ्गे वक्ष्यन्ते सेन्द्वाद्यर्णयुताश्च ताः।
प्राणशक्तेस्ततः पूज्या अष्टौ पीठस्य शक्तयः ॥ ५७ ॥

पीठदेवतानां न्यासस्थानानि बहिर्यागे च पूजास्थानानि एकविंशे तरङ्गे वक्ष्यन्ते। ताः मण्डूकाद्याः सेन्द्वाद्यर्णयुताः। सानुस्वार प्रथमाक्षरयुताः। मं मण्डूकाय नम इत्यादि ॥ ५७ ॥

विमर्श - न्यासविधि - यथा - पीठ के मध्य में - मं मण्डूकाय नमः, कं कालाग्निरुद्राय नमः, आं आधारशक्तये नमः, कूं कूर्माय नमः, पृं पृथिव्यै नमः, क्षीं क्षीरसमुद्राय नमः, श्वें श्वेतद्वीपाय नमः, कं कल्पवृक्षाय नमः, मं मणिमण्डलाय नमः, स्वं स्वर्णसिंहासनाय नमः, इन मन्त्रों से तत्तद्देवताओं का न्यास करना चाहिए।

पुनः पीठ के चारों कोणों में क्रमशः आग्नेय कोण से प्रारम्भ कर - धं धर्माय नमः, ज्ञां ज्ञानाय नमः, वैं वैराग्याय नमः, ऐं ऐश्वर्याय नमः - इन मन्त्रों से न्यास करना चाहिए।

पुनः पीठ के चारों दिशाओं में पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर - अं अधर्माय नमः, अं अज्ञानाय नमः, अं अवैराग्याय नमः, अं अनैश्वर्याय नमः - इन मन्त्रों से तत्तद्देवताओं का न्यास करना चाहिए।

पुनः मध्य में - अं अनन्ताय नमः, पं पद्माय नमः, आं आनन्दमयकन्दकाय नमः, सं संविन्नालाय नमः, विं विकारमयकेसरेभ्यो नमः, प्रं प्रकृत्यात्मकपत्रेभ्यो नमः, पं पञ्चाशद्वर्ण - कर्णिकायै नमः, सं सूर्यमण्डलाय नमः, चं चन्द्रमण्डलाय नमः, अं अग्निमण्डलाय नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, मां मायातत्त्वाय नमः, कं कलातत्त्वाय नमः, विं विद्यातत्त्वाय नमः, पं परं तत्त्वाय नमः - इन मन्त्रों द्वारा तत्तद्देवताओं का न्यास करना चाहिए ॥ ५०-५५ ॥

सभी देवताओं के पूजन में पीठ पर उपर्युक्त देवताओं का पूजन करना चाहिए। बाह्यपूजा में शरीर में इन देवताओं का न्यास स्थान पूजा तरङ्ग (२१) में आगे कहेंगे ॥ ५६-५७॥

तदनन्तर हृदयकमल में देवताओं के नामों को सानुस्वार आद्यवर्ण से युक्त आठ दलों पर, आठ पीठ की शक्तियों का पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार कर्णिका में नवीं महाशक्ति का पूजन करना चाहिए। १. जया, २. विजया, ३. अजिता, ४. अपराजिता, ५. नित्या, ६. विलासिनी, ७. दोग्ध्री, ८. अघोरा एवं ९. मङ्गला - ये नौ पीठ की शक्तियाँ हैं। तदनन्तर पाशादि तीन बीजाक्षर (आं ह्रीं क्रौं) पीठाय नमः - इस मन्त्र से पीठ की पूजा कर देहमय पीठ पर, नवयौवन के गर्व से इठलाती हुई, पुष्टस्तन से सुशोभित प्राणशक्ति का ध्यान करना चाहिए ॥ ५७-६० ॥

विमर्श - यथा - हृदयकमल में १. जं जयायै नमः, २. विं विजयायै नमः, ३. अं अजितायै नमः, ४. अं अपराजितायै नमः, ५. निं नित्यायै नमः, ६. विं विलासिन्यै नमः, ७. दों दोग्ध्र्यै नमः, ८. अं अघोरायै नमः - इन मन्त्रों से पीठ की आठ शक्तियों

हृदयाम्भोजपत्रेषु नवमीत्वधिकर्णिकम् ।
जयाख्या विजया पश्चादजिता चाऽपराजिता ॥ ५८ ॥
नित्या विलासिनी दोग्ध्री त्वघोरा मङ्गलान्तिमा ।
पाशादिबीजत्रितयं प्रोच्य पीठं दिशेत्ततः ॥ ५९ ॥
एवं देहमये पीठे ध्यायेद् देवीमसुप्रदाम् ।
नवयौवनगर्वाढ्यां पीवरस्तनशोभिनीम् ॥ ६० ॥

प्राणशक्तिध्यानकथनम्

पाशं चापासृक्कपाले सृणीषू-
ञ्छूलं हस्तैर्बिभ्रतीं रक्तवर्णाम्।
रक्तोदन्वत्पोतरक्ताम्बुजस्थां
देवीं ध्यायेत् प्राणशक्तिं त्रिनेत्राम् ॥ ६१ ॥
अष्टपत्रस्थषट्कोणे ध्यात्वैवं पूजयेत्तु तान् ।

हृदयपद्मपत्रेष्वष्टौ । नवमी कर्णिकायाम् । ता एवाह – **जयेति** ॥ ५८ ॥ **पाशादीति** । आं क्लीं क्रौमिति पीठमन्त्रः ॥ ५९–६०॥ ध्यानामाह – **पाशमिति** । षड्हस्तादेवीपाशधनुःशूलानि वामहस्तेषु रक्तकपालाङ्कुशबाणान् दक्षेषु रक्तमयो य उदन्वान् समुद्रस्तत्र पोतो नौस्तत्र रक्तपद्मं तत्र स्थिताम् ॥ ६१॥

का पूजन कर कर्णिका में 'मं मङ्गलायै नमः' से पूजन करना चाहिए तदनन्तर 'आं ह्रीं क्रौं पीठाय नमः' - इस मन्त्र से पीठ का पूजन कर देहमय पीठ पर प्राणशक्ति का ध्यान करना चाहिए ॥ ५७-६० ॥

अब **ध्यान के लिये प्राणशक्ति का स्वरूप** कहते हैं -

रक्तमय समुद्र में नौका पर लाल कमल के ऊपर बैठी हुई बायें हाथ में पाश, धनुष, एवं शूलधारण किये हुये तथा दाहिने हाथ में कपाल, अंकुश एवं बाण धारण किये हुये तीन नेत्रों वाली तथा छः भुजाओं वाली प्राणशक्ति का ध्यान करना चाहिए ॥ ६१ ॥

अष्टदल के भीतर षट्कोण में स्थित प्राणशक्ति का इस प्रकार ध्यान कर पूर्व, नैऋत्य एवं वायुकोण में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव का तथा आग्नेय, पश्चिम एवं ईशान में क्रमशः वाणी, लक्ष्मी एवं पार्वती का पूजन करना चाहिए । केशरों में - सं संविन्नालाय नमः, विं विकारमयकेसरेभ्यो नमः, सं सूर्यमण्डलाय नमः, चं चन्द्रमण्डलाय नमः, अं अग्निमण्डलाय नमः, मां मायातत्त्वाय नमः, कं कलातत्त्वाय नमः (देखिये श्लोक ५) का पूजन कर पत्रों में अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिए । १. ब्राह्मी, २. माहेश्वरी, ३. कौमारी, ४. वैष्णवी, ५. वाराही, ६. इन्द्राणी, ७. चामुण्डा एवं ८. महालक्ष्मी ये आठ विश्व की मातायें कही गई हैं । देवपूजा के कार्य में पूज्य एवं पूजक के मध्य में पूर्व दिशा होती है ॥ ६२-६५ ॥

विमर्श - षट्कोण एवं अष्टदल में निर्दिष्ट दिशा में उनके अधिपति तत्तद्देवताओं के नाम के मन्त्रों से उनका पूजन करना चाहिए ॥ ६२-६५ ॥

प्राग्रक्षोन्वायुकोणेषु ब्रह्मविष्णुशिवान् यजेत् ॥ ६२ ॥
अग्निवारुणशैवेषु वाणीलक्ष्मीहिमाद्रिजाः ।
केसरेषु षडङ्गानि[1] पत्रेष्वष्टौ तु मातरः ॥ ६३ ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चापि कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्तमी मता ॥ ६४ ॥
अष्टमी तु महालक्ष्मीः प्रोक्ता विश्वस्य मातरः ।
देवतापूजने प्राची मध्ये पूजकपूज्ययोः ॥ ६५ ॥
इन्द्रादयः स्वदिक्ष्वेवं पूजनीया दिगीश्वराः ।
इन्द्रः[2] कृशानुः कीनाशो निर्ऋतिर्वरुणोऽनिलः ॥ ६६ ॥
सोमईशाननामाधोऽनन्त ऊर्ध्वं चतुर्मुखः ।
तत इन्द्रादिकाष्ठासु पूज्या दिक्पालहेतयः ॥ ६७ ॥
वज्रं शक्तिर्दण्डखड्गौ पाशोङ्कुशगदे अपि ।
त्रिशूलचक्रपद्मानि दशदिक्पालहेतयः ॥ ६८ ॥
एवमिष्ट्वा प्राणशक्तिं पञ्चावरणसंयुताम् ।
ध्यायन् हृदि करं धृत्वा त्रिर्ज्जपेत्तन्मनुं सुधीः ॥ ६९ ॥

*॥ ६२–६५ ॥ इन्द्रादयः प्रसिद्धदिक्ष्वेवार्च्याः । अन्यावरणे पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राची ॥ ६६–६७ ॥ मन्त्रमुद्धरति – **पाशमिति** । आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं तारान्वितं नभः हों सप्तार्णो वक्ष्यमाणः । अजपा हंसः ॥ ६८–७१ ॥ * ॥ ७४–७५ ॥

तदनन्तर अपनी अपनी दिशाओं में इन्द्र आदि दिक्पालों का पूजन करना चाहिए । १. इन्द्र, २. अग्नि, ३. यम, ४. निर्ऋति, ५. वरुण, ६. वायु, ७. सोम, ८. ईशान, ९. अनन्त एवं १०. ब्रह्मा - ये दस दिक्पाल हैं । १. वज्र, २. शक्ति, ३. दण्ड, ४. खड्ग, ५. पाश, ६. अंकुश, ७. गदा, ८. त्रिशूल, ९. चक्र एवं १०. पद्म - इन दिक्पालों के क्रमशः दश आयुध हैं । अतः दशों दिशाओं में इन्द्रादि एवं दश दिक्पालों का तथा उनके आयुधों का भी पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पाँच आवरणों वाली (द्र. ६१-६८) प्राण शक्ति का पूजन कर हृदय पर हाथ रख कर वक्ष्यमाण मन्त्र का तीन बार जप करना चाहिए ॥ ६६-६९ ॥

विमर्श - प्रयोग - पूर्वे ईं इन्द्राय नमः, आग्नेयाम् आं अग्नये नमः, दक्षिणस्यां यं यमाय नमः, आदि क्रमपूर्वक पूर्व आदि दिशाओं के दस दिक्पालों का पूजन कर पुनः उसी क्रम से वं वज्राय नमः, शं शक्तये नमः, दं दण्डाय नमः इत्यादि मन्त्रों से उन उन दिक्पालों के आयुधों का भी पूजन करना चाहिए ॥ ६६-६९ ॥

प्राणप्रतिष्ठा मन्त्रोद्धार -

अब ग्रन्थकार प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र का उद्धार कह रहे हैं, - जिसका ज्ञान साधक को सुख देने वाला है । सर्वप्रथम पाश (आं), माया (ह्रीम्), सृणि (क्रौम्), इन

१. अग्नीशासुरवायव्यमध्यदिक्ष्वंगपूजनमिति वक्ष्यमाणप्रकारणेति भावः ।
२. पूर्वे इन्द्राय नमः इति बोध्यम् । अग्नये नमः, वायवे नमः ।

सप्तार्णमन्त्रोद्धारः

वक्ष्येऽधुना मनोस्तस्योद्धारं[1] ध्यातृसुखावहम् ।
पाशं मायां सृणिं प्रोच्य यादीन्सप्तेन्दुसंयुतान् ॥ ७० ॥
तारान्वितं नभः सप्तवर्णं मन्त्रं ततोऽजपाम् ।
मम प्राणा इह प्राणा मम जीव इह स्थितः ॥ ७१ ॥
मम सर्वेन्द्रियाण्युक्त्वा मम वाङ्मन ईरयेत् ।
चक्षुः श्रोत्रघ्राणपदात् प्राणा इह समीर्य्य च ॥ ७२ ॥
आगत्य सुखमुच्चार्य्य चिरं तिष्ठन्त्विदं पठेत् ।
वह्निजायां च सप्तार्णमन्त्रमन्ते पुनर्वदेत् ॥ ७३ ॥
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रोऽयं स्मृतः प्राणनिधापने ।
ममेत्यस्य पदस्यादौ पाशादीनि समुच्चरेत् ॥ ७४ ॥
यन्त्रेषु प्रतिमादौ वा प्राणस्थापनमाचरन् ।
मम स्थाने तस्य तस्य षष्ठ्यन्तामभिधां वदेत् ॥ ७५ ॥

बीजाक्षरों का उच्चारण कर सप्ताक्षर मन्त्र - ॐ क्षं सं हं सः ह्रीम् तथा अन्त में अजपा (हंसः) का उच्चारण करना चाहिए । तदनन्तर 'मम प्राणाः इह प्राणाः मम जीव इह स्थितः मम सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि मम वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणप्राणाः इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' का उच्चारण कर अन्त में सप्ताक्षर मन्त्र - ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ - का पुनः उच्चारण करना चाहिए । प्राणप्रतिष्ठा के लिये यही मन्त्र कहा गया है। 'मम' इत्यादि पद के पहले पाशादि (आं ह्रीं क्रौं) का उच्चारण करना चाहिए[1] । यन्त्र एवं प्रतिमा आदि में प्राणप्रतिष्ठा करते समय मम के स्थान में यन्त्र अथवा प्रतिमा के देवता का नाम ले कर उस के आगे देवतायाः ऐसा षष्ठ्यन्त पद का प्रयोग करना चाहिए । जैसे - शिवदेवतायाः, दुर्गादेवतायाः आदि ॥ ७०-७५ ॥

विमर्श - यहाँ मम पद के साथ **प्राणप्रतिष्ठा का मन्त्र** उद्धृत करते हैं - 'ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ हंसः' पूर्वोक्त रीति (द्र. १.६०-६१.) से प्राण शक्ति का ध्यान करे । 'ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ हंसः मम प्राणाः इह प्राणाः' - मन्त्र का उच्चारण कर प्राण की प्रतिष्ठा करे ।

इसी प्रकार 'ॐ आं' से ले कर 'ह्रीं ॐ हंसः' पर्यन्त मन्त्र पढ़ कर 'मम जीव इह स्थितः' पढ़ कर जीवात्मा की हृदय में प्रतिष्ठा करे । पुनः 'ॐ आं' से लेकर 'ह्रीं ॐ हंसः' पर्यन्त मन्त्र पढ़ कर 'मम सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि' से समस्त इन्द्रियों की स्थापना करे । इसी प्रकार पूर्वोक्त मन्त्र के उच्चारण के पश्चात् 'मम वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणप्राणाः

---

१. मन्त्रोद्धारः – आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ हंसः महाप्राणा इहप्राणाः । आं० मम जीव इह स्थितः । आं० मम सर्वेन्द्रियाणीह स्थितानि । आं० मम वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ ।

सबिन्दवो मेरुहंसाकाशाः सर्गीभृगुः पुनः ।
मायेतिताररुद्धोऽयं मन्त्रः सप्ताक्षरो मतः ॥ ७६ ॥
एवं प्राणान् प्रतिष्ठाप्य मातृकान्यासमाचारेत् ।
अकाराद्याः क्षकारान्ता वर्णाः प्रोक्ता तु मातृका ॥ ७७ ॥
प्रजापतिर्मुनिस्तस्या गायत्रीछन्द ईरितम् ।
सरस्वतीदेवतोक्ता विनियोगोऽखिलाप्तये ।
हलो बीजानि चोक्तानि स्वराः शक्तय ईरिताः[1] ॥ ७८ ॥

सप्तार्णमुद्धरति – **सबिन्दव इति** । मेरुः क्षः हंसः सः आकाशो हः भृगुः सः माया ह्रीं ताररुद्धः प्रणवपुटितः तेन ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ओमिति सप्तार्णः ॥ ७६ ॥ मातृकामाह – **अकाराद्या इति** प्रसिद्धा इत्यर्थः ॥ ७७ ॥ षडङ्गमाह – **पञ्चेति** । क्लीबा ऋ ॠ ऌ ॡ तद्धीनाः – सानुस्वारा ये ह्रस्वदीर्घास्तदन्तरस्थितैः सबिन्दुभिः जातयो हृदयाय नम इत्यादयस्तद्युक्तैः षड्वर्गैः षडङ्गं अं कं खं गं घं ङं आं

इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ' इतना उच्चारण कर समस्त ज्ञानेन्द्रियों, मन एवं प्राण की भी प्रतिष्ठा करे । यह क्रिया तीन बार करनी चाहिए ॥ ७०-७५ ॥

प्राण प्रतिष्ठा के **सप्ताक्षर मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - सानुस्वार मेरु (क्षं) हंस (सं) आकाश (हं) के साथ भृगु (सः) एवं माया बीज (ह्रीं) इन सबको ॐ से सम्पुटित करने पर सप्ताक्षर मन्त्र बन जाता है ॥ ७६ ॥

विमर्श - मन्त्र का उद्धार इस प्रकार है - ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ ॥ ७६ ॥

पूर्वोक्त विधि से प्राणप्रतिष्ठा के पश्चात् अब **मातृकान्यास** कहते हैं - अकार से ले कर क्षकार पर्यन्त समस्त वर्णों की 'मातृका' संज्ञा है । इस मातृका न्यास मन्त्र के प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द, सरस्वती देवता और हल वर्ण बीज कहे गए हैं तथा स्वर शक्ति कही गई है । स्वाभीष्ट प्राप्ति के लिए इसके विनियोग का विधान कहा गया है ॥ ७७-७८ ॥

साधक शिर, मुख एवं हृदयादि में क्रमशः ऋषि, छन्द तथा देवतादि के द्वारा ऋष्यादि न्यास करे । यह न्यास क्लीव वर्णों (ऋ ॠ ऌ ॡ) को छोड़कर मात्र ह्रस्व एवं दीर्घ वर्णों से संपुटित होना चाहिए । इसी प्रकार ह्रस्व एवं दीर्घ वर्णों से संपुटित सानुस्वार कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग से करन्यास एवं षडङ्गन्यास करे । पश्चात् सरस्वती के वक्ष्यमाण रूप का ध्यान हृदयकमल में करना चाहिए ॥ ७९-८० ॥

विमर्श - मातृका न्यास का विनियोग इस प्रकार है - ॐ अस्य श्रीमातृकान्यासमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः गायत्रीछन्दः सरस्वतीदेवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः (क्षं कीलकं) अखिलाप्तये मातृकान्यासे विनियोगः ।

---

१. अव्यक्तं कीलम् ।

मूर्ध्नि[1] वक्त्रे हृदि न्यस्येदृष्यादीन् साधकोत्तमः ।
[2]पञ्चवर्गैर्यादिभिश्च षडङ्गानि समाचरेत् ॥ ७९ ॥
क्लीबहीनशशाङ्काढ्य ह्रस्वदीर्घान्तरस्थितैः ।
सानुस्वारैर्जातियुक्तैर्ध्यायेद् देवी हृदम्बुजे ॥ ८० ॥
पञ्चाशदर्णैरचिताङ्गभागां
धृतेन्दुखण्डां कुमुदावदाताम् ।
वराभये पुस्तकमक्षसूत्रं
भजे गिरं संदधतीं त्रिनेत्राम् ॥ ८१ ॥

हृदयाय नम इत्यादि ॥ ७८–८० ॥ ध्यानमाह – **पञ्चाशदिति** । वर्णैरङ्गरचना न्यासाद् बोध्या। वराक्षस्रजौ दक्षयोः। पुस्तकाभये वामयोः । गिरं सरस्वतीम् ॥ ८१ ॥

ऋष्यादि न्यास का प्रकार -

१. ॐ अं प्रजापतये नमः आं शिरसि, २. ॐ इं गायत्रीछन्दसे नमः ईं मुखे,
३. ॐ उं सरस्वतीदेवतायै नमः ऊं हृदि, ४. ॐ एं हल्बीजेभ्यो नमः ऐं गुह्ये,
५. ॐ ओं स्वरशक्तिभ्यो नमः औं पादयोः, ६. ॐ अं क्षं कीलकाय नमः अः सर्वाङ्गे,

करन्यास एवं अङ्गन्यास -

१. ॐ अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
२. ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः ।
३. ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः ।
४. ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः ।
५. ॐ ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
६. ॐ क्षं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इसी प्रकार उपरोक्त मन्त्रों से क्रमशः हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र का स्पर्श करे । फिर अन्तिम मन्त्र के आगे 'अस्त्राय फट्' कह कर ताली बजावे ॥ ७७-८०॥

अब **सरस्वती का ध्यान** कहते हैं -

सोलह स्वरों एवं चौंतीस हलों इस प्रकार कुल पचास वर्णो से जिनके शरीर की रचना है, जो मस्तक पर चन्द्रकला धारण की हैं, जो कुमुद के समान अत्यन्त शुभ्र हैं, जिनके दाहिने हाथों में १. वरदमुद्रा, २. अक्षमाला तथा बायें हाथों में ३. अभयमुद्रा एवं ४. पुस्तक सुशोभित है, ऐसे समस्त वाणी को धारण करने वाली तीन नेत्रों वाली सरस्वती देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ८१ ॥

---

१. मूर्ध्नीत्यादि । शक्तिबीजयोरपि पूर्वोक्तस्थानोपलक्षणम् । ओं क्षं सं हंसः ह्रीं ओं ब्रह्मऋषये मूर्ध्नि, गायत्रीछन्दसे नमः वक्त्रे, सरस्वतीदेवतायै नमो हृदि, हं बीजेभ्यो नमः गुह्ये, स्वरशक्तिभ्यो नमः पादयोः, । एवमृष्यादि ।

२. प्रयोगस्तु – अं कं गं घं ङं आं अंगुष्ठाभ्यां नमः । इं चं ५ ईं तर्ज० इत्यादि । अं कं ५ आं हृदयाय नमः । नमः स्वाहा वषट् चैव हुं वौषट् फट् क्रमेण तु ।

ध्यात्वैवं पूजयेत् पीठे देवताः पूर्वमीरिताः ।
पीठशक्तीस्तदुपरि सरस्वत्यानवार्च्चयेत् ॥ ८२ ॥
मेधाप्रज्ञाप्रभाविद्याश्रीधृतिस्मृतिबुद्धयः ।
विद्येश्वरीति संप्रोक्ता मातृका पीठशक्तयः ॥ ८३ ॥
वियद्‌भृगुस्थमनुयुग्विसर्गाढ्यं च मातृका ।
योगपीठायनत्यन्तो[1] मनुरासनदेशने ॥ ८४ ॥
मूर्तिसंकल्प्य मूलेन तस्यां वाणीं प्रपूजयेत् ।
आदावङ्गानि संपूज्य द्वितीये पूजयेत् स्वरौ ॥ ८५ ॥
द्वौ द्वौ तृतीये वर्गांश्च वर्गशक्तिश्चतुर्थके ।
व्यापिनी पालिनी चापि पावनी क्लेदिनी पुनः ॥ ८६ ॥
धारिणी मालिनी पश्चाद्धंसिनी शङ्खिनी तथा ।
वर्गशक्तय इत्युक्ताः पञ्चमे त्वष्टमातरः ॥ ८७ ॥
षष्ठे शक्रादयो देवाः सप्तमे वज्रपूर्वकाः ।
इत्थं सम्पूज्य देवेशीं न्यसेद्वर्णान्निजाङ्गके ॥ ८८ ॥

पूर्वमीरिता मण्डूकाद्याः ॥ ८२ ॥ आसनमन्त्रमाह – वियत् हः । भृगुः सः मनुरौ तेन हसौः मातृकायोगपीठाय नम इति ॥ ८४ ॥ * ॥ ८५–९१ ॥

पीठशक्त्यर्चन, पीठपूजा एवं आवरण पूजा - इस प्रकार सरस्वती देवी के ध्यान के पश्चात् पूर्वोक्त पीठ देवताओं (द्र० १. ५०-५५) का एवं नौ पीठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर सरस्वती का पूजन करना चाहिए । १. मेधा, २. प्रज्ञा, ३. प्रभा, ४. विद्या, ५. श्री, ६. धृति, ७. स्मृति, ८. बुद्धि, एवं ९. विद्येश्वरी - ये मातृकापीठ की नौ शक्तियाँ कही गई हैं ॥ ८२-८३ ॥

अब **आसनपूजा का मन्त्र** कहते हैं - वियत् (ह) भृगु (स) के आगे मनु (औ), पश्चात् विसर्ग लगा कर तदनन्तर 'मातृकायोगपीठाय नमः' लगा कर उस मन्त्र से आसन का पूजन करना चाहिए । (इसका **स्वरूप** इस प्रकार है - हसौः मातृकायोगपीठाय नमः ।) तदनन्तर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर वाणी देवी (सरस्वती) की पूजा करनी चाहिए । **प्रथमावरण** में अङ्गों का, **द्वितीयावरण** में दो दो स्वरों का, **तृतीय आवरण** में कवर्गादि अष्टवर्गों का, एवं **चतुर्थ आवरण** में वर्गशक्तियों का पूजन करना चाहिए । व्यापनी, पालिनी, पावनी, क्लेदिनी, धारिणी, मालिनी, हंसिनी तथा शंखिनी - ये वर्ग की शक्तियों के नाम हैं । इसके बाद में **पञ्चम आवरण** में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकायें, **षष्ठावरण** में इन्द्रादिदेवगण **सप्तमावरण** में उनके वज्र आदि आयुधों के पूजन कर देवेशी का पूजन करना चाहिए, तदनन्तर अपने शरीर में वर्णों का न्यास करना चाहिए ॥ ८४-८८ ॥

---

१. हसौः मातृकायोगपीठाय नमः ।

सृष्ट्यादिन्यासवर्णनम्

ललाटे मुखवृत्तेक्षिश्रवोनासासु गण्डयोः।
ओष्ठयोर्दन्तपङ्क्त्योश्च मूर्ध्निवक्त्रे न्यसेत्स्वरान्॥ ८६॥
बाह्वोः सन्धिषु साग्रेषु कचवर्गौ न्यसेत् सुधीः।
टतवर्गौ पदोस्तद्वत् पार्श्वयोः पृष्ठदेशतः॥ ६०॥
नाभौ कुक्षौ पवर्गं च हृदंसं ककुदं ततः।
न्यस्य यादिचतुर्वर्णाञ्छादिषट्कं ततो न्यसेत्॥ ६१॥

अब शरीर में **मातृका न्यास की विधि** कहते हैं - ललाट, मुखवृत्त, दोंनों नेत्र, दोंनों कान, दोंनों नासापुट, दोंनों गण्डस्थल, दोंनों होठ, दोंनों दन्तपङ्क्ति, शिर एवं मुख में स्वरों का न्यास करना चाहिए । दोंनों बाहुओं के मूल, कूर्पर, मणिबन्ध अङ्गुलि मूल एवं अङ्गुल्यग्रभाग में क्रमशः कवर्ग एवं चवर्ग का न्यास करना चाहिए । टवर्ग एवं तवर्ग का न्यास दोंनों पैरों के मूल, जानु, गुल्फ, पादाङ्गुलिमूल तथा पादाङ्गुलि के अग्रभाग में, पवर्ग का न्यास दोंनों पार्श्व, पीठ, नाभि एवं उदर में, यवर्ग के चार वर्ण य र ल व का न्यास हृदय, दोंनों कन्धे, एवं ककुद में तथा श, ष, स, ह का न्यास दोंनों हाथ एवं दोंनों पैरों में, ल और क्ष का न्यास उदर एवं मुख में करना चाहिए ॥ ८६-६१ ॥

विमर्श - न्यास प्रयोग विधि - 'तत्र प्रणवपूर्वकाः माया लक्ष्मी वाग्भवाद्यो नमः इत्यन्ते न्यस्तव्याः' इस नियम के अनुसार सानुस्वार वर्णों के आदि में प्रणव, माया बीज, लक्ष्मीबीज एवं वाग्बीज लगा कर तथा अन्त में नमः लगा कर शरीर में समस्त वर्णों का न्यास करना चाहिए । यहाँ मूलार्थानुसार न्यासविधि इस प्रकार है -

ॐ अं नमः ललाटे, ॐ आं नमः मुखवृत्ते,
ॐ इं नमः दक्षनेत्रे, ॐ ईं नमः वामनेत्रे,
ॐ उं नमः दक्षकर्णे, ॐ ऊं नमः वामकर्णे,
ॐ ऋं नमः दक्षनासापुटे, ॐ ॠं नमः वामनासापुटे,
ॐ ऌं नमः दक्षगण्डे, ॐ ॡं नमः वामगण्डे,
ॐ एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे, ॐ ऐं नमः अधरोष्ठे,
ॐ ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ, ॐ औं नमः अधःदन्तपङ्क्तौ,
ॐ अं नमः मूर्ध्नि, ॐ अः नमः मुखे ।

यहाँ तक स्वरों का न्यास कहा गया । अब हल वर्णों का न्यास कहते हैं

ॐ कं नमः दक्षबाहुमूले, ॐ खं नमः दक्षबाहुकूर्परे
ॐ गं नमः दक्षबाहुमणिबन्धे, ॐ घं नमः दक्षबाहुहस्ताङ्गुलिमूले,
ॐ ङं नमः दक्षबाह्वङ्गुल्यग्रे, ॐ चं नमः वामबाहुमूले,
ॐ छं नमः वामबाहुकूर्परे, ॐ जं नमः वामबाहुमणिबन्धे,
ॐ झं नमः वामबाह्वङ्गुलिमूले, ॐ ञं नमः वामबाह्वङ्गुल्यग्रे,

[1]हृदादिकरयोरङ्घ्योर्ज्जठरे वदने तथा ।
सृष्टिन्यासं विधायैवं स्थितिन्यासं[2] समाचरेत् ॥ ६२ ॥
ऋषिश्छन्दश्च पूर्वोक्तो देवता विश्वपालिनी ।
उपविष्टां वल्लभाङ्के ध्यायेद् देवीमनन्यधीः ॥ ६३ ॥
मृगबालं वरं विद्यामक्षसूत्रं दधत् करैः ।
मालाविद्यालसद्धस्तां वहन् ध्येयः शिवोगिरम् ॥ ६४ ॥

हृदादीनि करपादोदरमुखेषु सम्बध्यन्ते ॥ ६२–६३ ॥ स्थितिन्यासे ध्यानमाह – **मृगेति** । मृगविद्ये वामयोः । वराक्षसूत्रे दक्षयोः । देव्यामालाविद्ये दक्षवामयोः ॥ ६४ ॥

ॐ टं नमः दक्षिणपादमूले, ॐ ठं नमः दक्षिणपादजानूनि,
ॐ डं नमः दक्षिणगुल्फे, ॐ ढं नमः दक्षिणपादाङ्गुलिमूले,
ॐ णं नमः दक्षिण पादाङ्गुल्यग्रे, ॐ तं नमः वामपादगुल्फे,
ॐ थं नमः वामपादजानूनि, ॐ दं नमः वामपादगुल्फे,
ॐ धं नमः वामपादाङ्गुलिमूले, ॐ नं नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे,
ॐ पं नमः दक्षिणपार्श्वे, ॐ फं नमः वामपार्श्वे,
ॐ बं नमः पृष्ठे, ॐ भं नमः नाभौ,
ॐ मं नमः उदरे, ॐ यं त्वगात्मने नमः हृदि,
ॐ रं असृगात्मने नमः दक्षांसे, ॐ लं मांसात्मने नमः ककुदि,
ॐ वं मेदसात्मने नमः वामांसे,
ॐ शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादि दक्षहस्तान्तम्,
ॐ षं मज्जात्मने नमः हृदयादि वामहस्तान्तम्,
ॐ सं शुक्रात्मने नमः हृदयादि दक्षपादान्तम्,
ॐ हं आत्मने नमः हृदयादिवामपादान्तम्,
ॐ ळं परमात्मने नमः जठरे, ॐ क्षं प्राणात्मने नमः मुखे,

यहाँ तक सृष्टि न्यास कहा गया ॥ ८६-६१ ॥

इस प्रकार हृदय से ले कर दोंनों हाथ दोंनों पैर जठर एवं मुख में सृष्टि न्यास कर स्थिति न्यास करना चाहिए ॥ ६२ ॥

अब **स्थिति न्यास की विधि** कहते हैं - स्थिति न्यास के ऋषि, छन्द आदि (द्र० १.७) पूर्वोक्त हैं । विश्वपालिनी देवता हैं, साधक को एकाग्रचित्त से अपने प्रियतम के गोद में बैठी हुई इस देवता का ध्यान करना चाहिए । इनके दाहिने हाथों में वरमुद्रा, अक्षसूत्र, दिव्यमाला तथा बायें हाथों में मृगशावक, विद्या, वर्णमाला है, इस प्रकार की विश्वपालिनी सरस्वती देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ६३-६४ ॥

---

१. नमः स्वाहेत्यादि० । शं पं करयोः । संह अंघ्योः । लं क्षं वदने जठरे च । हृदयादाविव जठरवदनयोर्न्यसेदित्यर्थः ।

२. दक्षिणगुल्फादिक्रमेण पूर्वोक्तस्थाने स्थितिन्यासः ।

एवं ध्यात्वा डकाराद्यान्वर्णानङ्गेषु विन्यसेत्।
गुल्फादिजानुपर्य्यन्तं स्थितिन्यासोऽयमीरितः ॥ ६५॥
न्यासे संहारसंज्ञे तु ऋषिश्छन्दश्च पूर्ववत्।
संहारिणीसपत्नानां शारदा देवता स्मृता ॥ ६६॥
अक्षस्रक्टङ्कसारङ्गविद्याहस्तां त्रिलोचनाम्।
चन्द्रमौलिं कुचानम्रां रक्ताब्जस्थां गिरं भजे ॥ ६७॥
ध्यात्वैवं विन्यसेद्वर्णान् क्षाद्यानन्तान् विलोमतः।
सृष्टिन्यासे तु सर्गान्ताः सर्गबिन्द्वन्तिकाः स्थितौ ॥ ६८॥
बिन्द्वन्ताः संहृतो चैषा पूर्ववच्चाङ्गपूजने।
न्यस्याः सर्वत्र नत्यन्ता वर्णा वा तारसम्पुटाः ॥ ६९॥

॥ * ॥ ६५–६६ ॥ संहारन्यासे ध्यानमाह – **अक्षेति** । मृगविद्ये वामयोः । अक्षस्रक्टंकौ दक्षयोः। टंकः परशुः ॥ ६७ ॥ * ॥ ६८ ॥ नत्यन्ता । अं नमः । तारसंपुटाः ॐ इत्यादि ॥ ६९ ॥ * ॥ १००–१०३ ॥

विमर्श - **स्थिति न्यास** के विनियोग की विधि इस प्रकार है - 'ॐ अस्य स्थितिमातृका-न्यासस्य प्रजापतिऋषिः गायत्रीछन्दः विश्वपालिनी देवता हलो बीजानि स्वरा शक्तयः क्षं कीलकम् अभीष्टप्राप्तये स्थितिमातृकान्यासे विनियोगः' ॥ ६३-६४ ॥

ध्यान करने के पश्चात् डकारादिवर्णों से दक्षिणगुल्फ से वामजानुपर्यन्त अङ्गों में न्यास करना चाहिए । इसी को स्थिति न्यास कहते हैं ॥ ६५ ॥

विमर्श - यथा - ॐ डं नमः दक्षिण गुल्फे, ॐ ढं नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, ॐ णं नमः दक्षिणपादाङ्गुल्यग्रे, ॐ तं नमः वामपादपूले, ॐ थं नमः वामपादजानूनि, इस क्रम से दक्षिण गुल्फ से लेकर वामजानुपर्यन्त स्थिति न्यास कहलाता है ॥ ६५ ॥

उक्त प्रकार से सृष्टि न्यास करने के पश्चात् संहार न्यास करना चाहिए । इस संहार न्यास के ऋषि एवं छन्द (द्र० १.७८) पूर्वोक्त हैं तथा शत्रुप्रणाशिनी शारदा देवी इसकी देवता मानी गई हैं ॥ ६६ ॥

इनके **ध्यान** का प्रकार इस प्रकार है - जो रक्त कमल पर विराजमान हैं, जिनके दाहिने हाथों में अक्षमाला, परशु एवं बायें हाथों में मृगशावक तथा विद्या हैं, चन्द्रकला से सुशोभित स्तनभार से झुकी हुई तथा तीन नेत्रों वाली उन शारदा का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ६७ ॥

विमर्श - संहारन्यास के विनियोग की विधि -

अस्य श्रीसंहारमातृकान्यासस्य प्रजापतिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः शत्रुसंहारिणी शारदा देवता हलो बीजानि स्वरा शक्तयः क्षं कीलकं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे न्यासे विनियोगः ॥ ६७ ॥

विनियोग तथा ध्यान के अनन्तर क्षकारादि वर्णों से अकार पर्यन्त वर्णों का विलोम रीति से ललाटादि स्थानों में न्यास करना चाहिए ॥ ६८ ॥

सृष्टिन्यास में विसर्गयुक्त वर्णों से, स्थितिन्यास में विसर्ग और अनुस्वार युक्त

सृष्टिन्यासं स्थितिन्यासं पुनः कुर्यात् प्रयत्नतः ।
अन्ये तु मातृका न्यासाः कथ्याः पूजातरङ्गके ॥ १०० ॥
मन्त्रस्नानादिविधयो गद्यास्तत्रैव ते मया ।
भारतीमेवमाराध्य भजेदिष्टान् मनून् सुधीः ॥ १०१ ॥
विष्णुः शिवो गणेशोर्को दुर्गा पञ्चैव देवताः ।
आराध्याः सिद्धिकामेन तत्तन्मन्त्रैर्यथोदितम् ॥ १०२ ॥
आदौ देवं वशीकर्तुं पुरश्चरणमाचरेत् ।
तीर्थादौ निर्जने स्थाने भूमिग्रहणपूर्वकम् ॥ १०३ ॥
नवधा तां धरां कृत्वा पूर्वादिषु समालिखेत् ।
कोष्ठेषु सप्तवर्गांश्च[1] लक्षौ मध्ये तथा स्वरान् ॥ १०४ ॥

दीपस्थानमाह – नवधेति । जपस्थानभूमिं नवधा कृत्वा । पूर्वादिकोष्ठेषु कचटतपयशवर्गान् लक्ष इत्यष्टमे विलिख्य मध्य कोष्ठकमपि नवधा विधाय तत्र पूर्वादिषु स्वरद्वन्द्वं क्षेत्रनामादिवर्णो यत्र कोष्ठे तदेव जपस्थानं सिद्धिदम् ॥ १०४–१०५ ॥

दोंनों प्रकार के वर्णों से तथा संहारन्यास में मात्र अनुस्वार युक्त वर्णों से ही न्यास करना चाहिए । अङ्ग पूजन की प्रक्रिया में वर्ण के आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः लगा कर न्यास करने की विधि है॥ ९८-९९ ॥

विमर्श - यथा ॐ अं नमः, ॐ आं नमः इत्यादि ॥ ९८-९९ ॥

संहार न्यास के पश्चात् पुनः प्रयत्नपूर्वक सृष्टिन्यास तथा स्थितिन्यास करना चाहिए । मातृका न्यास का विशेष विवरण पूजा तरङ्ग (द्रष्टव्य २१वाँ तरङ्ग) में कहा जायगा ॥ १०० ॥

वहीं पर हम मन्त्रस्नान आदि की विधि का भी दिग्दर्शन कराएँगे । इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष सरस्वती की आराधना करने के पश्चात् ही अपने इष्टदेव के मन्त्रों की आराधना करे । विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य एवं दुर्गा - पञ्चायतन के यही पाँच देवता हैं । सिद्धि चाहने वाले पुरुष को उन उन मन्त्रों से शास्त्र में कही गई विधि के अनुसार इनकी आराधना करनी चाहिए ॥ १०१-१०२ ॥

पुरश्चरण के योग्य भूमि -

प्रारम्भ में इष्टदेव को अपने वश में करने के लिए किसी तीर्थ या निर्जन वन में किसी पवित्र भूमि का निश्चय कर पुरश्चरण की क्रिया प्रारम्भ करनी चाहिए । पुरश्चरण के लिए अभीष्टभूमि को नव भागों में विभक्त करना चाहिए । पूर्व से ले कर उत्तर तक सात दिशाओं में सात वर्ग, ईशान कोण में ल क्ष वर्ण तथा मध्य में स्वरों को लिखना चाहिए । पुरश्चरण स्थान के नाम का आद्य अक्षर जिस कोष्ठक में

---

१. क्षकारादिकाकारान्तानिति नवस्थानादारभ्य विलोमक्रमेण संहारन्यासः । माला दक्षे। विद्याभावे ।

क्षेत्रनामादिमो वर्णस्तत्र कोष्ठे[1] भवेत्ततः ।
उपविश्य जपं कुर्य्यान्नान्यस्मिन् दुःखदे स्थले ॥ १०५ ॥

पुरश्चरणधर्मकथनम्

आमध्याह्नं जपं कुर्यादुपांशुत्वथ मानसम् ।
हविष्यं निशि भुञ्जीत [2]त्रिःस्नाय्यभ्यङ्गवर्जितः ॥ १०६ ॥
व्यग्रताऽलस्यनिष्ठीवक्रोधपादप्रसारणम् ।
अन्यभाषां परेक्षां च जपकाले त्यजेत् सुधीः ॥ १०७ ॥

पुरश्चरणधर्मानाह – **आमध्याह्नमिति** । उपांशु शनैर्वर्णोच्चारणं मानसं मनसैव त्रिःस्नायी त्रिषवणस्नानशीलः ॥ १०६ ॥ अन्यैः संभाषणमन्यभाषाम् । अन्त्यजानामीक्षां दर्शनं त्यजेत् ॥ १०७ ॥ * ॥ १०८–११० ॥

हो, स्थान के उसी भाग में बैठ कर मन्त्र का जप करना चाहिए, अन्यत्र दुःखदायक स्थान पर नहीं ॥ १०३-१०५ ॥

विमर्श – सुविधा के लिए उसका स्वरूप प्रदर्शित करते हैं –

पूर्व

ईशान	ल क्ष	क, ख, ग, घ, ङ,	च, छ, ज, झ,	आग्नेय
उत्तर	श, ष, स, ह,	मध्य अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः	ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण,	दक्षिण
वायव	य, र, ल, व,	प, फ, ब, भ, म,	त, थ, द, ध, न,	नैर्ऋत्य

पश्चिम

मान लीजिये किसी साधक को पुरश्चरण के लिए काशी में किसी निर्जन स्थान को चुनना है । तब उपर्युक्त विधि से बनाये गये नौ भाग वाले कोष्ठक में काशी का आद्य अक्षर 'क' पूर्वभाग में पड़ता है । अतः काशी के पूर्वभाग में किसी निर्जन स्थान को चुन कर मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ १०३-१०५ ॥

पुरश्चरण धर्मों का कथन –

अब पुरश्चरण क्रिया में ग्रन्थकार **जप का विधान** कहते हैं – बुद्धिमान् साधक प्रातःकाल से ले कर मध्याह्नपर्यन्त उपांशु अथवा मानस जप करे । तीनों काल स्नान करे । तेल उबटन आदि न लगावे । व्यग्रता, आलस्य, थूकना, क्रोध, पैर फैलाना,

१. लक्षाधीश इति शेषः । मध्ये मध्यकोष्ठे तथा पूर्वोक्तप्रकारेण नवधा विभज्य पूर्वादिक्रमेण द्वौ द्वौ स्वरौ लिखेत् ।

२. त्रिकालस्नायी ।

[1]स्त्रीशूद्रभाषणं निन्दां ताम्बूलं शयनं दिवा।
प्रतिग्रहं नृत्यगीते कौटिल्यं वर्जयेत् सदा॥ १०८॥
भूशय्यां ब्रह्मचर्यं च त्रिकालं देवतार्चनम्।
नैमित्तिकार्चनं देवस्तुतिं विश्वासमाश्रयेत्॥ १०६॥
प्रत्यहं प्रत्यहं तावन्नैव न्यूनाधिकं क्वचित्।
एवं जपं समाप्यान्ते दशांशं होममाचरेत्॥ ११०॥
तत्तत्कल्पोदितैर्द्रव्यैस् तद्विधानमुदीर्यते।
प्राणायामं षडङ्गं च कृत्वा मूलेन मन्त्रवित्॥ १११॥
कुण्डे वा स्थण्डिले कुर्यात्संस्काराणां चतुष्टयम्।
मूलेनेक्षणमस्त्रेण प्रोक्षणं ताडनं कुशैः॥ ११२॥

होमविधिमाह – **प्राणायाममिति** ॥ १११ ॥ अस्त्रं फट् वर्मणा हुंकारेण । भूमन्दिरं चतुष्कोणम् ॥ ११२–११३ ॥ * ॥ ११४–११७ ॥

अन्यों से संभाषण एवं अन्य स्त्रियों का तथा चाण्डालादि का दर्शन जप काल में वर्जित करे । दूसरे की निन्दा, ताम्बूल चर्वण, दिन में शयन, प्रतिग्रह, नृत्य, गीत एवं कुटिलता न करें । पृथ्वी में शयन करे । ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करे । त्रिकाल देवार्चन करे । नैमित्तिक कार्यों में देवार्चन एवं देवस्तुति करे और अपने इष्टदेवता में विश्वास रख्खे । प्रतिदिन एक समान संख्या में जप करे । न्यूनाधिक संख्या में नहीं । इस प्रकार निश्चित जप की संख्या समाप्त करने के पश्चात् ही दशांश से हवन करे ॥ १०६-११० ॥

विमर्श - उपांशु जप - जिह्वा और ओष्ठ का संचालन पूर्वक स्वयं सुनाई पड़ने वाले शब्दों के उच्चारण पूर्वक जो जप किया जाता है वह 'उपांशु' है । जिसमें ओठ और जीभ का भी संचालन न हो मात्र मन्त्र, मन्त्रार्थ तथा देवता का स्मरण कर जो जप किया जाता है वह 'मानस जप' है । इसके अतिरिक्त वाचिक जप भी होता है जिसका पुरश्चरण में निषेध है ।

हविष्यान्न - जौ, मूंग, चावल, गौ का दूध, दही, घी, मक्खन, शक्कर, तिल, खोआ, नारियल, केला, फल, मेवा, आँवला, सेन्धा नमक आदि हविष्यान्न कहे गये हैं । साधक को इन्हीं का भोजन मात्र एक वार करना चाहिए । भोजन दोष से मन्त्रसिद्धि में बाधा होती है ॥ १०६-११० ॥

तत्तत्कल्पोक्त ग्रन्थों में कहे गये हविष्य द्रव्यों से दशांश हवन का विधान कहा गया है । मन्त्रवेत्ता को सर्वप्रथम मूल मन्त्र से प्राणायाम एवं षडङ्गन्यास कर कुण्ड या स्थण्डिल (वेदी) पर चारों संस्कार करना चाहिए । प्रथम मूलमन्त्र पढ़ कर देखे,

---

१. स्त्रीत्यादि अन्यभावेऽन्यस्यैव प्रपञ्च इति न पौनरुक्त्यम् ।

वर्म्मणा मुष्टिनासिच्य लिखेद्यन्त्रं तदन्तरे ।
वह्निकोणषडस्राष्टदलभूमन्दिरात्मकम् ॥ ११३ ॥
मध्ये तारपुटां[1] मायां लिखित्वा पीठमर्चयेत् ।
मण्डूकात् परतत्त्वान्तं पीठशक्तीर्जयादिकाः ॥ ११४ ॥
[2]वागीशीवागीश्वरयोर्योगपीठात्मने नमः ।
मायादिकः पीठमन्त्रस्तयोस्तेनासनं दिशेत् ॥ ११५ ॥
यजेत्तौ तारमायाभ्यां गन्धाद्यैरुपचारकैः ।
[3]लक्ष्मीनारायणौ त्वर्च्चेद् वैष्णवे होमकर्मणि ॥ ११६ ॥
सूर्यकान्तादरणितः श्रोत्रियागारतोऽपि वा ।
पात्रेण पिहिते पात्रे वह्निमानाययेत्ततः ॥ ११७ ॥

फिर 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से प्रोक्षण करे । तदनन्तर कुशों से ताड़न कर 'हुम्' इस मन्त्र से मुष्टिका द्वारा उसका सेचन करे ॥ १११-११२ ॥

विमर्श - ईक्षण, प्रोक्षण, ताडन एवं सेचन - ये चारों कुण्ड के या स्थण्डिल के चार संस्कार होते हैं ॥ १११-११२ ॥

तदनन्तर वेदी पर यन्त्र का लेखन इस प्रकार करे - त्रिकोण, उसके बाद षट्कोण, अष्टदल एवं चतुष्कोण यन्त्र बना कर उसके मध्य में 'ॐ ह्रीं ॐ' लिख कर पीठ पूजन करना चाहिए । फिर मण्डूक से ले कर परतत्त्व पर्यन्त तथा जया आदि पीठशक्तियों (द्र० १.५०-६०) का पूजन करना चाहिए ॥ ११३-११४ ॥

अग्निपूजनयन्त्रम्

फिर 'ॐ ह्रीं वागीशीवागीश्वरयोर्योगपीठात्मने नमः' इस मन्त्र से उन्हें आसन देना चाहिए । फिर तार (ॐ), माया (ह्रीम्) अर्थात् ॐ ह्रीं इस मन्त्र से गन्धादि उपचारों द्वारा उनका पूजन करना चाहिए । यदि विष्णु देवता का होम करना हो तो 'ॐ ह्रीं लक्ष्मी नारायणाभ्यां नमः' इस मन्त्र द्वारा लक्ष्मीनारायण का पूजन करना चाहिए ॥ ११५-११६ ॥

---
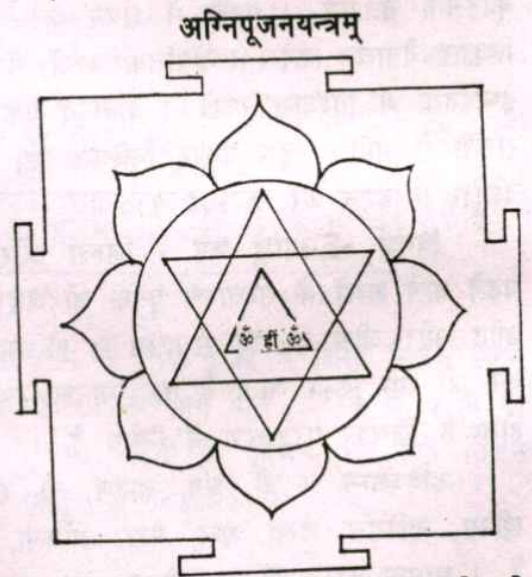
१. ॐ ह्रीं ॐ ।
२ ॐ ह्रीं वागीशीवागीस्वरयोर्योगपीठात्मने नमः ।
३. ॐ ह्रीं लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः ।

अस्त्रेणादाय तत्पात्रं वर्मणोद्घाटयेत्तु तम् ।
अस्त्रमन्त्रेण नैर्ऋत्ये क्रव्यादांशं ततस्त्यजेत् ॥ ११८ ॥
मूलेन पुरतो धृत्वा संस्कारांश्च ततश्चरेत् ।
वीक्षणाद्यान् पुरा प्रोक्तानल्पं प्रोक्षणमाचरन् ॥ ११९ ॥
परमात्मानलेनाथ जाठरेणापि वह्निना ।
स्मरन्नैक्यं वह्निबीजाच्चैतन्यं योजयेत्ततः ॥ १२० ॥
तारेण चाभिमन्त्र्याग्निं सुधया धेनुमुद्रया ।
अमृतीकृत्य संरक्षेदस्त्रं मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥ १२१ ॥
मुद्रया त्ववगुङ्ठिन्या कवचेनावगुङ्ठयेत् ।
कुण्डोपरि ततो वह्निं भ्रामयेत् त्रिध्रुवं पठन् ॥ १२२ ॥

क्रव्यादांशं मांसाशिनो वह्नेर्यस्तत्र भागस्तमस्त्रेण त्यजेत् ॥ ११८ ॥ * ॥ ११९ ॥ वह्निबीजात् रमिति बीजात् ॥ १२० ॥ सुधया वबीजेन । धेनुमुद्रालक्षणं वक्ष्यते ॥ १२१ ॥ अवगुण्ठिन्या अपि वक्ष्यते । कवचेन हुंबीजेन । त्रिध्रुवं प्रणवम् ॥ १२२ ॥ * ॥ २३–१२४ ॥

विमर्श - १. गन्ध, २. पुष्प, ३. धूप, ४. दीप एवं ५. नैवेद्य - इन पाँच उपचारों को गन्धादि उपचार कहा जाता है ॥ ११५-११६ ॥

अब **अग्निस्थापन** का प्रकार कहते हैं - सूर्यकान्तमणि द्वारा, अरणिमन्थन द्वारा अथवा श्रोत्रिय के घर (अग्निशाला) से अग्नि को किसी पात्र में रख कर और उसे दूसरे पात्र से ढ़क कर लाना चाहिए ॥ ११७ ॥

'अस्त्राय फट्' मन्त्र का उच्चारण कर अग्नि पात्र ग्रहण करे । 'हुम्' मन्त्र का उच्चारण कर उस पात्र को खोले । पुनः अस्त्र मन्त्र (अस्त्राय फट्) का उच्चारण कर उसका कुछ अंश मांसभोजी अग्नि के लिए नैर्ऋत्यकोण में फेंक देना चाहिए ॥ ११८ ॥

पुनः मूलमन्त्र का उच्चारण कर उस अग्निपात्र को अपने सामने रक्खे, तथा उसे स्वल्प रूप से सिञ्चित करके उसका ईक्षण आदि पूर्वोक्त चार संस्कार (द्र० १. ११२) संपन्न करना चाहिए ॥ ११९ ॥

फिर परमात्मा रूप अनल (अग्निर्वै रुद्रः) तथा जाठराग्नि एवं संमुख रक्खी अग्नि में एकरूपता की भावना करते हुए 'रम्' बीज से उसमें चेतनता लानी चाहिए ॥ १२० ॥

फिर मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण तार मन्त्र (ॐ) से अग्नि को अभिमन्त्रित कर सुधाबीज (वँ) से धेनु मुद्रा प्रदर्शित करते हुए उसका अमृतीकरण करे तथा अस्त्राय फट् मन्त्र से उसे संरक्षित रखे ॥ १२१ ॥

तदनन्तर कवच (हुम्) मन्त्र पढ़ते हुए अवगुण्ठन मुद्रा प्रदर्शित कर उसे अवगुण्ठित कर प्रणव का तीन बार उच्चारण करते हुए उस अग्नि को कुण्ड अथवा वेदी पर तीन बार घुमाना चाहिए ॥ १२२ ॥

शय्यागतामृतुस्नातां नीलेन्दीवरधारिणीम् ।
देवेन भुज्यमानां तां स्मृत्वा तद्योनि मण्डले ॥ १२३ ॥
ईशरेतोधिया वह्निं स्थापयेदात्मसम्मुखम् ।
मूलं नवार्णं च पठञ्जानुस्पृष्टधरातलः ॥ १२४ ॥

वह्निनवार्णमन्त्रोद्धारः

[1]रेफार्घेशेन्दुसंयुक्तं गगनं वह्निचै ततः ।
तन्यायहृदयान्तोऽयं नवार्णोग्निनिधापने ॥ १२५ ॥
विश्राण्याचमनं देवीदेवयोर्ज्वालयेद्वसुम्[2] ।
चतुर्विंशतिवर्णेन मन्त्रेण श्रपणादिभिः[3] ॥ १२६ ॥

नवार्णमुद्धरति । अर्घेशेन्दुः ऊः । गगनं हः । शेषं स्वरूपम् । हृदयान्तो नमोन्तः। हूं वह्निचैतन्याय नम इत्यग्निस्थापने नवाक्षरो मन्त्रः ॥ १२५ ॥ विश्राण्य दत्त्वा ॥ १२६ ॥

तत्पश्चात् घुटनों के बल पृथ्वी पर बैठ कर वक्ष्यमाण नवार्ण मन्त्र का उच्चारण कर शय्या पर स्थित ऋतुस्नाता, नीलकमलधारिणी अग्निदेव के द्वारा संभोग की जाती हुई अग्नि - पत्नी स्वाहा का स्मरण कर उसके योनिमण्डल स्थान में शिव के वीर्य की भावना करते हुए उस अग्नि को अपने सम्मुख स्थापित करना चाहिए ॥ १२३-१२४ ॥

विमर्श - धेनुमुद्रा - अन्योन्याभिमुखौ शिलष्टौ कनिष्ठानामिका पुनः ।
तथा तु तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ॥

दोंनों हाथों की कनिष्ठा एवं अनामिका अङ्गुलियों को उसी प्रकार तर्जनी और मध्यमा अङ्गुलियों को परस्पर मिला देने से 'धेनुमुद्रा' होती है ।

अवगुण्ठन मुद्रा - सव्यहस्तकृता मुष्टिः दीर्घाधोमुखतर्जनी ।
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता भवेत् ॥

दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँध कर तर्जनी एवं मध्यमा को अधोमुख चारों ओर घुमाने से अवगुण्ठन मुद्रा होती है ॥ १२३-१२४ ॥

अग्निस्थापन मन्त्र - रेफ, अर्घेश = ऊ, इन्दु = अनुस्वार से युक्त गगन (ह) अर्थात् हूँ, तदनन्तर वह्नि 'चै', तदनन्तर 'तन्याय', तदनन्तर हृदय = 'नमः' का उच्चारण करने से नवार्ण मन्त्र होता है । यह मन्त्र अग्निस्थापन में प्रयुक्त होता है ॥ १२५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - हूं वह्निचैतन्याय नमः ॥ १२५ ॥

तदनन्तर उक्त दोंनों देव एवं देवियों को आचमन दे कर वक्ष्यमाण चौबीस अक्षरात्मक मन्त्र का जप करते हुये कण्डा, समिधा आदि से अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिए ॥ १२६ ॥

---

१. हूं वह्निचैतन्याय नमः । २. अग्निम् ।
३. काण्डादिभिः ।

वह्निचतुर्विंशत्यक्षरमन्त्रोद्धारः

चित्पिङ्गलहनद्वन्द्वं दहयुग्मं पचद्वयम् ।
सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मन्त्रो वेदभुजाक्षरः ॥ १२७ ॥
प्रदर्श्य ज्वालिनीं मुद्रामुत्थाय विहिताञ्जलिः ।
श्लोकरूपेण मन्त्रेण ह्युपतिष्ठेद्धुताशनम् ॥ १२८ ॥

श्लोकमन्त्राग्निमन्त्रोद्धारः

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम् ।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम् ॥ १२९ ॥
अथाग्निमन्त्रं विन्यस्येत्तद्विधानमुदीर्यते ।
वैश्वानरान्ते जातेति वेदान्ते स्यादिहावह ॥ १३० ॥

चतुर्विंशति वर्णमुद्धरति – **चिदिति** । चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा । वेद ४ भुजा २ अक्षरश्चतुर्विंशति वर्णः ॥ १२७ ॥

ज्वालिनीमुद्रालक्षणम् – मणिबन्धयुतौ कृत्वा प्रसृताङ्गुलिकौ करौ ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयुगले मिलित्वान्तः प्रसारिते ।
ज्वालिनीनाम मुद्रेयं वैश्वानरप्रियङ्करी ॥ इति ॥ १२८ ॥

श्लोकरूपं मन्त्रमाह ॥ १२९ ॥ अग्निमन्त्रमाह – वैश्वानरजातवेद इहावह

अब **चतुर्विंशत्यक्षर मन्त्र का स्वरूप** कहते हैं -

सर्वप्रथम 'चित्पिङ्गल' शब्द, तदनन्तर दो बार 'हन' शब्द, तत्पश्चात् दो बार 'दह' शब्द, फिर दो बार 'पच' शब्द और अन्त में 'सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' लगाने से चतुर्विंशति अक्षर का मन्त्र बन जाता है ॥ १२७ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' ॥ १२७ ॥

तदनन्तर आसन से उठकर हाथ जोड़कर ज्वालिनी मुद्रा प्रदर्शित कर आगे कहे जाने वाले श्लोक रूप मन्त्र से अग्नि का उपस्थापन करें ॥ १२८ ॥

विमर्श - दोनों हाथ के मणिबन्ध स्थान को एक में मिलाकर अङ्गुलियों को दोनों हाथ की कनिष्ठा तथा अङ्गुष्ठों को परस्पर एक में मिलाने से ज्वालिनीमुद्रा हो जाती है ॥ १२८ ॥

अब अग्निं प्रज्वलितं ... विश्वतोमुखम् आदि श्लोक रूप मन्त्र से अग्नि का उपस्थापन कहते हैं । सुवर्ण वर्ण के समान अमल एवं देदीप्यमान, विश्वतोमुख, जातवेद तथा हुताशन नाम वाले प्रज्वलित अग्नि की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १२९ ॥

इसके अनन्तर अग्निमन्त्र का न्यास करना चाहिए । उसकी विधि कह रहे हैं - सर्वप्रथम वैश्वानर, इसके बाद जातवेद, फिर इहावह तत्पश्चात् लोहिताक्ष फिर

लोहिताक्षपदात् सर्वकर्माण्यन्ते तु साधय ।
वह्निप्रियान्तो मन्त्रोऽयं षड्विंशत्यक्षरान्वितः ॥ १३१ ॥
ऋषिश्छन्दो देवतास्य भृगुर्गायत्रपावकाः ।
रंबीजं ठद्वयं शक्तिर्हवने विनियोजनम् ॥ १३२ ॥
लिङ्गे पायौ मूर्ध्नि वक्त्रे नसि नेत्रे खिलाङ्गके ।

जिह्वाबीजोद्धारः

वह्नेर्जिह्वाःस्वबीजाढ्या न्यसेन्ङेन्तानमोन्विताः ॥ १३३ ॥
हिरण्या[1] गगना रक्ता कृष्णासुप्रभयान्विता ।
बहुरूपातिरक्तेति जिह्वा दमुनसो मताः ॥ १३४ ॥
दीपिकानलवायुस्थाः साद्या वर्णाविलोमतः ।
सेन्दवः सप्तजिह्वानां सप्तानां बीजतां[2] गताः ॥ १३५ ॥

लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहेति ॥ १३०–१३१ ॥ ठद्वयं स्वाहा ॥ १३२ ॥ ङेन्ताश्चतुर्थ्यन्ताः ॥ १३३ ॥ जिह्वाबीजान्युद्धरति – **दीपिकेति** । दीपिका उ । अनलो रः । वायुर्यः । एतेषु स्थिताः सकाराद्या विलोमवर्णाः सषशवलरयेति सेन्दवोऽनुस्वाराद्या इमे सप्त हिरण्यादिजिह्वानां बीजानीत्यर्थः । ततश्च स्र्यूं हिरण्यायै नमः । ष्र्यूं गगनायै नमः । श्र्यूं रक्तायै नमः । व्र्यूं कृष्णायै नमः । ल्र्यूं सुप्रभायै नमः । र्र्यूं बहुरूपायै नमः । य्र्यूं अतिरक्तायै नमः ॥ १३४–१३५ ॥

सर्वकर्माणि तदनन्तर साधय और अन्त में स्वाहा लगाने से २६ अक्षरों का अग्निमन्त्र बनता है ॥ १३०-१३१ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - वैश्वानरजातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा ॥ १३०-१३१ ॥

अब अग्निमन्त्र का विनियोग कहते हैं - इस मन्त्र के भृगु ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा पावक इसके देवता हैं, रं बीज है और स्वाहा शक्ति है । इसका विनियोग हवन कार्य में किया जाता है ॥ १३२ ॥

अब सप्तजिह्वामन्त्र एवं उनका न्यास कहते हैं - लिङ्ग, गुदा, शिर, मुख, नासिका, आँख एवं सर्वाङ्ग में अपने अपने बीजमन्त्रों के साथ नमः लगाकर प्रत्येक अग्नि जिह्वा नाम के आगे चतुर्थी एक वचन से न्यास करना चाहिए । हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा एवं अति रक्ता - ये सात अग्नि जिह्वाओं के नाम हैं ॥ १३३-१३४ ॥

दीपिका (ऊ) अनल (र) वायु (य) इन तीनों को एक में मिलाकर अर्थात् 'य्रूं' के आदि में सकरादि सात वर्णो को विलोम रूप से (स् ष् श् व् ल् र् य्) एक एक में मिलाने से अग्निजिह्वा के बीज मन्त्र बन जाते हैं ॥ १३५ ॥

---

१. अग्नेः सप्तजिह्वानामानि । २. स्र्यूँ ष्र्यूँ श्र्यूँ व्र्यूँ ल्र्यूँ र्र्यूँ य्र्यूँ अग्नेर्जिह्वाबीजानि ।

[1]गीर्वाणपितृगन्धर्वयक्षनागपिशाचकाः ।
राक्षसाश्चेति जिह्वानां देवतास्तत्स्थले न्यसेत् ॥ १३६ ॥
न्यासेऽर्चने[2] व्युत्क्रमः स्याद् बहुरूपाति रक्तयोः ।
नेत्रेतिरिक्ता न्यस्तव्या सर्वाङ्गेबहुरूपिका ॥ १३७ ॥
सहस्रार्चिषे हृदयं स्वस्तिपूर्णाय मस्तकम् ।
उत्तिष्ठ पुरुषायेति शिखामन्त्रोऽयमीरितः ॥ १३८ ॥

गीर्वाणादयो जिह्वाधिदेवा जिह्वास्थानेषु न्यस्याः । सुरेभ्यो नमः लिङ्गे इत्यादिप्रयोगः ॥ १३६ ॥ *॥ ३७ ॥ मस्तकं शिरो मन्त्रः ॥ १३८ ॥ *॥ ३९–१४०॥

विमर्श - जैसे - स्म्रू, ष्म्रू, श्म्रू, व्म्रू, ल्म्रू, र्म्रू, य्म्रू ये सप्त जिह्वाओं के क्रमशः बीज मन्त्र हैं ।

प्रयोग विधि - ॐ स्म्रूँ हिरण्यायै नमः लिङ्गे, ॐ ष्म्रूं गगनायै नमः पायौ,
ॐ श्म्रूँ रक्तायै नमः शिरसि, ॐ व्म्रूं कृष्णायै नमः वक्त्रे,
ॐ ल्म्रूँ सुप्रभायै नमः नासिकायाम्, ॐ र्म्रूं अति रक्तायै नमः नेत्रे,
ॐ य्म्रूँ बहुरूपायै नमः सर्वाङ्गे ।

टिप्पणी - इस न्यास के क्रम में बहुरूपा एवं अतिरिक्ता में व्युत्क्रम हुआ है, जो वक्ष्यमाण १३७ श्लोक के अनुरूप है । वहाँ नेत्र में अति रक्ता का तथा सर्वाङ्ग में बहुरूपा का न्यास कहा गया है ॥ १३५ ॥

अब उपर्युक्त सात जिह्वाओं के देवाताओं द्वारा न्यास कहते हैं - सुर, पितर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, पिशाच एवं राक्षस इन जिह्वाओं के अधिदेवता कहे गये हैं । उनका भी क्रमशः उक्त अङ्गों में न्यास करना चाहिए । पूजा काल में बहुरूपा एवं अति रक्ता का जो क्रम बतलाया गया है न्यास में वह व्युत्क्रम हो जाता है । इसीलिए नेत्र में प्रथम अति रक्ता का न्यास, तदनन्तर सर्वाङ्ग में बहुरूपा का न्यास प्रदर्शित किया गया है (द्र १.१३४) ॥ १३६-१३७ ॥

विमर्श - **प्रयोग विधि** - ॐ सुरेभ्यो नमः लिङ्गे, ॐ पितृभ्यो नमः पायौ,
ॐ गन्धर्वेभ्यो नमः, मूर्ध्नि, ॐ यक्षेभ्यो नमः मुखे,
ॐ नागेभ्यो नमः नासिकायाम्, ॐ पिशाचेभ्यो नमः, नेत्रे,
ॐ राक्षसेभ्यो नमः, सर्वाङ्गे ॥ १३६-१३७ ॥

अब **षडङ्गन्यास** कहते हैं -
ॐ सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः, ॐ स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा,
ॐ उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्, ॐ धूमव्यापिने कवचाय हुम्,

---

१. जिह्वाधिदेवतानामानि ।

२. प्रयोगस्तु – स्म्रूँ ष्म्रूँ श्म्रूँ व्म्रूँ ल्म्रूँ र्म्रूँ य्म्रूँ हिरण्यायै नमो लिङ्गे, ष्म्रूँ गगनायै नमः पायौ इत्यादि ।

धूमान्ते[1] व्यापिने वर्म सप्तजिह्वाय नेत्रकम् ।
अस्त्रं धनुर्धरायेति षडङ्गानि समाचरेत् ॥ १३६ ॥
मूर्ध्नि[2] वामेंसके पार्श्वे कटौ लिङ्गे कटौ पुनः ।
दक्षे पार्श्वेंसके न्यस्येन्मूर्तीरष्टौ विभावसोः ॥ १४० ॥
ताराग्नये पदाद्यास्ताश्चतुर्थीनमसान्विताः ।
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहन इत्यपि ॥ १४१ ॥
अश्वोदरजसंज्ञोन्यस्तथा वैश्वानराह्वयः ।
कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखस्तथा ॥ १४२ ॥
ततो न्यसेन्निजे देहे पीठं हाटकरेतसः ।
वह्निमण्डलपर्यन्तं मण्डूकादि यथोदितम् ॥ १४३ ॥
पीता श्वेतारुणा कृष्णा धूम्रा तीव्रा स्फुलिङ्गिनी ।
रुचिरा ज्वालिनी चेति कृशानोः पीठशक्तयः ॥ १४४ ॥

तारेति । प्रणवाग्नये पदपूर्वा । ङे नमोन्ताः । ॐ अग्नये जातवेदसे नमो मूर्ध्नीत्यादि ॥ १४१–१४२ ॥ हाटकरेतसो वह्नेः । मण्डलपर्यन्तमेव पीठदेवताः पूज्याः। ततः पीताद्याः पीठशक्तयः ॥ १४३–१४४ ॥

ॐ सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ धनुर्धराय अस्त्राय फट् इस प्रकार षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १३८-१३६ ॥

शिर, वामस्कन्ध, वाम पार्श्व, वाम कटि, लिङ्ग पुनः दक्षिण कटि, दक्षिणपार्श्व - दक्षिण स्कन्ध इन अङ्गों में अग्नि की आठ मूर्तियों से न्यास करना चाहिए ॥ १४०॥

प्रथम प्रणव (ॐ), इसके अनन्तर 'अग्नये', इसके बाद प्रत्येक मूर्ति नाम में चतुर्थी, तदनन्तर 'नमः' पद से उक्त स्थानों (द्र० १. १४०) में न्यास करना चाहिए। १. जातवेदाः, २. सप्तजिह्व, ३. हव्यवाहन, ४. अश्वोदरज, ५. वैश्वानर, ६. कौमार- तेजस्, ७. विश्वमुख तथा ८. देवमुख - ये अग्नि की आठ मूर्तियों के नाम हैं ॥ १४१-१४२ ॥

विमर्श - प्रयोगविधि - यथा - ॐ अग्नये जातवेदसे नमः मूर्ध्नि
ॐ अग्नये सप्तजिह्वाय नमः वामांसे, ॐ अग्नये हव्यवाहनाय नमः वामपार्श्वे,
ॐ अग्नये अश्वोदरजाय नमः वामकटौ, ॐ अग्नये वैश्वानराय नमः लिङ्गे,
ॐ अग्नये कौमारतेजसे नमः दक्षकटौ, ॐ अग्नये विश्वमुखाय नमः दक्षपार्श्वे,
ॐ अग्नये देवमुखाय नमः दक्षांसे ॥ १४१-१४२ ॥

पीठ देवता एवं शक्तियों का न्यास - इसके बाद अपने शरीर में मण्डूक से लेकर अग्निमण्डल पर्यन्त अग्निपीठ के देवताओं को (द्र० १.५०-५६) न्यास करना

---

१. धूमव्यापिने कवचाय हुम् ।
२. अग्नये जातवेदसे मूर्ध्नि इत्यादि ।

बीजं वह्न्यासनायेति हृदन्तः पीठमन्त्रकः ।
एवं विन्यस्य पीठान्तं पावकं चिन्तयेत्तनौ ॥ १४५ ॥

अग्निध्यानम्

त्रिनेत्रमारक्ततनुं सुशुक्ल –
वस्त्रं सुवर्णस्रजमग्निमीडे ।
वराभयस्वस्तिकशक्तिहस्तं
पद्मस्थमाकल्पसमूहयुक्तम् ॥ १४६ ॥

अग्न्यर्चनादिवर्णनम्

एवं ध्यात्वार्चनं कुर्यान्मानसं विधिवद्वसोः ।
परिषिञ्चेत्ततस्तोयैः कुण्डं स्थण्डिलमेव वा ॥ १४७ ॥
दर्भैः परिस्तरेदग्निं प्रागग्रैरुदगग्रकैः ।
प्रत्यग्दक्षिणसौम्यासु न्यसेत्त्रीन्परिधीन्क्रमात् ॥ १४८ ॥
पालाशान्बिल्वजांस्तेषु ब्रह्माविष्णुशिवान्यजेत् ।
वह्नौ तत्पीठमभ्यर्च्यावाहयेत्स्वहृदोऽनलम् ॥ १४६ ॥

बीजमिति । रं वह्न्यासनाय नमः इति पीठमन्त्रः ॥ १४५ ॥ ध्यानमाह – **त्रिनेत्रमिति** । वरस्वस्तिका दक्षयोः । अभीतिशक्ती वामयोः । आकल्पा आभरणानि तत्संघयुतम् ॥ १४६ ॥ * ॥ १४७–१५३ ॥

चाहिए । पीता, श्वेता, अरुणा, कृष्णा, धूम्रा, तीव्रा, स्फुलिङ्गनी, रुचिरा एवं ज्वालिनी ये अग्निपीठ की शक्तियाँ हैं ॥ १४३-१४४ ॥

'ॐ रं वह्न्यासनाय नमः' यह पीठ का मन्त्र है इस प्रकार पीठ पर्यन्त समस्त न्यास कर अपने शरीर में अग्नि का ध्यान करना चाहिए ॥ १४५ ॥

अग्नि का ध्यान - तीन नेत्रों वाले, रक्तवर्ण शरीर वाले, शुभ्र वस्त्र से युक्त, सुवर्ण माला धारण किए हुये, दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं स्वस्तिक, तथा बायें हाथों में अभयमुद्रा एवं शक्ति धारण किए हुये, आभूषणों से सुशोभित कमलासन पर बैठे हुये अग्निदेव का मैं ध्यान करता हूँ ॥ १४६ ॥

इस प्रकार अग्निदेव का ध्यान कर विधिवत् सर्वोपचारों से मानस पूजन करना चाहिए । फिर जल से कुण्ड अथवा स्थण्डिल का परिषिञ्चन करना चाहिए ॥ १४७॥

तदनन्तर पूर्व एवं उत्तराग्रभाग वाले कुशाओं से उसका पूर्व दिशा के क्रम से परिस्तरण करना चाहिए । पुनः पलाश एवं विल्ववृक्ष की शाखाओं से पश्चिम, दक्षिण एवं उत्तर में क्रमशः तीन परिधि बनाकर उस पर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव का पूजन करना चाहिए । अग्नि में उनके पीठस्थ देवताओं का पूजन कर अपने हृदय में अग्निदेव का आवाहन करना चाहिए ॥ १४८-१४६ ॥

गन्धादिभिः समभ्यर्च्य पूजयेत् पावकं व्रती ।
षट्सु कोणेषु मध्ये च जिह्वास्तद्देवता यजेत् ॥ १५० ॥
ईशानादिषु वायवन्तकोणेषु षट् समर्चयेत् ।
हिरण्याद्यतिरक्तान्ता मध्ये तु बहुरूपिणीम् ॥ १५१ ॥
केसरेष्वङ्गपूजास्याद्दलेष्वष्टसु मूर्तयः ।
मातरोऽष्टौ दलान्तेषु भैरवाः स्युस्तदग्रतः ॥ १५२ ॥
धरापुरे तु शक्राद्या वज्राद्यायुधसंयुताः ।
एवमावरणैर्युक्तं सप्तभिः पावकं यजेत् ॥ १५३ ॥

अष्टभैरवनामकथनम्

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्तसंज्ञकः ।
कपाली भीषणश्चापि संहारश्चाष्टभैरवः ॥ १५४ ॥
वामे कुशानथास्तीर्य तत्र वस्तूनि निःक्षिपेत् ।
प्रणीताप्रोक्षणीपात्रे आज्यस्थालीं स्रुवं स्रुचम् ॥ १५५ ॥
अधोमुखानि चैतानि होमद्रव्यं घृतं कुशान् ।
समिधः पञ्चपालाशीरन्यदप्युपयोगि यत् ॥ १५६ ॥

भैरवानाह – असिताङ्ग इति ॥ १५४ ॥ * ॥ १५५–१५७ ॥

फिर व्रती पुरश्चरणकर्ता गन्धादि पूजनोपचारों से अग्निदेव का पूजन करें । षट्कोण में एवं मध्य में अग्नि की सप्तजिह्वा (द्र० १.१३४) का पूजन करना चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है - ईशान से लेकर ऊर्ध्वाधः वायव्य पर्यन्त षट्कोणों में हिरण्या से लेकर अतिरक्ता तक ६ अग्निजिह्वाओं का तथा मध्य में बहुरूपिणी नामक अग्नि जिह्वा का पूजन करना चाहिए ॥ १५०-१५१ ॥

केसरों में अङ्गपूजा, अष्टदलों में अष्टमूर्तियों की पूजा (द्र० १. १४१ - १४२) तथा दलों के अन्त में अष्टमातृकाओं की पूजा (द्र० ५. ३९-४०) और दलान्त के आगे अष्ट भैरवों की पूजा करनी चाहिए ॥ १५२ ॥

भूपुर में इन्द्रादि देवों की तथा उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार सप्तावरण के देवताओं के साथ-साथ अग्निदेव का यजन करना चाहिए ॥ १५३॥

१. असिताङ्ग, २. रुद्र, ३. चण्ड, ४. क्रोध, ५. उन्मत्त, ६. कपाली, ७. भीषण और ८. संहार - ये अष्ट भैरवों के नाम हैं ॥ १५४ ॥

अब **पात्रासादन की विधि** कहते हैं - अग्नि के वाम भाग में कुशाओं को फैला कर उस पर प्रणीता एवं प्रोक्षणीपात्र, आज्यपात्र, स्रुवा एवं स्रुची आदि यज्ञ पात्र अधोमुख स्थापित करना चाहिए । उसी के साथ होमार्थ द्रव्य घृत, कुशा, पलाश की पञ्च समिधायें एवं अन्य उपयोगी वस्तुयें भी रखनी चाहिए ॥ १५५-१५६ ॥

कृत्वा पवित्रे मूलेन प्रोक्षेत्तानि शुभाम्भसा ।
उत्तानानि विधायाथ प्रणीतां पूरयेज्जलैः ॥ १५७ ॥
तीर्थमन्त्रेण तीर्थानि सृण्या तत्राह्वयेत् सुधीः ।
पवित्रे ह्यक्षतांस्तत्र निःक्षिप्योत्पवनं चरेत् ॥ १५८ ॥
अथोदीच्यां निधायैतां प्रोक्षण्यां तज्जलं क्षिपेत् ।
हवनीयं द्रव्यजातमुक्षेत्तोयैः पवित्रगैः ॥ १५६ ॥
मूलेन मूलगायत्र्या यद्वा हृदयमन्त्रतः ।
दक्षिणे पीठमासाद्य तत्र ब्रह्माणमाह्वयेत् ॥ १६० ॥
अणिमाद्याः सिद्धयोष्टौ ब्रह्मणः पीठदेवताः ।

ब्रह्ममन्त्रोद्धारः

तारहृत्पूर्वको ङेन्तो ब्रह्मा मन्त्रोऽस्य[1] पूजने ॥ १६१ ॥

तीर्थमन्त्रेण – गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

इत्यनेन । सृण्या अंकुशमुद्रया -
ऋज्वीं मध्यमिकां कृत्वा तर्जनीमध्यपर्वणि ।
संयोज्याकुञ्चयेत् किञ्चिन्मुद्रैषांकुशसंज्ञिका ॥

इति लक्षणम् ॥ १५८–१६० ॥ अणिमाद्या अष्टमे वक्ष्यन्ते । ब्रह्ममन्त्रमुद्धरति – **तारेति** । ॐ नमो ब्रह्मणे इति ॥ १६१ ॥

तदनन्तर पवित्री का निर्माण कर मूलमन्त्र द्वारा पवित्र जल से उन वस्तुओं का प्रोक्षण करना चाहिए । तदनन्तर सभी पात्रों को सीधे रख कर प्रणीता पात्र में जल भरना चाहिए । फिर तीर्थ मन्त्र -

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

इस मन्त्र को पढ़ते हुए अंकुश मुद्रा द्वारा उस जल में विद्वान् साधक को तीर्थों का आवाहन करना चाहिए । दो अक्षत (सम्पूर्ण रूप वाले) कुशाओं को उसमें छोड़कर जल का उत्पवन करना चाहिए । तदनन्तर प्रणीतापात्र को अग्नि के उत्तर भाग में रख कर उसका जल प्रोक्षणी पात्र में डालना चाहिए । फिर उस प्रोक्षणी के पवित्र जल से समस्त हवनीय पदार्थों का प्रोक्षण करना चाहिए ॥ १५७-१५६ ॥

अब **ब्रह्मदेव के आवाहन एवं पूजन की विधि** कहते हैं - अग्नि के दक्षिण में पीठ निर्माण कर उस पर मूलमन्त्र से, गायत्रीमन्त्र से अथवा हृदय मन्त्र (ॐ नमः) से उस पर ब्रह्मदेव का आवाहन करना चाहिए ॥ १६० ॥

---

१. ॐ नमो ब्रह्मणे ।

स्रुक्स्रुवसंस्कारः

हस्ताभ्यां स्रुक्स्रुवौ धृत्वा तापयेत्त्रिरधोमुखौ।
वामहस्तेन तौ धृत्वा दर्भैर्दक्षेण मार्जयेत् ॥ १६२ ॥
संप्रोक्ष्य प्रोक्षणीतोयैः प्रतप्य पूर्ववत् पुनः।
न्यस्याग्नौ मार्जनान्दर्भांस्तयोः शक्तित्रयं न्यसेत् ॥ १६३ ॥

शक्तित्रयम्

इच्छा ज्ञान क्रिया संज्ञा चतुर्थीनमसान्विता।
दीर्घत्रयेन्दुयुग्व्योमपूर्वकं स्थानकत्रये ॥ १६४ ॥
हृदास्रुचिन्यसेच्छक्तिं[1] स्रुवे शम्भुं ततस्तु तौ।
सूत्रत्रयेण संवेष्ट्य सम्पूज्य कुसुमादिभिः ॥ १६५ ॥

स्रुक्स्रुवसंस्कारमाह – **हस्ताभ्यामिति** ॥ १६२–१६३ ॥ शक्तित्रयमाह – **इच्छेति** । दीर्घत्रयम् – आ ई ऊ । व्योम हः । तत्पूर्वकां हां इच्छाशक्त्यै नमो मूले । हीं ज्ञानशक्त्यै नमः मध्ये । हूं क्रियाशक्त्यै नमः अन्ते ॥ १६४–१६६ ॥

अणिमादि आठ सिद्धियाँ ब्रह्मपीठ की देवता हैं । तार (ॐ) और हृद् (नमः), तदनन्तर ब्रह्मपद में चतुर्थी लगाकर 'ॐ नमो ब्रह्मणे' इस मन्त्र से उनकी पूजा करनी चाहिए ॥ १६१ ॥

विमर्श - **प्रयोग विधि** - अणिमायै नमः इत्यादि सिद्धियों के नाम मन्त्र से आठों सिद्धियों का आवाहन पूजन कर पीठ निर्माण करें । फिर 'ॐ नमो ब्रह्मणे' इस मन्त्र से उनकी पूजा करे ॥ १६०-१६१ ॥

स्रुव एवं स्रुचि के संस्कार की विधि कहते हैं - दोनों हाथों में स्रुवा स्रुचि लेकर अधोमुख कर तीन बार उन्हें अग्नि पर तपाना चाहिए । फिर उन दोनों को बायें हाथ में रखकर दाहिने हाथ से कुशा लेकर उनका मार्जन करना चाहिए । तदनन्तर प्रणीता के जल से सिञ्चन कर पुनः उन्हें पूर्ववत् तीन बार तपाकर, अग्नि के दाहिनी ओर स्थापित करना चाहिए । मार्जन कुशाओं को अग्नि में डाल देना चाहिए । तदनन्तर उन पर तीन-तीन शक्तियों का न्यास करे ॥ १६२-१६३ ॥

इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूपा शक्तियों के आगे चतुर्थ्यन्त विभक्ति लगाकर उसमें नमः जोड़े । आदि में क्रमशः आ ई ऊ के सहित सानुस्वार आकाश (ह) लगा कर शक्तियों से स्रुव एवं सुचि के मूल, मध्य एवं अन्त में इस प्रकार न्यास करे ॥ १६४ ॥

विमर्श - तद् यथा - १. ॐ हां इच्छात्मने नमः स्रुवमूले न्यसामि, २. ॐ हीं ज्ञानात्मने नमः स्रुवमध्ये न्यसामि, ३. ॐ हूं क्रियात्मने नमः स्रुवाग्रे न्यसामि । इसी प्रकार स्रुचि में भी उपर्युक्त तीनों शक्तियों द्वारा न्यास करना चाहिए ॥ १६४ ॥

---

१. नमः शक्त्यै, नमः शम्भवे ।

कुशोपरि न्यसेद्दक्षे तयोः संस्कार ईरितः ।
अस्त्रोक्षितायामाज्यस्य स्थाल्यामाज्यं विनिःक्षिपेत् ॥ १६६ ॥
वीक्षणादिकसंस्कारसंस्कृतं मूलमन्त्रतः ।
गोमुद्रयामृतीकृत्य षट् संस्कारांस्ततश्चरेत् ॥ १६७ ॥
कुण्डोद्धृते वायुकोणे स्थितेङ्गारे विनिःक्षिपेत् ।
हृदेति तापनं प्रोक्तं दर्भयुग्मं प्रदीपितम् ॥ १६८ ॥
आज्ये क्षिप्त्वा हृदावह्नौ पवित्रीकरणं क्षिपेत् ॥ १६९ ॥
आज्यं नीराजयेद् दीप्तदर्भयुग्मेन वर्मणा ।
अभिद्योतनमुक्तं तद्दीप्तं दर्भत्रयं घृते ॥ १७० ॥
दर्शयेदस्त्रेणोद्द्योते गृहीत्वा घृतपात्रकम् ।
संयोज्याग्नौ तदङ्गारान् सलिलं संस्पृशेत् सुधीः ॥ १७१ ॥

गोमुद्रा धेनुमुद्रा ॥ १६७ ॥ * ॥ १६८–१७३ ॥

पुनः सुचि के हृदय में शक्ति तथा स्रुव में शिव का न्यास कर तीन रक्षा सूत्रों से उन्हें बाँधकर पुष्पादि से पूजाकर उन्हें कुशाओं पर अग्नि के दाहिनी ओर स्थापित करना चाहिए ॥ १६५ ॥

विमर्श - न्यासविधि - स्रुचि हृदये शक्तिं न्यसामि, स्रुवोपरि शम्भुं न्यसामि ।
यहाँ तक स्रुवा तथा स्रुचि का संस्कार कहा गया है ॥ १६६ ॥

अब **आज्य एवं आज्यस्थाली के संस्कार की विधि** कहते हैं -

'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से प्रोक्षित आज्यस्थाली में आज्य को उड़ेलना चाहिए। फिर ईक्षण, प्रोक्षण, ताडन एवं सेचन आदि चार संस्कार से सुसंस्कृत कर धेनुमुद्रा प्रदर्शित करते हुये मूलमन्त्र से उसका अमृतीकरण करे । तदनन्तर वक्ष्यमाण छः संस्कार करना चाहिए ॥ १६६-१६७ ॥

विमर्श - १. अग्नि संस्थापन, २. तापन, ३. अभिद्योतन, ४. सेचन, ५. उत्पवन तथा ६. संप्लवन - ये छः संस्कार आज्य स्थाली के होते हैं जिसका क्रमशः वर्णन आगे (द्र० १. १६८-१७३) करेंगें ॥ १६६-१६७ ॥

कुण्ड से निकाली गई अग्नि पर उस आज्य युक्त स्थाली को स्थापित करे - इसे **अग्नि संस्थापन** कहते हैं । फिर 'ॐ नमः' मन्त्र से उसे तपावे - इसे **तापन** कहते हैं । फिर दो कुशाओं को जला कर उसे घी में डाल देवें और तदनन्तर 'ॐ नमः' मन्त्र से अग्नि में उन दोनों कुशाओं को डाल देना चाहिए ॥ १६८-१६९ ॥

फिर जलती हुई उन कुशाओं को 'हुम्' मन्त्र पढ़ कर घी के चारों ओर घुमा देना चाहिए - इसे **अभिद्योतन** कहते हैं । पुनः घी में तीन कुशा डुबोकर 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से जलाकर आज्यस्थाली में डाल देनी चाहिए । पुनः अङ्गार को उसी कुण्ड में डाल देना चाहिए । तदनन्तर साधक को जल का स्पर्श करना चाहिए ॥ १७०-१७१ ॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु दर्भावादाय निःक्षिपेत्।
त्रिरग्निसंमुखेत्वाज्यमस्त्रेणोत्पवनं त्विदम् ॥ १७२ ॥
हृदात्मसम्मुखं तद्वदाज्यक्षेपस्तु संप्लवः।
नीराजनादिसंस्कारेष्वग्नौ दर्भान् विनिःक्षिपेत् ॥ १७३ ॥
दर्भद्वयं ग्रन्थियुतं घृतमध्ये विनिःक्षिपेत्।
वामदक्षिणयोः पक्षौ स्मृत्वा नाडीत्रयं स्मरेत्।
दक्षिणाद्वामतो मध्याद्धृदादाय घृतं सुधीः ॥ १७४ ॥
अग्नयेग्निप्रियासोमायस्वाहेत्यग्निनेत्रयोः ।
जुहुयादग्नीषोमाभ्यां स्वाहेत्यक्षिणतृतीयके ॥ १७५ ॥
पातयेदाहुतेः शेषमाहुतिग्रहणस्थले।
भूयो हृदादक्षभागादादायाज्यं मुखे यजेत् ॥ १७६ ॥
अग्नये स्विष्टकृते तन्नेत्रास्योद्घाटनं मतम्।
नरसिंहं विना विष्णुं मन्त्रनेत्रद्वयं यजेत् ॥ १७७ ॥
नरसिंहान्य देवेषु वह्नेर्नेत्रत्रयं स्मृतम्।
[१]महाव्याहृतिभिर्व्यस्तसमस्ताभिश्चतुष्टयम् ॥ १७८ ॥

नाडीत्रयमिति । इडापिङ्गला सुषुम्णाख्या । तृतीया मध्ये चिन्त्या । हृदा नम इति मन्त्रेण ॥ १७४ ॥ अग्नये स्वाहेति दक्षनेत्रे । सोमाय स्वाहेति वामे तदाहुतिचतुष्टयेनाग्नेर्नेत्रमुखप्रकाशो भवतीत्यर्थः ॥ १७५ ॥ * ॥ ७६–१७६ ॥

पुनः अनामिका और अंगुष्ठ इन दो अंगुलियों से दो कुशा लेकर 'अस्त्राय फट्' इस मन्त्र से घी को ३ बार ऊपर की ओर उछालना चाहिए - इसे **उत्पवन** कहते हैं ॥ १७२ ॥

'ॐ नमः' इस मन्त्र से उस आज्य को तीन बार अपने सम्मुख उछालने का नाम **संप्लवन** है । नीराजनादि संस्कारों में अग्नि में दर्भ को डाल देना चाहिए ॥ १७३ ॥

ग्रन्थि युक्त दो कुशाओं को घी में डाल देना चाहिए । फिर वाम एवं दक्षिण दोनों प्रकार के स्वरों का ध्यान कर ईडा, पिङ्गला तथा सुषुम्ना इन तीनों नाड़ियों का ध्यान करे । साधक दक्षिण, वाम एवं मध्य भाग में 'ॐ नमः' मन्त्र से घी लेकर 'ॐ अग्नये स्वाहा' 'ॐ सोमाय स्वाहा' इन दो मन्त्रों से अग्नि के दोनों नेत्रों में तथा 'ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' इस मन्त्र से उनके तृतीय नेत्र में आहुति देवे ॥ १७४-१७५ ॥

आहुति से शेष भाग को प्रणीता में डाल देना चाहिए, फिर 'ॐ नमः' मन्त्र से दाहिनी ओर से घी लेकर 'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' मन्त्र से एक आहुति अग्निदेव के मुख में देवे । ऐसा करने से उनके नेत्र का उद्घाटन हो जाता है ॥ १७६-१७७ ॥

नृसिंह को छोड़कर विष्णु के मन्त्रों से दोनों नेत्रों में दो आहुति देनी चाहिए

---

१. भूः स्वाहा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा भूर्भुवः स्वः स्वाहा ।

आहुतीनां त्रयं वह्निमन्त्रेणैव ततश्चरेत्[1] ।
घृताहुतिभिरष्टाभिरेकैकां संस्कृतिं चरेत् ॥ १७६ ॥

अग्निषट्संस्कारकरणम्

ओमस्याग्नेरमुं संस्कारं करोम्यग्निवल्लभा ।
इत्थं मनुं जपन् गर्भाधानं पुंसवनं ततः ॥ १८० ॥
सीमन्तोन्नयनं जातकर्म कृत्वा ततश्चरेत् ।
वह्नौ पञ्चसमिद्धोमान्नालापनयनं वसोः ॥ १८१ ॥
कुर्याद् देवाभिधानेन पूर्ववन्नामशुष्मणः ।
नामानन्तरमेतस्य पितरौ स्वेर्पयेद्धृदि ॥ १८२ ॥
अन्नप्राशं तथा चौलोपनयौ दारयोजनम् ।
संस्काराः स्युर्विवाहान्तामृत्यन्ता क्रूरकर्मणि ॥ १८३ ॥

ॐ अस्याग्नेर्गर्भाधानसंस्कारं करोमि स्वाहेत्यादि ॥ १८० ॥ पञ्चसमिधां होमाद्वसोरग्नेः नालापनयनाख्यः संस्कारः॥ १८१ ॥ देवाभिधानेन देवनाम्ना शुष्मणोग्नेर्नाम पूर्ववत् । घृताहुत्यष्टकेन कुर्यात्–रामाग्निकृष्णाग्निरित्यादि । एतस्याग्नेः पितरौ वागीशी वागीशौ कुण्डात् स्वहृदि न्यसेत् ॥ १८२ ॥ उपनयमुपवीतम् । दारयोजनं विवाहः ॥ १८३ ॥ * ॥ १८४–१८५ ॥

तथा नृसिंह एवं अन्य देवताओं के मन्त्र के दशांश हवन में अग्नि के तीनों नेत्रों में आहुतियाँ देनी चाहिए ॥ १७७-१७८ ॥

महाव्याहृतियों से पृथक् पृथक् (यथा ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा तदनन्तर ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा) ये चार आहुतियाँ देनी चाहिए । फिर अग्निमन्त्र (ॐ वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा) से तीन आहुति प्रदान करे । फिर घी की आठ आहुतियों से क्रमशः एक-एक आहुति से अग्नि का एक-एक संस्कार करना चाहिए ॥ १७८-१७९ ॥

अब **अग्नि के छह संस्कार** कहते हैं - सर्वप्रथम ' ॐ अस्याग्नेः गर्भाधानं संस्कारं करोमि स्वाहा' इस प्रकार मन्त्र से १. गर्भाधान संस्कार करे । इसी प्रकार २. पुंसवन, ३. सीमान्तोन्नयन, ४. जातकर्म तथा ५. नालच्छेदन में क्रमशः उक्त अग्निमन्त्र पढ़कर पाँच पलाश की समिधाओं की एक-एक के क्रम से अग्नि में आहुति देवें ॥ १८०-१८१ ॥

तदनन्तर अग्निदेवता का ६. नामकरण इस प्रकार करें । यदि गणेश मन्त्र की आहुति देनी हो तो गणेशाग्नि, राम और कृष्ण की आहुति देनी हो तो रामाग्नि एवं 'कृष्णाग्नि' ऐसा नामकरण करें । इस प्रकार अग्नि के नामकरण के पश्चात् इनके माता पिता वागीशी एवं वागीश को अपने हृदय में स्थापित करे ॥ १८२ ॥

---

१. वैश्वानरजातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा ।

एकैकामाहुतिं कुर्याद् वह्नेर्जिह्वाङ्गमूर्तिभिः[1] ।
इन्द्रादिभिश्च वज्राद्यैर्द्विठान्तैर्जुहुयात्ततः ॥ १८४ ॥
स्रुवेणाज्यं चतुर्वारं निधाय स्रुचितां सुधीः ।
अपिधाय स्रुवेणैतौ गृह्णीयात् करयुग्मतः ॥ १८५ ॥
तिष्ठन्मूलं तयोर्नाभौ कृत्वाग्रे कुसुमं क्षिपेत् ।
वामस्तनान्तं तन्मूलं कृत्वाग्निमनुना सुधीः ॥ १८६ ॥
जुहुयाद्वौषडन्तेन संपत्त्यर्थमतन्द्रितः ।
महागणेशमन्त्रेण व्यस्तेन दशधा ततः ॥ १८७ ॥
जुहुयाच्च समस्तेन चतुर्वारं घृताहुतीः ।
पूर्वपूर्वयुतं बीजषट्कं बाणाश्च सायकाः ॥ १८८ ॥
मुनयो मार्गणाश्चेति विभागस्तन्मनोः स्मृतः ।
तारो लक्ष्मीर्गिरिसुता कामो भूर्गणनायकः ॥ १८९ ॥

कुसुमं पुष्पम् ॥ १८६॥ दशधा व्यस्तेन विभक्तेन ॥ १८७॥ तमेव विभागमाह – **पूर्वेति** । बीजषट्कम् । बाणाः पञ्चवर्गाः । सायकाः पञ्चैव । मुनयः सप्त ।

तदनन्तर अन्नप्राशन, चौल, उपनयन एवं विवाह संस्कार भी उक्त प्रकार के संकल्प से एक-एक आहुति देते हुये सम्पन्न करना चाहिए । शुभ कार्यो में विवाह पर्यन्त ही संस्कार किए जाते हैं, किन्तु क्रूर कर्मों में मृत्यु पर्यन्त संस्कार करने की विधि है ॥ १८३ ॥

तदनन्तर अग्नि की जिह्वाओं (द्र० १.१३४) एवं अग्नि की ही मूर्तियों को पूर्वोक्त (द्र० १.१४२) मन्त्रों से प्रत्येक में चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्त में स्वाहा पद का उच्चारण कर एक-एक आहुति प्रदान करें । (यथा - हिरण्यायै स्वाहा, गगनायै स्वाहा आदि ।) फिर इन्द्रादि देवों के लिए तथा उनके आयुधों के लिए चतुर्थ्यन्त नाम मन्त्रों के आगे स्वाहा लगाकर आहुति प्रदान करें । (यथा - इन्द्राय स्वाहा, वज्राय स्वाहा आदि) ॥ १८४ ॥

तदनन्तर स्रुवा से स्रुचि में चार बार घी डालकर स्रुवा से स्रचि को ढककर खड़े हो कर उन्हें दोनों हाथों से पकड़कर नाभि के आगे कर उस पर पुष्प चढ़ाना चाहिए । फिर उनका मूल अपने बायें स्तन के पास लाकर अग्निमन्त्र से (यथा - वैश्वानर जातवेद इहा वह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा वौषट्) संपत्ति प्राप्ति के लिए साधक जागरूक होकर एक आहुति प्रदान करे ॥ १८५-१८७ ॥

तदनन्तर महागणपति मन्त्र के दस विभाग कर प्रत्येक भाग से एक-एक आहुति देनी चाहिए । तदनन्तर गणपति के समस्त मन्त्र को चार बार पढ़कर चार घृत की

---

१. जिह्वेति । स्वदेवतानामप्युपलक्षणम् ।

चतुर्थ्यन्तो गणपतिर्वरान्ते वरदेति च।
सर्वान्ते जनमित्युक्त्वा मे वशान्ते तु मानय॥ १६०॥
स्वाहान्तो वसुयुग्मार्णो महागणपतेर्मनुः[1]।
एवं कृत्वाग्निसंस्कारं पीठं देवस्य पूजयेत्॥ १६१॥

मार्गणाः पञ्च । गणेशमन्त्रमाह – **तार इति** ॥ तारः ॐ । लक्ष्मीः श्रीं । गिरिसुता ह्रीं । कामः क्लीं । भूः ग्लौं । गणनायकः गं - इति बीजषट्कम् । गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहेति विभागाः पूर्वयुताः कार्याः । ॐ ॐ श्रीं ॐ श्रीं ह्रीं ॐ इत्यादि ॥ १८८–१६१ ॥

आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए । महागणपति मन्त्र के सर्वप्रथम छः बीजों से छः आहुति तदनन्तर ५, ५, ७ एवं ५ अक्षरों के मन्त्रों से एक-एक आहुति देने का विधान है ॥ १८७-१८९ ॥

महागणपति मन्त्र इस प्रकार है - तारा (ॐ), लक्ष्मी (श्रीं), गिरि सुता (ह्रीं), काम (क्लीं), भू (ग्लौं), गणनायक (गं) इसके बाद गणपति का चतुर्थ्यन्त (गणपतये) फिर 'वर' और 'वरद' (वर वरद), तदनन्तर 'सर्वजन' फिर 'मे वश' तदनन्तर 'मानय', तदनन्तर 'स्वाहा' लगाने से अठाइस अक्षर का मन्त्र बन जाता है। इस प्रकार अग्नि का संस्कार कर देव - पीठ की पूजा करनी चाहिए ॥ १८९-१६१ ॥

विमर्श - महागणपति का मन्त्र इस प्रकार है - 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वश मानय स्वाहा' ।

हवन विधि - साधक को दस भागों में इस प्रकार हवन करना चाहिए - यथा -

१ - ॐ स्वाहा,
२ - ॐ श्रीं स्वाहा,
३ - ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा,
४ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा,
५ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा,
६ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा,
७ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा,
८ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद स्वाहा,
९ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वश स्वाहा,
१० - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा,

इन दस मन्त्रों से एक - एक आहुति प्रदान करनी चाहिए । फिर सम्पूर्ण उपर्युक्त २८ मन्त्राक्षरों से घी की चार आहुति देनी चाहिए ॥ १८७-१६१ ॥

---

१. श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौ गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा । प्रयोगस्तु – ॐ स्वाहा , ओ३म् श्रीं स्वाहा , ओ३म् श्री ह्रीं स्वाहेत्यादि ।

तत्रेष्टदेवमावाह्य मुद्रा आवाहनादिकाः।
प्रदर्श्य वह्निरूपस्य देवस्य वदने पुनः॥ १६२॥
मूलेन जुहुयात् पञ्चनेत्रसंख्या घृताहुतीः।
वक्त्रैकीकरणं त्वग्निर्देवयोस्तेन जायते॥ १६३॥

आवाहनादिका अग्नेर्वक्तव्याः॥ १६२॥ पञ्चनेत्रसंख्या पञ्चविंशतिः॥ १६३॥

सर्वप्रथम आवाहनादि मुद्रा प्रदर्शित कर पीठ पर इष्टदेव का आवाहन करना चाहिए । तदनन्तर अग्नि एवं इष्टदेव के मुख में मूल मन्त्र से पच्चिस संख्यक घी की आहुती प्रदान करनी चाहिए । ऐसा करने से अग्नि के मुख का एवं देवता के मुख का एकीकरण हो जाता है ॥ १६२-१६३ ॥

विमर्श - इष्ट देव के आवाहन में साधक निम्न मुद्राओं का प्रदर्शन करे - १. आवाहनी, २. स्थापनी, ३. सन्निधान, ४. सन्निरोध, ५. सम्मुखीकरण, ६. सकलीकरण, ७. अवगुण्ठन, ८. अमृतीकरण और ६. परमीकरण । इनका स्वरूप इस प्रकार है -

१. आवाहनी मुद्रा - "सम्यक् सम्पूजितैः पुष्पैः कराभ्यां कल्पिताञ्जलिः । आवाहनी समाख्याता मुद्रादेशिक सत्तमैः । अनामामूलं संलग्नाङ्गुष्ठग्राञ्जलिरीरिता ॥ "

'ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पसम्भवे पुष्पं च यवकीर्ण हुं फट् स्वाहा' - इस मन्त्र से संशोधित पुष्पों को लेकर दोनों हाथों की अञ्जलि बनाने को आवाहनी मुद्रा कहते हैं ।

२. स्थापनी मुद्रा - "अधोमुखी कृता सैव स्थापनीति निगद्यते ।"
आवाहनी मुद्रा को अधोमुख करने से स्थापनी मुद्रा बन जाती है ।

३. सन्निधान मुद्रा - "आश्लिष्टमुष्टियुगला प्रोन्नताङ्गुष्ठयुग्मका ।
सन्निधाने समुच्छिष्टा मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः ॥ " अंगूठों को ऊपर उठाकर दोनों मुट्ठियों को परस्पर मिलाने से सन्निधान मुद्रा बनती है ।

४. सन्निरोध मुद्रा - "अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधे समीरिता । अङ्गूठों को भीतर कर दोनों मुट्ठियों को परस्पर मिलाने से सन्निरोध मुद्रा बनती है ।

५. सम्मुखीकरण मुद्रा - "बद्धाञ्जलि हृदि प्रोक्ता सम्मुखीकरणे बुधैः ।"
हृदय प्रदेश में अञ्जलि बनाने को सम्मुखीकरण मुद्रा कहते हैं ।

६. सकलीकरण मुद्रा - "देवाङ्गेषु षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलीकृतिः ।"
देवता के अङ्गों पर षडङ्गन्यास करना सकलीकरण कहलाता है ।

७. अवगुण्ठन मुद्रा - "सव्यहस्तकृता मुष्टिः दीर्घाधोमुख तर्जनी ।
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता भवेत् ॥ दाहिने हाथ की मुट्ठी बनाकर मध्यमा एवं तर्जनी को अधोमुख कर चारों ओर घुमाने से अवगुण्ठन मुद्रा बनती है ।

८. अमृतीकरण के लिए धेनुमुद्रा -
"अन्योन्याभिमुखौ श्लिष्टौ कनिष्ठानामिका पुनः।

नाडीसन्धानसिद्ध्यर्थं वह्निदेवतयोस्ततः।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण रुद्रसंख्या घृताहुतीः॥ १६४॥
इष्टदेवस्यावृतीनामेकैकामाहुतिं चरेत्।
ततस्तु मूलमन्त्रेण दशधा जुहुयाद् घृतम्॥ १६५॥
ततः कल्पोक्तद्रव्येण दशांशं जुहुयाज्जपात्।
होमं समाप्य कुर्वीत पूर्णाहुतिमनन्यधीः॥ १६६॥
होमावशिष्टेनाज्येन पूरयित्वा स्रुचं सुधीः।
पुष्पं फलं निधायाग्रे स्रुवेणाच्छाद्य तां पुनः॥ १६७॥
उत्थितौ वौषडन्तेन मूलेन जुहुयाद् वसौ।
तद्द्रव्येणावृतीनां च जुहुयादाहुतिं पृथक्॥ १६८॥
देवं विसृज्य स्वहृदि वह्नेर्जिह्वाङ्गमूर्तिभिः।
जुहुयाद् व्याहृतीर्हुत्वा प्रोक्षेत्तं प्रोक्षणीजलैः॥ १६९॥

तथा तु तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ॥ ”

दोनों हाथों की कनिष्ठा एवं अनामिका को तथा मध्यमा को एक दूसरे से मिलाने पर धेनु मुद्रा बनती है ।

९. परमीकरण के लिए महामुद्रा -

अन्योन्य ग्रथिताङ्गुष्ठौ प्रसारितकराङ्गुलिः । महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः ॥

अंगूठों को परस्पर ग्रथित कर अङ्गुलियां फैलाने से महामुद्रा बनती है । इसे परमीकरण मुद्रा कहते हैं ॥ १६२-१६३ ॥

पश्चात् अग्नि एवं इष्टदेव के नाड़ीसंधान के लिए मूलमन्त्र से ग्यारह आहुति प्रदान करनी चाहिए ॥ १६४ ॥

पुनः इष्टदेव के आवरण देवताओं को १-१ आहुति देनी चाहिए (आवरण देवता द्र० १. ५०-५५) फिर मूलमन्त्र से १० संख्यक घृत की आहुति देनी चाहिए ॥ १६५ ॥

तदनन्तर तत्तत् कल्पों में प्रतिपादित तत्तद्देव विशेषों के हवि से जप का दशांश होम कर होम का समापन करें । तदनन्तर एकाग्रचित्त से पूर्णाहुति करें ॥ १६६ ॥

अब **पूर्णाहुति** का प्रकार प्रस्तुत करते हैं -

विद्वान् साधक होमावशिष्ट घृत से स्रुचि को भर कर उसमें पुष्प एवं फल रखकर स्रुवा से ढ़क कर खड़ा हो मूलमन्त्र के अन्त में वौषट् लगाकर अग्नि में पूर्णाहुति करें, तथा शेष होमद्रव्य से आवरण देवताओं को पृथक्-पृथक् आहुति प्रदान करें ॥ १६७-१६८ ॥

फिर अपने हृदय में इष्टदेव का विसर्जन कर अग्नि की सात जिह्वाओं एवं आठ मूर्तियों को आहुतियाँ प्रदान करे । तदनन्तर महाव्याहृतियों से हवन कर प्रोक्षणी के जल से अग्नि का प्रोक्षण (सिञ्चन) करे ॥ १६९ ॥

चतुर्थ्यन्तो गणपतिर्वरान्ते वरदेति च।
सर्वान्ते जनमित्युक्त्वा मे वशान्ते तु मानय॥ १६०॥
स्वाहान्तो वसुयुग्मार्णो महागणपतेर्मनुः[1]।
एवं कृत्वाग्निसंस्कारं पीठं देवस्य पूजयेत्॥ १६१॥

मार्गणाः पञ्च । गणेशमन्त्रमाह – **तार इति** ॥ तारः ॐ । लक्ष्मीः श्रीं । गिरिसुता ह्रीं । कामः क्लीं । भूः ग्लौं । गणनायकः गं - इति बीजषट्कम् । गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहेति विभागाः पूर्वयुताः कार्याः । ॐ ॐ श्रीं ॐ श्रीं ह्रीं ॐ इत्यादि ॥ १८८–१६१ ॥

आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए । महागणपति मन्त्र के सर्वप्रथम छः बीजों से छः आहुति तदनन्तर ५, ५, ७ एवं ५ अक्षरों के मन्त्रों से एक-एक आहुति देने का विधान है ॥ १८७-१८६ ॥

महागणपति मन्त्र इस प्रकार है - तारा (ॐ), लक्ष्मी (श्रीं), गिरि सुता (ह्रीं), काम (क्लीं), भू (ग्लौं), गणनायक (गं) इसके बाद गणपति का चतुर्थ्यन्त (गणपतये) फिर 'वर' और 'वरद' (वर वरद), तदनन्तर 'सर्वजन' फिर 'मे वश' तदनन्तर 'मानय', तदनन्तर 'स्वाहा' लगाने से अठाइस अक्षर का मन्त्र बन जाता है। इस प्रकार अग्नि का संस्कार कर देव - पीठ की पूजा करनी चाहिए॥ १८६-१६१ ॥

विमर्श - महागणपति का मन्त्र इस प्रकार है - 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वश मानय स्वाहा' ।

हवन विधि - साधक को दस भागों में इस प्रकार हवन करना चाहिए - यथा -

१ - ॐ स्वाहा,
२ - ॐ श्रीं स्वाहा,
३ - ॐ श्रीं ह्रीं स्वाहा,
४ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं स्वाहा,
५ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं स्वाहा,
६ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं स्वाहा,
७ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये स्वाहा,
८ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद स्वाहा,
६ - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वश स्वाहा,
१० - ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा,

इन दस मन्त्रों से एक - एक आहुति प्रदान करनी चाहिए । फिर सम्पूर्ण उपर्युक्त २८ मन्त्राक्षरों से घी की चार आहुति देनी चाहिए ॥ १८७-१६१ ॥

---

१. श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौ गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा । प्रयोगस्तु – ॐ स्वाहा , ओ३म् श्रीं स्वाहा , ओ३म् श्री ह्रीं स्वाहेत्यादि ।

सम्प्रार्थ्यानेन मनुना नत्वा तं विसृजेद्धृदि ।
भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक ॥ २०० ॥
कर्मान्तरेऽपि सम्प्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम् ।

पवित्रप्रतिपत्तिः

वह्नौ पवित्रे निःक्षिप्य प्रणीताम्बु भुवि क्षिपेत् ॥ २०१ ॥
विधिं विसृज्य सकुशान् परिधीन्विन्यसेद्वसौ ।
एवं होमं समाप्याथ तर्पयेद् देवतां जले ॥ २०२ ॥

तर्पणादिकथनम्

आवाह्य तद्दशांशेन तर्पणादभिषेचनम् ।
तर्पयामि नमश्चेति द्वितीयान्तेष्टपूर्वकम् ॥ २०३ ॥
मूलान्ते तु पदं देयं सिञ्चामीत्यभिषेचने ।
ततो नानाविधैरन्नैस्तर्पयेद् द्विजसत्तमान् ॥ २०४ ॥

॥ * ॥ १६४–२०० ॥ पवित्रादिप्रतिपत्तिमाह – **वह्नाविति** । विधिं ब्रह्माणं विसृज्य दक्षिणां दत्त्वेति शेषः । सकुशान् परिस्तरणसहितान् वसौ वह्नौ ॥ २०१–२०२ ॥ तर्पणमन्त्रमाह – मूलमन्त्रान्ते कृष्णं तर्पयामि नम इति तर्पणे । कृष्णमभि–षिञ्चामीत्यभिषेके ॥ २०३ ॥ जपाद्दशांशाद्धोमः तद्दशांशेन तर्पणं तद्दशांशेनाभिषेकः

तदनन्तर - 'भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक ।
कर्मान्तरेऽपि संप्राप्ते सान्निध्यं कुरु सादरम्'॥

इस मन्त्र से अग्निदेव की प्रार्थना कर प्रणाम करने के पश्चात् अपने हृदय में उनका विसर्जन करें ॥ २००-२०१ ॥

पवित्री बनाये गये कुशाओं को अग्नि में प्रक्षिप्त कर प्रणीता का जल पृथ्वी पर गिरा देवें । तदनन्तर ब्रह्मदेव का विसर्जन कर परिधि बनाये गये कुशाओं को भी अग्नि में प्रक्षिप्त कर देना चाहिए । इस प्रकार होम समाप्त कर जल में इष्ट देवता का तपर्ण करें ॥ २०१-२०२ ॥

अब **तर्पण अभिषेक एवं ब्राह्मण भोजन की विधि** कहते हैं - जल में देवता का आवाहन कर होम संख्या का दशांश तर्पण तथा तर्पण का दशांश मार्जन (अभिषेक) करना चाहिए । मूलमन्त्र के बाद द्वितीयान्त देव नाम, तदनन्तर 'तर्पयामि नमः' लगाकर तर्पण करना चाहिए । इसी प्रकार अभिषेक में मूलमन्त्र के बाद द्वितीयान्त देव नाम लगाकर अन्त में 'ऋषि सिञ्चामि' लगाकर अभिषेक करना चाहिए ॥ २०३-२०४ ॥

विमर्श - किसी भी अनुष्ठान में साधक को चाहिए कि वह मन्त्र की जप संख्या जितनी हो उसके दसवें हिस्से से अर्थात् दस माला का दसवाँ हिस्सा एक माला से हवन करे और हवन के दसवें हिस्से से तर्पण करे तथा उसके दसवें हिस्से

इष्टरूपान्समाराध्य तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम् ।
न्यूनं सम्पूर्णतामेति ब्राह्मणाराधनान्नृणाम् ॥ २०५ ॥
देवताश्च प्रसीदन्ति सम्पद्यन्ते मनोरथाः ॥ २०६ ॥

॥ इति श्रीमन्ममहीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ भूतशुद्ध्यादि-कथनं नाम प्रथमस्तरङ्गः ॥ १ ॥

तद्दशांशेन विप्रभोजनमिति पञ्चाङ्गपुरश्चरणमिति उत्तमः पक्षः । अभिषेकवर्जो मध्यमः । तर्पणाभिषेकवर्जस्त्र्यङ्गः कनीयान् पक्षः । होमाद्दशांशं द्विजभोजनमिति । किंबहुना । बहुब्राह्मणभोजने देवताप्रसादो न भवति किमिति ॥ २०४–२०६ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधेः व्याख्यायां नौकायां भूतशुद्ध्यादिकथनं नाम प्रथमस्तरङ्गः ॥ १ ॥

से मार्जन (अभिषेक) करे और उसके दसवें हिस्से से ब्राह्मण भोजन की संख्या निश्चित करे । जैसे गणपति मन्त्र के एक लाख जप के पुरश्चरण में हवन की संख्या दस हजार और तर्पण की संख्या एक हजार एवं अभिषेक की संख्या एक सौ तथा ब्राह्मण भोजन की संख्या दस होनी चाहिए ।

तर्पण विधि - तर्पण करते समय साधक मूलमन्त्र के बाद देवता का द्वितीयान्त नाम तथा अन्त में 'तर्पयामि नमः' कहते हुए तर्पण करे । जैसे उच्छिष्ट गणपति के मन्त्र में तर्पण इस प्रकार होगा - 'ॐ हस्ति पिशाचि लिखे स्वाहा उच्छिष्टगणपतिं तर्पयामि नमः ।'

अभिषेक विधि - अभिषेक करते समय साधक मूलमन्त्र के बाद देवता का द्वितीयान्त नाम तथा अन्त में 'अभिषिञ्चामि' कहते हुए अभिषेक करे । जैसे - उच्छिष्ट गणपति मन्त्र के पुरश्चरण में अभिषेक इस प्रकार होगा - 'ॐ हस्ति पिशाचि लिखे स्वाहा उच्छिष्ट गणपतिमभिषिञ्चामि' ॥ २०३-२०४ ॥

तदनन्तर विविध प्रकार के पक्वान्नों आदि से श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । अपने इष्टदेव के रूप में आगत उन ब्राह्मणों का पूजन कर उन्हें दक्षिणा देनी चाहिए क्योंकि ब्राह्मणों की आराधना से अनुष्ठान में होने वाली न्यूनता दूर हो जाती है । इससे देवता प्रसन्न हो जाते हैं तथा अपने सभी मनोरथों की सिद्धि हो जाती है ॥ २०४-२०६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के प्रथम तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १ ॥

❁

अथ द्वितीयः तरङ्गः

गणेशस्य मनून् वक्ष्ये सर्वाभीष्टप्रदायकान् ।

गणेशमन्त्रकथनम्

जलं चक्री वह्नियुतः कर्णेन्द्वाढ्या च कामिका ॥ १ ॥
दारको दीर्घसंयुक्तो वायुः कवचपश्चिमः ।
षडक्षरो[1] मन्त्रराजो भजतामिष्टसिद्धिदः ॥ २ ॥

गणेशषडक्षरमन्त्रसाधनकथनम्

भार्गवो [2]मुनिरस्योक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतः ।
विघ्नेशो देवता बीजं वं शक्तिर्यमितीरितम् ॥ ३ ॥

---

* नौका *

आदौ सकलविघ्ननिवर्तकस्य श्रीगणेशस्य मन्त्रान् वक्तुं प्रतिजानीते – **गणेशस्येति** । मनून् मन्त्रान् । मन्यते सर्वैयरिति । मन्त्रमुद्धरति - जलं वः । चक्री कः वह्निः रः तेन युतः तेन युक्तः । कामिका त। कर्णेन्द्वाढ्या उ बिन्दु युता । तेन तुं । दीर्घ आ । तेन युतो दारको डः । वायुर्यः । कवचपश्चिममन्ते यस्य स तथा ।

---

* अरित्र *

अब **गणेश जी के सर्वाभीष्ट प्रदायक मन्त्रों** को कहता हूँ - जल (व) तदनन्तर वह्नि (र) के सहित चक्री (क) (अर्थात् क्र), कर्णेन्दु के साथ कामिका (तुं), दीर्घ से युक्तदारक (ड) एवं वायु (य) तथा अन्त में कवच (हुम्) इस प्रकार ६ अक्षरों वाला यह गणपति मन्त्र साधकों को सिद्धि प्रदान करता है ॥ १-२ ॥

विमर्श - इस षडक्षर मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'वक्रतुण्डाय हुम्' ॥ १-२ ॥

अब इस मन्त्र का **विनियोग** कहते हैं - इस मन्त्र के भार्गव ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, विघ्नेश देवता हैं, वं बीज है तथा यं शक्ति है ॥ ३ ॥

विमर्श - विनियोग का स्वरूप इस प्रकार है - अस्य श्रीगणेशमन्त्रस्य भार्गव ऋषि-

---

१. वक्रतुण्डाय हुम् ।

२. ॐ अस्य श्रीगणेशमन्त्रस्य भार्गवऋषिरनुष्टुप् छन्दः विघ्नेशो देवता वं बीजं यंशक्तिर्ममाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः ।

षडक्षरैः सविधुभिः प्रणवाद्यैर्नमोन्तकैः।
प्रकुर्याज्जातिसंयुक्तैः षडङ्गविधिमु त्तमम्॥ ४॥
भ्रूमध्यकण्ठहृदयनाभिलिङ्गपदेषु च।
मनो वर्णान् क्रमान्न्यस्य व्यापय्याथो स्मरेत् प्रभुम्॥ ५॥

गणेशध्यानम्

उद्यद्दिनेश्वररुचिं निजहस्तपद्मैः
पाशांकुशाभयवरान् दधतं गजास्यम्।
रक्ताम्बरं सकलदुःखहरं गणेशं
ध्यायेत् प्रसन्नमखिलाभरणाभिरामम्॥ ६॥

वक्रतुण्डाय हुमिति सविधुभिः सानुस्वारैः। ॐ व नमः हृदयाय नमः इत्यादि। व्यापय्य सर्वमन्त्रं सर्वशरीरे न्यस्येत्यर्थः॥ १-५॥ ध्यानमाह – **उद्यदिति**। पाशाभये वामयोः। वरांकुशावन्ययोः॥ ६॥

रनुष्टुप् छन्दः विघ्नेशो देवता वं बीजं यं शक्तिरात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः॥ ३॥

अब इस मन्त्र के **षडङ्गन्यास की विधि** कहते हैं -

उपर्युक्त षडक्षर मन्त्रों के ऊपर अनुस्वार लगा कर प्रथम प्रणव तथा अन्त में नमः पद लगा कर षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ४॥

विमर्श - कराङ्गन्यास एवं षडङ्गन्यास की विधि -

ॐ वं नमः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ क्रं नमः तर्जनीभ्यां नमः,
ॐ तुं नमः मध्यमाभ्यां नमः, ॐ डां नमः अनामिकाभ्यां नमः,
ॐ यं नमः कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ हुं नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः,

इसी प्रकार उपर्युक्त विधि से हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय एवं 'अस्त्राय फट्' से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ४॥

अब इसी मन्त्र से **सर्वाङ्गन्यास** कहते हैं - भ्रूमध्य, कण्ठ, हृदय, नाभि, लिङ्ग एवं पैरों में भी क्रमशः इन्हीं मन्त्राक्षरों का न्यास कर संपूर्ण मन्त्र का पूरे शरीर में न्यास करना चाहिए, तदनन्तर गणेश प्रभु का ध्यान करना चाहिए ॥ ५॥

विमर्श - प्रयोग विधि इस प्रकार है -

ॐ वं नमः भ्रूमध्ये, ॐ क्रं नमः कण्ठे, ॐ तुं नमः हृदये, ॐ डां नमः नाभौ,
ॐ यं नमः लिङ्गे, ॐ हुम् नमः पादयोः, ॐ वक्रतुण्डाय हुम् सर्वाङ्गे ॥ ५॥

अब **महाप्रभु गणेश का ध्यान** कहते हैं -

जिनका अङ्ग प्रत्यङ्ग उदीयमान सूर्य के समान रक्त वर्ण का है, जो अपने बायें हाथों में पाश एवं अभयमुद्रा तथा दाहिने हाथों में वरमुद्रा एवं अंकुश धारण किये हुये हैं, समस्त दुःखों को दूर करने वाले, रक्तवस्त्र धारी, प्रसन्न मुख तथा समस्त भूषणों से भूषित होने

गणेशमन्त्रसिद्धिविधानम्

ऋतुलक्षं जपेन्मन्त्रमष्टद्रव्यैर्दशांशतः ।
जुहुयान्मन्त्रसंसिद्ध्यै वाडवान् भोजयेच्छुचीन् ॥ ७ ॥
इक्षवः सक्तवो रम्भाफलानि चिपिटास्तिलाः ।
मोदका नारिकेलानि लाजाद्रव्याष्टकैर्स्मृतम् ॥ ८ ॥

पीठपूजाविधानम्

पीठमाधारशक्त्यादिपरतत्त्वान्तमर्चयेत् ।
तत्राष्टदिक्षु मध्ये च सम्पूज्या नवशक्तयः ॥ ९ ॥
तीव्रा च चालिनी नन्दा भोगदा कामरूपिणी ।
उग्रा तेजोवती सत्या नवमी विघ्ननाशिनी ॥ १० ॥
विनायकस्य मन्त्राणामेताः स्युः पीठशक्तयः ।
सर्वशक्तिकमान्ते तु लासनाय हृदन्तिकः ॥ ११ ॥
पीठमन्त्रस्तदीयेन बीजेनादौ समन्वितः ।
प्रदायासनमेतेन मूर्तिं मूलेन कल्पयेत् ॥ १२ ॥

वाडवान् विप्रान् ॥ ७ ॥ द्रव्याष्टकमाह – **इक्षव इति** ॥ ८–९ ॥ पीठमन्त्रमाह – गं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः । एतेनासनं दत्वा तद्देशे मूलेन मूर्तिं कल्पयेत् ॥ १०–१२ ॥ *॥ १३–१८ ॥

के कारण मनोहर प्रतीत होने वाले गजानन गणेश का ध्यान करना चाहिए ॥ ६ ॥

अब इस मन्त्र से **पुरश्चरण विधि** कहते हैं -

पुरश्चरण कार्य में इस मन्त्र का ६ लाख जप करना चाहिए । इस (छः लाख) की दशांश संख्या (साठ हजार) से अष्टद्रव्यों का होम करना चाहिए । तदनन्तर मन्त्र के फल प्राप्ति के लिए संस्कार-शुद्ध ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये ॥ ७ ॥

१. ईख, २. सत्तू, ३. केला, ४. चपेटान्न (चिउड़ा), ५. तिल, ६. मोदक, ७. नारिकेल और ८. धान का लावा - ये आठ अष्टद्रव्य कहे गये हैं ॥ ८ ॥

अब पीठपूजाविधान करते हैं -

आधारशक्ति से आरम्भ कर परतत्त्व पर्यन्त पीठ की पूजा करनी चाहिए । उस पर आठ दिशाओं में एवं मध्य में नौ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए ॥ ९ ॥

१. तीव्रा, २. चालिनी, ३. नन्दा, ४. भोगदा, ५. कामरूपिणी, ६. उग्रा, ७. तेजोवती, ८. सत्या एवं ९. विघ्ननाशिनी - ये गणेश मन्त्र की नव शक्तियों के नाम हैं ॥ १०-११ ॥

प्रारम्भ में गणपति का बीज (गं) लगा कर 'सर्वशक्तिकम' तदनन्तर 'लासनाय' और अन्त में हृत् (नमः) लगाने से पीठ मन्त्र बनता है । इस मन्त्र से आसन देकर मूलमन्त्र से गणेशमूर्ति की कल्पना करनी चाहिए ॥ ११-१२ ॥

तस्यां गणेशमावाह्य पूजयेदासनादिभिः ।
अभ्यर्च्य कुसुमैरीशं कुर्यादावरणार्चनम् ॥ १३ ॥

गणेशस्य पञ्चावरणपूजाविधिः

आग्नेयादिषु कोणेषु हृदयं च शिरःशिखाम् ।
वर्माभ्यर्च्याग्रतो नेत्रं दिक्ष्वस्त्रं पूजयेत् सुधीः ॥ १४ ॥
द्वितीयावरणे पूज्याः प्रागाद्यष्टैवशक्तयः ।
विद्यादिमां विधात्री च भोगदा विघ्नघातिनी ॥ १५ ॥
निधिप्रदीपा पापघ्नी पुण्या पश्चाच्छशिप्रभा ।
दलाग्रेषु वक्रतुण्ड एकदंष्ट्रो महोदरः ॥ १६ ॥
गजास्यलम्बोदरकौ विकटो विघ्नराजकः ।
धूम्रवर्णस्तदग्रेषु शक्राद्या आयुधैर्युताः ॥ १७ ॥
एवमावरणैः पूज्यः पञ्चभिर्गणनायकः ।
पूर्वोक्ता च पुरश्चर्या कार्या मन्त्रस्य सिद्धये ॥ १८ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - **'गं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः'** ॥ ११-१२ ॥

उस मूर्ति में गणेश जी का आवाहन कर आसनादि प्रदान कर पुष्पादि से उनका पूजन कर आवरण देवताओं की पूजा करनी चाहिए ॥ १३ ॥

गणेश का पञ्चावरण पूजा विधान - प्रथमावरण की पूजा में विद्वान् साधक आग्नेय कोणों (आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान) में 'गां हृदयाय नमः', 'गीं शिरसे स्वाहा', 'गूं शिखायै वषट्', 'गैं कवचाय हुम्' तदनन्तर मध्य में 'गौं नेत्रत्रयाय वौषट्' तथा चारों दिशाओं में 'अस्त्राय फट्' इन मन्त्रों से षडङ्गपूजा करे ॥ १४ ॥
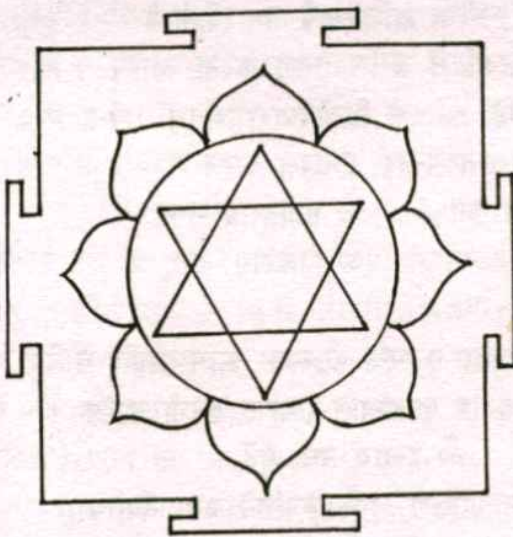
गणेशपूजनयन्त्रम्

द्वितीयावरण में पूर्व आदि दिशाओं में आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए । विद्या, विधात्री, भोगदा, विघ्नघातिनी, निधिप्रदीपा, पापघ्नी, पुण्या एवं शशिप्रभा - ये गणपति की आठ शक्तियाँ हैं ॥ १५-१६ ॥

तृतीयावरण में अष्टदल के अग्रभाग में वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजास्य, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज एवं धूम्रवर्ण का पूजन करना चाहिए । फिर **चतुर्थावरण में** अष्टदल के अग्रभाग में इन्द्रादि देव तथा **पञ्चावरण में** उनके वज्र आदि

वर्गाद्यानन्तझिण्टीशा अयषा मारुता मताः ।
वर्गान्तिमाः कपोलौशोहोबिन्दुश्चेति नाभसाः ॥ ८२ ॥
विसर्गस्तु प्रकृत्यात्मा सर्वभूतमयो यतः ।
प्राणेरितो विनिर्याति कण्ठादिस्थानमस्पृशन् ॥ ८३ ॥

वर्णानां स्वकुलान्यकुलत्वम्

पार्थिवादिकवर्णानां स्वकीयाः स्वकुलाभिधाः ।
पार्थिवस्य च वर्णस्य मित्रं वारुणमक्षरम् ॥ ८४ ॥
तैजसं शत्रुभूतं स्यादुदासीनं तु मारुतम् ।
जलोद्भवस्य वर्णस्य पार्थिवं मित्रमीरितम् ॥ ८५ ॥

वर्गाद्या – इति । अ आ ए कचटतप य षा – एते वायवीयाः । **वर्गान्तिमा** इति । ङ ञ ण न म लृ लॄ श ह अं एते नाभसाः ॥ ८२ ॥ विसर्गस्य पञ्चभूतमयत्वमाह – **विसर्ग इति** । अन्ये वर्णाः कण्ठादिस्थानानि स्पृशन्तो निर्यान्ति विसर्गस्तु न तथेति सर्वभूतमयत्वम् ॥ ८३ ॥ एषां स्वकुलान्यकुलत्वमाह – **पार्थिवेति** ॥ ८४ ॥ * ॥ ८५–८६ ॥

छ, ठ, थ, फ), ए, र एवं क्ष - ये वर्ण अग्निसंज्ञक हैं ॥ ७६-८१ ॥

वर्गों के प्रथम अक्षर (क, च, ट, त, प), अनन्त अ झिण्टीश ए और आ ये वर्ण वायवीय माने गये हैं ।

कुलाकुल चक्रम्

भूमि	जल	अग्नि	वायु	आकाश
उ	ऋ	इ	अ	लृ
ऊ	ॠ	ई	आ	लॄ
ओ	औ	ए	ऐ	अं
ग	घ	ख	क	ङ
ज	झ	छ	च	ञ
ड	ढ	ठ	ट	ण
द	ध	थ	त	न
ब	भ	फ	प	म
ल	व	र	य	श
ळ	स	क्ष	ष	ह

वर्ग के अन्तिम ड ञ, ण, न म और लृ लॄ श ह एवं बिन्दु अं, ये वर्ण आकाशात्मक है यतः विसर्ग प्रकृति की आत्मा है अतः सर्वभूतात्मक है । प्राण (विसर्ग) को छोड़कर अन्य वर्ण कण्ठ आदि स्थानों को स्पर्श करते हुये ध्वनि के रूप निकलते हैं ॥ ८२-८३ ॥

पृथ्वी आदि तत्त्वों के अपने अपने वर्ण स्वकुल संज्ञक कहे गये हैं । पृथ्वी तत्त्व वाले वर्णों के लिए जल तत्त्व वाले वर्ण मित्र हैं । अग्नितत्त्व वाले वर्ण शत्रु तथा वायुतत्त्व वाले वर्ण उदासीन कहे गये हैं । जल तत्त्व वाले वर्णों के पृथ्वी तत्त्व वाले वर्ण मित्र, अग्नितत्त्व वाले वर्ण शत्रु तथा वायुतत्त्व

सपत्नं वह्निसम्भूतमुदासीनं तु वायवम्।
तैजसस्याऽथ वर्णस्य वायवं मित्रमुच्यते॥ ८६॥
विद्वेषी वारुणो वर्णउदासीनस्तु पार्थिवः।
पवनोत्थितवर्णस्य मित्रं वह्निसमुद्भवम्॥ ८७॥
शत्रुः पार्थिववर्णः स्यादुदासीनस्तु पार्थजः।
चतुर्णां पार्थिवादीनामाकाशार्णः सखा सदा॥ ८८॥
मनोः साधकनाम्नोऽपि यौवर्णावादिमौ तयोः।
स्वकुलादिकभेदस्तु शोध्यो मन्त्रप्रदित्सुना॥ ८९॥
स्वकुलेभीप्सितासिद्धिः सिद्धिर्मित्रेऽपि कीर्तिता।
अमित्रे मरणं रोग उदासीने न किञ्चन॥ ९०॥
उदासीनममित्रं च मन्त्रं दूरेण वर्जयेत्।
स्वकुलं मित्रभूतं च गृह्णीयादिष्टकामुकः॥ ९१॥
नक्षत्रैक्येऽपि सम्प्रोक्तं स्वकुलं नाममन्त्रयोः।

पुनर्मन्त्रत्रैविध्यकथनम्

पुंस्त्रीनपुंसकाः प्रोक्ता मनवस्त्रिविधा बुधैः॥ ९२॥

फलमाह – स्वेति । स्वकुलेऽभीप्सितासिद्धिरित्यर्थः ॥ ९०–९१ ॥ पुनर्मन्त्रत्रैविध्यमाह – पुंस्त्रीति ॥ ९२–९३ ॥

वाले वर्ण उदासीन कहे गये हैं ॥ ८४-८५ ॥

तेज तत्त्व वाले वर्णों के वायुतत्त्व वाले वर्ण मित्र, जल तत्त्व वाले वर्ण शत्रु तथा पृथ्वी तत्त्व वाले वर्ण उदासीन हैं । वायुतत्त्व वाले वर्णों के तेज तत्त्व वाले वर्ण मित्र, पृथ्वी तत्त्व वाले वर्ण शत्रु तथा जल तत्त्व वाले वर्ण उदासीन कहे गये हैं । पृथ्वी आदि चारों तत्त्वो के आकाश तत्त्व वाले वर्ण सदैव मित्र होते हैं । मन्त्र एवं साधक के नाम के जो आद्य अक्षर हों उनसे स्वकुल आदि का विचार दीक्षा देने वाले गुरु को करना चाहिए ॥ ८६-८९ ॥

अपने कुल का मन्त्र ग्रहण करने से अभीष्ट सिद्धि होती है और मित्र कुल के मन्त्र लेने से भी सिद्धि होती है । शत्रुकुल का मन्त्र लेने से रोग एवं मृत्यु होती है । किन्तु उदासीन कुल का मन्त्र लेने से कुछ भी नहीं होता । अतः उदासीन एवं शत्रु कुल के मन्त्रों को दूर से ही परित्यक्त कर देना चाहिए ॥ ९०-९१ ॥

इष्ट सिद्धि चाहने वाले व्यक्ति को स्वकुल एवं मित्रकुल के ही मन्त्र ग्रहण करना चाहिए । इस सम्बन्ध में विशेष यह है कि नाम एवं मन्त्र का एक नक्षत्र होने पर भी स्वकुल मन्त्र कहा जाता है ॥ ९१-९२ ॥

वषडन्ताः फडन्ताश्च पुमांसो मनवः स्मृता।
वौषट् स्वाहान्तगा नार्यो हुं नमोन्ता नपुंसकाः॥ ६३॥
वश्योच्चाटनरोधेषु पुमांसः सिद्धिदायकाः।
क्षुद्रकर्मरुजां नाशे स्त्रीमन्त्राः शीघ्रसिद्धिदाः॥ ६४॥
अभिचारे स्मृता क्लीबा एवं ते मनवस्त्रिधा।
नक्षत्रशोधने जन्मनक्षत्रमितरत्र तु॥ ६५॥
शोधने मन्त्रिभिर्ग्राह्यं प्रसिद्धं जन्मना मता।
दत्तः संशोधितो मन्त्रो भवेच्छिष्येष्टसिद्धये॥ ६६॥

मन्त्रदोषशांत्यर्थ मन्त्रस्य संस्कारदशककथनम्

छिन्नत्वादिकदोषाऽयं पञ्चाशन्मन्त्रसंस्थिताः।
तैर्दोषैः सकला व्याप्ता मनवः सप्तकोटयः॥ ६७॥
अतस्तद्दोषशान्त्यर्थं संस्कारदशकं चरेत्।
भूर्जपत्रे लिखेत् सम्यक्त्रिकोणं रोचनादिभिः॥ ६८॥

तेषां विनियोगमाह – **वश्योच्चाटनेति** ॥ ६४ ॥ * ॥ ६५–६६ ॥ **छिन्नत्वादीति** छिन्नो रुद्धः शक्तिहीन इत्यादयः । पञ्चाशद् दोषास्तल्लक्षणानि च शारदातिलके द्वितीयपटले उक्तानि ग्रन्थ गौरवभयान्न लिख्यन्ते । सप्तकोटिमिता मन्त्राः सन्ति । ते सर्वेऽपि तद्दोषाक्रान्ता एव ॥ ६७ ॥ जननाख्यं **संस्कारमाह** – भूर्जपत्रे रोचनाकुंकुमचन्दनैरात्माभिमुखं त्रिकोणं कृत्वा

अब **पुरुष, स्त्री, और नपुंसक मन्त्रों** को कहते हैं -

विद्वानों ने पुरुष, स्त्री, और नपुंसक भेद से ३ प्रकार के मन्त्र कहे हैं । जिन मन्त्रों के अन्त में 'वषट्' अथवा 'फट्' हों वे पुरुष मन्त्र हैं । 'वौषट्' और 'स्वाहा' अन्त वाले मन्त्र स्त्री, तथा 'हुं' एवं 'नमः' वाले मन्त्र नपुंसक मन्त्र कहे गये हैं ॥ ६३-६४ ॥

वश्य, उच्चाटन एवं स्तम्भन में पुरुष मन्त्र, क्षुद्रकर्म एवं रोग विनाश में स्त्री मन्त्र शीघ्र सिद्धि प्रदान करते है और अभिचार प्रयोग में नपुंसक मन्त्र सिद्धिदायक कहे गये हैं । इस प्रकार मन्त्र के तीन ही भेद होते है ॥ ६४-६५ ॥

नक्षत्र शोधन में जन्म नक्षत्र का तथा अन्य शोधनों मे जन्म काल से पुकारे जाने वाले प्रसिद्ध नाम के नक्षत्र लेना चाहिए । इसी प्रकार अच्छे प्रकारों से संशोधित मन्त्र शिष्य को अभीष्ट सिद्धि प्रदान करते हैं ॥ ६५-६६ ॥

मन्त्रों के छिन्न, रुद्ध शक्तिहीनता आदि ५० दोष ('शारदातिलक' के द्वितीय पटल में) कहे गये हैं । इन दोषों से सातों करोड़ मन्त्र व्याप्त है । अतः इन

वारुणं कोणमारभ्य सप्तधा विभजेत्समम् ।
एवमीशाग्निकोणाभ्यां जायन्ते तत्र योनयः ॥ ६६ ॥
नववेदमितास्तत्र विलिखेन्मातृकां क्रमात् ।
अकारादिहकारान्तामीशादिवरुणावधि ॥ १०० ॥

मन्त्रस्य जननम्

देवीं तत्र समावाह्य पूजयेच्चन्दनादिभिः ।
ततः समुद्धरेन्मन्त्रजननं तदुदीरितम् ॥ १०१ ॥

त्रिभ्योऽपि कोणेभ्यो मध्ये कृताभिः षट्षड्रेखाभिः समाभिर्मध्ये नववेदमिता । एकोनपञ्चाशत्त्रिकोणाः कोष्ठा जायन्ते । तत्रेशानादि पश्चिमकोणान्तर्मन्त्र–मातृकां लिखित्वाऽऽवाह्य सम्पूज्य तत एकैक मन्त्रार्णमुद्धरेत् । ततः सम्मार्ज्य पत्रान्तरे लिखेदित्यर्थः । **एतज्जननम्** ॥ ६८–१०१ ॥

दोषों की शान्ति के लिए वक्ष्यमाण दश संस्कार करना चाहिए ॥ ६७-६८ ॥

विमर्श - द्रष्टव्य शारदा तिलक पटल २ ॥ ६७ ॥

(**i**) **जनन संस्कार** - भोजपत्र पर गोरोचन आदि से समत्रिभुज बनाना

जनन यन्त्रम्
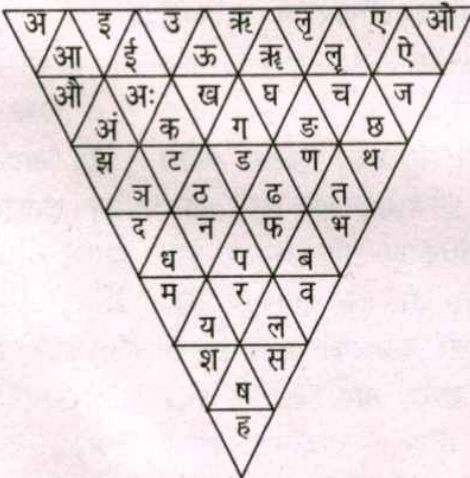
चाहिए । फिर पश्चिम के (वारुण) कोण से प्रारम्भ कर उसे ७ समान भागों में प्रविभक्त करना चाहिए । इसी प्रकार ईशान एवं आग्नेय कोणों से भी सात सात समान भाग करना चाहिए । इस प्रकार उनके मध्य में छः छः रेखाओं के खींचने पर ४६ योनियाँ बनती है ॥ ६८-६६ ॥

इस चक्र में ईशान कोण से प्रारम्भ कर पश्चिम तक अकार से हकार तक समस्त ४६ वर्णों को क्रमशः लिखकर उस पर मातृका देवी का आवाहन कर, चन्दनादि से उनकी पूजा करनी चाहिए । फिर उसी से मन्त्र के एक एक वर्णों का उद्धार करना चाहिए अर्थात् वहाँ से अन्य पत्र पर लिखे । इसे मन्त्र का जनन संस्कार कहते हैं ।

(**ii**) हंस मन्त्र से संपुटित मूल मन्त्र का एक हजार जप करना 'दीपन संस्कार' कहा जाता है । यथा - 'हंसः रामाय नमः सोहम्' ॥ १००-१०१ ॥

दीपनबोधनताडनाभिषेकविमलीकरणानि

जपो हंसपुटस्यास्य सहस्रं दीपनं स्मृतम्।
नभोवह्नीन्दुयुक्तार्धिसम्पुटस्य जपो मनोः ॥ १०२ ॥
सहस्रपञ्चकमितो बोधनं तत्स्मृतं बुधैः।
सहस्रं प्रजपेदस्त्रपुटितं ताडनं हि तत् ॥ १०३ ॥
वाग्घंसतारैर्जप्तेन सहस्रं पायसा मनुम्।
अभिषिञ्चेत वागाद्यैरभिषेकोऽयमीरितः ॥ १०४ ॥
हरिर्वह्न्यन्वितस्तारोवषडन्तोध्रुवादिकः ।
सहस्रं तत्पुटं जप्याद्विमलीकरणे मनुः ॥ १०५ ॥

दीपनमाह – **जप** इति । हंसमन्त्रेण पुटितस्य मन्त्रस्य सहस्त्रञ्जपो – **दीपनम्** । हंसः रामाय नमः सोहं इति । बोधनमाह – **नभ** इति । नभो हः वह्नी रः इन्दुर्बिन्दुस्तैर्युक्तोऽर्घी ऊः । तेन हूं । एतत्संपुटितस्य मनोः पञ्चसहस्रजपो – **बोधनम्** । हूं रामाय नमः हूं इति । फट् रामाय नमः फडिति सहस्रजपस्तु – **ताडनम्** ॥ १०२–१०३ ॥ अभिषेकमाह – **वागिति** । ऐं हं सः ॐ इति मन्त्रेण सहस्राभिमन्त्रितैर्जलैस्तेनैव मन्त्रेण ताडपत्रोपरि लिखितमन्त्रेऽभिषेचनम् – **अभिषेकः** ॥ १०४ ॥ विमलीकरणमाह – **हरिरिति** । हरिस्तः वह्न्यन्वितो रयुतः तारो प्रणव युतः – त्रों । ॐ त्रों वषट् रामाय नमः वषट् त्रों आं इति **सहस्रजपो** – **विमलीकरणम्** ॥ १०५ ॥

(iii) बोधन संस्कार -

नभ (ह), वह्नि (र्) एवं इन्दु (अनुस्वार) सहित अर्धीश (ऊ) अर्थात् 'हूं' इस मन्त्र से संपुटित मूल मन्त्र का ५ हजार जप करने से **'बोधन संस्कार'** होता है । **यथा** - 'हूं रामाय नमः हूं ॥ १०२ ॥

(iv) ताड़न संस्कार -

अस्त्र मन्त्र (फट्) से संपुटित मूल मन्त्र का एक हजार जप करने से ताड़न संस्कार होता है । **यथा** - 'फट् रामाय नमः फट्' ॥ १०३ ॥

(v) अब **अभिषेक संस्कार** कहते हैं -

वाग् (ऐं), हंस (हं सः) तथा तार (ॐ) इस मन्त्र द्वारा १ हजार बार अभिमन्त्रित जल द्वारा पुनः इसी मन्त्र से मूल मन्त्र को अभिषिक्त करना अभिषेक संस्कार कहा जाता है ॥ १०४ ॥

विमर्श - 'ऐं हंसः ॐ' मन्त्र से १ हजार बार अभिमन्त्रित किये गये जल से ताड़पत्र पर उल्लिखित मूल को अश्वत्थ पत्र से पुनः 'ऐं हंसः ॐ' मन्त्र से अभिषिक्त करने को अभिषेक संस्कार कहते है ॥ १०४ ॥

जीवनतर्पणगोपनाप्यायनानि

स्वधावषट्पुटं जप्यात् सहस्रं जीवने मनुम्।
क्षीराज्ययुतपाथोभिस्तर्पणे तर्पयेन्मनुम्॥ १०६ ॥
जपेन्मायापुटं मन्त्रं सहस्रं गोपनं हि तत्।
बालातार्तीयबीजेन गगनाद्येन सम्पुटम्॥ १०७ ॥
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रमेतदाप्यायनं मतम्।
संस्कारदशकं प्रोक्तं मनूनां दोषनाशनम्॥ १०८ ॥

जीवनमाह – **स्वधेति** । स्वधा वषट् रामाय नमः वषट् स्वधेति सहस्रजपो – **जीवनम्** । तर्पणमाह – **क्षीरेति** । दुग्धघृतोदकैस्तेनैव मन्त्रेण तस्मिन्नेव शतं तर्पयेदिति – **तर्पणम्** ॥ १०६ ॥ गोपनमाह – **जपेदिति** । ह्रीं पुटस्य सहस्रंजपो – **गोपनम्** । आप्यायनमाह – **बालेति** । बालायास्तार्तीयंसौः गगनं हः तदाद्येन । तेन हंसोः इति बीजेन संपुटस्य सहस्रं जपः – **अप्यायनम्** । एकवर्णेन संपुटत्वम् – आदावन्ते चोच्चारणमेव। एकस्य विलोमत्वाशक्तेः ॥ १०७–१०८ ॥

(vi) विमलीकरण संस्कार -

वह्नि (र्), तार (ॐ) सहित हरि (त्) अर्थात् (त्रों) इसके अन्त में 'वषट्' तथा आदि में ध्रुव (ॐ) लगाने से निष्पन्न (ॐ त्रों वषट्) इस मन्त्र से संपुटित मूल मन्त्र का एक हजार बार जप करने से मन्त्र का विमलीकरण संस्कार हो जाता है । यथा - ॐ त्रों वषट् रामाय नमः वषट् त्रों आं ॥ १०५ ॥

(vii) जीवन संस्कार के लिए स्वधा सहित वषट् मन्त्र से संपुटित मूल मन्त्र का एक हजार बार जप करने से मन्त्र का जीवन संस्कार हो जाता है । यथा - स्वधा वषट् रामाय नमः वषट् स्वधा ।

(viii) दूध घी एवं जल से मूल मन्त्र द्वारा एक सौ बार तर्पण करने से मन्त्र का **तर्पण संस्कार** हो जाता है । तर्पण संस्कार के लिए गोरोचन आदि से ताड़पत्र पर मूल मन्त्र लिखकर पश्चात् तर्पण करने का विधान है ।

(ix) गोपन संस्कार - माया बीज (ह्रीं) से संपुटित मूल मन्त्र का एक हजार बार जप करने से मन्त्र का गोपन संस्कार हो जाता है । यथा - ह्रीं रामाय नमः ह्रीं ॥ १०५-१०७ ॥

(x) बाला के तृतीय बीज मन्त्र सौ के प्रारम्भ में गगन (ह्) अर्थात् ह् सौः से संपुटित मूलमन्त्र का एक हजार बार जप करने से मन्त्र का **आप्यायन संस्कार** हो जाता है । यहाँ तक मन्त्र के छिन्नत्वादि ५० दोषों को दूर करने के लिए १० संस्कार कहे गये ॥ १०७-१०८ ॥

कलौ ये सिद्धिप्रदा मन्त्रास्तेषां कथनम्

सिद्धिप्रदा कलियुगे ये मन्त्रास्तान् वदाम्यतः।
त्र्यर्ण एकाक्षरोऽनुष्टुप् त्रिविधो नरकेसरी॥ १०६॥
एकाक्षरोऽर्जुनोऽनुष्टुब्द्विविधस्तुरगाननः।
चिन्तामणिः क्षेत्रपालो भैरवो यक्षनायकः॥ ११०॥
गोपालो गजवक्त्रश्च चेटका यक्षिणी तथा।
मातङ्गी सुन्दरी श्यामा तारा कर्णपिशाचिनी॥ १११॥
शबर्येकजटा वामा काली नीलसरस्वती।
त्रिपुरा कालरात्रिश्च कलाविष्टप्रदा इमे॥ ११२॥

विप्रादित्रिवर्णेभ्यो देया मन्त्राः

अघोरा दक्षिणामूर्तिरुमामहेश्वरो मनुः।
हयग्रीवो वराहश्च लक्ष्मीनारायणस्तथा॥ ११३॥

सिद्धमन्त्रानाह – **त्र्यर्ण** इति । एकवर्णादिस्त्रिविधो नरसिंहः ॥ १०६ ॥ एकार्णे द्विविधो हयग्रीवः । चिन्तामणिः क्ष्म्र्यों इति ॥ ११०–११२ ॥ विप्रक्षत्रियविड्भ्यो देयान्मन्त्रानाह – **अघोरेति** । उमामहेश्वरः ॐ ह्रीं ह्रौं नमः शिवायेत्यादि ॥ ११३–११४ ॥

अब **कलियुग में सिद्धिप्रद मन्त्रों का आख्यान** करते हैं -

नृसिंह का त्र्यक्षर, एकाक्षर, एवं अनुष्टुप् मन्त्र, (कार्तवीर्य) अर्जुन के एकाक्षर और अनुष्टुप् दो मन्त्र, हयग्रीव मन्त्र, चिन्तामणि मन्त्र, क्षेत्रपाल, भैरव यक्षराज (कुबेर), गोपाल, गणपति, चेटकायक्षिणी, मातंगी सुन्दरी, श्यामा, तारा, कर्ण पिशाचिनी, शबरी, एकजटा, वामाकाली, नीलसरस्वती, त्रिपुरा और कालरात्रि के मन्त्र कलियुग में अभीष्टफलदायक माने गये है ॥ ११०-११२ ॥

विमर्श - नृसिंह का एकाक्षर मन्त्र - क्ष्रौं । **अक्षर मन्त्र** - ह्रीं क्ष्रौं ह्रीं । **नृसिंह का अनुष्टुप् मन्त्र** - उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंह भीषणं भद्रं मृत्युं मृत्युं नमाम्यहम् । **कार्तवीर्यार्जुन का एकाक्षर मन्त्र** - फ्रों । **कार्तवीर्यार्जुन का अनुष्टप् मन्त्र** - कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान् । तस्य स्मरणमात्रेण गतं नष्टं च लभ्यते । **हयग्रीव का एकाक्षर मन्त्र** - स्हूं । **हयग्रीव का अनुष्टुप् मन्त्र** - उद्गिरद् प्रणवोद्गीथ सर्ववागीश्वरेश्वर । सर्ववेदमयाचिन्तय सर्वं बोधय बोधय । **चिन्तामणि मन्त्र** - क्ष्म्र्यों ॥ ११०-११२ ॥

विप्रादि त्रिवर्णों का दीक्षोचित मन्त्र - अघोर, दक्षिणामूर्ति, उमामहेश्वर, (ॐ ह्रीं ह्रौं नमः शिवाय) हयग्रीव, वराह, लक्ष्मीनारायण मन्त्र, प्रणवादि ४ वर्ण वाले

प्रणवाद्याश्चतुर्वर्णा वह्नेर्मन्त्रास्तथा रवेः ।
प्रणवाद्यो गणपतिर्हरिद्रागणनायकः ॥ ११४ ॥
सौरोष्टाक्षरमन्त्रश्च तथा रामषडक्षरः ।
मन्त्रराजो ध्रुवादिश्च प्रणवो वैदिको मनुः ॥ ११५ ॥
वर्णत्रयाय दातव्या एते शूद्रायनो बुधैः ।

विप्रक्षत्रियेभ्यो देया मन्त्राः

सुदर्शनं पाशुपतमाग्नेयास्त्रं नृकेसरी ॥ ११६ ॥
वर्णद्वयाय दातव्या नान्यवर्णे कदाचन ।

वर्णचतुष्टयाय देया मन्त्राः

छिन्नमस्ता च मातङ्गी त्रिपुरा कालिका शिवः ॥ ११७ ॥
लघुश्यामा कालरात्रिर्गोपालो जानकीपतिः ।
उग्रतारा भैरवश्च देया वर्णचतुष्टये ॥ ११८ ॥
मृगीदृशां विशेषेण मन्त्रा एते सुसिद्धिदाः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा नार्योधिकारिणः ॥ ११६ ॥
श्रद्धावन्तो देवगुरुद्विजपूजासु सर्वथा ।

मन्त्रराजो नरसिंहः ॥ ११५ ॥ विप्रक्षत्रदेयानाह – **सुदर्शनमिति** ॥ ११६ ॥ वर्णचतुष्टयदेयान् मन्त्रानाह – **छिन्नमस्तेति** ॥ ११७ ॥ * ॥ ११८–११६ ॥ बीजेषु विशेषमाह – **मायामिति** । मायाकामश्रीवाग्बीजानि मुखजन्मने विप्राय ॥ १२० ॥

अग्नि मन्त्र, सूर्य के मन्त्र, प्रणव सहित गणपति एवं हरिद्रा गणपति, अष्टाक्षर सूर्य मन्त्र, षडक्षर राम मन्त्र, प्रणवादि मन्त्रराज नृसिंह मन्त्र, प्रणव तथा वैदिक मन्त्र ये सभी मन्त्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन त्रैवर्णिकों को ही देना चाहिए शूद्रों को नहीं ॥ ११३-११५ ॥

सुदर्शन, पाशुपत, आग्नेयास्त्र और नृसिंह के मन्त्र ब्राह्मण और क्षत्रिय केवल दो वर्णों को ही देना चाहिए । अन्य वर्णों को कभी नहीं देना चाहिए ॥ ११६-११७ ॥

चारों वर्णों के लिए देय मन्त्र -

छिन्नमस्ता, मातंगी, त्रिपुरा, कालिका, शिव, लघुश्यामा, कालरात्रि, गोपाज, जानकीपति राम, उग्रतारा और भैरव के मन्त्र चारों वर्णों को देना चाहिए । स्त्रियों के लिए ये मन्त्र विशेषरूपेण सिद्धिदायक कहे गये हैं ॥ ११७-११८ ॥

देवता, गुरु तथा द्विजपूजा में श्रद्धावान् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और

वर्णानुक्रमेण बीजाक्षरदानकथनम्

मायां कामं श्रियं वाचं प्रदद्यान्मुखजन्मने ॥ १२० ॥
मायामृतेबाहुजेभ्य ऊरुजेभ्यः श्रियं गिरम्।
वाणीबीजं तु शूद्रेभ्योऽन्येभ्यो वर्मवषण्नमः ॥ १२१ ॥

अथ साधारणहोमद्रव्यकथनम्

सर्वसाधारणमथ होमद्रव्यमिहोच्यते।
फलैर्हुतैः सुखावाप्तिः पालाशैरिष्टसिद्धये ॥ १२२ ॥
हयमारैः स्त्रियो वश्या गुडूच्या रोमसंक्षयः।
दूर्वया बुद्धिवृद्धिः स्याद् गुडेन जनवश्यता ॥ १२३ ॥
बिल्वपत्रैर्घृतैः पद्मैः पाटलैश्चम्पकैः श्रियः।
सिद्धार्थैर्मल्लिकाभिश्च कीर्तयेज्जातिभिर्गिरः ॥ १२४ ॥

कामश्री वाचो बाहुजेभ्यः क्षत्रियेभ्यः । श्रीवाचौ ऊरुजेभ्यो विड्भ्यः । वाक् शूद्राय । अन्येभ्यः प्रतिलोमानुलोमजेभ्यो वर्मादयः ॥ १२१–१२३ ॥ हयमारैः करवीरैः ॥ १२३ ॥

जातिभिर्जातिपुष्पैर्होमेन गिरो वाचःसिद्धिः ॥ १२४ ॥

स्त्रियाँ ये सभी अधिकारिणी है ॥ ११६-१२० ॥

अब **विविध वर्णों के लिए देय बीज मन्त्र** कहते हैं -

माया (ह्रीं), काम (क्लीं), श्री (श्रीं) तथा वाक् (ऐं) बीज ब्राह्मणों को ही देने का विधान है। माया बीज (ह्रीं) को छोड़कर शेष तीन बीज (क्लीं, श्रीं और ऐं) - ये क्षत्रियों को तथा श्रीं एवं ऐं बीज वैश्यों को, वाग् बीज (ऐं) शूद्रों को तथा वर्म (हुं), वषट् और 'नमः' अन्यों (प्रतिलोमज अनुलोमज वर्णों) को देना चाहिए ॥ १२०-१२१ ॥

अब **सर्वसाधारण कार्यों में विहित होम द्रव्यों** को कहता हूँ -

फलों के होम से सुख प्राप्ति, पलाश के होम से इष्टसिद्धि तथा कनेर के होम से स्त्रियाँ वशीभूत हो जाती हैं। गुडूची (गुरूच) के होम से रोगों का नाश, दूर्वा के होम से बुद्धि की वृद्धि तथा गुड़ के होम से सामान्य जन वश में हो जाते है ॥ १२२-१२३ ॥

बिल्वपत्र, घृत, कमल, गुलाब तथा चम्पा के फूलों का होम करने से लक्ष्मी मिलती है । सिद्धार्थ (सफेद सरसों) तथा चमेली के होम से कीर्ति बढ़ती है । जाति के पुष्पों के होम से वाक्सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १२४ ॥

व्रीहिभिश्च यवैः प्लक्षोदुम्बराश्वत्थजैधसा।
तिलैस्त्रिमधुरैरिष्टाः सम्पदः स्युर्नृणा हुतैः ॥ १२५ ॥
किंशुकैः कासमर्दैश्च कृतमालैश्च पाटलैः।
विप्रादयः क्रमाद्वश्याः सौभाग्यं गन्धवस्तुभिः ॥ १२६ ॥
कोद्रवैर्व्याधयोरीणामुन्मत्तत्वं बिभीतकैः।
कलापैः साध्वसोत्पत्तिर्माषैस्तेषां तु मूकता ॥ १२७ ॥
समिद्भिः शाल्मलैर्नाशो रिपूणामचिराद् भवेत्।
किं भूरिणा ददातीष्टं देवता समुपासिता ॥ १२८ ॥
पुरश्चरण एकस्मिन्कृते जन्मान्तराघतः।
मन्त्रो यदि न सिद्धः स्यात्तदा तत्पुनराचरेत् ॥ १२९ ॥

ग्रहणादौ संक्षेपपुरश्चरणप्रकारः

यद्वा समुद्रगामिन्यां नद्यामिन्दुरविग्रहे।

प्लक्षादिजातेन एधसा समिद्भिः ॥ १२५ ॥ किंशुकादिभिर्हुतैः क्रमाद्विप्रादयो वश्याः । कृतमालो राजवृक्षः । गन्धवस्तुभिः कर्पूरादिभिः ॥ १२६ ॥ कलापैर्मयूरपिच्छस्तेषामरीणां भयोत्पत्तिः ॥ १२७–१२८ ॥

जन्मान्तरोपार्जित पापबाहुल्यादेकपुरश्चरणे कृते यदीष्टसिद्धिर्न भवेत्तर्हि पुनः पुरश्चरणं कुर्यात् ॥ १२९ ॥

व्रीहि (धान), जौ, प्लक्ष (पाकर), उदुम्बर (गूलर) और पीपल की समिधा तथा त्रिमधु (शर्करा, घृत, मधु) सहित तिलों के होम से अभीष्ट संपत्ति प्राप्त होती है ॥ १२५ ॥

पलाश, कालमर्द, (लिसोड़ा), कृतमाल, (राजवृक्ष) तथा गुलाब के होम से क्रमशः ब्राह्मण आदि वर्ण वशीभूत हो जाते हैं । कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्यों के होम से सौभाग्य समृद्धि होती है ॥ १२६ ॥

कोदों के होम से शत्रुओं को व्याधि तथा बहेड़ा के होम से शत्रुओं को पागलपन का रोग, मोर के पंखों के होम से शत्रुओं को भय, उड़द के होम से शत्रुओं को मूकता, शाल्मली समिधाओं के होम से शत्रुओं का शीघ्र विनाश होता है ॥ १२७-१२८ ॥

विशेष क्या कहें विधि पूर्वक उपासना से इष्टदेव अभीष्ट फल प्रदान करते हैं ॥ १२८ ॥

यदि पूर्व जन्म के प्रतिबन्धक पापों से एक बार पुरश्चरण करने पर मन्त्र सिद्ध न हों तो दूसरी बार भी पुरश्चरण करना चाहिए ॥ १२९ ॥

स्पर्शान्मोक्षान्तमाजप्य जुहुयात्तद्दशांशतः ॥ १३० ॥
विप्रान्सम्भोज्य नानान्नैर्मन्त्राणां सिद्धिमाप्नुयात् ।
शश्वज्जपपरस्यापि सिध्यन्ति मनवोऽचिरात् ॥ १३१ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ मन्त्रशोधनं नाम चतुर्विंशस्तरङ्गः ॥ २४ ॥

संक्षेपपुरश्चरणप्रकारमाह – **यद्वेति**। समुद्रगामिन्यां गङ्गादिकायाम् । विप्रान् संभोज्य होमसमानसंख्यानेवेत्यर्थः । तद्दशांशत इत्युभयत्रापि संबन्धात्। तद्दशांशतो जपदशांशेन च जुहुयात् । विप्रान् संभोज्य च सिद्धिमवाप्नुयादिति सम्बन्धः ॥ १३०–१३१ ॥

॥ इति श्री मन्ममहीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां 'नौकायां' मन्त्रशोधनं नाम चतुर्विंशस्तरङ्गः ॥ २४ ॥

अब **संक्षिप्त पुरश्चरण विधि** कहते हैं -

चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण के समय समुद्रगामिनी गंगा आदि नदियों के जल में खड़ा होकर स्पर्शकाल से मोक्षकाल पर्यन्त जप कर उसके दशांश का होम तथा होम के दशांश संख्या में ब्राह्मणों को विविध प्रकार का भोजन कराने से मन्त्र सिद्धि हो जाती है । निरन्तर जप करने वाले साधकों को शीघ्रातिशीघ्र मन्त्र सिद्ध हो जाते है ॥ १३०-१३१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के चतुर्विंश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशः तरङ्गः

शान्त्यादिषट्कर्मणामुपक्रमः

कर्माणि षडथो वक्ष्ये सिद्धिदानि प्रयोगतः ।
शान्तिर्वश्यं स्तम्भनं च द्वेषमुच्चाटमारणे ॥ १ ॥
उक्तानीमानि कर्माणि शान्तीरोगादिनाशनम् ।
वश्यं वचनकारित्वं स्तम्भो वृत्तिनिरोधनम् ॥ २ ॥
द्वेषोऽप्रीतिः प्रीतिमतोरुच्चाटः स्थानतच्युतिः ।
मारणं प्राणहरणमिति षट्कर्मलक्षणम् ॥ ३ ॥

कर्मणां देवताद्येकोनविंशतिपदार्थकथनम्

देवतादेवतावर्णा ऋतुदिग्दिवसासनम् ।
विन्यासामण्डलं मुद्राक्षरं भूतोदयः समित् ॥ ४ ॥

---

* नौका *

षट्कर्माणि वक्तुमुपक्रमते – **कर्माणीति** । तान्याह – **शान्तिरिति** ॥ १ ॥ लक्षणमाह – **शान्ति रोगादिनाशनमिति** । देवताद्येकोनविंशतिपदार्थान् । प्रतिकर्मभिन्नान् यथा – स्वं ज्ञात्वा षट्कर्मणि कुर्यादित्याह – **देवतादेवता– वर्णा** इत्यादिना ॥ २–५ ॥

---

* अरित्र *

अब **प्रयोग द्वारा सिद्धि प्रदान करने वाले षट्कर्मों** को कहता हूँ -

१. शान्ति, २. वश्य, ३. स्तम्भन, ४. विद्वेषण ५. उच्चाटन और ६. मारण - ये तन्त्र शास्त्र में **षट्कर्म** कहे गए हैं ॥ १ ॥

रोगादिनाश के उपाय को **शान्ति** कहते हैं । आज्ञाकारिता **वश्यकर्म** हैं । वृत्तियों का सर्वथा निरोध **स्तम्भन** है । परस्पर प्रीतिकारी मित्रों में विरोध उत्पन्न करना **विद्वेषण** है . । स्थान से नीचे गिरा देना **उच्चाटन** है, तथा प्राणवियोगानुकूल कर्म **मारण** है । षट्कर्मों के यही लक्षण है ॥ २ -३ ॥

अब **षट्कर्मों में ज्ञेय १६ पदार्थों को** कहते हैं -

१. देवता, २. देवताओं के वर्ण, ३. ऋतु, ४. दिशा, ५. दिन, ६.

मालाग्निर्लेखनं द्रव्यं कुण्डस्रुक्स्रुवलेखनीः ।
षट्कर्माणि प्रयुञ्जीत ज्ञात्वैतानि यथायथम् ॥ ५ ॥

देवतास्तासां वर्णा ऋतवो दिशश्च

रतिर्वाणीरमाज्येष्ठादुर्गाकाली च देवता ।
सितारुणहरिद्राभमिश्रश्यामलधूसराः ॥ ६ ॥
प्रपूजयेत कर्मादौ स्ववर्णैः कुसुमैः क्रमात् ।
ऋतुषट्कं वसन्ताद्यमहोरात्रं भवेत् क्रमात् ॥ ७ ॥
एकैकस्य ऋतोर्मानं घटिकादशकं मतम् ।
हेमन्तं च वसन्ताख्यं शिशिरं ग्रीष्मतो यदो ॥ ८ ॥
शरदं कर्मणां षट्के योजयेत् क्रमतः सुधीः ।
शिवसोमेन्द्रनिर्ऋतिपवनाग्निदिशः क्रमात् ॥ ९ ॥

उद्देशक्रमेणादौ देवता आह – **रतिरिति** । शान्त्यादिकर्मारम्भे क्रमाद्रत्यादिपूजा । देवतावर्णानाह – **सितेति** । रतिः सिता वाणी अरुणेत्यादि० ॥ ६ ॥ स्ववर्णैः सितादिवर्णैः । ऋतूनाह – **ऋतुषट्कमिति**। शान्त्यादौ वसन्तादीन्युञ्जीत। प्रत्यहं सूर्योदयान्नाडीदशकं वसन्तः तदग्रिमं नाडी–दशकं शिशिर इत्यादि० ॥ ७–८ ॥ दिश आह – **शिवेति**। शिवादिगैशानी ॥ ९ ॥

आसन, ७. विन्यास, ८. मण्डल, ९. मुद्रा, १०. अक्षर, ११. भूतोदय १२. समिधायें १३. माला, १४. अग्नि, १५. लेखनद्रव्य, १६. कुण्ड, १७. स्रुक्, १८. स्रुवा, तथा १९. लेखनी इन पदार्थों को भलीभाँति जानकारी कर षट्कर्मों में इनका प्रयोग करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

अब क्रम प्राप्त (i) **देवताओं** और उनके (ii) **वर्णों** को कहते हैं -

१. रति, २. वाणी, ३. रमा, ४. ज्येष्ठा, ५. दुर्गा, एवं ६. काली यथाक्रम शान्ति आदि षट्कर्मों के देवता कहे गए हैं । १. श्वेत, २. अरुण, ३. हल्दी जैसा पीला, ४. मिश्रित, ५. श्याम (काला) एवं ६. धूसरित ये उक्त देवताओं के वर्ण हैं । प्रत्येक कर्म के आरम्भ में कर्म के देवता के अनुकूल पुष्पों से उनका पूजन करना चाहिए ॥ ६-७ ॥

(iii) एक अहोरात्र में प्रतिदिन वसन्तादि ६ **ऋतुयें** होती हैं । इनमें एक - एक ऋतु का मान १० - १० घटी माना गया है । १. हेमन्त, २. वसन्त, ३. शिशिर, ४. ग्रीष्म, ५. वर्षा और ६. शरद् इन छः ऋतुओं का साधक को शान्ति आदि षट्कर्मों में उपयोग करना चाहिए । प्रतिदिन सूर्योदय से १० घटी (४ घण्टे) वसन्त, उसके आगे दश घटी शिशिर

तत्तत्कर्माणि कुर्वीत जपन्स्तत्तद्दिशामुखः।

कर्मानुरूपदिनासनादिकथनम्

शुक्लपक्षे द्वितीया च सप्तमी पञ्चमी तथा ॥ १० ॥
तृतीयाबुधजीवाभ्यां युता शान्तिविधौ मता।
चतुर्थीनवमीषष्ठीत्रयोदशीतिथिस्तथा ॥ ११ ॥
जीवसोमयुता शस्ता वशीकरणकर्मणि।
एकादशी च दशमी नवमी चाष्टमी पुनः ॥ १२ ॥
शनैश्चरसितोपेता प्रोक्ता विद्वेषकर्मणि।
कृष्णे चतुर्दश्यष्टम्यौ भानुसूनुयुते यदि ॥ १३ ॥
उच्चाटनाख्यं कर्मात्र कर्तव्यं फलसिद्धये।
भूताष्टम्यौ कृष्णगते अमावास्या तदन्तगा ॥ १४ ॥
भानुमन्दकुजोपेताः स्तम्भमारणयोः शुभाः।

दिवसानाह – **शुक्लपक्षेति** ॥ १०–१३ ॥ तदन्तगाशुक्लप्रतिपत् ॥ १४ ॥ आसनान्याह – **पद्ममिति** । पद्मस्वस्तिको उक्ते । विकटलक्षण यथा – (जानुजंघान्तराले तु भुजयुग्मं प्रकल्पयेत् । विकटायसनमेतत् स्यात्) इति । कुक्कुटासन यथा – उपविश्योत्केटासने ।

इत्यादि क्रम समझना चाहिए ॥ ७-६ ॥

(iv) **दिशाएं** - ईशान-उत्तर-पूर्व-निर्ऋति वायव्य और आग्नेय ये शान्ति आदि कर्मों के लिए दिशायें कही गई हैं । अतः शान्ति आदि कर्मों के लिए उन उन दिशाओं की ओर मुख कर जपादि कार्य करना चाहिए ॥ ६-१० ॥

(v) अब **षट्कर्मों में क्रियमाण तिथि एवं वार का निर्देश** करते हैं

शुक्ल पक्ष की द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी एवं सप्तमी तिथि को बुधवार बृहस्पतिवार आये तो **शान्तिकर्म** करना चाहिए । शुक्लपक्ष की चतुर्थी, षष्ठी, नवमी एवं त्रयोदशी को सोमवार बृहस्पतिवार आने पर **वशीकरण** कर्म प्रशस्त होता है ॥ १०-१२ ॥

विद्वेषण में एकादशी, दशमी, नवमी और अष्टमी तिथि को शुक्र या शनिवार का दिन हो तो शुभावह कहा गया है ॥ १२-१३ ॥

यदि कृष्णपक्ष की अष्टमी एवं चतुर्दशी को शनिवार हो तो फल सिद्धि के लिए **उच्चाटन** कर्म करना चाहिए । कृष्णपक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी एवं अमावस्या तथा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को रवि, मङ्गल, शनिवार, का दिन हो तो **स्तम्भन** और **मारण** कर्म सिद्ध हो जाता है ॥ १३-१५ ॥

पद्मं स्वस्तिकविकटे कुक्कुटं वज्रभद्रके ॥ १५ ॥
शान्त्यादिषु प्रकुर्वीत क्रमादासनमुत्तमम् ।
गोखड्गजफेरूणां मेषीमहिषयोस्तथा ॥ १६ ॥
कृत्तौ निवेश्य कुर्वीत जपं शान्त्यादिकर्मणि ।
आसनान्येव संकीर्त्य विन्यासः प्रोच्यतेऽधुना ॥ १७ ॥

कृत्वोत्कटासनं पूर्वं समपादद्वयं ततः ।
अन्तर्जानुकरं द्वंद्वं कुक्कुटासनमीरितम् ॥ इति ॥
ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्येज्जान्वोः प्रत्यङ्मुखांगुली ॥
करौ निदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम् ॥ इति ॥
सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्येद् गुल्फयुग्मं सुनिश्चलम् ॥
वृषणाधः पादपार्ष्णी पाणिभ्यां परिबन्धयेत् ॥
भद्रासनं समुद्दिष्टं योगिभिः पूजितं परम् ॥ इतिचान्ये बोध्ये ॥ १५ ॥

शारीरमासनमुक्त्वोपवेशातार्थमासनमाह – **गोखड्गेति** । फेरुः सृगालः । गवादीनां कृत्तौ चर्मण्युपविश्य शान्त्यादि विधेयम् ॥ १६–१७ ॥

(vi) शान्ति आदि षट्कर्मों में क्रमशः पद्मासन, स्वस्तिकासन, विकटासन, कुक्कुटासन, वज्रासन एवं भद्रासन का उपयोग करना चाहिए । गाय, गैंडा, हाथी, सियार, भेड़ एवं भैंसे के चमड़े के आसन पर बैठ कर शान्ति आदि षट्कर्मों में जपादि कार्य करना चाहिए ॥ १५-१७ ॥

विमर्श - पद्मासन का लक्षण - दोनों ऊरू के ऊपर दोनों पादतल को स्थापित कर व्युत्क्रम पूर्वक (हाथों को उलट कर) दोनों हाथों से दोनों हाथ के अंगूठे को बींध लेने का नाम पद्मासन कहा गया है ।

स्वस्तिकासन का लक्षण - पैर के दोनों जानु और दोनों ऊरू के बीच दोनों पादतल को अर्थात् दक्षिण पाद के जानु और ऊरू के मध्य वाम पादतल एवं वामपाद के जानु और ऊरू के मध्य दक्षिण पादतल को स्थापित कर शरीर को सीधे कर बैठने का नाम स्वस्तिकासन है ।

विकटासन का लक्षण -जानु और जंघाओं के बीच में दोनों हाथों को जब लाया जाए तो अभिचार प्रयोग में इसे विकटासन कहते हैं ।

कुक्कुटासन का लक्षण - पहले उत्कटासन करके फिर दोनों पैरों को एक साथ मिलावे । दोनों घुटनों के मध्य दोनों भुजाओं को रखना कुक्कुटासन कहा गया है ।

वज्रासन का लक्षण - पैर के परस्पर जानु प्रदेश पर एक दूसरे को

विन्यासकथनम्

ग्रन्थनं च विदर्भाख्यः सम्पुटो रोधनं तथा ।
योगः पल्लव एते षड्विन्यासाः कर्मसु स्मृताः ॥ १८ ॥
प्रत्येकमेषां षण्णां तु लक्षणं प्रणिगद्यते ।
एको मन्त्रस्य वर्णः स्यात्ततो नामाक्षरं पुनः ॥ १९ ॥
मन्त्रार्णो नामवर्णश्चेत्येवं ग्रन्थनमीरितम् ।
आदौ मन्त्राक्षरद्वन्द्वमेकं नामाक्षरं ततः ॥ २० ॥
एवं पुनः पुनः प्रोक्तो विदर्भो मन्त्रवित्तमैः ।
मन्त्रमादौ समुच्चार्य ततो नामाखिलं पठेत् ॥ २१ ॥

विन्यासानाह – **ग्रन्थनमिति** ॥ १८ ॥ ग्रन्थनलक्षणमाह – **एक** इति ॥ १९ ॥ विदर्भलक्षणमाह – **आदाविति** । ग्रन्थनविदर्भयोर्मन्त्रनामवर्णलेखनेऽन्यतर–समाप्तौ पुनर्लेखनम् ॥ २०॥ सम्पुटलक्षणमाह – **मन्त्रमिति** ॥ २१॥

स्थापित् करे तथा हाथ की अंगुलियों को सीधे ऊपर की ओर उठाए रखे तो इस प्रकार के आसन को वज्रासन कहते हैं ।

भद्रासन का लक्षण - सीवनी (गुदा और लिंग के बीचोबीच ऊपर जाने वाली एक रेखा जैसी पतली नाड़ी है) के दोनों तरफ दोनों पैर के गुल्फों को अर्थात् वामपार्श्व में दक्षिणपाद के गुल्फ को एवं दक्षिण पार्श्व में वामपाद के गुल्फ को निश्चल रूप से स्थापित कर वृषण (अण्डकोश) के नीचे दोनों पैर की घुट्टी अर्थात् वृषण के नीचे दाहिनी ओर वामपाद की घुट्टी तथा बाँई ओर दक्षिण पाद की घुट्टी स्थापित कर पूर्ववत् दोनों हाथों से बींध लेने से भद्रासन हो जाता है ॥ १५-१७ ॥

(vii) इस प्रकार आसनों को कह कर अब **विन्यास** कहता हूँ -

शान्ति आदि ६ कर्मों में क्रमशः १. ग्रन्थन, २. विदर्भ, ३. सम्पुट, ४. रोधन, ५. योग और ६. पल्लव ये ६ विन्यास कहे गए हैं । इन छहों को क्रमशः कहता हूँ ॥ १७-१९ ॥

१. मन्त्र का एक अक्षर उसके बाद नाम का एक अक्षर फिर मन्त्र का एक अक्षर तदनन्तर नाम का एक अक्षर इस प्रकार मन्त्र और नाम के अक्षरों का ग्रन्थन करना '**ग्रन्थन विन्यास**' है ।

२. प्रारम्भ में मन्त्र के दो अक्षर उसके बाद नाम का एक अक्षर इस प्रकार मन्त्र और नाम के अक्षरों के बारम्बार विन्यास को मन्त्र शास्त्रों को जानने वाले '**विदर्भ विन्यास**' कहते हैं ॥ १९-२१ ॥

३. पहले समग्र मन्त्र का उच्चारण, तदनन्तर समग्र नामाक्षरों का उच्चारण

अन्ते व्युत्क्रमतो मन्त्रमेष सम्पुटईरितः।
आदिमध्यावसानेषु नाम्नो मन्त्रस्तु रोधनम्॥ २२॥
नामान्ते तु मनुर्योगो मन्त्रान्ते नामपल्लवः।

जलादिमण्डलकथनम्

अर्द्धचन्द्रनिभं पार्श्वद्वये पद्मद्वयाङ्कितम्॥ २३॥
जलस्य मण्डलं प्रोक्तं प्रशस्तं शान्तिकर्मणि।
त्रिकोणं स्वस्तिकोपेतं वश्ये वह्नेस्तु मण्डलम्॥ २४॥
चतुरस्त्रं वज्रयुक्तं स्तम्भे भूमेस्तु मण्डलम्।

रोधनमाह – **आदीति**॥ २२॥ योगमाह – **नामान्त** इति । पल्लवमाह – **मन्त्रान्त** इति । मण्डलमाह – **अर्द्धचन्द्रेति** ॥ २३–२४ ॥ तद्वृतं बिन्दु षट्कांकितं वायुमण्डलम् । मुद्रा आह – **सरोरुहमिति** ।

सरोरुहं **पद्ममुद्रा** । सा यथा –

करौ द्वौ संमुखौ कृत्वा संहतावुन्नतौ पुनः ।
अंगुलीःप्रसृतामध्येङ्गुष्ठौ पद्मस्य मुद्रिका॥ इति ।

पाशमुद्रा यथा – तर्जनीमध्यमे वामे ऊर्ध्वमुख्यौ विधाय च ।
दक्षिणे द्वे अधोमुख्यौ संमुख्यौ च परस्परम् ।
पाशमुद्राभवेदेषा मिथः संपीडने तयोः ॥ इति ।

गदामुद्रा यथा – अन्योन्याभिमुखौ कृत्वा हस्तौ तु ग्रथितावुभौ ।
अंगुष्ठौ मध्यमे तद्वत्सयुंक्तसुप्रसारिते ।

करना, फिर इसके बाद विलोम क्रम से मन्त्र बोलना '**संपुट विन्यास**' कहा जाता है ।

४. नाम के आदि, मध्य और अन्त में मन्त्र का उच्चारण करना '**रोधन विन्यास**' कहा जाता है ॥ २१-२२ ॥

५. नाम के अन्त में मन्त्र बोलना '**योग विन्यास**' होता है ।

६. मन्त्र के अन्त में नामोच्चारण को '**पल्लवविन्यास**' कहते हैं ॥ २३॥

(viii) अब मन्त्र के आठवें प्रकार, **मण्डल का लक्षण** कहते हैं -

दोनों ओर दो दो कमलों से युक्त अर्द्धचन्द्राकार चिन्ह को **जल का मण्डल** कहा गया है, यह **शान्तिकर्म** में प्रशस्त कहा गया है । त्रिकोण के भीतर स्वस्तिक का चिन्ह रखना **अग्नि का मण्डल** माना गया है, **वश्यकर्म** में इसका उपयोग प्रशस्त कहा गया है । वज्र चिन्ह से युक्त चौकोर **भूमि का मण्डल** कहा गया है जो **स्तम्भन** कार्य के लिए प्रशस्त कहा गया है ॥ २३-२५ ॥

वृत्तं दिवस्तद्विद्वेषे बिन्दुषट्काङ्कितं तु तत् ॥ २५ ॥
वायुमण्डलमुच्चाटे मारणे वह्निमण्डलम् ।

पद्मादिषण्मुद्राकथनम

सरोरुहं पाशगदे मुसलं कुलिशं त्वसिः ॥ २६ ॥
षण्मुद्राः कर्मषट्के स्युरथहोमे निगद्यते ।

गदामुद्रेयमुदितादर्शिताविघ्नहारिणी ॥ इति ।

मुसलमुद्रोक्ता । कुलिशं वज्रमुद्रा । सा यथा –

'कनिष्ठाङ्गुष्ठयुङ्मुद्रा त्रिकोणात्वशनेर्मता' ॥ इति ।

अशनेर्वज्रस्य कनिष्ठांगुष्ठयोगादन्यासां प्रसारणात् त्रिकोणेत्यर्थः ॥

असिः **खड्गमुद्रा** । सा यथा –

ऊर्ध्वस्य वामहस्तस्य तर्जन्याद्यंगुलित्रयम् ॥
प्रसार्य योजयेदन्ये मिथोङ्गुष्ठकनिष्ठिके ।
खड्गमुद्रेयमुदिता स शत्रुनिकृन्तनी । इति ॥ २५–२६ ॥

होममुद्रा आह – **मृगीति** ॥ २७ ॥

आकाश मण्डल वृत्ताकार होता है । यह **विद्वेषण** कार्य में प्रशस्त है, छह बिन्दुओं से अंकित वृत्त वायु मण्डल कहा गया है, जो **उच्चाटन** क्रिया में प्रशस्त है । **मारण** में पूर्वोक्त वह्निमण्डल का उपयोग करना चाहिए ॥ २५-२६ ॥

(ix) अब मण्डल का लक्षण कह कर **मुद्रा के विषय में** कहते हैं -

शान्ति आदि षट्कर्मों में पद्म, पाश, गदा, मुशल, वज्र एवं खड्ग मुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिए । अब आगे होम की मुद्रायें कहेगें ॥ २६-२७ ॥

विमर्श - (१) पद्ममुद्रा - दोनों हाथों को सम्मुख करके हथेलियां ऊपर करे, अंगुलियों को बन्द कर मुट्ठी बॉधे । अब दोनों ॲगूठों को अंगुलियों के ऊपर से परस्पर स्पर्श कराये । यह पद्म मुद्रा है ।

(२) पाशमुद्रा - दोनों हाथ की मुट्ठियां बांधकर बाईं तर्जनी को दाहिनी तर्जनी से बांधे । फिर दोनों तर्जनियों को अपने-अपने अंगूठों से दबाये । इसके बाद दाहिनी तर्जनी के अग्रभाग को कुछ अलग करने से पाश मुद्रा निष्पन्न होती है।

(३) गदामुद्रा - दोनों हाथों की हथेलियों को मिला कर, फिर दोनों हाथ की अंगुलियां परस्पर एक दूसरे से ग्रथित करे । इसी स्थिति में मध्यमा उॅगलियों को मिलाकर सामने की ओर फैला दे । तब यह विष्णु को सन्तुष्ट करने वाली 'गदा मुद्रा' होती है ।

मृग्यादिहोममुद्राकथनम्

मृगी हंसी सूकरीति होमे मुद्रात्रयं मतम् ॥ २७ ॥
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठयोगे मुद्रा मृगी मता।
हंसीकनिष्ठाहीनानां सर्वासां योजने मता ॥ २८ ॥
सूकरीकरसङ्कोचे मुद्रा लक्षणमीरितम्।
शान्तो वश्ये मृगी हंसी स्तम्भनादिषु सूकरी ॥ २६ ॥

कर्मानुरूपवर्णानां कथनम्

चन्द्रतोयधराकाशपवनानलवर्णकाः ।
षट्सु कर्मसु यन्त्रस्य बीजान्युक्तानि मन्त्रिभिः ॥ ३० ॥
स्वराः सठौ चन्द्रवर्णा भूतवर्णा उदीरिताः।
चन्द्रार्णहीनास्ते ग्राह्या वशीकृत्यादिकर्मणि ॥ ३१ ॥

तासां लक्षणमाह – **मध्यमेति** ॥ २८–२६ ॥ वर्णानाह – **चन्द्रेति** । शान्तौ चन्द्रवर्णा यन्त्रे बीजत्वेन लेख्याः । वशीकरणादौ जलादिवर्णः ॥ ३० ॥ चन्द्रवर्णानाह – **स्वरा** इति । षोडशस्वराः सठावेतेऽष्टादशचन्द्रवर्णाः सन्ति । तथापि वश्यादौ

---

(४) **मुशलमुद्रा** - दोनों हाथों की मुट्ठी बांधे फिर दाहिनी मुट्ठी को बायें पर रखने से मुशल मुद्रा बनती है ।

(५) **वज्रमुद्रा** - कनिष्ठा और अंगूठे को मिलाकर त्रिकोण बनाने को अशनि (वज्रमुद्रा) कहते हैं अर्थात् कनिष्ठा और अंगूठे को मिलाकर प्रसारित कर त्रिक् बनाना वज्रमुद्रा है ।

(६) **खड्गमुद्रा** - कनिष्ठिका और अनामिका उंगलियों को एक दूसरे के साथ बांधकर अंगूठों को उनसे मिलाए । शेष उंगलियों को एक साथ मिला कर फैला देने से खड्गमुद्रा निष्पन्न होती है ॥ २६-२७ ॥

मृगी, हंसी एवं सूकरी ये तीन होम की मुद्रायें हैं । मध्यमा अनामिका और अंगूठे के योग से **मृगी मुद्रा**, कनिष्ठा को छोड़ कर शेष सभी अङ्गुलियों का योग करने से **हंसी मुद्रा** और हाथ को संकुचित कर लेने से **सूकरी मुद्रा** बनती है । इस प्रकार इन तीन मुद्राओं का लक्षण कहा गया है । शान्ति कार्य में मृगी वश्य में हंसी तथा शेष स्तम्भनादि कार्यों में सूकरी मुद्रा का प्रयोग किया जाता है ॥ २७-२६ ॥

(X) **अक्षर** - शान्ति आदि षट्कर्मों में यन्त्र पर चन्द्र, जल, धरा, आकाश, पवन, और अनल वर्णो के बीजाक्षरों का क्रमशः लेखन करना चाहिए - ऐसा मन्त्र शास्त्र के विद्वानों ने कहा है ॥ ३० ॥

केचित् सवलहान्यं रमाहुश्चन्द्रादिवर्णकान् ।

जातिरूपवर्णकथनम्

शान्त्यादिकर्मसु ज्ञेया जातयः षडभूः क्रमात् ॥ ३२ ॥
नमः स्वाहा वषड् वौषट् हुं फट् षण्मन्त्रवित्तमैः ।

भूतोदयकथनम्

नासापुटद्वयाधस्ताद्यदाप्राणगतिर्भवेत् ॥ ३३ ॥
तोयोदयस्तथा ज्ञेयः शान्तिकर्मणि सिद्धिदः ।
नासादण्डाश्रितगतौ प्राणे स्तम्भे धरोदयः ॥ ३४ ॥
पुटमध्यगतौ तस्मिन्द्वेषे व्योमोदयः शुभः ।
पुटोपरिष्टादगमने प्राणे स्यात्पावकोदयः ॥ ३५ ॥

पञ्चभूतवर्णास्तु प्राक्तरंगे स्वकुलान्यकुलभेद उक्ताः । तत्र यद्यपि चन्द्रवर्णा अपि सन्ति । तथापि वश्यादौ तोयादिवर्णलेखने चन्द्रवर्णरहितानामेव जलादिवर्णानां लेखनम् ॥ ३१ ॥ केषांचिन्मते सवलीहयराः क्रमाच्चन्द्राम्बुभूनभोनिलानलवर्णाः ॥ ३२ ॥ जातिरूपान् वर्णानाह – **नम** इति । भूतोदयमाह – **नासेति** । नासाविवरयोरधस्तात् प्राणगतो जलोदयः । नासामध्यदण्डाश्रयेण गमने धरोदयः। सस्तम्भने ज्ञेयः ॥ ३३–३४ ॥ नासाविवरमध्ये प्राणगतौ व्योमोदयः । उपरि–प्राणगतौ वन्ह्युदयः ॥ ३५ ॥ तिर्यक्प्राणगतौ वायूदयः ॥ ३६ ॥

सोलह स्वर, स एवं ठ ये अठारह चन्द्र वर्ण के बीजाक्षर हैं, चन्द्रवर्ण से हीन पञ्चभूतों के अक्षर जलादि तत्वों के बीजाक्षर वश्यादि कर्मों के लिए उपयुक्त है । कुछ आचार्यो ने स व ल ह य एवं र. को क्रमशः चन्द्र जल, भूमि, आकाश और वायु एवं वह्नि का बीजाक्षर कहा है ॥ ३१ ॥

शान्ति आदि षट्कर्मों में मन्त्रशास्त्रज्ञों ने क्रमशः नमः, स्वाहा, वषट्, वौषट्, हुम् एवं फट् इन छः को जातित्वेन स्वीकार किया है ॥ ३२ ॥

(xi) अब मन्त्र के ग्यारहवें प्रकार, **भूतों का उदय** कहते हैं - जब दोनों नासापुटों के नीचे तक श्वास चलता हो तब **जलतत्व** का उदय समझना चाहिए, जो शान्ति कर्म में सिद्धिदायक होता है । नाक के मध्य में सीधे दण्ड की तरह श्वास गति होने पर **पृथ्वीतत्व** का उदय समझना चाहिए, यह स्तम्भन कार्म में सिद्धिदायक होता है । नासा छिद्रों के मध्य में श्वास की गति होने पर **आकाशतत्व** का उदय समझना चाहिए, जो विद्वेषण में सिद्धिदायक है । नासापुटों के ऊपर श्वास की गति होने पर **अग्नितत्व** का उदय समझना चाहिए ॥ ३३-३५ ॥

तदा कर्मद्वये सिद्धिर्मारणे च वशीकृतौ।
प्राणेतिर्यग्गतौ ज्ञेय उच्चाटे मारुतोदयः ॥ ३६ ॥

समित्कथनम्

दूर्वायाः समिधः शान्तौ गोघृतेन समन्विताः।
दाडिमप्रसुवो होमे वश्येजाघृतसंयुताः ॥ ३७ ॥
मेषीघृताक्ताः समिधः स्तम्भे राजतरूद्भवाः।
धत्तूरसमिधो द्वेषे अतसीतैलसंयुतः ॥ ३८ ॥
चूतजाः कटुतैलाक्ता उच्चाटनविधौ मताः।
कटुतैलयुताः शस्ता मारणे खदिरोद्भवाः ॥ ३९ ॥

मालाकथनम्

शंखजा पद्मबीजोत्था निम्बारिष्टफलोद्भवा।
प्रेतदन्तभवा वाहरदोत्था खरदन्तजा ॥ ४० ॥

समिध आह – **दूर्वाया** इति । दाडिमेति । वश्यार्थहोमे अजाघृताक्ता दाडिमसमिधः ॥ ३७ ॥ स्तम्भने मेषीघृताक्ता राजवृक्षसमिधः ॥ ३८॥ उच्चाटे सर्षपतैलाक्ता आम्रसमिधः ॥ ३९ ॥ मालामाह – **शंखजेति** । स्तम्भने निम्बफलजा। अरिष्टः फेनिलस्तत्फलजा वा माला विधेया । उच्चाटने वा हरदोत्था अश्वदन्तजा ॥ ४० ॥

ऐसे समय में मारण एवं वशीकरण दोनों कार्यों में सफलता मिलती है । श्वास की गति तिर्यक् (तिरछी) होने पर **वायुतत्व** का उदय समझना चाहिए जो उच्चाटन क्रिया में शुभावह होता है ॥ ३६ ॥

(xii) अब मन्त्र के बारहवें प्रकार, **विभिन्न समिधाओं को** कहते हैं - शान्ति कार्य में गोघृत मिश्रित दूर्वा से, वश्य में बकरी के घी से मिश्रित अनार की समिधा से, स्तम्भन में भेंड़ी का घी मिला कर अमलतास वृक्ष की समिधा से, विद्वेषण में अतसी के तेल से मिश्रित धतूरे की समिधा से, उच्चाटन में सरसों के तेल से मिश्रित आम की वृक्ष की समिधा से तथा मारण में कटुतैल मिश्रित खैर की लकड़ी की समिधा से होम करना चाहिए ॥ ३७-३९ ॥

(xiii) अब तेरहवें प्रकार में **माला की विधि** कहते हैं - शान्ति आदि षट्कर्मों में शंख की शान्ति में, कवलगट्टा की वश्य में, नीबूं की स्तम्भन में, नीम की विद्वेषण में, घोड़े के दाँत उच्चाटन में तथा गदहे के दाँत की जप माला मारण कर्म में उपयोग करना चाहिए ॥ ४० ॥

जपमालाः क्रमाज्ज्ञेयाः शान्तिमुख्येषु कर्मसु ।

मालागणनाप्रकारः

मध्यमायां स्थितां मालां ज्येष्ठेनावर्तयेत्सुधीः ॥ ४१ ॥
शान्तौ वश्ये तथा पुष्टौ भोगमोक्षार्थके जपे ।
अनामांगुष्ठयोगेन स्तम्भनादौ जपेत्सुधीः ॥ ४२ ॥
तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोगेन द्वेषोच्चाटनयोः पुनः ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठसंयोगान्मारणे प्रजपेत्सुधीः ॥ ४३ ॥

मणिसंख्याकथनम्

अष्टोत्तरशतं संख्यातदर्द्धं च तदर्द्धकम् ।
मणीनां शुभकार्ये स्यात्तिथिसंख्याभिचारके ॥ ४४ ॥

शान्त्यादिकर्मणि अग्निकथनम्

शान्तिर्वश्यं लौकिकाग्नौ स्तम्भनं वटजेऽनले ।
द्वेषः कलितरूत्पन्ने शेषे पितृवनस्थिते ॥ ४५ ॥

मालायां गणनाप्रकारमाह – **मध्यमायामिति** । ज्येष्ठेनाङ्गुष्ठेनावर्तयेत् भ्रामयेत् ॥ ४१–४३ ॥ मालामणिसंख्यामाह – **अष्टोत्तरशतमिति** । तदर्धं चतुष्पञ्चाशत् । तदर्धकं सप्तविंशतिः । एषा त्रिविधा माला शुभे कार्या । अभिचारे स्तम्भनादौ पञ्चदशमणियुक्ता माला ॥ ४४ ॥ अग्निमाह – **शान्तिरिति** । वटजे वटकाष्ठान् मथनोत्पादिते । कलितरूद्भवे बिभीतकजाते । शेषे उच्चाटन–मारणकर्मणि श्मशानवह्नौ होमः ॥ ४५ ॥

शान्ति, वश्य, पूष्टि, भोग एवं मोक्ष के कर्मों में मध्यमा में स्थित माला को अंगूठे से घुमाना चाहिए । स्तम्भनादि कार्यों के लिए बुद्धिमान साधक को अनामिका एवं अंगूठे से जप करना चाहिए । विद्वेषण एवं उच्चाटन में तर्जनी एवं अंगूठे से जप करना चाहिए तथा मारण में कनिष्ठिका एवं अंगूठे से जप करने का विधान है ॥ ४१-४३ ॥

अब प्रसङ्ग प्राप्त **माला की मणियों की गणना** कहते हैं - शुभकार्य के लिए माला में मणियों की संख्या १०८, ५४ या २७ कही गई है, किन्तु अभिचार (मारण) कर्म में मणियों की संख्या १५ कही गई है ॥ ४४ ॥

(xiv) अब **चौदहवें प्रकार वाले अग्नि के विषय में** कहते हैं -

शान्ति और वशीकरण कर्म में लौकिक अग्नि में, स्तम्भन में बरगद के काठ की बनी अग्नि में, विद्वेषण में बहेड़े की लकड़ी की अग्नि में तथा

प्रसंगात् काष्ठकथनम्

शुभे कर्मणि बिल्वार्कपलाशक्षीरवृक्षजैः।
अशुभे विषवृक्षाक्षैर्निम्बधत्तूरशेलुजैः ॥ ४६ ॥
काष्ठैः प्रदीपयेदग्निं होमकर्मणि मन्त्रवित्।

अग्निजिह्वापूजनम्

वह्नेर्जिह्वां सुप्रभाख्यां शान्तिकर्मणि पूजयेत् ॥ ४७ ॥
वश्य कार्ये हि रक्ताख्यां स्तम्भने कनकाभिधाम्।
विद्वेषे गगनां जिह्वामुच्चाटेप्यतिरक्तिकाम् ॥ ४८ ॥
कृष्णां तु मारणे चार्चेद् बहुरूपां तु सर्वतः।

विप्रभोजनसंख्याकथनम्

भोज्ये संख्याविशेषोऽपि ज्ञेयः शान्त्यादिकर्मसु ॥ ४६ ॥
शान्तौ वश्ये भोजयेत होमाद्विप्रान् दशांशतः।
उत्तमं तद्भवेत्कर्म तत्त्वांशेन तु मध्यमम् ॥ ५० ॥

वह्निप्रसंगात् काष्ठान्यप्याह – **शुभ इति** । शुभे शान्तिपुष्ट्यादौ कर्मणि बिल्वादिकाष्ठैरग्निं प्रज्वालयेत् । अशुभे स्तम्भनादौ विषवृक्षादिकाष्ठैः । विषवृक्षः कुचिला इतिप्रसिद्धः । अक्षो बिभितकः । शेलुः श्लेष्मातकः ॥ ४६ ॥ अग्निप्रसंगादेव कर्मविशेषे वह्निजिह्वापूजामाह – **वह्नेरिति** ॥ ४७ ॥ कनकाभिधा हिरण्या ॥ ४८ ॥ होमप्रसंगात् विप्रभोजनसंख्यामाह – **भोज्ये इति** ॥ ४६ ॥ शान्तिवश्ययोर्होमाद्दशांशेन द्विजानां भोजनमुत्तमम् । होमात् पञ्चविशांशेन तन्मध्यमम् ॥ ५० ॥

उच्चाटन एवं मारण के प्रयोगों में श्मशानाग्नि में होम का विधान है ॥ ४५ ॥

अग्नि प्रज्वलित करने के लिए समिधाओं के विषय में कहते हैं - शुभ कार्यों में वेल, आक, पलाश एवं दुधारु वृक्षों की समिधाओं से तथा अशुभ कर्मों में विषकृत कुचिला, बहेड़ा, नीबू, धतूरा एवं लिसोड़े की समिधाओं से मान्त्रिक को अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए ॥ ४६ ॥

अब **अग्नि जिह्वाओं का तत्तत्कर्मों में पूजन का विधान** कहते हैं - शान्ति कर्म में अग्नि की सुप्रभा संज्ञक जिह्वा का, वश्य में रक्तानामक जिह्वा का, स्तम्भन में हिरण्या नामक जिह्वा का, विद्वेषण में गगना नामक जिह्वा का, उच्चाटन में अतिरक्तिका जिह्वा का तथा मारण में कृष्णा नामक अग्नि जिह्वा और सभी जगह बहुरूपा नामक अग्निजिह्वा का पूजन करना चाहिए ॥ ४७-४६ ॥

शान्त्यादि कर्मों में ब्राह्मण भोजन के विषय में कुछ विशेषतायें हैं । शान्ति एवं

होमाच्छतांशतो विप्रभोजनं त्वधमं तु तत् ।
शान्तेर्द्विगुणितं विप्रभोजनं स्तम्भने मतम् ॥ ५१ ॥
त्रिगुणं द्वेषणोच्चाटे मारणे होमसम्मितम् ।

विप्रलक्षणम्

अतिशुद्धकुलोत्पन्नाः साङ्गवेदविदोऽमलाः ॥ ५२ ॥
सदाचाररता विप्रा भोज्या भोज्यैर्मनोहरैः ।
पूज्यास्ते देवताबुद्ध्या नमस्कार्याः पुनः पुनः ॥ ५३ ॥
सन्तोष्या मधुरैर्वाक्यैर्हिरण्यादिप्रदानतः ।
अचिराल्लभतेऽभीष्टं गृहीतायां तदाशिषि ॥ ५४ ॥
एनोभिचारकर्मोत्थं नश्यतिद्विजवाक्यतः ।

लेखनद्रव्यकथनम्

चन्दनं रोचनारात्रिर्गृहधूमश्चिताभवः ॥ ५५ ॥

शतांशेनाधमम् ॥ ५१ ॥ विप्रस्वरूपमाह – **अतिशुद्धेति** ॥ ५२ ॥ उक्तब्राह्मणभोजने अभिचारोत्थमेनः पापं नश्यति । तस्मादुत्तमा द्विजा भोज्याः ॥ ५३–५४ ॥ लेखनद्रव्यमाह–**चन्दनमिति** । रात्रिर्हरिद्रा सा स्तम्भने लेखनद्रव्यम् । अष्टविषाणि मारणे । पूर्वोक्तं (२०) यन्त्रतरंगोक्तं लेखनद्रव्यम् ।

वश्य में होम के दशांश संख्या में ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए, यह उत्तम पक्ष माना गया है ॥ ४९-५० ॥

होम की संख्या के पच्चीसवें अंश की संख्या में ब्राह्मण भोजन मध्यम तथा शतांश संख्या में ब्राह्मण भोजन अधम पक्ष कहा गया है । स्तम्भन कार्य में शान्ति की संख्या से दूने ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । इसी प्रकार विद्वेषण एवं उच्चाटन में शान्ति संख्या से तीन गुने ब्राह्मणों को तथा मारण में संख्या के तुल्य ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ॥ ५०-५१ ॥

अब **भोजनार्ह ब्राह्मणों का स्वरूप** कहते हैं -

अत्यन्त विशुद्ध कुलों में उत्पन्न साङ्गवेद के विद्वान पवित्र निर्मल अन्तःकरण वाले सदाचार परायण ब्राह्मणों को विविध प्रकार के मनोहर भोज्य पदार्थों से भोजन कराना चाहिए । उनमें देवबुद्धि रखकर पूजन करना चाहिए तथा बारम्बार उन्हे प्रणाम करना चाहिए । मधुर वाणी से तथा सुवर्णादि के दान से उन्हे सन्तुष्ट करना चाहिए । इस प्रकार के ब्राह्मणों द्वारा दिए गए आशीर्वाद के प्राप्त करने से साधक के समस्त अभिचारादि पाप नष्ट हो जाते हैं, तथा

अङ्गारोऽष्टविषाणीति शान्त्यादौ यन्त्रलेखने।
पूर्वोक्तं लेखनद्रव्यं गृह्णीयात्तदपि ध्रुवम् ॥ ५६॥

विषष्टककथनम्

पिप्पलीमरिचं शुण्ठी श्येनविष्ठा च चित्रकः।
गृहधूमोन्मत्तरसो लवणं च विषाष्टकम् ॥ ५७॥

भूर्जपत्रादिलेखनाधारकम्

शान्तौ वश्ये लिखेद् भूर्जे स्तम्भने द्वीपिचर्मणि।
खरचर्मणि विद्वेषे उच्चाटे ध्वजवाससि ॥ ५८॥
नरास्थिनि लिखेद्यन्त्रं मारणे मन्त्रवित्तमः।
ये त्वाधाराः स्मृता यन्त्रतरङ्गे तेऽपि सम्मताः ॥ ५९॥

कुण्डकथनम्

वृत्तं पद्मं चतुष्कोणं त्रिषट्कोणं दलेन्दुवत्।
तोयेशसोमशक्राणां या तु वाय्वोर्यमस्य च ॥ ६०॥

तदपि तत्तत्कामनया ग्राह्यम् ॥ ५५–५६॥ अष्टविषाण्याह – **पिप्पलीति** ॥ ५७॥ लेखनद्रव्यप्रसंगाल्लेखनाधारमाह – **शान्ताविति** ॥ ५८॥ * ॥ ५९ ॥ कुण्डान्याह – **वृत्तमिति** । शान्तौ वृत्तकुण्डं पश्चिमे । पद्माकारं वश्ये उत्तरे । स्तम्भने चतुरस्रं पूर्वे । द्वेषे त्रिकोणं नैर्ऋत्ये । उच्चाटे षट्कोणं वायव्ये । मारणेऽर्द्धचन्द्राकारं दक्षिण इत्यर्थः ॥ ६०॥

शीघ्र ही उसे मनोऽभिलषित पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है ॥ ५२-५५ ॥

(XV) अब **लेखन द्रव्य के विषय में** कहते हैं -

चन्दन, गोरोचन, हल्दी, गृहधूम, चिता का अङ्गार तथा विषाष्टक यन्त्र लेखन के द्रव्य कहे गए हैं । यन्त्र तरङ्ग (२०) में पूर्वोक्त द्रव्यादि भी तत्तत्कामनाओं में लेखन द्रव्य कहे गए हैं, वे भी ग्राह्य हैं । १. पिप्पली, २. मिर्च, ३. सोंठ, ४. बाज पक्षी की विष्टा, ५. चित्रक (अण्डी), ६. गृहधूम, ७. धतूरे का रस तथा ८. लवण - ये ८ वस्तुयें विषाष्टक कही गई हैं ॥ ५५-५७ ॥

शान्ति और वश्य कर्म में भोज पत्र पर, स्तम्भन में व्याघ्र चर्म पर, विद्वेष में गदहे की खाल पर, उच्चाटन में ध्वज वस्त्र पर, और मारण में मनुष्य की हड्डी पर, मान्त्रिक को मन्त्र लिखना चाहिए । यन्त्र तरङ्ग (२०) में विविध प्रयोगों में यन्त्र लिखने के जो जो आधार कहे गए हैं वे भी यन्त्राधार में ग्राह्य हैं ॥ ५८-५९ ॥

आशासु क्रमतः कुण्डं शान्तिमुख्येषु कर्मसु ।

स्रुकस्रुवादिकथनम्

सौवर्णौ यज्ञवृक्षोत्थौ स्रुक्स्रुबौ शान्तिवश्ययोः ॥ ६१ ॥
स्तम्भनादिषु कार्येषु स्मृतौ लोहमयौ हि तौ ।

लेखनीकथनम्

हेमजा रूप्यजा जाती सम्भवा लेखनी शुभे ॥ ६२ ॥
वश्ये दूर्वाङ्कुरोत्पन्नास्तम्भनेऽगस्त्यवृक्षजा ।
राजवृक्षभवा वा स्याद्विद्वेषे तु करञ्जजा ॥ ६३ ॥
शुभे कर्मणि रम्याहे लेखनीं रचयेत्सुधीः ।
बिभीतकोत्थितोच्चाटे मारणे तु पुमस्थिजा ॥ ६४ ॥
रिक्तातिथौ कुजदिने विष्टौ तामशुभे पुनः ।

शान्त्यादौ भक्ष्यान्नादिकथनम्

भक्ष्यं च तर्पणं द्रव्यं तत्पात्रमथ कीर्त्यते ॥ ६५ ॥

स्रुक्स्रुवावाह – **सौवर्णाविति** ॥ ६१ ॥ लेखनीमाह – **शुभे शान्तौ** ॥ ६२–६४ ॥ देवताद्येकोनविंशति वस्तूनि शान्त्यादौ निरूप्य पुनरधिकं वक्तुं प्रतिजानीते – **भक्ष्यमिति** ॥ ६५ ॥

(xvi) अब मन्त्र के १६वें प्रकार, **कुण्ड के विषय में** कहते हैं -

शान्ति आदि षट्कर्मों में क्रमशः वृत्ताकार, पद्माकार, चतुरस्त्र, त्रिकोण, षट्कोण और अर्द्धचन्द्राकार कुण्ड का निर्माण पश्चिम उत्तर-पूर्व नैर्ऋत्य वायव्य और दक्षिण दिशा में करना चाहिए ॥ ६० ॥

(xvii-xviii) **स्त्रुवा और स्त्रुची** - शान्ति में सुवर्ण की एवं वश्य में यज्ञवृक्ष की स्त्रुवा और स्त्रुची बनानी चाहिए । शेष स्तम्भनादि कार्यों में लौह की स्त्रुवा और स्त्रुची बनानी चाहिए ॥ ६१ ॥

(xix) अब मन्त्र के उन्नीसवें प्रकार, **लेखनी के विषय में** कहते हैं -

शान्ति कर्म में सोने, चांदी, अथवा चमेली की, वश्य कर्म में दूर्वा की, स्तम्भन में अगस्त्य वृक्ष की अथवा अमलतास की, विद्वेषण में करञ्ज की, उच्चाटन में बहेड़े की तथा मारण में मनुष्य की हड्डी की लेखनी से यन्त्र लिखना चाहिए । शुभ कर्म में साधक को शुभमुहूर्त में अशुभ कार्य में रिक्ता (चौथ, नवमी, चतुर्दशी) तिथियों में मङ्गलवार के दिन तथा विष्टी (भद्रा) में लेखनी का निर्माण करना चाहिए ॥ ६२-६५ ॥

शान्तौ वश्ये हविष्यान्नं स्तम्भने परमान्नकम्।
माषामुद्गाश्च विद्वेषे गोधूमाभ्रंशने स्थलात्॥ ६६॥
मसूरान्नं तथा श्यामा अजादुग्धोत्थपायसम्।
मारणे प्रोदितं भक्ष्यं मन्त्रिणां कर्मकुर्वताम्॥ ६७॥

शान्त्यादौ तर्पणजलपात्रकथनम्

शान्तौ वश्ये हरिद्राक्तं जलं तर्पण ईरितम्।
मरिचाद्यं कवोष्णं तत्स्तम्भने मारणे तथा॥ ६८॥
मेषरक्तान्वितं तोयं विद्वेषोच्चाटयोर्मतम्।
स्वर्णपात्रं तर्पणेस्याच्छान्तौ वश्ये च कर्मणि॥ ६९॥
स्तम्भने मृत्तिकापात्रं विद्वेषे खदिरोद्भवम्।
लोहनिर्मितमुच्चाटे कुक्कुडाण्डं तु मारणे॥ ७०॥

आसनप्रकारः

मृद्वासने समासीनः शान्तौ वश्ये प्रतर्पयेत्।
जानुभ्यामुत्थितः स्तम्भे द्वेषादावेकपात्स्थितः॥ ७१॥

परमान्नकं पायसम् । स्थलाद् भ्रंशने उच्चाटने॥ ६६–७२॥

अब उक्तकर्मों में **भक्ष्यपदार्थों** को, **तर्पण द्रव्यों** को तथा उपयोग में लाये जाने **योग्य पात्रों के विषय में** कहता हूँ -

शान्ति और वश्य कर्म करते समय हविष्यान्न, स्तम्भन करते समय खीर, विद्वेषण करते समय उड़द एवं मूँग, उच्चाटन करते समय गेहूँ तथा मारण करते समय मान्त्रिक को मसूर एवं काली बकरी के दूध में बने खीर का भोजन करना चाहिए ॥ ६५-६७ ॥

शान्ति कर्म में तथा वश्य कर्म में हल्दी मिला जल, स्तम्भन और मारण कर्म में मिर्च मिला कुछ गुनगुना जल तथा विद्वेषण एवं उच्चाटन में भेड के खून से कमकश्रत जल तर्पण द्रव्य कहा गया है ॥ ६८ ॥

शान्ति एवं वश्य कर्म में सोने के पात्र में, स्तम्भन में मिट्टी के पात्र में, विद्वेषण में खैर के पात्र में, उच्चाटन में लोहे के पात्र में तथा मारण में मुर्गी के अण्डे में तर्पण करना चाहिए ॥ ६९-७१ ॥

शान्ति एवं वश्य कर्म में मृदु आसन पर बैठकर तर्पण करना चाहिए । स्तम्भन में घुटनों से उठकर तथा विद्वेषण आदि में एक पैर से खड़े हो कर तर्पण करना चाहिए ॥ ७१ ॥

षट्कर्मणां विधिः प्रोक्त एवं मन्त्रज्ञतुष्टये ।
सम्यक्कृत्वा न्यासजातमात्मरक्षां विधाय च ॥ ७२ ॥

काम्यकर्मोपसंहारकथनम्

काम्यं कर्मप्रकर्तव्यमन्यथाभिभवो भवेत् ।
शुभं वाप्यशुभं वापि काम्यं कर्म करोति यः ॥ ७३ ॥
तस्यारित्वं व्रजेन्मन्त्रो न तस्मात्तत्परो भवेत् ।

काम्यकर्महेतुकथनम्

विषयासक्तचित्तानां सन्तोषाय प्रकाशितम् ॥ ७४ ॥
पूर्वाचार्योदितं काम्यं कर्मनैतद्धितावहम् ।
काम्यकर्मप्रसक्तानां तावन्मात्रं भवेत्फलम् ॥ ७५ ॥

निष्कामभजने फलकथनम्

निष्कामं भजतां देवमखिलाभीष्टसिद्धयः ।
प्रतिमन्त्रं समुदिता ये प्रयोगाः सुखाप्तये ।
तदा शक्तिं विहायैव निष्कामो देवतां भजेत् ॥ ७६ ॥

एवं काम्यं कर्म निरूप्य तत्प्रसक्तिं वारयति – **शुभं वेति** ॥ ७३ ॥ एवं चेत् किमित्युक्तं तदित्यत आह – **विषयेति** ॥ ७४ ॥ पूर्वाचार्योक्तमुक्तम् । तद्वस्तुगत्याहितं न भवति । तत्र हेतुमाह – **काम्येति** ॥ ७५ ॥ * ॥ ७६ ॥

हमने मन्त्र साधकों के सन्तोष के लिए षट्कर्मों (शान्ति, वश्य, स्तम्भन, विद्वेषण उच्चाटन और मारण) की विधि बताई है । सर्वप्रथम विधिवत् न्यास द्वारा आत्मरक्षा करने के बाद ही काम्य कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए । अन्यथा हानि और असफलता ही प्राप्त होती है ॥ ७२ ॥

जो व्यक्ति शुभ अथवा अशुभ किसी भी प्रकार का काम्य कर्म करता है मन्त्र उसका शत्रु बन जाता है । इसलिए काम्यकर्म न करे । यही उत्तम है ॥ ७३-७४ ॥

अब प्रश्न होता है कि यदि काम्य कर्म करने का निषेध है तो इतनी बड़ी विधियुक्त पुस्तक के निर्माण का क्या हेतु है ? इसका उत्तर देते हैं - विषयासक्त चित्त वालों के सन्तोष के लिए प्राचीन आचार्यों ने काम्य कम की विधि का प्रतिपादन किया है **किन्तु यह हितकारी नहीं है** । काम्य कर्म वालों के लिए केवल कामना सिद्धि मात्र फल की प्राप्ति होती है ॥ ७४-७५ ॥

किन्तु निष्काम भाव से देवताओं की उपासना करने वालों को सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है । केवल सुख प्राप्ति के लिए प्रत्येक मन्त्रों के जितने

वेदोक्तकर्मकरणस्योत्कृष्टता

वेदे काण्डत्रयं प्रोक्तं कर्मोपासनबोधनम्।
साधनं काण्डयुग्मोक्तं तृतीये साध्यमीरितम्॥ ७७ ॥
तस्माद्वेदोदितं कुर्यादुपासीत च देवताः।
शुद्धान्तःकरणस्तेन लभते ज्ञानमुत्तमम्॥ ७८ ॥
कार्यकारणसङ्घातं प्रविष्टश्चेतनात्मकः।
जीवो ब्रह्मैव सम्पूर्णमिति ज्ञात्वा विमुच्यते॥ ७९ ॥
मनुष्यदेहं सम्प्राप्य उपासीत च देवताः।
यो न मुच्येत संसारान्महापापयुतो हि सः॥ ८० ॥

निष्कामभजने फलमाह – **वेदेति** । कर्मोपासनबोधनं कर्मकाण्डं – ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेतेत्यादि । उपासनाकाण्डं – सूर्यो ब्रह्मेत्युपासीत यो ह वै ज्येष्ठं च वेदेत्यादि । इदं काण्डद्वयं साधनं ज्ञानस्य । तृतीयं ज्ञानकाण्डं–अयमात्मा ब्रह्मेत्यादि तस्मात्साध्यं फलभूतम् । तस्माज्ज्ञानप्राप्तये प्रयतितव्यमित्यर्थः ॥ ७७ ॥ तत्रोपायमाह – **तस्मादिति** । निष्कारणवेदोक्त चरणे देवतोपासने चान्तःकरणशुद्धिस्ततो न प्राप्तिरित्यर्थः ॥ ७८ ॥ ज्ञानस्वरूपमाह – **कार्येति** । कार्याणि कारणानि भूतानि च तत्संघातः शरीरम् । तच्चालकश्चेतना जीवो वस्तुतो ब्रह्मैवेति । साक्षात्कारो ज्ञानं तस्मान्मुक्तिः। तत्त्वमसि श्वेतकेतो अहं ब्रह्मास्मीत्यादि श्रुतेः ॥ ७९ ॥ ज्ञानायाप्रयतमानं निन्दति – **मनुष्येति** ॥ ८० ॥

भी प्रयोग बतलाये गए हैं उनकी आसक्ति का त्याग कर निष्काम रूप से देवता की पूजा करनी चाहिए ॥ ७६ ॥

वेदों में कर्मकाण्ड, उपासना और ज्ञान तीन काण्ड बतलाये गए हैं । 'ज्योतिष्टोमेन यजेत' यह कर्मकाण्ड है, 'सूर्यो ब्रह्मेत्युपासीत' यह उपासना है, ये दोनों काण्ड ज्ञान के साधन हैं 'अयमात्मा ब्रह्म' यह ज्ञान है जो स्वयं में साध्य है । यही उक्त दोनों का फल भी है । इसलिए ज्ञान प्राप्ति के लिए वेदोदित कर्म और उपासना दोनों में ही वेदोक्त मार्ग के अनुसार प्रवृत्त होना चाहिए । देवता की उपासना से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है । जिससे उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होती है । कार्यकारणसंघात शरीर में प्रविष्ट हुआ जीव ही परब्रह्म है । इसी ज्ञान से साधक मुक्त हो जाता है । अतः मनुष्य देह प्राप्त कर देवताओं की उपासना से मुक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए । जो मनुष्य देह प्राप्त कर संसार बन्धन से मुक्त नही होता, वही महापापी है ॥ ८० ॥

आत्मज्ञानाप्तये तस्माद्यतितव्यं नरोत्तमैः ।
कर्मभिर्देवसेवाभिः कामाद्यरिगणक्षयात् ॥ ८१ ॥

देवतोपास्तिं कुर्वता भविष्यद्विचार्य प्रवर्तितव्यम्--

चिकीर्षुर्देवतोपास्तिमादौ भावि विचारयेत् ।
स्नानदानादिकं कृत्वा स्मृत्वा हरिपदाम्बुजम् ॥ ८२ ॥

शिवं मनसि ध्यात्वा निद्रां कुर्वतो स्वप्नप्रकारः

शयीत कुशशय्यायां प्रार्थयेद्वृषभध्वजम् ।
भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन ॥ ८३ ॥
इष्टानिष्टे समाचक्ष्व मम सुप्तस्य शाश्वत ।
नमोऽजाय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने ॥ ८४ ॥
वामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ।
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः ॥ ८५ ॥
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ।
एभिर्मन्त्रैः शिवं प्रार्थ्य निद्रां कुर्यान्निराकुलः ॥ ८६ ॥
स्वप्नं दृष्टं निशि प्रातर्गुरवे विनिवेदयेत् ।
तमन्तरेण मन्त्रज्ञः स्वयं स्वप्नं विचारयेत् ॥ ८७ ॥

फलिनमाह – **आत्मज्ञानेति** । कामक्रोधलोभा अरयस्तेषां क्षयं कृत्वा कृतैः कर्मभिर्वैदिकैर्देवोपासनादिभिश्चान्तः– करणशुद्धिद्वारा ज्ञानाप्तिरित्यर्थः ॥ ८१ ॥ देवोपास्तिं कुर्वता भविष्यद्विचार्यप्रवर्तिव्यमित्याह – **चिकीर्षुरिति** । विचारप्रकारमाह – **स्नानसंध्यादिकं कृत्वेत्यादिना** ॥ ८२ ॥ शिवप्रार्थनामन्त्रमाह – **भगवन्निति** ॥ ८३–८६ ॥ तमन्तरेण गुरुं विना शुभाशुभं स्वप्नं स्वयमेव विचारयेत् ॥ ८७ ॥

इसलिए उपासना और कर्म से काम-क्रोधादि शत्रुओं का नाश कर आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सत्पुरुषों को सतत् प्रयत्न करते रहना चाहिए ॥ ७७-८१ ॥

देवता की उपासना करने वाले को अपना भविष्य विचार कर उसमें प्रवृत्त होना चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है -

स्नान और दान आदि करने के बाद भगवान् विष्णु के चरण कमलों का ध्यान कर कुश की शय्या पर सोना चाहिए । तथा भगवान शिव से **'भगवन् देवदेवेश .... त्वत्प्रसादान्महेश्वर'** पर्यन्त तीन श्लोकों से (द्र० २५. ८३-८६) से प्रार्थना कर निश्चिन्त हो सो जाना चाहिए ॥ ८२-८६ ॥

प्रातःकाल उठने पर देखा हुआ स्वप्न अपने गुरुदेव से बतला देना

शुभस्वप्नकथनम्

लिङ्गं चन्द्रार्कयोर्बिम्बं भारतीं जान्हवीं गुरुम् ।
रक्ताब्धितरणं युद्धे जयोऽनलसमर्चनम् ॥ ८८ ॥
शिखिहंसरथांगाढ्ये रथे स्नानं च मोहनम् ।
आरोहणं सारसस्य धरालाभश्च निम्नगा ॥ ८९ ॥
प्रासादः स्यन्दनः पद्मं छत्रं कन्या द्रुमःफली ।
नागो दीपो हयः पुष्पं वृषभोश्वश्च पर्वतः ॥ ९० ॥
सुराघटो ग्रहास्तारा नारी सूर्योदयोप्सराः ।
हर्म्यशैलविमानानामारोहो गगने गमः ॥ ९१ ॥
मद्यमांसादनं विष्ठालेपो रुधिरसेचनम् ।
दध्योदनादनं राज्याभिषेको गोवृषध्वजाः ॥ ९२ ॥
सिंहसिंहासनं शङ्खो वादित्रं रोचनादधि ।
चन्दनं दर्पणश्चैषां स्वप्ने संदर्शनं शुभम् ॥ ९३ ॥

तत्र शुभस्वप्नानाह – **लिंगमिति** । शिखीति । मयूरयुक्ते हंसयुक्ते चक्रयुक्ते वा रथे स्थितिः । मोहनं सुरतम् । निम्नगा नदीमात्रम् ॥ ८९ ॥ स्यन्दनो रथः। निम्नगाद्यप्सरोन्तानां दर्शनमेव शुभम् ॥ ९० ॥ हर्म्यादीनामारोहणम् ॥ ९१ ॥ मद्यमांसयोर्भक्षणम् । विष्ठया शरीरे लेपः रुधिरेण स्नानम् । दधिभक्त भक्षः। राज्यप्राप्तिः । एतानि शुभानि । गवादीनां दर्शनमेव शुभम् ॥ ९२–९३ ॥

चाहिए । उनके न होने पर स्वयं साधक को अपने स्वप्न के भविष्य के विषय में विचार कर लेना चाहिए ॥ ८७ ॥

अब **शुभाशुभ स्वप्न के विषय में** कहते हैं -

लिङ्ग, चन्द्र और सूर्यकर बिम्ब, सरस्वती, गङ्गा, गुरु, लालवर्ण वाले समुद्र में तैरना, युद्ध में विजय, अग्नि का अर्चन, मयूरयुक्त, हंसयुक्त अथवा चक्रयुक्त रथ पर बैठना, स्नान, संभोग, सारस की सवारी, भूमिलाभ, नदी, ऊँचे ऊँचे महल, रथ, कमल, छत्र, कन्या, फलवान् वृक्ष, सर्प अथवा हाथी, दीया, घोड़ा, पुष्प, वृषभ और अश्व, पर्वत, शराब का घड़ा, ग्रह नक्षत्र, स्त्री, उदीयमान सूर्य अप्सराओं का दर्शन, लिपे पोते स्वच्छ मकान पर, पहाड पर तथा विमान पर चढना, आकाश यात्रा, मद्य पीना, मांस ख़ाना, विष्टा का लेप, खून से स्नान, दही भात का भोजन, राज्याभिषेक होना (राज्य प्राप्ति), गाय, बैल और ध्वजा का दर्शन, सिंह और सिंहासन, शंख, बाजा, गोरोचन, दधि, चन्दन तथा दर्पण इनका स्वप्न में दिखलायी पड़ना शुभावह कहा गया है ॥ ८८-९३ ॥

अशुभस्वप्नकथनम्

तैलाभ्यक्तः कृष्णवर्णो नग्नो ना गर्तवायसौ ।
शुष्ककण्टकिवृक्षश्च चाण्डालो दीर्घकन्धरः ॥ ६४ ॥
प्रासादस्तलहीनश्च नैते स्वप्ने शुभावहाः ।
शान्तिं कुर्वीत दुःस्वप्ने जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥ ६५ ॥
अब्दत्रिकं जपं तस्य कुर्वतो विघ्नसम्भवः ।
विघ्नसङ्घमनादृत्य तदा जपपरो भवेत् ॥ ६६ ॥
सिद्धौ विश्वस्तचित्तः संस्तुरीयेऽब्दे ससिद्धिभाक् ।

मन्त्रसिद्धेर्लक्षणम्

मनःप्रसादः सन्तोषः श्रवणं दुन्दुभिध्वनेः ॥ ६७ ॥
गीतस्य तालशब्दस्य गन्धर्वाणां समीक्षणम् ।
स्वतेजसः सूर्यसाम्येक्षणं निद्राक्षुधाजपः ॥ ६८ ॥
रम्यतारोग्यगाम्भीर्यमभावक्रोधलोभयोः ।
एवमादीनि चिह्नानि यदा पश्यति मन्त्रवित् ॥ ६६ ॥
सिद्धिं मन्त्रस्य जानीयाद् देवतायाः प्रसन्नताम् ।

अशुभस्वप्नानाह – **तैलेति** । तैलाभ्यक्तो ना पुरुषः । नग्नादीना दर्शनमशुभम् ॥ ६४–६६ ॥ मन्त्रसिद्धेर्लक्षणमाह – **मनः प्रसाद इति** ॥ ६७–१०० ॥

तैल की मालिश किए पुरुष का, काला अथवा नग्न व्यक्ति का, गड्ढा, कौआ, सूखा वृक्ष, काँटेदार वृक्ष, चाण्डाल, बड़े कन्धे वाला पुरुष, तल (छत) रहित पक्का महल इनका स्वप्न में दिखलाई पड़ना अशुभ है ॥ ६४-६५ ॥

दुःस्वप्न की शान्ति के उपाय – दुःस्वप्न दिखई पड़ने पर उसकी शान्ति करानी चाहिए । तदनन्तर एकाग्रमन से इष्टदेव के मन्त्र का जप करना चाहिए। ३ वर्ष तक जप करने वाले को विघ्न की संभावना रहती है, अतः विघ्नसमूह की परवाह न कर अपने जप में तत्पर रहना चाहिए । अपने चित्त में विश्वस्त रहने वाला सिद्धपुरुष चौथे वर्ष में अवश्य ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ ६५-६७ ॥

अब **मन्त्र सिद्धि का लक्षण** कहते हैं –

मन में प्रसन्नता आत्मसन्तोष, नगाड़े की ध्वनि, गाने की ध्वनि, ताल की ध्वनि, गन्धर्वों का दर्शन, अपने तेज को सूर्य के समान देखना, निद्रा, क्षुधा, जप करना, शरीर का सौन्दर्य बढना, आरोग्य होना, गाम्भीर्य, क्रोध और लोभ का अपने में सर्वथा अभाव, इत्यादि चिन्ह जब साधक को दिखाई पड़े तो मन्त्र की सिद्धि तथा देवता की प्रसन्नता समझनी चाहिए ॥ ६७-१०० ॥

लब्धज्ञानिनः कृतार्थताकथनम्

ततो जपेधिकं यत्नं प्रकुर्याज्ज्ञानलब्धये ॥ १०० ॥
लब्धज्ञानः कृतार्थः स्यात्संसारात्प्रतिमुच्यते ।
ज्ञात्वात्मानं परं ब्रह्मवेदान्तैः प्रतिपादितम् ॥ १०१ ॥

ग्रन्थसमाप्तौ मङ्गलाचरणम्

तं वन्दे परमात्मानं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ।
यो नानादेवतारूपो नृणामिष्टं प्रयच्छति ॥ १०२ ॥
विलोक्य नानातन्त्राणि प्रार्थितो द्विजसत्तमैः ।
स्वमतेरनुसारेण कृतो मन्त्रमहोदधिः ॥ १०३ ॥

ग्रन्थकर्तुस्तरंगानुक्रमणिकाकथनम्

बाणनेत्रमितास्तस्मिंस्तरङ्गाः सन्ति निर्मिताः ।
तत्रानुक्रमणीं वक्ष्ये मन्त्रिणां सुखवृद्धये ॥ १०४ ॥

आत्मसाक्षात्कारपर्यन्तमेव मन्त्रोपास्तिरित्याह – **लब्धज्ञान इति** । अहं ब्रह्मेति साक्षात्कारो ज्ञानमित्यर्थः ॥ १०१ ॥ ग्रन्थसमाप्तौ मंगलमाचरति – **तं वन्दे** इति । ब्रह्मैव नानादेवतारूपेण जनैः सेव्यत इत्यर्थः । 'यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति । तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् । स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते । लभते च ततः कामान् मयैव विहितान्हितान्' इति भगवद्वचनात् ॥ १०२ ॥ ग्रन्थकरणे हेतुमाह – **विलोक्येति** । ब्राह्मणप्रार्थनमेव हेतुः ॥ १०३ ॥ वाणनेत्रमिताः पञ्चविंशतिः ॥ १०४ ॥

अब **मन्त्र सिद्धि के बाद के कर्त्तव्य** का निर्देश करते हैं - मन्त्र सिद्धि प्राप्त कर लेने वाले साधक को ज्ञान प्राप्ति के लिए जप की संख्या में निरन्तर वृद्धि का यत्न करते रहना चाहिए । जब वेदान्त प्रतिपादित (अयमात्माब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि श्वेतोकेतो इत्यादि) तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त हो जाय तब साधक कृतार्थ हो जाता है और संसार बन्धन से छूट जाता है ॥ १००-१०१ ॥

अब **ग्रन्थ समाप्ति में पुनः मङ्गलाचरण** करते हैं - सर्वव्यापी ईश्वर परमात्मा की मैं वन्दना करता हूँ, जो अनेक देवताओं का स्वरूप ग्रहण कर मनुष्यों के अभीष्टों को पूरा करते हैं ॥ १०२ ॥

ग्रन्थ रचना का हेतु - श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर अनेक तन्त्र ग्रन्थों का अवलोकन कर अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने इस मन्त्र महोदधि नामक ग्रन्थ की रचना की है । यही इस ग्रन्थ की रचना का हेतु है ॥ १०३ ॥

भूतशुद्धिस्तथा प्राणप्रतिष्ठान्यसनं लिपेः ।
पुरश्चर्याहोमविधिस्तर्पणाद्याद्य ईरितम् ॥ १०५ ॥
द्वितीयोर्मौ गणेशस्य मन्त्राः सम्यक्समीरिताः ।
कालीकाल्यभिधानानां सुमुख्याश्च तृतीयके ॥ १०६ ॥
तारातुरीये सम्प्रोक्ता ताराभेदास्तु पञ्चमे ।
षष्ठे तरङ्गे गदिता छिन्नमस्ताशबर्यपि ॥ १०७ ॥
स्वयंवरामधुमती प्रमदा च प्रमोदया ।
बन्दीबन्धनहारीति सप्तमे वटयक्षिणी ॥ १०८ ॥
तस्या भेदाश्च वाराही ज्येष्ठा कर्णपिशाचिनी ।
स्वप्नेश्वरी च मातङ्गी बाणेशी मदनेश्वरी ॥ १०९ ॥
अष्टमे विस्तरात्प्रोक्ता बाला बालाभिदा अपि ।
नवमे त्वन्नपूर्णोक्ता तद्भेदामोहनाद्रिजा ॥ ११० ॥

अनुक्रमणीमाह – **भूतशुद्धिरिति** । लिपेर्मातृकायान्यसनं न्यासः । आद्ये प्रथमतरंगे एतदीरितम् ॥ १०५ ॥ द्वितीयोर्मौ द्वितीयतरंगे गणेशमन्त्राः । काल्यादितृतीये ॥ १०६ ॥ बन्धनहारीति । बन्दीविशेषणम् । छिन्नमस्तादिशबर्यन्तांषष्ठे ॥ १०७–१०८ ॥ वाराहीवार्तालीवटयक्षिण्यादिकामेश्वर्यन्तं सप्तमे ॥ १०९ ॥

अब प्रसङ्ग प्राप्त **मन्त्रमहोदधि की अनुक्रमणिका** कहते हैं -

इस मन्त्रमहोदधि में पच्चीस तरङ्ग हैं । मान्त्रिकों की सुविधा के लिए अब उनकी अनुक्रमणिका कहता हूँ ॥ १०४ ॥

प्रथम तरङ्ग में भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, मातृकान्यास, पुरश्चरण और होम की विधि तथा तर्पण का विषय प्रतिपादन किया गया है ॥ १०५ ॥

द्वितीय तरङ्ग में गणेश के विविध मन्त्र और उनकी सिद्धि के प्रकार कहे गए हैं ।

तृतीय तरङ्ग में काली तथा काली नाम से अभिहित दक्षिणाकाली आदि के अनेक मन्त्र एवं सुमुखी के मन्त्र का प्रतिपादन एवं काम्यप्रयोग कहा गया है ॥ १०६॥

चतुर्थ तरङ्ग में तारा की उपासना तथा **पञ्चम तरङ्ग** में तारा के भेद कहे गए हैं ।

छठे तरङ्ग में छिन्नमस्ता, शबरी, स्वयम्बरा, मधुमती, प्रमदा, प्रमोदा, बन्दी जो बन्धन से मुक्त करती हैं - उनके मन्त्रों को बताया गया है ॥ १०७-१०८ ॥

सप्तम तरङ्ग में वटयक्षिणी, वटयक्षिणी के भेद, वाराही, ज्येष्ठा, कर्णपिशाचिनी, स्वप्नेश्वरी, मातङ्गी, बाणेशी एवं कामेशी के मन्त्रों को प्रतिपादित किया गया है ॥ १०८-१०९ ॥

ज्येष्ठालक्ष्मीरत्र मन्त्रा उक्ता प्रत्यङ्गिरारिहा ।
दशमे बगलावक्त्रावाराहीद्वितयं तथा ॥ १११ ॥
श्रीविद्यैकादशे प्रोक्ता द्वादशे तु तदावृतिः ।
त्रयोदशे तु हनुमान्विस्तरात् प्रतिपादितः ॥ ११२ ॥
चतुर्दशे नारसिंहो गोपालो गरुडोऽपि च ।
अथ पञ्चदशे सूर्यो भौमो जीवः सितो मुनिः ॥ ११३ ॥
षोडशोर्मौ महामृत्युञ्जयो रुद्रो धनेश्वरः ।
जाह्नवीमणिकर्णी च प्रोक्ता सप्तदशेऽर्जुनः ॥ ११४ ॥
अष्टादशे कालरात्रिश्चण्डिकाया नवाक्षरः ।
एकोनविंशे चरणयुधः शास्तृसमन्वितः ॥ ११५ ॥
पार्थिवार्चनकीनाशचित्रगुप्तासुरीविधिः ।

मोहनाद्रिजा मोहनगौरी ॥ ११० ॥ अरिहा शत्रुनाशकः षोडशार्णः । बगला–वक्त्रा बगलामुखी ॥ १११॥ तदावृत्तिः श्रीविद्याया आवरणपूजा ॥ ११२॥ मुनिर्वेदव्यासः ॥ ११३–११४ ॥ चरणायुधः कुक्कुटमन्त्रः ॥ ११५ ॥ कीनाशोऽयम् ॥ ११६ ॥

अष्टम तरङ्ग में त्रिपुराबाला तथा उनके भेदों का विवेचन विस्तार से किया गया है । **नवम तरङ्ग** में अन्नपूर्णा, उनके भेद त्रैलोक्यमोहन गौरी एवं ज्येष्ठालक्ष्मी तथा उनके साथ ही प्रत्यंगिरा के भी मन्त्रों का निर्देश किया गया है ॥ ११०-१११ ॥

दशम तरङ्ग में बगलामुखी तथा वाराही को भी बतलाया गया है ॥ १११ ॥

एकादश तरङ्ग में श्रीविद्या तथा **द्वादश तरङ्ग** में उनके आवरण पूजा की विधि बताई गई है ।

त्रयोदश तरङ्ग में हनुमान् के मन्त्रों एवं प्रयोगों का विशद् रूप से प्रतिपादन किया गया है ॥ ११२ ॥

चतुर्दश तरङ्ग में नृसिंह, गोपाल एवं गरुड मन्त्रों का प्रतिपादन है ।

पञ्चदश तरङ्ग में सूर्य, भौम, बृहस्पति, शुक्र एवं वेदव्यास के मन्त्रों को बताया गया है ॥ ११३ ॥

षोडश तरङ्ग में महामृत्युञ्जय, रुद्र एवं गङ्गा तथा मणिकर्णिका के मन्त्र कहे गए हैं।

सप्तदश तरङ्ग में कार्त्तवीर्यार्जुन के मन्त्र, दीपदान विधि आदि का वर्णन है ।

अष्टादश तरङ्ग में कालरात्रि के मन्त्र, नवार्णमन्त्र, शतचण्डी और सहस्रचण्डी विधान का सविस्तार वर्णन किया गया है ॥ ११४-११५ ॥

उन्नीसवें तरङ्ग में चरणायुध मन्त्र, शास्ता मन्त्र, पार्थिवार्चन, धर्मराज, चित्रगुप्त के मन्त्रों का प्रतिपादन करते हुये आसुरी (दुर्गा) विधि का प्रतिपादन किया गया है ॥ ११५-११६ ॥

विंशे तरङ्गे यन्त्राणि स्वर्णाकर्षणभैरवः ॥ ११६ ॥
स्नानादिरन्तर्यागान्त एकविंशेर्चनाविधिः ।
द्वाविंशेऽर्घ्यं समारभ्य पूजनं तद्भिदा अपि ॥ ११७ ॥
त्रयोविंशे तु दमनैः पवित्रैश्च सर्मचनम् ।
चतुर्विंशे च भेदेन मन्त्राणां परिशेधनम् ॥ ११८ ॥
तरङ्गे चरमे प्रोक्तं कर्मषट्कमनुक्रमात् ।
एवं मन्त्रोदधावस्मिन् पञ्चविंशतिरूर्मयः ॥ ११९ ॥
विशोधनीया विद्वद्भिः क्षन्तव्यं साहसं मम ।
चापलं निजबालानां क्षमते जनको यथा ॥ १२० ॥

ग्रन्थकर्तुः स्ववंशकथनम्

अहिच्छत्रद्विजच्छत्रवत्सगोत्रसमुद्भवः ।
आसीद्रत्नाकरो नाम विद्वान्ख्यातो धरातले ॥ १२१ ॥

तद्भिदाः पूजाभेदाः ॥ ११७–११८ ॥ चरमे पञ्चविंशे तरंगे । शान्त्यादिकर्म–षट्कमनुक्रमणी चेति ॥ ११९–१२० ॥ स्ववंशमाह – **अहिच्छत्रेति** ॥ १२१–१२५ ॥

बीसवें तरङ्ग में विविध यन्त्र, स्वर्णाकर्षण भैरव की उपासना विधि तथा अनेक यन्त्रों का वर्णन है ।

इक्कीसवें तरङ्ग में स्नान से लेकर अर्न्तयाग तथा नित्यकर्म का वर्णन है ।

बाइसवें तरङ्ग में अर्घ्यस्थापन से लेकर पूजन पर्यन्त के कृत्य तथा पूजा के भेद बतलाये गए हैं ॥ ११६-११७ ॥

त्रयोविंशति तरङ्ग में दमनक तथा पवित्रक से इष्टदेव के सर्मचन का विधान कहा गया है ।

चौबीसवें तरङ्ग में मन्त्र शोधन की नाना प्रकार की प्रक्रिया कही गई है ।

पच्चीसवें तरङ्ग में षट्कर्मों के समस्त विधान का निर्देश है ॥ ११८-११९ ॥

इस प्रकार मन्त्रमहोदधि के पच्चीस तरङ्गों में उक्त समस्त विषयों का वर्णन किया गया है ॥ ११६-११९ ॥

अब ग्रन्थकार ग्रन्थ का उपसंहार कर विशेषज्ञों से प्रार्थना करते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर विशेषज्ञों को इसमें संशोधन कर लेना चाहिए, जिस प्रकार पिता अपने बालकों की चपलता क्षमा करता है, उसी प्रकार मन्त्र के विषय में किए गए साहस को भी विज्ञजन क्षमा करेंगें ॥ १२० ॥

अब ग्रन्थकार अपना **स्ववंश परिचय** देते हैं - अहिच्छत्र देश में द्विजों के छत्र के समान वत्स गोत्र में उत्पन्न, धरातल में अपनी विद्वत्ता से विख्यात रत्नाकर नाम

तत्तनूजो रामभक्तः फनूभट्टाभिधोऽभवत् ।
महीधरस्तदुत्पन्नः संसारासारतां विदन् ॥ १२२ ॥
निजदेशं परित्यज्य गतो वाराणसीं पुरीम् ।
सेवमानो नरहरिं तन्त्र ग्रन्थमिमं व्यधात् ॥ १२३ ॥
कल्याणभिधपुत्रेण तथान्यैर्द्विजसत्तमैः ।
अनेकानागमग्रन्थान् विलोक्य तु मुनीश्वरैः ॥ १२४ ॥
एकग्रन्थे स्थितं सर्वं मन्त्राणां सारमिच्छुभिः ।
सम्प्रार्थितः स्वमत्यासौ नाम्ना मन्त्रमहोदधिः ॥ १२५ ॥

ग्रन्थान्ते आशीः कथनम्

अविच्छिन्नान्वयाः सन्तु निजधर्मपरायणाः ।
मङ्गलानि प्रपश्यं तु सर्वे द्रोहपराङ्मुखाः ॥ १२६ ॥
हरिः करोतु कल्याणं सर्वेषां जगदीश्वरः ।
प्रवर्तयन्त्विमं ग्रन्थं यावद्वेदो रविः शशी ॥ १२७ ॥

ग्रन्थान्ते आशिषन्नाह – **अविच्छिन्नेति** ॥ १२६–१२७ ॥

के ब्राह्मण हुये ॥ १२१ ॥

उनके लड़के फनूभट्ट हुये, जो भगवान् श्री राम के प्रकाण्ड भक्त थे । उनके पुत्र **श्रीमहीधर** हुये, जिन्होने संसार की असारता को जान कर अपना देश छोड़ कर काशी नगरी में आकर भगवान् नृसिंह की सेवा करते हुये **मन्त्रमहोदधि** नामक इस तन्त्र ग्रन्थ की रचना की ॥ १२२-१२३ ॥

अनेक ग्रन्थों में लिखे गए नाना प्रकार के मन्त्रों के सार को किसी एक ग्रन्थ में निबद्ध करने की इच्छा रखने वाले तथा आगम ग्रन्थों के मर्मज्ञ महामुनियों, श्रेष्ठ ब्राह्मणों एवं **कल्याण** नामक स्वकीय पुत्र के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार इस **मन्त्रमहोदधि** नामक ग्रन्थ की रचना की है ॥ १२४-१२५ ॥

अब ग्रन्थकार ग्रन्थ के अन्त में **आशीर्वचन** कहते हैं -

इस ग्रन्थ का अभ्यास करने वाले समस्त पाठकगण अपने धर्म में परायण रहें । सर्वदा कल्याण का दर्शन करें । द्रोह से सर्वथा पराङ्मुख रहें और उनकी वंशपरम्परा अविच्छिन्न रूप से चलती रहे ॥ १२६ ॥

अब **जगदीश्वर से प्रार्थना** करते हुये ग्रन्थ की समाप्ति करते हैं -

जगदीश्वर श्रीहरि सभी का कल्याण करें और जब तक वेद, सूर्य तथा चन्द्रमा रहें तब तक इस ग्रन्थ का प्रचार प्रसार करते रहें ॥ १२७ ॥

श्लोकत्रयेण देवप्रार्थना

नरसिंहो महादेवो महादेवार्तिनाशनः।
मुदे परो महालक्ष्म्या देवावर नतोऽस्तु मे॥ १२८॥

नृसिंहउत्सङ्गसमुद्रजायां
समुद्रजद्वीपगृहे निषण्णः ।
समुद्रजोहीनमतिः सदाव्यात्
समुद्रभक्ताखिलसिद्धिदायी॥ १२६॥

राजा लक्ष्मीनृसिंहो जयति सुखकरं श्रीनृसिंहं भजे यं
दैत्याधीशामहान्तोऽहसतनृहरिणा श्रीनृसिंहाय नौमि।
सेव्यो लक्ष्मीनृसिंहादपर इह नहि श्रीनृसिंहस्य पादौ
सेवे लक्ष्मीनृसिंहे वसतु मम मनः श्रीनृसिंहाव भक्तम्॥ १३०॥

विश्वेशो गिरिजाबिन्दुमाधवो मणिकर्णिका।
भैरवो जाह्नवीदण्डपाणिर्मे तन्वतां शिवम्॥ १३१॥

श्लोकत्रयेण देवं प्रर्थयते । **नरसिंह** इति । नृसिंहो मे मुदे हर्षायास्तु । देवानामावरेण समूहेन नतः । नृसिंह इति – नृसिंहो मांसदाऽव्यात् । कीदृशः । उत्संगे समुद्रजा लक्ष्मीर्यस्य सः । समुद्रे जातं यच्छ्वेतद्वीपं तत्र यद्गृहं तत्रोपविष्टः समुत्सहर्षः । रजोहीनमतिविरजाः । समुद्रा अञ्जल्यादिमुद्राविदो ये भक्तास्तेषां सर्वसिद्धिदाता॥ १२६॥ **राजा लक्ष्मीनृसिंह** इति । विभक्तिसप्तकेन हरिं स्तौति । नृहरिणा महान्तो दैत्याधीशा अहसत हताः । हन्तेर्लुङि कर्मणि चिण्वदिङ्भावे रूपम्। श्रीनृसिंहाव श्रीनृसिंहभक्तम् अव रक्ष॥ १३०॥ देवान् स्मरति – **विश्वेश**

समस्त देवगणों की विपत्ति को दूर करने वाले, देवगणों से वन्दित **लक्ष्मी सहित श्रीनृसिंह देव** हमें निरन्तर हर्ष प्रदान करते रहें॥ १२८॥

क्षीर सागर के मध्य में स्थित श्वेत द्वीप के मण्डप में अपनी गोद में स्थित लक्ष्मी के साथ विराजमान, प्रसन्नता से पूर्ण भगवान् श्री नृसिंह मेरी रक्षा करें, जो अञ्जलि आदि मुद्राओं से पूजा करने वाले अपने भक्तों को समस्त सिद्धियाँ प्रदान करते हैं वह **भगवान् श्रीनृसिंह** मुझे रजोगुण रहित सद्‍बुद्धि दें॥ १२७-१२६॥

भगवान् श्री **लक्ष्मीनृसिंह** की जय हो । मैं परमकल्याणकारी श्री नृसिंह की वन्दना करता हूँ, जिन नृसिंह ने महाबलवान् बड़े बड़े दैत्यों का वध किया उन नरहरि को मैं प्रणाम करता हूँ ।

लक्ष्मीनृसिंह से बढ़ कर और कोई देवता नही है। इसलिए श्री नृसिंह के चरण कमलों की सेवा करनी चाहिए । यही सोंच कर श्रीनृसिंह मेरे मन में निवास

ग्रन्थनिर्मितिकालकथनम्

अब्दे विक्रमतो जाते बाणवेदनृपैर्मिते ।
ज्येष्ठाष्टम्यां शिवस्याग्रे पूर्णो मन्त्रमहोदधिः ॥ १३२ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ षट्कर्मादिनिरूपणं नाम पञ्चविंशस्तरङ्गः ॥ २५ ॥

इति । ग्रन्थनिष्पत्तिस्थानं काशीस्थानम् ॥ १३१ ॥

ग्रन्थनिर्मितिकालमाह – **अब्दे विक्रमत इति** । बाणवेदनृपैर्मिते वर्षे पञ्चचत्वारिंशदुत्तरषोडशशततमे विक्रमनृपादन्ते सति शिवस्य रामेश्वरस्याग्रे मन्त्रमहोदधिः समाप्तिमगमत् ॥ १३२ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां षट्कर्मादिनिरूपणं नाम पञ्चविंशस्तरङ्गः ॥ २५ ॥

करें । यह मेरा मन कभी भी नृसिंह से अलग न हो ॥ १३० ॥

बाबा विश्वनाथ, भवानी अन्नपूर्णा, बिन्दुमाधव, मणिकर्णिका, भैरव, भागीरथी तथा दण्डपाणी मेरा सतत् कल्याण करें ॥ १३१ ॥

विक्रम संवत् १६४५ में ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी को बाबा विश्वनाथ के सान्निध्य में यह मन्त्रमहोदधि नामक ग्रन्थ पूर्ण हुआ ॥ १३२ ॥

शून्यं बाणे खयुग्मान्दे वैक्रमीये व्यये शुभे ।
ऊर्जे मासि सिते पक्षे पूर्णेन्दौ चन्द्रवासरे ॥ १ ॥
समाप्तिमगमद्यीका सैषा सागरगामिनी ।
सुधाकरेण विहिता मन्त्रशास्त्रमहोदधेः ॥ २ ॥
प्रीयेतामनया देवी पार्वतीपरमश्वरी ।
शान्तिं विधत्तां मे गेहे ददेतामाशिषं शुभाम् ॥ ३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के पञ्चविंश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २५ ॥

॥ श्रीः ॥

परिशिष्ट १

अथ मातृकाकोशः

श्रीगणेशं महेशानं भारतीमीश्वरं शिवम् ।
नत्वा वक्ष्ये मातृकाणां निघण्टुं बालबुद्धये ॥ १ ॥

(ॐ) ध्रुवस्तारस्त्रिवृद्ब्रह्म वेदादिस्तारको ऽव्ययः ।
प्रणवश्च त्रिमात्रो ऽपि ॐकारो ज्योतिरादितः ॥ २ ॥

(अ) श्रीकण्ठः केशवश्चापि निवृत्तिश्च स्वरादिकः ।
अकारो मातृकाद्यश्च वात इत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

(आ) नारायणस्तथा ऽनन्तो मुरवृत्तो गुरुस्तथा ।
विष्णुशय्या तथा शेषो दीर्घआकार एव च ॥ ४ ॥

(इ) माधवस्सूक्ष्मसंज्ञश्च विद्यादक्षिणलोचनम् ।
गन्धर्वः पाञ्चजन्य इकारश्च मुकांकुरः ॥ ५ ॥

(ई) गोविन्दाश्च त्रिमूर्तीशः शान्तिः स्याद्वामलोचनम् ।
नृसिंहास्त्रं तथा माया ईकारो ऽपि सुरेश्वरः ॥ ६ ॥

(उ) अमरेशस्तथा विष्णुरिन्धिका च गजांकुशः ।
दक्षकर्णश्च विजयी उकारो मन्मथाधिपः ॥ ७ ॥

(ऊ) अर्वाशो दीपिका वाम श्रवणं मधुसूदनः ।
इन्द्रचापषण्मुखश्च ऊकारो रक्षणाधिपः ॥ ८ ॥

(ऋ) देविका दक्षनासा च भारभूतिस्त्रिविक्रमः ।
देवमातारिपुघ्नश्च ऋकारस्तपनस्तथा ॥ ९ ॥

(ॠ) अतिथीशो वामनश्च मोचिका वामनासिका ।
दैत्यमाता च दैवज्ञ ॠकारस्त्रिपुरान्तकः ॥ १० ॥

(ऌ) श्रीधरश्च परास्थाणुर्दक्षगण्डस्त्रिवेदकः ।
एकाङ्घ्रिर्वज्रदण्डश्च व्योमर्द्धिर्ऌ स्वरस्स्मृतः ॥ ११ ॥

(ॡ) हृषीकेशो हरस्सूक्ष्मो वामगण्डः कुबेरदृक् ।
अर्द्धर्चो नीलचरणो ॡकारश्च त्रिकूटकः ॥ १२ ॥

(ए) झिण्टीशः पद्मनाभश्च शक्तिस्सूक्ष्मा स्मृता भगः ।
ऊर्द्धोष्ठगः कामरूप एकारश्च त्रिकोणकः ॥ १३ ॥

(ऐ) ज्ञानामृतो भौतिकश्चा ऽधरो दामोदरस्तथा ।
वागीशोवर्मभयद ऐकारस्त्रिपुरस्तथा ॥ १४ ॥

(ओ) सद्योजातो वासुदेव ऊर्ध्वदन्तस्त्रिमात्रकः ।
आप्यायनीमन्त्रनाथ ओकारोनागसंज्ञकः ॥ १५ ॥
(औ) संकर्षणोऽनुग्रहेशो मुरारिर्व्यापिनी तथा ।
अथोदन्तगतो मायी नृसिंहाङ्गस्तथौरसः ॥ १६ ॥
(अं) अक्रूरो व्योमरूपश्च प्रद्युम्नश्चन्द्रसंज्ञकः ।
अनुस्वारस्तथा बिन्दुरंकारश्च शिरोऽव्ययः ॥ १७ ॥
(अः) अनन्तश्च महासेनोऽनिरुद्धो रसवर्णकः ।
कन्यास्तननिभस्सर्गो विसर्गश्चान्तिमस्स्वरः ॥ १८ ॥
(क) क्रोधीशो धातृसंज्ञश्चक्रीसृष्टिश्च करादिगः ।
वर्गादिगः पादवेषः ककारः कामगस्स्मृतः ॥ १९ ॥
(ख) क्रुधार्द्धिगदिचण्डीशाः खेटो दक्षिणकूर्परः ।
कैटभारिश्च मातङ्गः संहारः खार्णकः स्मृतः ॥ २० ॥
(ग) स्मृतिः पञ्चान्तकश्शाङ्र्गी गणेशो मणिबन्धगः ।
गोमुखो गजकुम्भश्च गकारः सिंहसंज्ञकः ॥ २१ ॥
(घ) खड्गी शिवोत्तमो मेधा दक्षिणाङ्गुलिमूलगः ।
घनो घनस्वरश्चैव घकारो ङादिमस्मृतः ॥ २२ ॥
(ङ) संज्ञाको रुद्रकान्तिश्च दक्षाङ्गुल्यग्रसंस्थितः ।
क्लीबवक्त्रश्च भद्रेशो ङकारश्चानुनासिकः ॥ २३ ॥
(च) हलीकूर्मेश्वरो लक्ष्मीर्वावबाह्वादिगस्तथा ।
चित्रधारी चञ्चलश्च चकारस्संस्मृतो बुधैः ॥ २४ ॥
(छ) एकनेत्रश्च मुसली वामकूर्परगो द्युतिः ।
त्रिबिन्दुकस्तथा चारी छकारः श्लेष्मकाभिधः ॥ २५ ॥
(ज) स्थिराजपन्नौजपजश्शूली च चतुराननः ।
मणिबन्धगतो वामे जकाराञ्जनकोत्तमः ॥ २६ ॥
(झ) स्थितिः पाशी तथाजेशो वामाङ्गुलितलस्थितः ।
स्वस्तिकस्स्थाणुसंज्ञश्च झकारो जान्तसंज्ञकः ॥ २७ ॥
(ञ) वामाङ्गुल्याग्रतः सिद्धिरंकुशीसर्वसंज्ञकः ।
मातङ्गो ह्यनुगानश्च ञकारश्च निरञ्जनः ॥ २८ ॥
(ट) जरामुकुन्दस्सोमेशो दक्षपादादिगोमुखः ।
गजांकुशश्च बालेन्दुरमृताद्यष्टकस्स्मृतः ॥ २९ ॥
(ठ) लाङ्गलीशो नन्दजश्च पालिनी च कमण्डलुः ।
दक्षजानुगतस्स्थायी ठकारस्स्थविरस्मृतः ॥ ३० ॥
(ड) नन्दीक्षान्तिर्दारकश्च डामरो दक्षगुल्फगः ।

व्याघ्रपादश्शुभाङ्घ्रिश्च डकारस्तोमरो मतः ॥ ३१ ॥

(ढ) ऐश्वरी चार्द्धनारीशो नरश्शाखान्तराकृतिः ।
दक्षपादाङ्गुलीमूलो ढलो ढक्को ढकारकः ॥ ३२ ॥

(ण) उमाकान्तो नरकजिद् रतिर्दक्षपदाग्रगः ।
निर्वाणास्त्रिगुणाकारस्त्रिरेखोणस्समीरितः ॥ ३३ ॥

(त) वामोरुमूलनिलय आषाढी कामिका हरिः ।
तीव्रश्च तरलो नीलस्तकारः कीर्तितो बुधैः ॥ ३४ ॥

(थ) दण्डीशो वरदः कृष्णो वामजानुगतस्मरः ।
शौरी चापि विशालाक्षस्थकारः परिकीर्तितः ॥ ३५ ॥

(द) सत्योत्रीशो ह्लादिनी च वामगुल्फगतस्तथा ।
शूली कुबेरो दाता च दकारो धादिमः स्मृतः ॥ ३६ ॥

(ध) मीनेशस्सात्वत प्रीतिर्वामपादाङ्गुलीगतः ।
धनेशो धरणीशश्च धकारो दान्तिमः स्मृतः ॥ ३७ ॥

(न) शौरीमेषेश्वरीदीर्घा वामपादाग्रसंस्थितः ।
नरो न दीनो नादी च नकारश्चानुनासिकः ॥ ३८ ॥

(प) तीक्ष्णा च लोहितश्शूरो दक्षपार्श्वश्च पार्थिवः ।
पद्मेशो नान्तिमः फादिः पकारोऽपि प्रकीर्तितः ॥ ३९ ॥

(फ) जनार्दनः शिखी रौद्री वामपार्श्वकृतालयः ।
फट्कारः प्रोच्यते सद्भिः फकारः पान्तिमस्स्मृतः ॥ ४० ॥

(ब) छलगण्डो भूधरश्च भयापृष्ठगतस्तथा ।
सुरसो वज्रमुष्टिश्च बकारो भादिमो मतः ॥ ४१ ॥

(भ) विश्वमूर्तिर्द्विरण्डेशो निद्रा नाभिगतोऽपि च ।
भ्रुकुटी च भरद्वाजो भकारश्च जयापहः ॥ ४२ ॥

(म) वैकुण्ठश्च महाकालस्तन्द्री जठरसंस्थितः ।
मन्त्रेशो मण्डलो मानीं विषस्सूर्योमकारकः ॥ ४३ ॥

(य) क्षुधा बाला च वायुस्त्वग्धृतश्च पुरुषोत्तमः ।
यमुनो यामुनेयश्च यकारो मान्तिमः स्मृतः ॥ ४४ ॥

(र) क्रोधिनी च भुञ्जगेशी ज्वाली रुधिरपावकौ ।
रोचिष्मान्दक्षिणांशश्च रुचिरो रेफ ईरितः ॥ ४५ ॥

(ल) क्रियाककुद्गतो मांसं पिनाकीभूर्बलानुजः ।
लम्पटः शक्रसंज्ञश्च वाद्यो रान्तो लकारकः ॥ ४६ ॥

(व) बालो वामांसनिलयो मेदो वारिदवारुणौ ।
उत्कारी जलसंज्ञश्च खड्गीशोऽपि वकारकः ॥ ४७ ॥

(श) मृत्युर्बको वृषघ्नश्च हृदो दक्षकरस्थितः ।
शंकुकर्णोऽस्थिसंज्ञश्च शकारो विद्वद्भिरीरितः ॥ ४८ ॥

(ष) वृषः श्वेतेश्वरः पीतमज्जाहृद्वामबाहुगः ।
षडाननः षकारश्च कीर्तितश्च बुधैः खरः ॥ ४६ ॥

(स) भृगुः श्वेतस्तथा हंसो हृदो दक्षिणपादगः ।
समयस्सामगश्शुक्रस्सङ्गतिस्सार्णकश्शशी ॥ ५० ॥

(ह) नभो वराहो नकुलो हृदो वामपदस्थितः ।
सदाशिवोऽरुणः प्राणो हकारश्च हयाननः ॥ ५१ ॥

(ळ) हृदयान्नाभिसंस्थानशिवेशो विमलोऽसितः ।
लघुप्रयत्नश्चोपान्त्यो ळकारः प्रोच्यते बुधैः ॥ ५२ ॥

(क्ष) संवर्त्तको नृसिंहश्च हृदयान्मुखसंस्थितः ।
अनन्तः परमात्मा च वज्रकायोऽन्तिमाक्षरः ॥ ५३ ॥

॥ इति हादिमते मातृकाकोशः समाप्तः ॥

परिशिष्ट २

श्लोकानुक्रमणिका

इ

ऐ

क

ख

ग

झ

ट

ड

ढ

त

ध

प

भ

य

ल

स

डॉ॰ सुधाकर मालवीय का जन्म (१९४४ ई॰) कड़ा, शैनी, इलाहाबाद में हुआ। आपके पिता स्व॰ प्रो॰ पं॰ रामकुबेर मालवीय (भूतपूर्व साहित्य विभागाध्यक्ष, का॰ हि॰ वि॰ वि॰ और वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय) थे जो आपके आद्यगुरू भी हैं। डॉ॰ सुधाकर मालवीय ने काशी हिन्दु विश्वविद्यालय से एम॰ ए॰ संस्कृत, तथा पी॰ एच्॰ डी॰ की उपाधी प्राप्त की और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त की।

आपकी वैदिक कृतियों में - १. ऐतरेय ब्राह्मण, सायण भाष्य एवं हिन्दी व्याख्या सहित, दो भागों में (उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत), २. पारस्कर गृह्यसूत्र, हरिहर गदाहर भाष्य एवं हिन्दी व्याख्या सहित, ३. ऋग्वेद : (प्रथमाष्टक), अन्वितार्थप्रकाशिका हिन्दी व्याख्या सहित, सहलेखक (उत्तरप्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत) ४. गोभिलगृह्यसूत्रम्, संस्कृत हिन्दी टीका सहित।

आपके साहित्यक ग्रन्थों में - १. कर्णभार, भास कृत, (उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत), २. स्वप्नवासदत्तम्, ३. मधयमव्यायोग, ४. दूतवाक्य, ५. यज्ञफलम्, भास कृत, ६. दशकरूपकम्, धनिक कृत अवलोक एवं हिन्दी व्याख्या सहित (उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत), ७. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कालिदास कृत, ८. पञ्चतन्त्रम्, विष्णु शर्मा कृत, संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित, ९. अमरकोश (प्रथम काण्ड) हिन्दी टीका सहित, १०. उदारराघवम्, कल्याणमल्ल कृत, अज्ञात कर्तृक संस्कृत टीका सहित (सम्पादित)। ११. नाट्यशास्त्रम्, भरतमुनि कृत (बड़ौदानुसारी मूल एवं श्लोकार्धानुक्रमणी सहित)।

आपके तन्त्र ग्रन्थों में - १. क्रमदीपिका, केशव काश्मीरिक कृत, गोविन्द कृत संस्कृत टीका एवं हिन्दी सहित, (उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत) २. माहेश्वरतन्त्रम्, हिन्दी टीका सहित, ४. रुद्रयामलम् (उत्तरतन्त्रम्), हिन्दी व्याख्या सहित, ५. कर्पूरस्तव, महाकाल कृत, हिन्दी व्याख्या सहित।

इसके अतिरिक्त आपकी निबन्ध रचनाओं में - १.डिफरेन्ट इन्टरप्रेटेशन्स आफ दि ऋ॰ मंत्र 'चत्वारि शृंगा:' और २. हंस: शुचिषत्, मन्त्र की विभिन्न व्याख्याएँ हैं।

डॉ० सुधाकर मालवीय

मन्त्रमहोदधिः

नौका संस्कृत टीका अरित्र हिन्दी व्याख्या सहितः

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

तन्त्रशास्त्र के महत्वपूर्ण प्रकाशन :

* **अन्नदाकल्पतन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित । एस. एन. खण्डेलवाल
* **एकजटातारासाधनतन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित । एस. एन. खण्डेलवाल
* **कुण्डलिनी शक्ति** । अरुणकुमार शर्मा
* **कुलार्णव तन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित । परमहंस मिश्र
* **तन्त्रविज्ञान और साधना** । सीताराम चतुर्वेदी
* **तन्त्रसारः** । 'नीर-क्षीर-विवेक' नामक हिन्दी टीका सहित । परमहंस मिश्र । 1-2 भाग
* **तन्त्रालोक** । जयरथकृत संस्कृत टीका एव राधेश्याम चतुर्वेदी कृत हिन्दी टीका सहित
* **त्रिपुरा रहस्यम्** । ज्ञानखण्ड एवं महात्म्खण्ड । हिन्दी टीका सहित । जगदीश चन्द्र मिश्र
* **नीलसरस्वती-तन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित । एस. एन. खण्डेलवाल
* **भूतडामरतन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित । एस. एन. खण्डेलवाल
* **मन्त्रमहोदधि** । 'नौका' संस्कृत टीका तथा 'अरित्र' हिन्दी टीका सहित । सुधाकर मालवीय
* **रूद्रयामलतन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित । सुधाकर मालवीय । 1-2 भाग
* **ललितासहस्रनाम्** । हिन्दी टीका सहित । श्रीभारतभूषण
* **वरिवस्यारहस्यम्** । संस्कृत हिन्दी टीका सहित । श्यामाकान्त द्विवेदी
* **वर्ण-बीज-प्रकाशः** । सरयू प्रसाद द्विवेदी
* **शारदातिलकम्** । हिन्दी टीका सहित । सुधाकर मालवीय । 1-2 भाग
* **सर्वोल्लास-तन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित । एस. एन. खण्डेलवाल
* **सिद्धनागार्जुनतन्त्रम्** । हिन्दी टीका सहित । एस. एन. खण्डेलवाल
* **सौन्दर्यलहरी** । 'लक्ष्मीधरी' संस्कृत एवं 'सरला' हिन्दी व्याख्या । सुधाकर मालवीय

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली-110007

आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पाँच आवरणों के साथ गणेश जी का पूजन करना चाहिए । मन्त्र सिद्धि के लिए पुरश्चरण के पूर्व पूर्वोक्त पञ्चावरण की पूजा आवश्यक है ॥ १५-१८ ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - पीठपूजा करने के बाद उस पर निम्नलिखित मन्त्रों से गणेशमन्त्र की नौ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ।

पूर्व आदि आठ दिशाओं में यथा -

ॐ तीव्रायै नमः, ॐ चालिन्यै नमः, ॐ नन्दायै नमः,
ॐ भोगदायै नमः, ॐ कामरूपिण्यै नमः, ॐ उग्रायै नमः,
ॐ तेजोवत्यै नमः, ॐ सत्यायै नमः,

इस प्रकार आठ दिशाओं में पूजन कर मध्य में 'विघ्ननाशिन्यै नमः' फिर 'ॐ सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' मन्त्र से आसन देकर मूल मन्त्र से गणेशजी की मूर्ति की कल्पना कर तथा उसमें गणेशजी का आवाहन कर पाद्य एवं अर्घ्य आदि समस्त उपचारों से उनका पूजन कर आवरण पूजा करनी चाहिए ।

ॐ गां हृदयाय नमः आग्नेये, ॐ गीं शिरसे स्वाहा नैर्ऋत्ये,
ॐ गूं शिखायै वषट् वायव्ये, ॐ गैं कवचाय हुम् ऐशान्ये,
ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट् अग्रे, ॐ गः अस्त्राय फट् चतुर्दिक्षु ।

इन मन्त्रों से षडङ्गपूजा कर पुष्पाञ्जलि लेकर मूल मन्त्र का उच्चारण कर 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले । भक्तया समर्पये तुभ्यं **प्रथमावरणार्चनम्**' कह कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करे । फिर -

ॐ विद्यायै नमः पूर्वे, ॐ विधात्र्यै नमः आग्नेये,
ॐ भोगदायै नमः दक्षिणे, ॐ विघ्नघातिन्यै नमः नैर्ऋत्यै,
ॐ निधि प्रदीपायै नमः पश्चिमे, ॐ पापघ्न्यै नमः वायव्ये,
ॐ पुण्यायै नमः सौम्ये, ॐ शशिप्रभायै नमः ऐशान्ये

इन शक्तियों का पूर्वादि आठ दिशाओं में क्रमेण पूजन करना चाहिए । फिर पूर्वोक्त मूल मन्त्र के साथ 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि ... से **द्वितीयावरणार्चनम्**' पर्यन्त मन्त्र बोल कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए । तदनन्तर अष्टदल कमल में -

ॐ वक्रतुण्डाय नमः, ॐ एकदंष्ट्राय नमः, ॐ महोदराय नमः,
ॐ गजास्याय नमः, ॐ लम्बोदराय नमः, ॐ विकटाय नमः,
ॐ विघ्नराजाय नमः, ॐ धूम्रवर्णाय नमः

इन मन्त्रों से वक्रतुण्ड आदि का पूजन कर मूलमन्त्र के साथ 'अभिष्टसिद्धिं मे देहि ... से **तृतीयावरणार्चनम्**' पर्यन्त मन्त्र पढ़ कर तृतीय पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तत्पश्चात् अष्टदल के अग्रभाग में - ॐ इन्द्राय नमः पूर्वे,
ॐ अग्नये नमः आग्नये, ॐ यमाय नमः दक्षिणे, ॐ निर्ऋतये नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ वरुणाय नमः पश्चिमे, ॐ वायवे नमः वायव्ये, ॐ सोमाय नमः उत्तरे,
ॐ ईशानाय नमः ऐशान्ये, ॐ ब्रह्मणे नमः आकाशे, ॐ अनन्ताय नमः पाताले

काम्यप्रयोगसाधनम्

ततः सिद्धे मनौ काम्यान् प्रयोगान् साधयेन्निजान्।
ब्रह्मचर्यरतो मन्त्री जपेद् रविसहस्त्रकम् ॥ १६ ॥
षण्मासमध्याद्दारिद्र्यं नाशयत्येव निश्चितम्।
चतुर्थ्यादिचतुर्थ्यन्तं जपेद्दशसहस्त्रकम् ॥ २० ॥
प्रत्यहं जुहुयादष्टोत्तरं शतमतन्द्रितः।
पूर्वोक्तं फलमाप्नोति षण्मासाद्भक्तितत्परः ॥ २१ ॥
आज्याक्तान्नस्य होमेन भवेद्धनसमृद्धिमान्।
पृथुकैर्नारिकेलैर्वा मरिचैर्वा सहस्त्रकम् ॥ २२ ॥
प्रत्यहं जुह्वतो मासाज्जायते धनसञ्चयः।
जीरसिन्धुमरीचाक्तैरष्टद्रव्यैः सहस्त्रकम् ॥ २३ ॥

प्रयोगानाह – **ब्रह्मेति** ॥ १६–२४ ॥

इन मन्त्रों से दश दिक्पालों की पूजा कर मूल मन्त्र पढते हुए 'अभिष्टसिद्धिं ... से **चतुर्थावरणार्चनम्**' पर्यन्त मन्त्र पढ कर चतुर्थपुष्पाञ्जलि समर्पित करे ।

तदनन्तर अष्टदल के अग्रभाग के अन्त में

ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डाय नमः,
ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशााय नमः,ॐ अंकुशाय नमः,
ॐ गदायै नमः, ॐ त्रिशूलाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ पद्माय नमः

इन मन्त्रों से दशदिक्पालों के वज्रादि आयुधों की पूजा कर मूलमन्त्र के साथ ' अभीष्टसिद्धिं... से ले कर **पञ्चमावरणार्चनम्**' पर्यन्त मन्त्र पढ कर पञ्चम पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए । इसके पश्चात् २.७ श्लोक में कही गई विधि के अनुसार ६ लाख जप, दशांश हवन, दशांश अभिषेक, दशांश ब्राह्मण भोजन कराने से पुरश्चरण पूर्ण होता है और मन्त्र की सिद्धि हो जाती है ॥ १५-१८ ॥

इसके बाद मन्त्र सिद्धि हो जाने पर काम्य प्रयोग करना चाहिए - यदि साधक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये प्रतिदिन १२ हजार मन्त्रों का जप करे तो ६ महीने के भीतर निश्चितरूप से उसकी दरिद्रता विनष्ट हो सकती है । एक चतुर्थी से दूसरी चतुर्थी तक प्रतिदिन दश हजार जप करे और एकाग्रचित्त हो प्रतिदिन एक सौ आठ आहुति देता रहे तो भक्तिपूर्वक ऐसा करते रहने से ६ मास के भीतर पूर्वोक्त फल (दरिद्रता का विनाश) प्राप्त हो जाता है ॥ १६-२१ ॥

घृत मिश्रित अन्न की आहुतियाँ देने से मनुष्य धन धान्य से समृद्ध हो जाता है । चिउड़ा अथवा नारिकेल अथवा मरिच से प्रतिदिन एक हजार आहुति देने से एक महीने के भीतर बहुत बड़ी सम्पत्ति प्राप्त होती है । जीरा, सेंधा नमक एवं काली मिर्च से मिश्रित

जुह्वन्प्रतिदिनं पक्षात् स्यात् कुबेर इवार्थवान् ।
चतुःशतं चतुश्चत्वारिंशदाढ्यं दिनेदिने ॥ २४ ॥
तर्पयेन् मूलमन्त्रेण मण्डलादिष्टमाप्नुयात् ।

मन्त्रान्तरकथनम्

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये साधकानां निधिप्रदम् ॥ २५ ॥
रायस्पोषभृगुर्याढ्यो ददितामेषसात्वतौ ।
सदृशौ दोरत्नधातुमान् रक्षो गगनं रतिः ॥ २६ ॥
ससद्या बलशार्ङ्गी खं नोषडक्षरसंयुतः ।

अभीष्टप्रदायकएकत्रिंशद्वर्णात्मको मन्त्रः

ऐकत्रिंशद्वर्णयुक्तो[1] मन्त्रोऽभीष्टप्रदायकः ॥ २७ ॥
सायकैस्त्रिभिरष्टाभिश्चतुर्भिः पञ्चभी रसैः ।
मन्त्रोत्थितैः क्रमाद्वर्णैः षडङ्गं समुदीरितम् ॥ २८ ॥

मण्डलादेकोनपञ्चाशद्दिनमध्ये इष्टं प्राप्नुयात् ॥ २५ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **रायस्पोषेति** । स्वरूपं भृगुः सः । याढ्यो यकारयुतः । मेषो न् सात्वतो ध् । तौ सदृशौ इयुतौ । गगनं हः । रतिर्णः । ससद्या ओयुताः । शार्ङ्गी गः । खं हः अन्यत्स्वरूपम् । षडक्षरः पूर्वोक्तः यथा – 'रायस्पोषस्य ददिता निधि दोरत्नधातुमान् रक्षोहणो बलगहनो वक्रतुण्डाय हुम्' इत्येकत्रिंशद्वर्णः ॥ २६–२७ ॥ *॥ २८ ॥

अष्टद्रव्यों से प्रतिदिन एक हजार आहुति देने से व्यक्ति एक ही पक्ष (१५ दिनों) में कुबेर के समान धनवान् हो जाता है । इतना ही नहीं प्रतिदिन मूलमन्त्र से ४४४ बार तर्पण करने से मनुष्यों को मनो वाञ्छित फल की प्राप्ति हो जाती है ॥ २२-२५ ॥

अब साधकों के लिए **निधिप्रदान करने वाले अन्य मन्त्र** को बतला रहा हूँ ॥ २५ ॥

'रायस्पोष' शब्द के आगे भृगु (स) जो 'य' से युक्त हो (अर्थात् स्य), फिर 'ददिता', पश्चात् इकार युक्त मेष (नि) तथा इकार युक्त ध (धि) (निधि), तत्पश्चात् 'दो रत्नधातुमान् रक्षो' तदनन्तर गगन (ह), सद्य (ओ) से युक्त रति (ण) (अर्थात् हणो), फिर 'बल' तथा शार्ङ्गी (ग) खं (ह), तदनन्तर 'नो' फिर अन्त में षडक्षर मन्त्र (वक्रतुण्डाय हुम्) लगाने से ३१ अक्षरों का मन्त्र बन जाता है, जो मनोवाञ्छित फल प्रदान करता है ॥ २६-२७ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'रायस्पोषस्य ददिता निधिदो रत्नधातुमान् रक्षोहणो बलगहनो वक्रतुण्डाय हुम्' ॥ २६-२७ ॥

इस मन्त्र के क्रमशः ५, ३, ८, ४, ५, एवं षडक्षरों से षडङ्गन्यास कहा गया है । इसके ऋषि,

---

१. रायस्पोषस्य ददिता निधिदो रत्नधातुमान् रक्षोहणो वलगहनो वक्रतुण्डाय हुम्।

ऋष्याद्यर्चाप्रयोगाः स्युः पूर्ववन्निधिदो ह्ययम् ।

षडक्षरोऽपरोमन्त्रः

पद्मनाभयुतो [1]भानुर्मेघासद्यसमन्विता ॥ २६ ॥
लकावनन्तमारूढौ वायुः पावकमोहिनी ।
षडक्षरोऽयमादिष्टो भजतामिष्टदो मनुः ॥ ३० ॥
पूर्ववत् सर्वमेतस्य समाराधनमीरितम् ।

नवाक्षरो मन्त्रः

लकुलीदृशमारूढौ भृगुतौ लोहितः सदृक् ॥ ३१ ॥

पूर्ववत् षड्वर्णवत् ॥ २६ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **पद्मेति** । भानुर्मः । पद्मनाभ ए । तद्युतः मे घाघः । सद्य ओ । तद्युतालकौ लकारककारौ । अनन्तमाकारमारूढौ । वायुर्यः । पावकगेहिनी स्वाहा । मेघोल्काय स्वाहेति षड्वर्णः ॥ ३० ॥ मन्त्रान्तरमाह – **लकुलीति** । लकुली हकारः । भृगुतौ सकारतकारौ दृशमारूढौ इकारयुतौ तेनस्ति । लोहितः पः सदृक्इयुतः । वकः शः। सदीर्घः आयुतः । च स्वरूपम् । साक्षी इयुतः । लिखे स्वरूपं शिरोन्तिमः स्वाहान्तः। हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहेति नवार्णः ॥ ३१–३२ ॥

छन्द, देवता, तथा पूजन का प्रकार पूर्ववत् है; यह मन्त्र निधि प्रदान करता है ॥ २८-२६ ॥

विमर्श - विनियोग की विधि - अस्य श्रीगणेशमन्त्रस्य भार्गवऋषिः अनुष्टुपूछन्दः गणेशो देवता वं बीजं यं शक्तिः अभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास की विधि - भार्गवऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुपूछन्दसे नमः मुखे, गणेशदेवतायै नमः हृदि, वं बीजाय नमः गुह्ये, यं शक्तये नमः पादयोः ।

करन्यास एवं षडङ्गन्यास की विधि - रायस्पोषस्य अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ददिता तर्जनीभ्यां नमः, निधिदो रत्नधातुमान् मध्यमाभ्यां नमः, रक्षोहणो अनामिकाभ्यां नमः, बलगहनो कनिष्ठिकाभ्यां नमः, वक्रतुण्डाय हुं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, इसी प्रकार हृदयादि स्थानों में षडङ्गन्यास करना चाहिए ।

तदनन्तर पूर्वोक्त - २. ६ श्लोक द्वारा ध्यान करना चाहिए ।

इस मन्त्र की भी जपसंख्या ६ लाख है । नित्यार्चन एवं हवन विधि पूर्ववत् (२. ७-१६) विधि से करना चाहिए ॥ २८-२६ ॥

गणेश जी का अन्य **षडक्षर मन्त्र** इस प्रकार है -

पद्मनाभ (ए) से युक्त भानु म (मे), सद्य (ओ) के सहित घ (घो), दीर्घ आकार के सहित ल् और ककार (ल्का) फिर वायु (य) और अन्त में पावकगेहिनी (स्वाहा)

---

1. मेघोल्काय स्वाहा ।

वकः सदीर्घश्चः साक्षिर्लिखेन्मन्त्रः शिरोन्तिमः ।
नवाक्षरो[1] मनुश्चास्य कङ्कोलः परिकीर्तितः ॥ ३२ ॥
विराट्छन्दो देवता तु स्याद्वै चोच्छिष्टनायकः ।

पञ्चाङ्गन्यासकथनम्

द्वाभ्यां त्रिभिर्द्वयेनाथ द्वाभ्यां सकलमन्त्रतः ॥ ३३ ॥
पञ्चाङ्गान्यस्य कुर्वीत ध्यायेत्तं [2]शशिशेखरम् ।

उच्छिष्टविनायकध्यानम्

चतुर्भुजं रक्ततनुं त्रिनेत्रं
पाशांकुशौ मोदकपात्रदन्तौ ।
करैर्दधानं सरसीरुहस्थ-
मुन्मत्तमुच्छिष्टगणेशमीडे ॥ ३४ ॥

पञ्चाङ्गमाह – **द्वाभ्यामिति** । हस्तिहृदयाय नम इत्यादि ॥ ३३ ॥ ध्यानमाह – **चतुर्भुजमिति** । अंकुशमोदकपात्रे दक्षयोः अन्ययोरन्ये ॥ ३४–३६ ॥

लगाने से निष्पन्न होता है यह षडक्षर मन्त्र साधक के लिए सर्वाभीष्टप्रदाता कहा गया है । पुरश्चरण, अर्घ तथा होमादि का विधान पूर्ववत् (२. ७-२०) है ॥ २८-३१ ॥

विमर्श – इस षडक्षर **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'मेघोल्काय स्वाहा' ॥ ३१ ॥

अब **उच्छिष्ट गणपति मन्त्र** का उद्धार कहते हैं - लकुली (ह) 'इ' के साथ भृगु (स) एवं त अर्थात् 'स्ति' सदृक 'इ' के सहित लोहित 'प' अर्थात् पि, दीर्घ के सहित वक (श) अर्थात् 'शा' साक्षि 'इ' से युक्त च (चि), फिर लिखे अन्त में शिर (स्वाहा) लगाने से नवाक्षर मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ३१-३२ ॥

विमर्श – **मन्त्र का स्वरूप** - 'ॐ हस्ति पिशाचि लिखे स्वाहा' ॥ ३१-३२ ॥

इस मन्त्र के कङ्कोल ऋषि विराट्छन्द उच्छिष्ट गणपति देवता कहे गये हैं । मन्त्र के दो, तीन, दो, दो अक्षरों से न्यास के पश्चात् सम्पूर्ण मन्त्र से पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिए - तदनन्तर उच्छिष्ट गणपति की पूजा करनी चाहिए ॥ ३२-३४ ॥

विनियोग - अस्योच्छिष्टगणपतिमन्त्रस्य कङ्कोल ऋषिर्विराट्छन्दः उच्छिष्टगणपति-र्देवता सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः । **पञ्चाङ्गन्यास** - यथा - ॐ हस्ति हृदयाय नमः, ॐ पिशाचि शिरसे स्वाहा, ॐ लिखे शिखायै वौषट्, ॐ स्वाहा कवचाय हुम्, ॐ हस्ति पिशाचि लिखे स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ३१-३४ ॥

पञ्चाङ्गन्यास करने के बाद **उच्छिष्ट गणपति का ध्यान** इस प्रकार करना चाहिए - मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करने वाले चार भुजाओं एवं तीन नेत्रों वाले महागणपति का मैं ध्यान करता हूँ । जिनके शरीर का वर्ण रक्त है, जो कमलदल पर विराजमान हैं,

१. हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा । २. गणेशम् ।

पुरश्चरणविधानम्

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः ।
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे विधिनोच्छिष्टविघ्नपम् ॥ ३५ ॥
आदावङ्गानि सम्पूज्य ब्राह्म्याद्यान्दिक्षु पूजयेत् ।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी परा ॥ ३६ ॥
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डारमया सह ।
ककुप्सु वक्रतुण्डाद्यान्दशसु प्रतिपूजयेत् ॥ ३७ ॥
वक्रतुण्डैकदंष्ट्रौ च तथा लम्बोदराभिधः ।
विकटो धूम्रवर्णश्च विघ्नश्चापि गजाननः ॥ ३८ ॥
विनायको गणपतिर्हस्तिदन्ताभिधोन्तिमः ।
इन्द्राद्यानपि वज्राद्यान्पूजयेदावृतिद्वये ॥ ३६ ॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान् कर्तुमर्हति ।

काम्यप्रयोगकथनम्

स्वाङ्गुष्ठप्रतिमां कृत्वा कपिना सितभानुना ॥ ४० ॥

प्रयोगनाह – स्वेति । कपिना रक्तचन्दनेन । सितभानुना श्वेतार्क्केण वा प्रतिमाकार्या ॥ ४०–४२ ॥

जिनके दाहिने हाथों में अङ्कुश एवं मोदक पात्र तथा बायें हाथ में पाश एवं दन्त शोभित हो रहे हैं, मैं इस प्रकार के उन्मत्त उच्छिष्ट गणपति भगवान् का ध्यान करता हूँ ॥ ३४ ॥

अब उच्छिष्ट गणपति मन्त्र की **पुरश्चरण विधि** कहते हैं - इस मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए, तदनन्तर तिलों से उसका दशांश होम करना चाहिए । पूर्वोक्त (२. ६-२०) विधान से पीठ पर उच्छिष्ट गणपति का पूजन करना चाहिए ॥ ३५ ॥

सर्वप्रथम अङ्गों का पूजन कर आठों दिशाओं में ब्राह्मी से ले कर रमा पर्यन्त अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिए । ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा एवं रमा ये आठ मातृकायें हैं । पुनः दशदिशाओं में वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, लम्बोदर, विकट, धूम्रवर्ण, विघ्न, गजानन, विनायक, गणपति एवं हस्तिदन्त का पूजन करना चाहिए, तदनन्तर दो आवरणों में इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन करना चाहिए। इस प्रकार पुरश्चरण द्वारा मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक में काम्य - प्रयोग की योग्यता हो जाती है ॥ ३६-४० ॥

विमर्श - ३५ श्लोक में कहे गये पीठ पूजा के लिए आधारशक्ति पूजा, मूल मन्त्र से देवता की मूर्ति की कल्पना, ध्यान, तदनन्तर आवाहनादि पूजोपचारादि विधि २. ६ -१८ के अनुसार करनी चाहिए ।

पूर्व आदि आठ दिशाओं में अष्टमातृका पूजा विधि

ॐ ब्राह्म्यै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः, ॐ कौमार्यै नमः,

गणेशप्रतिमां रम्यामुक्तलक्षणलक्षिताम् ।
प्रतिष्ठाप्य विधानेन मधुना स्नापयेच्च ताम् ॥ ४१ ॥
आरभ्य कृष्णभूतादि यावच्छुक्लाचतुर्दशी ।
सगुडं पायसं तस्मै निवेद्य प्रजपेन्मनुम् ॥ ४२ ॥
सहस्रं प्रत्यहं तावत् जुहुयात् सघृतैस्तिलैः ।
गणेशोऽहमिति ध्यायन्नुच्छिष्टोनावृतो रहः ॥ ४३ ॥
पक्षाद्राज्यमवाप्नोति नृपजोऽन्योऽपि वा नरः ।
कुलालमृत्स्ना प्रतिमा पूजितैवं सुराज्यदा ॥ ४४ ॥
वल्मीकमृत्कृता लाभमेवमिष्टान् प्रयच्छति ।
गौडी सौभग्यदा सैवं लावणी क्षोभयेदरीन् ॥ ४५ ॥

अनावृतो निर्वस्त्रः ॥ ४३-४४ ॥ वल्मीकमृत्तिकाप्रतिमैवं पूजितालाभमेवेति

ॐ वैष्णव्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ इन्द्राण्यै नमः,
ॐ चमुण्डायै नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः ।

पुनः पूर्वादि दश दिशाओं में - ॐ वक्रतुण्डाय नमः, ॐ एकदंष्ट्राय नमः,
ॐ लम्बोदराय नमः, ॐ विकटाय नमः, ॐ धूम्रवर्णाय नमः,
ॐ विघ्नाय नमः, ॐ गजाननाय नमः, ॐ विनायकाय नमः,
ॐ गणपतये नमः, ॐ हस्तिदन्ताय नमः

इन मन्त्रों से दश दिग्दलों में पुनः उसके बाहर इन्द्रादि दश दिक्पालों तथा उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए (द्र० २. १७-१८) । इस प्रकार उक्त विधि से मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक में विविध काम्य प्रयोग करने की क्षमता आ जाती है ॥ ३६-४० ॥

अब **काम्य प्रयोग का विधान** करते हैं - साधक कपि (रक्त चन्दन) अथवा सितभानु (श्वेत अर्क) की अपने अङ्गुष्ठ मात्र परिमाण वाली गणेश की प्रतिमा का निर्माण करे । जो मनोहर एवं उत्तम लक्षणों से युक्त हो तदनन्तर विधिपूर्वक उसकी प्राणप्रतिष्ठा कर उसे मधुसे स्नान करावे ॥ ४०-४१ ॥

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी से शुक्लपक्ष की चतुर्दशी पर्यन्त गुड़ सहित पायस का नैवेद्य लगा कर इस मन्त्र का जप करे ॥ ४२ ॥

यह क्रिया प्रतिदिन एकान्त में उच्छिष्ट मुख एवं वस्त्र रहित हो कर, 'मैं स्वयं गणेश हूँ' इस भावना के साथ करे । घी एवं तिल की आहुति प्रतिदिन एक हजार की संख्या में देता रहे तो इस प्रयोग के प्रभाव से पन्द्रह दिन के भीतर प्रयोगकर्ता व्यक्ति अथवा राजकुल में उत्पन्न हुआ व्यक्ति राज्य प्राप्त कर लेता है । इसी प्रकार कुम्हार के चाक की मिट्टी की गणेश प्रतिमा बना कर पूजन तथा हवन करने से राज्य अथवा नाना प्रकार की संपत्ति की प्राप्ति होती है ॥ ४३-४४ ॥

बॉबी की मिट्टी की प्रतिमा में उक्त विधि से पूजन एवं होम करने से अभिलषित

निम्बजा नाशयेच्छत्रून्प्रतिमैवं समर्चिता ।
[1]मध्वक्तैर्होमतो लाजैर्वशयेदखिलं जगत् ॥ ४६ ॥
सुप्तोधिशय्यमुच्छिष्टो जपञ्छत्रून्वशं नयेत् ।
कटुतैलान्वितै राजीपुष्पैर्विद्वेषयेदरीन् ॥ ४७ ॥
द्यूते विवादे समरे जप्तोऽयं जयमावहेत् ।
कुबेरोऽस्य मनोर्जापान्निधीनां स्वामितामियात् ॥ ४८ ॥
लेभाते राज्यमनरिं वानरेशविभीषणौ ।
रक्तवस्त्राङ्गरागाढ्यस्ताम्बूलं निश्यदञ्जपेत् ॥ ४९ ॥
यद्वा निवेदितं तस्मै मोदकं भक्षयञ्जपेत् ।
पिशितं वा फलं वापि तेन तेन बलिं हरेत् ॥ ५० ॥

एकोनविंशतिवर्णात्मको बलिदानमन्त्रः

सेन्दुः स्मृतिस्तथाकाशं मन्विन्द्वाढ्यौ च सृष्टिलौ ।
पञ्चान्तकशिवौ तद्वदुच्छिष्टगभगान्वितः ॥ ५१ ॥

॥ ४५ ॥ *॥ ४६ ॥ अधिशय्यं शय्यायाम् । कटुतैलं सर्षपतैलम् ॥ ४७–४८ ॥ अनरि शत्रुहीनम् ॥ ४९॥ तेन ताम्बूलादिना ॥ ५० ॥ बलि मन्त्रमाह – स्मृतिर्गः । सेन्दुस्सानुस्वारः । आकाशं हः । तथासानुस्वारः । सृष्टिलौ ककारलकारौ ।

सिद्धि होती है; गौडी (गुड़ निर्मित) प्रतिमा में ऐसा करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है, तथा लावणी प्रतिमा शत्रुओं को विपत्ति से ग्रस्त करती है ॥ ४५ ॥

निम्बनिर्मित प्रतिमा में उक्त विधि से पूजन जप एवं होम करने से शत्रु का विनाश होता है, और मधुमिश्रित लाजा का होम सारे जगत् को वश में करने वाला होता है ॥ ४६ ॥

शय्या पर सोये हुये उच्छिष्टावस्था में जप करने से शत्रु वश में हो जाते हैं । कटुतैल में मिले राजी पुष्पों के हवन से शत्रुओं में विद्वेष होता है ॥ ४७ ॥

द्यूत, विवाद एवं युद्ध की स्थिति में इस मन्त्र का जप जयप्रद होता है । इस मन्त्र के जप के प्रभाव से कुबेर नौ निधियों के स्वामी हो गये । इतना ही नहीं, विभीषण और सुग्रीव को इस मन्त्र का जप करने से राज्य की प्राप्ति हो गई । लाल वस्त्र धारण कर लाल अङ्गराग लगा कर तथा ताम्बूल चर्वण करते हुए रात्रि के समय उक्त मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ ४८-४९ ॥

अथवा गणेश जी को निवेदित लड्डू का भोजन करते हुए इस मन्त्र का जप करना चाहिए और मांस अथवा फलादि किसी वस्तु की बलि देनी चाहिए ॥ ५० ॥

अब **बलि के मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - सानुस्वार स्मृति (गं), इन्दुसहित आकाश

---

१. घृतमधुशर्करात्तैः ।

उमाकान्तःशायमान्ते हायक्षायासबिन्दुयः ।
बलिरित्येष कथितो नवेन्द्वर्णो बलेर्मनुः ॥ ५२ ॥

द्वादशार्णोऽपरो मन्त्रः

ध्रुवो माया सेन्दुशार्ङ्गिगर्बीजाढ्यो नववर्णकः ।
द्वादशार्णो मनुः प्रोक्तः सर्वमस्य नवार्णवत् ॥ ५३ ॥

नवार्णमन्त्रस्य दशवर्णात्मकद्वैविध्यम्

ताराद्यश्च गणेशाद्यो नवार्णो दशवर्णकः ।
द्विविधोस्योपासनं तु प्रोक्तमन्यन्नवार्णवत् ॥ ५४ ॥

कीदृशौ मन्विन्द्वाढ्यौ औकारानुस्वारयुतौ । तेन क्लौं । पञ्चान्तकशिवौ गकारलकारौ तद्वन्मन्विन्द्वाढ्यौ ग्लौं । उच्छिष्टग स्वरूपम् । भगान्वितः उमाकान्तः । एकारयुतो णः णे ॥ सबिन्दुर्यः सानुस्वारो यकारः । अन्यत्स्वरूपम् । मन्त्रो यथा – गं हं क्लौं ग्लौं उच्छिष्टगणेशाय महायक्षायायं बलिः इत्येकोनविंश–त्यर्णो बलिमन्त्रः ॥ ५१–५२ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **ध्रुव इति** । ध्रुव ॐ। माया ह्रीं । शार्ङ्गी गः सेन्दुः अनुस्वारसहितः । गं त्रिबीजाढ्यः । स्पष्टम् । यथा – ॐ ह्रीं गं हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहेति द्वादशार्णः ॥ ५३ ॥ ताराद्यो यथा । ॐ हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा । गणेशाद्यो यथा - गं हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा ॥ ५४ ॥

(हं), अनुस्वार एवं औकार युक्त ककार लकार (क्लौं), उसी प्रकार गकार लकार (ग्लौं), तदनन्तर 'उच्छिष्टग' फिर एकार युक्त ण (णे), फिर 'शाय' पद, फिर 'महायक्षाया' तदनन्तर (यं) और अन्त में 'बलिः' लगाने से १६ अक्षरों का बलिदान मन्त्र बनता है ।

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - गं हं क्लौं ग्लौं उच्छिष्टगणेशाय महायक्षायायं बलिः ॥ ५१-५२ ॥

अब **उच्छिष्ट गणपति का अन्य मन्त्र** कहते हैं - ध्रुव (ॐ), माया (ह्रीं) तथा अनुस्वार युक्त शार्ङ्गिः (गं) ये तीन बीजाक्षर नवार्णमन्त्र के पूर्व जोड़ देने से द्वादशाक्षर मन्त्र बन जाता है, इसका विनियोग न्यास ध्यान आदि नवार्णमन्त्र के समान ही समझना चाहिए (द्र० २. ३१-३६) ।

विमर्श - द्वादशाक्षर मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ ह्रीं गं हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा ॥ ५३ ॥

आदि में तार (ॐ) इसके पश्चात् नवार्णमन्त्र लगा देने से, अथवा गं इसके पश्चात् नवार्ण मन्त्र लगा देने से दो प्रकार का दशाक्षर गणपति का मन्त्र निष्पन्न होता है - उक्त दोनों मन्त्रों में भी नवार्ण मन्त्र की ही तरह विनियोग न्यास तथा ध्यान का विधान कहा गया है ॥ ५४ ॥

एकोनविंशतिवर्णात्मकउच्छिष्टविनायकमन्त्रः

ध्रुवो हृदुच्छिष्टगणेशाय ते तु नवाक्षरः ।
एकोनविंशत्यर्णाढ्यो मनुर्मुन्यादिपूर्ववत् ॥ ५५ ॥
त्रिभिः सप्तभिरक्षिभ्यां त्रिभिर्द्वाभ्यां द्वयेन च ।
मन्त्रोत्थितैः सुधीर्वर्णैः कुर्यादङ्गं पुरार्चनम् ॥ ५६ ॥

धनधान्याद्यतुलयशोदाता–सप्तत्रिंशदक्षरात्मकउच्छिष्टगणनाथमन्त्रः

तारो नमो भगवते झिण्टीशश्चतुराननः ।
दंष्ट्राय हस्तिमुच्चार्य खाय लम्बोदराय च ॥ ५७ ॥
उच्छिष्टमवियद्दीर्घात्मने पाशोंकुशः परा ।
सेन्दुः शार्ङ्गीः भगयुते द्वे मेधे वह्निकामिनी ॥ ५८ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **ध्रुवेति** । ध्रुवः प्रणवः हृन्नमः स्वरूपमन्यत् । मन्त्रः – ॐ नम उच्छिष्टगणेशाय हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा इत्येकोनविंशतिवर्णः । मुन्यादीति। ऋषिश्छन्दो देवताः नवार्णवत् ॥ ५५ ॥ षडङ्गमाह – **त्रिभिरिति** । अर्चनं पुरा पूर्ववदित्यर्थः ॥ ५६ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **तार इति** ॥ झिण्टीशः ए । चतुराननः कः । दीर्घं वियत् हा । पाश आं । अंकुशः क्रों परा ह्रीं । सेन्दुशार्ङ्गी गं । भगयुते द्वे

विमर्श - दशाक्षर मन्त्र - (१) ॐ हस्तिपिशचिलिखे स्वाहा
(२) गं हस्तिपिशाचिलिखे स्वाहा ॥ ५४ ॥

अव **एकोनविंशाक्षर मन्त्र का उद्धार** करते हैं - ध्रुव (ॐ), हृद् (नमः), फिर 'उच्छिष्ट गणेशाय' तदनन्तर नवार्णमन्त्र (२. ३१) लगा देने से उन्नीस अक्षरों का मन्त्र बनता है । इसके भी ऋषि, छन्द, देवता आदि पूर्वोक्त नवार्णमन्त्र के समान हैं ॥ ५५ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ नमः उच्छिष्टगणेशाय हस्तिपिशाचि लिखे स्वाहा' ॥ ५५ ॥

मन्त्र के ३, ७, २, ३, २ एवं २ अक्षरों से षडङ्गन्यास एवं अङ्गपूजा पूर्ववत् करनी चाहिए ॥ ५६ ॥

विमर्श - विनियोग - ॐ अस्योच्छिष्टगणपतिमन्त्रस्य कङ्कोलऋषिः विराट्छन्दः उच्छिष्टगणपतिर्देवता आत्मनः अभीष्टसिद्धयर्थे उच्छिष्टगणपति मन्त्र जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यासः - ॐ नमः हृदयाय नमः, ॐ उच्छिष्टगणेशाय शिरसे स्वाहा,
ॐ हस्ति शिखायै वषट्, ॐ पिशाचि कवचाय हुम्,
ॐ लिखे नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

ध्यान - चतुर्भुजं रक्ततनुमित्यादि .... (द्र० २. ३४) ॥ ५६ ॥

अब ३७ **अक्षरों का उच्छिष्ट गणपति का मन्त्र** कहते हैं - तार (ॐ),

उच्छिष्टगणनाथस्य मनुरद्रिगुणाक्षरः ।
गणको मुनिराख्यातो गायत्रीच्छन्द ईरितः ॥ ५६ ॥
उच्छिष्टगणपो देवो जपेदुच्छिष्ट एव तम् ।
सप्तदिग्बाणसप्ताब्धियुगार्णैरङ्गकं मनोः ॥ ६० ॥

ध्यानम्

शरान्धनुः पाशसृणीस्वहस्तै
र्दधानमारक्तसरोरुहस्थम् ।
विवस्त्रपत्न्यां सुरतप्रवृत्त
मुच्छिष्टमम्बासुतमाश्रयेऽहम् ॥ ६१ ॥

मेधे। एकारयुत घद्वयम् । वह्निकामिनी स्वाहा । अन्यत्स्वरूपम् । ॐ नमो भगवते एकदंष्ट्राय हस्तिमुखाय लम्बोदराय उच्छिष्टमहात्मने आँ क्रों ह्रीं गं घे घे स्वाहा । अद्रिगुणाक्षरः सप्तत्रिंशदक्षरः ॥ ५७–५६ ॥ षडङ्गमाह – **सप्तेति** ॥ ६० ॥ ध्यानमाह – **शरानिति** । धनुःपाशौ वामयोः । शरांकुशौ दक्षयोः ॥ ६१ ॥ * ॥ ६२ ॥

तदनन्तर 'नमोभगवते', फिर झिण्टीश (ए), चतुरानन (क), फिर 'दंष्ट्राहस्तिमु' फिर 'खाय', 'लम्बोदराय', फिर 'उच्छिष्टम' तदनन्तर दीर्घवियत् (हा), फिर 'त्मने' पाश (आ), अङ्कुश (क्रौं), परा (ह्रीं) सेन्दुशाङ्गीं (गं) भगसहित द्विमेघ (घे घे) इसके अन्त में वह्निकामिनी (स्वाहा) लगाने से ३७ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न हो जाता है ॥ ५७-५६ ॥

इस मन्त्र के गणक ऋषिः गायत्री छन्द एवं उच्छिष्ट गणपति देवता हैं । उच्छिष्टमुख से ही इनके जप का विधान है । मन्त्र के यथाक्रम ७, १०, ५, ७, ४ एवं ४ अक्षरों से षडङ्गन्यास एवं अङ्गपूजा करनी चाहिए ॥ ५६-६० ॥

विमर्श - सैंतिस अक्षरों के **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ नमो भगवते एकदंष्ट्राय हस्तिमुखाय लम्बोदराय उच्छिष्टमहात्मने आँ क्रौं ह्रीं गं घे घे स्वाहा ।

विनियोग - अस्योच्छिष्टगणपति मन्त्रस्य गणकऋषिर्गायत्रीच्छन्दः उच्छिष्टगणपतिर्देवता आत्मनोऽभीष्टसिद्धये उच्छिष्टगणपतिमन्त्रजपे विनियोगः ।

ध्यान - उच्छिष्टगणपति का ध्यान आगे के श्लोक २. ६१ में देखिए ।

षडङ्गन्यास - ॐ नमो भगवते हृदयाय नमः, ॐ एकदंष्ट्राय हस्तिमुखाय शिरसे स्वाहा,
ॐ लम्बोदराय शिखायै वषट्, ॐ उच्छिष्टमहात्मने कवचाय हुम्,
ॐ आँ ह्रीं क्रौं गं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ घे घे स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ५७-६० ॥

अब इस मन्त्र के **पुरश्चरण के लिए ध्यान** कह रहे हैं - बायें हाथों में धनुष एवं पाश, दाहिने हाथों में शर एवं अङ्कुश धारण किए हुए लाल कमल पर आसीन विवस्त्रा अपनी पत्नी से संभोग में निरत पार्वती पुत्र उच्छिष्टगणपति का मैं आश्रय लेता हूँ ॥ ६१ ॥

पुरश्चरणकथनम्

लक्षं जपेद्घृतैर्हुत्वाद्दशांशं प्रपूजयेत् ।
पूर्वोक्तपीठे स्वाभीष्टसिद्धये पूर्ववद्विभुम् ॥ ६२ ॥
कृष्णाष्टम्यादितद्भूतं यावत्तावज्जपेन्मनुम् ।
प्रत्यहं साष्टसाहस्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ॥ ६३ ॥
तर्पयेदपि मन्त्रोऽयं सिद्धिमेवं प्रयच्छति ।
धनं धान्यं सुतान्पौत्रान् सौभाग्यमतुलं यशः ॥ ६४ ॥
मूर्तिं कुर्याद् गणेशस्य शुभाहे निम्बदारुणा ।
प्राणप्रतिष्ठां कृत्वाथ तदग्रे मन्त्रमाजपेत् ॥ ६५ ॥
च ध्यात्वा दासवत्सोऽपिवश्यो भवति निश्चितम् ।
नदीजलं समादाय सप्तविंशतिसंख्यया ॥ ६६ ॥
मन्त्रयित्वा मुखं तेन प्रक्षाल्येशसभां व्रजेत् ।
पश्येद्यं दृश्यते येन स वश्यो जायते क्षणात् ॥ ६७ ॥
चतुःसहस्रं धत्तूरपुष्पाणि मनुनार्पयेत् ।
गणेशाय नृपादीनां जनानां वश्यताकृते ॥ ६८ ॥

तद्भूतं यावत्कृष्णचतुर्दशीपर्यन्तम् ॥ ६३ ॥ * ॥ ६४–६६ ॥

अब इस मन्त्र से **पुरश्चरणविधि** कहते हैं - साधक अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए पूर्वोक्त पीठ पर उपर्युक्त विधि से पूजन कर उक्त मन्त्र का एक लाख जप करे । फिर घी द्वारा उसका दशांश हवन करे ॥ ६२ ॥

कृष्ण पक्ष की अष्टमी से ले कर चतुर्दशी पर्यन्त प्रतिदिन आठ हजार पाँच सौ की संख्या में जप, इसका दशांश (८५० की संख्या में) होम तथा उसका दशांश (८५ बार) से तर्पण करना चाहिए । ऐसा करने से यह मन्त्र सिद्धि प्रदान करता है, इतना ही नहीं धन धान्य, पुत्र, पौत्र, सौभग्य एवं सुयश भी प्राप्त होता है ॥ ६३-६४ ॥

शुभ मुहूर्त में नीम की लकड़ी से गणेश जी की मूर्ति का निर्माण करना चाहिए; तदनन्तर प्राण प्रतिष्ठित कर उसी मूर्ति के आगे जप करना चाहिए ॥ ६५ ॥

जिसका ध्यान कर जप किया जाता है वह भी निश्चित रूप से वश में हो जाता है । इतना ही नहीं, नदी का जल ले कर २७ बार इस मन्त्र से उसे अभिमन्त्रित कर उस जल से मुख प्रक्षालन कर राजसभा में जाने पर साधक इस मन्त्र के प्रभाव से जिसे देखता है या जो उसे देखता है वह तत्काल वश में हो जाता है ॥ ६६-६७ ॥

राजाओं को अथवा राजकर्मचारियों को अपने वश में करने के लिए उक्त मन्त्र के द्वारा चार हजार की संख्या में धतूरे का पुष्प श्री गणेश जी को समर्पित करना चाहिए ॥ ६८॥

सुन्दरीवामपादस्य रेणुमादाय तत्र तु ।
संस्थाप्य गणनाथस्य प्रतिमां प्रजपेन्मनुम् ॥ ६६ ॥
तां ध्यात्वा रविसाहस्रं सा समायाति दूरतः ।
श्वेतार्केणाथ निम्बेन कृत्वा मूर्तिं धृतासुकाम् ॥ ७० ॥
चतुर्थ्यां पूजयेद्रात्रौ रक्तैः कुसुमचन्दनैः ।
जप्त्वा सहस्रं तां मूर्तिं क्षिपेद्रात्रौ सरित्तटे ॥ ७१ ॥
स्वेष्टं कार्य्यं समाचष्टे स्वप्ने तस्य गणाधिपः ।
सहस्रं निम्बकाष्ठानां होमादुच्चाटयेदरीन् ॥ ७२ ॥
वज्रिणः समिधां होमाद्रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ।
वानरस्यास्थिसंजप्तं क्षिप्तमुच्चाटयेद् गृहे ॥ ७३ ॥
जप्तं नरास्थिकन्याया गृहे क्षिप्तं तदाप्तिकृत् ।
कुलालस्य मृदा स्त्रीणां वामपादस्य रेणुना ॥ ७४ ॥
कृत्वा पुत्तलिकां तस्या हृदि स्त्रीनाम संलिखेत् ।
निखनेन्मन्त्रसंजप्तैर्निम्बकाष्ठैः क्षिताविमाम् ॥ ७५ ॥
सोन्मत्ता भवति क्षिप्रमुद्धृतायां सुखं भवेत् ।
शत्रोरेवं कृता सा तु लशुनेन समन्विता ॥ ७६ ॥

धृतासुकां कृतप्राणप्रतिष्ठाम् ॥ ७० ॥ * ॥ ७१–७२ ॥ वज्रीस्नुही ॥ ७३ ॥ * ॥ ७४–७७ ॥

सुन्दरी स्त्री के बाएँ पैर की धूलि ला कर उसे गणेश प्रतिमा के नीचे स्थापित करे, फिर उस स्त्री का ध्यान कर बारह हजार की संख्या में इस मन्त्र का जप करे तो वह दूर रहने पर भी सन्निकट आ जाती है । सफेद मन्दार की लकड़ी अथवा निम्ब की लकड़ी से गणेश जी की मूर्ति का निर्माण कर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करे । तदनन्तर चतुर्थी तिथि को रात्रि में लालचन्दन एवं लाल पुष्पों से पूजन करे, तदनन्तर एक हजार उक्त मन्त्र का जप कर उसी रात्रि में उस प्रतिमा को किसी नदी के किनारे डाल दे तो गणपति स्वयं साधक के अभीष्ट कार्य को स्वप्न में बतला देते हैं । निम्बकाष्ठ की लकड़ियों की समिधा से एक हजार उक्त मन्त्र द्वारा आहुतियाँ देने से शत्रु का उच्चाटन हो जाता है ॥ ६९-७२ ॥

वज्री समिध द्वारा होम करने से शत्रु यमपुर चला जाता है वानर की हड्डी पर जप करने से उस हड्डी को जिसके घर में फेंक दिया जाता है उस घर में उच्चाटन हो जाता है ॥ ७३ ॥

यदि मनुष्य की हड्डी पर जप कर कन्या के घर में उसे फेंक देवे तो वह कन्या उसे सुलभ हो जाती है । कुम्हार के चाक की मिट्टी को स्त्री के बायें पैर की धूलि से मिला कर पुतला बनावे । फिर उसके हृदय पर प्राप्तव्य स्त्री का नाम लिखे । तदनन्तर

शरावान्तर्गता सम्यक्पूजिता द्वारि विद्विषः।
निखाता पक्षमात्रेण शत्रूच्चाटनकृत्स्मृता ॥ ७७ ॥
विषमे समनुप्राप्ते सितार्कारिष्टदारुजम्।
गणपं पूजितं सम्यक्कुसुमै रक्तचन्दनैः ॥ ७८ ॥
मद्यभाण्डस्थितं हस्तमात्रे तं निखनेत्स्थले।
तत्रोपविश्य प्रजपेन्मन्त्री नक्तं दिवा मनुम् ॥ ७६ ॥
सप्ताहमध्ये नश्यन्ति सर्वे घोरा उपद्रवाः।
शत्रवो वशमायान्ति वर्द्धन्ते धनसम्पदः ॥ ८० ॥
दुष्टस्त्री वामपादस्य रजसा निजदेहजैः।
मलैर्मूत्रपुरीषाद्यैः कुम्भकारमृदापि च ॥ ८१ ॥
एतैः कृत्वा गणेशस्य प्रतिमां मद्यभाण्डगाम्।
सम्पूज्य निखनेद् भूमौ हस्तार्द्धे पूरिते पुनः ॥ ८२ ॥
संस्थाप्य वह्निं जुहुयात्कुसुमैर्हयमारजैः।
सहस्रं सा भवेद्दासी तन्वाचमनसाधनैः ॥ ८३ ॥
एवमादिप्रयोगांस्तु नवार्णेनापि साधयेत्।

अरिष्टो निम्बः ॥ ७८ ॥ *॥ ७६–८२ ॥ हयमारजैः करवीरोत्थैः ॥ ८३ ॥

उक्त मन्त्र का जप कर उस पुतले को नीम की लकड़ी के साथ भूमि में गाड़ देवे तो वह स्त्री तत्काल उन्मत्त हो जाती है । फिर उस पुतले को जमीन से निकालने पर प्रकृतिस्थ हो स्वस्थ हो जाती है । इसी प्रकार शत्रु का पुतला बना कर उसे लशुन के साथ किसी मिट्टी के पात्र में स्थापित कर भली प्रकार से पूजन करे । फिर शत्रु के दरवाजे पर उसे गाड़ देवे तो पक्ष दिन (१५ दिन) में शत्रु का उच्चाटन हो जाता है ॥ ७४-७७ ॥

विषम परिस्थिति उत्पन्न होने पर सफेद मन्दार या नीम की लकड़ी की प्रतिमा बनावे । फिर लाल चन्दन एवं लाल फूलों से विधिवत् उसका पूजन करे, तदनन्तर उसे मद्य पात्र में रख कर जमीन में एक हाथ नीचे गाड़ कर उसके उपर बैठ कर दिन रात इस मन्त्र का जप करे तो एक सप्ताह के भीतर घोर से घोर उपद्रव नष्ट हो जाते हैं, शत्रु वश में हो जाते हैं तथा धन संपत्ति की अभिवृद्धि होती है ॥ ७८-८० ॥

दुष्ट स्त्री के बायें पैर की धूल अपने शरीर के मल मूत्र विष्टा आदि तथा कुम्हार के चाक की मिट्टी इन सबको मिला कर गणेश जी की प्रतिमा निर्माण करे । फिर उसे मद्य-पात्र में रख कर विधिवत पूजन करे । फिर जमीन में एक हाथ नीचे गाड़ कर गड्ढे को भर देवे । फिर उसके ऊपर अग्नि स्थपित कर कनेर की पुष्पों की एक हजार आहुति प्रदान करे तो वह दुष्ट स्त्री दासी के समान हो जाती है । उपरोक्त सारे प्रयोग नवार्ण मन्त्र से भी किए जा सकते हैं ॥ ८१-८४ ॥

द्वात्रिंशद् वर्णात्मकोऽपरो मन्त्रः

तारो हस्तिमुखायाथ ङेन्तो लम्बोदरस्तथा ॥ ८४ ॥
उच्छिष्टान्ते महात्माङे पाशांकुशशिवात्मभूः ।
माया वर्म्म च घे घे उच्छिष्टाय दहनाङ्गना ॥ ८५ ॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो यजनं पूर्ववन्मतम् ।
रसेषु सप्तषट्षट्क नेत्रार्णैरङ्गमीरितम् ॥ ८६ ॥
उच्छिष्टगजवक्त्रस्य मन्त्रेष्वेषु न शोधनम् ।
सिद्धादिचक्रं मासादेः प्राप्तास्ते सिद्धिदा गुरोः ॥ ८७ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **तार इति** । तारः ॐ । महात्माङे महात्मने । पाशादियुक्तम् । आत्मभूः क्लीं । माया ह्रीं । वर्म हूं । दहनाङ्गना स्वाहा । स्वरूपमन्यत् । यथा – ॐ हस्तिमुखाय लम्बोदराय उच्छिष्टमहात्मने आं क्रों ह्रीं क्लीं ह्रीं हू घे घे उच्छिष्टाय स्वाहा ॥ ८४–८५ ॥ द्वात्रिंशदर्णः । षडङ्गमाह – **रस इति** ॥ ८६ ॥ *॥ ८७ ॥

अब २२ अक्षरों वाले **गणपति के मन्त्र का उद्धार** करते हैं -

तार (ॐ) उसके बाद 'हस्तिमुखाय' फिर क्रमशः चतुर्थ्यन्त लम्बोदर (लम्बोदराय) फिर 'उच्छिष्ट' के बाद चतुर्थ्यन्त 'महात्मा' पद (उच्छिष्टमहात्मने), फिर पाश (आं), अङ्कुश (क्रौं), शिवा (ह्रीं), आत्मभूः (क्लीं), माया (ह्रीं), वर्म (हुम्) फिर 'घे घे उच्छिष्टाय' तदनन्तर दहनाङ्गना (स्वाहा) लगाने से बत्तीस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ।

इस मन्त्र का पूजन आदि पूर्वोक्त विधि (द्र० २. ६०) से करना चाहिए । मन्त्र के ६, ५, ७, ६, ६, एवं दो अक्षरों से अङ्गन्यास कहा गया है ॥ ८४-८६ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ हस्तिमुखाय लम्बोदराय उच्छिष्टमहात्मने आं क्रौं ह्रीं क्लीं ह्रीं हूं घे घे उच्छिष्टाय स्वाहा ।

विनियोग - ॐ अस्योच्छिष्टगणपतिमन्त्रस्य गणकऋषिः गायत्रीछन्दः उच्छिष्ट गणपतिर्देवता आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः (द्र० २. ५६) ।

षडङ्गन्यास - ॐ हस्तिमुखाय हृदयाय नमः, ॐ लम्बोदराय शिरसे स्वाहा, ॐ उच्छिष्टमहात्मने शिखायै वषट्, ॐ आं क्रौं ह्रीं क्लीं ह्रीं हुम् कवचाय हुम् घे घे उच्छिष्टाय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् । **ध्यान** - २. ६२ में देखिये ।

इस प्रकार न्यासादि कर पीठपूजा आवरण पूजा आदि पूर्वोक्त कार्य संपादन कर इस मन्त्र का एक लाख जप दशांश हवन, तद्दशांश तर्पण तद्दशांश मार्जन एवं तद्दशांश ब्राह्मण भोजन कराने से पुरश्चरण अर्थात मन्त्र की सिद्धि होती है ॥ ८४-८६ ॥

अब **उच्छिष्टगणपति मन्त्र की विशेषता** कहते हैं - उच्छिष्टगणपति के मन्त्रों की

मनवोऽमी सदा गोप्या न प्रकाश्या यतः कुतः ।
परीक्षिताय शिष्याय प्रदेया निजसूनवे ॥ ८८ ॥

चतुरक्षरः शक्तिविनायकमन्त्रः

माया त्रिमूर्तिचन्द्रस्थौ पञ्चान्तकहुताशनौ ।
तारादिशक्तिबीजान्तो मन्त्रोऽयं चतुरक्षरः ॥ ८९ ॥
भार्गवोऽस्य मुनिश्छन्दो विराट् शक्तिर्गणाधिप ।
देवो माया द्वितीये तु शक्तिबीजे प्रकीर्तिते ॥ ९० ॥
षड्दीर्घयुग्द्वितीयेन ताराद्येन षडङ्गकम् ।
विधाय सावधानेन मनसा संस्मरेत् प्रभुम् ॥ ९१ ॥

उच्छिष्टगणेशा उक्ताः ॥ ८८ ॥ शक्तिविनायकसंज्ञं मन्त्रान्तरमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । पञ्चान्तकहुताशनौ गकाररेफौ । त्रिमूर्तिचन्द्रस्थौ इकारानुस्वारयुक्तौ । तेन ग्रीं तारादिशक्तिबीजान्तः । प्रणवादिर्मायाबीजान्तः । यथा – ॐ ह्रीं ग्रीं ह्रीं इति चतुर्वर्णः ॥ ८९ ॥ देव इति । पूर्वेण सम्बन्धः । माया शक्तिः । द्वितीयं बीजम् ॥ ९० ॥ षडङ्गमाह – **षडिति** । ॐ ग्रां हृत् । ॐ ग्रीं शिर इत्यादि ॥ ९१ ॥

सिद्धि के लिए किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है न तो सिद्धि के लिए सिद्धिदायक चक्र की आवश्यकता है, न किसी शुभ मासादि का विचार किया जाता है । ये मन्त्र गुरु से प्राप्त होते ही सिद्धिप्रद हो जाते हैं ॥ ८७ ॥

इन मन्त्रों को सदा गोपनीय रखना चाहिए, और जैसे तैसे जहाँ तहाँ कभी इसको प्रकाशित भी नहीं करना चाहिए । भलीभाँति परीक्षा करने के उपरान्त ही अपने शिष्य एवं पुत्र को इन मन्त्रों की दीक्षा देनी चाहिए ॥ ८८ ॥

अब **शक्ति विनायक मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - प्रारम्भ में तार (ॐ) उसके बाद माया (ह्रीं), फिर त्रिमूर्ति ईकार चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त पञ्चान्तक गकार हुताशन रकार (ग्रीं) और अन्त में शक्तिबीज (ह्रीं) लगाने से चार अक्षरों का शक्ति विनायक मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ८९ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ ह्रीं ग्रीं ह्रीं ॥ ८९ ॥

इस मन्त्र के भार्गव ऋषि हैं, विराट् छन्द है, शक्ति से युक्त गणपति इसके देवता हैं। माया बीज (ह्रीं) शक्ति है तथा दूसरा ग्रीं बीज कहा गया है, प्रणव सहित द्वितीय ग्र में अनुस्वार सहित ६ दीर्घस्वरों को लगा कर षडङ्गन्यास करना चाहिए, फिर ध्यान कर एकाग्रचित्त हो कर प्रभु श्रीगणेश का जप करना चाहिए ॥ ९०-९१ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीशक्तिविनायकमन्त्रस्य भार्गवऋषिः विराट्छन्दः शक्ति गणाधिपो देवता ह्रीं शक्तिः ग्रीं बीजमात्मनोभीष्ट सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

[1]विषाणांकुशावक्षसूत्रं च पाशं
दधानं करैर्मोदकं पुष्करेण।
स्वपत्न्या युतं हेमभूषाभराढ्यं
गणेशं समुद्यद्दिनेशाभमीडे ॥ ६२ ॥
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः।
अपूपैर्जुहुयाद् वह्नौ मध्वक्तैस्तर्पयेच्च तम् ॥ ६३ ॥
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे केसरेष्वङ्गदेवताः।
दलेषु वक्रतुण्डाद्यान्ब्राह्मीत्याद्यान्दलाग्रगान्[2] ॥ ६४ ॥
ककुप्पालांस्तदस्त्राणि सिद्ध एवं भवेन्मनुः।
घृताक्तमन्नं जुहुयादावर्षादन्नवान्भवेत् ॥ ६५ ॥

ध्यानमाह – **विषाणेति** । कुशाक्षसूत्रे दक्षयोः । अन्ये वामयोः ॥ ६२–६४ ॥ ककुप्पालान् इन्द्रादीन् ॥ ६५ ॥

ऋष्यादिन्यास - ॐ भार्गवाय ऋषये नमः शिरसि, विराट्छन्दसे नमः मुखे, ॐ शक्तिगणाधिपदेवतायै नमः हृदये, ॐ ग्रीं बीजाय नमः गुह्ये, ॐ ह्रीं शक्तये नमः पादयोः ।

षडङ्गन्यास - ॐ ग्रां हृदयाय नमः, ॐ ग्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ग्रूँ शिखायै वषट्, ॐ ग्रैं कवचाय हुम, ॐ ग्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ग्रः अस्त्राय फट् ॥ ६०-६१ ॥

अब इस **मन्त्र के पुरश्चरण के लिए ध्यान** कहते हैं - दाहिने हाथों में अङ्कुश एवं अक्षसूत्र बायें हाथों में विषाण (दन्त) एवं पाश धारण किए हुए तथा सूँड़ में मोदक लिए हुए, अपनी पत्नी के साथसुवर्णरचित अलङ्कारों से भूषित उदीयमान सूर्य जैसे आभा वाले गणेश की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ६२ ॥

अब **पुरश्चरण का प्रकार** कहते हैं - इस प्रकार ध्यान कर उक्त मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर मधुयुक्त अपूपों से दशांश होम करना चाहिए । फिर उसका दशांश तर्पणादि करना चाहिए ॥ ६३ ॥

पूर्वोक्त पीठ पर तथा केसरों में अङ्गदेवताओं का पूजन करना चाहिए । दलों में वक्रतुण्ड आदि का तथा दल के अग्रभाग में ब्राह्मी आदि मातृकाओं का, फिर दशों दिशाओं में दश दिक्पालों का, तदनन्तर उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार यन्त्र पर पूजन कर मन्त्र का पुरश्चरण करने से मन्त्र की सिद्धि होती है - (द्र० २. ८-१८) ॥ ६४-६५ ॥

अब गणेश प्रयोग में **विविध पदार्थों के होम का फल** कहते हैं - घृत सहित अन्न की आहुतियाँ देने से साधक अन्नवान हो जाता है, पायस के होम से लक्ष्मी प्राप्ति तथा

---

१. दन्त० ।
२. शुण्डाग्रेण ।

परमान्नैर्हुता लक्ष्मीरिक्षुदण्डैर्नृपश्रियः ।
रम्भाफलैर्नारिकेलैः पृथुकैर्वश्यता भवेत् ॥ ६६ ॥
घृतेन धनमाप्नोति लवणैर्मधुसंयुतैः ।
वामनेत्रां वशीकुर्यादपूपैः पृथिवीपतिम् ॥ ६७ ॥

अष्टाविंशत्यर्णात्मको लक्ष्मीगणेशमन्त्रः

तारो रमा चन्द्रयुक्तः खान्तः सौम्या समीरणः ।
ङेन्तो गणपतिस्तोयं रवरान्तेद सर्व च ॥ ६८ ॥
जनं मे वशमादीर्घो वायुः पावककामिनी ।
अष्टाविंशतिवर्णोऽयं मनुर्द्धनसमृद्धिदः ॥ ६६ ॥
[1]अन्तर्यामीमुनिश्छन्दो गायत्रीदेवता मनोः ।
लक्ष्मीविनायको बीजं रमा शक्तिर्वसुप्रिया ।
रमागणेशबीजाभ्यां दीर्घाढ्याभ्यां षडङ्गकम् ॥ १०० ॥

परमान्नं पायसम् ॥ ६६ ॥ वामनेत्रा नारी ॥ ६७ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **तार इति**। तारः ॐ । रमा श्रीं चन्द्रयुक्तः खान्तः गं । समीरणो यः । तोयं वः । दीर्घो नः । वायुर्यः । पावककामिनी स्वाहा । अन्यत्स्वरूपम् ॐ श्रीं गं सौम्याय गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहेति अष्टाविंशत्यर्णो लक्ष्मीगणेशो मन्त्रः ॥ ६८–१०० ॥

गन्ने के होम से राज्यलक्ष्मी प्राप्त होती है । केला एवं नारिकेल द्वारा हवन करने से लोगों को वश में करने की शक्ति आती है । घी के हवन से धन प्राप्ति तथा मधु मिश्रित लवण के होम से स्त्री वश में हो जाती है । इतना ही नहीं अपूपों के होम से राजा वश में हो जाता है ॥ ६५-६७ ॥

अब **लक्ष्मी विनायक मन्त्र** कहते हैं - तार (ॐ), रमा (श्रीं) इसके बाद सानुस्वार ख के आगे वाला वर्ण (गं) फिर 'सौम्या' पद, तदनन्तर समीरण 'य', इसके बाद चतुर्थ्यन्त गणपति शब्द (गणपतये), फिर तोय (व), फिर र (वर), इसके बाद पुनः दान्त वरशब्द (वरद), तदनन्तर 'सर्वजनं मे वश' के बाद 'मा', दीर्घ (न), वायु (य) और अन्त में पावककामिनी (स्वाहा) लगाने से २८ अक्षरों का मन्त्र बनता है जो धन की समृद्धि करता है ॥ ६८-६६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ श्रीं गं सौम्याय गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ॥ ६८-६६ ॥

इस मन्त्र के अन्तर्यामी ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, लक्ष्मीविनायक देवता हैं रमा (श्रीं) बीज है तथा स्वाहा शक्ति है । रमा (श्रीं) गणेश (गं) में ६ दीर्घ वर्णो को लगा कर षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १०० ॥

विमर्श - विनियोग का स्वरूप - अस्य श्रीलक्ष्मीविनायकमन्त्रस्य अन्तर्यामीऋषिः

ध्यानकथनम्

दन्ताभये चक्रदरौ दधानं
करााग्रगस्वर्णघटं त्रिनेत्रम् ।
धृताब्जया लिङ्गितमब्धिपुत्र्या
लक्ष्मीगणेशं कनकाभमीडे ॥ १०१॥

पुरश्चरणकथनम्

चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं समिद्भिर्बिल्वशाखिनः ।
दशांशं जुहुयात् पीठे पूर्वोक्ते तं प्रपूजयेत् ॥ १०२ ॥
आदावङ्गानि सम्पूज्य शक्तिरष्टविमा यजेत् ।
बलाका विमला पश्चात् कमला वनमालिका ॥ १०३ ॥
विभीषिका मालिका च शाङ्करी वसुबालिका ।
शंखपद्मनिधी पूज्यौ पार्श्वयोर्दक्षवामयोः ॥ १०४ ॥
लोकाधिपांस्तदस्त्राणि तद्बहिः परिपूजयेत् ।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान्कर्त्तुमर्हति ॥ १०५ ॥

षडङ्गमाह – **रमेति** । श्रीं गां हृत्, श्रीं गीं शिरः, श्रीं गुं शिखेत्यादि । ध्यानमाह – **दन्तेति** । दन्तशङ्खौ दक्षयोः । अभयचक्रे वामयोः । शुण्डाग्रे स्वर्णकुम्भः ॥ १०१ ॥ *॥ १०२–१०५ ॥

गायत्रीछन्दः लक्ष्मीविनायको देवता श्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः आत्मनोभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास - ॐ अन्तर्यामीऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, लक्ष्मीविनायकदेवतायै नमः हृदि, श्री बीजाय नमः गुह्ये, स्वाहा शक्तये नमः पादयोः।

षडङ्गन्यास - ॐ श्रीं गां हृदयाय नमः, ॐ श्रीं गीं शिरसे स्वाहा,
ॐ श्रीं गूं शिखायै वषट्, ॐ श्रीं गैं कवचाय हुम,
ॐ श्रीं गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रीं गः अस्त्राय फट् ॥ १०० ॥

अब इस **मन्त्र का ध्यान** कहते हैं - अपने दाहिने हाथ में दन्त एवं शङ्ख तथा बायें हाथ में अभय एवं चक्र धारण किये हुये सूँड़ के अग्र भाग में सुवर्ण निर्मित घट लिए हुये हाथ में कमल धारण करने वाली महालक्ष्मी द्वारा आलिङ्गित, तीनों नेत्रों वाले सुवर्ण के समान आभा वाले लक्ष्मी गणेश की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १०१ ॥

अब उक्त मन्त्र के **पुरश्चरण की विधि** कहते हैं - उपर्युक्त २८ अक्षरों वाले लक्ष्मीविनायक मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर बिल्ववृक्ष की लकड़ी में दशांश होम करना चाहिए । पूर्वोक्त पीठ पर लक्ष्मीविनायक का पूजन करना चाहिए ।

प्रयोगकथनम्

उरो मात्रे जले स्थित्वा मन्त्री ध्यात्वार्कमण्डले ।
एवं त्रिलक्षं जपतो धनवृद्धिः प्रजायते ॥ १०६ ॥
विल्वमूलं समास्थाय तावज्जप्ते फलं हि तत् ।
अशोककाष्ठैर्ज्वलिते वह्नावाज्याक्ततण्डुलैः ॥ १०७ ॥
होमतो वशयेद्विश्वमर्ककाष्ठं शुचावपि ।
खादिराग्नौ नरपतिं लक्ष्मीं पायसहोमतः ॥ १०८ ॥

तावत्त्रिलक्षं तत्फलं धनवृद्धिः ॥ १०६–१०८ ॥

सर्वप्रथम अङ्गपूजा करे । तदनन्तर इन आठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए; १. बलाका, २. विमला, ३. कमला, ४. वनमालिका, ५. विभीषिका, ६. मालिका, ७. शाङ्करी एवं ८. वसुबालिका - ये आठ शक्तियाँ हैं । तदनन्तर दाहिने एवं बायें भाग में क्रमशः शंखनिधि एवं पद्मनिधि का पूजन करना चाहिए । उनके बाहरी भाग में लोकपालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पुरश्चरण करने के उपरान्त मन्त्र सिद्ध हो जाने पर मन्त्रवेत्ता अन्य काम्य प्रयोगों को कर सकता है ॥ १०२-१०५ ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - १०१ श्लोकोक्त ध्यान के अनन्तर मानसोपचारों से पूजन कर गणेशोक्त पीठपूजा करे (द्र० २. ६-१०) । तदनन्तर लक्ष्मी विनायक के मूलमन्त्र का उच्चारण कर पीठ पर उनकी मूर्ति की कल्पना करनी चाहिए । तदनन्तर ध्यान, आवाहनादि पञ्च पुष्पाञ्जलि समर्पित कर आवरण पूजा इस प्रकार करनी चाहिए -

सर्वप्रथम ॐ श्रीं गां हृदयाय नमः, ॐ शिरसे स्वाहा, ॐ श्रीं गूं शिखायै वषट्, ॐ श्रीं गैं कवचाय हम्प, ॐ श्रीं गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रीं गः अस्त्राय फट् से षडङ्गन्यास कर अष्टदलों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से बलाकायै नमः से ले कर वसुबालिकायै नमः पर्यन्त अष्टशक्तियों की पूजा करनी चाहिए । तदनन्तर दाहिनी ओर ॐ शङ्खनिधये नमः तथा बाईं ओर ॐ पद्मनिधये नमः इन मन्त्रों से अष्टदल के दोनों भाग में दोनों निधियों का पूजन कर दलाग्रभाग में इन्द्राय नमः इत्यादि मन्त्रों से इन्द्रादि दशदिक्पालों का फिर उसके भी अग्रभाग में वज्राय नमः इत्यादि मन्त्रों से उनके आयुधों की पूजा करनी चाहिए । तदनन्तर मूल मन्त्र का जप एवं उत्तर पूजन की क्रिया करनी चाहिए । जैसा की उपर कहा गया है मूल मन्त्र की जप संख्या चार लाख है । उसका दशांश हवन बिल्ववृक्ष की समिधाओं से करना चाहिए । फिर दशांश तर्पण, तद्दशांश मार्जन, फिर उसका दशांश ब्राह्मण भोजन कराने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है और मन्त्रवेत्ता काम्य प्रयोग का अधिकारी होता है ॥ १०२-१०५ ॥

अब उक्त मन्त्र का **काम्य प्रयोग** कहते हैं - हृदय पर्यन्त जल में खड़े हो कर सूर्यमण्डल में लक्ष्मी विनायक का ध्यान कर तीन लाख की संख्या में जप करे तो धन की

त्रयस्त्रिंशद्वर्णात्मकस्त्रैलोक्यमोहनो गणेशमन्त्रः

वक्रकर्णेन्दुयुग् णान्तो डैकदंष्ट्राय मन्मथः ।
माया रमा गजमुखो गणपान्ते भगी हरिः ॥ १०९ ॥
वरवालाग्निसत्याः सरेफारूढं जलं स्थिरा ।
सेन्दुर्मेषो मे वशान्ते मानयोषर्बुधप्रिया ॥ ११० ॥
स्यात्त्रयस्त्रिंशदर्णाढ्यो मनुस्त्रैलोक्यमोहनः ।
गणकोऽस्य[1] ऋषिश्छन्दो गायत्रीदेवता पुनः ॥ १११ ॥
त्रैलोक्यमोहनकरो गणेशो भक्तसिद्धिदः ।
रविवेदशरोदन्वद् रसनेत्रैः षडङ्गकम् ॥ ११२ ॥

त्रैलोक्यमोहनगणेशमन्त्रमाह – **वक्रेति** । स्वरूपम् । णान्तस्तः। कर्णेन्दुयुक्। उबिन्दुयुतः । मन्मथः क्लीं, माया ह्रीं, रमा श्रीं, गजमुखो गं । भगीहरिः एयुतस्तः । बालो वः । अग्नी रः । सत्यो दः । रेफारूढजलं र्व । स्थिरा जः। सेन्दुर्मेषः नं । उषर्बुधप्रिया स्वाहा । स्वरूपमन्यत् । यथा – वक्रतुण्डैकदंष्ट्राय क्लीं ह्रीं श्रीं गं गणपते वर वरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहेति त्रयस्त्रिंशद्वर्णाः ॥ १०९–१११ ॥ षडङ्गमाह – **रवीति** । उदन्वन्तश्चत्वारः॥ ११२ ॥

अभिवृद्धि होती है यही फल बिल्ववृक्ष के मूलभाग में बैठ कर उतनी ही संख्या में जप करने से प्राप्त होता है । अशोक की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में घृताक्त चावलों के होम से सारा विश्व वश में हो जाता है । खादिर की लकड़ी से प्रज्वलित निर्मल अग्नि में आक की समिधाओं से होम करने से राजा भी वश में हो जाता है । उपर्युक्त मन्त्र द्वारा पायस के होम से महालक्ष्मी प्रसन्न हो जाती है ॥ १०६-१०८ ॥

अब **त्रैलोक्यमोहनगणपति मन्त्र** कहते हैं -

वक्र फिर कर्णेन्दु सहित णकारान्त त अर्थात् (तुण्) फिर 'ऐकदंष्ट्राय' यह पद तदनन्तर मन्मथ (क्लीं) माया (ह्रीं), रमा (श्रीं) गजमुख (गं), फिर 'गणप' तदनन्तर भगीहरि (ते) फिर 'वर' फिर बाल (व), अग्नि (र), सत्य (द) (वरद), फिर स, तदनन्तर रेफारूढ़ जल (र्व), तदनन्तर स्थिरा (ज), सेन्दुमेष (नं) फिर 'मे वशमानय' तदनन्तर उषर्बुधक्रिया (स्वाहा) लगाने से भक्तों को सिद्धिप्रदान करने वाला त्रैलोक्य मोहन मन्त्र निष्पन्न हो जाता है। यह मन्त्र ३३ अक्षरों का होता है - इस मन्त्र के गणक ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा भक्तों को सिद्धिप्रदान करने वाले एवं त्रैलोक्य को मोहित करने वाले, श्री गणेश देवता है । इस मन्त्र के क्रमशः १२, ४, ५, ४, एवं ६ और २ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १०९-११२ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - वक्रतुण्डैकदंष्ट्राय क्लीं ह्रीं श्रीं गं गणपते वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ।

ध्यानकथनम्

गदाबीजपूरे धनुः शूलचक्रे
सरोजोत्पले पाशधान्याग्रदन्तान् ।
करैः सन्दधानं स्वशुण्डाग्रराजन्
मणीकुम्भमङ्काधिरूढं स्वपत्न्या ॥ ११३ ॥
सरोजन्मनाभूषणानाम्भरेणो –
ज्ज्वलद्धस्ततन्व्यासमालिङ्गिताङ्गम् ।
करीन्द्राननं चन्द्रचूडं त्रिनेत्रं
जगन्मोहनं रक्तकान्तिं भजेत्तम् ॥ ११४ ॥

पुरश्चरणकथनम्

वेदलक्षं जपेन्मन्त्रमष्टद्रव्यैर्दशांशतः ।
हुत्वा पूर्वोदितं पीठे पूजयेद् गणनायकम् ॥ ११५ ॥

ध्यानमाह – **गदेति** । गदाबीजपूरशूलचक्रपद्मानि दक्षेषु अन्यान्यन्येषु । धान्याग्रं व्रीहिमञ्जरी ॥ ११३ ॥ किं भूतया पत्न्या । सरोजन्मनापद्मेन भूषणसमूहेन च क्रमात् । ज्वलन् दीप्यमानो हस्तो ज्वलन्ती तनुश्च यस्यास्तया ॥ ११४–११७ ॥

विनियोग विधि - ॐ अस्य श्रीत्रैलोक्यमोहनमन्त्रस्य गणकऋषिर्गायत्री छन्दो भक्तेष्ट सिद्धिदायकत्रैलोक्यमोहनकारको गणपतिर्देवता आत्मनोभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ वक्रतुण्डैकदंष्ट्राय क्लीं ह्रीं श्रीं गं हृदयाय नमः,
ॐ गणपते शिरसे स्वाहा, ॐ वरवरद शिखायै वषट्,
ॐ सर्वजनं कवचाय हुम, ॐ मे वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्
तदनन्तर आगे कहे गए ११३वें मन्त्र से ध्यान करना चाहिए ॥ १०९-११२ ॥

अब त्रैलोक्यमोहन गणपति का ध्यान कहते हैं - अपने दाहिने हाथों में गदा, बीजपूर, शूल, चक्र एवं पद्म तथा बायें हाथों में धनुष, उत्पल, पाश, धान्यमञ्जरी (धान के अग्रभाग में रहने वाली बाल) एवं दन्त धारण किए हुए जिन गणेश के शुण्डाग्रभाग में मणिकलश शोभित हो रहा है जिनका श्री अङ्ग कमल एवं आभूषणों से जगमगाती हुई अतएव उज्वल वर्णवाली अपनी गोद में बैठी हुई पत्नी से आलिङ्गित हैं - ऐसे त्रिनेत्र, हाथी के समान मुख वाले, सिर पर चन्द्रकला धारण किए हुए, तीनों लोकों को मोहित करने वाले, रक्तवर्ण की कान्ति से युक्त श्री गणेशजी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ११३-११४ ॥

अब इस मन्त्र से **पुरश्चरण विधि** कहते हैं - उक्त मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए तथा अष्टद्रव्यों (द्र० २. ८) से जप का दशांश होम करना चाहिए । इसके अनन्तर पूर्वोक्त पीठ पर (द्र० २. ६) श्री गणेश जी की पूजा करनी चाहिए । अङ्गन्यास

अङ्गाच्चौ पूर्ववत्प्रोक्ता शक्तीः पत्रेषु पूजयेत्।
वामा ज्येष्ठा च रौद्री स्यात्काली कलपदादिका ॥ ११६ ॥
विकरिण्याह्वया तद्वद्बलाद्या प्रमथन्यपि।
सर्वभूतदमन्याख्या मनोन्मन्यपि चाग्रतः ॥ ११७ ॥
दिक्षु प्रमोदः सुमुखो दुर्मुखो विघ्ननाशकः।
दीर्घाद्या मातरः पूज्या इन्द्राद्या आयुधान्यपि ॥ ११८ ॥
एवं सिद्धे मनौ कुर्यात्प्रयोगानिष्टसिद्धये।

काम्यप्रयोगकथनम्

वशयेत्कमलैर्भूपान्मन्त्रिणः कुमुदैर्हुतैः ॥ ११९ ॥

दीर्घाद्या मातरः। आं ब्राह्म्यै नमः। ईं माहेश्वर्यै नम इत्यादि ॥ ११८–११९ ॥

का विधान भी पूर्ववत् (द्र० २. १४) है। दलों पर शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । १. वामा, २. ज्येष्ठा, ३. रौद्री, ४. कलकाली, ५. बलविकरिणी, ६. बलप्रमथिनी, ७. सर्वभूतदमनी और ८. मनोन्मनी ये आठ शक्तियाँ हैं । पुनः आगे चारों दिशाओं में पूर्वादिक्रम से प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, विघ्ननाशक, का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर आं ब्राह्म्यै नमः, ईं माहेश्वर्यै नमः इत्यादि अष्टमातृकाओं के आदि में (द्र० २. ३६) षड्दीर्घाक्षर लगा कर उनका पूजन करना चाहिए । तदनन्तर इन्द्रादि दिक्पालों का, पुनः उनके वज्र आदि आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पुरश्चरण द्वारा मन्त्र की सिद्धि हो जाने पर अभीष्ट सिद्धि के लिए काम्य प्रयोग करना चाहिए ॥ ११५–११९ ॥

विमर्श – प्रयोग विधि – श्लोक ११३-११४ के अनुसार त्रैलोक्यमोहन गणपति का ध्यान कर मानसोपचारों से पूजन कर अर्घ्य स्थापित करे । पश्चात पीठ एवं पीठदेवता का पूजन कर मूलमन्त्र से त्रैलोक्यमोहन गणेश की मूर्ति की कल्पना कर उनका ध्यान करते हुए आवाहनादि से लेकर पुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त समस्त कार्य करना चाहिए । इस मन्त्र का अङ्गन्यास पूर्व में (द्र० २. ११२) में कहा जा चुका है । तदनन्तर आठ दलों पर वामायै नमः से ले कर मनोन्मन्ये नमः पर्यन्त आठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । तदनन्तर पूर्वादि चारों दिशाओं में प्रमोद सुमुख, दुर्मुख और विघ्ननाशक इन चार नामों के अन्त में चतुर्थ्यन्तयुक्त नमः शब्द लगा कर पूजन करना चाहिए । फिर दल के अग्रभाग में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की क्रमशः आदि में ६ दीर्घों से युक्त कर तथा अन्त में चतुर्थ्यन्तयुक्त नमः लगा कर पूजा करे (द्र० २. ३६) । फिर दलों के बाहर इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का (द्र० २. ३९) पूजन करना चाहिए। इस प्रकार आवरण पूजा कर धूप दीपादिविसर्जनान्त समस्त क्रिया संपन्न करनी चाहिए, फिर जप करना चाहिए । ऐसा प्रतिदिन करते हुए जब चार लाख जप पूरा हो जावे तब अष्टद्रव्यों से उसका दशांश होम, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन तथा

समिद्वरैश्चलदलसमुद्भूतैर्धरासुरान् ।
उदुम्बरोत्थैर्नृपतीन् प्लक्षैर्वाटैर्विशोऽन्तिमान् ॥ १२० ॥
क्षौद्रेण कनकप्राप्तिर्गोप्राप्तिः पयसा गवाम् ।
ऋद्धिर्दध्योदनैरन्नं घृतैः श्रीर्वेतसैर्जलम् ॥ १२१ ॥

द्वात्रिंशद्वर्णात्मको हरिद्रागणेशमन्त्रः

तारो वर्म गणेशो भूर्हरिद्रागणलोहितः ।
आषाढी येवरवरसत्यः सर्वजतर्जनी ॥ १२२ ॥
हृदयं स्तम्भयद्वन्द्वं वल्लभां स्वर्णरेतसः ।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो मदनो[1] मुनिरीरितः ॥ १२३ ॥

चलदलोऽश्वत्थस्तस्य समिद्भिः धरासुरान् विप्रान् वशयेत् । औदुम्बरसमिद्भिर्नृपतीन् वशयेत् । प्लक्षसमिद्भिर्वैश्यान् । वटजाभिरन्तिमान् शूद्रान् ॥ १२०–१२१ ॥ हरिद्रागणेशमनुमाह – **तार इति** । तार ॐ । वर्म हुं । गणेशो गं भूः ग्लौं। लोहितः प । आषाढी तः । सत्यो दः। तर्जनी नः स्वर्गरितसो वल्लभा स्वाहा। स्वरूपमन्यत् । यथा – ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वरवरद सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहेति द्वात्रिंशद्वर्णः ॥ १२२–१२३ ॥

मार्जन का दशांश ब्राह्मण भोजन कराने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है और साधक काम्य प्रयोग का अधिकारी हो जाता है ॥ ११५-११६ ॥

अव इस मन्त्र से **काम्य प्रयोग** कहते हैं - कमलों के हवन से राजा तथा कुमुद पुष्पों के होम से उसके मन्त्री को वश में किया जा सकता है । पीपल की समिधाओं के हवन से ब्राह्मणों को, उदुम्बर की समिधाओं के हवन से क्षत्रियों को, प्लक्ष समिधाओं के हवन से वैश्यों को तथा वट वृक्ष की समिधाओं के हवन से शूद्रों को वश में किया जा सकता है । इसी प्रकार क्षौद्र (मुनक्का) के होम से सुवर्ण, गो दुग्ध के हवन से गौवें, दधि मिश्रित चरु के हवन से ऋद्धि, घी की आहुति से अन्न एवं लक्ष्मी की तथा वेतस की आहुतियों से सुवृष्टि की प्राप्ति होती है ॥ ११८-१२१ ॥

अब **हरिद्रागणपति के मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

तार (ॐ), वर्म (हुम्), गणेश (गं), भू (ग्लौं), इन बीजाक्षरों के अनन्तर 'हरिद्रागण' पद, इसके बाद लोहित (प), आषाढी (त), तदनन्तर 'ये', फिर 'वर वर' के अनन्तर सत्य (द), फिर 'सर्वज' पद, तदनन्तर तर्जनी (न), फिर 'हृदयं स्तम्भय स्तम्भय', फिर अन्त में अग्निवल्लभा (स्वाहा) लगाने से बत्तीस अक्षरों का हरिद्रागणपति मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १२२-१२३ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वरवरद सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा' ॥ १२२-१२३ ॥

छन्दोऽनुष्टुब् देवता तु हरिद्रागणनायकः ।
वेदाष्टशरसप्ताङ्गनेत्रार्णैरङ्गमीरितम् ॥ १२४ ॥

ध्यानकथनम्

पाशांकुशौ मोदकमेकदन्तं
करैर्दधानं कनकासनस्थम् ।
हारिद्रखण्डप्रतिमं त्रिनेत्रं
पीतांशुकं रात्रिगणेशमीडे ॥ १२५ ॥

पुरश्चरणकथनम्

वेदलक्षं जपित्वान्ते हरिद्राचूर्णमिश्रितैः ।
दशांशं तण्डुलैर्हुत्वा ब्राह्मणानपि भोजयेत् ॥ १२६ ॥
पूर्वोक्तपीठे प्रयजेदङ्गमातृदिशाधवैः ।
एवमाराधितो मन्त्रस्सिद्धो यच्छेन्मनोरथान् ॥ १२७ ॥

षडङ्गमाह – **वेदेति** ॥ १२४ ॥ ध्यानमाह – **पाशेति** । अंकुशमोदकौ दक्षयोः पाशदन्तावन्ययोः । रात्रिगणेशो हरिद्रागणपतिः ॥ १२५ ॥ *॥ १२६–१२९ ॥

इस मन्त्र के मदन ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और हरिद्रागणनायकदेवता कहे गये हैं। मन्त्र के क्रमशः ४, ८, ५, ७, ६ और दो अक्षरों से षडङ्गन्यास बतलाया गया है ॥ १२४॥

विमर्श - विनियोग विधि - ॐ अस्य श्रीहरिद्रागणनायकमन्त्रस्य मदनऋषिः अनुष्टुप्छन्दः हरिद्रागणनायको देवता आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास विधि - ॐ हुं गं ग्लौं हृदयाय नमः, ॐ हरिद्रागणपतये शिरसे स्वाहा, वरवरद शिखायै वषट्, सर्वजनहृदयं कवचाय हुम्, स्तम्भय स्तम्भय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ १२४ ॥

अब **हरिद्रागणपति का ध्यान** कहते हैं -

जो अपने दाहिने हाथों में अङ्कुश और मोदक तथा बायें हाथों में पाश एवं दन्त धारण किये हुए सुवर्ण के सिंहासन पर स्थित हैं - ऐसे हल्दी जैसी आभा वाले, त्रिनेत्र तथा पीत वस्त्रधारी हरिद्रागणपति की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १२५ ॥

अब इस मन्त्र की **पुरश्चरण विधि** कहते हैं -

हरिद्रागणपति के मन्त्र का चार लाख जप कर पिसी हल्दी को चावलों में मिश्रित करके दशांश का होम करना चाहिए (तथा होम के दशांश से तर्पण और उसके दशांश से मार्जन, फिर उसका दशांश) ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ॥ १२६ ॥

पूर्वोक्त विधि से पीठ पर अङ्गपूजा, मातृका पूजन तथा दिक्पाल आदि का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पुरश्चरण करने पर पूर्वोक्त मन्त्र (द्र०. २. १२२-१२३)

काम्यप्रयोगकथनम्

शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु कन्यापिष्टहरिद्रया ।
विलिप्याङ्गं जले स्नात्वा पूजयेद् गणनायकम् ॥ १२८ ॥
तर्पयित्वा पुरस्तस्य सहस्रं साष्टकं जपेत् ।
शतं हुत्वा घृतापूपैर्भोजयेद् ब्रह्मचारिणः ॥ १२९ ॥
कुमारीरपि सन्तोष्य गुरुं प्राप्नोति वाञ्छितम् ।
लाजैः कन्यामवाप्नोति कन्यापि लभते वरम् ॥ १३० ॥
वन्ध्यानारी रजः स्नाता पूजयित्वा गणाधिपम् ।
पलप्रमाणगोमूत्रे पिष्टाः सिन्धुवचानिशाः[1] ॥ १३१ ॥
सहस्रं मन्त्रयेत्कन्याबटून्सम्भोज्य मोदकैः ।
पीत्त्वा तदौषधं पुत्रं लभते गुणसागरम् ॥ १३२ ॥

कुमारीरपीति । भोजयेदित्यनेनान्वेति ॥ १३०–१३३ ॥

समस्त मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करता है ॥ १२७ ॥

विमर्श – प्रयोग विधि – सर्वप्रथम १२५ श्लोक के अनुसार हरिद्रागणेश का ध्यान करना चाहिए । तदनन्तर मानसपूजा एवं अर्घ्यस्थापन करना चाहिए । तत्पश्चात् पीठपूजा एवं केशरों के मध्य में तीव्रादि पीठ देवताओं का पूजन कर मूल मन्त्र से हरिद्रागणपति की मूर्ति की कल्पना कर पुनः ध्यान करना चाहिए । तदनन्तर आवाहन से ले कर पञ्चपुष्पाञ्जलि पर्यन्त पूजन करना चाहिए । फिर **कर्णिकाओं में** पूर्वादि दिशाओं के क्रम से क्रमशः ॐ गणाधिपतये नमः, ॐ गणेशाय नमः, ॐ गणनायकाय नमः, ॐ गणक्रीडाय नमः – से पूजन करना चाहिए । फिर **केशरों में** 'ॐ हूं गं ग्लौं हृदयाय नमः' इत्यादि मन्त्रों से षडङ्गन्यास और अङ्गपूजा करनी चाहिए । तदनन्तर पद्मदलों पर वक्रतुण्ड आदि अष्टगणपतियों का पूजन करना चाहिए । दलों के अग्रभाग में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का, फिर दलों के बहिर्भाग में इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उसके भी बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन कर धूप दीपादि पर्यन्त समस्त क्रिया संपन्न करनी चाहिए ॥ १२७ ॥

अब **हरिद्रागणपति मन्त्र का काम्य प्रयोग** कहते हैं –

शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को कन्या द्वारा पीसी गई हल्दी से अपने शरीर में लेप करे। तदनन्तर जल में स्नान कर गणपति का पूजन करे । फिर गणेश के आगे स्थित हो तर्पण करे और उनके सम्मुख १००८ की संख्या में जप करे । फिर घी और मालपूआ से १०० आहुतियाँ देकर ब्रह्मचारियों को भोजन करावे तथा कुमारियों एवं स्वगुरु को भी संतुष्ट करे तो साधक अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ॥ १२८-१३० ॥

लाजाओं के होम से उत्तम वधू तथा कन्या को भी अनुरूप वर की प्राप्ति होती है।

---

१. हरिद्रा ।

वाणीस्तम्भं रिपुस्तम्भं कुर्यान्मनुरुपासितः ।
जलाग्निचौरसिंहास्त्रप्रमुखानपि रोधयेत् ॥ १३३ ॥

बीजमन्त्रकथनम्

शार्ङ्गीमांसस्थितः सेन्दुर्बीजमुक्तं गणेशितुः ।
हरिद्राख्यस्य यजनं पूर्ववत्प्रोदितं मनोः ॥ १३४ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **शार्ङ्गीति** । शार्ङ्गी गः । मांसस्थितः लकारस्थः । ग्लमिति

बन्ध्या स्त्री ऋतुस्नान के पश्चात् गणेश जी का पूजन कर एक पल (चार तोला) गोमूत्र में दूधवच एवं हल्दी पीस कर उसे १००० बार हरिद्रागणपति के मन्त्र से अभिमन्त्रित करे, फिर कन्या एवं वटुकों को लड्डू खिला कर स्वयं उस औषधि का पान करे तो उसे गुणवान् पुत्र की प्राप्ति होती है । इतना ही नहीं इस मन्त्र की उपासना से वाणी स्तम्भन एवं शत्रुस्तम्भन भी हो जाता है तथा जल, अग्नि, चोर, सिंह एवं अस्त्र आदि का प्रकोप भी रोका जा सकता है ॥ १३०-१३३ ॥

अव **हरिद्रागणेश का अन्य मन्त्र** कहते हैं -

शार्ङ्गी (ग), मांसस्थित (ल), इन दोनों में अनुस्वार लगाने से हरिद्रागणपति का बीजमन्त्र (ग्लं) यह पूर्व में बतलाया जा चुका है । इस मन्त्र का पुरश्चरण भी पूर्वोक्त विधि से करना चाहिए ॥ १३४ ॥

विमर्श - विनियोग - ॐ अस्य श्रीहरिद्रागणपतिमन्त्रस्य वशिष्ठऋषिः गायत्रीछन्दः हरिद्रागणपतिर्देवता गं बीजं लं शक्तिः आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ गां हृदयाय नमः, ॐ गीं शिरसे स्वाहा, ॐ गूं शिखायै वषट्, ॐ गैं कवचाय हुम्, ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ गः अस्त्राय फट् ।

हरिद्रागणपति का ध्यान - हरिद्राभं चतुर्बाहुं हरिद्रावसनं विभुम् ।
पाशाङ्कुशधरं देवं मोदकं दन्तमेव च ॥

हल्दी के समान पीत वर्ण की आभा वाले, चार हाथों वाले, पीत वर्ण के वस्त्र को धारण करने वाले, व्याप्त, पाश एवं अङ्कुश अपने दाहिने हाथों में धारण करने वाले तथा मोदक एवं दन्त अपने बाएँ हाथों में धारण करने वाले हरिद्रागणेश का मैं ध्यान करता हूँ ।

इस प्रकार ध्यान करने के उपरान्त मानसोपचारपूजन, अर्घ्यस्थापन, पीठपूजा, तीव्रादि पीठशक्तियों की पूजा, अङ्गपूजा एवं आवरण पूजादि समस्त कार्य पूर्वोक्त रीति से संपन्न करना चाहिए । चार लाख जप पूर्ण करने के पश्चात् घी, मधु, शर्करा एवं हरिद्रा मिश्रित तण्डुलों से दशांश होम, तद्दशांश तर्पण, तद्दशांश मार्जन और तद्दशांश ब्राह्मण भोजन करा कर पुरश्चरण की क्रिया पूर्ण करनी चाहिए ॥ १३४ ॥

प्रोक्ता एते गणेशस्य मन्त्रा इष्टमभीप्सता।
गोपनीया न दुष्टेभ्यो वदनीयाः कथञ्चन॥ १३५॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ गणेशमन्त्र–
कथनं नाम द्वितीयस्तरङ्गः ॥ २ ॥

बीजं । हरिद्रागणपतेः पूजनं पूर्ववत् ॥ १३४ ॥ *॥ १३५॥

इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां
गणेशमन्त्रकथनं नाम द्वितीयस्तरङ्गः ॥ २ ॥

अब **उपसंहार** करते हुये ग्रन्थकार कहते हैं कि - मनोभीष्ट फल देने वाले गणेश जी के मन्त्रों को हमने कहा । ये मन्त्र दुष्ट जनों से सर्वदा गोपनीय रखने चाहिए तथा उन्हें कभी भी इनका उपदेश (कानों में मन्त्र देना) नहीं करना चाहिए ॥ १३५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के द्वितीय तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २ ॥

अथ तृतीयः तरङ्गः

अथ कालीमनून् वक्ष्ये सद्यो वाक्सिद्धिदायकान् ।
आराधितैर्यैः सर्वेष्टं प्राप्नुवन्ति जना भुवि ॥ १ ॥

कालिकाया द्वाविंशत्यर्णात्मको मन्त्रः

कोधीशत्रितयं वह्निवामाक्षिविधुभिर्युतम् ।
वराहद्वितयं वामकर्णचन्द्रसमन्वितम् ॥ २ ॥

---

* नौका *

कालीमन्त्रान् वक्तुं प्रतिजानीते – **अथेति** ॥ १ ॥ मन्त्रमुद्धरति – **क्रोधीशेति । क्रोधीशः कः** । तस्य त्रयं वह्निवामाक्षिविधुभिः रेफईकारानुस्वारैर्युतम् । तेन क्रीं क्रीं क्रीं । वराहो हः । वामकर्ण ऊं । दक्षिणे स्वरूपम् । सृष्टिः कः । दीर्घा आकारयुता । क्रिया लः । सदृक् इयुतः लिः । चक्री कः । झिंटीशमारूढः एयुत के । प्रागुक्तं आदावुक्तं बीजानां सप्तकम् । वह्निप्रिया स्वाहा । यथा – क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं स्वाहेति ॥ २ ॥ * ॥ ३–४ ॥

---

* अरित्र *

अब सद्यः वाक्सिद्धि प्रदान करने वाले काली के मन्त्रों को कहता हूँ, जिनके द्वारा आराधना करने से मनुष्य इस भूलोक में अपना समस्त अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥

सर्वप्रथम **दक्षिणकाली मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

वह्नि (र), वामाक्षि (ई) एवं विधु (र) के साथ अनुस्वार तथा क्रोधीश (क) अर्थात् क्रीं इसकी तीन आवृत्ति, वामकर्ण (ऊ) एवं चन्द्रमा (अनुस्वार) सहित वराह (ह) अर्थात् हूँ की आवृत्ति, फिर माया युग्म (ह्रीं ह्रीं), तदनन्तर दक्षिणे, दीर्घसृष्टि (का), सदृक् क्रिया (लि) और झिण्टीश (ए) के सहित चक्री (क अर्थात् के) तदनन्तर पुनः पूर्वोक्त सात बीज - क्रीं

मायायुग्मं दक्षिणे च दीर्घासृष्टिः सदृक् क्रिया।
चक्रीझिण्टीशमारूढः प्रागुक्तं बीजसप्तकम्॥ ३॥
मन्त्रो वह्निप्रियान्तोऽयं द्वाविंशत्यक्षरो मतः।
न चात्र सिद्धसाध्यादिशोधनं मनसापि च॥ ४॥
न यत्नातिशयः कश्चित्पुरश्चर्यानिमित्तकः।
विद्याराज्ञ्याः स्मृतेरेव सिद्ध्यष्टकमवाप्नुयात्॥ ५॥
भैरवोऽस्य[1] ऋषिश्छन्दउष्णिक्काली तु देवता।
बीजं माया दीर्घवर्मशक्तिरुक्ता मनीषिभिः॥ ६॥
षड्दीर्घाढ्याद्यबीजेन विद्याया अङ्गमीरितम्।
मातृकां पञ्चधा भक्त्या वर्णान् दशदशक्रमात्॥ ७॥
हृदये भुजयोः पादद्वये मन्त्री प्रविन्यसेत्।
व्यापकं मनुना कृत्वा ध्यायेच्चेतसि कालिकाम्॥ ८॥

दीर्घवर्म हूं ॥ ५–६ ॥ षडङ्गमाह – **षडिति** क्रां क्रीं इत्यादि । मातृकामिति – अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं १० नमो हृदि । एं १०

क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं - उसके अन्त में वह्निप्रिया अर्थात् स्वाहा लगाने से बाईस अक्षरों का काली मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २-४ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' ॥ २-४ ॥

इस मन्त्र की सिद्धि के लिए मन से भी किसी साधन की आवश्यकता नहीं है और न तो पुरश्चरण का प्रयत्न ही आवश्यक है, इस विद्याराज्ञी के स्मरण मात्र से साधक को सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ ४-५ ॥

मनीषियों ने इस मन्त्र के भैरव ऋषि, उष्णिक् छन्द, काली देवता, माया बीज (ह्रीं) तथा दीर्घ वर्म (हूं) को शक्ति कहा है । छ दीर्घ सहित आद्य बीज से इस विद्या का षडङ्गन्यास कहा गया है । वर्णमाला के कुल पचास अक्षरों को दश दश अक्षरों का पाँच विभाग कर हृदय, दोनों हाथ और दोनों पैरों में न्यास करना चाहिए । तदनन्तर मुख्य मन्त्र से व्यापक न्यास कर चित्त में महाकाली का ध्यान करना चाहिए ॥ ६-८ ॥

विमर्श - सर्वप्रथम इसका **विनियोग** कहते हैं - 'ॐ अस्य श्रीकालीमन्त्रस्य भैरवऋषिः उष्णिक्छन्दः कालीदेवता ह्रीं बीजं हूं शक्तिः क्रीं कीलकं आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे पुरुषार्थचतुष्टयप्राप्तये वा कालीमन्त्र जपे विनियोगः' ।

---

१. अस्य श्रीकालीमन्त्रस्य भैरवऋषिः उष्णिक्छन्दः कालीदेवता ह्रीं बीजं हूँ शक्तिः ममाभीष्टसिध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ध्यानवर्णनम्

सद्यश्छिन्नशिरः कृपाणमभयं हस्तैर्वरं बिभ्रतीं
घोरास्यां शिरसां स्रजासुरुचिरामुन्मुक्तकेशावलिम्।
सृक्क्यसृक्प्रवहां श्मशाननिलयां श्रुत्योः शवालङ्कृतिं
श्यामाङ्गीं कृतमेखलां शवकरैर्देवीं भजे कालिकाम्॥ ६॥

दक्षभुजे । डं १० वामभुजे । णं १० दक्षपादे । मं १० वामपादे इति ॥ ७–८ ॥ ध्यानमाह – **सद्य** इति । खड्गवरारौ दक्षयोः । सद्यश्छिन्न–शिरोऽभयवामयोः सृक्किणीरोष्ठप्रान्तयोरसृजो रुधिरस्य प्रवाहो यस्यास्ताम्। श्रुत्यो कर्णयोः शवालङ्कारयुताम् ॥ ६ ॥ * ॥ १०–१२ ॥

ऋष्यादिन्यास - ॐ भैरवऋषये नमः शिरसि, ॐ उष्णिकृछन्दसे नमः मुखे, ॐ दक्षिणकालीदेवतायै नमः, हृदि, ॐ ह्रीं बीजाय नमः गुह्ये, ॐ हूंशक्तये नमः पादयोः, ॐ क्रीं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे

कराङ्गन्यास - ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ क्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यास - उक्त प्रकार से दीर्घान्त ६ वर्णों के साथ बीज मन्त्र लगाकर हृदयादिन्यास भी क्रमशः कर लेना चाहिए ।

वर्णन्यास - अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं नमः, हृदि ।
एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः, दक्षबाहौ ।
ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः, वामबाहौ ।
णं तं थं दं घं नं पं फं बं भं नमः, दक्षपादे ।
मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं नमः, वामपादे ।
क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा, सर्वाङ्गे ॥ ६-८ ॥

अब **भगवती दक्षिणकालिका का ध्यान** कहते हैं -

भगवती दक्षिणकालिका का मुख अत्यन्त भयानक है, उनके गले में मुण्ड माला विराज रही है तथा केश खुले हुये हैं, उनकी चार भुजायें हैं, बायें के निचले भाग वाली भुजा में तुरन्त का काटा गया शिर तथा ऊपरी हाथ में अभयमुद्रा है, दायें के निचले भाग वाली भुजा में वरद मुद्रा तथा ऊपर वाली भुजा में खड्ग विराज रहा है, जिनके होठों के अग्रभाग से अजस्र रक्त की धारा चू रही है । कानों में दो शव-शिशु के कर्ण फूल आभूषण के रूप में लटक रहे हैं । कमर में शवहस्त से निर्मित करधनी शोभा दे रही है, ऐसी श्मशानवासिनी श्यामवर्णा महाकाली का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ६ ॥

पुरश्चरणकथनम्

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं जुहुयात्तद्दशांशतः।
प्रसूनैः करवीरोत्थैः पूजायन्त्रमथोच्यते ॥ १० ॥
आदौ षट्कोणमारच्य त्रिकोणत्रितयं[1] ततः।
पद्ममष्टदलं बाह्ये भूपुरं तत्र पूजयेत् ॥ ११ ॥

पीठाद्यावरणपूजा पीठदेवता च

जयाख्या विजया पश्चादजिता चापराजिता।
नित्या विलासिनी चापि दोग्ध्र्यघोरा च मङ्गला ॥ १२ ॥
पीठशक्तय एताः स्युः कालिकायोगपीठतः।
आत्मने हृदयान्तोऽयं मायादिः[2] पीठमन्त्रकः ॥ १३ ॥

पीठमन्त्रमाह – **आत्मन इति** । ह्रीं आत्मने नम इति ॥ १३ ॥ * ॥ १४–१८ ॥

कालीपूजनयन्त्रम्
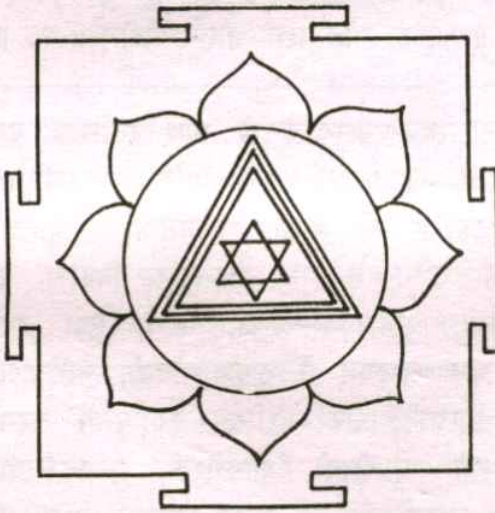
इस प्रकार ध्यान कर उपरोक्त का मन्त्र एक लाख जप करना चाहिए तथा कनेर के पुष्पों से उसका दशांश हवन करना चाहिए । अब उनका पूजा यन्त्र कहता हूँ ॥ १० ॥

अब **काली पूजा यन्त्र निर्माण की विधि** कहते हैं –

पूजन यन्त्र बनाने के लिए सर्वप्रथम षट्कोण की रचना करके, तदनन्तर उसके बाहर तीन त्रिकोण बनाना चाहिए । फिर उसके बाद अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहर भूपुर की रचना कर उस यन्त्र में महाकाली का पूजन करना चाहिए ॥ ११ ॥

अब **महाकाली की पूजाविधि** कहते हैं –

१. जया, २. विजया, ३. अजिता ४. अपराजिता, ५. नित्या, ६. विलासिनी, ७. दोग्ध्री, ८. अघोरा और ९. मङ्गला – ये नव पीठ की शक्तियाँ हैं । 'ॐ ह्रीं कालिकायोगात्मने नमः' यह पीठ का मन्त्र है ॥ १२-१३ ॥

---

१. इदं यन्त्रं गौणं, मुख्ये तु त्रिकोणपञ्चकं लेखनीयम् ।
२. ह्रीं कालिकायोगपीठात्मने नमः ।

अस्मिन् पीठे यजेद्देवीं शवरूपशिवस्थिताम्।
महाकालरतासक्तां शिवाभिर्दिक्षु वेष्टिताम् ॥ १४ ॥
अङ्गानि [1]पूर्वमाराध्य षट्पत्रेषु समर्चयेत्।
कालीं कपालिनीं कुल्लां कुरुकुल्लां विरोधिनीम् ॥ १५ ॥
विप्रचित्तां च सम्पूज्य नवकोणेषु पूजयेत्।
उग्रामुग्रप्रभां दीप्तां नीलां घनबलाकिके ॥ १६ ॥
मात्रां मुद्रां तथा मित्रां पूज्याः पत्रेषु मातरः।
पद्मस्याष्टसु पत्रेषु ब्राह्मी नारायणीत्यपि ॥ १७ ॥
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापरापजिता।
वाराही नारसिंही च पुनरेतास्तु भूपुरे ॥ १८ ॥
भैरवीं महदाद्यान्तां सिंहाद्यां धूम्रपूर्विकाम्।
भीमोन्मत्तादिकां चापि वशीकरणभैरवीम् ॥ १९ ॥
मोहनाद्यां समाराध्य शक्रादीनायुधान्यपि।
एवमाराधिता काली सिद्धा भवति मन्त्रिणाम् ॥ २० ॥

महादाद्यां महाभैरवीम् । सिंहाद्यां सिंहभैरवीम् । धूम्रपूर्विकां धूम्रभैरवीम्। भीमोन्मत्तादिकां भीमभैरवीमुन्मत्तभैरवीं च ॥ १९ ॥ मोहनाद्यां मोहनभैरवीम् ॥ २० ॥

उस पीठ पर शव रूपी शिव पर स्थित महाकाल के साथ रतासक्ता एवं चारों ओर शिवाओं से घिरी हुई महादेवी का पूजन करना चाहिए । सर्वप्रथम अङ्गपूजा करनी चाहिए । तदनन्तर षट्कोणों में काली, कपालिनी, कुल्ला, कुरुकुल्ला, विरोधिनी एवं विप्रचित्ता का पूजन करें । तदनन्तर त्रिकोण के नवकोणों में उग्रा, उग्रप्रभा, दीप्ता, नीला, घना, बलाकिका, मात्रा, मुद्रा तथा मित्रा का पूजन करना चाहिए । इसके बाद अष्टदल में क्रमशः ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही और नारसिंही का पूजन करना चाहिए । भूपुर में महाभैरवी, सिंहभैरवी, धूम्रभैरवी, भीमभैरवी, उन्मत्तभैरवी, वशीकरणभैरवी एवं मोहनभैरवी का तथा महाभैरवी का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर भूपुर के बाहर इन्द्रादि दशदिक्पालों का तथा उसके बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार की आराधना से मन्त्र वेत्ता को काली सिद्ध हो जाती हैं ॥ १४-२० ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - ३. ९ वें श्लोक के अनुरूप महाकाली का ध्यान कर

---

१. अंसाञ्चनमेकम् । काल्याद्याः षट्षट् अञ्चयेदिति द्वितीयम् । उग्राद्या नवनवकोणेषु यजेदिति तृतीयम् । अष्टपत्रे ब्राह्म्याद्या अष्ट यजेदिति चतुर्थम् । भूपुरेऽष्टदिक्षु भैरवाद्या अष्ट यजेदिति पञ्चमम् ।

मानसोपचार से उनका पूजन करें । तदनन्तर अर्घ्य स्थापित कर हुं गर्भित त्रिकोण लिखकर उस पर आधार सहित अर्घ्यपात्र स्थापित करें । पुनः उसमें जल भर कर, गन्धादि डाल कर 'गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्र से तीर्थों का आवाहन करें । तदनन्तर 'वं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' इस मन्त्र से आधार की 'ॐ सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' इस मन्त्र से शङ्ख की तथा 'ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' इस मन्त्र से अर्घ्यपात्र स्थित जल की पूजा करना चाहिए । सर्वप्रथम जयायै नमः, विजयायै नमः, अजितायै नमः, अपराजितायै नमः, नित्यायै नमः, विलासिन्यै नमः, दोग्ध्यै नमः, अघोरायै नमः, मङ्गलायै नमः, इन मन्त्रों से ६ पीठ शक्तियों की पूजा कर 'कालिकायोगपीठात्मने नमः' इस मन्त्र से पीठ पूजा संपादन करना चाहिए । इस प्रकार पीठ पूजन के अनन्तर उस पीठ पर भगवती कालिका का श्लोक १४ के अनुसार ध्यान कर मूलमन्त्र से उनका आवाहन स्थापन तथा पूजा सम्पादन कर, 'ॐ दक्षिणकालिके देवि आवरणं ते पूजयामि' इस मन्त्र को बोल कर माँ से आवरण पूजा की आज्ञा लेकर आवरण पूजा करनी चाहिए । सर्वप्रथम षडङ्गपूजा करनी चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है -

ॐ क्रां हृदयाय नमः आग्नेये, क्रीं शिरसे स्वाहा, ईशाने,
ॐ क्रूं शिखायै वषट्, नैर्ऋत्ये, क्रैं कवचाय हुम् वायव्ये,
ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् अग्रे, ॐ क्रः अस्त्राय फट् चतुर्दिक्षु,

इस विधि से पूजन कर तदनन्तर मूलमन्त्र पढ़कर 'अभीष्ट सिद्धिं में देहि ... **प्रथमावरणार्चन**' पर्यन्त पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तदनन्तर षट्कोणों में क्रमशः -

ॐ काल्यै नमः, ॐ कपालिन्यै नमः, ॐ कुल्लायै नमः,
ॐ कुरुकुल्लायै नमः, ॐ विरोधिन्यै नमः, ॐ विप्रचित्तायै नमः

इन मन्त्रों से पूजन कर मूलमन्त्र पढ़ें । फिर 'अभीष्ट सिद्धिं में देहि ... **द्वितीयावरणार्चन**' पर्यन्त मन्त्र बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तदनन्तर तीनों त्रिकोणों में क्रमशः प्रथम त्रिकोण के तीन कोणों में ॐ उग्रायै नमः, ॐ उग्रप्रभायै नमः, ॐ दीप्तायै नमः - इन तीनों मन्त्रों से, तदनन्तर द्वितीय त्रिकोण के तीनों कोणों में ॐ नलायै नमः, घनायै नमः, वलाकायै नमः - इन तीन मन्त्रों से, तदनन्तर तृतीय त्रिकोण के तीनों कोणों में ॐ मात्रायै नमः, ॐ मुद्रायै नमः, ॐ मित्रायै नमः से पूजन करें, फिर मूलमन्त्र पढ़कर अभीष्टसिद्धि से लेकर **तृतीयावरणार्चन** पर्यन्त मन्त्र बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तदनन्तर अष्टदल कमल में पूर्वादि दिशा क्रम से

ॐ ब्राह्म्यै नमः, ॐ नारायण्यै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः,
ॐ चामुण्डायै नमः, ॐ कौमार्यै नमः, ॐ अपराजितायै नमः,
ॐ वाराह्यै नमः, ॐ नारसिंह्यै नमः

इन मन्त्रों से पञ्चोपचार पूजन कर 'अभीष्ट सिद्धिं मे ...' **चतुर्थावरणार्चन** पर्यन्त मन्त्र बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तदनन्तर भूपुर के आठों दिशाओं में पूर्वादि क्रम से

ॐ महाभैरव्यै नमः, ॐ सिंहभैरव्यै नमः, ॐ धूम्रभैरव्यै नमः,
ॐ भीमभैरव्यै नमः, ॐ उन्मत्तभैरव्यै नमः, ॐ वशीकरणभैरव्यै नमः,
ॐ मोहनभैरव्यै नमः ॐ महाभैरव्यै नमः

इन मन्त्रों को पढ़कर पञ्चोपचार पूजन करें । फिर 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि **पञ्चमावरणार्चन** पर्यन्त मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तदनन्तर भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से

ॐ इन्द्राय नमः, ॐ अग्नये नमः, ॐ यमाय नमः,
ॐ निर्ऋतये नमः, ॐ वरुणाय नमः, ॐ वायवे नमः,
ॐ सोमाय नमः, ॐ ईशानाय नमः,
ऊपर ॐ ब्रह्मणे नमः, अधः ॐ अनन्ताय नमः

इन मन्त्रों को पढ़कर पञ्चोपचार से दश दिक्पालों का पूजन कर मूलमन्त्र सहित 'अभीष्टसिद्धिं मे .....' से लेकर **षष्ठावरणार्चन** पर्यन्त मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

तदनन्तर दिक्पालों के सन्निकट उनके आयुधों को पूर्वादिदिशाओं के क्रम से

ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डायै नमः,
ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अंकुशाय नमः,
ॐ गदायै नमः, ॐ त्रिशूलाय नमः, ॐ चक्राय,
ॐ पद्माय नमः

मन्त्र से पञ्चोपचार पूजन कर मूलमन्त्र सहित 'अभीष्ट सिद्धिं मे देहि .. ...' पर्यन्त मन्त्र पढ़कर **सप्तम, अष्टम** और **नवम** तीन बार पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

इसके बाद मूल मन्त्र से गन्धादि उपचारों द्वारा देवी का पूजन कर मूलमन्त्र का जप करना चाहिए । निश्चित जप पूरा करने के पश्चात् प्रतिदिन 'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वम्' इत्यादि मन्त्र पढ़कर देवी के बायें हाथ में जप समर्पित करना चाहिए । तदनन्तर प्रदक्षिणा और नमस्कार कर स्तोत्र और कवच का पाठ करना चाहिए ।

फिर देवी के अङ्गों में आवरण देवताओं को विलीन कर संहार मुद्रा द्वारा 'दक्षिण कालिके देवि क्षमस्व' पढ़कर देवी का विसर्जन करें । देवी के तेज को पुष्प में समाहित कर अपने हृदय में लगाकर आरोपित करें । नैवेद्य का कुछ अंश - 'ॐ उच्छिष्ट चाण्डालिन्यै नमः' । इस मन्त्र से ईशान कोण में रख देवें तथा निर्माल्य को मस्तक पर धारण करें ।

उक्त मन्त्र का पुरश्चरण दो लाख करना चाहिए । जिसमें एक लाख जप

ततः प्रयोगान् कुर्वीत महाभैरवभाषितान् ।
आत्मनोऽर्थे परस्यार्थे क्षिप्रसिद्धिप्रदायकान् ॥ २१ ॥
स्त्रीणां निन्दां प्रहारं च कौटिल्यं वाप्रियं वचः ।
आत्मनो हितमन्विच्छन् कालीभक्तो विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

अस्य मन्त्रस्य नानाविधानानि नानाफलदानि

सुदृशो मदनावासं पश्यन् यः प्रजपेन्मनुम् ।
अयुतं सोऽचिरादेव वाक्पतेः समतामियात् ॥ २३ ॥
दिगम्बरो मुक्तकेशः श्मशानस्थोऽधियामिनि ।
जपेद्योऽयुतमेतस्य भवेयुः सर्वकामनाः ॥ २४ ॥
शावं हृदयमारुह्य निर्वासाः प्रेतभूगतः ।
अर्कपुष्पसहस्रेणाभ्यक्तेन स्वीयरेतसा ॥ २५ ॥
देवीं यः पूजयेद् भक्त्या जपन्नेकैकशो मनुम् ।
सोऽचिरेणैव कालेन धरणीप्रभुतां व्रजेत् ॥ २६ ॥

---

* ॥ २१–२२ ॥ मदनावासं भगम् ॥ २३ ॥ अधि यामिनि रात्रौ ॥ २४ ॥

दिन में पवित्र रहकर हविष्यान्न भोजन कर करें तथा एक लाख जप रात को ताम्बूल चर्वण कर शय्या पर बैठकर करें। जप पूरा होने पर पूर्ववत् दशांश होम, तर्पण मार्जन एवं ब्राह्मण भोजन करावें । तदनन्तर गुरुदेव को दक्षिणा प्रदान कर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करे ॥ १४-२० ॥

पुरश्चरण द्वारा मन्त्र सिद्धि हो जाने पर महाभैरव द्वारा बतलाये गये शीघ्र सिद्धि प्रदायक काम्य प्रयोगों को अपने लिए अथवा अन्यों के लिए करना चाहिए ॥ २१॥

ध्यान रहे काली की सिद्धि चाहने वाले तथा अपना हित चाहने वाले साधकों को स्त्रियों की निन्दा, उन पर प्रहार, उनसे कुटिल व्यवहार अथवा अप्रिय कटुभाषण त्याग देना चाहिए ॥ २२ ॥

अब इस मन्त्र से **काम्य प्रयोग का विधान** कहते हैं -

सुन्दरी के गुप्ताङ्ग को देखते हुये जो साधक इस मन्त्र का दश हजार जप करता है वह शीघ्र ही बृहस्पति के तुल्य हो जाता है । रात्रि में श्मशान में बैठकर दिगम्बर एवं केशों को खोलकर कर जो इस मन्त्र का दश हजार जप करता है उसकी सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ २३-२४ ॥

श्मशान में जाकर शव के हृदय पर आरूढ़ हो कर नग्न (विवस्त्र) हो जो साधक अपने वीर्य से अभ्यक्त आक के पुष्पों से एक-एक मन्त्र के साथ एक एक पुष्प द्वारा इस प्रकार एक हजार पुष्पों से देवी का भक्तिभाव से पूजन करता है वह शीघ्र ही भूपति बन जाता है ॥ २५-२६ ॥

रजःकीर्णभगं नार्या ध्यायन् योऽयुतमाजपेत्।
स कवित्वेन रम्येण जनान् मोहयति ध्रुवम् ॥ २७ ॥
त्रिपञ्चारे महापीठे शवस्य हृदि संस्थिताम्।
महाकालेन देवेन मारयुद्धं प्रकुर्वतीम् ॥ २८ ॥
तां ध्यायन् स्मेरवदनां विदधत् सुरतं स्वयम्।
जपेत् सहस्रमपि यः स शङ्करसमो भवेत् ॥ २९ ॥
अस्थिलोमत्वचायुक्तं मासं मार्जारमेषयोः।
ऊष्ट्रस्य महिषस्यापि बलिं यस्तु समर्पयेत् ॥ ३० ॥
भूताष्टम्योर्मध्यरात्रे वश्याः स्युस्तस्य जन्तवः।
विद्यालक्ष्मीयशः पुत्रैः स चिरं सुखमेधते ॥ ३१ ॥
यो हविष्याशनरतो दिवा देवीं स्मरञ्जपेत्।
नक्तं निधुवनासक्तो लक्षं स स्याद् धरापतिः ॥ ३२ ॥
रक्ताम्भोजैर्हुतैर्मन्त्री धनैर्जयति वित्तपम्।
बिल्वपत्रैर्भवेद् राज्यं रक्तपुष्पैर्वशीकृतिः ॥ ३३ ॥

॥ २५–२७ ॥ त्रिगुणाः पञ्चाराः कोणा यस्येदृशं पीठे महाकालेन भर्त्रा मारयुद्धं सुरतं कुर्वन्तीम् ॥ २८ ॥ * ॥ २९–३७ ॥

स्त्री के रजः से आप्लुत भग का ध्यान करते हुये जो व्यक्ति दश हजार जप करता है वह अपनी उत्कृष्ट कविता द्वारा समस्त लोगों को निःसन्देह मोहितकर चकित कर देता है ॥ २७ ॥

त्रिगुणित पॉच अरों के कोणों वाले महापीठ पर शव के वक्षःस्थल पर बैठी हुई अपने पति महाकाल के साथ सुरत में प्रवृत्त स्मेरमुखी देवी का ध्यान करते हुये जो साधक स्वयं सुरत में प्रवृत्त होकर उक्त मन्त्र का एक हजार जप करता है वह शंकर के समान हो जाता है ॥ २८-२९ ॥

मार्जार, भेंड़, ऊँट अथवा भैसें के हड्डी, रोम एवं खाल सहित मांस से जो साधक कृष्ण पक्ष की अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथि की अर्धरात्रि में बलि देता है, सारे जन्तु उसके वश में हो जाते हैं । जो साधक दिन में हविष्यान्न भोजन कर देवी का स्मरण करते हुये जप करता है वह विद्या, लक्ष्मी, यश एवं पुत्र का चिरकाल पर्यन्त सुख प्राप्त करता है । रात्रि में निधुवन (सुरत) में आसक्त रहकर जो व्यक्ति इस मन्त्र का एक लाख जप करता है वह राजा हो जाता है ॥ ३०-३२ ॥

लाल कमलों के हवन से व्यक्ति राजमन्त्री बन जाता है और वह अपने धन से कुबेर को भी मात कर देता है । बिल्व पत्र के होम से राज्य की प्राप्ति होती है तथा लाल पुष्पों के हवन से वशीकरण की सिद्धि होती है ॥ ३३ ॥

असृजामहिषादीनां कालिकां यस्तु तर्पयेत्।
तस्य स्युरचिरादेव करस्थाः सर्वसिद्धयः॥ ३४॥
यो लक्षं प्रजपेन्मन्त्रं शवमारुह्य मन्त्रवित्।
तस्य सिद्धो मनुः सद्यः सर्वेप्सितफलप्रदः॥ ३५॥
तेनाश्वमेधप्रमुखैर्यागैरिष्टं सुजन्मना।
दत्तं दानं तपस्तप्तमुपास्ते यस्तु कालिकाम्॥ ३६॥
ब्रह्मा विष्णुः शिवो गौरी लक्ष्मीगणपती रविः।
पूजिताः सकला देवा यः कालीं पूजयेत् सदा॥ ३७॥

अथ कालीमन्त्रभेदास्तत्र एकविंशत्यर्णात्मको मन्त्रः

अथ कालीमन्त्रभेदा उच्यन्ते सिद्धिदायिनः।
मायायुगं कूर्चयुग्मं करशान्तिविधुत्रयम्॥ ३८॥

कालीमन्त्रभेदानाह – **मायेति** । कूर्च्चं हूं । करः स्वरूपम् । शान्तिरी ॥ विधुं बिन्दुः । क्रीं उक्तबीजानि व्युत्क्रमेण । स्वरूपमन्यत् । ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं इत्येकविंशत्यर्णः ताराद्यः प्रणवाद्यः ॥ ३८॥ * ॥ ३९–४० ॥

भैंस आदि के रक्तों से जो व्यक्ति महाकाली का तर्पण करता है, समस्त सिद्धियाँ शीघ्र ही उसकी वशवर्त्तिनी हो जाती हैं ॥ ३४ ॥

जो मन्त्रवेत्ता शव पर बैठकर उक्त मन्त्र का एक लाख जप करता है, उसका मन्त्र सिद्ध हो जाता है तथा उसकी सारी मनोकामनायें शीघ्र ही पूर्ण हो जाती हैं ॥ ३५ ॥

जो व्यक्ति महाकाली की उपासना करता है, उस सुजन्मा ने अश्वमेघादि सर्वश्रेष्ठ यज्ञों को संपन्न कर लिया, उसने सभी दान एवं समस्त तप कर अपना जन्म सार्थक बना लिया ॥ ३६ ॥

जिस व्यक्ति ने सदैव महाकाली की उपासना कर ली, उसने ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गौरी, लक्ष्मी, गणपति, सूर्य एवं अन्य समस्त देवों का पूजन सम्पन्न कर लिया ॥ ३७ ॥

अब सिद्धिदायक **काली मन्त्रों का भेद** कहते हैं -

प्रथम तार (ॐ), फिर दो माया बीज (ह्रीं ह्रीं), फिर दो कूर्च (हूं हूं) करशान्ति विधु तीन (क्रीं क्रीं क्रीं) फिर दक्षिणे कालिके, तदनन्तर अन्त में विलोम क्रम से उक्त सातों बीज (क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं) लगाने से इक्कीस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है, इसका पूजन एवं पुरश्चरण पूर्वोक्त विधि से करना चाहिए ॥ ३८-३९ ॥

दक्षिणेकालिके पूर्वबीजानि स्युर्विलोमतः।
एकविंशतिवर्णात्मा ताराद्यः पूर्ववद्यजिः ॥ ३६ ॥
बिल्वमूले शवारूढो वटमूले तथैव च।
लक्षं मनुमिमं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ४० ॥

चतुर्दशार्णको मन्त्रो नृसुराद्याकर्षणक्षमः

काली कूर्चं च ह्रल्लेखा दक्षिणेकालिके पठेत्।
पुनर्बीजत्रयं वह्निवधूर्मन्वक्षरो मनुः ॥ ४१ ॥
यजनं पूर्ववत् प्रोक्तमस्य मन्त्रस्य मन्त्रिभिः।
विशेषान्नृसुरादीनामयमाकर्षणे क्षमः ॥ ४२ ॥

द्वाविंशत्यर्णो मन्त्रः वशीकरणक्षमः

कूर्चद्वयं[1] त्रयं काल्या मायायुग्मं तु दक्षिणे।

मन्त्रान्तरमाह -- **कालीति** । काली क्रीं । कूर्चं हूं । ह्रल्लेखा ह्रीं । वह्निवधूः स्वाहा । यथा – क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूँ ह्रीं स्वाहेति । चतुर्दशार्णः ॥ ४१–४२ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **कूर्चेति** । कूर्च्चं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूँ ह्रीं ह्रीं' ॥ ३८-३६ ॥

बिल्ववृक्ष के नीचे, अथवा शव पर, अथवा वट वृक्ष के नीचे बैठकर इस मन्त्र का एक लाख जप करने से साधक सभी सिद्धियों का स्वामी बन जाता है ॥ ४० ॥

अब चौदह अक्षरों वाले **काली मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

काली बीज (क्रीं) कूर्च (हूं) ह्रल्लेखा (ह्रीं), फिर 'दक्षिणे कालिके' यह पद, फिर तीनों बीज (क्रीं हूं ह्रीं), अन्त में वह्निवधू (स्वाहा) लगाने से चौदह अक्षरों का काली मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ४१ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा' ॥ ४१ ॥

मन्त्र शास्त्र वेत्ताओं ने इस मन्त्र का पुरश्चरण आदि पूर्वोक्त रीति से ही कहा है । यह मन्त्र मनुष्य तथा देवताओं के आकर्षण में विशेष रूप से सक्षम है ॥ ४२ ॥

अब **वशीकरण का अन्य मन्त्र** (मन्त्रराज) कहते हैं -

दो कूर्च (हूं हूं), तीन काली बीज (क्रीं क्रीं क्रीं), दो माया बीज

---

१. हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

कालिके पूर्वबीजानि स्वाहा मन्त्रो वशीकृतौ ॥ ४३ ॥

पञ्चदशार्णमन्त्रः

मन्त्रराजे पुनः प्रोक्तं बीजसप्तकमुत्सृजेत्[1] ।
तिथिवर्णो महामन्त्र उपास्तिः पूर्ववन्मता ॥ ४४ ॥
ब्रह्मरेफौ वामनेत्रं चन्द्रारूढं मनुर्मतः ।
एकाक्षरो महाकाल्याः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ४५ ॥

षडर्णमन्त्रः

बीजं दीर्घयुतश्चक्री पिनाकी नेत्रसंयुतः ।

ह्रीं । दक्षिणे कालिके पुनर्बीजानि स्वाहेति द्वाविंशत्यर्णः वशीकृतौ । क्षम इति शेषः ॥ ४३ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **मन्त्रराजेति** । क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहेति पञ्चदशार्णः ॥ ४४ ॥ मन्त्रान्तरम् – **ब्रह्मेति** । ब्रह्मा कः वामनेत्रे ई क्रीं ॥ ४५ ॥ षडङ्गमाह – **बीजमिति** । बीजं क्रौं दीर्घयुतश्च क्रीं

(ह्रीं ह्रीं), फिर 'दक्षिणे कालिके' यह पद, तदनन्तर पुनः उक्त सात बीज फिर उसमें 'स्वाहा' लगाने से यह बाईस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है । वशीकरण के लिए इस मन्त्र का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है ॥ ४३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणेकालिके हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' ।

इस मन्त्र का विनियोग, न्यास तथा पुरश्चरण पूर्वोक्त है । इसकी जप संख्या एक लाख मानी गई है ॥ ४३ ॥

उक्त मन्त्रराज मन्त्र से अन्त के सात बीजाक्षरों को निकाल देने से पन्द्रह अक्षरों का एक और मन्त्र बन जाता है । इसका भी पुरश्चरण पूर्ववत् है ॥ ४४ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' ॥ ४४ ॥

अब **काली एकाक्षर मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

वामनेत्र (ई) चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त ब्रह्म और रेफ (क्‌र्) यह काली का एकाक्षर मन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है ॥ ४५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'क्रीं' ॥ ४५ ॥

अब **महाकाली के षडक्षर मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

कालीबीज (क्रीं), दीर्घ से युक्त चक्री (का), नेत्रयुक्तपिनाकी (लि),

---

१. क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके स्वाहा ।

दक्षिणेकालिके पूर्वबीजानि स्युर्विलोमतः।
एकविंशतिवर्णात्मा ताराद्यः पूर्ववद्यजिः ॥ ३६ ॥
बिल्वमूले शवारूढो वटमूले तथैव च।
लक्षं मनुमिमं जप्त्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥ ४० ॥

चतुर्दशार्णको मन्त्रो नृसुराद्याकर्षणक्षमः

काली कूर्चं च ह्रल्लेखा दक्षिणेकालिके पठेत्।
पुनर्बीजत्रयं वह्निवधूर्मन्वक्षरो मनुः ॥ ४१ ॥
यजनं पूर्ववत् प्रोक्तमस्य मन्त्रस्य मन्त्रिभिः।
विशेषान्नृसुरादीनामयमाकर्षणे क्षमः ॥ ४२ ॥

द्वाविंशत्यर्णो मन्त्रः वशीकरणक्षमः

कूर्चद्वयं[1] त्रयं काल्या मायायुग्मं तु दक्षिणे।

मन्त्रान्तरमाह -- **कालीति** । काली क्रीं । कूर्चं हूं । ह्रल्लेखा ह्रीं । वह्निवधूः स्वाहा । यथा – क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूँ ह्रीं स्वाहेति । चतुर्दशार्णः ॥ ४१–४२ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **कूर्चेति** । कूर्च्चं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूँ ह्रीं ह्रीं' ॥ ३८-३६ ॥

बिल्ववृक्ष के नीचे, अथवा शव पर, अथवा वट वृक्ष के नीचे बैठकर इस मन्त्र का एक लाख जप करने से साधक सभी सिद्धियों का स्वामी बन जाता है ॥ ४० ॥

अब चौदह अक्षरों वाले **काली मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

काली बीज (क्रीं) कूर्च (हूं) ह्रल्लेखा (ह्रीं), फिर 'दक्षिणे कालिके' यह पद, फिर तीनों बीज (क्रीं हूं ह्रीं), अन्त में वह्निवधू (स्वाहा) लगाने से चौदह अक्षरों का काली मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ४१ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा' ॥ ४१ ॥

मन्त्र शास्त्र वेत्ताओं ने इस मन्त्र का पुरश्चरण आदि पूर्वोक्त रीति से ही कहा है । यह मंन्त्र मनुष्य तथा देवताओं के आकर्षण में विशेष रूप से सक्षम है ॥ ४२ ॥

अब **वशीकरण का अन्य मन्त्र** (मन्त्रराज) कहते हैं -

दो कूर्च (हूं हूं), तीन काली बीज (क्रीं क्रीं क्रीं), दो माया बीज

---

१. हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके हूँ हूँ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा ।

कालिके पूर्वबीजानि स्वाहा मन्त्रो वशीकृतौ ॥ ४३ ॥

पञ्चदशार्णमन्त्रः

मन्त्रराजे पुनः प्रोक्तं बीजसप्तकमुत्सृजेत्[१] ।
तिथिवर्णो महामन्त्र उपास्तिः पूर्ववन्मता ॥ ४४ ॥
ब्रह्मरेफौ वामनेत्रं चन्द्रारूढं मनुर्मतः ।
एकाक्षरो महाकाल्याः सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ४५ ॥

षडर्णमन्त्रः

बीजं दीर्घयुतश्चक्री पिनाकी नेत्रसंयुतः ।

ह्रीं । दक्षिणे कालिके पुनर्बीजानि स्वाहेति द्वाविंशत्यर्णः वशीकृतौ । क्षम इति शेषः ॥ ४३ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **मन्त्रराजेति** । क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहेति पञ्चदशार्णः ॥ ४४ ॥ मन्त्रान्तरम् – **ब्रह्मेति** । ब्रह्मा कः वामनेत्रे ई क्रीं ॥ ४५ ॥ षडङ्गमाह – **बीजमिति** । बीजं क्रौं दीर्घयुतश्च क्रीं

(ह्रीं ह्रीं), फिर 'दक्षिणे कालिके' यह पद, तदनन्तर पुनः उक्त सात बीज फिर उसमें 'स्वाहा' लगाने से यह बाईस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है । वशीकरण के लिए इस मन्त्र का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है ॥ ४३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणेकालिके हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' ।

इस मन्त्र का विनियोग, न्यास तथा पुरश्चरण पूर्वोक्त है । इसकी जप संख्या एक लाख मानी गई है ॥ ४३ ॥

उक्त मन्त्रराज मन्त्र से अन्त के सात बीजाक्षरों को निकाल देने से पन्द्रह अक्षरों का एक और मन्त्र बन जाता है । इसका भी पुरश्चरण पूर्ववत् है ॥ ४४ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' ॥ ४४ ॥

अब **काली एकाक्षर मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

वामनेत्र (ई) चन्द्र (अनुस्वार) से युक्त ब्रह्म और रेफ (क्र्) यह काली का एकाक्षर मन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला है ॥ ४५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'क्रीं' ॥ ४५ ॥

अब **महाकाली के षडक्षर मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

कालीबीज (क्रीं), दीर्घ से युक्त चक्री (का), नेत्रयुक्तपिनाकी (लि),

---

१. क्रीं क्रीं क्रीं हूँ हूँ ह्रीं ह्रीं दक्षिणकालिके स्वाहा ।

क्रोधीशो भगवान्स्वाहा षडर्णो मन्त्र ईरितः ॥ ४६ ॥

पञ्चार्णमन्त्रः, सप्तार्णमन्त्रश्च

काली कूर्च तथा लज्जा त्रिवर्णो मनुरीरितः ।
हुं फडन्तश्च पञ्चार्णः स्वाहान्तः सप्तवर्णकः ॥ ४७ ॥
एतेषां पूर्ववत् प्रोक्तं यजनं नारदादिभिः ।
निग्रहानुग्रहे शक्ताः कालीमन्त्राः स्मृता इमे ॥ ४८ ॥

क्रां । नेत्रयुतः पिनाकी लि । भगमेकारस्तद्युतः क्रोधीशः के, क्रीं कालिके स्वाहेति ॥ ४६ ॥ मन्त्रान्तरम् – **कालीति** । क्रीं हूं ह्रीं । क्रीं हूं ह्रीं हुं फडिति पञ्चार्णः । क्रीं हूं ह्रीं हुं फट् स्वाहेति सप्तार्णः ॥ ४७–४८ ॥

भगसहित क्रोधीश (के), तदनन्तर 'स्वाहा' लगा देने से ६ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न हो जाता है ॥ ४६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'क्रीं कालिके स्वाहा' ॥ ४६॥

काली का त्रिवर्ण, पञ्चवर्ण एवं **सप्तवर्णात्मक मन्त्र** -

कालीबीज (क्रीं), कूर्च (हूं) एवं लज्जा (ह्रीं) ये तीन बीज त्रिवर्ण हैं, इन बीजाक्षरों के आगे 'हुं फट्' लगा देने से पञ्चवर्ण मन्त्र बन जाता है । उसके आगे 'स्वाहा' लगा देने से वह सप्तवर्ण मन्त्र हो जाता है ॥ ४७ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -

'क्रीं हूं ह्रीं' - **त्रिवर्ण मन्त्र,**
'क्रीं हूं ह्रीं हुं फट्' - **पञ्चवर्ण मन्त्र**
'क्रीं हूं ह्रीं हुं फट् स्वाहा' यह **सप्तवर्ण मन्त्र** है ॥ ४७ ॥

नारदादि महार्षियों ने इन सब मन्त्र का विनियोग, ध्यान, पूजन, एवं पुरश्चरण विधि पूर्ववत् कहा है । अब तक कहे गये काली के ये सभी मन्त्र निग्रह और अनुग्रह में समर्थ हैं ॥ ४८ ॥

विमर्श - प्रस्तुत तरङ्ग में दक्षिणकाली के कुल दश मन्त्रों का वर्णन किया गया है, जो निम्नलिखित है -

१ - **द्वाविंशत्यक्षर मन्त्र** - 'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' ।

२ - **एकविंशत्यक्षर मन्त्र** - 'ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं' ।

३ - **चतुर्दशाक्षर मन्त्र** - 'क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा' ।

४ - **द्वाविंशत्यक्षर मन्त्र** - 'हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' ।

५ - **पञ्चदशाक्षर मन्त्र** - 'क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा' ।

द्वाविंशत्यर्णात्मको गायत्रीसुमुखीमन्त्रः

अथ वक्ष्ये परां विद्यां सुमुखीमतिगोपिताम्।
यां लब्ध्वा देशिको विद्वान्न शोचति कृताकृते ॥ ४६ ॥
कर्णो द्युतिः सनयना श्वेतेशः स्याज्जरासनः।

सुमुखीं वक्तुं प्रतिजानीते – **अथेति** ॥ ४६ ॥

---

६ - **एकाक्षर मन्त्र** - 'क्रीं' ।
७ - **त्रिवर्ण मन्त्र** - 'क्रीं हूं ह्रीं' ।
८ - **पञ्चाक्षर मन्त्र** - 'क्रीं हूं ह्रीं हुं फट्' ।
९ - **षडक्षर मन्त्र** - 'क्रीं कालिके स्वाहा' ।
१० - **सप्ताक्षर मन्त्र** - 'क्रीं हूं ह्रीं फट् स्वाहा' ।

इन समस्त मन्त्रों के ऋषि भैरव हैं । प्रारम्भ के पाँच मन्त्रों का छन्द उष्णिक् तथा शेष का विराट् छन्द है । समस्त मन्त्रों की देवता दक्षिण काली हैं । इनके अनुसार विनियोग तथा ऋष्यादिन्यास कर लेना चाहिए ।

अब सब मन्त्रों का **कराङ्गन्यास** एवं **अङ्गन्यास** निम्नलिखित होता है -

ॐ क्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः । हृदयाय नमः ।
ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां नमः । शिरसे स्वाहा ।
ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां नमः । शिखायै वषट् ।
ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां नमः । कवचाय हुम् ।
ॐ क्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । अस्त्राय फट् ।

इन समस्त मन्त्रों का ध्यान निम्नलिखित है -

'सद्यश्छिन्नशिरः कृपाणमभयं हस्तैर्वरं बिभ्रतीं,
घोरास्यां शिरसांस्रजासुरुचिरामुन्मुक्तकेशावलिम् ।
सृक्क्यसृक् प्रवहां श्मशाननिलयां श्रुत्योः शवालंकृतिं,
श्यामागीं कृतमेखलां शवकरैर्देवीं भजे कालिकाम्' ।।

उपर्युक्त समस्त मन्त्रों की पूजाविधि, पुरश्चरण विधि एवं जपसंख्या दक्षिण कालिका के पूर्वोक्त मन्त्र के समान हैं ॥ ४८ ॥

अब अत्यन्त गोपनीय **पराविद्या समुखी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

इस मन्त्र को प्राप्त कर लेने के पश्चात् विद्वान् साधक अपने कर्तव्याकर्तव्य के बारे में नहीं सोंचते ॥ ४९ ॥

कर्ण (उकार), द्युतिसनयना (च्छि), जरासन श्वेतेश कर्णो (ष्ट), 'दीर्घेन्दु संयुक्ता लक्ष्मी (चां), दीर्घनन्दी (डा), सदृक् क्रिया (लि), समाधव मेष (नि),

लक्ष्मीर्दीर्घेन्दुसंयुक्ता नन्दीदीर्घः सदृक्क्रिया ॥ ५० ॥
मेषः समाधवः कर्णो भृगुस्तन्द्री च सेन्धिका ।
खिदेविम वियद्दीर्घं पिशाचिनि हिमाद्रिजा ॥ ५१ ॥
नन्दजत्रितयं सर्गिद्वाविंशत्यक्षरो मनुः ।
स्मृता भैरवगायत्री सुमुखीमुनिपूर्विका ॥ ५२ ॥
मुनिरामद्विषट्चन्द्रे वह्न्यर्णैरङ्गकं मनोः ।
विन्यस्य सुमुखीं ध्यायेद् भक्तचित्ताम्बुजस्थिताम् ॥ ५३ ॥

मन्त्रमुद्धरति – **कर्ण** इति । कर्ण उ । सनयनाद्युतिः इयुतश्छः च्छिः । जरासनः श्वेतेशः । टकारस्थः षः ष्टः । लक्ष्मीश्चः । दीर्घेन्दुसंयुक्ता आबिन्दुयुता चां । दीर्घो नन्दी डा । सदृक् क्रिया इयुतो लः लि । समाधवो मेषः इयुतो नः नि । कर्णो भृगुः सः उयुतः सु । सेन्धिका तन्द्री मः उयुतो मु । खि देवि म स्वरूपं । दीर्घं वियत् हा । पिशाचिनि स्वरूपम् । हिमाद्रिजा ह्रीं । सर्गिनन्दज त्रितयम् । विसर्गयुक्तठकारत्रयम् । यथा – उच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः द्वाविंशत्यर्णः । मुनिपूर्वाः ऋषिच्छन्दो देवताः ॥ ५०–५२ ॥ षडङ्गमाह – **मुनीति** ॥ ५३ ॥

भृगु (सु), सेन्धिका तन्द्री (मु), फिर 'खिदेविम' शब्द फिर दीर्घवियत् 'हा' तदनन्तर 'पिशाचिनि' फिर हिमाद्रिजा (ह्रीं) और अन्त में विसर्ग सहित नन्दज त्रितय (ठः ठः ठः) लगाना चाहिए । इस प्रकार बाईस अक्षरों का यह मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ५०-५१ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'उच्छिष्ट चाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः' ॥ ५०-५१ ॥

इस मन्त्र के भैरव ऋषि, गायत्री छन्द तथा सुमुखी देवता हैं । इसके ७, ३, २, ६, १ एवं ३ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । षडङ्गन्यास के अनन्तर भक्तों के हृदय कमल पर विराजमान सुमुखी देवी का (आगे के श्लोक ५४ के अनुसार) ध्यान करना चाहिए ॥ ५२-५३ ॥

विमर्श – विनियोग – 'अस्य श्रीसुमुखीमन्त्रस्य भैरवऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीसुमुखीदेवता आत्मनोऽभीष्टसिद्धये सुमुखीमन्त्रजपे विनियोगः' ।

षडङ्गन्यास – ॐ उच्छिष्टचाण्डालिनि हृदयाय नमः,
ॐ सुमुखि शिरसे स्वाहा, ॐ देवि शिखायै वषट्,
ॐ महापिशाचिनि कवचाय हुम्, ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ ठः ठः ठः अस्त्राय फट् ॥ ५२-५३ ॥

---

१. अस्य श्रीसुमुखीमन्त्रस्य भैरवऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीसुमुखीदेवता ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे सुमुखीमन्त्रजपे विनियोगः ।

सुमुखीध्यानम्

गुञ्जानिर्मितहारभूषितकुचां सद्यौवनोल्लासिनीं
हस्ताभ्यां नृकपालखड्गलतिके रम्ये मुदा बिभ्रतीम् ।
रक्तालंकृतिवस्त्रलेपनलसद्देहप्रभां ध्यायतां
नृणां श्रीसुमुखीं शवासनगतां स्युः सर्वदा सम्पदः ॥ ५४ ॥

मन्त्रसिद्धेर्विधानम्

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं किंशुकोद्भवैः ।
पुष्पैः समिद्वरैर्वापि जुहुयान्मन्त्रसिद्धये ॥ ५५ ॥
कालीपीठे यजेद् देवीं पञ्चकोणाढ्यकर्णिके ।
अष्टपत्रे षोडशाब्जे वृत्तं भूपुरसंयुते ॥ ५६ ॥

ध्यानमाह – गुञ्जेति । एवंविधां सुमुखीं ध्यायतां नृणां सर्वदा सम्पदः स्युरित्यन्वयः । खड्गलता दक्षे, कपालं वामे ॥ ५४ ॥ * ॥ ५५ ॥ कर्णिकायां पञ्चकोणम् । उपर्यष्टपत्रम् । तदुपरि षोडशदलम् । तदुपरि चतुष्कोणमिति पूजायन्त्रम् ॥ ५६ ॥ * ॥ ५७–६० ॥

अब **सुमुखी के ध्यान के लिए उनका स्वरूप** कहते हैं –

गुञ्जानिर्मित हार से जिनके स्तन शोभा को प्राप्त हो रहे हैं, यौवन से उदीप्त कान्तिवाली जिन प्रसन्न भगवती के दाहिने हाथ में रम्य खड्गलता एवं बायें हाथ में नृकपाल हैं रक्तवर्ण के अलङ्कार, रक्तवर्ण के वस्त्र और रक्त वर्ण के आलेपन से जिनके श्री अङ्गों की शोभा जगमगा रही है, जो शवासन पर विराजमान हैं और जो ध्यान करने वाले अपने भक्तों को सर्वदा श्री संपदा प्रदान करती हैं, ऐसी सुमुखी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ५४ ॥
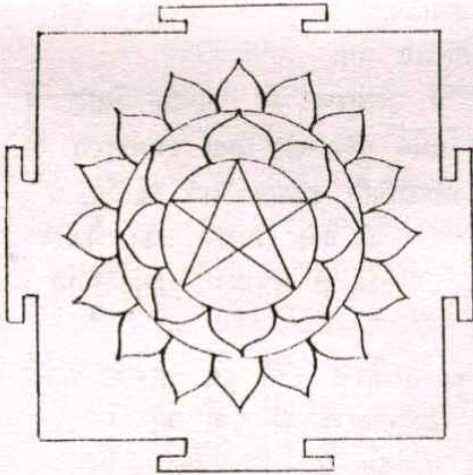
सुमुखीपूजनयन्त्रम्

उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए, फिर मन्त्रसिद्धि के लिए किंशुक पुष्पों एवं उसकी समिधाओं से दशांश हवन करना चाहिए ॥ ५५ ॥

सुमुखी पूजन की विधि – पञ्चकोण की कर्णिका, फिर अष्टदल और उसके ऊपर षोडश दल एवं भूपुर सहित यन्त्र में काली पीठ पर सुमुखी देवी का पूजन करना चाहिए ॥ ५६ ॥

मूलेन मूर्तिं संकल्प्य पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ।
चन्द्रां चन्द्राननां चारुमुखीं चामीकरप्रभाम् ॥ ५७ ॥
चतुरां पञ्चकोणेषु केसरेष्वङ्गदेवताः ।
ब्राह्म्याद्या अष्टपत्रेषु षोडशारे कलादिकाः ॥ ५८ ॥
कला कलानिधिः काली कमला च क्रिया कृपा ।
कुला कुलीना कल्याणी कुमारी कलभाषिणी ॥ ५९ ॥
करालाख्या किशोरी च कोमला कुलभूषणा ।
कल्पदा भूपुरे पूज्या इन्द्राद्या हेतयोऽपि च ॥ ६० ॥

मूल मन्त्र से यन्त्र में देवी की मूर्ति की कल्पना करनी चाहिए । तदनन्तर पाद्य, अर्घ्य आदि उपचारों से उनकी पूजा कर पञ्चकोणों में चन्द्रा, चन्द्रानना, चारुमुखी, चामीकरप्रभा तथा चतुरा का पूजन करना चाहिए । केशरों में अङ्गपूजा तथा अष्टदलों में क्रमशः ब्राह्मी आदि का पूजन कर षोडशदलों में कला, कलानिधि, काली, कमला, क्रिया, कृपा, कुला, कुलीना, कल्याणी, कुमारी, कलभाषिणी, कराला, किशोरी, कोमला, कुलभूषणा और कल्पदा का पूजन करना चाहिए । फिर भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए ॥ ५७-६० ॥

विमर्श - पुरश्चरण का प्रकार - प्रथमतः ५४ श्लोक में कहे गये सुमुखी देवी के स्वरूप का ध्यान करें । पुनः मानसोपचार से पूजन कर काली देवी के पूजन में कही गयी विधि के अनुसार पीठ शक्तियों का पूजन तथा पीठ पूजन कर यन्त्र में सुमुखी देवी की मूर्त्ति की कल्पना कर अर्घ्य से लेकर पुष्पाञ्जलि पर्यन्त उनकी पूजा करें । कर्णिका के पाँच कोणों में क्रमशः -

ॐ चन्द्रायै नमः, ॐ चन्द्राननायै नमः, ॐ चारुमुख्यै नमः,
ॐ चामीकरप्रभायै नमः, ॐ चतुरायै नमः

इन मन्त्रों से पूजन कर मूल मन्त्र से उच्चारण कर 'अभीष्ट सिद्धिं मे देहि .....' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण कर प्रथम पुष्पाञ्जलि तथा **प्रथमावरण** की पूजा करें । यथा - ॐ उच्छिष्ट चाण्डालिनि हृदयाय नमः आग्नेये,
ॐ सुमुखि शिरसे स्वाहा ईशाने, ॐ देवि शिखायै वषट् नैर्ऋत्ये,
ॐ महापिशाचिनि कवचाय हुं वायव्ये, ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् मध्ये,
ॐ ठः ठः ठः अस्त्राय फट् चतुर्दिक्षु

इन मन्त्रों से पूजन कर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए 'अभीष्ट सिद्धिं मे देहि .....' से द्वितीय पुष्पाञ्जलि तथा **द्वितीयावरण** की पूजा करें ।

तदनन्तर अष्टदल में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से -
ॐ ब्राह्म्यै नमः, ॐ नारायण्यै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः, ॐ चामुण्डायै नमः
ॐ कौमार्यै नमः, ॐ अपराजितायै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ नारसिंह्यै नमः

इन मन्त्रों से पूजन कर मूल मन्त्र का उच्चारण कर 'अभीष्ट सिद्धिं मे

इत्थं जपादिभिः सिद्धे मनौ काम्यानि साधयेत् ।
भुक्त्वौदनमनाचम्य जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥ ६१ ॥

प्रयोगफलकथनम्

उच्छिष्टोऽयुतमेकं यः स भवेत् सम्पदां पदम् ।
उच्छिष्टेनैव भक्तेन बलिं दद्यान्निरन्तरम् ॥ ६२ ॥

प्रयोगानाह – **भुक्त्वेति** ॥ ६१ ॥ * ॥ ६२–६७ ॥

देहि ...' से तृतीय पुष्पाञ्जलि एवं **तृतीयावरण** की पूजा करें ।

तत्पश्चात् षोडशदलों में यथाक्रम - ॐ कलायै नमः,
ॐ कलानिधये नमः, ॐ काल्यै नमः, ॐ कमलायै नमः,
ॐ क्रियायै नमः, ॐ कृपायै नमः, ॐ कुलायै नमः,
ॐ कुलीनायै नमः, ॐ कल्याण्यै नमः, ॐ कुमार्यै नमः,
ॐ कलभाषिण्यै नमः, ॐ करालायै नमः, ॐ किशोर्य्यै नमः,
ॐ कोमलायै नमः, ॐ कुलभूषणायै नमः, ॐ कल्पदायै नमः

इन मन्त्रों से पूजन कर मूलमन्त्र एवं 'अभीष्ट सिद्धिं मे देहि .....' मन्त्र बोल कर चतुर्थ पुष्पाञ्जलि एवं **चतुर्थावरण** की पूजा करनी चाहिए ।

फिर भूपुर में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से - ॐ इन्द्राय नमः,
ॐ अग्नये नमः, ॐ यमाय नमः, ॐ निर्ऋतये नमः,
ॐ वरुणाय नमः, ॐ वायवे नमः, ॐ सोमाय नमः,
ॐ ईशानाय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः ऊर्ध्व, ॐ अनन्ताय नमः, अधः

इन मन्त्रों से दश दिक्पालों का पूजन करें । तप्तश्चात् उसके आगे -
ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्त्यै नमः, ॐ दण्डाय नमः,
ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अंकुशाय नमः,
ॐ गदायै नमः, ॐ त्रिशूलाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ पद्माय नमः

इन मन्त्रों से उनके दश आयुधों की पूजा कर मूलमन्त्र पढ़कर 'अभीष्ट सिद्धिं ...' से पञ्चम एवं षष्ठ पुष्पाञ्जलि तथा **पञ्चम और षष्ठ आवरण** की पूजा करें ।

आवरण पूजा के पश्चात् मूल मन्त्र द्वारा देवी की गन्धादि उपचारों से पूजाकर देवी को पूजा समर्पित कर नैवेद्य ग्रहण कर उच्छिष्ट मुख से मूल मन्त्र का जप कर पूर्ववत् दशांश होम, तर्पण, मार्जन एवं ब्राह्मण भोजन सम्पन्न करावें । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक काम्य प्रयोग का अधिकारी हो जाता है ॥ ५७-६० ॥

अब **सुमुखी मन्त्र से काम्य प्रयोग** कहते हैं -

उक्त पुरश्चरण से मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक को काम्य प्रयोग करना चाहिए - भात खाकर आचमन किए बिना एकाग्र चित्त से उच्छिष्ट होकर जो व्यक्ति इस मन्त्र का १० हजार जप करता है वह सब प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त करता है । जप के अनन्तर निरन्तर उसी उच्छिष्ट भात की बलि देनी चाहिए ॥ ६१-६२ ॥

दध्नाभ्यक्तैः प्रजुहुयाल्लक्षं सिद्धार्थतण्डुलैः ।
राजानो मन्त्रिणस्तस्य भवन्ति वशगाः क्षणात् ॥ ६३ ॥
शास्त्राणि वशगानि स्युर्हुतान्मार्जारमांसतः ।
धनर्द्धिश्छागमांसेन विद्याप्राप्तिस्तु पायसैः ॥ ६४ ॥
मधुपायससंयुक्तस्त्रीरजोयुक्तवाससा ।
होममाचरतः पुंसो जनतावशवर्तिनी ॥ ६५ ॥
मधुसर्पिर्युतैर्नागवल्लीपत्रैर्महाश्रियः ।
सद्यो निहतमार्जारमांसेन मधुसर्पिषा ॥ ६६ ॥
युक्तेनान्त्यजकेशाद्यैर्हुतैराकर्षति स्त्रियः ।
मध्वक्तशशमांसेन तत्फलं विद्यया सह ॥ ६७ ॥
उन्मत्ततरुभिर्दीप्ते चिताग्नौ जुहुयाच्छदैः ।
कोकिला काकयोर्मन्त्रीमाचरेदचिरादरीन् ॥ ६८ ॥
वायसोलूकयोः पत्रैर्होमाद्विद्वेषयेदरीन् ।
गर्भपातः सगर्भाणामुलूकच्छदनैर्भवेत् ॥ ६९ ॥
आज्याक्तैर्बिल्वपत्रैर्यो मासमेकं सहस्रकम् ।
प्रत्यहं जुहुयात्तेन बन्ध्यापि लभते सुतम् ॥ ७० ॥

उन्मत्तो धत्तूरः । छदैः पक्षैः ॥ ६८ ॥ * ॥ ६९–७२ ॥

जो व्यक्ति भात में दही मिलाकर एक लाख आहुति देता है राजा एवं राजमन्त्री तत्काल उसके वश में हो जाते हैं । मार्जार के मांस का होम करने से व्यक्ति सभी शास्त्रों का पारङ्गत विद्वान् हो जाता है, छागमांस के होम से धन की अभिवृद्धि तथा पायस के होम से विद्या प्राप्त होती है ॥ ६३-६४ ॥

रजस्वला स्त्री के वस्त्र के टुकड़ों को मधु एवं पायस में मिलाकर होम करने वाला व्यक्ति समस्त जनसमूह को अपने वश में कर लेता है । मधु, घी, तथा पान के होम से श्रीवृद्धि होती है । तत्काल मारे गये मार्जार के मांस में मधु, घी एवं अन्त्यज के केश मिलाकर होम करने से स्त्री आकर्षित होती है । मधुमिश्रित शशक (खरगोश) के मांस के होम से विद्या के साथ उक्त फल की प्राप्ति होती है ॥ ६५-६७ ॥

उन्मत्त (धतूरे) की लकड़ी से प्रज्वलित चिता की अग्नि में कोकिल एवं काक के पंखों का होम करने से मन्त्रवेत्ता सद्यः अपने शत्रुओं को वश में कर लेता है । काक एवं उलूक के पंखों को मिश्रित कर होम करने से शत्रुओं में विद्वेष हो जाता है । उल्लू के पंखों के होम से गर्भिणी स्त्री का गर्भ गिर जाता है । घी मिश्रित बिल्वपत्रों द्वारा एक मास तक प्रतिदिन एक हजार होम करने से बन्ध्या स्त्री को भी पुत्र की प्राप्ति हो जाती है ॥ ६८-७० ॥

मधुमिश्रित बन्धूक के नवीन पुष्पों से होम करने से भाग्यहीन स्त्री

सौभाग्यार्थं दुर्भगाया बन्धूककुसुमैर्नवैः ।
मधुनाक्तैः प्रजुहुयात् स्त्रीणामाकृष्टयेर्पितैः ॥ ७१ ॥
निर्जने सदनेऽरण्ये प्रेतावासे चतुष्पथे ।
बलिं दत्त्वा प्रजपतः सहस्रं चाष्टसंयुतम् ॥ ७२ ॥
उच्छिष्टस्य च सा देवी प्रत्यक्षा जायतेऽचिरात् ।
यत्र नोक्ता होमसंख्यायुतं तत्र विनिर्दिशेत् ॥ ७३ ॥
वाममार्गेण सुमुखी शीघ्रं कामविधायिनी ।
भोजनान्ते तथोच्छिष्टैर्जप्या सा स्वेष्टसिद्धये ॥ ७४ ॥
न शीघ्र फलदा देवी सुमुखी सदृशी परा ।
यस्या मन्त्रजपादेव प्रसिध्यन्ति मनोरथाः ॥ ७५ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ कालीसुमुखी–
मन्त्रोक्तिस्तृतीयस्तरङ्गः ॥ ३ ॥

उच्छिष्टस्य बलिं दत्त्वेति पूर्वेणान्वयः ॥ ७३ ॥ * ॥ ७४–७५ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचित मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां
कालीमन्त्रकथनं नाम तृतीयस्तरङ्गः ॥ ३ ॥

सौभाग्यवती हो जाती है । निर्जन स्थान, उजाड़ घर, वन, श्मशान एवं चौराहे पर बलि समर्पित कर उच्छिष्ट होकर (जूठे मुँह) १००८ बार इस मन्त्र का जप करने से सुमुखी देवी शीघ्र प्रत्यक्ष होकर अपने साधक पर कृपा करने लगती हैं।

पूर्वोक्त होम प्रकरण में जहाँ आहुतियों की संख्या नहीं कही गई है वहाँ दश हजार आहुतियों की संख्या समझनी चाहिए ॥ ७१-७३ ॥

वाम मार्ग की उपासना से सुमुखी देवी शीघ्र ही समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देती हैं । इनके मन्त्र का जप भोजन के बाद उच्छिष्ट (जूठे मुँह) मुख से ही करना चाहिए, जिससे अभीष्ट की सिद्धि हो । सुमुखी देवी के समान शीघ्र फलदात्री कोई अन्य देवी नही हैं क्योंकि इनके मन्त्र के जप मात्र से समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥ ७४-७५ ॥

इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के तृतीय तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डाँ सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थः तरङ्गः

तारामन्त्रः

कीर्त्यन्ते सिद्धिदातारस्ताराया मनवोऽधुना।
गुरूपदेशाज्ज्ञातैर्यैः कृतार्थाः स्युर्नरा भुवि॥ १॥
आप्यायिनी सरात्रीशा वियदग्नीन्दुशान्तियुक्।
हरिः पावकगोविन्दचन्द्रमोभिरलंकृतः॥ २॥
खमर्घीशशशांकाढ्यमस्त्रं पञ्चाक्षरो मनुः।

ताराया: मन्त्रान्तरम्

आदिबीजवियुक्तैषा प्रोदितैकजटादिमैः॥ ३॥

---

* नौका *

तारां वक्तुम् उपक्रमते – **कीर्त्यन्त** इति॥ १॥ मन्त्रमुद्धरति – **आप्यायिनीति**। सरात्रीशा आप्यायिनी सबिन्दुरोङ्कारः ॐ। अग्नीन्दु-शान्तियुग्वियत् रेफबिन्दुईयुतो हः ह्रीं। पावकगोविन्दचन्द्रमोभिरलंकृतो हरिः रेफईबिन्दुयुतस्तकारः त्रीं। गोविन्द ईकारः॥ २॥ अर्घीशशशाङ्काढ्यं खं। उबिन्दुयुतो हः हुं। अस्त्रं फट् ॐ। ॐ ह्रीं त्रीं हुं फडिति पञ्चार्णः।

मन्त्रान्तरमाह – **आदीति**। इयमेव विद्या आदिबीजेन ओङ्कारेण वियुक्ता रहिता सती आदिमैः पूर्वाचार्यैरेकजटा प्रोदिता – ह्रीं त्रीं हुं फडिति॥ ३॥

---

* अरित्र *

अब हम तारा के मन्त्रों का वर्णन करते हैं। जो सर्वथा सिद्धि प्रदान करने वाले हैं, और जिन्हें गुरूपदेश से जान कर मनुष्य इस लोक में कृतार्थ हो जाते हैं॥ १॥

सरात्रीशा आप्यायनी (ॐ), अग्नीन्दुशान्तियुत् वियत् (ह्रीं), पावक (र्), गोविन्द (ई), चन्द्रमा (अनुस्वार) के साथ हरि (त) अर्थात् त्रीं, अर्घीश (उ), शशाङ्क अनुस्वार के साथ ख (ह) अर्थात् हुँ, तदनन्तर फट् लगाने से तारा का पञ्चाक्षर मन्त्र निष्पन्न हो जाता है।

यदि इस मन्त्र के आदि में आदि बीज (ॐ) हटा दिया जाय तो यह एक जटा नामक मन्त्र हो जाता है - ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है॥ २-३॥

आद्यन्तबीजरहिता प्रोक्ता नीलसरस्वती।
तारा सर्वा मनोरस्य [1]मुनिरक्षोभ्यसंज्ञकः॥ ४॥
छन्दस्तु बृहती तारा देवता परिकीर्तिता।
द्वितीयतुर्ये क्रमतो बीजं शक्तिश्च सिद्धिदे॥ ५॥

आद्यन्त बीजाभ्यां ॐ फड्भ्यां रहिता नीलसरस्वती सैव – ह्रीं त्रीं हुं इति। सर्वा तु तारा॥ ४॥ द्वितीय तुर्ये ह्रीं हुमिति क्रमाद् बीजं शक्तिश्च॥ ५॥

इसी प्रकार आदि बीज ॐ और अन्त बीज फट् से रहित कर देने पर यह नीलसरवस्ती का मन्त्र हो जाता है ॥ ४ ॥

विमर्श - (**i**) **तारा पञ्चाक्षर मन्त्रोद्धार** - ॐ ह्रीं त्रीं हुं फट् ।
(**ii**) **एक जटा** - ह्रीं त्रीं हुं फट् ।
(**iii**) **नीलसरस्वती** - ह्रीं त्रीं हुं ।

वधू (स्त्रीं) बीज कहलाने की कथा इस प्रकार है -

तारावर्ण के अनुसार वसिष्ठ ऋषि ने बहुत समय तक इस विद्या की उपासना की, किन्तु उन्हें सिद्धि नहीं मिली । परिणामतः क्रोधित होकर उन्होंने देवी को शाप दे दिया और तब से यह विद्या फल देने में अक्षम हो गयी ।

बाद में शान्त होने पर ऋषिप्रवर ने इसका शापोद्धार प्राप्त किया । शापोद्धार करते समय ताराबीज (त्रीं) में सकार का योग कर ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं फट्' इस विद्या (मन्त्र) से साधना करने का निर्देश दिया । तब से यह विद्या वधू के समान यशस्विनी हो गयी तथा तारा का यह बीज (त्रीं) 'वधू बीज' कहलाने लगा ।

नीलतन्त्र के अनुसार सप्रणव मायाबीज, वधूबीज, कूर्चबीज, एवं अस्त्र वाला यह (ॐ ह्रीं स्त्रीं हूँ फट्) पञ्चाक्षर दिव्य एवं अति पवित्र है । यह विद्या साधकों को बुद्धि, ज्ञान, शक्ति, जय एवं श्री देने वाली तथा भय, मोह एवं अपमृत्यु का निवारण करने वाली मानी गयी है ।

महीधर के अनुसार **तारा के मन्त्र** उपर्युक्त हैं - किन्तु **एकताराकल्प, विश्वसारतन्त्र** तथा **नीलतन्त्र** आदि ग्रन्थों में उक्त मन्त्रों में तारा बीज (त्रीं) के स्थान पर वधू बीज (स्त्रीं) का निर्देश किया गया है ॥ ४ ॥

ऊपर कहे गये तारा के सभी मन्त्रों के अक्षोभ्य ऋषि हैं, बृहती छन्द हैं और तारा देवता हैं । पञ्चाक्षर मन्त्र के द्वितीय एवं चतुर्थ वर्ण क्रमशः (ह्रीं तथा हुं) सिद्धिदायक बीज एवं शक्तिदायक माने गये हैं अथवा क्रोध (हुं) बीज, तथा अस्त्रमन्त्र (फट्) शक्ति है - ऐसा भी कुछ आचार्य मानते हैं ।

---

१. ॐ अस्य श्रीतारामन्त्रस्य अक्षोभ्यऋषिः बृहतीछन्दः तारादेवता ह्रीं बीजं हुं शक्तिः ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

यद्वा क्रोधो बीजमुक्तमस्त्रं शक्तिरुदाहृता ।
षड्दीर्घयुग्द्वितीयेन षडङ्गविधिरीरितः ॥ ६ ॥

षडङ्गमाह – **षडिति** । ह्रां ह्रीमित्यादि ॥ ६ ॥ * ॥ ७–६ ॥ * ॥ १०–३८ ॥

षड्दीर्घयुक्त द्वितीय मन्त्र (ह्रीं) से षडङ्गन्यास किया जाता है । इसकी विधि पूर्वोक्त है ॥ ४-६ ॥

विमर्श – विनियोग का स्वरूप इस प्रकार है – 'ॐ अस्य श्रीतारामन्त्रस्य अक्षोभ्यऋषिः बृहतीछन्दः तारादेवता ह्रीं बीजं हुं शक्तिः आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थं तारामन्त्रजपे विनियोगः ।

क्योंकि यह देवी उग्र विपत्ति से साधक का उद्धार करती हैं, अतः इन्हें 'उग्रतारा' कहा गया है । यह राजद्वार, राजसभा, राजकार्य, विवाद, संग्राम एवं द्यूत आदि में साधक को विजय प्राप्त कराती हैं । अतः इस प्रकार के प्रयोगों में इन मन्त्रों का विनियोग करते समय 'हुं' बीज तथा फट् शक्ति माना जाता है क्योंकि **वीरतन्त्र** के अनुसार बीज एवं शक्ति चतुर्वर्गफल प्राप्ति के लिए भी विनियुक्त होते हैं ।

ऋष्यादिन्यास – ॐ अक्षोभ्यऋषये नमः शिरसि, ॐ बृहतीछन्दसे नमः मुखे,
ॐ तारादेवतायै नमः हृदि, ॐ ह्रीं (हूँ) बीजाय नमः गुह्ये,
ॐ हूँ (फट्) शक्तये नमः पादयोः ॐ स्त्रीं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे

कराङ्गन्यास – ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः,
ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः,
ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

इसी प्रकार हृदयादिन्यास भी कर लेना चाहिए । मन्त्र का विनियोग पूर्ववत् है । एकजटा तथा नीलसरस्वती के लिए इस प्रकार का न्यास **सिद्धसारस्वत तन्त्र** के अनुसार करना चाहिए –

ॐ ह्रां एकजटायै अगुंष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तारिण्यै तर्जनीभ्यां नमः,
ॐ ह्रूं वज्रोदके मध्यमाभ्यां नमः, ॐ ह्रैं उग्रजटे अनामिकाभ्यां नमः,
ॐ ह्रौं महाव्रतिसरे कनिष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः

नीलसरस्वती के लिए न्यास इस प्रकार है –

ॐ ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रीं अखिलवाग्रूपिण्यै तर्जनीभ्यां नमः ।
ॐ हूँ अखिलवाग्रूपिण्यै मध्यमाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रैं अखिलवाग्रूपिण्यै अनामिकाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रौं अखिलवाग्रूपिण्यै कनिष्ठाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रः अखिलवाग्रूपिण्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

षडङ्गन्यासः

षोढान्यासं ततः कुर्याद्देवताभावसिद्धये।
देयं भक्ताय शिष्याय न देयं तु दुरात्मने ॥ ७ ॥

(१) रुद्रन्यासः

श्रीकण्ठा[1]दीन्न्यसेद्रुद्रान् मातृकावर्णपूर्वकान्।
मातृकोक्तस्थले माया तृतीयक्रोधपूर्वकान् ॥ ८ ॥
चतुर्थीनमसायुक्तान् प्रथमो न्यास ईरितः।
शवपीठसमासीनां नीलकान्तिं त्रिलोचनाम् ॥ ६ ॥
अर्द्धेन्दुशेखरां नानाभूषणढ्यां स्मरन्न्यसेत्।

(२) ग्रहन्यासः

द्वितीयन्तु ग्रहन्यासं[2] कुर्यात्तां समनुस्मरन् ॥ १० ॥

इसी प्रकार हृदयादिन्यास करना चाहिए ।

वीरतन्त्र के मतानुसार काली एवं तारा का स्वरूप एक होने से तारा मन्त्र के जप में कालीन्यास में कहे गये वर्णन्यास का प्रयोग करना आवश्यक है । इसके लिए देखिए कालीन्यासोक्तवर्णन्यास (द्र० ३. ७) ॥ ४-६ ॥

साधक को देवत्व भाव की सिद्धि के लिए षोढान्यास करना चाहिए । इस न्यास की विधि अपने भक्त शिष्य को ही बतलानी चाहिए । दुष्ट को कदापि नहीं बतलानी चाहिए ॥ ७ ॥

प्रथम **रुद्रन्यास की विधि** कहते हैं - माया बीज (ह्रीं), तृतीय बीज (त्रीं या स्त्रीं), तदनन्तर क्रोध बीज (हुं) के आगे मातृका वर्ण क्रमशः अं आं इत्यादि को लगाकर पुनः चतुर्थ्यन्त श्रीकण्ठादि रुद्रों के नाम, तदनन्तर नमः लगाकर पूर्वोक्त कहे गये (१. ८६-६१) मातृकान्यास के स्थानों में यह न्यास करना चाहिए ।

इस न्यास के समय शवासन पर बैठी हुई विविध आभूषणों से युक्त, नीले वर्ण की कान्ति से युक्त, तीन नेत्रों वाली अर्ध चन्द्रकला धारण किए हुये तारा देवी का ध्यान करते रहना चाहिए ॥ ८-१० ॥

विमर्श - छः प्रकार के न्यास को षोढान्यास कहते हैं जो इस प्रकार हैं - १ - रुद्रन्यास, २ - ग्रहन्यास, ३ - लोकपालन्यास, ४ - शिवशक्तिन्यास, ५ - तारादिन्यास तथा ६ - पीठन्यास । **तारार्णव तन्त्र** के

---

१. श्रीकण्ठादिनामानि एकविंशतिरंगे वक्ष्यन्ते (२१. ६६-६६)। प्रयोगस्तु – ह्रीं त्रीं हूँ अं श्रीकण्ठाय नमः ललाटे । ह्रीं त्रीं हुँ आं अनन्ताय नमो मुखे । एवं सर्वत्र ।

२. ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं लृं ऐं ऐं ओं औं अं अः रक्तवर्णं सूर्यं हृदि॥ १॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं रं लं वं शुक्लवर्णं सोमं भ्रुवद्वये ॥ २॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं)

अनुसार सुफल मनोरथ वाले साधक को तारा का षोढान्यास अवश्य करना चाहिए । तन्त्रशास्त्र में यह न्यास अत्यन्त गोपनीय ओर चमत्कारकारी फल देने वाला माना जाता है ।

रुद्रन्यास की विधि - रुद्रन्यास में देवी का ध्यान इस प्रकार है -

नीलवर्णा त्रिनयनां शवासनसमायुताम् ।
बिभ्रतीं विविधां भूषामर्धेन्दुशेखरां वराम् ॥

'तारा देवी का नीलवर्ण है, उनके तीन नेत्र हैं, वह शवासन पर विराजमान हैं और विविध अलङ्कारों से विभूषित तथा चन्द्रकला से सुशोभित है' - ऐसी देवी का ध्यान करते हुए निम्न विधि से न्यास करना चाहिए, यथा -

ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं श्रीकण्ठेशाय नमः, ललाटे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं आं अनन्तेशाय नमः, मुखवृत्ते ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं इं सूक्ष्मेशाय नमः, दक्षनेत्रं ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ईं त्रिमूर्तीशाय नमः, वामनेत्रे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं उं अमरेशाय नमः, दक्षकर्णे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ऊं अर्घीशाय नमः, वामकर्णे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ऋं भारभूतीशाय नमः, दक्षनासायाम् ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ॠं तिथीशाय नमः, वामनासायाम् ।
ह्रीं त्री (स्त्रीं) हुं लृं स्थाण्वीशाय नमः, दक्षगण्डे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लॄं हरेशाय नमः, वामगण्डे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं एं झिण्टीशाय नमः, ऊर्ध्वोष्ठे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ऐं भौतिकेशाय नमः, अधरोष्ठे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ओं सद्योजाताय नमः, ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं औं अनुग्रहेशाय नमः, अधोदन्तपंक्तौ ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं अक्रूरेशाय नमः, ब्रह्मरन्ध्रे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अः महासेनेशाय नमः, मुखे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं क्रोधीशाय नमः, दक्षबाहुमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं खं चण्डेशाय नमः, दक्षकूर्परे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं गं पञ्चान्तकेशाय नमः, दक्षमणिबन्धे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं घं शिवोत्तमेशाय नमः, दक्षकराङ्गुलिमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ङं एकरुद्राय नमः, दक्षकराङ्गुल्यग्रे ।

हुं कं खं गं घं ङं रक्तवर्णं मंगलं लोचनत्रये॥ ३॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं छं जं झं ञं श्यामवर्णं बुधं वक्षस्थले ॥ ४॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं ठं डं ढं णं पीतवर्णं बृहस्पति कण्ठकूपे ॥ ५॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं तं थं दं धं नं श्वेतवर्णं भार्गवं घण्टिकायाम् ॥ ६॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं फं बं भं मं नीलवर्णं शनैश्चरं नाभिदेशे॥ ७॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं षं सं हं धूम्रवर्णं राहुं मुखे ॥ ८॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं क्षं धूमवर्णं केतुं नाभौ ॥ ९॥ ॥ **इति ग्रहन्यासः** ॥

त्रिबीजस्वरपूर्वं तु रक्तं सूर्यं हृदि न्यसेत् ।
तथा यवर्गपूर्वं तु सोमं शुक्लं भ्रुवोर्द्वयोः ॥ ११ ॥

ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं कूर्मेशाय नमः, वामबाहुमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं छं एकनेत्रेशाय नमः, वामकूर्परे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं जं चतुराननेशाय नमः, वाममणिबन्धे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं झं अजेशाय नमः, वामकराङ्गुलिमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ञं सर्वेशाय नमः, वामकराङ्गुल्यग्रे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं सोमेशाय नमः, दक्षोरुमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ठं लाङ्गलीशाय नमः, दक्षजानुमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं डं दारुकेशाय नमः, दक्षपादमूलसन्धौ ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ढं अर्धनारीश्वराय नमः, दक्षपादाङ्गुलिमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं णं उमाकान्तेशाय नमः, दक्षपादाङ्गुल्यग्रे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं तं आषाढीशाय नमः, वामोरुमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं थं दण्डीशाय नमः, वामजघांमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं दं अन्त्रीशाय नमः, वामपादमूलसन्धौ ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं धं मीनेशाय नमः, वामपादाङ्गुलिमूले ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं नं मेषेशाय नमः, वामपादाङ्गुल्यग्रे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं लोहितेशाय नमः, दक्षपार्श्वे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं फं शिखीशाय नमः, वामपार्श्वे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं बं छगलण्डेशाय नमः, पृष्ठे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं भं द्विरण्डेशाय नमः, नाभौ ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं मं महाकालेशाय नमः, उदरे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं बालीशाय नमः, वक्षे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं रं भुजङ्गेशाय नमः, दक्षस्कन्धे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं पिनाकीशाय नमः, ककुदि ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं वं खड्गीशाय नमः, वामस्कन्धे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं बकेशाय नमः, हृदयादिदक्षहस्ते ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं षं श्वेतेशाय नमः, हृदयादिवामहस्ते ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं सं भृग्वीशाय नमः, हृदयादिदक्षपादे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं हं नकुलीशाय नमः, हृदयादिवामपादे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं शिवेशाय नमः, हृदयादि उदरे ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं क्षं सम्वर्तकाय नमः, हृदयादिमुखे ।

॥ **इति रुद्रन्यासः** ॥ ८-१० ॥

अब **ग्रहन्यास की विधि** कहते हैं - उपर्युक्त प्रकार से देवी का स्मरण करते हुये इस प्रकार ग्रहन्यास करना चाहिए - उक्त तीनों बीजों के साथ स्वर,

कवर्गपूर्वं रक्ताभं मङ्गलं लोचनत्रये ।
चवर्गाढ्यं बुधं श्यामं न्यसेद्वक्षःस्थले बुधः ॥ १२ ॥
टवर्गाढ्यं पीतवर्णं कण्ठकूपे बृहस्पतिम् ।
तवर्गाढ्यं श्वेतवर्णं घण्टिकायां तु भार्गवम् ॥ १३ ॥
नीलवर्णं पवर्गाढ्यं नाभिदेशे शनैश्चरम् ।
शवर्गाढ्यं धूम्रवर्णं ध्यात्वा राहुं मुखे न्यसेत् ॥ १४ ॥
लक्षाढ्यं धूम्रवर्णाभं केतुं नाभौ पुनर्न्यसेत् ।
त्रिबीजपूर्वकश्चैवं ग्रहन्यासः समीरितः ॥ १५ ॥

फिर रक्तवर्ण सूर्य उच्चारण कर हृदय में, इसी प्रकार य वर्ग के साथ शुक्लवर्ण सोम का उच्चारण कर दोंनों भ्रू में, कवर्ग के साथ रक्तवर्ण मङ्गल का उच्चारण कर तीनों नेत्रों में, चवर्ग के साथ श्यामवर्ण बुध का उच्चरण कर वक्षःस्थल में, टवर्ग के साथ पीतवर्ण बृहस्पति बोलकर कण्ठकूप में, तवर्ग के साथ श्वेतवर्ण भार्गव को घण्टिका में, पवर्ग के साथ नीलवर्ण शनैश्वर का उच्चारण कर नाभि में, शवर्ग के साथ धूम्रवर्ण राहु बोलकर मुख में तथा लवर्ग के साथ, धूम्रवर्ण केतु बोलकर पुनः नाभि में न्यास करना चाहिए ॥ १०-१५ ॥

ग्रहन्यास विधि - ग्रहन्यास में सभी वर्णों के प्रारम्भ में ह्रीं त्रीं हूँ इन तीन बीजाक्षरों को लगा कर न्यास करना चाहिए ॥ १५ ॥

विमर्श - १ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं ॡं ऐं ऐं ओं औं अं अः रक्तवर्णं सूर्यं हृदि न्यसामि ।

२ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं रं लं वं शुक्लवर्णं सोमं भ्रुवद्वये न्यसामि ।
३ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं. रक्तवर्णं मंगलं लोचनत्रये न्यसामि।
४ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं छं जं झं ञं श्यामवर्णं बुधं वक्षस्थले न्यसामि ।
५ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं ठं डं ढं णं पीतवर्णं बृहस्पतिं कण्ठकूपे न्यसामि ।
६ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं तं थं दं धं नं श्वेतवर्णं भार्गवं घण्टिकायाम् ।
७ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं फं बं भं मं नीलवर्णं शनैश्चरं नाभिदेशे न्यासामि ।
८ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं षं सं हं धूम्रवर्णं राहुं मुखे न्यासामि ।
९ - ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं क्षं धूम्रवर्णं केतुं नाभौं न्यसामि ।

॥ **इति ग्रहन्यासः** ॥ १०-१५ ॥

तदनन्तर उक्त प्रकार से भगवती का ध्यान करते हुये प्रयत्न पूर्वक तृतीय

---

१. ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं ललाट पूर्वे इन्द्राय नमः॥ १॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं आं ईं ऊं ॠं ॡं ऐं औं अः ललाटाग्नेय्यां अग्नये नमः॥ २॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं ललाटदक्षिणे यमाय नमः ॥ ३॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं छं जं झं ञं लालाटनैऋत्यां निर्ऋतये नमः॥ ४॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं ठं डं ढं णं ललाटपश्चिमायां वरुणाय नमः॥ ५॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं)

(३) दिक्पालन्यासः

तृतीयं लोकपालानां[१] न्यासं कुर्यात् प्रयत्नतः।
मायादिबीजत्रितयपूर्वकं सर्वसिद्धये॥ १६ ॥
स्वमस्तके ललाटादौ दशदिक्ष्वध ऊर्ध्वतः।
ह्रस्वदीर्घकादिकाष्टवर्गपूर्वान्दिशाधिपान् ॥ १७ ॥
शिवशक्त्याभिधन्यासं चतुर्थं[१] तु समाचरेत्।

लोकपालन्यास करना चाहिए । सर्वसिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए आरम्भ में माया बीजादि तीन बीज, तदनन्तर ह्रस्व दीर्घ स्वरों का क्रमशः न्यास अपने मस्तक के ललाटादि प्रथम दो स्थानों और दो दिशाओं में, तदनन्तर आठ दिशाओं में आठ कवर्गादि वर्णो का न्यास करना चाहिए ॥ १६-१७ ॥

लोकपालन्यास विधि -

ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं ललाटपूर्वे इन्द्राय नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं आं ईं ऊं ॠं ॡं ऐं औं अः ललाटाग्नेय्यां अग्नये नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं ललाटदक्षिणे यमाय नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं छं जं झं ञं लालाटनैऋत्यां निर्ऋतये नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं ठं डं ढं णं ललाटपश्चिमायां वरुणाय नमः
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं तं थं दं धं नं ललाट वायव्यां वायवे नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं फं बं भं मं ललाटोत्तरस्यां सोमाय नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं रं लं वं ललाटैशान्यां ईशानाय नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं षं सं हं ललाटोर्ध्वायां ब्रह्मणे नमः ।
ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ळं क्षं ललाटाधोदिशि अनन्ताय नमः ।

॥ **इति लोकपालन्यासः तृतीयः** ॥ १६-१७ ॥

लोकपालन्यास के अनन्तर शिव शक्ति संज्ञक चतुर्थ न्यास करना

हुं तं थं दं धं नं ललाटवायव्यां वायवे नमः॥ ६॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं फं बं भं मं ललाटोत्तरस्यां सोमाय नमः॥ ७॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं रं लं वं ललाटैशान्यां ईशानाय नमः॥ ८॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं षं सं हं ललाटोर्ध्वायां ब्रह्मणे नमः॥ ९॥ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ळं क्षं ललाटाधोदिशि अनन्ताय नमः॥ १०॥ ॥ **इति लोकपालन्यासः तृतीयः** ॥

१. ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं वं शं षं सं डाकिनीयुत ब्रह्माणं चतुर्दलसमन्वित मूलाधारे न्यसेत् ॥ १॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं बं भं मं यं रं लं राकिनीयुत श्रीविष्णुलिंगस्य षड्दले स्वाधिष्ठानचक्रे न्यसेत्॥ २॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लाकिनीयुत रुद्रं दशदलचक्र–नाभिस्थे मणिपूरके न्यसेत्॥ ३॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनी युतमीश्वरम् अनाहते द्वादशदले चक्रे हृदि न्यसेत् ॥ ४॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः शाकिनी युत सदाशिवं विशुद्धाख्य षोडशदले कण्ठस्थे विन्यसेत् ॥ ५॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं (हं) क्षं हाकिनीयुतं परशिवमाज्ञाचक्रे मनोहरे भ्रूमध्यसंस्थिते विन्यसेत् ॥ ६॥ ॥ **इति शिवशक्तिन्यास चतुर्थः** ॥

त्रिबीजपूर्वकान्न्यस्येत् षट्शिवाञ्छक्तिसंयुतान् ॥ १८ ॥
आधारादिषु चक्रेषु चक्रस्थाक्षरपूर्वकान् ।
ब्रह्माणं डाकिनीयुक्तं वादिसान्तार्णभूषितम् ॥ १९ ॥
मूलाधारे प्रविन्यस्येच्चतुर्दलसमन्विते ।
श्रीविष्णुं राकिनीयुक्तवादिलान्तार्णपूर्वकम् ॥ २० ॥
स्वाधिष्ठानाभिधे चक्रे लिङ्गस्थे षड्दले न्यसेत् ।
रुद्रं तु लाकिनीयुक्तं डादिफान्तार्णपूर्वकम् ॥ २१ ॥
चक्रे दशदले न्यस्येन्नाभिस्थे मणिपूरके ।
ईश्वरं कादिठान्तार्णपूर्वकं काकिनीयुतम् ॥ २२ ॥
विन्यसेद् द्वादशदले हृदयस्थे त्वनाहते ।
सदाशिवं शाकिनीं च षोडशस्वरपूर्वकम् ॥ २३ ॥

चाहिए । प्रारम्भ में पूर्वोक्त तीनों बीजों को लगाकर फिर चक्रस्थ वर्ण, फिर अपनी अपनी शक्तियों के साथ ६ शिवों को क्रमशः मूलाधार आदि ६ चक्रों में न्यस्त करना चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है - चार दल वाले मूलाधार चक्र पर वकारादि (व श ष स) चार वर्णों के साथ डाकिनी सहित द्वितीयान्त १. **'ब्रह्मदेव'** को न्यस्त करना चाहिए । तदनन्तर लिङ्गस्थान स्थित ६ दलों वाले स्वाधिष्ठान चक्र में बकारादि ६ वर्णों से राकिनी सहित द्वितीयान्त २. **'विष्णु'** का, तदनन्तर नाभि देश में स्थित दशदल वाले मणिपूर चक्र में डकार से लेकर फकारान्त वर्ण पर्यन्त लाकिनी सहित द्वितीयान्त ३. **'रुद्र'** का, तदनन्तर हृदयस्थ द्वादश दल वाले अनाहतचक्र में क से ठ पर्यन्त वर्णों का तथा काकिनी सहित द्वितीयान्त ४. **'ईश्वर'** का न्यास करना चाहिए । इसी प्रकार कण्ठ स्थान में स्थित १६दल वाले विशुद्ध चक्र में १६ स्वरों के साथ शाकिनी सहित द्वितीयान्त ५. **'सदाशिव'** का तथा भ्रूमध्य स्थित दो दल वाले आज्ञाचक्र में 'ल' 'क्ष' वर्णों के साथ हाकिनी सहित द्वितीयान्त ६. **परशिव** का न्यास करना चाहिए ॥ १८-२४ ॥

विमर्श - इस न्यास की विधि इस प्रकार है -

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं वं शं षं सं डाकिनीसहितब्रह्मणे नमः मूलाधारे ।

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं बं भं मं यं रं लं राकिनीसहितविष्णवे नमः स्वाधिष्ठाने ।

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुँ डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लाकिनीसहितरुद्राय नमः मणिपूरके ।

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनीसहिताय ईश्वराय नमः अनाहते ।

कण्ठस्थे षोडशदले विशुद्धाख्ये प्रविन्यसेत् ।
आज्ञाचक्रे परशिवहाकिनीसंयुतं जपेत् ॥ २४ ॥
लक्षार्णपूर्वं भ्रूमध्ये संस्थितेति मनोहरे ।
तारादिपञ्चमं न्यासं[1] कुर्यात्सर्वेष्टसिद्धये ॥ २५ ॥
अष्टौ वर्गान्स्वरद्वन्द्व–पूर्वकान् बीजसंयुतान् ।
पूर्वं प्रयोज्य ताराद्यान्यस्तव्या अष्टमूर्तयः ॥ २६ ॥
तारा उग्रा महोग्रापि वज्रा काली सरस्वती ।
कामेश्वरी च चामुण्डा इत्यष्टौ तारिकाः स्मृताः ॥ २७ ॥
ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे च भ्रूमध्ये कण्ठदेशतः ।
हृदि नाभौ लिगमूले मूलाधारे क्रमान्न्यसेत् ॥ २८ ॥

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः शाकिनीसहितसदाशिवाय नमः विशुद्धाख्ये ।

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं (हं) क्षं हाकिनीसहितपरशिवाय नमः आज्ञाचक्रे ।

॥ **इति शिवशक्तिन्यासः चतुर्थः** ॥ १८-२४ ॥

तत्पश्चात् अपनी अभीष्ट सिद्धि के निमित्त तारादि पञ्चम न्यास करना चाहिए । पूर्वोक्त तीन बीजों के अनन्तर दो दो स्वर, तदनन्तर क्रमशः उसके आगे एक एक वर्ग, तदनन्तर तारा आदि अष्ट मूर्त्तियों को क्रमशः ब्रह्मरन्ध्र, ललाट, भ्रूमध्य, कण्ठ, हृदय, नाभि, लिङ्गमूल एवं मूलाधार में न्यास करना चाहिए । १. तारा, २. उग्रा, ३. महोग्रा, ४. वज्रा, ५. काली, ६. सरस्वती, ७. कामेश्वरी तथा ८. चामुण्डा - ये तारा आदि अष्ट मूर्तियाँ कही गईं हैं ॥ २५-२८ ॥

विमर्श - इसकी **विधि** इस प्रकार है -

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं आं कं खं गं घं ङं तारायै नमः, ब्रह्मरन्ध्रे ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं इं ईं चं छं जं झं अं उग्रायै नमः, ललाटे ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं उं ऊं टं ठं डं ढं णं महोग्रायै नमः, भ्रमूध्ये ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ऋं ॠं तं थं दे घं नं वज्रायै नमः, कण्ठदेशे ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लृं लॄं पं फं बं भं मं महाकाल्यै नमः, हृदि ।

---

१. ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं आं कं खं गं घं ङं तारायै नमः ब्रह्मरन्ध्रे ॥ १॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं इं ईं चं छं जं झं ञं उग्रायै नमः ललाटे ॥ २॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं उं ऊं टं ठं डं ढ़ं णं महोग्रायै नमः भ्रमूध्ये ॥ ३॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ऋं ॠं तं थं दं घं नं वज्रायै नमः कण्ठदेशे ॥ ४॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं लृं पं फं बं भं मं महाकाल्यै नमः हृदि ॥ ५॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं एं ऐं यं रं लं वं सरस्वत्यै नमः नाभौ ॥ ६॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ओं औं शं षं सं हं कामेश्वर्यै नमः लिङ्गमूले ॥ ७॥ ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं अः लं क्षं चामुण्डायै नमः मूलाधारे ॥ ८॥ ॥ **इति** तारादिन्यासः ॥

षष्ठंन्यासं[1] ततः कुर्यात्पीठाख्यं सर्वसिद्धिदम् ।
आधारे कामरूपाख्यं ह्रस्वबीजार्णपूर्वकम् ॥ २९ ॥
हृदि जालन्धरं पीठं दीर्घपूर्वं प्रविन्यसेत् ।
ललाटे पूर्णगिर्याख्यं कवर्गाढ्यं न्यसेत्सुधीः ॥ ३० ॥
उड्डियानं चवर्गाद्यं केशसन्धौ प्रविन्यसेत् ।
भ्रुवोर्वाराणसीपीठं टवर्गाद्यं समाहितः ॥ ३१ ॥
तवर्गपूर्विकां न्यस्येदवन्तीं नयनद्वये ।
पवर्गपूर्वकं मायापुरीपीठं मुखे न्यसेत् ॥ ३२ ॥
कण्ठे तु मथुरापीठं यवर्गाद्यं प्रविन्यसेत् ।
अयोध्यापीठकं नाभौ शवर्गादिकमुत्तमम् ॥ ३३ ॥
कट्योः काञ्चीपुरीपीठं दशमं तु प्रविन्यसेत् ।
षोढान्यासास्तु तारायाः प्रोक्तास्ते इष्टदायकाः ॥ ३४ ॥

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं एं ऐं यं रं लं वं सरस्वत्यै नमः, नाभौ ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं ओं औं शं षं सं हं कामेश्वर्यै नमः, लिङ्गमूले ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं अः लं क्षं चामुण्डायै नमः, मूलाधारे ।

॥ **इति तारादिन्यासः** ॥ २५-२८ ॥

अब साधकों को शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले **षष्ठ पीठन्यास की विधि** कहते हैं –

आधार में बीजत्रितय सहित ह्रस्वस्वरों के साथ कामरूप पीठ का, हृदय में पूर्वबीजों के सहित दीर्घस्वरों का उच्चारण कर जालन्धर पीठ का, पुनः ललाट में पूर्ववत् तीनों बीजों के आगे कवर्ग का उच्चारण कर पूर्णगिरि संज्ञक पीठ का, केशसन्धियों में पूर्ववत् तीनों बीजों के साथ चवर्ग का उच्चारण कर उड्डीयान पीठ का, फिर दोनों भौहों में पूर्ववत् बीजों के साथ टवर्ग का उच्चारण कर वाराणसी पीठ का, दोनों नेत्रों में तवर्ग के साथ अवन्ति पीठ का, मुख में पवर्ग के साथ मायापुरी पीठ का, कण्ठ में यवर्ग के साथ मथुरा पीठ का, नाभि में शवर्ग के साथ अयोध्या पीठ का, तथा कटि में (ल क्ष के साथ) दशम

---

१. ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं कामरूपपीठाय नमः, आधारे । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं आं ईं ऊं ॠं लॄं ऐं औं अः जालंधरपीठाय नमः, हृदि । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं पूर्णगिरिपीठाय नमः, ललाटे । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं छं जं झं ञं उड्डीयानपीठाय नमः, केशसंधौ । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं ठं डं ढं णं वाराणसीपीठाय नमः, भ्रुवोः । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं तं थं दं धं नं अवन्तिपीठाय नमः, नेत्रयोः । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं फं बं भं मं मायापुरीपीठाय नमः, मुखे । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं रं लं वं मथुरापीठाय नमः, कण्ठे । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं षं सं हं अयोध्यापीठाय नमः, नाभौ । ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं क्षं काञ्चीपुरीपीठाय नमः, कट्याम् ॥ **इति पीठन्यासः** ॥

श्रीमतीं ह्र्द्येकजटां[1] तारिणीं शिरसि न्यसेत्।
वज्रोदकां शिखायां तु उग्रतारां तु वर्मणि ॥ ३५ ॥
महापरिसरे नेत्रे पिङ्गोग्रैकजटेऽस्त्रके।
षड्दीर्घयुक्तमायाद्या एतान्यस्याः षडङ्गके ॥ ३६ ॥
अंगुष्ठादिष्वंगुलीषु पूर्वं विन्यस्य यत्नतः।
तर्जनीमध्यमाभ्यां तु कृत्वा तालत्रयं ततः ॥ ३७ ॥
छोटिकामुद्रया कुर्याद्दिग्बन्धं देवतां स्मरन्।
विद्यया तारपुटया व्यापकं सप्तधा चरेत्।
उग्रां तारां ततो ध्यायेत्सद्योवाक्सिद्धिदायिनीम् ॥ ३८ ॥

काञ्चीपुरी पीठ का न्यास करना चाहिए । यहाँ तक जो तारा के षष्ठ पीठ न्यास कहे गये हैं वे साधकों को सभी प्रकार की सिद्धि प्रदान करते हैं ॥ २९-३४ ॥

विमर्श - षष्ठपीठन्यास विधि -

ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं अं इं उं ऋं लृं एं ओं अं कामरूपपीठाय नमः, आधारे।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं आं ईं ऊं ॠं ॡं ऐं औं अः जालन्धरपीठाय नमः, हृदि।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं कं खं गं घं ङं पूर्णगिरिपीठाय नमः, ललाटे ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं चं छं जं झं ञं उड्डीयानपीठाय नमः, केशसंधौ ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं टं ठं डं ढं णं वाराणसीपीठाय नमः, भ्रुवोः ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं तं थं दं धं नं अवन्तिपीठाय नमः, नेत्रयोः ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं पं फं बं भं मं मायापुरीपीठाय नमः, मुखे ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं यं रं लं वं मथुरापीठाय नमः, कण्ठे ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं शं षं सं हं अयोध्यापीठाय नमः, नाभौ ।
ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं लं क्षं काञ्चीपुरीपीठाय नमः, कट्याम् ।

॥ इति पीठन्यासः ॥ २९-३४ ॥

मायाबीज में क्रमशः ६ दीर्घवर्णों को आदि में लगाकर क्रमशः एक जटा का हृदय में, तारिणी का शिर में, वज्रोदका का शिखा में, उग्रतारा का कवच में, महापरिसरा का नेत्रों में, तथा पिङ्गोग्रैजटा का अस्त्रन्यास करना चाहिए । इसी प्रकार अङ्गुष्ठादि अङ्गुलियों में करन्यास कर तर्जनी मध्यमा द्वारा तीन ताली बजा कर छोटिका मुद्रा से दिग्बन्धन करना चाहिए । फिर प्रणव से सम्पुटित विद्या (ॐ ह्रीं त्रीं (स्त्रीं) हुं फट् ॐ) द्वारा सात बार व्यापक न्यास कर शीघ्र वाक्सिद्धि प्रदान करने वाली उग्रतारा भगवती का आगे (४.३९-४०) कहे गये श्लोकों में ध्यान करना चाहिए ॥ ३५-३८ ॥

---

१. ॐ ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः ॥ १॥ ॐ ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा ॥ २॥ ॐ ह्रूं वज्रोदकायै शिखायै वषट् ॥ ३॥ ॐ ह्रैं उग्रजटायै कवचाय हुम् ॥ ४॥ ॐ ह्रौं महापरिसरायै नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ ५॥ ॐ ह्रः पिङ्गोग्रैकजटायै अस्त्राय फट् ॥ ६॥

ताराध्यानम्

विश्वव्यापकवारिमध्यविलसच्छ्वेताम्बुजन्मस्थितां
कर्त्रीखड्गकपालनीलनलिनै राजत्करां नीलभाम्।
काञ्चीकुण्डल–हार–कंकणलसत् केयूरमञ्जीरता–
माप्तैर्नागवरैर्विभूषिततनूमारक्तनेत्रत्रयाम् ॥ ३९ ॥
पिङ्गोग्रैकजटां लसत्सुरसनां दंष्ट्राकरालाननां
चर्मद्वीपिवरं कटौ विदधतीं श्वेतास्थिपट्टालिकाम्।
अक्षोभ्येण विराजमानशिरसं स्मेराननाम्भोरुहां
तारां शावहृदासनां दृढकुचामम्बां त्रिलोक्याः स्मरेत् ॥ ४० ॥

ध्यानमाह – **विश्वेति** । खड्गनीलसरोज दक्षयोः । कर्त्रीकपाले वामयोः ॥ ३९ ॥ श्वेतोऽस्थिपट्टोऽलिके ललाटे यस्यास्ताम् । अक्षोभ्यो मन्त्रद्रष्टा मुनिस्तेन शोभितमस्तकाम् ॥ ४० ॥ * ॥ ४१ ॥

विमर्श - षडङ्गन्यास विधि -

ॐ ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रूं वज्रोदकायै शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं उग्रजटायै कवचाय हुम्,
ॐ ह्रौं महापरिसरायै नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः पिङ्गोग्रैकजटायै अस्त्राय फट्।

इसी प्रकार करन्यास कर पूर्वोक्त रीति से ताली बजाकर व्यापक न्यास करना चाहिए ॥ ३५-३८ ॥

अब **उग्रतारा का ध्यान** कहते हैं -

विश्वव्यापक जल के मध्य में श्वेत कमल पर विराजमान जिन भगवती के दाहिने हाथों में खड्ग एवं नीलकमल तथा बायें हाथों में कर्त्तारिका (छुरी) एवं कपाल (नरमुण्ड) है, जिनके शरीर की कान्ति नील वर्ण की है, तथा जो काञ्ची, कुण्डल, हार, कङ्कण, केयूर तथा मञ्जीर आदि आभूषणों से, एवं सुन्दर नागों से विभूषित हैं, ऐसे रक्त वर्ण वाले तीन नेत्रों से सुशोभित रहने वाली जिन भगवती के सिर पर पिङ्गल वर्ण की एक जटा है । जिनकी जिह्वा चञ्चल है, दन्तपक्तियों के कारण जिनका मुख महाभयानक प्रतीत हो रहा है । जिनके कटि में व्याघ्र चर्म, माथे पर श्वेतास्थिपट्टिका तथा शिर पर नागरूप धारी अक्षोभ्य ऋषि विराज रहे हैं ऐसी ईषद्धास्य से युक्त मुख कमल वाली, शव के हृदय पर आसन लगाये हुये कठोर स्तनों वाली त्रिलोक जननी भगवती तारा का ध्यान करना चाहिए ॥ ३९-४० ॥

हां त्रां हां एकजटायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः॥ १॥ हां त्रां हां तारिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा॥ २॥ हां त्रां हां वज्रोदकायै मध्यमाभ्यां वषट् ॥ ३॥ हां त्रां हां उग्रतारायै अनामिकाभ्यां हुं ॥ ४॥ हां त्रां हां महापरिसरायै कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् ॥ ५॥

एवं ध्यायन्नदन्भक्ष्यमनेकं दधिमध्वपि ।
मधुमांसं च ताम्बूलं जपेल्लक्षचतुष्टयम् ॥ ४१ ॥
दशांशं जुहुयाद् रक्तपद्मैः क्षीराज्यलोलितैः ।
स्थापयित्वा महाशङ्खं जपस्थाने जपं चरेत् ॥ ४२ ॥
नारीं पश्यन्स्पृशन्गाच्छन् महानिशिबलिं ददेत् ।
न कार्यः सुभ्रुवां द्वेषो यत्नात्ताः पूजयेत् सदा ॥ ४३ ॥
जपे न कालनियमो न स्थितौ सर्वदा जपेत् ।
श्मशाने शून्यसदने देवागारेथ निर्जने ॥ ४४ ॥
पर्वते वनमध्ये वा शवमारुह्य मन्त्रवित् ।
समरे शत्रुनिहतं यद्वा षाण्मासिकं शिशुम् ॥ ४५ ॥
विद्यां संसाधयेच्छीघ्रं साधितैवं प्रसिध्यति ।
मेधाप्रज्ञाप्रभाविद्याधीर्धृतिस्मृतिबुद्धयः ॥ ४६ ॥
विद्येश्वरीति सम्प्रोक्ताः पीठस्य नवशक्तयः ।

तारापीठमन्त्रः

भृगुमन्विन्दुसंयुक्तमेघवर्त्मसरस्वती ॥ ४७ ॥

महाशङ्खं कपालम् ॥ ४२ ॥ * ॥ ४३–४६ ॥ पीठमन्त्रमुद्धरति – **भृग्विति** । भृगुमन्विन्दुसंयुक्तं सकारः औबिन्दुयुतम् । मेघवर्त्म हः । हार्दं नमः । स्वरूपम् अन्यत् । हौं सरस्वतीयोगपीठात्मने नम इति ॥ ४७ ॥ * ॥ ४८–४९ ॥

तारा भगवती का ध्यान करते हुये एक हविष्यान्न अथवा अनेक दधि मधु अथवा मधु और मांस खाकर तथा ताम्बूल का चवर्ण करते हुए तारा मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर दूध और घी मिलाकर रक्तकमलों से दशांश हवन करना चाहिए । जप स्थान पर महाशंख (नर कपाल) स्थापित कर जप का विधान कहा गया है । स्त्री को देखते हुये स्पर्श करते हुये अथवा चलते हुये निशीथ काल में बलि देनी चाहिए । स्त्रियों से कभी द्वेष नहीं करना चाहिए, अपितु सर्वदा उनका पूजन करना चाहिए ॥ ४१-४३ ॥

तारा मन्त्र के जप में काल एवं स्थान का कोई नियम नहीं है । सर्वदा और सभी जगह जप करना चाहिए । श्मशान में, शून्यगृह में, देवस्थान (मन्दिर) में, एकान्त में, पर्वत पर या वन के मध्य में शव पर बैठकर साधक कहीं भी जप कर सकता है । युद्ध में मारे गये शत्रु अथवा ६ महीने के मरे हुए बालक के शव पर इस विद्या की सिद्धि करनी चाहिए । सिद्धि की हुई यह विद्या मनुष्य को शीघ्र ही प्रसिद्धि प्रदान करती है ॥ ४४-४५ ॥

पीठशक्ति एवं पीठ मन्त्र - १. मेधा, २. प्रज्ञा, ३. प्रभा, ४. विद्या, ५. धी, ६. धृति, ७. स्मृति ८. बुद्धि एवं ९. विद्येश्वरी - ये पीठ की नव

योगपीठात्मने हार्दं पीठस्य मनुरीरितः ॥ ४८ ॥
दत्त्वानेनासनं मूर्तिं मूलमन्त्रेण कल्पयेत् ।
पूजयेद्विधिवद्देवीं तद्विधानमथोच्यते ॥ ४९ ॥

नित्यबलिदानमन्त्रः

तारो माया भगं ब्रह्माजटेसूर्यः सदीर्घखम् ।
यक्षाधिपतये तन्द्रीमोपनीतं बलिं ततः ॥ ५० ॥
गृह्णयुग्मं शिवा स्वाहा बलिमन्त्रोऽयमीरितः ।
दद्यान्नित्य बलिं तेन मध्यरात्रे चतुष्पथे ॥ ५१ ॥
जलदानादिकं मन्त्रैर्विदध्याद्दशभिस्ततः ।

नित्यबलिदानमन्त्रमाह – **तार** इति । तारः प्रणवः । माया ह्रीं । भगमेकारः । ब्रह्मा कः । जटे स्वरूपम् । सूर्यो मः । सदीर्घ खं हा । तन्द्री मः । शिवा ह्रीं । स्वरूपम् अन्यत् । यथा – ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये ममोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण ह्रीं स्वाहेति । अनेन नित्यं निशीथे बलिं दद्यात् ॥ ५० ॥ * ॥ ५१ ॥ जलग्रहणादिमन्त्रान् उद्धरति – **ध्रुव** इति । ॐ वज्रोदके हुं फडिति जलग्रहणमन्त्रः ॥ ५२ ॥ **तारेति** । ॐ ह्रीं स्वाहेति पादक्षालन मन्त्रः ।

शक्तियाँ हैं । भृगुमन्विन्दुसंयुक्त सकार (सं), तदनन्तर औ बिन्दु संयुक्त मेघवर्त्म हकार (हौं) सरस्वतीयोगपीठात्मने नमः - यह पीठ मन्त्र कहा गया है ॥ ४६-४८ ॥

विमर्श - पीठ मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'सं हौं सरस्वती-योगपीठात्मने नमः' ॥ ४६-४८ ॥

इस पीठ मन्त्र से आसन देकर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करनी चाहिए । तदनन्तर देवी की जिस प्रकार पूजा करनी चाहिए उसकी विधि कहते हैं ॥ ४९ ॥

पूजा के बाद नित्य बलिदान करना चाहिए । उसका मन्त्र इस प्रकार कहा है - तार (ॐ) माया (ह्रीं), भग (ए), ब्रह्मा (क), फिर 'जटे' पद । फिर सूर्य 'म', सदीर्घ ख 'हा' फिर यक्षाधिपतये' पद, इसके बाद तन्द्री (म), फिर 'मोपनीतं बलिं' यह पद, फिर गृह्ण गृह्ण, फिर शिवा (ह्रीं) एवं अन्त में स्वाहा पद - इतना बलि का मन्त्र कहा गया है । इस मन्त्र से अर्धरात्रि में चौराहे पर बलि प्रदान करना चाहिए ॥ ५०-५१ ॥

विमर्श - बलि मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -

'ॐ ह्रीं एकजटे यक्षाधिपतये ममोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण ह्रीं स्वाहा' - इस मन्त्र से नित्य अर्धरात्रि में बलिप्रदान करना चाहिए ॥ ५०-५१ ॥

इसके अनन्तर जल ग्रहणादि कार्य इन १० मन्त्रों से करना चाहिए ।

जलग्रहणादिमन्त्रोद्धारः

ध्रुवो वज्रोदके वर्मफट्सप्तार्णैर्जलग्रहः ॥ ५२ ॥
ताराद्यावह्निजायान्ता मायांघ्रिक्षालने स्मृता ।
तारो माया भृगुः कर्णीविशुद्धधर्मवर्णतः ॥ ५३ ॥
सर्वपापानिशाभ्याशे श्वेतो नेत्रयुतञ्जलम् ।
कल्पानपनयस्वाहा षड्विंशत्यक्षरो मनुः ॥ ५४ ॥
अनेनाचमनं कुर्याद् ध्रुवो मणिधरीति च ।
वज्रिण्यक्षियुतो मृत्युः खरिनेत्रयुता रतिः ॥ ५५ ॥
सर्वान्ते वबकः सेन्दुः करिण्यन्ते शिरोर्धिखम् ।
अस्त्रवह्निप्रियामन्त्रस्त्रयोविंशति वर्णवान् ॥ ५६ ॥
शिखाबन्धं प्रकुर्वीत मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।

तार इति । कर्णी भृगुः उयुतः सः ॥ ५३ ॥ श्वेतः षः । नेत्रयुतं जलं वि । स्वरूपम् अन्यत् । ॐ ह्रीं सुविशुद्धधर्मसर्वपापनिशाम्याशेषविकल्पान् अपनय स्वाहेत्याचमनमन्त्रः ॥ ५४ ॥ ध्रुव इति । अक्षियुतो मृत्युः शि । नेत्रयुता रतिः णि ॥ ५५ ॥ वकः शं । शिरः कं । अर्धिसेन्दुः खं । बिन्दुयुतो हः हुं । अस्त्रं फट् । वह्निप्रिया स्वाहा । स्वरूपम् अन्यत् । यथा – ॐ मणिधरि वज्रिणि शिखरिणि सर्ववशङ्करिणि कं हुं फट् स्वाहेति शिखाबन्धनमन्त्रः ॥ ५६ ॥

---

१. ध्रुव (ॐ), फिर 'वज्रोदके' पद, फिर वर्म (हुं) अन्त में 'फट्' । इस सात अक्षर के मन्त्र से जल ग्रहण करना चाहिए ॥ ५२ ॥

२. माया बीज (ह्रीं) के आदि में तार (ॐ) तथा अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) लगाने से पादप्रक्षालन का मन्त्र बनता है ।

३. तार (ॐ), कर्णीभृगु (सु) फिर 'विशुद्ध धर्म' फिर 'सर्वपापनिशाम्याशे' फिर श्वेत (ष), नेत्रयुत् जल (वि), फिर 'कल्पानपनय स्वाहा' इस छब्बीस अक्षर के मन्त्र से आचमन कराना चाहिए ॥ ५३-५४ ॥

४. ध्रुव (ॐ), फिर 'मणिधरि' यह पद, फिर अक्षियुत् मृत्यु (शि), फिर 'खरि' पद, फिर नेत्रयुता रति (णि), फिर 'सर्व' पद, फिर व, तदनन्तर सेन्दुवक (शं) तथा करिणि पद, फिर सेन्दु शिर (कं) अर्घिखं (हुं), अस्त्र (फट्) तथा अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) इस तेईस अक्षरों के मन्त्र से साधक को शिखाबन्धन करना चाहिए ॥ ५५-५७ ॥

५. प्रणव (ॐ), तदनन्तर रक्ष युगल (रक्ष रक्ष), दीर्घ वर्म (हूं), अस्त्र (फट्) तदनन्तर ठ द्वय (स्वाहा), इस ९ अक्षर के मन्त्र से भूमिशोधन करना चाहिए ॥ ५७-५८ ॥

भूमिशोधनविघ्ननिवारणमन्त्रकथनम्

प्रणवो रक्षयुगलं दीर्घवर्मास्त्रठद्वयम् ॥ ५७ ॥
नववर्णेन मन्त्रेण कुर्याद्भूमिविशोधनम् ।
तारान्ते सर्वविघ्नानुत्सारयेतिपदं ततः ॥ ५८ ॥
हुंफट्स्वाहा गुणेन्द्वर्णो मनुर्विघ्ननिवारणे ।
अनेन विघ्नानुत्सार्य भूतशुद्धिमथाचरेत् ॥ ५९ ॥

भूतशुद्धिमन्त्रकथनम्

मायाबीजं जपापुष्पनिभं नाभौ विचिन्तयेत् ।
तदुत्थेनाग्निना देहं दहेत्सार्द्धं स्वपाप्मना ॥ ६० ॥
ताराबीजं सुवर्णाभं चिन्तयेद्धृदि मन्त्रवित् ।
पवनेन तदुत्थेन पापभस्म क्षिपेद् भुवि ॥ ६१ ॥
तुरीयं चन्द्रकुन्दाभं बीजं ध्यात्वा ललाटतः ।
तदुत्थसुधया देहं रचयेद्देवतानिभम् ॥ ६२ ॥

प्रणव इति । दीर्घं वर्म हूं । अस्त्रं फट् । ठद्वयं स्वाहा । ॐ रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहेति भूशोधनमन्त्रः । तारेति । ॐ सर्वविघ्नान् उत्सारय हुं फट् स्वाहेति विघ्नवारणमन्त्रः ॥ ५७ ॥ * ॥ ५८–५९ ॥ भूतशुद्धिमाह – **मायेति** ॥ ६० ॥ * ॥ ६१ ॥ **तुरीयमिति** – हूं ॥ ६२ ॥

---

६. तार (ॐ) के बाद 'सर्वविघ्नानुत्सारय' फिर 'हुं फट् स्वाहा' इस तेरह अक्षरों के मन्त्र से विघ्नों का निवारण कर पश्चात् भूतशुद्धि करनी चाहिए ॥ ५२-५९ ॥

विमर्श - मन्त्रों का स्वरूप इस प्रकार है -

१. जल ग्रहण मन्त्र - ॐ वज्रोदके हुं फट् ।

२. पादप्रक्षालन मन्त्र - ॐ ह्रीं स्वाहा ।

३. आचमन मन्त्र - ॐ ह्रीं सुविशुद्धधर्मसर्वपापनिशाम्याशेषविकल्पानपनय स्वाहा ।

४. शिखाबन्धन मन्त्र - ॐ मणिधरि वज्रिणि शिखरिणि सर्ववशङ्करिणि कं हुं फट् स्वाहा ।

५. भूमिशोधन मन्त्र - ॐ रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा ।

६. विघ्न निवारण मन्त्र - ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा ॥ ५२-५९ ॥

अब **भूतशुद्धि का प्रकार** कहते हैं - सर्वप्रथम जपा कुसुम (ओड़हुल) के समान लाल आभा वाले माया बीज (ह्रीं) का नाभिस्थान में ध्यान करना चाहिए । तदनन्तर उससे निकलने वाली अग्नि की लपटों से पाप सहित अपने

अनयाभूतशुद्ध्या तु देवीसादृश्यमाप्नुयात् ।

भूमिनिमन्त्रणमन्त्रः

तारः पवित्रवज्रेति भूमेर्घीशेन्दुयुग्वियत् ॥ ६३ ॥

तार इति । अर्घीशेन्दुयुक् वियत् । ऊबिन्दुयुतो हः हूं । ॐ पवित्रवज्रभूमे हूं स्वाहेति भूमिनिमन्त्रणमन्त्रः ॥ ६३ ॥

शरीर को जला देना चाहिए । फिर सुवर्ण के समान पीत वर्ण वाले त्रीं या स्त्रीं का हृदय प्रदेश में ध्यान कर उससे उत्पन्न वायु द्वारा पापों को भस्म कर शरीर से बाहर निकाल कर पृथ्वी पर फेंक देना चाहिए । पश्चात् चन्द्रमा या कुन्द के समान श्वेत आभा वाले तुरीय बीज (हूँ) का ललाट देश में ध्यान कर उससे उत्पन्न अमृत द्वारा देवता के समान अपने निष्पाप शरीर की रचना करनी चाहिए । इस प्रकार की भूतशुद्धि की क्रिया से साधक स्वयं देवी के सदृश बन जाता है ॥ ६०-६३ ॥

विमर्श - भूतशुद्धि प्रयोगविधि - साधक को अपनी गोद में दोनों हाथों को उत्तानमुद्रा में रखकर पद्मासन बाँधकर एकान्त एवं शान्त भाव से बैठ जाना चाहिए । फिर 'हंस' मन्त्र से साधक कुण्डलिनी को जीवात्मा एवं चौबीस तत्वों के साथ सुषुम्नामार्ग से ऊर्ध्व गति से ले जाकर शिर में स्थित सहस्रार पद्म में परमशिव से उन्हें मिला दें ।

(i) तदनन्तर साधक नाभि में रक्तवर्ण **'ह्रीं' बीज** का ध्यान कर सोलह बार जप करते हुए पूरक क्रिया द्वारा उस बीज से उत्पन्न अग्नि की लपटों से पापसहित लिङ्ग शरीर को जला दे ।

(ii) तत्पश्चात् हृदय में पीतवर्ण **'स्त्रीं' बीज** का ध्यान कर चौंसठ बार जप करते हुए कुम्भक प्राणायाम से भस्म को इकट्ठा कर साधक को रेचक क्रिया द्वारा उक्त भस्म को बाहर निकाल कर फेंक देना चाहिए ।

(iii) इसके बाद शिर में शुक्लवर्ण **'हुं' बीज** का ध्यान कर बत्तीस बार जप करते हुए पूरक क्रिया द्वारा उससे उत्पन्न अमृत से आप्लावित कर दिव्य शरीर की रचना करनी चाहिए ।

फेत्कारिणी तन्त्र के अनुसार साधक को भूतशुद्धि कर 'आः' वर्ण को रक्त कमल के समान ध्यान कर उसके 'आँ' वर्ण को श्वेतकमल के समान और उसके ऊपर 'हुं' बीज को नीलकमल के समान ध्यान कर उसके ऊपर 'हूं' बीज से उत्पन्न बीजभूषित कर्तरिका का ध्यान करना चाहिए । कर्तरिका के ऊपर अपनी आत्मा का तारिणी (तारादेवी) के रूप में ध्यान करना चाहिए । फिर 'आं' ह्रीं क्रौं स्वाहा' इस मन्त्र का ग्यारह बार जप करते हुए हृदय में देवी की

वह्निप्रियामनुः प्रोक्ता रुद्रार्णो भूमिमन्त्रणे ।

मण्डलमन्त्रः

तारोऽनन्तो भृगुः कर्णी पद्मनाभयुतो बली ॥ ६४ ॥
खे वज्ररेखे क्रोधाख्यं बीजं पावकवल्लभा ।
द्वादशार्णेन मन्त्रेण रचयेन्मण्डलं शुभम् ॥ ६५ ॥

पुष्पशोधनमन्त्रः

तारो यथागतानिद्रासदृक्षेकभृगुर्विषम् ।
सदीर्घस्मृतिरौ साक्षौ महाकालो भगान्वितः ॥ ६६ ॥
क्रोधोस्त्रं मनुवर्णोऽयं मनुः पुष्पादिशोधने ।

चित्तशोधनमन्त्रः

तारः पाशपरास्वाहा पञ्चार्णश्चित्तशोधने ॥ ६७ ॥

तार इति । अनन्त आ । कर्णी भृगुः । सु । पद्मनाभयुतो बली एयुतो रः रे । क्रोधबीजं हुं । ॐ आसुरेखे वज्ररेखे हुं स्वाहेति मण्डलमन्त्रः ॥ ६४ ॥ * ॥ ६५ ॥ **तार** इति । सदृक् निद्रा इयुतो भः भिः । भृगुः सः । विषं मः । सदीर्घमायुतम् । स्मृतिरो गकाररेफौ साक्षौ इयुतौ ग्नि । भगान्वितो महाकालः एयुतो मः ॥ ६६ ॥ क्रोधो हुं । अस्त्रं फट् । यथा – ॐ गताभिषेकसमाग्नि मे हुं फडिति पुष्पशोधनमन्त्रः । तार इति । पाश आं । परा ह्रीं । ॐ आं ह्रीं स्वाहेति चित्तशोधनमन्त्रः ॥ ६७ ॥

प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए । इस प्रकार की भूतिशुद्धि की क्रिया से साधक स्वयं देवी सदृश हो जाता है ॥ ६०-६३ ॥

अब **भूमिनिमन्त्रण आदि का मन्त्र** कहते हैं -

७. तार (ॐ), फिर 'पवित्र वज्र' पद, फिर भूमि, फिर अर्धीशेन्दुयुत वियत् (हूँ), इसके अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) यह ग्यारह अक्षरों का भूमि अभिमन्त्रण का मन्त्र बन जाता है ॥ ६३-६४ ॥

८. तार (ॐ), अनन्त (आ), फिर कर्णी भृगु (सु) फिर पद्मनाभयुत बली (रे), तदनन्तर 'खे वज्र रेखे', फिर क्रोध बीज (हुं), फिर अन्त में पावकवल्लभा (स्वाहा) लगाने से बारह अक्षरों का मण्डल रचना का मन्त्र निष्पन्न होता है । साधक को इस मन्त्र से शुभ मण्डल की रचना करनी चाहिए ॥ ६४-६५ ॥

९. तार (ॐ), फिर 'यथागता', फिर 'सदृक् निद्रा' इकार युक्त भकार अर्थात् (भि), फिर 'षेक' पद, फिर भृगु (स), सदीर्घविष (मा), साक्षि स्मृति

मनवो दश संप्रोक्ता अर्घ्यस्थापनमुच्यते ।

अर्घ्यस्थापनम्

सेन्दुभ्यां मांसतोयाभ्यां भुवं संमृज्य भूगृहम् ॥ ६८ ॥
वृत्तं त्रिकोणसंयुक्तं कुर्यान्मण्डलमन्त्रतः ।
यजेत्तत्राधारशक्तिं कच्छपं नागनायकम् ॥ ६९ ॥
आधारं स्थापयेत्तत्र ताराद्यस्त्राङ्गमायया ।
वह्निमण्डलमभ्यर्च्य महाशङ्खं निधापयेत् ॥ ७० ॥

अर्घ्यस्थापनमाह – **सेन्दुभ्यामिति** । मांसं लः । तोयं वः ॥ ६८ ॥ सबिन्दुभ्याम् आभ्यां भूमिं संशोध्य पूर्वोक्तेन मण्डलमन्त्रेण वृत्तत्रिकोण–चतुष्कोणात्मकं मण्डलं कुर्यात् । तत्राधारशक्तिं कूर्मशेषान् संपूज्य ॥ ६९ ॥ ॐ ह्रीं फडिति मन्त्रेणार्घ्याधारं स्थापयेत् । मं वह्निमण्डलाय नम इति तत्सम्पूज्य ॥ ७० ॥ वामकर्णेन्दुयुक्तेन उबिन्दुयुतेन फडन्तेन विहायसा हकारेण

(ग्नि), भगान्वित महाकाल (मे), क्रोध (हुं), एवं अन्त में अस्त्र (फट्) लगाने से चौदह अक्षरों का पुष्पादिशोधन मन्त्र बनता है ।

१०. तार (ॐ), पाशं (आं) परा (ह्रीं) उसके अन्त में स्वाहा लगाने से पाँच अक्षरों का चित्तशोधन मन्त्र बनता है -

इस प्रकार जल ग्रहण आदि के दश मन्त्र बतलाये गये । आगे अर्घ्य स्थापन की क्रिया का वर्णन करेगें ॥ ६६–६७ ॥

विमर्श - मन्त्रों का स्वरूप इस प्रकार है -

७ - भूमि अभिमन्त्रण मन्त्र - ॐ पवित्रवज्रभूमे हूं स्वाहा ।

८ - मण्डल रचना मन्त्र - ॐ आसुरेखे वज्ररेखे हुं स्वाहा

९ - पुष्पादिशोधन मन्त्र - ॐ यथागताभिषेकसमाग्नि मे हुं फट् ।

१० - चित्तशोधन मन्त्र - ॐ आं ह्रीं स्वाहा ॥ ६६-६७ ॥

यहाँ तक ग्रन्थकार ने दश मन्त्रों का वर्णन किया । अब आगे **अर्घ्य स्थापन की विधि** कहते हैं -

सेन्दु (सानुस्वार) मांस (ल) तथा तोय व (अर्थात् लं वं) मन्त्र पढ़कर भूमि शोधन करें । पश्चात् मण्डल मन्त्र (ॐ आसुरेखे वज्ररेखे हुं स्वाहा) पढ़कर वृत्त त्रिकोण और चतुष्कोणात्मक मण्डल की रचना कर उस पर आधार शक्ति 'आधारशक्तये नमः' कच्छप (कच्छपाय नमः) नागनायक शेष (शेषाय नमः) का पूजन करें । तदनन्तर आदि में तार (ॐ) माया (ह्रीं) सहित फडन्त मन्त्र अर्थात् 'ॐ ह्रीं फट्' इस मन्त्र से मण्डल पर आधार पात्र स्थापित करें । इसके पश्चात् 'मं वह्निमण्डलाय नमः' इस मन्त्र से वह्निमण्डल

मन्त्रचतुष्टयेन महाशंखपूजा

वामकर्णेन्दुयुक्तेन फडन्तेन विहायसा ।
प्रक्षालितं भृगुर्दण्डित्रिमूर्तीन्दुयुतं पठन् ॥ ७१ ॥
ततोऽर्चयेन्महाशङ्खं जपन्मन्त्रचतुष्टयम् ।

मन्त्रचतुष्टयकथनम्

दीर्घत्रयान्विता माया कालीसृष्टिः सदीर्घपः ॥ ७२ ॥
प्रतिष्ठा संयुतं मांसं पवनो हृदयं ततः ।
एकादशार्णः प्रथमो महाशङ्खार्चने मनुः ॥ ७३ ॥
हंसो हरिभुजङ्गेशयुतो दीर्घत्रयेन्दुयुक् ।
तारिण्यन्ते कपालायनमोऽन्तो द्वादशाक्षरः ॥ ७४ ॥

हुं फडिति मन्त्रेण प्रक्षालितं महाशङ्खं नरकपालम् । दण्डि त्रिमूर्तीन्दुयुतं त्रईबिन्दुयुक्तं भृगुं सकारम् स्त्रीमिति बीज पठन् । स्थापयेदित्यन्वयः ॥ ७१ ॥ ततो मन्त्रचतुष्टयेन महाशङ्खपूजा । मन्त्रचतुष्टयमाह – **दीर्घेति** । दीर्घत्रयम् – आ ई ऊ । तद्युता माया सृष्टिः कः । सदीर्घ पः पा । प्रतिष्ठा आकारस्तद्युतं मांसं लः ला । पवनो यः हृदयं नमः । ह्रां ह्रीं ह्रूँ 'कालीकपालाय नमः' इत्येको मन्त्रः ॥ ७२ ॥ * ॥ ७३ ॥ **हंस** इति । हंसः सः । हरिभुजङ्गे शौ तरौ ताभ्यां युतः तथा दीर्घत्रयं बिन्दुयुतश्च । स्वरूपमन्यत् । स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं तारिणीकपालाय नम इति द्वितीयः ॥ ७४ ॥

की पूजाकर वाम कर्ण (उकार) इन्दु अनुस्वार से युक्त विहायस ह (अर्थात् हुं) उसके बाद फट् अर्थात् 'हुं फट्' इस मन्त्र से महाशंख (नरकपाल) का प्रक्षालन कर भृगु (स), दण्डी तृ त्रिमूर्त्ती ई उस पर बिन्दु (अर्थात् स्त्रीं) इस बीज मन्त्र से महाशंख (नर कपाल) को आधार पात्र पर स्थापित करना चाहिए ॥ ६८-७१ ॥

तदनन्तर वक्ष्यमाण चार मन्त्रों को पढ़ते हुए उस महाशङ्ख की पूजा करनी चाहिए । दीर्घत्रयान्विता माया (ह्रां ह्रीं ह्रुं), फिर 'काली', सृष्टि (क), दीर्घ सहित प (पा), प्रतिष्ठा युत् मांस (ला), तदनन्तर पवन (य), अन्त में हृदय (नमः) लगाने से महाशङ्ख पूजा का ग्यारह अक्षर का प्रथम मन्त्र बनता है ॥ ७२-७३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - (i) 'ह्रां ह्रीं ह्रूं कालीकपालाय नमः' ।

अनुस्वार एवं दीर्घ त्रय सहित हंस (स्), हरि (त्), भुजङ्गेश (र्) अर्थात् स्त्रां स्त्रीं स्त्रृं फिर 'तारिणी' उसके अन्त में 'कपालाय नमः' लगाने से बारह अक्षर का दूसरा मन्त्र बनता है ॥ ७४ ॥

विमर्श - (ii) 'स्त्रां स्त्रीं स्त्रृं तारिणीकपालय नमः' ।

खं दीर्घत्रयबिन्द्वाढ्यं मेषोवामदृगन्वितः।
लोकपालाय हृदयं तृतीयोऽयं शिवाक्षरः॥ ७५॥
माया स्त्रीबीजमर्घ्नीन्दुयुतं खं स्वर्गखादिमः।
पालाय सर्वाधाराय सर्वः सर्वोद्भवस्तथा॥ ७६॥
सर्वशुद्धिमयश्चेति ङेन्ताः सर्वासुरान्ततः।
रुधिरारुरतिर्दीर्घावायुः शुभ्रानिलः सुरा॥ ७७॥
भाजनाय भगीसत्यो वीकपालायहृन्मनुः।
तुर्यो रसेषु वर्णोऽयं महाशङ्खप्रपूजने॥ ७८॥

खमिति । खं हः । दीर्घत्रयबिन्दुयुतः । वामदृगन्वितो मेषः ईयुतो नः नी । स्वरूपमग्रे । हां हीं हूँ नीलाकपालाय नम इति तृतीयः॥ ७५॥ चतुर्थमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । स्त्रीबीजं स्त्रीं । अर्घ्नीन्दुयुतं खं हूं । स्वर्ग स्वरूपम् । खादिमः कः । पालायेत्यादिस्वरूपम् । सर्वः सर्वोद्भवः सर्वशुद्धिमय इतिपदत्रय चतुर्थ्यन्तम् । स्वरूपमग्रे । दीर्घा रतिः णा । वायुः यः । शुभ्रा स्वरूपम् । अनिलो यकारः । सुराभाजनाय स्वरूपम् । भगी सत्यः एयुतो दः दे । वीत्यादिस्वरूपम् । हृन्नमः । यथा – ह्रीं स्त्रीं हूं स्वर्गकपालाय सर्वाधाराय सर्वाय सर्वोद्भवाय सर्वशुद्धिमयाय सर्वासुररुधिरारुणाय शुभ्राय सुराभाजनाय देवीकपालाय नम इति चतुर्थो मन्त्रः रसेषु वर्णः षट्–पञ्चाशदक्षरः । एभिर्मन्त्रैर्महाशङ्खं सम्पूज्य अं सूर्यमण्डलाय नम इत्यर्कमण्डलं

बिन्दु एवं दीर्घत्रय समन्वित ख (ह) अर्थात् हां हीं हूँ, वामदृक् सहित मेष (नी), फिर 'ला कपालाय' उसके अन्त में हृदय (नमः) लगाने से ग्यारह अक्षरों का तृतीय मन्त्र बनता है॥ ७५॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - (iii) 'हां हीं हूं नीलाकपालाय नमः' ।

माया (ह्रीं), स्त्रीं बीज (स्त्रीं), अर्घ्नीन्दुयुत् ख (हूँ), फिर 'स्वर्ग', तदनन्तर खादिम (क), फिर 'पालाय सर्वाधाराय', फिर चतुर्थ्यन्त सर्व, 'सर्वोद्भव' तथा 'सर्वशुद्धिमय' शब्द (सर्वोद्भवाय सर्वशुद्धिमयाय), फिर 'सर्वासुर' तब 'रुधिरारु' उसके अनन्तर दीर्घरति 'णा', फिर वायु य (सर्वासुर रुधिरारुणाय), फिर 'शुभ्रा' पद फिर अनिल (य) (शुभ्राय), तदनन्तर 'सुराभाजनाय', फिर भगीसत्य (दे), फिर 'वीकपालाय' पद (देवीकपालाय), तदनन्तर हृत् (नमः) इस प्रकार रस ६ इषु ५ 'अङ्कानां वामतो गतिः' के अनुस्वार ५६ अक्षरों का तुर्य अर्थात् चौथा महाशंखपूजन का मन्त्र निष्पन्न होता है॥ ७६-७८॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - (iv) 'ह्रीं स्त्रीं हूं स्वर्गकपालाय सर्वाधाराय सर्वाय सर्वोद्भवाय सर्वशुद्धिमयाय सर्वासुररुधिरारुणाय शुभ्राय सुराभाजनाय देवीकपालाय नमः॥ ६७-७८॥

तत्रार्कमण्डलं चेष्ट्वा सलिलं मूलमन्त्रतः ।
प्रपूरयेत्सुधाबुद्ध्या गन्धपुष्पाक्षतान् क्षिपेत् ॥ ७९ ॥

चन्द्रमण्डलपूजा

मुद्रां त्रिखण्डां संदर्श्य पूजयेच्चन्द्रमण्डलम् ।

एकादशार्णमन्त्रोद्धारः

वाक्शक्तिपद्मागगनं रेफानुग्रहबिन्दुयुक् ॥ ८० ॥
मूलमन्त्रो वियद्धंसमनुसर्गसमन्वितम् ।
वराहो दीपिकेन्द्वाढ्यो मनुरेकादशाक्षरः ॥ ८१ ॥

संपूज्य, मूल मन्त्रं पठन् सुधाबुद्ध्या तोयं सम्पूर्य, तत्र गन्धपुष्पाक्षतान् क्षिपेत् । सुधा सुरात्रेति रहस्यम् ॥ ७६–७९ ॥ त्रिखण्डां मुद्रां बद्ध्वा । ॐ सोममण्डलाय नम इति तोये चन्द्रमण्डलं सम्पूज्यैकादशार्णेन मन्त्रेणाष्टवारं जलं मन्त्रयेत् ।

त्रिखण्डालक्षणं यथा –

परिवर्त्यकरौ स्पष्टावङ्गुष्ठौ कारयेत् समौ ॥
अनामान्तर्गते कृत्वा तर्जन्यौ कुटिलाकृती ।
कनिष्ठिके नियुञ्जीत निजस्थाने महेश्वरि ॥
त्रिखण्डेयं समाख्याता त्रिपुराह्वानकर्मणि ॥ इति ॥

एकादशार्णमाह – **वागिति** । वाक् ऐं । शक्तिः ह्रीं । पद्मा श्रीं । रेफा–नुग्रहबिन्दुयुक् गगनं रेफ औबिन्दुयुतो हः ह्रौं । मूलमन्त्रः पूर्वोक्तः पञ्चार्णः । हंसमनुसर्गसमन्वितं वियत् । सऔ विसर्गयुतो हः ह्सौः । दीपिकेन्द्वाढ्यो वराहः ऊ । बिन्दुयुतो हः हूं । यथा – ऐं ह्रीं श्रीं ह्रौं ॐ ह्रीं त्रीं हूं फट् ह्सौ हूमिति ॥ ८०–८१ ॥

उस कपाल में 'अं सूर्यमण्डलाय नमः' मन्त्र से अर्कमण्डल की पूजाकर मूलमन्त्र पढ़ते हुए मद्य की भावना से उसमें जल भरे, तदनन्तर गन्ध, पुष्प एवं अक्षत डालकर त्रिखण्डामुद्रा दिखाते हुए 'ॐ सोममण्डलाय नमः' इस मन्त्र से जल में चन्द्रमण्डंल की पूजा करनी चाहिए ॥ ७९-८० ॥

वाक् (ऐं), शक्ति (ह्रीं), पद्मा (श्रीं), रेफानुग्रह बिन्दुसहित गगन (ह्रीं), फिर मूल मन्त्र (ॐ ह्रीं त्रीं हुं फट्), फिर स औ विसर्ग से युक्त ह अर्थात् ह्सौः, फिर अन्त में दीपिका एवं बिन्दुसहित वराह (हूँ) लगाने से ग्यारह अक्षरों वाला मन्त्र बनता है ॥ ८१ ॥

विमर्श - यथा - ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं त्रीं हुं फट् ह्सौः हूं ॥ ८१ ॥

अष्टकृत्वोऽमुनामन्त्री मन्त्रयेत् प्रयतो जलम् ।
मायया मदिरां क्षिप्त्वा शंखं योनिं च दर्शयेत् ॥ ८२ ॥

ततो ह्रीं बीजेन तोये सुरां प्रक्षिप्य शङ्खयोनिमुद्रे दर्शयत् ।
ततो लक्षणं यथा –

वामाङ्गुष्ठं तु संगृह्य दक्षहस्तस्य मुष्टिना ।
कृत्वोत्तानं तथा मुष्टिमङ्गुष्ठे तु प्रसारयेत् ।
वामाङ्गुल्यस्तथाश्लिष्टाः संयुताः सुप्रसारिताः ।
दक्षिणाङ्गुष्ठके लग्ना मुद्राशङ्खस्य भूतिदा । इति शङ्खमुद्रालक्षणम् ।
मिथः कनिष्ठिके बद्धा तर्जनीभ्यामनामिके ।
अनामिकोर्ध्व संश्लिष्ट दीर्घमध्यमयोरधः ।
अङ्गुष्ठाग्रद्वयं न्यस्येद्योनि मुद्रेयमीरिता । इति योनिमुद्रालक्षणम् ॥ ८२ ॥

इस मन्त्र को आठ बार पढ़कर साधक जल को अभिमन्त्रित करे । फिर मायावीज (ह्रीं) मन्त्र से उसमें मदिरा डालकर शंखमुद्रा एवं योनिमुद्रा प्रदर्शित करें ॥ ८२ ॥

विमर्श – अर्घ्यस्थापन की विधि – साधक अपने बॉयीं ओर अर्घ्यस्थापन के लिए सर्वप्रथम 'लं वं', इन बीजों से भूमि साफ एवं शुद्ध करके 'ॐ आसुरेखे वज्ररेखे हुं स्वाहा' इस मन्त्र से वृत्त त्रिकोण एवं चतुष्कोण मण्डल बनावें । उस पर 'ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ शेषाय नमः', इन मन्त्रों से आधारशक्ति, कूर्म एवं शेषनाग का पूजन कर 'ॐ ह्रीं फट्' मन्त्र से अर्घ्य के आधार पात्र को स्थापित करे ।

तत्पश्चात् 'ॐ मं वह्निमण्डलाय नमः, – इस मन्त्र से आधार पात्र का पूजन कर 'हुँ फट्' मन्त्र से महाशंख (नरकपाल) को धोकर 'स्त्रीं' बीज पढ़ते हुये आधार पात्र पर महाशंख को स्थापित करना चाहिए ।

फिर निम्नलिखित चार मन्त्रों से महाशंख का पूजन करना चाहिए ।

१ – ह्रां ह्रीं ह्रूं कालीकपालाय नमः ।

२ – स्त्रां स्त्रीं स्त्रूं तारिणीकपालाय नमः ।

३ – ह्रां ह्रीं ह्रूं नीलाकपालाय नमः ।

४ – ह्रीं स्त्रीं ह्रूं स्वर्गकपालाय सर्वाधाराय सर्वाय सर्वोद्भवाय सर्वशुद्धिमयाय सर्वासुररुधिरारुणाय शुभ्राय सुराभाजनाय देवी कपालाय नमः ।

इन मन्त्रों से महाशंख का पूजन कर 'अं सूर्यमण्डलाय नमः' – इस मन्त्र से अर्कमण्डल का पूजन कर मूलमन्त्र पढते हुए मदिरा की भावना से उसमें जल भरकर उसमें गन्ध, पुष्प एवं अक्षत डालने चाहिए तथा त्रिखंडा मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

तत्र वृत्ताष्टषट्कोणं ध्यात्वा देवीं विचिन्तयेत्।
पूर्वोक्तां पूजयित्वैनां मूलेनाथ प्रतर्पयेत् ॥ ८३ ॥
तर्जनी मध्यमानामाकनिष्ठाभिर्महेश्वरी।
साङ्गुष्ठाभिश्चतुर्वारं महाशङ्खस्थिते जले ॥ ८४ ॥

तर्पणमन्त्रः

खं रेफमनुबिन्द्वाढ्यं भृगुमन्विन्दुयुक् तथा।
ध्रुवाद्येन नमोऽन्तेन तर्प्यादानन्दभैरवम् ॥ ८५ ॥

तत्रार्घ्यजले वृत्ताष्टषट्कोणरूपं यन्त्रं विचिन्त्य ध्यानोक्तां देवीं च स्मृत्वा मूलेनार्चयेत् ॥ ८३ ॥ ततो अङ्गुष्ठयुताभिस्तर्जन्याद्यङ्गुली-भिरर्घ्यजले मूलेन तां तर्पयेत् ॥ ८४ ॥ **खमिति** । ख हः । मनुरौ । भृगुः सः । तथा हकार एव भृग्वादियुतः । ध्रुव ॐ । यथा – ॐ हौं ह्सौं नम इत्यानन्दभैरवं तर्पयेत् ॥ ८५–८६ ॥

फिर 'ॐ सोममण्डलाय नमः' - इस मन्त्र से जल में चन्द्रमण्डल की पूजा कर 'ऐं ह्रीं श्रीं ॐ ह्रीं त्रीं हुं फट् ह्सौः हूम्' इस मन्त्र को पढ़ते हुए आठ बार जल को अभिमन्त्रित करना चाहिए ॥ ८२ ॥

तत्पश्चात् 'ह्रीं' से उस जल में तीर्थ (मदिरा) डालकर शंख मुद्रा एवं योनि मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

तारापूजनयन्त्रम्

उस अर्घ्य के जल में वृत्त, अष्टदल एवं षटकोण रूपी यन्त्र की भावना कर पूर्वोक्त (४.३९,४०) विधि से देवी का ध्यान कर मूल मन्त्र से उनका पूजन करना चाहिए ॥ ८३ ॥

तदनन्तर तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठिका तथा अंगूठे को मिलाकर मूलमन्त्र द्वारा महाकपाल स्थित अर्घ्य के जल से ४ बार देवी का तर्पण करना चाहिए ॥ ८४ ॥

फिर ख (ह), जो रेफ औ और बिन्दु से युक्त हो (हौं) तथा बिन्दु अनुस्वार भृगु स और औ से युक्त हकार (ह्सौं) इस प्रकार मन्त्र के आदि में ध्रुव (ॐ) लगाकर अन्त में 'नमः' लगाकर अर्थात् 'ॐ हौं ह्सौं नमः' इस मन्त्र से आनन्दभैरव का तर्पण करना चाहिए ॥ ८५ ॥
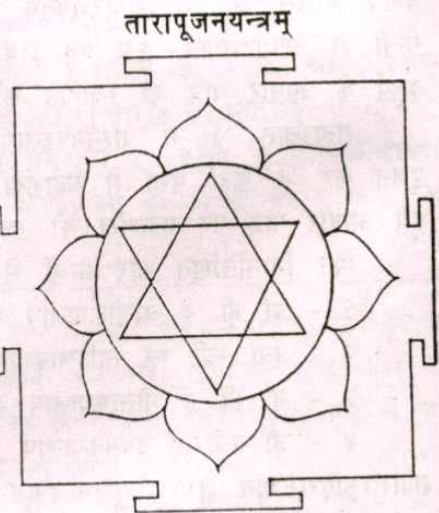
ततस्तेनार्घ्यतोयेन प्रोक्षेत्पूजनसाधनम् ।
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ प्रणमेद्भवतारिणीम् ॥ ८६ ॥
विधानमध्ये सम्प्रोक्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे पद्मे षट्कोणकर्णिके ॥ ८७ ॥
धरागृहावृते रम्ये देवीं रम्योपचारकैः ।
महीगृहचतुर्दिक्षु गणेशादीन्प्रपूजयेत् ॥ ८८ ॥

पीठे शक्तिपूजायां गणेशध्यानादिकथनम्

पाशांकुशौ कपालं च त्रिशूलं दधतं करैः ।
अलङ्कारचयोपेतं गणेशं प्राक्समर्चयेत् ॥ ८९ ॥
कपालशूले हस्ताभ्यां दधतं सर्पभूषणम् ।
श्वयूथवेष्टितं रम्यं बटुकं दक्षिणेर्चयेत् ॥ ९० ॥
असिशूलकपालानि डमरुं दधतं करैः ।
कृष्णं दिगम्बरं क्रूरं क्षेत्रपं पश्चिमे यजेत् ॥ ९१ ॥

इत्यर्घ्यविधिं कृत्वा पूर्वोक्ते मेधादि नवशक्तिके पीठे तां पूजयेत् ॥ ८७-८८ ॥ गणेशादिध्यानमाह – **पाशेति** । अङ्कुशत्रिशूले दक्षयोः । पाशकपाले वामयोः । अलङ्काराणां चयः समूहस्तद् युतम् ॥ ८९ ॥ बटुकस्य दक्षे शूलम् ॥ ९० ॥ क्षेत्रपालस्यासिशूले दक्षयोः ॥ ९१ ॥

तर्पण करने के उपरान्त अर्घ्यपात्रस्थ जल से पूजा सामग्री का प्रोक्षण करें । फिर योनिमुद्रा दिखाकर भवतारिणी भगवती तारा को प्रणाम करना चाहिए॥ ८६॥

तारा पूजा के विधान के मध्य में ग्रन्थकार ने पूर्व में सर्वसिद्धि प्रदान करने वाले पीठ का वर्णन किया है । उसी पूर्वोक्त (द्र० ४.८३) षट्कोण, कर्णिका, अष्टदल कमल एवं भूपुर से वेष्टित पीठ पर रम्य उपचारों से देवी का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर वक्ष्यमाण विधि से पीठ के चारों ओर गणेशादि का पूजन करना चाहिए ॥ ८७-८८ ॥

अब भगवती के **आवरण की पूजा** का प्रकार कहते हैं

पीठ के पूर्व दिशा के द्वार पर हाथों में पाश, अंकुश कपाल तथा त्रिशूल धारण किये हुए अनेक अलङ्कारों से सुशोभित गणेश जी का पूजन करना चाहिए ॥ ८९ ॥

पीठ के दक्षिण द्वार पर हाथों में कपाल एवं त्रिशूल लिए हुये सर्परूप आभूषणों से सुशोभित श्वानों के दल से घिरे हुये बटुक भैरव की पूजा करनी चाहिए ॥ ९० ॥

पीठ के पश्चिम द्वार पर तलवार, त्रिशूल, कपाल एवं डमरु हाथों में लिए हुये, कृष्णवर्ण, दिगम्बर एवं क्रूर आकृति वाले क्षेत्रपाल का पूजन

कपालं डमरुं पाशं लिङ्गं सम्बिभ्रतीं करैः ।
अन्त्राकल्पा रक्तवस्त्रा योगिनीरुत्तरे यजेत् ॥ ६२ ॥
अक्षोभ्यं प्रयजन्मूर्ध्नि देव्यामन्त्रऋषिं शुभम् ।
अक्षोभ्यवज्रपुष्पं च प्रतीच्छानलवल्लभा ॥ ६३ ॥
अक्षोभ्यपूजने मन्त्रः षटकोणेषु षडङ्गकम् ।
वैरोचनं चामिताभं पद्मनाभाभिधं तथा ॥ ६४ ॥
शङ्खं पाण्डुरसंज्ञं च दिग्दलेषु प्रपूजयेत् ।
लामकां मामकां चैवपाण्डुरां तारकां तथा ॥ ६५ ॥
विदिग्गताब्जपत्रेषु पूजयेदिष्टसिद्धये ।
सबिन्दुनामाद्यर्णाद्याः सम्बुध्यन्तास्तथाभिधाः ॥ ६६ ॥
वज्रपुष्पं प्रतीच्छाग्निप्रियान्ताः प्रणवादिकाः ।
वैरोचनादिपूजायां मनवः परिकीर्तिताः ॥ ६७ ॥

योगिनीनां पाशलिङ्गे दक्षयोः ॥ ६२ ॥ अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहेति मुनिमन्त्रः ॥ ६३–६५ ॥ सबिन्दुनामादिवर्ण आद्यो यासां ईदृश्य संबोधनान्ताः प्रणवाद्या वज्राद्यन्ता अभिधानामान्येव वैरोचनादिमन्त्राः । यथा – ॐ वैं वैरोचनवज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा । ॐ अं अमिताभवज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा । ॐ पं पद्मनाभवज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा । ॐ शं शङ्खपाण्डुरवज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा । ॐ लां लामके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा । ॐ मां मामके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा इत्यादि । पद्मान्तकादि पूजायाम् अप्येवमेव मन्त्राः ॥ ६६ ॥ * ॥ ६७–६६ ॥

करना चाहिए ॥ ६१ ॥

तदनन्तर पीठ के उत्तर द्वार पर कपाल, डमरु, पाश एवं लिङ्ग हाथों में धारण करने वाली और लाल वस्त्र धारण की हुई तथा आंतों के आभूषणों से भूषित योगिनियों की पूजा करनी चाहिए ॥ ६२ ॥

पीठ के ऊपर देवी के मस्तक पर नागरूप से विराजमान तारा मन्त्र के अक्षोभ्य ऋषि का 'अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा' इस मन्त्र से पूजन करना चाहिए । तदनन्तर षट्कोणों में षडङ्गपूजा करनी चाहिए ॥ ६३ ॥

पूर्वादि दिशाओं के अष्टदलों में क्रमशः वैरोचन, अमिताभ, पद्मनाभ एवं पाण्डुशंख की पूजा करें । अष्टदल के कोणों में इष्टसिद्धि के लिए लामका, मामका, पाण्डुरा तथा तारका की पूजा करनी चाहिए । संबोधन पूर्वक नाम के आद्य अक्षर में अनुस्वार लगाकर, तदनन्तर 'वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा' इस मन्त्र से वैरोचन आदि की पूजा करनी चाहिए । भूपुर के चारों द्वारों पर पद्मान्तक, यमान्तक, विघ्नान्तक, तथा नारान्तक की पूजा

भूगृहस्य चतुर्द्वार्षु पद्मान्तकयमान्तकौ।
विघ्नान्तकाभिधं पश्चान्नारान्तकमथो यजेत्॥ ६८॥
शक्रादींश्चापि वज्रादीन् पूजयेत्तदनन्तरम्।
एवं सम्पूजयेद्देवीं पाण्डित्यं धनमद्भुतम्॥ ६६॥
पुत्रान् पौत्रान् सुखं कीर्तिं लभते जनवश्यताम्।

करनी चाहिए । फिर इन्द्रादि दशदिक्पालों की तथा उनके वज्र आदि आयुधों की पूजा करनी चाहिए ॥ ६४-६६ ॥

इस प्रकार देवी का पूजन करने से साधक अदभुत पाण्डित्य धन, पुत्र, पौत्र, सुख एवं कीर्त्ति प्राप्त करता है तथा जनसामान्य को अपने वश में करने की शक्ति प्राप्त करता है ॥ ६६-१०० ॥

विमर्श - ऊपर ४.८८ से ४.६६ पर्यन्त तारा के आवरण पूजा की विधि कही गई है उसका यथाक्रम संक्षेप इस प्रकार है -

पूर्वोक्त (द्र० ४. ८३-८६) रीति से देवी की पूजा कर योनिमुद्रा प्रदर्शित कर 'आवरणं ते पूजयामि, देवि आज्ञापय' मन्त्र पढ़कर देवी से आज्ञा ले आवरण पूजा करनी चाहिए ।

प्रथम पीठ के द्वार पर पाशांकुशो (द्र० ४.८६) से गणपति का ध्यान कर 'गणपतये नमः गणपतिं पूजयामि' इस मन्त्र से गणपति की पूजा करे । पुनः पीठ के दक्षिण द्वार पर 'कपाल शूले' (द्र० ४.६०) आदि श्लोक से ध्यान कर 'बटुक भैरवाय नमः' इस मन्त्र से बटुक भैरव की पूजा करे । पुनः पीठ के पश्चिम द्वार पर असिशूलकपालानि' (द्र० ४.६१) श्लोक से ध्यान कर 'क्षेत्रपालाय नमः' इस मन्त्र से क्षेत्रपाल की पूजा करे, पुनः पीठ के उत्तर दिशा में 'कपालं डमरुं पाशं' (द्र० ४.०२) इस श्लोक से ध्यान कर 'योगिनीभ्यो नमः' इस मन्त्र से योगिनियों की पूजा करनी चाहिए ।

पुनः पीठ के ऊपर 'ॐ अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा' इस मन्त्र से अक्षोभ्य ऋषि का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर केशरों के अग्नि कोण, ईशान कोण, वायव्य एवं नैऋत्य कोणों में तथा मध्य दिशा में इस प्रकार षडङ्ग पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ ह्रां एकजटायै नमः, आग्नेये ।
ॐ ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा, ईशान्ये ।
ॐ ह्रूं वज्रोदकायै शिखायै वषट्, वायव्ये ।
ॐ ह्रैं उग्रजटायै कवचाय हुं, नैर्ऋत्ये ।
ॐ ह्रौं महापरिसरायै नेत्रत्रयाय वौषट्, मध्ये ।
ॐ ह्रः पिङ्गोग्रैकजटायै अस्त्राय फट्, चतुर्दिक्ष ।

इसके अनन्तर पूर्वादि स्थित दलों की दिशाओं में स्थित अष्टदलों के कमलों में वैरोचनादि का तथा आग्नेयादि कोणों में स्थित दलों में लामका आदि का इस प्रकार पूजन करना चाहिए -

ॐ वं वैरोचन वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ अं अमिताभ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ पं पद्मनाभ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ शं शंखनाभ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ लां लामिके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ मां मामिके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ पां पाण्डुरे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ तां तारके वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।

फिर भूपुर के चारों द्वारों पर यथाक्रम पूर्वादि दिशाओं में पूजन करे -

ॐ पं पद्मान्तक वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ यं यमान्तकं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ विं विघ्नात्मक वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।
ॐ नां नारान्तक वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ।

तदनन्तर चतुरस्र के पूर्व आदि दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों का यथाक्रम पूजन करना चाहिए -

ॐ लां इन्द्राय देवाधिपतये नमः, पूर्वे ।
ॐ रां अग्नये तेजाधिपतये नमः, आग्नेये ।
ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये नमः, दक्षिणे ।
ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोधिपतये नमः, नैर्ऋत्ये ।
ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये नमः पश्चिमे ।
ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये नमः, वायव्ये ।
ॐ सां सोमाय ताराधिपतये नमः, उत्तरे ।
ॐ हां ईशानाय गणाधिपतये नमः, ईशाने ।
ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये ।
ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये नमः, निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये ।

इसके बाद चतुरस्र के बाहर दश दिक्पालों के आयुधों का पूजन पूर्व आदि दिशाओं में करना चाहिए -

ॐ वज्राय नमः, पूर्वे, ॐ शक्तये नमः, आग्नेये, ॐ दण्डाय नमः, दक्षिणे, ॐ खड्गाय नमः, नैर्ऋत्ये, ॐ पाशाय नमः, पश्चिमे. ॐ अंकुशाय नमः, वायव्ये, ॐ गदायै नमः, उत्तरे, ॐ शूलाय नमः, ईशाने, ॐ पदमाय नमः, ऊर्ध्वम्, ॐ चक्राय नमः, अधः ।

इस प्रकार पाँच आवरणों की पूजा कर पाँच पुष्पाञ्जलि भगवति को

नित्यपूजान्ते बलिदानं द्विपञ्चाशदर्णमन्त्रः

तारो माया श्रीमदेकजटे नीलसरस्वति ॥ १०० ॥
महोग्रतारे देबालः सनेत्रो गदियुग्मकम् ।
सर्वभूतपिशाचकूर्मो दीर्घोग्निर्मेरुसान् ग्रसः ॥ १०१ ॥
ग्रभृगुर्ममजाड्यं च च्छेदयद्वितयं रमा ।
मायास्त्राग्निप्रियान्तोऽयं द्विपञ्चाशल्लिपिर्मनुः ॥ १०२ ॥
अनेन नित्यपूजान्तेऽन्वहं देव्यै बलिं हरेत् ।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान्विदधीत च ॥ १०३ ॥
जातमात्रस्य बालस्य दिवसत्रितयादधः ।
जिह्वायां विलिखेन्मन्त्रं मध्वाज्याभ्यां शलाकया ॥ १०४ ॥

नित्यपूजान्ते बलिदानमन्त्रमाह – **तार इति** । तार ॐ । माया ह्रीं । वालो वः । सनेत्रयुतः वि । गदी खः । कूर्मश्चकारः । दीर्घोग्निः रा । मेरुः क्षः । भृगुः सः । रमा श्रीं । माया ह्रीं । अस्त्रं फट् । अग्निप्रिया स्वाहा । स्वरूपम् अन्यत् । यथा – ॐ ह्रीं श्रीमदेकजटे नीलसरस्वति महोग्रतारे देवि ख ख सर्वभूतपिशाचराक्षसान् ग्रस ग्रस मम जाड्यं छेदय छेदय श्रीं ह्रीं फट् स्वाहेति द्विपञ्चाशदर्णः ॥ १०० ॥ * ॥ १०१–१०५ ॥

समर्पित करे ।

अब पूजा के उपरान्त **बलिदान मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), फिर, 'श्रीमदेकजटे नीलसरस्वति महोग्रतारे दे' फिर सनेत्र वाल (वि) फिर गदियुग्मक (ख ख), फिर 'सर्वभूतपिशा', फिर कूर्म (च), दीर्घ अग्नि (रा), मेरु (क्ष), फिर 'सान्', 'ग्रस ग्र' फिर भृगु (स), फिर 'मम जाड्यं' फिर २ बार छेदय शब्द, फिर रमा (श्रीं), माया (ह्रीं), अस्त्र (फट्) तथा अन्त में अग्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से बावन अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है । इस मन्त्र से प्रतिदिन पूजा के बाद भगवती को बलि समर्पित करनी चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्धि होने पर साधक काम्य कर्म का अधिकारी हो जाता है ॥ १००-१०३ ॥

विमर्श - बलिदान मन्त्र का स्वरूप - ॐ ह्रीं श्रीमदेकजटे नीलसरस्वति महोग्रतारे देवि ख ख सर्वभूतपिशाचराक्षसान् ग्रस ग्रस मम जाड्यं छेदय छेदय श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा ॥ १००-१०३ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं -

नवजात शिशु के उत्पन्न होने पर ३ दिनों के भीतर उसकी जिव्हा पर शहद एवं घी से (स्वर्ण निर्मित या श्वेत दूर्वा निर्मित) शलाका से तारा मन्त्र

सुवर्णकृतया यद्वा मन्त्री धवलदूर्वया ।
गतेऽष्टमेऽब्दे बालोऽसौ जायते कविराट् ध्रुवम् ॥ १०५ ॥
तथापरैरजेयोऽपि भूपसंघैर्धनार्चितः ।

तस्य मन्त्रस्य प्रयोगान्तरम्

उपरागे तदानीय तरद्दारुसरो जले ॥ १०६ ॥
निर्माय कीलकं तेन तैलमध्वमृतैर्लिखेत् ।
सरोजिनीदले मन्त्रं वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ॥ १०७ ॥
निखाय तद्दलं कुण्डे चतुरस्त्रे समेखले ।
संस्थाप्य पावकं तत्र जुहुयान्मनुनाऽमुना ॥ १०८ ॥
सहस्त्रं रक्तपद्मानां धेनुदुग्धजलाप्लुतम् ।
होमान्ते विविधैरन्नैः पलैरपि बलिं हरेत् ॥ १०९ ॥
बलिमन्त्रेण विधिवद् बलिमन्त्रः प्रकाश्यते ।

बलिदानेऽन्यः षोडशार्णमन्त्रः

तार पद्मेयुगं तन्द्रीवियद्दीर्घं च लोहितः ॥ ११० ॥

प्रयोगान्तरमाह – उपराग इति । ग्रहणे तडागे तरत्काष्ठं दतादन्तेनानीयते न लेखनीं कृत्वा तैलमधुसुधाभिः पद्मिनीपत्रे तया मनुम् आलिख्य मातृकावर्णैः संवेष्ट्य कुण्डं निखाय तदुपर्यग्निं प्रतिष्ठाप्य गोदुग्धाक्तेन रक्तपद्मसहस्रेण तत्र हुत्वा षोडशार्णेन मांसैर्होमान्ते बलिं दत्त्वा मध्यरात्रे पूर्वोक्तमन्त्रेण बलिं दद्यात् । एवं कृते उक्तफलसिद्धिः ॥ १०६ ॥ * ॥ १०७–१०९ ॥ षोडशार्णमाह – **तार** इति । तन्द्री मः । दीर्घवियत् हा । लोहितः पः । विषभगारूढो त्रिः मएयुतो दः द्मे । अनिलो झिंटीशाढ्यः यएयुतः ये । यथा – ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावतीये स्वाहेति ॥ ११० ॥ * ॥ ११२ ॥

लिखना चाहिए । इस क्रिया के अनुष्ठान से ८ वर्ष व्यतीत हो जाने पर वह बालक निश्चित रूप से महाकवि बन जाता है तथा अन्य विद्वानों से अपराजित होकर राजपूजित हो जाता है ॥ १०४-१०६ ॥

ग्रहण के समय सरोवर में तैरते हुए काष्ठ की लेखनी बनावें फिर कमल के पत्ते पर तेल, मधु और मदिरा से तारा मन्त्र लिखकर मातृका (इक्यावन अक्षरों) वर्णों से उसे वेष्टित कर चौकोर मेखला वाले कुण्ड में उसे गाड़कर अग्निस्थापन कर तारामन्त्र से गोदुग्धमिश्रित जल से आप्लुत रक्त कमलों से एक हजार आहुतियाँ देवे । फिर विविध अन्न और मांस से विधिवत् भगवती तारा को बलिदान देना चाहिए । बलिदान का मन्त्र इस प्रकार है ॥ १०६-११० ॥

अत्रिर्विषभगारूढो वदेत्पद्मावतीपदम्।
झिण्टीशाढ्योऽनिलः स्वाहा षोडशार्णो [१] बलेर्मनुः॥ १११ ॥

अस्य मन्त्रस्य प्रयोगान्तराणि

ततो निशीथेऽपि बलिं पूर्वोक्तमनुना हरेत्।
एवं कृते पण्डितानामजेयः कविराड् भवेत्॥ ११२ ॥
निवासो भारती लक्ष्म्योर्जनतारञ्जनक्षमः।
शताभिजप्तां यो मन्त्री रोचनामलिके धरेत्॥ ११३ ॥
स यं पश्यति तस्यासौ दासवज्जायते क्षणात्।
श्मशानाङ्गारमाहृत्य शर्वर्यां कुजवासरे॥ ११४ ॥
कृष्णाम्बरेण सम्वेष्ट्य निबद्धं रक्ततन्तुभिः।
शताभिजप्तमूलेन निःक्षिपेद्वैरिवेश्मनि॥ ११५ ॥
उच्चाटयति सप्ताहात् सकुटुम्बान्विरोधिनः।
क्षाराढ्यनिशया मन्त्रं लिखित्वा पौरुषेऽस्थिनि॥ ११६ ॥

अलिके ललाटे धरेत् तिलकं कुर्यादित्यर्थः ॥ ११३ ॥ * ॥ ११४–११५ ॥ विरोधिनः शत्रून् उच्चाटयति निष्कासयति । क्षाराढ्यनिशया सैंधवयुक्तया हरिद्रया ॥ ११६–११७ ॥

तार (ॐ) फिर दो बार पद्मे शब्द (पद्मे पद्मे), फिर तन्द्री (म) दीर्घवियत् (हा) लोहित (प) वृषभगारुढोऽत्रिः म ए से युक्त द (अर्थात् द्मे) फिर 'पद्मावती' फिर झिण्टीशाढ्योऽनिलः य् ए से युक्त 'ये' तदनन्तर 'स्वाहा' यह सोलह अक्षरों का बलि मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ११०-१११ ॥

मन्त्र का स्वरूप - 'ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावतीये स्वाहा' ॥ ११०-१११ ॥

फिर निशीथ काल में भी पूर्वोक्त मन्त्र (द्र० ४.५०-५१) से बलि देनी चाहिए । ऐसा करने से साधक पण्डितों से अपराजेय एवं महाकवि हो जाता है। उसमें स्वयं लक्ष्मी एवं सरस्वती दोनों निवास करती हैं तथा वह समस्त जनसमूहों को प्रसन्न करने में सक्षम हो जाता है ॥ ११२-११३ ॥

तारा मन्त्र का १०० बार जप कर जो व्यक्ति गोरोचन का तिलक अपने ललाट पर धारण करता है वह जिसे देखता है, वह तत्काल उसका दास बन जाता है ॥ ११३-११४ ॥

मंगलवार के दिन रात्रि के समय श्मशान से अङ्गार लाकर काले कपड़े में उसे लपेट कर और लाल धागों से उसे बाँध कर मूल मन्त्र से १०० बार जप

---

१. ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावतीये स्वाहा इति षोडशार्णः ।

रविवारे निशीथिन्यां सहस्रमभिमन्त्रयेत् ।
तत्क्षिप्तं शत्रुसदने मण्डलाद्भ्रंशकं भवेत् ॥ ११७ ॥
क्षेत्रे क्षिप्तं सस्यहान्यैजवद्दत्तुरगालये ।

यन्त्रकथनं तत्फलानि च

षट्कोणमध्ये प्रविलिख्य मूलं
साध्यान्वितं केसरगस्वराढ्यम् ।
काद्यष्टवर्गान्वितपत्रमब्जं
लिखेद् बहिर्भूमिपुरेणवीतम् ॥ ११८ ॥
यन्त्रमेतल्लिखेद् भुर्जे रसेन जतुजन्मना ।
पीताम्बरेण सम्वेष्ट्य बध्नीयात्पीतसूत्रतः ॥ ११९ ॥

यन्त्रमाह – **षडिति** । षट्कोणे साध्यान्वितं मूलममुकं रक्ष रक्षेति युक्तं मूलमन्त्रं विलिख्य अष्टदलकेसरेषु अं आमित्यादि स्वराणां युग्मपत्रेषु क च ट त प य श लेति वर्गान् विलिख्य बहिश्चतुष्कोणेन वेष्टयेत् ॥ ११८ ॥ जतु जन्मनालाक्षोत्थेन रसेन ॥ ११९ ॥ * ॥ १२०–१२३ ॥

कर शत्रु के घर में फेंक दे तो एक सप्ताह के भीतर शत्रु का परिवार सहित उच्चाटन हो जाता है ॥ ११४-१११६ ॥

रविवार को रात्रि में पुरुष की हडडी पर सैन्धव एवं हल्दी से मूल मन्त्र लिखकर १००० मन्त्रों से उसे अभिमन्त्रित कर शत्रु के घर में फेक देने से वह पदच्युत हो जाता है और खेत में फेकने से वहाँ फसल नहीं उगती तथा घोड़साल में फेंक देने से घोड़े मर जाते हैं ॥ ११६-११८ ॥

ताराधारणयन्त्रम्

भोजपत्र पर षट्कोण, अष्टदल, एवं भूपुर वाला यन्त्र लाक्षारस से लिखकर षट्कोण के मध्य में मूलमन्त्र तथा साध्य व्यक्ति का नाम लिखें, केशरों पर स्वर लिखें तथा अष्टदलों में कवर्गादि आठ वर्ग लिखकर भूपुर से वेष्टित करें । पुनः इस मन्त्र को पीले कपड़े से लपेट कर पीले धागों से बाँध देना चाहिए । इस यन्त्र को बच्चों के गले में बाँधने से भूत प्रेतादिकों के भय से उनकी रक्षा हो जाती है । स्त्रियों
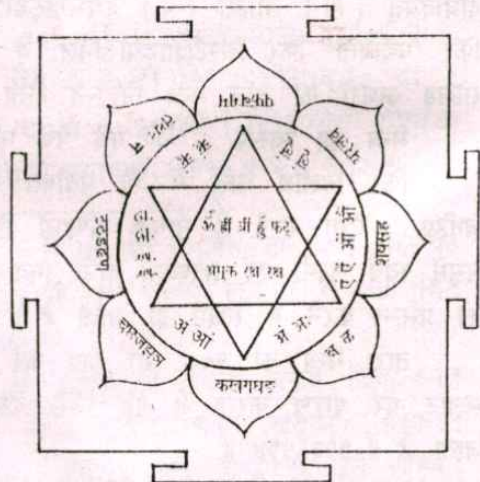
शिशूनां कण्ठतो बद्धं रक्षकं भूतभीतितः ।
वामबाहौ तु नारीणां पुत्रदं सुभगत्वकृत् ॥ १२० ॥
दक्षबाहौ नृणां बद्धं रक्षकं निर्धनानां धनप्रदम् ।
ज्ञानदं ज्ञानमिच्छूनां राज्ञां तु विजयप्रदम् ॥ १२१ ॥
एतद्यन्त्रं पुरा धृत्वा गौतमाद्या महर्षयः ।
लेभिरे मोक्षसंसिद्धिं साम्राज्यं भूमिनायकाः ॥ १२२ ॥
किम्भूरिणा नृणामेतद्वाञ्छितां यच्छति श्रियम् ।
कवित्वं राजमानं च कीर्तिमायुररोगताम् ॥ १२३ ॥
नैव तारा समा काचिद्देवता सर्वसिद्धिदा ।
कलौ युगे ततो गोप्या वाञ्छितां सिद्धिमीप्सुना ॥ १२४ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ तारामन्त्रकथनं नाम चतुर्थस्तरङ्गः ॥ ४ ॥

तारेति । गोप्या अहं तदुपासक इति कस्याप्यग्रे न प्रकाशयेत् ॥ १२४ ॥

इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां तारामन्त्रकथनं नाम चतुर्थस्तरङ्गः ॥ ४ ॥

को बाएँ हाथ में धारण करने से पुत्र और सौभाग्य की वृद्धि होती है । पुरुषों को दाहिनी भुजा में धारण करने से निर्धन को धन और जिज्ञासुओं को ज्ञान, तथा राजा को विजय प्राप्त होती है ॥ ११८-१२१ ॥

इस मन्त्र को पूर्वकाल में गौतमादि महर्षियों ने धारण किया था, जिससे उनको मुक्ति प्राप्त हुई । राजर्षियों ने साम्राज्य प्राप्त किया । इस विषय में विशेष क्या कहें ? यह यन्त्र मनुष्यों की मनोवांछित सिद्धि कवित्व, राजसम्मान, कीर्ति, आयु एवं आरोग्य प्रदान करता है । कलियुग में तारा के समान सर्वसिद्धिदायक कोई अन्य देवता नहीं है । अतः मनोभिलषित चाहने वालों को यह विद्या गोपनीय रखनी चाहिए ॥ १२२-१२४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के चतुर्थ तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमः तरङ्गः

ताराभेदा अथोच्यन्ते शीघ्रं सिद्धिप्रदायिनः।

ब्रह्मोपासितताराविद्याकथनम्

वह्निवामाक्षिबिन्द्वाढ्या कामिका भुवनेश्वरी॥ १॥
भुवनेशी वर्मरुद्धाफडन्ता प्रणवादिका।
सप्ताक्षरीमहाविद्या विरिञ्चिसमुपासिता॥ २॥

विष्णूपासितताराविद्याकथनम्

वाक्शक्तिः कमलाकामो हंसोऽनुग्रहसर्गवान्।
वर्मोग्रतारे वर्मास्त्रं विष्णवर्चा द्वादशाक्षरी॥ ३॥

---

* नौका *

ताराभेदानाह – ब्रह्मोपासितां तावदाह – **वह्नीति** । रेफईबिन्दुयुता कामिका । तकारः त्रीं ॥ १ ॥ वर्मरुद्धाभुवनेशी वर्मद्वयमध्यगतेत्यर्थः । यथा – ॐ त्रीं ह्रीं हुँ ह्रीं हुँ फडिति ॥ २ ॥ विष्णूपासितामाह – **वागिति** । कामः क्लीं । अनुग्रहसर्गवान् हंसः औविसर्गयुतः सः सौः। यथा – ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः हुँ उग्रतारे हुँ फडिति ॥ ३ ॥

---

* अरित्र *

अब **तारा के मन्त्रभेदों** को कहता हूँ जो शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करने वाले हैं -

वह्नि (र), दीर्घाक्षि (ई) और बिन्दु से युक्त कामिकास्त्र (अर्थात् त्रीं) फिर भुवनेश्वरी (ह्रीं) एवं दो वर्मबीजों के मध्य में भुवनेशी (हुं ह्रीं हुं) इसके अन्त में फट् तथा आदि में प्रणव (ॐ) लगाने से ब्रह्मोपासित सप्ताक्षरी महाविद्या (तारा) का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १-२ ॥

विमर्श - (i) **ब्रह्मोपासित तारा मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ त्रीं ह्रीं हुं ह्रीं हुं फट् ॥ १-२ ॥

वाक् (ऐं), शक्ति (ह्रीं), कमला (श्रीं), काम (क्लीं), अनुग्रह सर्गवान् हंस (सौः), वर्म (हुं), 'उग्रतारे' फिर वर्म (हुं), इसके अन्त में 'फट्' लगाने

विष्णूपासितद्वितीयताराविद्याकथनम्

तारवर्मशिवाकामो मनुसर्गयुतो भृगुः।
वर्मास्त्रमेषा सप्तार्णा सिद्धिदा विष्णुसेविता॥ ४॥

चतुर्मुखोपासितविद्याद्वयकथनम्

एतयोः पञ्चमे बीजे सकारो हादिरान्तिमः।
तदा विद्याद्वयं प्रोक्तं चतुर्मुखसमर्चितम्॥ ५॥

द्वितीयां विष्णूपासितामाह – **तारेति** । शिवा ह्रीं । भृगुः सः । यथा – ॐ हुँ ह्रीं क्लीं सौः हुँ फडिति ॥ ४ ॥ चतुर्मुखोपासितं मन्त्रद्वयमाह – **एतयोरिति** । एतयोरनन्तरोक्तयोर्विष्णूपासितयोर्द्वादशाक्षरी–सप्ताक्षरयोर्विद्ययोः पञ्चमे बीजे सौ रूपे यदि आदौ हकारः अन्ते रेफः तदा तदेव विद्याद्वयं चतुर्मुखसेवितं हः आदौ यस्य रः, अन्तिमो यस्य सः, हादिरान्तिमः । यथा – ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं हसौः हुँ उग्रतारे हुँ फट्–इत्याद्या । ॐ हुँ ह्रीं क्लीं हसौः हुं फडिति द्वितीया ॥ ५ ॥

से विष्णु के द्वारा उपासित १२ अक्षरों का तारा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ३ ॥

विमर्श - (ii) **विष्णूपासित तारा मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः हुं उग्रतारे हुं फट् ॥ ३ ॥

तार (ॐ), वर्म (हुं), शिवा (ह्रीं), काम (क्लीं), मनुसर्गसहित भृगु (सौः), वर्म (हुं) एवं अन्त में अस्त्र (फट्) लगाने से सिद्धि प्रदान करने वाला विष्णुसेवित तारा का सप्ताक्षरी मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ४ ॥

विमर्श - (iii) **विष्णु द्वारा उपासित द्वितीय तारा मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ हुं ह्रीं क्लीं सौः हुं फट् ॥ ४ ॥

ऊपर कहे गये विष्णु से उपासित द्वादशाक्षर एवं सप्ताक्षर इन दोनों विद्याओं में पञ्चम बीज (सौः) के आदि में यदि ह लगा दिया जाये तो प्रथम मन्त्र और उसके अन्त में 'रेफ' लगा दिया जाय तो वह 'ब्रह्मोपासित' तारा का दूसरा मन्त्र बन जाता है ॥ ५ ॥

विमर्श - (iv) द्वादशाक्षर मन्त्र के पञ्चम (सौः) के पहले ह लगाने से **ब्रह्मोपासित तारा का प्रथम मन्त्र** निष्पन्न होता है । इसका स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ह्सौः हुं उग्रतारे हुं फट्' ।

(v) सप्ताक्षर मन्त्र के पञ्चम (सौः) के पहले (र्) अन्त में है जिसके, ऐसा ह अर्थात् ह्र लगाने से **ब्रह्मोपासित तारा मन्त्र का द्वितीय मन्त्र** बनता है । जिसका स्वरूप इस प्रकार होता है - 'ॐ हुं ह्रीं क्लीं ह्रसौः हुं फट्' ॥ ५ ॥

एकजटाविद्याद्वयम्

तारो माया वर्म माया वर्मास्त्रं च रसाक्षरी।
हरिरग्नित्रिमूर्तीन्दुयुग् वर्मपुटिताद्रिजा ॥ ६ ॥
अस्त्रान्ता पञ्चवर्णोऽयं प्रोक्तमेकजटाद्वयम्।

नारायणीया ताराविद्या

रेफशान्तीन्दुयुङ्णान्तो वर्मास्त्रं कामवाग्भवम् ॥ ७ ॥
नारायणोपासितेयं पञ्चार्णा सर्वसिद्धिदा।

उक्तानामष्टविद्यानामृष्यादिकथनम्

अमूषामष्टविद्यानामृषिः[1] शक्तिर्वसिष्ठजः ॥ ८ ॥

एकजटाद्वयमाह – **तार इति** । अग्नित्रिमूर्तीन्दुयुक्हरिः । रईबिन्दुयुक्त–कारस्त्रीं । स्पष्टमन्यत् । यथा – ॐ ह्रीं हुँ ह्रीं हुँ फट् इति प्रथमा । त्रीं हुँ ह्रीं हुँ फडिति द्वितीया ॥ ६–७ ॥ नारायणीयामाह – **रेफेति** । रेफः रः । शान्तिः ईकारः । अनुस्वारयुक्तो णान्तस्तः त्रीं । यथा – त्रीं हुँ फट् क्लीं ऐमिति ॥ ७–८ ॥ उक्तानामष्टविद्यानामृष्याद्याह – **अमूषामिति** ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर **एकजटा के दो मन्त्र का प्रातिपादन** करते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), वर्म (हुं), फिर माया (ह्रीं), वर्म (हुँ) और इसके अन्त में अस्त्र (फट्) लगाने से षडक्षर मन्त्र बन जाता है ॥ ६॥

विमर्श - (vi) **एकजटा मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ ह्रीं हुं ह्रीं हुं फट्। इस प्रकार तारा का अन्य (**प्रथम एकजटा**) षडक्षर मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ६ ॥

अग्नि (र्), त्रिमूर्ति (इ), इन्दु (अनुस्वार) के सहित हरि (त्) अर्थात् (त्रीं) वर्मसंपुटित अद्रिजा (हुं ह्रीं हुं) फिर अन्त में अस्त्र (फट्) लगाने से पञ्चाक्षर मन्त्र बन जाता है । ये दोनों एकजटा के मन्त्र हैं ॥ ७ ॥

विमर्श - (vii) **एकजटा के दूसरे मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'त्रीं हुं ह्रीं हुं फट्' । इस प्रकार एकजटा का द्वितीय मन्त्र बनता है । दोनों मन्त्र षडक्षर और पञ्चाक्षर एकजटा के हैं ॥ ७ ॥

रेफ (र), शान्ति (ईकार), इन्दु (अनुस्वार) से युक्त णान्त (अर्थात् तकार त्रीं), वर्म (हुं), अस्त्र (फट्), काम (क्लीं) और अन्त में वाग्भव (ऐं) लगाने से जो मन्त्र बनता है वह पञ्चाक्षरों से युक्त नारायणोप्रासित तारा मन्त्र सर्वसिद्धियों को देने वाला कहा जाता है ॥ ८ ॥

---

१. अष्टविद्यानां वसिष्ठजोशक्तिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः तारादेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

गायत्रीतारके छन्दोदेवते परिकीर्तिते ।
न्यासं तु पूर्ववत् कृत्वा ध्यायेत्तारां हृदम्बुजे ॥ ९ ॥

ध्यानवर्णनम्

श्वेताम्बरां शारदचन्द्रकान्तिं
सद्भूषणां चन्द्रकलावतंसाम् ।
कर्त्रींकपालान्वितपाणिपद्मां
तारां त्रिनेत्रां प्रभजेऽखिलर्द्ध्यै ॥ १० ॥

गायत्रीछन्दः । तारादेवता । पूर्ववत् षडदीर्घाढ्यमायाबीजेन ह्रां ह्रीमित्यादि ॥ ९ ॥ ध्यानमाह – **श्वेतेति** । कर्त्री दक्षे ॥ १० ॥

विमर्श - (viii) **नारायणोपासित तारा मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'त्रीं हुं फट् क्लीं ऐं' ॥ ८ ॥

ऊपर कही गई इन आठों विद्याओं के वशिष्ठ पुत्र शक्ति ऋषि हैं । गायत्री छन्द तथा तारा देवता हैं । पूर्वोक्त विधि से न्यास कर हृत्कमल पर इस मन्त्र में भगवती तारा का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ॥ ८-९ ॥

विमर्श - इसके विनियोग, ऋष्यादिन्यास तथा कराङ्गन्यास का स्वरूप इस प्रकार है -

विनियोग - ॐ अस्यास्ताराविद्यायाः वशिष्ठजो शक्तिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः तारा-देवता ह्रीं बीजं हुं शक्तिः स्त्रीं कीलकं आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः -

ॐ वशिष्ठजशक्तिर्ऋषये नमः, शिरसि ।ॐ गायत्रीछन्दसे नमः, मुखे ।
ॐ तारादेवतायै नमः, हृदि । ॐ ह्रीं बीजाय नमः, गुह्ये ।
ॐ हुं शक्त्ये नमः, पादयोः । ॐ स्त्रीं कीलकाय नमः, सर्वाङ्गे ।

हृदयादिन्यास -

ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुं,
ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट् ।

इसी प्रकार **कराङ्गन्यास** - ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् भी कर लेना चाहिए ॥ ८-९ ॥

अब **तारा मन्त्र के जप के पूर्व ध्यान** कहते हैं - श्वेत वस्त्र धारण की हुई शारदीय चन्द्रिका के समान शरीर की आभा से युक्त, चन्द्रकला को मस्तक पर धारण करने वाली, नाना प्रकार के आभूषणों से उल्लसित, हाथों में

जपपूजादिकं सर्वमासां पूर्ववदाचरेत्।

प्रयोगवर्णनम्

मधुयुक्परमान्नेन होमाद्विद्यानिधिर्भवेत्॥ ११॥
रक्तां वश्ये स्वर्णवर्णां स्तम्भने मारणे सिताम्।
उच्चाटने धूम्रवर्णां शान्तौ श्वेतां स्मरेदिमाम्॥ १२॥
भूरिणा किमिहोक्तेन विद्या एताः प्रसाधिताः।
पूरयन्त्यखिलं नृणां मनोरथमिह ध्रुवम्॥ १३॥

एकजटामन्त्रः

मायाहृद्भगवत्येकजटे मम जलं स्थिरा।
वह्न्यासनगता पुष्पं प्रतीच्छानलवल्लभा॥ १४॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रस्तारादिः सर्वसिद्धिदः।
ऋषिः[1] पतञ्जलिश्छन्दो गायत्र्येकजटा पुनः॥ १५॥

प्रयोगानाह – **मध्विति** ॥ ११ ॥ * ॥ १२–१३ ॥ एकजटामाह – **मायेति**। जलं वः वह्न्यासनगता स्थिरा रेफयुतो जः ज्रः। यथा – ॐ ह्रीं नमो भगवत्येकजटे मम वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहेति ॥ १४ ॥ * ॥ १५–१६ ॥

कर्तारिका (कैंची या चाकू) तथा कपाल लिए हुये त्रिनेत्रा भगवती तारा का मैं अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए ध्यान करता हूँ ॥ १० ॥

प्रयोग कथन - इन विद्याओं का जप, पूजन एवं होमादि सर्व कर्म पूर्वोक्त तारा मन्त्र (४. ५०-१०३) के समान करना चाहिए। साधक मधु युक्त परमान्न के होम से विद्यानिधि हो जाता है ॥ ११ ॥

वश्यकार्य के लिए रक्तवर्णा, स्तम्भनकर्म में स्वर्णवर्णा, मारणकर्म में कृष्णवर्णा, उच्चाटन में धूम्रवर्णा तथा शान्ति कार्यों में श्वेतवर्णा भगवती का ध्यान करना चाहिए ॥ १२ ॥

इस विषय में बहुत क्या कहें - उक्त रीति से आराधना करने पर ये विद्यायें निश्चित रूप से साधकों के समस्त अभीष्ट को पूर्ण कर देती हैं ॥ १३ ॥

अब पुनः **एकजटा मन्त्र** कहते हैं - माया (ह्रीं), हृद् (नमः), फिर भगवत्येकजटे मम, फिर जल (व), तदनन्तर वह्न्यासनगता स्थिरा (ज्र), फिर 'पुष्पं प्रतीच्छ', इसके अन्त में अनलवल्लभा (स्वाहा) तथा आदि में तार (ॐ) लगाने से बाईस अक्षरों का सर्वसिद्धिदायक एकजटा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १४-१५ ॥

---

१. ॐ अस्य श्रीमदेकजटामन्त्रस्य पतञ्जलिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः एकजटादेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। ॐ अस्य श्रीनीलसरस्वतीमन्त्रस्य ब्रह्मऋषिः गायत्रीछन्दः नीलसरस्वतीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

देवता दीर्घषट्काढ्यमायया स्यात् षडङ्गकम् ।
ध्यानार्चनप्रयोगांस्तु कुर्यात् पूर्वोक्तमन्त्रवत् ॥ १६ ॥

नीलसरस्वतीमन्त्रः

रमां माया हसौ व्यापिन्यारूढौ सर्गसंयुतौ ।
वर्मास्त्रं नीलभृगुरस्वत्यैठद्वयमीरितम् ॥ १७ ॥
प्रणवाद्यो मनुः सर्वसिद्धिदो मनुवर्णकः ।
ऋष्याद्या ब्रह्मगायत्री तथा नीलसरस्वती ॥ १८ ॥
नेत्रचन्द्रेन्दुनेत्राङ्गनेत्रार्णैरङ्गकल्पना ।
मन्त्रोत्थितैरथो ध्यायेद् देवीं सर्वेष्टसिद्धिदाम् ॥ १९ ॥

नीलसरस्वतीमाह – **रमेति** । व्यापिन्यारूढौ औयुतौ । नीलस्वरूपम् । भृगुः सः । रस्वत्यैस्वरूपम् । ठद्वयं स्वाहा । यथा – ॐ श्रीं ह्रीं हसौः हुँ फट् नीलसरस्वत्यै स्वाहा । मनुवर्णश्चतुर्दशार्णः ॥ १७–१८ ॥ षडङ्गमाह – **नेत्रेति** । नेत्रशब्देनार्णद्वयं चन्द्र एकः। अङ्गानि षट् ॥ १९ ॥

विमर्श - एकजटा मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ ह्रीं नमो भगवत्येकजटे मम वज्रपुष्पं प्रतीच्छ स्वाहा ॥ १४-१५ ॥

इस मन्त्र के पतञ्जलि ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा एकजटा देवता हैं । इस मन्त्र के जप में षड्दीर्घ युक्त माया बीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए । ध्यान, पूजा एवं प्रयोगादि पूर्वोक्त रीति से करना चाहिए ॥ १५-१६ ॥

विमर्श - मन्त्र का विनियोग इस प्रकार है - ॐ अस्य श्रीमदेकजटामन्त्रस्य पतञ्जलिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः श्रीमदेकजटादेवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं वज्रोदके शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं उग्रजटे कवचाय हुं, ॐ ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट् ।

इसी प्रकार कराङ्गन्यास कर एकजटा मन्त्र की देवता तारा का ध्यान पूर्वोक्त ४. ३९-४० श्लोकों में वर्णित स्वरूप से करें ॥ १५-१६ ॥

अब **नीलसरस्वती का मन्त्र** कहते हैं - रमा (श्रीं), माया (ह्रीं), व्यापिनी (औ) एवं सर्ग (विसर्ग) से युक्त हस् वर्ण (अर्थात् हसौः), वर्म (हुं), अस्त्र (फट्), फिर 'नील' पद, तदनन्तर भृगु 'स', फिर 'रस्वत्यै' तथा उसके अन्त में दो ठ (स्वाहा), तथा मन्त्र के आदि में प्रणव (ॐ) लगाने से चौदह अक्षरों का नीलसरस्वती मन्त्र बन जाता है ॥ १७-१८ ॥

इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द तथा नीलसरस्वती देवता हैं । मन्त्र के क्रमशः २, १, १, २, ६, एवं २ अक्षरों से षडङ्गन्यास कर मनोरथपूर्ण

घण्टाशिरः शूलमसिं कराग्रैः
सम्बिभ्रतीं चन्द्रकलावतंसाम् ।
प्रमथ्नतीं पादतले पशुं तां
भजे मुदा नीलसरस्वतीशाम् ॥ २० ॥
जपपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदीरितम् ।
विशेषाज्जयदा वादे विद्येयं साधिता नृणाम् ॥ २१ ॥

नीलसरस्वत्या अपरो मन्त्रः

माया सानन्तसंयुक्ता वर्मह्रन्ङेयुता पुनः ।
तारामहापदाद्या सा भृगुब्रह्मानलान्तिमः ॥ २२ ॥

ध्यानमाह – **घण्टामिति** । शूलासीदक्षयोः घण्टाशिरसीवामयोः ॥ २० ॥ * ॥ २१ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **मायेति** । सा माया अनन्तसंयुता आकारसंयुता ह्राम् ॥ ङेयुता तारा तारायै । सा महापदाद्या महातारायै । भृगुः सः। ब्रह्मा कः। अनलान्तिमो लः। स्पष्टमन्यत् ॥ तथा ताराद्या त्रीं बीजाद्या । यथा – ॐ त्रीं ह्रां हुँ नमस्तारायै महातारायै सकलदुस्तरां–

करने वाली भगवती नीलसरस्वती का ध्यान करना चाहिए ॥ १८-१९ ॥

विमर्श - **नीलसरस्वती मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ श्रीं ह्रीं हसौः हुं फट् नीलसरस्वत्यै स्वाहा ।

विनियोग - ॐ अस्य श्रीनीलसरस्वतीमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रीछन्दः नीलसरस्वतीदेवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ श्रीं हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा,
हसौः शिखायै वषट्, हुं फट् कवचाय हुम्,
नीलसरस्वत्यै नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा, अस्त्राय फट् ।

इसी प्रकार कराङ्गन्यास कर भगवती का ध्यान करना चाहिए ॥ १८-१९ ॥

अब **नीलसरस्वती का ध्यान** कहते हैं - दाहिने हाथों में शूल एवं तलवार तथा बायें हाथों में घण्टा एवं मुण्ड धारण करने वाली, शिर पर चन्द्रकला धारण किये हुये तथा अपने पैरों के नीचे उन पशुओं का प्रमन्थन करती हुई प्रसन्न मुद्रा वाली ईश्वरी भगवती नीलसरस्वती का मैं ध्यान करता हूँ ॥ २० ॥

इस मन्त्र के जप पूजादि का विधान हम पूर्व में कह आये हैं । यह विद्या सिद्ध हो जाने पर मनुष्यों को वाद-विवाद में विशेष रूप से विजय प्रदान करने वाली होती हैं ॥ २१ ॥

अब अन्य **तारा मन्त्र** कहते हैं -

आदि में तारा (त्रीं), सानन्त आकार सहित माया (ह्रां), वर्म (हुं),

दुस्तरांस्तारयद्वन्द्वं तरयुग्मं च ठद्वयम् ।
द्वात्रिंशदर्णा ताराद्या पूजास्याः पूर्ववन्मताः ॥ २३ ॥

विद्याराज्ञीमन्त्रः

विद्याराज्ञीमथो वक्ष्ये सुरेन्द्रस्यापि दुर्लभाम् ।
लब्ध्वा यां मानवाः स्वेष्टं साधयन्त्यर्चने रताः ॥ २४ ॥
वाङ्माया श्रीर्मनोजन्माहंसोऽनुग्रह बिन्दुयुक् ।
कामः शक्तिश्च वाग्बीजं फान्तोलार्घीशबिन्दुयुक् ॥ २५ ॥
स्त्रीबीजं नीलतारेस्यात्संबुद्धयन्ता सरस्वती ।
अत्रीसरेफौ क्रमतः शेषवामाक्षिसंयुतौ ॥ २६ ॥
सानुस्वारौ कामबीजं फान्तो मांसार्धिबिन्दुगः ।
सर्गीभृगुर्वाग्हृल्लेखारमाकामोऽथ सौ द्वयम् ॥ २७ ॥

स्तारय तारय तर तर स्वाहेति ॥ २२–२३ ॥ द्वात्रिंशदर्णाविद्याराज्ञीमाह – **विद्येति** ॥ २४ ॥ वागिति । मनोजन्मा क्लीं । अनुग्रहबिन्दुयुक्हंसः सः सौं । लार्घीशबिन्दुयुक्फान्तः लऊ बिन्दुयुतो बः ब्लूं ॥ २५ ॥ स्त्रीबीजं स्त्रींसरेफौ रेफयुक्तौ शेषवामाक्षिसंयुतौ क्रमतआईसंयुतौ अत्रीदकारौ ॥ २६ ॥ सानुस्वारौ द्रां द्रीमिति । कामबीजं क्लीं । मांसार्घीबिन्दुयुग्लऊबिन्दुयुक्तः फान्तो बः ब्लूं, सर्गी भृगुः सः ॥ हृल्लेखा ह्रीं यथा – ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौं क्लीं ह्रीं ऐं ब्लूं स्त्रीं नीलतारे सरस्वति द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ऐं ह्रीं

हृत (नमः) उसके बाद चतुर्थ्यन्त तारा पद (तारायै), एवं महातारा पद (महातारायै), भृगु (स), ब्रह्मा (क), अनलान्तिम (ल), फिर दुस्तरां पद, फिर दो तारय पद (तारय तारय), दो तर पद (तर तर) तदनन्तर ठद्वय 'स्वाहा' लगाने से बत्तीस अक्षरों का तारा मन्त्र बनता है । इस मन्त्र का पूजनादि विधान तारा मन्त्र के समान समझना चाहिए ॥ २२-२३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ त्रीं ह्रां हुं नमस्तारायै महातारायै सकलदुस्तरांस्तारय तारय तर तर स्वाहा ॥ २२-२३ ॥

अब विद्याराज्ञी (महाविद्या मन्त्र) जो सुरेन्द्र के लिए भी दुर्लभ है, उसे कहता हूँ जिसे प्राप्त कर देवी के पूजनादि में तत्पर रहने वाला साधक अपना सारा अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ॥ २४ ॥

वाग् (ऐं), माया (ह्रीं), श्री (श्रीं), मनोजन्मा (क्लीं), अनुग्रह (औ), बिन्दु सहित हंस (सौं), फिर काम (क्लीं), शक्ति (ह्रीं), वाग्बीज (ऐं), मांस (ब), - अर्घी (ऊ), बिन्दु (अनुस्वार) से युक्त फान्त (ल अर्थात ब्लूं), स्त्रीबीज (स्त्रीं) फिर सम्बुद्ध्यन्त 'नीलतारे सरस्वति' पद, रेफ

सर्गान्तं भुवनेशानी स्वाहा[1] द्वात्रिंशदक्षरी।
महाविद्या हि सा ख्याता सेविता भोगमोक्षदा ॥ २८ ॥
ब्रह्मानुष्टुप्सरस्वत्यो मुन्याद्या[2] अङ्गकल्पना।
पञ्चपञ्चाष्टपञ्चेषु युगार्णैर्मन्त्रसम्भवैः ॥ २९ ॥

ध्यानवर्णनम्

शवासनां सर्पविभूषणाढ्यां
कर्त्री कपालं चषकं त्रिशूलम् ।

श्रीं क्लीं सौः सौः ह्रीं स्वाहेति ॥ २७–२८ ॥ षडङ्गमाह – **पञ्चेति** ॥ २९ ॥ ध्यानमाह – **शवेति**। कर्त्री त्रिशूले दक्षयोः ॥ ३० ॥

---

(२) शेष वामाक्षि से संयुक्त एवं अनुस्वार के सहित अत्री दो बार (द्रां द्रीं), फिर काम बीज (क्लीं) मांसार्धीबिन्दु युक्त फान्त (ब्लूं), विसर्ग युक्त भृगु स (अर्थात् सः), वाग् (ऐं), हल्लेखा (ह्रीं), रमा (श्रीं), काम (क्लीं), दो बार विसर्गान्त सौ (सौः सौः), भुवनेशानी (ह्रीं) तथा अन्त में स्वाहा लगाने से बत्तीस अक्षरों का तारा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २५-२८ ॥

इसे **महाविद्या** कहते हैं, जो साधक को भुक्ति तथा मुक्ति दोनों ही प्रदान करती है ।

इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, सरस्वती देवता हैं । इस मन्त्र के क्रमशः ५, ५, ८, ५, ५ एवं ४ वर्णो से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ २५-२९ ॥

विमर्श - **विद्याराज्ञी मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार हैं - ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौं क्लीं ह्रीं ऐं ब्लूं स्त्रीं नीलतारे सरस्वति द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः सौः ह्रीं स्वाहा ।

विनियोग - ॐ अस्य श्रीमहाविद्यामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः अनुष्टुपृछन्दः सरस्वतीदेवता ममाभीष्टसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास -

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः हृदयाय नमः, क्लीं ह्रीं ऐं ब्लू स्त्रीं शिरसे स्वाहा,
नीलतारे सरस्वति शिखायै वषट्, द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः कवचाय हुं,
ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः नेत्रत्रयाय वौषट्, सौः ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट्,
इस प्रकार हृदयादिन्यास कर कराङ्गन्यास भी करना चाहिए ॥ २५-२९ ॥

---

१. ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौं क्लीं ह्रीं ऐं ब्लू त्रीं नीलतारे सरस्वति द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौ सौः ह्रीं स्वाहा।

२. अस्य महाविद्यामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः अनुष्टुपछन्दः सरस्वतिदेवता ममाभीष्टसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

करैर्दधानां नरमुण्डमालां
त्र्यक्षां भजे नीलसरस्वतीं ताम् ॥ ३० ॥

प्रयोगवर्णनम्

चतुर्लक्षं जपेद् विद्यां किंशुकैर्मधुरान्वितैः ।
दशांशं जुहुयाद् वह्नौ श्रद्धापूर्वमतन्द्रितः ॥ ३१ ॥
पूर्वोक्ते पूजयेत् पीठे वक्ष्यमाणेन वर्त्मना ।
आदौ त्रिकोणं षट्कोणमष्टषोडशपत्रके ॥ ३२ ॥
द्वात्रिंशत् पत्रमब्जं स्याच्चतुष्षष्टिदलं ततः ।
त्रिरेखाढ्यं धरागेहं चतुरस्रमतः परम् ॥ ३३ ॥
एवं यन्त्रं समालिख्य बाह्यतः पूजनं चरेत् ।

किंशुकैः पलाशपुष्पैः ॥ ३१ ॥ * ॥ ३२–४० ॥

अब **महाविद्या का ध्यान** कहते हैं - शवासन पर आसीन सर्पो के भूषण से विभूषित अपने चारों हाथों में क्रमशः कर्तरिका (कैंची), कपाल, चषक (पानपात्र) एवं त्रिशूल धारण किये हुये तथा हाथों में नरमुण्डमाला लिए हुये त्रिनेत्रा नीलसरस्वती का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ३० ॥

विद्याराज्ञीपूजनयन्त्रम्
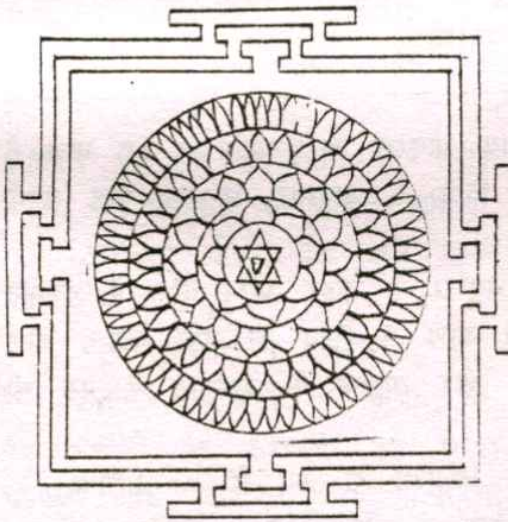
पुरश्चरण - उक्त सरस्वती महाविद्या मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए, तदनन्तर मधुमिश्रित पलाश पुष्पों का श्रद्धा एवं उत्साह सहित अग्नि में दशांश होम करना चाहिए ॥ ३१ ॥

पीठपूजाविधान - जपारम्भ के प्रथम पूर्वोक्त पीठ पर वक्ष्यमाण मन्त्र से देवी की पूजा करनी चाहिए । सर्वप्रथम त्रिकोण, फिर षट्कोण, उसके बाद अष्टदल, फिर षोडशदल, तदनन्तर वत्तीसदल, फिर चौंसठ दल वाला कमल निमार्ण कर तीन रेखाओं वाले भूपुर से वेष्टित कर चतुरस्र बनाना चाहिए । ऐसा यन्त्र लिखकर उसके वाह्य भाग से पूजन प्रारम्भ करना चाहिए ॥ ३२-३४ ॥

विमर्श - चौथे तरङ्ग में कही गई विधि के अनुसार भूतशुद्धि, षोढान्यास, दिग्बन्धन तथा अर्घ्यस्थापन कर ४. ८६-८८ में बताई गई विधि के अनुसार पीठ पूजा, ध्यान एवं आवाहन कर षोडशोपचारों से नीलसरस्वती का पूजन कर

आवरणपूजाकथनम्

चतुरस्रस्याग्निकोणे विघ्नेशं परिपूजयेत् ॥ ३४ ॥
वायुकोणे क्षेत्रपालमैशान्ये भैरवं तथा ।
नैर्ऋते योगिनीः सर्वा वामभागे गुरुं यजेत् ॥ ३५ ॥

अष्टसिद्धिकथनम्

भूगृहस्याद्यरेखायामणिमालघिमा तथा ।
महिमा चेशिता पूज्या वशिता कामपूरणी ॥ ३६ ॥
गरिमा प्राप्तिरित्येताः पूज्याः पूर्वादिदिक् क्रमात् ।

अष्टभैरवकथनम्

धरागृहस्य रेखायां द्वितीयायां तु भैरवाः ॥ ३७ ॥
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तकपालिनः ।
भीषणश्चाथ संहार एतेष्टौ भैरवाः स्मृताः ॥ ३८ ॥

सप्तमातृकाकथनम्

भूमिगेहे तृतीयायां रेखायां मातरः पुनः ।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारीवैष्णवी तथा ॥ ३९ ॥
वारहीन्द्राणिका चैव चामुण्डा सप्तमी स्मृता ।
महालक्ष्मीस्तथेज्यास्ताः पूर्वादिषु यथाक्रमम् ॥ ४० ॥

योनि मुद्रा प्रदर्शित कर - देवि आज्ञापय आवरणं ते पूजयामि - इस मन्त्र से देवी से आज्ञा लेकर आगे कही गई विधि के अनुसार आवरण पूजा करनी चाहिए ॥ ३२-३४ ॥

अब **आवरण पूजा** कहते हैं - चतुरस्र के बाहर अग्नि कोण में गणपति का, वायव्यकोण में क्षेत्रपाल का, ईशान कोण में भैरव का तथा नैर्ऋत्य कोण में योगिनियों का पूजन करना चाहिए और चतुरस्र के वामभाग में गुरु की पूजा करनी चाहिए ॥ ३४-३५ ॥

भूपुर की **प्रथम रेखा में** पूर्वादि दिशाओं के क्रम से १. अणिमा, २. लघिमा, ३. महिमा, ४. ईशिता, ५. वशिता, ६. कामपूरणी, ७. गरिमा एवं ८. प्राप्ति की पूजा करनी चाहिए ॥ ३६-३७ ॥

पुनः भूपुर की **द्वितीय रेखा में** पूर्वादि क्रम से - १. असिताङ्ग, २. रुरु, ३. चण्ड, ४. क्रोध, ५. उन्मत्त, ६. कपाली, ७. भीषण एवं ८. संहार - इन आठ भैरवों का पूजन करना चाहिए । तथा भूपुर की **तृतीय रेखा में** १.

इत्थमाद्यावृतिं चेष्ट्वा योनिमुद्रां प्रदर्शयेत्।

चतुःषष्टिशक्तिकथनम्

चतुःषष्टिदले पद्मे शक्तीरर्चेच्च तावतीः ॥ ४१ ॥
कुलेशी कुलनन्दा च वागीशी भैरवी तथा।
उमा श्रीः शान्तया चण्डा धूम्रा काली करालिनी ॥ ४२ ॥
महालक्ष्मीश्च कङ्काली रुद्रकाली सरस्वती।
वाग्वादिनी च नकुली भद्रकाली शशिप्रभा ॥ ४३ ॥
प्रत्यङ्गिरा सिद्धलक्ष्मीरमृतेशी च चण्डिका।
खेचरी भूचरी सिद्धा कामाक्षी हिङ्गुला बला ॥ ४४ ॥
जया च विजया चाप्यजिता नित्यापराजिता।
विलासिनी तथा घोरा चित्रा मुग्धा धनेश्वरी ॥ ४५ ॥
सोमेश्वरी महाचण्डा विद्या हंसी विनायिका।
वेदगर्भा तथा भीमा उग्रा वैद्या च सद्गतिः ॥ ४६ ॥
उग्रेश्वरी चन्द्रगर्भा ज्योत्स्ना सत्या यशोवती।
कुलिका कामिनी काम्या ज्ञानवत्यथ डाकिनी ॥ ४७ ॥

योनिमुद्रोक्ता ॥ ४१ ॥ * ॥ ४२–४८ ॥

ब्राह्मी, २. माहेश्वरी, ३. कौमारी, ४. वैष्णवी, ५. वाराही, ६. इन्द्राणी, ७. चामुण्डा एवं ८. महालक्ष्मी - इन आठ मातृकाओं के नाम के आगे चतुर्थ्यन्त नमः पद लगाकर पूर्वादि क्रम से पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार **प्रथम आवरण** की पूजा कर योनि मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ३७-४१ ॥

अब **सरस्वती की चौंसठ शक्तियों** को कहते हैं -

तदनन्तर चौंसठ दल वाले कमल में चौंसठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए -

१. कुलेशी, २. कुलनन्दा, ३. वागीशी, ४. भैरवी, ५. उमा, ६. श्री, ७. शान्तया, ८. चण्डा, ९. धूम्रा, १०. काली, ११. करालिनी, १२. महालक्ष्मी, १३. कंकाली, १४. रुद्रकाली, १५. सरस्वती, १६. वाग्वादिनी, १७. नकुली, १८. भद्रकाली, १९. शशिप्रभा, २०. प्रत्यङ्गिरा, २१. सिद्धलक्ष्मी, २२. अमृतेशी, २३. चण्डिका, २४. खेचरी, २५. भूचरी, २६. सिद्धा, २७. कामाक्षी, २८. हिंगुला, २९. बला, ३०. जया, ३१. विजया, ३२. अजिता, ३३. नित्या, ३४. अपराजिता, ३५. विलासिनी, ३६. घोरा, ३७. चित्रा, ३८. मुग्धा, ३९. धनेश्वरी, ४०. सोमेश्वरी, ४१. महाचण्डा, ४२. विद्या, ४३. हंसी, ४४. विनायिका, ४५. वेदगर्भा, ४६. भीमा, ४७. उग्रा, ४८. वैद्या, ४९. सद्गती, ५०. उग्रेश्वरी, ५१.

राकिनी लाकिनी चाथ काकिनी शाकिनीत्यपि।
हाकिनीति चतुःषष्टिशक्तयः सिद्धिदायिकाः ॥ ४८ ॥
दर्शयेत् खेचरीमुद्रां द्वितीयावरणेर्चिते।

द्वात्रिंशच्छक्तिकथनं पूजाविधिश्च

द्वात्रिंशत् पत्रमध्ये तु पूज्या एतास्तु शक्तयः ॥ ४६ ॥
किराता योगिनी वीरा वेताला यक्षिणी हरा।
ऊर्ध्वकेशी च मातङ्गी मोहिनी वंशवर्द्धिनी ॥ ५० ॥
मालिनी ललिता दूती मनोजा पद्मिनी धरा।
वर्वरी छत्रहस्ता च रक्तनेत्रा विचर्चिका ॥ ५१ ॥
मातृकादूरदर्शी च क्षेत्रेशी रङ्गिनी नटी।
शान्तिर्दीप्ता वज्रहस्ता धूम्रा श्वेता सुमङ्गला ॥ ५२ ॥

चतुःषष्टिदले तावतीः शक्तीरभ्यर्च्य खेचरीमुद्रां दर्शयेत् । तल्लक्षणं यथा –

सव्यं दक्षिणहस्ते तु सव्यहस्ते तु दक्षिणम् ।
बाहुकृत्वा महादेवि हस्तौ सपरिवर्त्य च ॥
कनिष्ठानामिके देवि युक्ता तेन क्रमेण तु ।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे ॥
अंगुष्ठौ तु महादेवि सरलावपि कारयेत् ।
इयं सा खेचरी नाम मुद्रां सर्वोत्तमोत्तमा ॥ ४६ ॥

इति ॥ * ॥ ५०–५२ ॥

चन्द्रगर्भा, ५२. ज्योत्स्ना, ५३. सत्या, ५४. यशोवती, ५५. कुलिका, ५६. कामिनी, ५७. काम्या, ५८. ज्ञानवती, ५६. डाकिनी, ६०. राकिनी, ६१. लाकिनी, ६२. काकिनी, ६३. शाकिनी एवं ६४. हाकिनी -- ये चौंसठ सिद्धिदायिका सरस्वती की शक्तियाँ कहीं गई हैं । इस प्रकार चतुर्थ्यन्त नामों के आगे नमः लगाकर इनकी पूजा कर खेचरी मुद्रा प्रदर्शित कर **द्वितीयावरण** की पूजा समाप्त करनी चाहिए ॥ ४१-४८ ॥

फिर बत्तीस दल वाले कमल पर **बत्तीस शक्तियों** की पूजा करनी चाहिए। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. किराता, २. योगिनी, ३. वीरा, ४. वेताला, ५. यक्षिणी, ६. हरा, ७. ऊर्ध्वकेशी, ८. मातङ्गी, ६. मोहिनी, १०. वंशवर्द्धिनी, ११. मालिनी, १२. ललिता, १३. दूती, १४. मनोजा, १५. पद्मिनि, १६. धरा, १७. वर्वरी, १८. छत्रहस्ता, १६. रक्तनेत्रा, २०. विचर्चिका, २१. मातृका, २२. दूरदर्शीनी, २३. क्षेत्रेशी, २४. रङ्गिनी, २५. नटी, २६. शान्ति, २७. दीप्ता, २८. वज्रहस्ता, २६. धूम्रा, ३०. श्वेता, ३१. सुमङ्गला (एवं ३२. सर्वेश्वरी) -

इष्ट्वा तृतीयावरणं बीजमुद्रां प्रदर्शयेत् ।

षोडशशक्तिपूजनम्

ततः षोडशपत्रेषु पूज्याः षोडशशक्तयः ॥ ५३ ॥
मुग्धा श्रीः कुरुकुल्ला च त्रिपुरा तोतला क्रिया ।
रतिः प्रीतिस्तथा बाला सुमुखी श्यामलाविला ॥ ५४ ॥
पिशाची च विदारी च शीतला वज्रयोगिनी ।
सर्वेश्वरीति सम्पूज्य सृणिमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ ५५ ॥

अष्टसरस्वतीपूजनं मन्त्राश्च

अष्टपत्रे स्वस्वमन्त्रैर्यजेदष्टसरस्वतीः ।
तारो हृल्लोहितः सत्यो वैकुण्ठानन्तसंयुताः ॥ ५६ ॥

तृतीयावरणं सम्पूज्य बीजमुद्रां दर्शयेत् । तल्लक्षणं यथा –
परिवर्त्य करौ स्पष्टावर्द्धचन्द्राकृती प्रिये ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं युगपत्कारयेत्ततः ॥
अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत् ।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके ॥
बीजमुद्रेयमुदिता सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ इति ॥ ५३ ॥
*॥ ५४ ॥ षोडशपत्रं सम्पूज्य सृणिमुद्रामंकुशमुद्रां दर्शयेत् । सा पूर्वमुक्ता ॥ ५५ ॥ अष्टपत्रे सरस्वत्यष्टकं स्वमन्त्रैर्यजेदित्युक्तम् । तासां मन्त्रान् क्रमेण वदन्नादौ वागीश्वरीमन्त्रमाह – **तार इति** । लोहितः पः बैकुण्ठानन्तसंयुतः

इनके नामों में चतुर्थ्यन्त विभक्ति युक्त नमः लगाकर पूजा करने के पश्चात् **तृतीयावरण** की पूजा बीज मुद्रा प्रदर्शित कर संपन्न करनी चाहिए ॥ ४९-५३ ॥

इसके बाद सोलह दलों में इन **सोलह शक्तियों** की पूजा करनी चाहिए । १. मुग्धा, २. श्री, ३. कुरुकुल्ला, ४. त्रिपुरा, ५. तोतला, ६. क्रिया, ७. रति, ८. प्रीति, ९. बाला, १०. सुमुखी, ११. श्यामलाविला, १२. पिशाची, १३. बिदारी, १४. शीतला, १५. वज्रयोगिनी, १६. सर्वेश्वरी -- इन नामों में चतुर्थ्यन्त सहित 'नमः' लगाकर पूजा करे और अंकुश मुद्रा प्रदर्शित कर **चतुर्थावरण** की पूजा सम्पन्न करनी चाहिए ॥ ५३-५५ ॥

इसके अनन्तर अष्टपत्रों में अष्ट सरस्वतियों की उनके लिए विहित पृथक् पृथक् मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए ।

(i) अब **वागीश्वरी के मन्त्र का उद्धार** करते हैं -

तार (ॐ), हृत् (नमः), लोहित (प), वैकुण्ठानन्त सहित सत्य (द्या), भृगु (स), फिर 'ने शब्दरूपे' यह पद, फिर वाक् (ऐं), माया (ह्रीं), काम

भृगुर्नेशब्दरूपे वाङ्मायाकामो वदद्वयम् ।
वाग्वादिन्यग्निकान्तेति मन्त्रो वेदाक्षिवर्णवान् ॥ ५७ ॥
अनेन मनुना पूर्वपत्रे वागीश्वरीं यजेत् ।
वराहहंसचक्रीन्द्रसंयुता भुवनेश्वरी ॥ ५८ ॥
वदयुग्मं च चित्रेश्वरि वाग्बीजानलप्रिया ।
द्वादशार्णेन मनुना वह्नौ चित्रेश्वरीं यजेत् ॥ ५९ ॥
वाग्बीजं कुलजे वाक् च सरस्वत्यनलाङ्गना ।
एकादशार्णमनुना कुलजां दक्षिणेर्चयेत् ॥ ६० ॥

सत्यः मआयुतो दः द्मा ॥ ५६ ॥ भृगुः सः स्पष्टमन्यत् । यथा – ॐ नमः पद्मासनेशब्दरूपे ऐं ह्रीं क्लीं वद वद वाग्वादिनी स्वाहेति वेदाक्षिवर्णवान् चतुर्विंशत्यर्णः ॥ ५७ ॥ चित्रेश्वरीमन्त्रमाह – वराहेति । वराह हंसचक्रीन्द्रसंयुता भुवनेश्वरी हसकल ह्रीं ॥ ५८ ॥ वद वद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहेति । प्रथमं षट्कूटम् ॥ यथा – क्लीं वद वद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा । वह्नौ अग्निकोणे ॥ ५९ ॥ कुलजामन्त्रमाह – **वागिति** । ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहेति ॥ ६० ॥

(क्लीं), इसके बाद दो बार वद शब्द (वद वद), फिर 'वाग्वादिनी' इसके बाद अग्निकान्ता (स्वाहा) लगाने से चौबीस अक्षरों का मन्त्र बनता है इस मन्त्र से पूर्वदिशा के पत्र पर वागीश्वरी का पूजन करना चाहिए ॥ ५६-५८ ॥

विमर्श - वागीश्वरी के पूजन में विनियुक्त २४ अक्षरों के **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ नमः पद्मासने शब्दरूपे ऐं ह्रीं क्लीं वद वद वाग्वादिनी स्वाहा' ॥ ५६-५८ ॥

(ii) अब **चित्रेश्वरी पूजन का मन्त्र** कहते हैं - 'वराह हंसचक्रीन्द्रसंयुता भुवनेश्वरी' अर्थात् 'हस कल ह्रीं' फिर दो बार वद शब्द (वद वद), फिर 'चित्रेश्वरि' पद, इसके बाद वाग्बीज (ऐं), फिर अनलप्रभा (स्वाहा) लगाने से द्वादश अक्षर का मन्त्र बन जाता है । इस बारह अक्षर वाले मन्त्र से साधक अग्निकोण में चित्रेश्वरी की पूजा करें ॥ ५८-५९ ॥

विमर्श - चित्रेश्वरी के मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'हसकलह्रीं वद वद चित्रेश्वरि ऐं स्वाहा' । ऊपर हकार में ६ अक्षरों का मेल होने से १ अक्षर समझना चाहिए ॥ ५८-५९ ॥

(iii) इसके बाद **कुलजा का मन्त्र** कहते हैं - वाग्बीज (ऐं), फिर 'कुलजे' पद, फिर वाग्बीज (ऐं), फिर सरस्वति पद, तदनन्तर अनलाङ्गना (स्वाहा) लगाने से ग्यारह अक्षरों का कुलजा मन्त्र बनता है, इससे दक्षिण में कुलजा का पूजन करना चाहिए ॥ ६० ॥

वाङ्माया श्रीं वदद्वन्द्वं कीर्तीश्वरि वसुप्रिया ।
त्रयोदशार्णेन यजेन्नैर्ऋत्ये कीर्तिनायिका ॥ ६१ ॥
वाङ्माया चान्तरिक्षान्ते सरस्वति च ठद्वयम् ।
रव्यर्णेन यजेत् प्रत्यगन्तरिक्षसरस्वतीम् ॥ ६२ ॥
वराहहंसचण्डीशजनार्दनकृशानुयुक् ।
सेन्दुर्योनिश्च लकुलीभृगुवह्नीन्दुयुङ् मनुः ॥ ६३ ॥
अरुणाभृगुशिख्यग्निसंयुता शान्तिरिन्दुयुक् ।
वाङ्माया श्रीषु बीजानि घ्रीं घटान्ते सरस्वतीम् ॥ ६४ ॥

कीर्तीश्वरीमन्त्रमाह – **वागिति** । ऐं ह्रीं श्रीं वद वद कीर्तीश्वरि स्वाहेति । वसुरग्निः ॥ ६१ ॥ अन्तरिक्षसरस्वतीमन्त्रमाह – **वागिति** । ऐं ह्रीं अन्तरिक्षसरस्वति स्वाहेति ॥ ६२ ॥ घटसरस्वतीमन्त्रमाह – **वराहमिति** । एवंविधा योनिरेकारः। कीदृशी ? वराहहंसचण्डीश – जनार्दनकृशानुयुक् हसखफरयुता । सेन्दुः सबिन्दुश्च । कूटमिदम् । मनुरौकारः । कीदृशः ? लकुलीभृगुवह्नीन्दुयुक् हसरबिन्दुयुतः । शान्ति री अरुणादियुता । अरुणाहः। भृगुः सः । शिखी फः । अग्नीरः एतैर्युता । सबिन्दुश्च वाक् ऐं, माया ह्रीं, श्रीं श्रीः । इषुबीजानि बाणबीजानि – 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स' इति ।

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं कुलजे ऐं सरस्वति स्वाहा' ॥ ६० ॥

(iv) अब **कीर्तीश्वरी का मन्त्र** कहते हैं -

वाग् (ऐं), माया (ह्रीं), श्री (श्रीं), दो बार 'वद' पद (वद वद) फिर कीर्तीश्वरि और अन्त में वसुप्रिया (स्वाहा) लगाने से तेरह अक्षरों का मन्त्र बनता है । इससे नैर्ऋत्यकोण में कीर्तीश्वरी का पूजन करना चाहिए ॥ ६१ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं ह्रीं श्रीं वद वद कीर्तीश्वरि स्वाहा ॥ ६१ ॥

(v) अब **अन्तरिक्षसरस्वती मन्त्र** कहते हैं -

वाग (ऐं), माया (ह्रीं), फिर 'अन्तरिक्षसरस्वति' यह पद, इसके अन्त में 'ठद्वय' (स्वाहा) लगाने से बारह अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है । इससे पश्चिम के दल में अन्तरिक्ष सरस्वती का पूजन करना चाहिए ॥ ६२ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं ह्रीं अन्तरिक्षसरस्वति स्वाहा ॥ ६२ ॥

(vi) अब **घटसरस्वती मन्त्र** कहते हैं - वराह हंस चण्डीश जनार्दन-कृशानुयुक् (ह् स् ष् फ र) सेन्दु (ह्स्फ्रं), लकुलीभृगुवह्नी (ह् स् र्) और इन्दु से युक्त मनु (ओं) अर्थात् ह्स्रौं अरुण भृगु शिख्यग्निसंयुत इन्दु युक् शान्ति अर्थात्

घटेवदतरद्वन्द्वं रुद्राज्ञा टायुता मम।
अभिलाषं कुरु द्वन्द्वं प्रेयसीकृष्णवर्त्मनः ॥ ६५॥
गुणवेदार्णेन यजेद्वायौ घटसरस्वतीम्।

नीलामन्त्रकथनम्

भूधरेन्द्रयुतोर्घीशो बिन्द्वाढ्यो वें वदद्वयम् ॥ ६६॥
त्रीं हुँ फट् नवार्णेन नीलामर्चेदुदग्दिशि।
वाग्बीजमधराक्रान्तो नकुलीबिन्दुमान् पुनः ॥ ६७॥

घ्रीमिति स्वरूपम् । टायुता तृतीयान्ता रुद्राज्ञा । कृष्णवार्त्मनोऽग्नेः प्रेयसी स्वाहा । यथा – ह्स्फ्रं ह्स्रों ह्स्फ्रों ऐं ह्रीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः घ्रीं घटसरस्वतीघटे वद वद तर तर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहेति ॥ ६३–६५ ॥ गुणवेदार्णस्त्रिचत्वारिंशदक्षरः । नीलामन्त्रमाह – **भूधरेति** । अर्घीश ऊ । भूधरो वः । इन्द्रो लः । ताभ्यां युतः बिन्दुयुतश्च ब्लूं । बें वदवदस्वरूपम् । यथा – ब्लूं वें वद वद त्रीं हुं फडिति । किणिमन्त्रमाह – **वाग्बीजमिति** । अधराक्रान्तो नकुली ऐंयुतो हः । शान्तिचन्द्राढ्यमाकाशम् ईबिन्दुयुतो हः सदृक् जलं वि । भगाक्रान्तं

अरुण (ह्), भृगु (स), शिखी (फ), अग्नि (र्) इससे युक्त सबिन्दु शान्ति (ह्स्फ्रें), फिर वाग्बीज (ऐं), माया (ह्रीं), श्री (श्रीं) इषु बीज (द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः) फिर 'घ्रीं घटसरस्वती घटे' पद, फिर दो बार 'वद' पद (वद वद) एवं 'तर' पद (तर तर), टा युता (तृतीयान्ता) रुद्राज्ञा (रुद्राज्ञया), फिर 'ममाभिलाषं', फिर दो बार 'कुरु' शब्द (कुरु कुरु), तदनन्तर कृष्णवर्त्माप्रेयसी (स्वाहा) लगाने से तिरालिस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है । इस मन्त्र से वायव्य दल में घटसरस्वती का पूजन करना चाहिए ॥ ६३-६६ ॥

विमर्श - **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ह्स्फ्रं ह्स्रों ह्स्फ्रों ऐं ह्रीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः घ्रीं घटसरस्वती घटे वद वद तर तर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहा' (४३) ॥ ६३-६६ ॥

(vii) अब **नीलसरस्वती का मन्त्र** कहते हैं -

भूधरेन्द्र युत् बिन्दु सहित अर्घीश (ब्लूं), फिर बिन्दु सहित (वें), तदनन्तर दो बार वद पद (वद वद), फिर 'त्रीं हुं फट्' लगाने से ९ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है । इससे उत्तर के दल में नीलसरस्वती का पूजन करना चाहिए ॥ ६६-६७ ॥

विमर्श - **नीलसरस्वती मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ब्लूं वें वद वद त्रीं हुं फट्' (९) ॥ ६६-६७ ॥

शान्तिचन्द्राढ्यमाकाशं किणिद्वन्द्वं सदृग्जलम् ।
कूर्मद्वन्द्वं भगाक्रान्तं नवार्णेनामुना यजेत् ॥ ६८ ॥
मन्त्रेणेशानदिग्भागे किणिसंज्ञां सरस्वतीम् ।
पञ्चमावृत्तिमाराध्य क्षोभमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ ६९ ॥

डाकिन्यादिषण्णां पूजनम्

डाकिन्याद्याः पूर्वमुक्ताः षट्कोणे षट् प्रपूजयेत् ।
दर्शयेद् द्राविणीं मुद्रां षष्ठावरणपूजने ॥ ७० ॥

परादि–तिसृणां पूजनम्

पराबालाभैरवीति पूजनीयास्त्रिकोणके ।

कूर्मद्वन्द्वम् ऐयुतं च द्वन्द्वं च । यथा – ऐं हैं हीं किणि किणि विच्चे इति ॥ ६६–६८ ॥ एवं सरस्वत्यष्टकं सम्पूज्य क्षोभमुद्रादर्शनम् । तल्लक्षणम् –

मध्यमां मध्यमे कृत्वा कनिष्ठाङ्गुष्ठरोधिते ।
तर्जन्यौ दण्डवत्कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके ।
क्षोभाभिधानामुद्रेयं सर्वसंक्षोभकारिणी ॥ ६९ ॥ इति

डाकिन्याद्याः पूर्वोक्ताः । डाकिनी, राकिनी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी, हाकिन्यः । द्राविणीमुद्रालक्षणं यथा – क्षोभमुद्रालक्षणमुक्त्वोक्तम्

एतस्या एवमुद्राया मध्यमे सरले यदा ।
क्रियते परमेशानि तदा विद्राविणीमता ॥ इति ॥ ७० ॥

(viii) अब **किणिसरस्वती का मन्त्र** कहते हैं -

वाग्बीज (ऐं), अधराक्रान्त सबिन्दु नकुली (हैं), शान्तिचन्द्राढ्य आकाश (हीं), दो बार किणि शब्द (किणि किणि), सदृक् इकार सहित जल व् (अर्थात् वि), भगाक्रान्त कूर्मद्वय (च्चे) यह ९ अक्षर का मन्त्र निष्पन्न होता है । इससे ईशानकोण में किणि सरस्वती का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार अष्टदलों में आठ सरस्वतियों का पूजन कर **पञ्चमावरण** की पूजा समाप्त कर क्षोभमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ६७-६९ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं हैं हीं किणि किणि विच्चे' ॥ ६७-६९ ॥

षट्कोण में पूर्वोक्त १. डाकिनी, २. राकिनी, ३. लाकिनी, ४. काकिनी, ५. शाकिनी एवं ६. हाकिनी का पूजन कर **षष्ठावरण** की पूजा समाप्त कर द्राविणीमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ७० ॥

तदनन्तर त्रिकोण में परा, बाला एवं भैरवी का पूजन कर **सप्तमावरण** की पूजा समाप्त कर आकर्षणी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

सप्तमावृतिपूजायां मुद्रां कुर्याच्चकर्षिणीम् ॥ ७१ ॥
इत्थं सम्पूज्य तारेशीं मनोभीष्टमवाप्नुयात् ।

पराबालाभैरवीति स्वस्वमन्त्रैः – ह्रीं परायै नमः–– ऐं क्ली सौः बालायै नमः – ह्सैंह्क्लीं ह्सौः भैरव्यै नमः इति ।

आकर्षिणीमुद्रालक्षणं यथा –

मध्यमातर्जनीभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे ।
अंकुशाकार रूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि ।
इयमाकर्षिणीमुद्रा त्रैलोक्याकर्षणे क्षमा ॥ इति ॥ ७१ ॥

इस प्रकार सप्तावरण युक्त तारा देवी तारेशी का पूजन करने से समस्त मनोरथों की पूर्ति होती है ॥ ७१-७२ ॥

विमर्श – आवरण पूजा प्रयोग इस प्रकार हैं - नाम मन्त्रों में चतुर्थी लगाकर तत्तत्स्थानों में आवरण पूजा करनी चाहिए ।

पूर्वोक्त विधि से देवी की पूजा करने के बाद उनकी आज्ञा लेकर **प्रथम आवरण पूजा** करनी चाहिए । सर्वप्रथम चतुरस्र के बाहर अग्निकोण में विधिवत् ध्यान कर 'ॐ ह्रीं गं गणपतये नमः' मन्त्र से गणेशजी का पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार वायव्य में 'ॐ ह्रीं क्षं क्षेत्रपालाय नमः' से क्षेत्रपाल का, ईशान कोण में 'ॐ ह्रीं वं बटुकाय नमः' से बटुकभैरव का तथा नैर्ऋत्यकोण में 'ॐ ह्रीं यं योगिनीभ्यो नमः' मन्त्र से योगिनीयों का पूजन करना चाहिए ।

भूपुर की **प्रथम रेखा में** पूर्व आदि दिशाओं में -

ॐ अणिमायै नमः, ॐ लघिमायै नमः, ॐ महिमायै नमः,
ॐ ईशित्यै नमः, ॐ वशितायै नमः, ॐ कामपूरण्यै नमः,
ॐ गरिमायै नमः तथा ॐ प्राप्त्यै नमः - इन मन्त्रों से क्रमशः अणिमा आदि का पूजन करना चाहिए ।

भूपुर की **द्वितीय रेखा में** पूर्व आदि आठ दिशाओं में निम्नलिखित मन्त्रों से आठ भैरवों का पूजन करना चाहिए -

ॐ असिताङ्गभैरवाय नमः, ॐ रुरुभैरवाय नमः,
ॐ चण्डभैरवाय नमः, ॐ क्रोधभैरवाय नमः,
ॐ उन्मत्तभैरवाय नमः, ॐ कपालीभैरवाये नमः,
ॐ भीषणभैरवाय नमः एवं ॐ संहारभैरवाय नमः ।

भूपुर की **तृतीय रेखा** में पूर्व आदि दिशाओं में -

ॐ ब्राह्म्यै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः, ॐ कौमार्यै नमः,
ॐ वैष्णव्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ इन्द्राण्यै नमः,
ॐ चामुण्डायै नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः

इन मन्त्रों से अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार प्रथम आवरण का पूजन कर योनिमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

द्वितीय आवरण में चौंसठ दलों पर निम्नलिखित मन्त्रों से **चौंसठ शक्तियों** का पूजन करना चाहिए -

१. ॐ कुलेश्यै नमः	२३. ॐ चण्डिकायै नमः	४५. ॐ वेदगर्भायै नमः
२. ॐ कुलनन्दायै नमः	२४. ॐ खेचर्यै नमः	४६. ॐ भीमायै नमः
३. ॐ वागीश्वर्यै नमः	२५. ॐ भूचर्यै नमः	४७. ॐ उग्रायै नमः
४. ॐ भैरव्यै नमः	२६. ॐ सिद्धायै नमः	४८. ॐ वैद्यायै नमः
५. ॐ उमायै नमः	२७. ॐ कामाख्यै नमः	४९. ॐ सद्गत्यै नमः
६. ॐ श्रियै नमः	२८. ॐ हिंगुलायै नमः	५०. ॐ उग्रेश्वर्यै नमः
७. ॐ शान्तयायै नमः	२९. ॐ बलायै नमः	५१. ॐ चन्द्रगर्भायै नमः
८. ॐ चण्डायै नमः	३०. ॐ जयायै नमः	५२. ॐ ज्योत्स्नायै नमः
९. ॐ धूम्रायै नमः	३१. ॐ विजयायै नमः	५३. ॐ सत्यायै नमः
१०. ॐ काल्यै नमः	३२. ॐ अजितायै नमः	५४. ॐ यशोवत्यै नमः
११. ॐ करालिन्यै नमः	३३. ॐ नित्यायै नमः	५५. ॐ कुलिकायै नमः
१२. ॐ महालक्ष्म्यै नमः	३४. ॐ अपराजितायै नमः	५६. ॐ कामिन्यै नमः
१३. ॐ कङ्काल्यै नमः	३५. ॐ विलासिन्यै नमः	५७. ॐ काम्यायै नमः
१४. ॐ रुद्रकाल्यै नमः	३६. ॐ घोरायै नमः	५८. ॐ ज्ञानवत्यै नमः
१५. ॐ सरस्वत्यै नमः	३७. ॐ चित्रायै नमः	५९. ॐ डाकिन्यै नमः
१६. ॐ वाग्वादिन्यै नमः	३८. ॐ मुग्धायै नमः	६०. ॐ राकिन्यै नमः
१७. ॐ नकुल्यै नमः	३९. ॐ धनेश्वर्यै नमः	६१. ॐ लाकिन्यै नमः
१८. ॐ भद्रकाल्यै नमः	४०. ॐ सोमेश्वर्यै नमः	६२. ॐ काकिन्यै नमः
१९. ॐ शशिप्रभायै नमः	४१. ॐ महाचण्डायै नमः	६३. ॐ शाकिन्यै नमः
२०. ॐ प्रत्यङ्गिरायै नमः	४२. ॐ विद्यायै नमः	६४. ॐ हाकिन्यै नमः
२१. ॐ सिद्धलक्ष्म्यै नमः	४३. ॐ हंस्यै नमः	
२२. ॐ अमृतेश्यै नमः	४४. ॐ विनायकायै नमः	

इस प्रकार **द्वितीय आवरण** की पूजा कर खेचरी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

तृतीय आवरण में बत्तीस दलों पर निम्नलिखित मन्त्रों से **बत्तीस** शक्तियों का पूजन करना चाहिए ।

१. ॐ किरातायै नमः	५. ॐ यक्षिण्यै नमः	९. ॐ मोहिन्यै नमः
२. ॐ योगिन्यै नमः	६. ॐ हराये नमः	१०. ॐ वंशवर्द्धिन्यै नमः
३. ॐ बीरायै नमः	७. ॐ ऊर्ध्वकेश्यै नमः	११. ॐ मालिन्ये नमः
४. ॐ बेतालायै नमः	८. ॐ मातंग्यै नमः	१२. ॐ ललितायै नमः
१३. ॐ दूत्यै नमः	२०. ॐ विचर्चिकायै नमः	२७. ॐ दीप्तायै नमः

१४. ॐ मनोजायै नमः २१. ॐ मातृकायै नमः २८. ॐ वज्रहस्तायै नमः
१५. ॐ पद्मिन्यै नमः २२. ॐ दूरदर्श्यै नमः २९. ॐ धूम्रायै नमः
१६. ॐ धरायै नमः २३. ॐ क्षेत्रेश्यै नमः ३०. ॐ श्वेतायै नमः
१७. ॐ बर्वर्यै नमः २४. ॐ रङ्गिन्यै नमः ३१. ॐ सुमङ्गलायै नमः
१८. ॐ छत्रहस्तायै नमः २५. ॐ नट्यै नमः ३२. ॐ सर्वेश्वर्यै नमः
१९. ॐ रक्तनेत्रायै नमः २६. ॐ शान्त्यै नमः

इस प्रकार **तृतीय आवरण** में उक्त मन्त्रों से ३२ शक्तियों का पूजन कर बीजमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

चतुर्थ आवरण में १६ दलों पर निम्नलिखित मन्त्रों से **१६ शक्तियों** का पूजन करना चाहिए, यथा -

१. ॐ मुग्धायै नमः, २. ॐ श्रियै नमः, ३. ॐ कुरुकुल्लायै नमः,
४. ॐ त्रिपुरायै नमः, ५. ॐ तोतलायै नमः, ६. ॐ क्रियायै नमः,
७. ॐ रत्यै नमः, ८. ॐ प्रीत्यै नमः, ९. ॐ बालायै नमः,
१०. ॐ सुमुख्यै नमः, ११. ॐ श्यामलाविलायै नमः,
१२. ॐ पिशाच्यै नमः, १३. ॐ विदार्यै नमः, १४. ॐ शीतलायै नमः,
१५. ॐ वज्रयोगिन्यै नमः, १६. ॐ सर्वेश्वर्यै नमः ।

इस प्रकार **चतुर्थ आवरण** में उक्त मन्त्रों से १६ शक्तियों का पूजन कर अंकुश मुद्रा दिखलानी चाहिए ।

पञ्चम आवरण में पूर्व आदि आठ दिशाओं के कमल दलों पर निम्नलिखित मन्त्रों से **अष्टसरस्वतियों** का पूजन करना चाहिए, यथा -

१. **पूर्वदिशा दल पर** - ॐ नमः पद्मासने शब्दरूपे ऐं ह्रीं क्लीं वद वद वाग्वादिनी स्वाहा' मन्त्र से **वागीश्वरी** का पूजन करना चाहिए ।

२. **अग्निकोण दल पर** - 'क्लीं वद वद चित्रेश्वरी ऐं स्वाहा' मन्त्र से **चित्रेश्वरि** का पूजन करना चाहिए ।

३. **दक्षिण दल पर** - ऐं कुलिजे ऐं सरस्वति स्वाहा' मन्त्र से **कुलजा** का पूजन करना चाहिए ।

४. **नैऋत्यकोण दल पर** - 'ऐं ह्रीं श्रीं वद वद कीर्तीश्वरी स्वाहा' मन्त्र से **कीर्तीश्वरी** का पूजन करना चाहिए ।

५. **पश्चिम दल पर** - 'ऐं ह्रीं अन्तरिक्षसरस्वति स्वाहा' मन्त्र से **अन्तरिक्षसरस्वती** का पूजन करना चाहिए ।

६. **वायव्य कोण दल पर** - 'ह्स्ख्फ्रें ह्सौं स्स्फ्रों ऐं ह्रीं श्रीं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः घ्रीं घटसरस्वति घटे वद वद तर तर रुद्राज्ञया ममाभिलाषं कुरु कुरु स्वाहा' मन्त्र से **घटसरस्वती** का पूजन करना चाहिए ।

७. **उत्तर के दल पर** - 'ब्लूं वें वद वद त्रीं हुं फट्' मन्त्र से

गणेशक्षेत्रपालाभ्यां योगिन्यै भैरवाय च ॥ ७२ ॥
तारायै चापि वितरेद् बलिं नित्यं चतुष्पथे ।
मांसमाषान्नशाकाज्यपायसापूपकादिकम् ॥ ७३ ॥
बलिद्रव्यं समाख्यातं तेनेष्टं सा प्रयच्छति ।
तस्या ध्यानं त्रिधा वच्मि सत्त्वादिगुणभेदतः ॥ ७४ ॥

सात्त्विकध्यानमाह – **श्वेतेति** । कमण्डलुवराक्षस्रक्पुष्पमालादक्षेषु । इतराणि वामेषु ॥ ७५–७६ ॥

नीलासरस्वती का पूजन करना चाहिए ।

८. **ईशान कोण के दल पर** - ऐं हैं ह्रीं किणि किणि विच्चे' मन्त्र से **किणि** का पूजन करना चाहिए ।

इस विधि से **पञ्चम आवरण पूजा** में आठ दलों पर उक्त मन्त्रों से वागीश्वरी आदि का पूजन कर क्षोभमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

षष्ठ आवरण पूजा में षट्कोण में निम्नलिखित मन्त्रों से डाकिनी आदि का पूजन करना चाहिए, यथा -

१. ॐ डाकिन्यै नमः ३. ॐ लाकिन्यै नमः ५. ॐ शाकिन्यै नमः
२. ॐ राकिन्यै नमः ४. ॐ काकिन्यै नमः ६. ॐ हाकिन्यै नमः

इस विधि से **षष्ठ आवरण पूजा** में ६ कोणों में निर्दिष्ट मन्त्रों से डाकिनी आदि का पूजन कर द्राविणी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

सप्तम आवरण पूजा में त्रिकोण में अपने - अपने मन्त्रों से परा, वाला एवं भैरवी का पूजन करना चाहिए, यथा -

ह्रीं परायै नमः, ऐं क्लीं सौः बालायैः नमः,
हसैं हक्लीं हसौः भैरव्यै नमः ।

इन मन्त्रों से त्रिकोण के तीनों कोणों में क्रमशः परा, बाला एवं भैरवी का पूजन कर आकर्षणी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

इस प्रकार आवरण पूजा कर पाँच पुष्पाञ्जलियाँ देकर विधिवत् मन्त्र का जप (पुरश्चरण) करना चाहिए ॥ ७१-७२ ॥

प्रतिदिन चौराहे पर गणेश, क्षेत्रपाल, योगिनी, भैरवी एवं तारा देवी को बलिप्रदान करना चाहिए । मांस से तथा उड़द से बनी हुई वस्तु और शाक, घी, खीर एवं मालपूआ आदि पदार्थ बलि द्रव्य होते हैं । इस प्रकार के बलि द्रव्यों के प्रदान से वह देवी साधक को अभीष्ट सिद्धि प्रदान करती हैं ॥ ७२-७४ ॥

विमर्श - चौथे तरङ्ग के ५०-५१ श्लोक में निर्दिष्ट मन्त्र से विधिपूर्वक बलिदान करना चाहिए ॥ ७२-७४ ॥

महाविद्या के तीन ध्यानों का वर्णन -

सत्त्वादि गुणों के भेद से अव हम महाविद्या का तीन प्रकार का ध्यान

सत्त्विकध्यानवर्णनम्

श्वेताम्बराढ्यां हंसस्थां मुक्ताभरणभूषिताम्।
चतुर्वक्त्रामष्टभुजैर्दधानां कुण्डिकाम्बुजे ॥ ७५ ॥
वराभये पाशशक्ती अक्षस्रक्पुष्पमालिके।
शब्दपाथोनिधौ ध्यायेत् सृष्टिध्यानमुदीरितम् ॥ ७६ ॥

राजसध्यानवर्णनम्

रक्ताम्बरां रक्तसिंहासनस्थां हेमभूषिताम्।
एकवक्त्रां वेदसंख्यैर्भुजैः संबिभ्रतीं क्रमात् ॥ ७७ ॥
अक्षमालां पानपात्रमभयं वरमुत्तमम्।
श्वेतद्वीपस्थितां ध्यायेत् स्थितिध्यानमिदं स्मृतम् ॥ ७८ ॥

तामसध्यानकथनम्

कृष्णाम्बराढ्यां नौसंस्थामस्थ्याभरणभूषिताम्।
नववक्त्रां भुजैरष्टादशभिर्दधतीं वरम् ॥ ७९ ॥
अभयं परशुं दर्वीं खड्गं पाशुपतं हलम्।
भिण्डिं शूलं च मुसलं कर्त्रीं शक्तिं त्रिशीर्षकम् ॥ ८० ॥

राजसध्यानमाह – **रक्तेति** । अक्षमालावरौ दक्षयोः अन्ययोरन्ये ॥ ७७–७८ ॥ तामसध्यानमाह – **कृष्णेति** । परशुदर्वीखड्गमुसलकर्त्रीशूल–

कहते हैं । सर्वप्रथम **'सात्त्विक ध्यान'** कहते हैं - श्वेत वस्त्र धारण किये हुए हंस पर आसीन, मोती के आभूषणों से विभूषित, चार मुखों वाली एवं अपनी आठ भुजाओं में क्रमशः १. कमण्डल, २. कमल, ३. वर, ४. अभय मुद्रा, ५. पाश, ६. शक्ति, ७. अक्षमाला एवं ८. पुष्पमाला धारण किये हुये शब्द समुद्र में स्थित महाविद्या का ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार इसे **'सृष्टि ध्यान'** कहते हैं ॥ ७४-७६ ॥

अब **रजोगुणात्मिका भगवती का ध्यान** कहते हैं - रक्त वस्त्र धारण किये हुये, रक्त वर्ण के सिंहासन पर आसीन, सुवर्ण निर्मित आभूषणों से सुशोभित, एक मुख वाली, अपने चार भुजाओं में १. अक्षमाला, २. पानपात्र, ३. अभय एवं ४. वरमुद्रा धारण किये हुये श्वेतद्वीप निवासिनी भगवती का ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार इसे **'स्थिति' ध्यान** कहते हैं ॥ ७७-७८ ॥

अब **तामस ध्यान** कहते हैं - कृष्ण वर्ण का वस्त्र धारण किये हुये, नौका पर विराजमान, हड्डी के आभूषणों से विभूषित, नौ मुखों वाली, अपने अट्ठारह भुजाओं में १. वर. २. अभय, ३. परशु, ४. दर्वी, ५. खड्ग, ६.

संहारास्त्रं वज्रपाशौ खट्वाङ्गं गदया सह।
रक्ताम्भोधौ स्थितां ध्यायेत्संहारध्यानमीदृशम् ॥ ८१॥
कर्मसु क्रूरसौम्येषु ध्यायेन्मन्त्री यथातथा।
एवंसिद्धे मनोमन्त्रीगिरावाचस्पतिर्भवेत् ॥ ८२ ॥
दूर्वोत्थया तु लेखन्या रोचनारसयुक्तया।
बालस्याच्छिन्ननालस्य जिह्वायां विलिखेन्मनुम् ॥ ८३ ॥
संप्राप्ते चाष्टमे वर्षे सर्वशास्त्रज्ञतामियात्।
मन्त्रेणायुतसंजप्तां वचां बालस्य कण्ठतः ॥ ८४ ॥
बध्नीयात् पूर्वसम्प्रोक्तं बलिं दत्त्वा विधानतः।
द्वादशे वत्सरे प्राप्ते भक्षिता सा कवित्वकृत् ॥ ८५ ॥
ज्योतिष्मती भवं तैलं कर्षमात्रं सुमन्त्रितम्।
उपरागे जलस्थो योऽश्नीयाद्वाचस्पतिर्भवेत् ॥ ८६ ॥

वज्रपाशगदादक्षेषु । शेषाणि वामेषु ॥ ७६–८१ ॥ क्रूरेषु मारणे तामसध्यानम् । उच्चाटनवश्यादौ रक्तम् । शान्तौ पुष्टौ श्वेतम् ॥ ८२ ॥ * ॥ ८३–८६ ॥

पाशुपत, ७. हल, ८. भिण्डि, ९. शूल, १०. मुशल, ११. कर्तृका (कैंची), १२. शक्ति, १३. त्रिशूल, १४. संहार अस्त्र, १५. पाश, १६. वज्र, १७. खट्वाङ्ग एवं १८. गदा धारण करने वाली रक्त-सागर में स्थित देवी का ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार इसे **'संहार ध्यान'** कहते हैं ॥ ७६-८१ ॥

मन्त्रवेत्ता को मारणादि क्रूर कर्मो में संहार ध्यान, उच्चाटन एवं वशीकरण में स्थिति ध्यान तथा शान्तिक-पौष्टिक आदि कार्यों में सृष्टि ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार प्रयोग तथा पुरश्चरण द्वारा मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर साधक वाणी में वाचस्पति के समान हो जाता है ॥ ८२ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं -

बालक के नालच्छेदन होने से पहले उसकी जिव्हा पर दूर्वा की लेखनी तथा गोरोचन के रस से इस मन्त्र को लिखे तो वह ८ वर्ष का होते होते संपूर्ण शास्त्रों का पारंगत विद्वान् हो जाता है ॥ ८३-८४ ॥

पूर्वोक्त रीति से बलिदान कर उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित वचा नामक औषधि बालक के कण्ठ में बाँध देवें । फिर १२ वर्ष बीत जाने पर उसे वह भक्षण कर ले तो उत्तम कविता करने वाला हो जाता है, ॥ ८४-८५ ॥

एक कर्ष अर्थात् ४ तोला ज्योतिष्मती का तेल ग्रहण के समय जल में स्थित हो इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर जो साधक पीता है वह वाचस्पति हो जाता है ॥ ८६ ॥

चतुष्पथे श्मशाने वा हित्वा लज्जाभयं तथा।
जपेच्छवं समारुह्य विद्यातत्परमानसः॥ ८७॥
श्रृणोत्यसावमुं शब्दं निशीथे जपतत्परः।
प. .गो भव विद्यानां सर्वां सिद्धिमवाप्नुहि॥ ८८॥
विद्वत्कुलसमुद्भूतमष्टवर्षं शिशुद्वयम्।
उपवेश्य तयोर्मूर्ध्नि करौ दत्त्वा जपेन्मनुम्॥ ८९॥
वेदान्तन्यायसंयुक्त्या विवदेते उभावपि।
यः कौतुकी स आश्चर्यं विद्यायाः पश्यतु ध्रुवम्॥ ९०॥
विधाय वेदिकां रम्यां विजने कदलीवने।
तत्रासीनो जपेद्विद्यामर्कलक्षं विधानतः॥ ९१॥
दासीचालितदोलायामारूढां सुस्मिताननाम्।
पुन्नागचम्पकाशोकरम्भाविपिनसंस्थिताम् ॥ ९२॥
एवं ध्यायन्भगवतीं बलिं दद्याज्जपान्ततः।

उभावपि शिशू नैयायिकवेदान्तिनौ भूत्वा विवादं कुर्वाते ॥ ९० ॥
* ॥ ९१–९३ ॥

चौराहे पर अथवा श्मशान में लज्जा एवं भंय का त्याग कर शव के ऊपर बैठ कर एकाग्रचित्त से मध्यरात्रि में जप में तल्लीन हुये व्यक्ति को ऐसा सुनाई पडता है 'कि विद्याओं में पारङ्गत हो जाओ और समस्त सिद्धियाँ प्राप्त करो' ॥ ८७-८८ ॥

विद्वत्कुल में उत्पन्न आठ वर्ष के दो शिशुओं को बैठा कर उनके शिर पर हाथ रखकर इस मन्त्र का जप करें तो वे दोनों ही वेदान्त एवं न्यायशास्त्र में प्रतिपादित तर्कों से शास्त्रार्थ करने लगते हैं । जिसे इस विषय में कुतूहल हो वह अवश्य इस विद्या के आश्चर्य को देखें ॥ ८९-९० ॥

किसी निर्जन केले के वन में सुन्दर वेदिका बना कर उस पर बैठकर विधिवत् बारह लाख की संख्या में जप करें ॥ ९१ ॥

फिर दासियों द्वारा ढोई जाती हुई ढोला (डोली) में बैठी हुई मन्द-मन्द हास करती हुई पुन्नाग, चम्पक, अशोक एवं केले के वन में स्थित भगवती का ध्यान करते हुए जप के अन्त में बलि देनी चाहिए ॥ ९२-९३ ॥

फलस्तुति कथन -

इस प्रकार पूजा अर्चना करने से साधक शीघ्र ही अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ॥ ९३ ॥

अस्य मन्त्रस्य नानाफलकथनम्

एवं कुर्वन्नरः सर्वमभीष्टं लभते चिरात् ॥ ६३ ॥
निर्वासाविशिखः प्रेतभूमिस्थो यो जपेन्मनुम् ।
अयुतं कृष्णभूताहे स वाक्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥
विद्यां सौख्यं धनं पुष्टिमायुः कीर्तिं बलं स्त्रियः ।
रूपं कामयमानेन तारासेव्या निरन्तरम् ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ कालीमन्त्रकथनं नाम पञ्चमस्तरङ्गः ॥ ५ ॥

निर्वासा नग्नः । विशिखो मुक्तकेशः कृष्णभूताहे कृष्णपक्षचतुर्दश्याम् ॥ ६४ ॥ * ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां कालीमन्त्रकथनं नाम पञ्चमस्तरङ्गः ॥ ५ ॥

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को नङ्गा हो कर, केशों को खोल कर प्रेतभूमि (श्मशान) में बैठकर दश हजार जप करें तो साधक को वाक् सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ ६४ ॥

विद्या, सौख्य, धन, पुष्टि, आयु, कान्ति, बल, स्त्री एवं रूप की कामना रखने वाले साधकों को निरन्तर भगवती तारा की आराधना करनी चाहिए ॥ ६५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के पञ्चम तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डाँ सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः तरङ्गः

छिन्नमस्तामनुं वक्ष्ये शीघ्रसिद्धिविधायिनम् ।

छिन्नमस्तामन्त्रः

पद्मासनाशिवायुग्मं भौतिकः शशिशेखरः ॥ १ ॥
वज्रवैरोचनीपद्मनाभयुतः सदागतिः ।
मायायुगास्त्रदहनप्रियान्तः प्रणवादिकः ॥ २ ॥
मन्त्रः सप्तदशार्णोऽयं भैरवोऽस्य मुनिर्मतः[1] ।
सम्राट्छन्दश्छिन्नमस्ता देवताभुवनेश्वरी ॥ ३ ॥

* नौका *

छिन्नमस्तामन्त्रमाह – **पद्मेति** । पद्मासना श्रीं । शिवा ह्रीं । भौतिकः सबिन्दुः ऐं ॥ १ ॥ पद्मनाभयुतः सदागतिः एयुतो यः ये । यथा – ॐ श्रीं ह्रीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहेति ॥ २ ॥ *॥ ३–५ ॥

* अरित्र *

अब शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले छिन्नमस्ता के मन्त्रों को मैं कहता हूँ -

छिन्नमस्तामन्त्रोद्धार - पद्मासना (श्रीं), शिवायुग्म (ह्रीं ह्रीं), शशिशेखर (सविन्दु), भौतिक (ऐं) फिर 'वज्रवैरोचनी' पद, तदनन्तर 'पद्मनाभ' युक्त सदागति (ये), फिर मायायुग्म (ह्रीं ह्रीं), फिर अस्त्र (फट्), उसके अन्त में दहनप्रिया (स्वाहा) तथा प्रारम्भ में प्रणव (ॐ) लगाने से १७ अक्षरों वाला छिन्नमस्ता मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १-२ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ श्रीं ह्रीं ह्रीं वज्रवैरोचनीये ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा' ॥ १-२ ॥

सप्तदशाक्षर वाले इस मन्त्र के भैरव ऋषि हैं, सम्राट् छन्द हैं, तथा छिन्नमस्ताभुवनेश्वरी देवता हैं ॥ ३ ॥

---

१. अस्य श्रीछिन्नमस्तामन्त्रस्य भैरवऋषिः सम्राट्छन्दः छिन्नमस्ताभुवनेश्वरीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

आं खड्गाय हृदाख्यातमीं खड्गाय शिरः स्मृतम् ।
ॐ वज्राय शिखा प्रोक्ता ऐं पाशाय तनुच्छदम् ॥ ४ ॥
ओमंकुशाय नेत्रं स्याद् विसर्गो वसुरक्षयुक् ।
मायायुग्मं चास्त्रमङ्गमनवः प्रणवादिकाः ।
स्वाहान्ताः प्रोदिता एवमङ्गे विन्यस्य तां स्मरेत् ॥ ५ ॥

ध्यानवर्णनम्

भास्वन्मण्डलमध्यगां निजशिरश्छिन्नं विकीर्णालकं
स्फारास्यं प्रपिबद् गलात् स्वरुधिरं वामे करे बिभ्रतीम् ।
याभासक्तरतिस्मरोपरिगतां सख्यौ निजे डाकिनी
वर्णिन्यौ परिदृश्यमोदकलितां श्रीछिन्नमस्तां भजे ॥ ६ ॥

अस्त्रमन्त्रमाह – **विसर्ग इति** । ॐ अः वसुरक्ष ह्रीं ह्रीं अस्त्रं फडिति । सर्वे स्वाहान्ताः । ध्यानमाह – **भास्वदिति** । याभौ मैथुनं तदासक्त रतिकामोपरि स्थिताम् ॥ ६ ॥ *॥ ७–६ ॥

आदि में प्रणव (ॐ) तथा अन्त में दो माया बीज (ह्रीं ह्रीं), अस्त्रबीज, 'आं खड्गाय' से हृदय में, इसी प्रकार 'ईं खड्गाय' से शिर में, 'ॐ वज्राय' से शिखा में, 'ऐं पाशाय' से कवच में, 'ॐ अंकुशाय' से नेत्र में, तथा 'अः वसुरक्ष' से अस्त्राय फट् करे । इस प्रकार से अङ्गन्यास करे तथा प्रत्येक अङ्ग में न्यास के समय 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करे । इस प्रकार अङ्गन्यास करके भगवती छिन्नमस्ता का ध्यान करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

विमर्श - विनियोग - ॐ अस्य श्रीछिन्नमस्तामन्त्रस्य भैरवऋषिः सम्राट्छन्दः छिन्नमस्तादेवता हूं हूं बीजं स्वाहाशक्तिरात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास - ॐ भैरवाय ऋषये नमः, शिरसि,
ॐ सम्राट्छन्दसे नमः, मुखे छिन्नमस्तादेवतायै नमः, हृदि,
हूं हूं बीजाय नमः, गुह्ये, शक्तये नमः, पादयोः

अङ्गन्यास -
ॐ आं खड्गाय ह्रीं ह्रीं फट् हृदयाय स्वाहा,
ॐ ईं सुखड्गाय ह्रीं ह्रीं फट् शिरसे स्वाहा,
ॐ ऊं वज्राय ह्रीं ह्रीं फट् शिखायै स्वाहा,
ॐ ऐं पाशाय ह्रीं ह्रीं फट् कवचाय स्वाहा,
ॐ औं अंकुशाय ह्रीं ह्रीं फट् नेत्रत्रयाय स्वाहा,
ॐ अः वसुरक्षाय ह्रीं ह्रीं फट् अस्त्राय फट् स्वाहा,
इसी प्रकार कराङ्गन्यास भी करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

अस्य मन्त्रस्य प्रयोगकथनम्

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः ।
पालाशैर्बिल्वजैर्वापि जुहुयात् कुसुमैः फलैः ॥ ७ ॥

पीठस्थनवदेवताकथनं पूजाविधिश्च

आधारशक्तिमारभ्य परतत्त्वान्तपूजिते ।
पीठे जयाख्याविजयाऽजिता चाप्यपराजिता ॥ ८ ॥
नित्याविलासिनी षष्ठी दोग्ध्र्यघोरा च मङ्गला ।
दिक्षु मध्ये च सम्पूज्या नवपीठस्य शक्तयः ॥ ६ ॥

पीठमन्त्रः शिवापूजनविधिरावरणदेवताश्च

सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वभृगुःसदृक् ।
द्धिप्रदे डाकिनीये च तारो वज्रसभौतिकः ॥ १० ॥
खड्गीशो रोचनीये च भगं ह्येहि नमोऽन्तिकः ।
तारादिः पीठमन्त्रोऽयं वेदरामाक्षरो मतः ॥ ११ ॥

पीठमन्त्रमाह – **सर्वेति** । सदृक् भृगुः सिः । सभौतिकः खड्गीशः ऐयुतो वः वै । भगम् ए, यथा – ॐ सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वसिद्धिप्रदे डाकिनीये ॐ वज्रवैरोचनीये एह्येहि नमः । वेदरामाक्षरश्चतुस्त्रिंशदर्णः ॥ १०–११ ॥ *॥ १२–१३ ॥

अब **छिन्नमस्ता देवी का ध्यान** कहते हैं -

सूर्यमण्डल के मध्य में विराजमान, बायें हाथ में अपने कटे मस्तक को धारण करने वाली, बिखरे केशों वाली, अपने कण्ठ से निकलती हुई रक्त धारा का पान करने वाली, मैथुन में आसक्त, रति तथा काम के ऊपर निवास करने वाली, डाकिनी एवं वर्णिनी नामक अपनी दोनों सखियों को देखकर प्रसन्न रहने वाली छिन्नमस्ता देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ६ ॥

इस प्रकार छिन्नमस्ता का ध्यान कर मूल मन्त्र का ४ लाख जप करना चाहिए और पलाश या बेल के पुष्पों एवं फलों से दशांश होम करना चाहिए ॥ ७॥

आधारशक्ति से लेकर परतत्त्वपर्यन्त पूजित पीठ पर ८ दिशाओं में पूर्वादिक्रम से १. जया, २. विजया, ३. अजिता, ४. अपराजिता, ५. नित्या, ६. विलासिनी, ७. दोग्ध्री, ८. अधोरा का तथा मध्य में ६. मङ्गला का, इस प्रकार पीठ की ६ शक्तियों का पूजन करना चाहिए (द्र० ३. ११-१२) ॥ ८-६ ॥

'सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्व' के बाद सदृक् भृगु (सि), फिर 'द्धिप्रदे डाकिनीये', फिर तार (ॐ), फिर 'वज्र' पद, फिर सभौतिक ऐ से युक्त खड्गीश (व

समर्प्यासनमेतेन तत्र सम्पूजयेच्छिवाम् ।

अर्थात् वै), फिर 'रोचनीये' पद, फिर भग 'ए', इसके बाद 'ह्येहि', तदनन्तर 'नमः' तथा मन्त्र के प्रारम्भ में प्रणव लगाने से चौंतिस अक्षरों का पीठ मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १०-११ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वसिद्धिप्रदे डाकिनीये ॐ वज्रवैरोचनीये एह्येहि नमः' ॥ १०-११ ॥

इस मन्त्र से आसन समर्पित कर देवी की पूजा करनी चाहिए ॥ १२ ॥

विमर्श - छिन्नमस्ता पूजाविधि - ६. ६ के अनुसार छिन्नमस्ता का ध्यान कर मानसोपचार से देवी का पूजन कर, तारा पूजन पद्धति के क्रम से अर्घ्यस्थापनादि क्रिया करे (द्र० ४. ६८-८२) । फिर पीठ निर्माण कर उसकी भी पूजा करे । यथा -
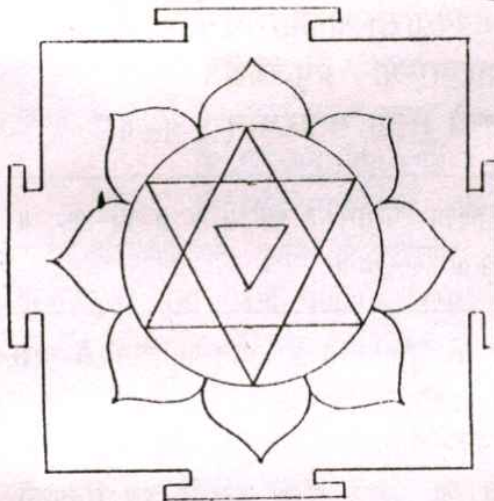
छिन्नमस्तापूजनयन्त्रम्

ॐ आधारशक्तये नमः ॐ प्रकृतये नमः,
ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः,
ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः,
ॐ रत्नद्वीपाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः,
ॐ स्वर्णसिंहासनाय नमः,
ॐ आनन्दकन्दाय नमः,
ॐ संविन्नालाय नमः,
ॐ सर्वतत्त्वात्मकपद्माय नमः,
ॐ सत्त्वाय नमः,
ॐ रं रजसे नमः, ॐ तमसे नमः,
ॐ आं आत्मने नमः, ॐ अं अन्तरात्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः,
ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, मध्ये ॐ रतिकामाभ्यां नमः ।

इन मन्त्रों से पीठ पूजा कर पूर्वादि ८ दिशाओं के क्रम से तदनन्तर मध्य में नवशक्तियों के नाममन्त्रों से इस प्रकार पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ जयायै नमः, पूर्वे, ॐ विजयायै नमः, आग्नेये,
ॐ अजितायै नमः, दक्षिणे, ॐ अपराजितायै नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ नित्यायै नमः पश्चिमे, ॐ विलासिन्यै नमः वायव्ये,
ॐ दोग्ध्यै नमः उत्तरे, ॐ अघोरायै नमः ऐशान्ये ।

ॐ मङ्गलायै नमः, मध्ये, इस प्रकार ९ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ।

इसके बाद 'सर्वबुद्धिप्रदे वर्णनीये सर्वसिद्धिप्रदे डाकिनीये ॐ वज्रवैरोचनीये एह्येहि नमः', इस पीठ मन्त्र से वर्णनी एवं डाकिनी सहित छिन्नमस्ता देवी को आसन देकर उनका पूजन करना चाहिए ॥ १०-१२ ॥

त्रिकोणमध्यषट्कोणपद्मभूपुरमध्यतः ॥ १२ ॥
बाह्यावरणमारभ्य पूजयेत् प्रतिलोमतः ।
भूपुराद् बाह्यभागेषु वज्रादीनि प्रपूजयेत् ॥ १३ ॥
तदन्तः सुरराजादीन् पूजयेद्धरितां पतीन् ।
भूपुरस्य चतुर्द्वार्षु द्वारपालान् यजेदथ ॥ १४ ॥
करालविकरालाख्यावतिकालस्तृतीयकः ।
महाकालश्चतुर्थः स्यादथ पद्मेष्टशक्तयः ॥ १५ ॥
एकलिङ्गा योगिनी च डाकिनी भैरवी तथा ।
महाभैरविकेन्द्राक्षी त्वसिताङ्गी तु सप्तमी ॥ १६ ॥
संहारिण्यष्टमी चेति षट्कोणेष्वङ्गमूर्तयः ।
त्रिकोणगच्छिन्नमस्ता पार्श्वयोस्तु सखीद्वयम् ॥ १७ ॥
डाकिनीवर्णिनीसंज्ञे तारवाग्भ्यां प्रपूजयेत् ।
एवं पूजादिभिः सिद्धे मन्त्रे मन्त्री मनोरथान् ॥ १८ ॥

सुरराजादीन् इन्द्रादीन् हरितान् दिशां पतीन् ॥ १४ ॥ * ॥ १५–१७ ॥ तारवाग्भ्याम् ॐ ऐं डाकिन्यै नमः ॥ १८ ॥ *॥ १६–२० ॥

त्रिकोण, षट्कोण, अष्टदल एवं भूपुर से युक्त यन्त्र पर प्रतिलोम क्रम से वाह्य आवरण से प्रारम्भ कर इनकी पूजा करनी चाहिए ॥ १२-१३ ॥

आवरणपूजा विधि इस प्रकार है -

भूपुर से बाह्यभाग में वज्रादि आयुधों का, उसके भीतर इन्द्रादि दश दिक्पालों का, फिर भूपुर के चारों द्वारों पर १. कराल, २. विकराल, ३. अतिकाल एवं ४. महाकाल - इस प्रकार चार द्वारपालों का पूजन करना चाहिए ॥ १३-१५ ॥

इसके बाद अष्टदल में १. एकलिङ्गा, २. योगिनी, ३. डाकिनी, ४. भैरवी, ५. महाभैरवी, ६. केन्द्राक्षी, ७. असिताङ्गी एवं ८. संहारिणी इन आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर षट्कोण में ६ खड्गादि अङ्गमूर्त्तियों की, (द्र० ६. ४-५), फिर त्रिकोण के मध्य में वाग्बीज के साथ छिन्नमस्ता की, तथा वाग्बीज (ऐं) के साथ तार से दोनों पार्श्वभाग में डाकिनी और वर्णिनी इन दो सखियों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पूजनादि द्वारा मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक के समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥ १६-१८ ॥

विमर्श - इस प्रकार पूजादि कर्म से छिन्नमस्ता की पूजा के लिए त्रिकोण ,उसके बाद षट्कोण, फिर अष्टदल कमल, फिर भूपुर युक्त यन्त्र बनाना चाहिए ।

पीठ पूजन एवं देवी पूजन करने के पश्चात् देवी से 'आज्ञापय आवरणं ते पूजयामि' - कहकर आज्ञा माँगे फिर विलोम क्रम से बाह्य आवरण से पूजा प्रारम्भ करे ।

भूपुर के बाहर पूर्वादि आठ दिशाओं में -

ॐ वज्राय नमः, पूर्वे, ॐ शक्तये नमः, आग्नेये,
ॐ दण्डाय नमः, दक्षिणे, ॐ खड्गाय नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ पाशाय नमः, पश्चिमे, ॐ अंकुशाय नमः, वायव्ये,
ॐ गदायै नमः, उत्तरे, ॐ शूलाय नमः, ऐशान्याम्,
ॐ पद्माय नमः, ऊर्ध्वम्, ॐ चक्राय नमः, अधः ।

इस प्रकार वज्रादि आयुधों के पूजन के पश्चात् **भूपुर के भीतर पूर्वादि दिशाओं में** इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करे । यथा -

ॐ इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ अग्नये नमः, आग्नेये, ॐ यमाय नमः, दक्षिणे
ॐ निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये, ॐ वरुणाय नमः, पश्चिमे, ॐ वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ सोमाय नमः, उतरे, ॐ ईशानाय नमः, ऐशान्ये, ॐ ब्रम्हणे नमः, ऊर्ध्वम्,
ॐ अनन्ताय नमः, अधः,

दिक्पालों की पूजा के पश्चात् **भूपुर के चारों द्वारों पर** पूर्वादि क्रम से कराल आदि द्वारपालों की पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ करालाय नमः, पूर्वे, ॐ विकरालाय नमः, दक्षिणे,
ॐ अलिकालाय नमः, पश्चिमे, ॐ महाकालाय नमः, उत्तरे ।

द्वारपालों के पूजन के पश्चात् **अष्टदल कमल में** एकलिङ्गा आदि आठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ एकलिङ्गायै नमः, पूर्वादिदलपत्रे, ॐ योगिन्यै नमः, आग्नेयकोणदलपत्रे
ॐ डाकिन्यै नमः, दक्षिणदिग्दलपत्रे, ॐ भैरव्यै नमः, नैर्ऋत्यकोणदलपत्रे,
ॐ महाभैरव्यै नमः, पश्चिमदिग्दलपत्रे, ॐ केन्द्राक्ष्यै नमः, वायव्यकोणदिग्दलपत्रे,
ॐ असितांग्यै नमः, उत्तर दिग्दलपत्रे, ॐ संहारिण्यै नमः, ईशानकोणदिग्दलपत्रे,

तत्पश्चात् **षट्कोण में** षडङ्गों की पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ आं खड्गाय ह्रीं ह्रीं हृदयाय स्वाहा,
ॐ ई सुखड्गाय ह्रीं ह्रीं फट् शिरसे स्वाहा,
ॐ ऊं वज्राय ह्रीं ह्रीं फट् शिखायै वषट्,
ॐ ऐं पाशाय ह्रीं ह्रीं फट् कवचाय स्वाहा,
ॐ औं अंकुशाय ह्रीं ह्रीं फट् नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा,
ॐ अः वसुरक्ष ह्रीं ह्रीं फट् अस्त्राय फट् स्वाहा ।

तदनन्तर **त्रिकोण में** छिन्नमस्ता देवी का पूजन डाकिनी एवं वर्णिनी सहित करना चाहिए । यथा -

ॐ ऐं छिन्नमस्तायै नमः, ॐ ऐं डाकिन्यै नमः, ॐ ऐं वर्णिन्यै नमः

इन मन्त्रों से मध्य में छिन्नमस्ता का तथा दक्षिण पार्श्व के क्रम से उक्त दोनों सखियों का दोनों पार्श्व में पूजन करना चाहिये । पूजा समाप्त कर छ पुष्पाञ्जलियाँ भगवती छिन्नमस्ता को समर्पित करनी चाहिये ॥ १६-१८ ॥

अस्य विधानस्य नानासिद्धिकथनम्

प्राप्नुयान् निखिलान् सद्यो दुर्लभांस्तत्प्रसादतः ।
श्रीपुष्पैर्लभते लक्ष्मीं तत्फलं स्वसमीहितम् ॥ १९ ॥
वाक्सिद्धिं मालतीपुष्पैश्चम्पकैर्हवनात् सुखम् ।
घृताक्तं छागमांसं यो जुहुयात् प्रत्यहं शतम् ॥ २० ॥
मासमेकं तु वशगास्तस्य स्युः सर्वपार्थिवाः ।
करवीरस्य कुसुमैः श्वेतैर्लक्षं जुहोति यः ॥ २१ ॥
रोगजालं पराभूय सुखीजीवेच्छतं समाः ।
रक्तैस्तत्संख्यया हुत्वा वशयेन्मन्त्रिणो नृपान् ॥ २२ ॥
फलैर्हुत्वाप्नुयाल्लक्ष्मीमुदुम्बरपलाशजैः ।
गोमायुमांसैस्तामेव कविता पायसान्धसा ॥ २३ ॥
बन्धूककुसुमैर्भाग्यं कर्णिकारैः समीहितम् ।
तिलतण्डुलहोमेन वशयेन्निखिलाञ्जनान् ॥ २४ ॥

करवीरस्य कुसुमैः पुष्पैः । प्रसूनं कुसुमं सुममित्यमरोक्तेः ॥ २१ ॥ रक्तैः करवीरैरिति पूर्वेण सम्बन्धः । तत्संख्यया लक्षेण ॥ २२ ॥ गोमायुः शृगालः । तामेव लक्ष्मीमेव । पायसान्धसा पायसान्नेन ॥ २३–२४ ॥ नार्या

इस प्रकार पूजन पुरश्चरणादि के पश्चात् मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक शीघ्र ही उनकी प्रसन्नता से अपने दुर्लभ मनोरथों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता हैं । श्री पुष्पों के होम से लक्ष्मी तथा लक्ष्मी के प्राप्त होने से सारा मनोरथ पूर्ण करता है ॥ १९ ॥

मालती पुष्पों के होम से वाक्सिद्धि, चम्पा पुष्पों के हवन से सुख मिलता है । इस प्रकार जो व्यक्ति १ मास पर्यन्त घी मिश्रित छाग मांस की १०० आहुतियाँ देता है सभी राजा उसके वश में हो जाते हैं ॥ २०-२१ ॥

सफेद कनेर के पुष्पों से जो व्यक्ति १ लाख आहुतियाँ देता है वह रोग जाल से मुक्त होकर १०० वर्ष पर्यन्त जीवित रहता है ॥ २१-२२ ॥

लाल वर्ण के कनेर के फूलों से एक लाख आहुति देने से साधक व्यक्ति राजाओं और उसके मन्त्रियों को वश में कर लेता है ॥ २२ ॥

उदुम्बर एवं पलाश के फलों द्वारा होम करने वाला व्यक्ति लक्ष्मीवान् हो जाता है । गोमायु (सियार) के मांस से भी होम करने से लक्ष्मी प्राप्त हो जाती है । पायास एवं अन्न के होम से कवित्व शक्ति प्राप्त होती है ॥ २३ ॥

बन्धूक पुष्पों के होम से भाग्याभ्युदय होता है । तिल एवं चावलों के होम से सभी लोग वश में हो जाते हैं । स्त्री के रज से होम करने पर आकर्षण,

नारीरजोभिराकृष्टिमृगमांसैः समीहितम् ।
स्तम्भनं माहिषैर्मासैः पङ्कजैः सघृतैरपि ॥ २५ ॥
चिताग्नौ परभृत्पक्षैर्जुहुयादरिमृत्यवे ।
उन्मत्तकाष्ठदीप्तेऽग्नौ तत्फलं वायसच्छदैः ॥ २६ ॥
द्यूते वने नृपद्वारे समरे वैरिसंकटे ।
विजयं लभते मन्त्री ध्यायन्देवीं जपेन्मनुम् ॥ २७ ॥
भुक्तौ मुक्तौ सितां ध्यायेदुच्चाटे नीलरोचिषम् ।
रक्तां वश्ये मृतो धूम्रांस्तम्भने कनकप्रभाम् ॥ २८ ॥
निशि दद्याद् बलिं तस्यै सिद्धये मदिरादिना ।
गोपनीयः प्रयोगोऽथ प्रोच्यते सर्वसिद्धिदः ॥ २९ ॥
भूताहे कृष्णपक्षस्य मध्यरात्रे तमो घने ।
स्नात्वा रक्ताम्बरधरो रक्तमाल्यानुलेपनः ॥ ३० ॥
आनीय पूजयेन्नारीं छिन्नमस्तास्वरूपिणीम् ।
सुन्दरीं यौवनाक्रान्तां नरपञ्चकगामिनीम् ॥ ३१ ॥

रजोभिर्ऋतुकालनिर्गतरुधिरैराकर्षणम् । सघृतैः पङ्कजैरपि स्तम्भनमेव परभृत् कोकिलः । उन्मत्तो धत्तूरः तत्काष्ठज्वलितेऽग्नौ काकपक्षैर्होमात् फलमरिमृत्युरेव स्यात् ॥ २५–२६ ॥ *॥ २७–३६ ॥

मृगमांस के होम से मोहन, महिष मांस के होम से स्तम्भन और इसी प्रकार घी मिश्रित कमल के होम से भी स्तम्भन होता है ॥ २४-२५ ॥

चिताग्नि में कोयल के पखों का होम करने से शत्रु की मृत्यु तथा धतूरे की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में कौवों के पखों के होम से भी शत्रु मर जाता है ॥ २६ ॥

जुआ, जंगल, राजद्वार, संग्राम एवं शत्रुसंकट में छिन्नमस्ता देवी का ध्यान कर मन्त्र का जप करने से विजय प्राप्ति होती है ॥ २७ ॥

भुक्ति एवं मुक्ति के लिए श्वेत वर्ण वाली देवी का, उच्चाटन के लिए नीलवर्ण वाली देवी का, वशीकरण के लिए रक्तवर्ण वाली देवी का, मारण के लिए धूम्रवर्ण वाली देवी का तथा स्तम्भन के लिए सुवर्णवर्णा देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ २८ ॥

देवी को सिद्ध करने के लिए रात्रि में मद्यादि की बलि देनी चाहिए ॥ २९ ॥

अब **सर्वसिद्धिदायक एवं अत्यन्त गोपनीय प्रयोग** कहता हूँ -

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को मध्यरात्रि में जब घनघोर अन्धकार हो उस समय स्नान कर लाल वस्त्र, लाल माला एवं लाल चन्दन लगाकर नवयुवती सुन्दरी,

सस्मितां मुक्तकबरीं भूषादानप्रतोषिताम् ।
विवस्त्रां पूजयित्वैनामयुतं प्रजपेन्मनुम् ॥ ३२ ॥
बलिं दत्त्वा निशां नीत्वा सम्प्रेष्य धनतोषिताम् ।
भोजयेद् विविधैरन्नैर्ब्राह्मणान् देवताधिया ॥ ३३ ॥
अनेन विधिना लक्ष्मीं पुत्रान् पौत्रान् यशः सुखम् ।
नारीमायुश्चिरं धर्ममिष्टमन्यदवाप्नुयात् ॥ ३४ ॥
तस्यां रात्रौ व्रतं कार्य विद्याकामेन मन्त्रिणा ।
मनोरथेषु चान्येषु गच्छेत्तां प्रजपन्मनुम् ॥ ३५ ॥
किंबहूक्तेन विद्याया अस्याविज्ञानमात्रतः ।
शास्त्रज्ञानं पापनाशः सर्वसौख्यं भवेद् ध्रुवम् ॥ ३६ ॥

प्रयोगान्तरफलकथनम्

उषस्युत्थाय शय्यायामुपविष्टो जपेच्छतम् ।
षण्मासाभ्यन्तरे मन्त्री कवित्वेन जयेत्कविम् ॥ ३७ ॥

प्रयोगान्तरमाह – **उषसीति** । कविं शुक्राचार्यम् ॥ ३७ ॥

पञ्चपुरुषोपभुक्ता, स्मेरमुखी (हास्यवदना), और खुले केशों वाली किसी स्त्री को लाकर उसमें छिन्नमस्ता की भावनाकर आभूषणादि प्रदान कर प्रसन्न करें । तदनन्तर उसे नंगी कर उसका पूजन कर दश हजार मन्त्रों का जप करे ॥ २९-३२ ॥

फिर बलि देकर रात्रि बिताकर धन से उसे संतुष्ट कर उसे उसके घर भेज दे । फिर दूसरे दिन देवता की भावना से ब्राह्मणों को विविध प्रकार का भोजन करावें ॥ ३३ ॥

इस प्रकार का प्रयोग करने वाला व्यक्ति लक्ष्मी पुत्र, पौत्र, यश, सुख, स्त्री, दीर्घायु एवं धर्म से पूर्ण हो मनोभिलषित फल प्राप्त करता है ॥ ३४ ॥

विद्या की कामना वाले साधक को उस रात्रि में व्रत करना चाहिए तथा अन्य प्रकार के फल चाहने वाले मन्त्रवेत्ता को मन्त्र का जप करते हुये उसके साथ संभोग करना चाहिए ॥ ३५ ॥

विमर्श - इन प्रयोगों को जनसाधारण को नहीं करना चाहिए । बिना गुरु के इन्हें करने से निश्चित नुकसान होता है ॥ ३५ ॥

विशेष क्या कहें, इस विद्या के ज्ञान मात्र से निश्चित रूप से शास्त्रों का ज्ञान तथा पापों का सर्वनाश होकर सभी प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥

उषः काल में उठकर शय्या पर बैठकर १०० बार प्रतिदिन इस मन्त्र का जप करने वाला व्यक्ति ६ महीने के भीतर अपनी कवित्व शक्ति से शुक्राचार्य को जीत लेता है ॥ ३७ ॥

छिन्नमस्ताया उत्कीलनम्

शिवेन कीलिताविद्या तदुत्कीलनमुच्यते ।
मायां तारपुटां मन्त्री जप्यादष्टोत्तरं शतम् ॥ ३८ ॥
मन्त्रस्यादौ तथैवान्ते भवेत्सिद्धिप्रदा तु सा ।
एष नूनं विधिर्गोप्यः सिद्धिकामेन मन्त्रिणा ॥ ३६ ॥
उदिता छिन्नमस्तेयं कलौ शीघ्रमभीष्टदा ।

रेणुकाशबरीविद्यामन्त्रः

रेणुकाशबरीविद्या तादृश्येवोच्यतेऽधुना ॥ ४० ॥
प्रणवः कमलामायासृणिरिन्दुयुतोऽधरः ।
पञ्चाक्षरीमहाविद्या भैरवोऽस्य मुनिर्मतः ॥ ४१ ॥
पंक्तिश्छन्दो रेणुकाख्या शबरीदेवतोदिता ।
पञ्चवर्णै समस्तेन कुर्वीत मनुनाङ्कम् ॥ ४२ ॥

तारपुटां मायां ॐ ह्रीं ॐ इति ॥ ३८–३६ ॥ रेणुका शबरीमाह – **प्रणव** इति । कमला श्रीं । माया ह्रीं । सृणिः क्रों। इन्दुयुतोऽधरः ऐं । मन्त्रो यथा – ॐ श्रीं ह्रीं क्रों ऐं । षडङ्गमाह – **पञ्चेति** । समस्तेनास्त्रम् ॥ ४० ॥ *॥ ४१–४२ ॥

अब **मन्त्र के उत्कीलन का विधान** करते हैं -

इस विद्या को भगवान् शिव ने कीलित कर दिया है । अतः अब उसका उत्कीलन कहता हूँ । मन्त्रवेत्ता मन्त्र जप के पहले तथा अन्त में इसका १०८ बार जप करे तो उत्कीलन हो जाता है और यह विद्या सिद्धिदायक हो जाती है ।

उत्कीलन का मन्त्र इस प्रकार है - प्रणव (ॐ), उससे संपुटित माया बीज (ॐ ह्रीं ॐ) । सिद्धि की कामना रखने वाले व्यक्ति को यह विधि निश्चित रूप से गुप्त रखनी चाहिए । इस प्रकार कलि में शीघ्र ही मनोऽभीष्टफल देने वाली छिन्नमस्ता विद्या के विषय में हमने कहा है ॥ ३८-४० ॥

रेणुका शबरी विद्या भी छिन्नमस्ता के समान ही होती है । अब मैं उस विद्या को कह रहा हूँ -

प्रणव (ॐ), कमला (श्रीं), माया (ह्रीं), सृणि (क्रों), एवं इन्दुयुत् अधर (ऐं) - यह पाँच अक्षरों वाली **शबरी महाविद्या** हैं । इस मन्त्र के भैरव ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं रेणुकाशबरी देवता हैं । इन्हीं पाँच बीजाक्षरों से तथा समस्त मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ४०-४२ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - ॐ श्रीं ह्रीं क्रों ऐं ।

विनियोग - ॐ अस्य श्रीरेणुकाशबरीमन्त्रस्य भैरवऋषिः पंक्तिश्छन्दः

ध्यानवर्णनं जपादिपूजाविधानं च

हेमाद्रिसानावुद्याने नानाद्रुममनोहरे ।
रत्नमण्डपमध्यस्थवेदिकायां स्थितां स्मरेत् ॥ ४३ ॥
गुञ्जाफलाकल्पितहाररम्यां
श्रुत्योःशिखण्डं शिखिनो वहन्तीम् ।
कोदण्डबाणो दधतीं कराभ्यां
कटिस्थवल्कां शबरीं स्मरेयम् ॥ ४४ ॥
ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षपञ्चकं तद्दशांशतः ।
फलैर्बिल्वैः प्रजुहुयात्तत्काष्ठैरेधितेऽनले ॥ ४५ ॥
पूर्वोदितेऽर्चयेत्पीठे षडङ्गावृत्तिरादिमा ।
द्वितीयावरणे पूज्याः शबर्या अष्टशक्तयः ॥ ४६ ॥

ध्यानमाह – **हेमाद्रीति** । मेरुशिखरे ॥ ४३ ॥ शिखिनो मयूरस्य पिच्छं कर्णयोर्दधतीम् । कोदण्डं धनुर्वामे ॥ बाणो दक्षे ॥ ४४ ॥ * ॥ ४५ ॥ पूर्वोदिते जयादिके ॥ ४६ ॥ *॥ ४७–५१ ॥

रेणुकाशबरीदेवता आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ हृदयाय नमः, ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रीं शिखायै वषट्, ॐ क्रों कवचाय हुम्,
ॐ ऐं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्री ह्रीं क्रों ऐं अस्त्राय फट् ।

इसी प्रकार करन्यास भी करना चाहिए ॥ ४०-४२ ॥

अब **रेणुकाशबरी का ध्यान** कहते हैं -

मेरु शिखर पर अनेक वृक्षों से मण्डित उद्यान में रत्नमण्डप के मध्य स्थित वेदिका पर विराजमान देवी का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए ॥ ४३ ॥

जो देवी गुञ्जाफलों से निर्मित हार धारण करने से मनोहर हैं, कानों में मोरपखं का कुण्डल धारण किये हुये हैं जिनके दोनों हाथों में धनुष और वाण हैं - ऐसी शबरी देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ४४ ॥

इस प्रकार रेणुका शबरी देवी का ध्यान कर उक्त मन्त्र का ५ लाख जप करना चाहिए तथा विल्व वृक्ष की लकडी से प्रज्वलित अग्नि में बिल्वफलों से उसका दशांश होम करना चाहिए ॥ ४५ ॥

अब **पीठपूजा और आवरणपूजा** का विधान कहते हैं -

पूर्वोक्त पीठ पर देवी की पूजा करनी चाहिए । **प्रथमावरण** में षडङ्गपूजा और **द्वितीयावरण** में शबरी की आठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । १. हुंकरी, २. खेचरी, ३. चण्डास्या, ४. छेदिनी, ५. क्षेपणा, ६. अस्त्री, ७. हुंकारीं तथा ८.

हुङ्कारीखेचरी चाथ चण्डास्याच्छेदनी तथा।
क्षेपणास्त्री च हुङ्कारीक्षेमकारी तथाष्टमी॥ ४७॥
तृतीये दशदिक्पाला वज्राद्यानि चतुर्थके।
एवं सिद्धं मनुं सम्यक्कार्यकर्मणि योजयेत्॥ ४८॥

क्षेमकरी - ये शबरी की ८ महाशक्तियाँ कही गई हैं । **तृतीयावरण** में दश दिक्पालों की तथा **चतुर्थावरण** में उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर काम्य प्रयोग करना चाहिए ॥ ४६-४८ ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - षट्कोण, अष्टदल एवं भूपुर से युक्त यन्त्र पर देवी की पूजा करनी चाहिए । पुनः ६.६-११ के विमर्श में कही गई रीति से 'ॐ आधारशक्तये नमः' से लेकर 'ॐ रतिकामाभ्यां नमः' पर्यन्त मन्त्र से पीठ पूजन कर उस पर जयादि नौ शक्तियों का पूजन करे । तदनन्तर उसी पीठ पर मूल मन्त्र से विधिवत् रेणुकाशबरी का पूजन कर 'आज्ञापय आवरणं ते पूजयामि' से इस मन्त्र से भगवती की आज्ञा ले आवरण पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए ।

प्रथमावरण में षडङ्ग पूजन करे उसकी विधि इस प्रकार है -

ॐ हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रीं शिखायै वषट्, क्रों कवचाय हुम्, ऐं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रीं ह्रीं क्रों ऐं अस्त्राय फट् ।

द्वितीयावरण में अष्टदलों के पूर्वादि दिशाओं के क्रम से हुंकारी आदि शक्तियों का पूजन इस प्रकार करना चाहिए -

ॐ हुंकर्यै नमः, अष्टदलस्य पूर्वदिक्पत्रे, ॐ खेचर्यै नमः, आग्नेयकोणस्थपत्रे,
ॐ चण्डालास्यायै नमः, दक्षिणदिक्पत्रे, ॐ छेदिन्यै नमः, नैर्ऋत्यकोणस्थपत्रे,
ॐ क्षेपणायै नमः, पश्चिमदिक्पत्रे, ॐ अस्त्र्यै नमः, वायव्यकोणस्थपत्रे,
ॐ हुंकार्यै नमः, उत्तरस्थ दिक्पत्रे, ॐ क्षेमकर्यै नमः, ईशानकोणस्थपत्रे ।

द्वितीयावरण की पूजा के पश्चात् भूपुर के भीतर दशों दिशाओं में पूर्वादि क्रम से **तृतीयावरण** में इस प्रकार पूजा करे ।

ॐ इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ अग्नये नमः, आग्नेयकोण,
ॐ यमाय नमः, दक्षिणे, ॐ निर्ऋतये नपः, नैर्ऋत्ये,
ॐ वरुणाय नमः, पश्चिमे ॐ वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ सोमाय नमः, उत्तरे, ॐ ईशानाय नमः, ऐशान्ये,
ॐ ब्रह्मणे नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ अनन्तराय नमः, नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ।

इस प्रकार तृतीयावरण की पूजा समाप्त कर भूपुर के बाहर वज्रादि आयुधों की **चतुर्थावरण** पूजा करे, यथा -

ॐ वज्राय नमः, पूर्वे, ॐ शक्तये नमः, आग्नेये,
ॐ दण्डाय नमः, दक्षिणे, ॐ पाशाय नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ गदायै नमः, पश्चिमे, ॐ पद्माय नमः, वायव्ये,

मल्लीपुष्पैर्जनावश्या इक्षुखण्डैर्धनाप्तयः।
पञ्चगव्यैर्धेनवः स्युरशोककुसुमैस्सुताः ॥ ४६ ॥
इन्दीवरैः कृते होमे नृपपत्नीवशंवदा।
अन्नाप्तिरन्नैः सकलं मधूकैर्वाञ्छितं भवेत् ॥ ५० ॥
प्रोदिता शबरीविद्या कलौ त्वरिता सिद्धिदा।

विवाहसिद्धिदः स्वयंवरकलामन्त्रः

अथोच्यते विवाहाप्त्ये स्वयम्वरकलाशिवा ॥ ५१ ॥
तारो माया योगिनीतिद्वयं योगेश्वरिद्वयम्।
योगनिद्रायङ्करि स्यात् सकलस्थावरेति च ॥ ५२ ॥
जङ्गमस्य मुखं प्रोच्य हृदयं मम संपठेत्।
वशमाकर्षयाकर्ष पवनो वह्निसुन्दरी ॥ ५३ ॥

स्वयंवरकलामाह – तार इति । निद्रा भकारः । पवनो यः । वह्निसुन्दरी स्वाहा । स्वरूपमन्यत् यथा – ॐ ह्रीं योगिनि योगिनि योगेश्वरि योगेश्वरि योगभयङ्करि सकलस्थावरजङ्गमस्य मुखं हृदयं मम वशमाकर्षयाकर्षय स्वाहेति ॥ ५२–५४ ॥

ॐ खड्गाय नमः, उत्तरे, ॐ अङ्कुशाय नमः, ऐशान्ये

ॐ त्रिशूलाय नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ चक्राय नमः, नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ।

इस प्रकार **चतुर्थावरण** की पूजा कर पुनः देवी का पूजन कर पुष्पाञ्जलियाँ समर्पित करे ॥ ४६-४८ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं - मल्लिका पुष्पों द्वारा हवन करने से लोग वश में हो जाते हैं । ऊख के टुकडों के होम से धन लाभ होता है । पञ्चगव्य के होम से साधक के गोधन की वृद्धि होती है और अशोक के फूलों के हवन से पुत्र प्राप्ति होती है । कमल पुष्पों के होम से रानी वश में होती है । अन्न के होम से अन्न की प्राप्ति होती है । मधूक के होम से सभी मनोभिलषित कार्य संपन्न होते हैं, कलियुग में सिद्धि देने वाली शबरी विद्या यहाँ तक कही गई ॥ ४६-५० ॥

अब इसके बाद विवाह के लिए **स्वयंवर कला विद्या का मन्त्र** कहते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), तदनन्तर दो बार 'योगिनि' पद (योगिनि योगिनि), उसके बाद २ बार 'योगेश्वरि' (योगेश्वरि योगेश्वरि), फिर योग तदनन्तर निद्रा (भ), फिर 'यङ्करि सकलस्थावरजङ्गमस्य मुखं', फिर 'हृदयं मम', फिर 'वशमाकर्षयाकर्ष', फिर पवन (य), तदनन्तर वह्निसुन्दरी (स्वाहा) लगाने से ५० अक्षरों का स्वयंवर कला मन्त्र बनता है ॥ ५१-५३ ॥

पञ्चाशद्वर्णविद्याया मुनिरस्याः पितामहः।
छन्दोतिजगती देवीगिरिपुत्रीस्वयम्वरा॥ ५४॥

अस्य मन्त्रस्य षडङ्गन्यासप्रकारः

जगत्त्रयेति हृदयं त्रैलोक्येति शिरो मतम्।
उरगेति शिखा सर्वराजेति कवचं तथा॥ ५५॥
सर्वस्त्रीपुरुषेत्यक्षि सर्वेत्यस्त्रं समीरितम्।
तारामायादिकावश्यमोहिन्यैपदपश्चिमाः ॥ ५६॥
षडङ्गमन्त्रा उद्दिष्टा[1] मूलेन व्यापकं चरेत्।
ध्यायेद्देवीं महादेवं वरीतुं समुपागताम्॥ ५७॥

षडङ्गमाह – **जगत्त्रयेतीति** ॥ ५५॥ तारमायादिकाः । वश्यमोहिन्यै पदं पश्चिममन्तर्वर्ति येषामीदृशाः । षडङ्गमन्त्रा इत्युक्तत्वात् ॥ ॐ ह्रीं जगत्त्रयवश्यमोहिन्यै हृदयाय नमः; ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवश्यमोहिन्यै शिरसेत्यादि – ॐ ह्रीं उरगवश्यमोहिन्यै शिखेत्यादि बोध्यम् । माया त्र दीर्घषट्कयुता कार्या ॥ ५६॥ *॥ ५७–६३॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं योगिनि योगिनि योगेश्वरि योगेश्वरि योगभयंकरि सकलस्थावरजङ्गमस्य मुखं हृदयं मम वशमाकर्षयाकर्षय स्वाहा' ॥ ५१-५३ ॥

पचास अक्षरों वाली इस विद्या के पितामह ब्रह्मा ऋषि हैं, अतिजगती छन्द है तथा गिरिपुत्री स्वयंवरा इसकी देवता कही गयीं हैं ॥ ५४ ॥

अब **मन्त्र का षडङ्गन्यास** कहते हैं -

आदि में तार (ॐ), माया (ह्रीं) को प्रारम्भ में तथा अन्त में 'वश्य मोहिन्यै' पद लगाकर, मध्य में क्रमशः 'जगत्त्रय' से हृदय, 'त्रैलोक्य' से शिर, 'उरग' से शिखा, 'सर्वराज' से कवच, 'सर्वस्त्रीपुरुष' से अक्षि (नेत्र), तथा 'सर्व' से अस्त्रन्यास करना चाहिए । यहाँ तक तो षडङ्गन्यास कहा गया । इसके बाद मूल मन्त्र पढ़कर व्यापक न्यास करना चाहिए । फिर महादेव का वरण करने के लिए आयी हुई गिरिराज़पुत्री गिरिजा का ध्यान करना चाहिए ॥ ५५-५७ ॥

विमर्श - **विनियोग** - 'ॐ अस्य श्रीस्वयंवरकलामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः अतिजगतीछन्दः देवीगिरिपुत्रीस्वयंवरादेवतात्मनोऽभीष्टसिद्धये मन्त्रजपे विनियोगः' ।

---

१. ॐ ह्रीं जगत्त्रयवश्यमोहिन्यै हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवशमोहिन्यै शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रीं सर्वराजवश्यमोहिन्यै कवचाय हुम्, ॐ ह्रीं सर्वस्त्रीपुरूष वश्यमोहिन्यै नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रीं सर्ववश्यमोहिन्यै अस्त्राय फट् ।

ध्यानवर्णनं पूजाविधानं च

शम्भु जगन्मोहनरूपपूर्णं
विलोक्य लज्जाकुलितां स्मिताढ्याम् ।
मधूकमालां स्वसखीकराभ्यां
संबिभ्रतीमद्रिसुतां भजेयम् ॥ ५८ ॥
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः ।
पायसान्नेन जुहुयात् पीठे पूर्वोदिते यजेत् ॥ ५६ ॥
त्रिकोणचतुरस्राङ्ककोणादलदिग्दलम् ।
दिक्कलादन्तपत्राणि चतुष्षष्टिदलं पुनः ॥ ६० ॥
वृत्तत्रयं चतुर्द्वारयुक्तं धरणिकेतनम् ।
पूजायन्त्रं प्रकुर्वीत तत्र सम्पूजयेदिमाम् ॥ ६१ ॥
त्रिकोणे पार्वतीमिष्ट्वा चतुरस्रेऽर्चयेदिमाः ।
मेधां विद्यां पुनर्लक्ष्मीं महालक्ष्मीं चतुर्थिकाम् ॥ ६२ ॥

षडङ्गन्यास - ॐ ह्रीं जगत्त्रयवश्यमोहिन्यै हृदयाय नमः,
ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवश्यमोहिन्यै शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रीं सर्वराजवश्यमोहिन्यै कवचाय हुम्,
ॐ ह्रीं सर्वस्त्रीपुरुषवश्यमोहिन्यै नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ ह्रीं सर्ववश्यमोहिन्यै अस्त्राय फट् ।

ॐ ह्रीं योगिनि योगिनि योगेश्वरि योगेश्वरि योगभयङ्करि सकलस्थावरजङ्गमस्य मुखं हृदयं मम वशमाकर्षयाकर्षय स्वाहा इति सर्वाङ्गे ॥ ५५-५७ ॥

गिरिराजपुत्री का ध्यान -

भगवान् सदाशिव के जगन्मोहन परिपूर्णरूप को देखकर संकोच से लजाती हुई मन्द मन्द मुस्कान से युक्त, अपने सखियों के साथ वर वरणार्थ मधूक पुष्प की माला लिए हुये गिरिराजपुत्री का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ५८ ॥

इस प्रकार ध्यान कर चार लाख उक्त मन्त्र का जप करना चाहिए, फिर उसका दशांश पायस से हवन करना चाहिए । तदनन्तर पूर्वोक्त पीठ पर देवी का पूजन करना चाहिए ॥ ५६ ॥

प्रथम त्रिकोण, उसके बाद चतुष्कोण, उसके बाद षट्कोण, तदनन्तर अष्टदल, फिर दशदल, पुनः दशदल, फिर षोडशदल, फिर बत्तीस दल, फिर चौंसठ दल, इसके बाद तीन वृत्त, उसके बाद चार द्वार वाला भूपुर - इस प्रकार का यन्त्र बनाकर उस पर देवी का पूजन करना चाहिए ॥ ६०-६१ ॥

(१) त्रिकोण में पार्वती का पूजन कर चतुरस्र (२) में मेधा, विद्या, लक्ष्मी एवं महालक्ष्मी इन चारों का पूजन करना चाहिए ॥ ६२ ॥

षट्कोणेषु षडङ्गानि स्वरानष्टदलेऽर्चयेत् ।
दिग्दलद्वितीये देवानिन्द्रादीनायुधानि च ॥ ६३ ॥
ताराद्येन नमोन्तेन श्रीबीजेन रमां यजेत् ।
कलापत्रे द्विरामारे पाशमायांकुशैः शिवा ॥ ६४ ॥

कलापत्रे षोडशदले । ताराद्येन रमान्तेन बीजेन ॐ श्रीं श्रीमिति मनुना श्रियं यजेत् । द्विरामारे द्वात्रिंशद्दले । पाशमायाङ्कुशैः । आं ह्रीं क्रों शिवायै नम इति ? (द्वारं) तां यजेत् ॥ ६४ ॥

स्वयंवरकलापूजनयन्त्रम्
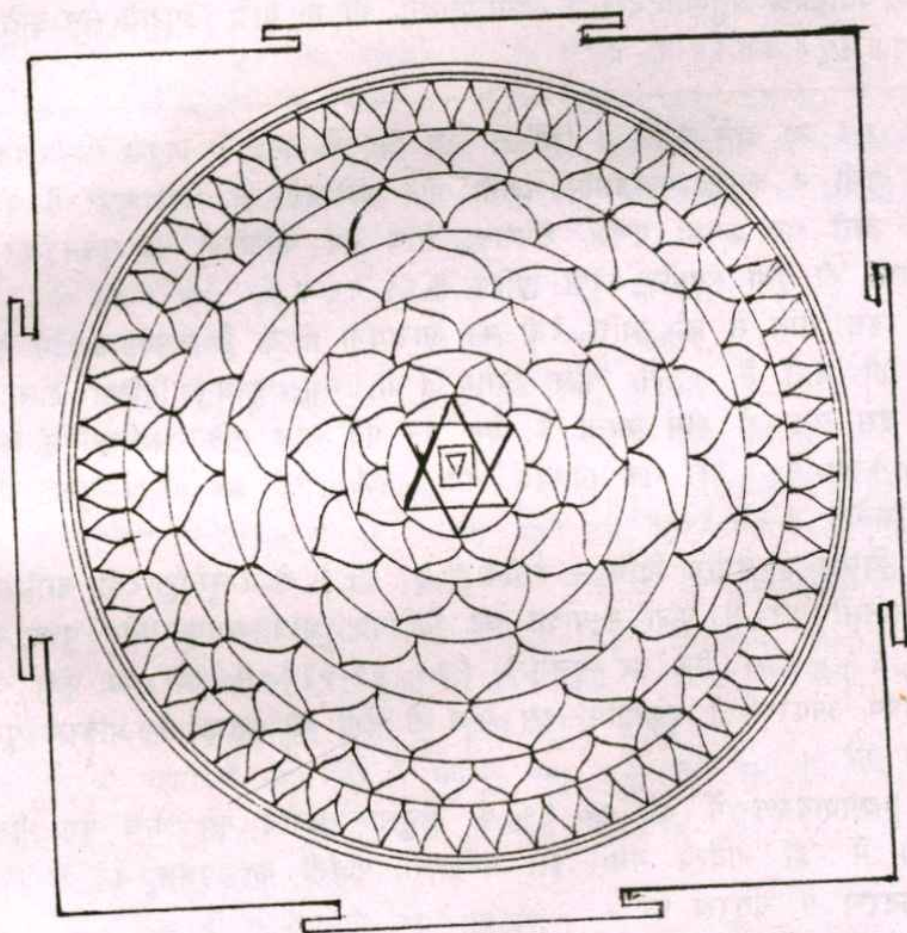
षट्कोण (३) में षडङ्गपूजा (द्र० ६. ५५-५७) तथा अष्टदलों (४) में २ के क्रम से १६ स्वरों की, दोनों (५-६) दश दलों में क्रमशः इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए ॥ ६३ ॥

षोडशदलों (७) में 'श्रीरमायै नमः' इस मन्त्र से रमा का, बत्तीस (८) दलों वाले कमल में 'आं ह्रीं क्रों शिवायै नमः' मन्त्र से शिवा का पूजन करना चाहिए ॥ ६४॥

वेदाङ्गपत्रे त्रिपुटां श्रीमायामदनैर्यजेत् ।
वृत्तत्रये महालक्ष्मीं भवानीं पुष्पसायकाम् ॥ ६५ ॥
चतुरस्रं चतुर्द्वार्षु विघ्नेट्क्षेत्रेशभैरवान् ।
योगिनीः पूजयेदित्थं नवावरणमर्चनम् ॥ ६६ ॥
एवं यो भजते देवीं वश्यास्तस्याखिला जनाः ।
लाजैस्त्रिमधुरोपेतैर्जुहुयादयुतं तु यः ॥ ६७ ॥
लभते वाञ्छितां कन्यां धनमानसमन्विताम् ।
एवं स्वयंवरा प्रोक्ता प्रोच्यते मधुमत्यथ ॥ ६८ ॥

वेदाङ्गपत्रे चतुष्षष्टिदले । श्रीमायामदनैः श्री ह्रीं क्लीं त्रिपुरायै नम इति तां यजेत् ॥ ६५ ॥ * ॥ ६६–६८ ॥

---

६४ दल वाले कमल में 'श्रीं ह्रीं क्लीं त्रिपुरायै नमः' से त्रिपुरा का, तदनन्तर तीनों वृत्तों में क्रमशः महालक्ष्मी, भवानी और कामेश्वरी का, तथा भूपुर मे पूर्वादि चारों द्वारों पर क्रमशः गणेश, क्षेत्रपाल, भैरव एवं योगिनियों का पूजन कर ९ आवरणों की पूजा समाप्ति करनी चाहिए ॥ ६५-६६ ॥

इस रीति से जो व्यक्ति देवी की आराधना करता है उसके वश में सभी लोग हो जाते हैं । जो व्यक्ति त्रिमधु (घी, मधु, दुग्ध) मिश्रित लाजा के साथ इस मन्त्र से होम करता है, वह धन एवं मान सहित अभिलषित कन्या प्राप्त करता है । यहाँ तक स्वयंवरा विद्या कही गई अब आगे मधुमती विद्या कही जायेगी ॥ ६७-६८ ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - श्लोक (६. ५८) के अनुसार देवी का ध्यान कर मानसोपचार से पूजा सम्पादन कर विधिवत अर्घ्य स्थापन पीठ पूजा करे (द्र० ६. ८) । पीठ पर मूलमन्त्र (द्र० ५१-५३) से देवी की पूजा कर 'आज्ञापय आवरणं ते पूजयामि' इस मन्त्र से देवी की आज्ञा ले आवरण पूजा प्रारम्भ करे ।

प्रथमवावरण में ६. ६०-६१ के अनुसार बनाये गये यन्त्र पर भीतर त्रिकोण में 'ह्रीं पार्वत्यै नमः' इस मन्त्र से पार्वती का पूजन करे । फिर **द्वितीयावरण** में चतुरस्र पर -

ॐ मेधायै नमः, ॐ विद्यायै नमः,
ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः,

आदि मन्त्रों से पूजा करे । फिर षट्कोण पर **तृतीयावरण** में क्रमशः

ॐ ह्रीं जगत्त्रयवश्यमोहिन्यै हृदयाय नमः,
ॐ ह्रीं त्रैलोक्यवश्यमोहिन्यै शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रीं उरगवश्यमोहिन्यै शिखायै वषट्,

ॐ ह्रीं सर्वराजवश्यमोहिन्यै कवचाय हुम,
ॐ ह्रीं सर्वस्त्रीपुरुषवश्यमोहिन्यै नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ ह्रीं सर्ववश्यमोहिन्यै अस्त्राय फट्,

तथा मूलमन्त्र से यन्त्र के ऊपर पूजा करे । फिर **चतुर्थावरण** में अष्टदल कमलों का क्रमशः दो दो स्वरों के साथ 'ॐ प्रं प्रां नमः', 'ॐ इ ई नमः' इत्यादि क्रम से चतुर्थावरण की पूजा करे ।

दश दल वाले कमल पर **पञ्चमावरण** में इन्द्र आदि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ अग्नये नमः, आग्नेये,
ॐ यमाय नमः, दक्षिणे, ॐ निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ वरुणाय नमः, पश्चिमे, ॐ वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ सोमाय नमः, उत्तरे, ॐ ईशानाय नमः, ऐशान्ये,
ॐ ब्रह्मणे नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ अनन्ताय नमः, निर्ऋति पश्चिमयोर्मध्ये,

फिर **षष्ठावरण** में दूसरे दश कमल पत्रों पर दश दिक्पालों के आयुधों की पूजा करे । यथा -

ॐ वज्राय नमः, पूर्वे, ॐ शक्तये नमः, आग्नेये,
ॐ दण्डाय नमः, दक्षिणे, ॐ पाशाय नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ गदायै नमः, पश्चिमे, ॐ पद्माय नमः, वायव्ये,
ॐ खड्गाय नमः, उत्तरे, ॐ अङ्कुशाय नमः, ऐशान्ये
ॐ त्रिशूलाय नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ चक्राय नमः, नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये ।

सप्तमावरण में षोडशदलों पर 'ॐ श्री रमायै नमः' से, तदनन्तर **अष्टमावरण** में बत्तीस दलों पर 'ॐ आं ह्रीं क्रों शिवायै नमः' मन्त्र से, फिर **नवमावरण** में ६४ दलों पर 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं त्रिपुरायै नमः' मन्त्र से त्रिपुरा का पूजन करे ।

इस प्रकार नवमावरणों की पूजा कर तीन वृत्तों में क्रमशः महालक्ष्मी, भवानी एवं कामेश्वरी का निम्नलिखित मन्त्रों से पूजन करना चाहिए -

ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै नमः, ॐ ह्रीं भवान्यै नमः, ॐ क्लीं कामेश्वर्यै नमः,

अन्त में भूपुर में पूर्वादि चारों दिशाओं में गणेश, क्षेत्रपाल, भैरव एवं योगिनियों का पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ ह्रीं गं गणेशाय नमः, पूर्वद्वारे,
ॐ ह्रीं वं वटुकाय नमः, दक्षिणद्वारे,
ॐ ह्रीं क्षं क्षेत्रपालाय नमः, पश्चिमद्वारे,
ॐ ह्रीं यं योगिनीभ्यो नमः, उत्तरद्वारे ।

इस प्रकार आवरण पूजा कर देवी को ६ पुष्पाञ्जलि समर्पित कर, विधिवत् जप करना चाहिए ॥ ६२-६८ ॥

मधुमतीमन्त्रः

नारायणो विन्दुयुतो हृल्लेखांकुशमन्मथा।
दीर्घवर्मध्रुवो वह्निप्रेयसी वसुवर्णवान्॥ ६९॥
मुनिरस्य मधुश्छन्दस्त्रिष्टुब्मधुमतीति च।
मुन्याद्याः पञ्चभिर्बीजैः पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत्॥ ७०॥
अस्त्रं स्वाहान्ततारेण कृत्वा देवीं स्मरेद् बुधः।

ध्यानं पूजनादिविधिश्च

नानाद्रुमलताकीर्णकैलासगतकानने ॥ ७१॥
अहिलतादलनीलसरोजयुक्–
करयुगां मणिकाञ्चनपीठगाम्।
अमरनागवधूगणसेविता
मधुमतीमखिलार्थकारीं भजे ॥ ७२॥

मधुमतीमाह – **नारायण** इति । बिन्दुयुतो नारायणः आं । हृल्लेखा ह्रीं । अकुशः क्रों । मन्मथः क्लीं । दीर्घवर्म हूं । ध्रुवः ॐ वह्निप्रयेसी स्वाहा । मन्त्रो यथा – आं ह्रीं क्रों क्लीं हूं ॐ स्वाहा॥ ६६॥ *॥ ७०॥ स्वाहान्तप्रणवेनास्त्रम्॥ ७१॥ ध्यानमाह – **अहीति** । नागवल्लीदलं दक्षे नीलपद्मं वामे॥ ७२॥ *॥ ७३–७६॥

अब पूर्व प्रतिज्ञात (द्र० ६• ६८) **मधुमती मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

बिन्दु सहित नारायण (आं), हृल्लेखा (ह्रीं), अंकुश (क्रों), मन्मथ (क्लीं), दीर्घवर्म (हूं), फिर ध्रुव (ॐ), तथा अन्त में वह्निप्रेयसी (स्वाहा) लगाने से ८ अक्षरों का मधुमती मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ६९ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'आं ह्रीं क्रों क्लीं हूं ॐ स्वाहा' ॥ ६९ ॥

इस मन्त्र के मधु ऋषि हैं, त्रिष्टुप् छन्द है तथा मधुमती देवता हैं । पाँच बीजों से पाँच अगों का तथा स्वाहान्त प्रणव से अस्त्र न्यास कर विद्वान् साधक को देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ७०-७१ ॥

विमर्श - विनियोग - ॐ अस्य श्रीमधुमतीमन्त्रस्य मधुर्ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः मधुमतीदेवता आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे मधुमतीमन्त्रजपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ आं हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ क्रों शिखायै वषट्, ॐ क्लीं कवचाय हुं,
ॐ हूं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ७०-७१ ॥

अब **मधुमती देवी का ध्यान** कहते हैं -

अनेक वृक्ष एवं लताओं से घिरे कैलाश पर्वत के गहन वन में मणि जटित काञ्चन पीठ पर विराजमान, अपने दोनों हाथों में क्रमशः दाहिने हाथ में नागलता

प्रजप्य वसुलक्षं तद्दशांशं जुहुयाद्दलैः ।
बिल्वोत्थैः पूजयेत् पीठे जयादिसर्वशक्तिके ॥ ७३ ॥
कर्णिकायां षडङ्गानि शक्तयो वसुपत्रके ।
निद्राच्छायाक्षमातृष्णाकान्तिरार्याश्रुतिः स्मृतिः ॥ ७४ ॥
शक्रादयस्तदस्त्राणि पूज्यान्यन्ते सुखाप्तये ।
य इत्थं सेवते देवीं स समृद्धेः पदं लभेत् ॥ ७५ ॥

एवं बायें हाथ में नीलकमल धारण किये हुये देवाङ्गना एवं नागपत्नियों से सेवित सर्वार्थसिद्धिदायक मधुमती का ध्यान करता हूँ ॥ ७२ ॥

उक्त मन्त्र का आठ लाख जप करना चाहिए । जप पूर्ण होने पर विल्ब पत्रों से उसका दशांश होम करना चाहिए और पीठ पर जयादि शक्तियों का पूजन करना चाहिए ॥ ७३ ॥

कर्णिका में षडङ्गपूजा, एवं अष्टदलों में शक्तियों का पूजन करना चाहिए । १. निद्रा, २. छाया, ३. क्षमा, ४. तृष्णा, ५. कान्ति, ६. आर्या, ७. श्रुति एवं ८. स्मृति ये आठ मधुमती की शक्तियाँ हैं । इसके बाद इन्द्रादि दश दिक्पालों का, तदनन्तर उनके वज्रादि आयुधों का सुख प्राप्ति के लिए पूजन करना चाहिए । जो इस प्रकार मधुमती देवी की उपासना करता है वह समृद्धि प्राप्त करता है ॥ ७४-७५ ॥
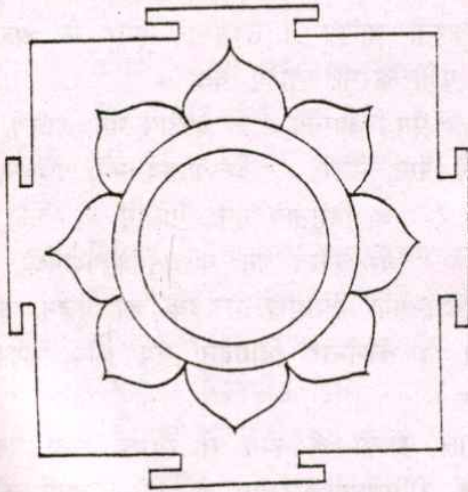
मधुमतीपूजनयन्त्रम्

विमर्श - प्रयोग विधि - वृत्ताकार कर्णिका के ऊपर क्रमशः अष्टदल एवं भूपुर बना कर उस यन्त्र में मधुमती का मूल मन्त्र से आवाहन कर पूजन करना चाहिए ।

फिर **'आज्ञापय आवरणं ते पूजयामि'** इस मन्त्र से आज्ञा लेकर आवरण पूजा प्रारम्भ करना चाहिए ।

प्रथमावरण में वृत्ताकार कर्णिका में निम्न मन्त्रों से षडङ्गपूजा करनी चाहिए -

ॐ आं हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्रों शिखायै वषट्,
ॐ क्लीं कवचाय हुम्, ॐ हूं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्,

इसके अनुसार अष्टदल कमल में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से -

ॐ निद्रायै नमः, ॐ छायायै नमः, ॐ क्षमायै नमः,
ॐ तृष्णायै नमः, ॐ कान्त्यै नमः, ॐ आर्यायै नमः,
ॐ श्रुत्यै नमः, ॐ स्मृत्यै नमः,

रक्ताम्भोजैर्हुतैर्मन्त्री भूपतीन् वश्यतां नयेत्।
नानाभोगान् पायसेन ताम्बूलैर्वामलोचनाम्॥ ७६॥

नानाभोगप्रदोऽपरो मधुमतीमन्त्रः

दामोदरो बिन्दुयुक्तो मधुमत्याःऽपरो मनुः।
पूर्ववद्यजनं चास्य ध्यायेद्देवीं कुमारिकाम्॥ ७७॥
कोटिरर्द्धजपं कुर्वन्विद्यापारङ्गमो भवेत्।
मधुमत्या समानान्या नानाभोगसुखप्रदा॥ ७८॥

मन्त्रान्तरमाह – **दामोदर** इति । दामोदर एकारः॥ ७७॥ *॥ ७८॥

पर्यन्त मन्त्रों से **द्वितीयावरण** की पूजा करनी चाहिए ।

इसके बाद भूपुर के दशों दिशाओं में -

ॐ इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ अग्नये नमः आग्नेये,
ॐ यमाय नमः, दक्षिणे, ॐ निर्ऋतये नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ वरुणाय नमः, पश्चिमे, ॐ वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ सोमाय नमः उत्तरे, ॐ ईशानाय नमः ऐशान्ये,
ॐ ब्रह्मणे नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ अनन्ताय नमः पश्चिमनैर्ऋत्यमध्ये,

इस प्रकार **तृतीयावरण** की पूजा करनी चाहिए । तदनन्तर भूपुर के बाहर पूर्वादि क्रम से उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए यथा -

ॐ वज्राय नमः पूर्वे, ॐ शक्तये नमः, आग्नेये, ॐ दण्डाय नमः दक्षिणे,
ॐ खड्गाय नमः वायव्ये, ॐ गदायै नमः, उत्तरे, ॐ पाशाय नमः पश्चिमे,
ॐ अङ्कुशाय नमः वायव्ये, ॐ त्रिशूलाय नमः, ऐशान्ये,
ॐ पद्माय नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ चक्राय नमः पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये,

इस प्रकार **चतुर्थावरण** की पूजाकर गन्धादि उपचारों से देवी का पूजन कर चार पुष्पाञ्जलियाँ समर्पित करना चाहिए । तदनन्तर विधिवत् जप कार्य करना चाहिए ॥ ७४-७५ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं - लाल कमलों के होम से साधक राजा एवं राजमन्त्री को अपने वश में कर लेता है । पायस के होम से अनेक भोगों की प्राप्ति होती है तथा ताम्बूल के होम से स्त्रियाँ वश में हो जाती हैं ॥ ७६ ॥

अब **मधुमती का अन्य मन्त्र** कहते हैं - बिन्दु सहित दामोदर (ऐं) यह मधुमती का अन्य मन्त्र हैं । पूर्वोक्त रीति से इसका अनुष्ठान करना चाहिए । इस मन्त्र के अनुष्ठान में कुमारिका देवी का ध्यान तथा पूजन करना चाहिए । आधा करोड़ (अर्थात् ५० लाख) जप करने से साधक सभी विद्याओं में पारंगत हो जाता है । इस प्रकार नाना प्रकार के सुखों एवं भोगों को प्रदान करने वाला मधुमती के समान अन्य कोई मन्त्र नहीं है ॥ ७७-७८ ॥

इष्टप्राप्तिदः प्रमदामन्त्रः -

माया वह्न्यासनः शूरो मदेपावकसुन्दरी ।
षडर्णो मनुराख्यातो मुनिः शक्तिः समीरितः ॥ ७६ ॥
गायत्रीछन्द आख्यातं देवताप्रमदाभिधा ।
षडङ्गानि प्रकुर्वीत दीर्घषट्काढ्यमायया ॥ ८० ॥

ध्यान–जप–पूजादिविधानं च

केयूरमुख्याभरणाभिरामां
वराभये सन्दधतीं कराभ्याम् ।
संक्रन्दनाद्यामरसेव्यपादां
सत्काञ्चनाभां प्रमदां भजामि ॥ ८१ ॥

प्रमदामन्त्रमाह – **मायेति** । वह्न्यासनः शूरः । रेफयुतः पः प्र । मदे स्वरूपम् । पावकसुन्दरी स्वाहा । मन्त्रो यथा – ह्रीं प्रमदे स्वाहेति षडर्णः ॥ ७६–८० ॥ ध्यानमाह – **केयूरेति** । केयूरमंगदो वरो दक्षे । संक्रन्दनः इन्द्रः तदाद्यैर्देवैः सेव्यौ पादौ यस्याः ॥ आशाधवा दिक्पालाः ॥ ८१–८२ ॥ *॥ ८३–८४ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप - (ऐं), एक अक्षर मात्र है ॥ ७७-७८ ॥

अब **प्रमदा देवी का मन्त्र** कहते हैं - माया (ह्रीं), वह्न्यासन शूर (प्र), फिर 'मदे' पद, तदनन्तर पावकसुन्दरी (स्वाहा), लगाने से ६ अक्षरों का प्रमदामन्त्र बनता है ॥ ७६ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ह्रीं प्रमदे स्वाहा' ॥ ७६ ॥

इस मन्त्र के शक्ति ऋषि हैं, गायत्री छन्द तथा प्रमदा देवता हैं । षड्दीर्घ सहित माया मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ८० ॥

विमर्श - विनियोग विधि - ॐ अस्य श्रीप्रमदामन्त्रस्य शक्तिर्ऋषिः गायत्री छन्दः प्रमदा देवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे मन्त्र जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुं,
ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट् ॥ ८० ॥

अब **प्रमदा देवी का ध्यान** कहते हैं -

केयूर आदि समस्त प्रधान आभूषणों से अलंकृत, अपने दोनों हाथों में वर और अभय मुद्रा धारण करने वाली, इन्द्रादि देवताओं से सेव्यमान पादों वाली, उत्तम सुवर्ण के समान देदीप्यमान कान्ति वाली प्रमदा देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ८१ ॥

रसलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयाद् घृतैः ।
पूर्वोक्ते पूजयेत् पीठे षडङ्गाशाधवायुधैः ॥ ८२ ॥
निर्जने कानने रात्रावयुतं नियुतं जपेत् ।
सहस्रं पायसान्नेन हुत्वा शयनमाचरेत् ॥ ८३ ॥
त्रिसप्तदिवसं यावदेवमाचरतो निशी ।
देवीदृग्गोचरीभूय दद्यादिष्टानि मन्त्रिणे ॥ ८४ ॥

प्रमोदादर्शनदः प्रमोदामन्त्रः

मायाप्रमोदे ठद्वन्द्वं षडर्णो मनुरुत्तमः ।
ऋष्याद्यर्चनपर्यन्त प्रमदावदुदीरितम् ॥ ८५ ॥
सरितो निर्जने तीरे मण्डले चन्दनैः कृते ।
जपहोमौ विधायोक्तौ प्रमोदां पश्यति ध्रुवम् ॥ ८६ ॥

प्रमोदामाह – **मायेति** । ठद्वयं स्वाहा । मन्त्रो यथा – ह्रीं प्रमोदे स्वाहेति षडर्णः ॥ ८५ ॥ *॥ ८६ ॥

अब **अनुष्ठान का प्रकार** कहते हैं -

उक्त मन्त्र का ६ लाख जप करे, उसका दशांश घी से होम करे, जप से पूर्व पूर्वोक्त पीठ पर देवी का पूजन करे तथा कर्णिका में षडङ्गपूजा, दिक्पालों की पूजा एवं आयुधों की पूजा करे । किसी निर्जन वन में रात्रि के समय नियमपूर्वक दश हजार जप करना चाहिए तथा पायस से एक हजार आहुतियाँ देने के बाद शयन करना चाहिए । २१ दिन तक लगातार रात्रि में ऐसा करने पर देवी साक्षात् दृष्टिगोचर होकर साधक की समस्त मनोकामनायें पूर्ण कर देती हैं ॥ ८२-८४ ॥

अब **प्रमोदा का मन्त्र एवं प्रयोग** कहते हैं -

माया (ह्रीं), फिर 'प्रमोदे' यह पद, इसके अन्त में ठद्वय (स्वाहा) लगाने से ६ अक्षरों का प्रमोदा का श्रेष्ठ मन्त्र निष्पन्न होता है । इस मन्त्र के ऋषि, छन्द, देवता तथा पूजा विधि प्रमदा के समान ही कहे गए हैं ॥ ८५ ॥

अनुष्ठान विधि - नदी के निर्जन तट पर चन्दन से मण्डल निर्माण करे । पूर्वोक्त रीति से पूजा, जप और होम करने से साधक निश्चित रूप से प्रमोदा देवी का दर्शन पा जाता है ॥ ८६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ह्रीं प्रमोदे स्वाहा' ।

विनियोग एवं षडङ्गन्यास आदि के प्रयोग प्रमदा के मन्त्रों में देखिये । (द्र० ६. ७९-८४) ॥ ८५-८६ ॥

कारागृहमोक्षणक्षमो बन्दीमन्त्रः

तारो हिलियुगं बन्दीदेवी ङेन्ता नमोन्तकः ।
एकादशाक्षरो मन्त्रो भैरवत्रिष्टुभौ पुनः ॥ ८७ ॥
बन्दीमुन्यादयः प्रोक्ता एकेन द्वन्द्वशोऽङ्गकम् ।
विधाय संस्मरेद् बन्दीं रत्नसिंहासनस्थिताम् ॥ ८८ ॥

ध्यानजपपूजाप्रकारादिकथनम्

सतोयपाथोदसमानकान्तिम्
अम्भोजपीयूषकरीरहस्ताम् ।
सुराङ्गनासेवितपादपद्मां
भजामि बन्दीं भवबन्धमुक्तये ॥ ८६ ॥
लक्षयुग्मं जपेन्मन्त्री पायसान्नैर्दशांशतः ।
हुत्वा पूर्वोदिते पीठे पूजयेद् बन्धमुक्तये ॥ ६० ॥

बन्दीमन्त्रमाह – **तार** इति । ॐ हिलि हिलि बन्दीदेव्यै नम इत्येकादशाक्षरः ॥ ८७–८८ ॥ ध्यानमाह – **सतोयेति** । सजलमेघश्यामां पीयूषकरीरोऽमृतकुम्भः सदक्षे ॥ ८६ ॥ *॥ ६०–६२ ॥

अब **बन्दी मन्त्र का उद्धार** करते हैं –

तार (ॐ), फिर हिलियुग्म (हिलि हिलि), फिर 'बन्दी देवी' पद का चतुर्थ्यन्त (बन्दी देव्यै), तदनन्तर नमः लगाने से ग्यारह अक्षरों का बन्दी मन्त्र बनता है ॥ ८७ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप – 'ॐ हिलि हिलि बन्दीदेव्यै नमः' ॥ ८७ ॥

इस मन्त्र के भैरव ऋषि हैं, त्रिष्टुप् छन्द है तथा बन्दी देवता हैं । मन्त्र के एक तदनन्तर २, २, २, २, २, अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । फिर रत्न सिंहासन पर विराजमान बन्दी देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ८७-८८ ॥

विनियोग – ॐ अस्य श्रीबन्दीमन्त्रस्य भैरवऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः बन्दीदेवता भवबन्धमुक्तये बन्दीमन्त्र जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास – ॐ हृदयाय नमः, ॐ हिलि शिरसे स्वाहा,
ॐ हिलि शिखायै वषट्, ॐ बन्दी कवचाय हुम्,
ॐ देव्यै नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ नमः अस्त्राय फट् ॥ ८७-८८ ॥

अब **बन्दी देवी का ध्यान** कहते हैं –

जलधर मेघ के समान कान्ति वाली, हाथों में कमल एवं अमृत कलश लिए हुये एवं देवाङ्गनाओं से सेव्यमान चरणों वाली बन्दी देवी का मैं बन्धन से मुक्ति पाने हेतु ध्यान करता हूँ ॥ ८६ ॥

अङ्गपूजाकेसरेषु शक्तयः पत्रमध्यगाः ।
कालीताराभगवतीकुब्जाह्वा शीतलापि च ॥ ६१ ॥
त्रिपुरामातृकालक्ष्मीर्दिगीशा आयुधान्यपि ।
एवमाराधिता बन्दी प्रयच्छेदीप्सितं नृणाम् ॥ ६२ ॥
एकविंशति घस्रान्तमयुतं प्रत्यहं जपेत् ।
ब्रह्मचर्यरतो मन्त्रीगणेशार्चनपूर्वकम् ॥ ६३ ॥
कारागृहनिबद्धस्य मोक्ष एवं कृते भवेत् ।

प्रयोगान्तरकथनम्

चतुरस्रे ठकारान्तरपूपोपरि संलिखेत् ॥ ६४ ॥

घस्रो दिनम् ॥ ६३ ॥ प्रयोगान्तरमाह – **चतुरस्र** इति । अपूपोपरि घृतेन

अब **पुरश्चरण विधि** कहते हैं –

उपर्युक्त बन्दी मन्त्र का दो लाख जप तथा तद्दशांश पायस से होम करना चाहिए । सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए पूर्वोक्त पीठ पर देवी का पूजन करना चाहिए ॥ ६० ॥

१. काली, २. तारा, ३. भगवती, ४. कुब्जा, ५. शीतला, ६. त्रिपुरा, ७. मातृका एवं ८. लक्ष्मी ये आठ बन्दी देवी की शक्तियाँ हैं । कमल के केशरों में अंगपूजा तथा कमलदलों के मध्य शक्तियों का पूजना करना चाहिए । आठ शक्तियों की पूजा के पश्चात् दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार की आराधना से प्रसन्न होकर बन्दी देवी मनुष्यों को अभीष्ट फल देती हैं ॥ ६०-६१ ॥

साधक को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये २१ दिन पर्यन्त गणेश पूजन पूर्वक प्रति दिन दश हजार मन्त्रों का जप करना चाहिए । ऐसा करने से कारागार में बन्दी व्यक्ति कारागार से मुक्त हो जाता है ॥ ६३-६४ ॥

विमर्श – प्रयोग विधि – (अनुष्ठान के लिए ६. १६-३७ श्लोक द्रष्टव्य है ।) अनुष्ठान के प्रारम्भ में गणपति का सविधि पूजन करे । फिर ६. ८६ श्लोकानुसार देवी का ध्यान कर मानसोपचारों से उनकी पूजा करे । पुनः सुसम्पन्न मण्डल रचना कर अर्घ स्थापित करे । तीर्थाभिमिश्रित अर्घ्य के जल को प्रोक्षणी में डाल देवे । फिर उस जल से पूजन सामग्री का प्रोक्षण करे । तदनन्तर पीठ पूजा कर उस पर षट्कोण, अष्टदल एवं भूपुर युक्त यन्त्र का निर्माण कर, उसमें देवी का ध्यान कर, पुनः उनका पूजन करे । तदनन्तर षडङ्गपूजा सहित देवी के आवरणों की पूजा करे ।

प्रथमावरण में षट्कोण में –

ॐ हृदयाय नमः, ॐ हिलि शिरसे स्वाहा, ॐ हिलि शिखायै वषट्,
ॐ बन्दी कवचाय हुम्, ॐ देव्यै नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ नमः अस्त्राय फट् ।

साध्यनाम घृतेनैव मायाबीजं च दिक्ष्वपि।
मनुनाष्टादशार्णेन चतुरस्रं प्रवेष्टयेत् ॥ ६५॥

अष्टादशवर्णात्मकः स एव मन्त्रः

वाग्बीजं भुवनेशानी रमाबन्दि च केशवः।
मुष्यबन्धं ततो मोक्षं कुरु युग्मं च ठद्वयम् ॥ ६६॥

चतुरस्रान्तर्वर्तिठकारं विलिख्य तत्रामुकं मोच्येति लिखेत् । दिक्षु मायाबीजं च अष्टादशार्णमन्त्रेण तं वेष्टयित्वा तत्र देवीमावाह्याभ्यर्च्य कारागृहस्थायाऽपूपं दद्यात् । स च तज्जग्ध्वा बन्धनान् मुच्यते ॥ ६४–६५ ॥ अष्टादशार्णमाह – **वागिति** । केशवः अकारः । ठद्वये स्वाहा । स्वरूपमन्यत् । स्पष्टं च । यथा –

यहाँ तक प्रथमावरण की पूजा कही गई । इसके बाद **द्वितीयावरण** की पूजा हेतु दलों के मध्य में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से काली आदि शक्तियों का पूजन करना चाहिए । यथा - ॐ काल्यै नमः, ॐ तारायै नमः,
ॐ भगवत्यै नमः, ॐ कुब्जायै नमः, ॐ शीतलायै नमः,
ॐ त्रिपुरायै नमः, ॐ मातृकायै नमः, ॐ लक्ष्म्यै नमः ।

फिर भूपुर के भीतर पूर्वोक्त रीति से पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पूर्वोक्त इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा कर **तृतीयावरण** की पूजा सम्पन्न करे । फिर बाहर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पूर्वोक्त इन्द्रादि दश दिक्पालों के वज्रादि आयुधों की पूजा कर **चतुर्थावरण** की पूजा सम्पन्न कर जप करना चाहिए । जप की समाप्ति हो जाने पर पायस से दशांश होम करना चाहिए ॥ ६०-६४ ॥

बन्धनमोक्षकरं यन्त्रम्

ब न्ध मो क्षं

ष्य मु अ न्दि ब | ह्रीं ठ ह्रीं अमुकं मोचय ह्रीं ह्रीं | कु रु कु रु
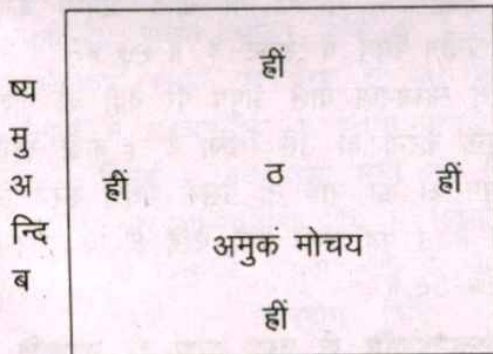
श्रीं ह्रीं ऐं हा स्वा

अब **कारागार से बन्दियों को छुड़ाने का एक अन्य प्रयोग** कहते हैं -

अपूप (माल पूआ) पर घी से चतुरस्र के भीतर ठकार लिखकर जिसे छुड़ाना हो उस साध्य का नाम लिखकर (अमुकं) मोचय लिखना चाहिए। फिर चतुरस्त्र के चारों दिशाओं में माया बीज (ह्रीं) लिखकर उसे अष्टादशाक्षर मन्त्र से (प्रतिलोम क्रम से) परिवेष्टित करे ॥ ६५ ॥

वसुचन्द्रार्णमन्त्रोऽयं क्षिप्रं बन्धविमोक्षदम्।
तस्मिन्नपूपे सम्पूज्य बन्दीमावरणान्विताम्॥ ६७॥
कारानिकेतनस्थाय मित्राय प्रददीत तम्।
सशुद्धो वाग्यतो भूत्वा भक्षयेत्तमपूपकम्॥ ६८॥
तस्मिन्सम्भक्षिते बद्धो मुच्यते बन्धनाद्द्रुतम्।
एवं सम्प्रोदिता बन्दीस्मरणाद् बन्धमुक्तिदा॥ ६९॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ छिन्नमस्तादिमन्त्रकथनं नाम षष्ठस्तरङ्गः॥ ६॥

ऐं ह्रीं श्रीं बन्दि अमुष्य बन्धमोक्षं कुरु कुरु स्वाहेति । वसुचन्द्रार्णोऽष्टादशार्णः ॥ ६६-६७॥ *॥ ६८-६९॥

इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां छिन्नमस्तादिकथनं नाम षष्ठस्तरङ्गः॥ ६॥

वाग्बीज (ऐं), भुवनेशानी (ह्रीं), रमा (श्रीं), फिर 'बन्दी' पद, उसके बाद केशव (अ), फिर 'मुष्य बन्ध', तदनन्तर 'मोक्षं' फिर दो बार कुरु (कुरु कुरु), फिर ठद्वय (स्वाहा) लगाने से अष्टादशाक्षर मन्त्र निष्पन्न होता है, जो बन्दियों को शीघ्र मोक्ष देने वाला है ॥ ६६-६७ ॥

विमर्श - अष्टादशाक्षर मन्त्र का उद्धार - 'ऐं ह्रीं श्रीं बन्दि अमुष्य बन्ध मोक्षं कुरु कुरु स्वाहा' (१८) । इसका प्रयोग चित्र में स्पष्ट है ॥ ६७ ॥

इस प्रकार १८ अक्षरों से परिवेष्टित साध्यनाम वाले अपूप पर देवी की पूजा कर जिस अपने मित्र को कारागार से मुक्त करना हो उसे खिला दे । बन्दी रहने वाला साध्य शुद्ध होकर मौन हो उस अपूप को खा जावे तो उसके भक्षण करने से वह शीघ्र ही कारागार से मुक्त हो जाता है । यह बन्दी देवी ऐसी हैं कि स्मरण मात्र से बन्धन से मुक्त कर देती हैं ॥ ६७-६९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के षष्ठ तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ६ ॥

अथ सप्तमः तरङ्गः

अथ सर्वेष्टसंसिद्धये प्रवक्ष्ये वटयक्षिणीम् ।

सर्वेष्टसिद्धिदोवटयक्षिणीमन्त्रः

पद्मनाभो वियद्वायूझिण्टीशस्थौ सदृग्वियत् ॥ १ ॥
यक्षि यक्षि महायक्षि वटतोयं सनासिकम् ।
क्षनिवासिनि शीघ्रं मे सर्वसौख्यं कुरुद्वयम् ॥ २ ॥
स्वाहा द्वात्रिंशदर्णोऽयं मन्त्रोऽखिलसमृद्धिदः ।
ऋषिः [1]स्याद्विश्रवाश्छन्दोऽनुष्टुब्देवीं तु यक्षिणी ॥ ३ ॥

* नौका *

अथ वटयक्षिणीमाह – **पद्मनाभ** इति । पद्मनाभ ए । झिंटीशस्थौ वियद्वायू एस्थितौ हकारयकारौ ह्ये । सदृक् वियत् हि ॥ १ ॥ यक्षीत्यादि स्वरूपम् । सनासिकं तोयम् ऋयुतो वः । वृक्षेत्यादि स्वरूपं स्पष्टम् । यथा – एह्येहि यक्षियक्षिमहायक्षिवटवृक्षनिवासिनि शीघ्रं मे सर्वसौख्यं कुरु कुरु

* अरित्र *

अब **सभी मनोरथों की सिद्धि के लिए वटयक्षिणी मन्त्र** कहता हूँ –

पद्मनाभ (ए) झिण्टीशस्थ (ए) वियद् और वायु ह्य (ह्ये) सदृक् (इकारसहित) वियत् (ह) अर्थात् हि तदनन्तर 'यक्षि यक्षि महायक्षि वट' पद फिर सनासिक ऋकार सहित तोय व् (अर्थात् वृ) तदनन्तर 'क्षनिवासिनी शीघ्रं मे सर्वसौख्यं' इतना पद फिर दो बार कुरु (कुरु कुरु) इसके अन्त में 'स्वाहा' लगाने से सर्वसमृद्धिदायक बत्तीस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १-३ ॥

विमर्श - वटयक्षिणी मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'एह्येहि यक्षि यक्षि महायक्षि वटवृक्षनिवासिनी शीघ्रं मे सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा' (३२) ॥ १-३ ॥

इस मन्त्र के विश्रवा ऋषि हैं, अनुष्टुप छन्द है, तथा यक्षिणी देवता हैं ॥ ३॥

विमर्श - विनियोग विधि - 'ॐ अस्य श्रीवटयक्षिणीमन्त्रस्य विश्रवा-ऋषिरनुष्टुप्छन्दः यक्षिणीदेवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः' ॥ १-३ ॥

मन्त्र के क्रमशः ३, ४, ४, ८, ७, एवं ६ अक्षरों से अङ्गन्यास करना

---

१. अस्य श्रीवटयक्षिणीमन्त्रस्य विश्रवाऋषिरनुष्टुप्छन्द् यक्षिणीदेवताममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यासोऽङ्गन्यासश्च

वह्निभिः श्रुतिभिर्वेदैर्वसुभिः सप्तभी रसैः ।
प्रकुर्वीत षडङ्गानि मन्त्रवर्णान्न्यसेत्तनौ ॥ ४ ॥
मस्तके नेत्रयोर्वक्त्रे नासाकर्णांसयुग्मतः ।
स्तनयोः पार्श्वयोर्द्वन्द्वे हृदि नाभौ शिवोदरे ॥ ५ ॥
कट्यूरूनाभिर्जङ्घासु जानुनोर्मणिबन्धयोः ।
हस्तयोर्मूर्ध्नि विन्यस्य ध्यायेद् देवीं वटस्थिताम् ॥ ६ ॥

ध्यानजपहोमावरणदेवतादिकथनम्

अरुणचन्दनवस्त्रविभूषितां
सजलतोयतुल्यतनूरुचम् ।

स्वाहा । द्वात्रिंशदर्णः ॥ २–४ ॥ वर्णन्यासमाह – **मस्तक** इति । नेत्रयोर्द्वौ । नासाकर्णांसस्तनपार्श्वकट्यूरूजङ्घाजानुमणिबन्धहस्तेषु द्वौ द्वौ । अन्यत्रैकः । शिवं लिङ्गम् ॥ ५–६ ॥ ध्यानमाह – **अरुणेति** । क्रमुकं पूगीफलं दक्षे ॥ ७ ॥

चाहिए । फिर मस्तक, दोनों नेत्र, मुख, नासिकाद्वय, दोनों कान, दोनों कन्धे, दोनों स्तन, दोनों पार्श्वभाग, हृदय-नाभि, लिङ्ग, उदर, कटि, ऊरु, नाभि, दोनों जंघा, दोनों जानु, दोनों मणिबन्ध, दोनों हाथ तथा शिर में मन्त्र के प्रत्येक वर्णों से न्यास कर वटवृक्ष में स्थित देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ४-६ ॥

विमर्श – प्रयोग विधि - 'एह्येहि हृदयाय नमः, यक्षि यक्षि शिरसे स्वाहा, महायक्षि शिखायै वषट्, वटवृक्षनिवासिनि कवचाय हुं, शीघ्रं में सर्वसौख्यं नेत्रत्रयाय वौषट्, कुरु कुरु स्वाहा अस्त्राय फट् ।

सर्वाङ्गन्यास - ॐ ऐं नमः मस्तके, ह्वीं नमः दक्षनेत्रे, हिं नमः वामनेत्रे,
यं नमः मुखे, क्षिं नमः दक्षनासायाम्, यं नमः वामनासायाम्,
क्षिं नमः दक्षकर्णे, में नमः वामकर्णे, हां नमः दक्षांसे,
यं नमः वामांसे, क्षि नमः दक्षिणस्तने वं नमः वामस्तने,
टं नमः दक्षिणपार्श्वे, वृं नमः वामपार्श्वे, क्षं नमः हृदि,
निं नमः नाभौ, वां नमः लिङ्गे, सिं नमः उदरे,
निं नमः दक्षिणकट्याम्, शीं नमः वामकट्याम्, घ्रं नमः दक्षिणउरौ,
में नमः वामउरौ, सं नमः नाभौ, र्वं नमः दक्षिणजंघायाम्,
सौं नमः वामजंघायाम्, ख्यं नमः दक्षिणजानौ, कुं नमः वामजानौ,
रुं नमः दक्षिणमणिबन्धे, कुं नमः वाममणिबन्धे, रुं नमः दक्षिणहस्ते
स्वां नमः वामहस्ते हां नमः शिरसि ॥ ४-६ ॥

अब **देवी का ध्यान** कहते हैं - लाल चन्दन एवं लाल वस्त्रों से विभूषित

स्मरकुरङ्गदृशं वटयक्षिणीं
क्रमुकनागलतादलयुक्कराम् ॥ ७ ॥
लक्षद्वयं जपेन्मन्त्रं बन्धूकैस्तद्दशांशतः ।
हुत्वा पीठे यजेद्देवीमुच्यन्ते पीठशक्तयः ॥ ८ ॥
कामदामानदानक्तामधुरा मधुरानना ।
नर्मदाभोगदानन्दाप्राणदा पीठशक्तयः ॥ ९ ॥
मनोहराय यक्षिण्या योगपीठाय[1] हृन्मनुः ।
पीठस्योक्तस्तत्र देवीं पूजयेद्वटयक्षिणीम् ॥ १० ॥

शरीर वाली, विशाल जलधर बादल के समान कान्ति वाली, मदमत्त हरिणी के समान चञ्चल नेत्रों वाली, अपने दो हाथों में पूगींफल एवं नागवल्ली दल लिए हुये वटयक्षिणी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ७ ॥

इस मन्त्र का २ लाख जप करना चाहिए तथा बन्धूक पुष्पों से उसका दशांश होम करना चाहिए । अब पीठशक्तियों का वर्णन करता हूँ ॥ ८ ॥

१. कामदा, २. मानदा, ३. नक्ता, ४. मधुरा, ५. मधुरानना, ६. नर्मदा, ७. भोगदा, ८. नन्दा और ९. प्राणदा ये पीठ की नव शक्तियाँ कहीं गई हैं । 'मनोहराय यक्षिणी योगपीठाय नमः' यह पीठ मन्त्र है, इसी पूजित पीठ पर वटयक्षिणी का पूजन करना चाहिए ॥ ९-१० ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - पूर्वोक्त श्लोक (७) के अनुसार देवी का ध्यान कर मानसोपचार से पूजन करने के अनन्तर अर्घ्यपत्र इस प्रकार स्थापित करना चाहिए । यथा - 'फट्' से अर्घ्यपात्र प्रक्षालित कर ॐ से, जल, गन्ध, पुष्पादि डाल कर 'गंगे च यमुने चैव' इस मन्त्र से उस जल में तीर्थ का आवाहन करना चाहिए । तदनन्तर धेनुमुद्रा प्रदर्शित कर अर्घ्यपात्र पर हाथ रखकर मूल मन्त्र का दश बार जप करना चाहिए फिर अर्घ्यपात्र से कुछ जल प्रोक्षणी पात्र में डालकर मूलमन्त्र पढकर ३ बार अपने शरीर का तथा पूजन सामग्री का प्रोक्षण करना चाहिए । तदनन्तर वृत्ताकार कर्णिका, उसके बाद अष्टदल कमल, तदनन्तर भूपुर इस प्रकार का यन्त्र बनाकर यक्षिणी देवी का पूजन करना चाहिए ।

इसके बाद **पीठ पूजा** इस प्रकार करनी चाहिए - ॐ आधार शक्तये नमः,
ॐ प्रकृतये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः,
ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः, ॐ रत्नद्वीपाय नमः,
ॐ कल्पवृक्षाय नमः, ॐ स्वर्णसिंहासनाय नमः, ॐ आनन्दकन्दाय नमः,
ॐ संविन्नालाय नमः, ॐ सर्वतत्त्वात्मकपद्माय नमः, ॐ सं सत्त्वाय नमः,
ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ आं आत्मने नमः,
ॐ अं अन्तरात्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

१. मनोहराय यक्षिणीयोगपीठाय नमः ।

कर्णिकायां षडङ्गानि पत्रेष्वेता यजेत्पुनः ।
सुनन्दाचन्द्रिकाहासा सुलापामदविह्वला ॥ ११ ॥
आमोदा च प्रमोदापि वसुदेत्यष्टशक्तयः ।
इन्द्रादीनथ वज्रादीन् सम्पूज्य लभते सुखम् ॥ १२ ॥

इसके बाद पूर्वादिदिशाओं के क्रम से नव शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । यथा - ॐ कामदायै नमः, ॐ मानदायै नमः, ॐ नक्तायै नमः,
ॐ मधुरायै नमः, ॐ मधुराननायै नमः, ॐ नर्मदायै नमः,
ॐ भोगदायै नमः, ॐ नन्दायै नमः, ॐ प्राणदायै नमः ।

तदनन्तर 'ॐ मनोहराय यक्षिणी योगपीठाय नमः', इस मन्त्र से पीठ पूजा कर, देवी के यन्त्र में देवी की कल्पना कर श्लोक ७ में वर्णित देवी के स्वरूप का ध्यान कर, पूजोपचार से उनका पूजन कर, 'आज्ञापय आवरणं ते पूजयामि' इस मन्त्र से आज्ञा ले आवरण पूजन करनी चाहिए ॥ ६-१० ॥

वटयक्षिणीपूजन यन्त्रम्

अब **आवरण पूजा का विधान** करते हैं -

कर्णिका में षडङ्गपूजा तथा पत्रों में १. सुनन्दा, २. चन्द्रिका, ३. हासा, ४. सुलापा, ५. मदविह्वला, ६. आमोदा, ७. प्रमोदा एवं ८. वसुदा इन आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए । इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा भूपुर से बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करने से साधक सुख प्राप्त करता है ॥ ११-१२ ॥

विमर्श - आवरण पूजा प्रयोग - **प्रथमावरण** में वृत्ताकार कर्णिका में
एह्येहि हृदयाय नमः, यक्षियक्षि शिरसे स्वाहा,
महायक्षि शिखायै वषट् वटवृक्षनिवासिनि कवचाय हुम्
शीघ्रं मे सर्वसौख्यं नेत्रत्रयाय वौषट् कुरु कुरु स्वाहा अस्त्राय फट् ।

द्वितीयावरण में अष्टदलों में - ॐ सुनन्दायै नमः, ॐ चन्द्रिकायै नमः,
ॐ हासायै नमः, ॐ सुलापायै नमः, ॐ मदविह्वलायै नमः,
ॐ आमोदायै नमः, ॐ प्रमोदायै नमः, ॐ वसुदायै नमः,

इसके बाद **तृतीयावरण** में भूपुर के भीतर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से
ॐ इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ अग्नये नमः, आग्नेये,
ॐ यमाय नमः, दक्षिणे, ॐ निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये,
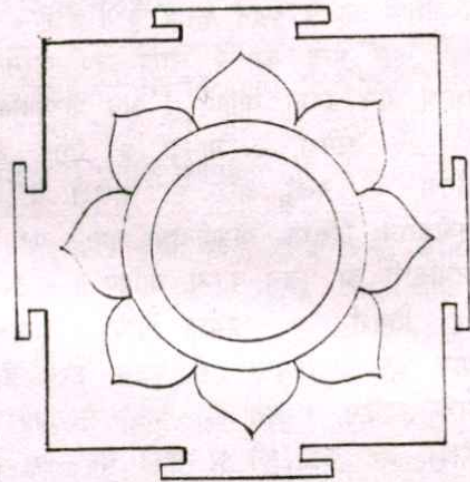
एवमाराधितो मन्त्रः प्रयोगेषु क्षमो भवेत्।

देव्याः प्रत्यक्षदर्शनादिफलकथनम्

निर्मनुष्ये वने गत्वा न्यग्रोधाधस्तले जपेत् ॥ १३ ॥
प्रतिघस्रं तमस्विन्यां सहस्रं नियतेन्द्रियः।
सप्तमे दिवसे प्राप्ते कृत्वा चन्दनमण्डलम् ॥ १४ ॥
तत्राज्यदीपं कृत्वास्मिन्पूजयेद्वटयक्षिणीम्।
तदग्रे प्रजपेन्मन्त्रमानिशीथं समाहितः ॥ १५ ॥
शृणोति नूपुरारावं मन्त्रीगीतध्वनिं ततः।
श्रुत्वैव प्रजपेन्मन्त्रं वीतत्रासश्च तां स्मरेत् ॥ १६ ॥
ततः प्रत्यक्षतो देवीमीक्षते सुरतार्थिनीम्।
तत्कामपूरणात् सा तु ददातीष्टानि मन्त्रिणे ॥ १७ ॥

ॐ वरुणाय नमः, पश्चिमे, ॐ वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ सोमाय नमः, उत्तरे ॐ ईशानाय नमः, ऐशान्ये,
ॐ ब्रह्मणे नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ अनन्ताय नमः, पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये,

इसके बाद **चतुर्थावरण** में भूपुर के बाहर वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए -

ॐ वज्राय नमः, पूर्वे, ॐ शक्तये नमः, आग्नेये,
ॐ दण्डाय नमः, दक्षिणे, ॐ खड्गाय नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ पाशाय नमः पश्चिमे, ॐ अकुंशाय नमः वायव्ये,
ॐ गदायै नमः उत्तरे, ॐ त्रिशूलाय नमः ऐशान्ये,
ॐ पद्माय नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये,
ॐ चक्राय नमः निर्ऋतिपश्चिमयोर्मध्ये।

इस प्रकार आवरण पूजा कर पञ्चोपचारों से देवी का पूजन कर चार पुष्पाञ्जलि समर्पित कर विधिवत् जप प्रारम्भ करना चाहिए ॥ ११-१२ ॥

इस प्रकार आराधना करने से साधक काम्य प्रयोग का अधिकारी हो जाता है । किसी निर्जन वन में जाकर वट वृक्ष के नीचे प्रतिदिन रात्रि में संयम पूर्वक जप करना चाहिए । तदनन्तर सातवें दिन चन्दन से मण्डल बनाकर उसमें घी का दीपक प्रज्वलित कर मण्डल में वटयक्षिणी का पूजन करना चाहिए । अत्यन्त सावधानी से मध्य रात्रिपर्यन्त उसके सामने जप करते रहने से साधक को नूपुर की ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है । शब्द को सुनते हुये साधक को देवी का स्मरण करते हुये जप में निर्भय होकर लगे रहना चाहिए । ऐसा करते रहने से कुछ क्षणों के बाद मदविह्वला यक्षिणी देवी रति की इच्छा करती हुई साधक के सामने प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ने लगती है । साधक द्वारा उसकी

किं बहूक्तेन सर्वेष्टपूरणीवटयक्षिणी ।

सर्वसौख्यप्रदोऽपरो यक्षिणीमन्त्रः

पद्माद्वयं यक्षिणीति सचन्द्रं गगनत्रयम् ॥ १८ ॥
वैश्वानरप्रियान्तोऽयं दशवर्णो[1] मनुर्मतः ।
ऋषिः पूर्वोदितश्छन्दः पंक्तिर्देवो[2] तु यक्षिणी ॥ १९ ॥
चन्द्रैकत्रित्रियुग्मेन सर्वेणाङ्गक्रिया मता ।
स्मरेच्चम्पककान्तारे रत्नसिंहासनस्थिताम् ॥ २० ॥
सुवर्णप्रभां रत्नभूषाभिरामां
जपापुष्पसच्छायवासो युगाढ्याम् ।
चतुर्दिक्षु दासीगणैः सेवितांघ्रिं
भजे सर्वसौख्यप्रदां यक्षिणीं ताम् ॥ २१ ॥

पद्मेति । पद्माद्वयं श्रीं श्रीं । यक्षिणी स्वरूपम् । सचन्द्रं गगनत्रयं हं हं हं ॥ १८ ॥ वैश्वानरप्रिया स्वाहा ॥ १९ ॥ चम्पकानां कान्तारे वने ॥ २० ॥

कामना पूर्ति किये जाने पर वह उसे वर प्रदान करती है इस विषय में बहुत क्या कहें, वह साधकों के सारे मनोरथों को पूर्ण कर देती हैं ॥ १३-१७ ॥

अब **वटयक्षिणी का अन्य मन्त्र** कहते हैं -

पद्माद्वय (श्रीं श्रीं) फिर 'यक्षिणी' पद फिर सचन्द्र गगनत्रय (हं हं हं) इसके बाद वैश्वानर प्रिया (स्वाहा) लगाने से वटयक्षिणी का दूसरा दशाक्षर मन्त्र निष्पन्न हो जाता है ॥ १८-१९ ॥

विमर्श - वटयक्षिणी देवी के इस **दशाक्षर मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'श्रीं श्रीं यक्षिणी हं हं हं स्वाहा' ।

इस मन्त्र के पूर्वोक्त विश्रवा ऋषि हैं, पंक्ति छन्द है तथा यक्षिणी देवता हैं ॥ १९ ॥ मन्त्र के १, १, ३, ३ और २ अक्षरों से न्यास करे तथा समस्त मन्त्राक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ २० ॥

अब **यक्षिणी देवी का ध्यान** कहते हैं -

चम्पक वन में रत्नसिंहासन पर विराजमान सुवर्ण के समान कान्तिवाली, रत्ननिर्मित आभूषणों से सुशोभित जपा, कुसुम के समान लाल वर्ण के युगल वस्त्र धारण करने वाली दासियों द्वारा चारों दिशाओं में सेव्यमान चरणयुगलों वाली एवं अपने साधकों को समस्त सुख प्रदान करने वाली यक्षिणी देवी का ध्यान करता हूँ ॥ २०-२१ ॥

---

१. श्रीं श्रीं यक्षिणी हं हं हं स्वाहेति दशार्णः ।

२. अस्य वटयक्षिणीमन्त्रस्य विश्रवाऋषिः पंक्तिश्छन्दः यक्षिणीदेवता ममाभीष्टसद्धियर्थे जपे विनियोगः ।

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं जपापुष्पैर्दशांशतः ।
जुहुयात् पूर्ववत् पीठे पूर्वोक्ते प्रयजेदिमाम् ॥ २२ ॥

भूमिगतनिधिदर्शनदो मेखलायक्षिणीमन्त्रः

क्रोधीशवह्नीमन्विन्दुयुक्तौ मदनमेखले[1] ।
हृदयाग्निप्रियान्तोऽयं ताराद्यो द्वादशाक्षरः ॥ २३ ॥
अस्येज्यापूर्ववत्सर्वा मेखलायक्षिणी त्वियम् ।
चतुर्दशाहपर्यन्तं मधूकावनिरुट्तले ॥ २४ ॥
प्रजपेदयुतं नित्यं सहस्रं हवनं चरेत् ।
मधूकपुष्पैर्मध्वक्तैस्तत्काष्ठैश्च हुताशने ॥ २५ ॥

मन्त्रान्तरमाह – क्रोधीशेति । मन्बिन्दुयुक्तौ । औ बिन्दुयुक्तौ क्रोधीशवह्नीकर तेन क्रौं । मदनमेखले स्वरूपम् । हृदयं नमः । अग्निप्रिया स्वाहा ॥ २३ ॥ मधूकावनिरुट्तले । मधूकवृक्षाधस्तात् ॥ २४–२६ ॥

इस प्रकार ध्यान कर उक्त दशाक्षर मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए । फिर जपा कुसुम से दशांश होम करना चाहिए । पुनः पूर्वोक्त पीठ पर देवी का पूजन करना चाहिए ॥ २२ ॥

विमर्श - प्रयोग विधि - 'ॐ अस्य श्रीवटयक्षिणीमन्त्रस्य विश्रवाऋषिः, पक्तिंश्छन्दः वटयक्षिणीदेवता आत्मनोऽभीष्टसिद्धये मन्त्रजपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - श्रीं हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, यक्षिणी शिखायै वषट् हं हं हं कवचाय हुम्, स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् श्रीं श्रीं श्रीं यक्षिणी हं हं हं स्वाहा अस्त्राय फट् । आगे की पूजा विधि ७-८-१२ के अनुसार करनी चाहिए ॥ २१-२२ ॥

अब **मेखला यक्षिणी मन्त्र** कहते हैं -

औ एवं बिन्दु युक्त क्रोधीश एवं वह्नि (क्रौं) तदनन्तर 'मदनमेखले' यह पद फिर हृद् (नमः) अन्त में अग्निप्रिया (स्वाहा) तथा आदि में तार (ॐ) लगाने से १२ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २३ ॥

विमर्श - मेखलायक्षिणी मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ क्रौं मदन मेखले नमः स्वाहा' ॥ २३ ॥

यह **मेखलायक्षिणी मन्त्र** है । इसके भी पूजन का विधान पूर्ववत् है ।

महुआ के वृक्ष के नीचे निरन्तर १४ दिन पर्यन्त १० हजार की संख्या में प्रतिदिन के क्रम से जप करना चाहिए तथा महुए की लकडी से प्रज्वलित अग्नि में मधुमिश्रित महुये के फूलों की एक हजार आहुतियाँ देनी चाहिए । इस प्रकार

---

१. ॐ क्रौं मदनमेखले नमः स्वाहेति द्वादशार्णः ।

सन्तुष्टैवं कृते देवी प्रयच्छेदञ्जनं शुभम् ।
येनाक्तनयनो मन्त्री निधिं पश्येद्धरागतम् ॥ २६ ॥

रोगनाशको विशालायक्षिणीमन्त्रः

प्रणवो वाग्विशाले च माया पद्मा मनोभवः ।
ठद्वयान्तो दशार्णोऽयं[1] विशालायक्षिणी मनुः ॥ २७ ॥
मुन्यादि पूजापर्यन्तं पूर्ववत्समुदीरितम् ।
चिन्तातरोरधःस्थित्वा शुचिर्लक्षं जपेन्मनुः ॥ २८ ॥
शतपत्रैर्दशांशेन जुहुयात्तोषिता ततः ।
रसं ददाति येनासौ नीरोगायुरवाप्नुयात् ॥ २६ ॥

वाराहीमन्त्र शत्रुनिग्रहकरः

वाक्चन्द्रशेखरौ शार्ङ्गी पिनाकीशौ मनुस्थितौ ।

मन्त्रान्तरमाह – **प्रणव** इति । वाक् ऐं । विशाले स्वरूपं । माया ह्रीं । पद्मा श्रीं । मनोभवः क्लीं । ठद्वयं स्वाहा ॥ २७–२६ ॥ वाराहीमाह – **वागिति** ।

जब साधक यक्षिणी को संतुष्ट करता है तब देवी एक दिव्य अञ्जन साधक को प्रदान करती हैं, जिसे आँखों में लगाने से जमीन में गड़े हुये सारे खजाने निश्चित रूप से दिखाई पडने लगते हैं ॥ २४-२६ ॥

अब **विशालायक्षिणी मन्त्र** कहते है -

प्रणव (ॐ), वाग (ऐं), फिर 'विंशाले' पद, फिर माया (ह्र), पद्मा (श्रीं), मनोरथ (क्लीं), तदनन्तर ठद्वय (स्वाहा) लगाने से १० अक्षरों का विशालायक्षिणी मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २७ ॥

विमर्श - **दशाक्षर विशालायक्षिणी मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ ऐं विशाले ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाहा' ॥ २७ ॥

अब **प्रयोग विधि** कहते हैं - इस मन्त्र के विनियोग से लेकर पूजा पर्यन्त समस्त विधान पूर्वोक्त समझना चाहिए ॥ २८ ॥

चिञ्चा नामक वृक्ष के नीचे बैठकर पवित्रता पूर्वक नियमतः एक लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर शतपत्र से दशांश होम करना चाहिए । ऐसा करने से संतुष्ट हुई देवी रस प्रदान करती हैं जिसके पीने से साधक निरोग रह कर आयुष्मान् होता है ॥ २८-२६ ॥

अब **वार्त्ताली (वाराही अथवा शत्रुघाती) मन्त्र** कहते हैं -

वाक् (ऐं) मनुस्थितौ चन्द्रशेखरौ (ओ बिन्दुयुतौ) शार्ङ्गी पिनाकीश (ग्ल)

---

१. ॐ ऐं विशाले ह्रीं श्रीं क्लीं स्वाहेति दशार्णः ।

लाङ्गलित्रितयं[1] सेन्दुवर्मदीर्घं शुचिप्रिया ॥ ३० ॥
वस्वक्षरमनोः शत्रुघातिनः कपिलो मुनिः[2] ।
छन्दोऽनुष्टुप् च वाराहीवार्तालीदेवतोदिता ॥ ३१ ॥
द्विचन्द्रभूमिचन्द्रैकयुग्मार्णैरङ्गकल्पना ।
वाराहीं चेतसि ध्यायेच्छत्रुनिग्रहकारिणीम् ॥ ३२ ॥

वाराहीध्यानम्

विद्युद्रोचिर्हस्तपद्मैर्दधाना
पाशं शक्तिं मुद्गरं चाङ्कुशं च ।
नेत्रोद्भूतैर्वीतिहोत्रैस्त्रिनेत्रा
वाराही नः शत्रुवर्गं क्षिणोतु ॥ ३३ ॥

मनुस्थितौ चन्द्रशेखरौ शार्ङ्गीपिनाकीशौ । औ बिन्दुयुतौ ग्लौं । ग्लौं । सेन्दुलाङ्गलित्रयं ठत्रयं ठं ठं ठं । दीर्घवर्म हूं । शुचिप्रिया स्वाहा ॥ ३०–३२ ॥ ध्यानमाह – **विद्युदिति** । पाशमुद्गरा दक्षयोः । अंकुशशक्ती वामयोरूर्ध्वाधःस्थयोः । नेत्रजैर्वीतिहोत्रैरग्निभिरस्माकमरिसमूहं नाशयतु ॥ ३३ ॥

अर्थात् ग्लौं, सेन्दुलाङ्गलित्रयं (ठं ठं ठं) दीर्घ वर्म (हूँ) तथा अन्त में शुचिप्रिया (स्वाहा) इस प्रकार आठ अक्षरों का यह मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ३०-३१ ॥

इस शत्रुघाती मन्त्र के कपिल ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, तथा वाराही वार्ताली देवता हैं ॥ ३१ ॥

विमर्श - **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ऐं ग्लौं ठं ठं ठं हूँ स्वाहा' ।

विनियोग विधि - 'ॐ अस्य श्रीशत्रुघातिनः मन्त्रस्य कपिलऋषिरनुष्टुप्छन्दः वाराहीवार्त्तालीदेवताऽत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे मन्त्र जपे विनियोगः' ॥ ३०-३१ ॥

इस मन्त्र के २, १, १, १, १, एवं २ वर्णों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । तदनन्तर शत्रुनिग्रहकारिणी वार्त्ताली देवता का ध्यान करना चाहिए ।

विमर्श - षडङ्गन्यास विधि - ॐ एं ग्लौं हृदयाय नमः, ठं शिरसे स्वाहा, ठं शिखायै वषट्, ठं कवचाय हुम्, हूं नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ३२॥

अब **वार्त्ताली का ध्यान** कहते हैं -

विद्युत के समान कान्तिवाली अपने चारों करकमलों में क्रमशः पाश, शक्ति मुद्गर एवं अंकुश धारण किये हुये त्रिनेत्रा वाराही देवी हमारे शत्रुओं को अपने नेत्रों से निकलने वाली अग्नि से भस्म कर दें ॥ ३३ ॥

---

१. ऐं ग्लौं ठं ठं ठं हं स्वाहा ।

१. अस्य शत्रुघातिनः मन्त्रस्य कपिलऋषिरनुष्टुपछन्दः वाराहीवार्तालीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

वसुलक्षं जपित्वान्ते बिल्वपत्रैर्हयारिजैः ।
धात्रीफलैर्भृङ्गराजैः कुशैर्हूयाद् दशांशतः ॥ ३४ ॥
पूर्वोदिते यजेत्पीठे षडङ्गैर्दिगिनायुधैः ।
एवं सिद्धं मनुं मन्त्री यो जपेच्छत्रुनिग्रहे ॥ ३५ ॥
सृणिना शत्रुमानीय बद्ध्वा पाशेन तं दृढम् ।
मुद्गरेण घ्नतीं मूर्ध्नि तां स्मरन्नयुतं जपेत् ॥ ३६ ॥
जुहुयादयुतं शुद्धैर्वनशुष्कैस्तु गोमयैः ।
प्रक्षिपेद्धोमजं भस्मवापीकूपादिपाथसि ॥ ३७ ॥
तत्पानीयस्य पातारो म्रियन्ते रिपवो ध्रुवम् ।
निर्यान्ति हित्वा स्थानं वा विद्विषन्तः परस्परम् ॥ ३८ ॥
शत्रुनिग्रहणे दक्षा स्मरणादपि मन्त्रिणाम् ।
प्रकीर्तितेयं वाराही धूमावत्यधुनोच्यते ॥ ३९ ॥

धूमावतीविधाने धूमावत्यष्टार्णमन्त्रः

सात्वतत्रितयं सार्घि तत्राद्यौ चन्द्रशेखरौ ।

वसुलक्षमष्टलक्षं हयारिजैः करवीरैः । हूयादित्याशीर्लिङ् ॥ ३४ ॥ दिगिना दिक्पालाः ॥ ३५ ॥ सृणिनांकुशेन ॥ ३६ ॥ पाथसि जले ॥ ३७ ॥ * ॥ ३८–३९ ॥ ज्येष्ठामन्त्रमाह – **सात्वतेति** । सार्घिं उयुतं । सात्वतत्रितयं धत्रयं । तेषु द्वौ

उक्त मन्त्र का ८ लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर विल्वपत्र, कनेर, आँवला, भृङ्गराज एवं कुशाओं से दशांश होम करना चाहिए ॥ ३४ ॥

अब **प्रयोग विधि** कहते हैं - पूर्वोक्त पीठ पर षडङ्ग, दिक्पाल एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर, साधक इस मन्त्र का शत्रुनिग्रह के लिए जप करें । अंकुश से शत्रु को पकड़ कर उसे पाश से दृढ़तापूर्वक बाँधकर, गदा से शत्रु के शिर पर बार बार प्रहार करती हुई वार्त्ताली का ध्यान कर १० दश हजार जप करना चाहिए । इस प्रकार जप करने के पश्चात् वन में सूखे गोबर के कण्डों से १० हजार की संख्या में हवन करना चाहिए । फिर हवन के भस्म को वापी कूँओं आदि के जल में फेंक देना चाहिए । इस प्रकार के पानी को पीने वाले शत्रु निश्चित रूप से मर जाते हैं । अथवा वे आपस में लड़ झगड़ कर उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र भाग जाते हैं ॥ ३५-३८ ॥

यह देवी साधक द्वारा स्मरण करने मात्र से शत्रु विनाश के लिए उद्यत हो जाती हैं । यहाँ तक हमने शत्रुघातिनी वाराही के विषय में बतलाया अब धूमावती के विषय में बतलाता हूँ ॥ ३९ ॥

बैकुण्ठोनन्तसंयुक्तो जलं नेत्रयुतो हरिः ॥ ४० ॥
अष्टार्णो[1] वह्निजायान्तो मन्त्रः शत्रुविनाशनः ।

धूमावतीमन्त्रस्यर्षिदेवतादिकथनम्

पिप्पलादो निचृज्ज्येष्ठा मुनिश्छन्दोऽस्य देवता[2] ॥ ४१ ॥
आद्यबीजद्वयान्तस्थैः षड्वर्णैरङ्गमीरितम् ।
श्मशाने संस्थितां ध्यायेज्ज्येष्ठां वायससंस्थिताम् ॥ ४२ ॥
अत्युच्चामलिनाम्बराखिलजनोद्वेगावहादुर्मना
रूक्षाक्षित्रितया विशालदशना सूर्योदरी चञ्चला ।
प्रस्वेदाम्बुचिताक्षुधाकुलतनुः कृष्णातिरूक्षप्रभा
ध्येया मुक्तकचा सदाप्रियकलिर्धूमावती मन्त्रिणा ॥ ४३ ॥

सबिन्दू । धूं धूं धूं । अनन्तसंयुतो बैकुण्ठः आयुतो मः मा । जलं वः । नेत्रयुतो हरिः । इयुतस्तः ॥ ४० ॥ वह्निजाया स्वाहा ॥ ४१ ॥ *॥ ४२–४५ ॥

अब **धूमावती (ज्येष्ठा) मन्त्र का स्वरूप** कहते हैं -

सर्धि (ऊकार से युक्त) सात्वतत्रितयधकार (धू धू धू), इसके आदि में रहने वाले दो धू पर दो चन्द्रशेखर (धूं धूं धू), फिर अनन्तर संयुक्त वैकुण्ठ (मा), फिर जल (व), फिर नेत्रयुत हरि (ति), तदनन्तर वह्निजाया (स्वाहा) लगाने से आठ अक्षरों का शत्रुविनाशक धूमावती मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ४० ॥

विमर्श - धूमावती (ज्येष्ठा) मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'धूँ धूँ धूमावति स्वाहा' ॥ ४० ॥

इस मन्त्र के पिप्लाद ऋषि हैं, निचृद् छन्द है तथा ज्येष्ठा देवता हैं ॥ ४१॥

जप के प्रारम्भ में मन्त्र के आदि में रहने वाले मात्र दो वर्णो से षडङ्गन्यास करना चाहिए । फिर श्मशान में वायस (कौआ) पर विराजमान ज्येष्ठा देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ४२ ॥

विमर्श - विनियोग विधि - 'ॐ अस्य श्रीधूमावतीमन्त्रस्य पिप्पलाद ऋषिर्निचृच्छन्दः ज्येष्ठादेवता शत्रुविनाशार्थे जपे विनियोगः' ॥ ४१-४२ ॥

षडङ्गन्यास विधि - धूं धूं हृदयाय नमः, धूं धूं शिरसे स्वाहा, धूं धूं शिखायै वषट् धूं धूं कवचाय हुं, धूं धूं नेत्रत्रयाय वौषट्, धूं धूं अस्त्राय फट् ॥ ४१-४२ ॥

अब **ध्यान विधि** कहते हैं - जो कद में बहुत ऊँची (लम्बी) हैं मैला कुचैला वस्त्र धारण करने वाली जिस देवी के दर्शन मात्र से मनुष्य उद्विग्न हो

---

१. धूं धूं धूमावति स्वाहेत्यष्टार्णः ।

२. अस्य धूमावतीमन्त्रस्य पिप्पलादऋषिः निचृच्छन्दः ज्येष्ठादेवता ममाभीष्टसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

धूमावतीमन्त्रफलम्

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं श्मशाने विगताम्बरः ।
निशाभोजी दशांशेन तिलैर्हवनमाचरेत् ॥ ४४ ॥
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे ज्येष्ठां शत्रुविनष्टये ।
केसरेषु षडङ्गानि पत्रस्था अष्टशक्तयः ॥ ४५ ॥
क्षुधातृष्णारतिर्निद्रानिर्ऋतिर्दुर्गतीरुषा ।
अक्षमेति ततो देवा इन्द्राद्या आयुधानि च ॥ ४६ ॥
एवं ज्येष्ठां समाराध्य सिद्धमन्त्रः प्रजायते ।
उपोष्य कृष्णभूताहे नग्नो मुक्तशिरोरुहः ॥ ४७ ॥
शून्यागारे श्मशाने वा कान्तारे भूधरेऽथवा ।
प्रत्यहं प्रजपेन्निर्भीर्ध्यायन्देवीं क्षपाशनः ॥ ४८ ॥

रुषा । अक्षमा ॥ ४६–४७ ॥ क्षपाशनो रात्रिभोजी ॥ ४८–४६ ॥

जाता है । खिन्न मन वाली जिस देवी के तीन रुखे (क्रोध युक्त) नेत्र हैं, दाँत बहुत बड़े बड़े हैं सूर्य के समान जिनका पेट बहुत गोल एवं बड़ा है, जो स्वभावतः चञ्चल हैं, पसीने से लथपथ कृष्णवर्णा जिन देवी के शरीर की कान्ति अत्यन्त रुक्ष है । भूख से तड़पती हुई सर्वदा कलहकारिणी, विशीर्ण केशो वाली ऐसी धूमावती देवी का ध्यान साधक को करना चाहिए ॥ ४३ ॥

इस प्रकार देवी का ध्यान करते हुये श्मशान स्थल में विवस्त्र (नंगा) होकर रात्रि में भोजन करते हुये एक लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर उसका दशांश तिलों से होम करना चाहिए ॥ ४४ ॥

शत्रुनाश के लिए पूर्वोक्त पीठ पर ज्येष्ठा देवी का पूजन करना चाहिए। केशरों में षडङ्गों की पूजा करनी चाहिए, तथा पत्रों में आठ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए ॥ ४५ ॥

१. क्षुधा, २. तृष्णा, ३. रति, ४. निर्ऋति, ५. निद्रा, ६. दुर्गति, ७. रूषा और ८. अक्षमा ये अष्ट शक्तियाँ हैं, तदनन्तर इन्द्रादि दश दिक्पालों की, फिर उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करे । इस प्रकार ज्येष्ठा (धूमावती) की आराधना कर साधक शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ ४६-४७ ॥

अब **ज्येष्ठा की आराधना विधि** कहते हैं -

ज्येष्ठा मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि को उपवास करते हुए नग्नावस्था में शिर के बालों को विकीर्ण विखरा हुआ कर किसी शून्य घर में, श्मशान में, किसी गहन वन में अथवा किसी गुफा में देवी (धूमावती) का ध्यान कर रात्रि में भोजन करते हुए प्रतिदिन नियतसंख्या में जप करें । साधक इस

एवं लक्षं जपन्मन्त्री नाशयेदचिरादरिम् ।
जुह्वता लवणोपेतां राजिकां निशि तत्फलम् ॥ ४६ ॥

कर्णपिशाचिनीमन्त्रस्तद्विधानवर्णनम्

तारो मायाकर्णपिशा सदृशौ कूर्मधान्तिमौ[1] ।
कर्णे मे विधिदण्डीरो ठद्वयं षोडशार्णकम्[2] ॥ ५० ॥
मनुर्ऋष्यादिपूर्वोक्तं देवता तु पिशाचिनी ।
एकैकाङ्गाग्निरामाक्षिवर्णैरङ्गं मनो मतम् ॥ ५१ ॥

कर्णपिशाचिनीमाह – **तार** इति । तार ॐ । माया ह्रीं । कर्णपिशा स्वरूपम् । कूर्मधान्तिमौ चनौ । सद्दृशौ इयुतौ । 'चिनि' कर्णे मे स्वरूपम् । विधिः कः । दण्डी थः । इरो यः । ठद्वयं स्वाहा ॥ ५० ॥ षडङ्गमाह – **एकेति** । अङ्गानि षट् । अग्नयस्त्रयो रामाश्च ॥ ५१ ॥ *॥ ५२–५५ ॥

प्रकार एक लाख जप कर लेने पर शीघ्र ही अपने शत्रुओं का विनाश कर देता है । किन्तु उसे वह फल तब होता है जब वह रात्रि के समय नमक युक्त राई का प्रतिदिन हवन करे ॥ ४७-४६ ॥

अब **कर्णपिशाचिनी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), फिर 'कर्णपिशा', फिर सदृक् कूर्मघान्तिम (चिनि), फिर 'कर्णे' 'मे', फिर विधि (क), दण्डी (थ), फिर इ (य) और अन्त में ठद्वय (स्वाहा) लगाने से सोलह अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ५० ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं कर्णपिशाचिनि कर्णे मे कथय स्वाहा' ॥ ५० ॥

इस मन्त्र के ऋषि छन्द पूर्वोक्त (द्र० ७-४१) हैं तथा कर्णपिशाचिनी देवता हैं । इस मन्त्र के १, १, ६, ३, ३ और दो इन मन्त्राक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ५१ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीकर्णपिशाचिनीमन्त्रस्य पिप्लादऋषिः निचृद-छन्दः कर्णपिशाचिनीदेवता अभीष्टसिद्ध्यर्थ मन्त्र जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ कर्णपिशाचिनि शिखायै वषट्, ॐ कर्णे में कवचाय हुम्
ॐ कथय नेत्रत्रयाय वौषट् ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ५१ ॥

---

१. ॐ ह्रीं कर्णविशाचिनि कर्णे मे कथय स्वाहेति षोडशार्णः ।

२. अस्य कर्णपिशाचिनीमन्त्रस्य पिप्पलादऋषिः निचृच्छन्दः कर्णपिशाचिनीदेवता ममाभीष्टसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

चितासनस्थां नरमुण्डमालां
विभूषितामस्थिमणीन्कराब्जैः।
प्रेतां नरान्त्रैर्दधतीं कुवस्त्रां
भजामहे कर्णपिशाचिनीं ताम्॥ ५२॥

श्मशानस्थः शवस्थो वा जपेल्लक्षं समाहितः।
दशांशं जुहुयाद्वह्नौ बिभीतकसमिद्वरैः॥ ५३॥
यजेत् पूर्वोदिते पीठे षडङ्गामरहेतिभिः।
सिद्धमन्त्रे जपं कुर्यादधस्ताद् बदरोतरोः॥ ५४॥
अशुचिर्लक्षसंख्यातं तेन तुष्टा पिशाचिनी।
परचित्तस्थितां वार्तां भाविनीं च वदेच्छ्रुतौ॥ ५५॥

शीतलामन्त्रस्तद्विधानवर्णनम्

ध्रुवः शिवारमाशीतलायै हार्द नवाक्षरः[1]।
उपमन्युश्च बृहतीं शीतला मुनिपूर्विका[2]।
षड्दीर्घयुक्छिवालक्ष्मीबीजाभ्यां स्यात्षडङ्गकम्॥ ५६॥

शीतलामाह – **ध्रुव** इति । ध्रुव ॐ । शिवा ह्रीं । रमा श्रीं । शीतलायै स्वरूपम् । हार्दं नमः । षडङ्गमाह – **षडिति** । ह्रीं श्रीं ह्रत् । ह्रीं श्रीं शिर इति ॥ ५६॥

अब **कर्णपिशाचिनि देवी का ध्यान** कहते हैं -

चिता पर आसन लगाकर कर बैठी हुई नर मुण्ड माला से विभूषित अपने कर कमलों में अस्थि की मणियों को धारण की हुई मनुष्य की आँतों से प्रसन्न रहने वाली मैला, कुचैला, फटा कुवस्त्र धारण करने वाली कर्णपिशाचिनी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ५२ ॥

श्मशान में अथवा शव पर बैठकर एकाग्र मन से पिशाचिनी मन्त्र का एक लाख जप करें । तदनन्तर बिभीतक (बहेडा) की समिधाओं से दशांश हवन करें ॥ ५३ ॥

पूर्वोक्त पीठ पर षडङ्ग पूजा, दिक्पाल एवं उनके वज्रादि आयुधों सहित देवी का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर बेर के पेड़ के नीचे अपवित्रतापूर्वक लक्ष संख्या में जप करना चाहिए । इस क्रिया से संतुष्ट पिशाचिनी दूसरों की मन की बातें तथा भावी घटनाओं को कान में बतला देती हैं ॥ ५४-५५ ॥

अब **शीतला देवी के मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

---

१. ह्रीं श्रीं शीतलायै नम इति नवार्णं ।

२. अस्य शीतलामन्त्रस्य उपमन्युऋषिः बृहतीछन्दः शीतलादेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

दिग्वाससं मार्जनिका च शूर्पं
करद्वये सन्दधतीं घनाभाम्।
श्रीशीतलां सर्वरुजार्तिनष्टौ
रक्ताङ्गरागस्रजमर्चयामि ॥ ५७ ॥
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं पायसेन सहस्रकम्।
जुहुयात्पूर्ववत्पीठे स्फोटानां नाशिनी त्वियम् ॥ ५८ ॥
नाभिमात्रे जले स्थित्वा यः सहस्रं जपेन्मनुम्।
तेन सम्मार्जितास्तीव्राः स्फोटा नश्यन्ति तत्क्षणात् ॥ ५९ ॥

स्वप्नेश्वरीमन्त्रस्तद्विधानवर्णनम्

प्रणवः कमला स्वप्नेश्वरिकार्यं च मे वद।
स्वाहा त्रयोदशार्णोऽयं[1] मन्त्रो मुन्यादिपूर्ववत् ॥ ६० ॥

ध्यानमाह – **दिगिति** । मार्जनी दक्षे । शूर्पं वामे ॥ ५७ ॥ * ॥ ५८–५९ ॥ स्वप्नेश्वरीमाह – **प्रणव** इति । प्रणव ॐ । कमला श्रीं । स्वरूपमन्यत् ॥ ६० ॥

ध्रुव (ॐ) शिवा (ह्रीं) रमा (श्रीं) फिर शीतलायै इसके अन्त में हृदय (नमः) लगाने से नवाक्षर शीतला मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ५६ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ ह्रीं श्रीं शीतलायै नमः ।

इस मन्त्र के उपमन्यु ऋषि हैं वृहती छन्द है तथा शीतला देवता हैं । ६ व दीघ्रवर्ण से युक्त शिवा माया बीज और लक्ष्मीबीज (श्रीं) से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ५६ ॥ **विमर्श** - ॐ ह्रां श्रीं हृदयाय नमः ॐ ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रूं श्रीं शिखायै वषट्, ॐ ह्री श्रीं कवचाय हुं,
ॐ ह्रौं श्री नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः श्रीं अस्त्राय फट् ॥ ५६ ॥

अब **शीतला देवी का ध्यान** कहते हैं -

दिगम्बरा (नग्ना) अपने दोनों हाथों में क्रमशः झाड़ू और सूप लिए हुये बादलों के समान काले आभा वाली, रक्तवर्ण का अङ्गराग तथा रक्तवर्ण की मालाधारण की हुई श्री शीतला देवी का समस्त रोगों के विनाश के लिए मैं ध्यान करता हूँ ॥ ५७ ॥

शीतला मन्त्र का दश हजार की संख्या में जप करना चाहिए । तदनन्तर खीर की एक हजार आहुतियाँ देनी चाहिए । यह देवी स्फोट (फोटका) की जाति के समस्त घावों को अच्छा कर देने वाली मानी गई है ॥ ५८ ॥

जो व्यक्ति नाभि मात्र जल में स्थित होकर इस मन्त्र का एक हजार जप करता है उस व्यक्ति के द्वारा संस्मार्जित कुशा से सभी प्रकार के भयानक स्फोट (फोटका) आदि तत्काल नष्ट हो जाते हैं ॥ ५९ ॥

---

१. ॐ श्रीं स्वप्नेश्वरिकार्यं मे वद स्वाहेति त्रयोदशार्णः ।

अक्षिवेदाक्षिभूयुग्मनेत्रार्णैरङ्गकं मनोः ।
विन्यस्य देवतां ध्यायेत्स्वप्नेशीमिष्टसिद्धये ॥ ६१ ॥
वराभयेपद्मयुगं दधानां
करैश्चतुर्भिः कनकासनस्थाम् ।
सिताम्बरां शारदचन्द्रकान्तिं
स्वप्नेश्वरीं नौमि विभूषणाढ्याम् ॥ ६२ ॥
लक्षं जपेद्बिल्वपत्रैर्जुहुयात्तद्दशांशतः ।
पूर्वोदिते यजेत्पीठे षडङ्गत्रिदशायुधैः ॥ ६३ ॥
रात्रौ सम्पूज्य देवेशीमयुतं पुरतो जपेत् ।
शयीतब्रह्मचर्येण भूमौ दर्भास्थिताजिनैः ॥ ६४ ॥

॥ ६१ ॥ ध्यानमाह – **वरेति** । वरो दक्षे ॥ ६२ ॥ त्रिदशा इन्द्रादयः ॥ ६३ ॥

अब **स्वप्नेश्वरी का मन्त्रोद्धार** कहते हैं -

प्रणव (ॐ), कमला (श्रीं), फिर 'स्वप्नेश्वरि कार्यं मे वद', इसके बाद स्वाहा लगाने से तेरह अक्षरों का स्वप्नेश्वरी मन्त्र निष्पन्न होता है - इसके मुनि आदि पूर्ववत् हैं ॥ ६० ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ श्रीं स्वप्नेश्वरि कार्यं में वद स्वाहा' ।

विनियोग - 'अस्य श्रीस्वप्नेश्वरीमन्त्रस्य उपमन्युऋषिः बृहतीछन्दः स्वप्नेश्वरीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ॥ ६० ॥

इस मन्त्र के २, ४, २, १, २ और २ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । न्यास करने के पश्चात् स्वप्नेश्वरी का ध्यान करना चाहिए ॥ ६१ ॥

विमर्श - षडङ्गन्यास - ॐ श्रीं हृदयाय नमः, ॐ स्वप्नेश्वरि शिरसे स्वाहा,
ॐ कार्यं शिखायै वषट् मे कवचाय हुं, वद नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ६१ ॥

अब **स्वप्नेश्वरी देवी का ध्यान** कहते हैं -

अपने चारों हाथों में वर, अभय एवं दो कमलों को धारण की हुई स्वर्णरचित आसन पर विराजमान, श्वेत वस्त्र धारण करने वाली तथा शरत्कालीन चन्द्रमा के समान कान्तिमती, विविध आभूषणों से अलंकृत भगवती स्वप्नेश्वरी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ६२ ॥

इस मन्त्र का एक लाख जप करें तथा विल्वपत्रों से तद्दशांश हवन करना चाहिए। पूर्वोक्त पीठ पर षडङ्ग, दिक्पाल एवं उनके आयुधों का पूजन करें ॥ ६३॥

इस प्रकार पुरश्चरण द्वारा मन्त्र सिद्ध हो जाने पर रात्रि में देवी की पूजाकर उनके आगे दश हजार जप करना चाहिए । जप काल में ब्रह्मचर्य व्रत का

देव्यै निवेद्य स्वहार्दं सा स्वप्ने वदति ध्रुवम्।
यक्षिण्याद्या इति प्रोच्य मातङ्गी गद्यतेऽधुना ॥ ६५॥

मातङ्गीमन्त्रविधानवर्णनम्

तारो मायाच वाग्लक्ष्मीहृन्निद्रास्मृतिलान्तिमाः।
सनेत्रो हरिरुच्छिष्टचाण्डानेत्रयुता क्रिया ॥ ६६ ॥
श्रीमातङ्गेश्वरिपदं सर्वशूलीनलान्तशम्[1]।
करिवह्निप्रियामन्त्रो द्वात्रिंशद्वर्णवानयम्[2] ॥ ६७॥
मतङ्गो मुनिरस्योक्तोऽनुष्टुप्छन्दस्तु देवता ।
मातङ्गीसर्वजनता वशीकरणतत्परा ॥ ६८ ॥
चतुर्भिः षड्भिरङ्गैश्च षडष्टनयनैरपि।
मन्त्रोऽस्य वर्णैरङ्गानि न्यस्य देवीं विचिन्तयेत् ॥ ६६ ॥

॥ *॥ ६४–६५॥ मातंगीमाह – **तार** इति । तार ॐ । माया ह्रीं । वाक् ऐं । लक्ष्मीः श्रीं । हृत् नमः । निद्रा भः । स्मृतिर्गः । लान्तिमो वः । सनेत्रो हरिः ति । 'उच्छिष्टचाण्डा' स्वरूपम् । नेत्रयुता क्रिया लि ॥ ६६ ॥ श्रीं मातंगेश्वरि सर्वेति स्वरूपम् । शूली जः । न स्वरूपम् । लान्तो वः । 'शं' स्वरूपम् । 'करि' स्वरूपम् । वह्निप्रिया स्वाहा ॥ ६७ ॥ *॥ ६८–७२ ॥

पालन करते हुये कुशाओं पर मृगचर्म बिछा कर सोना चाहिए । सोते समय देवी को अपने हृदय की बात निवेदन करना चाहिये । ऐसा करने से वह स्वप्न में उसका उत्तर अवश्य दे देती हैं । यहाँ तक यक्षिणी के विषय में कहा अब मातङ्गी के विषय में कहता हूँ ॥ ६४-६५ ॥

अब **मातङ्गी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), वाग् (ऐं), लक्ष्मी (श्रीं), हृद् (नमः), निद्रा (भ), स्मृति (ग), लान्तिम (व), नेत्रो हरि (ति), फिर 'उच्छिष्ट चाण्डा' फिर नेत्रायुत क्रिया (लि), फिर 'श्रीमातंगेश्वरि सर्व' पद, इसके बाद शूली (ज), फिर न, फिर लान्त (व), फिर 'शङ्करि', इसके बाद वह्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से बत्तीस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ६६-६७ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं ऐं श्रीं नमो भगवति उच्छिष्टचाण्डालि श्रीमातंगेश्वरि सर्वजनवशंकरि स्वाहा ॥ ६६-६७ ॥

इस मन्त्र के मतङ्ग ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है तथा सब लोगों को वश में करने में तत्पर मातङ्गी देवता है । मन्त्र के ४, ६, ६, ६, ८ एवं २ वर्णों से

---

१. ॐ ह्रीं ऐं श्रीं नमो भगवति उच्छिष्टचाण्डालिश्रीमातङ्गेश्वरि सर्वजनवशङ्करि स्वाहा ।
२. अस्य मन्त्रस्य मतङ्गऋषिरनुष्टुप्छन्दो मातङ्गीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

घनश्यामलाङ्गीं स्थितां रत्नपीठे
शुकस्योदितं शृण्वतीं रक्तवस्त्राम् ।
सुरापानमत्तां सरोजस्थितां श्री
भजे वल्लकीं वादयन्तीं मतङ्गीम् ॥ ७० ॥
जपोयुतं सहस्रं तु होमः पुष्पैर्मधूकजैः ।
मध्वक्तैः पूजयेत्पीठे वक्ष्यमाण विधानतः ॥ ७१ ॥
त्रिकोणाष्टदलद्वन्द्वं कलास्रचतुरस्रकम् ।
पीठं कृत्वा यजेत्तस्मिन्पीठशक्तीर्नवेष्टदाः ॥ ७२ ॥
विभूतिरुन्नतिः कान्तिः सृष्टिः कीर्तिश्च सन्नतिः ।
व्युष्टिरुत्कृष्टिऋद्धी च मातंग्यन्ताः समीरिताः ॥ ७३ ॥

मातङ्ग्यन्ता इमाः । विभूत्यै नम-इत्यादिकाः ॥ ७३ ॥

षडङ्गन्यास कर देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ६८-६९ ॥

विमर्श - **विनियोग** - 'अस्य श्रीमातङ्गीमन्त्रस्य मतङ्गऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीमातङ्गीदेवता ममाऽभीष्टसिद्धिर्थं जपे **विनियोगः** ।

षडङ्गन्यास - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं हृदयाय नमः, ॐ नमो भगवति शिरसे स्वाहा,
ॐ उच्छिष्टचाण्डालि शिखायै वषट् ॐ श्री मातङ्गेश्वरि कवचाय हुम्,
ॐ सर्वजनवशङ्करि नेत्रत्रयाय वौषट् ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ६८-६९ ॥

अब **मातङ्गी देवी का ध्यान** कहते हैं -

मेघ के समान श्याम वर्णो वाली रत्नपीठ पर विराजमान, शुक की बोली सुनने में तत्पर, रक्त वस्त्र धारण करने वाली सुरापान से उन्मत्त सरोज पर स्थित वल्लकी वीणा बजाती हुई श्री मातङ्गी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ७० ॥

मातङ्गीपूजनयन्त्रम्

उपर्युक्त मन्त्र का १० हजार जप करना चाहिए, तथा मधु सहित मधूक (महुआ) के पुष्पों से एक हजार आहुतियाँ देनी चाहिए । तदनन्तर पूर्वोक्त पीठ पर वक्ष्यमाण रीति से देवी का पूजन करना चाहिए ॥ ७१ ॥

अब **मातङ्गी यन्त्र का प्रकार** कहते हैं - त्रिकोण के बाद दो अष्ट दल कमल फिर १६ दल का कमल उसके ऊपर चतुरस्त्र और भूपुर युक्त पीठ रचना कर उस पर अभीष्टदायिनी नौ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए ॥ ७२ ॥
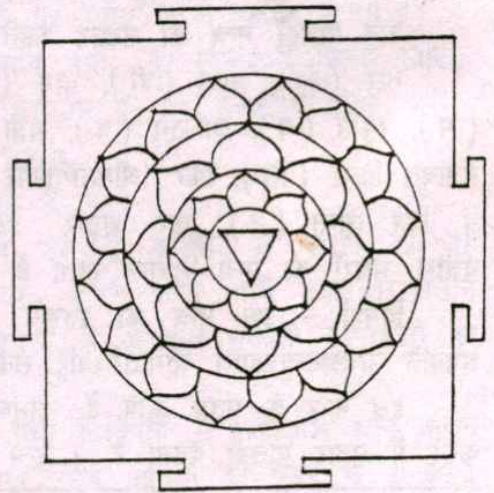
पीठमन्त्रपीठपूजाविधिवर्णनम्

सर्वशक्तिकमस्यान्ते लासनायहृदयन्तिकः ।
तारमायावाग्रमाद्यः पीठमन्त्रः कलार्णकः ॥ ७४ ॥
विश्राण्यासनमेतेन पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ।
मूलेन पुष्पपूजान्ते कुर्यादावरणार्चनम् ॥ ७५ ॥
त्रिकोणेष्वर्चयेत् तिस्रो रतिप्रीतिमनोभवाः ।
केसरेषु षडङ्गानि मातृश्च दलमध्यगाः ॥ ७६ ॥
द्वितीयेऽष्टदले पूज्या असिताङ्गादिभैरवाः ।
षोडशाख्ये तु वामाख्या ज्येष्ठारौद्रीप्रशान्तिका ॥ ७७ ॥
श्रद्धामाहेश्वरी चापि क्रियाशक्तिश्च सप्तमी ।
सुलक्ष्मीः सृष्टिमोहिन्यौ प्रमथाश्वासिनी तथा ॥ ७८ ॥

पीठमन्त्रमाह – सर्वेति । ॐ ह्रीं ऐं श्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नम इति ॥ ७४ ॥ विश्राण्य दत्त्वा ॥ ७५ ॥ *॥ ७६–७९ ॥

---

१. विभूति, २. उन्नति, ३. कान्ति, ४. सृष्टि, ५. कीर्ति, ६. सन्नति, ७. व्युष्टि, ८. उत्कृष्टिऋद्धि और ९. मातङ्गी ये नौ शक्तियाँ कही गई हैं ॥ ७३ ॥

'सर्वशक्तिकम' इस पद के बाद 'लासनाय नमः' तथा प्रारम्भ में तार (ॐ), माया (ह्रीं), वाग (ऐं), तथा रमा (श्रीं), लगाने से सोलह अक्षर का 'ॐ ह्रीं ऐं श्रीं सर्वशक्तिकमलासनायै नमः' यह मन्त्र बनता है । इस मन्त्र से देवी को आसन देकर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर पाद्य आदि सपर्या के बाद पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए । फिर अनुज्ञा लेकर आवरण पूजा प्रारम्भ करना चाहिए ॥ ७४-७५ ॥

विमर्श – पीठ पूजा विधि - (द्र० ७. ८-१०) । इसके बाद निम्नलिखित विधि से पूर्व आदि दिशाओं में आठ शक्तियों की तथा मध्य में मातङ्गी की इस प्रकार की पूजा करनी चाहिए - ॐ विभूत्यै नमः, पूर्वे,

ॐ उन्नत्यै नमः, आग्नेये, ॐ कान्त्यै नमः, दक्षिणे, ॐ सृष्ट्यै नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ कीर्त्यै नमः, पश्चिमे, ॐ सन्नत्यै नमः, वायव्ये, ॐ व्युष्ट्यै नमः, उत्तरे
ॐ उत्कृष्टिऋद्धिभ्यां नमः, ईशाने, ॐ मातङ्ग्यै नमः, मध्ये ॥ ७४-७५ ॥

अब **आवरण पूजा का विधान** कहते हैं -

त्रिकोण में रति, प्रीति एवं मनोभवा इन तीन देवियों का अर्चन करें, केशरों में षडङ्ग, तदनन्तर प्रथम अष्टदल मे मातृकाओं की और दूसरे अष्टदल में असिताङ्गादि अष्ट भैरवों की पूजा करनी चाहिए । फिर षोडश दल में - १. वामा, २. ज्येष्ठा, ३. रौद्री, ४. प्रशान्तिका, ५. श्रद्धा, ६. माहेश्वरी, ७.

विद्युल्लता च चिच्छक्तिः सुन्दरीनन्दया सह ।
नन्दबुद्धिः षोडशी तु पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ ७६ ॥
चतुरस्रे चतुर्दिक्षु मातङ्गी सामहादिका ।
महालक्ष्मीस्तथासिद्धं पुनर्वह्न्यादिकोणतः ॥ ८० ॥
विघ्नेश दुर्गाबटुकक्षेत्रेशादिग्धवास्ततः ।
वज्राद्याः पूजनीयाः स्युरित्थं सिद्धिर्मनोर्भवेत् ॥ ८१ ॥
ध्रुवं भवानी वाग्बीजं रमामादौ प्रयोजयेत् ।
सर्वावरणदेवानां मातङ्गीपदमन्ततः ॥ ८२ ॥

सा महादिका महामातंगी ॥ ८०–८१ ॥ ध्रुवमिति । आवरणदेवता-नामादौ ध्रुवादीन अन्ते मातंगीपदञ्च योजयेत् । ॐ ह्रीं ऐं श्रीं रत्यै मातंग्यै नम इत्यादि ॥ ८२ ॥ *॥ ८३ ॥

क्रियाशक्ति, ८. सुलक्ष्मी, ९. सृष्टि, १०. मोहिनी, ११. प्रमथा, १२. श्वासिनी, १३. विद्युल्लता, १४. चिच्छक्ति, १५. नन्दसुन्दरी, एवं १६. नन्दबुद्धि - इन सोलह शक्तियों का प्रयत्न पूर्वक पूजन करना चाहिए ॥ ७६-७९ ॥

चतुरस्त्र में चारों दिशाओं में १. महामातङ्गी, २. महालक्ष्मी, ३. महासिद्धि एवं ४. महादेवी का, तथा आग्नेयादि चार कोणों में १. विघ्नेश, २. दुर्गा, ३. बटुक एवं ४. क्षेत्रपाल का पूजन करना चाहिए । उसके बाद दिक्पाल, उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पूजन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥ ८१ ॥

समस्त आवरण देवताओं के आदि में ध्रुव (ॐ), भवानी (ह्रीं), वाग् (ऐं), रमा (श्रीं) तथा अन्त में चतुर्थ्यन्त मातङ्गी पद लगाकर पूजनमन्त्रों की कल्पना करनी चाहिए ॥ ८२ ॥

विमर्श - आवरण पूजाविधि - प्रथमावरण त्रिकोण में - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं रत्यै मातङ्ग्यै नमः, ॐ ह्रीं ऐं श्रीं प्रीत्यै मातङ्गी नमः, ॐ ह्रीं ऐं श्रीं मनोभवायै मातङ्ग्यै नमः ।

इसके बाद **प्रथम अष्टदल** में पूर्वादिक्रम से अष्टमातृकाओं का इस प्रकार पूजन करना चाहिए -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ब्राह्म्यै मातङ्ग्यै नमः, पूर्वे
२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं माहेश्वर्यै मातङ्ग्यै नमः, आग्नेये
३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं कौमार्यै मातङ्ग्यै नमः, दक्षिणे
४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं वैष्णव्यै मातङ्ग्यै नमः, नैर्ऋत्ये
५ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं वाराह्यै मातङ्ग्यै नमः, पश्चिमे
६ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं इन्द्राण्यै मातङ्ग्यै नमः, वायव्ये

७ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं चामुण्डायै मातङ्ग्यै नमः, उत्तरे

८ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं महालक्ष्म्यै मातङ्ग्यै नमः, ऐशान्यै

इसके बाद **द्वितीय अष्टदल** में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से असिताङ्गादि भैरवों का इस प्रकार पूजन करना चाहिए -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं असिताङ्गभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः पूर्वे

२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं रुरुभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः आग्नेये

३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं चण्डभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः दक्षिणे

४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं क्रोधभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः, नैर्ऋत्ये

५ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं उन्मत्तभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः, पश्चिमे

६ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं कपालीभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः, वायव्ये

७ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं भीषणभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः, उत्तरे

८ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं संहारभैरवाय मातङ्गीरूपाय नमः, ऐशान्यै

इसके अनन्तर **सोलह दलों में** प्रदक्षिण क्रम से वामा आदि सोलह शक्तियों की इस प्रकार पूजा करें -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं वामायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ज्येष्ठायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं रोद्रायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं प्रशान्तिकायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

५ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं श्रद्धायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

६ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं माहेश्वर्यै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

७ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं क्रियाशक्त्यै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

८ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं सुलक्ष्म्यै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

९ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं सृष्टयै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

१० - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं मोहिन्यै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

११ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं प्रमथायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

१२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं श्वासिन्यै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

१३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं विद्युल्लतायै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

१४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं चिच्छक्त्यै मातङ्गीस्वरूपिण्यै नमः,

१५ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं नन्दसुन्दर्यै मातङ्गीस्वरुपिण्यै नमः,

१६ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं नन्दबुद्ध्यै मातङ्गीस्वरुपिण्यै नमः,

इसके बाद **चतुरस्त्र भूपुर** से पूर्वादि दिशाओं के क्रम से महामातङ्गी आदि का पूजन करना चाहिए -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं महामातङ्ग्यै मातङ्ग्यै नमः, पूर्वे

२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं महालक्ष्म्यै मातङ्ग्यै नमः, दक्षिणे

३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं महासिद्ध्यै मातङ्ग्यै नमः, पश्चिमे

४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं महादेव्यै मातङ्ग्यै नमः, उत्तरे

इसके बाद पुनः **चतुरस्र** में आग्नेयादि त्रिकोणों में क्रम से विघ्नेशादि का पूजन करना चाहिए -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं विघ्नेशाय मातङ्गीस्वरूपायै नमः, आग्नेये
२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं दुर्गायै मातङ्गीस्वरूपायै नमः, नैर्ऋत्ये
३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं बटुकाय मातङ्गीस्वरूपायै नमः, वायव्ये
४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं क्षेत्रपालाय मातङ्गीस्वरूपायै नमः, ऐशान्ये ।

इसके बाद पुनः **भूपुर में** पूर्वादि दिशाओं क्रम में, इन्द्र आदि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं इन्द्राय मातङ्गीरूपाय नमः, पूर्वे
२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं अग्नये मातङ्गीरूपाय नमः, अग्नेये
३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं यमाय मातङ्गीरूपाय नमः, दक्षिणे
४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं निर्ऋतये मातङ्गीरूपाय नमः, नैर्ऋत्ये
५ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं वरुणाय मातङ्गीरूपाय नमः, पश्चिमे
६ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं वायवे मातङ्गीरूपाय नमः, वायव्ये
७ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं सोमाये मातङ्गीरूपाय नमः, उत्तरे
८ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ईशानाय मातङ्गीरूपाय नमः, ईशाने
९ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ब्रह्मणे मातङ्गीरूपाय नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये
१० - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं अनन्ताय मातङ्गीरूपाय नमः, नैर्ऋत्य पश्चिमयोर्मध्ये

पुनः अन्त में भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए -

१ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं वज्राय मातङ्गीस्वरूपाय नमः, पूर्वे
२ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं शक्तये मातङ्गीस्वरूपाय नमः, आग्नेये
३ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं दण्डाय मातङ्गीस्वरूपाय नमः, दक्षिणे
४ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं खड्गाय मातङ्गीस्वरूपाय नमः, नैर्ऋत्ये
५ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं पाशाय मातङ्गीस्वरूपाय नमः, पश्चिमे
६ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं अंकुशाय मातङ्गीस्वरूपाय नमः, वायव्ये
७ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं गदायै मातङ्गीस्वरूपाय नमः, उत्तरे
८ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं शूलायै मातङ्गीस्वरूपाय नमः, वायव्ये
९ - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं पद्माय मातङ्गीस्वरूपाय नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये
१० - ॐ ह्रीं ऐं श्रीं चक्राय मातङ्गीरुस्वरूपाय नमः, पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये

इस प्रकार प्रत्येक आवरण पूजा के अनन्तर एक एक पुष्पाञ्जलि समर्पित कर यन्त्र में देवी की विधिवदुपचारों से पूजा कर उक्त मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ ८१-८२ ॥

मल्लिकाकुसुमैर्होमाद् भोगो राज्यं च बिल्वजैः ।
पत्रैः फलैर्वा वश्यास्याज्जनताब्रह्मवृक्षजैः ॥ ८३ ॥
रोगनाशोमृताखण्डैर्निम्बैः श्रीस्तण्डुलैरपि ।
आकृष्टिर्लवणैर्विद्यात्तगरैर्वेतसैर्जलम् ॥ ८४ ॥
लवणैर्निम्बतैलाक्तैः शत्रुनाशोऽन्धसाशनम् ।
निशाचूर्णयुतैर्लोणैर्होमात्स्यात्स्तम्भनं नृणाम् ॥ ८५ ॥
रक्तचन्दनकर्चूरमांसीकुंकुमरोचनाः ।
चन्दनागुरुकर्पूरैर्गन्धाष्टकमुदीरितम् ॥ ८६ ॥
एतद्धोमाज्जगद्वश्यं जायते मन्त्रिणो ध्रुवम् ।
एतत्पिष्ट्वा शतं जप्त्वा तिलकेन जगत्प्रियः ॥ ८७ ॥
कदलीफलहोमेन सर्वेष्टं समवाप्नुयात् ।
किंबहूक्तेन मातङ्गी पूजिता कामदा नृणाम् ॥ ८८ ॥
मध्वक्तलोणरचितां पुत्तलीं दक्षिणांघ्रितः ।
हूयादष्टोत्तरशतं खादिराग्नौ वशं निशि ॥ ८९ ॥
शालिपिष्टमयीं तां तु भक्षयेत्स्त्रीवशीकृतो ।
कृष्णभूतनिशि ध्वाङ्क्षोदरे क्षिप्त्वा समुद्रजम् ॥ ९० ॥

अमृताखण्डैर्गुडूची शकलैः ॥ ८४ ॥ अन्धसाऽन्नेन हुतेनाशनमन्नं प्राप्यते ॥ ८५ ॥ *॥ ८६–९१ ॥

अब **काम्य प्रयोग में होम की विधि** कहते हैं -

मल्लिका पुष्पों के होम से भोग, विल्वपत्रों के होम से राज्य, ब्रह्मवृक्ष के पत्र या फल के होम से सभी लोग वश में हो जाते हैं । अमृता (गुरुचा) के टुकडो के होम से रोगों का विनाश, नीम या चावल के होम से लक्ष्मी, लोण के होम से आकर्षण, तगर तथा बेतस के होम से जल, निम्ब के तेल में डुबोये गये लोण के होम से शत्रु का नाश, भात के होम से उत्तम भोजन, हरदी के चूर्णयुत लोण के होम से मनुष्यों का स्तम्भन हो जाता है ॥ ८३-८५ ॥

लाल चन्दन, कर्चूर, जटामाँसी, कुंकुम, गोरोचन, चन्दन, अगरु, कर्पूर - ये गन्धाष्टक कहे गये हैं । इनके होम से सारा जगत् उस साधक के वश में हो जाता है । इस गन्धाष्टक को पीसकर उक्त मन्त्र का जप कर तिलक लगावे तो व्यक्ति सर्वलोक प्रिय हो जाता है । कदलीफल के होम से व्यक्ति अपना समस्त अभीष्ट प्राप्त कर लेता है । इस विषय में विशेष क्या कहें - मातङ्गी देवी की उपासना से सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं ॥ ८६-८८ ॥

मध्वक्तलोण से बनी पुतली को प्रदक्षिण क्रम से खैर की प्रज्वलित अग्नि में रात्रि के समय मूल मन्त्र से १०८ बार होम करें तो वशीकरण प्राप्त होता है ।

नीलसूत्रेण संवेष्ट्य चिताग्नौ प्रदहेदमुम्।
सहस्रजप्तं तद्भस्मं यस्मै दद्यात् स दासवत्॥ ६१॥

बाणेशीमन्त्रस्तद्विधानवर्णनम्

सत्योऽग्नियुक्तोऽनन्तेन्दुसंयुक्तं बीजमादिमम्।
एतस्यानन्तसंस्थाने शान्तियुक्तो द्वितीयकम्॥ ६२॥
ब्रह्मेन्द्रशान्तिबिन्द्वाढ्यस्तृतीयं बीजमीरितम्।
भूधरो वसुधोर्घीशचन्द्राढ्यस्तत्तुरीयकम्॥ ६३॥
सर्गी हंसः पञ्चमः स्यात् पञ्चबीजात्मको मनुः[1]।
ऋषिः[2] सम्मोहनश्छन्दो गायत्रीदेवता पुनः॥ ६४॥

बाणेशीमाह – **सत्य** इति । सत्यो दः अग्नियुक्तो रेफयुतः । अनन्तेन्दुसंयुतः आबिन्दुयुतश्च तेन द्रामित्यादि बीजम् । स एव रेफयुतो दः । आस्थाने शान्तिरी तेन युतो द्रीं ॥ ६२ ॥ इन्द्रशान्ति बिन्द्वाढ्यो ब्रह्मा लईबिन्दुयुतः कः क्लीं । वसुधार्घीश चन्द्राढ्यो लऊ । बिन्दुयुतो भूधरो वः । ब्लूं ॥ ६३ ॥ सर्गी हंसः सः ॥ ६४ ॥ व्यस्तवर्णेन पञ्चबीजैः पञ्चाङ्गानि सर्वेणास्त्रम् । पञ्चबीजाद्या द्राविण्याद्या

चावल के आँटे की बनी पुतली को, स्त्री को वश में करने के इस मन्त्र का जप कर जिस स्त्री को खिलावे तो वह वश में हो जाती है ॥ ८९-९० ॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में समुद्री नमक कौवे के पेट में खिलाकर काले धागे से लपेटकर चिता की अग्नि में उसे जला दे । फिर उस भस्म को इस मन्त्र से एक सहस्त्र बार अभिमन्त्रित करें, तो जिसे वह भस्म दिया जाता है वह दास के समान हो जाता है ॥ ९०-९१ ॥

अब **बाणेशी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

अनन्त (आकार) इन्द्र अनुस्वार सहित सत्य (दकार) एवं अग्निरकार (अर्थात् द्रां) यह बाणेशी का **प्रथम बीज** है इस बीज मन्त्र में अनन्त के स्थान में शान्ति (ईकार) लगाने से **द्वितीय बीज** पुनः इन्द्र शान्ति एवं बिन्दु सहित ब्रह्मा (क्लीं) यह **तृतीय बीज**, वसुधा अर्घीश, चन्द्रसहिता भूधर अर्थात् ब्लूं यह **चतुर्थ बीज** है । सर्गी हंसः विसर्ग सहित सकार (सः) यह **पाँचवाँ बीज** है । इस प्रकार पञ्च बीजात्मक मन्त्र बनता है ॥ ६२-६३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूँ सः' ॥ ६२-६३॥

इस मन्त्र के सम्मोहन ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा बाणेशी देवता हैं ।

---

१. द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः ।

२. अस्य बाणेशीमन्त्रस्य संमोहनऋषिः गायत्रीछन्दः बाणेशीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

बाणेशी व्यस्तवर्णेन मन्त्रेणोक्तं षडङ्गकम् ।
मूर्ध्नि पादे मुखे गुह्ये हृदये पञ्चदेवताः ॥ ६५ ॥
न्यस्तव्याः पञ्चबीजाद्या द्राविणीक्षोभिणी पुनः ।
वशीकरण्याकर्षण्यौ सम्मोहिन्यपि पञ्चमी ॥ ६६ ॥

बाणेशीध्यानम्

उद्यद्भास्वत्सन्निभा रक्तवस्त्रा
नानारत्नालंकृताङ्गी वहन्ती ।
हस्तैः पाशं चांकुशं चापबाणौ
बाणेशी नः कामपूर्तिं विधत्ताम् ॥ ६७ ॥
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षपञ्चकं तद्दशांशतः ।
हुत्वा बाणेश्वरीं देवीं पूजयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ६८ ॥

देवतामूर्द्धादौ न्यस्याः । द्रां द्राविण्यै नमो मूर्ध्नीत्यादि ॥ ६५–६६ ॥ ध्यानमाह – उद्यदिति । बाणांकुशौ दक्षयोः ॥ ६७ ॥ *॥ ६८–१०१ ॥

मन्त्र के बीजों के विलोमक्रम से तदनन्तर समस्त मन्त्र से षडङ्गन्यास करना चाहिए। फिर षडङ्गन्यास के अनन्तर उक्त पाँच बीजों के साथ द्राविणी, क्षोभिणी, वशीकरणी, आकर्षणी एवं सम्मोहिनी इन पाँच देवताओं को क्रमशः सिर पैर मुख गुप्ता एवं हृदय में इस प्रकार न्यास करना चाहिए ॥ ६४-६६ ॥

विमर्श - विनियोग - 'ॐ अस्य श्रीबाणेशीमन्त्रस्य सम्मोहनऋषिर्गायत्रीछन्दः बाणेशीदेवता ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - सः हृदयाय नमः, ब्लूँ शिरसे स्वाहा, ब्लीं शिखायै वषट्, द्रीं कवचाय हुम्, द्रां नेत्रत्रयाय वौषट् द्रां द्रीं ब्लीं ब्लूँ सः अस्त्राय फट् ।

सर्वाङ्गन्यास - द्रां द्राविण्यै नमः, मूर्ध्नि, द्रीं क्षोभिण्यै नमः, पादयोः,
ब्लीं वशीकरिण्यै नमः, मुखे, ब्लूँ आकर्षिण्यै नमः, गुह्ये,
सः सम्मोहिन्यै नमः, हृदि ॥ ६४-६६ ॥

अब बाणेशी देवी का ध्यान कहते हैं -

बाणेशी का ध्यान उदीयमान सूर्य के समान आभावाली रक्त वस्त्र धारण की हुई, अनेक प्रकार के रत्नजटित आभूषणों से जगमगाती हाथों में क्रमशः पाश, अंकुश, धनुष, एवं बाण धारण की हुई बाणेशी हमारी मनोकामना पूर्ण करें ॥ ६७ ॥

इस प्रकार ध्यान कर प्रतिदिन नियमतः उक्तमन्त्र का ५ लाख जप करना चाहिए । फिर तद्दशांश हवन करना चाहिए । तदनन्तर वाणेशी का विधि पूर्वक पूजन करना चाहिए ॥ ६८ ॥

मोहिनीक्षोभिणीत्रासीस्तम्भिन्याकर्षिणी तथा ।
द्राविण्याह्लादिनी क्लिन्नाक्लेदिनीपीठशक्तयः ॥ ९९ ॥
बाणेशी योगपीठाय नमो मूलादिको मनुः ।
दत्त्वा तेनासनं मन्त्री तस्मिन्देवीं प्रपूजयेत् ॥ १०० ॥
आदौ षडङ्गान्याराध्य दिक्ष्वग्रे द्राविणीमुखाः ।
दलेष्वनङ्गरूपा स्यादनङ्गमदना तथा ॥ १०१ ॥

अनङ्गाद्या कुसुमापरा अनङ्गकुसुमेत्यर्थः ॥ १०२ ॥ *॥ १०३–१०५ ॥

---

१. मोहिनी, २. क्षोभिणी, ३. त्रासी, ४. स्तम्भिनी, ५. आकर्षिणी, ६. द्राविणी, ७. आह्लादिनी, ८. क्लिन्ना तथा ९. क्लेदिनी - ये पीठ की ९ शक्तियाँ कहीं गई हैं ॥ ९९ ॥

'बाणेशीयोगपीठाय नमः' इस मन्त्र के प्रारम्भ में मूलमन्त्र लगाने से पीठ मन्त्र निष्पन्न हो जाता है । प्रारम्भ में पीठ पूजा कर इस मन्त्र से आसन देकर साधक पीठ पूजा करे ॥ १०० ॥

यन्त्र निर्माण - वृत्ताकार कर्णिका अष्टदल एवं भूपुर सहित यन्त्र का निर्माण करें फिर (७.८-१०) के अनुसार पीठ पूजा करें । इसके बाद यन्त्र पर मोहिनी आदि पीठ शक्तियों की तथा मध्य में क्लेदिनी शक्ति की इस प्रकार पूजा करें -

बाणेशीपूजनयन्त्रम्

१ - ॐ मोहिन्यै नमः, पूर्वे
२ - ॐ क्षोभिण्यै नमः, आग्नेये
३ - ॐ त्रास्यै नमः, दक्षिणे
४ - ॐ स्तम्भिन्यै नमः, नैर्ऋत्ये
५ - ॐ आकर्षिण्यै नमः, पश्चिमे
६ - ॐ द्राविण्यै नमः, वायव्ये
७ - ॐ आह्लादिन्यै नमः, उत्तरे
८ - ॐ क्लिन्नायै नमः, ऐशान्ये
९ - ॐ क्लेदिन्यै नमः, मध्ये
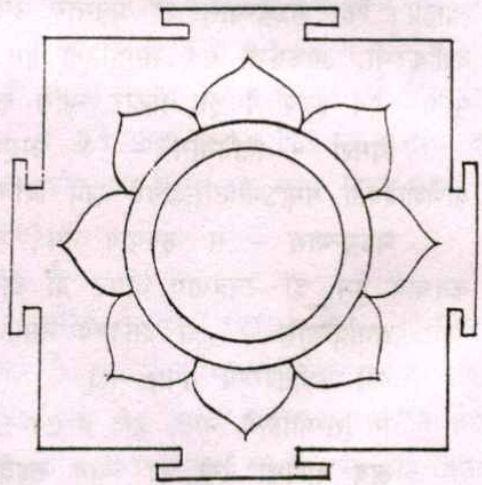
तदनन्तर 'द्रां द्रीं क्लीं ब्लूँ सः बाणेशीयोगपीठाय नमः' मन्त्र से बाणेशी देवी को आसन देकर श्लोक ९७ में वर्णित देवी के स्वरूप का ध्यान कर मूलमन्त्र से पुष्पाञ्जलि दे । तदनन्तर निम्न मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करनी चाहिए -

'देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव' ॥ ९९-१०० ॥

यन्त्र में सर्वप्रथम षडङ्गपूजा कर, तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं में १. द्राविणी आदि का एवं २. क्षोभिणी, ३. वशीकरणी, ४. आकर्षणी का तथा मध्य में ५.

अनङ्गमन्मथानङ्गकुसुमामदनापरा ।
अनङ्गाद्या तथानङ्गशिशिरानङ्गमेखला ॥ १०२ ॥
अनङ्गदीपिकेत्यष्टौ शक्राद्या आयुधान्यपि ।
एवं सिद्धं मनुं मन्त्री काम्येषु विनियोजयेत् ॥ १०३ ॥
दधियुक्तैरशोकस्य पुष्पैर्यो दिवसत्रयम् ।
सहस्रं जुहुयात्तस्य वश्याः स्युः प्राणिनोऽखिलाः ॥ १०४ ॥
लाजैर्दधियुतैर्होमान् मन्त्री कन्यामवाप्नुयात् ।
कन्यापि वरमाप्नोति मासद्वितयमध्यतः ॥ १०५ ॥

सम्मोहिनी का बीज मन्त्र के एक एक अक्षर को आदि में लगाकर पूजन करना चाहिए । तदनन्तर अष्टदल में १. अनङ्गरूपा, २. अनङ्गमदना, ३. अनङ्गमन्मथा, ४. अनङ्गकुसुमा, ५. अनङ्गवदना, ६. अनङ्गशिशिरा, ७. अनङ्गमेखला, ८. अनङ्गदीपिका आदि आठ देवियों का, फिर इन्द्रादि दश दिक्पालों का, फिर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक को अन्य काम्य प्रयोगों में उसका विनियोग करना चाहिए ॥ १०१-१०३ ॥

विमर्श - आवरण पूजा - सर्वप्रथम वृत्ताकार कर्णिका में विलोम रीति से

सः हृदयाय नमः, ब्लूँ शिरसे स्वाहा, ब्लीं शिखायै वषट्,
द्रां कवचाय हुम्, द्रां नेत्रत्रयाय वौषट् द्रां द्रीं ब्लीं ब्लूँ सः अस्त्राय फट्

तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं में - द्रां द्राविण्यै नमः पूर्वे,
द्रीं क्षोभिण्यै नमः दक्षिणे, ब्लीं वशीकरण्यै नमः पश्चिमे,
ब्लूँ, आकर्षण्यै नमः उत्तर, सः सम्मोहिन्यै नमः अग्रे ।

तदनन्तर अष्टदल में पूर्वादि दिशओं के क्रम से इस प्रकार पूजा करें -

ॐ अनङ्गरूपायै नमः, पूर्वे, ॐ अनङ्गमदनायै नमः आग्नेये,
ॐ अनङ्गमन्मथायै नमः दक्षिणे, ॐ अनङ्गकुसुमायै नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ अनङ्गमदनायै नमः पश्चिमे, ॐ अनङ्गशिशिरायै नमः वायव्ये,
ॐ अनङ्गमेखालायै नमः वायव्ये, ॐ अनङ्गदीपिकायै नमः ऐशान्ये ।

तत्पश्चात् भूपुर के भीतर पूर्व आदि दिशाओं में पूववर्त् इन्द्रादि दश दिक्पालों की, तथा भूपुर के बाहर उनके वज्रादि आयुधों की पूर्वावत् पूजा करें । उपर्युक्त रीति से देवी के आवरणों की पूजा कर मूलमन्त्र से यथोपलव्ध उपचारों द्वारा देवी की पूजा कर जप प्रारम्भ करें, पुरश्चरण करने से मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक काम्य प्रयोगों के लिए उसका उपयोग करे ॥ १०१-१०३ ॥

अव **काम्य प्रयोग** कहते हैं - जो व्यक्ति ३ दिन तक दधिमिश्रित अशोक पुष्पों से प्रतिदिन १००० आहुतियाँ देता है, उसके वश में समस्त प्राणी हो जाते हैं ॥ १०४॥

दही सहित लाजा के होम से उतनी ही संख्या में होम करने से साधक को पत्नी प्राप्त होती है, तथा कन्या भी इसके प्रयोग से दो मास के भीतर उत्तम

गव्याज्येन ससम्पातं हुत्वा साऽष्टशतं नरः ।
आज्यं सम्पातितं दद्यात्स्त्रियै विश्राणितश्रियै ॥ १०६ ॥
सा तदाज्यं निजं कान्तं भोजयित्वा वशं नयेत् ।
सुगन्धकुमुमैर्हुत्वा धनमाप्नोति वाञ्छितम् ॥ १०७ ॥

कामेशीमन्त्रस्तद्विधानवर्णनम्

मायामन्मथावाग्बीजे ब्लूं स्त्रीं पञ्चाक्षरो मनुः[1] ।
ऋषिश्छन्दश्च पूर्वोक्ते कामेशीदेवतास्मृता[2] ॥ १०८ ॥

ससम्पातम् आहुतिशेषस्य पात्रान्तरे प्रक्षेपः सम्पातः, तद्युतं हुत्वा सम्पाताज्यं स्त्रियै दद्यात् । किम्भूतायै । विश्राणितश्रियै दत्तदक्षिणायै । दक्षिणामादावादाय पश्चाद् आज्यं दद्यादित्यर्थः । अन्यथा फलाभावात् ॥ १०६–१०७ ॥ कामेशीमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । मन्मथः क्लीं । वाग्बीजं ऐं । ब्लूं स्त्रींस्वरूपम् ॥ १०८ ॥

वर प्राप्त करती है ॥ १०५ ॥

गोघृत से संपात हुत शेष सुवस्थित धी का प्रोक्षणी पात्र में गिराना पूर्वक १०८ आहुतियाँ देकर शेष संस्रव वाले घृत को दक्षिणा लेकर स्त्री को दे देवें, वह स्त्री उस संस्रव को अपने पति को खिलावे तो पति वश में हो जाता है । सुगन्धित पुष्पों के होम से साधक मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर लेता है ॥ १०६-१०७ ॥

अब **कामेशी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

माया (ह्रीं), मन्मथ (क्लीं), वाग्वीज (ऐं), फिर ब्लूँ, तदनन्तर स्त्रीं लगाने से ५ अक्षरों का कामेशी मन्त्र बनता है । इस मन्त्र के ऋषि और छन्द पूर्वोक्त (द्र० ७.४६) कामेशी देवता हैं ॥ १०८ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूँ स्त्रीं' ।

विनियोग विधि - अस्य श्रीकामेशीमन्त्रस्य सम्मोहनऋषिर्गायत्रीछन्दः कामेशीदेवता ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

मन्त्र के विलोम क्रम से षडङ्गन्यास करना चाहिए ।

षडङ्गन्यास - ॐ स्त्रीं हृदयाय नमः, ॐ ब्लूँ शिरसे स्वाहा,
ॐ ऐं शिखायै वषट्, ॐ क्लीं कवचाय हुम्,
ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं अस्त्राय फट् ॥ १०८ ॥

---

१. ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूँ स्त्रीं । इति पञ्चार्णः । अस्य कामेशीमन्त्रस्य सम्मोहनऋषिः गायत्रीछन्दः कामेशीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

२. ऐं क्लीं सौः इति त्रिवर्णः । अस्य बालामन्त्रस्य दक्षिणमूर्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः त्रिपुराबालादेवता मध्यं क्लीं शक्तिः अन्ते सौः बीजं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

कामेशीध्यानम्

पाशांकुशाविक्षुशरासबाणौ
करैर्वहन्तीमरुणांशुकाढ्यम् ।
उद्यत्पतङ्गाभिरुचिं मनोज्ञां
कामेश्वरीं रत्नचितां प्रणौमि ॥ १०६ ॥

भूतलक्षं जपित्वैनामर्धलक्षं पलाशजैः ।
कुसुमैर्जुहुयात्पीठे पूर्वोक्ते पूजयेदिमाम् ॥ ११० ॥
आदावङ्गानि सम्पूज्य दिक्षु मध्ये मनोभवम् ।
मकरध्वजकन्दर्पो मन्मथं कामदेवकम् ॥ १११ ॥
ततो ह्यनङ्गरूपाद्यां इन्द्राद्यस्त्राणि तद्बहिः ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री पूर्वोक्तं योगमाचरेत् ॥ ११२ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ यक्षिण्यादिमन्त्रकथनं नाम सप्तमस्तरङ्गः ॥ ७ ॥

ध्यानमाह – **पाशांकुशेति** । पाशेक्षुचापो वामयोः । उद्यन्यः सहस्रांशुरादित्यस्तत्समकान्तिरत्नैश्चितां व्याप्तां प्रणौमि प्रकर्षेण स्तौमि ॥ १०६ ॥ भूतलक्षं पञ्चलक्षम् ॥ ११० ॥ कामदेवं मध्ये ॥ १११ ॥ योगं प्रयोगम् ॥ ११२ ॥

इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां यक्षिण्यादिकथनं नाम सप्तमस्तरङ्गः ॥ ७ ॥

अब **कामेशी देवी का ध्यान** कहते हैं -

अपने चारों हाथो में क्रमशः पाश, अंकुश, इक्षुचाप एवं बाण धारण की हुई, लाल वर्ण का वस्त्र पहने हुये, उदीयमान सूर्य के समान कान्ति वाली, रत्नों से विभूषित महासुन्दरी कामेश्वरी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १०६ ॥

इस मन्त्र का पाँच लाख जप करे । पलाश के फूलों से ५० हजार की संख्या में आहुति देवे तथा पूर्वोक्त पीठ पर इनकी पूजा करे ॥ ११० ॥

फिर पूर्वादि दिशाओं में १. मनोभव, २. मकरध्वज, ३. कन्दर्प, ४. मन्मथ एवं मध्य में ५. कामदेव का पूजन करें ॥ १११ ॥

फिर अनङ्गरूपा आदि शक्तियों का, तदनन्तर इन्द्रादि दश दिक्पालों का, तथा भूपुर के बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर साधक पूर्वोक्त काम्य प्रयोगों को करे ॥ ११२ ॥

विमर्श - आवरण पूजा विधि - वृत्ताकार कर्णिका उसके ऊपर चतुर्दल कमल फिर अष्टदल कमल एवं भूपुर से बने यन्त्र पर कामेशी का पूजन करें ।

कामेशीपूजनयन्त्रम्
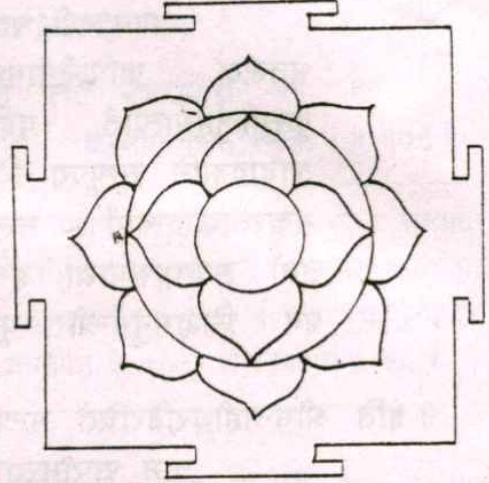
१०६ श्लोक में वर्णित कामेशी का ध्यान करें तथा मानसोपचार से पूजन करें । फिर उपर्युक्त पीठ पर श्लोक ७-९९-१०० में बतलायी गई रीति से पीठ पूजन तथा देवी का पूजन कर उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर इस प्रकार आवरण पूजा करें । सर्वप्रथम वृत्ताकार कर्णिका में षडङ्गपूजन निम्न रीति से करें । यथा -

ॐ स्त्रीं हृदयाय नमः, ॐ ब्लूँ शिरसे स्वाहा, ॐ ऐं शिखायै वषट्,
ॐ क्लीं कवचाय हुम्, ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं स्त्रीं अस्त्राय फट् ।

तदनन्तर चतुर्दल में पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से मनोभाव आदि का पूजन इस प्रकार करना चाहिए । यथा -

ॐ मनोभवाय नमः, पूर्वदले, ॐ मकरध्वजाय नमः दक्षिणदिग्दले,
ॐ कन्दर्पाय नमः पश्चिमदिग्दले, ॐ मन्मथाय नमः उत्तरदले,
ॐ कामदेवाय नमः मध्ये,

पुनः ७. २०१-२०३ में बतलायी गई विधि से अनङ्गरूपा आदि ८ शक्तियों का पूजन कर भूपुर के भीतर इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूर्ववत् पूजन कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करें । फिर कामेशी देवी का यथोपलब्ध उपचारों से पूजन कर जप प्रारम्भ करें ॥ १११-११२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के सप्तम तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डाँ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

अथ अष्टमः तरङ्गः

अथ बालां प्रवक्ष्यामि मन्त्री संसेव्य यां द्रुतम् ।
बृहस्पतिः कुबेरश्च जायते विद्यया धनैः ॥ १ ॥

बालात्रिपुरामन्त्रकथनम्

दामोदरश्चन्द्रयुत आद्यं वाग्बीजमीरितम् ।
विधिर्वासवशान्तीन्दुयुक्तं कामाभिधं परम् ॥ २ ॥
संकर्षणविसर्गाढ्योभृगुस्तार्तीयमीरितम् ।
त्रिबीजीगदिता बाला[1] जगत्त्रितयमोहिनी ॥ ३ ॥

* नौका *

॥ १ ॥ बालामन्त्रमाह – **दामोदर** इति । दामोदर ऐ । चन्द्रयुतो बिन्दुयुतः ऐं । वागिति संज्ञास्य । विधिः कः । वासवः शान्तीन्दुयुतः लईबिन्दुयुतः क्लीं । भृगुः सः । संकर्षण औ । तेन विसर्गेण च युतः सौः ॥ २–३ ॥

* अरित्र *

अब बाला के विषय में बतलाता हूँ जिनकी उपासना कर साधक शीघ्र ही विद्या में बृहस्पति के समान तथा धन में कुबेर के समान हो जाता है ॥ १ ॥

अब बाला मन्त्र का उद्धार कहते हैं -

चन्द्र (अनुस्वार) के सहित दामोदर (ऐ) अर्थात् ऐं यह प्रथम वाग्बीज, वासव (ल), शान्ति (ई) तथा इन्द्र (अनुस्वार) से युक्त विधि (क्) अर्थात् क्लीं यह दूसरा कामबीज सङ्कर्षण (औ) तथा विसर्ग युक्त भृगु (सः) अर्थात् सौः यह तृतीय बीज इस प्रकार **'ऐं क्लीं सौः'** इन तीनों बीजों से युक्त बाला का मन्त्र है जो तीनों लोकों का मोहन करने वाली है ॥ २-३ ॥

---

१. 'ऐं क्लीं सौः' – इति त्रिवर्णः ।

दक्षिणामूर्तिपंक्ती च [1] मुनिश्छन्दः क्रमात्स्मृतम् ।
देवता त्रिपुराबाला मध्यान्ते शक्तिबीजके ॥ ४ ॥

न्यासविधिवर्णनम्

नाभेरापादमाद्यं तु नाभ्यन्तं हृदयात् परम् ।
मूर्ध्निहृदन्तं तार्तीयं क्रमाद् देहे प्रविन्यसेत् ॥ ५ ॥
आद्यं वामकरे दक्षकरेऽन्यदुभयोः परम् ।
पुनर्बीजत्रयं न्यस्येन्मूर्ध्नि गुह्ये च वक्षसि ॥ ६ ॥
नवयोन्यभिधे न्यासे नवकृत्वो मनुं न्यसेत् ।
कर्णयोश्चिबुके न्यस्येच्छंखयोर्मुखपंकजे ॥ ७ ॥

मध्यान्ते मध्यं शक्तिः अन्ते बीजम् ॥ ४ ॥ नाभेः पादान्तमाद्यं बीजं न्यस्येत् । एवमग्रेपि ॥ ५ ॥ दक्षकरेऽन्यदद्वितीयम् । परं तृतीयं तूभयोः करयोर्न्यस्येत् ॥ ६ ॥ कर्णौ चिबुकमित्याद्यवयवानां त्रिकोणाकारत्वाद्योनिन्यासोऽयम् ॥ ७–६ ॥

इस मन्त्र के दक्षिणामूर्ति ऋषि, पंक्ति छन्द एवं त्रिपुरा बाला देवता हैं । मन्त्र का मध्य वर्ण (क्लीं) शक्ति तथा अन्तिम (सौः) 'बीज' कहा गया है ॥ ४ ॥

विमर्श – विनियोग - 'अस्य श्रीत्रिपुराबालामन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः त्रिपुराबालादेवता क्लीं शक्तिः सौः बीजं ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ ४ ॥

शरीर के नाभि से लेकर पाद पर्यन्त प्रथम बीज का, हृदय से लेकर नाभिपर्यन्त द्वितीय बीज का, तथा शिर से आरम्भ कर हृदय पर्यन्त तृतीय बीज का न्यास करना चाहिए ॥ ५ ॥

इसके बाद बायें हाथ में प्रथम बीज का, द्वितीय हाथ में द्वितीय बीज का, तदनन्तर दोनों हाथों में तृतीय बीज का न्यास करना चाहिए । फिर मस्तक, गुह्यस्थान एवं वक्षःस्थल में क्रमशः एक एक के क्रम से तीनों बीजों का न्यास करना चाहिए ॥ ६ ॥

विमर्श – प्रथम न्यास विधि - ॐ ऐं नमः, नाभेः पादान्तम्,
ॐ क्लीं नमः, हृदयान्नाभिपर्यन्तम्, ॐ सौः नमः, मूर्ध्नि हृदयान्तम् ।

द्वितीय न्यास विधि - ॐ ऐं नमः, वामकरे,
ॐ क्लीं नमः, दक्षिण करे, ॐ सौः नमः, उभयोः करयोः ।

तृतीय न्यास विधि - ॐ ऐं नमः, मूर्ध्नि,
ॐ क्लीं नमः, गुह्ये, ॐ सौः नमः, वक्षसि ।

अब **नवयोनि संज्ञक न्यास** कहते हैं - इस न्यास में एक एक मन्त्र को नौ बार न्यस्त करना चाहिए । १. दोनों कान

---

१. अस्य श्रीबालमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः त्रिपुराबालादेवता मध्यं क्लीं शक्तिः अन्ते सौः बीजं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

नेत्रयोर्नासिकायां च स्कन्धयोरुदरे तथा ।
न्यसेत्कूर्परयोर्नाभौ जानुनोर्लिङ्गमस्तके ॥ ८ ॥
पादयोरपि गुह्ये च पार्श्वयोर्हृदये पुनः ।
स्तनयोः कण्ठदेशे च वामाङ्गादि प्रविन्यसेत् ॥ ६ ॥
वाग्भवाद्या रतिं गुह्ये प्रीतिमन्त्यादिका हृदि ।
कामबीजादिकां न्यस्येद् भ्रूमध्ये तु मनोभवा ॥ १० ॥
पुनर्वाङ्गत्यकामाद्यास्तिस्र एष्वेव विन्यसेत् ।
अमृतेशीं च योगेशीं विश्वयोनिं तृतीयकाम् ॥ ११ ॥

वागिति । ऐं रत्यै नमो गुह्ये । अन्त्यादिकाम् । सौः प्रीत्यै नमो हृदि । क्लीं मनोभवायै नमो भ्रूमध्ये ॥ १० ॥ पुनर्वाक् । अन्त्यकामाद्या अमृतेशीयोगेशी–विश्वयोनी एष्वेवगुह्यहृद्भ्रूमध्येषु न्यसेत् । ऐं अमृतेश्यै नम इत्यादि ॥ ११ ॥

एवं दोनों चिबुक, २. दोनों गण्ड एवं मुख, ३. दोनों नेत्र एवं नासिका, ४. दोनों कन्धे एवं उदर, ५. दोनों कूर्पर एवं नाभि, ६. दोनों जानु एवं लिङ्ग, ७. दोनों पैर एवं गुप्ताङ्ग, ८. दोनों पार्श्व एवं हृदय, तदनन्तर ६. दोनों स्तन एवं कण्ठ में न्यास करें । इसमें वामाङ्गक्रम से न्यास करना चाहिए ॥ ७-६ ॥

विमर्श - नव योनि न्यास विधि इस प्रकार है -

ॐ ऐं नमः, वामकर्णे ॐ क्लीं नमः, दक्षिण कर्णे ॐ सौः नमः, चिबुके
ॐ ऐं नमः, वाम चिबुके ॐ क्लीं नमः, दक्षिण चिबुके ॐ सौः नमः, मुखे
ॐ ऐं नमः, वाम नेत्रे ॐ क्लीं नमः, दक्षिण नेत्रे ॐ सौः नमः, नासिकायाम्
ॐ ऐं नमः, वाम स्कन्धे ॐ क्लीं नमः, दक्षिण स्कन्धे ॐ सौः नमः, उदरे
ॐ ऐं नमः, वाम कूर्परे ॐ क्लीं नमः, दक्षिण कूर्परे ॐ सौः नमः, नाभौ
ॐ ऐं नमः, वाम जानौ ॐ क्लीं नमः, दक्षिण जानौ ॐ सौः नमः, लिङ्गोपरि
ॐ ऐं नमः, वाम पादे ॐ क्लीं नमः, दक्षिण पादे ॐ सौः नमः, गुह्ये
ॐ ऐं नमः, वाम पार्श्वे ॐ क्लीं नमः, दक्षिण पार्श्वे ॐ सौः नमः, हृदि
ॐ ऐं नमः, वाम स्तने ॐ क्लीं नमः, दक्षिण स्तने ॐ सौः नमः, कण्ठे

अब **रतिन्यास** कहते हैं -

वाग्भव बीज सहित रति को मूलाधार में, अन्तिम बीज सहित प्रीति को हृदय में, कामबीज सहित मनोभवा को भ्रूमध्य में न्यस्त करना चाहिए । इसी प्रकार वाग काम को आदि में कर अन्त्य बीज कर अमेतंशी योगिनी तथा विश्वयोनि को न्यास करना चाहिए ॥ १०-११ ॥

विमर्श - रतिन्यास विधि इस प्रकार है -

ऐं रत्यै नमः, गुह्ये, ॐ सौः प्रीत्यै नमः, हृदि,
ॐ क्लीं मनोभवायै नमः, भ्रूमध्ये, ॐ ऐं अमृतेश्यै नमः, गुह्ये,

मूर्ध्नि[1] वक्त्रे हृदि न्यस्येद् गुह्ये चरणयोरपि।
कामेशीपञ्चबीजाद्यान्स्मरान् मनोभवादिकान् ॥ १२ ॥
शिरः पन्मुखगुह्येषु हृदये पञ्चदेवताः।
द्राविण्याद्याः क्रमान् न्यस्येद् बाणेशीबीजपूर्विकाः ॥ १३ ॥
तार्तीयवाग्मध्यगेन कामेन स्यात् षडङ्गकम्।
षड्दीर्घस्वरयुक्तेन ततो देवीं विचिन्तयेत् ॥ १४ ॥

मूर्ध्नीति । कामेशी पञ्चबीजानि ह्रीं क्लीं ऐं ब्लूं स्त्रीमित्युक्तानि । तदाद्यान्मनोभवादिकान् । मनोभव मकरध्वजकन्दर्पमन्मथकामदेवाख्यान् स्मरान् शिरोमुखहृद्गुह्यपत्सु न्यसेत् । ह्रीं मनोभवाय नम इत्यादि ॥ १२ ॥ **शिर इति** । बाणेशीबीजानि । द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स इति । तत्पूर्वा द्राविण्याद्या द्राविणी क्षोभणी वशीकरण्याकर्षणी सम्मोहनी संज्ञाः बाणदेवताः शिरः पादमुखगुह्यहृत्सु न्यसेत् । द्रां द्राविण्यै नमः शिरसीत्यादि ॥ १३ ॥ षडङ्गमाह – **तार्तीयेति** ॥ तार्तीयं सौः । वाक् ऐं । तन्मध्यगतेन दीर्घाढ्येन कामेन षडङ्गम् । सौः क्लीं ऐं हृत् । सौः क्लीं ऐं शिरः । सौः क्लूं ऐं शिखेत्यादि ॥ १४ ॥

ॐ क्लीं योगेश्यै नमः, हृदि, ॐ सौः विश्वयोन्यै नमः, भ्रूमध्ये ॥ १०-११ ॥

अब **मूर्तिन्यास** कहते हैं -

रत्यादिन्यास के बाद कामेशी के पाँचों बीजों (द्र० - ७. १०८) के साथ मनोभव आदि पाँच कामदेवों का न्यास क्रमशः शिर, मुख, हृदय, गुप्ताङ्ग और पैरों पर करना चाहिए ॥ १२ ॥

विमर्श – मूर्तिन्यास की विधि इस प्रकार है - ॐ ह्रीं मनोभवाय नमः, शिरसि,
ॐ क्लीं मकरध्वजाय नमः, गुह्ये, ॐ ऐं कन्दर्पाय नमः, हृदि,
ॐ ब्लूं मन्मथाय नमः, गुह्ये, ॐ स्त्रीं कामदेवाय नमः, चरणयोः ॥ १२ ॥

अब **कामेशी का न्यास** कहकर बाणेशी के न्यास का प्रकार कहते हैं -

बाणेशी के बीजों को प्रारम्भ में लगाकर द्राविणी आदि का क्रमशः शिर, पैर, मुख, गुप्ताङ्ग एवं हृदय में न्यास करे ॥ १३ ॥

विमर्श – बाणन्यास विधि इस प्रकार है -
द्रां द्राविण्यै नमः, शिरसि, द्रीं क्षोभिण्यै नमः, पादयोः,
क्लीं वशीकरण्यै नमः, मुखे, ब्लूं आकर्षण्यै नमः, गुह्ये,
सः सम्मोहन्यै नमः, हृदि ॥ १३ ॥

अब **षडङ्गन्यास** कहते हैं - तार्तीय (सौः) वाग्भव (ऐं) इन दोनों के मध्य में ६ दीर्घ संयुक्त काम बीज (क्लीं) से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १४ ॥

---

१. ह्रीं मनोभवाय नमः शिरसि । ह्रीं मकरध्वजाय नमः मुखे । ऐं कन्दर्पाय नमः हृदि । ब्लूं मन्मथाय नमः गुह्ये । स्त्रीं कामदेवाय नमः चरणयोः ।

ध्यानकथनम्

रक्ताम्बरां चन्द्रकलावतंसां
समुद्यदादित्यनिभां त्रिनेत्राम् ।
विद्याक्षमालाभयदानहस्तां
ध्यायामि बालामरुणाम्बुजस्थाम् ॥ १५ ॥
लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं दशांशं किंशुकोद्भवैः ।
पुष्पैर्हयारिजैर्वापि जुहुयान्मधुरान्वितः ॥ १६ ॥

पूजायन्त्रवर्णनम्

नवयोन्यात्मकं यन्त्रं बहिरष्टदलावृतम् ।
भूगृहेण पुनर्वीतं पूजनाय लिखेत् सुधीः ॥ १७ ॥

ध्यानमाह – **रक्तेति** । विद्याभये वामयोः । अन्ययोरन्ये ॥ १५ ॥ *॥ १६ ॥ पूजायन्त्रमाह – **नवेति** । स्पष्टम् ॥ १७–२० ॥

विमर्श – **षडङ्गन्यास विधि** इस प्रकार है –

सौः क्लां ऐं हृदयाय नमः, सौः क्लीं ऐं शिरसे स्वाहा,
सौः क्लूं ऐं शिखायै वषट्, सौः क्लैं ऐं कवचाय हुम्,
सौः क्लौं ऐं नेत्रत्रयाय वौषट्, सौः क्लः ऐं अस्त्राय फट् ॥ १४ ॥

अब **बाला देवी का ध्यान** कहते हैं –

लाल वस्त्र वाली मस्तक पर चन्द्रकला से सुशोभित, उदीयमान सूर्य के समान आभा से युक्त चारों हाथों में क्रमशः पुस्तक, अक्षमाला, अभय एवं वरद मुद्रा धारण की हुई रक्त कमल पर विराजमान बाला देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ १५ ॥

बालापूजनयन्त्रम्
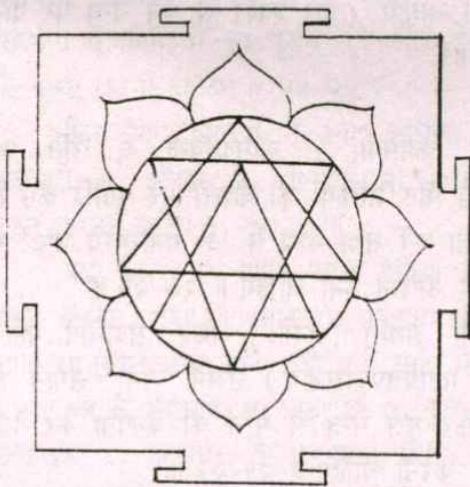
इस मन्त्र का तीन लाख जप करना चाहिए तथा मधु सहित पलाश या कनेर के पुष्पों से दशांश होम करना चाहिए ॥ १६ ॥

अब **बाला यन्त्र निर्माण विधि** कहते हैं – विद्वान् साधक नव योनि वाले यन्त्र के बाहर अष्टदल को भूपुर से वेष्टित कर पूजा के लिए यन्त्र लिखे ।

मध्य योनि में तृतीय (सौः) बीज तथा शेष आठ योनियों में काम बीज (क्लीं) केशरों में स्वर एवं आठ दलों में आठ वर्ग लिखना चाहिए । दलों के अग्रभाग में त्रिशूलादि पद्म आदि लिखकर अष्टदल के

मध्ययोनौ तु तार्तीयमष्टयोनिषु मन्मथम् ।
केसरेषु स्वरान्न्यस्येद्वर्गानष्टौ दलेष्वपि ॥ १८ ॥
दलाग्रेषु त्रिशूलानि पद्मं मातृकयावृतम् ।
एवं विलिखिते यन्त्रे पीठशक्तीः प्रपूजयेत् ॥ १९ ॥
इच्छाज्ञानक्रिया चैव कामिनी कामदायिनी ।
रतीरतिप्रियानन्दामनोन्मन्यपि चान्तिमा ॥ २० ॥
पीठशक्तीरिमा इष्ट्वा पीठं तं मनुना दिशेत् ।

पीठमन्त्रकथनम्

व्योमपूर्वं तु तार्तीयं सदाशिवमहापदम् ॥ २१ ॥
प्रेतपद्मासनं ङेन्तं नमोन्तः पीठमन्त्रकः ।
षोडशार्णस्ततो मूर्त्तौ क्लृप्तायां मूलमन्त्रतः ॥ २२ ॥
आवाह्य पूजयेद् देवीमुपचारैः पृथग्विधैः ।
देवीमिष्ट्वा मध्ययोनौ त्रिकोणे रतिपूर्विकाः ॥ २३ ॥
वामकोणे रतिं दक्षे प्रीतिमग्रे मनोभवाम् ।

अङ्गपूजाकथनम्

योन्यन्तर्वह्निकोणादावङ्गानि परिपूजयेत् ॥ २४ ॥

पीठमन्त्रमाह – **व्योम** हः तत्पूर्वं तृतीयम् । ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नम इति ॥ २१–२३ ॥ अङ्गपूजामाह – **योनीति** । मध्ये योनिमध्ये एवाग्निनिर्ऋति–वाय्वीशानेषु हृच्छिरः शिखावर्माणि सम्पूज्याग्नेयादि त्रिदिक्ष्वस्त्रं यजेत् ॥ २४ ॥

चारों ओर मातृका (वर्णमाला) से घेर देना चाहिए । इस प्रकार से बने यन्त्र पर पीठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ॥ १७-१९ ॥

अब **पीठशक्तियाँ** कहते हैं -

१. इच्छा, २. ज्ञान, ३. क्रिया, ४. कामिनी, ५. कामदायिनी, ६. रति, ७. रतिप्रिया, ८. नन्दा एवं ९. मनोन्मनी इन नौ पीठ शक्तियों की केशरों पर पूर्वादि क्रम से चतुर्थ्यन्त नमः लगाकर आठ दिशाओं में पूजा करें तथा मध्य में 'ॐ मनोन्मन्यै नमः' से पूजा करें - पूजा कर पीठ मन्त्र से देवी को आसन देना चाहिए ॥ २०-२१ ॥

व्योम (ह्) पूर्वक तृतीय बीज 'सौ' अर्थात् (ह्सौः), फिर 'सदाशिव महा', तदनन्तर चतुर्थ्यन्त प्रेतपद्मासन (सदाशिव महाप्रेतपद्मासनाय) उसमें 'नमः' लगाने से सोलह अक्षरों का पीठ मन्त्र बनता है । फिर मूल मन्त्र से मूर्त्ति की कल्पना कर देवी की आवाहनादि द्वारा पृथक् विधान से पूजा करनी चाहिए ॥ २१-२३ ॥

देवी की पूजा के अनन्तर मध्य योनि के त्रिकोण में रति आदि का पूजन इस प्रकार करना चाहिए । वामकोण मे रति दक्षिण में प्रीति तथा अग्रभाग में मनोभवा का

मध्ययोनेर्बहिः पूर्वा दिक्षु चाग्रे स्मरानपि।
बाणदेवीस्तद्वदेवं शक्तीरष्टसु योनिषु ॥ २५ ॥
सुभगाख्या भगापश्चात् तृतीयाभगसर्पिणी।
भगमाली तथानङ्गानङ्गाद्याकुसुमापरा ॥ २६ ॥
अनङ्गमेखलानङ्गमदनेत्यष्टशक्तयः ।
पद्मकेसरगाब्राह्मीमुखाः पत्रेषु भैरवाः ॥ २७ ॥
दीर्घाद्यामातरः पूज्या ह्रस्वाद्याश्चाष्टभैरवाः।
दलाग्रेष्वष्टपीठानि कामरूपाख्यमादिमम् ॥ २८ ॥
मलयं कोल्लगिर्य्याख्यं चौहाराख्यं कुलान्तकम्।
जालन्धरं तथोड्यानं कोढ्ढपीठमथाष्टमम् ॥ २६ ॥
भूगृहे दशदिक्ष्वर्चेद्धेतुकं त्रिपुरान्तकम्।
वेतालमग्निजिह्वं च कालान्तककपालिनौ ॥ ३० ॥

मध्ययोनेर्बहिर्भागे दिक्षुचतुरः– पञ्चममग्रे एवं कामान् यजेत् । बाणदेवी द्राविण्याद्यास्तद्वत् कामवत् । दिक्ष्वग्रे च शक्तीः सुभगाद्या दीर्घाद्या मातरः । आं ब्राह्म्यै नम इत्यादि । ह्रस्वाद्या भैरवाः अं असिताङ्गाय नम इत्यादि ॥ २५ ॥ *॥ २८–२६ ॥ दशदिक्षु हेतुकादयो गणाः ॥ ३० ॥

पूजन करना चाहिए ॥ २३-२४ ॥

अब **अङ्गपूजा** कहते हैं - मध्य योनि के मध्य में एवं अग्निनिर्ऋति वायव्य ईशान कोण में क्रमशः हृदय, शिर, शिखा तथा कवच का पूजन कर पुनः आग्नेय, वायव्य और ईशान में अस्त्र का पूजन करना चाहिए । मध्य योनि के बाहर पूर्वादि दिशाओं में एवं अग्रभाग में कामदेवों का पूजन करे और इसी प्रकार बाणदेवियों (द्राविणी आदि) का भी पूजन करना चाहिए ॥ २४-२५ ॥

फिर आठ योनियों में आठ शक्तियों १. सुभगा, २. भगा, ३. भगसर्पिणी, ४. भगमाली, ५. अनङ्गा, ६. अनङ्गकुसुमा, ७. अनङ्गमेखला एवं ८. अनङ्गमदना आदि का पूजन करना चाहिए ॥ २५-२७ ॥

पद्म केसर पर ब्राह्मी आदि देवियों का, तथा पत्रों पर असिताङ्गादि भैरवों का, पूजन करना चाहिए । आदि में अनुस्वार तथा दीर्घ स्वर लगाकर मातृकाओं का, तथा आदि सानुस्वार ह्रस्व स्वर लगा कर आठ भैरवों का पूजन करना चाहिए ॥ २७-२८ ॥

दल के अग्रभाग पर आठ पीठ १. कामरूप, २. मलय, ३. कोल्लगिरि, ४. चोहार, ५. कुलान्तक, ६. जालन्धर, ७. उड्डयान, एवं ८. कोट्ट का पूजन करना चाहिए ॥ २८-२६ ॥

भूपुर के दश दिशाओं में १. हेतुक, २. त्रिपुरान्तक, ३. वेताल, ४. अग्निजिह्वा, ५. कालान्तक, ६. कपाली, ७. एकपाद, ८. भीमरूप, ६. मलय एवं १०. हाटकेश्वर का

एकपादं भीमरूपं मलयं हाटकेश्वरम्।
शक्राद्यानायुधैः सार्द्धं स्वस्वदिक्षु समर्चयेत्॥ ३१॥
तद्बहिर्दिक्षु बटुकं योगिनीक्षेत्रपालकम्।
गणेशं विदिशास्वर्चेद् वसून् सूर्याञ्छिवांस्ततः॥ ३२॥
भूतांश्चेत्थं भजेद् बालानीशः स्याद् धनविद्ययोः।

शक्राद्यान् स्वस्वदिक्ष्वित्युक्तेः पूर्वावरणानि कल्पितदिक्ष्वेव । एवं सर्वत्र॥ ३१॥ विदिशासु । अग्न्यादिषु वस्वादयः । वसुभ्यो नम इत्यादि॥ ३३॥

पूजन करना चाहिए॥ ३०-३१॥

इसी प्रकार वज्रादि आयुधों के साथ इन्द्रादि दश दिक्पालों का अपनी अपनी दिशाओं में पूजन करना चाहिए । इसके बाद दिशाओं में वटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल एवं गणेश का तथा चारों कोणों में वसु, सूर्य, शिवा एवं भूतों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार धन और विद्या की स्वामिनी बाला की पूजा करनी चाहिए॥ ३१-३३॥

विमर्श - आवरण पूजा विधि - पीठ की पूजा कर मूल मन्त्र से देवी की मूर्ति की कल्पना कर ध्यान करें । तदनन्तर आवाहनादि उपचार से आरम्भ कर पुष्पाञ्जलि दान पूर्वक उनकी पूजा करें । तदनन्तर सर्वप्रथम मध्ययोनि में त्रिकोण में रति आदि की पूजा करें । यथा - ऐं रत्यै नमः, वामकोणे, क्लीं प्रीत्यै नमः, दक्षिण कोणे,
सौः मनोभवायै नमः, अग्रे ।

पुनः मध्य योनि के आग्नेय कोण से प्रारम्भ कर ईशान कोण तक मध्य में एवं दिशाओं में षडङ्ग पूजा इस प्रकार करें -

सौंः क्लां ऐं हृदयाय नमः, सौः क्लीं ऐं शिरसे स्वाहा,
सौः क्लूं ऐं शिखायै वषट्, सौः क्लैं ऐं कवचाय हुम्,
सौः क्लौं ऐं नेत्रत्रयाय वौषट् पुनः सौः क्लः ऐं अस्त्राय फट् (चतुःकोणेषु)

तत्पश्चात् मध्य योनि के बाहर पूर्वादि चारों दिशाओं में तथा अग्रभाग में इस प्रकार पूजा करें - ह्रीं कामाया नमः, क्लीं मन्मथाय नमः,
ऐं कन्दर्पाय नमः, ब्लूं मकरध्वजाय नमः, स्त्रीं मीनकेतने नमः,

पुनः उन्हीं स्थानो में द्राविणी आदि देवियों की पूजा करे -
द्रां द्राविण्यै नमः, द्रीं क्षोभिण्यै नमः, क्लीं वशीकरण्यै नमः,
ब्लूं आकर्षण्यै नमः, सः सम्मोहन्यै नमः, ।

तदनन्तर अष्टयोनियों में सुभगा आदि आठ शक्तियों की पूजा करे -

१ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः सुभगायै नमः,
२ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगायै नमः,
३ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगसर्पिण्यै नमः,
४ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगमालिन्यै नमः,

५ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गायै नमः,
६ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गकुसुमायै नमः,
७ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमेखलायै नमः,
८ - ॐ ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमदनायै नमः,

तदनन्तर पद्मकेशरों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से ब्राह्मी आदि मातृकाओं की -
ॐ आं ब्राह्मयै नमः, ॐ ईं माहेश्वर्यै नमः ॐ ऊं कौमार्यै नमः
ॐ ॠं वैष्णव्यै नमः ॐ लॄं वाराह्यै नमः ॐ ऐं इन्द्राण्यै नमः,
ॐ औं चामुण्डायै नमः, ॐ अः महालक्ष्म्यै नमः,

तत्पश्चात् दलों में उसी प्रकार पूर्वादि क्रम से असिताङ्गादि अष्ट भैरवों का -
१. ॐ अं असिताङ्गभैरवाय नमः, २. ॐ इं रुरुभैरवाय नमः,
३. ॐ उं चण्डभैरवाय नमः, ४. ॐ ॠं क्रोधभैरवाय नमः,
५. ॐ लॄँ उन्मत्तभैरवाय नमः, ६. ॐ एं कपालीभैरवाय नमः,
७. ॐ ओं भीषणभैरवाय नमः, ८. ॐ अः संहारभैरवाय नमः ।

इसके बाद दलों के अग्रभाग में पूर्वादि क्रम से आठ पीठों का -
१ - ॐ कामरूपपीठाय नमः, २ - ॐ मलयगिरिपीठाय नमः,
३ - ॐ कोल्लागिरिपीठाय नमः, ४ - ॐ चौहारपीठाय नमः,
५ - ॐ कुलान्तकपीठाय नमः ६ - ॐ जालन्धरपीठाय नमः,
७ - ॐ उड्डयानपीठाय नमः, ८ - ॐ कोट्टपीठाय नमः,

इसके पश्चात् भूपुर में पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से दश दिशाओं मे हेतुक आदि दश गणों का यथा - ॐ हेतुकाय नमः, ॐ त्रिपुरान्तकाय नमः,
ॐ वेतालाय नमः, ॐ अग्निजिह्वाय नमः, ॐ कालान्तकाय नमः,
ॐ कपालिने नमः, ॐ एकपादाय नमः, ॐ भीमरूपाय नमः,
ॐ मलयाय नमः, ॐ हाटकेश्वराय नमः, ।

पुनः भूपुर के पूर्वादि दिशाओं में वज्रादि आयुधों के सहित इन्द्रादि दश दिक्पालों का यथा - ॐ वज्रसहिताय इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ शक्तिसहिताय अग्नये नमः, आग्नेये,
ॐ दण्डसहिताय यमाय नमः, दक्षिणे, ॐ खड्गसहिताय निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ पाशसहिताय वरुणाय नमः, पश्चिमे, ॐ अंकुशसहिताय वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ गदासहिताय सोमाय नमः उत्तरे ॐ शूलसहिताय ईशानाय नमः, ऐशान्ये,
ॐ पद्मसहिताय ब्रह्मणे नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये,
ॐ चक्रसहिताय अनन्ताय नमः, निर्ऋति पश्चिमयोर्मध्ये ।

भूपुर के बाहर पूर्वादिदिशाओं के क्रम से बटुक आदि का
ॐ बं बटुकाय नमः, पूर्वे, ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः, दक्षिणे,
ॐ यं योगिनीभ्यो नमः, पश्चिमे, ॐ गं गणपतये नमः, उत्तरे,
पुनः ॐ वसुभ्यो नमः, आग्नेये, ॐ शिवाभ्यो नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ आदित्येभ्यो नमः, वायव्ये, ॐ भूतेभ्यो नमः, ऐशान्ये ।

फलानुसारेण प्रयोगकल्पना

रक्ताम्भोजैर्हुतेनार्यो वश्याः स्युः सर्षपैर्नृपाः ॥ ३३ ॥
नन्द्यावर्तराजवृक्षैः कुन्दैः पाटलचम्पकैः ।
पुष्पैर्बिल्वफलैर्वापि होमाल्लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥ ३४ ॥
अपमृत्युं जयेन्मन्त्री गुडूच्यादुग्धयुक्तया ।
पयोक्तदूर्वाहोमात्तु नीरोगायुः समश्नुते ॥ ३५ ॥
ज्ञानं कवित्वं लभते चन्द्रागुरुपुरैर्हुतैः ।
द्विजेन्द्रा वश्यतां यान्ति कुसुमैरपराजितैः ॥ ३६ ॥
कल्हारैः क्षत्रियाः कर्णिकारजैः क्षितिपाङ्गनाः ।
कोरण्टकुसुमैर्वैश्याः पादजाः पाटलैर्हुतैः ॥ ३७ ॥
पालाशपुष्पैर्वाक्सिद्धिरन्नाप्तिर्भक्तहोमतः ।
सारघक्षीरदध्यक्ताल्लाँजान् हुत्वा रुजो जयेत् ॥ ३८ ॥

नन्द्यावर्तस्तगरः ॥ ३४–३५ ॥ चन्द्रः कर्पूरः ॥ पुरं गुग्गुलु ॥ अपराजिता योन्याकारपुष्पवल्ली तदीयान्यपराजितानि तैः ॥ ३६–३७ ॥ सारघं मधु ॥ ३८ ॥

इस प्रकार आवरण पूजा कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करें । तदनन्तर देवी की षोडशोपचार से पूजा करनी चाहिए । नैवेद्य समर्पित करते समय श्री विद्यापद्धति के अनुसार चारो बलि उसी समय देनी चाहिए । इस विधि से पूजन कर यथाशक्ति प्रतिदिन जप करना चाहिए ॥ २३-३३ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं - लाल कमलों के होम से स्त्रियाँ वश में हो जाती हैं तथा सरसों के होम से राजा वश में हो जाते हैं ॥ ३३ ॥

तगर, राजवृक्ष, कुन्द, गुलाब या चम्पा के फूलों से अथवा विल्व फलों से होम करने से लक्ष्मी स्थिर रहती हैं ॥ ३४ ॥

दूध वाली गुडूची होम करने से साधक अपमृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है । दूध में डुबोई गई दूर्वा के होम से साधक निरोग रहकर अपनी आयु व्यतीत करता है ॥ ३५ ॥

चन्दन, अगर एवं गुग्गुल के होम से ज्ञान एवं कवित्वशक्ति प्राप्त होती है तथा अपराजिता नामक लता के पुष्पों के होम से श्रेष्ठ ब्राह्मण वश में हो जाते हैं । कल्हार पुष्पों के हवन से क्षत्रिय तथा कर्णिकार के होम से क्षत्रियों की स्त्रियाँ, कुरण्ट पुष्पों के होम से वैश्य तथा गुलाब के होम से शूद्र वश में हो जाते हैं ॥ ३६-३७ ॥

पलाश पुष्प के होम से वाक्सिद्धि तथा भात के होम से अन्न प्राप्ति होती है । मधु, दूध एवं दही मिश्रित लाजा होम से समस्त रोग दूर हो जाते हैं ॥ ३८ ॥

एक भाग लाल चन्दन १ भाग कपूर, १ भाग कर्चूर, ६ भाग अगर, ४ भाग गोरोचन, १० भाग चन्दन, ७ भाग केशर तथा ४ भाग जटामांसी एक में मिला लेना

वश्यकरतिलककथनम्

रक्तचन्दनकर्पूरकर्चूरागुरुरोचनाः ।
चन्दनं केसरं मांसी क्रमाद् भागैर्नियोजयेत् ॥ ३६ ॥
भूमिचन्द्रैकनन्दाब्धिदिक्सप्तनिगमोन्मितः ।
श्मशाने कृष्णभूतस्य निशि नीहारपाथसा ॥ ४० ॥
कुमार्या पेषयेत्तानि मन्त्रेणाप्यभिमन्त्रयेत् ।
विदध्यात्तिलकं तेन दर्शनाद् वशयेज्जनान् ॥ ४१ ॥
गजसिंहादिभूतानि राक्षसाञ्छाकिनीरपि ।
प्रयोगेष्वेषु कथ्यन्ते क्रमाद् ध्यानानि सिद्धये ॥ ४२ ॥

फलान्तरानुरोधाद्ध्यानभेदेन वर्णनम्

मातुलिङ्गपयोजन्महस्तां कनकसन्निभाम् ।
पद्मासनगतां बालां लक्ष्मीप्राप्तौ विचिन्तयेत् ॥ ४३ ॥
वरपीयूषकलशपुस्तकाभीतिधारिणीम् ।
सुधां स्रवन्तीं ज्ञानाप्तौ ब्रह्मरन्ध्रे विचिन्तयेत् ॥ ४४ ॥

तिलकमाह – **रक्तेति** । मांसी जटामांसी ॥ ३६ ॥ भागानाह – **भूमिरेकः** । नन्दा नव। अब्धयश्चत्वारः। दिशो दश। निगमाश्चत्वारः। रक्तचन्दनमेकभाग-मित्यादि। एतान्येकीकृत्य कृष्णचतुर्दशी रात्रौ कुमार्या संपेष्य मूलेनाभिमन्त्र्य तिलकं कुर्यात्। वशयेदिति शाकिन्यन्तानित्यर्थः ॥ ४०–४२ ॥ ध्यानभेदानाह – **मातुलिङ्गेति**। मातुलिङ्गबीजपूरं तद्दक्षे ॥ ४३ ॥ रोगनाशध्याने । वरामृतकुम्भौ दक्षयोः ॥ ४४–४५ ॥

चाहिए । फिर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को श्मशान या चौराहे पर ओस के जल से कुमारी कन्या द्वारा पिसवा कर उसके उक्त मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित कर तिलक लगावे तो मनुष्य की कौन कहे हाथी, सिंह, भूत, राक्षस एवं शाकिनी आदि सभी उसके वश में हो जाते हैं ॥ ३६-४२ ॥

अब विविध प्रयोगों में सिद्धि के लिए देवी के विविध ध्यानों का क्रमशः निर्देश करते हैं ॥ ४२ ॥

लक्ष्मी प्राप्ति के लिए ध्यान - अपने दोनों हाथों में बीजपूर तथा कमल धारण करने वाली सुवर्ण के समान जगमगाती हुई पद्मासन पर विराजमान बाला का लक्ष्मी प्राप्ति के लिए ध्यान करना चाहिए ॥ ४३ ॥

ज्ञान प्राप्ति के लिए ध्यान - अपने चारों हाथों में वरद मुद्रा, अमृत कलश, पुस्तक एवं अभयमुद्रा धारण करने वाली, अमृत की धारा बहाने वाली (त्रिपुरा) बाला का ज्ञानप्राप्ति के लिए ब्रह्मरन्ध्र में ध्यान करना चाहिए ॥ ४४ ॥

शुक्लाम्बरां शशांकाभां रोगनाशे स्मरेच्छिवाम् ।
अकारादिक्षकारान्तवर्णावयवरूपिणीम् ॥ ४५ ॥
सृणिपाशधरां देवीं रत्नालङ्कारभूषिताम् ।
प्रसन्नामरुणां ध्यायेद् वशीकरणसिद्धये ॥ ४६ ॥
अथ प्रत्येकमन्त्रस्य जपध्यानविधिं ब्रुवे ।
शापोद्धारप्रकारं च बीजानां दीपिनीरपि ॥ ४७ ॥

वाग्बीजध्यानम्

विद्याक्षमालासुकपालमुद्रा–
राजत्करां कुन्दसमानकान्तिम् ।
मुक्ताफलालङ्कृतिशोभिताङ्गीं
बालां स्मरेद् वाङ्मयसिद्धिहेतोः ॥ ४८ ॥
ध्यात्वैवं वाग्भवं लक्षत्रयं शुक्लाम्बरावृतः ।
शुक्लचन्दनलिप्ताङ्गो मौक्तिकाभरणान्वितः ॥ ४९ ॥
जपित्वा तद्दशांशेन पालाशकुसुमैर्नवैः ।
जुहुयान्मधुराक्तैर्यः स कविर्युवतिप्रियः ॥ ५० ॥

वशीकरणध्याने पाशो दक्षे ॥ ४६ ॥ **बीजानामिति** । त्रयाणामित्यर्थः ॥ ४७ ॥ वाग्बीजध्यानमाह – **विद्येति** । अक्षमालाज्ञानमुद्रे दक्षयोः ॥ ४८ ॥ *॥ ४९–५० ॥

रोगनाश के लिए ध्यान - शुक्ल वर्ण का अम्बर धारण की हुई, चन्द्रमा के समान कान्तिमती, अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त वर्णरूप अङ्गावयवों वाली त्रिपुरा बालाम्बा का रोगनाश के लिए ध्यान करना चाहिए ॥ ४५ ॥

वशीकरण के लिए ध्यान - दोनों हाथों में अंकुश एवं पाश धारण किये हुए, रत्नों के आभूषणों से देदीप्यमान, प्रसन्नवदना, अरुण कान्ति वाली बाला का वशीकरण के लिए ध्यान करना चाहिए ॥ ४६ ॥

अब एक एक **बीज के जप एवं ध्यान की विधि** कहते हैं तथा शापोद्धार का प्रकार एवं बीजों की उद्दीपन विधि कहते हैं ॥ ४७ ॥

वाग्बीज का ध्यान - पुस्तक अक्षमाला, न्टकपाल एवं ज्ञानमुद्रा से सुशोभित चतुर्भुजा, कुन्दपुष्प के समान कान्तिमती, मोती के अलङ्कारों से सुशोभित अङ्गों वाली **त्रिपुरा बाला का वाङ्मय सिद्धि के लिए** ध्यान करना चाहिए ॥ ४८ ॥

श्वेत वस्त्र पहन कर, श्वेत चन्दन लगाकर, मुक्ता निर्मित आभूषण धारण कर, साधक बाला का ध्यान कर वाग्भव बीज (ऐं) का तीन लाख जप करें तथा जप के अनन्तर मधुमिश्रित नवीन पालाश पुष्पों से जप के दशांश से होम करें तो वह श्रेष्ठ कवि एवं समस्त युवतियों का प्रिय हो जाता है ॥ ४९-५० ॥

भजेत् कल्पवृक्षाध उद्दीप्तरत्ना–
सने सन्निषण्णां मदाधूर्णिताक्षीम् ।
करैर्बीजपूरं कपालेषु चापं
सपाशांकुशां रक्तवर्णं दधानाम् ॥ ५१ ॥
ध्यात्वा देवीं जपेल्लक्षत्रयं यो मध्यबीजकम् ।
रक्तवस्त्रावृतो रक्तभूषणो रक्तलेपनः ॥ ५२ ॥
दशांशं मालतीपुष्पैश्चन्द्रचन्दनलोलितैः ।
जुहुयात्तस्य वश्याः स्युस्त्रिलोकीजनताः क्षणात् ॥ ५३ ॥

तृतीयबीजध्यानम्

व्याख्यानमुद्रामृतकुम्भविद्या–
मक्षस्रजं सन्दधतीं कराग्रैः ।
चिद्रूपिणीं शारदचन्द्रकान्तिं
बालां स्मरेन् मौक्तिकभूषिताङ्गीम् ॥ ५४ ॥
ध्यात्वैवं चरमं बीजं जपेल्लक्षत्रयं सुधीः ।
सितवस्त्रानुलेपाढ्यमात्मानां देवतां स्मरेत् ॥ ५५ ॥
मालतीकुसुमैर्हुत्वा चन्दनाक्तैर्दशांशतः ।
लक्ष्मीं विद्यासुकीर्तीनामाधारो जायतेऽचिरात् ॥ ५६ ॥

कामबीजध्यानमाह – **कल्पेति** । बीजपूरबाणांकुशां दक्षेषु । कपालचाप–पाशा वामेषु । निषण्णां स्थिताम् । षड्ढस्तेयम् ॥ ५१–५३ ॥ तृतीयबीजध्यान–माह – **व्याख्यानेति** । व्याख्यानमुद्राक्षस्रजौ दक्षयोः ॥ ५४ ॥ *॥ ५५–५७ ॥

अब **कामबीज का ध्यान** कहते हैं - कल्पवृक्ष के नीचे देदीप्यमान रत्नसिंहासन पर विराजमान मद के कारण मदमत्त नेत्रों वाली, अपने छः हाथों में वीजपूर (विजौरा) कपाल, धनुष, बाण तथा पाश और अंकुश धारण करने वाली रक्तवर्णा देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ५१ ॥

लाल वस्त्र और लाल आभूषण धारण कर एवं रक्तचन्दन का तिलक लगाकर देवी के उक्त स्वरूप का ध्यान कर जो साधक काम बीज का तीन लाख जप करता है तथा कपूर एवं लाल चन्दन मिश्रित मालती पुष्पों से दशांश होम करता है उसके वश में त्रिलोकी के समस्त जीव अपने आप हो जाते हैं ॥ ५२-५३ ॥

अब **तृतीय बीज का ध्यान** कहते हैं - चारों हाथों में क्रमशः व्याख्यान मुद्रा, अमृतकलश, पुस्तक और अक्षमाला धारण की हुई, चित्स्वरूपा, शरच्चन्द्र के समान आभा वाली तथा मुक्ताभरण मण्डित श्री बाला का ध्यान करना चाहिए ॥ ५४ ॥

श्वेत वस्त्र पहन कर, श्वेत चन्दन का अनुलेप कर, अपने को स्वयं देवता मानते हुये जो साधक देवी के उक्त स्वरूप का ध्यान कर बाला के तृतीय बीज का तीन लाख

देव्या शप्ता कीलिता च विद्येयं तन्न सिद्धिदा ।
शापोद्धारमथोत्कीलं विधाय जपमाचरेत् ॥ ५७ ॥
योजयेदादिबीजेन वराहभृगुपावकान् ।
मध्यमादौ नभोहंसौ मध्यमा तेन पावकम् ॥ ५८ ॥
आदावन्ते च तार्तीये क्रमात् खं धूमकेतनम् ।
एवं जप्ता शतं विद्या शापहीना फलप्रदा ॥ ५९ ॥
यद्वाद्ये चरमे बीजे नैव रेफं नियोजयेत् ।
शापोद्धारप्रकारोऽन्यो यद्वायं कीर्तितो बुधैः ॥ ६० ॥
आद्यमाद्यं च तार्तीयं कामः कामोऽथ वाग्भवम् ।
अन्त्यमन्त्यमनङ्गं च नवार्णः कीर्तितो मनुः ॥ ६१ ॥

शापोद्धारप्रकारमाह – **योजयेदिति** । आद्ये एतान् योजयेत् । वाराहो हः । भृगुः सः । पावको रः । तेन हस्रौः द्वितीयस्यादौ नभो हंसौहसौ । अन्ते रेफः । तेन हसकलरीमिति कूटम् तृतीयस्यादौ । खं हः । अन्ते धूमकेतनो रेफः तेन ह्सौः एवं भैरवीजाता । अस्यां शतं जप्तायां बाला शापहीना स्यात् ॥ ५८–५९ ॥ यद्वाऽत्रैवाऽद्येन्त्ये च बीजे रेफयोगाभावः । तेन ह्सौः । मध्यमं तदेव ॥ ६० ॥ शापोद्धारप्रकारान्तरम् । नवार्णजपमाह – **आद्यमिति** । ऐं ऐं सौः क्लीं क्लीं ऐं सौः

जप करता है तदनन्तर श्वेत चन्दन मिश्रित मालती पुष्पों से दशांश होम करता है वह शीघ्र ही लक्ष्मी, विद्या और कीर्ति का सत्पात्र हो जाता है ॥ ५५-५६ ॥

अतः यह विद्या (मन्त्र) देवी के द्वारा शापग्रस्त एवं कीलित है । इस कारण यह सिद्धिदायक नहीं है । इसलिए जप करने से पूर्व इसका शापोद्धार एवं उत्कीलन अवश्य कर लेना चाहिए ॥ ५७ ॥

अब **शापोद्धार का प्रकार** कहते हैं - प्रथम बीज के आगे वराह (ह्), भृगु (स) एवं पावक (र) जोड़ देना चाहिए । इस प्रकार यह बीज 'हस्रौ' बन जाता है, मध्यम द्वितीय बीज के आगे नम (ह्) हंस (स्) तथा मध्यमा के अन्त में पावक (र्) जोड़ देना चाहिए । इस प्रकार द्वितीय बीज 'हस्कल रीम' कूट बन जाता है । तृतीय बीज के आदि में ख (ह्) तथा अन्त में धूमकेतन (र्) लगाना चाहिए । इस प्रकार यह बीज ह्सौ' बन जाता है । इस मन्त्र का १०० बार जप कर बाला का शाप दूर करना चाहिए ॥ ५८-५९ ॥

अथवा आद्य एवं अन्त्य बीज से रेफ् निकाल देना चाहिए और मध्यम बीज को यथावत् रखना चाहिए । इस प्रकार निष्पन्न मन्त्र का जप बाला के शाप का उद्धार कर देता है ऐसा विद्वानों ने कहा है ॥ ६० ॥

आद्य (ऐं), आद्य (ऐं), तार्तीय (सौः), काम (क्लीं), काम (क्लीं), तदनन्तर वाग्भव (ऐं), अन्त्य (सौः), अन्त्य (सौः), तथा अनङ्ग (क्लीं), इन ९

जप्तोऽयं शतधा शापं बालाया विनिवर्तयेत् ।
चेतन्याह्लादिनीमन्त्रौ जप्तौ निष्कीलताकरौ ॥ ६२ ॥
त्रिस्वराश्चेतनीमन्त्रोधरः शान्तिरनुग्रहः ।
तारादिहृदयान्तः स्यात् काम आह्लादिनी मनुः ॥ ६३ ॥
तथा त्रयाणां बीजानां दीपनैर्मनुभिस्त्रिभिः ।
सुदीप्तानि विधायादौ जपेत्तानीष्टसिद्धये ॥ ६४ ॥
वदयुग्मं सदीर्घाम्बुस्मृति बालावनन्तगौ ।
सत्यः सनेत्रो नस्ताद्दृग्वाङ्नवार्णाद्यदीपिनी [1] ॥ ६५ ॥

सौः क्लीं – एवं नवार्णः । शतं जप्तः शापनिवर्तकः ॥ ६१–६२ ॥ चेतनीमन्त्रमाह – **त्रीति** । अधर ऐं । शान्तिरी । अनुग्रह औ । एते त्रयः स्वराः केवलाश्चेतनी मन्त्रः । शतं जप्तो बालां निष्कीलां करोति । आह्लादिनीमन्त्रमाह – **तारादीति** । ॐ क्लीं नम इति । अयमप्युत्कीलनकरः ॥ ६३–६४ ॥ वाग्बीजस्य दीपिनीविद्या–माह – **वदेति** । सदीर्घाम्बु वा अनन्त गौ स्मृति बालौ । आस्थितौ गवौ । तेन ग्वा । सनेत्रः सत्यो दि । तादृग् नः निः । वाक् ऐं । इयमाद्यस्य बीजस्य दीपिनी प्रकाशकर्त्री ॥ ६५ ॥

अक्षरों से निष्पन्न मन्त्र (ऐं ऐं सौः क्लीं क्लीं ऐं सौः सौः क्लीं) को १०० बार जप करने से बाला का शाप दूर हो जाता है ॥ ६१-६२ ॥

विमर्श - शापोद्धार के लिए कहे गये मन्त्र का निष्कर्ष - 'हस्रौ हृ स्वलरौ हस्रोः' त्रिपुर भैरवी के इस मन्त्र का १०० बार जप करने से बाला का शाप नहीं लगता अथवा हसौं, हस्वल्रीं हृसौं' इस मन्त्र का १०० बार जप बाला के शाप को दूर कर देता है । तृतीय मन्त्र स्वरूप है ॥ ६१-६२ ॥

चेतनी एवं आह्लादिनी मन्त्रों का जप करने से इस विद्या का उत्कीलन हो जाता है । अधर (ऐं) शान्ति (ई) अनुग्रह (औ) इस प्रकार त्रिस्वर 'ऐं ई औं' यह चेतनी मन्त्र है । आदि में तार (ॐ) तथा अन्त में हृदय (नमः) के सहित काम बीज (क्लीं) लगाने से आह्लादिनी मन्त्र बन जाता है ॥ ६२-६३ ॥

विमर्श - **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है -

१. ॐ ऐं ई औं - **चेतनी मन्त्र** है ।

२. ॐ क्लीं नमः - **आह्लादिनी मन्त्र** है ॥ ६२-६३ ॥

इस प्रकार ६०-६३ श्लोक पर्यन्त शपोद्धार, फिर चेतनी और आह्लादिनी दो मन्त्रों से उत्कीलन विधि कहकर मूल मन्त्र के **उद्दीपन का विधान** कहते हैं ।

जप से पहले आगे वक्ष्यमाण तीन दीपन मन्त्रों से तीनों बीजों को उद्दीपित कर फिर अभीष्ट सिद्धि के लिए मूल मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ ६४ ॥

---

१. वदवदवाग्वादिनि ऐं ।

क्लिन्ने क्लेदिनि बैकुण्ठो दीर्घं खं सद्यगोन्तिमः ।
निद्रासचन्द्राकुर्वताशिवार्णामध्यदीपिनी [१] ॥ ६६ ॥
तारो मोक्षं च कुर्वन्तापञ्चार्णान्त्यस्य दीपिनी [२] ।
दीपिनीमन्तराबालाराधितापि न सिध्यति ॥ ६७ ॥
इदं रहस्यं नाख्येयं कृतघ्ने कितवे शठे ।
परीक्षिताय दातव्यमन्यथा दातृदोषदम् ॥ ६८ ॥
वागन्त्यकामान् प्रजपेदरीणां क्षोभहेतवे ।
कामवागन्त्यबीजानि त्रैलोक्यस्य वशीकृतौ ॥ ६९ ॥

कामबीजस्य दीपिनीमाह – **क्लिन्ने** इति । स्वरूपम् । बैकुण्ठो मः । दीर्घं खं हाः । अन्तिमः क्षः सद्यगः ओगतः क्षो सचन्द्रानिद्राभं । कुरुस्वरूपम् । शिवार्णा एकादशवर्णा मध्यबीजस्य दीपिनी ॥ ६६ ॥ **तार** इति । तारः प्रणवः । मोक्षं कुर्विति स्वरूपम् । अन्त्यस्य बीजस्य दीपिनी । उक्तां दीपिनीम् अन्तरा विना आराधितापि बाला न सिद्धयति ॥ ६७॥ *॥ ६८ ॥ जपभेदान् कामभेदेनाह – **वागिति** । ऐं सौं क्लीमित्यरि नाशाय । क्लीं ऐं सौरिति वशीकरणे॥ ६९ ॥

वदयुग्म (वद वद), सदीर्घाम्बु (वा), अनन्तग स्मृति एवं बाला (ग्वा) पुनः सनेत्र सत्य (दि) पुनः तादृश 'न' (नि) तदनन्तर वागूबीज (ऐं) लगाने से 'वद वद वाग्वादिनी ऐं' - यह नौ अक्षरों का बाला के आद्य बीज (वाग्भवबीज) का उद्दीपक मन्त्र बनता है ॥ ६५ ॥

'क्लिन्ने क्लेदिनि', फिर वैकुण्ठ (म), दीर्घ ख (हा), सद्यग अन्तिम (क्षो), सचन्द्रा निद्रा (भं) और कुरु इस प्रकार 'क्लिन्ने क्लेदिनि महाक्षोभं कुरु' यह ग्यारह अक्षरों का मन्त्र (मध्य काम बीज) का उद्दीपक है ॥ ६६ ॥

तार (ॐ) मोक्षं कुरु इस प्रकार 'ॐ मोक्षं कुरु' यह पाँच अक्षरों का मन्त्र अन्तिम बीज का उद्दीपक हैं । उक्त उद्दीपनी मन्त्रों के बिना आराधना करने पर भी बाला सिद्ध नहीं होती हैं॥ ६७॥ **विमर्श** - अतः तीनों बीजों के साथ उक्त तीनों दीपनी (प्रकाशक) मन्त्रों का प्रारम्भ में ७, ७ बार जप करना आवश्यक है ॥ ६७ ॥

कृतघ्न, धूर्त्त एवं शठ व्यक्ति को ऊपर कहे गये मन्त्र, चेतनी, उत्कीलन तथा उद्दीपन मन्त्रों का उपदेश नहीं करना चाहिए । केवल परीक्षित शिष्य को ही यह रहस्य वतलाना चाहिए । अन्यथा बतलाने वाला पाप का भागी होता है ॥ ६८ ॥

कामना के भेद से मन्त्रों का स्वरूप - शत्रु नाश के लिए प्रथम वाग्भव, तदनन्तर तृतीय, फिर काम बीज 'ऐं सौः क्लीं' का जप करना चाहिए । तीनों लोकों को वश में करने के लिए प्रथम काम बीज, तदनन्तर वाग्भव, फिर तृतीय बीज 'क्लीं ऐं सौः' का

१. क्लिन्ने क्लेदिनि महाक्षोभं कुरु ।
२. ॐ मोक्षं कुरु ।

कामान्त्यवाणीबीजानि मुक्तये नियतो जपेत् ।
पूजाविधौ तु बालायास्त्रिविधानर्चयेद् गुरून् ॥ ७० ॥

सप्तदिव्यौघगुरुवर्णनम्

दिव्यौघश्चेति सिद्धौघो मानवौघ इति त्रिधा ।
परप्रकाशः परमेशानः परशिवस्तथा ॥ ७१ ॥
कामेश्वरस्ततो मोक्षः षष्ठः कामोमृतोन्तिमः ।
एते सप्तैव दिव्यौघा आनन्दपदपश्चिमाः ॥ ७२ ॥

पञ्चसिद्धौघगुरुवर्णनम्

ईशानाख्यस्तत्पुरुषो घोराख्यो वामदेवकः ।
सद्योजात इमे पञ्चसिद्धौघाख्याः स्मृता बुधैः ॥ ७३ ॥
मानवौघः प्रविज्ञेयः स्वगुरोः सम्प्रदायतः ।

त्रैपुराख्ययन्त्रकथनम्

नवयोन्यात्मके यन्त्रे विलिखेन्मध्ययोनितः ॥ ७४ ॥

क्लीं सौः ऐमिति मुक्त्यै ॥ ७० ॥ दिव्यौघानाह – **परप्रकाश** इति । आनन्दपदपश्चिमा इति वक्ष्यमाणत्वात् परप्रकाशानन्दाय नम इत्यादि प्रयोगः ॥ ७१–७२ ॥ सिद्धौघानाह – **ईशानाख्य** इति ॥ ७३ ॥ यन्त्रमाह – **नवेति** । गायत्र्यास्त्रिपुरागायत्र्या वक्ष्यमाणाया वर्णत्रयं प्रतियन्त्रं लिखेत् ॥ ७४–७५ ॥

जप करना चाहिए । मुक्ति के लिए पहले कामबीज, फिर तृतीय बीज, तदनन्तर वाग्भव बीज 'क्लीं ऐं सौः' का जप करना चाहिए ॥ ६९-७० ॥

अब बाला के अनुष्ठान में **गुरुपूजन का विधान** कहते हैं - दिव्यौघ, सिद्धौघ और मानवौघ भेद से गुरु तीन प्रकार के कहे गये हैं । १. पारप्रकाशानन्द, २. परमेशानानन्द, ३. परशिवानन्द, ४. कामेश्वरानन्द, ५. मोक्षानन्द, ६. कामानन्द एवं ७. अमृतानन्द - ये सात दिव्यौघ नाम के गुरु कहे गये हैं ॥ ७०-७२ ॥

विद्वानों ने **पाँच सिद्धौघगुरु** इस प्रकार बतलाए हैं - १. ईशान, २. तत्पुरुष, ३. घोर, ४. वामदेव और ५. सद्योजात । इसके अतिरिक्त अपने गुरु के सम्प्रदायानुसार मानवौघ गुरुओं के नामों को जानना चाहिए ॥ ७३-७४ ॥

विमर्श - गुरुओं के नाम के आगे चतुर्थ्यन्त लगाकर पश्चात् नमः उच्चारण करने से गुरु मन्त्र निष्पन्न होता है । यथा - 'परप्रकाशाननदाय नमः' इत्यादि ।

शारदातिलक के अनुसार पीठ पूजा के बाद पूर्व योनि एवं मध्य योनि के बीच गुरुपूजन करना चाहिए । **श्रीविद्यार्णव** तन्त्र के अनुसार गुरु पंक्ति का पूजन कर वहीं दिव्यौघ, सिद्धौघ एवं मानवौघ गुरुओं का पूजन करना चाहिए ॥ ७३-७४ ॥

प्रादक्षिण्येन बीजानि त्रिवारं साधकोत्तमः ।
त्रींस्त्रींन् वर्णांस्तु गायत्र्या अष्टपत्रेषु संलिखेत् ॥ ७५ ॥
बहिर्मातृकया वेष्ट्य तद्बहिर्भूपुरद्वयम् ।
कामबीजलसत्कोणं व्यतिभिन्नं परस्परम् ॥ ७६ ॥
यन्त्रं त्रैपुरमाख्यातं जप्तं सम्पातसाधितम् ।
बाहुना विधृतं दद्याद्धनं कीर्तिः सुखं सुतान् ॥ ७७ ॥

बालात्रिपुरागायत्रीमन्त्रोद्धारः

कामान्ते त्रिपुरा देवि विद्महेकाविषम्भगि ।
बक्रः खड्गीशमारूढः सनेत्रोऽग्निश्च धीमहि ॥ ७८ ॥

भूपुरद्वयं चतुष्कोणद्वयम् । कीदृशं परस्परं व्यतिभिन्नम्। एकं विदिग्गत–कोणम् । अपरं दिग्गतकोणमित्यर्थः ॥ ७६ ॥ सम्पातसाधितम् आहुतिशेषघृतेन संयोजितम् ॥ ७७ ॥ गायत्रीमुद्धरति – **कामान्त इति** । कामः क्लीं । भगि एयुतं विषं मः मे। बकः शः खड्गीशं बकामारूढः श्वः। सनेत्रः अग्निः रि । स्वरूपमन्यत् ॥ ७८–७६ ॥

अब धारण करने के लिए बाला यन्त्र का विधान कहते हैं -

नवयोन्यात्मक यन्त्र में उत्तम साधक को मध्य योनि से प्रदक्षिण क्रम से प्रारम्भ कर तीन आवृत्तियों में तीन बीजों को लिखना चाहिए । फिर अष्टदल में त्रिपुरा गायत्री के तीन तीन अक्षरों को लिखकर तत्पश्चात् अष्टदल के बाहर लिखित वर्णमाला से उसे वेष्टित करें । फिर परस्पर विलोम रूप में लिखे दो चतुरस्र भूपुर के कोणों में आठ बार काम बीज लिखे । यह त्रिपुरा यन्त्र कहा जाता है । इसे त्रिपुरा के होम के आहुति शेष घृत द्वारा संयोजित कर भुजा में धारण करने से धन, कीर्ति, सुख एवं पुत्र प्राप्त होता है ॥ ७४-७७ ॥

बालाधारणयन्त्रम्
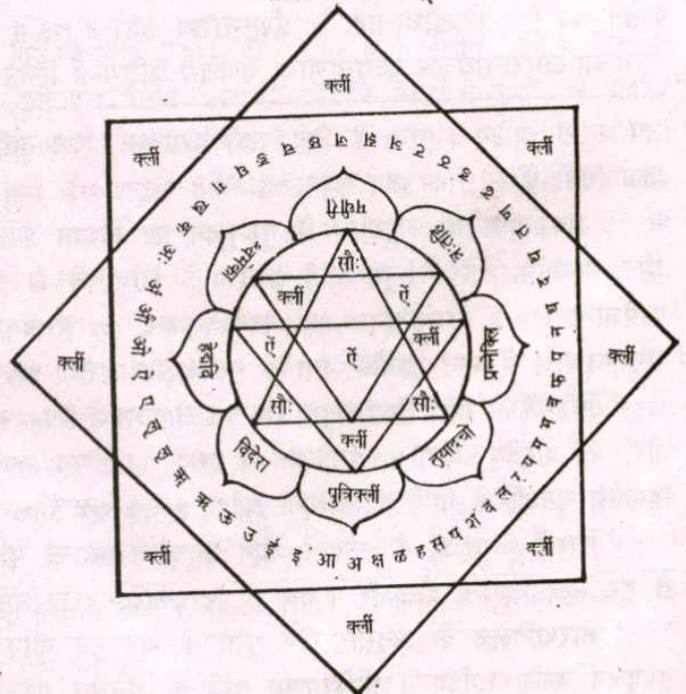
तन्नः क्लिन्ने प्रचोदान्ते यादन्ता कीर्तिता बुधैः [1] ।
गायत्री त्रैपुरी सर्वसिद्धिदा सुरसेविता ॥ ७६ ॥

तन्त्रान्तरगुप्तानां चतुर्दशबालाभेदानां चतुर्दशमन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्यामि बालाया भेदानागमगोपितान् ।
मायाकामोम्बरारूढं तार्तीयं त्र्यक्षरो [2] मनुः ॥ ८० ॥
अनुलोमप्रतिलोमाभ्यां बालामन्त्रः षडक्षरः ।
बालाश्रीकामहृल्लेखा सम्पुटोऽयं नवाक्षरः [3] ॥ ८१ ॥
बालान्ते बालात्रिपुरे स्वाहान्तो दशवर्णवान् [4] ।
वाक्कामो व्योमभृग्विन्दुयुङ्मनुर्दीर्घभूधरः ॥ ८२ ॥

बालाभेदे प्रथमं मन्त्रान्तरमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । कामः क्लीं तार्तीयं सौः अम्बरारूढं हयुतं ह्सौः प्रथमः ॥ ८० ॥ मात्रान्तरमाह – **अनुलोमेति** । ऐं क्लीं सौः – सौः क्लीं ऐं द्वितीयः । मन्त्रान्तरमाह – **बालेति** । श्रीं क्लीं ह्रीं ऐं क्लीं सौः ह्रीं क्लीं श्रीमिति तृतीयः ॥ ८१ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **बालेति** । ऐं क्लीं सौः बाला–त्रिपुरे स्वाहेति चतुर्थः । पञ्चममाह – **वागिति** । वाक् ऐं । कामः क्लीं । व्योम–भृग्विन्दुयुक् मनुः ह सबिन्दुयुत औ ह्सौं । दीर्घ भूधरः बा । पिनाकी ला ॥ ८२ ॥

अब **त्रिपुरा गायत्री मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

काम (क्लीं) उसके बाद 'त्रिपुरा देवि विद्महे का' यह पद, फिर भगि विष (मे), फिर खड्गीश वक (श्व), फिर सनेत्र अग्नि (रि), फिर 'धीमहि', तदनन्तर 'तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात्' इसी को बुद्धिमानों ने सुरसेवित सर्वसिद्धिप्रदा त्रिपुरागायत्री कहा है ॥ ७८-७६ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'क्लीं त्रिपुरादेवि विद्महे कामेश्वरि धीमहि । तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् ॥ ७८-७६ ॥

इसके बाद मैं आगम शास्त्र में अत्यन्त गोपनीय माने जाने वाले बाला मन्त्रों के भेद कहता हूँ - माया (ह्रीं), काम (क्लीं), तथा अम्बरारूढ़ तार्तीय बीज (ह्सौः) इन तीन अक्षरों का **प्रथम भेद** है । यथा - 'ह्रीं क्लीं ह्सौः' ॥ ८० ॥

अनुलोम एवं विलोम क्रम से बाला मन्त्र छः अक्षरों का बन जाता है यथा - 'ऐं क्लीं सौः सौः क्लीं ऐं' यह षडक्षर **द्वितीय भेद** है । पुनः बाला मन्त्र को श्रीबीज, कामबीज एवं मायाबीज से सम्पुटित करने पर नौ अक्षरों का **तीसरा भेद** बन जाता है - यथा - 'श्रीं क्लीं ह्रीं - ऐं क्लीं सौः - ह्रीं क्लीं श्रीं' ॥ ८१ ॥

---

१. क्लीं त्रिपुरादेवि विद्महे कामेश्वरि धीमहि । तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् ।
२. ह्रीं क्लीं हसौः इति त्र्यक्षरः ।
३. श्रीं क्लीं ह्रीं ऐं क्लीं सौः ह्रीं क्लीं श्रीं ।
४. ऐं क्लीं सौः बालात्रिपुरे स्वाहा ।

पिनाकी त्रिपुरे सिद्धिं देहि हृन्मनुवर्णवान्[1] ।
मायालक्ष्मीर्मनोजन्मा त्रिपुरान्ते तु भारती ॥ ८३ ॥
कवित्वं देहि ठद्वन्द्वं षोडशार्णो[2] मनुः स्मृतः ।
कमलापार्वतीकामस्त्रिपुरान्ते च मालती ॥ ८४ ॥
मह्यं सुखं ततो देहि स्वाहा सप्तदशाक्षरः ।
भृगुर्ब्रह्माक्रियावह्निनयुक्ता शान्तिस्स रात्रिया ॥ ८५ ॥
दहनान्त्यमहाकालभुजङ्गपुरुषोत्तमाः ।
मन्वर्घीशेन्दुसंयुक्ता द्वितीयं बीजमीरितम् ॥ ८६ ॥
वाग्बीजं त्रिपुरे सर्वं वाञ्छितं देहि हृत्ततः ।
वह्निप्रिया सप्तदशवर्णोऽयं[3] कीर्तितो मनुः ॥ ८७ ॥

स्वरूपमन्यत् । षष्ठमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । लक्ष्मीः श्रीं । मनोजन्मा क्लीं । ठद्वयं स्वाहा । स्वरूपमन्यत् । सप्तममाह – **कमलेति** । कमला श्रीं । पार्वती ह्रीं । कामः क्लीं । स्वरूपमन्यत् ॥ ८३–८४ ॥ अष्टममाह – **भृग्विति** । भृगुः सः । ब्रह्मा कः । क्रिया लः । वह्नी रः । एतैर्युक्ता शान्तिरीकारः (सरात्रिया) सबिन्दुः स्क्ल्रीं ॥ ८५ ॥ दहनो रः । अन्त्यः क्षः । महाकालो मः । भुजङ्गो रः पुरुषोत्तमो यः । एते मन्वर्घीशेन्दुसंयुक्ता औ बिन्दुयुताः तेन क्ष्म्य्रौं ॥ ८६ ॥ वाग्बीजं ऐं । हृत् नमः । स्वरूपं शेषम् । वह्निप्रिया स्वाहा ॥ ८७ ॥

बाला मन्त्र के बाद 'बालात्रिपुरे स्वाहा' लगाने से दश अक्षरों का **चतुर्थ भेद** बन जाता है । यथा - 'ऐं क्लीं सौः बाला त्रिपुरे स्वाहा' । वाग्बीज (ऐं) कामबीज (क्लीं) व्योम इन्दुयुक् भृगु (ह्सौः) दीर्घयुक्त भूधर (वा) दीर्घयुक्त पिनाकी (ला) फिर 'त्रिपुरे सिद्धिं देहि' इसके अन्त में हृदय (नमः) लगाने से चौदह अक्षरों का **पञ्चम भेद** बन जाता है । यथा - 'ऐं क्लीं ह्सौ बालात्रिपुरे सिद्धिं देहि नमः' यह पञ्चम भेद है ॥ ८२-८३ ॥

लक्ष्मी बीज (श्रीं), पार्वती बीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) के बाद 'त्रिपुराभारती कवित्वं देहि' के बाद ठद्वय 'स्वाहा' लगाने से सोलह अक्षरों का **षष्ठ भेद** निष्पन्न होता है । यथा - 'ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिपुराभारती कवित्वं देहि स्वाहा' ।

लक्ष्मी बीज (श्रीं), पार्वती बीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) के बाद 'त्रिपुरामालती मह्यं सुखं देहि स्वाहा' लगाने से सत्रह अक्षरों का सप्तम भेद होता है । यथा - 'श्रीं ह्रीं क्लीं त्रिपुरामालती मह्यं सुखं देहि स्वाहा' यह **सप्तम भेद** है ॥ ८३-८५ ॥

अब **आठवाँ भेद** कहते हैं - भृगु (स्) ब्रह्मा (क्) क्रिया (ल्) एवं वह्नि (र्) से युक्त शान्ति ईकार सरात्रिया स विन्दुः (स्क्ल्रीं), फिर दहन (र), अन्त्य (क्ष्), महाकालो

---

१. ऐं क्लीं ह्सौं बालात्रिपुरे सिद्धिं देहि नम इति चतुर्दशार्णः ।
२. ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिपुराभारती कवित्वं देहि स्वाहेति षोडशार्णः ।
३. स्क्ल्रीं क्ष्म्य्रौं ऐ त्रिपुरे सर्ववाञ्छितं देहि नमः स्वाहेति सप्तदशार्णः ।

ह्ल्लेखात्रितयं प्रौढत्रिपुरेनन्तारोग्यमै ।
श्वर्यं देहि प्रियावह्नेर्मनुरष्टादशाक्षरः[1] ॥ ८८ ॥
मायारमामन्मथान्ते त्रिपुरामदने पदम् ।
सर्वं शुभं साधयाग्नेः प्रियान्तोऽष्टादशाक्षरः[2] ॥ ८९ ॥
ह्ल्लेखाकमलानङ्गो बालान्ते त्रिपुरेपदम् ।
मदायत्तां ततो विद्यां कुरु हृद्वह्निवल्लभा ॥ ९० ॥
मन्त्रो विंशतिवर्णोऽयं[3] मायापद्मामनोभवः ।
परापरेन्ते त्रिपुरे सर्वमीप्सितमुच्यताम् ॥ ९१ ॥

नवममाह – **ह्ल्लेखेति** । हल्लेखात्रितयं ह्रीं ॥ ३ ॥ अनन्त आ । स्वरूपमपरम् ॥ ८८ ॥ दशममाह – **मायेति** । माया ह्रीं । रमा श्रीं । मन्मथः क्लीं । स्वरूपं शेषम् ॥ ८९ ॥ एकादशमाह – **ह्ल्लेखेति** । हृल्लेखा ह्रीं । कमला श्रीं । अनङ्गः क्लीं हृत् नमः । वह्निवल्लभा स्वाहा । शेषं स्वरूपम् ॥ ९० ॥ द्वादशमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । पद्मा श्रीं मनोभवः क्लीं ॥ ९१ ॥

(म्) भुजङ्ग (र्), पुरुषोत्तम (य), मनु अर्घीश इन्द्र से संयुक्त (औ) क्ष्म्यूरौं यह द्वितीय बीज हुआ । फिर वाग्बीज (ऐं), तदनन्तर 'त्रिपुरे सर्ववाञ्छितं देहि' इसके बाद 'नमः' एवं स्वाहा लगाने से सत्रह अक्षरों का **अष्टम भेद** बनता है । यथा - 'स्क्ल्रीं क्ष्म्यूरौं ऐं त्रिपुरे सर्ववाञ्छितं देहि नमः स्वाहा' ॥ ८५-८७ ॥

हल्लेखा त्रितय (ह्रीं ह्रीं ह्रीं), फिर 'प्रौढ़ त्रिपुरे' के बाद अनन्त (आ), फिर 'रोग्यमैश्वर्यं देहि', फिर वह्निप्रिया (स्वाहा), यह अष्टादशाक्षर बाला का **नवम भेद** निष्पन्न होता है । यथा - 'ह्रीं ह्रीं ह्रीं प्रौढ़त्रिपुरे आरोग्यमैश्वर्यं देहि स्वाहा' ॥ ८८ ॥

अब **दशम भेद** कहते हैं - माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), मन्मथ (क्लीं) के बाद 'त्रिपुरामदने सर्वंशुभं साधय' के बाद अग्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से अष्टादशाक्षर दशम भेद हो जाता है । यथा - 'ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिपुरामदने सर्वशुभं साधय स्वाहा' ॥ ८८-८९ ॥

अब **एकादश भेद** कहते हैं - हृल्लेखा (ह्रीं), कमला (श्रीं), अनङ्ग (क्लीं) के बाद 'बालात्रिपुरे' यह पद, फिर 'मदायत्तां विद्यां कुरु', तदनन्तर हृत् (नमः) फिर वह्निवल्लभा (स्वाहा) लगाने से बीस अक्षरों का ग्यारहवाँ भेद होता है यथा - 'ह्रीं श्रीं क्लीं बालात्रिपुरे मदायत्तां विद्यां कुरु नमः स्वाहा' ॥ ९० ॥

अब **द्वादश भेद** कहते हैं - माया (ह्रीं), पद्मा (श्रीं), मनोभव (क्लीं) के बाद 'परापरे त्रिपुरे सर्वमीप्सितं साधय' के बाद अनलकान्ता (स्वाहा) यह बीस वर्ण का बारहवाँ भेद है ।

---

१. ह्रीं ह्रीं ह्रीं प्रौढत्रिपुरे आरोग्यमैश्वर्यं देहि स्वाहेत्वा हेत्यष्टादशार्णः ।
२. ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिपुरामदने शुभं साधय स्वाहेत्यष्टादशाक्षरः ।
३. ह्रीं श्रीं क्लीं बालत्रिपुरे मदायत्तां विद्यां कुरु नमः स्वाहेति विंशत्यर्णः ।

साधयानलकान्तायमन्यो विंशतिवर्णकः[1] ।
कामद्वन्द्वं रमायुग्मं मायायुक्त्रिपुरापदम् ॥ ६२ ॥
ललितेन्ते मदीप्सीति तामन्ते योषितं पदम् ।
देहि वाञ्छितमित्युक्त्वा कुरु ज्वलनकामिनी ॥ ६३ ॥
अष्टाविंशतिवर्णोऽयं मनुरिष्टप्रियाप्रदः[2] ।
कामपद्माद्रिपुत्रीणां प्रत्येकं त्रितयं वदेत् ॥ ६४ ॥
त्रिपुरान्ते सुन्दरीति सर्वं जग दिनद्वयम् ।
वशं कुरु द्वयं मह्यं बलं देह्यनलाङ्गना ॥ ६५ ॥
सर्वाभीष्टप्रदो मन्त्र उक्तो बाणगुणाक्षरः[3] ।
चतुर्दशानामेतेषां मनूनामृषिरीरितः ॥ ६६ ॥

अनलकान्ता स्वाहा । अन्यत् स्वरूपम् । त्रयोदशमाह – **कामेति** । कामद्वन्द्वं क्लीं क्लीं रमायुग्मं श्रीं श्रीं । मायायुक् ह्रीं । त्रिपुराललिते मदीप्सितां योषितं देहि वाञ्छितं कुरु इति स्वरूपम् । ज्वलनकामिनी स्वाहा ॥ ६२–६३ ॥ चतुर्दशमाह – **कामेति** । कामपद्माद्रिपुत्रीणां प्रत्येकं त्रयं क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ॥ ६४ ॥ इनद्वयं मद्वयं मम । अनलाङ्गना स्वाहा । स्वरूपमपरम् ॥ ६५ ॥ एते चतुर्दशबालाभेदाः । तेषाम् ॥ ६६ ॥

यथा - 'ह्रीं श्रीं क्लीं परापरे त्रिपुरे सर्वमीप्सितं साधय स्वाहा' ॥ ६१-६२ ॥

अब **तेरहवाँ भेद** कहते हैं - काम द्वन्द्व (क्लीं क्लीं), रमायुग्म (श्रीं श्रीं), मायायुग्म (ह्रीं ह्रीं), फिर 'त्रिपुरा ललिते मदीप्सितां योषितं देहि वाञ्छितं कुरु', इसके बाद 'ज्वलन कामिनी स्वाहा' लगाने से बाला का अट्ठाइस अक्षरों का **तेरहवाँ भेद** निष्पन्न होता है । यथा - 'क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं त्रिपुराललिते मदीप्सितां योषितं देहि वाञ्छितं कुरु स्वाहा' ॥ ६२-६३ ॥

अब **चौदहवाँ भेद** कहते हैं - कामबीज, पद्मबीज और अद्रिपुत्री बीज का तीन तीन बीज (क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं) इसके बाद 'त्रिपुरसुन्दरि सर्वजगत्' के बाद इन द्वय (मम), फिर 'वशं', तदनन्तर कुरु द्वय (कुरु कुरु), फिर मह्यं बलं देहि, के बाद अनलाङ्गना (स्वाहा) लगाने से समस्त अभीष्टदायक पैंतीस अक्षरों का **चौदहवाँ भेद** बनता है । यथा - 'क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं त्रिपुरसुन्दरि सर्वजगन्मम वशं कुरु कुरु मह्यं बलं देहि स्वाहा' ॥ ६४-६५ ॥

इस प्रकार इन चौदह बाला के मन्त्रों के भेदों को कहा है ॥ ६६ ॥

---

१. ह्रीं श्रीं क्लीं परापरे त्रिपुरे सर्वमीप्सितं साधय स्वाहेति विंशत्यर्णः ।

२. क्लीं क्लीं श्रीं ह्रीं त्रिपुराललिते मदीप्सितां योषितं देहि वाञ्छितं कुरु स्वाहेत्यष्टाविंशत्यर्णः

३. क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं त्रिपुरसुन्दरि सर्वजगन्ममवशं कुरु कुरु मह्यं बलं देहि स्वाहेति पञ्चत्रिंशदर्णः ।

तेषां मन्त्राणामृष्यादिकथनम्

दक्षिणामूर्तिसंज्ञस्तु च्छन्दो गायत्रमुच्यते।
त्रिपुरादेवता बाला षडङ्गं मातृकासमम्[1] **॥ ९७ ॥**

ध्यानवर्णनम्

पाशांकुशौ पुस्तकमक्षसूत्रं
करैर्दधाना सकलामरार्च्या।
रक्ता त्रिनेत्रा शशिशेखरे यं
ध्येयाखिलर्द्ध्यै त्रिपुरात्र बाला ॥ ९८ ॥
जपेल्लक्षं दशांशेन होमः पुष्पैर्हयारिजैः।
पूजापूर्वोदिते पीठेङ्गैः रत्याद्यैश्च सायकैः ॥ ९९ ॥
मातृभिर्दिगधीशास्त्रैः प्रयोगाः पूर्ववन्मताः।
लघुश्यामामथो वक्ष्ये स्मरणादिष्टदायिनीम् ॥ १०० ॥

ऋष्याद्याह – **दक्षिणेति** ॥ ९७ ॥ ध्यानमाह – **पाशेति** । अंकुशाक्षसूत्रे दक्षयोः ॥ ९८ ॥ हयारिः करवीरः । सायकैः पञ्चबाणदेवताभिः ॥ ९९ ॥ दिगधीशास्त्रैरिति। दिशामीशैस्तदस्त्रैश्चेत्यर्थः ॥ १०० ॥

इन सभी चौदह मन्त्रों के दक्षिणामूर्त्ति ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा त्रिपुरा बाला देवता हैं, इनका षडङ्गन्यास मातृका के समान है ॥ ९६-९७ ॥

विमर्श - शारदातिलक के अनुसार इनका बीज वाग्भव, शक्ति तार्तीय एवं कीलक कामबीज है।

विनियोग - ॐ अस्य श्रीबालामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः त्रिपुराबालादेवता ऐं बीजं सौः शक्तिः क्लीं कीलकं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ ९७ ॥

अब इनके **अनुष्ठान के लिए ध्यान** कहते हैं - अपने चारों हाथों में पाश अंकुश, पुस्तक तथा अक्षसूत्र धारण करने वाली, रक्तवर्ण वाली, त्रिनेत्रा, मस्तक पर चन्द्रकला धारण किये त्रिपुरा बाला का समस्त अभीष्ट सिद्धि के लिए ध्यान करना चाहिए ॥ ९८ ॥

उक्त मन्त्रों का एक लाख जप करना चाहिए । फिर हयारिज (कनेर) के फूलों से दशांश होम करना चाहिए । पूर्वोक्त पीठ पर षडङ्गपूजा, रत्यादि की, पञ्चबाणदेवताओं की, मातृकाओं की, दिक्पालों एवं उनके अस्त्रों की पूजा कर देवी का पूजन पूर्वोक्त रीति से करना चाहिए । इसी प्रकार इनका प्रयोग भी पूर्व की भाँति करना चाहिए ॥ ९९-१०० ॥

अब स्मरण मात्र से मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली लघुश्यामा का मन्त्र कहता हूँ ॥ १०० ॥

---

१. अस्य बालामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः गायत्री छन्दः त्रिपुराबालादेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

लघुश्यामामन्त्रकथनम्

वाग्बीजं हृदयं कर्ण एकनेत्रः सनेत्रकः।
वृषो मुकुन्दमारूढो कूर्मो दीर्घेन्दुसंयुतः ॥ १०१ ॥
नन्दीदीर्घोलिमातङ्गिसर्वान्ते स्याद्वशङ्करि।
वैश्वानरप्रियान्तोऽयं मन्त्रो विंशतिवर्णवान्[१] ॥ १०२ ॥
मदनोऽस्य मुनिः[२] प्रोक्तो गायत्रीनिचृदादिका।
छन्दो देवीलघुश्यामा बीजं वाग्वह्निवल्लभा ॥ १०३ ॥
शक्तिरुक्ताखिलाऽभीष्टसाधने विनियोजनम्।

न्यासकथनम्

वाक्पूर्विकां रतिं मूर्ध्नि प्रीतिं मायादिकां हृदि ॥ १०४ ॥
पादयोर्विन्यसेन्मन्त्री कामपूर्वां मनोभवाम्।
इच्छाशक्तिं ज्ञानशक्तिं क्रियाशक्तिं क्रमान्न्यसेत् ॥ १०५ ॥

बालामुक्त्वा लघुश्यामामाह – **वाग्बीजमिति** । वाग्बीजं ऐं । हृदयं नमः । कर्ण उ । सनेत्रक एकनेत्रः इयुतश्छिः छि । मुकुन्दमारुढो वृषः टस्थितः षः ष्ट। दीर्घेन्दु संयुतः कूर्मः चः चां ॥ १०१ ॥ दीर्घो नन्दी डाः । लिमातङ्गि सर्ववशंकरि स्वरूपम् । वैश्वानरप्रिया स्वाहा ॥ १०२ ॥ ऐं बीजं स्वाहा शक्तिः ॥ १०३ ॥ न्यासानाह – **वागिति** । ऐं रत्यै नमः मूर्ध्नि । ह्रीं प्रीत्यै नमो हृदि ॥ १०४ ॥ क्लीं मनोभवायै नमः पादयोः । इच्छेति । ऐं इच्छाशक्त्यै नमो मुखे । ह्रीं ज्ञानशक्त्यै नमः कण्ठे । क्लीं क्रियाशक्त्यै नमो लिङ्गे ॥ १०५ ॥

वाग्वीज (ऐं), हृदय (नमः), कर्ण (उ), सनेत्र एक नेत्र (च्छि), मुकुन्दमारूढ वृष (ष्ट), दीर्घेन्दु संयुत कूर्म (चां), दीर्घनन्दी (डा), फिर 'लिमातङ्गि' 'सर्ववशंकरि' यह पद, तदनन्तर वैश्वानर प्रिया (स्वाहा) लगाने से बीस अक्षरों का लघुश्यामा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १०१-१०२ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं नमः उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गि सर्ववशंकरि स्वाहा' ॥ १०१-१०२ ॥

इस मन्त्र के मदन ऋषि हैं, निचृद गायत्री छन्द है तथा लघु श्यामा देवता हैं, वाग्भवबीज (ऐं) एवं वह्निवल्लभा (स्वाहा) शक्ति है । समस्त अभीष्ट साधन में इसका विनियोग किया जाता है ॥ १०३-१०४ ॥

प्रारम्भ में वाग्बीज लगाकर रति का शिर में, माया वीज सहित प्रीति का हृदय में,

---

१. ऐं नम उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गि सर्ववशङ्करि स्वाहेति विंशत्यर्णः ।

२. अस्य लघुश्यामामन्त्रस्य मदनऋषिः निचृद्गायत्रीच्छन्दः देवीलघुश्यामादेवता ऐंबीजं स्वाहाशक्तिः ममाखिलाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

वाङ्मायाकामबीजाद्यां मुखे कण्ठे शिवे तथा।

बाणेशीबीजानि

द्रावणं शोषणं बाणं तापनं मोहनाभिधम् ॥ १०६ ॥
उन्मादनं क्रमात् पञ्चबाणेशीबीजपूर्वकान्।
कास्यहृद्गुह्यपादेषु न्यस्य कुर्यात् षडङ्गकम् ॥ १०७ ॥
रामाग्निगुणरामाङ्गनेत्रवर्णैर्मनूत्थितैः ।

अष्टमातृकान्यासः

ङेनमोन्ताः कन्यकान्ता ब्राह्म्याद्या अष्टमातरः ॥ १०८ ॥

बाणेशीबीजानि – द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः इति । तत्पूर्वकान् । द्रावणाद्यान् बाणान् कास्यहृदगुह्यपादे न्यसेत् । द्रां द्रावण बाणाय नम इत्यादि । कं शिरः । आस्यं मुखम् ॥ १०६–१०७ ॥ षडङ्गमाह – **रामेति** । मातृकान्यासमाह – **ङे** इति। दीर्घस्वरा आद्यास्येदृशं विलोमतो दीर्घक्षादीनाष्टकमाद्यं यासां ता मातरो मूर्द्धादिषु न्यस्याः । तथा कीदृश्यो मातरः । ङे नमोन्ताः कन्यकान्ताः चतुर्थी नमोन्तं कन्यकापदमन्ते यासां ताः । यथा – आं क्षां ब्राह्मीकन्यकायै नमो मूर्ध्नि । ई लां

कामबीज सहित मनोभवा का पैर में न्यास करना चाहिए, फिर वाग्बीज सहित इच्छाशक्ति का मुख में, मायाबीज सहित ज्ञानशक्ति का कण्ठ में, दोनों ओर कामबीज सहित क्रियाशक्ति का लिङ्ग में न्यास करना चाहिए ॥ १०४-१०५ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीलघुश्यामामन्त्रस्य मदनऋषिः निचृदगायत्रीछन्दः लघुश्यामादेवता ऐं बीजं स्वाहाशक्तिः ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

रत्यादिन्यास विधिः -

ॐ ऐं रत्यै नमः, मूर्ध्नि, ॐ ह्रीं प्रीत्यै नमः, हृदि,
ॐ क्लीं मनोभवायै नमः, पादयोः, ॐ ऐं इच्छाशक्त्यै नमः, मुखे,
ॐ ह्रीं ज्ञानशक्त्यै नमः, कण्ठे, ॐ क्लीं क्रियाशक्त्यै नमः, लिङ्गे ॥ १०४-१०५॥

अब **वाणन्यास** कहते हैं - वाणेशी के बीजों को प्रारम्भ में लगाकर द्रावण, शोषण, तापन, मोहन एवं उन्मादन इन ५ बाणों का क्रमशः शिर, मुख, हृदय, गुह्याङ्ग एवं पैरों पर न्यास करना चाहिए । यथा - ॐ द्रां द्रावणवाणाय नमः, शिरसि,
ॐ द्रीं शोषणवाणाय नमः, मुखे, ॐ क्लीं तापबाणाय नमः, हृदये,
ॐ ब्लूं मोहनबाणाय नमः, गुह्ये, ॐ सः उन्मादन बाणाय नमः, पादयोः ।

इसके बाद मूल मन्त्र के ३, ३, ३, ३, ६ एवं २ वर्णो से इस प्रकार षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १०७॥ **विमर्श** - ॐ ऐं नमः, हृदयाय नमः, ॐ उच्छिष्ट शिरसे स्वाहा,
ॐ चाण्डालि शिखायै वषट्, ॐ मातङ्गि कवचाय हुम्
ॐ सर्ववशङ्करि नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ १०६-१०८॥

दीर्घस्वराद्यदीर्घक्षाद्यष्टकाद्याविलोमतः ।
विन्यस्य मूर्ध्नि वामांसे वामपार्श्वेषु नाभितः ॥ १०६ ॥
दक्षपार्श्वे दक्षिणांसे ककुद्धृदययोरपि ।
तारवागादिका अष्टौ सिद्धयः कन्यकान्तिमाः ॥ ११० ॥
चतुर्थी नमसायुक्ता न्यस्याः कालिकचिल्लिषु ।
कण्ठे च हृदये नाभावाधारे लिङ्गमूर्द्धनि ॥ १११ ॥
अणिमा महिमा चापि लघिमा गरिमेशिता ।
वशिता चाथ प्राकाम्यं प्राप्तिरित्यष्ट सिद्धयः ॥ ११२ ॥

माहेश्वरीकन्यकायै नमो वामांसे । ऊं हां कौमारीकन्यकायै नमो वामपार्श्वे । ॠं सां वैष्णवीकन्यकायै नमो नाभौ । लृं षां वाराहीकन्यकायै नमो दक्षपार्श्वे । एं शां इन्द्राणीकन्यकायै नमो दक्षांसे । औं वां चामुण्डाकन्यकायै नमो ककुदि । अः लां महालक्ष्मीकन्यकायै नमो हृदि । सिद्धिन्यासमाह – **तारेति** । ॐ ऐं अणिमासिद्धि-कन्यकायै नमो मूर्ध्नीत्यादि । **सिद्धय इति** । अनुपदं वक्ष्यमाणाः ॥ १०८–११० ॥ अलिकं ललाटम्, चिल्लिर्भ्रूः ॥ १११ ॥ अष्टसिद्धीराह – **अणिमेत्यादि** ॥ ११२ ॥

तदनन्तर दीर्घ अष्टस्वर सहित विलोम क्रम से दीर्घ आकार सहित क्षकार आदि अष्टक वर्णों को चतुर्थ्यन्त ब्राह्मीकन्यका आदि अष्ट मातृकाओं के साथ लगाकर मूर्धा, वामांस, वामपार्श्व, नाभि, दक्षपार्श्व, दक्षांस ककुद तथा हृदय में न्यास करें ॥ १०८-११० ॥

विमर्श – मातृकान्यास - यथा -

ॐ आं क्षां ब्राह्मीकन्यकायै नमः, मूर्ध्नि,
ॐ ईं लां माहेश्वरीकन्यकायै नमः, वामांसे,
ॐ हां कौमारीकन्यकायै नमः, वामपार्श्वे,
ॐ ॠं सां वैष्णवीकन्यकायै नमः, नाभौ,
ॐ लृं षां वाराहीकन्यकायै नमः, दक्षपार्श्वे
ॐ ऐं शां इन्द्राणीकन्यकायै नमः, दक्षांसे,
ॐ ओं वां चामुण्डाकन्यकायै नमः, ककुदि,
ॐ अः लां महालक्ष्मीकन्यकायै नमः, हृदि ॥ १०८-११० ॥

तार (ॐ) वाग्बीज (ऐं) प्रारम्भ में लगाकर अष्ट सिद्धियों के नाम को चतुर्थ्यन्त कन्यका के साथ जोड़कर अन्त में 'नमः' लगाकर 'क' (शिरे), अलिक (ललाट), चिल्लि (भ्रू), कण्ठ, हृदय, नाभि, मूलाधार और लिङ्ग के ऊपर न्यास करें ॥ ११०-१११ ॥

१. अणिमा, २. महिमा, ३. लघिमा, ४. गरिमा, ५. ईशिता, ६. वशिता, ७. प्राकाम्य एवं ८. प्राप्ति - ये आठ सिद्धियाँ कही गयी हैं ॥ ११२ ॥

विमर्श - अष्टसिद्धियों का न्यास इस प्रकार है -

ॐ ऐं अणिमासिद्धिकन्यकायै नमः, शिरसि,

अष्टाप्सरसां नामानि न्यासश्च

कामाद्याः कन्यकाः प्रीता अष्टावप्सरसो न्यसेत् ।
के भाले नेत्रयोर्वक्त्रे कर्णयोः काकुदेऽपि च ॥ ११३ ॥
उर्वशी मेनका रम्भा घृताची पुञ्जकस्थला ।
सुकेशी मञ्जुघोषा च महारङ्गवतीरिताः ॥ ११४ ॥

यक्षादिकन्यान्यासकथनम्

यक्षगन्धर्वसिद्धानां कन्यका नरनागयोः ।
विद्याधरः किंपुरुषः पिशाचानामपीहताः ॥ ११५ ॥
अंसयोर्हृदये न्यस्येत् स्तनयोर्जठरे क्रमात् ।
गुह्येऽप्याधारदेशे च नमोन्ता मदनादिकाः ॥ ११६ ॥

अप्सरो न्यासमाह – **कामाद्या** इति । क्लीं उर्वशीकन्यकायै नमो मूर्ध्नि इत्यादि । नेत्रयोर्द्वे । कर्णयोर्द्वे । अप्सरस आह – **उर्वशीति** । कन्यान्यासमाह – **यक्षेति** । नमोन्ता मदनादिकाः । कामबीजाद्या यक्षादीनां कन्यका अंसादिषु

ॐ ऐं महिमासिद्धिकन्यकायै नमः, ललाटे,
ॐ ऐं लघिमासिद्धिकन्यकायै नमः, भ्रुवोः,
ॐ ऐं गरिमासिद्धिकन्यकायै नमः, कण्ठे,
ॐ ऐं ईशितासिद्धिकन्यकायै नमः, हृदये,
ॐ ऐं वशितासिद्धिकन्यकायै नमः, नाभौ,
ॐ ऐं प्राकाम्यसिद्धिकन्यकायै नमः, मूलाधारे,
ॐ ऐं प्राप्तिसिद्धिकन्यकायै नमः, लिङ्गोपरि ॥ ११०-११२ ॥

अब **अप्सरान्यास** कहते हैं –

प्रारम्भ में कामबीज लगाकर प्रसन्न चित्त वाली उर्वशी आदि आठ अप्सराओं को चतुर्थ्यन्त कन्यका शब्द के साथ जोड़कर (शिर) भाल (ललाट), दक्षिण नेत्र, वामनेत्र, मुख, दक्षिण कर्ण, वामकर्ण, एवं ककुद स्थानों में न्यास करें ॥ ११३ ॥

१. उर्वशी, २. मेनका, ३. रम्भा, ४. घृताची, ५. पुंजकस्थला, ६. सुकेशी, ७. मञ्जुघोषा एवं ८. महारङ्गवती ये आठ अप्सरायें कहीं गई हैं ॥ ११४ ॥

विमर्श – अप्सरान्यास विधि – क्लीं उर्वशीकन्यकायै नमः, मूर्ध्नि,
क्लीं मेनकाकन्यकायै नमः, ललाटे, क्लीं रम्भाकन्यकायै नमः, दक्षिणनेत्रे,
क्लीं घृताचीकन्यकायै नमः, वामनेत्रे क्लीं सुकेशीकन्यकायै नमः, दक्षिणकर्णे
क्लीं मञ्जुघोषाकन्यकायै नमः, वामकर्णे,
क्लीं महारङ्गवतीकन्यकायै नमः, ककुदि ॥ ११३-११४ ॥

तदनन्तर यक्षकन्या, गन्धर्वकन्या, सिद्धकन्या, नरकन्या, नागकन्या, विद्याधरकन्या,

ताराद्यान्नमसायुक्तान् मूलवर्णान्सबिन्दुकान् ।
न्यसेत् सन्धिषु साग्रेषु करयोः पादयोरपि ॥ ११७ ॥
न्यासानेवंविधान् कृत्वा मातङ्गीमासने स्मरेत् ।
सुरार्णवान्तरीपस्थरत्नमन्दिरमध्यगे ॥ ११८ ॥

न्यसेत्। अंसयोर्द्वे स्तनयोर्द्वे एकैकान्यत्र । क्लीं यक्षकन्यकायै नमो दक्षांसे – क्लीं गन्धर्वकन्यकायै नमो वामांसे – इत्यादिप्रयोगः ॥ ११३–११६ ॥ वर्णन्यासमाह – **तारेति** । प्रणवाद्यान् । नमोन्तान् सबिन्दुकान् । मन्त्रवर्णान् करपादसिन्धषु साग्रेषु न्यसेत् । ॐ क्लीं नमो दक्षेंसे । ॐ नमो दक्षकूर्परे इत्यादि ॥ ११७ ॥ सुरार्णवस्यान्तरीपं द्वीपं तत्र यद् रत्नमन्दिरं तन्मध्यगे सिंहासने स्थितां ध्यायेत् ॥ ११८ ॥

किंपुरुषकन्या और पिशाचकन्या को चतुर्थ्यन्त कर अन्त में नमः, तथा प्रारम्भ में काम बीज लगाकर दोनों कन्धे, हृदय, दोनों स्तन, जठर, गुह्य एवं मूलाधार में न्यास करें ॥ ११५-११६ ॥

विमर्श – यथा – १. ॐ क्लीं यक्षकन्यकायै नमः, दक्षांसे
२. ॐ क्लीं गन्धर्वकन्यकायै नमः, वामांसे ३. ॐ क्लीं सिद्धकन्यकायै नमः, हृदि
४. ॐ क्लीं नरकन्यकायै नमः, दक्षिणस्तने ५. ॐ क्लीं नागकन्यकायै नमः, वामस्तने
६. ॐ क्लीं विद्याधरकन्यकायै नमः, जठरे ७. ॐ क्लीं किंपुरुषकन्यकायै नमः, गुह्ये
८. ॐ क्लीं पिशाचाकन्यकायै नमः, मूलाधारे ॥ ११५-११६ ॥

अब **मन्त्र वर्ण का न्यास** कहते हैं – प्रारम्भ में तार (ॐ) तथा अन्त में 'नमः' लगाकर सानुस्वार मूल मन्त्र के प्रत्येक वर्ण से हाथ एवं पैरों की संधियों में तथा अग्रभाग में न्यास करे ॥ ११७ ॥

विमर्श – यथा – ॐ ऐं नमः, दक्षांसे, ॐ नं नमः, दक्षकूर्परे,
ॐ मं नमः, दक्षमणिबन्धे, ॐ उं नमः, दक्षाङ्गुलिमूले,
ॐ च्छिं नमः, दक्षाङ्गुल्यग्रे, ॐ ष्टं नमः, वामांसे
ॐ चां नमः, वामकूर्परे, ॐ डां नमः, वाममणिबन्धे,
ॐ लिं नमः, वामाङ्गुलि मूले, ॐ मां नमः, वामाङ्गुल्यग्रे,
ॐ तं नमः, दक्षपादमूले, ॐ ङ्गिं नमः, दक्षजंघायाम्,
ॐ सं नमः, दक्षगुल्फे, ॐ वैं नमः, दक्षपादाङ्गुलिमूले,
ॐ वं नमः, दक्षपादाङ्गुल्यग्रे, ॐ शं नमः, वामपादमूले,
ॐ कं नमः, वामजंघायाम, ॐ रिं नमः, वामगुल्फे,
ॐ स्वां नमः, वामपादाङ्गुलिमूले, ॐ हां नमः, वामपादागुल्यग्रे ॥ ११७ ॥

अब **मातङ्गी देवी का ध्यान** –

इस प्रकार उपरोक्त सभी न्यास कर मातङ्गी का ध्यान उनके आसन पर इस प्रकार करें, जो सुरा के सागर के मध्य में स्थित द्वीप में रत्नमन्दिर के मध्य में सिंहासन पर विराज रही हैं, माणिक्य के आभूषणों से सुशोभित मन्द मन्द हास

मातङ्गीध्यानकथनम्

माणिक्याभरणान्वितां स्मितमुखीं नीलोत्पलाभाम्बरां,
रम्यालक्तकलिप्तपादकमलां नेत्रत्रयोल्लासिनीम्।
वीणावादनतत्परां सुरनतां कीरच्छदश्यामलां
मातङ्गीं, शशिशेखरामनुभजेत्ताम्बूलपूर्णाननाम्॥ ११९॥

प्रयोगकथनम्

लक्षं जपेन्मधूकोत्थैर्जुहुयादयुतं शुभैः।
मातङ्गीप्रोदिते पीठे लघुश्यामां प्रपूजयेत्॥ १२०॥
त्रिकोणपञ्चकोणाऽष्टदलषोडशपत्रके।
वेदद्वारधरागेहावृत्ते यन्त्रे विधानतः॥ १२१॥
देव्या अग्रे पार्श्वयोश्च तिस्रोर्चेद्रतिपूर्विकाः।
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तीः कोणेष्वग्रादिषु त्रिषु॥ १२२॥

माणिक्येति । कीरच्छदश्यामलां शुकपिच्छनीलाम्॥ ११९–१२१॥ रतिपूर्विका रतिप्रीतिमनोभवाः॥ १२२–१२३॥

करती हुई नील कमल के समान कान्तिमती है, जिसके शरीर पर नीले वस्त्र तथा चरणकमलों में अलक्तक सुशोभित हो रहे हैं, ऐसी त्रिनेत्रा, वीणावादन में तत्पर, देवताओं द्वारा वन्दित, तोता के पंखो के समान नील वर्णवाली, मस्तक पर चन्द्र धारण किये, पान का बीडा मुख में लिए मातङ्गी भगवती का मैं ध्यान करता हूँ॥ ११८-११९॥
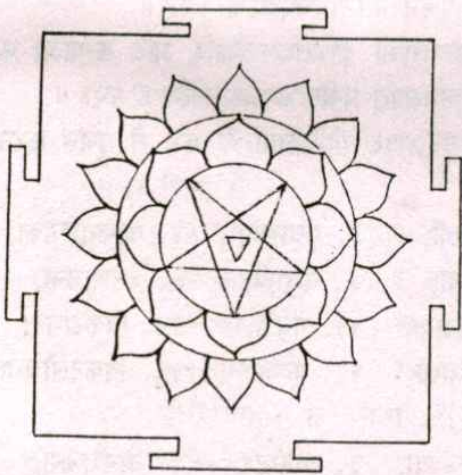
लघुश्यामापूजनयन्त्रम्

उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए तथा महुये के पुष्प या फल से दश हजार आहुतियाँ देनी चाहिए। पूर्वोक्त मातङ्गी पीठ पर **लघुश्यामा** का पूजन करना चाहिए (द्र० ७. ७३-७४)॥ १२०॥

अब **पूजन यन्त्र का विधान** कहते हैं - त्रिकोण पञ्चकोण अष्टदल एवं षोडशदल को चार द्वार वाले भूपुर से वेष्टित करें। इस प्रकार निर्मित मन्त्र पर लघुश्यामा का पूजन करें॥ १२१॥

देवी के अग्रभाग में एवं दोनों पार्श्वभाग में रति, प्रीति एवं मनोभाव का, त्रिकोण के अग्र त्रिभाग में इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति का पूजन करना चाहिए॥ १२२॥

बाणान्पञ्चसु कोणेषु केसरेष्वङ्गदेवताः ।
ब्राह्म्याद्या अष्टपत्रेषु पत्राग्रेष्वणिमादिकाः ॥ १२३ ॥
यजेत् षोडशपत्रेषूर्वश्याद्याः कन्यका अपि ।
प्रयोगान्न्यासवत्कुर्याद् रत्यादीनां प्रपूजने ॥ १२४ ॥
भूगृहस्य चतुर्दिक्षु योगिनीः परिपूजयेत् ।

चतुःषष्टियोगिनीकथनम्

गजानना सिंहमुखी गृध्रास्या काकतुण्डिका ॥ १२५ ॥
उष्ट्रग्रीवा हयग्रीवा वाराही शरभानना ।
उलूकिका शिवारावा मयूरी विकटानना ॥ १२६ ॥
अष्टवक्त्रा कोटराक्षी कुब्जा विकटलोचना ।
समर्चयेद्दिशि प्राच्यामेताः षोडशयोगिनीः ॥ १२७ ॥
शुष्कोदरी ललज्जिह्वाश्वदंष्ट्रा वानरानना ।
ऋक्षाक्षी केकराक्षी च बृहत्तुण्डा सुराप्रिया ॥ १२८ ॥

उर्वश्याद्या अष्टौ । कन्या अष्टौ यक्षादीनाम् । न्यासवत् प्रयोगान् । न्यासे यथा प्रयोगास्तथा पूजायामपि ॥ १२४ ॥ योगिनीराह – **गजाननेत्यादि** ॥ १२५ ॥ प्रतिदिशं षोडशं यथार्थनाम्न्यः सर्वाः ॥ १२६–१२६ ॥

पञ्चकोण के पाँच कोणों में द्रावण, शोषण, तापन, मोहन एवं उन्माद इन पाँच बाणों का तथा केशरों में षडङ्ग पूजन करना चाहिए । अष्टदल में ब्राह्मी आदि शक्तियों का तथा दलाग्रभाग में अणिमादिसिद्धियों का पूजन करना चाहिए ॥ १२३ ॥

तदनन्तर षोडशदलों में उर्वशी आदि अप्सराओं का तथा यक्षादि आठ कन्याओं का पूजन करना चाहिए । रति आदि के पूजन में न्यासवत् प्रयोग करना चाहिए ॥ १२४ ॥

तदनन्तर भूपुर के चारों दिशाओं में १६, १६ योगिनियों के क्रम से पूजन करना चाहिए । **पूर्व दिशा में** –

१. गजानना, २. सिंहमुखी, ३. गृध्रास्या, ४. काकतुण्डिका,
५. उष्ट्रग्रीवा, ६. हयग्रीवा, ७. वाराही, ८. शरभानना,
९. उलूकिका, १०. शिवारावा, ११. मयूरी, १२. विकटानना,
१३. अष्टवक्त्रा, १४. कोटराक्षी १५. कुब्जा एवं १६. विकटलोचना

दक्षिण दिशा में –

१. शुष्कोदरी, २. ललज्जिह्वा, ३. श्वदंष्ट्रा ४. वानरानना,
५. ऋक्षाक्षी, ६. केकराक्षी, ७. बृहत्तुण्डा, ८. सुराप्रिया,
९. कपालहस्ता, १०. रक्ताक्षी, ११. शुकी, १२. श्येनी,
१३. कपोतिका, १४. पाशहस्ता, १५. दण्डहस्ता एवं १६. प्रचण्डा

कपालहस्ता रक्ताक्षी शुकी श्येनी कपोतिका ।
पाशहस्ता दण्डहस्ता प्रचण्डेत्यपि षोडश ॥ १२६ ॥
पूज्या कीनाशदिग्भागे प्रतीच्यां चण्डविक्रमा ।
शिशुघ्नी पापहन्त्री च काली रुधिरपायिनी ॥ १३० ॥
वसाधया गर्भभक्षा शवहस्तान्त्रमालिनी ।
स्थूलकेशी बृहत्कुक्षिः सर्पास्या प्रेतवाहना ॥ १३१ ॥
दन्तशूककरा क्रौञ्ची मृगशीर्षेति षोडश ।
सम्पूज्या उत्तरस्यां तु षोडशैव वृषानना ॥ १३२ ॥
व्यात्तास्या धूमनिःश्वासा व्योमैकचरणोर्ध्वदृक् ।
तापनी शोषणी दृष्टिः कोटरी स्थूलनासिका ॥ १३३ ॥
विद्युत्प्रभा बलाकास्या मार्जारी कटपूतना ।
अट्टाट्टहासा कामाक्षेत्यर्चनीया अभीष्टदाः ॥ १३४ ॥
नश्यन्ति भूतशाकिन्य आसां नाम श्रुतेरपि ।
भूमन्दिरस्य कोणेषु वह्न्यादिषु यजेत्क्रमात् ॥ १३५ ॥
स्वस्वमन्त्रेण बटुकं गणेशं क्षेत्रपालकम् ।
दुर्गां तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादीनपि पूजयेत् ॥ १३६ ॥

कीनाशदिग्भागे दक्षिणस्याम् ॥ १३० ॥ *॥ १३१–१३५ ॥ स्वस्वमन्त्रेणेति । बटुकादीनां मन्त्रा उक्ताः ॥ १३६ ॥ *॥ १३७–१३८ ॥

पश्चिम दिशा में -

१ चण्डविक्रमा,	२ शिशुघ्नी,	३ पापहन्त्री,	४ काली,
५ रुधिरपायिनी,	६ वसाधया,	७ गर्भभक्षा,	८ शवहस्ता,
९ अन्त्रमालिनी,	१० स्थूलकेशी,	११ वृहत्कुक्षी,	१२ सर्पास्या,
१३ प्रेतवाहना,	१४ दन्तशूककरा	१५ क्रौञ्ची एवं	१६ मृगशीर्षा

उत्तर दिशा में -

१ वृषानना,	२ व्यात्तास्या,	३ धूमनिश्वासा,	४ व्योमैकचरणा,
५ ऊर्ध्वदृक्,	६ तापनी,	७ शोषणी,	८ दृष्टि,
९ कोटरी	१० स्थूलनासिका,	११ विद्युत्प्रभा,	१२ वलाकास्या,
१३ मार्जारी	१४ कटपूतना	१५ अट्टाट्टहासा एवं	१६ कामाक्षी

इन योगिनियों का नाम सुनते ही भूतगण तथा शाकिनियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥ १२५-१३५ ॥

पुनः भूपुर के आग्नेयादि कोणों में क्रमशः तत्तन्मन्त्रों से बटुक, गणेश, क्षेत्रपाल एवं दुर्गा का पूजन करना चाहिए । भूपुर के बाहर पूर्वादि दिक् क्रम से इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का भी पूजन करना चाहिए ॥ १३५-१३६ ॥

भूगृहस्य चतुर्दिक्षु चतुर्वाद्यानि पूजयेत् ।
तत्तत्संज्ञं च विततं घनं च सुषिराभिधम् ॥ १३७ ॥
द्वादशावरणैरेवं लघुश्यामां यजेत्तु यः ।
सर्वासां सम्पदां पात्रमचिराज्जायते स ना ॥ १३८ ॥

पुनः भूपुर के चारों दिशाओं में १. वीणा, २. वितत, ३. घन एवं ४. सुषिर आदि चारों वाद्यों का पूजन करना चाहिए । जो व्यक्ति इस प्रकार बारह आवरणों के साथ लघुश्यामा का पूजन करता है वह शीघ्र ही समस्त सम्पत्तियों का आश्रय बन जाता है ॥ १३७-१३८ ॥

विमर्श - आवरण पूजा विधान - प्रथमतः ११८-११६ श्लोक में वर्णित देवी का ध्यान कर मानसोपचार से पूजन करें । ७. ७३-७४ श्लोक में वतलाई गई विधि से मूल मन्त्र से पीठ पूजन कर उस पीठ पर मूल मन्त्र से देवी की मूर्त्ति की कल्पना कर उनका विधिवत् पूजन करें । फिर पुष्प समर्पण के उपरान्त उनकी अनुज्ञा ले कर यन्त्र में इस प्रकार आवरण पूजा करें -

प्रथम आवरण में देवी के आगे तथा दोनों पार्श्व में निम्न मन्त्रों से पूजन करना चाहिए -

ऐं रत्यै नमः, अग्रे,
ह्रीं प्रीत्यै नमः, दक्षिणपार्श्वे, क्लीं मनोभवायै नमः, वामपार्श्वे,

द्वितीय आवरण में त्रिकोण के अग्रभाग से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणा क्रम से इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति का पूजन निम्न मन्त्रों से करना चाहिए -

ऐं इच्छाशक्त्यै नमः, ह्रीं ज्ञानशक्त्यै नमः, क्लीं क्रियाशक्त्यै नमः,

तृतीयावरण में पञ्चकोण में द्रावण आदि पञ्चबाणों की पूजा करनी चाहिए -

द्रां द्रावणबाणाय नमः, द्रीं शोषणबाणाय नमः,
क्लीं तापनबाणाय नमः, ब्लूं मोहनबाणाय नमः,
सः उन्मादनबाणाय नमः, ।

चतुर्थावरण में केशरों में षडङ्ग पूजा करनी चाहिए -

ऐं नमः, हृदयाय नमः, उच्छिष्ट शिरसे स्वाहा,
चाण्डालि शिखायै वषट्, मातङ्गि कवचाय हुम्,
सर्ववशङ्करि नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्

पञ्चम आवरण में अष्टदल में पूर्वादि क्रम से ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं का पूजन करना चाहिए -

आं क्षां ब्राह्मीकन्यकायै नमः, ईं लां माहेश्वरीकन्यकायै नमः,
ऊं हां कौमारीकन्यकायै नमः, ॠं सां वैष्णवीकन्यकायै नमः,
लृं षां वाराहीकन्यकायै नमः, ऐं शां इन्द्राणीकन्यकायै नमः,
औ वां चामुण्डाकन्यकायै नमः, अः लां महालक्ष्मीकन्यकायै नमः, ।

षष्ठ आवरण में अष्टदल के अग्रभाग में वाग्वीज पूर्वक अष्टसिद्धियों की पूजा करनी चाहिए ।

१ - ॐ ऐं अणिमासिद्धिकन्यकायै नमः, २ - ॐ ऐं महिमासिद्धिकन्यकायै नमः,
३ - ॐ ऐं लघिमासिद्धिकन्यकायै नमः, ४ - ॐ ऐं गरिमासिद्धिकन्यकायै नमः,
५ - ॐ ऐं ईशितासिद्धिकन्यकायै नमः, ६ - ॐ ऐं वशितासिद्धिकन्यकायै नमः,
७ - ॐ ऐं प्राकाम्यसिद्धिकन्यकायै नमः, ८ - ॐ ऐं प्राप्तिसिद्धिकन्यकायै नमः,

सप्तम आवरण में कामवीजपूर्वक उर्वशी आदि आठ अप्सराओं की निम्न नाममन्त्रों से पूजा करनी चाहिए -

१ - ॐ क्लीं उर्वशीकन्यकायै नमः, २ - ॐ क्लीं मेनकाकन्यकायै नमः
३ - ॐ क्लीं रम्भाकन्यकायै नमः, ४ - ॐ क्लीं घृताचीकन्यकायै नमः
५ - ॐ क्लीं पुञ्जकस्थलाकन्यकायै नमः, ६ - ॐ क्लीं सुकेशीकन्यकायै नमः,
७ - ॐ क्लीं मञ्जुघोषाकन्यकायै नमः ८ - ॐ क्लीं महारङ्गवतीकन्यकायै नमः,

इसी प्रकार सप्तम आवरण में ही यक्षादि आठ कन्यकाओं की पूजा भी तत्तन्नाममन्त्रों से करनी चाहिए -

१ - ॐ क्लीं यक्षकन्यकायै नमः २ - ॐ क्लीं गन्धर्वकन्यकायै नमः
३ - ॐ क्लीं सिद्धकन्यकायै नमः ४ - ॐ क्लीं नरकन्यकायै नमः
५ - ॐ क्लीं नागकन्यकायै नमः ६ - ॐ क्लीं विद्याधरकन्यकायै नमः
७ - ॐ क्लीं किंपुरुषकन्यकायै नमः ८ - ॐ क्लीं पिशाचकन्यकायै नमः

अष्टम आवरण में भूपुर के चारों दिशाओं में १६, १६ योगिनियों की पूजा करनी चाहिए ।

भूपुर के पूर्वदिशा में -

१. ॐ गजाननायै नमः, २. ॐ सिंहमुख्यै नमः, ३. ॐ गृध्रास्यायै नमः
४. ॐ काकतुण्डायै नमः ५. ॐ उष्ट्रग्रीवायै नमः ६. ॐ हयग्रीवायै नमः
७. ॐ वाराह्यै नमः ८. ॐ शरभाननायै नमः ९. ॐ उलूकिकायै नमः
१०. ॐ शिवारावायै नमः ११. ॐ मयूर्यै नमः १२. ॐ विकटाननायै नमः
१३. ॐ अष्टवक्त्रायै नमः १४. ॐ कोटराक्ष्यै नमः १५. ॐ कुब्जायै नमः
१६. ॐ विकटलोचनायै नमः

भूपुर के दक्षिणदिशा में -

१. ॐ शुष्कोदर्यै नमः, २. ॐ ललज्जिह्वायै नमः, ३. ॐ श्वदंष्ट्रायै नमः
४. ॐ वानराननायै नमः ५. ॐ ऋक्षाक्ष्यै नमः ६. ॐ केकराक्ष्यै नमः
७. ॐ बृहत्तुण्डायै नमः ८. ॐ सुराप्रियायै नमः ९. ॐ कपालहस्तायै नमः
१०. ॐ रक्ताक्ष्यै नमः ११. ॐ शुक्यै नमः १२. ॐ श्येन्यै नमः
१३. ॐ कपोतिकायै नमः १४. ॐ पाशहस्तायै नमः १५. ॐ दण्डहस्तायै नमः
१६. ॐ प्रचण्डायै नमः

भूपुर के पश्चिम दिशा में -

१. ॐ चण्डविक्रमायै नमः, २. ॐ शिशुघ्न्यै नमः ३. ॐ पापहन्त्र्यै नमः
४. ॐ काल्यै नमः ५. ॐ रुधिरपायिन्यै नमः ६. ॐ वसाधयायै नमः
७. ॐ गर्भभक्षायै नमः ८. ॐ शवहस्तायै नमः ९. ॐ अन्त्रमालिन्यै नमः
१०. ॐ स्थूलकेश्ये नमः ११. ॐ बृहत्कुक्ष्यै नमः १२. ॐ सर्पास्यायै नमः
१३. ॐ प्रेतवाहनायै नमः १४. ॐ दन्तशूक्करायै नमः १५. ॐ क्रौञ्च्यै नमः
१६. ॐ मृगशीर्षायै नमः

भूपुर के उत्तर दिशा में -

१. ॐ वृषाननायै नमः, २. ॐ व्यात्तास्यायै नमः ३. ॐ धूमनिश्वासायै नमः
४. ॐ व्योमैकचरणायै नमः ५. ॐ ऊर्ध्वदृशे नमः ६. ॐ तापिन्यै नमः
७. ॐ शोषिण्यै नमः ८. ॐ दृष्ट्यै नमः ९. ॐ कोटर्यै नमः
१०. ॐ स्थूलनासिकायै नमः ११. ॐ विद्युत्प्रभायै नमः १२. ॐ बलाकास्यायै नमः
१३. ॐ मार्जार्यै नमः १४. ॐ कटपूतनायै नमः
१५. ॐ अट्टाट्टहासकायै नमः १६. ॐ कामाक्ष्यै नमः

तदनन्तर **नवम आवरण में** पुनः भूपुर के चारों दिशाओं में पूर्वादि से बटुक, गणपति, क्षेत्रपाल और दुर्गा की पूजा करनी चाहिए ।

ॐ बं बटुकाय नमः, पूर्वे ॐ गं गणपतये नमः, दक्षिणे
ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः, पश्चिमे ॐ दुं दुर्गायै नमः, उत्तरे

इसके बाद **दशम आवरण में** भूपुर के बाहर इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए ।

१ - ॐ इन्द्राय नमः, पूर्वे २ - ॐ अग्नये नमः, आग्नेये
३ - ॐ यमाय नमः, दक्षिणे ४ - ॐ निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये
५ - ॐ वरुणाय नमः, पश्चिमे ६ - ॐ वायवे नमः, वायव्ये
७ - ॐ सोमाय नमः, उत्तरे ८ - ॐ ईशानाय नमः, ऐशान्ये
९ - ॐ ब्रह्मणे नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये,
१० - ॐ अनन्ताय नमः, पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये,

इसके बाद **एकादश आवरण में** पुनः भूपुर के बाहर दश दिक्पालों के समीप उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए ।

१ - ॐ वज्राय नमः, पूर्वे २ - ॐ शक्तये नमः, आग्नेये
३ - ॐ दण्डाय नमः, दक्षिणे ४ - ॐ खड्गाय नमः, नैर्ऋत्ये
५ - ॐ पाशाय नमः, पश्चिमे ६ - ॐ अंकुशाय नमः, वायव्ये
७ - ॐ गदायै नमः, उत्तरे ८ - ॐ त्रिशूलाय नमः, ऐशान्ये
९ - ॐ पद्माय नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये,
१० - ॐ चक्राय नमः, पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये,

लघुश्यामायाः द्वादशावरणपूजागायत्रीकथनं च

वाणीशुक्रप्रिया ङेन्ता विद्महे मीनकेतनः ।
कामेश्वरीं धीमहीति तन्नः श्यामाप्रचोदयात्[1] **॥ १३६ ॥**
एषोदिता तु मातङ्गीगायत्री सर्वसिद्धिदा ।
अनया यागवस्तूनि प्रोक्षेत्तस्यास्समर्चने ॥ १४० ॥
मातङ्गीमन्त्रसम्प्रोक्ताः प्रयोगाः तत्र कीर्तिताः ।
राजानो राजपुत्राश्च सुदृशो मदमन्थराः ॥ १४१ ॥
दासामनोवचःकायैर्भवन्त्यस्या उपासितुः ।
शाकिनीप्रेतभूताश्च धर्षितुं तं न शक्नुयुः ॥ १४२ ॥

तद्गायत्रीमाह – **वाणीति** । वाणी ऐं । शुकप्रिया ङेन्ता शुकप्रियायै । मीनकेतनः क्लीं । स्वरूपं शेषः ॥ १३६ ॥ * ॥ १४०–१४१ ॥

पुनः **बारहवें आवरण में** भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं में वाद्यों की पूजा करे -

ॐ वीणाय नमः, पूर्वे, ॐ वितताय नमः, दक्षिणे,
ॐ घनाय नमः, पश्चिमे, ॐ सुषिराय नमः, उत्तरे,

इस प्रकार आवरण पूजा सम्पादन कर धूप दीपादि उपचारों से देवी का पूजन कर पुनः जप करना चाहिए ॥ १२५-१३८ ॥

अब **मातङ्गी गायत्री का उद्धार** कहते हैं -

वाणी (ऐं) चतुर्थ्यन्त शुकप्रिया (शुकप्रियायै), फिर 'विद्‌महे', तदनन्तर मीनकेतन कामबीज (क्लीं), फिर 'कामेश्वरीं धीमहि', इसके बाद 'तन्नः श्यामा प्रचोदयात्' लगाने से सर्वाभीष्टप्रदायिनी मातङ्गी गायत्री निष्पन्न होती है । मातङ्गी की अर्चना में इसी गायत्री से समस्त यज्ञ सामग्री अभिषिञ्चित करें ॥ १३९-१४० ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -

ऐं शुकप्रियायै विद्महे क्लीं कामेश्वरीं धीमहि । तन्नः श्यामा प्रचोदयात् ।

सप्तम तरङ्ग (६६-६८) में हमने मातङ्गी के मन्त्र तथा उसके समस्त प्रयोगों को ७. ८३-६१ में कहा है ।

राजा, राजपुत्र, मदविह्वला, सुन्दरी स्त्रियाँ ये सभी मातङ्गी की उपासना करने वाले साधक के मन वचन और कार्य से वश में हो जाते हैं । किं बहुना शाकिनी अथवा प्रेत या भूत आदि उसे किसी प्रकार भयभीत नहीं कर सकते ॥ १४१-१४२ ॥

इस विषय में विशेष कहने की आवश्यकता नही है, यह देवी अपने उपासकों के

---

१. ऐं शुकप्रियायै विद्महे क्लीं कामेश्वरि धीमहि । तन्नः श्यामा प्रचोदयात् ।

भूरिणा किमिहोक्तेन देवीयमखिलेष्टदा ।
यन्मनुस्मरणादेव नरो देवोपमो भवेत् ॥ १४३ ॥
देव्याउपासकैः पुम्भिः स्त्रियो निन्द्या न जातुचित् ।
देवीवन्माननीयास्ता मनोऽभीष्टमभीप्सुभिः ॥ १४४ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ बालालघुश्यामा-
निरूपणमष्टमस्तरङ्गः ॥ ८ ॥

---

* ॥ १४०–१४१ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां
बालालघुश्यामानिरूपणमष्टमस्तरङ्गः ॥ ८ ॥

सारे अभीष्ट पूर्ण करती है । इन देवी के मन्त्र के स्मरण मात्र से मनुष्य देवता के समान बन जाता है ॥ १४३ ॥

देवी के उपासकों को कभी किसी भी हालत में स्त्री निन्दा नहीं करनी चाहिए । अपना अभीष्ट चाहने वालों को उनका सत्कार देवी की तरह ही करना चाहिए ॥ १४४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के अष्टम तरङ्ग की महाकवि
पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय
कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ८ ॥

अथ नवमः तरङ्गः

अन्नपूर्णेश्वरीमन्त्रं वक्ष्येऽभीष्टप्रदायकम् ।
कुबेरो यामुपास्याशु लब्धवान्निधिनाथताम् ॥ १ ॥
शम्भोः सख्यं दिगीशत्वं कैलासाधीशतामपि ।

अन्नपूर्णेश्वरी मन्त्रः

वेदादिर्गिरिजापद्मामन्मथो हृदयं भग ॥ २ ॥
वतिमाहेश्वरि प्रान्तेऽन्नपूर्णे दहनाङ्गना ।
प्रोक्ताविंशतिवर्णेयं विद्या स्याद् द्रुहिणो मुनिः ॥ ३ ॥
कृतिश्छन्दोऽन्नपूर्णेशी देवता परिकीर्तिता ।
षड्दीर्घाढ्येन हृल्लेखाबीजेन स्यात्षडङ्गकम् ॥ ४ ॥

---

* नौका *

अन्नपूर्णेश्वरी मन्त्रवक्तुं प्रतिजानीते । फलं कथयन् मन्त्रमुद्धरति – **वेदादिरिति** । वेदादिः प्रणवः । गिरिजा ह्रीं । पद्मा श्रीं । मन्मथः क्लीं । हृदयं नमः। भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वरूपम् । दहनाङ्गना स्वाहा । द्रुहिणो ब्रह्मा ॥ १–५ ॥

---

* अरित्र *

अब अभीष्ट फल देने वाले अन्नपूर्णेश्वरी के मन्त्रों को कहता हूँ, जिनकी उपासना से कुबेर ने निधिपतित्व, सदाशिव से मित्रता, दिगीशत्व एवं कैलाशाधिपतित्व प्राप्त किया ॥ १-२ ॥

अब **भगवती अन्नपूर्णेश्वरी का मन्त्रोद्धार** कहते हैं -

वेदादि (ॐ), गिरिजा (ह्रीं), पद्मा (श्रीं), मन्मथ (क्लीं), हृदय (नमः), तदनन्तर 'भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे' पद, फिर अन्त में दहनाङ्गना (स्वाहा), लगाने से बीस अक्षरों का अन्नपूर्णा मन्त्र बनता है ॥ २-३ ॥

इस मन्त्र के द्रुहिण (ब्रह्मा) ऋषि हैं, कृति छन्द हैं तथा अन्नपूर्णेशी देवता कही गई हैं । षड्दीर्घ सहित हृल्लेखा बीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ३-४ ॥

मुखनासाक्षिकर्णान्धुगुदेषु नवसु न्यसेत् ।
पदानि नवतद्वर्णसंख्येदानीमुदीर्यते ॥ ५ ॥
भूमिचन्द्रधरैकाक्षिवेदाब्धियुगबाहुभिः ।
पदसंख्यामितैर्वर्णैस्ततो ध्यायेत् सुरेश्वरीम् ॥ ६ ॥

ध्यानवर्णनम्

तप्तस्वर्णनिभा शशाङ्कमुकुटा रत्नप्रभाभासुरा
नानावस्त्रविराजिता त्रिनयना भूमीरमाभ्यां युता ।
दर्वीहाटकभाजनं च दधती रम्याच्च पीनस्तनी
नृत्यन्तं शिवमाकलय्य मुदिता ध्येयान्नपूर्णेश्वरी ॥ ७ ॥

भूमीत्यादितद्वर्णसंख्या ॥ ६ ॥ ध्यानमाह – दर्वीदक्षे स्वर्णपात्रं वामे ॥ ७–१० ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' ।

विनियोग – 'अस्य श्रीअन्नपूर्णामन्त्रस्य द्रुहिणऋषिः कृतिश्छन्दः अन्नपूर्णेशी देवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः' ।

षडङ्गन्यास – ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, हूँ शिखायै वषट्,
ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट् ॥ ३-४ ॥

मुख, दोनों नासिका, दोनों नेत्र, दोनों कान, अन्धु (लिङ्ग) और गुदा में मन्त्र के १, १, १, १, २, ४, ४, ४, एवं २ वर्णों से नवपदन्यास कर सुरेश्वरी का ध्यान करना चाहिए ॥ ५-६ ॥

विमर्श – नव पदन्यास विधि – ॐ नमः मुखे, ह्रीं नमः दक्षनासायाम्,
श्रीं नमः वामनासायाम्, क्लीं नमः दक्षिणनेत्रे, नमः, नमः वामनेत्रे,
भगवति नमः दक्षकर्णे, माहेश्वरि नमः वामकर्णे, अन्नपूर्णे नमः अन्धौ (लिङ्गे),
स्वाहा नमः मूलाधारे ॥ ५-६ ॥

अब **अन्नपूर्णा भगवती का ध्यान** कहते हैं – तपाये गये सोने के समान कान्तिवाली, शिर पर चन्द्रकला युक्त मुकुट धारण किये हुये, रत्नों की प्रभा से देदीप्यमान, नाना वस्त्रों से अलंकृत, तीन नेत्रों वाली, भूमि और रमा से युक्त, दोनों हाथ में दर्वी एवं स्वर्णपात्र लिए हुये, रमणीय एवं समुन्नत स्तनमण्डल से विराजित तथा नृत्य करते हुये सदाशिव को देख कर प्रसंन्न रहने वाली अन्नपूर्णेश्वरी का ध्यान करना चाहिए ॥ ७ ॥

विमर्श – मेरुतन्त्र के अनुसार भगवती अन्नपूर्णा का ध्यान इस प्रकार है –

तप्तकाञ्चनसंकाशां बालेन्दुकृतशेखराम् ।
नवरत्नप्रभादीप्त मुकुटां कुङ्कुमारुणाम् ॥

जपहोमपूजादिकथनम्

लक्षं जपोऽयुतं होमश्चरुणा घृतसंयुतः ।
जयादिनवशक्त्याढ्ये पीठे पूजा समीरिता ॥ ८ ॥
त्रिकोण–वेदपत्राष्टपत्र–षोडशपत्रके ।
भूपुरेण युते यन्त्रे प्रदद्यान्माययासनम् ॥ ६ ॥

चित्रवस्त्रपरीधानां मीनाक्षीं कलशस्तनीम् ।
नृत्यन्तमीशमनिशं दृष्ट्वाऽऽनन्दमयीं पराम् ॥
सानन्दमुखलोलाक्षीं मेखलाढ्यनितम्बिनीम् ।
अन्नदानरतां नित्यां भूमिश्रीभ्यां नमस्कृताम् ॥
दुग्धान्नभरितं पात्रं सरत्नं वामहस्तके ।
दक्षिणे तु करं देव्या दर्वी ध्यायेत् सुवर्णजाम् ॥

'तपाए हुए सुवर्ण के समान कान्ति वाली, मुकुट में बालचन्द्र धारण किए हुए, नवीन रत्न की प्रभा से प्रदीप्त मुकुट धारण किए हुए, कुङ्कुम सी लाली युक्त, चित्र-विचित्र वस्त्र पहने हुए, मीनाक्षी एवं कलश के समान स्तनों वाली, नृत्य करते हुए ईश को देखकर आनन्दित परा भगवती अन्नपूर्णा का ध्यान करना चाहिए ।

आनन्द युक्त मुख वाली एवं चञ्चल नेत्रों वाली, नितम्ब पर मेखला बाँधे हुए, अन्न दान में तल्लीन भूमि एवं लक्ष्मी दोनों से नित्य नमस्कृत देवी अन्नपूर्णा का ध्यान करना चाहिए ।

दुग्ध एवं अन्न से परिपूर्ण पात्र और रत्न से युक्त पात्रों को वाम हाथों में धारण करने वाली और दाहिने हाथ में सूप लिए हुए सुवर्ण के समान प्रभा वाली देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ७ ॥
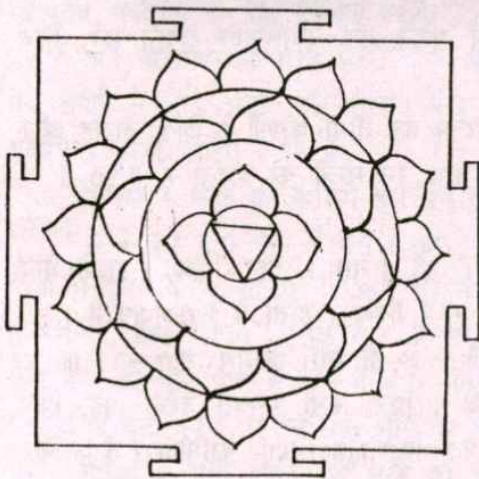
पुरश्चरण - अन्नपूर्णा मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए तथा घृत मिश्रित चरु से दश हजार आहुतियाँ देनी चाहिए । जयादि नव शक्तियों से युक्त पीठ पर इनकी पूजा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

पूजा यन्त्र - त्रिकोण - चतुर्दल, अष्टदल, षोडशदल एवं भूपुर सहित निर्मित यन्त्र पर मायाबीज से आसन देवी को देना चाहिए ॥ ६ ॥

विमर्श - पीठ पूजा - प्रथमतः ६. ७ में वर्णित देवी के स्वरूप का ध्यान करे और फिर मानसोपचारों से उनका पूजन करे तथा शंख का अर्घ्यपात्र स्थापित करे । फिर

अग्न्यादिकोणत्रितये शिववाराहमाधवान् ।
अर्चयेत् स्वस्वमन्त्रैस्तु प्रोच्यन्ते मनवस्तु ते ॥ १० ॥

शिववाराहमाधवमन्त्रकथनम्

प्रणवो मनुचन्द्राढ्यं गगनं हृदयं शिवा ।
मारुतः शिवमन्त्रोऽयं सप्तार्णः[1] शिवपूजने ॥ ११ ॥
तारं नमो भगवते वराहार्घीशयुग्वसुः ।
पायभूर्भुवरन्तेस्वोथ शूरः कामिका च ये ॥ १२ ॥
भूपतित्वं च मे देहि ददापय शुचिप्रिया ।
त्रयस्त्रिंशद्वर्णमन्त्रः[2] प्रोक्तो वाराहपूजने ॥ १३ ॥

शिवमन्त्रमाह – **प्रणव** इति । गगनं हकारः । मनुचन्द्राढ्यम् औ बिन्दुयुतं हौं हृदयं नमः । शिवा स्वरूपम्। मारुतो यः ॥ ११ ॥ वराहमन्त्रमाह – **तार** इति । तार ॐ। नमो भगवते वराह स्वरूपम् । अर्घीशयुग्वसुः । ऊयुतो रः । रूपाय भूर्भुवः स्वः स्वरूपम् । शूरः पः । कामिका । 'तये भूपतित्वं मे देहि ददापय'

'आधारशक्तये नमः' से 'ह्रीं ज्ञानात्मने नमः' पर्यन्त मन्त्रों से पीठ देवताओं का पूजन कर पीठ के पूर्वादि दिशाओं एवं मध्य में जयादि ९ शक्तियों का इस प्रकार पूजन करे -

ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अजित्यै नमः,
ॐ अपराजितायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः, ॐ दोर्मध्यै नमः,
ॐ अघोरायै नमः, ॐ मङ्गलायै नमः ॐ नित्यायै नमः, मध्ये,

इसके पश्चात् मूल मन्त्र से मूर्ति कल्पित कर 'ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' से देवी को आसन देकर विधिवत् आवाहन एवं पूजन कर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे, फिर अनुज्ञा ले आवरण पूजा करे ॥ ९ ॥

सर्वप्रथम त्रिकोण में आग्नेयकोण से प्रारम्भ कर तीनों कोणों में शिव, वाराह और माधव की अपने अपने मन्त्रों से पूजा करे । अब उन मन्त्रों को कहता हूँ ॥ १० ॥

अब **शिव के मन्त्र** कहता हूँ -

प्रणव (ॐ), मनुचन्द्राढ्य गगन (हौं), हृद् (नमः), फिर 'शिवा', इसके बाद मारुत (य), लगाने से सात अक्षरों का शिव मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १०-११ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -'ॐ हौं नमः शिवाय' ॥ १०-११ ॥

अब **वराह मन्त्र** कहते हैं - तार (ॐ), फिर 'नमो भगवते वराह' पद, फिर अर्घीशयुग्वसु (रू), फिर 'पाय भूर्भुवः स्वः' पद, फिर शूर (प), कामिका (त), फिर

---

१. ॐ हौं नमः शिवायेति सप्तार्णः ।
२. ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहेति त्रयस्त्रिंशदर्णः ।

प्रणवो हृदयं नारायणाय वसुवर्णकः ।
नारायणार्चने मन्त्रः षडङ्गानि ततोऽर्चयेत् ॥ १४ ॥
धरां वामे स्वमनुना दक्षभागे श्रियं तथा ।
अन्नं मह्यन्नमित्युक्त्वा मेदेह्यन्नाधिपार्णका ॥ १५ ॥
तये ममान्नं प्रार्णान्ते दापयानलसुन्दरी ।
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो[1] भूमिष्टौ भूमिसम्पुटः ॥ १६ ॥

श्रीबीजभूबीजादिकथनं मन्त्रफलकथनं च

लक्ष्मीपुटस्तत्पूजायां स्मृतिर्लमनुचन्द्रयुक् ।
भुवोबीजंवह्निशान्तिबिन्दुयुक्तो बकः श्रियः ॥ १७ ॥

स्वरूपम् । शुचिप्रिया स्वाहा ॥ १२–१३ ॥ नारायणमन्त्रमाह – **प्रणव** इति । हृदयं नमः । नारायणायस्वरूपम् । वसुवर्णोऽष्टार्णः ॥ १४ ॥ धरा श्रियोर्मन्त्रमाह – **अन्नमिति** । अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वरूपम् । अनल–सुन्दरी स्वाहा । अयं मन्त्रो भूमीष्टौ भूमिपूजने भूमिबीजेन सम्पुटः ॥ १५–१६ ॥ श्रीपूजायां श्रीबीजेन सम्पुटितः । भूबीजमाह – **स्मृतिरिति** । स्मृतिर्गः । लमनुचन्द्रयुक् । लऔ । बिन्दुयुतः । ग्लौं एतद्भुवो बीजम् । श्रीबीजमाह – **वह्नीति** । रेफ ई । बिन्दुयुतो बकः शः । श्रीं इति श्रियो बीजम् ॥ १७ ॥

'ये मे भूपतित्वं देहि ददापय' पद, इसके अन्त में शुचिप्रिया (स्वाहा) लगाने से तैंतीस अक्षरों का वराह मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १२-१३ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवः स्वःपतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा' (३३) ॥ १२-१३ ॥

अब **नारायणार्चन मन्त्र** कहते हैं - प्रणव (ॐ), हृदय (नमः), फिर 'नारायणाय' पद, लगाने से आठ अक्षरों का नारायण मन्त्र निष्पन्न होता है । तीनों देवों के पूजन के बाद षडङ्गपूजा करनी चाहिए ॥ १४ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ नमो नारायणाय' (८) ॥ १४ ॥

इसके बाद वाम भाग में धरा (भूमि) तथा दाहिने भाग में महालक्ष्मी का अपने अपने मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । 'अन्नं मह्यन्नं' के बाद, 'मे देहि अन्नाधिप', इसके बाद 'तये ममान्नं प्र', फिर 'दापय', इसके बाद अनलसुन्दरी (स्वाहा) लगाकर बाईस अक्षरों के इस भूमि मन्त्र को भूमि पूजा में भूमि बीज से सम्पुटित करे । स्मृति (ग), फिर लू को मनुच्चन्द्र (औं) से युक्त करने पर ग्लौं यह भूमि का बीज है ॥ १५-१७ ॥

विमर्श – भूमि पूजन हेतु मन्त्र का स्वरूप - 'ग्लौं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये

---

१. ग्लौं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा ग्लौमिति द्वाविंशत्यर्णः ।

मन्त्रादिस्थचतुर्बीजपूर्विकाः परिपूजयेत् ।
शक्तीश्चतस्रो वेदास्रेपरा च भुवनेश्वरी ॥ १८ ॥
कमलासुभगाचेति ब्राह्म्याद्या अष्टपत्रगाः ।
षोडशारेऽमृता चैव मानदातुष्टिपुष्टयः ॥ १६ ॥
प्रीतीरतिर्ह्रीः श्रीश्चापि स्वधास्वाहादशम्यथ ।
ज्योत्स्नाहैमवतीछाया पूर्णिमाः सहनित्यया ॥ २० ॥
अमावास्येति सम्पूज्या मन्त्रशेषार्णपूर्विकाः ।
भूपूरे लोकपालाः स्युस्तदस्त्राणि तदग्रतः ॥ २१ ॥

वेदास्रे चतुरस्रे मन्त्राद्यचतुर्बीजाद्याश्चतस्रः शक्तीः पूजयेत् । ता एवाह – **परेति** । ॐ परायै नमः । ह्रीं भुवनेश्वर्यै ॥ १८ ॥ श्रीं कमलायै । क्लीं सुभगायै । मन्त्रस्य शेषा ये वर्णाः चतुर्बीजव्यतिरिक्ताः । तत्पूर्विका अमृताद्याः षोडशदले पूज्याः । अं अमृतायै नमः । मां मानदायै इत्यादि ॥ १६ ॥ * ॥ २०–२१ ॥

ममान्नं प्रदापय स्वाहा ग्लौं' (२२)।

लक्ष्मी पूजन में उक्त मन्त्र को लक्ष्मी बीज से संपुटित करना चाहिए ॥ १७ ॥

'वह्नि (र), शान्ति (ई), बिन्दु सहित वक (श) इस प्रकार श्रीं यह श्री बीज बनता है ॥ १७ ॥

श्रीबीज संपुटित श्रीपूजन मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'श्रीं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा श्रीं' ॥ १७ ॥

आद्य वेदास्र (चतुरस्र) चतुर्दल में आदि के चार बीज लगाकर कर चार शक्तियों का पूजन करना चाहिए । १. परा, २. भुवनेश्वरी, ३. कमला एवं ४. सुभगा ये चार शक्तियाँ हैं । अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर षोडशदल में मूल मन्त्र के शेष वर्णो को आदि में लगाकर १. अमृता, २. मानदा, ३. तुष्टि, ४. पुष्टि, ५. प्रीति, ६. रति, ७. ह्री (लज्जा), ८. श्री, ६. स्वधा, १०. स्वाहा, ११. ज्योत्स्ना, १२. हैमवती, १३. छाया, १४. पूर्णिमा, १५. नित्या एवं १६. अमावस्या का 'अन्नपूर्णायै नमः' लगा कर पूजन करना चाहिए । तदनन्तर भूपुर के भीतर लोकपालों की तथा उसके बाहर उनके अस्त्रों की पूजा करनी चाहिए ॥ १८-२१ ॥

विमर्श – आवरण पूजा विधि –

प्रथमावरण में त्रिकोणाकार कर्णिका में आग्नेय कोण से ईशान कोण तक शिव, वाराह एवं नारायण की पूजा यथा – ॐ नमः शिवाय, आग्नेये, ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःस्वःपतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा (अग्रे) पुनः ॐ नमो नारायणाय, ईशाने ।

द्वितीयावरण में केसरों में षडङ्गपूजा इस प्रकार करनी चाहिए –

ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूँ शिखायै वषट्,
ॐ ह्रैं कवचाय हुम्, ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट्

फिर ऊपर कहे गये भूमिबीज संपुटित मन्त्र से देवी के वाम भाग में भूमि का, मध्य में शुद्ध अन्नपूर्णा मन्त्र से अन्नपूर्णा का तथा उपर्युक्त श्रीबीजसंपुटित मन्त्र से महाश्री का दक्षिण भाग में पूजन करना चाहिए । यथा - ग्लौं अन्नं मह्यन्नं देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा ग्लौं भूम्यै नमः । वामभागे - यथा - 'श्रीं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्न प्रदापय स्वाहा श्रीं श्रियै नमः' से श्री का । फिर मध्य में अन्नपूर्णा का यथा - 'अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा अन्नपूर्णायै नमः ।

तृतीयावरण में चतुर्दल में पूर्व से आरम्भ कर उत्तर पर्यन्त चारों दिशाओं में परा आदि चार शक्तियों का पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ ऐं परायै नमः पूर्वे, ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः दक्षिणे,
ॐ श्रीं कमलायै नमः पश्चिमे, ॐ क्लीं सुभगायै नमः उत्तरे ।

चतुर्थावरण में अष्टदल पर पूर्वादि अष्ट दिशाओं में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करनी चाहिए । यथा -

ॐ ब्राह्मयै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः, ॐ कौमार्यै नमः,
ॐ वैष्णव्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ इन्द्राण्यै नमः,
ॐ चामुण्डायै नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः

पञ्चमावरण में षोडशदलों में प्रदक्षिण क्रम से अमृता आदि सोलह शक्तियों का पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ नं अमृतायै अन्नपूर्णायै नमः ॐ श्वं स्वधायै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ मों मानदायै अन्नपूर्णायै नमः ॐ रिं स्वाहायै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ भं तुष्ट्यै अन्नपूर्णायै नमः ॐ अं ज्योत्स्नायै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ गं पुष्ट्यै अन्नपूर्णायै नमः ॐ न्नं हैमवत्यै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ वं प्रीत्यै अन्नपूर्णायै नमः ॐ पूं छायायै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ तिं रत्यै अन्नपूर्णायै नमः ॐ र्णें पूर्णिमायै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ मां ह्रियै अन्नपूर्णायै नमः ॐ स्वां नित्यायै अन्नपूर्णायै नमः
ॐ हें श्रियै अन्नपूर्णायै नमः ॐ हां अमावस्यायै अन्नपूर्णायै नमः

षष्ठावरण में भूपुर के भीतर अपने अपने दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन करना चाहिए - ॐ इन्द्राय नमः पूर्वे, ॐ अग्नये नमः आग्नेये, ॐ यमाय नमः दक्षिणे, ॐ निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये, ॐ वरुणाय नमः पश्चिमे, ॐ वायवे नमः वायव्ये, ॐ सोमाय नमः उत्तरे, ॐ ईशानाय नमः ऐशान्ये, ॐ ब्रह्मणे नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ अनन्ताय नमः पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये ।

सप्तमावरण में भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं में वज्रादि आयुधों की पूजा करे

ॐ वज्राय नमः पूर्वे, ॐ शक्तये नमः आग्नेये, ॐ दण्डाय नमः दक्षिणे,
ॐ खडगाय नमः नैर्ऋत्ये, ॐ पाशाय नमः पश्चिमे, ॐ अंकुशाय नमः वायव्ये,
ॐ गदायै नमः उत्तरे, ॐ त्रिशूलाय नमः ऐशान्ये,
ॐ पद्माय नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ चक्राय नमः पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये ।

इत्थं जपादिभिः सिद्धे मन्त्रेऽस्मिन् धनसञ्चयैः ।
कुबेरसदृशो मन्त्री जायते जनवन्दितः ॥ २२ ॥

माहेश्वर्यन्नपूर्णामन्त्रः

अयं रमाकामबीजरहितोऽष्टादशाक्षरः ।
द्विनेत्रवेदवेदाब्धिनेत्रार्णैरङ्गमीरितम् ॥ २३ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **अयमिति** । अयं विंशत्यर्णः । श्रीकामहीनः । षडङ्गमाह – **द्वीति** ॥ २२–२३ ॥

इस प्रकार यथोपलब्ध उपचारों से आवरण पूजा करने के पश्चात् जप प्रारम्भ करना चाहिए ॥ १८–२१ ॥

इस प्रकार जपादि से मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक धन संचय में कुबेर के समान धनी होकर लोकवन्दित हो जाता है ॥ २२ ॥

अब **अन्नपूर्णा का अन्य मन्त्र** कहते हैं - रमा (श्रीं) और कामबीज (क्लीं) से रहित पूर्वोक्त मन्त्र अष्टादश अक्षरों का होकर अन्य मन्त्र बन जाता है । इस मन्त्र के दो, दो, चार, चार, चार एवं दो अक्षरों से षडङ्गन्यास की विधि कही गई है ॥ २३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं नमः भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' (१८)। इसका विनियोग एवं ध्यान पूर्वमन्त्र के समान है ।

षडङ्गन्यास इस प्रकार है - ॐ ह्रीं हृदयाय नमः, ॐ नमः शिरसे स्वाहा, ॐ भगवति शिखायै वषट्, ॐ माहेश्वरि कवचाय हुम, ॐ अन्नपूर्णे नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

शारदातिलक १०. १०६-११० में मन्त्र और ध्यान इस प्रकार हैं -

माया हृद्भगवत्यन्ते माहेश्वरिपदं ततः । अन्नपूर्णे ठयुगलं मनुः सप्तदशाक्षरः ॥
अङ्गानि मायया कुर्यात् ततो देवीं विचिन्तयेत् ।

रक्तां विचित्रवसनां नवचन्द्रचूडा-
मन्नप्रदाननिरतां स्तनभारनम्राम् ।
नृत्यन्तमिन्दुशकलाभरणं विलोक्य
हृष्टां भजे भगवतीं भवदुःखहर्त्रीम् ॥

मन्त्र - माया (ह्रीम्), हृत् (नमः), तदनन्तर 'भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे' तीन पद, तदनन्तर दो ठकार (स्वाहा) लिखे । इस प्रकार १७ अक्षरों का अन्नपूर्णा मन्त्र का उद्धार कहा गया । इसका स्वरूप - 'ह्रीं नमः भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' हुआ ।

ध्यान – जिनका शरीर रक्तवर्ण है, जिन्होने नाना प्रकार के चित्र विचित्र वस्त्र धारण किए हैं, जिनके शिखा में नवीन चन्द्रमा विराजमान है, जो निरन्तर त्रैलोक्यवासियों को अन्न

अपरो मन्त्रः

पूर्वोक्तमन्त्रे मन्वर्णान्ममाभिमतमुच्चरेत् ।
अन्नं देहि युगं चापि भवेदेकगुणार्णवान् ॥ २४ ॥
युगाङ्गवेदसप्ताब्धिषडर्णैरङ्गकल्पनम् ।

प्रसन्नपारिजातेश्वर्यन्नपूर्णामन्त्रः

प्रणवः कमलाशक्तिर्नमो भगवतीति च ॥ २५ ॥
प्रसन्नपारिजातेश्वर्यन्नपूर्णेऽनलाङ्गना ।
चतुर्विंशतिवर्णात्मा मन्त्रः सर्वेष्टसाधकः ॥ २६ ॥
रामाक्षिवेदनिधिभिर्वेदद्व्यर्णैः षडङ्गकम् ।

मन्त्रान्तरमाह – **पूर्वोक्तेति** । विंशत्यर्णे मन्वर्णाच्चतुर्दशाक्षरात् । माहेश्वरी–त्यन्ते । ममाभिमतमन्नं देहि देहीति वर्णानुच्चारयेत् । अन्नपूर्णे स्वाहेत्यन्तेऽस्त्येव । तत एकगुणार्णवानेकत्रिंशदर्णः ॥ २४ ॥ षडङ्गमाह – **युगेति** । मन्त्रान्तरमाह – **प्रणव** इति । कमला श्रीं । शक्तिः ह्रीं । अनलाङ्गना स्वाहा ॥ २५–२६ ॥

प्रदान करने में निरत हैं - स्तनभार से विनम्र भगवान् सदाशिव को अपने सामने नाचते देख कर प्रसन्न रहने वाली संसार के समस्त पाप तापों को दूर करने वाली भगवती अन्नपूर्णा का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ॥ २३ ॥

अन्नपूर्णा देवी का अन्य मन्त्र - पूर्वोक्त विंशत्यक्षर मन्त्र में चौदह अक्षर के बाद - 'ममाभिमतमन्नं देहि देहि अन्नपूर्णे स्वाहा' यह सत्रह अक्षर मिला देने से कुल इकत्तीस अक्षरों का एक अन्य अन्नपूर्णा मन्त्र बन जाता है । इस मन्त्र के ४, ६, ४, ७, ४ एवं ६ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ २४-२५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमः भगवति माहेश्वरि ममाभिमतमन्नं देहि देहि अन्नपूर्णे स्वाहा' (३१)।

इसका विनियोग एवं ध्यान पूर्ववत् समझना चाहिए ।

षडङ्गन्यास - ॐ ॐ ह्रीं श्री क्लीं हृदयाय नमः, ॐ नमो भगवति शिरसे स्वाहा, ॐ माहेश्वरि शिखायै वषट्, ॐ ममाभिमतमन्नं कवचाय हुं, ॐ देहि देहि नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ अन्नपूर्णे स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ २४-२५ ॥

अन्नपूर्णा देवी का अन्य मन्त्र - प्रणव (ॐ), कमला (श्रीं), शक्ति (ह्रीं), फिर 'नमो भगवति प्रसन्नपरिजातेश्वरि अन्नपूर्णे, फिर अनलाङ्गना (स्वाहा) लगाने से अभीष्ट साधक चौबीस अक्षरों का अन्नपूर्णा मन्त्र बनता है - इस मन्त्र के ३, २, ४, ६, ४ एवं २ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ २५-२७ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ श्रीं ह्रीं नमो भगवति

प्रसन्नवरदान्नपूर्णामन्त्रः

तारश्रीशक्तिहृदयं भगाम्भः कामिकासदृक् ॥ २७ ॥
माहेश्वरीप्रसन्नेति वरदेपदमुच्चरेत् ।
अन्नपूर्णेऽग्निपत्नीति पञ्चविंशतिवर्णवान्[1] ॥ २८ ॥
रामषड्युगषड्वेदनेत्रार्णैः स्यात् षडङ्गकम् ।
एषां चतुर्णां मन्त्राणामन्यत्सर्वं तु पूर्ववत् ॥ २९ ॥

त्रैलोक्यमोहनगौरीमन्त्रः

त्रैलोक्यमोहनो गौरीमन्त्रः संकीर्त्यतेऽधुना ।
मायानमोऽन्ते ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते ॥ ३० ॥

षडङ्गमाह – **रामेति** । निधयो नव । मन्त्रान्तरमाह – **तारेति** । तार ॐ। श्रीः श्रीं । शक्तिः ह्रीं । हृदयं नमः । भगस्वरूपम् । अम्भो वः । सद्दृक्कामिका ति ॥ २७ ॥ अग्निपत्नी स्वाहा। स्वरूपमन्यत् ॥ २८ ॥ षडङ्गमाह – **रामेति** । अन्यत्तु ध्यानपूजाप्रयोगाः पूर्ववत् ॥ २९ ॥ गौरीमन्त्रमाह – **मायेति**। माया ह्रीं ॥ ३० ॥

प्रसन्नपारिजातेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' ।

षडङ्गन्यास - ॐ ॐ श्रीं ह्रीं हृदयाय नमः, ॐ नमः शिरसे स्वाहा,
ॐ भगवति शिखायै वषट्, ॐ प्रसन्नपारिजातेश्वरि कवचाय हुम्,
ॐ अन्नपूर्णे नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट्

इसका विनियोग एवं ध्यान पूर्ववत् है ॥ २५-२७ ॥

अन्य मन्त्र - तार (ॐ), श्री (श्रीं), शक्ति (ह्रीं), हृदय (नमः), फिर 'भग', फिर अम्भ (व), फिर सदृक् कामिका (ति), फिर 'महेश्वरि प्रसन्नवरदे', तदनन्तर 'अन्नपूर्णे', इसके अन्त में अग्निपत्नी (स्वाहा) लगाने से पच्चिस अक्षरों का अन्नपूर्णा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २७-२८ ॥

मन्त्र के राग षट्युग षड् वेद, नेत्र ३, ६, ४, ६, ४, एवं २ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । उपर्युक्त चार मन्त्रों का विनियोग और ध्यान आदि समस्त कृत्य पूर्ववत् हैं ॥ २९ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ श्रीं ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि प्रसन्नवरदे अन्नपूर्णे स्वाहा' ।

षडङ्गन्यास - ॐ ॐ श्रीं ह्रीं हृदयाय नमः, ॐ नमो भगवति शिरसे स्वाहा
ॐ महेश्वरि शिखायै वषट्, ॐ प्रसन्न वरदे कवचाय हुम्
ॐ अन्नपूर्णे नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय षट् ॥ २७-२९ ॥

---

१. ॐ श्रीं ह्रीं नमः भगवति माहेश्वरि प्रसन्नवरदे अन्नपूर्णे स्वाहेति पञ्चविंशत्यर्णः ।

जयेति विजये गौरीगान्धारीति वदेत्पदम्।
त्रिभुतोयं मेषवशङ्करिसर्वससद्यलः ॥ ३१ ॥
कवशङ्करिसर्वस्त्रीपुरुषान्ते वशङ्करि।
सुद्वयं दुद्वयं घेयुग्वायुग्मं हरवल्लभा ॥ ३२ ॥
स्वाहान्त एकषष्ट्यर्णो मन्त्रराजः[1] समीरितः।
अजो मुनिर्निचृच्छन्दो गौरीत्रैलोक्यमोहिनी[2] ॥ ३३ ॥
देवताबीजशक्ती तु मायास्वाहापदे क्रमात्।

षडङ्गकथनप्रकारोऽपरः

चतुर्दशदशाष्टाष्टदशैकादशवर्णकैः ॥ ३४ ॥
दीर्घाढ्यमाययायुक्तैः षडङ्गानि समाचरेत्।
मूलेन व्यापकं कृत्वा ध्यायेत् त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥ ३५ ॥

तोयं वः । मेषो नः । ससद्य लः लो ॥ ३१ ॥ सुदुघेवा एषां युग्मं सुसु दुदु घेघे वावा हरवल्लभा ह्रीं स्वरूपं शेषम् ॥ ३२ ॥ अजो ब्रह्मा ॥ ३३ ॥ षडङ्गमाह – **चतुर्दशेति** । दीर्घषट्कयुक्तैश्चतुर्दशाद्यक्षरैः षडङ्गम् ॥ ३४–३५ ॥

अब **त्रैलोक्यमोहन गौरी मन्त्र** कहते हैं - माया (ह्रीं), उसके अन्त में 'नमः' पद, फिर 'ब्रह्म श्री राजिते राजपूजिते जय', फिर 'विजये गौरि गान्धारि', फिर 'त्रिभु', इसके बाद तोय (व), मेष (न), फिर 'वशङ्करि', फिर 'सर्व' पद, फिर ससद्यल (लो), फिर 'क वशङ्करि', फिर 'सर्वस्त्रीं पुरुष' के बाद 'वशङ्करि', फिर 'सु द्वय' (सु सु), दु द्वय (दु दु), घे युग् (घे घे), वायुग्म (वा वा), फिर हरवल्लभा (ह्रीं), तथा अन्त में 'स्वाहा' लगाने से ६१ अक्षरों का यह मन्त्रराज कहा गया है ॥ ३०-३३॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ह्रीं नमः ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते जयविजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि, सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सु सु दु दु घे घे वा वा ह्रीं स्वाहा' ॥ ३०-३३ ॥

अब इसका **विनियोग** कहते हैं - इस मन्त्र के अज ऋषि हैं, निचृद गायत्री छन्द है, त्रैलोक्यमोहिनी गौरी देवता है, माया बीज है एवं स्वाहा शक्ति है । षड् दीर्घयुक्त मायाबीज से युक्त इस मन्त्र के १४, १०, ८, ८, १० एवं ११ अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । फिर मूलमन्त्र से व्यापक कर त्रैलोक्यमोहिनी का ध्यान करना चाहिए ॥ ३३-३५ ॥

---

१. ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते जयविजयेगौरिगान्धारि त्रिभुवनवशंकरि सर्वलोकवशंकरि सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि सुसु दुदु घेघे वा वा ह्रीं स्वाहेत्येकषष्ट्यर्णः ।

२. ॐ अस्य मन्त्रस्य अजऋषिः निचृद्गायत्रीच्छन्दः गौरीत्रैलोक्यमोहिनीदेवता ह्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः ममाऽखिलकामसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ध्यानजपहोमाद्यनुष्ठानं फलकथनं च

गीर्वाणसङ्घार्चितपादपङ्कजा-
रुणप्रभाबालशशाङ्कशेखरा ।
रक्ताम्बरालेपनपुष्पऽङ् मुदे
सृणिं सपाशं दधती शिवास्तु नः ॥ ३६ ॥
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रं घृतसंयुतैः ।
पायसैर्जुहुयात्पीठे प्रागुक्ते गिरिजां यजेत् ॥ ३७ ॥
केसरेष्वङ्गमाराध्य ब्रह्मयाद्याः पत्रमध्यगाः ।
लोकेश्वरास्तदस्त्राणि तद्बहिः परिपूजयेत् ॥ ३८ ॥

ध्यानमाह – **गीर्वाणेति** । गीर्वाणा देवास्तत्समूहैः पूजितं पादपद्मं यस्याः । अंकुशं दक्षे ॥ ३६–४१ ॥

विमर्श - विनियोग - 'अस्य श्रीत्रैलोक्यमोहनगौरीमन्त्रस्य अजऋषिर्निचृद्गायत्री छन्दः त्रैलोक्यमोहिनीगौरीदेवता ह्रीं बीजं स्वाहा शक्ति ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थ जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ह्रां ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते हृदयाय नमः, ह्रीं जयविजये गौरिगान्धारि शिरसे स्वाहा, ह्रूँ त्रिभुवनवशङ्करि शिखायै वषट्, ह्रैं सर्वलोक वशङ्करि कवचाय हुं, ह्रौं सर्वस्त्रीपुरुष नेत्रत्रयाय वशङ्करि वौषट् ह्रः सुसु दुदु घेघे वावा ह्रीं स्वाहा, ह्रीं नमोः ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते जयविजये गौरिगान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्री-पुरुष वशङ्करि सुसु दुदु घेघे वावा ह्रीं स्वाहा, सर्वाङ्गे ॥ ३३-३५ ॥

त्रैलोक्यमोहिनीपूजनयन्त्रम्
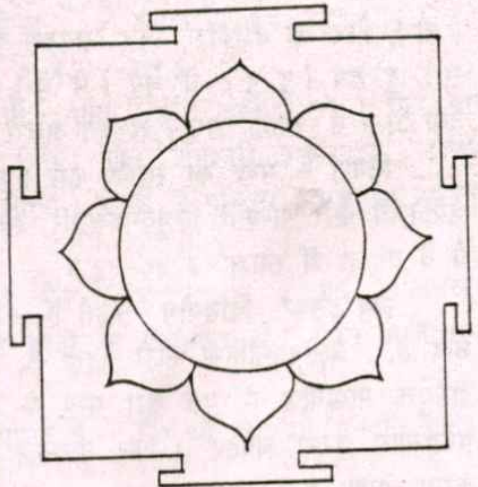
अब **उक्त मन्त्र का ध्यान** कहते हैं

देव समूहों से अर्चित पाद कमलों वाली, अरुण वर्णा, मस्तक पर चन्द्र कला धारण किये हुये, लाल चन्दन, लाल वस्त्र एवं लाल पुष्पों से अलंकृत अपने दोनों हाथों में अंकुश एवं पाश लिए हुये शिवा (गौरी) हमारा कल्याण करें ॥ ३६ ॥

उक्त मन्त्र का दश हजार जप करे, तदनन्तर घृत मिश्रित पायस (खीर) से उसका दशांश होम करे, अन्त में पूर्वोक्त पीठ पर श्रीगिरिजा का पूजन करे ॥ ३७ ॥

अब **आवरण पूजा** कहते हैं - केशरों पर षडङ्गपूजा कर अष्टदलों में ब्राह्मी आदि

इत्थमाराधिता देवी प्रयच्छेत्सुखसम्पदः।
तन्दुलैस्तिलसम्मिश्रैर्लवणैर्मधुरान्वितैः ॥ ३६ ॥
फलै रम्यै रक्तपद्मैर्जुहुयाद्यो दिनत्रयम्।
तस्य विप्रादयो वर्णा वश्याः स्युर्मासमध्यतः ॥ ४० ॥

मातृकाओं की, भूपुर में लोकपालों की तथा बाहर उनके आयुधों की पूजा करनी चाहिए॥ ३८॥

विमर्श - पीठ देवताओं एवं पीठशक्तियों का पूजन कर पीठ पर मूलमन्त्र से देवी की मूर्त्ति की कल्पना कर आवाहनादि उपचारों से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर उनकी आज्ञा से इस प्रकार आवरण पूजा करे ।

सर्वप्रथम केशरों में षडङ्गमन्त्रों से षडङ्गपूजा करनी चाहिए । यथा -

ह्रीं ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीराजिते राजपूजिते हृदयाय नमः,
ह्रीं जयविजये गौरि गान्धारि शिरसे स्वाहा,
हूँ त्रिभुवनवशङ्करि शिखायै वषट्,
ह्रैं सर्वलोकवशङ्करि कवचाय हुम्,
ह्रौं सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि नेत्रत्रयाय वौषट्,
ह्रः सुसु दुदु घेघे वावा ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट्,

फिर अष्टदल में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से ब्राह्मी आदि का पूजन करनी चाहिए ।

१. ॐ ब्राह्म्यै नमः, पूर्वदले	२. ॐ माहेश्वर्यै नमः, आग्नेये
३. ॐ कौमार्यै नमः, दक्षिणे	४. ॐ वैष्णव्यै नमः, नैर्ऋत्ये
५. ॐ वाराह्यै नमः, पश्चिमे	६. ॐ इन्द्राण्यै नमः, वायव्ये
७. ॐ चामुण्डायै नमः, उत्तरे	८. ॐ महालक्ष्म्यै नमः, ऐशान्ये

तत्पश्चात् भूपुर के भीतर अपनी अपनी दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए । इन्द्राय नमः, पूर्वे, अग्नये नमः, आग्नेये, यमाय नमः, दक्षिणे नैर्ऋत्याय नमः, नैर्ऋत्ये, वरुणाय नमः, पश्चिमे, वायवे नमः, वायव्ये, सोमाय नमः, उत्तरे, ईशानाय नमः, पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये ।

पुनः भूपुर के बाहर वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए ।

वज्राय नमः, पूर्वे, शक्तये नमः, आग्नेये, दण्डाय नमः, दक्षिणे,
खडगाय नमः, नैर्ऋत्ये, पाशाय नमः, पश्चिमे, अंकुशाय नमः, वायव्ये,
गदायै नमः, उत्तरे, त्रिशूलाय नमः, ऐशान्ये, पद्माय नमः, पूर्वेशानयोर्मध्ये,
चक्राय नमः, पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये ॥ ३८ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं -

इस प्रकार आराधना करने से देवी सुख एवं संपत्ति प्रदान करती हैं तिल मिश्रित तण्डुल (चावल), सुन्दर फल, त्रिमधु (घी, मधु, दूध) से मिश्रित लवण और मनोहर लालवर्ण के कमलों से जो व्यक्ति तीन दिन तक हवन करता है, उस व्यक्ति के ब्राह्मणादि सभी वर्ण एक महीने के भीतर वश में हो जाते हैं ॥ ३६-४० ॥

रविमण्डलमध्यस्थां देवीं ध्यायञ्जपेन्मनुम्।
अष्टोत्तरशतं तावद्धुत्वाग्नौ वशयेज्जगत्॥ ४१॥

रविमण्डलमध्यस्थदेव्यनुष्ठानं फलं च

नभोहंसानलयुतमैकारस्थं शशाङ्कयुक्।
तोयं वाय्वग्निकर्णेन्दुयुतं राजमुखीति च॥ ४२॥
राजाधिमुखिवश्यान्ते मुखिमायारमात्मभूः।
देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्व च॥ ४३॥
जनस्य च मुखं पश्चान्मम वशं कुरुद्वयम्।
वह्निप्रियान्तो मन्त्रोऽष्टचत्वारिंशल्लिपिर्मतः[1]॥ ४४॥
ऋषिच्छन्दो देवतास्तु पूर्ववत्परिकीर्तिताः।
हृदेकादशभिः प्रोक्तं शिरः स्यात्सप्तवर्णकैः॥ ४५॥

गौर्या मन्त्रान्तरमाह – **नभ** इति । नभो हकारः । कीदृक् नभः हसानलयुतम् । हसः सः । अनलो रः । ताभ्यां युतम् । ऐस्थं बिन्दुयुतम् । तेन ह्स्रैं । तोयं वः । कीदृक् वायुर्यः । अग्नी रः । कर्णः ऊः । इन्दुर्बिन्दुः । तैर्युतम् । व्यरूं । स्वरूपमन्यत् । माया ह्रीं । रमा श्रीं । आत्मभूः क्लीं । अन्यत्स्वरूपम् । वह्निप्रिया स्वाहा॥ ४२–४६॥

सूर्यमण्डल में विराजमान देवी के उक्त स्वरूप का ध्यान करते हुये जो व्यक्ति जप करता है अथवा १०८ आहुतियाँ प्रदान करता है वह व्यक्ति सारे जगत् को अपने वश में कर लेता है ॥ ४१ ॥

अव **गौरी का अन्य मन्त्र** कहते हैं - हंस (स्), अनल (र), ऐकारस्थ शशांकयुत् (ऐं) उससे युक्त नभ (ह्) इस प्रकार ह्स्रैं, फिर वायु (य्), अग्नि (र), एवं कर्णेन्दु (ऊ) सहित तोय (व्), अर्थात् 'व्यूरुँ', फिर 'राजमुखि', 'राजाधिमुखिवश्य' के बाद 'मुखि', फिर माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), आत्मभूत (क्लीं), फिर 'देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं' के बाद 'मम वशं' फिर दो बार 'कुरु कुरु' और इसके अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से अड़तालिस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है॥ ४२-४३॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ह्स्रैं व्यूरूँ राजमुखि राजाधि मुखि वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्ली देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा' ॥ ४२-४३ ॥

इस मन्त्र के ऋषि छन्द देवता आदि पूर्व में कह आये हैं मन्त्र के ग्यारह वर्णो से हृदय सात वर्णो से शिर चार वर्णो से शिखा चार वर्णो से कवच पाँच वर्णो से नेत्र

---

१. ह्स्रैं व्यूरूँ राजमुखि राजाधिमुखि वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहेत्यष्टचत्वारिंशदर्णः ।

शिखावर्मापि वेदार्णैः पञ्चभिर्नेत्रमीरितम् ।
अस्त्रं सप्तदशार्णैः स्याद्ध्यानजप्यादिपूर्ववत् ॥ ४६ ॥

वश्यकरमन्त्रषट्ककथनम्

अङ्गमन्त्रास्तु दीर्घाढ्य भुवनेशीपरा मताः ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् कर्तुमर्हति ॥ ४७ ॥
कुर्यात् सर्वजनस्थाने मनोः साध्याभिधानकम् ।
जपे होमे तर्पणे च वशीकरणकर्मणि ॥ ४८ ॥
ससम्पातं घृतं हुत्वा सहस्रं सप्तवासरम् ।
सम्पाताज्यं तु साध्यस्य प्राशितं वश्यकारकम् ॥ ४९ ॥

अङ्गमन्त्राः – षट् । दीर्घयुक्मायाबीजं परं येषामीदृशाः ॥ ४७॥ मनोर्मन्त्रस्य सर्वजनस्थाने सर्वजनस्येति पदस्थाने साध्याऽभिधानकं साध्यनामोच्चरेत् देवदत्तस्य मुखमित्यादि ॥ ४८ ॥ *॥ ४९ ॥

तथा सत्रह वर्णो से अस्त्र न्यास करना चाहिए । पूवर्वत् जप ध्यान एवं पूजा भी करनी चाहिए । षड्दीर्घयुत् माया बीज प्रारम्भ में लगाकर षडङ्गन्यास के मन्त्रों की कल्पना कर लेनी चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक काम्य प्रयोग का अधिकारी होता है ॥ ४४-४७ ॥

विमर्श – विनियोग - 'अस्य श्रीगौरीमन्त्रस्य अजऋषिर्निचृद्गायत्रीछन्दः गौरीदेवता, ह्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः ममाखिलकामनासिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः' ।

षडङ्गन्यास - ह्रां स्त्रैं व्यूँ राजमुखि राजाधिमुखि हृदयाय नमः,
ह्रीं वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं शिरसे स्वाहा,
हूँ देवि देवि शिखायै वषट्, ह्रैं महादेवि कवचाय हुम,
ह्रौं देवाधिदेवि नेत्रत्रयाय वौषट्,
ह्रः सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा अस्त्राय फट् ।

पूजाविधि - पहले श्लोक ९ - ३९ में वर्णित देवी के स्वरूप का ध्यान करे । अर्घ्य स्थापन, पीठशक्तिपूजन, देवी पूजन तथा आवरण देवताओं के पूजन का प्रकार पूर्वोक्त है ॥ ४५-४७ ॥

अब **वशीकरण के कुछ मन्त्र** कहते हैं -

वशीकरण मन्त्र के पूजन जप होम एवं तर्पण में मूल मन्त्र के 'सर्वजनस्य' पद के स्थान पर जिसे अपने वश में करना हो उस साध्य के षष्ठ्यन्त रूप को लगाना चाहिए । सात दिन तक सहस्र-सहस्र की संख्या में संपातपूर्वक (हुतावशेष स्रुवावस्थित घी का प्रोक्षणी में स्थापन) घी से होमकर उस संपात (संस्रव) घृत को साध्य व्यक्ति को पिलाने से वह वश में हो जाता है ॥ ४८-४९ ॥

साध्यनक्षत्रवृक्षे साध्याकृतिप्रयोग

साध्यनक्षत्रवृक्षेण कुर्यात्साध्याकृतिं शुभाम् ।
तस्यामसून् प्रतिष्ठाप्य प्राङ्गणे निखनेच्च ताम् ॥ ५० ॥
तत्रानलं समाधाय रक्तचन्दनसंयुतैः ।
जपापुष्पैर्निशीथिन्यां जुहुयात्सप्तवासरम् ॥ ५१ ॥
सहस्रं प्रत्यहं पश्चात्तां निष्कास्य सरित्तटे ।
निखनेत्साधकस्तस्य साध्यो दासो भवेद् ध्रुवम् ॥ ५२ ॥

प्रयोगान्तरमाह – **साध्यनक्षत्रेति** । साध्यस्य यन्नक्षत्रम् । जन्मनक्षत्रं तत्सम्बन्धी यो वृक्षस्तेन साध्याकृतिं साध्यप्रतिमां कुर्यात् । तत्र प्राणान् प्रतिष्ठाप्य । तामङ्गणे खात्वा तदुपर्यग्निं निधाय रक्तचन्दनाक्तैर्जपापुष्पैः सहस्रं हुत्वा तां निष्कास्य नदीतटे निखनेत् । स दासः स्यात् । 'नक्षत्रवृक्षा यथाः –

कारस्कारोथ धात्री स्यादुदुम्बरतरुः पुनः ।
जम्बूः खादिर कृष्णाख्यौ वंशपिप्पलसंज्ञकौ ।
नागरोहिणनामानौ पलाशप्लक्षसंज्ञकौ ।
अम्बष्ठबिल्वार्जुनाख्य यविकंकतमहीरुहाः ।
बकुलः सरलः सर्जोवंजुलः पनसार्ककौ ।
शमीकदम्बनिम्बाम्रामधूका वृक्षशाखिनः । इति शारदोक्ताः ॥ ५०–५२ ॥

साध्य व्यक्ति के जन्म नक्षत्र सम्बन्धी लकड़ी लेकर उसी से साध्य की प्रतिमा निर्माण करावे, फिर उसमें प्राणप्रतिष्ठा कर उस प्रतिमा को आँगन में गाड़ देवे ॥ ५० ॥

पुनः उसके ऊपर अग्निस्थापन कर मध्य रात्रि में सात दिन तक रक्तचन्दन मिश्रित जपा कुसुम के फूलों से प्रतिदिन इस मन्त्र से एक हजार आहुतियाँ प्रदान करे । इसके बाद उस प्रतिमा को उखाड़ कर किसी नदी के किनारे गाड़ देनी चाहिए, ऐसा करने से साध्य निश्चित रूप से वश में हो कर दासवत् हो जाता है ॥ ५०-५२ ॥

विमर्श – जन्म नक्षत्रों के वृक्षों की तालिका –

नक्षत्र	वृक्ष	नक्षत्र	वृक्ष
१ – अश्विनी	कारस्कर	९ – आश्लेषा	नाग
२ – भरणी	धात्री	१० – मघा	रोहिणी
३ – कृत्तिका	उदुम्बर	११ – पू.फा.	पलाश
४ – रोहिणी	जम्बू	१२ – उ.फा.	प्लक्ष
५ – मृगशिरा	खदिर	१३ – हस्त	अम्बष्ठ
६ – आर्द्रा	कृष्ण	१४ – चित्रा	विल्व
७ – पुनर्वसु	वंश	१५ – स्वाती	अर्जुन
८ – पुष्य	पिप्पल	१६ – विशाखा	विकंकत

ज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रः

ज्येष्ठालक्ष्मी महामन्त्रः प्रोच्यते धनवृद्धिदः।
वाग्बीजं भुवनेशानी श्रीरनन्तोद्यलक्ष्मि च ॥ ५३ ॥
स्वयम्भुवे शम्भुजाया ज्येष्ठायै हृदयान्तिकः।
मनुः[1] सप्तदशार्णोऽयं मुनिर्ब्रह्मास्य[2] कीर्तितः ॥ ५४ ॥
छन्दोऽष्टिर्ज्येष्ठलक्ष्मीस्तु देवता शक्तिबीजके।
श्रीमाये मूलतो हस्तौ प्रमृज्याङ्गं समाचरेत् ॥ ५५ ॥

ज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रमाह – **वागिति** । वाग्बीजं ऐं । भुवनेशानी ह्रीं । श्रीः श्रीं । अनन्त आ । द्यलक्ष्मिस्वरूपम् ॥ ५३ ॥

स्वयम्भुवे स्वरूपम् । शम्भुजाया ह्रीं । ज्येष्ठायै स्वरूपम् । हृदयं नमः ॥ ५४ ॥ श्रीं शक्तिः ॥ ह्रीं बीजं ॥ ५५ ॥

---

१७ - अनुराधा	वकुल	२३ - धनिष्ठा	शमी
१८ - ज्येष्ठा	सरल	२४ - शतभिषा	कदम्ब
१९ - मूल	सर्ज	२५ - पू.भा.	निम्ब
२० - पू.षा.	वञ्जुल	२६ - उ.भा.	आम्र
२१ - उ.षा.	पनस	२७ - रेवती	मधूक
२२ - श्रवण	अर्क		

अब **ज्येष्ठा लक्ष्मी का मन्त्रोद्धार** कहते हैं -

वाग्बीज (ऐं), भुवनेशी (ह्रीं), श्री (श्रीं), अनन्त (आ), फिर 'द्यलक्ष्मि', फिर 'स्वयंभुवे', फिर शम्भुजाया (ह्रीं), तदनन्तर 'ज्येष्ठायै' अन्त में हृदय (नमः) लगाने से सत्रह अक्षरों का धन की वृद्धि करने वाला मन्त्र बनता है ॥ ५३-५४ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ऐं ह्रीं श्रीं आद्यलक्ष्मि स्वयंभुवे ह्रीं ज्येष्ठायै नमः' ॥ ५३-५४ ॥

अब **विनियोग** कहते हैं - इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, अष्टि छन्द है, ज्येष्ठा लक्ष्मी देवता हैं, श्री बीज है तथा माया शक्ति है । मूल मन्त्र से हस्त प्रक्षालन कर बाद में अङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ५४-५५ ॥

विमर्श - विनियोग का स्वरूप इस प्रकार है -

'अस्य श्रीज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिरष्टिच्छन्दः ज्येष्ठालक्ष्मीदेवता ममाभीष्ट-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः' ॥ ५४-५५ ॥

---

१. ऐं ह्रीं श्रीं ज्येष्ठालक्ष्मीस्वयंभुवे ह्रीं ज्येष्ठायै नम इतिसप्तदशर्णा ।

२. अस्य श्रीज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिरष्टिच्छन्दः ज्येष्ठालक्ष्मीदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

मन्त्राक्षरन्यासकथनम्

रामवेदयुगैकत्रिनेत्रार्णैर्मनुसम्भवैः ।
पदानामष्टकं न्यस्येच्छिरो भ्रूमध्यवक्त्रके ॥ ५६ ॥
हृन्नाभ्याधारके जानुपादयोस्तत्पदोन्मितिः ।
भूचन्द्रैकचतुर्वेदभूमिरामाक्षिवर्णकैः ॥ ५७ ॥

ध्यानं पीठदेवतागायत्र्यादिकथनम्

उद्यद्भास्करसन्निभा स्मितमुखी रक्ताम्बरालेपना,
सत्कुम्भं धनभाजनं सृणिमथो पाशङ्करैर्बिभ्रती ।
पद्मस्था कमलेक्षणा दृढकुचा सौन्दर्यवारांनिधि–
र्ध्यातव्या सकलाभिलाषफलदा श्रीज्येष्ठलक्ष्मीरियम् ॥ ५८ ॥
लक्षं जपेत् पायसेन जुहुयात् तद्दशांशतः ।
आज्याक्तेन यजेत्पीठे वक्ष्यमाणे महाश्रियम् ॥ ५९ ॥

पदोन्मितिः पदवर्णसंख्याभूरित्यादिवर्णैर्ज्ञेया ॥ ५६–५७ ॥ ध्यानमाह – उद्यदिति । धनपात्रांकुशौ दक्षिणयोः कुम्भपाशौ वामयोः ॥ ५८–५९ ॥

मन्त्र के ३, ४, ४, १, ३ एवं २ वर्णो से षडङ्गन्यास करना चाहिए तथा १, १, १, ४, ४, १, ३, एवं दो वर्णो से शिर भ्रूमध्य, मुख, हृदय, नाभि मूलाधार जानु एवं पैरों का न्यास करना चाहिए ॥ ५६-५७ ॥

विमर्श – षडङ्गन्यास – ऐं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः, आद्यलक्ष्मी शिरसे स्वाहा, स्वयंभुवे शिखायै वषट् ह्रीं कवचाय हुम् ज्येष्ठायै नेत्रत्रयाय वौषट् नमः अस्त्राय फट् ।

सर्वाङ्गन्यास यथा – ऐं नमः शिरसि, ह्रीं नमः भ्रूमध्ये,
श्रीं नमः मुखे, आद्यलक्ष्मि नमः हृदि स्वयंभुवे नमः नाभौ
ह्रीं नमः मूलाधारे, ज्येष्ठायै नमः जान्वोः नमोः नमः पादयोः ॥ ५६-५७ ॥

अब **ज्येष्ठा लक्ष्मी का ध्यान** कहते हैं – उदीयमान सूर्य के समान लाल आभावाली, प्रहसितमुखी, रक्त वस्त्र एवं रक्त वर्ण के अङ्गरागों से विभूषित, हाथों में कुम्भ धनपात्र, अंकुश एवं पाश को धारण किये हुये, कमल पर विराजमान, कमलनेत्रा, पीन स्तनों वाली, सौन्दर्य के सागर के समान, अवर्णनीय सुन्दरता से युक्त, अपने उपासकों के समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली श्री ज्येष्ठा लक्ष्मी का ध्यान करना चाहिए ॥ ५८ ॥

उक्त मन्त्र का एक लाख जप करे तथा घी मिश्रित खीर से उसका दशांश होम करे फिर वक्ष्यमाण पीठ पर महागौरी का पूजन करना चाहिए ॥ ५९ ॥

लोहिताक्षीविरूपा च करालीनीललोहिता ।
समदावारुणीपुष्टिरमोघाविश्वमोहिनी ॥ ६० ॥
तत्पीठशक्तयः प्रोक्ता दिक्षु मध्ये च ता यजेत् ।
प्रयच्छेदासनं तस्यै गायत्र्या वक्ष्यमाणया ॥ ६१ ॥
प्रणवो रक्तज्येष्ठायै विद्महे पदमन्ततः ।
नीलज्येष्ठापदं पश्चाद्यै धीमहि ततः पदम् ॥ ६२ ॥
तन्नो लक्ष्मीः पदं प्रोच्य चोदयादिति चोच्चरेत् ।
गायत्र्येषा[1] समाख्याता केसरेष्वङ्गपूजनम् ॥ ६३ ॥
मातरः पत्रमध्येषु बाह्ये लोकेशहेतयः ।
इत्थं जपादिभिः सिद्धो मनुर्दद्यादभीप्सितम् ॥ ६४ ॥

पीठशक्तीराह – **लोहिताक्षीति** ॥ ६०–६१ ॥ गायत्रीमाह – **प्रणव** इति । स्पष्टम् ॥ ६२–६३ ॥ लोकेशा इन्द्रादयः । हेतयो वज्राद्याः ॥ ६४ ॥

---

१. लोहिताक्षी, २. विरूपा, ३. कराली, ४. नीललोहिता, ५. समदा, ६. वारुणी, ७. पुष्टि, ८. अमोघा, एवं ९. विश्वमोहिनी - ये ज्येष्ठापीठ की नवशक्तियाँ कही गयी हैं । इनका पूजन आठ दिशाओं में तथा मध्य में करना चाहिए । तदनन्तर वक्ष्यमाण गायत्री मन्त्र से ज्येष्ठा को आसन देना चाहिए ॥ ६०-६१ ॥

प्रणव (ॐ) फिर 'रक्तज्येष्ठायै विद्महे' तदनन्तर 'नीलज्येष्ठा' पद के पश्चात् 'यै धीमहि', उसके बाद 'तन्नो लक्ष्मी' पद, फिर 'प्रचोदयात्' - यह ज्येष्ठा का गायत्री मन्त्र कहा गया है ॥ ६२-६३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलज्येष्ठायै धीमहि । तन्नो लक्ष्मी प्रचोदयात्' ॥ ६२-६३ ॥

केशरों में अङ्गपूजा, अष्टपत्रों पर मातृकाओं की, फिर उसके बाहर लोकपालों एवं उनके अस्त्रों की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार जप आदि से सिद्ध मन्त्र मनोवाञ्छित फल देता है (द्र० ९. ३८) ॥ ६३-६४ ॥

विमर्श - पीठ पूजा विधि - साधक ९. ५८ में वर्णित ज्येष्ठा लक्ष्मी के स्वरूप का ध्यान करे, फिर मानसोपचार से पूजन कर प्रदक्षिण क्रम से पीठ की शक्तियों का पूर्वादि आठ दिशाओं में एवं मध्य में इस प्रकार पूजन करे ।

ॐ लोहिताक्ष्यै नमः पूर्वे, ॐ दिव्यायै नमः आग्नेये,
ॐ करात्यै नमः दक्षिणे, ॐ नीललोहितायै नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ समदायै नमः पश्चिमे, ॐ वारुण्यै नमः वायव्ये,
ॐ पुष्टयै नमः उत्तरे, ॐ अमोघायै नमः ऐशान्ये,

---

१. ॐ रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलज्येष्ठायै धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ।

अन्नदमन्त्रकथनम्

अथान्नदमनोर्वक्ष्ये साधनं यः पुरोदितः ।
अन्नपूर्णावृतौ भूमिश्रीयागे द्वियमाक्षरः ॥ ६५ ॥
तारभूश्रीपुटो[1] जप्यो मुनिरस्य[2] चतुर्मुखः ।
छन्दो निचृतिराख्यातं देवते वसुधाश्रियौ ॥ ६६ ॥
भूबीजं बीजमस्योक्तं श्रीबीजं शक्तिरीरिता ।
अन्नं महीति हृदयमन्नं मे देहि मस्तकम् ॥ ६७ ॥

अन्नदमन्त्रमाह – **अथेति** । यो मन्त्रः अन्नपूर्णावरणपूजने भूमिश्रियोः पूजने द्वियमाक्षरो द्वाविंशत्यर्णः पुरा कथितः सोन्नदो मनुः । अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहेति सप्रणव भूबीजश्रीबीजसम्पुटौऽ–ष्टाविंशतिवर्णः ॥ ६५–६६ ॥

ॐ विश्वमोहिन्यै नमः मध्ये

तदनन्तर 'ॐ रक्तज्येष्ठायै विद्महे नीलज्येष्ठायै धीमहि । तन्नो लक्ष्मी प्रचोदयात्' इस गायत्री मन्त्र से उक्त पूजित पीठ पर देवी को आसन देवे । फिर यथोपचार देवी का पूजन कर पुष्पाञ्जलि प्रदान कर उनकी अनुज्ञा ले आवरण पूजा करे । सर्वप्रथम केशरों में षडङ्गपूजा -

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः, आद्यलक्ष्मि शिरसे स्वाहा, स्वयंभुवे शिखायै वषट्, ह्रीं कवचाय हुम् ज्येष्ठायै नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् । तदनन्तर अष्टदल में ब्राह्मी आदि देवताओं की, भूपुर के भीतर इन्द्रादि दश दिक्पालों की तथा बाहर उनके वज्रादि आयुधों की पूर्ववत् पूजा करनी चाहिए (द्र. ९. ३८) । आवरण पूजा के पश्चात् देवी का धूप दीपादि से उपचारों से पूजन कर जप प्रारम्भ करे ।

इस प्रकार पूजन सहित पुरश्चरण करने से मन्त्र सिद्ध होता है और साधक को अभिमत फल प्रदान करता है ॥ ६३-६४ ॥

अब **अन्नपूर्णा के अन्य मन्त्र** को कहता हूँ - अन्नपूर्णा के आवरण पूजा में भूमि एवं श्री के पूजनार्थ बाइस अक्षरों का मन्त्र हम पहले कह चुके हैं (द्र. ९. १६-१७) ॥ ६५ ॥

उसी को तार (ॐ), भू (ग्लौं), एवं श्री (श्रीं) से संपुटित कर जप करना चाहिए । इस अन्नदायक मन्त्र की साधना का प्रकार कहते हैं । इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, निचृद् गायत्री छन्द है, श्री एवं वसुधा इसके देवता हैं, ग्लौं इसका बीज है तथा श्रीं

---

१. ॐ ग्लौं श्रीं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा श्रीं ग्लौं श्रीमित्यष्टाविंशत्यर्णः ।

२. अस्य श्रीज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः निचृद्गायत्रीछन्दः वसुधाश्रियौदेवतेग्लौबींजह्रीं शक्तिः ममाभीष्ट प्राप्तौ जपे विनियोगः ।

शिखात्वन्नाधिपतये ममान्नं च प्रदापय।
वर्मोक्तं स्वाहया चास्त्रमङ्गमन्त्राध्रुवादिकाः ॥ ६८ ॥
षड्दीर्घारूढभूमिश्रीबीजान्ताः परिकीर्तिताः।
विनेत्रा अपदुग्धाब्धौ स्वर्णदीपे तु ते स्मरेत् ॥ ६६ ॥
कल्पद्रुमाधोमणिवेदिकायां
समास्थिते वस्त्रविभूषणाढ्ये ।
भूमिश्रियौ वाञ्छितवामदक्षे
संचिन्तयेद् देवमुनीन्द्रवन्द्ये ॥ ७० ॥

षडङ्गमाह – **अन्नं महीति** । षडङ्गमन्त्राः । ध्रुवादिकाः प्रणवाद्याः । दीर्घयुक्ते भूश्रीबीजे अन्ते येषां ते । विनेत्रा नेत्रहीनाः पञ्चैव । पञ्चाङ्गानि मनोर्यत्र तत्र नेत्रमनुं त्यजेदित्युक्तेः । ॐ अन्नं महि ग्लां श्रीं हृत् । ॐ अन्नं देहि ग्लीं श्रीं शिर इत्यादि ॥ ६७–७१ ॥

शक्ति है ॥ ६६-६७ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'ॐ ग्लौं श्रीं अन्नं मह्यन्नं मे देह्यन्नाधिपतये ममान्नं प्रदापय स्वाहा श्रीं ग्लौं ॐ ।'

विनियोग – 'ॐ अस्य श्रीज्येष्ठालक्ष्मीमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिर्निचृद्गायत्रीछन्दः वसुधाश्रियौ देवते ग्लौं बीजं श्रीं शक्तिः मनोकामनासिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः' ॥ ६६-६७ ॥

अब **न्यास विधि** कहते हैं – 'अन्नं महि' से हृदय, 'अन्नं मे देहि' से शिर, 'अन्नाधिपतये' से शिखा, 'ममान्नं प्रदापय' से कवच तथा 'स्वाहा' से अस्त्र का न्यास करना चाहिए । इन मन्त्रों के प्रारम्भ में ध्रुव (ॐ) तथा अन्त में षड्दीर्घ सहित भूमिबीज एवं श्री बीज लगाना चाहिए । यह न्यास नेत्र को छोड़कर मात्र पाँच अङ्गों में किया जाता है । न्यास के बाद क्षीरसागर में स्वर्णद्वीप में वसुधा एवं श्री का ध्यान वक्ष्यमाण (६. ७०) श्लोक के अनुसार करे ॥ ६८-६६ ॥

विमर्श – पञ्चाङ्गन्यास विधि – 'पञ्चाङ्गानि मनोर्यत्र तत्र नेत्रमनुं त्यजेत्' जहाँ पञ्चाङ्गन्यास कहा गया हो वहाँ नेत्रन्यास न करे । इस नियम के अनुसार नेत्र को छोड़कर इस प्रकार पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिए ।

ॐ अन्नं महि ग्लां श्रीं हृदयाय नमः, ॐ अन्नं मे देहि ग्लीं श्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ अन्नाधिपतये ग्लूं श्रीं शिखायै वषट्, ॐ ममान्नं प्रदापय ग्लैं श्रीं कवचाय हुं,
ॐ स्वाहा ग्लौं ग्लः श्रीं अस्त्राय फट् ॥ ६८-६६ ॥

अब **भूमि एवं श्री का ध्यान** कहते हैं –

कल्पद्रुम के नीचे मणिवेदिकापर ज्येष्ठा लक्ष्मी के बायें एवं दाहिने भाग में विराजमान वस्त्र एवं आभूषणों से अलंकृत तथा देवता एवं मुनिगणों से वन्दित भूमि का एवं श्री का ध्यान करना चाहिए ॥ ७० ॥

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं घृतप्लुतैः ।
अन्नैर्हुत्वा यजेत् पीठे वैष्णवे वसुधाश्रियौ ॥ ७१ ॥

वैष्णवीया अष्टपीठशक्तयः

विमलोत्कर्षिणी ज्ञानक्रियायोगाभिधा तथा ।
प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहापीठशक्तयः ॥ ७२ ॥
तारं नमो भगवते विष्णवे सर्ववर्णकाः ।
भूतात्मसयोगपदं योगपद्मपदं ततः ॥ ७३ ॥
पीठात्मने नमोऽन्तोऽयं पीठस्य मनुरीरितः ।
दद्यादासनमन्तेन मूलेनावाहनादिकम् ॥ ७४ ॥

वैष्णवीपीठशक्तीराह – **विमलेति** ॥ ७२ ॥ पीठमन्त्रमाह – **तारमिति** । ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः ॥ ७३ ॥ * ॥ ७४–७६ ॥

उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए तथा घी मिश्रित अन्न से उसका दशांश होम करना चाहिए । तदनन्तर वैष्णव पीठ पर वसुधा एवं श्री का पूजन करना चाहिए ॥ ७१ ॥

१. विमला, २. उत्कर्षिणी, ३. ज्ञाना, ४. क्रिया, ५. योगा, ६. प्रह्वी, ७. सत्या, ८. ईशाना एवं ९. अनुग्रहा ये नव पीठशक्तियाँ हैं ॥ ७२ ॥

तार (ॐ), फिर 'नमो भगवते विष्णवे सर्व' के बाद 'भूतात्मसंयोग' पद, फिर 'योगपद्म' पद, तदनन्तर 'पीठात्मने नमः' यह पीठ पूजा का मन्त्र कहा गया है । इस मन्त्र से आसन देकर मूल मन्त्र से आवाहनादि पूजन करना चाहिए ॥ ७३-७४ ॥

विमर्श - पीठ पर आसन देने के **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः' ।

पीठ पूजा करने के बाद उसके केशरों में पूर्वादि आठ दिशाओं के प्रदक्षिण क्रम से आठ पीठ शक्तियों की तथा मध्य में नवम अनुग्रह शक्ति की इस प्रकार पूजा करे ।

१ - ॐ विमलायै नमः पूर्वे	६ - ॐ प्रह्व्यै नमः वायव्ये
२ - ॐ उत्कर्षिण्यै नमः आग्नेये	७ - ॐ सत्यायै नमः उत्तरे
३ - ॐ ज्ञानायै नमः दक्षिणे	८ - ॐ ईशानायै नमः ऐशान्ये
४ - ॐ क्रियायै नमः नैर्ऋत्ये	९ - ॐ अनुग्रहायै नमः मध्ये
५ - ॐ योगायै नमः पश्चिमे	

इस प्रकार पीठ के आठों दिशाओं में तथा मध्य में पूजन करने के बाद ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः इस मन्त्र से भूमि और श्री इन दोनों देवियों को उक्त पूजित पीठ पर आसन देवे । फिर (९. ७०) में वर्णित उनके स्वरूप का ध्यान कर, मूलमन्त्र से आवाहन कर, मूर्त्ति की कलपना कर, पाद्य आदि

अङ्गानीष्ट्वार्चयेद्दिक्षु भूवह्निजलमारुतान्।
विवृतिं च प्रतिष्ठां च विद्यां शान्तिविदिक्षु च॥ ७५॥

बलाकादयोऽन्या अष्टशक्तयः

अष्टशक्तीर्बलाका च विमलाकमला तथा।
वनमालाबिभीषा च मालिका शाङ्करी पुनः॥ ७६॥
पूर्वादिदिक्षु प्रयजेदष्टमी वसुमालिका।
शक्राद्यानायुधैर्युक्तान् स्वस्वदिक्षु समर्चयेत्॥ ७७॥

उपचार संपादन कर, पुष्पाञ्जलि प्रदान कर उनकी अनुज्ञा ले आवरण पूजा प्रारम्भ कर, प्रदक्षिणा क्रम से प्रथम केशरों में अङ्गपूजा करे॥ ७३-७४॥

प्रथम केशरों में अङ्गपूजा करने के पश्चात् पूर्वादि दिशाओं में प्रदक्षिण क्रम से भूमि, अग्नि, जल और वायु की पूजा करे। तदनन्तर चारों कोणों में निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या और शान्ति की पूजा करे॥ ७५॥

फिर १. बलाका, २. विमला, ३. कमला, ४. वनमाला, ५. विभीषा, ६. मालिका, ७. शाकंरी और ८. वसुमालिका की पूर्वादि दिशाओं में स्थित अष्टदल में पूजा करे। तदनन्तर भूपुर के भीतर आठों दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों की और भूपुर के बाहर आठों दिशाओं में उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए॥ ७६-७७॥

विमर्श - आवरण पूजा विधि - सर्वप्रथम केशरों में अङ्गपूजा यथा -

१ - ॐ अन्नं महि ग्लां श्रीं हृदयाय नमः
२- ॐ अन्नं देहि ग्लूं श्रीं शिखायै वषट्
३- ॐ अन्नं देहि ग्लीं श्रीं शिरसे स्वाहा
४- ॐ ममान्नं प्रदापय ग्लै श्रीं कवचाय हुम
५- ॐ स्वाहा ग्लौं ग्लः श्रीं अस्त्राय फट्।

फिर यन्त्र के पूर्वादि दिशाओं में भूमि आदि की पूजा यथा -

ॐ लं भूम्यै नमः पूर्वे ॐ रं अग्नेये नमः दक्षिणे
ॐ वं अद्भ्यो नमः पश्चिमे ॐ यं वायवे नमः उत्तरे

तत्पश्चात् आग्नेयादि कोणों में निवृत्ति आदि की यथा -

ॐ निवृत्यै नमः आग्नेये, ॐ प्रतिष्ठायै नमः नैर्ऋत्यै,
ॐ विद्यायै नमः वायव्ये, ॐ शान्त्यै नमः ऐशान्ये।

इसके बाद अष्टदलों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से बलाका आदि की पूजा करनी चाहिए। यथा -

१ - ॐ बलाकायै नमः पूर्वे ५ - ॐ विभीषायै नमः पश्चिमे
२ - ॐ विमलायै नमः आग्नेये ६ - ॐ मालिकायै नमः वायव्ये
३ - ॐ कमलायै नमः दक्षिणे ७ - ॐ शाङ्कर्यै नमः उत्तरे
४ - ॐ वनमालायै नमः नैर्ऋत्ये ८ - वसुमालिकायै नमः ऐशान्ये

इत्थं सपरिवारे योऽधरालक्ष्म्यौ जपादिभिः ।
आराधयेत् स लभते महतीमन्नसम्पदम् ॥ ७८ ॥
आज्याक्तैश्च तिलैर्बिल्वसमिद्भिर्जुहुयाच्छ्रिये ।
साज्येन पायसेनापि फलैः पत्रैश्च बिल्वजैः ॥ ७९ ॥
जपतामुं महामन्त्रं होमकार्यो दिने दिने ।
दशसंख्यः कुबेरस्य मनुनेध्मैर्वटोद्भवैः ॥ ८० ॥

कुबेरमन्त्रोद्धारः ध्यानादि च

तारो वैश्रवणायाग्निप्रियान्तोऽष्टाक्षरो मनुः[1] ॥ ८१ ॥
होमकाले कुबेरं तु चिन्तयेदग्निमध्यगम् ।
धनपूर्णं स्वर्णकुम्भं तथा रत्नकरण्डकम् ॥ ८२ ॥
हस्ताभ्यां विप्लुतं खर्वकरपादं च तुन्दिलम् ।
वटाधस्ताद्रत्नपीठोपविष्टं सुस्मिताननम् ॥ ८३ ॥

इध्मैस्समिद्भिः ॥ ८० ॥ कुबेरमन्त्रमाह – तार इति । तार ॐ । अग्निप्रिया स्वाहा ॥ ८१ ॥ कुबेरध्यानमाह – धनेति । रत्नकरण्डो दक्षे ॥ ८२–८४ ॥

इसके बाद भूपुर के भीतर पूर्वादि दिशाओं के प्रदक्षिण क्रम से इन्द्रादि दश दिक्पालों को तथा बाहर उनके वज्रादि आयुधों की पूजा कर गन्ध धूपादि द्वारा वसुधा और महाश्री की पूजा करे (फिर जप करे) ॥ ७६-७७ ॥

इस प्रकार जो व्यक्ति अपने परिवार के साथ वसुधा एवं महालक्ष्मी का जप पूजनादि के द्वारा आराधना करता है वह पर्याप्त धनधान्य प्राप्त करता है ॥ ७८ ॥

श्री की प्राप्ति के लिए साधक घृत मिश्रित तिलों से बिल्व वृक्ष की समिधाओं से घी मिश्रित खीर से तथा बिल्वपत्र एवं बेल के गुद्‌दा से हवन करे ॥ ७९ ॥

अब **कुबेर के विषय में** कहते हैं - कुबेर का मन्त्र जपते हुये प्रतिदिन कुबेर मन्त्र से वटवृक्ष की समिधाओं में दश आहुतियाँ प्रदान करे ॥ ८० ॥

तार (ॐ), फिर 'वैश्रवणाय', फिर अन्त में अग्निप्रिया (स्वाहा) लगा देने पर आठ अक्षरों का कुबेर मन्त्र बनता है । यथा - 'ॐ वैश्रवणाय स्वाहा' ॥ ८१ ॥

होम करते समय अग्नि के मध्य में कुबेर का इस प्रकार ध्यान करे -

अपने दोनों हाथों से धनपूर्ण स्वर्णकुम्भ तथा रत्न करण्डक (पात्र) लिए हुये उसे उड़ेल रहे हैं । जिनके हाथ एवं पैर छोटे छोटे हैं, पेट तुन्दिल (मोटा) है जो वटवृक्ष के नीचे रत्नसिंहासन पर विराजमान हैं और प्रसन्नमुख हैं । इस प्रकार ध्यान पूर्वक होम करने से साधक कुबेर से भी अधिक संपत्तिशाली हो जाता है ॥ ८२-८४ ॥

---

१. ॐ वैश्रवणाय स्वाहेत्यष्टार्णः ।

एवं कृत हुतो मन्त्री लक्ष्म्या जयति वित्तपम् ।

प्रत्यङ्गिरामन्त्रः

अथ प्रत्यङ्गिरां वक्ष्ये परकृत्या विमर्दिनीम् ॥ ८४ ॥
दीर्घेन्दुयुग्मरुद्ब्रह्मामांसलोहितसंस्थिताम् ।
यन्तिनोरय उच्चार्य क्रूरां कृत्यां समुच्चरेत् ॥ ८५ ॥
वधूमिव पदं पश्चात्तान् ब्रह्मान्तेसदीर्घणः ।
अपनिर्णुद्म इत्यन्ते प्रत्यक्कर्तारमृच्छतु ॥ ८६ ॥
तारमायापुटो मन्त्रः स्यात्सप्तत्रिंशदक्षरः[1] ।
ब्रह्मानुष्टुप्मुनिश्छन्दो[2] देवी प्रत्यङ्गिरेरिता ॥ ८७ ॥
बीजशक्तितारमाये कृत्या नाशे नियोजनम् ।
अष्टभिस्तोयनिधिभिर्युगैर्वेदैश्च पञ्चभि ॥ ८८ ॥

प्रत्यङ्गिरामाह – **दीर्घेति** । मरुत् यकारः । दीर्घेन्दुयुक् । आबिन्दुयुतः यां । ब्रह्मा कः । लोहितः पः । तत्संस्थं मांसं लः । ल्प । यन्तिनोऽरयः । क्रूरां कृत्यां वधूमिव तां ब्रह्मस्वरूपम् । सदीर्घो णः णा । अपनिर्णुद्म इति स्वरूपम् । प्रत्यक्कर्तारमृच्छतु स्वरूपम् । प्रणवमायाबीजसम्पुटः ॥ ८५–८७ ॥ षडङ्गमाह – **अष्टभिरिति** । तोयनिधिभिश्चतुर्भिः । दीर्घयुक् पार्वती माया बीजं परं येषाम् ।

अब शत्रुओं के द्वारा प्रयुक्त कृत्या (मारण के लिए किये गये प्रयोग विशेष) को नष्ट करने वाली प्रत्यङ्गिरा के विषय में कहता हूँ ॥ ८४ ॥

दीर्घेन्दुयुक् मरुत् (दीर्घ आ, इन्द्र अनुस्वार उससे युक्त मरुत् य्) 'यां', फिर ब्रह्मा (क) लोहित संस्थित मांस (ल्प), फिर 'यन्ति नोऽरयः' यह पद, इसके बाद 'क्रूरां कृत्यां' उच्चारण करना चाहिए । फिर 'वधूमिव' यह पद, फिर 'तां ब्रह्म', उसके बाद सदीर्घ ण (णा), फिर 'अपनिर्णुद्मः' के पश्चात् 'प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु' इस मन्त्र को तार (ॐ) माया (ह्रीं) से संपुटित करने पर सैंतीस अक्षरों का प्रत्यङ्गिरा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ८५-८७ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -

'ॐ ह्रीं यां कल्पयन्ति नोरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव तां ब्रह्मणा अपनिर्णुद्मः प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु ह्रीं ॐ' ॥ ८५-८७ ॥

इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, देवी प्रत्यङ्गिरा इसके देवता हैं,

---

१. ॐ ह्रीं यां कल्पयन्ति नोरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव तां ब्रह्मणा अपनिर्णुद्मः प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु ह्रीं ॐमिति सप्तत्रिंशदक्षरः ।

२. अस्य प्रत्यंगिरामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः अनुष्टुपछन्दः देवीप्रत्यंगिरादेवता ॐ बीजं ह्रीं शक्तिः ममाखिलावाप्तये जपे विनियोगः ।

वसुर्भिमन्त्रजैर्वर्णैर्दीर्घयुक्पार्वतीपरैः ।
प्रणवाद्यैः षडङ्गानि कल्पयेज्जातिसंयुतैः ॥ ८६ ॥
शिरोभ्रूमध्यवक्त्रेषु कण्ठे बाहुद्वये हृदि ।
नाभावूर्वोर्जानुनोश्च पदानि पदयोर्न्यसेत् ॥ ६० ॥
चतुर्दशक्रमान्मन्त्री तारमायापुटान्यपि ॥

प्रणव आद्यो येषाम् । जात यो हृदयाय नम इत्यादयस्तत्संयुतैरष्टादिवर्णैः षडङ्गम् ॥ ८८ ॥ पदन्यासमाह – **शिर** इति । प्रणव मायासम्पुटानि चतुर्दश पदानि शिर आदिषु न्यसेत् । तेषां वर्णसंख्या क्रमात् । एकचतुरेक त्रि द्वि द्वि द्वि द्वि एक त्रि पञ्च द्वि त्रि त्रिः वर्णैर्बोध्या । ॐ ह्रीं यां ह्रीं शिरसीत्यादि ॥ ८६–६० ॥

प्रणव बीज है, माया (ह्रीं) शक्ति है, पर कृत्या (शत्रु द्वारा प्रयुक्त मारण रूप विशेष अभिचार) के विनाश के लिए इसका विनियोग है ॥ ८७-८८ ॥

विमर्श – विनियोग - 'अस्य श्रीप्रत्यङ्गिरामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिरनुष्टुप्छन्दः देवी प्रत्यङ्गिरा देवता ॐ बीजं ह्रीं शक्तिः परकृत्या निवारणे विनियोगः' ॥ ८७-८८ ॥

अब उक्त **मन्त्र का न्यास** कहते हैं -

मन्त्र के ८, तोयनिधि ४, युग ४, वेद ४ फिर ५ फिर वसु (८) अक्षरों से प्रारम्भ में प्रणव एवं अन्त में ६ दीर्घयुक्त पार्वती (माया ह्रीं) लगाकर जाति (हृदयाय नमः) आदि षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ८८-८६ ॥

अब **मन्त्र का पदन्यास** कहते हैं -

साधक तार (ॐ) तथा माया से संपुटित मन्त्र के चौदह पदों का शिर, भ्रूमध्य, मुख, कण्ठ, दोनों बाहु, हृदय, नाभि, दोनो ऊरू, दोनों जानु तथा दोनों पैरों में इस प्रकार कुल चौदह स्थानों में क्रमपूर्वक उक्त न्यास करे ॥ ८६-६० ॥

विमर्श - षडङ्गन्यास इस प्रकार करे । यथा -

ॐ यां कल्पयन्ति नोरयः ह्रां हृदयाय नमः, ॐ क्रूरां कृत्यां ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ वधूमिव ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ तां ब्रह्मणा ह्रैं कवचाय हुम,
ॐ अपनिर्णुद्मः ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु ह्रः अस्त्राय फट् ।

मन्त्र का **पदन्यास** इस प्रकार करे -

ॐ ह्रीं यां ह्रीं शिरसि, ॐ ह्रीं कल्पयन्ति ह्रीं भ्रूमध्ये,
ॐ ह्रीं नो ह्रीं मुखे, ॐ ह्रीं अरयः ह्रीं कण्ठे,
ॐ ह्रीं क्रूरां ह्रीं दक्षिण वाहौ, ॐ ह्रीं कृत्यां ह्रीं वामबाहौ,
ॐ ह्रीं वधूम् ह्रीं हृदि, ॐ ह्रीं इव ह्रीं नाभौ,
ॐ ह्रीं तां ह्रीं दक्षिण उरौ, ॐ ह्रीं ब्रह्मणा ह्रीं वाम उरौ,
ॐ ह्रीं अपनिर्णुद्मः ह्रीं दक्षिणजानौ, ॐ ह्रीं प्रत्यक् ह्रीं वामजानौ,
ॐ ह्रीं कर्त्तारम् ह्रीं दक्षिणपादे ॐ ह्रीं ऋच्छतु ह्रीं वामपादे॥ ८८-६० ॥

ध्यानप्रयोगादिकथनम्

आशाम्बरा मुक्तकचा घनच्छवि
र्ध्येया सचर्मासिकराहिभूषणा ।
दंष्ट्रोग्रवक्त्राग्रसिताहितान्वया
प्रत्यङ्गिरा शङ्करतेजसेरिता ॥ ६१ ॥
ध्यायन्नेवं जपेन्मन्त्रमयुतं तद्दशांशतः ।
अपामार्गेध्मराज्याज्यहविर्भिर्जुहुयात्ततः ॥ ६२ ॥
अन्नपूर्णासने चार्चेदङ्गलोकेश्वरायुधः ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगेषु शतं जपेत् ॥ ६३ ॥
जुहुयाच्च शतं दिक्षु दशमन्त्रैर्हरेद् बलिम् ।

बलिमन्त्रपूर्वकं बलिदानम्

यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा ॥ ६४ ॥

ध्यानमाह – **आशेति** । आशाम्बरा नग्ना । घनच्छविर्मेघश्यामा । ग्रसितोऽहितानां रिपूणामन्वयो वंशो यया । असिर्दक्षिणे ॥ ६१–६३ ॥ बलिमन्त्रमाह – **योम इति** । ॐ यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा । इन्द्रस्तं देवराजो भञ्जयतु अञ्जयतु मोहयतु नाशयतु मारयतु कलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु । इति बलिमन्त्रः । अनेन प्राच्यां बलिं दद्यात् ॥ ६४–६७ ॥

अब **महेश्वरी का ध्यान** कहते हैं - जिस दिगम्बरा देवी के केश छितराये हैं, ऐसी मेघ के समान श्याम वर्ण वाली, हाथों में खड्ग और चर्म धारण किये, गले में सर्पो की माला धारण किये, भयानक दाँतों से अत्यन्त उग्रमुख वाली, शत्रु समूहों को कवलित करने वाली, शंकर के तेज से प्रदीप्त, प्रत्यङ्गिरा का ध्यान करना चाहिए ॥ ६१ ॥

इस प्रकार मन्त्र का ध्यान करते हुये दश हजार मन्त्रों का जप करे तथा अपामार्ग (चिचिहड़ी) की लकड़ी, घृत मिश्रित राजी (राई) से उनका दशांश होम करे ॥ ६२ ॥

अन्नपूर्णा पीठ पर अङ्गपूजा लोकपाल एवं उनके आयुधों की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार सिद्ध मन्त्र का काम्य प्रयोगों में १०० बार जप करे । फिर उतनी ही संख्या में होम भी करे । तदनन्तर वक्ष्यमाण दश मन्त्रों से दशो दिशाओं में बलि देवे ॥ ६३-६४ ॥

विमर्श - प्रयोगविधि - (६. ६) श्लोक में बतलाई गई विधि से पीठ देवता एवं पीठशक्तियों की पूजा कर पीठ पर देवी की पूजा करे । फिर उनकी अनुज्ञा लेकर इस प्रकार आवरण पूजा करे । कर्णिका में षडङ्गपूजा (द्र० ६. ६०) फिर अन्नपूर्णा के षष्ठ एवं सप्तम आवरण में बतलाई गई विधि से इन्द्रादि लोकपालों एवं उनके आयुधों की पूजा करे । (द्र० ६. २१) ॥ ६३-६४ ॥

इन्द्रस्तंदेव उच्चार्य राजान्ते भञ्जयत्विति ।
अञ्जयत्वितिचोच्चार्य मोहयत्विति चोच्चरेत् ॥ ६५॥
नाशयतुपदं पश्चान्मारयत्वित्यतो बलिम् ।
तस्मै प्रयच्छतु कृतंममान्ते च शिवं मम ॥ ६६॥
शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु बलिमन्त्र उदाहृतः ।
प्रणवाद्योऽष्टषष्ट्यर्णस्तेनैव वितरेद् बलिम् ॥ ६७॥

दिक्षुबलिदानप्रकारकथनम्

अस्मिन्मन्त्रे पूर्वपदस्थानेग्न्यादिपदं वदेत् ।
अग्निरित्यादि च पठेदिन्द्र इत्यादिके स्थले ॥ ६८॥
एवं तु दशमन्त्राः स्युस्तैस्तत्तद् दिग्बलिं हरेत् ।
इत्थं कृते शत्रुकृता कृत्या क्षिप्रं विनश्यति ॥ ६६॥

अस्मिन्मन्त्रे । पूर्वेत्यस्य स्थाने अग्न्यादिपदम् । इन्द्र इत्यस्य स्थाने अग्निरित्यादि । देवराज इत्यत्र तेजो राज इत्यादि ऊहान् कृत्वा दशमन्त्रा विधेयास्तैस्तस्यां तस्यां दिशि बलिं दद्यात् । यथा – यो मेऽग्निगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा अग्निस्तं तेजो राजो भञ्जयत्वित्यादि० यो मे दक्षिणगतः यमस्तं प्रेतराज इत्यादि ॥ ६८–६६ ॥

पूर्व दिशा में 'यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा इन्द्रस्तं देव' इतना कहकर 'राजो' फिर 'अन्त्रयतु' फिर 'अञ्जयुत' कह कर 'मोहयतु' ऐसा कहें, फिर 'नाशयतु', 'मारयतु', 'बलिं तस्मै प्रयच्छतु', इसके बाद 'कृतं मम', 'शिवं मम' फिर 'शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु' कहने से बलि मन्त्र बन जाता है । आदि में प्रणव लगाकर अड़सठ अक्षरों से बलि प्रदान करना चाहिए ॥ ६४-६७ ॥

तत्पश्चात् बलि देने के समय इस मन्त्र में पूर्व के स्थान में आग्नेये आदि दिशाओं का नाम बदलते रहना चाहिए, और इन्द्र के स्थान में अग्नि इत्यादि दिक्पालों के नाम भी बदलते रहना चाहिए । इस प्रकार करने से शत्रु द्वारा की गई 'कृत्या' शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ ६८-६६ ॥

विमर्श – बलि मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'ॐ यो मे पूर्वगतः पाप्मापाकेनेह कर्मणा इन्द्रस्तं देवराजो भञ्जयतु, अञ्जयतु, मोहयतु, नाशयतु मारयतु बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु ' यह अड़सठ अक्षर का बलिदान मन्त्र है ।

दशो दिशाओं में बलिदान का प्रकार –

यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा इन्द्रस्तं देवराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे आग्नेयगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा अग्निस्तं तेजोराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे दक्षिणगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा यमस्तं प्रेतराजो भञ्जयतु इत्यादि

प्रत्यङ्गिरामालामन्त्रः

अथ प्रत्यंगिरामालामन्त्रसिद्धिः प्रकीर्त्यते ।
तारो मायानभः कृष्णवाससेशतवर्णकाः ॥ १०० ॥
सहस्रहिंसिनिपदं सहस्रवदने पुनः ।
महाबलेपदंपश्चादुच्चरेदपराजिते ॥ १०१ ॥
प्रत्यङ्गिरे परसैन्यपरकर्मसदृग्जलम् ।
ध्वंसिनि परमन्त्रोत्सादिनि सर्वपदं ततः ॥ १०२ ॥
भूतान्ते दमनिप्रान्ते सर्वदेवान् समुच्चरेत् ।
बन्धयुग्मं सर्वविद्याश्छिन्धियुक्क्षोभयद्वयम् ॥ १०३ ॥
परयन्त्राणि संकीर्त्य स्फोटयद्वितयं पठेत् ।
सर्वान्ते शृंखला उक्त्वा त्रोटयद्वितयं ज्वलत् ॥ १०४ ॥
ज्वालाजिह्वेकरालान्ते वदने प्रत्यमुच्चरेत् ।
गिरे मायानमोन्तोऽयं शरसूर्याक्षरो मनुः ॥ १०५ ॥

प्रत्यङ्गिरामालामन्त्रमाह – **तार** इति । तारः प्रणवः । माया ह्रीं। सदृक् जलम्। इयुतो वः वि ॥ १००–१०४ ॥ शर सूर्य्याक्षरः । पञ्चविंशत्यधिकशतार्णः। ॐ ह्रीं नमः – कृष्णवाससे शतसहस्रहिंसिनि सहस्रवदने महाबले अपराजिते प्रत्यङ्गिरे परसैन्यपरकर्मविध्वंसिनि परमन्त्रोत्सादिनि सर्वभूतदमनि सर्वदेवान् बन्ध बन्ध सर्वविद्याश्छिन्धि छिन्धि क्षोभय क्षोभय परयन्त्राणि स्फोटय स्फोटय सर्वशृंङ्खलास्त्रोटय त्रोटय ज्वलज्ज्वालाजिह्वे करालवदने प्रत्यङ्गिरे ह्रीं नम इति ॥ १०५–१०६ ॥

यो मे नैर्ऋत्यगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा निर्ऋतिस्तं रक्षराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे पश्चिमगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा वरुणस्तं जलराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे वायव्यगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा वायुस्तं प्राणराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे उत्तरगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा सोमस्तं नक्षत्रराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे ईशानगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा ईशानस्तं गणराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे ऊर्ध्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा ब्रह्मा तं प्रजाराजो भञ्जयतु इत्यादि
यो मे अधोगतः पाप्मा पापकेनेह कर्मणा अनन्तस्तं नागराजो भञ्जयतु इत्यादि ॥ ९८-९९ ॥

अब **प्रत्यङ्गिरामाला मन्त्र का उद्धार** बतलाते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), फिर 'नमः कृष्णवाससे शत वर्ण' फिर 'सहस्र हिंसिनि' पद, फिर 'सहस्रवदने', पुनः 'महाबले', फिर 'अपराजिते', फिर 'प्रत्यङ्गिरे', फिर 'परसैन्य परकर्म', फिर सदृक् जल (वि), फिर 'ध्वंसिनि परमन्त्रोत्सादिनि सर्व' पद, फिर उसके अन्त में 'भूत' पद, फिर 'दमनि', फिर 'सर्वदेवान्', फिर 'बन्ध' युग्म (बन्ध बन्ध),

ऋष्यादिकं पूर्वमुक्तं माययास्यात्षडङ्गकम्।
ध्यायेत्प्रत्यंगिरां देवीं सर्वशत्रुविनाशिनीम् ॥ १०६ ॥

ध्यानजपादिमन्त्रसिद्धिकथनम्

सिंहारूढातिकृष्णं त्रिभुवनभयकृद्रूपमुग्रं वहन्ती,
ज्वालावक्त्रावसानानववसनयुगं नीलमण्याभकान्तिः।
शूलं खड्गं वहन्ती निजकरयुगले भक्तरक्षैकदक्षा,
सेयं प्रत्यङ्गिरा संक्षपयतु रिपुभिर्निर्मितं वोभिचारम् ॥ १०७ ॥

ध्यानमाह – **सिंहेति** । खड्गो दक्षिणे ॥ १०७–१०६ ॥

फिर 'सर्वविद्याः', फिर 'छिन्धि' युग्म (छिन्धि, छिंन्धि), फिर 'क्षोभय' युग्म (क्षोभय क्षोभय), फिर 'परमन्त्राणि' के बाद 'स्फोटय' युग्म् (स्फोटय स्फोटय), फिर 'सर्वशृङ्खलां' के बाद 'त्रोटय' युग्म (त्रोटय त्रोटय), फिर 'ज्वलज्ज्वाला जिह्वे करालवदने प्रत्यङ्गिरे' फिर माया (ह्रीं), तथा अन्त में 'नमः' लगाने से १२५ अक्षरों का प्रत्यंगिरा माला मन्त्र बनता है ॥ १००-१०५ ॥

विमर्श – प्रत्यङ्गगिरा माला मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -

'ॐ ह्रीं नमः कृष्ण वाससे शतसहस्रहिंसिनि सहस्रवदने महाबले अपराजिते प्रत्यङ्गिरे परसैन्य परकर्मविध्वंसिनि परमन्त्रोत्सादिनि सर्वभूतदमनि सर्वदेवान् बन्ध बन्ध सर्वविद्याश्छिन्धि छिन्धि क्षोभय क्षोभय परयन्त्राणि स्फोटय स्फोटय सर्वशृङ्खलास्त्रोटय त्रोटय ज्वलज्ज्वालाजिस्वे करालवदने प्रत्यङ्गिरे ह्रीं नमः' ॥ १००-१०५ ॥

इस मन्त्र के ऋषि छन्द तथा देवता पूर्व में कह आये हैं । इस मन्त्र के माया बीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए । तदनन्तर समस्त शत्रुओं को नाश करने वाली प्रत्यङ्गिरा का ध्यान करना चाहिए ॥ १०६ ॥

विमर्श – विनियोग – 'अस्य श्रीप्रत्यङ्गिरामन्त्रस्य ब्रह्माऋषिरनुष्टुप्छन्दः प्रत्यङ्गिरादेवता ॐ बीजं ह्रीं शक्तिः ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे (परकृत्यनिवारणे वा) जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुम,
ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट् ॥ १०६ ॥

सिंहारूढ़, अत्यन्त कृष्णवर्णा, त्रिभुवन को भयभीत करने वाले रूपकों को धारण करने वाली, मुख से आग की ज्वाला उगलती हुई, नवीन दो वस्त्रों को धारण किये हुये, नीलमणि की आभा के समान कान्ति वाली, अपने दोनों हाथों में शूल तथा खड्ग धारण करने वाली, स्वभक्तों की रक्षा में अत्यन्त सावधान रहने वाली, ऐसी प्रत्यङ्गिरा देवी हमारे शत्रुओं के द्वारा किये गये अभिचारों को विनष्ट करे ॥ १०७ ॥

अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रं तिजराजिकाः ।
हुत्वा सिद्धमनुं मन्त्रं प्रयोगेषु शतं जपेत् ॥ १०८ ॥
ग्रहभूतादिकाविष्टं सिञ्चेन्मन्त्रं जपञ्जलैः ।
विनाशयेत्परकृतं यन्त्रमन्त्रादिकर्मणाम् ॥ १०६ ॥

शत्रुनाशकमन्त्रः

मन्त्रं विरोधिशमकं प्रवक्ष्ये षोडशाक्षरम् ।
प्रणवः केशवः सेन्दुर्वर्गाद्याः पञ्चसेन्दवः ॥ ११० ॥
वियच्चन्द्रान्वितं रान्तसद्योजातः शशांकयुक् ।
मायात्रिकर्णचन्द्राढ्यो भृगुः सर्गी सवर्मफट् ॥ १११ ॥
स्वाहान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रः[1] शत्रुविनाशनः ।
विधाताष्टिर्ऋषिश्छन्दः[2] पर्वताब्ध्यग्निवायवः ॥ ११२ ॥

शत्रुनाशकमन्त्रमाह – **प्रणव** इति । प्रणवः ॐ । सेन्दुः केशवः । अं । सेन्दवः पञ्चवर्गाद्याः कं चं टं तं पं ॥ ११० ॥ चन्द्रान्वितं वियत् हं । रान्तं लः । सद्योजातः शशांको बिन्दुस्ताभ्यां युक्तः लों । माया ह्रीं । कर्णचन्द्राढ्यः उ । बिन्दुयुतोऽत्रि दुं । सर्गी भृगुः सः वर्म हुँ ॥ १११ ॥ फट् स्वाहा स्वरूपम् । विधाता ब्रह्मा । महापूर्वाः पर्वतादयः । महापर्वतमहासमुद्र महाग्नि महावायुमहापृथ्वी

इस मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिए तथा तिल एवं राई का होम एक हजार की संख्या में निष्पन्न कर मन्त्र सिद्ध करना चाहिए । फिर काम्य प्रयोगों में मात्र १०० की संख्या में जप करना चाहिए ॥ १०८ ॥

ग्रह बाधा, भूत बाधा आदि किसी प्रकार की बाधा होने पर इस मन्त्र का जप करते हुए जल से रोगी को अभिसिञ्चित करना चाहिए । इसी प्रकार शत्रुद्वारा यन्त्र मन्त्रादि द्वारा अभिचार भी विनिष्ट करना चाहिए ॥ १०६ ॥

अब **षोडशाक्षर वाला शत्रुविनाशक मन्त्र** बतलाता हूँ -

प्रणव (ॐ), सेन्दु केशव (अं), सेन्दु पञ्चवर्गों के आदि अक्षर (कं चं टं तं पं), चन्द्रान्वित वियत् (हं), सद्योजात (ओ), शशांक (अनुस्वार), उससे युक्त रान्त (ल), इस प्रकार (लों), माया (ह्रीं), कर्ण (उकार), चन्द्र (अनुस्वार), इससे युक्त अत्रि (द्) (अर्थात् दुं), सर्गी (विसर्गयुक्त), भृगु (स), इस प्रकार (सः), वर्म (हुं), फिर 'फट्' इसके अन्त में 'स्वाहा' लगाने से उक्त मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ११०-११२ ॥

---

१. ॐ अं कं चं टं तं प हलों ह्रीं दु सः हुं फट् स्वाहेति षोडशार्णः ।

२. अस्य मन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः अष्टिछन्दः महापर्वतमहाब्धिमहाग्निमहावायुमहाधरामहामाशः षड्देवता हुंबीजं ह्रीं शक्तिः ममाभीष्टसिद्धयर्थे जपे विनियोगः ।

धराकाशौ महापूर्वा देवताः परिकीर्तिताः ।
हुंबीजं पार्वतीशक्तिर्मायया तु षडङ्गकम् ॥ ११३ ॥

षडङ्गक्रमेण ध्यानवर्णनम्

नानारत्नार्चिराक्रान्तं वृक्षाम्भः स्रवर्णैर्युतम् ।
व्याघ्रादिपशुभिर्व्याप्तं सानुयुक्तं गिरिं स्मरेत् ॥ ११४ ॥
मत्स्यकूर्मादिबीजाढ्यं नवरत्नसमन्वितम् ।
घनच्छायं सकल्लोलमकूपारं विचिन्तयेत् ॥ ११५ ॥
ज्वालावतीसमाक्रान्त जगत्त्रितयमद्‌भुतम् ।
पीतवर्णं महावह्निं संस्मरेच्छत्रुशान्तये ॥ ११६ ॥
धरासमुत्थरेण्वौघमलिनं रुद्धभूदिवम् ।
पवनं संस्मरेद्विश्वजीवनं प्राणरूपतः ॥ ११७ ॥

महाकाशाः षड्देवताः । पार्वती ह्रीं । मायया दीर्घाढ्यया षडङ्गम् ॥ ११२–११३ ॥ षडङ्गक्रमेण ध्यानान्याह – नानेति ॥ ११४ ॥ अकूपारं समुद्रम् ॥ ११५–११६ ॥ प्राणरूपेण विश्वं जीवयतीति विश्वजीवनम् ॥ ११७–१२० ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – 'ॐ अं कं चं टं तं पं हं लों ह्रीं दुं सः हुं फट् स्वाहा' ॥ ११०-१११ ॥

इस मन्त्र के विधाता ऋषि हैं, अष्टि छन्द हैं १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ११ महाअग्नि, महापर्वत, महासमुद्र, महावायु, महाधरा तथा महाकाश देवता कहे गये हैं, हुं बीज है, पार्वती (ह्रीं) शक्ति है । षड्दीर्घ सहित माया बीज से इसके षडङ्गन्यास का विधान कहा गया है ॥ ११२-११३ ॥

विमर्श – विनियोग – 'अस्य विरोधिशामकमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिरष्टिच्छन्दः महापार्वताब्ध्याग्निवायुधराकाश देवताः हुं बीजं ह्रीं शक्तिः शत्रुशमनार्थ जपे विनियोगः' ।

षडङ्गन्यास – ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुम्,
ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट् ॥ ११२-११३ ॥

अब उन छः **देवताओं का ध्यान** कहते हैं –

(i) अनेक रत्नों की प्रभा से आक्रान्त वृक्ष झरनों एवं व्याघ्रादि महाभयानक पशुओं से व्याप्त अनेक शिखर युक्त **महापार्वत** का ध्यान कराना चाहिए ॥ ११४ ॥

(ii) मछली एवं कछुआ रूपी बीजों वाला, नव रत्न समन्वित, मेघ के समान कान्तिमान्, कल्लोलों से व्याप्त **महासमुद्र** का स्मरण करना चाहिए ॥ ११५ ॥

(iii) अपने ज्वाला से तीनों लोकों को आक्रान्त करने वाले अद्‌भुत एवं पीतवर्ण वाले **महाग्नि** का शत्रुनाश के लिए स्मरण करना चाहिए ॥ ११६ ॥

नदीपर्वतवृक्षादिफलिताग्रामसंकुला ।
आधारभूता जगतो ध्येया पृथ्वीह मन्त्रिणा ॥ ११८ ॥
सूर्यादिग्रहनक्षत्रकालचक्रसमन्वितम् ।
निर्मलं गगनं ध्यायेत्प्राणिनामाश्रयप्रदम् ॥ ११९ ॥
एवं षड्देवता ध्यात्वा सहस्राणि तु षोडश ।
जपेन्मन्त्रं दशांशेन षड्द्रव्यैर्होममाचरेत् ॥ १२० ॥
व्रीह्यस्तन्दुलाआज्यं सर्षपाश्च यवास्तिलाः ।
एतैर्हुत्वा यथाभागं पीठे पूर्वोदिते यजेत् ॥ १२१ ॥
अङ्गदिक्पालवज्राद्यैरेवं सिद्धो भवेन्मनुः ।
शत्रूपद्रवमापन्नो युञ्ज्यात्तन्नष्टये मनुम् ॥ १२२ ॥

अस्य मन्त्रस्य प्रयोगकथनम्

अकारं पर्वताकारं धावन्तं शत्रुसम्मुखम् ।
पतनोन्मुखमत्युग्रं प्राच्यां दिशि विचिन्तयेत् ॥ १२३ ॥

यथाभागं सप्तषष्ट्यधिकं शतद्वयं प्रत्येकम् ॥ १२१–१२२ ॥ प्रयोगमाह – **अकारमिति** ॥ १२३–१२४ ॥

(iv) पृथ्वी की उड़ाई गई धूलराशि से द्युलोक एवं भूलोक को मलिन एवं उनकी गति को अवरुद्ध करने वाले प्राण रूप से सारे विश्व को जीवन दान करने वाले **महापवन** का स्मरण करना चाहिए ॥ ११७ ॥

(v) नदी, पर्वत, वृक्षादि, रूप दलों वाली, अनेक प्रकार ग्रामों से व्याप्त समस्त जगत् की आधारभूता **महापृथ्वी** तत्त्व का स्मरण करना चाहिए ॥ ११८ ॥

(vi) सूर्यादि ग्रहों, नक्षत्रों एवं कालचक्र से समन्वित, तथा सारे प्राणियों को अवकाश देने वाले निर्मल **महाआकाश** का ध्यान करना चाहिए ॥ ११९ ॥

इस प्रकार उक्त छः देवताओं का ध्यान कर सोलह हजार की संख्या में उक्त मन्त्र का जप करना चाहिए । तदनन्तर षड्द्रव्यों से दशांश होम करना चाहिए ॥ १२० ॥

१. धान, २. चावल, ३. घी, ४. सरसों, ५. जौ एवं ६. तिल - इन षड्द्रव्यों में प्रत्येक से अपने अपने भाग के अनुसार २६७, २६७ आहुतियाँ देकर पूर्वोक्त पीठ पर इनका पूजन करना चाहिए ॥ १२१ ॥

फिर अङ्गपूजा, दिक्पाल पूजा एवं वज्रादि आयुधों की पूजा करने पर इस मन्त्र की सिद्धि होती है । शत्रु के उपद्रवों से उद्विग्न व्यक्ति को शत्रुनाश के लिए इस मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए ॥ १२२ ॥

अकार का ध्यान - पर्वत के समान आकृति वाले शत्रु संमुख दौड़ते हुये एवं उस पर झपटते हुये अकार का पूर्वदिशा में ध्यान करना चाहिए ॥ १२३ ॥

ककारं क्षुब्धकल्लोलं प्लाविताखिलभूतलम्।
समुद्ररूपिणं भीमं प्रतीच्यां दिशि संस्मरेत्॥ १२४॥
वर्णं तदग्रिमं ज्वालासंघव्याप्तनभस्तलम्।
याम्येरब्धजगद्दाहं स्मरेत्प्रलयपावकम्॥ १२५॥
तृतीयवर्गप्रथमं प्रकम्पितजगत्त्रयम्।
युगान्तपवनाकारमुत्तरस्यां दिशि स्मरेत्॥ १२६॥
तुरीयपञ्चमाद्यार्णौ पृथ्वीगगनरूपिणो।
शत्रुवर्गं बाधमानौ चिन्तयेन्नियतात्मवान्॥ १२७॥
तदग्रिमं वर्णयुगं शत्रोर्निःश्वासपद्धतिम्।
निरुन्धानं स्मरेन्मन्त्री विदधद्रिपुमाकुलम्॥ १२८॥
मायादिवर्णत्रितयं शत्रोर्नेत्रश्रुतीमुखम्।
प्रत्येकं तु निरुन्धानं चिन्तयेत्साधकोत्तमः॥ १२९॥
वर्मसंक्षोभितं त्वस्त्रं रिपोराधारदेशतः।
उत्थाप्य वह्निं तद्देहं प्रदहन्समनुस्मरेत्॥ १३०॥

तदग्रिमं चकारं याम्ये दक्षिणस्याम् । रब्ध आरब्धो जगद्दाहो येऽनलंकृतेति वा पाठः ॥ १२५ ॥ तृतीयेति टम् ॥ १२६ ॥ तुरीयेति । चतुर्थपञ्चम-वर्गयोरादिमार्णो तंपं ॥ १२७ ॥ तदग्रिमवर्णयुगं द्वयं हं लोमिति ॥ १२८ ॥ मायादिवर्णत्रितयं ह्रीं दुँ स इति ॥ १२९ ॥ वर्मणा हुँकारेण क्षोभितमस्त्रं फट्कारं रिपोराधारादग्निमुत्थाप्य रिपुदहन्तं स्मरेत्॥ १३०॥

समुद्र के समान आकृति वाले अपने तरङ्गों से सारे पृथ्वी मण्डल को बहाते हुये भयङ्कर रूप धारी **ककार** का पश्चिम दिशा में स्मरण करना चाहिए ॥ १२४॥

अपने ज्वाला समूहों से आकाश मण्डल को व्याप्त करते हुए सारे जगत् को जलाने वाले प्रलयाग्नि के समान **चकार** का दक्षिण दिशा में ध्यान करना चाहिए ॥ १२५॥

सारे जगत् को प्रकम्पित करने वाले युगान्त कालीन पवन के समान आकृति वाले तृतीय वर्ग का प्रथमाक्षर **टकार** का उत्तर दिशा में ध्यान करना चाहिए ॥ १२६॥

शत्रुवर्ग को बाधित करने वाले चतुर्थ वर्ग के प्रथमाक्षर **तकार** का पृथ्वी रूप में एवं पञ्चम वर्ग के प्रथमाक्षर **पकार** का गगन रूप में जितेन्द्रिय साधक को ध्यान करना चाहिए ॥ १२७॥

शत्रु की श्वास प्रणाली को अवरुद्ध कर उसे व्याकुल करते हुये आगे के अग्रिम दो वर्णो (हं लों) का ध्यान करना चाहिए ॥ १२८॥

फिर श्रेष्ठ साधक को शत्रु के नेत्र, मुख एवं कानों को अवरुद्ध करने वाले माया आदि तीन वर्णो का (ह्रीं दुं सः) का ध्यान करना चाहिए । फिर वर्म (हुङ्कार) से

एवं वर्णान् स्मरन्मन्त्रं जपेन्मन्त्रीसहस्रकम् ।
मण्डलत्रितयादर्वाङ् मारयत्येव विद्विषम् ॥ १३१ ॥
एवं यः कुरुते कर्मप्राणायामजपादिभिः ।
संशोधयित्वा स्वात्मानं स्वरक्षायै हरिं स्मरेत् ॥ १३२ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधावन्नपूर्णादि मन्त्रप्रकाशनं नाम नवमस्तरङ्गः ॥ ९ ॥

मण्डलमेकोनपञ्चाशद्दिनानि ॥ १३१ ॥ मारणं कुर्वतः प्रायश्चित्तमाह – एवमिति ॥ १३२ ॥

इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायाम–न्नपूर्णादिनिरूपणं नाम नवमस्तरङ्गः ॥ ९ ॥

संक्षोभित तथा अस्त्र (फट्) से शत्रु को मूलाधार से उठा कर अग्नि में फेक कर उसके शरीर को जलाते हुये दो अक्षर हुं फट् का ध्यान करना चाहिए ॥ १२९-१३० ॥

इस प्रकार मन्त्र के सब वर्णों का आदि के ॐ कार तथा अन्त में स्वाहा इन तीन वर्णो को छोड़कर (मात्र तेरह वर्णो का) ध्यान करने वाला मालिक एक हजार की संख्या में निरन्तर जप करे तो तीन मण्डलों (उन्चास दिन) के भीतर ही वह अपने शत्रु को मार सकता हैं ॥ १३१ ॥

जिसे शत्रुमारण कर्म करना हो उस साधक को प्राणायाम तथा इष्टदेवता के मन्त्र के जप से नित्य आत्मशुद्धि कर लेनी चाहिए तथा अपनी रक्षा के लिए भगवान् विष्णु का स्मरण करते रहना चाहिए ॥ १३२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के नवम तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ९ ॥

अथ दशमः तरङ्गः

अथ प्रवक्ष्ये शत्रूणां स्तम्भिनी बगलामुखी।

बगलामुखीमन्त्रः

प्रणवो गगनं पृथ्वीशान्तिबिन्दुयुतं बग ॥ १ ॥
लामुखाक्षो गदीसर्वं दुष्टानां वाहलीन्दुयुक्।
मुखंपदं स्तम्भयान्ते जिह्वां कीलय वर्णकाः ॥ २ ॥
बुद्धिं विनाशायान्ते तु बीजं तारोऽग्निसुन्दरी।
षट्[१]त्रिंशदक्षरो मन्त्रो नारदो मुनिरस्य तु ॥ ३ ॥

---

* नौका *

बगलामुखीमाह – **प्रणव** इति । गगनं हः । पृथ्वी लः । शान्तिः ई । बिन्दुश्च तैर्युतं ह्रीं । बगलामुखी स्वरूपम् । गदी खः । साक्ष इयुतः खि । 'सर्व–दुष्टानां वा' स्वरूपम् । इन्दुयुक् हली चं । मुखं पदमित्यादि स्वरूपम् । बीजं ह्रीं । तार ॐ अग्निसुन्दरी स्वाहा ॥ १–३ ॥

---

* अरित्र *

अब शत्रुओं के मुख पीठ जिह्वा आदि का स्तम्भन करने वाले **बगलामुखी का मन्त्र** बतलाता हूँ ।

प्रणव (ॐ), शान्ति (ई) एवं बिन्दु (अनुस्वार), के सहित गगन (ह्), अर्थात् (ह्रीं), फिर 'बगलामु', फिर साक्ष इकार युक्त गदी (ख) अर्थात् (खि), फिर 'सर्वदुष्टानां वा', फिर इन्दु (अनुस्वार) युक् हली (च) अर्थात् (चं), फिर 'मुखं पदं स्तम्भय' के बाद 'जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय', फिर बीज (ह्रीं), तार (ॐ), फिर अग्निसुन्दरी (स्वाहा) लगाने से छत्तिस अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १-३ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्रीं ॐ स्वाहा' ॥ १-३ ॥

इस मन्त्र के नारद ऋषि हैं, बृहती छन्द है, बगलामुखी देवता हैं, मन्त्र के

---

१. ॐ ह्रीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तंभय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्रीं ॐस्वाहेति षट्त्रिंशदर्णः ।

छन्दोऽपिबृहती ज्ञेयं देवताबगलामुखी ।
नेत्राक्षसायकनवपञ्चकाष्ठाभिरङ्गकम् ॥ ४ ॥

ध्यानजपादिविधानम्

सौवर्णासनसंस्थितां त्रिनयनां पीतांशुकोल्लासिनीं
हेमाभाङ्गरुचिं शशाङ्कमुकुटां सच्चम्पकस्रग्युताम् ।
हस्तैर्मुद्‌गरपाश वज्ररसनाः सम्बिभ्रतीं भूषणै
र्व्याप्ताङ्गीं बगलामुखीं त्रिजगतां संस्तम्भिनीं चिन्तयेत् ॥ ५ ॥

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षमयुतं चम्पकोद्भवैः ।
कुसुमैर्जुहुयात् पीठे पूर्वोक्ते पूजयेदिमाम् ॥ ६ ॥
चन्दनागुरुचन्द्राद्यैः पूजार्थं यन्त्रमालिखेत् ।
त्रिकोणषड्दलाष्टास्रषोडशारधरापुरम् ॥ ७ ॥

षडङ्गमाह – **नेत्रेति** । अक्षाणि पञ्च ॥ ४ ॥ ध्यानमाह – **सौवर्णेति** । मुद्‌गरवज्रौ दक्षयोः । पाशरिपुजिह्वे वामयोः ॥ ५ ॥ * ॥ ६–८ ॥

२, ५, ५, ६, ५, एवं १० अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ३-४ ॥

विमर्श - विनियोग - 'ॐ अस्य श्रीबगलामुखीमन्त्रस्य नारदऋषिः बृहतीछन्दः बगलामुखीदेवता शत्रूणां स्तम्भनार्थे जपे विनियोगः' ।

षडङ्गन्यास - ॐ ह्रीं हृदयाय नमः, ॐ बगलामुखि शिरसे स्वाहा,
ॐ सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्, ॐ वाचं मुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुम्
ॐ जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ बुद्धिं विनाशय ह्रीं, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ३-४ ॥

अब **बगलामुखी देवी का ध्यान** कहते हैं -

सुवर्ण निर्मित सिंहासन पर विराजमान, तीन नेत्रों वाली पीत वस्त्र से उदीप्त सुवर्ण के समान आभा वाली, चन्द्रकला युक्त मुकुट धारण की हुई, चम्पक की माला पहने हुये, अपने हाथों में मुद्‌गर, पाश, वज्र एवं शत्रु की जीभ लिए हुये, अपने समस्त अङ्गों में भूषण धारण किये हुये, तीनों लोकों को स्तम्भित करने वाली बगलामुखी का ध्यान करना चाहिए ॥ ५ ॥

इस प्रकार ध्यान कर उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए । चम्पा के फूलों से दश हजार आहुतियाँ देनी चाहिए, तथा पूर्वोक्त पीठ पर इनका पूजन करना चाहिए । (द्र० ६.६) ॥ ६ ॥

अब **बगलामुखी का पूजन यन्त्र** कहते हैं - त्रिकोण, षड्दल, अष्टदल, षोडशदल एवं भूपुर से संयुक्त पूजायन्त्र को चन्दन, अगरु, कपूर आदि अष्टगन्ध

मध्ये सम्पूजयेद् देवीं कोणे सत्त्वादिकान्गुणान् ।
षट्कोणेषु षडङ्गानि मातृभैरवसंयुता ॥ ८ ॥
सम्पूज्याऽष्टदले पद्मे षोडशारे यजेदिमाः ।

अष्टषोडशपीठदेवताकथनम्

मङ्गलास्तम्भिनी चैव जृम्भिणीमोहिनी तथा ॥ ९ ॥
वश्याचलाबलाका च भूधराकल्मषाभिधा ।
धात्री च कलनाकालकर्षिणीभ्रामिकाऽपि च ॥ १० ॥
मन्दगमना च भोगस्था भाविका षोडशी स्मृता ।
भूगृहस्य चतुर्दिक्षु पूर्वादिषु यजेत् क्रमात् ॥ ११ ॥
गणेशं बटुकं चापि योगिनीं क्षेत्रपालकम् ।
इन्द्रादींश्च ततो बाह्ये निजायुधसमन्वितान् ॥ १२ ॥
इत्थं सिद्धमनुर्मन्त्री स्तम्भयेद् देवतादिकान् ।

भैरवसंयुतामातृरष्टदले सम्पूज्य षोडशदले इमा मङ्गलाद्या यजेत् ॥ ९–१२ ॥ * ॥ १३–१७ ॥

के द्रव्यों से निर्माण करना चाहिए ॥ ७ ॥

अब **यन्त्र पूजा की विधि** कहते हैं - **मध्य में** देवी की पूजा तथा **त्रिकोण में** सत्त्व, रज, तम आदि तीनों गुणों की, **षट्कोण में** षडङ्गपूजा तथा **अष्टदल में** भैरवों के साथ मातृकाओं का पूजन करना चाहिए ॥ ८ ॥

बगलामुखीपूजनयन्त्रम्

सोलह दल में १. मङ्गला, २. स्तम्भिनी, ३. जृम्भिणी, ४. मोहिनी, ५. वश्या, ६. चला, ७. बलाका, ८. भूधरा, ९. कल्मषा, १०. धात्री, ११. कलना, १२. कालकर्षिणी, १३. भ्रामिका, १४. मन्दगमना, १५. भोगस्था एवं १६. भाविका - इन सोलह शक्तियों की पूजा करनी चाहिए ॥ ९–११ ॥

भूपुर के पूर्वादि चारों दिशाओं में गणेश, बटुक, योगिनी एवं क्षेत्रपाल का पूजन करे । फिर उसके बाहर अपने अपने आयुधों के सहित इन्द्रादि दश दिक्पालों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक,
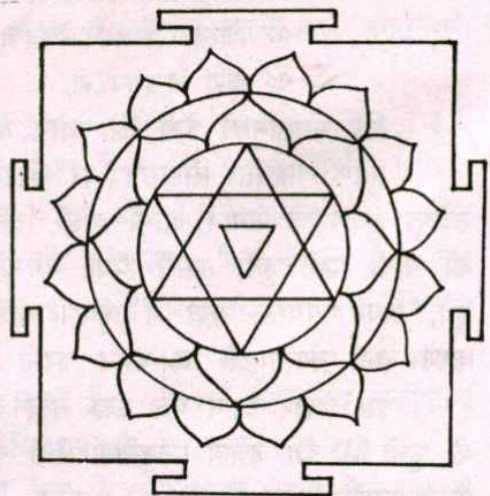
देवता, भूत, प्रेत, पिशाचादि सभी को स्तम्भित कर देता है ॥ ११-१३ ॥

विमर्श - आवरण पूजा - १०. ५ में वर्णित स्वरूप का साधक ध्यान कर मानसोपचार से विधिवत् पूजन कर शंख का अर्घ्यपात्र स्थापित करे । फिर ६-६ की रीति से पीठ पूजा कर मूल मन्त्र से देवी की मूर्त्ति की कल्पना कर पुष्प, धूपादि उपचार समर्पित कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करे । तदनन्तर उनकी अनुज्ञा ले कर यन्त्र पर आवरण पूजा करे ।

सर्वप्रथम **त्रिकोण में** मूलमन्त्र द्वारा देवी बगलामुखी की पूजा करे । फिर त्रिकोण में सत्त्व रज और तम इन तीनों गुणों की यथा -

ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः ।

इसके पश्चात् **षट्कोण में** षडङ्गपूजा - यथा -

ॐ ह्रीं हृदयाय नमः ॐ बगलामुखि शिरसे स्वाहा,
ॐ सर्वदुष्टानां शिखायै वषट् ॐ वाचंमुखं पदं स्तम्भय कवचाय हुं,
ॐ जिह्वां कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्,
ॐ बुद्धिं विनाशय ह्रीं ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

इसके बाद अष्टदल में अष्ट भैरवों सहित ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं की पूजा करनी चाहिए -

१ - ॐ असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः ५ - ॐ उन्मत्तवाराहीभ्यां नमः
२ - ॐ रुरुमाहेश्वरीभ्यां नमः ६ - ॐ कपालीन्द्राणीभ्यां नमः
३ - ॐ चण्डकौमारीभ्यां नमः ७ - ॐ भीषणचामुण्डाभ्यां नमः
४ - ॐ क्रोधवैष्णवीभ्यां नमः ८ - ॐ संहारमहालक्ष्मीभ्यां नमः

इसके बाद षोडशदल में मङ्गला आदि शक्तियों की पूजा करनी चाहिए ।

१. ॐ मङ्गलायै नमः, ७. ॐ बलाकायै नमः, १३. ॐ भ्रामिकायै नमः,
२. ॐ स्तम्भिन्यै नमः, ८. ॐ भूधरायै नमः, १४. ॐ मन्दगमनायै नमः,
३. ॐ जृम्भिण्यै नमः ९. ॐ कल्मषायै नमः, १५. ॐ भोगस्थायै नमः,
४. ॐ मोहिन्यै नमः, १०. ॐ धात्र्यै नमः, १६. ॐ भाविकायै नमः,
५. ॐ वश्यायै नमः, ११. ॐ कलनायै नमः,
६. ॐ चलायै नमः, १२. ॐ कालकर्षिण्यै नमः,

फिर भूपुर के पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः गणेश, बटुक, योगिनी एवं क्षेत्रपाल की पूजा करनी चाहिए -

ॐ गं गणपतये नमः, पूर्वे, ॐ बं बटुकाय नमः, दक्षिणे,
ॐ यं योगिनीभ्यो नमः, पश्चिमे, ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः, उत्तरे,

इसके पश्चात भूपुर के बाहर अपनी अपनी दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए -

ॐ इन्द्राय नमः पूर्वे, ॐ अग्नये नमः आग्नेये, ॐ यमाय नमः दक्षिणे,

पीतवस्त्रस्तदासीनः पीतमाल्यानुलेपनः ॥ १३ ॥
पीतपुष्पैर्यजेद् देवीं हरिद्रोत्थस्रजा जपन् ।
पीतां ध्यायन् भगवतीं प्रयोगेष्वयुतं जपेत् ॥ १४ ॥

अस्य मन्त्रस्य नानाविधानेन नानासिद्धयः

त्रिमध्वक्ततिलैर्होमो नृणां वश्यकरो मतः ।
मधुरत्रितयाक्तैः स्यादाकर्षो लवणैर्ध्रुवम् ॥ १५ ॥
तैलाभ्यक्तैर्निम्बपत्रैर्होमो विद्वेषकारकः ।
काललोणहरिद्राभिर्द्विषां संस्तम्भनं भवेत् ॥ १६ ॥
अङ्गारधूमं राजीश्च माहिषं गुग्गुलुं निशि ।
श्मशानपावके हुत्वा नाशयेदचिरादरीन् ॥ १७ ॥

ॐ निर्ऋतये नमः नैर्ऋत्ये, ॐ वरुणाय नमः पश्चिमे, ॐ वायवे नमः वायव्ये,
ॐ सोमाय नमः उत्तरे, ॐ ईशानाय नमः ऐशान्यां,
ॐ ब्रह्मणे नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ अनन्ताय नमः पश्चिमनैऋत्ययोर्मध्ये

फिर दिक्पालों के पास उनके अपने अपने वज्रादि आयुधों की

इन्द्रसमीपे वज्राय नमः, अग्निसमीपे शक्तये नमः,
यमसमीपे दण्डाय नमः, निर्ऋतिसमीपे खड्गाय नमः,
वरुणसमीपे पाशाय नमः, वायुसमीपे आकशाय नमः,
सासमीपे गदायै नमः, ईशानसमीपे शूलाय नमः,
ब्रह्मणःसमीपे पद्माय नमः अनन्तसमीपे चक्राय नमः ॥ १२ ॥

इस प्रकार आवरण पूजा कर धूपदीपादि उपचारों से विधिवत् देवी की पूजा कर यथासंख्य नियमित जप करना चाहिए ॥ ११-१३ ॥

अब **बगलामुखी के जप के लिए विशेष प्रकार** कहते हैं -

साधक पीला वस्त्र पहन कर, पीले आसन पर बैठकर, पीली माला धारण कर, पीला चन्दन लगाकर, पीले पुष्पों से देवी की पूजा करे, तथा पीतवर्णा देवी का ध्यान भी करे, काम्य प्रयोगों में हल्दी की माला का प्रयोग करे तथा १० हजार की संख्या में जप करे ॥ १३-१४ ॥

त्रिमधु (शहद्, शर्करा, दूध) मिश्रित तिलों के होम से मनुष्यों को वश में किया जाता है । त्रिमधु मिश्रित लवण के होम से निश्चित रूप से आकर्षण होता है । तेलाभ्यक्त नीम के पत्तों के होम से विद्वेषण होता है । लाल लोण एवं हरिद्रा के होम से शत्रु वर्ग का स्तम्भन होता है, श्मशान की अग्नि में रात्रि के समय अङ्गार, धूप, राजी (राई) मैंसा, गुग्गुल की आहुतियाँ देने से शत्रुओं का नाश होता है । चिता की अग्नि में गिद्ध एवं कौवे के पंख का, सरसों का

गरुतो गृध्रकाकानां कटुतैलं बिभीतकम् ।
गृहधूमं चितावह्नौ हुत्वा प्रोच्चाटयेद् रिपून् ॥ १८ ॥
दूर्वागुडूचीलाजान् यो मधुरत्रितयान्वितान् ।
जुहोति सोखिलान् रोगाञ्छमयेद् दर्शनादपि ॥ १९ ॥
पर्वताग्रे महारण्ये नदीसङ्गे शिवालये ।
ब्रह्मचर्यव्रतो लक्षं जपेदखिलसिद्धये ॥ २० ॥
एकवर्णगवीदुग्धं शर्करामधुसंयुतम् ।
त्रिशतं मन्त्रितं पीतं हन्याद्विषपराभवम् ॥ २१ ॥
श्वेतपालाशकाष्ठेन रचिते रम्यपादुके ।
अलक्तरञ्जिते लक्षं मन्त्रयेन्मनुनाऽमुना ॥ २२ ॥
तदारूढः पुमान् गच्छेत् क्षणेन शतयोजनम् ।
पारदं च शिलां तालपिष्टं मधुसमन्वितम् ॥ २३ ॥
मनुना मन्त्रयेल्लक्षं लिपेत्तेनाखिलान् तनुम् ।
अदृश्यः स्यान्नृणामेष आश्चर्यं दृश्यतामिदम् ॥ २४ ॥

यन्त्रादिसाधनप्रकारः

षट्कोणे विलिखेद् बीजं साध्यनामान्वितं मनोः ।
हरितालनिशाचूर्णैरुन्मत्तरससंयुतैः ॥ २५ ॥

गरुत् पक्षान् ॥ १८ ॥ * ॥ १९–२४ ॥ यन्त्रमाह – **षट्कोण** इति ।

तेल तथा बहेड़ा एवं गृहधूम का होम करने से शत्रु का उच्चाटन होता है । मधुरत्रय मिश्रित दूर्वा, गुडूची एवं लाजा का जो व्यक्ति होम करता है उसके दर्शन मात्र से रोग ठीक हो जाते हैं । पर्वत के शिखर पर, घोर जङ्गल में, नदी के सङ्गम पर तथा शिवालय में ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक एक लाख बगलामुखी मन्त्र का जप करने से सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥ १५-२० ॥

एक वर्णा गाय के दूध में शर्करा एवं मधु मिलाकर ३०० की संख्या में मूल मन्त्राभिमन्त्रित कर उसे पीने से शत्रु के द्वारा पराभव नही होता है । सफेद पलाश की लकड़ी से बनी मनोहर पादुकाओं को आलता से रंग देवे । फिर इस मन्त्र से एक लाख बार अभिमन्त्रित करे । इस प्रकार की पादुका पहिन कर चलने से मनुष्य क्षण मात्र में सौ योजन की दूरी पार कर लेता है । मधु युक्त पारा, मैनसिल एवं ताल को पीस कर इस मन्त्र से एक लाख बार अभिमन्त्रित कर उसे अपने सर्वाङ्ग में लेप करे तो वह व्यक्ति मनुष्यों के बीच में रहकर भी उन्हें दिखाई नहीं देता, जिसे इच्छा हो वह ऐसा करके देख सकता है ॥ २१-२४ ॥

शेषाक्षरैः समावीतं धरागेहविराजितम् ।
तद्यन्त्रं स्थापितप्राणं पीतसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ २६ ॥
भ्राम्यत् कुलालचक्रस्थां गृहीत्वा मृत्तिकां तया ।
रचयेद् वृषभं रम्यं यन्त्रं तन्मध्यतः क्षिपेत् ॥ २७ ॥
हरितालेन संलिप्य वृषं प्रत्यहमर्चयेत् ।
स्तम्भयेद्विद्विषां वाचं गतिं कार्यपरम्पराम् ॥ २८ ॥
आदाय वामहस्तेन प्रेतभूमिस्थखर्परम् ।
अङ्गारेण चितास्थेन तत्र यन्त्रं समालिखेत् ॥ २६ ॥
मन्त्रितं निहितं भूमौ रिपूणां स्तम्भयेद् गतिम् ।
प्रेतवस्त्रे लिखेद्यन्त्रमङ्गारेणैव तत्पुनः ॥ ३० ॥

धत्तूररसाक्तहरिद्राचूर्णेन षट्कोणेऽमुकं स्तंभ्येति वर्णयुतं ह्रीमिति बीजं विलिख्य मन्त्रशेषार्णैः संवेष्ट्योपरि चतुरस्रेण वेष्टितं पीतसूत्रवीतं कृत्वा भ्रमत्कुम्भकार–चक्रस्थमृदारचितवृषोदरे प्रक्षिप्य हरितालेन संलिप्य वृषं प्रत्यहं पूजयेत् । स्तम्भनफलम् ॥ २५ ॥ * ॥ २६–३१ ॥

हरिताल एवं हल्दी के चूरे में धतूरे का रस मिलाकर उससे निर्मित षट्कोण में उसी से ह्रीं बीज लिखकर जिस शत्रु का स्तम्भन करना हो उसका द्वितीयान्त (अमुकं) नाम लिखकर पुनः 'स्तम्भय' लिखे । शेष मन्त्राक्षरों को भूपुर में लिखकर चारों ओर उसे भूपुर से घेर देवें । उसमें प्राण प्रतिष्ठा कर पीले धागे से उसे घेर देवें । पुनः धूमती हुई कुम्हार की चाक से मिट्टी लेकर सुन्दर बैल बनावे तथा उसके पेट में उस यन्त्र को रखकर, उस पर हरताल का लेप कर, प्रतिदिन उस बैल की पूजा करता रहे तो ऐसा करने से शत्रुओं की वाणी, गति और समस्त कार्य की परम्परा स्तम्भित हो जाती है ॥ २५-२८ ॥

बगलामुखीस्तम्भनयन्त्रम्
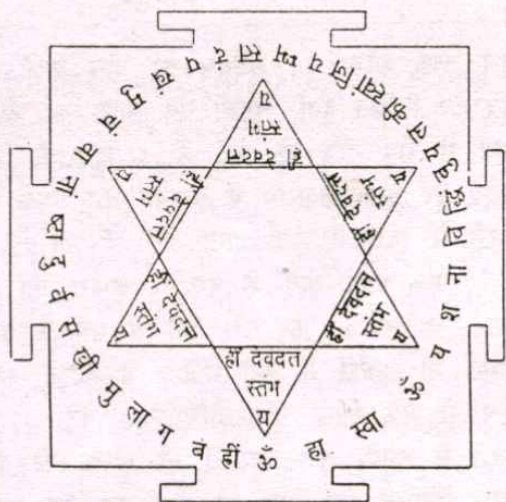
श्मशान स्थान स्थित किसी खपड़े को बायें हाथ में लेकर उस पर चिता के अंगार से बगलामुखी यन्त्र बनावे । पुनः बगलामुखी मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उसे शत्रु की जमीन में

मण्डूकवदने न्यस्येत् पीतवस्त्रेण वेष्टितम्।
पूजितं पीतपुष्पैस्तद् वाचं संस्तम्भयेद् द्विषाम्॥ ३१॥
यद्भूमौ भविता दिव्यं तत्र यन्त्रं समालिखेत्।
मार्जितं तद्वृषापत्रैर्दिव्यस्तम्भनकृद् भवेत्॥ ३२॥
इन्द्रवारुणिकामूलं सप्तशो मनुमन्त्रितम्।
क्षिप्तं जले दिव्यकृतां जलस्तम्भनकारकम्॥ ३३॥
किम्भूरिणा साधकेन मन्त्रः सम्यगुपासितः।
शत्रूणां गतिबुद्ध्यादेः स्तम्भनो नात्रसंशयः॥ ३४॥

स्वप्नवाराहीजनवशकरणो मन्त्रः

उच्यते स्वप्नवाराही जनतावशकारिणी।
वेदादिबीजं माया च हृद् दीर्घौ जलपावकौ॥ ३५॥
खं सदृक्सद्ययुग्मेधारे स्वप्नं सर्गिणौ च ठौ।
कृशानुवल्लभां तोयं मन्त्रः पञ्चदशाक्षरः[1]॥ ३६॥

वृषा आटरूषकः॥ ३२–३४॥ स्वप्नवाराहीमाह – **वेदादीति** । वेदादिबीजान् ॐ । माया ह्रीं । हृत् नमः । जलं वः । पावको रः । तौ दीघौ वारा । सदृक् खं हः हि । मेधा घः । सद्ययुक् ओयुता घो । रेस्वप्नं स्वरूपम् । सर्गिणौ ठौ । ठः ठः । कृशानुवल्लभाय स्वाहा॥ ३५–३७॥

गाड़ देवे तो उसकी गति स्तम्भित हो जाती है । कफन पर चिता के अङ्गार से यन्त्र निर्माण करे । फिर उस यन्त्र को मेढक के मुख में रखकर उसे पीले कपड़े से बाँध देवे । तदनन्तर पीले पुष्पों से पूजित करे, तो शत्रुवर्ग की वाणी स्तम्भित हो जाती है॥ २९-३१॥

जो भूमि दिव्य (उत्तम देवसम्बन्धी) हो, वहाँ इस यन्त्र को लिखें, फिर वृषापत्र (अडूसे) के पत्तों से उसे मार्जित करे तो वह देवता लोगों को भी स्तम्भित कर देता है॥ ३२॥

इन्द्र वारुणी नामक लता के मूल को सात बार इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करे और उसे किसी देवस्थान के जल में अथवा दिव्य नदी में डाल देवें तो उससे जल का स्तम्भन हो जाता है॥ ३३॥

विशेष क्या कहें साधक के द्वारा सम्यगुपासित होने पर यह मन्त्र शत्रुओं की गतिविधि एवं उनकी बुद्धि को स्तम्भित कर देता है इसमें संदेह नहीं॥ ३४॥

अब जनसमूहों को वश में करने वाली **स्वप्न वाराही का मन्त्र** कहते हैं -

वेदादि (ॐ), मायाबीज (ह्रीं), हृद् (नमः), फिर दीर्घ युक्त जल एवं

ईश्वरो जगती स्वप्नवाराही मुनिपूर्वकाः ।
तारो बीजं च ह्रल्लेखाशक्तिष्ठौ कीलकं मतम् ॥ ३७ ॥
द्विपञ्चनेत्रहस्ताक्षियुग्मार्णैरङ्गकं मनोः ।
पादलिङ्गकटी कण्ठगण्डाक्षिश्रुतिनासिके ।
विन्यस्य मन्त्रजान् वर्णांश्चिन्तयेत् परदेवताम् ॥ ३८ ॥

वर्णन्यासमाह – **पादेति** । लिङ्गे कण्ठे मूर्ध्नि एकैकः । अन्यत्र द्वौ द्वौ ॥ ३८ ॥

पावक (वारा), तदनन्तर सदृक् ख (हि), फिर सद्ययुक् मेधा (घो), फिर 'रे स्वप्नं', फिर विसर्ग सहित दो ठ (ठः ठः), इसके अन्त में कृशानुवल्लभा (स्वाहा) लगा देने से १५ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ३५-३६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं नमः वाराहि घोरे स्वप्नं ठः ठः स्वाहा' (१५) ॥ ३५-३६ ॥

इस मन्त्र के ईश्वर ऋषि हैं, जगती छन्द है, स्वप्नवाराही देवता हैं, प्रणव (ॐ) बीज है, ह्रल्लेखा (ह्रीं) शक्ति है तथा ठकार द्वय कीलक है ॥ ३७ ॥

विनियोग - ॐ अस्य श्री स्वप्न वाराही मन्त्रस्य ईश्वर ऋषि हैं जगती छन्द हैं स्वप्न वाराही देवता ॐ बीजं ह्रीं शक्ति ठः ठः कीलकं स्वाभीष्ट सिद्ध्यर्थ जपे विनियोग ॥ ३७ ॥

अब **स्वप्नवारहही का षडङ्गन्यास** कहते हैं - द्वि (२), पञ्च (५), नेत्र (२), हस्त (२), अक्षि (२), युग्म (२) अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । फिर पैर, लिङ्ग, कटि, कण्ठ, गाल, नेत्र, कान, नासिका, एवं शिर - इन १५ स्थानों में मन्त्र के प्रत्येक वर्णो का न्यास करना चाहिए, तदनन्तर महादेवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ३८ ॥

विमर्श - षडङ्गन्यास -

ॐ ह्रीं हृदयाय नमः, ॐ नमो वाराहि शिरसे स्वाहा,
ॐ घोरे शिखायै वषट्, ॐ स्वप्नं कवचाय हुं,
ॐ ठः ठः नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

अब **वर्णन्यास** की विधि कहते हैं -

ॐ नमः दक्षपादे, ह्रीं नमः वामपादे, नं नमः लिङ्गे,
मों नमः दक्षकटौ, वां नमः वामकटौ, रां नमः कण्ठे,
हिं नमः दक्षगण्डे, घों नमः वामगण्डे , रें नमः दक्षनेत्रे,
स्वं नमः वामनेत्रे, प्नं नमः दक्षकर्णे, ठः नमः वामकर्णे
ठः नमः दक्षनासायाम्, स्वां नमः वामनासायाम्,
हीं नमः मूर्ध्नि ॥ ३८ ॥

ध्यानजपपीउदेवतादिपूजाकथनम्

मेघश्यामरुचिं मनोहरकुचां नेत्रत्रयोद्भासितां
कोलास्यां शशिशेखरामचलयादंष्ट्रातले शोभिनीम् ।
बिभ्राणां स्वकराम्बुजैरसिलतां चर्मापि पाशं सृणिं
वाराहीमनुचिन्तयेद्धयवरारूढां शुभालंकृतिम् ॥ ३६ ॥
लक्षं जपेद् दशांशेन नीलपद्मैस्तिलैः शुभैः ।
जुहुयात् पूर्वसम्प्रोक्ते पीठे सम्पूजयेदिमाम् ॥ ४० ॥
त्रिकोणे तां समाराध्य षट्कोणेष्वङ्गदेवताः ।
षोडशारे यजेच्छक्तीर्वक्ष्यमाणास्तु षोडश ॥ ४१ ॥
उच्चाटनी तदीशी च शोषणी शोषणीश्वरी ।
मारणी मारणीशी च भीषणी भीषणीश्वरी ॥ ४२ ॥
त्रासनी त्रासनीशी च कम्पनी कम्पनीश्वरी ।
आज्ञाविवर्तिनीपश्चादाज्ञाविवर्तिनीश्वरी ॥ ४३ ॥
वस्तुजातेश्वरी चाथ सर्वसम्पादनीश्वरी ।
एताः पूज्याश्चतुर्थ्यन्ताः प्रणवाद्या नमोन्विताः ॥ ४४ ॥

ध्यानमाह – **मेघेति** । कोलास्यां वराहवदनाम् । दंष्ट्रातले वर्तमानयाऽचलया वसुधया शोभिताम् । असिलतां कुशौ दक्षयोः ॥ ३६ ॥ * ॥ ४०–४६ ॥

अब **वाराही देवी का ध्यान** कहते हैं -

काले मेघ के समान श्याम वर्ण वाली, मनोहर कुचों से युक्त, अपने तीन नेत्रों से प्रदीप्त, वाराही जैसे मुख वाली, अपने मस्तक पर चन्द्रकला धारण किये हुये, पृथ्वी को अपने दाँत से धारण करने के कारण शोभा युक्त तथा हाथों में तलवार, ढाल, पाश एवं अंकुश धारण किये हुये, घोड़े पर सवार, नाना अलङ्कारों से सुशोभित इस प्रकार के वाराही का ध्यान करना चाहिए ॥ ३६ ॥

उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए । अत्यन्त कल्याणकारी नीलपद्म मिश्रित तिलों से दशांश होम करना चाहिए तथा पूर्वोक्त पीठ पर इनका पूजन करना चाहिए ॥ ४० ॥

त्रिकोण में देवी की पूजा करे । फिर ६ कोणों में अङ्गपूजा करे और षोडशदलों में वक्ष्यमाण १६ शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । १. उच्चाटनी, २. उच्चाटनीश्वरी, ३. शोषणी, ४. शोषणीश्वरी, ५. मारणी, ६. मारणीश्वरी, ७. भीषणी, ८. भीषणीश्वरी, ६. त्रासनी, १०. त्रासनीश्वरी, ११. कम्पनी, १२. कम्पनीश्वरी, १३. आज्ञाविवर्त्तिनी, १४. आज्ञाविवर्त्तिनीश्वरी, १५. वस्तुजातेश्वरी एवं १६. सर्वसंपादनीश्वरी

यन्त्रादिप्रयोगसाधनकथनम्

यजेदष्टदले पद्मे मातृभैरवसंयुताः ।
लोकपालान्दशदले द्वितीये हेतिसंयुतान् ॥ ४५॥

इन १६ शक्तियों को चतुर्थ्यन्त विभक्ति लगाकर अन्त में 'नमः' तथा आदि में प्रणव लगाकर पूजा करना चाहिए ॥ ४१-४४ ॥

स्वप्नवाराहीपूजनयन्त्रम्

अष्टदल में भैरव सहित, ८ मातृकाओं की, दश दल में इन्द्रादि दश दिक्पालों की, तथा द्वितीय दशदल में उनके आयुधों की पूजा करनी चाहिए ॥ ४५ ॥

विमर्श - पूजा प्रयोग - प्रथम १०.३६ में बताये गये स्वरूप के अनुसार देवी का ध्यान करे । मानसोपचार से उनका पूजन करे । इसके बाद शंख का अर्घ्यपात्र स्थापित कर ६. ६ में बताई गई रीति से पीठदेवता और पीठशक्तियों का पूजन कर 'ॐ ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनायै नमः' मन्त्र से देवी को आसन रखे । पुनः मूलमन्त्र से देवी की मूर्त्ति की कल्पना कर धूपदीपादि समर्पित कर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । तदनन्तर उनकी आज्ञा ले यन्त्र पर आवरण पूजा प्रारम्भ करे ।
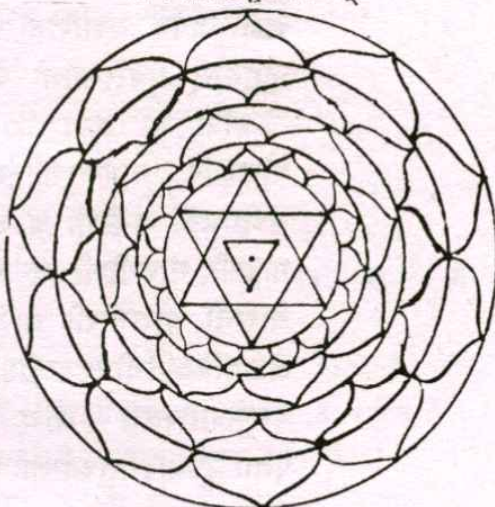
आवरण पूजा विधि - सर्वप्रथम त्रिकोण में मूलमन्त्र से देवी का पूजन करे। फिर षट्कोण में १०. ३६ में बताई गई रीति से षडङ्गन्यास करे । इसके बाद षोडशदलों में १६ शक्तियों की पूर्वादि दिशाओं के क्रम से इस प्रकार पूजा करे ।

ॐ उच्चाटन्यै नमः, ॐ उच्चाटनीश्वर्यै नमः, ॐ शोषिण्यै नमः,
ॐ शोषणीश्वर्यै नमः, ॐ मारण्यै नमः, ॐ मारणीश्वर्यै नमः,
ॐ भीषण्यै नमः, ॐ भीषणीश्वर्यै नमः, ॐ त्रासिन्यै नमः,
ॐ त्रासनीश्वर्यै नमः, ॐ कम्पिन्यै नमः, ॐ कम्पिनीश्वर्यै नमः,
ॐ आज्ञाविवर्त्तिन्यै नमः, ॐ आज्ञाविवर्त्तिनीश्वर्यै नमः,
ॐ वस्तुजातेश्वर्यै नमः, ॐ सर्वसम्पादनीश्वर्यै नमः,

फिर अष्टदलों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से असिताङ्गादि ८ भैरवों के साथ ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं की पूजा करनी चाहिए ।

ॐ असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः, ॐ रुरुमाहेश्वरीभ्यां नमः,
ॐ चण्डकौमारीभ्यां नमः, ॐ क्रोधवैष्णवीभ्यां नमः,
ॐ उन्मत्तवाराहीभ्यां नमः, ॐ कपालीइन्द्राणीभ्यां नमः,
ॐ भीषणचामुण्डाभ्यां नमः, ॐ संहारमहालक्ष्मीभ्यां नमः ।

एवं सिद्धं मनुं मन्त्री काम्यकर्मणि योजयेत् ।
तर्पयेन्नारिकेलोत्थैर्जलैस्तीर्थोद्भवैरपि ॥ ४६ ॥
मानयेत्तरुणीवर्गान् सर्वकामार्थसिद्धये ।
कृष्णपक्षेष्टमीघस्रे भूताहे वा कृतव्रतः ॥ ४७ ॥
चतुष्पथान्नदीकूलद्वयात् कौलालवेश्मनः ।
मृदमानीय धत्तूररससंयुक्तया तया ॥ ४८ ॥
रचयेत्पुत्तलीं रम्यां साध्यासुस्थापनान्विताम् ।
ततः प्रेताम्बरे यन्त्रं नृकाकाजासृजा लिखेत् ॥ ४९ ॥
चिताङ्गारयुजायोनिं षट्कोणं भूपुरान्वितम् ।
तदन्तमन्त्रमालिख्य वेष्टयेन्मनुनामुना ॥ ५० ॥
साध्यमुच्चाटययुगं शोषयद्वितयं ततः ।
मारयद्वितयं चाथ भीषयद्वितयं ततः ॥ ५१ ॥

कृष्ण पक्ष इत्यारभ्य वशगा ध्रुवमित्यन्त एको वश्यार्थं प्रयोगः ॥ ४७–४८ ॥ नृकाकाजानां नरवायसमेषाणामसृजा रुधिरेण ॥ ४९–५० ॥ वेष्टनमन्त्रमाह – **साध्यमिति** ॥ ५१ ॥

तदनन्तर दश दलों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से इन्द्रादि दश दिक्पालों को तथा द्वितीय दश दलों में उनके वज्रादि आयुधों की पूर्ववत् पूजा करे (द्र० १०. १२) इस प्रकार आवरण पूजा कर धूपदीपादि समस्त उपचारों से देवी का पूजन कर पुरश्चरण विधि से जप करे । पुरश्चरण हो जाने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है । तदनन्तर काम्य प्रयोग करना चाहिए ॥ ४१-४५ ॥

मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक अपनी सभी कामनाओं एवं मनोरथ की सफलता के लिए नारियल के जल अथवा तीर्थोदक से इस मन्त्र द्वारा देवी का तर्पण करे और तरुणीजनों का सम्मान करे ॥ ४६-४७ ॥

अब इस मन्त्र का **काम्य प्रयोग** कहते हैं - साधक कृष्णपक्ष की अष्टमी अथवा चतुर्दशी को व्रत रहकर चौराहे से नदी के दोनों किनारों से और कुम्भकार के घर से मिट्टी लावें । उसमें धतूरे का रस मिलाकर उसी से साध्य (जिसे वश में करना हो उस) की पुतली बनावें और उसमें प्राणप्रतिष्ठा करे । फिर कफन पर नर काक ओर मेष के खून से एवं चिता के अङ्गार से योनि (त्रिकोण), फिर षट्कोण तदनन्तर भूपुर युक्त मन्त्र बनावें । उसके बीच में स्वप्नवाराही का मन्त्र लिखकर उस भूपुर युक्त यन्त्र को ७७ अक्षरों वाले इस मन्त्र से वेष्टित करे ॥ ४७-५० ॥

'साध्य (नाम), उच्चाटय उच्चाटय, शोषय शोषय, मारय मारय, भीषय भीषय, नाशय नाशय के बाद, फिर 'स्वाहा' और 'कम्पय कम्पय' फिर 'ममाज्ञावर्त्तिनं' के बाद

नाशयद्वितयं पश्चाच्छिरःकम्पय युग्मकम् ।
ममाज्ञावर्तिनं पश्चात् कुरु सर्वाभिमार्णकाः ॥ ५२ ॥
तवस्तुजातं शब्दान्ते सम्पादययुगं ततः ।
सर्वं कुरु युगं स्वाहा मुनिसप्ताक्षरो मनुः ॥ ५३ ॥
अनेन वेष्टितं यन्त्रं कृतं देवीप्रतिष्ठितम् ।
पुत्तल्या हृदि विन्यस्य यजेत्तामुक्तमार्गतः ॥ ५४ ॥
तदग्रे प्रजपेन् मन्त्रं रात्रावेकान्तमाश्रितः ।
सहस्रं साष्टकं भूयः पूजयेत्तां समाहितः ॥ ५५ ॥
एवं कृते नरा नार्यो राजानो राजवल्लभाः ।
सिंहागजामृगाः क्रूरा भवेयुर्वशगा ध्रुवम् ॥ ५५ ॥
चित्ते ध्यात्वा निजं कार्यं शयीत विजने व्रती ।
यथा भावि तथा देवी स्वप्ने वदति मन्त्रिणे ॥ ५६ ॥

शिरः स्वाहा । स्पष्टमन्यत् ॥ ५२ ॥ मुनि सप्ताक्षरः सप्तसप्तत्यर्णः ॥ ५३ ॥ उक्तमार्गतः पूर्वोक्तविधिना ॥ ५४ ॥ * ॥ ५५–५७ ॥

'कुरु', फिर 'सर्वाभिम' तथा 'तवस्तु जातं', फिर 'संपादय संपादय' के बाद 'सर्वं कुरु कुरु', तथा अन्त में 'स्वाहा' लगाने से ७७ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ५१-५३॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - 'साध्य (नाम देवदत्त), उच्चाटय उच्चाट्य शोषय शोषय मारय मारय भीषय भीषय नाशय नाशय स्वाहा कम्पय कम्पय ममाज्ञावर्त्तिनं कुरु सर्वाभिमतवस्तु जातं संपादय संपादय सर्वं कुरु कुरु स्वाहा' (७७) ॥ ५१-५३ ॥

स्वप्नवाराहीवशीकरणयन्त्रम्

इस मन्त्र से वेष्टित यन्त्र में देवी की प्राण प्रतिष्ठा कर यन्त्र को पुत्तली के हृदय में रखकर, पूर्वोक्त विधि से आवरण पूजा करे । तदनन्तर रात्रि के समय किसी एकान्तस्थान में उसे अपने आगे रखकर उक्त मन्त्र का एक हजार आठ जप करे। जप के पश्चात् एकाग्रचित्त हो पुनः पुत्तली का पूजन करे तो नर एवं नारियाँ, राजा, राजा के प्रियजन, सिंह, हाथी मृगादि क्रूर जन्तु भी निश्चित रूप से उसके वश में हो जाते हैं ॥ ५४-५६ ॥
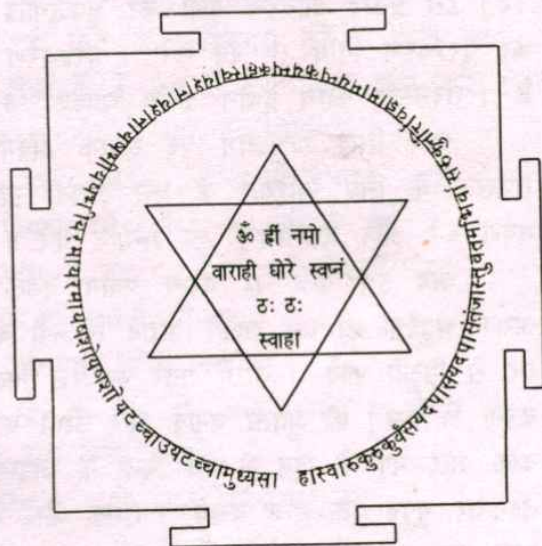
सिद्धिप्रदमहायन्त्रकथनम्

अथैतस्या महायन्त्रं प्रवक्ष्ये सिद्धिदं नृणाम् ।
कृत्वा त्रिकोणं षट्कोणं षोडशारं वसुच्छदम् ॥ ५८ ॥
दशारद्वितयं पञ्चदशास्रं भूपुरद्वयम् ।
त्रिकोणे कामबीजस्थं वाग्भवं विलिखेत् पुनः ॥ ५६ ॥
षट्सु कोणेषु वाग्बीजं पाशं मायां सृणिश्रियम् ।
दीर्घं च कवचं पश्चाद्विलिखेत् षोडशच्छदे ॥ ६० ॥
शक्तीः षोडशपूर्वोक्ता ब्रह्मयाद्या अष्टपत्रके ।
भैरवैः संयुतान्न्यस्येद् दशारे दिक्पतीन्क्रमात् ॥ ६१ ॥

दिक्पालानां बीजानि

स्वस्वबीजादिकान् बीजसमूहः कथ्यतेऽधुना ।
मांसं रक्तं विषं मेरुर्जलं वायुर्भृगुर्वियत् ॥ ६२ ॥
एतानि शशियुक्तानि पाशो मायान्तिमा मता ।
वज्राद्यान्विलिखेत् सम्यक्पंक्तिपत्रे द्वितीयके ॥ ६३ ॥

यन्त्रमाह – **कृत्वेति** ॥ ५८ ॥ काम क्लीं । वाग्भवम् ऐं ॥ ५६ ॥ पाशम् आं । मायां ह्रीं । सृणिं क्रों । श्रियं श्रीं दीर्घकवचं हूं ॥ ६० ॥ पूर्वोक्ता उच्चाटनाद्याः ॥ ६१ ॥ दिक्पालबीजान्याह – **मांसमिति** । मांसं लः । रक्तं रः । विषं मः । मेरुः क्षः । जलं वः । वायुर्यः भृगुः सः । वियत् हः ॥ ६२ ॥ एतानि शशियुक्तानि बिन्दुयुतानि । पाशः आं । अन्तिमा चरमा माया ह्रीं ॥ ६३ ॥

चित्त में अपने काम का ध्यान कर साधक व्रत रहकर किसी एकान्त निर्जन स्थान में सो रहे तो देवी स्वप्न में साधक के भावी कार्य के विषय में बता देती हैं ॥ ५७ ॥

अब मनुष्यों को सिद्धि देने वाले **स्वप्नवाराही का एक महायन्त्र** कहता हूँ -

त्रिकोण, षट्कोण, षोडशदल, अष्टदल, फिर दो दशदल, फिर पञ्चदशदल बनाकर, उसके बाद दो भूपुर बनाना चाहिए । त्रिकोण के प्रत्येक कोण में काम बीजयुक्त वाग्बीज लिखें । षट्कोणों में क्रमशः वाग्बीज (ऐं), पाश (आं), माया (ह्रीं), सृणि (क्रों), श्री (श्रीं), एवं दीर्घकवच (हूँ) लिखना चाहिए । षोडशदलों में पूर्वोक्त (१०. ४१-४३) उच्चाटनी आदि शक्तियों को तथा अष्टदल में अष्टभैरवों सहित अष्टमातृकाओं को (द्र० १०. ८) दशदल में यथाक्रम अपने अपने बीजों के साथ दिक्पालों को लिखना चाहिए ॥ ५८-६१ ॥

अब **दश दिक्पालों के बीज** समूहों को कहते हैं - १. बिन्दु युक्त मांस (लं), २. रक्त (रं), ३. विष (मं), ४. मेरु (क्षं), ५. जल (वं), ६. वायु (यं), ७. भृगु (सं), ८. वियत् (हं), ९. पाश (आं) तथा १०. माया (ह्रीं) ॥ ६२-६३ ॥

तिथिपत्रे मूलवर्णान्गायत्र्यर्णैः प्रवेष्टयेत् ।
वाय्वग्नी विलिखेद् भूमिं मन्दिरद्वितयास्रिषु ॥ ६४ ॥
भूर्जादौ यन्त्रमालिख्य जपं सम्पातसाधितम् ।
बाह्वादौ विधृतं दद्यान्नृणां कीर्तिं धनं सुखम् ॥ ६५ ॥
बहुना किमिहोक्तेन वाराहीष्टं प्रयच्छति ।

वार्तालीमन्त्रः

वाग्बीजपुटिताभूमिर्नमोन्ते भगवत्यथ ॥ ६६ ॥
वार्तालिवारा गगनं सदृग्वाराहिवा पदम् ।
राहमुखि ततो बीजत्रयं पूर्वोदितं वदेत् ॥ ६७ ॥
अन्धेअन्धिनि हृदयं रुन्धेरुन्धिनि हृत्तथा ।
जम्भेजम्भिनि हृत् पश्चान्मोहेमोहिनि हृत् पुनः ॥ ६८ ॥

तिथिपत्रे पञ्चदशदले । गायत्र्यर्णैर्वैदिकगायत्रींवर्णैः । **भूमिमिति** । चतुरस्रद्वयकोणेषु वाय्वग्नी यरेफौ लिखेत् ॥ ६४–६५ ॥ वार्तालीमाह – **वागिति** । भूमिः ग्लौं । सा वाग्बीजेन पुटिता तन्मध्यस्थ ऐं ग्लौं ऐमिति ॥ ६६ ॥ सदृक् गगनाह पूर्वोदितं बीजत्त्रयम् । ऐं ग्लौं ऐमिति ॥ ६७ ॥ हृदयं नमः । हृन्नमः ॥ ६८ ॥

फिर द्वितीय दल में विधिवत् वज्रादि आयुधों को लिखना चाहिए । तदनन्तर पञ्चदशदल में मूलमन्त्र के वर्णों को गायत्री वर्णों के साथ, दोनों भूपुर के कोणों में वायु (यं) और अग्नि (रं) लिखना चाहिए। यह यन्त्र होमावशिष्ट संस्रव घृत से भोज-पत्रादि पर लिखकर मूलमन्त्र का जप कर भुजा आदि में धारण करने से मनुष्यों को कीर्त्ति, धन एवं सुख प्राप्त होता हैं । विशेष क्या कहें इस प्रकार से उपासना

स्वप्नवाराहीधारणयन्त्रम्
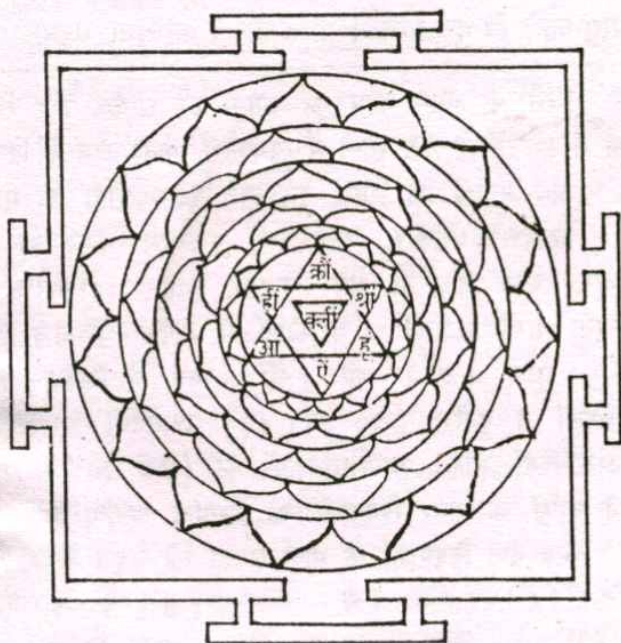
स्तम्भेस्तम्भिनि हार्दान्ते पुनर्बीजत्रयं वदेत्।
सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्पदम्॥ ६६॥
चित्तचक्षुर्मुखगतिजिह्वास्तम्भं कुरुद्वयम्।
शीघ्रं वश्यं कुरुद्वन्द्वं त्रिबीजीठचतुष्टयम्॥ ७०॥
सर्गाढ्यं वर्मफट् स्वाहा वेदरुद्राक्षरो मनुः।
प्रणवादिर्मुनिश्छन्दः शिवोऽतिजगती तथा॥ ७१॥
वार्तालीदेवता प्रोक्ता वार्तालीहृदयं स्मृतम्।
वाराहीति शिरः प्रोक्तं शिखावाराहमुख्यपि॥ ७२॥
अन्धेअन्धिनि वर्मोक्तं रुन्धेरुन्धिनि नेत्रकम्।
जम्भेजम्भिनि चास्त्रं स्यात्ततो ध्यायेत्तु देवताम्॥ ७३॥

हार्द नमः । बीजत्रयं ऐं ग्लौं ऐमिति ॥ ६६ ॥ त्रिबीजी ऐं ग्लौं ऐमिति । सर्गाढ्यं ठचतुष्टयं ठः ठः ठः ठः॥ ७०॥ वेदरुद्राक्षरः चतुर्दशोत्तरशतार्णः॥ ७१–७३॥

करने पर वाराही देवी साधक को मनोवाञ्छित फल देती हैं ॥ ६३-६६॥

अब **वार्त्ताली मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - वाग्बीज पुटित भूमि (ऐं ग्लौं ऐं), फिर 'नमो' के बाद, 'भगवति वार्त्तालिवारा', उसके बाद सदृग् गगन (हि), फिर 'वाराहि वाराहमुखि', फिर पूर्वोक्त बीजत्रय (ऐं ग्लौ ऐं), फिर 'अन्धे अन्धिनि' और हृत् (नमः), उसके बाद 'रुन्धे रुन्धिनि' एवं हृत् (नमः), फिर 'जम्भे जम्भिनि' हृत (नमः), फिर 'मोहे मोहिनि', हृत् (नमः), फिर 'स्तम्भे स्तम्भिनि' एवं 'हृत् (नमः) फिर बीज त्रय (ऐं ग्लौं ऐं) तदनन्तर 'सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्तचक्षुर्मुख-गतिजिह्वां स्तम्भं' फिर कुरु द्वय (कुरु कुरु), फिर 'शीघ्र वश्यं', कुरु द्वय (कुरु कुरु), फिर पूर्वोक्त त्रिबीज (ऐं ग्लौं ऐं), फिर 'सर्गाढ्य ठ चतुष्टय (ठः ठः ठः ठः), वर्म (हुं), एवं अन्त में फट् (स्वाहा), तथा प्रारम्भ में ॐ लगाने से ११४ अक्षरों का वार्त्ताली मन्त्र निष्पन्न होता है । इस मन्त्र के शिव ऋषि हैं, अतिजगती छन्द है तथा वार्त्ताली देवता कही गई हैं ॥ ६६-७२ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ऐं ग्लौं ऐं नमो भगवति वार्त्तालि वाराहि वाराहि वाराहिमुखि, ऐं ग्लौं ऐं अन्धे अन्धिनि नमो रुन्धे रुन्धिनि नमो जम्भे जम्भिनि नमः, मोहे मोहिनि नमः, स्तम्भे स्तम्भिनि नमः, ऐं ग्लौं ऐं सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्तचक्षुर्मुखगतिजिह्वां स्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रवश्यं कुरु कुरु ऐं ग्लौं ऐं ठः ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा ॥ ६६-७२ ॥

वार्त्ताली से हृदय, वाराहि से शिर, वाराहमुखि से शिखा, अन्धे अन्धिनि से कवच, रुन्धे रुन्धिनि से नेत्र तथा जम्भे जम्भिनि से अस्त्र - इस प्रकार षडङ्गन्यास कहा गया है । इसके बाद वार्ताली देवता का ध्यान करना चाहिए ॥ ७२-७३ ॥

विमर्श - विनियोग - ॐ अस्य श्रीवार्त्तालीमन्त्रस्य शिवऋषिरतिजगतीछन्दः

ध्यानजपपीठदेवतापूजादिकथनम्

रक्ताम्भोरुहकर्णिकोपरिगते शावासने संस्थितां
मुण्डस्रक्परिराजमानहृदयां नीलाश्मसद्रोचिषम् ।
हस्ताब्जैर्मुसलं हलाभयवरान्सम्बिभ्रतीं सत्कुचां
वार्तालीमरुणाम्बरां त्रिनयनां वन्दे वराहाननाम् ॥ ७४ ॥
तत्सप्तदशसाहस्रं प्रजपेत्तद्दशांशतः ।
तिलैर्बन्धूककुसुमैर्जुहुयान्मधुरान्वितैः ॥ ७५ ॥
पूजायन्त्रमथो वक्ष्ये जपादिनवशक्तिकम् ।
स्वर्णे रूप्ये तथा ताम्रे भूर्जपत्रेऽथ दारुणि ॥ ७६ ॥
लिखेद् गोरोचनारात्रिचन्दनागुरुकुंकुमैः ।
योनिपञ्चास्रषट्कोणाष्टपत्रशतपत्रकम् ॥ ७७ ॥
सहस्रदलभूबिम्बसंवीतद्वारसंयुतम् ।
कैलासाचलमध्यस्थं पीठमेतद्विचिन्तयेत् ॥ ७८ ॥

ध्यानमाह – **रक्तेति** । मुसलवरौ दक्षयोः ॥ ७४ ॥ * ॥ ७५–७६ ॥ रात्रिर्हरिद्रा । पूजायन्त्रमाह – **योनीति** । योनिस्त्रिकोणम् ॥ ७७ ॥ भूबिम्बं चतुरस्रम् ॥ ७८ ॥

वार्त्तालीदेवता ममाखिलकार्यसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ ७२-७३ ॥

अब **वार्त्ताली का ध्यान** कहते हैं -

लाल कमल की कर्णिका पर स्थित शवासन पर विराजमान, हृदय में मुण्डमाला धारण किये हुये, नीलमणि के समान कान्तिमती, अपने करकमलों में मुशल, हल, अभय एवं वरदमुद्रा धारण किये हुए, सुन्दर स्तनों से युक्त, त्रिनेत्रा, लालवणं का वस्त्र धारण किये हुये, वाराहमुखी भगवती वार्त्ताली की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ७४ ॥

वार्तालीपूजनयन्त्रम्

उक्त मन्त्र का सत्रह हजार जप करना चाहिए । मधुरत्रय (मधु, शर्करा और घृत) से मिश्रित तिल एवं बन्धूक पुष्पों से उसका दशांश होम करना चाहिए ॥ ७५ ॥

अब **वार्ताली पूजा यन्त्र** कहते हैं - सुवर्ण, चाँदी, ताँबा भोजपत्र अथवा लकड़ी पर गोरोचन, हल्दी, लालचन्दन, अगुरु एवं कुंकुम से योनि (त्रिकोण),
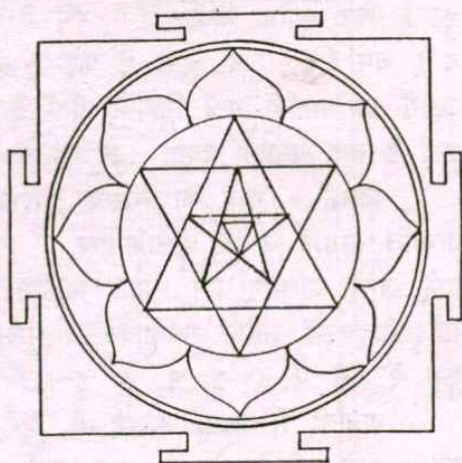
तत्रावाह्य यजेद् देवीमुपचारैर्मनोहरैः ।
त्रिकोणमध्ये देवेशीं यदग्न्यादिषु चाङ्गकम् ॥ ७६ ॥
वार्ताली चापि वाराही पूज्या वाराह मुख्यपि ।
त्रिकोणेष्वथ पञ्चास्रेष्वन्धिनी रुन्धिनी तथा ॥ ८० ॥
जम्भिनीमोहिनी चापि स्तम्भिनीज्या तु पञ्चमी ।
षट्कोणेषु पुनः पूज्या डाकिनी राकिनी तथा ॥ ८१ ॥
लाकिनी काकिनी चापि शाकिनी हाकिनी पुनः ।
षट्कोणपार्श्वयोः पूज्यं स्तम्भिनीक्रोधिनीद्वयम् ॥ ८२ ॥
मुसलेष्टवरौ त्वाद्या कपालहलभृत्परा ।
षट्कोणाग्रे यजेच्चण्डोच्चण्डं तस्याः सुतोत्तमम् ॥ ८३ ॥
शूलं नागं च डमरुं कपालं दधतं करैः ।
इन्द्रनीलनिभं नग्नं जटाभारविराजितम् ॥ ८४ ॥

तदग्न्यादिषु तस्यारेव्या अग्न्यादिषु अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशानाग्निदिशासु । अङ्गकं षडङ्गानि । यजेदिति पूर्वेणान्वयः ॥ ७६ ॥ * ॥ ८०–८२ ॥ स्तम्भिनीध्याने इष्टोवरो दक्षे मुसलं वामे । परा क्रोधिनी । कपालहलभृत् कपालं दक्षे । देवीसुताय चण्डोच्चण्डाय नम इति सुत पूजा ॥ ८३ ॥ सुतध्यानमाह – **शूलमिति** । डमरुकपाले दक्षयोः । शूलनागौ वामयोः ॥ ८४ ॥

पञ्चकोण, षट्कोण, अष्टदल, शतदल सहस्रदल तथा चारद्वारों वाले भूपुर से युक्त 'जपादि-नवशक्तिक-यन्त्र' का निर्माण करना चाहिए ॥ ७६-७८ ॥

कैलाशपर्वत के मध्य में स्थित पीठ का ध्यान करना चाहिए तथा उक्त पीठ पर देवी का मनोहर उपचारों से पूजन करना चाहिए ॥ ७८-७६ ॥

अब **आवरण पूजा** कहते हैं – **त्रिकोण के** मध्य बिन्दु में देवेशी की पूजा, ईशान पूर्व के मध्य में कर उनके अग्न्यादि कोणों में अङ्गपूजा करनी चाहिए । त्रिकोण के तीनों आग्नेय, नैर्ऋत्य, नैऋत्य-पश्चिम के मध्य वायव्य-ईशान कोणों में क्रमशः वार्त्ताली, वाराही एवं वाराहमुखी का पूजन करना चाहिए ॥ ७६-८० ॥

इसके बाद **पञ्चकोणों में** १. अन्धिनी, २. रुन्धिनी, ३. जम्भिनी, ४. मोहिनी एवं ५. स्तम्भिनी का, फिर **षट्कोण में** १. डाकिनी, २. राकिनी, ३. लाकिनी, ४. काकिनी ५. शाकिनी एवं ६. हाकिनी का, फिर षट्कोण के दोनों ओर स्तम्भिनी एवं क्रोधिनी का पूजन करना चाहिए ॥ ८०-८२ ॥

स्तम्भिनी के दोनों हाथों में क्रमशः मुशल एवं वर है तथा क्रोधिनी के दोनों हाथों में कपाल एवं हल हैं, षट्कोण के अग्रभाग में देवी के उत्तम पुत्र, चण्ड और उच्चण्ड का पूजन करना चाहिए, जिनके हाथों में शूल, नाग, डमरु एवं कपाल हैं,

अष्टपत्रेषु वार्तालीमुखं देव्यष्टकं यजेत्।
शतपत्रेषु सम्पूज्या रुद्रार्का वसवोऽश्विनौ ॥ ८५॥
त्रिरेकैकोन्त्यपत्रे तु जम्भिनीस्तम्भिनीयुता।
शतकोणाग्रतः पूज्यः सिंहोमहिषसंयुतः ॥ ८६॥

वाराहीमन्त्रकथनम्

सहस्रपत्रे वाराहीं पूजयेत्तु सहस्रशः।
अंकुशो ङेन्त वाराही नमोन्तस्तन्मनुः स्मृतः ॥ ८७॥
भूपुरद्वारदेशे तु बटुकं क्षेत्रपालकम्।
योगिनीं गणनाथं च तत्तन्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥ ८८॥
फान्तः सबिन्दुर्बटुको ङेन्तो हृत् सप्तवर्णकः।
मेरुः शशियुतः क्षेत्रपालाय नमसान्वितः ॥ ८९॥

वार्तालीमुखं वार्ताल्यादि । देव्यष्टकमनन्तरोक्तं वार्ताली वाराही वाराहमुख्यन्धिनीरुन्धिनीजम्भिनी मोहिनी स्तम्भिनीसंज्ञकम् । रुद्राः एकादश वीरभद्रादयः । अर्काः द्वादशः धात्रादयः । वसवोऽष्टौ धरादयः । अश्विनौ नासत्यदस्रौ ॥ ८५॥ एकैकःपत्रत्रिके पूज्यः । एवं नवनवतिः । चरमपत्रे तु जम्भिनीस्तम्भिनीभ्यां नम इति ॥ ८६ ॥ वाराहीमन्त्रमाह – **अंकुश** इति । क्रों वाराह्यै नमः इति मन्त्रेण सहस्रवारं वाराहीमेव पूजयेत् ॥ ८७ ॥ * ॥ ८८ ॥ बटुकमन्त्रमाह – **फान्त** इति । फान्तो बः । बं बटुकाय नम इति । क्षेत्रपालमन्त्रमाह – **मेरुरिति** । मेरुः क्षः । क्षं क्षेत्रपालाय नमः इति ॥ ८९ ॥

जिनके शरीर की आभा नीलमणि जैसी है ये विवस्त्र तथा जटामण्डित हैं, इस प्रकार के चण्डोच्चण्ड का ध्यान कर उनका पूजन करना चाहिए ॥ ८३-८४ ॥

अष्टदल में वार्त्ताली आदि (वार्त्ताली, वाराही, वाराहमुखी, अन्धिनी, रुन्धिनी, जम्भिनी, मोहिनी एवं स्तम्भिनी) ८ देवियों का पूजन करना चाहिए । पुनः शतदल में वीरभद्रादि एकादश एवं धात्रादि द्वादश, वसु अष्ट, सत्य एवं दस्र इन ३३ देवताओं का तीन-तीन पत्रों पर एक-एक देवता के क्रम से, इस प्रकार ९९ देवों का पूजन करे । शेष अन्तिम एक पत्र पर जम्भिनी एवं स्तम्भिनी का एक साथ पूजन करना चाहिए । शतकोण के अग्रभाग में महिष युक्त सिंह का पूजन करना चाहिए ॥ ८५-८६ ॥

सहस्रदल में वाराहीमन्त्र से एक हजार बार वाराही देवी का पूजन करना चाहिए । अंकुश (क्रों), चतुर्थ्यन्त वाराही (वाराह्यै) एवं अन्त में 'नमः' लगाने पर 'क्रों वाराह्यै नमः' ऐसा वाराही मन्त्र पूजन के लिए बतलाया गया है ॥ ८७॥

भूपुर के चारों द्वारों पर बटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी एवं गणपति का उनके मन्त्रों से पूजन करना चाहिए ॥ ८८ ॥

योगिनीगणेशादीनां मन्त्राः

अष्टार्णः शेषयुग्वायुः सचन्द्रो योगिनीपदम्।
भ्यो नमोन्तः सप्तवर्णः खान्तश्चन्द्रान्वितो गण ॥ ६० ॥
पतयेह्वच्चाष्टवर्णाः प्रोक्तास्ते मनवः क्रमात्।
दिक्पालानायुधैर्युक्तान्दिक्षु सम्पूजयेत्ततः ॥ ६१ ॥

योगिनीमन्त्रमाह – **अष्टार्ण** इति । वायुर्यः शेषयुक् आयुतः सचेन्द्रो बिन्दुयुतश्च यां योगिनीभ्यो नम इति । गणेशमन्त्रमाह – **खान्त** इति । खान्तो गः । गं गणपतये नम इति ॥ ६०–६१ ॥ *॥ ६२ ॥

---

१. सबिन्दु फान्त (बं), फिर बटुक का चतुर्थ्यन्त 'बटुकाय', फिर 'नमः', इस प्रकार 'बं बटुकाय नमः' यह ७ अक्षरों का बटुक मन्त्र बनता है ॥ ८६ ॥

२. शशि सहित मेरु (क्षं), फिर 'क्षेत्रपालाय नमः' इन आठ अक्षरों का क्षेत्रपाल पूजन मन्त्र बनता है ॥ ८६-६० ॥

३. सचन्द्र शेषयुक् वायु (यां), फिर 'योगिनीभ्यो नमः' इन ७ अक्षरों का योगिनी पूजन मन्त्र कहा गया है ॥ ६० ॥

४. चन्द्रान्वित खान्त (गं), फिर 'गणपतये' फिर हृद् (नमः), इस प्रकार 'गं गणपतये नमः' - कुल ८ अक्षरों का गणपति मन्त्र उनकी पूजा में प्रयुक्त होता है ॥ ६०-६१ ॥

इसके बाद आयुध युक्त दिक्पालों का अपनी अपनी दिशाओं में पूजन करना चाहिए ॥ ६१ ॥

विमर्श - आवरण पूजा - सर्वप्रथम त्रिकोण के मध्य में मूलमन्त्र से वार्त्ताली का पूजन कर आग्नेय, नैर्ऋत्य, पश्चिम नैर्ऋत्य के मध्य, वायव्य, ईशान तथा पूर्वेशान के मध्य इन छः कोणों में क्रमशः षडङ्गन्यास कर पूजन करे । यथा -

वार्त्ताली हृदयाय नमः, वाराही शिरसे स्वाहा,
वाराहमुखी शिखायै वषट्, अन्धेअन्धिनि कवचाय हुम्,
रुन्धे रुन्धिनि नेत्रत्रयाय वौषट्, जम्भे जम्भिनि अस्त्राय फट् ।

इसके बाद **त्रिकोण** के एक-एक कोणों में क्रमशः -

ॐ वार्त्ताल्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ वाराहमुख्यै नमः ।

तत्पश्चात् **पञ्चकोणों** में अग्नि आदि का उनके नाम मन्त्र से क्रमशः -

ॐ अन्धिन्यै नमः, ॐ रुन्धिन्यै नमः, ॐ जम्भिन्यै नमः,
ॐ मोहिन्यै नमः, ॐ स्ताम्भिन्यै नमः ।

फिर **षट्कोण** में डाकिनी आदि का नाम मन्त्र से क्रमशः -

ॐ डाकिन्यै नमः, ॐ शाकिन्यै नमः, ॐ लाकिन्यै नमः,
ॐ काकिन्यै नमः, ॐ राकिन्यै नमः, ॐ हाकिन्यै नमः ।

पूजान्ते बटुकादिभ्यो बलिमन्त्रैर्बलिं हरेत्।
बलिदानोचिता मन्त्राः कीर्त्यन्तेऽखिलसिद्धिदाः ॥ ६२ ॥

बटुकस्य बलिमन्त्रः

एह्येहीतिपदं प्रोच्य देवी पुत्रेति कीर्तयेत्।
बटुकान्ते नाथकपिलजटाभारभासुरः ॥ ६३ ॥
त्रिनेत्रज्वालाशब्दान्ते मुखसर्वजलं सदृक्।
घ्नान्नाशययुगं सर्वोपचारसहितं बलिम् ॥ ६४ ॥

बटुकस्य बलिमन्त्रमाह – **एहीति** ॥ ६३ ॥ सदृक् जलमियुतो वः । वि ॥ ६४ ॥

तदनन्तर **षट्कोण** के दोनों ओर स्तम्भिनी और क्रोधनी का तथा **षट्कोण** के अग्रभाग में देवी के पुत्र चण्ड और उच्चण्ड का नाम मन्त्र से पूजन करे ।

यथा – ॐ स्ताम्भिन्यै नमः दक्षपार्श्वे, ॐ क्रोधिन्यै नमः वामपार्श्वे,
ॐ चण्डोच्चण्डाय देवीपुत्रस्य नमः अग्रे,

इसके बाद अष्टदल में वार्त्ताली आदि ८ देवियों का पूर्वादिदलों में नाम मन्त्र से

ॐ वार्त्ताल्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ वाराहमुख्यै नमः,
ॐ अन्धिन्यै नमः, ॐ रुन्धिन्यै नमः, ॐ जम्भिन्यै नमः,
ॐ मोहिन्यै नमः, ॐ स्तम्भिन्यै नमः,

फिर शतदल में वीरभद्र आदि एकादशा रुद्रों का, धात्रादि द्वादशादित्यों का, धर आदि आठ वसुओं का, दस्र एवं नासत्य आदि दो अश्विनी कुमारों का, कुल ३३ देवताओं का ९९ पत्रों पर एक एक का तीन पत्रों के क्रम से पूजन कर अन्तिम पत्र पर 'जम्भिनीस्तम्भिनीभ्यां नमः' से जम्भिनी एवं स्तम्भिनी का पूजन करे । शतकोण के अग्रभाग में महिष युक्त सिंह का पूजन करना चाहिए ।

तदनन्तर भूपुर के चारों द्वारों पर पूर्वादिक्रम से बटुक आदि का -

बं बटुकाय नमः, क्षं क्षेत्रपालाय नमः,
यां योगिनीभ्यो नमः, गं गणपतये नमः,

से पूजन करना चाहिए । फिर १०. ४५ में कहे गये मन्त्रों से भूपुर के बाहर अपनी अपनी दिशाओं में दिक्पालों का तथा उनके भी बाहर उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए ॥ ८८-६१ ॥

इस प्रकार आवरण पूजा कर लेने के बाद बटुक आदि को उनके बलिदान मन्त्रों से सर्वसिद्धिदायक बलिदान देना चाहिए ॥ ६२ ॥

अब **बलिदान का मन्त्र** कहते हैं -

'एह्येहि', यह पद कहकर 'देवीपुत्र' कहें, फिर 'बटुक' एवं 'नाथकपिलजटाभारभासुरत्रिनेत्रज्वाला', फिर 'मुखसर्व', फिर सदृक् जल (वि), फिर

गृह्णयुग्मं वह्निपत्नीशरपञ्चाक्षरो मनुः ।
बटुकस्य बलिं दद्यादनेन श्रद्धयान्वितः ॥ ६५ ॥

क्षेत्रपालबलिमन्त्रकथनम्

मेरुः षड्दीर्घयुग्वर्मस्थानक्षेत्रपदं वदेत् ।
पालेशसर्वकामं च पूरयानलवल्लभा ॥ ६६ ॥
त्रयोविंशतिवर्णाढ्यः क्षेत्रपालमनुर्मतः ।
योगिनीनामथो मन्त्रः पद्यरूपः प्रपठ्यते ॥ ६७ ॥

योगिनीगणेशादीनां बलिमन्त्रकथनम्

ऊर्ध्वब्रह्माण्डतो वा दिविगगनतले भूतले निष्कले वा
पाताले वातले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा ।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदाधूपदीपादिकेन
प्रीता देव्याः सदानः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः ॥ ६८ ॥

वह्निपत्नी स्वाहा । स्वरूपमपरम् । शरपञ्चाक्षरः पञ्चपञ्चाशदर्णः । यथा – ऐह्येहि देवीपुत्र बटुकनाथ कपिलजटाभारभासुर – त्रिनेत्रज्वालामुखसर्वविघ्नान्नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहेति ॥ ६५ ॥ क्षेत्रपालबलिमन्त्रमाह – **मेरुरिति** । मेरुः क्षः । षड् दीर्घयुक् क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः हुंस्थान क्षेत्रपालेशसर्वकामपूरय स्वाहेति ॥ ६६–६७ ॥ योगिनीबलिमन्त्रमाह – **ऊर्ध्वमित्यादि** ॥ ६८ ॥

'घ्नान्', फिर 'नाशय' पद दो बार (नाशय नाशय), फिर 'सर्वोपचारसहितं बलिं', फिर 'गृह्ण द्वय' (गृह्ण गृह्ण), अन्त में वह्निपत्नी (स्वाहा) का उच्चारण करने से यह पचपन अक्षरों का बटुक मन्त्र बनता है । इस मन्त्र से श्रद्धा से युक्त हो कर बटुक को बलि देनी चाहिए ॥ ६३-६५ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'एह्येहि देवीपुत्र बटुकनाथ कपिलजटाभारभासुरत्रिनेत्रज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' (५५) ॥ ६३-६५ ॥

अब **क्षेत्रपाल के बलिदान का मन्त्रोद्धार** कहते हैं - षड् दीर्घ सहित मेरु क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः, फिर वर्म (हुं), फिर 'स्थानक्षेत्रपालेश सर्वकामं पूरय' कहकर अनलवल्लभा (स्वाहा) लगाने से २३ अक्षरों का क्षेत्रपाल बलिदान मन्त्र बनता है ॥ ६६-६७ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'क्षां क्षीं क्षूं क्षै क्षौं क्षः हुं स्थानक्षेत्रपालेश सर्वकामं पूरय स्वाहा' (२३) ॥ ६६-६७ ॥

यां योगिनीभ्यः स्वाहान्तो भूमिनन्दाक्षरो मनुः ।
योगिनीनां बलिं दद्यादनेन विधिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥
दीर्घत्रयेन्दुयुक्सेन्दुः शार्ङ्गीगणपतार्णकाः ।
मारुतो भगवांस्तोयं रवरान्ते दसर्व च ॥ १०० ॥
जनं मे वशमानान्ते यः सर्वो लोहितो हली ।
दीर्घो रसहितं प्रान्ते बलिं गृह्णयुगं शिरः ॥ १०१ ॥
गणेशबलिमन्त्रोऽयं गगनश्रुतिवर्णवान् ।
एवं तेभ्यो बलिं दत्त्वा स्वस्वमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ १०२ ॥

स्वाहान्तः स्वरूपमेव । भूमि नन्दाक्षरः एकनवतिवर्णः पद्येन सह ॥ ९९ ॥ गणेशबलिमन्त्रमाह – **दीर्घेति** । शार्ङ्गी गः । दीर्घत्रयेन्दुयुक् गां गीं गूं । सेन्दुर्गं । मारुतो यः । भगवान् एयुतः ये । तोयं वः ॥ १०० ॥ लोहितः पः । दीर्घो हलीचा । शिरः स्वाहा ॥ १०१ ॥ गगनश्रुति पर्णवान् चत्वारिंशदर्णः यथा – गां गीं गूं गं गणपतये वरवरदसर्वजनं मे वशमानय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहेति ॥ १०२ ॥ * ॥ १०३–१०८ ॥

अब **योगिनियों का पद्यमय बलिमन्त्र** कहते हैं –

'ऊर्ध्व ब्रह्माण्डतो वा ...... ' इस पद्य के बाद 'योगिनीभ्यः स्वाहा' लगाने से ९१ अक्षरों का योगिनी बलिदान मन्त्र बनता है । इस मन्त्र से विधिवत् योगिनियों को बलि देना चाहिए ॥ ९८-९९ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है -

'ऊर्ध्वब्रह्माण्डतो वा दिविगगनतले भूतले निष्कले वा
पाताले वातले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थिता वा
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदाधूपदीपादिकेन
प्रीता देव्याः सदानः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः

यां योगिनीभ्यः स्वाहा' ॥ ९८-९९ ॥

अब **गणेश बलिदान मन्त्रोद्धार** कहते हैं -

दीर्घत्रयेन्दु युक् तथा सेन्दु शार्गी गां गीं गूँ गं, फिर 'गणपत', फिर 'भगवान् मारुत' ये, फिर तोय (व) एवं 'रवर दसर्व जनं मे वशमानय' के बाद 'सर्वो', फिर लोहित (प), दीर्घ हली (चा), फिर 'र सहितं' फिर 'बलिं गृह्ण गृह्ण', फिर अन्त में शिर (स्वाहा), लगाने से ४० अक्षरों का गणेश बलिदान मन्त्र बनता है ॥ १००-१०२ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - 'गां गीं गूं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' ॥ १००-१०२ ॥

इस प्रकार बलिदान देने के बाद उन्हें उनकी अपनी - अपनी मुद्रायें दिखलानी चाहिए ॥ १०२ ॥

तत्तद्देवतानां मुद्राकथनम्

अंगुष्ठं तर्जनीयुक्तं दर्शयेद् बटुके बलौ।
अंगुष्ठानामिके वामे क्षेत्रपालबलौ मता॥ १०३॥
किंचिद्वक्रीकृता मध्या गणनाथबलौ स्मृता।
अनामामध्यमाङ्गुष्ठा योगिनीनां बलौ पुनः॥ १०४॥
एवं सम्पूज्य संस्तुत्य नत्वात्मन्युपसंहरेत्।
सिद्धमन्त्रः प्रकुर्वीत प्रयोगाञ्छिवभाषितान्॥ १०५॥

एषां मन्त्राणां साधनप्रकारः

हरिद्रया चन्दनेन लाक्षया गुरुणापि च।
पुरेण विविधैर्मांसैर्जुहुयादिष्टसिद्धये॥ १०६॥
हरिद्रामालया कुर्याज्जपं स्तम्भनकर्मणि।
स्फाटिकैः पद्मबीजैश्च रुद्राक्षैः शुभकर्मणि॥ १०७॥
स्वर्णादिपात्रैः सुरया बन्धूककुसुमैस्तिलैः।
वाराहीं तर्पयेत् सम्यक् कामसम्पूर्तये नरः॥ १०८॥
चतुःशतं तु तापिच्छैर्जुहुयात्स्तम्भनेच्छया।
लाजचूर्णतिलैः कुर्यात् खरमेषासृजान्वितैः॥ १०९॥

---

१. बटुक के बलिदान में अङ्गूठा और तर्जनी मिलाकर दिखाना चाहिए ।
२. क्षेत्रपाल के बलिदान में बायें हाथ का अङ्गुष्ठ और अनामिका दिखलाना चाहिए ।
३. गणपति के बलिदान में मध्यमा को कुछ टेढ़ी कर दिखानी चाहिए । तथा
४. योगिनियों के बलिदान के अनन्तर अनामिका, मध्यमा और अङ्गुष्ठ दिखाना चाहिए ॥ १०३-१०४ ॥

इस प्रकार वार्त्ताली देवी का सावरण पूजन संपन्न कर साधक उन्हें अपने हृदय में स्थान देकर उनका विसर्जन करे । तदनन्तर मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर भगवान् सदाशिव के द्वारा उपदिष्ट काम्यप्रयोगों को करे ॥ १०५ ॥

अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए हल्दी, चन्दन, लाह, अगर, गुग्गुल और विविध मांसों से होम करना चाहिए ॥ १०६ ॥

स्तम्भन कर्म में हल्दी की माला से जप करना चाहिए तथा शुभ कार्यों में जैसे शान्तिक पौष्टिक कर्मों में, स्फटिक, कमलगट्टा अथवा रुद्राक्ष की माला का प्रयोग करे ॥ १०७ ॥

साधक अपनी कामनापूर्त्ति के लिए स्वर्णादि पात्रों से बन्धूक पुष्प और तिलों से युक्त सुरा द्वारा वाराही का तर्पण करे ॥ १०८ ॥

स्तम्भन की इच्छा से साधक तमाल पुष्पों की ४०० आहुतियाँ दे ॥ १०९॥

पिण्डं मनोहरं तं तु पूजयेत्तर्पयेदपि ।
सपत्नसदनं साङ्गमेतस्मै विनिवेदयेत् ॥ ११० ॥
कुण्डे पिण्डं निधायामुं जुहुयात्तत्र चायुतम् ।
एकविंशतिरात्रीषु लाजैरक्तसमन्वितैः ॥ १११ ॥
एवं कृते वैरिवृन्दं भक्ष्यते योगिनीगणैः ।

शकटाभिधं महादेव्या यन्त्रम्

अथ यन्त्रं महादेव्याः प्रोच्यते शकटाभिधम् ॥ ११२ ॥
विलिख्य तारे साध्याख्यं भूबीजेन प्रवेष्टयेत् ।
उकारेण च संवेष्ट्य भूपुरं परितो लिखेत् ॥ ११३ ॥
अष्टवज्रान्वितं वज्रप्रान्ते प्रणवमालिखेत् ।
वज्रमध्ये साध्यनाम लिखेत्कर्मसमन्वितम् ॥ ११४ ॥
धराबीजेन संवेष्ट्य भूपुरं मूलविद्यया ।
बहिरंकुशसंवीतं झिण्टीशेन प्रवेष्टयेत् ॥ ११५ ॥

तापिच्छं नामतमालपुष्पम् । लाजानां चूर्णयुतैस्तिलैः खरमेषरुधिरयुतैः ॥ १०६ ॥ सपत्नसदनं शत्रुगृहम् । एतस्मैपिण्डाय ॥ ११० ॥ * ॥ १११–११२ ॥ यन्त्रमाह – **विलिख्येति** । तारे प्रणवे । साध्याख्यं साध्यनाम । भूबीजेन ग्लौमिति बीजेन ॥ ११३ ॥ कर्मसमन्वितम् । अमुकमुच्चाटयेति क्रियायुतम् ॥ ११४ ॥ धराबीजं तदेव । अंकुशः क्रों । झिंटीशः एकारः ॥ ११५ ॥ नूत्ने नवीने ॥ ११६ ॥ * ॥ ११७ ॥

लावा के चूर्ण में तिल, गर्दभ एवं भेड़ का रक्त मिलाकर एक सुन्दर पिण्ड बनाना चाहिए । फिर उसी पिण्ड का विधिवत् पूजन एवं तर्पण भी करे । फिर उसी पिण्ड को अपने शत्रु का सारा घर समर्पित कर देना चाहिए। तदनन्तर उस पिण्ड को कुण्ड में रखकर २१ रात्रि पर्यन्त रक्त मिश्रित लाजाओं से १०,००० आहुतियाँ देनी चाहिए । ऐसा करने से योगिनियाँ उस शत्रु के समूह को खा जाती हैं ॥ १०६-११२॥

अब **महादेवी के शकट संज्ञक यन्त्र** को बतलाते हैं - ॐ इस अक्षर के मध्य में साध्य नाम लिखकर उसे भू बीज (ग्लौं) से वेष्टित करे, फिर उसे भी उकार से वेष्टित कर उसके ऊपर अष्टवज्र सहित भूपुर लिखना चाहिए ॥ ११२-११४ ॥

अष्टवज्र के प्रान्त में प्रणव लिखना चाहिए, वज्रों के मध्य में साध्य नाम एवं उसके उच्चाटनादि विशेष कार्य लिखना चाहिए । यथा - उच्चाटनकर्म में 'अमुकं उच्चाटय', स्तम्भनकर्म में 'अमुकं स्तम्भय', विद्वेषणकर्म में 'अमुकं विद्वेषय' इत्यादि लिखना चाहिए ॥ ११४ ॥

फिर भूपुर को धरा बीज (ग्लौं) से वेष्टित करे । फिर उसे (ॐ ऐं ग्लौं ऐं नमो भगवति वार्तालीवाराही वाराही वाराहमुखि अन्धे अन्धिनि नमो रुन्धे रुन्धिनि नमो

एतद्यन्त्रं समालिख्य नूत्ने कौलालखर्परे ।
कृष्णपुष्पैः समभ्यर्च्य निःक्षिपेत् वैरिवेश्मनि ॥ ११६ ॥
रिपुमुच्चाटयेच्छीघ्रं स्थितं वर्षशतान्यपि ।

जम्भे जम्भिनि नमो मोहे मोहिनि नमः स्तम्भे स्तम्भिनि नम ऐं ग्लौं ऐं सर्वदुष्ट प्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक् चित्तचक्षुर्मुख गति जिह्वा स्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रं वश्यं कुरु कुरु ऐं ग्लौं ऐं ठः ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा' - इस) मूलविद्या से वेष्टित करे। फिर उसके बाहर पुनः अंकुश (क्रों) से वेष्टित कर झिण्टीश (ऐं) से वेष्टित करना चाहिए ॥ ११५ ॥

इस यन्त्र को कुलाल द्वारा निर्मित नवीन खर्पर कसोरा पर लिखकर पुनः काले पुष्पों से पूजन कर अपने शत्रु के घर में डाल देना चाहिए । ऐसा करने से यह मन्त्र अपने घर में सैकड़ों वर्षो से रहने वाले शत्रु का उच्चाटन कर देता है ॥ ११६-११७ ॥

वार्तालीस्तम्भनयन्त्रम्

वादित्रे यन्त्रमालिख्य वादयेत् समरान्तरे ॥ ११७ ॥
श्रुत्वा तद्रवसंत्रस्ताः पलायन्ते विरोधिनः ।

शत्रुवाक्स्तम्भनविधानम्

पाषाणे लिखितं रात्र्या पीतपुष्पेषु निःक्षिपेत् ॥ ११८ ॥
सम्पूजितमधोवक्त्रं वाचं संस्तम्भयेद् द्विषाम् ।
तापकार्यग्निनिःक्षिप्तं जले दोषप्रदं भवेत् ॥ ११९ ॥
साध्यर्क्षतरुगर्भस्थं शत्रूणां दुःखदायकम् ।
किंबहूक्तेन सर्वेष्टं साधयेत्साधितं नृणाम् ॥ १२० ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ बगलादिमन्त्रकथनं नाम दशमस्तरङ्गः ॥ १० ॥

रात्र्या हरिद्रया । पाषाणे लिखित्वाऽग्नौ निःक्षिप्तं तापकारि ॥ ११८–११९ ॥ साध्यर्क्षतरवः साध्यस्य यज्जन्मनक्षत्रं तस्य वृक्षमध्ये क्षिप्तं तेषां दुःखदम् । ते च पूर्वमुक्ताः । साधितं सम्पातादिना प्रतिष्ठितमेतद्यन्त्रं सर्वेष्टं साधयेत् ॥ १२० ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां बगलादिमन्त्रकथनं नाम दशमस्तरङ्गः ॥ १० ॥

इस यन्त्र को बाजे पर लिखकर युद्ध के बीच उस बाजा को बजाने से उसके शब्द को सुनते ही शत्रु मैदान छोड़कर भाग जाते हैं ॥ ११७-११८ ॥

पाषाण पर हल्दी से इस यन्त्र को लिखकर विधिवत् पूजा कर पुनः इसे अधोमुख कर पीले फूलों के बीच में डाल देना चाहिए । ऐसा करने से वह शत्रु की वाणी को स्तम्भित कर देता है । यदि उसे अग्नि में डाल दिया जाये तो उस शत्रु को ताप (ज्वर) चढ़ जाता है यदि जल में डाल दिया जाय तो उसे कलंक लगता है ॥ ११८-११९ ॥

साध्य व्यक्ति के जन्म नक्षत्र की वृक्ष की लकड़ी (द्र ६. ५०) के भीतर इस यन्त्र को रखने से वह शत्रुओं के लिए दुःखदायी बन जाता है । इस विषय में बहुत क्या कहें इस मन्त्र की सिद्धि से मनुष्य अपने सारे अभीष्टों को पूरा कर सकता है ॥ १२० ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के दशम तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १० ॥

अथ एकादशः तरङ्गः

मङ्गलपूर्वकश्रीविद्याकथनम्

ॐ त्रिनेत्रं कमलाकान्तं नृसिहं चन्द्रशेखरम् ।
नत्वा संक्षेपतो वक्ष्ये श्रीविद्यां मन्त्रनायिकाम् ॥ १ ॥
अपरीक्षितशिष्याय तां न दद्यात् कदाचन ।
यदुच्चारणमात्रेण पापसङ्घः प्रलीयते ॥ २ ॥

आदौ मन्त्रोद्धारः

तारं मायां च कमलामादौ बीजत्रयं पठेत् ।

---

* नौका *

श्रीविद्यां वक्तुं मङ्गलमाचरति – **त्रिनेत्रमिति** । मन्त्रनायिकां त्रिलोकवर्तिनां सर्वमन्त्राणां स्वामिनीम्, उत्पादिकामित्यर्थः ॥ १ ॥ अपरीक्षिताय शिष्याय तां विद्यां न दद्यात् –

आत्मा देयः शिरो देयं न देया षोडशाक्षरी ॥

इति वचनात् ॥ २ ॥ मन्त्रमुद्धरति – **तारमिति** । तार ॐ । माया ह्रीं । कमला श्रीं । एतद्बीजत्रयं कूटत्रयादौ पठेत् । आद्यकूटमाह – **ब्रह्मेति** । ब्रह्मा कः । झिण्टीश ए । गोविन्द ई । धरा लः । मायेति – प्रथमं कूटं कएईलह्रीमिति ॥ ३ ॥

---

* अरित्र *

श्री विद्या के प्रारम्भ में ग्रन्थकार **मङ्गलाचरण** कहते हैं –

चन्द्रकला को धारण करने वाले त्रिनेत्र चन्द्रशेखर तथा कमलापति भगवान् नृसिंह को प्रणाम कर (त्रैलोक्य के) समस्त मन्त्रों की स्वामिनी श्री विद्या के विषय में संक्षेप में बतलाता हूँ ॥ १ ॥

जिसके उच्चारण मात्र से पापराशि का नाश हो जाता है, वह **श्रीविद्या** अपरीक्षित शिष्य को कभी भी नहीं देनी चाहिए ॥ २ ॥

अब **षोडशी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं –

(कूटत्रय) के आदि में तार (ॐ), माया (ह्रीं), एवं कमला (श्रीं), इन तीनों बीजों का प्रथम उच्चारण करना चाहिए । ब्रह्मा (क), झिण्टीश (ए),

कूटत्रयकथनं तत्संज्ञा च

ब्रह्मझिण्टीशगोविन्दधरामायेति चादिमम् ॥ ३ ॥
आकाशभृगुचक्र्यभ्रमांसमायाद्वितीयकम् ।
हंसधातृक्षमामायातृतीयं बीजमीरितम् ॥ ४ ॥

षोडशाक्षरीत्रिपुरसुन्दरीश्रीविद्याकथनम्

वाक्कामशक्तिसंज्ञं तु क्रमाद्बीजत्रयं भवेत् ।
इयं षडर्णा श्रीमायाकामवाक्छक्तिसम्पुटा ॥ ५ ॥
अनेकपुण्यसम्प्राप्या श्रीविद्याषोडशाक्षरी[1] ।
मुनिः स्याद्दक्षिणामूर्तिः पंक्तिश्छन्दः समीरितम् ॥ ६ ॥

द्वितीयमाह – **आकाशेति** । आकाशो हः । भृगुः सः । चक्री कः । अभ्रं हः । मांसं लः । मायेति – द्वितीयं कूटं ह स क ह ल ह्रीमिति । तृतीयमाह – **हंसेति** । हंसः सः, धाता कः, क्षमा लः, माया चेति, तृतीयं कूटं सकलह्रीमिति ॥ ४॥ कूटत्रयस्य संज्ञा आह – **वागिति** । प्रथमं वाग्बीजं, द्वितीयं कामबीजं, तृतीयं शक्तिबीजं श्रीः श्रीबीजं । माया ह्रीं, कामः क्लीं । वाक् ऐं । शक्तिः सौः । एतैः पञ्चबीजैः क्रमोत्क्रमाभ्यां सम्पुटा पूर्वोक्त षडर्णा ॥ ५ ॥ षोडशाक्षरी श्रीविद्याभिधामहाविद्या । श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीमिति षोडशाक्षरी । अस्य त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीदेवता ऐं बीजं सौः शक्तिः क्लीं कीलकं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ ६ ॥

गोविन्द (ई), धरा (ल) एवं माया (ह्रीं) इस प्रकार 'कएईलह्रीं' यह **प्रथम कूट** है। आकाश (ह्) भृगु (स्) चक्री (क) अभ्र (ह) मांस (ल) तथा माया (ह्रीं) इस प्रकार 'हसकहल', ह्रीं यह **द्वितीय कूट** है । हंस (स) धाता (क) क्षमा (ल), माया (ह्रीं) अर्थात् 'सकलह्रीं' यह **तृतीय कूट** है । इन तीनों कूटों में प्रथम वाग्बीज है, द्वितीय काम बीज है तथा तृतीय शक्तिबीज कहलाता है । इस षडक्षरा (ॐ ह्रीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं) विद्या को श्री, माया, काम, वाग् और शक्ति इन पाँच बीजों से संपुटित करने पर अनेक पुण्यों से प्राप्त होने वाली षोडशाक्षरी श्रीविद्या का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ३-५ ॥

विमर्श – षोडशी मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं ॥ ३-५ ॥

इस मन्त्र के दक्षिणामूर्त्ति ऋषि हैं, पंक्तिच्छन्द है, जगत् की आदि

---

१. श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीमिति षोडशाक्षरी ।

देवताजगतामादिः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ।
बीजमैं भृगुरौः शक्तिः कामबीजं तु कीलकम् ॥ ७ ॥

मुन्यादिन्यासकथनम्

मूर्द्धास्यहृद्गुह्यपादे नाभौ मुन्यादिकान् न्यसेत् ।
न्यासान् सर्वान् प्रकुर्वीत मायाश्रीबीजपूर्वकान् ॥ ८ ॥

आसनबीजमुद्रादिन्यासकथनम्

मध्यानामाकनिष्ठासु ज्येष्ठयोस्तर्जनीद्वयोः ।
तले पृष्ठे च करयोर्विन्यसेद् द्विष्क्रमादिमान् ॥ ९ ॥
श्रीकण्ठानन्तसौवर्णान् बिन्दुसर्गसमन्वितान् ।
नमोन्तान्करशुद्ध्याख्यो न्यासोऽयं परिकीर्तितः ॥ १० ॥

भृगुः सः । औः स्वरूपम् । तेन सौः शक्तिः । कामबीजं क्लीं ॥ ७ ॥ न्यासानाह – **मूर्धेति** । दक्षिणामूर्तये नमो मूर्ध्नि । पंक्तयै नमो मुखे । त्रिपुरसुन्दर्यै नमो हृदि । ऐं बीजाय नमो गुह्ये । सौः शक्तये नमः पादयोः । क्रीं कीलकाय नमो नाभौ । इति मुन्यादिन्यासः ॥ ८ ॥ अन्यान्न्यासानाह – **मध्येति** । इमान् श्रीकण्ठादि नमोन्तान् द्विर्वारद्वयं मध्यानामिका कनिष्ठाङ्गुष्ठतर्जनीतलपृष्ठेषु न्यसेत् ॥ ९ ॥ इमान् कानित्यत आह – **श्रीति** । श्रीकण्ठोकारः । अनन्त आकारः । सौ स्वरूपम् । क्रमाद्वि – द्वादियुतान् । अं आं एतौ सबिन्दू । सौः सर्गी । तथा – माया श्रीबीजपूर्वकानिति सर्वन्यासेषु संबद्ध्यते । ह्रीं श्रीं अं मध्यमाभ्यां नमः, ह्रीं श्रीं आं अनामिकाभ्यां नमः । ह्रीं श्रीं सौः कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ह्रीं श्रीं अं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ह्रीं श्रीं आं तर्जनीभ्यां नमः । ह्रीं श्रीं सौ करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । अयं करशुद्धिन्यासः ॥ १० ॥

कारण श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी देवता हैं, ऐं बीज, सौः शक्ति तथा कामबीज (क्लीं) कीलक है । इस ऋष्यादि से शिर मुख, हृदय, गुह्य, पाद तथा नाभि स्थान में न्यास करना चाहिए ॥ ६-८ ॥

विमर्श – **विनियोग** - ॐ अस्य श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिः पंक्तिच्छन्दः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीदेवता ऐं बीजं सौः शक्तिः क्लीं कीलकं ममाभीष्ट सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास - ॐ दक्षिणामूर्त्तये नमः, मूर्ध्नि, ॐ पक्तिंश्छन्दसे नमः, मुखे, ॐ त्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः, हृदि, ॐ ऐं बीजाय नमः, गुह्ये, ॐ सौः शक्तये नमः, पादयोः, ॐ क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ ॥ ६-८ ॥

इस महाविद्या के सभी न्यास प्रारम्भ में माया (ह्रीं), श्री बीज (श्रीं), लगाकर करना चाहिए । बिन्दु सहित श्री कण्ठ एवं अनन्त (अं आं) सर्ग

देव्यासनं च प्रथमं तथा चक्रासनं क्रमात् ।
सर्वमन्त्रासनं साध्यसिद्धासनमिति न्यसेत् ॥ ११ ॥
ङेनमोन्तं च बीजाढ्यं पज्जङ्घाजानुलिङ्गके ।
मायां कामं शक्तिबीजं प्रथमासनपूर्वकम् ॥ १२ ॥
वियदारूढ वाक्कामशक्तिबीजानि पूर्वतः ।
द्वितीये सम्प्रोज्यानि सहपूर्वाणि तत्परे ॥ १३ ॥
मायां कामं फान्तमांसे भगेन्द्वाढ्ये प्रयोजयेत् ।
तुरीयासनपूर्वाणीत्यासनन्यास ईरितः ॥ १४ ॥

आसनन्यासमाह – **देव्येति** । देव्यासनाद्यासनचतुष्कं ङे नमोन्तं चतुर्थी नमोन्तं बीजाद्यं मायामित्यादि वक्ष्यमाण प्रातिस्विकबीजपूर्वं पज्जंघाजानुलिङ्गेषु न्यसेत् । प्रथमासनबीजान्याह – **मायामिति** । शक्तिः सौः । चक्रासनबीजान्याह – **वियदिति** । वियत् हः । तद्युतानि वागादीनि । तत्परे तृतीयासने । सहपूर्वाणि वागादीनि ॥ १२–१३ ॥ चतुर्थासनबीजान्याह – **मायामिति** । फान्त मांसे बलौ । भगेन्द्वाढ्ये एबिन्दुयुते तेन ब्लें । यथा – ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं सौः देव्यासनाय नमः पादयोः । ह्रीं श्रीं हैं क्लीं सौः चक्रासनाय नमः जंघयोः । ह्रीं श्री हैं क्लीं सौः सर्वमन्त्रासनाय नमः जान्वोः । ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं ब्लें साध्यसिद्धासनाय नमो लिङ्गे इत्यासनन्यासः ॥ १४ ॥

सहित सौ वर्ण अर्थात् (सौः), इन वर्णों के अन्त में नमः लगाकर क्रमशः मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठिका, अङ्गुष्ठ और तर्जनी तथा करतल मध्य में न्यास करे । इस न्यास को करशुद्धिन्यास कहते हैं ॥ ८-१० ॥

विमर्श - करशुद्धिन्यास यथा -

ह्रीं श्रीं अं मध्यमाभ्यां नमः, ह्रीं श्रीं आं अनामिकाभ्यां नमः,
ह्रीं श्रीं सौः कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ह्रीं श्रीं अं अगुंष्ठाभ्यां नमः,
ह्रीं श्रीं आं तर्जनीभ्यां नमः, ह्रीं श्रीं सौः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ ८-१० ॥

सर्वप्रथम देव्यासन फिर क्रमशः चक्रासन, सर्वमन्त्रासन एवं साध्यसिद्धासन को चतुर्थ्यन्त कर अन्त में 'नमः' लगा कर, पुनः आदि में अपने-अपने बीजाक्षरों को लगाकर पैर, जंघा, जानु और लिङ्ग स्थानों में न्यास करना चाहिए ॥ ११-१२ ॥

१. प्रथमासन से पूर्व माया (ह्रीं), काम (क्लीं) और शक्ति (सौः) लगाना चाहिए । २. वियदारूढ़ वाग् (हैं), काम (क्लीं), और शक्ति (सौः) को द्वितीय आसन के साथ लगाकर, इन्हीं बीजों को तृतीय आसन के प्रारम्भ में लगाकर तथा माया (ह्रीं), काम (क्लीं) और फिर भग तथा बिन्दु सहित फान्त मांस (ब्लें) को चतुर्थ आसन से पूर्व में लगाकर आसन न्यास करना चाहिए ॥ १२-१४ ॥

विमर्श - आसनन्यास यथा - ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं सौः देव्यासनाय नमः, पादयोः ।

वर्णन्यासः सम्मोहनन्यासश्च

ततः षडङ्गं कुर्वीत पञ्चभिस्त्रिभिरेकतः ।
एकेनैकेन पञ्चार्णैर्मन्त्रस्य क्रमतः सुधीः ॥ १५ ॥
मूलविद्यां समुच्चार्य्य प्रणवादिनमोन्तिकाम् ।
मध्यमानामिकाभ्यां तु ब्रह्मरन्ध्रे प्रविन्यसेत् ॥ १६ ॥
सुधां स्रवन्तीं वर्णेभ्य प्लावयन्तीं निजां तनुम् ।
प्रदीपकलिकाकारां महासौभाग्यदां स्मरेत् ॥ १७ ॥
मुद्रा कृत्वा वामकर्णे परसौभाग्यदण्डिनीम् ।
वाममूर्द्धादिपादान्तं तथा मूलं प्रविन्यसेत् ॥ १८ ॥

षडङ्गमाह – **तत** इति । श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः हृदये । ॐ ह्रीं श्रीं शिरः । आद्यकूटेन शिखा । मध्यकूटेन कवचम् । तृतीयकूटेन नेत्रम् । सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं अस्त्रम् । इति षडङ्गन्यासः ॥ १५ ॥ मन्त्रवर्णेभ्योऽमृतं क्षरन्तीं तेन निजं शरीरमाप्लावयन्तीं प्रदीपकलिकाकारां ब्रह्मरन्ध्रस्थां सौभाग्यदां देवी ध्यायन् सतारादिनमोन्तं मूलमध्यमानामिकाभ्यां शिरसि न्यसेत् ॥ १६–१७ ॥ पुनर्वामकर्णपरसौभाग्यदण्डिनीं मुद्रां कृत्वा वामपार्श्वे मूर्धादिपादान्तं तारादिनमोन्तं मूलं न्यसेत् ॥ १८ ॥

ह्रीं श्रीं ह्रैं क्लीं सौः चक्रासनाय नमः, जंघयोः ।
ह्रीं श्रीं ह्रैं क्लीं सौः सर्वमन्त्रासनाय नमः, जान्वोः ।
ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं ब्लें साध्यसिद्धासनाय नमः, लिङ्गे ॥ ११-१४ ॥

मन्त्र के क्रमशः ५, ३, १, १, १, और ५ वर्णो से विद्वान् साधक इस प्रकार षडङ्गन्यास करे ॥ १५ ॥

विमर्श - षडङ्गन्यास - श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः हृदयाय नमः,
ॐ ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा, कएईलह्रीं शिखायै वषट्,
हसकहलह्रीं कवचाय हुम् सकलह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्
सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट् ॥ १५ ॥

जगद्वशीकरण न्यास - मूल मन्त्र के आदि में प्रणव (ॐ) तथा अन्त में 'नमः' लगाकर, मध्यमा और अनामिका अङ्गुलियों से अमृत की वर्षा करती हुई और उसी से अपने शरीर को आप्लावित करती हुई, ब्रह्मरन्ध्र में स्थित प्रदीप कालिका के समान आकार वाली, सौभाग्यदा देवी का ध्यान करते हुये शिर में न्यास करना चाहिए ॥ १६-१७ ॥

तदनन्तर बायें कान में परसौभाग्यदण्डिनी मुद्रा कर, बायीं ओर के शिर से पैर तक प्रणवादि नमोन्त मूलमन्त्र का न्यास करना चाहिए ॥ १८ ॥

त्रिखण्डया मुद्रया तु भाले मूलं न्यसेत्तथा ।
त्रैलोक्यस्याखिलस्याहं कर्त्तेति स्वं विचिन्तयेत् ॥ १९ ॥
रिपुजिह्वाग्रहां मुद्रां दर्शयन् सर्वविद्विषः ।
निगृह्णामीति संचिन्त्य पादमूले तथा न्यसेत् ॥ २० ॥
मुखे संवेष्टयन्न्यस्येत् पुनर्दक्षिणकर्णतः ।
विन्यस्य वामकर्णान्तं कण्ठाद्वक्त्रं ततो न्यसेत् ॥ २१ ॥
तारसम्पुटितां विद्यां सर्वाङ्गे विन्यसेत् पुनः ।
योनिमुद्रां मुखे बद्ध्वा नमेत्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥ २२ ॥
ब्रह्मरन्ध्रे हस्तमूले भाले विद्यां प्रविन्यसेत् ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु न्यासः सम्मोहनाभिधः ॥ २३ ॥

रिपुजिह्वाग्रहां मुद्रां दर्शयन्सर्वशत्रून्निगृह्णामीति सञ्चित्य पादमूले तारादिनमोन्तं मूलं न्यसेत् । सकललोककर्ताहमिति बीजं विचिन्त्य त्रिखण्डया मुद्रया ललाटे तारादिनमोन्तं मूलं न्यसेत् ॥ १९–२० ॥ मुखं संवेष्टयंस्तारा–दिनमोन्तं मूलं न्यसेत् । दक्षकर्णतो वामान्तं न्यस्य कण्ठान्मुखान्तमेवमेव न्यसेत् ॥ २१ ॥ पुनः प्रणवपुटां विद्यां सर्वांगे न्यसेत् । मुखे योनिमुद्रां बद्ध्वा तथैवदेवीं नमेत् ॥ २२ ॥ अयं जगद्वशीकरणन्यासः । देवीकान्त्या विश्वं रक्तं ध्याय–न्नङ्गुष्ठामिकाभ्यां ब्रह्मरंध्रे मणिबन्धे ललाटे विद्यां न्यसेत् । **इति सम्मोहनो न्यासः** ॥ २३ ॥ परसौभाग्यदण्डिनीमुद्रोक्ता । तल्लक्षणं यथा –

वामे मुष्टिर्दृढं बद्ध्वा तर्जनीं प्रविसारयेत् ।
भ्रामयेद्वामकर्णान्तं मुद्रा सौभाग्यदण्डिनी ॥ इति ॥

फिर 'सभी लोकों का कर्त्ता मैं हूँ' ऐसा ध्यान कर त्रिखण्डमुद्रा दिखाकर प्रणवादि नमोन्त मूल मन्त्र का ललाट में न्यास करना चाहिए ॥ १९ ॥

फिर 'मैं अपने सभी शत्रुओं का निग्रह कर रहा हूँ', इस प्रकार की भावना कर रिपुजिह्वाग्रहामुद्रा दिखाते हुये प्रणवादि नमोन्त मूल मन्त्र का पादमूल में न्यास करना चाहिए ॥ २० ॥

प्रणवादि नमोन्त मूल मन्त्र का न्यास उसी प्रकार मुख के ऊपर घुमाते हुये दाहिने कान से बायें कान तक करे तथा उसी प्रकार कण्ठ से मुख तक पुनः प्रणव संपुटित विद्या का सर्वांङ्ग में न्यास करना चाहिए । तदनन्तर मुख पर योनि मुद्रा बाँधकर त्रिपुरसुन्दरी देवी को प्रणाम करना चाहिए । यहाँ तक जदद्वशीकरणन्यास कहा गया ॥ २१-२२ ॥

अब **सम्मोहन न्यास** कहते हैं - ब्रह्मरन्ध्र में, मणिबन्ध में तथा शिर में अङ्गुष्ठ एवं अनामिका अङ्गुलियों से मूल मन्त्र का उच्चारण कर देवी की आभा से लालवर्ण वाले विश्व का ध्यान करते हुये न्यास करना चाहिए । इस न्यास का

जगद्वश्यकराख्योऽयं न्यासः संकीर्तितो मया ।
संस्मरन्नरुणा मूलं सुन्दरीप्रभया जगत् ॥ २४ ॥
पादयोर्जङ्घयोर्न्यस्येज्जान्वोश्च कटिभागयोः ।
लिङ्गे पृष्ठे नाभिदेशे पार्श्वयोस्तनयोरपि ॥ २५ ॥
अंसयोः कर्णयोर्ब्रह्मरन्ध्रे वक्त्रे च नेत्रयोः ।
कर्णयोः कर्णवेष्टेऽपि मूलस्यैकैकमक्षरम् ॥ २६ ॥
संहारन्यास उक्तोऽयं ततो वाग्देवतां न्यसेत् ।
तासां बीजानि नामानि न्यासस्थानानि च ब्रुवे ॥ २७ ॥
अग्निभूधरमांसाढ्योर्घीशो बीजं शशाङ्कयुक् ।
षोडशस्वरबीजाढ्यां वशिनीं शिरसि न्यसेत् ॥ २८ ॥

रिपुजिह्वाग्रहणमुद्रालक्षणं तु –
अङ्गुष्ठगर्भिता मुष्टिं बध्नीयाद्दक्षपाणिना ।
रिपुजिह्वाग्रहाख्येयं मुद्रोक्ता शत्रुनाशिनी ॥ इति ॥
मुद्रा वामपाद तले कृतेति त्रिखण्डालक्षणं **तारातन्त्रे** उक्तम् ॥ २४ ॥ अक्षरन्यासं संहाराख्यमाह – **पादयोरिति** । पादादिष्वेकैकमक्षरं न्यसेत् । कर्णवेष्टः कर्णशष्कुली । श्रीं नमः पादयोः । ह्रीं नमो जंघयोरित्यादिप्रयोगाः ॥ २५–२६ ॥ अयं संहारन्यासः ॥ २७ ॥ वाग्देवतान्यासमाह – **अग्नीति** । अग्नी रेफः । भूधरो चः । मांसं लः । एतैर्युतोर्घीश ऊकारः शशांकायुक् बिन्दुयुतः ।

नाम सम्मोहन है । जगद्वशीकरण न्यास इसके पहले कहा जा चुका है ॥ २३-२४ ॥
अब **संहारन्यास** कहते हैं - दोनों पैर, जंघा, जानु, कटिभाग, लिङ्ग, पीठ, नाभि, पार्श्व, स्तन, कन्धे, कान, ब्रह्मरन्ध्र, मुख, नेत्र, कान और कर्णशष्कुली इन सोलह स्थानों में यथाक्रमेण षोडशक्षर मन्त्र के एक एक अक्षर का न्यास करना चाहिए । यह संहारन्यास कहा गया है । इसके बाद वाग्देवता नामक न्यास करना चाहिए ॥ २५-२६ ॥

संहारन्यास -

१. श्रीं नमः, पादयोः	९. कएईलह्रीं नमः, स्तन्योः
२. ह्रीं नमः, जघयोः	१०. हसकहलह्रीं नमः, अंसयोः
३. क्लीं नमः, जान्वोः	११. सकलह्रीं नमः, कर्णयोः
४. ऐं नमः, कटिभागयोः	१२. सौं नमः, ब्रह्मरन्ध्रे
५. सौः नमः, लिङ्गे	१३. ऐं नमः, मुखे
६. ॐ नमः, पृष्ठे	१४. क्लीं नमः, नेत्रयोः
७. ह्रीं नमः, नाभिदेशे	१५. ह्रीं नमः, कर्णयोः
८. श्रीं नमः, पार्श्वयोः	१६. श्रीं नमः, कर्णशष्कुल्योः

अब **वाग्देवता के बीज एवं स्थानों का नाम** बतलाता हूँ ॥ २७ ॥

क्रोधीशमांसयुङ्मायाद्वितीयं बीजमीरितम् ।
कवर्गपूर्वबीजाद्यां भाले कामेश्वरीं न्यसेत् ॥ २९ ॥
दीर्घखड्गीशरान्ताढ्यशान्तिबिन्दुसमन्विताम् ।
चवर्ग तद्बीजयुतां भ्रमूध्ये मोहिनीं न्यसेत् ॥ ३० ॥
अर्घीशो वायुमांसस्थो बिन्द्वाढ्यस्तत्तुरीयकम् ।
टवर्गबीजपूर्वां तु विमलां विन्यसेद् गले ॥ ३१ ॥
शूलिवैकुण्ठरेफस्थं वामनेत्रं सबिन्दुतम् ।
तवर्ग बीजसंयुक्तां विन्यसेदरुणां हृदि ॥ ३२ ॥

तेन ब्लूं । षोडशस्वरपूर्वकं तद्बीजपूर्वां वशिनी शिरसि न्यसेत् । यथा – अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः ब्लूं वशिनी वाग्देवतायै नमः शिरसि ॥ २८ ॥ **क्रोधीशेति** । क्रोधीशः कः । मांसं लः । एताभ्यां युता माया कल ह्रीं । कवर्गः पूर्वो यस्येदृशमेतद्बीजमाद्ये यस्यास्तां कामेश्वरी भाले न्यसेत् । यथा – कं खं गं घं कलह्रीं कामेश्वरी वाग्देवतायै नमो ललाटे ॥ २९ ॥ **दीर्घेति** । दीर्घो नकारः। खड्गीशो वः । रान्तो लः । एतैर्युता शान्तिरीकारः । बिन्दुयुत तेन न्ब्लीं। चवर्गेण तद्बीजेन च युतां मोहिनीं भ्रूमध्ये न्यसेत् । यथा – चं छं जं झं ञं न्ब्लीं मोहिनीवाग्देवतायै नमो भ्रूमध्ये ॥ ३० ॥ **अर्घीशेति** । अर्घीश ऊ । कीदृशः । वायुमांसस्थः । यलौ स्थितौ यस्मिन् । बिन्दुयुतस्तत्तुरीयं चतुर्थ वाग्देवताबीजं तेन य्ब्लूं । टवर्गस्तद्बीजं च पूर्वं यस्यास्तां विमला कण्ठे न्यसेत् । यथा – टं ठं डं ढं णं य्लूं विमलावाग्देवतायै नमः कण्ठे ॥ ३१ ॥ **शूलीति** । वामनेत्रमी । कीदृशं । शूली जः – बैकुण्ठो मः – रेफस्ते स्थिता यत्र तत् । स बिन्दु च । ईदृशं तद्बीजं । तेन ज्म्रीं । तवर्गबीजाभ्यां युतामरुणां हृदि न्यसेत् । यथा – तं थं दं घं नं ज्म्रीं अरुणावाग्देवतायै नमो हृदि ॥ ३२ ॥

अग्नि (र), भूधर (व), मांस (ल) एवं शशांक अनुस्वार सहित अर्घीश (दीर्घ ऊकार), इस प्रकार (रव्लूँ) यह **प्रथम वाग्बीज** निष्पन्न होता है, इसके पहले १६ स्वरों को लगाकर अन्त में वशिनी लगाकर शिर में न्यास करना चाहिए ॥ २८ ॥

क्रोधीश (क), मांस (ल) के साथ माया (ह्रीं), इस प्रकार 'कलह्रीं' यह **दूसरा वाग्बीज** बनता है । इसके पहले क वर्ग लगाकर तथा अन्त में कामेश्वरी लगाकर ललाट में न्यास करना चाहिए ॥ २९ ॥

दीर्घ (नकार) खड्गीश (ब) एवं रान्त (ल) से युक्त शान्ति दीर्घ इकार' एवं बिन्दु लगाने पर (न्ब्लीं) यह **तृतीय वाग्बीज** बनता है । इसके पहले च वर्ग तथा अन्त में मोहिनी लगाकर भ्रूमध्य में न्यास करे ॥ ३० ॥

अर्घीश (ऊ) वायु (य) मांस (ल) और बिन्दु से युक्त जो हों इस प्रकार (य्लूँ) यह **चतुर्थ वाग्बीज** बनता है । इसके पूर्व में ट वर्ग तथा विमला

वामकर्णो वियद्धंसमांसबालानिलेन्दुयुक् ।
पवर्गं तद्बीजपूर्वां जयिनीं नाभितो न्यसेत् ॥ ३३ ॥
पाशीतन्द्री रेफवायुसंयुता दीपिकेन्दुयुक् ।
यवर्गं बीजाद्यां मूलाधारे सर्वेश्वरीं न्यसेत् ॥ ३४ ॥
संवर्तकमहाकालरेफस्थाशान्तिरिन्दुयुक् ।
कौलिनीशादिबीजाद्यां न्यसेत् पादान्तमूरुतः ॥ ३५ ॥
वाग्देवतायै हार्दान्तं नामान्ते प्रोच्चरेत् पदम् ।
उक्तो वाग्देवतान्यासः सृष्टिन्यासमथाचरेत् ॥ ३६ ॥

वामेति । वियत् हः । हंसः सः । मांसं लः । बालो वः । अनिलो यः। इन्दुर्बिन्दुः । एतैर्युक्तो वामकर्ण ऊकारः । तेन ह्स्ल्व्यूं । पवर्गं एतद्बीजं च पूर्वं यस्यास्तां जयिनीं नाभौ न्यसेत् । यथा – पं फं बं भं मं ह्स्ल्व्यूं जयिनीवाग्देवतायै नमो नाभौ ॥ ३३ ॥ **पाशीति** । दीपिका ऊकारः । कीदृशी । पाशी झः । तंद्री मः । रेफः । वायुर्यः । तैः संयुता इन्दुयुक् । तेन झ्म्र्यूं । यवर्गो बीजं चाद्यं यस्यास्तां । सर्वेश्वरीं मूलाधारे न्यसेत् । यथा – यं रं लं वं झ्म्र्यूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमो मूलाधारे ॥ ३४ ॥ **संवर्तकेति** । संवर्तकः क्षः । महाकालो मः । रेफः । एतैर्युता बिन्दुयुता च शान्तिः ई । तेन क्ष्म्रीं शादयो बीजं चाद्यं यस्यास्तां कौलिनीमूर्वादिपादान्तं न्यसेत् । यथा – शं षं हं क्षं क्ष्म्रीं कौलिनीवाग्देवतायै नम ऊर्वादिपादान्तम् ॥ ३५ ॥ **वागिति** । हार्दं नमः । वाग्देवतायै नम इति पदं नामान्ते वशिन्यादिनामान्ते प्रोच्चरेत् इति तत्प्रयोगेषु लिखितम् ॥ ३६ ॥

लगाकर कण्ठ में न्यास करना चाहिए ॥ ३१ ॥

वामनेत्र (ई) शूली (ज) वैकुण्ठ (म) तथा रेफ जो सविन्दु हों इस प्रकार 'ज्म्रीं' यह **पञ्चम वाग्बीज** बनता है । इसके पहले त वर्ग तथा अन्त में अरुणा लगाकर हृदय में न्यास करना चाहिए ॥ ३२ ॥

वियद् (ह) हंस (स) मांस (ल) बाल (व) एवं अनिल 'य' के साथ सविन्दु कर्ण ऊकार इस प्रकार 'ह्स्ल्व्यूँ' यह **षष्ठ वाग्बीज** बनता है । इसके पहले पवर्ग तथा 'जयिनी' लगाकर नाभि में न्यास करना चाहिए ॥ ३३ ॥

पाशी (झ) तन्द्री (म) रेफ वायु (य) उससे संयुक्त इन्द्र (अनुस्वार) और दीपिका (ऊकार) इस प्रकार 'झ्म्र्यूँ' यह **सप्तम वाग्बीज** है । इसके पहले य वर्ग तथा अन्त में 'सर्वेश्वरी' लगाकर कर मूलाधार में न्यास करना चाहिए ॥ ३४ ॥

संवर्त्तक (क्ष), 'महाकाल' (म) एवं रेफ के साथ स विन्दु शान्ति इस प्रकार 'क्ष्म्रीं' यह **अष्टम वाग्बीज** बनता है । इसके पूर्व में श वर्ग तथा अन्त में 'कौलिनी' लगाकर ऊरु से पैरों तक न्यास करना चाहिए ॥ ३५ ॥

सृष्टिन्यासः स्थितिन्यासः पञ्चावृत्तिन्यासश्च

ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे च नेत्रयोः कर्णयोर्नसोः।
गण्डदन्तोष्ठजिह्वासुमुखकूपे च पृष्ठतः॥ ३७॥
सर्वाङ्गे हृदये न्यस्येत् स्तनकुक्षिध्वजेषु च।
एकैकार्णमथो मूर्ध्नि सर्वेण व्यापकं चरेत्॥ ३८॥

सृष्टिन्यासमाह – **ब्रह्मरन्ध्र** इति । ब्रह्मरन्ध्रादिष्वेकैकं वर्णं न्यसेत् । आद्यं ब्रह्मरंध्रे । द्वितीयं ललाटे । तृतीयं दृशोः । चतुर्थं कर्णयोः । पञ्चमं नसोः । षष्ठं गण्डयोः । सप्तमं दन्तेषु । अष्टममोष्ठयोः । नवमं जिह्वायाम्। दशमं मुखमध्ये । एकादशं पृष्ठे । द्वादशं सर्वाङ्गे । त्रयोदशं हृदि । चतुर्दशस्तनयोः । पञ्चदशं कुक्षौ । षोडशं लिङ्गे॥ ३७–३८॥

उपर्युक्त सभी न्यासों के अन्त में वाग्देवतायै तथा नमः सर्वत्र जोड़ना चाहिए इस प्रकार वाग्देवता का न्यास कहा गया हे । इसके बाद सृष्टिन्यास करना चाहिए ॥ ३६ ॥

विमर्श – वाग्देवता न्यास –

१. अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः ब्लूं वाशिनीवाग्देवतायै नमः शिरसि ।

२. कं खं गं घं ङं कलहीं कामेश्वरी वाग्देवतायै नमः, ललाटे ।

३. चं छं जं झं ञं न्ब्लीं मोहिनी वाग्देवतायै नमः, भ्रूमध्ये ।

४. टं ठं डं ढं णं य्लूं विमला वाग्देवतायै नमः, कण्ठे ।

५. तं थं दं धं नं ज्म्रीं अरुणा वाग्देवतायै नमः, हृदि ।

६. पं फं बं भं मं ह्स्ल्व्यूँ जयिनी वाग्देवतायै नमः, नाभौ ।

७. यं रं लं वं झ्म्र्यूँ सर्वेश्वरी वाग्देवतायै नमः, मूलाधारे ।

८. शं षं सं हं लं क्षं क्ष्म्रीं कोलिनी वाग्देवतायै नमः, उर्वादिपादान्तम् ।

सृष्टिन्यास - ब्रह्मरन्ध्र, ललाट, नेत्र, कान, नासिका, गण्डस्थल, दाँत, होठ, जिस्वा, मुख, पीठ, सर्वाङ्ग, हृदय, स्तन, कुक्षि, एवं लिङ्ग पर क्रमशः मन्त्र के एक एक अक्षर का न्यास करना चाहिए । तदनन्तर समस्त मन्त्र से व्यापक करना चाहिए ॥ ३७-३८ ॥

विमर्श – सृष्टिन्यास विधि - १. श्रीं नमः ब्रह्मरन्ध्रे, २. ह्रीं नमः ललाटे, ३. क्लीं नमः नेत्रयोः, ४. ऐं नमः कर्णयोः ५. सौं नमः नासोः, ६. ॐ नमः गण्डयोः, ७. ह्रीं नमः दन्तेषु, ८. श्रीं नमः ओष्ठयोः ९. कएईलह्रीं नमः जिस्वायाम् १०. हसकहलह्रीं नमः मुखमध्ये, ११. सकलह्रीं नमः पृष्ठे, १२. सौं नमः सर्वाङ्गे १३. ऐं नमः हृदि, १४. क्लीं नमः स्तनयोः, १५. ह्रीं नमः कुक्षौ १६. श्रीं नमः लिङ्गे ॥ ३७-३८ ॥

सृष्टिन्यासं विधायैवं स्थितिन्यासमथाचरेत्।
करांगुष्ठाद्यङ्गुलीषु ब्रह्मरन्ध्रे मुखे हृदि ॥ ३६ ॥
नाभ्यादिपादपर्यन्तं नाभ्यन्तं कण्ठदेशतः।
ब्रह्मरन्ध्राच्च कण्ठान्तं पादाङ्गुलिषु पञ्च वा ॥ ४० ॥
अथ पञ्चविधं न्यासं वक्ष्ये सर्वेष्टसिद्धिदम्।
मन्त्रपञ्चावृत्तिरूपं येन तद्रूपतां व्रजेत् ॥ ४१ ॥
मूर्ध्नि वक्त्रे दृशोः श्रुत्योर्नसो गण्डोष्ठयोरपि।
वक्त्रमध्ये दन्तपंक्त्योर्वदने विन्यसेत् क्रमात् ॥ ४२ ॥

स्थितिन्यासमाह – करेति । पञ्चकराङ्गुलीषु । षष्ठं ब्रह्मरंध्रे । सप्तमं मुखे । अष्टमं हृदि ॥ ३६ ॥ नवमं नाभ्यादि पादान्तम् । दशमं कण्ठादिनाभ्यन्तम् । एकादशं ब्रह्मरंध्रात् कण्ठान्तम् । पञ्चपादाङ्गुलीषु ॥ ४०॥ पञ्चवृत्तिन्यासमाह – **मूर्ध्नीति** । दृशोर्द्वे । श्रुत्योर्द्वे । नसोर्द्वे । गण्डयोर्द्वे । ओष्ठयोर्द्वे । दन्तयोर्द्वे शेषेष्वैकैकम् ॥ ४१–४२ ॥

इस प्रकार सृष्टिन्यास करने के बाद साधक को स्थितिन्यास इस प्रकार करना चाहिए - अङ्गूठे सहित पाँचों अंगुलियों, ब्रह्मरन्ध्र, मुख, हृदय, फिर नाभि से पैर तक, कण्ठ से नाभि तक, ब्रह्मरन्ध्र से कण्ठ तक, फिर पैरों की पाँचों अङ्गुलियों में क्रमशः मन्त्र के १-१ वर्ण का न्यास करना चाहिए ॥ ३६-४० ॥

विमर्श - १. श्रीं नमः, अङ्गुष्ठयोः २. ह्रीं नमः, तर्जन्योः
३. क्लीं नमः, मध्यमयोः ४. ऐं नमः, अनामिकयोः
५. सौंः नमः, कनिष्ठिकयोः ६. ॐ नमः, ब्रह्मरन्ध्रे
७. ह्रीं नमः मुखे ८. श्रीं नमः, हृदि
६. कएईलह्रीं नमः नाभ्यादि पादान्तम्
१०. हसकहलह्रीं नमः, कण्ठादिनाभ्यन्तम्
११. सकलह्रीं नमः, ब्रह्मरन्ध्रात् कण्ठान्तम्
१२. सौः नमः, पादागुष्ठयोः
१३. ऐं नमः पादतर्जन्योः १४. क्लीं नमः, पादमध्यमयोः
१५. ह्रीं नमः, पादानामिकयोः १६. श्रीं नमः, पादकनिष्ठयोः ॥ ३६-४० ॥

अब सम्पूर्ण अभीष्टों को देने वाले पञ्चावृत्ति रूप पञ्चविध न्यास कहता हूँ जिसके करने से साधक तद्रूपता प्राप्त कर लेता है ॥ ४१ ॥

शिर मुख, दोनो नेत्र, दोनों कान, दोनों नासिका, दोनों गाल, दोनों ओष्ठ, मुखकूप, दोनों दन्त पक्तियाँ तथा मुख में विद्या के एक-एक वर्ण से न्यास करना चाहिए । यह **प्रथम न्यास** है ॥ ४२-४३ ॥

एकैकवर्णं विद्याया इत्येको न्यास ईरितः।
शिखाशिरो ललाटं भ्रूर्घ्राणवक्त्रे षडर्णकान् ॥ ४३ ॥
करसन्धिषु साग्रेषु दशेति स्याद् द्वितीयकः।
शिरो ललाटनेत्रास्येजिह्वायां षण्न्यसेत् पुनः ॥ ४४ ॥
पादसन्धिषु साग्रेषु दशेति स्यात्तृतीयकः।
स्वरस्थाने[1] चतुर्थस्तु ललाटे च गले हृदि ॥ ४५ ॥
नाभौ च मूलाधारेऽपि ब्रह्मरन्ध्रे मुखे गुदे।
आधारे हृद्ब्रह्मरन्ध्रे करयोः पादयोर्हृदि ॥ ४६ ॥
एवं पञ्चविधं कृत्वा विद्यां प्रणवसम्पुटाम्।
सर्वस्मिन्व्यापयेदङ्गे नमोन्तां तां हृदि न्यसेत् ॥ ४७ ॥

द्वितीयमाह – **शिखेति** । शिखाशिरोभालभ्रूनासामुखेषु षट् ॥ ४३ ॥ दक्षकरसन्ध्यग्रेषु पञ्च । एवं वामे पञ्च । तृतीयमाह – शिरोभालनेत्रास्यजिह्वासु षट् ॥ ४४ ॥ दक्षपादसन्ध्यग्रेषु पञ्च । वामपादे पञ्च । चतुर्थमाह – **स्वरेति** । मातृकान्यासे स्वरस्थानान्युक्तानि । तेषु षोडश बीजानि न्यसेत् । पञ्चममाह – **ललाट** इति ॥ ४५ ॥ करयोर्द्वे । पादयोर्द्वे । अन्यत्रैकैकम् ॥ ४६ ॥ प्रणवपुटितां विद्यां सर्वाङ्गे न्यसेत् । नमोन्तां हृदि च ॥ ४७ ॥

शिखा, शिर, ललाट, भ्रू, नासिका और मुख में मन्त्र के ६ वर्णो का तथा दोनों हाथों की सन्धि एवं अग्रभाग में शेष वर्णो का न्यास करना चाहिए । यह **द्वितीय न्यास**[1] कहा जाता है ॥ ४३-४४ ॥

शिर, ललाट, दोनों नेत्र, मुख और जिह्वा पर मन्त्र के ६ वर्ण का तथा दोनों पैरों की सन्धियों और उनके अग्रभाग पर शेष वर्णो का न्यास करना चाहिए यह **तृतीय न्यास** है ॥ ४४-४५ ॥

मातृकाओं में बतलाये गये स्वरस्थानों में (द्र १.८६) मन्त्र के १६ वर्णो का न्यास करना चाहिए । यह **चतुर्थ न्यास** है ॥ ४५ ॥

ललाट कण्ठ, हृदय, नाभि, मूलाधार, ब्रह्मरन्ध्र, मुख, गुदा, मूलाधार, हृदय, ब्रह्मरन्ध्र, दोनों हाथ, दोनों पैर तथा हृदय में मन्त्र के एक एक अक्षर का न्यास करना चाहिए । यह **पञ्चम न्यास** है ॥ ४५-४६ ॥

इस प्रकार न्यास करने के बाद प्रणव संपुटित विद्या के संपूर्ण मन्त्रों से सभी अङ्गों में **व्यापक न्यास** करना चाहिए । पुनः मूल विद्या में नमः लगाकर हृदय में न्यास करना चाहिए ॥ ४७ ॥

---

१. स्वरस्थाने मन्त्रमर्णान् न्यासेदित्यर्थः ।

षोढान्यासादयो विस्तरभयान्नोक्तास्ते उच्यन्ते । गणेशग्रहनक्षत्रयोगिनी-राशिपीठलक्षणाः षोढान्यासाः ॥

(i) गणेशमातृकान्यासः

गणेशमातृकामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः गायत्रीच्छन्दः श्रीमातृका-सुन्दरीदेवता ममोपास्य श्रीविद्याङ्गत्वेन षोढान्यासे विनियोगः । अकं ५ आं ऐं हृत् । इं वं ५ ईं क्लीं शिरः । उं टं ५ ऊं सौः शिखा । एं तं ५ ऐं सौः कवचम् । ॐ पं ५ औं क्लीं नेत्रम् । अं यं १० अः ऐं अस्त्रम् । ध्यानम् –

उद्यत् सूर्यसहस्राभां पीनोन्नतपयोधराम् ।
रक्तमाल्याम्बरालेप रक्तभूषणभूषिताम् ॥
पाशांकुशधनुर्वाणभास्वत्पाणिचतुष्टयाम् ।
रक्तनेत्रत्रयां स्वर्णमुकुटोद्भासिचन्द्रिकाम् ॥

एवं ध्यात्वा न्यसेद् बीजं पूर्व गं अं विघ्नेशह्रीभ्यां नमः । गं आं विघ्नराजश्रीभ्यां नमः इत्यादिमातृकास्थले न्यसेत् । गणेशाः शक्तियुक्ता एकविंशे तरङ्गे मूले ग्रन्थकारेणैवोक्ताः ॥ इति गणेशमातृकान्यासः ।

(ii) ग्रहमातृकान्यासः

अथ ग्रहमातृकामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिरित्यादि पूर्ववत् । षडङ्गे च ।

विमर्श – पञ्चावृत्ति नामक न्यास का **प्रथम न्यास** –

१. ॐ नमः, मूर्ध्नि
२. ह्रीं नमः, वक्त्रे
३. क्लीं नमः, दक्षिणनेत्रे
४. ऐं नमः, वामनेत्रे
५. सौः नमः, दक्षिणकर्णे
६. ॐ नमः वामकर्णे
७. ह्रीं नमः, दक्षनासायाम्
८. श्रीं नमः, वामनासायाम्
९. कएईलह्रीं नमः, दक्षिण गण्डे
१०. हसकलह्रीं नमः, वामगण्डे
११. सकलह्रीं नमः, ऊर्ध्वोष्ठे
१२. सौः नमः, अधरोष्ठे
१३. ऐं नमः, वक्त्रमध्ये
१४. क्लीं नमः, ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ
१५. ह्रीं नमः, अधोदन्तपङ्क्तौ
१६. श्री नमः, वदने

द्वितीयन्यास – १ श्रीं नमः शिखायाम् २. ह्रीं नमः शिरसि,
३. क्लीं नमः ललाटे,
४. ऐं नमः भ्रुवोः
५. सौः नमः नासायाम्,
६. ॐ नमः वक्त्रे
७. ह्री नमः दक्षिण बाहुमूले,
८. श्रीं नमः दक्षिणा कूर्परे
९. कएईलह्रीं नमः दक्षिणमणिबन्धे
१०. हसकहलह्रीं नमः अङ्गुलिमूले
११. सकलह्रीं नमः अङ्गुल्यग्रे
१२. सौः नमः वामबाहुमूले
१३. ऐं नमः वामकूर्परे
१४. क्लीं नमः वाममणिबन्धे
१५. ह्रीं नमः अङ्गुलिमूले
१६. श्रीं नमः अंगुल्यग्रे

ग्रहरूपिणीसुन्दरी देवता । ध्यानम् -

रक्तं श्वेतं तथा रक्तं श्यामं पीतं च पाण्डुरम् ।
धूम्रकृष्णं च धूम्रं च धूमधूम्रं विचिन्तयेत् ॥
रवि मुख्यान् कामरूपान् सर्वाभरणभूषितान् ।
वामोरुन्यस्त हस्तांश्च दक्षिणेन वरप्रदान् ॥

एवं ध्यात्वा मातृकापूर्वान् ग्रहान् न्यसेत् । अं १६ सूर्याय रेणुकाम्बायै नमः हृदि ॥ १ ॥ यं ४ चन्द्रायामृताम्बायै नमः भ्रूमध्ये ॥ २ ॥ कं ५ मङ्गलाय धामाम्बायै नमो नेत्रयोः ॥ ३ ॥ चं ५ बुधाय ज्ञानरूपाम्बायै नमो हृदि ॥ ५ ॥ टं ५ बृहस्पतये यशस्विन्यम्बायै नमो हृदयोपरिभागे ॥ ५ ॥ तं ५ शुक्राय शांकर्यम्बायै नमः कण्ठे ॥ ६ ॥ पं ५ शनैश्चराय शक्त्यम्बायै नमो नाभौ ॥ ७ ॥ शं ४ राहवे कृष्णाम्बायै नमो मुखे ॥ ८ ॥ लं क्ष केतवे धूम्राम्बायै नमो गुदे ॥ ६ ॥ इति ग्रहमातृकान्यासः ।

तृतीयन्यास	चतुर्थन्यास	पञ्चमन्यास
१. श्रीं नमः शिरसि	१. श्रीं नमः ललाटे	१. श्रीं नमः ललाटे
२. ह्रीं नमः ललाटे	२. ह्रीं नमः मुखवृत्रे	२. ह्रीं नमः कण्ठे
३. क्लीं नमः दक्षिणनेत्रे	३. क्लीं नमः दक्षनेत्रे	३. क्लीं नमः हृदि
४. ऐं नमः वामनेत्रे	४. ऐं नमः वामनेत्रे	४. ऐं नमः नाभौ
५. सौः नमः मुखे	५. सौः नमः दक्षकर्णे	५. सौः नमः मूलाधारे
६. ॐ नमः जिह्वायाम्	६. ॐ नमः वामकर्णे	६. ॐ नमः ब्रह्मरन्ध्रे
७. ह्रीं नमः पदक्षपादमूले	७. ह्रीं नमः दक्षनासायाम्	७. ह्रीं नमः मुखे
८. श्रीं नमः दक्षग्रल्फे	८. श्रीं नमः वामनासायाम्	८. श्रीं नमः गुदे
६. कएईलह्रीं नमः दक्षजंघायाम्	६. कएईलह्रीं नमः गण्डे	६. कएईलह्रीं नमः मूलाधारे
१०. हसकहलह्रीं नमः दक्षपादांगुलि	१०. हसकहलह्रीं नमः वामगण्डे	१०. हसकहलह्रीं नमः हृदि
११. सकलह्रीं नमः दक्षपादांगुल्यग्रे	११. सकलह्रीं नमः ऊर्ध्वोष्ठे	११. सकलह्रीं नमः ब्रह्मरन्ध्रे
१२. सौः नमः वामपादमूले	१२. सौः नमः अधरे	१२. सौः नमः दक्षिणमुखे
१३. ऐं नमः वामगुल्फे	१३. ऐं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ	१३. ऐं नमः वामहस्ते
१४. क्लीं नमः वामजघायाम्	१४. क्लीं नमः अधःदन्तपंक्तौ	१४. क्लीं नमः दक्षिणपादे
१५. ह्रीं नमः वामपादागुलिमूले	१५. ह्रीं नमः ब्रह्मरन्ध्रे	१५. ह्रीं नमः वामपादे
१६. श्रीं नमः वामपादागुल्यग्रे	१६. श्रीं नमः मुखे	१६. श्रीं नमः हृदि

इस प्रकार पाँच बार में पञ्चावृत्ति न्यास कर 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः, ॐ ह्रीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं मन्त्र द्वारा सभी अङ्गों में व्यापक न्यास करे । फिर इसी मन्त्र के अन्त में 'नमः' लगाकर हृदय में न्यास करे ॥ ४२-४७ ॥

(iii) नक्षत्रमातृकान्यासः

नक्षत्र मातृकामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिर्गायत्री छन्दः। नक्षत्ररूपिणी सुन्दरीदेवता । श्रीविद्याङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः । ध्यानम् -

ज्वलत्कालाग्निसंकाशाः सर्वाभरणभूषिताः।
नतिपाण्योऽश्विनीमुख्या वरदाभयपाणयः।
एवं ध्यात्वा मातृकापूर्वं नक्षत्राणि न्यसेत् ॥

यथा – अं आं अश्विन्यै नमो ललाटे ॥ १ ॥ इं भरण्यै नमो दक्षनेत्रे ॥ २ ॥ ईं उं ऊं कृत्तिकायै नमो वामनेत्रे ॥ ३ ॥ ऋंॠंऌंॡं रोहिण्यै नमो दक्षनेत्रे ॥ ४ ॥ एं मृगशिरसे नमो वामकर्णे ॥ ५ ॥ ऐं आर्द्रायै नमो दक्षनसि ॥ ४ ॥ ओं औं पुनर्वसवे नमो वामनसि ॥ ७ ॥ कं पुष्याय नमः कण्ठे ॥ ८ ॥ खं गं आश्लेषायै नमो दक्षस्कन्धे ॥ ६ ॥ घं ङ मघायै नमो वामस्कन्धे ॥ १० ॥ चं पूर्वाफाल्गुन्यै नमो दक्षकूर्परे ॥ ११ ॥ छं जं उत्तराफाल्गुन्यै नमो वामकूर्परे ॥ १२॥ झं ञं हस्ताय नमो दक्षमणिबन्धे ॥ १३ ॥ टं ठं चित्रायै नमो वाममणिबन्धे ॥ १४ ॥ डं स्वात्यै नमो दक्षहस्ते ॥ १५ ॥ ढं णं विशाखायै नमो वामहस्ते ॥ १६ ॥ तं थं दं अनुराधायै नमो नाभौ ॥ १७ ॥ धं ज्येष्ठायै नमो दक्षकटौ ॥ १८ ॥ नं पं फं मूलाय नमो वामकटौ ॥ १६ ॥ बं पूर्वाषाढायै नमो दक्षोरौ ॥ २० ॥ भं उत्तराषाढायै नमो वामोरौ ॥ २१ ॥ मं श्रवणाय नमो दक्षजानुनि ॥ २२ ॥ यं रं धनिष्ठायै नमो वामजानुनि ॥ २३ ॥ लं शतभिषायै नमो दक्षजंघायाम् ॥ २४ ॥ वं शं पूर्वाभाद्रपदायै नमो वामजंघायाम् ॥ २५ ॥ षं सं हं उत्तराभाद्रपदायै नमो दक्षपादे ॥ २६ ॥ ळं क्षं अं अः रेवत्यै नमो वामपादे ॥ २७ ॥ इति नक्षत्रमातृकान्यासः ।

(iv) योगिनीमातृकान्यासः

सर्वेषु न्यासेष्वादौ मायाश्रीबीजयोज्ये । न्यासान् सर्वान् प्रकुर्वीत माया श्रीबीजपूर्वकानित्युक्तत्वात् । योगिनीन्यासस्य मुनिच्छन्दसी पूर्वोक्ते । योगिनीरूपासुन्दरी देवता श्रीविद्याङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः । ध्यानम् -

सितासितारुणाबभ्रूचित्रापीताश्च चिन्तयेत्।
चतुर्भुजाः समैर्वक्रैः सर्वाभरणभूषिताः ॥

एवं ध्यात्वा न्यसेत् । ह्रीं श्रीं डां डीं डं मलवर यूं पूं डाकिन्यै नमः । अं १६ मम त्वचं रक्ष रक्ष त्वगात्मने नमः कण्ठदेशे विशुद्धे ॥ १ ॥ ह्रीं श्रीं राँ री रं मलवर यूं पूं राकिन्यै नमः कं १२ मम रक्तं रक्ष रक्ष असृगात्मने नमः हृद्यनाहते ॥ २ ॥ लांलींलंमलवरयूंपूं लाकिन्यै नमः डं १० मम मासं रक्ष रक्ष मांसात्मने नमः नाभौ मणिपूरे ॥ ३ ॥ कांकींकं मलवर यूं पूं काकिन्यै नमः वं ६ मम मेदो रक्ष रक्ष मेदसात्मने नमः लिङ्गमूले स्वादिष्ठाने ॥ ४ ॥ शां शीं शं मलवर यूं पूं शाकिन्यै नमः वं ४ ममास्थि रक्ष रक्ष अस्थ्यात्मने नमः गुदे

मूलाधारे ॥ ५ ॥ हां हीं हं मलवर यूं पूं हाकिन्यै नमः हं क्षं मम मज्जां रक्ष रक्ष मज्जात्मने नमो भ्रूमध्य आज्ञाचक्रे ॥ ६ ॥ यां यीं यं मलवर यूं पूं याकिन्यै नम अं मम शुक्रं रक्ष रक्ष शुक्रात्मने नमः ब्रह्मरंध्रे ॥ ७ ॥ इतियोगिनीमातृकान्यासः ।

(v) राशिमातृकान्यासः

राशिमातृकामन्त्रस्य मुनिच्छन्दसी पूर्वोक्ते । राशिरूपां सुन्दरीदेवता । श्रीविद्याङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः । ध्यानम् -

रक्तश्वेतहरिद्वर्णपाण्डुचित्रासितां स्मरेत् ।
पिशङ्गपिङ्गलौ बभ्रुकर्बुराशितधूम्रमान् ॥

अंआंइई मेषाय नमः दक्षपादगुल्फे ॥ १ ॥ उंऊंऋं बृषाय नमः दक्षजानुनि ॥ २ ॥ ॠंलृंलॄं मिथुनाय नमः दक्षवृषणे ॥ ३ ॥ एंऐं कर्काय नमः दक्षकुक्षौ ॥ ४ ॥ ओंऔं सिंहाय नमः दक्षस्कन्धे ॥ ५ ॥ अंअःशंषंसंहंळं कन्यायै नमः दक्षशिरोभागे ॥ ६ ॥ कंखंगंघंङं तुलायै नमो वामशिरो भागे ॥ ७ ॥ चंछंजंझंञं वृश्चिकाय नमः वामस्कन्धे ॥ ८ ॥ टंठंडंढंणं धनुषे नमः वामकुक्षौ ॥ ९ ॥ तंथंदंधंनं मकराय नमः वामवृषणे ॥ १० ॥ पंफंबंभंमं कुम्भाय नमः वामजानुनि ॥ ११ ॥ यंरंलंवंक्षं मीनाय नमो वामगुल्फे ॥ १२ ॥ इति राशिमातृकान्यासः ।

(vi) पीठमातृकान्यासः

पीठमातृकामन्त्रस्य मुनिच्छन्दोङ्गानि पूर्ववत् । पीठरूपिणीसुन्दरीदेवता । श्रीविद्याङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः । ध्यानम् –

सितासितारुणश्यामहरित्पीतान्यनु क्रमात् ।
पुनरेतत्क्रमाद् देवी पञ्चाशत्स्थानसञ्चये ।
पीठानीह स्मरेद्विद्वान् सर्वकामार्थसिद्धये ॥

एवं ध्यात्वा मातृकास्थानेषु मातृकावर्णपूर्वाणि पीठानि न्यसेत् । तानि यथा – **ह्रीं श्रीं** अं कामरूपपीठाय नमः ॥ १ ॥ आं वाराणसीपीठाय नमः ॥ २ ॥ इं नेपालपीठाय नमः ॥ ३ ॥ ईं पौड्रवर्धपीठाय नमः ॥ ४ ॥ उं काश्मीरपी० ॥ ५॥ ऊं कान्यकुब्जपीठाय नमः ॥ ६॥ ऋं पूर्णगिरिपीठाय नमः ॥ ७॥ ॠं अर्बुदाचलपी० ॥ ८॥ लृं आम्रातकेश्वरपी० ॥ ९॥ लॄं एकाम्रपीठा० ॥ १० ॥ एं त्रिस्रोतपीठा० ॥ ११ ॥ ऐं कामकोटिपीठा० ॥ १२ ॥ ॐ कैलासपी० ॥ १३॥ औं भृगुपी० ॥ १४॥ अं केदारपी० ॥ १५ ॥ अं चन्द्रपुरपीठा० ॥ १६ ॥ कं श्रीपी० ॥ १७ ॥ खं ओंकारपी० ॥ १८ ॥ गं जालंधरपी० ॥ १९ ॥ घं मालवपीठाय नमः ॥ २० ॥ ङं कुलान्तपी० ॥ २१॥ चं देवीकोट्टकपी० ॥ २२ ॥ छं गोकर्णपी० ॥ २३ ॥ जं मारुतेश्वरपी० ॥ २४ ॥ झं अट्टहासपी० ॥ २५॥ ञं विरजपी० ॥ २६॥ टं राजगृहपी० ॥ २७॥ ठं महापथपी० ॥ २८॥ डं कोल्लगिरिपी० ॥ २९॥ ढं एलापुरपी० ॥ ३० ॥ णं कपालेश्वरपी० ॥ ३१ ॥ तं जयन्तीपी० ॥ ३२॥ थं उज्जयिनीपी० ॥ ३३॥ दं चरित्रपी० ॥ ३४ ॥ धं

षोढान्यासादयो न्यासाः कार्याः सौभाग्यवाञ्छया ।
नोच्यन्ते विस्तरभयान्नैव चावश्यकाश्च ते ॥ ४८ ॥

क्षीरिकापी० ॥ ३५ ॥ नं हस्तिनापुरपीठा० ॥ ३६ ॥ पं उड्डीशपी० ॥ ३७ ॥ फं प्रयागपी० ॥ ३८ ॥ व षष्ठीशपी० ॥ ३६ ॥ भं मायापुरीपी० ॥ ४० ॥ मं मलयषंपी० ॥ ४१ ॥ यं श्रीशैलपी० ॥ ४२॥ रं मेरूपी० ॥ ४३ ॥ लं गिरिपी० ॥ ४४ ॥ वं माहेन्द्रपी० ॥ ४५ ॥ शं वामनपी० ॥ ४६ ॥ षं हिरण्यपुरपीठाय नमः ॥ ४७ ॥ सं महालक्ष्मीपीठाय नमः ॥ ४८ ॥ हं उड्डियाणपीठायनमः ॥ ४६ ॥ ळं छायापीठाय नमः ॥ ५० ॥ क्षं क्षत्रपुरपीठाय नमः ॥ ५१॥ इति पीठमातृकापीठन्यासः । इति षोढान्यासः ।

आदिशब्दात्मकात् मातृकादयो ज्ञेयाः ॥ ४८ ॥

वश्यादिचतसृणां मुद्राणां लक्षणानि

एवं न्यासान् कृत्वा मुद्राः प्रदर्शयेदित्याह – **मुद्रा इति** । नवानां मुद्राणां मध्ये संक्षोभद्रावणाकर्षखेचरीबीजाख्यानां पञ्चानां लक्षणमुक्तम् । चतसृणामुच्यते । तत्र **वश्यमुद्रालक्षणं** यथा –

पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावंकुशाकृती । परिवर्त्य क्रमेण वमध्यमे तदधोगते ।
क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिकादयः[1] । संयोज्य निबिडाः सर्वा अङ्गुष्ठावग्रदेशतः[2] ।
मुद्रेयं परमेशानी सर्ववश्यकरी मतेति ।

उन्मादमुद्रालक्षणं यथा –

संमुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यमेनुजे[3] । अनामिके तु सरले तदधर्स्तजनीद्वयम्।
दण्डाकारौ ततोङ्गुष्ठौ मध्यमानस्वदेशगौ । मुद्रैषोन्मादिननामक्लेदिनी सर्वयोषितामिति।

महांकुशमुद्रालक्षणं यथा – अस्यास्त्वनामिकायुग्ममधः कृत्वांकुशाकृति ।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत् । इयं महांकुशामुद्रा सर्वकामार्थसाधिनीति ॥

योनिशब्देनात्र **महायोनिमुद्रा** । तल्लक्षणं यथा –

मध्यमे कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरि संस्थिते । अनामिकामध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके।

सौभाग्य की इच्छा करने वाले साधक को षोढान्यास आदि सभी न्यास और ध्यान करने चाहिए । ग्रन्थ विस्तार के भय से हम यहाँ उनको नहीं लिख रहे हैं तथा प्रसिद्ध होने के कारण यहाँ उनके बतलाने की आवश्यकता भी नहीं है ॥ ४८ ॥

---

१. कनिष्ठानामिकादय इति कनिष्ठानामिकापदं दक्षहस्तकनिष्ठानामिकापरम् । आदिपदेन– वामहस्तकनिष्ठानामिकापरिग्रहः ।

२. अंगुष्ठावग्रदेशत इति । अंकुशाकारयोस्तयोस्तर्जन्योरग्रदेशेङ्गुष्ठौ योजयेदिति विशेषः ।

३. अनुजे कनिष्ठे । दक्षिणहस्तकनिष्ठां वामहस्तमध्यमा यावद्द्वा वामहस्तकनिष्ठां दक्षिणहस्तमध्यमया खदेशयोरंगुष्ठौ निःक्षिपेदित्यर्थ ।

मुद्राः प्रदर्शयेत् कृत्वा षडङ्गं प्राणसंयमम् ।
संक्षोभद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहांकुशाः ॥ ४६ ॥
खेचरीबीजयोन्याख्या मुद्रा देवीप्रिया नव ।
ततो ध्यायेद् भगवतीं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥ ५० ॥

सर्वा एकत्र संयोज्या अङ्गुष्ठपरिपीडिताः । एषा तु प्रथमा मुद्रा महायोन्यमिधा मता । इति ॥ मुद्रा एवं प्रदर्श्य ध्यायेत् ॥ ४६–५० ॥

फिर प्रणायाम कर षडङ्गन्यास करने के बाद मुद्रायें प्रदर्शित करनी चाहिए । १. संक्षोभिणी, २. द्रावणी, ३. आकर्षणी, ४. वश्या, ५. उन्माद, ६. महाङ्कुशा, ७. खेचरी, ८. बीज एवं ९. महायोनि - ये ९ मुद्रायें देवी की प्रिय मुद्रायें हैं । मुद्रा दिखाने के बाद श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान ११. ५१ श्लोक के अनुसार करना चाहिए ॥ ४६॥

विमर्श - १ - संक्षोभमुद्रा - मध्यमां मध्यमे कृत्वा कनिष्ठागुष्ठरोधिते ।
तर्जन्यी दण्डवत् कृत्त्वा मध्यमोपर्यनामिके ॥
क्षोभाभिधान मुद्रेयं सर्वसंक्षोभकारिणी ॥

२ - द्राविणी मुद्रा - एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले यदा ।
क्रियेते परमेशानि तदा विद्राविणी मता ॥

३ - आकर्षिणी मुद्रा - मध्यमातर्जनीभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे ।
अंकुशाकार रूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि ॥
इयमाकर्षिणीमुद्रा त्रैलोक्याकर्षणे क्षमा ॥

४ - वश्य मुद्रा - पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावंकुशाकृती ।
परिवर्त्य क्रमेणैव मध्यमे तदधोगते ॥
क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिकादयः ।
संयोज्य निविडाः सर्वा अंगुष्ठावग्रदेशतः ।
मुद्रेयं परमेशानि सर्ववश्यकरौ मता ॥

५ - उन्माद मुद्रा - सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यमेनुजे ।
अनामिके तु सरले तदधस्तर्जनीद्वयम् ॥
दण्डाकारौ ततोङ्गुष्ठौ मध्यमान स्वदेशगौ ।
मुद्रैषोन्मादिनी नाम क्लेदिनी सर्वयोषिताम् ॥

६ - महांकुशामुद्रा - अस्यास्त्वनामिका युग्ममधः कृत्वांकुशाकृति ।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत् ॥
इयं महांकुशा मुद्रा सर्वकामार्थसाधिनी ॥

७ - खेचरी मुद्रा - सत्यं दक्षिण हस्ते तु सव्यहस्ते तु दक्षिणम् ।
वाहू कृत्वा महादेवि हस्तौ सम्परिवर्त्य च ॥
कनिष्ठानामिके देवि युक्ता तेन क्रमेण तु ।

ध्यानजपपूजादिप्रकारः तदन्तर्गतमन्त्राश्च

बालार्कायुततेजसं त्रिनयनां रक्ताम्बरोल्लासिनीं
नानालङ्कृतिराजमानवपुषं बालोडुराट्शेखराम् ।
हस्तैरिक्षुधनुः सृणिं सुमशरं पाशं मुदा बिभ्रतीं
श्रीचक्रस्थितसुन्दरीं त्रिजगतामाधारभूतां स्मरेत् ॥ ५१ ॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं हयमारजैः ।
पुष्पैस्त्रिमधुरोपेतैर्जुहुयात् पूजितेऽनले ॥ ५२ ॥

ध्यानमाह – **बालेति** । नानालंकृतयो विविधाभरणानि तै राजमानं शोभमानं वपुर्यस्यास्ताम् । बालउडुराट् चन्द्रः शेखरे यस्यास्ताम् । सृष्टिमंकुश। सुमशरंपुष्पबाणं बाणांकुशौ दक्षयोः इक्षुधनुःपाशौ वामयोः । श्रीचक्रं वक्ष्यमाणं । तत्र स्थितां सुन्दरीं त्रिपुरसुन्दरीं ध्यायेत् ॥ ५१ ॥ हयमारः करवीरः ॥ ५२ ॥

तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे ॥
अङ्गुष्ठौ तु महादेवि सरलावपि कारयेत् ।
इयं सा खेचरी वाम मुद्रा सव्रोत्तमोत्तमा ॥

८ - **बीजमुद्रा** - परिवर्त्यकरौ स्पष्टावर्द्धचन्द्राकृती प्रिये ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं युगपत्कारयेत्ततः ॥
अधः कनिष्टावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत् ।
तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके ॥
वीजमुद्रेयमुदिता सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥

६ - **महायोनि मुद्रा** - मध्यमे कुटिले कृत्त्वा तर्जन्युपरि संस्थिते ।
अनामिके मध्यगते तथैव हि कनिष्ठके ॥
सर्वा एकत्र संयोज्या अङ्गुष्ठपरिपीडिताः ।
एषा तु प्रथमा मुद्रा महायोन्यामिधा मता ॥

अब **महाश्रीत्रिपुरसुन्दरी देवी का ध्यान** कहते हैं -

उदीयमान सूर्यमण्डल के समान कान्ति वाली, त्रिनेत्रा, लालवर्ण के वस्त्र से सुशोभित, अनेक आभूषणों से अलंकृत, देहवाली द्वितीया के चन्द्रमा को अपने शिर पर धारण किये हुये, अपने चारों हाथों में क्रमशः इक्षुधनु, अंकुश, पुष्पबाण एवं पाश धारण करने वाली श्री चक्र पर विराजमान एवं तीनों लोकों की आधारभूता भगवती श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ ५१ ॥

श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए तथा त्रिमधुर (शर्करा, मधु, घृत) मिश्रित कनेर के फूलों से विधिवत् पूजित अग्नि में होम करना चाहिए ॥ ५२ ॥

श्रीचक्रस्योद्धृतिं वक्ष्ये तत्र पूजनसिद्धये ।
बिन्दुगर्भं त्रिकोणं तु कृत्वा चाष्टारमुद्धरेत् ॥ ५३ ॥
दशारद्वयमन्वस्राष्टारषोडशकोणकम् ।
त्रिरेखात्मकभूगेहवेष्टितं यन्त्रमालिखेत् ॥ ५४ ॥

श्रीचक्रमाह – **श्रीचक्रस्येति** ॥ ५३ ॥ मन्वस्र चतुर्दशारम् ॥ ५४ ॥

अब पूजा करने के लिए **श्रीचक्र यन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

गर्भस्थ बिन्दु सहित त्रिकोण लिखकर उसके ऊपर अष्टदल कमल लिखना चाहिए । फिर उसके ऊपर दशदल कमल लिखना चाहिए । फिर उसके ऊपर क्रमशः एक दशदल, चतुर्दश दल, अष्टदल एवं षोडशदल लिखना चाहिए । तत्पश्चात् तीन रेखायुक्त भूपुर से इसे वेष्टित करना चाहिए ॥ ५३-५४ ॥

अब पात्र स्थापन पूर्वक **श्रीविद्या के पूजन की विधि** कहता हूँ -

जो स्वर चल रहा हो उस हाथ से अपने आगे वक्ष्यमाण यन्त्र लिखें । प्रथम

श्रीपूजनयन्त्रम्
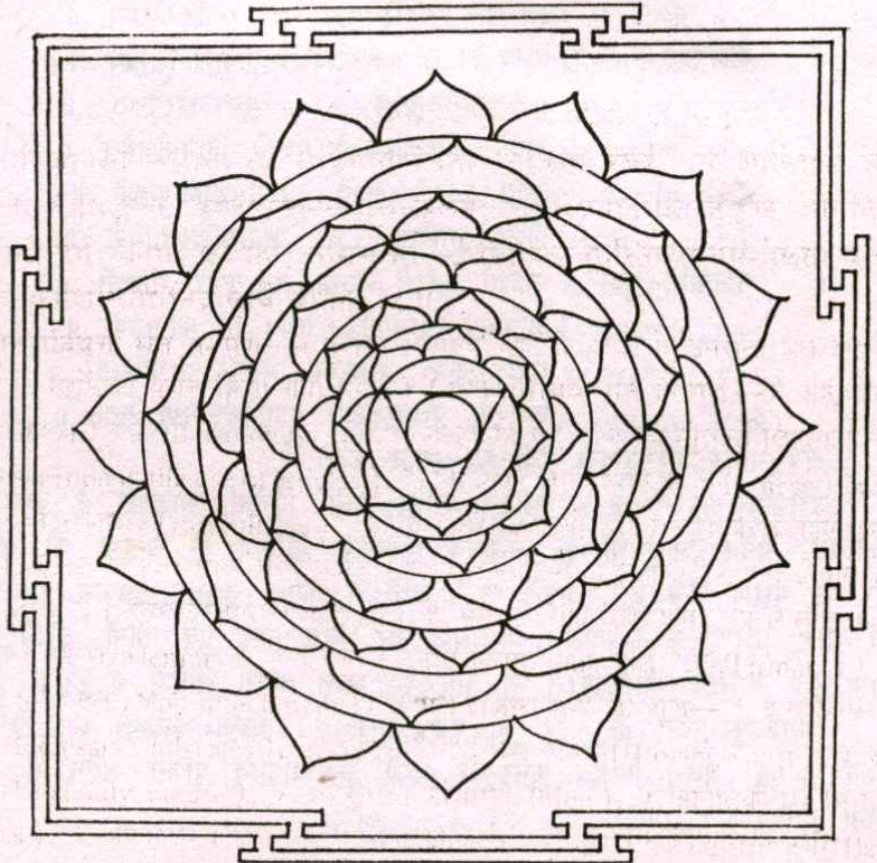
तत्र पूजां प्रवक्ष्यामि पात्रस्थापनपूर्वकम् ।
वहन्नाडीस्थहस्तेन स्वाग्रतो यन्त्रमालिखेत् ॥ ५५ ॥
त्रिकोणमध्यषट्कोणवृत्तभूमण्डलात्मकम् ।
बालया पूजयेन् मध्यं तद्बीजैः कोणकत्रयम् ॥ ५६ ॥
अनुलोमविलोमैस्तैः षट्कोणान्पूजयेत्ततः ।
अस्त्रप्रक्षालितं मध्ये पात्राधारं निधापयेत् ॥ ५७ ॥
एकत्रिंशार्णमनुना तमाधारं समर्चयेत् ।
वह्निदीर्घत्रयेन्द्वाढ्यो रभान्तलवरानिलाः ॥ ५८ ॥
वामकर्णेन्दुसंयुक्तारः सेन्दुश्चाग्निमण्डला ।
वायुर्धर्मप्रददशकलात्माङेसमन्वितः ॥ ५९ ॥
वाग्बीजं कलशाधारा पवनो नमसान्वितः ।
तारादिरीरितो मन्त्रो भाजनाधारपूजने ॥ ६० ॥

पात्रस्थापनमाह – **वहदिति** । वहन्तीयानाडीदक्षावातद्धस्तेन स्वाग्रे त्रिकोणादियन्त्रमालिख्य तत्रास्त्रक्षालितं पात्राधारं स्थापयेत् ॥ ५५–५७ ॥ एकत्रिंशदक्षरमन्त्रेणाधारं पूजयेत् । तमाह – **वह्निरिति** । वह्नी रेफः दीर्घत्रयेन्दु युक्तः रां रीं रुं । रस्वरूपम् । भान्तो मः । लवरस्वरूपम् । अनिलो यः ॥ ५८ ॥ एते वामकर्णेन्दुसंयुता ऊबिन्दुयुताः वायुर्यः । कलात्मा ङेसमन्वितश्चतुर्थ्यन्तः । वाग्बीजं ऐं । पवनो यः । स्वरूपमन्यत् । यथा – ॐ रांरींरुं र्म्ल्व्यूं रं अग्निमण्डलाय धर्मप्रद दशकलात्मने ऐं कलशाधाराय नमः ॥ ५९ ॥ * ॥ ६० ॥

त्रिकोण बनाकर उसके ऊपर षट्कोण लिखें । फिर वृत्त, तदनन्तर भूपुर का निर्माण करे । त्रिकोण के मध्य बाला मन्त्र से पूजन करना चाहिए । तदनन्तर उसके तीनों कोणों की पूजा बाला के तीनों बीजों से करनी चाहिए । तदनन्तर इन्हीं बीजों के अनुलोम तथा विलोम क्रम से षट्कोणों की पूजा करनी चाहिए ॥ ५५-५७ ॥

फिर उस यन्त्र पर 'अस्त्राय फट्' मन्त्र से प्रक्षालित पात्राधार को स्थापित करना चाहिए । तदनन्तर ३१ अक्षरों वाले वक्ष्यमाण मन्त्र से उस आधार की पूजा करनी चाहिए ॥ ५७-५८ ॥

दीर्घत्रयेन्दुयुक् वह्नि (रां रीं रूँ), फिर 'र' तथा भान्त (म), फिर 'ल व र' एवं अनिल (य) ये सभी वामकर्णेन्दु (ऊ) के साथ अर्थात् (र्म्ल्व्यूं), फिर सेन्दु र (रं), फिर 'अग्निमण्डला' पद, फिर वायु (य), फिर चतुर्थ्यन्त 'धर्मप्रददशकलात्मा', फिर वाग्बीज (ऐं), कलशाधारा, फिर पवन (य) तथा अन्त में 'नमः' तथा प्रारम्भ में प्रणव लगाने से ३१ अक्षरों का आधारपात्र की पूजा का मन्त्र बनता है ॥ ५८-६० ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ॐ राँ रीं रूँ र्म्ल्व्यूं रं अग्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने ऐं कलशाधाराय नमः ॥ ५८-६० ॥

धूम्रार्चादीनामग्नेर्दशकलानामर्चनकथनम्

प्रादक्षिण्याद्दृशाग्नेयीस्तदुपर्यर्चयेत् कलाः ।
धूम्रार्च्चिरूष्माज्वलिनीज्वालिनीविस्फुलिङ्गिनी ॥ ६१ ॥
सुश्रीः सुरूपाकपिलाहव्यकव्यादिकावहा ।
सबिन्दुयादिवर्णाद्या दशाग्नेरीरिताः कलाः ॥ ६२ ॥
कलाश्रीपादुकां पूजयामीति पदमुच्चरेत् ।
नाम्नामन्ते ततस्तासां प्राणस्थापनमाचरेत् ॥ ६३ ॥
स्वर्णादिपात्रमस्त्रेण क्षालितं तत्र विन्यसेत् ।

कलशार्चनामन्त्रः

वियद्दीर्घत्रयेन्द्वाढ्यं हंममांसंवरानिलः ॥ ६४ ॥
अर्घीशबिन्दुसंयुक्ताः सेन्दुखंसूर्यमण्डला ।
वायुर्वसुप्रदान्ते स्याद् द्वादशान्ते कलात्मने ॥ ६५ ॥

प्रादक्षिण्यादिति । तदुपरि पात्राधारोपरि आग्नेयीर्दशकला अर्चयेत् । ता एवाह – धूम्रार्चीरिति ॥ ६१ ॥ हव्यकव्यादिकावहा हव्यवहा कव्यवहा च । कीदृश्यस्ताः । सबिन्दवो यादिदशवर्णा आद्या यासाम् ॥ ६२ ॥ **कलेति** । नाम्नां धूम्रार्चिरित्यादि नम्नामन्ते कलेत्यादिंपदमुच्चरेत् । यं धूम्रार्चिः कलाश्रीपादुकां पूजयामि । रं ऊष्माकला श्रीपादुकां पूजयामीत्यादि प्रयोगः ॥ ६३ ॥ स्वर्णादिनिर्मितं कलशम् अस्त्राय फडिति प्रक्षाल्य तत्राधारे न्यसेत् । तं त्रिंशद्वर्णमन्त्रेणाचर्येत् । तमुद्धरति – **वियदिति** । वियत् ह क रंदीर्घत्रयाढ्यं हां हीं हूं । हमस्वरूपम् । मांसं लः । वरस्वरूपम् । अनिलो यः ॥ ६४ ॥ अर्घीशबिन्दुयुक्तः यूं । सेन्दु खं सबिन्दु हम् । वायुर्यः ॥ ६५ ॥

पुनः उस आधारपात्र के ऊपर प्रदक्षिण क्रम से अग्नि की दश कलाओं का पूजन करना चाहिए, १. धूम्रार्चि, २. ऊष्मा, ३. ज्वलिनी, ४. ज्वालिनी, ५. विस्फुलिङ्गिनी, ६. सुश्री, ७. सुरूपा, ८. कपिला, ९. हव्यवहा, एवं १०. कव्यवहा ये सविन्दु यकार आदि दशवर्णो के साथ अग्नि की कलायें कहीं गई हैं । इनके नाम के बाद 'कलाश्री पादुकां पूजयामि' इतना पद मिलाकर पूजन करना चाहिए इसके बाद उसमें प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए ॥ ६१-६३ ॥

यहाँ तक आधार पात्र की पूजा कही गई । अब आधार पर रखे जाने वाले कलशादि का पूजन कहते हैं - प्रथम अस्त्राय फट् इस मन्त्र से उस सुवर्णादि निर्मित कलश को प्रक्षालित करे । तदनन्तर उसे आधारपात्र पर रखकर वक्ष्यमाण ३० अक्षरों वाले मन्त्र से उसका पूजन करना चाहिए ॥ ६४ ॥

मन्मथः कलशायेति नमोन्तः प्रणवादिकः।
त्रिंशद्वर्णात्मको मन्त्रः कलशस्यार्च्चने मतः॥ ६६॥

तपिन्यादिद्वादशसूर्यकलाकथनम्

कलाद्वादशसूर्यस्य कलशोपरि पूजयेत्।
तपिनीतापिनीधूम्रामरीचिर्ज्वालिनीरुचिः ॥ ६७॥
सुषुम्नाभोगदाविश्वाबोधिनीधारिणीक्षमा ।
अनुलोमविलोमाभ्यां कादिभाद्यर्णयुग्युता॥ ६८॥
पूर्ववत्ताः समापूज्याः कलशे पूरयेज्जलम्।
उच्चरन्मातृकावर्णान्मूलविद्यां च मन्त्रवित्॥ ६९॥
दन्ताक्षरेण मनुना कलशोदकमर्चयेत्।
भृगुर्दीर्घत्रयेन्द्वाढ्यः समलाम्ब्वग्निवायवः॥ ७०॥

मन्मथ क्लीं । स्पष्टमन्यत् । यथा – ॐ हां हीं हूं हमलवर यूं हं सूर्यमण्डलाय वसुप्रदद्वादशकलात्मने क्लीं कलशाय नम इति॥ ६६॥ सूर्यकला आह - **तपिनीति** ॥ ६७॥ कीदृश्यस्ताः – **अनुलोमेति** । क्रमोत्क्रमाभ्यां ये कादयो भादयश्च वर्णाः तेषां युजो युग्मानि तैर्युताः । कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै नमः – गं फं धूम्रायै नमः इत्यादि॥ ६८॥ पूर्ववत् । तपिनीकला श्रीपादुकां पूजयामीति प्रयोगः ॥ ६९ ॥ दन्ताक्षरेण द्वात्रिंशदक्षरेण । तमेवोद्धरति । भृगुरिसि । भृगुः स दीर्घवययुतः सां सीं सूं । अम्बु वः । अग्नी रः । वायुर्यः एते॥ ७०॥

दीर्घत्रयेन्दु सहित वियत् (हां हीं हूँ) फिर 'ह मः' मांस (ल) 'व र' अनिल (य) ये सभी अर्धीश विन्दु सहित (ह्म्ल्व्र्यूँ), फिर सेन्दु ख (हं), फिर 'सूर्यमण्डला', फिर वायु (य), फिर 'वसुप्रदद्वादशकलात्मने' पद, फिर मन्मथ (क्लीं), फिर 'कलशाय नमः' इस मन्त्र के आदि में प्रणव लगाने से ३० अक्षरों का कलश पूजन मन्त्र बनता है ॥ ६४-६६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ हां हीं हूं ह्म्ल्व्र्यूँ हं सूर्यमण्डलाय वसुप्रदद्वादशकलात्मने क्लीं कलशाय नमः ॥ ६४-६६ ॥

तदनन्तर कलश के ऊपर सूर्य की द्वादश कलाओं का पूजन करना चाहिए । १. तपिनी, २. तापिनी, ३. धूम्रा, ४. मरीचि, ५. ज्वालिनी, ६. रुचिर, ७. सुषुम्ना, ८. भोगदा, ९. विश्वा, १०. बोधिनी, ११. धारिणी एवं १२. क्षमा इन कलाओं की अनुलोम ककारादि तथा विलोम भकरादि क्रमों से युक्तकर पूजन करना चाहिए ॥ ६७-६९ ॥

इस प्रकार सूर्य की द्वादश कलाओं के पूजन के पश्चात् मातृका वर्णों के साथ मूलमन्त्र बोलकर कलश को जल से पूर्ण करना चाहिए । फिर बत्तिस

अर्घीशेन्दुयुताः सेन्दुहंसान्ते सोममण्डला।
यकामप्रदषोडान्तेशकलात्मा तु ङेयुतः॥ ७१॥
भृगुर्मनुर्विसर्गाढ्यो ङेयुतं कलशामृतम्।
तारादिहृदयान्तोऽयं मनुः पानीयपूजने॥ ७२॥

अमृतादिषोडशचन्द्रकलाकथनम्

चान्द्रीः कलाः स्वराद्यास्तु यजेत् षोडशतज्जले।
अमृतामानदापूषा तुष्टिपुष्टीरतिर्धृतिः॥ ७३॥
शशिनीचन्द्रिकाकान्तिर्ज्योत्स्नाश्रीः प्रीतिरङ्गदा।
पूर्णापूर्णामृता चेति पूजनं पूर्ववन्मतम्॥ ७४॥

अर्घीशेन्दुयुताः ऊबिन्दुयुताः । ङेयुतश्चतुर्थ्यन्तः ॥ ७१ ॥ भृगुः सः मतुरौ। ङेयुतं कलशामृतं कलशामृताय । तारादि हृदयान्तः प्रणवादि नमोन्तः । ॐ सां सीं सूं सू म्ल्व्यूं संक्षोभमण्डलाय कामप्रदषोडशकलात्मने सौः कलशामृताय नमः (३२) मन्त्रो ये जलार्चने ॥ ७२ ॥ षोडश स्वराद्याश्चान्द्रीः कलास्तज्जलेर्चयेत् । ता आह – **ॐ अमृतेति** ॥ ७३–७४ ॥ भैरवमन्त्रमाह –

अक्षरों से युक्त वक्ष्यमाण मन्त्र से कलश का पूजन करना चाहिए ॥ ६९-७० ॥

दीर्घत्रय एवं बिन्दु से युक्त भृगु (स), स म् ल् अम्बु (व्), अग्नि (र्) एवं वायु (य्), इन्हें अर्घीशेन्दु से युक्त स्म्ल्व्र्यूँ, फिर हंस (सं), 'सोममण्डलाय कामप्रद षोडश' के बाद चतुर्थ्यन्त 'कलात्मा' पद (कलात्मने), फिर 'मनुविसर्गाढ्य भृगु सौः', फिर चतुर्थ्यन्त कलशामृत (कलशामृताय), इस प्रकार निष्पन्न मन्त्र के आदि में तार (ॐ) तथा अन्त में हृदय 'नमः' लगाने पर ३२ अक्षर का मन्त्र बनता है ॥ ७०-७२ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ सां सीं सूं स्म्ल्व्र्यूँ सं सोममण्डलाय कामप्रदषोडशकलात्मने सौः कलशामृताय नमः ॥ ७०-७२ ॥

फिर कलश के जल में १६ स्वरों के साथ चान्द्री कलाओं का पूर्ववत् पूजन करना चाहिए । १. अमृता २. मानदा, ३. पूषा, ४. तुष्टि, ५. पुष्टि, ६. रति, ७. धृति, ८. शशिनी, ९. चन्द्रिका, १०. कान्ति, ११. ज्योत्स्ना, १२. श्री, १३. प्रीति, १४. अङ्गदा, १५. पूर्णा एवं १६. पूर्णामृता ये चान्द्री कलाओं के नाम हैं ॥ ७३-७४ ॥

इसी प्रकार भैरव तथा सुधा देवी का अपने अपने मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । ह् स् क्ष् म् ल्, पानीय (व्), वह्नि (र्) इन्हें अर्घीश बिन्दु से युक्त करने पर 'ह्स्क्ष्म्ल्व्रूं' यह बीज, इसके बाद 'आनन्दभैरवाय वौषट्' यह १०

भैरवमन्त्रः सुधादेवीमन्त्रश्च

भैरवं च सुधादेवीं स्वमन्त्राभ्यां यजेज्जले।
सहक्षमलपानीयवह्नीरार्घीशबिन्दुमत् ॥ ७५ ॥
बीजमानन्दभैरवान्ते वायुर्वौषण्मनुर्मतः।
हसयोर्वैपरीत्येन बीजं पूर्वोदितं सुधा ॥ ७६ ॥
देव्यै वौषट् तयोर्मन्त्रौ दशमुन्यक्षरौ क्रमात्।
ततो मत्स्यास्त्रकवचधेनुमुद्राः प्रदर्शयेत् ॥ ७७ ॥
संरोधिन्या संनिरुध्य मुसलं चक्रसंज्ञकम्।
महामुद्रां योनिमुद्रां कुर्यात् कुम्भामृते पुनः ॥ ७८ ॥
एवं कलशामास्थाप्य तस्य दक्षिणदेशतः।
शङ्खं चापि विशेषार्घ्यं स्थापयेत् पूर्ववत् क्रमात् ॥ ७९ ॥
अर्घ्ये त्रिकोणं संचिन्त्याऽकथाद्यैः षोडशाक्षरैः।
हक्षाभ्यां शोभितं मध्ये तत्र बालां प्रपूजयेत् ॥ ८० ॥

हसति । हसक्षमलेतिस्वरूपम् । पानीयं वः । वह्नी रः । ईरोयः अर्घीणऊ–बिन्दुश्च एतैर्युतम् ॥ ७५ ॥ बीजम् । स्वरूपमन्यत् । यथा – ह्स्क्ष्म्ल्व्र्यूं आनन्दभैरवाय वौषट् – दशार्णः । सुधादेवीं मन्त्रमाह – **हसयोरिति** । पूर्वोक्तबीजे हसयोर्वैपरीत्य स्ह्क्ष्म्ल्व्र्यूंसुधादेव्यैवौषट् – मुन्यक्षरः सप्तार्णः । **मत्स्येति । मत्स्यमुद्रालक्षणम्** – यथा – वामोपरिष्टात्संस्थाप्य दक्षहस्तं प्रसारयेत् । अङ्गुष्ठौयुतयोः पार्श्वेमत्स्येमुद्रेयमीरितेति । अस्त्रकवचमुद्रे वक्ष्येते। धेनुमुद्रोक्ता ॥ ७६–७७ ॥ संरोधिनी वक्ष्यते । **मुसलमुद्रा** – यथा – मुष्टी कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामास्योपरि दक्षिणम् । कुर्यान्मुद्रेयं सर्वविघ्ननिवारिणीति । **चक्रमुद्रा** – यथा – हस्तौ तु संमुखौ कृत्वा संलग्नौ सुप्रसारितौ। कनिष्ठांगुष्ठकौ लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञितेति । महामुद्रा वक्ष्यते । योनिमुद्रोक्ता ॥ ७८–७९ ॥ अर्घ्य इति । कादयः षोडशस्वराः । कादयः षोडश नान्ताः । थादयः षोडश सान्ताः । तैरर्घ्ये त्रिकोणं सञ्चित्य । कीदृशम् । हक्षाभ्यां मध्ये

अक्षरों बाला भैरव मन्त्र है, तथा पूर्वोक्त बीज में इस ७ अक्षरों हस का विपर्यय करने से 'स्ह्क्ष्म्ल्व्रूं', फिर 'सुधा देव्यै वौषट्' यह सुधा देवी का मन्त्र बनता है । इस प्रकार पूजन करने के बाद मत्स्य, अस्त्र, कवच एवं धेनु मुद्रायें प्रदर्शित करनी चाहिए । फिर सन्निरोधिनी मुद्रा से सन्निरोध कर कलश के जल में मुशल, चक्र, महामुद्रा एवं योनि मुद्रायें प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ७५-७८ ॥

इस प्रकार कलश स्थापन कर उसके दक्षिणभाग में पूर्वोक्त रीति से शंख एवं विशेषार्घ्य भी स्थापित करना चाहिए । पुनः अर्घ्य में अकारादि, ककारादि और

अष्टवर्णमन्त्रकथनम्

अष्टावर्णनमन्त्रेण देवीं ज्योतिर्मयीं यजेत् ।
तारो मायेन्दुयुग्व्योम भृगुसर्गीससद्यसः ॥ ८१ ॥
वाराहो बिन्दुयुक्स्वाहा वसुवर्णः स्मृतो मनुः ।

ज्योतिर्मयीदेव्यायजनप्रकारः

मूलं त्रिरभिजप्याथ कुर्यान्मुद्राः समीरिताः ॥ ८२ ॥
शंखार्घ्यस्थापने कार्य ऊहः कलशनामनि ।
एवं पात्राणि संस्थाप्य गृहीत्वार्घ्योदकं ततः ॥ ८३ ॥
पूजावस्तूनि चात्मानं प्रोक्षेन्मूलमनुं स्मरन् ।
विधाय मानसीं पूजां पीठपूजामथाचरेत् ॥ ८४ ॥

शोभितम् । तत्र ऐं क्लीं सौरिति बालां संपूजयेत् ॥ ८० ॥ अष्टवर्णमाह – **तार** इति । तार ॐ । माया – ह्रीं । इन्दुयुग्व्योम हं । सर्गी भृगुः सः ससद्यः औयुतः सः सौ ॥ ८१ ॥ बिन्दुयुग् वराहो हः हं । स्वाहास्वरूपम् । समीरितामुद्रामत्स्याद्या नवमुद्राः कुर्यात् ॥ ८२ ॥ शंखस्थापनेऽर्घ्यपात्रस्थापने च कलशनाग्नि ऊहः शंखपदमर्घ्यपदं च प्रयोज्यम् ॥ ८३–८४ ॥

थकारादि रेखाओं से तथा मध्य में ह क्ष वर्णो से सुशोभित त्रिकोण का ध्यान कर उसमें 'ऐं क्लीं सौः' मन्त्र से बाला का पूजन करना चाहिए ॥ ७९-८० ॥

तदनन्तर अष्टाक्षर मन्त्र से ज्योतिर्मयी देवी का पूजन करना चाहिए । तार (ॐ) माया (ह्रीं) इन्द्र युक्त व्योम (हं) सर्गी भृगु (सः) ससद्य भृगु सौः बिन्दु युक् वराह (हं) एवं 'स्वाहा' लगाने से अष्टाक्षर मन्त्र बनता है ॥ ८१ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्रीं हंसः सोः हं स्वाहा' ॥ ८१ ॥

फिर मूल मन्त्र को तीन बार जप कर मत्स्य आदि पूर्वोक्त ९ मुद्रायें प्रदर्शित करनी चाहिए । शंख एवं अर्घ्य स्थापन में कलश शब्द के स्थान में उनका अर्थात् शङ्ख पद और अर्घ्य पद का नाम लेना चाहिए ॥ ८२-८३ ॥

इस प्रकार पात्रों के स्थापन के बाद अर्घ्यपात्र का जल लेकर उस जल से पूजा सामग्री पर और अपने ऊपर जल छिड़के, तदनन्तर मानसोपचार से देवी का पूजन एवं उनकी पीठ पूजा करनी चाहिए ॥ ८३-८४ ॥

विमर्श - पात्रस्थापन विधि संक्षेप में इस प्रकार है - पात्रस्थापन के लिए सर्वप्रथम दक्षिण या वाम जो स्वर चल रहा हो उस हाथ से त्रिकोण, उसके ऊपर षट्कोण वृत्त एवं भूपुर युक्त यन्त्र लिखना चाहिए । उसके मध्य भाग की

'ऐं क्लीं सौः' मन्त्र से पूजा करे तथा बाला के तीन बीजों से त्रिकोण के एक एक कोणों की, फिर इन्हीं बीजों को अनुलोम एवं विलोम 'ऐं क्लीं सौः' एवं 'सौः ऐं क्लीं' इन ६ बीजों से पूजा करे ।

तदनन्तर अस्त्राय फट् इस मन्त्र से प्रक्षालित पात्राधार को उक्त यन्त्र के मध्य मे रख कर 'ॐ रां रीं म्ल्व्यूं रं अग्निमण्डलाय धर्मप्रददशकलात्मने ऐं कलशाधाराय नमः' मन्त्र से आधार पात्र की पूजा करनी चाहिए । तत्पश्चात् पात्राधार के ऊपर अग्नि की दशकलाओं का इस प्रकार पूजन करे -

१. यं धूम्रार्चिषे नमः धूम्रार्चिकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
२. रं ऊष्मायै नमः ऊष्मार्चिकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
३. लं ज्वलिन्यै नमः ज्वलिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
४. वं ज्वालिन्यै नमः ज्वालिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
५. शं विस्फुलिंगिन्यै नमः विस्फुलिंगिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
६. षं सुश्रियै नमः सुश्रीकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
७. सं सुरूपायै नमः सुरूपाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
८. हं कपिलायै नमः कपिलाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
९. ळं हव्यवहायै नमः हव्यवहाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
१०. क्षं कव्यवहायै नमः कव्यवहाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

इसके बाद इन कलाओं पर अस्यै प्राणा प्रतिष्ठन्तुं इत्यादि मन्त्र से प्रत्येक की प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए ।

इतना करने के बाद आधार पर अस्त्राय फट् इस मन्त्र से प्रक्षालित स्वर्णादि निर्मित कलश रख कर 'ॐ हां हीं हूँ स्ल्व्रूँ हं सूर्यमण्डलाय वसुप्रद द्वादशकलात्मने क्लीं कलशाय नमः' मन्त्र से कलश का पूजन करना चाहिए । फिर उस कलश पर तपिनी आदि सूर्य की द्वादश कलाओं का इस प्रकार पूजन करनी चाहिए ।

कं भं तपिन्यै नमः तपिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
खं बं तापिन्यै नमः तापिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
गं फं धूम्रायै नमः धूम्राकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
घं पं मरीच्यै नमः मरीचिकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
डं नं ज्वालिन्यै नमः ज्वालिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
चं धं रुच्यै नमः रुचिकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
छं दं सुषुम्णायै नमः सुषुम्णाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
जं थं भोगदायै नमः भोगदाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
झं तं विश्वायै नमः विश्वाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
ञं णं बोधिन्यै नमः बोधिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

टं ढं धारिण्यै नमः धारिणीकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
ठं डं क्षमायै नमः क्षमाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

तत्पश्चात् अं .... क्षं पर्यन्त स्वरव्यञ्जनान्त ५१ मातृकाओं के साथ मूल मन्त्र बोलकर कलश को जल से पूर्ण करे । फिर 'ॐ सां सीं सूं स्ल्व्रूं सं सोममण्डलाय कामप्रदषोडशकलात्मने सौः कलशामृताय नमः' मन्त्र से कलशोदक का पूजन करे । फिर कलश के जल में अमृता आदि १६ चन्द्र कलाओं का इस प्रकार पूजन करे ।

अं अमृतायै नमः अमृताकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
आं मानदायै नमः मानदाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
इं पूषायै नमः पूषाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
ईं तुष्ट्यै नमः तुष्टिकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
उं पुष्ट्यै नमः पुष्टिकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
ऊं रत्यै नमः रतिकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
ऋं धृत्यै नमः धृतिकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
ॠं शशिन्यै नमः शशिनीकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
लृं चन्द्रिकायै नमः चन्द्रिकाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
ॡं कान्त्यै नमः कान्तिकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
एं ज्योतस्नायै नमः ज्योत्स्नाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
ऐं श्रियै नमः श्रीकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
ओं प्रीत्यै नमः प्रीतिकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
औं अङ्गदायै नमः अङ्गदाकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
अं पूर्णायै नमः पूणाकर्ला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।
अः पूर्णामृतायै नमः पूर्णामृताकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः ।

इसके बाद जल मे 'ह्रक्ष्म्ल्व्रूँ आनन्दभैरवाय वौषट्' मन्त्र से तथा 'स्हक्ष्म्ल्व्रूँ सुधादेव्यै नमः' इस मन्त्र से रेखा बना कर उस पर भैरव तथा सुधा देवी का पूजन करे । तदनन्तर मत्स्य, अस्त्र, कवच, धेनु, सन्निरोध, मुसल, चक्र, महामुद्रा एवं योनिमुद्रायें देवी को प्रसन्न करने के लिए प्रदर्शित करनी चाहिए ।

मत्स्यमुद्रा - वामोपरिष्टात्संस्थाप्य दक्षहस्तं प्रसारयेत् ।
अङ्गुष्ठौ युतयोः पार्श्वे मत्स्यमुद्रेयमीरिता ॥

अस्त्रमुद्रा - नाराचमुष्ट्युद्धृत वाहुयुग्मकाङ्गुष्ठ तर्जन्युदितोध्वनिस्तु
विष्वक् विशक्तः कथितास्त्रमुद्रा ॥

कवचमुद्रा - करद्वन्द्वांगुल्यो वर्मणि स्युः ।

धेनुमुद्रा - अन्योन्यभिमुखौ श्लिष्टौ कनिष्ठानामिका पुनः ।
तथैव तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता ॥

सन्निरोधमुद्रा - आश्लिष्टमुष्टियुगला प्रोन्नताङ्गुष्ठ युग्मका ।

मण्डूकं कालवह्नीशं तन्मूलप्रकृतिं यजेत् ।
आधारशक्तिं कूर्मं च शेषवाराहमेदिनीः ॥ ८५ ॥

पीठपूजामाह – **मण्डूकमिति** । कालवह्नीं शं कालाग्निरुद्रम् ॥ ८५ ॥

सन्निधाने समुर्दिष्टा मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः ॥
अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधे समीरिता ।

मुसलमुद्रा - मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम् ।
कुर्यान्मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ॥

चक्रमुद्रा - हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा संलग्नौ सुप्रसारितौ ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिका ॥

महामुद्रा - अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठौ प्रसारितकराङ्गुलिः ।
महामुद्रयेमुदिता परमीकरणं बुधैः ॥

योनिमुद्रा - मिथः कनिष्ठिके बद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके ।
अनामिकोर्ध्व संश्लिष्टा दीर्घमध्यमयोरधः ।
अङ्गुष्ठाग्रद्वयं न्यस्येद् योनिमुद्रेयमीपिता ॥

कलश स्थापन करते समय उसकी दाहिनी ओर शंख तथा अर्घ्य भी उसी रीति से स्थापित करना चाहिए । किन्तु वहाँ विशेष यह है कि मन्त्र में जहाँ कलश पद आया है वहाँ शंख तथा विशेषार्घ्य पद बोलकर स्थापित करना चाहिए ।

तत्पश्चात् अर्घ्यपात्र में अकारादि १६ स्वरों से ककारादि १६ एवं थकारादि १६ वर्णों से तीन रेखा बनाकर मध्य में 'ह क्ष' वर्ण लिखे । इस प्रकार निर्मित त्रिकोण के मध्य मे - 'ॐ ह्रीं हं सः सौ हं स्वाहा' इस ८ अक्षर के मन्त्र से बाला का पूजन करे । फिर तीन बार मूलमन्त्र का जप कर पूर्वोक्त ९ मत्स्यादि मुद्रायें प्रदर्शित करे ।

इस प्रकार पात्रों को विधिवत् स्थापित कर अर्घ्य पात्र से जल लेकर मूल मन्त्र पढ़कर पूजा सामग्री एवं स्वयं अपने ऊपर जल छिड़के । तदनन्तर ११, ५१ में वर्णित देवी के स्वरूप का ध्यान कर निम्नलिखित मन्त्रों से मानसी पूजा सम्पन्न करनी चाहिए । -

ॐ लं पृथिव्यात्मकं महादेव्यै गन्धं समर्पयामि नमः अङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्याम् ।
ॐ हं आकाशात्मकं महादेव्यै पुष्पाणि समर्पयामि नमः अङ्गुष्ठानामिकाभ्याम् ।
ॐ वं वायूवात्मकं महादेव्यै धूपं अघ्रापयामि नमः अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यम् ।
ॐ रं वह्यात्मकं महादेव्यै दीपं दर्शयामि नमः अङ्गुष्ठतर्जनीभ्याम् ।
ॐ वं अमृतात्मकं महादेव्यै नैवेद्य निवेदयामि नमः अङ्गुष्ठानाभिकाभ्यम् ॥ ८३-८४ ॥

अब **पीठपूजा का विधान** कहते हैं -

मण्डूक, कालाग्निरुद्र, मूलप्रकृति, आधारशक्ति, कर्म, शेष, वराह, मेदिनी

सुधाब्धिं रत्नदीपं च स्वर्णाद्रिं नन्दनं वनम् ।
दृष्ट्वा कल्पतरून् मध्ये विचित्रानन्दभूमिकाम् ॥ ८६ ॥
श्रीरत्नमन्दिरं रत्नवेदिकां धर्मवारणम् ।
रत्नसिंहासनं तस्य पादान्धर्मादिकान् यजेत् ॥ ८७ ॥
गात्राणि तांश्च नञ्पूर्वान्पद्मं चानन्दकन्दकम् ।
ज्ञाननालं कर्णिकां च सूर्यसोमाग्निमण्डलम् ॥ ८८ ॥
तारमात्रात्रयाद्यं तत्स्ववर्णाद्यान्गुणान् यजेत् ।
मात्रात्रयाद्यमात्मानमन्तरात्मानमेव च ॥ ८९ ॥
तृतीयं परमात्मानं ज्ञानात्मानं परादिकम् ।

मायाकलादितत्वानां कथनम्

मायातत्त्वं कलातत्त्वं विद्यातत्त्वं च पूजयेत् ॥ ९० ॥
परतत्त्वं स्ववर्णाद्यं ब्रह्मविष्णुशिवांस्ततः ।
प्रेतां तानीश्वरं तुर्यं पञ्चमं च सदाशिवम् ॥ ९१ ॥

स्वर्णाद्रि मेरुः ॥ ८६ ॥ धर्मवारणं छत्रम् । धर्मादिकान् धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याणि ॥ ८७ ॥ न पूर्वानधर्मादीन् ॥ ८८ ॥ तारमात्रात्रयाद्यम् अंउमंपूर्व सूर्यसोमाग्निमण्डलम् । गुणान् सत्त्वरजस्तमांसि । स्ववर्णाद्यां संसत्त्वाय नम इत्यादिरूपान् । आत्मानमित्यादीन् मात्रात्रयादीन् अं आत्मने – उ अन्तरात्मने ॥ ८९ ॥ मं परमात्मने परादिकमाया बीजाद्यम्, ज्ञानात्मानम्, ह्रीं ज्ञानात्माने इति । मायातत्त्वादीनि स्ववर्णाद्यानि मां मायातत्त्वाय नम इत्यादिरूपाणि ॥ ९० ॥ ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वर सदाशिवान् प्रेतशब्दांस्तान् बं ब्रह्मप्रेताय नम इत्यादिरूपान् ॥ ९१–९२ ॥

सुधाम्बुधि, रत्नद्वीप, मेरु, नन्दनवन और कल्पवृक्ष का पीठ पर पूजन करना चाहिए । फिर मध्य में विचित्रानन्द भूमि, श्री रत्नमन्दिर, रत्नवेदिका, छत्र, और सिंहासन का पूजन कर सिंहासन के पादभूत, धर्म (ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्यो का तथा अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य एवं अनैश्वर्य आदि) का पूजन करना चाहिए । फिर पद्म आनन्दकन्द एवं ज्ञाननाल का कर्णिका में पूजन कर ॐकार के तीनो स्वरों (अं उं मं) के साथ सूर्य, सोम और अग्निमण्डलों का अपनी कलाओं के साथ यजन करना चाहिए । इसी प्रकार अपने नाम के आद्याक्षर से युक्त सत्त्व, रज, और तमोगुण का भी पूजन करे। तदनन्तर पूर्वोक्त तीन स्वरों के साथ आत्मा, अन्तरात्मा एवं परमात्मा का, मायाबीज के साथ ज्ञानात्मा का तथा अपने अपने वर्णो के साथ मायातत्त्व, कलातत्त्व, विद्यातत्त्व, एवं परतत्त्व का पूजन करना चाहिए । फिर अपने अपने नाम के आद्याक्षर को आदि में लगा कर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव इन ५ (प्रेतों) देवों का पूजन करना चाहिए ॥ ८५-९१ ॥

सुधार्णवासनं पश्चाद्यजेत् प्रेताम्बुजासनम् ।
दिव्यासनं चक्रासनं सर्वमन्त्रासनं ततः ॥ ६२ ॥
साध्यसिद्धासनं प्रार्च्य चक्रराजं प्रपूजयेत् ।
पीठशक्तिस्ततः काष्ठास्विच्छाज्ञानं क्रिया तथा ॥ ६३ ॥
कामिनीकामदायिन्यौ रतिरेवं रतिप्रिया ।
नन्दामनोन्मनी चेति वराभयकरास्तु ता ॥ ६४ ॥
तत आसनमन्त्रेण पूजयेच्चक्रनायकम् ।

पीठमन्त्रोद्धारः

वाक्परायै केशवोऽथ परायै च परापरा ॥ ६५ ॥
बालीदामोदरारूढस्तार्तीयं च सदाशिव ।
महाप्रेतं पठेत् पद्मासनाय हृदयान्तिकः ॥ ६६ ॥
एकोनत्रिंशदर्णाढ्यो मनुरासनसंज्ञकः ।
एवं पीठं समभ्यर्च्य दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ॥ ६७ ॥

काष्ठासु दिक्षु । पीठशक्तिराह – **इच्छेति** ॥ ६३–६४ ॥ पीठमन्त्रमुद्धरति – **वागिति** ॥ १०२ ॥ वाक् ऐं केशवः अः ॥ ६५ ॥ बाली यः दामोदरारुढः ऐं युतः यै । तार्तीयं ह्सौः । हृदयान्तिकः नमोन्तः । स्वरूपमन्यत् । यथा – ऐं परायै अपरायै परापरायै ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नम इति ॥ ६६–६७ ॥

फिर सुधार्णवासन, प्रेताम्बुजासन, दिव्यासन, चक्रासन, सर्वमन्त्रासन और साध्य सिद्धासन का पूजन कर चक्रराज का पूजन करना चाहिए ॥ ६२-६३ ॥

उसकी **विधि** इस प्रकार है - चक्रराज के ८ दिशाओं में तथा मध्य में वरद और अभय मुद्रा धारण करने वाली पीठशक्तियों का पूजन करे । १. इच्छा, २. ज्ञान, ३. क्रिया, ४. कामिनी, ५. कामदायिनी, ६. रति, ७. रतिप्रिया, ८. नन्दा एवं ९. मनोन्मनी - ये नौ पीठशक्तियाँ हैं । इसके बाद आसन मन्त्र से चक्रराज का पूजन करना चाहिए ॥ ६३-६५ ॥

अब **चक्रराज मन्त्र का उद्धार** कहते हैं --

वाग् (ऐं), फिर 'परायै' पद, फिर केशव (अ), फिर 'अपरायै' पद, फिर 'परापरा' और दामोदरारूढ़ वाली (यै), फिर तार्तीय बीज ह्सौः, फिर 'सदाशिवमहाप्रेत', फिर 'पद्मासनाय' पद, उसके अन्त मे हृदय (नमः) लगाने से २९ अक्षरों का आसन मन्त्र सम्पन्न होता है ॥ ६५-६७ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ऐं परायै अपरायै, परापरायै ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः ।

उपर्युक्त पीठपूजा का सारांश - अर्घ्य पात्र स्थापन के पश्चात् देवी का विधिवत् ध्यान कर मानसोपचार से पूजन करे । फिर श्रीचक्रात्मक यन्त्रराज के पीठ - देवताओं एवं पीठशक्तियों का पूजन इस प्रकार करे -

कर्णिका में - ॐ मण्डूकाय नमः,
ॐ कालाग्निरुद्राय नमः, ॐ मूलप्रकृत्यै नमः, ॐ आधारशक्त्यै नमः,
ॐ कूर्माय नमः, ॐ शेषाय नमः, ॐ वराहाय नमः,
ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ सुधाम्बुधये नमः, ॐ रत्नद्वीपाय नमः,
ॐ मेरवे नमः, ॐ नन्दनवनाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः ।

तदनन्तर **कर्णिका के मध्य में** - ॐ विचित्रानन्दभूम्यै नमः,
ॐ श्रीरत्नमन्दिराय नमः, ॐ रत्नवेदिकायै नमः,
ॐ छत्राय नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः,

फिर **पीठ के चारों दिशाओं में** पूर्वादिक्रम से - ॐ धर्माय नमः,
ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः,

फिर **पीठ के चारों कोणों में** - ॐ अधर्माय नमः,
ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः,

पुनः **मध्य में** - ॐ आनन्दकन्दाय नमः, ॐ संविन्नालाय नमः, ॐ सर्वतत्त्वात्मकपद्माय नमः, ॐ प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः, ॐ विकारमयकेसरेभ्यो नमः, ॐ पञ्चाशद्बीजाड्यकर्णिकाय नमः का पूजन करना चाहिए । पुनः तत्रैव -
ॐ अं द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय नमः,
ॐ उं षोडशकलात्मने सोममण्डलाय नमः,
ॐ मं दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नमः, ॐ सं सत्त्वाय नमः,
ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ अं आत्मने नमः,
ॐ उं अन्तरात्मने नमः, ॐ मं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः,

पुनः तत्रैव - ॐ मां मायातत्त्वाय नमः, ॐ कं कलातत्त्वाय नमः,
ॐ विं विद्यातत्त्वाय नमः, ॐ पं परतत्त्वाय नमः,

पुनः वहीं पर - ॐ बं ब्रह्मप्रेताय नमः, ॐ विं विष्णुप्रेताय नमः,
ॐ रुं रुद्रप्रेताय नमः, ॐ इं ईश्वरप्रेताय नमः, ॐ सं सदाशिवप्रेताय नमः,

पुनः तत्रैव -
ॐ सुधार्णवासनाय नमः, ॐ प्रेताम्बुजासनाय नमः, ॐ दिव्यासनाय नमः,
ॐ चक्रासनाय नमः ॐ सर्वमन्त्रासनाय नमः, ॐ साध्यसिद्धासनाय नमः

तदनन्तर चक्रराज का इस प्रकार पूजन करे - प्रथम आठों दिशाओं में तथा मध्य में इच्छादि नौ पीठ शक्तियों का, पूर्वादि दिशाओं के क्रम से, यथा -
ॐ इं इच्छायै नमः, ॐ ज्ञां ज्ञानायै नमः, ॐ क्रिं क्रियायै नमः
ॐ कां कामिन्यै नमः, ॐ कं कामदायिन्यै नमः, ॐ रं रत्यै नमः

पुष्पाञ्जलिमन्त्रः

प्रकटान्तं गुप्तगुप्ततरान्ते सम्प्रदाय च ।
कुलान्ते नेत्रयुङ्मेषो गर्भरेति ततः पठेत् ॥ ९८ ॥
हस्यान्तेति रहस्यार्णापरापररहस्य च ।
संज्ञकः श्रीचक्रगतो योगिनीपादुकापदम् ॥ ९९ ॥
भ्योनमोन्तो धराबाणवर्णो मायारमादिकः ।
मन्त्रपुष्पाञ्जलेर्दाने सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ १०० ॥
मुद्रां त्रिखण्डां कृत्वाथ पुष्पाण्यादाय चाञ्जलौ ।
ध्यात्वा पूर्वोदितां देवीं मूलविद्यां समुच्चरेत् ॥ १०१ ॥
चैतन्यं हृत्कमलतो नासिकारन्ध्रनिर्गतम् ।
ब्रह्मरन्ध्रस्य मार्गेण योजितं कुसुमाञ्जलौ ॥ १०२ ॥

पुष्पाञ्जलिमन्त्रमाह – **प्रकटेति** । नेत्रयुक् मेषः नि ॥ ९८–९९ ॥ मायारमादिकः ह्रीं श्रीमादिकः । यथा – ह्रीं श्रीं प्रकटगुप्तगुप्ततर संप्रदाय–कुलनिगर्भरहस्यातिरहस्यपरापररहस्यसंज्ञक श्रीचक्रगतयोगिनीपादुकाभ्यो नम इति धराबाणवर्णः एकपञ्चाशदक्षरः ॥ १०० ॥ त्रिखण्डा मुद्रोक्ता ॥ १०१ ॥ आवाहनमन्त्रमाह – **चैतन्यमिति** ॥ १०० ॥ *॥ १०३–१०६ ॥

ॐ रं रतिप्रियायै नमः, ॐ नं नन्दायै नमः

पुनः मध्य में - ॐ मं मनोन्मन्यै नमः ।

तदनन्तर 'ऐं परायै अपरायै परापरायै स्सौः सदाशिव महाप्रेत पद्मासनाय नमः' मन्त्र से चक्रराज की पूजा करनी चाहिए ॥ ९५-९७ ॥

इस प्रकार पीठपूजा करने के बाद पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ॥ ९७ ॥

पुष्पाञ्जलि के मन्त्र का उद्धार इस प्रकार हैं -

प्रथम प्रकट गुप्ततर के बाद 'सम्प्रदाय' कुल के बाद नेत्रयुक् मेष (नि) फिर 'गर्भ र' बोलना चाहिए, फिर 'हस्य' 'अति रहस्य' 'परापर रहस्य संज्ञक श्री चक्रगतयोगिनीपादुका' फिर 'भ्यो' 'नमः' बोलना चाहिए । प्रारम्भ में माया (ह्रीं) एवं रमा (श्रीं) बीज लगाने से इक्यावन अक्षरों का सर्वसिद्धिदायक पुष्पाञ्जलि देने का मन्त्र बनता है ॥ ९८-१०० ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - 'ह्रीं श्रीं प्रकटगुप्तगुप्ततरसंप्रदायकुलनिगर्भ–रहस्यातिरहस्यपरापररहस्यसंज्ञकश्रीचक्रगतयोगिनीपादुकाभ्यो नमः' ॥ ९७-१००॥

पुष्पाञ्जलि देने के लिए प्रथम त्रिखण्डा मुद्रा बनावे । फिर अञ्जलि में पुष्प लेकर ११. ५१ में वर्णित देवी के स्वरूप का ध्यान कर उपर्युक्त मूलमन्त्र का उच्चारण कर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए । तदनन्तर हृदयकमल से, नासिका रन्ध्र

महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ॥ १०३ ॥
महः पूजाभचैतन्यसंयुक्तकुसुमाञ्जलिम्।
श्रीचक्रराजे संयोज्य ततः श्लोकद्वयं पठेत् ॥ १०४ ॥
देवेशि भक्तिसुलभे सर्वावरणसंयुते।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ॥ १०५ ॥
इदमावाहनं प्रोक्तं ततः स्थापनमाचरेत्।
भैरवीमन्त्रमुच्चार्य श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरि ॥ १०६ ॥
चक्रेऽस्मिन् कुरु सान्निध्यं नमोन्तः स्थापने मनुः।
दर्शयेत् स्थापनीं मुद्रां सन्निधिं सन्निरोधनम् ॥ १०७ ॥
सम्मुखीकरणं तत्तन्मुद्राभिर्मन्त्रविच्चरेत्।
न्यसेत् षडङ्गं देव्यङ्गे सकलीकरणं त्विदम् ॥ १०८ ॥
अवगुण्ठामृतीकारपरमीकरणानि च।
तत्तन्मुद्राभिराराध्य मूलेन त्रिःप्रपूजयेत् ॥ १०९ ॥

स्थापन्याद्या मुद्रा वक्ष्यन्ते ॥ १०७ ॥ *॥ १०८ – १११ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां श्रीविद्याकथननाम एकादश तरङ्गः ॥ ११ ॥

से निर्गत एवं ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से योजित चैतन्य को पुष्पाञ्जलि में लेकर उस चैतन्य तेज को श्रीचक्रराज पर स्थापित कर निम्नलिखित दो श्लोकों से देवी का आवाहन करना चाहिए ।

महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे ।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ॥
देवेशि भक्तिसुलभे सर्वावरणसंयुते ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ॥ १०१-१०५ ॥

यह देवी का आवाहन हुआ । फिर उनकी स्थापना करनी चाहिए - यथा प्रथम भैरवी मन्त्र (ह्स्रैं ह्स्क्लरीं ह्स्रौः) बोलकर 'श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरि चक्रेस्मिन् कुरु सान्निध्यं नमः' यह स्थापना का मन्त्र है । इस प्रकार स्थापित कर स्थापनी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए । इसके बाद मन्त्रवेत्ता साधक सन्निधि, सन्निरोध एवं

तर्पणध्यानादिकथनम्

ततः पाद्यादिकान्सम्यगुपचारान् प्रकल्पयेत्।
मूलमन्त्रेण पुष्पान्तान् पुनः सन्तर्पयेत्त्रिधा ॥ ११० ॥
पुष्पाञ्जलिं विधायाथ ध्यात्वा देवीं यथाविधि।
अनुज्ञां प्रार्थयेन्मन्त्री परिवारसमर्चने ॥ १११ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ श्रीविद्याकथनं नाम एकादशस्तरङ्गः ॥ ११ ॥

संमुखीकरण की मुद्रा प्रदर्शित कर देवी के अङ्गों में षडङ्गन्यास करे । इस प्रकार की प्रक्रिया को 'सकलीकरण' कहते हैं ॥ १०४-१०८ ॥

इसके बाद अवगुण्ठन, अमृतीकरण, परमीकरण की मुद्रा प्रदर्शित कर तीन बार मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुए पाद्य आदि उपचारों से पुष्पाञ्जलि पर्यन्त देवी का पूजन कर तीन बार तर्पण करना चाहिए । पुनः पुष्पाञ्जलि लेकर विधिवत् देवी का ध्यान कर आवरण पूजा के लिए देवी से आज्ञा माँगनी चाहिए ॥ १०९-१११ ॥

विमर्श - संक्षेप में **पूजा पद्धति** - पीठ पूजा करने के अनन्तर 'ह्रीं श्रीं प्रगट गुप्ततर संप्रदाय कुल निगर्भ रहस्यातिरहस्य परापररहस्य संज्ञक श्री चक्रगत योगिनी पादुकाभ्यो नमः' मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर त्रिखण्डामुद्रा बाँधकर पुनः पुष्पाञ्जलि लेकर देवी से अपने को अभिन्न समझते हुए 'बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् । पाशाकुशशरांश्चापं धारयन्ती शिवां भजे' से ध्यान कर स्थापना आदि मुद्रा इस प्रकार प्रदर्शित करनी चाहिए ।

स्थापनामुद्रा - अधोमुखी कृता सैव स्थापनीति निगद्यते ।
सन्निधान - आश्लिष्ट मुष्टियुगला प्रोन्नताङ्गुष्ठयुग्मका ।
सन्निधाने समुदिष्टा मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः ।
सन्निरोध - अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधे समीरिता ।
समुखीकरण - हृदि बद्धाञ्जलिर्मुद्रा सम्मुखीकरणे मताः ।
सकलीकरण - देवाङ्गेषु षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलीकृतिः ।
अवगुण्ठनमुद्रा - सव्यहस्तकृता मुष्टिः दीर्घाधोमुखतर्जनी ।
अवगुण्ठनमुद्रेयममितो भ्रामिता भवेत् ।
अमृतीकरण - अन्योन्याभिमुखौ श्लिष्टौ कनिष्ठानामिका पुनः ।

तथा तु तर्जनीमध्या धेनुमुद्रा प्रकीर्त्तिता अमृतीकरणं कुर्यात्तया देशिकसत्तमः ।

परमीकरण - अन्योन्यग्रथितांगुष्ठौ प्रसारितकराङ्गुलिः ।

महामुद्रेयमुदिता परमीकरणं बुधैः ।

अब संक्षेप में तन्त्रान्तर प्रदर्शित पूजापद्धति लिखते हैं - जिसमें १. **आवाहन** एवं **स्थापन** की विधि पूर्व (द्र० ११.१०६-१०७) में कह आये हैं । अब आसनादि का प्रकार कहते हैं -

२. **आसन** - मूलमन्त्र का उच्चारण कर -

ॐ सर्वान्तर्यामिनि देवि सर्वबीजमयं शुभम्। स्वात्मस्थाप्यपरं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम्॥

श्रीमत्रिपुरसुन्दरि आसनं गृहाण नमः' - इस मन्त्र से देवी को आसन समर्पित करना चाहिए ।

३. **उपवेशन** - मूलमन्त्र पढ़ कर - 'ॐ अस्मिन्वरासने देवि सुखासीनाक्षरात्मिके ।

प्रतिष्ठिता भवेशि त्वं प्रसीद परमेश्वरि ।

श्रीमत्रिपुरसुन्दरि भगवति अत्रोपविष्टा भव नमः' - इस मन्त्र से देवी को आसन पर बैठाना चाहिए ।

४. **सन्निधिकरण** - मूलमन्त्र का उच्चारण कर -

'ॐ अनन्यं तव देवेशि यन्त्रं शक्तिरिदं वरे । सान्निध्यं कुरु तस्मिंस्त्वं भक्तानुग्रहतत्परे ॥

भगवति श्रीमत्रिपुरसुन्दरि इह सन्निधेहि' - ऐसा पढ़ कर सन्निधान मुद्रा द्वारा सन्निधिकरण करना चाहिए ।

५. **संमुखीकरण** -मूलमन्त्रकहकरॐ अज्ञानात् दुर्मनस्ताद्वा वैकल्पात् साधनस्य च ।

यदा पूर्णं भवेत्कृत्यं तदप्यभिमुखी भव ॥

श्रीमत्रिपुरसुन्दरि इह संमुखीभव' - इस मन्त्र को पढ़ कर पूर्वोक्त सम्मुखी मुद्रा द्वारा सम्मुखीकरण करना चाहिए ।

६. **सन्निरोधन** - मूल मन्त्र को पढ़ कर -

ॐ आज्ञया तव देवेशि कृपाम्भोधे गुणाम्बुधे । आत्मानन्दैकतृप्तां त्वां निरुणध्मि पितर्गुरौ।

श्रीमत्रिपुरसुन्दरि सन्निरुद्धयस्व मन्त्र से सन्निधानमुद्रा द्वारा देवी का सन्निरोध करना चाहिए ।

कुछ आचार्यों के मत में सन्निधिकरण, सन्निरोधन एवं सम्मुखीकरण की क्रिया मात्र मुद्रा प्रदर्शित कर करनी चाहिए । जैसा कि स्वयं ग्रन्थकार ने पहले कहा है । (द्र० ११. १०७)

७. **सकलीकरण** - देवी के अङ्गो में षडङ्गन्यास कर सकलीकरण करे। यथा -

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा,

कएईलह्रीं शिखायै वषट्, हसकहलह्रीं कवचाय हुम्,

सकलह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट् ।

८. **अवगुण्ठनमुद्रा** - मूलमन्त्र पढ़ कर -

'ॐ अव्यक्तवाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रप्रज्वलितद्युते । स्वतेजः पुञ्जकेनाशुवेष्टिता भव सर्वतः। श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरि हुम्' - मन्त्र से पूर्वोक्त अवगुण्ठन मुद्रा प्रदर्शित कर अवगुण्ठन करे तथा छोटिका मुद्रा द्वारा दिग्बन्धन करे ।

९. **अमृतीकरण आदि** - धेनुमुद्रा से अमृतीकरण, महामुद्रा से परमीकरण करने के बाद मूलमन्त्र से तीन बार देवी का पूजनकर इस प्रकार स्वागत करना चाहिए - यस्याः दर्शनमिच्छन्ति देवाः स्वाभीष्टसिद्धये । तस्मै ते परमीशायै स्वागतं स्वागतं च ते। कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सकलं जीवितं मम । आगता देवि देवेशि सुस्वागतमिदं पुनः ॥

१०. **पाद्य** - जल में श्यामाक, विष्णुक्रान्ता, कमल और दूर्वा डाल कर मूल मन्त्र से 'एतत्पाद्यं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्यै नमः' इस मन्त्र से पाद्य देना चाहिए ।

११. **अर्घ्य** - अर्घ्य पात्र में दूर्वा, तिल, दर्भाग्र, सरसों, जौ, पुष्प, गन्ध एवं अक्षत लेकर 'इदमर्घ्यं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्यै स्वाहा' - मन्त्र से अर्घ्य प्रदान करना चाहिए ।

१२. **आचमन** - आचमन के जल में लौंग, जायफल एवं कंकोल डालकर 'मूलमिदमाचमनीयं स्वधा' - यह मन्त्र पढ़ कर आचमन कराना चाहिए ।

१३. **स्नान** - स्नानीय जल में चन्दन, अगर एवं सुगन्धित द्रव्य डाल कर 'मूलं स्नानीयं जलं निवेदयामि', मन्त्र से स्नान कराना चाहिए । फिर पञ्चामृत शुद्धोदक एवं गन्धोदक से स्नान करा कर सर्वांग स्नान कराना चाहिए । तदनन्तर जल द्वारा अभिषेक करना चाहिए ।

१४. **वस्त्राभूषण** - इसके बाद पुनः आचमन करा कर देवी को वस्त्र और उत्तरीय समर्पित करना चाहिए । तदनन्तर पुनः आचमन करा कर अलंकारादि समर्पित करना चाहिए ।

१५. **गन्ध** - 'मूलं एव गन्धे नमः' - इस मन्त्र से गन्धमुद्रा (कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन गन्धमुद्रां प्रदर्शयेत्) द्वारा सुगन्धित इत्र चन्दनादि द्रव्य लगाना चाहिए ।

इसके बाद नाना प्रकार के परिमल सौभाग्य द्रव्य समर्पित कर अक्षत चढ़ाना चाहिए ।

१६. **पुष्प** - 'मूलमेतानि पुष्पाणि वौषट्' यह मन्त्र पढ़ कर पुष्पमुद्रा (अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां पुष्पमुद्रा प्रकीर्त्तिता) द्वारा ऋतुकालोद्भव पुष्प समर्पित करना चाहिए ।

इसके बाद तीन पुष्पाञ्जलियाँ समर्पित कर विधिवद्देवी का ध्यान कर परिवार के पूजनार्थ उनसे आज्ञा माँगनी चाहिए ।

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के एकादश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डाँ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ११॥

अथ द्वादशः तरङ्गः

श्रीविद्याया अथो वक्ष्ये परिवारप्रपूजनम् ।
कृतेन येन मन्त्रज्ञो लभते वाञ्छिताधिकम् ॥ १ ॥

श्रीविद्यायाः परिवारपूजनप्रकारः

शुक्लपक्षे यजेन्नित्याः कामेश्वर्यादिषोडश ।
कृष्णपक्षे विचित्राद्याः कामेश्वर्यवसानकाः ॥ २ ॥
षोडशीं च यजेन्मध्ये वक्ष्ये तद्यजनक्रमम् ।
एकैकं स्वरमुच्चार्य नित्यामन्त्रं समुच्चरेत् ॥ ३ ॥

---

* नौका *

श्रीविद्याया आवरणार्चनं वक्तुं प्रतिजानीते । **श्रीविद्याया** इति । येन मनोरथाधिकमाप्नोति ॥ १ ॥ शुक्लपक्षे कामेश्वर्यादि विचित्रान्तां बिन्दुं परितः कल्पिते त्रिकोणे प्रतिपार्श्वं वामावर्तेन । पञ्च पञ्च संपूज्य बिन्दौ षोडशीं मूलेन पूजयेत् । कृष्णपक्षे तु विचित्राद्याः कामेश्वर्यन्ताः स्व स्व मन्त्रेण तथैव संपूज्य मध्ये षोडशीं यजेत् ॥ २ ॥ तत्र विधिमाह – **एकैकमिति** । एकैकं स्वरमुक्त्वा वक्ष्यमाणमेकैकं नित्या मन्त्रं च प्रोच्य नित्यानामान्ते अमुक नित्याश्रीपादुकां पूजयामीति दक्षहस्तेन पुष्पचन्दनाक्षतानि तर्पयामीति वामहस्तेन जलं चार्पयेत् ॥ ३–४ ॥

---

* अरित्र *

अब श्रीविद्या के **आवरण पूजा की विधि** कहता हूँ - जिसके करने से साधक अपनी इच्छा से अधिक फल प्राप्त करता है ॥ १ ॥

शुक्लपक्ष में कामेश्वरी से विचित्रा पर्यन्त तथा कृष्ण पक्ष में विचित्रा से ले कर कामेश्वरी पर्यन्त १५ नित्याओं का (त्रिकोण की प्रत्येक रेखाओं पर ५, ५, के क्रम से वामावर्त) पूजन करना चाहिए । फिर मध्य बिन्दु पर षोडशी का मूलमन्त्र से पूजन करना चाहिए ॥ २-३ ॥

अब उन **नित्याओं के पूजन का क्रम** बतलाता हूँ - प्रथम एक एक स्वर फिर, वक्ष्यमाण नित्याओं का एक एक मन्त्र, फिर कामेश्वरी आदि का नाम, तदनन्तर

कामेश्वर्यादिनामान्ते नित्याश्रीपादुकां पठेत्।
पूजयामि तर्पयामि ह्रदयं प्रोच्य पूजयेत्॥ ४॥
बिन्दुं परितं आकल्प्य त्रिकोणे बिन्दुतोन्तिमम्।
दक्षहस्तेन पुष्पादिवामेनाम्भो विनिःक्षिपेत्॥ ५॥
केचिदाहुरिहाचार्या आर्द्रकेण जलं क्षिपेत्।
वामावर्तेन सम्पूज्याः कोणपार्श्वेषु पञ्चशः॥ ६॥

पञ्चदशनित्यादेवीमन्त्रास्तेषु कामेश्वरीमन्त्रः

नित्यामन्त्राः प्रवक्ष्यन्ते स्मृताः सर्वेष्टसिद्धिदाः।
बाला तारो नमः कामेश्वरि दृग्दीर्घजादिमः॥ ७॥
कामफलप्रदे सर्वसत्त्ववान्ते तु शंकरि।
सर्वान्ते तु जगद्वर्णात् क्षोभणान्ते करीति च॥ ८॥
वर्मत्रयं पञ्चबाणाः प्रतिलोमाकुमारिका।
कामेश्वरीमनुः[1] प्रोक्तः षट्चत्वारिंशदर्णवान्॥ ६॥

अम्भः जलं गोक्षीरं वा॥ ५॥ जले क्षीरे वा आर्द्रकं प्रास्यमिति केचित्॥ ६॥ नित्यां मन्त्रेषु कामेश्वरीमन्त्रमाह – **बालेति** । बाला ऐं क्लीं सौः । तारः प्रणवः । दृक् इ । दीर्घश्चासौ जादिमश्च छ॥ ७–८॥ वर्म हुं॥ ३॥ पञ्चबाणाः – द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः इति । कुमारिका बाला प्रतिलोमा । अं सौः क्लीं ऐं कामेश्वरी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम इति॥ ६॥

'नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' लगाकर पूजन करना चाहिए ॥ २-४ ॥

मध्य बिन्दु के ऊपर त्रिकोण में आरम्भ से लेकर अन्तिम बिन्दु पर्यन्त वामावर्त क्रम से इनकी कल्पना करनी चाहिए । दाहिने हाथ से 'पूजयामि' कहकर पुष्प समर्पित करे और बायें हाथ से 'तर्पयामि' कह कर जल या गाय का दूध चढ़ाना चाहिए । कुछ आचार्यो का कहना है कि अदरख के साथ जल चढ़ाना चाहिए । इस प्रकार त्रिकोण की प्रत्येक रेखा पर ५, ५, के क्रम से वामावर्त इन नित्याओं का पूजन करना चाहिए ॥ ५-६ ॥

अब पूजन के प्रयोग में लाये जाने वाले सभी **नित्याओं के मन्त्रों का उद्धार** कहता हूँ, जो स्मरण मात्र से समस्त इष्टसिद्धियों को प्रदान करते हैं –

(i) कामेश्वरी मन्त्र का उद्धार - बाला (ऐं क्लीं सौः), तार (ॐ) और 'नमः कामेश्वरि', फिर दृक् और दीर्घ आदि (इच्छा), फिर 'कामफलप्रदे', फिर 'सर्वसत्वव', फिर शंकरि', फिर 'सर्वजगत्क्षोभणकरि', फिर वर्मत्रय (हुं हुं हुं), फिर

---

१. ॐ ऐंक्लींसौःॐनमः कामेश्वरि इच्छाकामफलप्रदेसर्वसत्त्ववशंकरिसर्वजगत्क्षोभणकरि हुं हुं हुं द्रांद्रींक्लींब्लूंसः सौक्लींऐं कामेश्वरीनित्याश्रीपादुका पूजयामितर्पयामिनमः इत्येवप्रयोगः ।

भगमालिनीमन्त्रः

वाग्बीजं भगकर्णाढ्या निद्रागे भगिनीति च।
भगोदरीतिवर्णान्ते भगमाले भगावहे ॥ १० ॥
भगगुह्ये भगान्ते स्याद्योने भगनिपातिनि।
सर्वान्ते भगशब्दान्ते वशंकरि भगेति च ॥ ११ ॥
रूपे नित्यपदं क्लिन्ने भगस्वग्निः सदीपकः।
पेसर्वभस्मृतिर्दीर्घानि मेह्यानय वाग्नयः ॥ १२ ॥
देरेतेसु सझिण्टीशः पावकस्ते भगार्णकाः।
क्लिन्नेक्लिन्नद्रवेक्लेदयद्रावय च केशवः ॥ १३ ॥
मोघेभगान्ते विच्चे च क्षुभ क्षोभय सर्व च।
सत्वान्भगेश्वरि प्रान्ते वाग्ब्लूं जंब्लूं च भेंपुनः ॥ १४ ॥
ब्लूंमोंब्लूंहेंपुनः ब्लूंहोंक्लिन्ने सर्वाणि भाक्षरम्।
गानि मे वशमानान्ते मारुतः स्त्रीं हरेति च ॥ १५ ॥
ब्लेंमायांगत्रिभूवर्णा प्रोदिताभगमालिनी।

भगमालिनीमाह – **वागिति** । वाग्बीजं ऐं । कर्णाढ्या निद्रा उयुतो भः भुः ॥ १०–११ ॥ सदीपकः अग्निः ऊयुतो रः रूः । दीर्घास्मृतिः गा । अग्नि रेफः ॥ १२ ॥ सझिण्टीशः पावकः एयुतोरः रे । केशवः अः ॥ १३ ॥ वाक् ऐं ॥ १४ ॥ मारुतो यः ॥ १५ ॥ माया ह्रीं । स्वरूपमन्यत् । अङ्गत्रिभूवर्णा

पञ्चबाण (द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः), और इसके अन्त में प्रतिलोमा बाला (सौः क्लीं ऐं) लगाने से ४६ अक्षरों का कामेश्वरी मन्त्र बनता है ॥ ७-६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (अं) 'ऐं क्लीं सोः ॐ नमः कामेश्वरि, इच्छाकाम फलप्रदे सर्व सत्ववशंकरि सर्वजगत्क्षोभणकरि हुं हुं हुं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं स सौः क्लीं ऐं' । इसके बाद 'कामेश्वरी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' लगाकर कामेश्वरी को पुष्प तथा जल समर्पित करे ॥ ७-६ ॥

(ii) भगमालिनी मन्त्र का उद्धार - वाग्बीज (ऐं), फिर 'भग', फिर कर्णाख्या निद्रा (भु), फिर 'गे भगिनि', फिर 'भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुह्ये भग' के बाद 'योने भगनिपातिनि', 'सर्वभग', 'वशंकरिभग', 'रूपे नित्य', 'क्लिन्ने भगस्व', तदनन्तर सदीपक अग्नि (रू), फिर 'पे सर्वभ', तदनन्तर दीर्घस्मृति (गा), फिर 'न मे ह्यानय व', एवं अग्नि (र), फिर 'दे रेतसु', एवं सझिण्टीश पावक (रे), फिर 'ते भग', 'क्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय', एवं केशव (अ) फिर 'मोघे भग', 'विच्चे', 'क्षुभ क्षोभय सर्व', 'सत्वान् भगेश्वरि', फिर वाक् (ऐं), 'ब्लूं जं ब्लूं' 'भें ब्लूं मों ब्लूं हें ब्लूं हों', 'क्लिन्ने सर्वाणिभ', 'गानि मे

नित्यक्लिन्नामन्त्रः

नित्यक्लिन्ने मदद्रान्ते पद्मनाभयुतंजलम् ॥ १६ ॥
मायाद्याग्निप्रियान्तेऽयं नित्यक्लिन्ना शिवाक्षरः ।

भेरुण्डामन्त्रः

बान्तो रेफासनस्तारसंयुतोंकुशसम्पुटः ॥ १७ ॥

षट्त्रिंशदुत्तरशतार्णा भगमालिनी । यथा – (आं) ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोने भगनिपातिनि सर्वभगवशंकरि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वभगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविच्चे क्षुभ क्षोभय सर्वसत्त्वान् भगेश्वरीं ऐं ब्लूं जं ब्लूं भें ब्लूमों ब्लूं हें ब्लूं हों क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं हर ब्लें ह्रीं (१३६) भगमालिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि नमः। नित्यक्लीन्नामन्त्रमाह – **नित्येति** । पद्मनाभयुतं जलम् एयुतो वः वे ॥ १६ ॥ माया ह्रीं तदाद्या । अग्निप्रिया स्वाहां तदन्ता । शिवाक्षर एकादशार्णम् । यथा – (इं) ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा (११) नित्यक्लिन्ना नित्या श्रीपादुकां पूजयामि । भेरुण्डामन्त्रमाह

वशमान' एवं मारुत (य), फिर 'स्त्रीं हर', 'ब्लें', और अन्त में माया (ह्रीं) लगाने से एक सौ छत्तीस अक्षरों वाला भगमालिनी मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १०-१६॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है -(आं) 'ऐं भगभुगे भगिनि भगोदरि भगमाले भगावहे भगगुह्ये भगयोने भगनिपातिनि सर्वभगवशंकरि भगरूपे नित्यक्लिन्ने भगस्वरूपे सर्वभगानि मे ह्यानय वरदे रेते सुरेते भगक्लिन्ने क्लिन्नद्रवे क्लेदय द्रावय अमोघे भगविच्चे क्षुभक्षोभय सर्वसत्वान् भगेश्वरि ऐं ब्लूं जं ब्लूं भें ब्लूं मों ब्लूं हें ब्लूं हों क्लिन्ने सर्वाणि भगानि मे वशमानय स्त्रीं हर ब्लें ह्रीं (१३६) । इसके बाद 'भगमालिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' लगाकर भगमालिनी का पूजन करना चाहिए ॥ १०-१६ ॥

(**iii**) अब **नित्यक्लिन्ना मन्त्र का उद्धार** करते हैं - 'नित्यक्लिन्ने मदद्र' के बाद पद्माय सहित जल (वे) इसके प्रारम्भ में माया तथा अन्त में अग्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से ११ अक्षरों का नित्यक्लिन्ना मन्त्र निष्पन्न होता है ।

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (इं) 'ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा' । इसके बाद 'नित्यक्लिन्ना नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' लगाकर नित्यक्लिन्ना का पूजन करना चाहिए ॥ १६ ॥

(**iv**) अब **भेरुण्डा मन्त्र का उद्धार** करते हैं - तार संयुक्त रेफासन वान्त (भ्रों) जो अंकुश (क्रों) से संपुटित हो (क्रों भ्रों क्रों), फिर वह्नि, मनु एवं बिन्दु संयुक्त च वर्ग के ४ वर्ण (च्रौं छ्रौं ज्रौं झ्रौं), इसके अन्त में

चवर्गवर्णाश्चत्वारो वह्निमन्विन्दुसंयुताः ।
वह्निप्रियान्तस्ताराद्यो भेरुण्डाया दशाक्षरः ॥ १८ ॥

वह्निवासिनीमन्त्रः

मायान्ते वह्निवासिन्यै प्रणवाद्यो नमोन्तिकः ।
मन्त्रोऽयं वह्निवासिन्या नववर्णः समीरितः ॥ १६ ॥

महाविद्येश्वरीमन्त्रः

तारो मायाशिखीवह्निपद्मनाभेन्दुसंयुतः ।
सविसर्गो भृगुर्नित्या क्लिन्ने पश्चान्मदद्रवे ॥ २० ॥
स्वाहान्तो मनुवर्णोऽयं महाविद्येश्वरीमनुः ।

– बान्तो भः । बान्त इति । रेफयुतः तारसंयुतः ओंकारसंयुतः भ्रों । स कीदृशः । अंकुशसंपुट क्रोमिति बीजेनादावन्ते युतः ॥ १७ । चवर्गस्य चत्वारो वर्णाः वह्निमन् बिन्दुसंयुता र औ बिन्दुयुताः च्रौं छ्रौं ज्रौं झ्रौं । स्वाहान्तः प्रणवाद्यो दशवर्णः । यथा – ई ॐ क्रों भ्रों क्रों च्रौं छ्रौं ज्रौं झ्रौं स्वाहा (१०) भेरुण्डा नित्या श्रीपादुकां पूजयामि ॥ १८॥ वह्निवासिनीमन्त्रमाह – **मायेति** । स्पष्टम् । यथा – उं ॐ ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः (६) वह्निवासिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि ॥ १६॥ महाविद्येश्वरी– मन्त्रमाह – **तार** इति । तार ॐ । माया ह्रीं । शिखी फः । वह्नि पद्मनाभेन्दुसंयुतः र ए बिन्दुयुतः फ्रें । सविसर्गो भृगुः सः ॥ २०॥

अग्निप्रिया (स्वाहा) तथा आरम्भ में तार (ॐ) लगाने से १० अक्षरों का भेरूण्डा मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १७-१८ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (ईं) 'ॐ क्रों भ्रों क्रों च्रौं छ्रौं ज्रौं झ्रौं स्वाहा' । इसके बाद 'भेरुण्डा नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' लगाकर भेरूण्डा का पूजन करना चाहिए ॥ १७-१८ ॥

(v) वह्निवासिनी मन्त्र का उद्धार - माया (ह्रीं), उसके बाद वह्निवासिन्यै, अन्त में 'नमः' तथा प्रारम्भ में प्रणव (ॐ) लगाने से ६ अक्षरों का वह्निवासिनी मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (उं) 'ॐ ह्रीं वह्निवासिन्यै नमः' । इसके बाद 'वह्निवासिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' लगाकर वह्निवासिनी का पूजन करना चाहिए ॥ १६ ॥

(vi) अब **महाविद्येश्वरी मन्त्र का उद्धार** कहते है - तार (ॐ), माया (ह्रीं), वह्नि पद्मनाभ एवं इन्दुसहित शिखी (फ्रें), फिर विसर्ग सहित भृगु (सः), फिर नित्यक्लिन्ने मदद्रवे, और अन्त मे स्वाहा लगाने से १४ अक्षरों का महाविद्येश्वरी मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २०-२१ ॥

शिवदूतीमन्त्रः त्वरितामन्त्रः कुलसुन्दरीमन्त्रश्च

शिवदूतीचतुर्थ्यन्ता मायाद्याहृदयान्तिका ॥ २१ ॥
शिवदूती मनुः प्रोक्तः सप्तवर्णोखिलेष्टदः ।
तारः परावर्मखे च छे क्षः स्त्रीवामकर्णयुक् ॥ २२ ॥
गगनं शशिसंयुक्तं मेरुर्भगयुतोऽद्रिजा ।
फडन्तो द्वादशार्णोऽयं त्वरिताया मनुर्मतः ॥ २३ ॥
दामोदरो बिन्दुयुतः कलौशान्तीन्दुसंयुतौ ।
भृगुर्मनुविसर्गाद्यस्त्र्यक्षरा कुलसुन्दरी ॥ २४ ॥

मनुवर्णश्चतुदशार्णः । यथा – ऊं ॐ ह्रीं फ्रें सः नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा महाविद्येश्वरीनित्याश्रीपादुकां पू० ॥ २१ ॥ शिवदूतीमन्त्रमाह – शिवेति । यथा – ॠं ह्रीं शिवदूत्यै नमः। (७) शिवदूती नित्या श्रीपादुकां पूजयामि । त्वरितामन्त्रमाह – **तार** इति । तार ॐ । परा ह्रीं । वर्म हुं । खे च छे क्षः स्त्रीस्वरूपम् । वामकर्णयुक् ॥ २२ ॥ शशियुतं च गगनं (१२) ऊबिन्दुयुतो हः हूं । मेरुः क्षः भगंए तद्युतः क्षे । अद्रिजा ह्रीं । यथा – ॠं ॐ ह्रीं हुं खे च छेः स्त्रीं हूं क्षे ह्रीं फट् (१२) त्वरिता नित्या श्रीपादुकां पूजयामि ॥ २३ ॥ कुलसुन्दरीमन्त्रमाह – **दामोदर** इति । दामोदरः ऐ बिन्दुयुतः ऐं । कलौ शान्तीन्दुसंयुतौ इबिन्दुसंयुतौ क्लीं । मनुविसर्गाढ्यो भृगुः सः औसर्गयुतः सौः। यथा – लृं ऐं क्लीं सौः (३) कुलसुन्दरी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि ॥ २४ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (ऊं) 'ॐ ह्रीं फ्रें सः नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा' (१४) । इसके बाद 'महाविद्येश्वरी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' लगाकर महाविद्येश्वरी का पूजन करना चाहिए ॥ २०-२१ ॥

(vii) अब **शिवदूती मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - चतुर्थ्यन्त शिवदूती (शिवदूत्यै) के प्रारम्भ में माया (ह्रीं), तथा अन्त में हृदय (नमः) लगाने से ७ अक्षरों का सर्वाभीष्टप्रद शिवदूती मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २१-२२ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (ॠं) 'ह्रीं शिवदूत्यै नमः शिवदूती नित्या श्रीपादुकां पूजयामि नमः' ॥ २१-२२ ॥

(viii) अब **त्वरिता मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - तार (ॐ), परा (ह्रीं), वर्म (हुं), फिर खेच छे क्षः स्त्री फिर वामकर्ण एवं शशि सहित गगन (हूं), फिर भगयुक्त मेरू (क्षे), अद्रिजा (ह्रीं), तथा अन्त में फट् लगाने से त्वरिता का १२ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २२-२३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (ॠं) 'ॐ ह्रीं हुं खे च छे क्ष स्त्रीं हूं क्षे ह्रीं फट्' । इसके बाद 'त्वरिता नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' लगा कर पूजा करनी चाहिए ॥ २२-२३ ॥

नित्यानीलपताकिनीविजयानां मन्त्राश्च

भैरवीबालयायुक्ता प्राक्पश्चाच्च क्रमोत्क्रमात् ।
तदन्ते पञ्चबाणाः स्युर्नित्यामन्वक्षरेरिता ॥ २५ ॥
तारो मायाफान्तरेफौ झिण्टीशशशिसंयुतौ ।
हंसोऽग्न्यर्धीशबिन्द्वाढ्यो हृल्लेखांकुशनित्यम ॥ २६ ॥
दद्रवेवर्म सृण्यन्ता प्रोक्ता नीलपताकिनी ।
चतुर्दशाक्षरा सर्वत्रैलोक्याकर्षणक्षमा ॥ २७ ॥

नित्यामन्त्रमाह – **भैरवीति** । प्राक् क्रमात् पश्चिमाद् उत्क्रमाद् वलयायुता त्रिपुरभैरवी । ततः पञ्चबाणबीजानि । एषा मन्वक्षरा चतुर्दशार्णा नित्येरिता । यथा – लॄं ऐं क्लीं सौः ह्सौं सू क्लीं ह्स्रौं सौः क्लीं ऐं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः (१४) नित्या श्रीपादुकां पूजयामि ॥ २५ ॥ नीलपताकिनीमन्त्रमाह – **तार** इति । तार ॐ । माया ह्रीं । फान्तरेफौ फरौ तौ झिण्टीशशशिसंयुतौ एबिन्दुयुतौ फ्रें । हंसः स अग्न्यर्धीश बिन्द्वाढ्यः रबिन्दुयुतः स्त्रं । हृल्लेखा ह्रीं । अंकुशः क्रों । नित्यमदद्रवे स्वरूपम् । वर्म हुं । सृणिः क्रों । यथा – एं ॐ ह्रीं फ्रें स्त्रं ह्रीं क्रों नित्यमदद्रवे हुं क्रों (१४) नीलपताकिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि ॥ २६–२७ ॥

(ix) अब **कुलसुन्दरी मन्त्र का उद्धार** कहते है - बिन्दुयुत दामोदर (ऐं), शान्ति इन्दु सहित क् ल् (क्लीं), मनु (औ) एवं विसर्ग सहित भृगु (सौः), इस प्रकार तीन अक्षरों का कुलसुन्दरी मन्त्र निष्पन्न होता है ।

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - (लृं) 'ऐं क्लीं सौः' इसके बाद 'कुलसुन्दरी नित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' से कुलसुन्दरी का पूजन करना चाहिए ॥ २४ ॥

(x) अब **नित्या मन्त्र का उद्धार** कहते है - आगे क्रम एवं पीछे उत्क्रम से बालामन्त्र (ऐं क्लीं सौः) से संपुटित त्रिपुरभैरवी इसके बाद पञ्चबाणबीज मन्त्र इस प्रकार कुल १४ अक्षरों का नित्या मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (लूं) 'ऐं क्लीं सौः ह्सौः, ह्स्क्लरीं ह्सौः सौः क्लीं ऐं द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः (१४) नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' ॥ २५ ॥

(xi) इसके बाद **नीलपताकिनी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - तार (ॐ), माया (ह्रीं), झिंटीश एवं शशी सहित फ एवं रेफ (फ्रें), अग्नि, अर्धीश एवं बिन्दु सहित हंस (स्त्रं), फिर हृल्लेखा (ह्रीं), अंकुश (क्रों), तथा 'नित्य मदद्रवे', फिर वर्म (हूं) तथा अन्त में सृणि (क्रों) लगाने से १४ अक्षरों का समस्त त्रिलोकी को आकर्षित करने वाला नीलपताकिनी का मन्त्र कहा गया है ॥ २६-२७ ॥

वराहहंसचण्डीशजनार्दनकृशानवः ।
पद्मनाभेन्दुसंयुक्ता विजयायै नमोन्तिकः ॥ २८ ॥
विजयाया मनुः प्रोक्तः सप्तवर्णोऽखिलार्थदः ।

सर्वमङ्गलाज्वालामालिनीविचित्राणां मन्त्राः

ताराढ्यौ भृगुखड्गीशौ ङेन्तास्यात्सर्वमङ्गला ॥ २९ ॥
नमोन्तो मनुराख्यातो नवार्णः सर्वमङ्गलः ।
तारो नमो भगवतिज्वालामालिनि तत्परम् ॥ ३० ॥
देव्यन्ते सर्वभूतान्ते संहारान्ते तु कारिके ।
जातवेदसिवर्णान्ते ज्वलन्ति प्रज्वलन्ति च ॥ ३१ ॥

विजयामन्त्रमाह – **वराहेति** । वराहो हः । हंसः सः । चण्डीशः खः । जनार्दनः फः । कृशानू रः । एते पद्मनाभेन्दुसंयुक्ताः एबिन्दुना युताः । एतत् कूटं ह्स्ख्फ्रें । स्वरूपमन्यत् । यथा – ऐं ह्स्ख्फ्रें विजयायै नमः (७) विजयानित्याश्रीपादुकां पूजयामि ॥ २८ ॥ सर्वमङ्गलामन्त्रमाह – **ताराढ्याविति** । भृगुखड्गीशौ स्वौ ताराढ्यौ ओं युतौ स्वों । ङेन्ता चतुर्थ्येकवचनान्ता ॥ २९॥ यथा – ओं स्वों सर्वमङ्गलायै नमः (९) सर्वमङ्गलानित्याश्रीपादुकां पूजयामि। ज्वालामालिनीमन्त्रमाह – **तार** इति । तार ॐ । स्वरूपमग्रे । कवचे हुं । पावक द्वयं रं रं । वर्मास्त्रान्ता हुं फडन्ता । अष्टयुगाक्षरा अष्टचत्वारिंशदर्णा

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (एं) 'ॐ ह्रीं फ्रें स्त्रं ह्रीं क्रों नित्यमदद्रवे हूं क्रों नीलपताकिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' ॥ २६-२७ ॥

(**xii**) अब **विजया मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - पद्मनाभ (ए), एवं इन्दुसहित वराह (ह), हंस (स), चण्डीश (ख), जनार्दन (फं), एवं कृशानु र ह्स्ख्फ्रें), फिर 'विजयायै नमः' यह ७ अक्षरों का सर्वदायक विजयामन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २८-२९ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (ऐं) 'ह्स्ख्फ्रें विजयायै नमः (७) विजया नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' ॥ २८-२९ ॥

(**xiii**) अब **सर्वमङ्गला मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - तार (ॐ) सहित भृगु एवं खड्गीश स्वों फिर चतुर्थ्यन्त सर्वमङ्गला (सर्वमङ्गलायै) इसके अन्त में 'नमः' लगाने से ९ अक्षरों का सर्वमङ्गला मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २९-३० ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (ओं) 'स्वों सर्वमङ्गलायै नमः सर्वमङ्गलानित्या श्रीपादुकां पूजयामि, तर्पयामि नमः' यह पूजन का मन्त्र है ॥ २९-३० ॥

(**xiv**) अब **ज्वालामालिनी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - तार (ॐ), फिर नमो भगवति ज्वालामालिनि के बाद देवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि

ज्वलद्वयं प्रज्वलान्ते कवचं पावकद्वयम्।
वर्मास्त्रान्तोदिताज्वालामालिन्यष्टयुगाक्षरा ॥ ३२ ॥
कूर्मः क्रोधीशमन्विन्दुसंयुतो ह्येकवर्णकः।
विचित्राया मनुश्चैता नित्याः पञ्चदशोदिताः ॥ ३३ ॥

आसां मध्ये त्रिपुरसुन्दर्यायजनम्

मूलेन षोडशीं मध्ये यजेत् त्रिपुरसुन्दरीम्।
बिन्दुत्रिकोणयोर्मध्ये त्रिभङ्गीभिर्गुरून् यजेत् ॥ ३४ ॥

– ज्वालामालिनी उदिता । यथा – औं ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि देवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्वल हुं रं हुं फट् (४८) ज्वालामालिनीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि ॥ ३०–३२ ॥ विचित्रामन्त्रमाह – **कूर्मेति** । कूर्मश्चकारः क्रोधीश मं बिन्दुयुतः क औ बिन्दु युतः च्कौं । अत्र प्रथमश्चकारः। यथा – अं च्कौं (१) विचित्रानित्याश्रीपादुकां पूजयामि । एता पञ्चदशनित्याः ॥ ३३ ॥ एतास्त्रिकोणे पञ्चदश संपूज्य बिन्दौ मूलेन षोडशीं यजेत् । यथा – अं मूलं महात्रिपुरसुन्दरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। बिन्दु त्रिकोणयोर्मध्ये त्रिभङ्गीभिः पंक्तित्रयेण गुरून् यजेत् ॥ ३४ ॥

ज्वलन्ति प्रज्वलन्ति, इसके बाद दो बार ज्वल (ज्वल ज्वल), फिर 'प्रज्वल', फिर कवच (हुं) के बाद दो बार पावक (रं रं), फिर वर्म (हुं), इसके अन्त में अस्त्र (फट्) लगाने से ४८ अक्षरों का ज्वालामालिनी मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ३०-३२ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (औं) 'ॐ नमोभगवति ज्वालामालिनि देवि सर्वभूतसंहारकारिके जातवेदसि ज्वलन्ति प्रज्वलन्ति ज्वल ज्वल प्रज्वल हुं रं रं हुं फट् (४८) ज्वालामालिनी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' ॥ ३०-३२ ॥

(XV) अब **विचित्रा मन्त्र का उद्धार** कहते है - मनु (औ), बिन्दु सहित कूर्म (चकार), एवं क्रोधीश क (च्कौं), यह विचित्रा का एकाक्षर मन्त्र है इस प्रकार कुल १५ नित्याओं का पूजन प्रकार कहा गया ।

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (अं) च्कौं विचित्रा नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः यह विचित्रा के पूजन का मन्त्र है ॥ ३३ ॥

त्रिकोण में कुल १५ नित्याओं का पूजन कर मध्य बिन्दु में मूल मन्त्र से १६ वीं महात्रिपुरसुन्दरी का पूजन करना चाहिए । फिर बिन्दु और त्रिकोण के मध्य की तीन पंक्तियों में गुरुओं का पूजन करना चाहिए ॥ ३४ ॥

विमर्श – षोडशी पूजन के लिए मन्त्र - (अः) 'मूलं महात्रिपुरसुन्दरी नित्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ॥ ३४ ॥

नानाविधगुरुकथनं तेषां पूजनप्रकारश्च

दिव्यौघाश्चापि सिद्धौघमानवौघस्त्रिधा हिते।
परप्रकाशः प्रथमस्ततः परशिवाभिधः ॥ ३५ ॥
परशक्तिश्च कौलेशः शुक्लादेवी कुलेश्वरः।
कामेश्वरीति सप्तैव दिव्यौघा गुरवः पराः ॥ ३६ ॥
भोगः क्रीडश्च समयः सहजश्च परावरः।
सिद्धौघगुरवश्चैते चत्वारः परिकीर्तिताः ॥ ३७ ॥
गगनो विश्वविमलौ मदनो भुवनस्तथा।
लीलास्वात्मा प्रियेत्यष्टौ मानवा अपरा मताः ॥ ३८ ॥
आनन्दनाथशब्दान्ताः पुरुषागुरवः स्मृताः।
अम्बान्तास्तु स्त्रियः कार्याः सर्वसिद्धिप्रदायिकाः ॥ ३९ ॥
परशक्तिस्तथा शुक्ला देवी कामेश्वरीति च।
तिस्रः स्त्रियस्तु दिव्येषु प्रियालीलेति मानवे ॥ ४० ॥

ते त्रिविधा इत्याह – **दिव्यौघा** इति । दिव्यौघानाह – **पर प्रकाश** इति ॥ ३५–३६ ॥ सिद्धौघानाह – **भोग** इति ॥ ३७ ॥ मानवौघानाह – **गगन** इति ॥ ३८ ॥ पुमांसो गुरवः आनन्दनाथ शब्दान्ताः कार्याः । स्त्रियो गुरवस्तु अम्बाशब्दान्ताः ॥ ३९ ॥ कतिस्त्रियः कतिनराइत्यत्राह – **परशक्तिरिति** । दिव्यगुरुषु परशक्ति शुक्लादेवी कामेश्वर्यस्तिस्रः स्त्रियश्चत्वारोन्ये पुमांसः । मानवागुरुषु प्रियालीले द्वे स्त्रियौ षडन्य नराः । सिद्धगुरुषु चत्वारोऽपि पुमांस एव । तथा च प्रयोगः – परप्रकाशानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि नमः । परशक्त्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामीत्यादि० ॥ ४० ॥

अब **त्रिविध गुरुओं का निर्देश** कहते हैं - दिव्यौघ, सिद्धौघ, और मानवौघ भेद से गुरु तीन प्राकर के कहे गये है । १. परप्रकाश, २. परशिव, ३. परशक्ति, ४. कौलेश, ५. शुक्लादेवी, ६. कुलेश्वर और ७. कामेश्वरी ये ७ परम दिव्यौघ गुरु हैं । १. भोग, २. क्रीड, ३. समय, ४. सहज ये चार परावर सिद्धौघ्य गुरु बतलाये गये हैं ॥ ३५-३७ ॥

१. गगन, २. विश्व, ३. विमल, ४. मदन, ५. भुवन, ६. लीला, ७. स्वात्मा और ८. प्रिया ये आठ अपर मानवीय गुरु कहे गये हैं ॥ ३८ ॥

अब **गुरुओं के पूजन का मन्त्र** कहते हैं - पुरुष, गुरुओं के नाम के आगे 'आनन्दनाथ' तथा स्त्री गुरुओं के नाम के बाद अम्बा शब्द लगाकर पूजन करना चाहिए । दिव्यौघ गुरुओं में परशक्ति शुक्ला देवी और कामेश्वरी - ये तीन स्त्रियाँ है । तथा मानवीय गुरुओं में लीला और प्रिया ये दो स्त्रियाँ है।

श्रीपादुकां पूजयामीत्यन्ते सर्वत्र योजयेत्।
ततो बिन्दोश्चतुर्दिक्षु यजेदाम्नायदेवताः॥ ४१॥
पूर्वं दक्षिणमाम्नायं पश्चिमं चोत्तरं तथा।
ततः प्रपूजयेद् दिक्षु मध्येतः पञ्चपञ्चिकाः॥ ४२॥

प्रथमपञ्चके लक्ष्म्यादिमन्त्रदेवत कथनम्

आद्यां मध्ये चतस्रोन्याः पूर्वाद्याशासु पूजयेत्।
पञ्चस्वपि गणेष्वत्र श्रीविद्याद्या प्रकीर्तिता॥ ४३॥

देवतापञ्चपञ्चकग्रेजनप्रकारः

श्रीविद्या च तथा लक्ष्मीर्महालक्ष्मीस्तृतीयका।
त्रिशक्तिः सर्वसाम्राज्यापञ्चलक्ष्म्यः प्रकीर्तिताः॥ ४४॥

बिन्दोः प्रागादिदिक्षु पूर्वाम्नायदेवता श्रीपादुकां पू० । दक्षिणाम्नाय देवतेत्यादिचतस्रः आम्नान्यदेवताः पूजयेत् । ततः पञ्चपञ्चिकाः पूजयेत् ॥ ४१–४२॥ आद्यां मूलेन मध्ये द्वितीयाद्या स्वस्वदिक्षु स्वस्वमन्त्रैरिति वक्ष्यते । एवमन्याः पञ्चिकाः ॥ ४३ ॥ तासु प्रथमपञ्चिकामाह – **श्रीविद्येति** । आद्यपञ्चकं लक्ष्मीं संज्ञम् ॥ ४४ ॥

इन गुरुओं के नाम के आगे 'श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' लगाकर पूजन करना चाहिए । यथा - परप्रकाशानन्दनाथ श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः इत्यादि ॥ ३६-४१ ॥

फिर बिन्दु के चारों दिशाओं में पूर्वादि दिशओं के दाहिने क्रम से आम्नाय देवताओं का पूजन करना चाहिए ॥ ४१-४२ ॥

विमर्श - उसकी विधि इस प्रकार है -

ह्रीं श्रीं पूर्वाम्नाय देवता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः,
ह्रीं श्रीं दक्षिणाम्नाय श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः,
ह्रीं श्रीं पश्चिमाम्नाय श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः,
ह्रीं श्रीं उत्तराम्नाय श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ॥ ४१-४२ ॥

पञ्चपञ्चिकाओं का पूजन - इसके बाद मध्य में तथा पूर्वादि चारों दिशाओं में पञ्च पञ्चिकाओं का पूजन करना चाहिए । मध्य में आद्या का तथा पूर्वादि चारों दिशाओं में अन्य चारों का पूजन करना चाहिए । पञ्चिकाओं के पाँच वर्गो में आद्या श्रीविद्या ही बतलाई गई है ।

(i) १. श्रीविद्या, २. लक्ष्मी, ३. महालक्ष्मी, ४. त्रिशक्ति और ५. सर्वसाम्राज्य ये ५ महालक्ष्मी कहीं गई हैं । यह आद्य पञ्चक लक्ष्मी संज्ञक है ।

द्वितीये कोशपञ्चके परंज्योतिर्देवताकथनम्

श्रीविद्या च परं ज्योतिः परनिष्कलशाम्भवी।
अजपामातृका चेति पञ्चकोशा इमे स्मृताः ॥ ४५ ॥
श्रीविद्या त्वरिता चैव पराजितेश्वरी पुनः।
त्रिपुटा पञ्चबाणेशी पञ्च कल्पलता इमाः ॥ ४६ ॥
श्रीविद्यामृतपीठेशी सुधाश्रीरमृतेश्वरी।
अन्नपूर्णेति विख्याताः पञ्चैताः कामधेनवः ॥ ४७ ॥
श्रीविद्यासिद्धलक्ष्मीश्च मातङ्गीभुवनेश्वरी।
वाराही च स्मृतं चैतन्मुनिभी रत्नपञ्चकम् ॥ ४८ ॥
श्रीविद्यां मूलमन्त्रेण मध्ये संयोज्य पूजयेत्।
क्रमतोऽन्याश्चतुर्दिक्षु तासां मन्त्रान् क्रमाद् ब्रुवे ॥ ४६ ॥
बकेशो वह्निमारूढो वामनेत्रेन्दुसंयुतः।
लक्ष्मीमन्त्रोऽयमेकार्णस्तेन लक्ष्मीं प्रपूजयेत् ॥ ५० ॥

द्वितीयं पञ्चकं कोशसंज्ञम् ॥ ४५ ॥ तृतीयं पञ्चकं कल्पकलता संज्ञम् ॥ ४६ ॥ चतुर्थपञ्चकं कामधेनुसंज्ञम् ॥ ४७ ॥ पञ्चमं पञ्चकंरत्न संज्ञकम् ॥ ४८ ॥ तासां क्रमान् मन्त्रान् वदति – **श्रीविद्यामिति** । तत्राद्यपञ्चकमूलेन श्रीविद्यामध्ये पूज्या दिक्षुलक्ष्म्याद्याः ॥ ४६ ॥ तत्र लक्ष्मीमन्त्रमाह – **बकेश इति**। बकेशः शः । वह्नी रेफस्तद्युतं वामनेत्रमी इन्दुबिन्दुस्तद्युतश्च श्रीं । तेन – श्रीं (१) लक्ष्मी श्रीपादुकां पू० इति पूर्वे ॥ ५० ॥

(**ii**) १. श्रीविद्या, २. परज्योति, ३. परनिष्कलशाम्भवीं, ४. अजया और ५. मातृका इन पाँचों की पञ्चकोश संज्ञा है ।

(**iii**) १. श्रीविद्या, २. त्वरिता, ३. पारिजातेश्वरी, ४. त्रिपुटा और ५. पञ्चबाणेशी इन पाँचों की कल्पलता संज्ञा है ।

(**iv**) १. श्रीविद्या, २. अमृतपाटेशी, ३. सुधाश्री, ४. अमृतेश्वरी, और ५. अन्नपूर्णा इन पञ्चक की कामधेनु संज्ञा है ।

(**v**) १. श्रीविद्या, २. सिद्धलक्ष्मी, ३. मातङ्गी, ४. भुवनेश्वरी और ५. वाराही इन पञ्चक को मुनियों ने रत्नसंज्ञक कहा है ॥ ४२-४८ ॥

श्रीविद्या का मध्य में मूल मन्त्र से तथा अन्यों का क्रमशः पूर्व आदि चारों दिशाओं में पूजन करना चाहिए ॥ ४६ ॥

अब इनके **पूजामन्त्रों** को कहता हूँ - **महालक्ष्मी पञ्चक नाम प्रथम पञ्चक के मन्त्रों का उद्धार** - वामनेत्र एवं इन्दुसहित वह्नियुत् वकेश (श्रीं) यह एक अक्षर का लक्ष्मी पूजन का मन्त्र है । इससे लक्ष्मी का पूर्व में पूजन करना चाहिए ॥ ४६-५०॥

तारपद्माशक्तिपद्माकमले कमलालये ।
प्रसीदयुगलं लक्ष्मीर्माया पद्मा ध्रुवो महा ॥ ५१ ॥
लक्ष्म्यै नैमोन्तो मन्त्रोऽयमष्टाविंशतिवर्णवान् ।
पूज्यानेन महालक्ष्मीः श्रीविद्या दक्षिणे स्थिता ॥ ५२ ॥
लक्ष्मीर्मायामनोजन्मा त्रिशक्तिर्मनुरीरितः ।
त्रिवर्णोनेन तं पूज्या त्रिशक्तिः पश्चिमे स्थिता ॥ ५३ ॥
भृग्वाकाशकलामायारूढा पद्मालयापुटाः ।
त्रिवर्णाः सर्वसम्राज्या तां यजेदुत्तरस्थिताम् ॥ ५४ ॥

महालक्ष्मीमन्त्रमाह – **तारेति** । तार ॐ । पद्मा श्रीं । शक्तिः ह्रीं । पद्मा श्रीं लक्ष्मीः श्रीं माया ह्रीं । पद्मा श्रीं । ध्रुवः ॐ । स्वरूपं शेषम् । यथा – ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ महालक्ष्म्यै नमः (२८) महालक्ष्मी श्रीपा० इतिदक्षिणे ॥ ५१–५२ ॥ त्रिशक्तिमन्त्रमाह – **लक्ष्मीः** श्रीं । माया ह्रीं मनोजन्मा क्लीं । यथा – श्रीं ह्रीं क्लीं (३) त्रिशक्तिश्रीपा० पश्चिमे ॥ ५३ ॥ सर्वसाम्राज्या मन्त्रमाह – **भृग्विति** । भृगुः सः । आकाशो हः कला एतेमायास्थिताः । पद्मालया श्रीं । तेन पुटिताः । यथा – श्री (सहकल) स्हक्ल ह्रीं श्रीं (७) सर्वसाम्राज्या श्रीपा० उत्तरे ॥ ५४ ॥

तार (ॐ), पद्म (श्रीं), शक्ति (ह्रीं), एवं कमला (श्रीं), फिर 'कमले कमलालये' तदनन्तर दो बार प्रसीद (प्रसीद प्रसीद), फिर लक्ष्मी (श्रीं), माया (ह्रीं), पद्म (श्रीं), और ध्रुव (ॐ), और अन्त में 'लक्ष्म्यै नमः' यह २८ अक्षरों का महालक्ष्मी मन्त्र है इससे श्रीविद्या के दक्षिण में महालक्ष्मी का पूजन करना चाहिए ॥ ५१-५२ ॥

लक्ष्मीं (श्रीं), माया (ह्रीं), और मनोजन्मा (क्लीं), ये तीन अक्षर त्रिशक्ति के पूजन के मन्त्र हैं । इससे श्रीविद्या के पश्चिम में त्रिशक्ति का पूजन करना चाहिए ।

भृगु (स), आकाश (ह), फिर क ल और माया (ह्रीं), इस प्रकार स्हक्ल्हीं इस कूट को पद्मालया (श्रीं), से संपुटित करने पर तीन अक्षरों का सर्वसाम्राज्या का मन्त्र बनता है । इस मन्त्र से श्रीविद्या के उत्तर में स्थित सर्वसाम्राज्या का पूजन करना चाहिए ॥ ५३-५४ ॥

विमर्श - १. **लक्ष्मी मन्त्र** - श्रीं । २. **महालक्ष्मी मन्त्र** - ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं ॐ महालक्ष्म्यै नमः । ३. **त्रिशक्ति मन्त्र** - श्रीं ह्रीं क्लीं । ४. **सर्वसाम्राज्या मन्त्र** - श्रीं स्हक्ल्हीं श्रीं ।

पूजन का प्रकार -

मध्य में मूल मन्त्र 'महात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' ।

पूर्व में 'श्रीं लक्ष्मी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' ।

तारो माया ततो हंसः सोहं वह्निप्रियान्तिमः।
अष्टवर्णः परंज्योतिर्मनुस्तां पूर्वतो यजेत्॥ ५५॥
तारः परो निष्कलश्च शाम्भवीज्या तु दक्षिणे।
नभः सबिन्दुसर्गाढ्यो भृगुर्द्व्यर्णाजिपाऽपरे॥ ५६॥
अकारादिक्षकारान्ता वर्णाः प्रोक्ता तु मातृका।

तृतीयकल्पलतापञ्चके देवताकथनम्

प्रणवो भुवनेशी हुं खेच छेक्षः पदं पुनः॥ ५७॥

द्वितीयपञ्चके परज्योतिर्मन्त्रमाह – **तार** इति । तार ॐ । माया ह्रीं। यथा – ॐ ह्रीं हंसः सोहं स्वाहा (८) परंज्योतिः श्रीपा० पूर्वे॥ ५५॥ परनिष्कल-शाम्भवीमन्त्रमाह – **तार** इति । प्रणवस्तन्मन्त्रः। यथा – ॐ परनिष्कलशाम्भवी (८) श्रीपा० दक्षिणे । अजपामाह – **नभ** इति । नभो हः। भृगुः सः। यथा – हंसः (२) अजपा श्रीपा० पश्चिमे॥ ५६॥ आदिक्षान्तवर्णास्तु मातृका । अंआंइ ईं० क्षं (५१) मातृका श्रीपा० उत्तरे । कल्पलतापञ्चके त्वरितामन्त्रमाह – **प्रणव** इति । भुवनेशी ह्रीं॥ ५७॥ मेरुः क्षः । सझिण्टीशः एयुतः क्षे । यथा –

दक्षिण में 'ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्मी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' ।
पश्चिम में 'श्री ह्रीं क्लीं त्रिशक्ति पादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' ।
उत्तर में 'श्रीं स्हक्लह्रीं सर्वसाम्राज्या श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' ॥ ४९-५४॥

अब **द्वितीय कोशपञ्चक नामक देवियों के मन्त्रों का उद्धार** कहते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), फिर हंसः सोहं इसके अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से आठ अक्षरों का परंज्योति मन्त्र बनता है - इससे पूर्व में पूजा करनी चाहिए ॥ ५५ ॥

तार (ॐ) फिर परनिष्फलशाम्भवी यह ९ अक्षर का परनिष्फल शाम्भवी मन्त्र बनता है । इससे दक्षिण में पूजा करनी चाहिए । स बिन्दु नभ (हं), विसर्गाढ्य भृगु (सः) यह दो अक्षर का अजपा का मन्त्र है । इससे पश्चिम में उनका पूजन करना चाहिए ॥ ५६ ॥

अकार से क्षकार पर्यन्त सानुस्वार वर्णमाला मातृका का मन्त्र कहा गया है । इससे मातृकाओं का पूजन करना चाहिए ॥ ५७ ॥

विमर्श - १. **परंज्योति मन्त्र** - ॐ ह्रीं हंसः सोहं स्वाहा । २. **परनिष्कलशाम्भवी मन्त्र** - ॐ परनिष्कलशाम्भवी । ३. **अजपा मन्त्र** - हंसः । ४. **मातृका मन्त्र** - अं आं इं ईं उं ऊं ... हं लं क्षं ।

पूजन विधि -

ॐ ह्रीं हंसः सोहं स्वाहा परंज्योतिः श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः, पूर्वे,

स्त्रीं हुं मेरुः सझिण्टीशो मायास्त्रं द्वादशाक्षरः।
त्वरिताया मनुः प्रोक्तस्तेन तां पुरतोर्चयेत्॥ ५८॥
आकाशहंसक्रोधीशापिनाकीशहराधराः।
सेन्दवस्तारमायाभ्यां सम्पुटाश्च सरस्वती॥ ५६॥
ङेन्तो हृदन्तो मन्त्रोऽयं प्रोक्ता एकादशाक्षरः।
अनेन पारिजातेशीं दक्षिणस्यां प्रपूजयेत्॥ ६०॥
रमामायामनोभूमिस्त्रिवर्णा त्रिपुटोदिता।
तां यजेत् पश्चिमे भागे बाणेशीमुत्तरे पुनः॥ ६१॥
द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं भृगुः सर्गीसोदिता पञ्चवर्णका।

ॐ ह्रीं हुं खेच छेक्षः स्त्रीं हुं क्षे ह्रीं फट् (१२) त्वरिताश्रीपा० पूर्वे ॥ ५८ ॥ परिजातेश्वरी मन्त्रमाह – **आकशेति** । आकशो हः । हंसः सः । क्रोधीशः कः। पिनाकीशो लः। हर् स्वरूपम्। अधर ऐ । एते सबिन्दवः कूट तारमायासंपुटम्। यथा – ॐ ह्रीं हंसकलेंह ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः (११–१५) पारिजातेश्वरी श्रीपा० दक्षिणे॥ ५६–६०॥ त्रिपुटामन्त्रमाह – **रमेति** । मनोभूमिः क्लीं । यथा – श्रीं ह्रीं क्लीं (३) त्रिपुटाश्रीपा० पश्चिमे । द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः (५) पञ्चबाणेशी श्रीपा० उत्तरे । कामधेनुपञ्चके अमृतपीठेशीमन्त्रमाह – **वागिति** ।

ॐ परनिष्कलशाम्भवी परनिष्फल श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः, दक्षिणे,
हंसः अजया श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः, पश्चिमे,
अं आं ... क्षं मातृका श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः, उत्तरे ॥ ५५-५७ ॥

अब **तृतीय कल्पलता पञ्चक देवियों के मन्त्रों का उद्धार** कहते है –

प्रणव (ॐ), भुवनेशानी (ह्रीं), फिर 'खेच छे क्षः', फिर 'स्त्रीं हुं' तथा सझिण्टीश मेरु (क्षे), माया (ह्रीं), तथा अन्त में 'अस्त्र फट्' लगाने से १२ अक्षरों का त्वरिता का मन्त्र निष्पन्न होता है । इससे पूर्व में त्वरिता का पूजन करना चाहिए ॥ ५७-५८ ॥

इन्द्र के साथ आकाश (हं), हंस (सं), क्रोधीश (कं), पिनाकी (लं), फिर धरा बिन्दु के साथ हर (हैं), इस कूट को तार (ॐ), तथा माया (ह्रीं) से संपुटित कर चतुर्थ्यन्त सरस्वती (सरस्वत्यै), फिर हृदय (नमः) लगाने से ११ अक्षरों का पारिजातेश्वरी मन्त्र बनता है । इससे दक्षिण दिशा में पारिजातेश्वरी का पूजन करना चाहिए ॥ ५६-६० ॥

रमा (श्रीं), माया (ह्रीं) एवं मनोभूमि (क्लीं) यह तीन अक्षर का त्रिपुटा मन्त्र बनता है । इससे पश्चिम दिशा में त्रिपुटा का पूजन करना चाहिए ॥ ६१ ॥

द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं तथा सर्गीभृगु (सः) यह ५ अक्षर का पञ्चबाणेशी मन्त्र

चतुर्थे कामधेनुपञ्चके देवताकथनम्

वाक्कामौ भृगुरौ सर्गयुक्तो मन्त्रस्त्रिवर्णकः ॥ ६२ ॥
प्रोदिताऽमृत पीठेशी तेन तां पूर्वतो यजेत् ।
नभो भृग्वग्नयो वामनेत्राढ्याश्चन्द्रभूषिताः ॥ ६३ ॥
सार्णाद्याभुवनेशींश्रीं कलाद्यांभुवनेश्वरीम् ।
सुधाश्रीमन्त्रउदितो वेदार्णस्तां यजेदवाक् ॥ ६४ ॥

यथा – ऐं क्लीं सौः (३) अमृतपीठेशी श्रीपादुकां० पूर्वे । सुधाश्रीमन्त्रमाह – **नभ** इति । नभो हः । भृगुः सः । अग्नी रः । एते वामनेत्रमीकारस्तद्युताः सबिन्दवश्च ह्स्त्रों ॥ ६१–६३ ॥ सार्णाद्याभुवनेशानी स्हीं । श्रींकलाद्या । भुवनेश्वरी क्लीं । वेदार्णश्चतुर्वर्णोऽयं सुधाश्रीमन्त्रः । तेन तामवाक्दक्षिण यजेत् । यथा – ह्स्रौं । स्हीं श्रीं क्लीं (४) सुधाश्रीपा० ॥ ६४ ॥

कहा गया है । इससे उत्तर में पञ्चबाणेशी का पूजन करना चाहिए ॥ ६२ ॥

विमर्श – १. **त्वरिता मन्त्र** - ॐ ह्रीं हुं खेच छे क्षः स्त्रीं हुं क्षे ह्रीं फट् । २. **पारिजातेश्वरी मन्त्र** - ॐ ह्रीं हं सं कं लं ह्रै ह्रीं उं सरस्वत्यै नमः । ३. **त्रिपुटा मन्त्र** - श्रीं ह्रीं क्लीं । ४. **पञ्चबाणेशी मन्त्र** - द्रां द्रीं क्लीं ब्लुं सः ।

पूजा विधि - १. ॐ ह्रीं हुं खे च छे क्षः स्त्रीं हुं क्षे ह्रीं त्वरिता श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः, पूर्वे ।

२. ॐ ह्रीं हंसं कं लं ह्रैं ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः पारिजातेश्वरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः, दक्षिणे,

३. श्रीं ह्रीं क्लीं त्रिपुटा श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः, पश्चिमे ।

४. द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः पञ्चबाणेशी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः, उत्तरे ॥ ५७-६२ ॥

अब **चतुर्थ कामधेनु पञ्चक देवियों के मन्त्रों का उद्धार** कहते हैं -

वाक् (ऐं), काम (क्लीं), तदनन्तर औ विसर्ग सहित भृगु (सौः), यह तीन अक्षर का अमृत पीठशी मन्त्र बनता है । इस मन्त्र से पूर्व में उनका पूजन करना चाहिए ॥ ६२ ॥

नभ (ह्), भृगु (स), अग्नि (र्), इन तीनों को वामनेत्र (ई) एवं बिन्दु से युक्त कर (हस्त्रीं) कूट बनता है । पुनः इसके आदि में सकार सहित भुवनेशी (स्हीं), फिर 'श्रीं', इसके अन्त में कल अक्षरों वाली भुवनेशी (क्लीं) लगाने से ४ अक्षरों का सुधाश्री मन्त्र बनता है । इससे दक्षिण में उनका पूजन करना चाहिए ॥ ६३-६४ ॥

सकारोऽनुग्रहीसर्गीकामो वागभ्रपूर्विका।
त्रिवर्णमनुना पश्चात् पूजयेदमृतेश्वरीम् ॥ ६५॥
विंशत्यर्णान्नपूर्णोक्ता तरङ्गे नवमे मया।
तन्मन्त्रेणोत्तरस्यां तु पूजयेदन्नदायिनीम् ॥ ६६॥

पञ्चमे रत्नपञ्चके देवताकथनम्

वाणीबीजं ततः क्लिन्ने कामबीजं मदद्रवे।
कुले वराहहंसाग्निवर्णा औसर्गसंयुताः ॥ ६७॥
एकादशाक्षरो मन्त्रः सिद्धलक्ष्म्याः समीरितः।
तेन तां पूजयेत् पूर्वे मातङ्गीं दक्षिणे पुनः ॥ ६८॥

अमृतेश्वरीमन्त्रमाह – **सकार** इति । अनुग्रही औयुतः । अभ्रपूर्विका– वाक् हयुतं वाग्बीजं हें । यथा – सौः क्लीं हें (३) अमृतेश्वरी श्रीपा० पश्चिमे ॥ ६५॥ अन्नपूर्णा नवमे तरङ्गे उक्ता । तेनोत्तरे तां यजेत् । यथा – ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा (२०) अन्नपूर्णाश्रीपादुकां पू० उत्तरे ॥ ६६ ॥ रथपञ्चके सिद्धलक्ष्मीमन्त्रमाह – **वाणीति** । वाणीबीजं ऐं । कामबीजं क्लीं । वराहहंसाग्निवर्णा हसराः औसर्गयुता ह्स्रौः । स्वरूपमन्यत् । यथा – ऐं क्लिन्ने क्लीं मदद्रवे कुले ह्स्रौः (११) । सिद्धलक्ष्मीं श्रीपा० पूर्वे ॥ ६७॥

अनुग्रही एवं सर्गी सकार (सौः), काम (क्लीं) तथा अभ्रपूर्वक वाक् हें इन तीन अक्षरों से अमृतेश्वरी का पश्चिम में पूजन करना चाहिए ॥ ६५ ॥

बीस अक्षरों का **अन्नपूर्णा मन्त्र** मैने ९वें तरङ्ग में कहा है (द्र० ९. २-३) उक्त - 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा' मन्त्र से अन्नपूर्णा का उत्तर में पूजन करना चाहिए ॥ ६६ ॥

विमर्श - १. अमृतपाठेशी मन्त्र - ऐं क्लीं सौः । २. **सुधाश्री मन्त्र** - ह्स्त्रीं स्हीं श्रीं क्लीं । ३. **अमृतेश्वरी मन्त्र** - सौः क्लीं हैं । ४. **अन्नपूर्णा मन्त्र** - ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा

पूजाविधि - पूर्ववत् 'श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' लगाने से पूजन मन्त्र निष्पन्न होते हैं । उनसे ऊहापोह कर पूजा कर लेनी चाहिए । यथा - ऐं क्लीं सौः अमृतपाठेशी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः, इत्यादि ॥ ६६ ॥

अब **पञ्चम रत्नपञ्चक संज्ञक देवियों के मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

वाणीबीज (ऐं), फिर 'क्लिन्ने', फिर कामबीज (क्लीं), तदनन्तर 'मदद्रवे' 'कुले', फिर औ एवं विसर्ग सहित वराह (ह), हंस (स), एवं अग्नि (र) इससे बना कूट (ह्स्रौः), इस प्रकार ग्यारह अक्षरों का (ऐं क्लिन्ने क्लीं मदद्रव कुले ह्स्रौः) सिद्ध लक्ष्मी मन्त्र कहा गया है । इससे पूर्व दिशा में सिद्धलक्ष्मी का पूजन

वाक्कामः सौः पुनर्वाणी मायालक्ष्मीर्ध्रुवो नमः।
भगवान्ते तिमातङ्गीश्वरि सर्वजनार्णकाः ॥ ६६ ॥
मनोहरिपदं प्रोच्य सर्वराजवशङ्करि।
सर्वान्ते मुखरंज्यन्ते मेषो नेत्रसमन्वितः ॥ ७० ॥
सर्वस्त्रीपुरुषान्ते तु वशंकरिपदं वदेत्।
सर्वदुष्टमृगप्रान्ते वशंकरि पुनः पदम्।
सर्वलोकवशं पश्चात् करिमायां रमाङ्गजः।
वाक्त्रिसप्तति वर्णोऽयं मातंग्या उदितो मनुः ॥ ७१ ॥
गगनं वह्निना वामनेत्रेन्दुभ्यां समन्वितम्।
भुवनेशी मनुः प्रोक्तस्तेन तां पश्चिमे यजेत् ॥ ७२ ॥
तरङ्गे दशमे प्रोक्तो वेदरुद्राक्षरो मनुः।
वाराह्यास्तेन तां देव्या वामभागे समर्चयेत् ॥ ७३ ॥

दक्षिणे मातङ्गीं ॥ ६८ ॥ तन्मन्त्रमाह – **वागिति** । वाक् ऐं । कामः क्लीं। वाणी ऐं । माया ह्रीं । लक्ष्मीः श्रीं । ध्रुवो ॐ ॥ ६६ ॥ नेत्रसमन्वितो मेषो नः नि । रमा श्रीं अङ्गजः क्लीं । स्वरूपमन्यत् । यथा – ऐं क्लीं सौः ऐं श्रीं ॐ नमो भगवति मातङ्गीश्वरि सर्वजनमनोहरिसर्वराजवशंकरि सर्वमुखरंजिनि सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि सर्वदुष्टमृगवशंकरि सर्वलोकवशंकरि ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं (७३) मातङ्गी श्रीपा० ॥ ७०–७१ ॥ भुवनेश्वरीमाह – **गगनमिति** । गगनं हः वह्निना रेफेण वामनेत्रेन्दुभ्यां ईबिन्दुभ्यां. युतः । यथा – ह्रीं (१) भुवनेश्वरी श्रीपादुकां पू० पश्चिमे ॥ ७२ ॥ दशमे तरङ्गे वेदरुद्राक्षरश्चतुर्दशोत्तर

करना चाहिए । इसके दक्षिण में मातङ्गी का पूजन करना चाहिए ॥ ६७-६८ ॥

अब **मातङ्गी मन्त्र का उद्धार** कहते है - वाक् (ऐं), काम (क्लीं), सौः, फिर वाणी (ऐं), माया (ह्रीं), लक्ष्मी (श्रीं), तथा ध्रुव (ॐ), फिर 'नमो भगवति मातङ्गीश्वरि सर्वजनमनोहरि' फिर 'सर्वराजवशंकरि सर्वमुखरजि' फिर नेत्र सहित मेष (नि), फिर 'सर्वस्त्रीपुरुष', 'वशंकरि', 'सर्वदुष्टमृगवशंकरि', फिर 'सर्वलोकवशंकरि', फिर माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), फिर अङ्गज (क्लीं), तथा वाक् (ऐं) लगाने से ७३ अक्षरों का मातङ्गी मन्त्र बनता है । इससे दक्षिण में उनका पूजन करना चाहिए ॥ ६६-७१ ॥

वामनेत्रे (ई), इन्दुसहित गगन (ह) एवं वह्नि (र) अर्थात् (ह्रीं), यह भुवनेश्वरी का मन्त्र कहा गया है । इससे पश्चिम में उनका पूजन करना चाहिए ॥ ७२ ॥

दशम तरङ्ग में बतलाये गये ११४ अक्षर वाले (द्र० १०. ६६-७०) वाराही के मन्त्र से वाराही देवी का उत्तर दिशा में पूजन करना चाहिए ॥ ७३ ॥

पञ्चिका एवमाराध्य दर्शनानि यजेच्च षट् ।

षड्दर्शनयजनप्रकारः

आद्यं मध्ये चतुर्दिक्षु चत्वारि पुरतोन्तिमम् ॥ ७४ ॥
शैवं शाक्तं तथा ब्राह्मं वैष्णवं सौरसौगतम् ।
दर्शनान्येवमाराध्य मूलेन त्रिः प्रतर्पयेत् ॥ ७५ ॥

शतार्णो वाराही मनुरुक्तः । तेन तामुत्तरे यजेत् । ॐ ऐं ग्लौं ऐं नमो भगवति वार्त्तालि वाराहि वाराहि वाराहिमुखि, ऐं ग्लौं ऐं अन्धे अन्धिनि नमो रुन्धे रुन्धिनि नमो जम्भे जम्भिनि नमः, मोहे मोहिनि नमः, स्तम्भे स्तम्भिनि नमः, ऐं ग्लौं ऐं सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्तचक्षुर्मुखगतिजिह्वां स्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रवश्यं कुरु कुरु ऐं ग्लौं ऐं ठः ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा वाराही श्रीपादुकां पूजयामि नमः – उत्तरे ॥ ७३ ॥ एवं पञ्चपञ्चिकाः संपूज्य दर्शनानि यजेत् । अग्रेस्पष्टम् ॥ ७४ ॥ शिवदर्शन श्रीपा० इत्यादि० ॥ ७५ ॥

विमर्श – १. **सिद्धलक्ष्मी मन्त्र** – ऐं क्लिन्ने क्लीं मदद्रवे कुले ह्सौः (१०)। २. **मातङ्गी मन्त्र** – ऐं क्लीं सौः ऐं ह्रीं श्रीं ॐ नमो भगवति मातङ्गीश्वरि सर्वजन मनोहरि सर्वराजवशंकरि, सर्वमुखरञ्जिनि सर्वस्त्रीपुरुषवशंकरि सर्वदुष्टमृगवशंकरि सर्वलोकवशंकरि ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं (७३)। ३. **भुवनेश्वरी मन्त्र** – ह्रीं । ४. **वाराही मन्त्र** – 'ॐ ऐं ग्लौं ऐं नमो भगवति वार्त्तालि वाराहि वाराहि वाराहिमुखि, ऐं ग्लौं ऐं अन्धे अन्धिनि नमो रुन्धे रुन्धिनि नमो जम्भे जम्भिनि नमः, मोहे मोहिनि नमः, स्तम्भे स्तम्भिनि नमः, ऐं ग्लौं ऐं सर्वदुष्टप्रदुष्टानां सर्वेषां सर्ववाक्चित्तचक्षुर्मुखगतिजिह्वां स्तम्भं कुरु कुरु शीघ्रवश्यं कुरु कुरु ऐं ग्लौं ऐं ठः ठः ठः ठः हुं फट् स्वाहा (११४)।

पूजा विधि – 'ऐं क्लिन्ने क्लीं मदद्रवे कुले ह्सौः सिद्धलक्ष्मी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' इत्यादि ॥ ६७-७३ ॥

इस प्रकार पञ्चपञ्चिकाओं का पूजन कर षड्दर्शनों की पूजा करनी चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है – प्रथमदर्शन का मध्य में, फिर चारों दिशाओं में अग्रिम चार दर्शनों का, तदनन्तर अन्तिम दर्शन का अग्रभाग में पूजन करना चाहिए । १. शैव, २. शाक्त, ३. ब्राह्म, ४. वैष्णव, ५. सौर एवं ६. सौगत ये ६ दर्शन कहे गये हैं । इस प्रकार से दर्शनों की पूजा कर मूल मन्त्र से तीन बार उनका तर्पण करना चाहिए ॥ ७४-७५ ॥

विमर्श – **पूजाविधि** – **शैवदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः मध्ये,**
शाक्तदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः पूर्वे,
ब्रह्मादर्शनश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः दक्षिणे,

अंगुष्ठानामिकाभ्यां तां यच्छेत् पुष्पं तु मुद्रया ।
ज्ञानाख्यया सा चांगुष्ठतर्जनीयोगतो मता ॥ ७६ ॥
एवं सम्पूज्य बिन्दुस्थां श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ।
ततोऽङ्गाद्या वृत्तीनां तु पूजनं सम्यगाचरेत् ॥ ७७ ॥

नवावरणपूजनविधिः

भूबिम्बाद् बिन्दुपर्यन्तं नवावृतिसमर्चनम् ।
मायाश्रीबीजपूर्वाणां नाम्नामन्ते नियोजयेत् ॥ ७८ ॥
श्रीपादुकां पूजयामीत्येतद्वर्णाश्च सर्वतः ।
अग्नीशासुरवायव्यं पुरोदिक्ष्वङ्गपूजनम् ॥ ७६ ॥

ज्ञानमुद्रामाह – **सा चेति** । अङ्गुष्ठतर्जनीयोगे ज्ञानमुद्रा ॥ ७६–७७ ॥ भूबिम्बमारभ्यबिन्दुपर्यन्तं प्रतिलोमेन नवावरणपूजा । आवरणदेवतानामादौ मायाश्रीबीजे अन्ते तु श्रीपादुकां पूजयामीति प्रयोगः । आग्नेये हृत् । ईशे शिरः । नैर्ऋत्ये शिखा । वायौ कवचं । पुरो नेत्रं । दिक्ष्वस्त्रं । यथा – श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः हृदयं वाग्देवता श्रीपा० ॥ ७८–७६ ॥

वैष्णवदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः पश्चिमे,
सौरदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः उत्तरे,
सौगतदर्शनश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' अग्रभागे,

इसके अनन्तर अन्त में 'महात्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः' इस मन्त्र से तीन बार तर्पण करना चाहिए ॥ ७४-७५ ॥

ऐसे तो श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी भगवती को अङ्गुष्ठ एवं अनामिका द्वारा पुष्पादि समर्पण करना चाहिए, किन्तु समस्त दर्शनों को ज्ञान मुद्रा द्वारा पुष्पादि समर्पित करने की विधि कही गई है । यह मुद्रा अङ्गुष्ठ और तर्जनी को मिलाने से बनती है ॥ ७६ ॥

इस प्रकार वैन्दव चक्र में स्थित श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी देवी का विधिवत् पूजन करने के बाद अङ्गादि वृत्तियों की आवरण पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए ॥ ७७ ॥

अब **आवरणपूजा** कहते हैं -

भुपूर से प्रारम्भ कर बिन्दु पर्यन्त प्रतिलोम क्रम से नौ आवरणों की पूजा करनी चाहिए । आवरण देवताओं के नाम से प्रथम मायाबीज, श्रीबीज, तथा अन्त में 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' यह सर्वत्र लगाना चाहिए ॥ ७८-७६ ॥

आग्नेय, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य, अग्रभाग एवं दिशाओं में षडङ्गपूजा करनी चाहिए ॥ ७६ ॥

भूबिम्बास्याद्यरेखायां दिक्षूदर्ध्वाधः क्रमाद्यजेत् ।
सिद्धीर्दशाणिमात्वाद्या महिमालघिमेशिता ॥ ८० ॥
वशित्वसिद्धिः प्राकाम्याभुक्तिरिच्छाष्टमी पुनः ।
प्राप्तिश्च सर्वकामाख्या सिद्धयो दशकीर्तिताः ॥ ८१ ॥
तप्तहेमसमानाभाः पाशांकुशधराः शुभाः ।
साधकेभ्यः प्रयच्छन्ति रत्नौघं तां विचिन्तयेत् ॥ ८२ ॥
भूपुरे मध्यरेखायां पश्चिमाद्यर्चयेदिमाः ।
ब्राह्मीं माहेश्वरीं चापि कौमारीं वैष्णवीमपि ॥ ८३ ॥
वाराहीं च तथेन्द्राणीं चामुण्डामथ सप्तमीम् ।
महालक्ष्मीमिमा ध्यायेत् सर्वाभरणसंयुताः ॥ ८४ ॥
विद्यां शूलं शक्तिचक्रे गदां वज्रं हि दण्डकम् ।
पद्मं क्रमेण दधतीः सर्वाभीष्टप्रदायिकाः ॥ ८५ ॥
तस्यां तृतीयरेखायां दशमुद्राः प्रपूजयेत् ।

त्रिरेखं भूगृहमस्ति । यस्याधररेखायामष्टदिक्षु ऊर्ध्वमधश्चाणिमाद्या दशसिद्धीर्यजेत् । ह्रीं श्रीं अणिमासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामीत्यादि प्रयोगः ॥ ८०–८१ ॥ तासां ध्यानमाह – **दक्षेंकुशधराः** । वामे पाशधराः साधकेभ्यो रत्न समूहान् ददति ॥ ८२ ॥ भूगृहद्वितीयरेखायां पश्चिमादिषु दिक्षु ब्राह्म्याद्या अष्टमातृर्यजेत् । ह्रीं श्रीं ब्राह्मीमातृका श्रीपादुकां पूजयामीत्यादि० ॥ ८३॥ तासां ध्यानमाह – **इमा** इति ॥ ८४ ॥ क्रमाद्विद्यादीन्यायुधानि दधतीः ॥ ८५ ॥ तस्यां भूपुरस्थतृतीयरेखायां दिक्षु ऊर्ध्वमधश्च दश संक्षोभणाद्या दश मुद्रां

भूबिम्ब के आद्यरेखा के ८ दिशाओं में तथा ऊर्ध्व एवं अधोभाग में दश सिद्धियों का पूजन करना चाहिए । १. अणिमा, २. महिमा, ३. लघिमा, ४. ईशिता, ५. वशिता, ६. प्राकाम्य, ७. भुक्ति, ८. इच्छा, ९. प्राप्ति एवं १०. प्राकाम्या ये १० सिद्धियाँ कही गई हैं ॥ ८०-८१ ॥

तप्त सुवर्ण के समान आभावाली, पाश एवं अंकुश धारण किए हुये, साधकों को रत्न का ढेर देती हुई सिद्धियों का ध्यान करना चाहिए ॥ ८२ ॥

भूपुर की मध्य रेखाओं में एवं पश्चिमादि ८ दिशाओं में १. ब्राह्मी, २. माहेश्वरी, ३. कौमारी, ४. वैष्णवी, ५. वाराही, ६. इन्द्राणि, ७. चामुण्डा एवं ८. महालक्ष्मी का पूजन करना चाहिए ॥ ८३-८४ ॥

सम्पूर्ण आभूषणों से विभूषित, अपने हाथों में क्रमशः पुस्तक, शूल, शक्ति चक्र, गदा वज्र, दण्ड एवं कमल लिए हुये संपूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने वाली ऐसी इन महाशक्तियों का ध्यान करना चाहिए ॥ ८४-८५ ॥

क्षोभणद्रावणाकर्षवश्योन्मादमहांकुशाः ॥ ८६ ॥
खेचरी बीजयोनी च त्रिखण्डेति स्मृता इमाः ।
एवं भूबिम्बमाराध्य क्षोभमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥ ८७ ॥
त्रैलोक्यमोहने चक्रे योगिन्यः प्रकटा इमाः ।
पूजितास्तर्पिताः सन्तु स्वेष्टदा इति प्रार्थयेत् ॥ ८८ ॥
बिन्दौ पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा मूलेनान्यावृतिं यजेत् ।
षोडशारे पश्चिमादि विलोमेन क्रमादिमाः ॥ ८९ ॥

यजेत् । ह्रीं श्रीं क्षोभणमुद्राश्रीपा० ॥ ८६ ॥ मुद्राणां लक्षणान्युक्तानि । एवं प्रथमावरणमाराध्य ॥ ८७ ॥ त्रैलोक्यमोहने चक्रे इमाः प्रकटयोगिन्यः पूजिता– स्तर्पिता इष्टदाः सन्त्विति प्रार्थ्य मूलेन विन्दौ पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । ततः षोडशारे विलोमेन पश्चिमादिषोडशकामाकर्षणाद्याः शक्तिः पूजयेत् । ह्रीं श्रीं कामाकर्षणीशक्ति श्रीपा० इत्यादि एवं द्वितीयावरणं संपूज्यसर्वाशापूरके चक्रे एताः षोडशगुप्तयोगिन्यः पूजितास्तर्पिताः सन्त्वित्युक्त्वा ॥ ८८–८९ ॥ * ॥ ९०–९४॥

इसके बाद भूपुर की तृतीय रेखा में १० मुद्राओं का पूजन करना चाहिए १. क्षोभण, २. द्रावण, ३. आकर्षण, ४. वश्य, ५. उन्माद, ६. महांकुशा, ७. खेचरी, ८. बीज, ९. योनि एवं १०. त्रिखण्डा ये दश मुद्रायें कही गई है । इस प्रकार प्रथम आवरण में भूपुर का पूजन कर क्षोभ मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ८६-८७ ॥

त्रैलोक्य मोहन चक्र में प्रगट हुई ये योगिनियाँ पूजन एवं तर्पण से अभीष्ट फल प्रदान करे - ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए । फिर मूल मन्त्र से बिन्दु पर पुष्पाञ्जलि चढ़ानी चाहिए ॥ ८८-८९ ॥

विमर्श - प्रथमावरण पूजा विधि - यन्त्र के आग्नेय आदि कोणों में यथाक्रम से षडङ्गपूजा इस प्रकार करनी चाहिए - यथा -

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः हृदयाय नमः, आग्नेये,
ॐ ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा ऐशान्ये, कएईलह्रीं शिखायै वषट् नैर्ऋत्ये,
हसकहलह्रीं कवचाय हुम्, वायव्ये, सकलह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, अग्रे,
सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं अस्त्राय फट्, चतुर्दिक्षु ।

इसके अनन्तर तप्तहेमसमानाभाः (द्र० १२. ८२) श्लोक के अनुसार ध्यान कर भूपुर की **प्रथम रेखा में** पूर्व आदि दिशाओं में अणिमादि १० सिद्धियों का इस प्रकार पूजन करे । यथा -

ह्रीं श्रीं अणिमासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि नमः, पूर्वे,
ह्रीं श्रीं महिमासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि नमः, आग्नेये,

ह्रीं श्रीं लघिमासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि नमः, दक्षिणे,
ह्रीं श्रीं ईशितासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि नमः, नैर्ऋत्ये,
ह्रीं श्रीं वशितासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि नमः, पश्चिमे,
ह्रीं श्रीं प्राकाम्यासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि नमः, वायव्ये,
ह्रीं श्रीं भुक्तिसिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि नमः, उत्तरे,
ह्रीं श्रीं इच्छासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि नमः, ऐशान्ये,
ह्रीं श्रीं प्राप्तिसिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि नमः, ऊर्ध्वभागे,
ह्रीं श्रीं सर्वकामासिद्धि श्रीपादुकां पूजयामि नमः, अधोभागे ।

तत्पश्चात् भूपुर की **द्वितीय रेखा में** - पश्चिमादि दिशाओं में ८ मातृकाओं का इस प्रकार पूजन करना चाहिए । यथा -

ह्रीं श्रीं ब्राह्मीमातृका श्रीपादुकां पूजयामि पश्चिमे,
ह्रीं श्रीं माहेश्वरीमातृका श्रीपादुकां पूजयामि, वायव्ये,
ह्रीं श्री कौमारीमातृका श्रीपादुकां पूजयामि, उत्तरे,
ह्रीं श्रीं वैष्णवीमातृका श्रीपादुकां पूजयामि, ऐशान्ये,
ह्रीं श्रीं वाराहीमातृका श्रीपादुकां पूजयामि, पूर्वे,
ह्रीं श्रीं इन्द्राणीमातृका श्रीपादुकां पूजयामि, आग्नेये,
ह्रीं श्रीं चामुण्डामातृका श्रीपादुकां पूजयामि, दक्षिणे,
ह्रीं श्रीं महालक्ष्मीमातृका श्रीपादुकां पूजयामि, नैर्ऋत्ये ।

इसके बाद भूपुर की **तृतीय रेखा** के ८ दिशाओं एवं ऊर्ध्व अधोभाग में १० मुद्राओं का इस प्रकार पूजन करना चाहिए । यथा -

ह्रीं श्रीं क्षोभणमुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि,
ह्रीं श्रीं द्रावणमुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि,
ह्रीं श्रीं आकर्षणमुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि,
ह्रीं श्रीं वश्यमुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि,
ह्रीं श्रीं उन्मादमुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि,
ह्रीं श्रीं महांकुशामुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि,
ह्रीं श्री खेचरीमुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि,
ह्रीं श्रीं बीजमुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि,
ह्रीं श्रीं योनिमुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि,
ह्रीं श्रीं त्रिखण्डामुद्रा श्रीपादुकां पूजयामि, ।

इस प्रकार प्रथमावरण का पूजन कर क्षोभमुद्रा दिखाते हुये 'त्रैलोक्यमोहन चक्रे' (द्र० १२. ८८) श्लोक पढ़कर प्रार्थना करे, तदनन्तर मूलमन्त्र से बिन्दु पर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए ।

क्षोभमुद्रा का लक्षण इस प्रकार है -

मध्यमां मध्यमे कृत्वा कनिष्ठाङ्गुष्ठरोधिते ।

कामाकर्षणिका त्वाद्या बुद्ध्याकर्षणिका ततः ।
अहंकाराकर्षिणी च शब्दाकर्षणिका पुनः ॥ ६० ॥
स्पर्शाकर्षणिका तद्वद् रूपाकर्षणिकापि च ।
रसाकर्षणिका चान्या गन्धाकर्षणिका तथा ॥ ६१ ॥
चित्ताकर्षणिका चापि धैर्याकर्षणिका परा ।
नामाकर्षणिका चापि बीजाकर्षणिका तथा ॥ ६२ ॥
अमृताकर्षणी चान्या स्मृत्याकर्षणिका तथा ।
शरीराकर्षणी चैवमात्माकर्षणिका परा ॥ ६३ ॥
सर्वाशापूरके चक्रे षोडशस्वरसंयुते ।
गुप्ता एतास्तु योगिन्यः पूजिताः सन्त्विदं वदेत् ॥ ६४ ॥
दर्शयेद् द्राविणीं मुद्रां द्वितीयावरणार्चने ।
काद्यष्टवर्गसंयुक्तेऽष्टारे पूज्या इमाः पुनः ॥ ६५ ॥
पूर्वादिष्वनुलोमेन बन्धूककुसुमप्रभाः ।
अनङ्गकुसुमात्वाद्या द्वितीयानङ्गमेखला ॥ ६६ ॥

द्राविणीमुद्रां दर्शयेत् । सा गदिता ॥ ६५ ॥ अष्टवर्गान्वितेष्टारे पूर्वाद्यनुलामेनानङ्गकुसुमाद्याः पूजयेत् । ह्रीं श्रीं अनङ्गकुसुमाश्रीपा० । एवं

तर्जन्यौ दण्डवत् कृत्वा मध्यमोपर्यनामिके ।
क्षोभाभिधानमुद्रेयं सर्वक्षोभणकारिणी॥ ७८-८६ ॥

अब **द्वितीयावरण के पूजन का विधान** कहते हैं - षोडशदल में पश्चिम से विलोम क्रम से १६ शक्तियों का पूजन करना चाहिए - १. कामाकर्षणिका, २. बुद्ध्याकर्षणिका, ३. अहंकाराकर्षिणी ४. शब्दाकर्षणिका, ५. स्पर्शकर्षणिका, ६. रूपाकर्षणिका, ७. रसाकर्षणिका, ८. गन्धाकर्षणिका, ६. चित्ताकर्षणिका, १०. धैर्याकर्षणिका, ११. नामाकर्षणिका, १२. बीजाकर्षणिका, १३. अमृताकर्षणिका, १४. स्मृत्याकर्षणिका, १५. शरीराकर्षणी, १६. आत्माकर्षणिका ये १६ शक्तियाँ हैं ॥ ८६-६३॥

इसके पश्चात् 'सर्वाशापूरके षोडशस्वरसंयुते चक्रे एताः षोडश गुप्तयोगिन्यः पूजितास्तर्पिताः सन्तु', ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए । इस प्रकार द्वितीय आवरण पूजा कर तथा पुष्पाञ्जलि प्रदान कर द्राविणी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ६०-६५ ॥

विमर्श - ह्रीं श्रीं कामाकर्षिणीशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि' पश्चिमे इत्यादि ।

द्राविणी मुद्रा का लक्षण - 'क्षोभाभिधानमुद्राया मध्यमे सरले यदा ।
क्रियते परमेशानि तदा विद्राविणी मता' ॥ ६०-६५॥

अब **तृतीयावरण के पूजन का विधान** कहते हैं - क वर्ग आदि ८ वर्गों से युक्त अष्टदल में पूर्वादि दिशाओं में अनुलोम क्रम से बन्धूक पुष्प के समान

अनङ्गमदनातद्वद् अनङ्गमदनातुरा।
अनङ्गरेखाचानङ्गवेगानङ्गांकुशा पुनः ॥ ९७ ॥
अनङ्गमालिनीत्यष्टौ पाशांकुशलसत्कराः।
सर्वसंक्षोभणे चक्रे देव्यो गुप्ततराभिधाः ॥ ९८ ॥
पूजिताः सन्त्विति प्रोच्याकर्षमुद्रां प्रदर्शयेत्।
चतुर्दशारे सम्पूज्याः कादिढान्तार्णराजिते ॥ ९९ ॥
इन्द्रगोपनिभा रम्याः मदोन्मत्ताः सभूषणाः।
बिभ्रत्यो दर्पणं पानपात्रं पाशांकुशावपि ॥ १०० ॥
पश्चिमादिविलोमेन चतुर्थावरणस्थिताः।
सर्वसंक्षोभिणीपूर्वा सर्वविद्राविणी परा ॥ १०१ ॥

तृतीयावरणं संपूज्यसर्व संक्षोभणे चक्रे एता अष्टौ गुप्ततरयोगिन्यः पूजिताः सन्तु इत्युक्त्वाकर्षणमुद्रां दर्शयेत् । ततश्चतुर्थावरणे चतुर्दशारेकादि चतुर्दशार्णयुते ॥ ९८–९९ ॥ इन्द्रगोपेत्यादि । उक्तारूपाः । दर्पणपाशधर–वामकराः – पानपात्रांकुशधरदक्षकराः ॥ १०० ॥ सर्वसंक्षोभिण्याद्याश्चतुर्दशशक्तयः

आभा वाली हाथों में पाश, अंकुश धारण किए हुये कुसुमा आदि ८ शक्तियों का पूजन करना चाहिए - १, अनङ्गकुसुमा २, अनङ्गमेखला ३, अनङ्गमदना ४, अनङ्गमदनातुरा ५, अनङ्गरेखा, ६ अनङ्गवेगा ७, अनङ्गांकुशा, ८, अनङ्गमालिनि - ये ८ शक्तियाँ हैं । फिर 'सर्वसंक्षोभणे चक्रे एता अष्टौ गुप्ततरा योगिन्यः पूजिताः सन्तु' ऐसा कहकर आर्कषणी मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ९५-९९ ॥

विमर्श - पूजा विधि - तृतीय आवरण में अष्टदल में पूर्वादि दिशाओं के अनुलोम क्रम से अनङ्गकुसुमा आदि ८ महायोगिनियों का ध्यान कर इस प्रकार पूजन करना चाहिए । **ध्यान मन्त्र** - 'सर्वसंक्षोभणे चक्रे बन्धूककुसुमप्रभाः । अनङ्ग कुसुमाद्यष्टौ पाशांकुशलसत्कराः' । इस प्रकार ध्यान कर - 'ह्रीं श्रीं अनङ्गकुसुमा श्रीपादुकां पूजयामि' इत्यादि, इस विधि से तृतीय आवरण में ८ शक्तियों का पूजन कर - 'सर्वक्षोभणे चक्रे एता अष्टौ गुप्ततरा योगिन्यः पूजिताः सन्तु' से प्रार्थना कर पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । पश्चात् आकर्षिणी मुद्रा प्रदर्शित करे ।

आकर्षिणीमुद्रा का लक्षण - 'मध्यमातर्जनीभ्यां तु कनिष्ठानामिके समे ।
अंकुशाकाररूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि ।
इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षणे क्षमा ॥ ९५-९९ ॥

अब **चतुर्थ आवरण के पूजन का विधान** कहते हैं - ककार से ढकार तक वर्णो से सुशोभित चतुर्दश दल में पश्चिम दिशा से प्रारम्भ कर विलोम क्रम से इन्द्रगोप (लाल बीलबहूटी) सदृश आभावाली, मदोन्मत्त, आभूषणों से अलंकृत,

सर्वाकर्षिणिका चान्या सर्वाह्लादकरी पुनः ।
सर्वसम्मोहिनी चापि सर्वस्तम्भनकारिणी ॥ १०२ ॥
सर्वजृम्भणिका नामाष्टमीसर्ववशंकरी ।
सर्वरञ्जिनिका चापि सर्वोन्मादिनिका तथा ॥ १०३ ॥
सर्वार्थसाधिनी चाथ सर्वसम्पत्तिपूरणी ।
सर्वमन्त्रमयी चान्त्या सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी ॥ १०४ ॥
मूलेन पुष्पं दत्त्वाथ वश्यमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
सर्वसौभाग्यदे चक्रे सम्प्रदायाभिधा इमाः ॥ १०५ ॥
योगिन्यः पूजितास्तृप्ता मङ्गलानि दिशन्तु मे ।
सम्प्रार्थ्येति दशारेथ णादिभान्तार्णभूषिते ॥ १०६ ॥

शक्तिपदादिका पश्चिमादि विलोमतः पूज्याः । ह्रीं श्रीं कंसंक्षोभणी शक्ति श्रीपा० इत्यादि० ॥ १०१–१०४ ॥ एवं चतुर्थावरणमाराध्य मूले ततः सर्वसौभाग्यदे चक्रे इमाश्चतुर्दश सम्प्रदाययोगिन्यः पूजितः सन्त्विति चोक्त्वा पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा वश्यमुद्रां दर्शयेत् । णादिदशवर्णयुते दशारे पश्चिमादिव्युत्क्रमेण सर्वसिद्धिप्रदाद्य देवीपदाद्या दश पूजयेत् । ह्रीं श्रीं णं सर्वसिद्धिप्रदा देवी श्री पा० ॥ १०५–१०८ ॥

हाथों में क्रमशः दर्पण, पान-पात्र, पाश और अंकुश लिए हुये इन १४ शक्तियों का पूजन करना चाहिए -

१. सर्वसंक्षोभिणी २. सर्वविद्राविणी ३. सर्वाकर्षणिका ४. सर्वाह्लादकरी ५. सर्वसम्मोहिनी ६. सर्वस्तम्भनकारिणी ७. सर्वजृम्भणिका ८. सर्ववशंकरी, ९. सर्वरञ्जिनिका, १०. सर्वोन्मादिनिका ११. सर्वार्थसाधिनी १२. सर्वसंपत्पूरिणी १३. सर्वमन्त्रमयी और १४. सर्वद्वन्द्वक्षयंकरी ये १४ शक्तियाँ है ॥ ९९-१०४ ॥

फिर मूलमन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर वश्यमुद्रा प्रदर्शित करे, तथा 'सर्वसौभाग्यप्रदे चक्रे इमाश्चतुर्दशसंप्रदाययोगिन्यः पूजिताः सन्तु तृप्ताः सन्तु मे मङ्गलानि दिशन्तु' ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए ॥ १०५-१०६ ॥

विमर्श - पूजा विधि - इन्द्रगोपनिभा (द्र० १२. १००) के अनुसार ध्यान कर चतुर्थावरण में चतुर्दशदल में पश्चिम दिशा से विलोम क्रम से सर्वसंक्षोभिणी आदि १४ महाशक्तियों का पूजन करना चाहिए - यथा - 'ह्रीं श्री कं सर्वसंक्षोभिणीशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि' । इसी प्रकार प्रारम्भ में माया पद बीजाक्षर के आगे एक-एक वर्ण, तदनन्तर महाशक्तियों के नाम के अन्त में 'शक्ति श्रीपादुकां पूजयामि' कहकर चतुर्दश शक्तियों की पूजा करे, फिर 'सर्वसौभाग्यप्रदे चक्रे इमाश्चतुर्दशसंप्रदाययोगिन्यः पूजिताः सन्तु' से प्रार्थना कर पुष्पाञ्जलि समर्पित कर वश्यमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

सम्पूज्या दशयोगिन्यो जपापुष्पसमप्रभाः।
स्फुरन्मणिविभूषाढ्याः पाशांकुशलसत्कराः॥ १०७॥
पश्चिमादिविलोमेन साधकाभीष्टसिद्धिदाः।
सर्वसिद्धिप्रदा पूर्वा सर्वसम्पत्प्रदा ततः॥ १०८॥
सर्वप्रियंकरी चान्या सर्वमङ्गलकारिणी।
सर्वकामप्रदा पश्चात् सर्वदुःखविमोचनी॥ १०९॥
सर्वमृत्युप्रशमनी सर्वविघ्ननिवारिणी।
सर्वाङ्गसुन्दरी चान्या सर्वसौभाग्यदायिनी॥ ११०॥
बिन्दौ पुष्पं समर्प्याथोन्मादमुद्रां प्रदर्शयेत्।
सर्वार्थसाधके चक्रे पञ्चमे सर्वतः स्थिताः॥ १११॥
पूजिताः कुलयोगिन्यः सन्तु मेऽभीष्टसिद्धिदाः।
इति सम्प्रार्थ्य सम्पूज्य मादिक्षान्तविभूषिते॥ ११२॥

एवं पञ्चमावरणसंपूज्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा च सर्वार्थसाधके चक्रे इमादशकुलयोगिन्यः पूजिताः सन्त्विति संप्रार्थ्योन्मादमुद्रां दर्शयेत् ॥ १०६–१११ ॥ ततो परे दशारे मादिवर्णयुते ज्ञानमुद्रावरदक्षकराः टंकपाशवामकराः उद्यद् रविनिभाः सर्वज्ञा देव्याद्या दश पूजयेत् । ह्रीं श्रीं मं सर्वज्ञादेवी श्रीपा० ॥ ११२–११५ ॥

वश्यमुद्रा के लक्षण - पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावंकुशाकृति ।
परिवार्य क्रमेणैव मध्यमे तदधोगते ।
क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिका हृदः ॥
संयोज्य निविडाः सर्वा अङ्गुष्ठावग्रदेशतः ।
मुद्रेयं परमेशानि सर्ववश्यकरी मता ॥ ९९-१०६ ॥

अब **पञ्चम आवरण के पूजा का विधान** कहते हैं - णकार से भकार तक वर्णों से सुशोभित दशदल में जपाकुसुम के समान आभावाली, जगमगाते आभूषणों से अलंकृत तथा हाथों में पाश और अंकुश धारण किए हुये दश कुल-योगिनियों का पश्चिम से प्रारम्भ कर विलोम रीति से पूजन करना चाहिए ॥ १०६-१०८ ॥

१. सर्वसिद्धिप्रदा, २. सर्वसम्पत्प्रदा, ३. सर्वप्रियंकरी, ४. सर्वमङ्गलकारिणी, ५. सर्वकामप्रदा, ६. सर्वदुःखविमोचिनी, ७. सर्वमृत्युप्रशमनी, ८. सर्वविघ्ननिवारिणी ९. सर्वाङ्गसुन्दरी तथा १०. सर्वसौभाग्यप्रदायिनी ये १० कुल योगिनियाँ कही गई हैं । बिन्दु पर पुष्पाञ्जलि समर्पित कर उन्मादमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए तथा 'सर्वार्थसाधके चक्रे इमा दश कुलयोगिन्यः पूजिताः मेऽभीष्टसिद्धिदाः च सन्तु' से प्रार्थना करनी चाहिए ॥ १०८-११२ ॥

परे दशारे योगिन्य उद्यद् भास्करसन्निभाः ।
ज्ञानमुद्राटंकपाशवरधारिकराम्बुजाः ॥ ११३ ॥
सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वैश्वर्यफलप्रदा ।
सर्वज्ञानमयी पश्चात् सर्वव्याधिविनाशिनी ॥ ११४ ॥
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वपापहरापरा ।
सर्वानन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी ॥ ११५ ॥
सर्वेप्सितार्थफलदा पश्चिमादिविलोमगाः ।
पुष्पं मूलेन दत्त्वाथो कुर्यान्मुद्रां महांकुशाम् ॥ ११६ ॥

एवं षष्ठमावरणमभ्यर्च्य मूलेन पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा सर्वरक्षाकरे चक्रे इमादशनिगर्भयोगिन्यः पूजिताः सन्त्विति संप्रार्थ्यांकुशमुद्रां दर्शयेत् । ततोऽष्टारे रक्तवस्त्र बाणवरदक्षकरा धनुर्विद्यावामकरा न्यासोक्ता अष्टवशिन्याद्याउक्तबीजं पूर्विका यजेत् । ह्रीं श्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः वशिनीवाग्देवता श्रीपा० ॥ ११६–१२० ॥

विमर्श - पूजा विधि - (१२. १०७) श्लोक के अनुसार ध्यान कर पश्चिम दिशा से विलोम क्रम द्वारा 'ह्रीं श्रीं णं सर्वसिद्धिप्रदादेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः' से दशो का पूजन करे, इसी प्रकार प्रथम माया, फिर लक्ष्मीबीज, तदनन्तर भकार तक के मातृकावर्णो के एक-एक अक्षर, फिर नाम, उसके आगे देवी, फिर 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' कह कर दश दलों में दशों देवियों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार कुलयोगिनियों का पूजन कर 'सर्वार्थसाधके चक्रे इमा दश कुलयोगिन्यः पूजिताः सन्तु' मन्त्र पढ़ते हुये पुष्पाञ्जलि समर्पित कर उन्मादमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

उन्मादमुद्रा का लक्षण - सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमामध्यमेनुजे
अनामिके तु सरले तदधस्तर्जनीद्वयम्
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ मध्यमानस्वदेशगौ
मुद्रैषोन्मादिनी नाम क्लेदिनी सर्वयोषिताम्' ॥ १०८-११२ ॥

अब **षष्ठावरण का पूजन** कहते हैं - मकार से क्षकार पर्यन्त १० वर्णो से सुशोभित द्वितीय दशदल में, उदीयमान सूर्य के समान आभावाली, हाथ में ज्ञानमुद्रा, टंक, पाश और वरमुद्रा धारण की हुई सर्वज्ञा आदि दश योगिनियों का पश्चिम दिशा से प्रारम्भ कर विलोम क्रम द्वारा पूजा करनी चाहिए ॥ ११२-११३॥

१. सर्वज्ञा, २. सर्वशक्ति, ३. सर्वैश्वर्यफलप्रदा, ४. सर्वज्ञानमयी, ५. सर्वव्याधिविनाशिनी, ६. सर्वाधारस्वरूपा, ७. सर्वपापहरा, ८. सर्वानन्दमयी ९. सर्वरक्षास्वरूपिणी, १०. सर्वेप्सितार्थफलदा - ये दश योगिनियाँ हैं ।

सर्वरक्षाकरे चक्रे निगर्भाः पूजिता इमाः।
योगिन्यस्तर्पिताः सन्तु ममाभीष्टफलप्रदाः ॥ ११७ ॥
सम्प्रार्थ्येवमथाष्टारे दाडिमीपुष्पसन्निभाः।
रक्तांशुकाधनुर्बाणविद्यावरलसत्कराः ॥ ११८ ॥
अकाराद्यष्टवर्गाद्या पश्चिमादिविलोमतः।
पूजयेत् पूर्व सम्प्रोक्ता बीजाद्या अष्टदेवताः ॥ ११९ ॥
वशिनी चापि कौमारी मोदिनी विमलारुणा।
जयिनी चापि सर्वेशी कौलिनीत्युदिताः पुरा ॥ १२० ॥
सर्वरोगहरे चक्रे रहस्याः पूजिता मया।
तर्पिताः पूजिताः सन्त्वित्युक्त्वा दद्यात् सुमाञ्जलिम् ॥ १२१ ॥

एवं सप्तमावरणमिष्ट्वा सर्वरोगहरे चक्रे इमा अष्टारे रहस्ययोगिन्यः पूजिताः सन्त्विति प्रार्थ्य० खेचरीमुद्रां दर्शयेत् ॥ १२१–१२२ ॥

इनका पूजन कर मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर महांकुशामुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए तथा 'सर्वरत्नाकरे चक्रे इमा दश निगर्भा योगिन्यः पूजिताः सन्तु तर्पिताः सन्तु ममाभीष्ट फलप्रदाः सन्तु' से प्रार्थना करनी चाहिए ॥ ११४-११७ ॥

विमर्श - पूजा विधि - 'सर्वरत्नाकरे चक्रे' (द्र० १२. ११३) श्लोक के अनुसार देवियों का ध्यान कर सर्वज्ञा आदि १० निगर्भा योनियों का पूजन करना चाहिए । यथा - 'ह्रीं श्रीं मं सर्वज्ञादेवी श्रीपादुकां पूजयामि' । इसी प्रकार आदि में 'ह्रीं श्रीं' तथा आगे का वर्ण लगाकर देवियों के नाम के आगे 'श्रीपादुकां पूजयामि' से उपर्युक्त १० योगिनियों का पूजन करना चाहिए । फिर मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर 'सर्वरत्नाकरे चक्रे इमा दशनिगर्भायोगिन्यः पूजिताः सन्तु' इस प्रकार प्रार्थना कर महांकुशामुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

महांकुशा का लक्षण - अस्यास्त्वनामिका युग्ममधः कृत्वांकुशाकृति ।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत् ।
इयं महांकुशामुद्रा सर्वकामार्थसाधिनी ॥ ११२-११७ ॥

अब **सप्तम आवरण के पूजन का विधान** कहते हैं - अनार के पुष्प जैसी आभा वाली, लाल रंग के वस्त्रों से अलंकृत, हाथों में धनुष, बाण, विद्या और वर धारण किए हुये, न्यासोक्त वशिनी आदि ८ देवियों का ध्यान कर, अकारादि ८ वर्णो से सुशोभित अष्टदल में पूर्वोक्त बीजों के साथ उक्त ८ देवियों का पश्चिम से विलोम क्रम द्वारा पूजन करना चाहिए ॥ ११८-११९ ॥

वशिनी, कौमारी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेशी और कौलिनी ये ८ देवियाँ हैं । इनके पूजन के पश्चात् 'सर्वरोगहरे चक्रे अष्टारे इमा

खेचरीं दर्शयेन्मुद्रां सुन्दरीं तोषयेत्ततः।
त्रिकोणेत्वकथाद्यर्णरचिते पश्चिमादितः॥ १२२॥
यजेत् कामेशकामेश्योर्बाणांश्चापं च पाशकम्।
अंकुशं चानुलोमेन चतुर्दिक्षु समाहितः॥ १२३॥
जम्भमोहवशस्तम्भपदाद्यान् बीजपूर्वकान्।
बाणबीजानि बाणादौ मीनकृष्णौ सबिन्दुकौ॥ १२४॥
चापादौ पाशकस्यादौ पाशमाये नियोजयेत्।
अंकुशं त्वंकुशस्यादौ स्मर्तव्या हेतिदेवताः॥ १२५॥

ततो कथादिवर्णरचिते त्रिकोणे पश्चिमाद्यनुलोमेन चतुर्दिक्षु स्वस्वबीज-पूर्वकान् जम्भमोहवशं स्तम्भविशेषणविशिष्टान् कामेश्वरकामेश्वर्योर्बाणधनुःपाशांकुशान् पूजयेत् । बीजान्याह – **बाणेति** । बाणादौ पञ्चबाणबीजानि । चापादौ सबिन्दुमीनकृष्णौ धकारथकारौ । पाश माये आं ह्रीमिति पाशादौ । अंकुशस्यादौ त्वंकुशं क्रोमिति । हेतिदेवता आयुदेवताः॥ १२३–१२५॥

रहस्ययोगिन्यः पूजिताः तर्पिताः सन्तु' से प्रार्थना कर पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी चाहिए । तदनन्तर खेचरीमुद्रा प्रदर्शित करना चाहिए । तदनन्तर त्रिपुरसुन्दरी को संतुष्ट करना चाहिए ॥ १२०-१२१ ॥

विमर्श - पूजाविधि - 'सर्वरोगहरे अष्टारे चक्रे (द्र० १२. ११८) इस श्लोक के अनुसार देवियों का ध्यान कर अकारादि विभूषित अष्टदल में वशिनी आदि ८ योगिनियों का पूर्ववत् पूजन करना चाहिए । यथा - ह्रीं श्रीं अं आं वशिनीवाग्देवता श्रीपादुकां पूजयामि नमः, ह्रीं श्रीं इ ईं कौमारीवाग्देवता श्रीपादुकां पूजयामि नमः, इत्यादि । इस प्रकार पूर्वोक्त रीति से उक्त योगिनियों का पूजन कर मूलमन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर 'सर्वरोगहरे चक्रे अष्टारे इमा रहस्य योगिन्यः पूजिताः सन्तु' ऐसी प्रार्थना कर खेचरीमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

खेचरीमुद्रा का लक्षण - सव्यं दक्षिणहस्ते तु सव्यहस्ते तु दक्षिणम् ।
वाहू कृत्वा महादेवि हस्तौ संपरिवर्त्य च ॥
कनिष्ठानामिके देवि युक्ता तेन क्रमेण तु ।
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे ॥
अङ्गुष्ठौ तु महादेवि सरलावपि कारयेत् ।
इयं सा खेचरी नाम मुद्रा सर्वोत्तमोत्तमा ॥ १२०-१२१ ॥

अब **अष्टम आवरण के पूजन का विधान** कहते हैं - अ क थ इन तीन वर्णो से विभूषित, त्रिकोण में पश्चिमादि अनुलोम क्रम से, चारों दिशाओं में स्वस्थ चित्त हो कर, अपने अपने बीजों के साथ जम्भ, मोह, वश और स्तम्भ

नानारत्नविभूषाढ्याः स्वस्वायुधसमन्विताः।
विद्युद्दामसमानांग्यो यौवनोन्मदमन्थराः॥ १२६॥
अग्न्यादिकोणत्रितये पूज्याः कूटत्रयादिकाः।
कामेश्वरी च वज्रेशी तृतीया भगमालिनी॥ १२७॥
कामेश्वरीरुद्रशक्तिः शरच्चन्द्रशतप्रभा।
स्मर्तव्या दधती हस्तैः पुस्तकाऽभीवरस्रजः॥ १२८॥
वज्रेश्वरीविष्णुशक्तिरुद्यन्मार्तण्डसप्रभा ।
इक्षुचापवराभीतिपुष्पबाणलसत्करा ॥ १२६॥

तसां ध्यानमाह – **नानेति** । स्वस्वायुधानि बाणादीनि तैः संयुता बाणधरा इत्यादि० । प्रयोगो यथा – यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः कामेश्वर कामेश्वरी जम्भनबाण श्रीपा० पश्चिमे । धं थं कामेश्वरकामेश्वरी मोहनधनुः श्रीपा० उत्तरे । आं ह्रीं कामेश्वरी वशीकरणपाशश्रीपा० पूर्वे । क्रों कामेश्वर कामेश्वरी स्तंभनांकुश श्रीपा० दक्षिण ॥ १२६ ॥ **अग्नीति** । अग्निदक्षिण वामकोणेषु कूटत्रयं पूर्वे, रुद्रविष्णुब्रह्मणां शक्तयश्च तिस्रः कामेश्वरी वज्रेशी भगमालिनी संज्ञाः पूज्याः॥ १२७॥ तासां ध्यानान्याहश्लोकत्रयेण । **कामेति** । वामयोः पुस्तकाभये । वराक्षमाले दक्षयोः । उद्यन्मार्तण्डो भानुस्तेन समाना प्रभा यस्याः । वरपुष्पबाणौ दक्षयोः । इक्षुधनुरभये वामयोः । **भङ्गेति** । हाटकं कनकं तत्तुल्यं कान्तिः । ज्ञानमुद्रावरौ दक्षयोः । पाशांकुशौ वामयोः॥ १२८–१३०॥

संज्ञक वाले कामेश्वर और कामेश्वरी के बाण, धनुष, पाश और अंकुश की पूजा करनी चाहिए । बाण के पहले पञ्चबाण बीज, धनुष के पहले सानुस्वार मीनकृष्ण (धं थं), पाश के पहले पाश और मायाबीज (आं ह्रीं) तथा अंकुश के पहले अंकुश बीज (क्रौं) लगाना चाहिए ॥ १२२-१२५ ॥

अनेक रत्नों से सुशोभित, अपने अपने आयुधों से युक्त, विद्युत् के समान देदीप्यमान अङ्गो वाली तथा यौवन के उन्माद से इठलाती हुई चाल वाली, उक्त आयुध देवियों का ध्यान करना चाहिए ॥ १२६ ॥

आग्नेयादि तीन कोणों में कूटत्रय सहित कामेश्वरी, वज्रेशी और भगमालिनी का पूजन करना चाहिए ॥ १२७ ॥

कामेशी का ध्यान - शरत्कालीन चन्द्रमा जैसी स्वच्छ कान्तिवाली, अपने हाथों में पुस्तकें, अभय, वर और माला धारण की हुई, रुद्र की शक्ति, कामेश्वरी का ध्यान करना चाहिए ॥ १२८ ॥

वज्रेशी का ध्यान - उदीयमान सूर्य के समान आभा वाली, इक्षु का चाप, वर, अभय और पुष्पबाण अपने हाथों में लिए हुये, विष्णु की शक्ति, वज्रेश्वरी

भगमालाब्रह्मशक्तिस्तप्तहाटकसप्रभा ।
ज्ञानमुद्रां वरं पाशमंकुशं दधती करैः ॥ १३० ॥
एवं त्रिकोणं सम्पूज्य यच्छेत् पुष्पाञ्जलिं ततः ।
बीजमुद्रां प्रदर्श्याथ प्रार्थयेत् सुन्दरीमिदम् ॥ १३१ ॥
सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे योगिन्यः पूजिता मया ।
दिशन्त्वतिरहस्याख्या मङ्गलं मे निरन्तरम् ॥ १३२ ॥

प्रयोगो यथा – कएईल ह्रीं कामरूपपीठे कामेश्वरी रुद्रशक्ति श्रीपा० । हसकल ह्रीं पूर्णगिरिपीठे वज्रेश्वरीविष्णुशक्तिश्री० । सकल ह्रीं जालंधरपीठे भगमालिनी ब्रह्मशक्तिश्रीपा० । एवमष्टमावरणामिष्ट्वा सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे मूलेन पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा इमा अतिरहस्यायोगिन्यः पूजिताः सन्त्विति संप्रार्थ्य बीजमुद्रां दर्शयेत् ॥ १३१–१३२ ॥

देवी का ध्यान करना चाहिए ॥ १२६ ॥

उत्तप्त सुवर्ण के समान जगमगाती हुई, हाथों में ज्ञानमुद्रा, वर, पाश एवं अंकुश लिए हुये, ब्रह्मदेव की शक्ति, **भगमालिनी का ध्यान** करना चाहिए ॥ १३० ॥

इस प्रकार त्रिकोण में उक्त देवियों का पूजन कर पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी चाहिए । तदनन्तर बीजमुद्रा प्रदर्शित करते हुये 'सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे इमा अतिरहस्या योगिन्यः पूजिताः सन्तु मे निरन्तरं मङ्गलं दिशन्तु' ऐसी प्रार्थना त्रिपुरसुन्दरी से करनी चाहिए ॥ १३१-१३२ ॥

विमर्श - पूजाविधि - 'नानारत्न०' (द्र० १२. १२६) श्लोक के अनुसार आयुध देवियों का ध्यान कर, अ क थ वर्णों से संयुक्त त्रिकोण के चारों ओर, पश्चिम से प्रारम्भ कर, अनुलोम क्रम से, अपने अपने बीजमन्त्रों के साथ कामेश्वर और कामेश्वरी के बाण, धनुष, आदि का इस प्रकार पूजन करे । यथा -

यां रां लां वां शां द्रां द्रीं क्लीं ब्लूं सः कामेश्वरकामेश्वरी **जम्भबाण** श्रीपादुकां पूजयामि पश्चिमे,

धं थं कामेश्वरकामेश्वरी **मोहनधनुः** श्रीपादुकां पूजयामि उत्तरे,

आं ह्रीं कामेश्वरकामेश्वरी **वशीकरणपाश** श्रीपादुकां पूजयामि पूर्वे,

क्रों कामेश्वरकामेश्वरी **स्तम्भनांकुश** श्रीपादुकां पूजयामि दक्षिणे,

इसके बाद त्रिकोण के आग्नेयादि कोणों में (१२. १२८) श्लोक के अनुसार कामेश्वरी रुद्रशक्ति का, (१२. १२६) श्लोक के अनुसार विष्णुशक्ति वज्रेश्वरी का तथा (१२. १३०) श्लोक के अनुसार ब्रह्मशक्ति भगमालिनी का ध्यान कर इस प्रकार पूजन करना चाहिए । यथा -

कएईलह्रीं कामेश्वरीपीठे कामेश्वरीरुद्रशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि,

हसकहलह्रीं पूर्णगिरिपीठे वज्रेश्वरीविष्णुशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि,

बिन्दौ सम्पूजयेत् पश्चाच्छ्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ।
मूलविद्यां समुच्चार्य ध्यात्वा पूर्वोक्तवर्त्मना ॥ ३१३ ॥
सर्वानन्दमये चक्रे सर्वाभीष्टविधायिनीम् ।
परापररहस्याख्या योगिनी पूजितास्तु मे ॥ १३४ ॥
योनिमुद्रां प्रदर्श्याथ तर्पणं त्रिः समाचरेत् ।
धूपं दीपं च नैवेद्यमन्नैर्नानाविधैर्दिशेत् ॥ १३५ ॥

ततो मूलविद्यां पठित्वा ध्यात्वा बिन्दौ श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामीति यजेत् ॥ १३३ ॥ एवं नवमावरणमाराध्य सर्वकामप्रदे चक्रे सर्वाभीष्टदायिनी परापररहस्ययोगिनीश्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी पूजितास्त्विति संप्रार्थ्य योनिमुद्रां प्रदर्श्य त्रिस्तर्पयित्वा धूपदीपादीनि दत्त्वा अग्नावाह्य हुत्वोद्वासयेत् ॥ १३४—१३६ ॥

सकलह्रीं जालन्धरपीठे भगमालिनीब्रह्मशक्ति श्रीपादुकां पूजयामि,

इस प्रकार पूजन करने के पश्चात् मूलमन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर 'सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे इमा अतिरहस्या योगिन्यः पूजिताः सन्तु निरन्तरं मङ्गलं दिशन्तु' ऐसी प्रार्थना कर बीजमुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ।

बीजमुद्रा का लक्षण - परिवर्त्य करौ स्पष्टावर्द्धचन्द्राकृती प्रिये । तर्जन्यङ्गुष्ठयुगले युगपत्कारयेत्ततः ॥ अधः कनिष्ठावष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत् । तथैव कुटिले योज्ये सर्वाधस्तादनामिके । बीजमुद्रेयमुदिता सर्वसिद्धिप्रदायिनी ॥ १२२-१३२ ॥

अब **नवम आवरण की पूजन विधि** कहते हैं - इसके बाद बिन्दु पर विधिवत् ध्यान कर पूर्वोक्त विधि से मूलविद्या मन्त्र बोलकर श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर 'स्वानन्दमये चक्रे सर्वाभीष्टविधायिनीं परात्पररहस्य योगिनी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी पूजितास्तु' ऐसी प्रार्थना कर योनिमुद्रा प्रदर्शित कर ३ बार तर्पण करना चाहिए । तदनन्तर धूप, दीप, आदि तथा अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों का नैवेद्य भगवती को निवेदित करना चाहिए ॥ १३३-१३५ ॥

विमर्श - पूजाविधि - ११. ५१ श्लोक के द्वारा भगवती के स्वरूप का ध्यान कर बिन्दु पर मूल मन्त्र - 'श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी श्रीपादुकां पूजयामि' से श्री श्रीविद्या का पूजन कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करे । फिर 'सर्वानन्दमये चक्रे श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी पूजितास्तु' ऐसी प्रार्थना कर महायोनिमुद्रा प्रदर्शित करना चाहिए ।

महायोनिमुद्रा का लक्षण - मध्यमे कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरि संस्थिते ।
अनामिका मध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके ॥
सर्वा एकत्र संयोज्या अङ्गुष्ठ परिपीडिता ।
एषा तु प्रथमा मुद्रा महायोन्यमिधा मता ॥

फिर मूल मन्त्र - 'श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीं तर्पयामि' से तीन बार तर्पण कर धूप

वह्निं सम्पूज्य पूर्वोक्तविधिना तत्र सुन्दरीम् ।
आवाह्य जुहुयाद् द्रव्यं पञ्चविंशतिसंख्यया ॥ १३६ ॥

होमविधानबटुकादिबलिदानप्रकारः

श्रीचक्रस्य बलिं दद्याद्धुतशेषेन संयुतः ।
ईशानाग्नेयनैर्ऋत्यवायुकोणेषु च क्रमात् ॥ १३७ ॥
बटुकस्य च योगिन्याः क्षेत्रेशगणनाथयोः ।
निजैर्मन्त्रैः स्वमुद्राभिः पूर्वसंकीर्तितैर्मया ॥ १३८ ॥
प्रदक्षिणानतीः कृत्वा मूलविद्यां ततो यजेत् ।
एवं श्री सुन्दरीं नित्यं पूजयन्विजितेन्द्रियः ॥ १३६ ॥
नवावृतियुतां सर्वान् कामानिष्टानवाप्नुयात् ।

तत ईशानादिकोणेषु हुतशेषेण बटुकयोगिनी क्षेत्रपालगणेशेभ्यः पूर्वोक्तैः स्वस्वमन्त्रैस्तत्तन्मुद्रादर्शनपूर्वकं बलिं दद्यात् ॥ १३७–१३८ ॥ नतीर्नमस्कारान् ॥ १३६ ॥ नवावृतियुतां नवावरणैरुक्तैर्युताम् ॥ १४० ॥

दीपादि उपचारों से देवी का पूजन कर विविध नैवेद्य समर्पित करे ॥ १३३-१३५ ॥

इसके बाद पूर्वोक्त विधि (द्र० १. १२६) से अग्निदेव की पूजा कर उसमें त्रिपुरसुन्दरी का आवाहन कर हव्यद्रव्यों से २५ आहुतियाँ (मूलमन्त्र द्वारा) प्रदान करे ॥ १३६ ॥

फिर श्रीचक्र के ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य और वायव्य कोणों में हुतशेष द्रव्य से, अपने अपने मन्त्रों एवं मुद्राओं से क्रमशः बटुक, योगिनी, क्षेत्रपाल और गणपति को पूर्वोक्त रीति से बलि प्रदान करनी चाहिए ॥ १३७-१३८ ॥

तदनन्तर प्रदाक्षिणा और नमस्कार कर मूलविद्या का जप करना चाहिए । इस प्रकार जितेन्द्रिय साधक प्रतिदिन ६ आवरणों के साथ श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी का पूजन कर अपने समस्त मनोरथों को पूर्ण करता है ॥ १३६-१४० ॥

विमर्श - बलिदान विधि - 'एह्येहि देवीपुत्र बटुकनाथ कपिलजटाभार भासुर त्रिनेत्रज्वालामुख सर्वविघ्नान्नाशय नाशय सर्वोपचार सहितं इमं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इस मन्त्र से तर्जनी और अङ्गुष्ठ मिलाकर बटुकमुद्रा प्रदर्शित कर हुतशेष द्रव्यों की बलि ईशान कोण में बटुक को देनी चाहिए ।

तदनन्तर 'ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिशिगगनतले भूतले निष्कले वा
पाताले वा तले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थितां वा ।
क्षेत्रपीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन
प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पातु वीरेन्द्रवन्द्याः ॥
यां योगिनीभ्यो नमः'

साधकाभीष्टसिद्धिदाः प्रयोगाः

अथ प्रयोगा वक्ष्यन्ते साधकाभीष्टसिद्धिदाः ॥ १४० ॥
नवलक्षजपेनास्य रुद्ररूपो नरो भवेत् ।
मल्लिकामालतीपुष्पैर्होमाद् वागीशतामियात् ॥ १४१ ॥
करवीरैर्जपापुष्पैर्होमान्मोहयते जगत् ।
चन्द्रकुंकुमकस्तूरीहोमात् कामाधिको भवेत् ॥ १४२ ॥
चम्पकैः पाटलैर्विश्वं वशमानयतेऽचिरात् ।
लाजाहोमो राज्यदायी मधुनोपद्रवक्षयः ॥ १४३ ॥

प्रयोगामाह – **नवेति** ॥ १४१ ॥ चन्द्रः कर्पूरम् । कामाधिको भवेद् रूपेणेति शेषः ॥ १४२–१४३ ॥

इस मन्त्र से अनामिका, कनिष्ठा एवं अङ्गुष्ठ को मिलाने से निष्पन्न मुद्रा द्वारा हुतशेष द्रव्य से योगिनियों को बलि देनी चाहिए ।

तदनन्तर 'क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षौं क्षः हुं स्थानक्षेत्रपालेश सर्वकामं पूरय स्वाहा' इस मन्त्र से बायें हाथ का अङ्गुष्ठ और अनामिका को मिलाने से निष्पन्न मुद्रा प्रदर्शित कर हुतशेष द्रव्य से श्रीचक्र के नैर्ऋत्यकोण में क्षेत्रपाल को बलि प्रदान करना चाहिए ।

फिर 'गां गीं गूं गं गणपतये वर वरद सर्वजनं मे वशमानय सर्वोपचार सहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इस मन्त्र को पढ़कर थोड़ी वक्र की हुई मध्यमा की मुद्रा प्रदर्शित कर हुत शेष द्रव्य से श्रीचक्र के वायव्यकोण में गणपति को बलिप्रदान करना चाहिए ॥ १३७-१४० ॥

काम्य प्रयोग - अब साधकों को अभीष्ट प्रदान करने वाले काम्य प्रयोगों को कहता हूँ ॥ १४० ॥

इस मन्त्र का ९ लाख जप करने से साधक रुद्र स्वरूप प्राप्त कर लेता है । इस मन्त्र के द्वारा मल्लिका (बेला) और मालती के फूलों के होम से साधक को वागीशता प्राप्त होती है ॥ १४१ ॥

इतना ही नहीं कनेर और जपाकुसुम के होम से साधक सारे जगत् को मोहित कर लेता है । कपूर, कुंकुम और कस्तूरी के होम से व्यक्ति कामदेव से भी आधिक रूप संपन्न हो जाता है । चम्पा एवं गुलाब के होम से व्यक्ति शीघ्र ही विश्व को अपना वशवर्ती बना लेता है ॥ १४२-१४३ ॥

लाजा के होम से राज्य प्राप्ति होती है, मधु के होम से समस्त उपद्रव नष्ट हो जाते है, रात्रि के समय छागमांस के होम से शत्रु सेना नष्ट हो जाती है । दही के होम से आरोग्य, घी के होम से संपत्ति, दूध के होम से ग्राम, तथा मधु के होम

निशिच्छागपलैर्होमो रिपुसैन्यविनाशकृत् ।
दध्याज्यदुग्धमधुभिः क्रमाद्धोमादवाप्नुयात् ॥ १४४ ॥
आरोग्यं सम्पदं ग्रामं धनं शर्करयासुखम् ।
कमलैर्धनसम्पत्तिर्दाडिमैराजवश्यताम् ॥ १४५ ॥
क्षत्त्रियामातुलिङ्गैस्तु वैश्या नारङ्गजैः फलैः ।
शूद्राः कूष्माण्डसम्भूतैर्वश्याः स्युरचिराद्धुतैः ॥ १४६ ॥
पनसानां लक्षहोमाद्वश्यास्स्युश्चक्रवर्तिनः ।
द्राक्षाफलैरिष्टसिद्धि रम्भाभिर्मन्त्रिणो वशाः ॥ १४७ ॥
नारिकेलैस्तु सम्पत्तिस्तिलैः सर्वेष्टसिद्धयः ।
गुग्गुलैर्दुःखनाशः स्यात् सर्वेष्टं शर्करागुडैः ॥ १४८ ॥
पायसैर्धनधान्याप्तिर्बन्धूकैः प्राणिनो वशाः ।
पक्वैश्चूतफलैर्होमाल्लक्षमात्राद्धरावशा ॥ १४९ ॥
लवणै राजिकायुक्तैर्होमाद् दुष्टविनाशनम् ।
कर्पूरहोमाल्लभते वाक्पतित्वं नरोऽचिरात् ॥ १५० ॥
करञ्जफलहोमेन भूतप्रेतादयो वशाः ।
बिल्वैः स्यादतुलालक्ष्मीरिक्षुदण्डैः सुखाप्तयः ॥ १५१ ॥

दधीति । दध्नारोग्यम् । आज्येन सम्पदम् । दुग्धेन ग्रामम् । मधुना धनमिति क्रमः । राजवश्यतामवाप्नुयादिति पूर्वेण सम्बन्धः । मातुलिङ्गैर्बीज-पूरैर्हुतैः क्षत्रिया वश्याः । एवमग्रेऽपि ॥ १४४–१४८ ॥ धराभूमिर्वशा तत्स्थाः प्राणिनो वश्याः स्युरित्यर्थः ॥ १४९–१५२ ॥

से धन प्राप्त होता है । कमलों के होम से धन संपत्ति मिलती है तथा अनार के होम से राजा वशवर्ती हो जाता है । बिजौरा के होम से क्षत्रिय, नारंगी के होम से वैश्य, तथा पेठा के होम से शूद्र शीघ्र ही वश में हो जाते है ॥ १४३-१४६ ॥

कटहल से एक लाख आहुतियाँ देने पर चक्रवर्ती राजा वश में हो जाता है, अंगूर के होम से इष्टसिद्धि, बेला के होम से मन्त्री वश में हो जाता है । नारियल के होम से संपत्ति तथा तिल के होम से सभी अभीष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं ॥ १४७-१४८॥

गुग्गुलु के होम से दुःख नाश, चक्रवड़ एवं गुड के होम से मनोरथ पूर्ण होते हैं । खीर के होम से धन धान्य मिलता है । बन्धूक (दुपहिरया) के फूलों के होम से प्राणी वश में हो जाते हैं । पक्व आमों की एक लाख आहुतियाँ देने से पृथ्वी पर रहने वाले सारे प्राणी वश में हो जाते हैं ॥ १४८-१४९ ॥

राई मिश्रित लवण के होम से दुष्टों का नाश होता है । कपूर के होम से शीघ्र कवित्व की प्राप्ति होती है । करञ्ज फल के होम से भूत प्रेत आदि वश में हो जाते हैं ॥ १५०-१५१ ॥

घृतहोमादीप्सिताप्तिः शान्तिः स्यात्तिलतण्डुलैः ।
किंबहूक्तेन देवेशि सर्वेष्टं साधितं नृणाम् ॥ १५२ ॥
मध्ये कूटत्रिके भेदा वर्णान्तरनियोजनात् ।
बहवोऽन्येन गदिता ग्रन्थगौरवभीतितः ॥ १५३ ॥

मध्ये मन्त्रमध्ये यत्कूटत्रयं तत्रान्यवर्णयोगात्कुबेरोपासितयोर्द्वात्रिंशद्-भेदास्ते ग्रन्थगौरवभीत्या नोक्ताः । अनयैवोपासितया सर्वेष्टसिद्धेश्च मुख्येषैव कामराजविद्या । ते भेदा –

कूटत्रयस्य द्वात्रिंशद् भेदकथनम्

यथा – १–२ सहकलएईलह्रीं हसकलएईलह्रीं सहकएईलह्रीं हसकहईलह्रीं सहकहएईलह्रीं कहसहएईलह्रीं । **एतत्कौबेरीद्वयं** कूटद्वयं **राजराजीयम्** । सहसकलह्रीं सहसकलह्रीं हसकहलह्रींसकलह्रीं । **एतद्द्वयमगस्त्यो**पासितम् ।

३–४ हसकलह्रीं अन्ते कामराजीये; आद्य द्वयं कामराजीयं सहसकल ह्रीं । **एतद्द्वयं लोपामुद्रोपासितम्** ।

५–६ हसकएईलह्रीं सहएकईलह्रीं हसकएईलह्रीं । हसकएईलह्रीं सहकएइलह्रीं । तृतीयमीदृशमेव ।

७–८ **चान्द्रीद्वयमेतत्** । सकलह्री । सकलहलह्रीं । हसकलहह्रीं । कएईलहसकहलहीह्रींह्रींह्रींलसकहलह्रीं । **एतद्द्वयं दुर्वासोर्चितम्** ।

तदुक्तं **ज्ञानार्णवे** – कामराजाख्य विद्या यस्त्रिकूटेषु वरानने ।
यास्थिता भुवनेशानी द्विधा कुरु महेश्वरि ।
बिन्दुहीना नादहीना दुर्वासोपासिता भवेत् ॥

संहितायां च – वाग्भवस्थं चतुष्कं च कामराजस्य पञ्चकम् ।
शक्तिकूटं त्रिकार्यं च कामराजस्य संलिखेत् ।
मायास्थानेह रीवर्णयुगलं च क्रमाल्लिखेत् ।
दुर्वाससापूजितेयं पुरुषार्थप्रदायिनि ॥ इति ॥

कएईलहरी हसकहलहरी सहलहरी । एतद्द्वयं **दुर्वाससोर्चितम्** । आद्या कामराजतुल्या । सहकलह्रीं० अन्त्ये एतादृशे एव । **ऐन्द्री** द्वयमेतत्

बिल्वफल के होम से अतुल लक्ष्मी तथा ईख खण्ड के होम से सुख मिलता है । घी के होम से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति तथा तिल तन्दुल के होम से शान्ति प्राप्त होती है । हे देवेशि - विशेष क्या कहें इस मन्त्र द्वारा मनुष्य अपने समस्त अभीष्टों को प्राप्त कर लेता हैं ॥ १५१-१५२ ॥

कूटत्रितय के मध्य में अन्य वर्णों के लगाने से इस श्रीविद्या के अनेक भेद हो जाते हैं । ग्रन्थ विस्तार के भय से यहाँ उनका निर्देश नहीं कर रहा हूँ ॥ १५३ ॥

॥ १३–१४ ॥ सएईलह्रीं हकहकहलह्रीं सकलह्री । सहसकल ह्रींसहसकलकहलह्रीं । आद्यमेवतृतीयम् । **नन्दिविद्याद्वयमेतत्** । हसकहलह्रीं । सकहसकलह्रीं– सहकहलह्रीं ॥ १५ ॥ हसएकल ह्रींद्वयमेतदेव**स्कान्दी**द्वयमेतत् ॥ १६ ॥ कहएईलह्रीं हकएईलह्रीं सकएइलह्रीं ॥ १७ ॥ **मानवी** । कएकलह्रीं हकहलह्रीं सकलह्रीं ॥ १८ ॥ **धर्मराजी** । आद्यं कामराजीयं । द्वितीये तृतीये धर्मराजीये ॥ १९ ॥ एषा **वारुणी** । कसकलह्रीं हसकलह्रीं सकलरह्रीं ॥ २० ॥ **आग्नेयी** । हसकलह्रीं हसकलह्रीं हकहलह्रीं तृतीयमाग्नेयम् ॥ २१ ॥ एषा **शैषी**। कएरलारह्रीं हकलरहलह्रीं सरकलरह्रीं ॥ २२ ॥ **वायवीयम्** । एकईरलह्रीं हकहलह्रीं सहकलरह्रीं ॥ २३ ॥ **सौमीयम्** । कहलह्रीं हकहललरह्रीं सकलह्रीं ॥ २४ ॥ **ऐशीयम्** । कएकलह्रीं । अन्ते कामराजीयम् ॥ २५ ॥ **शाक्तीयम्** । आद्य कामराजद्वयम् । अन्त्यं सकलह्रीमिति ॥ २६ ॥ **रतिपूजिता** । हसकलह्रीं कहसरह्रीं आद्यमेव तृतीयम् ॥ २७ ॥ **जैवीयम्** । आद्यं कामराजीयं । हकहसरह्रीं हसकलह्रीं ॥ २८ ॥ **ब्राह्मीयं** । सहलह्रीं सहकलहलह्रीं ॥ २९ ॥ **वैष्णवीयम्** । अद्यं कामराजीयं । हकहलरह्रीं हलकलह्रीं ॥ ३० ॥ **उन्मानीयं** । हसकलह्रीं सहकलह्रीं कलह्रीं सकलहलह्रीं ॥ ३१ ॥ **सौरी** । एते भेदाः । एषां श्रीबीजादिभिः संपुटिताः । कामराजवदेव उपासनमपि ॥ १५३–१५४ ॥

विमर्श – षोडशी मन्त्र के मध्य के तीनों कूटो में वर्णविपर्यय द्वारा कुबेरोपासिता आदि बत्तीस भेद बनते हैं, जिनका आचार्य ने 'नौका' में वर्णन किया है ।

इसके अलावा आगम शास्त्र में षोडशी विद्या के कुछ और भी भेद कहे गये हैं जो निम्नलिखित हैं -

कामराजविद्या - कएलईह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं ।
प्रथमलोपामुद्रा - हसकलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं ।
मनुपूजिता - कहएईलह्रीं, हकएईलह्रीं, सकएईलह्रीं ।
चन्द्रपूजिता - सहकएलईलह्रीं, सहकहईलह्रीं, सहकएईलह्रीं ।
कुबेरपूजिता - हसकएईलह्रीं हसकएईलह्रीं हसकएईलह्रीं ।
द्वितीयलोपामुद्रा - कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सहसकलह्रीं ।
नन्दिपूजिता - सएईलह्रीं, सहकहलह्रीं, सकलह्रीं ।
सूर्यपूजितः - कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं ।
शकंरपूजिता - कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, सहसकलह्रीं, कएईलहसकहलसकसकलह्रीं,
विष्णुपूजिता - कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, सहसकलह्रीं, सएईलह्रीं, सहकहलह्रीं, सकलह्रीं ।
दुवार्सापूजिता - कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं ॥ १५३ ॥

अपरीक्षितशिष्याय न देयेऽयं कदाचन।
पुत्राय वा सुशिष्याय दत्त्वाऽभीष्टप्रदायिनी ॥ १५४ ॥

गोपालसुन्दरीमन्त्रः

गोपालसुन्दरीं वक्ष्ये भोगमोक्षप्रदायिकाम्।
मायारमाचित्तजन्मा कृष्णायेति पदं ततः ॥ १५५ ॥
आद्यं वाक्कूटमुच्चार्य गोविन्दाय पदं वदेत्।
द्वितीयं तु ततः कूटं गोपीजन पदं ततः ॥ १५६ ॥
वल्लभायपदान्तं तु तृतीयं कूटमुच्चरेत्।
स्वहान्ता वह्नियुग्मार्णा स्मृतां गोपालसुन्दरी ॥ १५७ ॥
विद्यायादौ मुनी उक्तौ विधात्रानन्दभैरवौ।
छन्दस्तु दैवीगायत्री देवतासुन्दरीयुता ॥ १५८ ॥
गोपालो मन्मथो बीजं शक्तिः पावकवल्लभा।
मायाश्रीर्मन्मथैर्हृत् स्यात् कृष्णाय शिर ईरितम् ॥ १५९ ॥

गोपालसुन्दरीमिति । मायेति । माया ह्रीं । रमा श्रीं । चित्तजन्मा–क्लीं । कृष्णाय ॥ १५५ ॥ प्रथमं कूटम् । गोविन्दाय द्वितीयं कूटम् । गोपीजन–वल्लभायं तृतीयम् । स्वाहान्ता । वह्नियुग्मार्णा त्रयोविंशतिवर्णा ॥ १५६–१५८ ॥ षडङ्गमाह – **मायेति** ॥ १५९–१६० ॥

यह श्रीविद्या अपरीक्षित शिष्य को कभी नहीं देनी चाहिए । अभीष्ट फल दायिनी यह विद्या अपने पुत्र एवं सुपरीक्षित शिष्य को ही देनी चाहिए ॥ १५४॥

अब **भोग तथा मोक्षदायिनी गोपालसुन्दरी मन्त्र का उद्धार** कहता हूँ -

माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), चित्तजन्मा (क्लीं), फिर 'कृष्णाय' इस प्रथम वाक्कूट का उच्चारण कर 'गोविन्दाय' यह द्वितीय कूट, फिर गोपीजनवल्लभाय तृतीय कूट बोलना चाहिए । इसके अन्त में स्वाहा लगाने से २० अक्षरों का गोपालसुन्दरी मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १५५-१५७ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ह्रीं श्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' ॥ १५५-१५७ ॥

विनियोग तथा षडङ्गन्यास - इस गोपालसुन्दरी विद्या के विधात्रा तथा आनन्दभैरव दो ऋषि हैं, देवी गायत्री छन्द है, गोपालसुन्दरी देवता हैं, कामबीज क्लीं तथा स्वाहा शक्ति है । माया (ह्रीं), श्री (श्रीं), कामबीज (क्लीं) से हृदय में, 'कृष्णाय' से शिर में, 'गोविन्दाय' से शिखा, 'गोपीजन' से कवच, 'वल्लभाय' से नेत्र तथा 'स्वाहा' से अस्त्रन्यास करना चाहिए ॥ १५८-१५९ ॥

गोविन्दाय शिखागोपीजनेति कवचं मतम्।
वल्लभाय स्मृतं नेत्रमस्त्रं पावकभार्यया॥ १६०॥

अस्य मन्त्रस्य न्यासत्रयकथनम्

मूर्ध्नि भाले भ्रुवोरक्ष्णोः कर्णयोर्नासयोर्मुखे।
चिबुके च गले बाह्वोर्हृदये जठरे न्यसेत्॥ १६१॥
नाभौ लिङ्गे गुदे सक्थ्नोर्जानुनोर्जङ्घयोरपि।
गुल्फयोः पादयोर्वर्णान् कूटत्रयविवर्जितान्॥ १६२॥
सृष्टिन्यासोऽयमुदितो हृदाद्यं सान्तिकास्थितिः।
संहारोंघ्र्यादिमूर्द्धान्तः पुनः सृष्टिं स्थितिं चरेत्॥ १६३॥

वर्णन्यासमाह – **मूर्ध्नीति** । हृदादिबाह्वन्तः – स्थितिन्यासः । पादादिमूर्द्धान्तः संहारन्यासः । एवं न्यासत्रयं कृत्वा पुनः सृष्टिस्थितिन्यासौ कुर्यात् ॥ १६१–१६३ ॥

विमर्श – विनियोग – अस्य श्रीगोपालसुन्दरीमन्त्रस्य विधात्रानन्दभैरवौ ऋषि देवी गायत्रीच्छन्दः गोपालसुन्दरी देवता क्लींबीजं स्वाहाशक्तिः ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास – ह्रीं श्रीं क्लीं हृदयाय नमः, कृष्णाय शिरसे स्वाहा,
गोविन्दाय शिखायै वषट्, गोपीजन कवचाय हुम्,
वल्लभाय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ १५८-१५९ ॥

सृष्टि स्थिति तथा संहारन्यास - शिर, ललाट, भौंह, नेत्र, कान, नासिका, मुख, चिबुक, कण्ठ, कन्धा, हृदय, उदर, नाभि, लिङ्ग, गुदा, कमर, जानु, जंघा, गुल्फ एवं पैरो में कूटत्रय को छोड़कर वर्णों का न्यास करना चाहिए । यह सृष्टि न्यास कहा जाता है । हृदय से कन्धों तक का न्यास **स्थितिन्यास**, तथा पैरों से शिर तक का न्यास **संहारन्यास** होता है । इसके बाद पुनः सृष्टिन्यास करना चाहिए ॥ १६०-१६३ ॥

विमर्श – सृष्टिन्यास –

ह्रीं नमः मूर्ध्नि, श्रीं नमः ललाटे, क्लीं नमः भ्रुवोः,
कृं नमः नेत्रयोः, ष्णां नमः कर्णयोः, यं नमः नासिकयोः,
गों नमः मुखे, विं नमः चिबुके, न्दां नमः कण्ठे,
यं नमः बाहुमूले, गों नमः हृदि, पीं नमः उदरे,
जं नमः नाभौ, नं नमः लिङ्गे, वं नमः गुदे,
ल्लं नमः कट्यां, भां नमः जान्वोः, यं नमः जंघयोः,
स्वां नमः गुल्फयोः, हां नमः पादयोः,

करशुद्ध्यासनन्यासौ न्यासं वाग्देवताभिधम्।
कृत्वा पूर्वोदितान् कूटत्रयं कास्यहृदि न्यसेत्॥ १६४॥
कूटत्रयद्विरावृत्त्या षडङ्गं पुनराचरेत्।
कमलावसुधायुक्तं ध्यायेच्छ्रीचक्रगं हरिम्॥ १६५॥

करशुद्धिन्यासासनन्यासवाग्देवतान्यासान् सुन्दर्युक्तान् कृत्वा मूर्धमुखहृत्सु कूटत्रयं न्यसेत्॥ १६४–१६५॥

स्थितिन्यास -	ह्रीं नमः हृदि,	श्रीं नमः उदरे,
क्लीं नमः नाभौ	कृं नमः लिङ्गे	ष्णां नमः मूलाधारे
यं नमः कटयां	गों नमः जान्वोः	विं नमः जंघयोः
न्दां नमः गुल्फयोः	यं नमः पादयोः	गों नमः मूर्ध्नि
पीं नमः ललाटे	जं नमः भ्रुवोः	नं नमः नेत्रयोः
वं नमः कर्णयोः	ल्लं नमः नसोः	भां नमः मुखे
यं नमः चिबुके	स्वां नमः कण्ठे	हां नमः बाहुमूले
संहारन्यास -	ह्रीं नमः पदयोः	श्रीं नमः गुल्फयोः,
क्लीं नमः जंघयोः	कृं नमः जान्वोः	ष्णां नमः कटयां
यं नमः गुदे	गों नमः लिङ्गे	विं नमः नाभौ
न्दां नमः उदरे	यं नमः हृदि	गों नमः बाहुमूले
पी नमः कण्ठे	जं नमः चिबुके	नं नमः मुखे
वं नमः नसोः	ल्लं नमः कर्णयोः	भां नमः नेत्रयोः
यं नमः भ्रुवोः	स्वां नमः ललाटे	हां नमः मूर्ध्नि ।

गोपालसुन्दरी मन्त्र द्वारा इस रीति से सृष्टि, स्थिति तथा संहारन्यास कर पुनः सृष्टिन्यास और स्थितिन्यास करना चाहिए ॥ १६०-१६३ ॥

फिर पूर्वोक्त रीति से करशुद्धिन्यास (द्र० ११. ८-१४) तथा वाग्देवतान्यास आसनन्यास (द्र० ११. २७-३६) कर तीनों कूटों से शिर, मुख एवं हृदय में न्यास करना चाहिए । पुनः तीनों कूटों की दो आवृति से षडङ्गन्यास करना चाहिए । इसके बाद श्रीचक्र में स्थित कमला और वसुधा के साथ श्री हरि का ध्यान करना चाहिए ॥ १६४-१६५ ॥

विमर्श - **त्रिकूटन्यास** - ११ तरङ्ग में वर्णित विधि से करशुद्धिन्यास, आसनन्यास, वाग्देवतान्यास कर, त्रिकूट द्वारा इस प्रकार न्यास करना चाहिए -

कृष्णाय नमः मूर्ध्नि, गोविन्दाय नमः मुखे, गोपीजनवल्लभाय नमः हृदि,

षडङ्गन्यास - कृष्णाय हृदयाय नमः, गोविन्दाय शिरसे स्वाहा,
गोपीजनवल्लभाय शिखायै वषट्, कृष्णाय कवचाय हुम्
गोविन्दाय नेत्रत्रयाय वौषट् गोपीजनवल्लभाय अस्त्राय फट् ॥ १६४-१६५ ॥

ध्यानजपादिपीठपूजाविधानम्

क्षीराम्भोधिस्थकल्पद्रुमवनविलसद्रत्नयुङ्मण्डपान्तः
प्रोद्यच्छ्रीपीठसंस्थं करधृतजलजारीक्षुचापांकुशेषुम्।
पाशं वीणां सुवेणुं दधतमवनिमाशोभितं रक्तकान्तिं
ध्यायेद् गोपालमीशं विधिमुखविबुधैरीड्यमानं समन्तात्॥ १६६॥

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं दशांशं पायसान्धसा।
जुहुयाद्वैष्णवे पीठे पूजयेत् सुन्दरीहरिम्॥ १६७॥
आदावङ्गानि सम्पूज्य प्रागाद्याशासु पूजयेत्।
वासुदेवं संकर्षणं प्रद्युम्नमनिरुद्धकम्॥ १६८॥
पूज्यावह्न्यादिकोणेषु शान्तिः श्रीश्च सरस्वती।
रतिः पुनर्दिक्षु पूज्या रुक्मिणी सत्यभामिका॥ १६६॥
कालिन्दी जाम्बवत्याख्या मित्रविन्दासुनन्दया।
सुलक्षणानाग्निजिती ततोऽर्च्या निधयोऽपि च॥ १७०॥

ध्यानमाह – **क्षीरेति** । क्षीरसमुद्रस्य कल्पद्रुमवने विलसन् रत्नयुक् यो मण्डपस्तदन्तः प्रोद्यत् यत् श्रीपीठं तत्र स्थितमष्टकरं पद्मचक्रबाणवेणुदक्षकरं चापपाशांकुशवीणावामकरमवनिमाभ्यां धरालक्ष्मीभ्यां शोभितं ब्रह्मादिसुरैः स्तूयमानं गोलं ध्यायेत्॥ १६६–१७०॥

अब **गोपालसुन्दरी मन्त्र का ध्यान** कहते हैं - क्षीरसागर के मध्य में स्थित कल्पवृक्ष के वन में, शोभायमान रत्नमण्डप के भीतर, श्रीपीठ पर आसीन, अपनी आठों भुजाओं में क्रमशः पद्म, चक्र, इक्षुचाप, बाण, अंकुश, पाश, वीणा, एवं वेणु धारण किए हुये, रक्तिम प्रभा वाले धरा एवं लक्ष्मी से सुशोभित तथा ब्रह्मा आदि देवताओं से स्तूयमान गोपालनन्दन का ध्यान करना चाहिए॥ १६६॥

इस प्रकार गोपाल का ध्यान कर उक्त गोपालसुन्दरी मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर खीर से उसका दशांश होम करना चाहिए । फिर वैष्णव पीठ पर गोपालसुन्दरी का पूजन करना चाहिए॥ १६७॥

सर्वप्रथम अङ्गपूजा कर पूर्वादि दिशाओं में वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध का पूजन करे । फिर आग्नेय आदि कोणों में शान्ति, श्री, सरस्वती एवं रति का पूजन करना चाहिए । पुनः पूर्वादि दिशाओं में रुक्मिणी, सत्यभामा, कालिन्दी, जाम्बवती, मित्रविन्दा, सुनन्दा, सुलक्षणा, एवं नाग्निजिती - इन आठ पट्टरानियों का पूजन करना चाहिए । इसके बाद नव निधियों का भी पूजन करना चाहिए । महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व ये नव निधियाँ हैं । (द्र० १२. ७८-१३५) । इसके बाद त्रिपुरसुन्दरी के प्रयोग

महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव॥ १७१॥
ततश्च सुन्दरी प्रोक्तावृतिपूजां समाचरेत्।
प्रयोगानपि तत्रोक्तान् कुर्यादिष्टप्रसिद्धये॥ १७२॥

विधीनाह – **महापद्मश्चेति**॥ १७१॥ ततः सुन्दरीमन्त्रोक्तानि नवावरणानि यजेत्॥ १७२॥

में कहे गये ९ आवरणों की पूजा करनी चाहिए, और अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए वहीं बतलाये गये प्रयोगों के अनुसार अनुष्ठान भी करना चाहिए - (द्र० १२. १४०-१५२) ॥ १६८-१७२ ॥

गोपालसुन्दरीपूजनयन्त्रम्

विधि - गोपालसुन्दरी के आवरण पूजा के लिए वृत्ताकार कर्णिका अष्टदल एवं भूपुर सहित यन्त्र का निर्माण करना चाहिए । उस यन्त्र पर सामान्य पूजा पद्धति के अनुसार पीठ देवताओं एवं विमला आदि वैष्णवी पीठशक्तियों का पूजन कर, (१२. १६६) श्लोक के अनुसार ध्यान कर आवाहनादि उपचारों से पुष्पाञ्जलि पर्यन्त पूजन कर, इस प्रकार आवरण पूजा करे। सर्वप्रथम आग्नेयादि कोणों में षडङ्गन्यास पूजा करे । यथा -
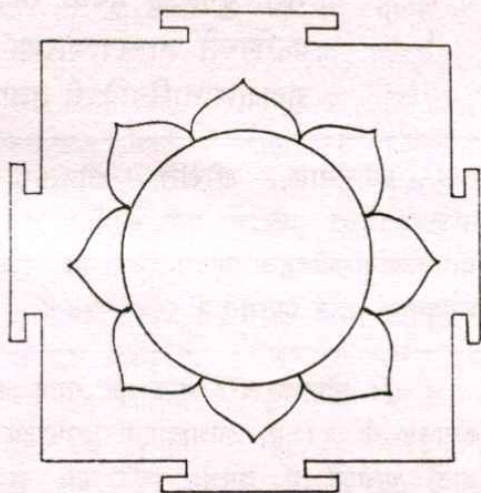
ह्रीं श्रीं क्लीं हृदयाय नमः, आग्नेये, कृष्णाय शिरसे स्वाहा, नैर्ऋत्ये,
गोविन्दाय शिखायै वषट्, वायव्ये, गोपीजन कवचाय हुम्,
वल्लभाय नेत्रत्रयाय वौषट्, अग्रे, स्वाहा अस्त्राय फट्, चतुर्दिक्षु,

फिर पूर्व आदि चारों दिशाओं में -

ॐ वासुदेवाय नमः, पूर्वे, ॐ संकर्षणाय नमः, दक्षिणे,
ॐ प्रद्युम्नाय नमः, पश्चिमे, ॐ अनिरुद्धाय नमः, उत्तरे।

इसके बाद आग्नेयादि चारो कोणों में - शान्त्यै नमः आग्नेये,
श्रियै नमः नैर्ऋत्ये, सरस्वत्यै नमः वायव्ये, रत्यै नमः ऐशान्ये ।

तत्पश्चात् अष्टदलों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से रुक्मिणी आदि का -

ॐ रुक्मिण्यै नमः, पूर्वे, ॐ सत्यभामायै नमः, आग्नेये
ॐ कालिन्द्यै नमः, दक्षिणे ॐ जाम्बवत्यै नमः, नैर्ऋत्ये

एवं यो भजते नित्यं श्रीमद्गोपालसुन्दरीम् ।
सर्वान् कामानवाप्यान्ते सायुज्यं ब्रह्मणो व्रजेत् ॥ १७३ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ चक्रस्थ–त्रिपुरसुन्दरी–गोपालसुन्दर्योः पूजनं नाम द्वादशस्तरङ्गः ॥ १२ ॥

ब्रह्मणः सायुज्यं ब्रह्मरूपं प्राप्नोति ॥ १७३ ॥

इति श्रीमन्ममहीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां सुन्दरीपूजनं नाम द्वादशस्तरङ्गः ॥ १२ ॥

मित्रबिन्दायै नमः, पश्चिमे सुनन्दायै नमः, वायव्ये
सुलक्षणायै नमः, उत्तरे नाग्निजित्यै नमः, ऐशान्ये

इसके बाहर पूर्वादि दिशाओं तथा मध्य में नव निधियों की इस प्रकार पूजा करे - महापद्माय नमः पूर्वे, पद्माय नमः आग्नेये, शंखाय नमः दक्षिणे,
मकराय नमः नैर्ॠत्ये, कच्छपाय नमः, पश्चिमे, मुकुन्दाय नमः वायव्ये,
कुन्दाय नमः उत्तरे, नीलाय नमः ऐशान्ये, खर्वाय नमः मध्ये,

इसके बाद त्रिपुरसुन्दरी के पूजा के प्रसङ्ग में कही गयी विधि के अनुसार नव आवरणों की पूजा करनी चाहिए । आवरण पूजा के बाद धूप दीपादि उपचारों से गोपालसुन्दरी का पूजन करना चाहिए ॥ १६८-१७२ ॥

इस प्रकार जो साधक प्रतिदिन गोपालसुन्दरी की उपासना करता है उसकी समस्त कामनायें पूरी होती हैं और अन्त में वह ब्रह्म स्वरूप प्राप्त करता है ॥ १७३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के द्वादश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशः तरङ्गः

अथोच्यन्ते हनुमतो मन्त्राः सर्वेष्टसिद्धये।

हनूमन्मन्त्रकथनम्

इन्द्रस्वरेन्दुसंयुक्तो वराहो हसफाग्न्यः ॥ १ ॥
झिण्टीशबिन्दुसंयुक्ता द्वितीयं बीजमीरितम्।
गदीपान्ताग्निरुद्रेन्दुसंयुतः स्यात्तृतीयकम् ॥ २ ॥
हसरामनुं चन्द्राढ्याश्चतुर्थं हसखाः फराः।
शिवेन्द्वाढ्याः पञ्चमः स्याद्धसौ मबिन्दुगौ परम् ॥ ३ ॥

---

* नौका *

श्रीहनुमतो मन्त्रान् वक्तुं प्रतिजानीते – **अथेति** । मन्त्रमुद्धरति – **इन्द्रेति** । वराहो हः इन्द्रस्वर औं बिन्दुस्ताभ्यां युतः हौं । हसफस्वरूपम् । अग्नी रः एते ॥ १ ॥ झिण्टीश बिन्दुयुताः एबिन्दुयुताः । तेन ह्स्फ्रें । गदी खः । पान्ताग्निरुद्रेन्दुयुतः । पान्तः फः अग्नी र, रुद्र ए । इन्दुर्बिन्दुः तैर्युतः । ख्फ्रें ॥ २॥ हसरा मनुचन्द्राढ्याः और्बिन्दुयुता ह्स्रौं । हसखफराः शिवेन्द्वाढ्याः एबिन्दुयुताः।

---

* अरित्र *

अब सर्वेष्टसिद्धि के लिए **श्रीहनुमान् जी के मन्त्रों** को कहता हूँ –

इन्द्र स्वर (औ) और इन्दु (अनुस्वार) इन दोनों के साथ वराह (ह्) अर्थात् (हौं), यह **प्रथम बीज** है । फिर झिण्टीश (ए), बिन्दु (अनुस्वार) सहित ह् स् फ् और अग्नि (र्) अर्थात् (ह्स्फ्रें), यह **द्वितीय बीज** कहा गया है । रुद्र (ए) एवं बिन्दु अनुस्वार सहित गदी (ख्) पान्त (फ्) तथा अग्नि (र्) अर्थात् (ख्फ्रें), यह **तृतीय बीज** है । मनु (औ), चन्द्र (अनुस्वार) सहित ह् स् र् अर्थात् (ह्स्रौं), यह **चतुर्थ बीज** है । शिव (ए) एवं बिन्दु (अनुस्वार) सहित ह् स् ख् फ् तथा र अर्थात् (ह्स्ख्फ्रें), यह **पञ्चम बीज** है । मनु (औ) इन्दु अनुस्वार सहित ह् तथा स् अर्थात् (ह्सौं), यह **षष्ठ बीज** है । इसके बाद चतुर्थ्यन्त हनुमान् (हनुमते) फिर अन्त में हार्द (नमः) लगाने से १२ अक्षरों का मन्त्र बनता है ॥ १-२ ॥

हनूमद्द्वादशाक्षरमन्त्रकथनम्

ङेयुतो हनुमान्हार्दं मन्त्रोऽयं द्वादशाक्षरः ।
रामचन्द्रो मुनिश्चास्य जगतीछन्द ईरितम् ॥ ४ ॥
हनुमान् देवता बीजं षष्ठं शक्तिर्द्वितीयकम् ।
षड्बीजैरङ्गषट्कं स्यान्मूर्ध्नि भाले दृशोर्मुखे ॥ ५ ॥
कण्ठे च बाहुद्वितये हृदि कुक्षौ च नाभितः ।
लिङ्गे जानुद्वये पादद्वये वर्णान् क्रमान् न्यसेत् ॥ ६ ॥
षड्बीजानि पदद्वन्द्वे मूर्ध्नि भाले मुखे हृदि ।
नाभावूर्वोर्जंघयोश्च पादयोर्विन्यसेत् क्रमात् ॥ ७ ॥

तेन ह्स्ख्फ्रें । ह्सौ मन्विन्दुगौ औ बिन्दुयुतौ ह्सौं । परं ततः ॥ ३ ॥ ङे युतो हनुमान्हनुमते । हार्दं नमः । यथा – हौं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौ हनुमते नमः ॥ ४ ॥ षष्ठं ह्सौमिति बीजं । द्वितीये ह्स्फ्रेमिति शक्तिः । हौं हृत् । ह्स्फ्रें शिरः । ख्फ्रें शिखेत्यादि० । वर्णन्यासमाह – **मूर्ध्नीति** । एकैकं सर्वत्र० ॥ ५–६ ॥ पदन्यासमाह – **षडिति** । पदद्वद्वं हनुमते नम इति ॥ ७ ॥

द्वादशाक्षर हनुमत् मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - १. हौं, २. ह्स्फ्रें, ३. ख्फ्रें, ४. ह्स्रौं ५. ह्स्ख्फ्रें ६. ह्सौं हनुमते नमः (१२) ॥ ३ ॥

इस मन्त्र के रामचन्द्र ऋषि हैं, जगती छन्द है, हनुमान् देवता है तथा षष्ठ ह्सौं बीज है, द्वितीय हस्फ्रें शक्ति माना गया है ॥ ४-५ ॥

विमर्श – विनियोग का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ अस्य श्रीहनुमन्मन्त्रस्य रामचन्द्र ऋषिः जगतीच्छन्दः हनुमान् देवता ह्सौं बीजं ह्स्फ्रें शक्तिः आत्मनोऽभीष्ट-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः' ॥ ४-५ ॥

अब **षडङ्ग एवं वर्णन्यास** कहते हैं – ऊपर कहे गये मन्त्र के छः बीजाक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । फिर मन्त्र के एक एक वर्ण का क्रमशः १. शिर, २. ललाट, ३. नेत्र, ४. मुख, ५. कण्ठ, ६. दोनो हाथ, ७. हृदय, ८. दोनों कुक्षि, ९. नाभि, १०. लिङ्ग, ११. दोनों जानु, एवं १२. पैरों में, इस प्रकार १२ स्थानों में १२ वर्णों का न्यास करना चाहिए ॥ ५-६ ॥

विमर्श – षडङ्गन्यास का प्रकार -

हौं हृदयाय नमः, ह्स्फ्रें शिरसे स्वाहा, ख्फ्रें शिखायै वषट्,
ह्स्रौं कवचाय हुम्, ह्स्ख्फ्रें नेत्रत्रयाय वौषट् ह्सौं अस्त्राय फट् ।

वर्णन्यास – हौं नमः मूर्ध्नि, ह्स्फ्रें नमः ललाटे, ख्फ्रें नमः नेत्रयोः,
ह्स्रौं नमः मुखे, ह्स्ख्फ्रें नमः कण्ठे, ह्सौं नमः बाहोः,
हं नमः हृदि, नुं नमः कुक्ष्योः, मं नमः नाभौ,
ते नमः लिङ्गे, नं नमः जान्वोः, मं नमः पादयोः ॥ ५-६ ॥

ध्यानकथनम्

बालार्कायुततेजसं त्रिभुवनप्रक्षोभकं सुन्दरं
सुग्रीवादिसमस्तवानरगणैः संसेव्यपादाम्बुजम् ।
नादेनैव समस्तराक्षसगणान् संत्रासयन्तं प्रभुं
श्रीमद्रामपदाम्बुजस्मृतिरतं ध्यायामि वातात्मजम् ॥ ८ ॥

तस्यार्घ्यादिजपान्तसाधनकथनम्

एवं ध्यात्वा जपेदर्कसहस्रं जितमानसः ।
दशांशं जुहुयाद् व्रीहीन् पयोदध्याज्यसंयुतान् ॥ ६ ॥
विमलादियुते पीठे पूजा कार्या हनूमतः ।

ध्यानमाह – **बालेति** । वातात्मजं हनुमन्तम् ॥ ८–६ ॥ दलेषु तदाह्वयान् हनुमन्नामानि ॥ १० ॥

अब **पदन्यास** कहते हैं – ६ बीजों एवं दोनों पदों का क्रमशः शिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, ऊरू जंघा, एवं पैरों में न्यास करना चाहिए ॥ ७ ॥

विमर्श – ह्रौं नमः मूर्ध्नि, हस्फ्रें नमः ललाटे, ख्फ्रें नमः मुखे,
ह्स्त्रौ नमः हृदि, ह्स्ख्फ्रें नमः नाभौ, ह्सौं नमः ऊर्वोः,
हनुमते नमः जंघयोः, नमः नमः पादयोः ॥ ७ ॥

अब **ध्यान** कहते है – उदीयमान सूर्य के समान कान्ति से युक्त, तीनों लोको को क्षोभित करने वाले, सुन्दर, सुग्रीव आदि समस्त वानर समुदायों से सेव्यमान चरणों वाले, अपने भयंकर सिंहनाद से राक्षस समुदायों को भयभीत करने वाले, श्री राम के चरणारविन्दों का स्मरण करने वाले हनुमान् जी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ८ ॥

इस प्रकार ध्यान कर अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में कर साधक बारह हजार की संख्या में जप करे तथा दूध, दही, एवं घी मिश्रित व्रीहि (धान) से उसका दशांश होम करे ॥ ६ ॥

विमला आदि शक्तियों से युक्त पीठ पर श्री हनुमान् जी का पूजन करना चाहिए ॥ १० ॥

विमर्श – प्रथम वृत्ताकारकर्णिका, फिर अष्टदल एवं भूपुर सहित यन्त्र का निर्माण करे । फिर १३. ८ श्लोक में वर्णित हनुमान् जी के स्वरूप का ध्यान कर मानसोपचार से पूजन कर अर्घ्य स्थापित करे । फिर ६. ७२-७८ में वर्णित विधि से वैष्णव पीठ पर उनका पूजन करे । यथा – पीठमध्ये –

ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ प्रकृत्यै नमः, ॐ कूर्माय नमः,

केसरेष्वङ्गपूजा स्याद् दलेष्वन्यांस्तदाह्वयान् ॥ १० ॥
रामभक्तो महातेजा कपिराजो महाबलः ।
द्रोणाद्रिहारको मेरुपीठकार्चनकारकः ॥ ११ ॥

ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः,
ॐ श्वेतद्वीपाय नमः, ॐ मणिमण्डपाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः,
ॐ मणिवेदिकायै नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः,

तदनन्तर आग्नेयादि कोणों में धर्म आदि का तथा दिशाओं में अधर्म आदि का इस प्रकार पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ धर्माय नमः, आग्नेये, ॐ ज्ञानाय नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ वैराग्याय नमः वायव्ये, ॐ ऐश्वर्याय नमः, ऐशान्ये,
ॐ अधर्माय नमः पूर्वे, ॐ अज्ञानाय नमः, दक्षिणे,
ॐ अवैराग्याय नमः पश्चिमे, ॐ अनैश्वर्याय नमः, उत्तरे,

हनुमत्पूजनयन्त्रम्

पुनः पीठ के मध्य में अनन्त आदि का -
ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः,
ॐ अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः
ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः,
ॐ रं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः
ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः,
ॐ तं तमसे नमः, ॐ आं आत्मने नमः,
ॐ अं अन्तरात्मने नमः,
ॐ पं परमात्मने नमः,
ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, पूर्वे,

केशरों के ८ दिशाओं में तथा मध्य में विमला आदि शक्तियों का इस प्रकार पूजन करना चाहिए -
ॐ विमलायै नमः,
ॐ उत्कर्षिण्यै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः,
ॐ क्रियायै नमः, ॐ योगायै नमः, ॐ प्रह्व्यै नमः,
ॐ सत्यायै नमः, ॐ ईशानायै नमः मध्ये ॐ अनुग्रहायै नमः ।

तदनन्तर 'ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मसंयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः' (द्र० ६. ७३-७४) इस पीठ मन्त्र से पीठ को पूजित कर पीठ पर आसन ध्यान आवाहनादि उपचारों से हनुमान् जी का पूजन कर मूलमन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए। तदनन्तर उनकी अनुज्ञा ले आवरण पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए ॥ १०॥

अब **आवरण पूजा का विधान** कहते हैं - सर्वप्रथम केसरों में अङ्गपूजा
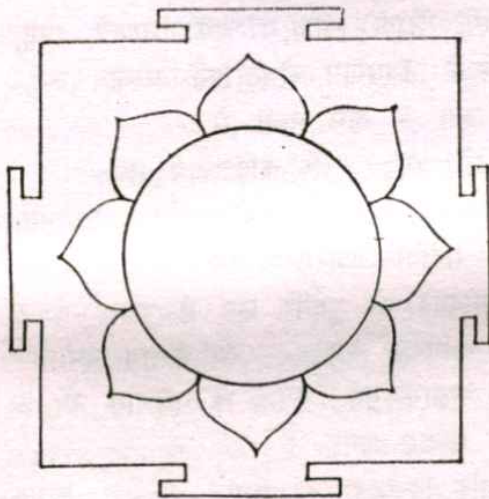
दक्षिणाशाभास्करश्च सर्वविघ्ननिवारकः ।
एवं नामानि सम्पूज्य दलाग्रेषु च वानरान् ॥ १२ ॥
सुग्रीवमंगदं नीलं जाम्बवन्तं नलं तथा ।
सुषेणं द्विविदं मैन्दं पूजयेद्दिक्पतीनपि ॥ १३ ॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री स्वपरेष्टं प्रसाधयेत् ।
कदलीबीजपूराम्रफलैर्हुत्वा सहस्रकम् ॥ १४ ॥

तानाह – **रामभक्त** इत्यादि ॥ ११ ॥ * ॥ १२–२० ॥

तथा दलों पर तत्तन्नामों द्वारा हनुमान् जी का पूजन करना चाहिए । रामभक्त महातेजा, कपि राज, महाबल, द्रोणाद्रिहारक, मेरुपीठकार्चनकारक, दक्षिणाशाभास्कर तथा सर्वविघ्ननिवारक ये ८ उनके नाम हैं । नामों से पूजन करने के बाद दलों के अग्रभाग में सुग्रीव, अंगद, नील, जाम्बवन्त, नल, सुषेण, द्विविद और मयन्द ये ८ वानर है । तदनन्तर दिक्पालों का भी पूजन करना चाहिए ॥ १०-१३ ॥

विमर्श – आवरण पूजा विधि - प्रथम केसरों में आग्नेयादि क्रम से अङ्गपूजा यथा - हौं हृदयाय नमः, ह्स्फें शिरसे स्वाहा, ख्फें शिखायै वषट्, ह्स्रौं कवचाय हुम्, ह्स्ख्फ्रें नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्सौं अस्त्राय फट्,

फिर दलों में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से नाम मन्त्रों से -
ॐ रामभक्ताय नमः, ॐ महातेजसे नमः, ॐ कपिराजाय नमः,
ॐ महाबलाय नमः, ॐ द्रोणाद्रिहारकाय नमः, ॐ मेरुपीठकार्चनकारकाय नमः,
ॐ दक्षिणाशाभास्कराय नमः, ॐ सर्वविघ्ननिवारकाय नमः ।

तदनन्तर दलों के अग्रभाग पर सुग्रीवादि की पूर्वादि क्रम से यथा -
ॐ सुग्रीवाय नमः, ॐ अंगदाय नमः, ॐ नीलाय नमः,
ॐ जाम्बवन्ताय नमः, ॐ नलाय नमः, ॐ सुषेणाय नमः,
ॐ द्विविदाय नमः, ॐ मैन्दाय नमः,

फिर भूपुर में पूर्वादि क्रम से इन्द्रादि दिक्पालों की यथा -
ॐ लं इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ रं अग्नये नमः आग्नेये,
ॐ यं यमाय नमः दक्षिणे ॐ क्षं निर्ऋत्ये नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ वं वरुणाय नमः, पश्चिमे, ॐ यं वायवे नमः वायव्ये,
ॐ सं सोमाय नमः उत्तरे ॐ हं ईशानाय नमः ऐशान्ये,
ॐ आं ब्रह्मणे नमः पूर्वैशानयोर्मध्ये,
ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये

इस प्रकार आवरण पूजा कर मूलमन्त्र से पुनः हनुमान् जी का धूप, दीपादि उपचारों से पूजन करना चाहिए ॥ १०-१३ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते है - इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक

द्वाविंशान्तेब्रह्मचारिविप्रान् सम्भोजयेदथ।
एवं कृते महाभूत विषचौराद्युपद्रवाः ॥ १५॥
नश्यन्ति क्षणमात्रेण विद्वेषिग्रहदानवाः।

फलपरत्वेन प्रयोगविधिवर्णनम्

अष्टोत्तरशतं वारिमन्त्रितं विषनाशनम्॥ १६॥
रात्रौ नवशतं मन्त्रं जपेद्दशदिनावधि।
यो नरस्तस्य नश्यन्ति राजशत्रूत्थभीतयः॥ १७॥
अभिचारोत्थभूतोत्थ ज्वरे तन्मन्त्रितैर्जलैः।
भस्मभिः सलिलैर्वापि ताडयेज्ज्वरिणः क्रुधा॥ १८॥
दिनत्रयाज्ज्वरान्मुक्तः ससुखं लभते नरः।
तन्मन्त्रितौषधं जग्ध्वा नीरोगो जायते ध्रुवम्॥ १६॥
तन्मन्त्रितं पयः पीत्वा योद्धुं गच्छेन्मनुं जपन्।
तज्जप्तभस्मलिप्ताङ्गः शस्त्रसंघैर्न बाध्यते॥ २०॥
शस्त्रक्षतं व्रणः शोफो लूतास्फोटोऽपि भस्मना।
त्रिमन्त्रितेन संस्पृष्टाः शुष्यन्त्यचिरतो नृणाम्॥ २१॥

शस्त्रक्षतादयो वारत्रयमन्त्रितेन भस्मना मार्जिता अचिराच्छुष्यन्ति नश्यन्ति ॥ २१ ॥ * ॥ २२–२३ ॥

अपना या दूसरों का अभीष्ट कार्य करे ॥ १४ ॥

केला, बिजौरा, आम्रफलों से एक हजार आहुतियाँ दे और २२ ब्रह्मचारी ब्राह्मणों को भोजन करावे । ऐसा करने से महाभूत, विष, तथा चोरों आदि के उपद्रव नष्ट हो जाते हैं । इतना ही नहीं विद्वेष करने वाले, ग्रह और दानव भी ऐसा करने से नष्ट हो जाते है ॥ १४-१६ ॥

१०८ बार मन्त्र से अभिमन्त्रित जल विष को नष्ट कर देता है । जो व्यक्ति रात्रि में १० दिन पर्यन्त ६०० की संख्या में इस मन्त्र का जप करता है उसका राजभय तथा शत्रुभय से छुटकारा हो जाता है । अभिचार जन्य तथा भूतजन्य ज्वर में इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल या भस्म द्वारा क्रोधपूर्वक ज्वरग्रस्त रोगी को प्रताड़ित करना चाहिए । ऐसा करने से वह तीन दिन के भीतर ज्वरमुक्त हो कर सुखी हो जाता है । इस मन्त्र से अभिमन्त्रित औषधि खाने से निश्चित रूप से आरोग्य की प्राप्ति हो जाती है ॥ १६-१६ ॥

इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीकर तथा इस मन्त्र को जपते हुये अपने शरीर में भस्म लगाकर जो व्यक्ति इस मन्त्र का जप करते हुये रणभूमि में जाता है,

सूर्यास्तमयमारभ्य जपेत् सूर्योदयावधि ।
कीलकं भस्म चादाय सप्ताहावधि संयतः ॥ २२ ॥
निखनेद् भस्मकीलौ तौ विद्विषां द्वार्यलक्षितम् ।
विद्वेषं मिथ आपन्नाः पलायन्तेऽरयो चिरात् ॥ २३ ॥
अभिमन्त्रितभस्माम्बुदेहचन्दनसंयुतम् ।
खाद्यादियोजितं यस्मै दीयते स च दासवत् ॥ २४ ॥
क्रूराश्च जन्तवोऽनेन भवन्ति विधिना वशाः ।
ईशानदिक्स्थमूलेन भूतांकुशतरोः शुभाम् ॥ २५ ॥
अंगुष्ठमात्रां प्रतिमां प्रविधाय हनूमतः ।
प्राणसंस्थापनं कृत्वा सिन्दूरैः परिपूज्य च ॥ २६ ॥
गृहस्याभिमुखे द्वारे निखनेन्मन्त्रमुच्चरन् ।
भूताभिचारचौराग्निविषरोगनृपोद्भवाः ॥ २७ ॥
संजायन्ते गृहे तस्मिन्न कदाचिदुपद्रवाः ।
प्रत्यहं धनपुत्राद्यैरेधते तद्गृहं चिरम् ॥ २८ ॥

देहचन्दनं देहे धृतं यच्चन्दनं तेन युतं भस्माम्बु च मन्त्रितं यस्मै दीयते स वश्यः स्यात् ॥ २४ ॥ ईशानेत्यादि तद्गृहं चिरमित्यन्त एकः प्रयोगः । भूतांकुशतरोः करञ्जस्य अरिष्टस्य ईशानदिशि स्थितेन मूलेनाङ्गुष्ठमितां हनुमत्प्रतिमां कृत्वा प्राणान् संस्थाप्य सिन्दूरैरभ्यर्च्य यद्गृहद्वारि निखन्यते तत्र सर्वोपद्रवनाशस्तद्वृद्धिश्च ॥ २५ ॥ * ॥ २६–३१ ॥

युद्ध में नाना प्रकार के शस्त्र समुदाय उस को कोई बाधा नहीं पहुँचा सकते ॥ २० ॥

चाहे शस्त्र का घाव हो अथवा अन्य प्रकार का घाव हो, शोध अथवा लूता आदि चर्मरोग एवं फोड़े फुन्सियाँ, इस मन्त्र से ३ बार अभिमन्त्रित भस्म के लगाने से शीघ्र ही सूख जाती हैं ॥ २१ ॥

अपनी इन्द्रियों को वश में कर साधक को सूर्यास्त से ले कर सूर्योदय पर्यन्त ७ दिन कील एवं भस्म ले कर इस मन्त्र का जप करना चाहिए । फिर शत्रुओं को बिना जनाये उस भस्म को एवं कीलों को शत्रु के दरवाजे पर गाड़ दे तो ऐसा करने से शत्रु परस्पर झगड़ कर शीघ्र ही स्वयं भाग जाते हैं ॥ २२-२३ ॥

अपने शरीर पर लगाये गये चन्दन के साथ इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल एवं भस्म को खाद्यान्न के साथ मिलाकर खिलाने से खाने वाला व्यक्ति दास हो जाता है। इतना ही नहीं ऐसा करने से क्रूर जानवर भी वश में हो जाते हैं ॥ २४-२५ ॥

करञ्ज वृक्ष के ईशानकोण की जड़ ले कर उससे हनुमान् जी की प्रतिमा निर्माण कराकर उसमें प्राणप्रतिष्ठा कर सिन्दूर से लेपकर इस मन्त्र का जप करते हुये

निशि श्मशानभूमिस्थौ भस्मना मृत्स्नयापि वा।
शत्रोः प्रतिकृतिं कृत्वा हृदि नाम समालिखेत् ॥ २६ ॥
कृतप्राणप्रतिष्ठां तां भिन्द्याच्छस्त्रैर्मनुं जपन्।
मन्त्रान्ते प्रोच्चरेच्छत्रोर्नामछिन्धि च भिन्धि च ॥ ३० ॥
मारयेति च तस्यान्तेदन्तैरोष्ठं निपीड्य च।
पाण्योस्तले प्रपीड्याथ त्यक्त्वा तां सदनं व्रजेत् ॥ ३१ ॥
एवं सप्तदिनं कुर्वन् हन्याच्छत्रुं शिवावितम्।
अर्द्धचन्द्राकृतौ कुण्डे स्थण्डिले वा हुतं चरेत् ॥ ३२ ॥
मुक्तकेशः श्मशानस्थे लवणै राजिकायुतैः।
उन्मत्तफलपुष्पैश्च नखरोमविषैरपि ॥ ३३ ॥
काककौशिकगृध्राणां पक्षैः श्लेष्मातकाक्षजैः।
समिद्वरैश्च त्रिशतं दक्षिणाशामुखो निशि ॥ ३४ ॥
सप्त घस्रानिदं कुर्वन्मारयेद् रिपुमुद्धतम्।
शतषट्कं जपेद्रात्रौ श्मशाने दिवसत्रयम् ॥ ३५ ॥

शिवावितं शिवेनापि रक्षितं शत्रुमेवं कुर्वन् हन्यात् । अर्द्धचन्द्रेत्यादि रिपुमुद्धतमित्यन्त एको मारणप्रयोगः । उन्मत्तो धत्तूरश्लेष्मातकश्चिक्कणफलो वृक्षः । अक्षो बिभीतकस्तदुत्थसमिद्भिश्च हुतं चरेज्जुहुयात् सप्तघस्रान् दिवसान् ॥ ३२ ॥ * ॥ ३३–३८ ॥

उसे घर के दरवाजे पर गाड़ देनी चाहिए । ऐसा करने से उस घर में भूत, अभिचार, चोर, अग्नि, विष, रोग तथा नृप जन्य उपद्रव कभी भी नहीं होते और घर में प्रतिदिन धन, पुत्रादि की अभिवृद्धि होती रहती हैं ॥ २५-२८ ॥

मारण प्रयोग - रात्रि में श्मशान भूमि की मिट्टी या भस्म से शत्रु की प्रतिमा बनाकर हृदय स्थान में उसक नाम लिखना चाहिए । फिर उसमें प्राण प्रतिष्ठा कर, मन्त्र के बाद शत्रु का नाम, फिर छिन्धि भिन्धि एवं मारय लगाकर उसका जप करते हुये शस्त्र द्वारा उसे टुकड़े - टुकड़े कर देना चाहिए । फिर होठों को दाँतों के नीचे दबा कर हथेलियों से उसे मसल देना चाहिए । तदनन्तर उसे वहीं छोड़कर अपने घर आ जाना चाहिए । ७ दिन तक ऐसा लगातार करते रहने से भगवान् शिव द्वारा रक्षित भी शत्रु मर जाता है ॥ २६-३२ ॥

श्मशान स्थान में अपने केशों को खोलकर अर्धचन्द्राकृति वाले कुण्ड में अथवा स्थाण्डिल (वेदी) पर राई नमक मिश्रित धतूर के फल, उसके पुष्प, कौवा उल्लू एवं गीध के नाखून, रोम और पंखों से तथा विष से लिसोड़ा एवं बहेड़ा की समिधा में दक्षिणाभिमुख हो रात में एक सप्ताह पर्यन्त निरन्तर होम

ततो वेताल उत्थाय वदेद् भावि शुभाशुभम् ।
उदितं कुरुते सर्वं किंकरीभूय मन्त्रिणः ॥ ३६ ॥
हनुमत्प्रतिमां भूमौ विलिखेत्तत्पुरो मनून् ।
साध्यनाम द्वितीयान्तं विमोचय विमोचय ॥ ३७ ॥
तत्सर्वं मार्जयेद्वामहस्तेनाथ पुनर्लिखेत् ।
एवमष्टोत्तरशतं लिखित्वा मार्जयेत्पुनः ॥ ३८ ॥
एवं कृते पराधीनो मुच्यते निगडात्क्षणात् ।

विद्वेषणवश्यादिषु मन्त्रयोजना

एवं विद्वेषणादीनि कुर्यात्तत्पल्लवं लिखन् ॥ ३६ ॥
वश्यार्थे सर्षपैर्होमो विद्वेषे करवीरजैः ।
कुसुमैरिध्मकाष्ठैर्वा जीरकैर्मरिचैरपि ॥ ४० ॥

पराधीनो बद्धो निगडाच्छृंखलातो मुच्यते । विद्वेषणादीनि विद्वेषमारणोच्चाटान्तत्कृत पल्लवं लिखन्नेवं कुर्यात् । अमुकं द्वेषय द्वेषय इति द्वेष्ये, मारय मारय इति मारणे इत्यादिपल्लवलेखनम् ॥ ३६–४० ॥

करने से उद्धत शत्रु भी मर जाता है ॥ ३२-३५ ॥

इसके बाद **बेताल सिद्धि का प्रयोग** कहते है - श्मशान में रात्रि के समय लगातार तीन दिन तक प्रतिदिन ६०० की संख्या में इस मूल मन्त्र का जप करते रहने से बेताल खड़ा हो कर साधक का दास बन जाता है और भविष्य में होने वाले शुभ अथवा अशुभ घटनाओं को तथा अन्य प्रकार की शंकाओं को भी साफ साफ कह देता है ॥ ३५-३६ ॥

साधक हनुमान् जी की प्रतिमा के सामने साध्य का द्वितीयान्त नाम, फिर 'विमोचय विमोचय' पद, तदनन्तर मूल मन्त्र लिखे । फिर उसे बायें हाथ से मिटा देवे, यह लिखने और मिटाने की प्रक्रिया पुनः पुनः करते रहना चाहिए । इस प्रकार एक सौ आठ बार लिखते और मिटाते रहने से बन्दी शीघ्र ही हथकड़ी और बेड़ी से मुक्त हो जाता है । हनुमान् जी के पैरों के नीचे 'अमुकं विद्वेषय विद्वेषय' लगाकर विद्वेषण करे, 'अमुकं उच्चाटय उच्चाटय' लगाकर उच्चाटन करे तथा 'मारय मारय' लगाकर मारण का भी प्रयोग किया जा सकता है ॥ ३७-३६ ॥

विमर्श - बिना गुरु के मारण एवं विद्वेषण आदि प्रयोगों को करने से स्वयं पर ही आघात हो जाता है ॥ ३७-३६ ॥

अब **विविध कामनाओं में होम का विधान** कहते हैं - वश्य कर्म में सरसों से, विद्वेष में कनेर के पुष्प, लकड़ियों से, अथवा जीरा एवं काली मिर्च से भी होम करना चाहिए ॥ ४० ॥

ज्वरे दूर्वागुडूचीभिर्दध्ना क्षीरेण वा घृतैः ।
शूले होमः कुबेराक्षैरेरण्डसमिधा तथा ॥ ४१ ॥
तैलाक्ताभिश्च निर्गुण्डीसमिद्भिर्वा प्रयत्नतः ।
सौभाग्ये चन्दनैश्चन्द्रै रोचनैलालवङ्गकैः ॥ ४२ ॥
सुगन्धिपुष्पैर्वस्त्राप्त्यै तत्तद्धान्यैस्तदाप्तये ।
तत्पादरजसा राजीलवणाक्तेन मृत्यवे ॥ ४३ ॥
किंबहूक्तैर्विषे व्याधौ शान्तौ मोहे च मारणे ।
विवादे स्तम्भने द्यूतभूतभीतौ च संकटे ॥ ४४ ॥
वश्ये युद्धे नृपद्वारे समरे चौरसकंटे ।
मन्त्रोऽयं साधितो दद्यादिष्टसिद्धिं ध्रुवं नृणाम् ॥ ४५ ॥

हनूमद्यन्त्रकथनम्

वक्ष्ये हनुमतो यन्त्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
वलयत्रितयं लेख्यं पुच्छाकारसमन्वितम् ॥ ४६ ॥
साध्यनाम लिखेन्मध्ये पाशबीजप्रवेष्टितम् ।
उपर्यष्टदलं कृत्वा वर्मपत्रेषु संलिखेत् ॥ ४७ ॥

कुबेराक्षः सूक्ष्मकणस्तिक्तक्षुपाविशेषः ॥ ४१–४२ ॥ यद्धान्यैर्होमस्तदाप्तिः । राजीलवणयुतेन यत्पादरजसा हूयते स म्रियते ॥ ४३ ॥ * ॥ ४४–४५ ॥ मन्त्रमाह – **वलयेति** । पुच्छाकारं वलयत्रयं विलिख्य मध्ये आमिति बीजेन वेष्टितं साध्य नाम लिखेत् । तदुपर्यष्टदलेषु हुमिति ॥ ४६–४७ ॥

ज्वर में दूर्वा, गुडूची, दही, घृत, दूध से तथा शूल में कुवेराक्ष (षांढर) एवं रेड़ी की समिधाओं से अथवा तेल में डुबोई गई निर्गुण्डी की समिधाओं से प्रयत्नपूर्वक होम करना चाहिए । सौभाग्य प्राप्ति के लिए चन्दन, कपूर, गोरोचन, इलायची, और लौंग से वस्त्र प्राप्ति के लिए सुगन्धित पुष्पों से तथा धान्य वृद्धि के लिए धान्य से ही होम करना चाहिए । शत्रु की मृत्यु के लिए उसके पैर की मिट्टी राई और नमक मिलाकर होम करने से उसकी मृत्यु हो जाती है ॥ ४१-४३ ॥

अब इस विषय में हम बहुत क्या कहें - सिद्ध किया हुआ यह मन्त्र मनुष्यों को विष, व्याधि, शान्ति, मोहन, मारण, विवाद, स्तम्भन, द्यूत, भूतभय संकट, वशीकरण, युद्ध, राजद्वार, संग्राम एवं चौरादि द्वारा संकट उपस्थित होने पर निश्चित रूप से इष्टसिद्धि प्रदान करता है ॥ ४४-४५ ॥

अब धारण के लिए **हनुमान् जी के सर्वसिद्धिदायक यन्त्र** को कहता हूँ - पुच्छ के आकार के समान तीन वलय (घेरा) बनाना चाहिए। उसके बीच में

वलयं वहिरालिख्य तद्बहिश्चतुरस्रकम् ।
चतुरस्रस्य रेखाग्रे त्रिशूलानि समालिखेत् ॥ ४८ ॥
भूपुरस्याष्टवज्रेषु ह्सौबीजं लिखेत्ततः ।
कोणेष्वंकुशमालिख्य मालामन्त्रेण वेष्टयेत् ॥ ४६ ॥
तत्सर्वं वेष्टयेद्यन्त्रं वलयत्रितयेन च ।
वस्त्रे शिलायां फलके ताम्रपात्रेऽथ कुड्यके ॥ ५० ॥
भूर्जे वा ताडपत्रे वा रोचनानाभिकुंकुमैः ।
यन्त्रमेतत् समालिख्य त्यक्ताशो ब्रह्मचर्यवान् ॥ ५१ ॥
कपेः प्राणान्प्रतिष्ठाप्य पूजयेत्तं यथाविधि ।
सर्वदुःखनिवृत्यै तद्यन्त्रमात्मनि धारयेत् ॥ ५२ ॥
ज्वरमार्यभिचारघ्नं सर्वोपद्रवशान्तिकृत् ।
योषितामपि बालानां धृतं जनमनोहरम् ॥ ५३ ॥

बहिरेकं वलयं कृत्वोपरि चतुरस्रं कृत्वा तदग्राणि संवर्ध्य तत्र त्रिशूलानि कृत्वा त्रिशूलेषु क्रोमिति वज्रेषु ह्सौमिति विलिख्य तन्माला मन्त्रेण वक्ष्यमाणेन संवेष्ट्य तत्पुनर्वलयत्रयेण वेष्टयेत् ॥ ४८–५० ॥ नाभिः कस्तूरी । त्यक्ताशउपवासी ॥ ५१–५३ ॥

धारण करने वाले साध्य का नाम लिखकर दूसरे घेरे में पाश बीज (आं) लिखकर उसे वेष्टित कर देना चाहिए। फिर वलय के ऊपर अष्टदल बनाकर पत्रों में वर्म बीज (हुम्) लिखना चाहिए। फिर उसके बाहर वृत्त बनाकर उसके ऊपर चौकोर चतुरस्र लिखना चाहिए। फिर चतुरस्र के चारो भुजाओं के अग्रभाग में दोनों ओर त्रिशूल का चिन्ह बनाना चाहिए। तत्पश्चात् भूपुर के अष्ट वज्रों (चारों दिशाओं, चारों कोणों) में ह्सौं यह बीज लिखना चाहिए। फिर कोणों पर अंकुश बीज (क्रों) लिखकर उस चतुरस्र को वक्ष्यमाण मालामन्त्र से वेष्टित कर देना चाहिए। तत्पश्चात् सारे मन्त्रों को तीन वलयों (गोलाकार घेरों) से वेष्टित कर देना चाहिए ॥ ४६-५०॥

यह यन्त्र, वस्त्र, शिला, काष्ठफलक, ताम्रपत्र, दीवार, भोजपत्र, या ताड़पत्र पर गोरोचन, कस्तूरी एवं कुंकुम (केशर) से लिखना चाहिए । साधक उपवास तथा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये मन्त्र में हनुमान् जी की प्राणप्रतिष्ठा कर विधिवत् उसका पूजन करे । सभी प्रकार के दुःखों से छुटकारा पाने के लिए यह यन्त्र स्वयं भी धारण करना चाहिए ॥ ५०-५२ ॥

उक्त लिखित यन्त्र ज्वर, शत्रु, एवं अभिचार जन्य बाधाओं को नष्ट करता है तथा सभी प्रकार के उपद्रवों को शान्त करता है । किं बहुना स्त्रियों तथा बच्चों द्वारा धारण करने पर यह उनका भी कल्याण करता है ॥ ५३ ॥

विमर्श - इस धारण यन्त्र को चित्र के अनुसार बनाना चाहिए । तदनन्तर

हनूमन्मालामन्त्रकथनम्

मालामन्त्रमथो वक्ष्ये प्रणवो वाग्घरिप्रिया।
दीर्घत्रयान्विता माया पूर्वोक्तं कूटपञ्चकम्॥ ५४॥
तारो नमो हनुमते प्रकटान्ते पराक्रम।
आक्रान्तदिङ्मण्डलतो यशोवीति च तान च॥ ५५॥
धवलीकृतवर्णान्ते जगत्त्रितयवज्र च।
देहज्वलदग्निसूर्यकोट्यन्ते तु समप्रभ॥ ५६॥
तनूरुहपदं रुद्रावतारपदमीरयेत्।
लंकापुरीदहान्तेनोदधिलंघनवर्णकाः॥ ५७॥
दशग्रीवशिरः पश्चात्कृतान्तकपदं ततः।
सीताश्वासनवाय्वन्ते सुतशब्दमुदीरयेत्॥ ५८॥
अञ्जनागर्भसम्भूतश्रीरामान्ते तु लक्ष्मणा।
नन्दकान्ते रकपि च सैन्यप्राकारवर्णकाः॥ ५९॥
सुग्रीवसख्यकावर्णारणबालिनिबर्हण।
कारणद्रोणपर्वान्ते तोत्पाटनपदं वदेत्॥ ६०॥
अशोकवनवीत्यन्ते दारणाक्षकुमारक।
च्छेदनान्ते वनपदंरक्षाकरसमूह च॥ ६१॥
विभञ्जनान्ते ब्रह्मास्त्रब्रह्मशक्तिग्रसेति न।
लक्ष्मणान्ते शक्तिभेदनिवारणपदं पुनः॥ ६२॥

मालामन्त्रमाह – **प्रणव इति** । वाक् ऐं । हरिप्रिया श्रीं । माया दीर्घत्रयान्विता ह्रां ह्रीं ह्रूं । पूर्वोक्तं मूलमन्त्रस्थम्॥ ५४॥ * ॥ ५५–६७॥

उसमें हनुमान् जी की प्राणप्रतिष्ठा कर विधिवत् पूजन कर पहनना चाहिए ॥ ५३ ॥

अब ऊपर प्रतिज्ञात **माला मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - प्रथम प्रणव (ॐ), वाग् (ऐं), हरिप्रिया (श्रीं), फिर दीर्घत्रय सहित माया (ह्रां ह्रीं ह्रूं), फिर पूर्वोक्त पाँच कूट (ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्त्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं) तथा तार (ॐ), फिर 'नमो हनुमते प्रकट' के बाद 'पराक्रम आक्रान्तदिङ्मण्डलयशो वि' फिर 'तान' कहना चाहिए, फिर 'धवलीकृत' पद के बाद 'जगत्त्रितय' और 'वज्र' कहना चाहिए । फिर 'देहज्वलदग्निसूर्यकोटि' के बाद 'समप्रभतनूरुहरुद्रावतार', इतना पद कहना चाहिए । फिर 'लंकापुरी दह' के बाद 'नोदधिलंघन', फिर 'दशग्रीवशिरः कृतान्तक सीताश्वासनवायु', के बाद 'सुतं' शब्द कहना चाहिए ॥ ५४-५८ ॥

फिर 'अञ्जनागर्भसंभूत श्री रामलक्ष्मणानन्दक', फिर 'रकपि', 'सैन्यप्राकार',

विशल्यौषधिवर्णान्ते समानयनवर्णकाः ।
बालोदितान्ते भान्वन्ते मण्डलग्रसनेति च ॥ ६३ ॥
मेघनादेति होमान्ते विध्वंसनपदं वदेत् ।
इन्द्रजिद्वधकारान्ते णसीतारक्षकेति च ॥ ६४ ॥
राक्षसीसंघवर्णान्ते विदारण च कुम्भ च ।
कर्णादिवधशब्दान्ते परायणपदं वदेत् ॥ ६५ ॥
श्रीरामभक्तिशब्दान्ते तत्परेति समुद्र च ।
व्योमद्रुमलंघनेति महासामर्थ्यमेति च ॥ ६६ ॥
महातेजःपुञ्जवीत्यन्ते राजमानपदं पुनः ।
स्वामिवचनसम्पादितार्जुनान्ते च संयुग ॥ ६७ ॥
सहायान्ते कुमारेति ब्रह्मचारिन् पदं वदेत् ।
गम्भीरशब्दोऽत्रिर्वायुर्दक्षिणाशापदं पुनः ॥ ६८ ॥
मार्तण्डमेरुशब्दान्ते पर्वतेति पदं वदेत् ।
पीठिकार्चनशब्दान्ते सकलेतिपदं पुनः ॥ ६९ ॥

फिर 'सुग्रीवसख्यका' के बाद 'रणबालिनिबर्हण कारण द्रोणपर्व' के बाद 'तोत्पाटन' इतना कहना चाहिए । फिर 'अशोक वन वि' के बाद, 'दारणाक्षकुमारकच्छेदन' के बाद फिर 'वन' शब्द, फिर 'रक्षाकरसमूहविभञ्जन', फिर 'ब्रह्मास्त्र ब्रह्मशक्ति ग्रस' और 'न लक्ष्मण' के बाद 'शक्तिभेदनिवारण' तथा 'विशल्यौषधि' वर्ण के बाद 'समानयन बालोदितभानु', फिर 'मण्डलग्रसन' के बाद 'मेघनाद होम', फिर 'विध्वंसन' यह पद बोलना चाहिए । फिर 'इन्द्रजिद्वधकार' के बाद, 'णसीतारक्षक राक्षसीसंघ', 'विदारण', फिर 'कुम्भकर्णादिवध' शब्दों के बाद, 'परायण', यह पद बोलना चाहिए । फिर 'श्री रामभक्ति' के बाद 'तत्पर-समुद्र-व्योम द्रुमलंघन महासामर्थ्यमहातेजःपुञ्जविराजमान' शब्द, तथा 'स्वामिवचनसंपादितार्जुन' के बाद 'संयुगसहाय' एवं 'कुमार ब्रह्मचारिन्' पद कहना चाहिए । फिर 'गम्भीरशब्दो' के बाद अत्रि (द), वायु (य), फिर 'दक्षिणाशा' पद, तथा 'मार्तण्डमेरु' शब्द के बाद 'पर्वत' शब्द कहना चाहिए । फिर 'पीठिकार्चन' शब्द के बाद 'सकल मन्त्रागमाचार्य मम सर्वग्रहविनाशन सर्वज्वरोच्चाटन' और 'सर्वविषविनाशन सर्वापत्ति निवारण सर्वदुष्ट' इतना पढ़ना चाहिए । फिर 'निबर्हण' पद, तथा 'सर्वव्याघ्रादिभय', उसके बाद 'निवारण सर्वशत्रुच्छेदन मम परस्य च त्रिभुवन पुंस्त्रीनपुंसकात्मकं सर्वजीव' पद के बाद 'जातं', फिर 'वशय' यह पद दो बार, फिर 'ममाज्ञाकारक' के बाद दो बार 'संपादय', फिर 'नाना नाम' शब्द, फिर 'धेयान् सर्वान् राज्ञः स' इतना पद कहना चाहिए । फिर 'परिवारान्मम सेवकान्', फिर दो बार 'कुरु', फिर 'सर्वशस्त्रास्त्र वि' के बाद 'षाणि', तदनन्तर दो बार 'विध्वंसय' फिर दीर्घत्रयान्विता माया (ह्रां ह्रीं ह्रूं), फिर हात्रय (हा

मन्त्रागमाचार्य मम सर्वग्रहविनाशन।
सर्वज्वरोच्चाटनेति सर्वविषविनाशन ॥ ७० ॥
सर्वापत्तिनिवारणसर्वदुष्टेति संपठेत्।
निबर्हणपदं सर्वव्याघ्रादिभयतत्परम् ॥ ७१ ॥
निवारणसर्वशत्रुच्छेदनेति पदं मम।
परस्य च त्रिभुवनपुंस्त्रीनपुंसकात्मकम् ॥ ७२ ॥
सर्वजीवपदं पश्चाज्जातं वशययुग्मकम्।
ममाज्ञाकारकं पश्चात्संपादयपदद्वयम् ॥ ७३ ॥
नाना नामपदं धेयान् सर्वान् राज्ञः ससंपठेत्।
परिवारान्ममेत्यन्ते सेवकान्कुरुयुग्मकम् ॥ ७४ ॥
सर्वशस्त्रास्त्रवीत्यन्ते षाणिविध्वंसयद्वयम्।
मायादीर्घत्रयोपेता हात्रयं चैहियुग्मकम् ॥ ७५ ॥
विलोमपञ्चकूटानि सर्वशत्रून् हनद्वयम्।
परदान्ते लानि परसैन्यानि क्षोभयद्वयम् ॥ ७६ ॥
मम सर्वकार्यजातं साधयद्वितयं ततः।
सर्वदुष्टदुर्जनान्ते मुखानि कीलयद्वयम् ॥ ७७ ॥
घेत्रयं हात्रयं वर्मत्रितय फट्त्रयं ततः।
वह्निप्रियान्तो मन्त्रोऽयं मालासंज्ञोऽखिलेष्टदः ॥ ७८ ॥
अष्टाशीत्युत्तराः पञ्चशतवर्णा मनोः स्मृताः।
महोपद्रवसंपाते स्मृतोऽयं दुःखनाशनः ॥ ७९ ॥

अत्रिः दः । वायुः यः स्वस्वरूपमन्यत् ॥ ६८ ॥ * ॥ ६९–७९ ॥

हा हा), एहि युग्म (एह्येहि), विलोमक्रम से पञ्चकूट (ह्सौं ह्स्ख्फ्रें ह्स्रौं ख्फ्रें ह्स्फ्रें) और फिर 'सर्वशत्रून', तदनन्तर दो बार हन (हन हन), फिर 'परद' के बाद 'लानि परसैन्यानि', फिर क्षोभय यह पद दो बार (क्षोभय क्षोभय), फिर 'मम सर्वकार्यजातं' तथा २ बार साधय पद (साधय साधय), फिर 'सर्वदुष्टदुर्जन' के बाद 'मुखानि' तदनन्तर २ बार कीलय (कीलय कीलय), फिर घेत्रय (घे घे घे), फिर हात्रय (हा हा हा), वर्म त्रितय (हुं हुं हुं), फिर ३ बार फट्; और इसके अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से सर्वाभीष्टकारक ५८८ अक्षरों का हनुमन्माला मन्त्र बनता है । महान् से महान् उपद्रव होने पर इस मन्त्र के जप से सारे दुःख नष्ट हो जाते हैं ॥ ५४-७९ ॥

विमर्श - हनुमन्माला मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ऐं श्रीं ह्रां ह्रीं

हनूमन्मन्त्रान्तरकथनम्

द्वादशार्णान्तिमान् वर्णान् षट्त्यक्त्वैकं तथादिमम्।
पञ्चकूटात्मको मन्त्रो निखिलाऽभीष्टसाधकः ॥ ८० ॥

चतुर्विंशतिश्लोकैर्निष्पन्नो मालामन्त्रो यथा - ॐ ऐं श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्त्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं ॐ नमो हनुमते प्रकटपराक्रम आक्रान्त दिङ्मण्डलयशोवितान धवलीकृतजगत्त्रितय वज्रदेह ज्वलदग्नि सूर्यकोटि समप्रभतनूरुह रुद्रावतार लंकापुरीदहनोदधिलंघन दशग्रीवशिरःकृतान्तक सीताश्वासन वायुसुत अञ्जनागर्भसंभूत श्रीरामलक्ष्मणानन्दकर कपिसैन्यप्राकार सुग्रीवसख्यकारण बालिनिबर्हणकारण द्रोणपर्वतोत्पाटन अशोकवनविदारण अक्षकुमारकच्छेदन वनरक्षाकरसमूहविभञ्जन ब्रह्मास्त्रब्रह्मशक्तिग्रसन लक्ष्मण-शक्तिभेदनिवारण विशल्यौषधिसमानयन बालोदितभानुमण्डलग्रसन मेघनाद-होमविध्वंसन इन्द्रजिद्वधकारण सीतारक्षक राक्षसीसंघविदारण कुम्भकर्णादि-

---

हूं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्त्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं ॐ नमो हनुमते प्रकटपराक्रम आक्रान्त दिङ्मण्डलयशोवितान धवलीकृतजगत्त्रितय वज्रदेह ज्वलदग्नि सूर्यकोटि समप्रभतनूरुह रुद्रावतार लंकापुरीदहनोदधिलंघन दशग्रीवशिरःकृतान्तक सीताश्वासन वायुसुत अञ्जनागर्भसंभूत श्रीरामलक्ष्मणानन्दकर कपिसैन्यप्राकार सुग्रीवसख्यकारण बालिनिबर्हण-कारण द्रोणपर्वतोत्पाटन अशोकवनविदारण अक्षकुमारकच्छेदन वनरक्षाकरसमूहविभञ्जन ब्रह्मास्त्रब्रह्मशक्तिग्रसन लक्ष्मणशक्तिभेदनिवारण विशल्यौषधिसमानयन बालोदितभानुमण्डल-ग्रसन मेघनादहोमविध्वंसन इन्द्रजिद्वधकारण सीतारक्षक राक्षसीसंघविदारण कुम्भकर्णादि-वधपरायण श्रीरामभक्तितत्पर समुद्रव्योमद्रुमलंघन महासामर्थ्य महातेजःपुञ्जविराजमान स्वामिवचनसंपादित अर्जुनसंयुगसहाय कुमारब्रह्मचारिन् गम्भीरशब्दोदय दक्षिणाशामार्तण्ड मेरुपर्वतपीठिकार्चन सकलमन्त्रागमाचार्य मम सर्वग्रहविनाशन सर्वज्वरोच्चाटन सर्वविषविनाशन सर्वापत्तिनिवारण सर्वदुष्टनिबर्हण सर्वव्याघ्रादिभयनिवारण सर्वशत्रुच्छेदन मम परस्य च त्रिभुवन पुंस्त्रीनपुंसकात्मकसर्वजीवजातं वशय वशय मम आज्ञाकारकं संपादय संपादय नानानामधेयान् सर्वान् राज्ञः सपरिवारान् मम सेवकान् कुरु कुरु सर्वशस्त्रास्त्रविषाणि विध्वंसय विध्वंसय ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रां ह्रां ह्रां एहि एहि ह्सौं ह्स्ख्फ्रें ह्स्त्रौं ख्फ्रें ह्स्फ्रें सर्वशत्रून् हन हन परदलानि परसैन्यानि क्षोभय क्षोभय मम सर्वकार्यजातं साधय साधय सर्वदुष्टदुर्जनमुखानि कीलय कीलय घे घे घे हा हा हा हुं हुं हुं फट् फट् फट् स्वाहा - मालामन्त्रोऽयमष्टाशीत्यधिक पञ्चशतवर्णः' ॥ ५४-७६ ॥

पूर्व में कहे गये द्वादशाक्षर मन्त्र (द्र० १३. १ - ३) के अन्तिम ६ वर्णों को (हनुमते नमः) तथा प्रारम्भ के एक वर्ण ह्रौ को छोड़कर जो पञ्च कूटात्मक मन्त्र बनता है वह साधक के सर्वाभीष्ट को पूर्ण कर देता है ॥ ८० ॥

मुनीरामोऽथ गायत्रीछन्दो देवः कपीश्वरः।
पञ्चबीजैः समस्तेन षडङ्गं मुनिभिः स्मृतम्॥ ८१॥
रामदूतो लक्ष्मणान्ते प्राणदाताऽञ्जनासुतः।
सीताशोकविनाशोऽथ लंकाप्रासादभञ्जनः॥ ८२॥
हनूमदाद्याः पञ्चैते बीजाद्या ङेसमन्विताः।
षडङ्गमन्त्राः संदिष्टा ध्यानपूजादिपूर्ववत्॥ ८३॥

वधपरायण श्रीरामभक्तितत्पर समुद्रव्योमद्रुमलंघन महासामर्थ्य महातेजःपुञ्ज-विराजमान स्वामिवचनसंपादित अर्जुनसंयुगसहाय कुमारब्रह्मचारिन् गम्भीरशब्दोदय दक्षिणाशामार्तण्ड मेरुपर्वतपीठिकार्चन सकलमन्त्रागमाचार्य मम सर्वग्रहविनाशन सर्वज्वरोच्चाटन सर्वविषविनाशन सर्वापत्तिनिवारण सर्वदुष्टनिबर्हण सर्वव्याघ्रादिभयनिवारण सर्वशत्रुच्छेदन मम परस्य च त्रिभुवन पुंस्त्रीनपुंसकात्मकसर्वजीवजातं वशय वशय मम आज्ञाकारकं संपादय संपादय नानानामधेयान् सर्वान् राज्ञः सपरिवारान् मम सेवकान् कुरु कुरु सर्वशस्त्रास्त्रविषाणि विध्वंसय विध्वंसय हां हीं हूं हां हां हां एहि एहि ह्सौं ह्स्ख्फ्रें ह्स्रौं ख्फ्रें ह्स्फ्रें सर्वशत्रून् हन हन परदलानि परसैन्यानि क्षोभय क्षोभय मम सर्वकार्यजातं साधय साधय सर्वदुष्टदुर्जनमुखानि कीलय कीलय घे घे घे हा हा हा हुं हुं हुं फट् फट् फट् स्वाहा - मालामन्त्रोऽयमष्टाशीत्यधिक पञ्चशतवर्णः (५८८)। मन्त्रान्तरमाह - **द्वादशेति**। द्वादशाक्षरस्यान्तिमान् षड्वर्णान् हनुमते नम इति। प्रथममेकं हौमिति त्यक्त्वा शेषः पञ्चार्णो मन्त्रः- ह्स्फ्रे ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौमिति॥ ८०-८१॥ षडङ्गमाह - **रामदूत** इति। हनुमदाद्याश्चतुर्थ्यन्ताबीजपूर्वाः षडङ्गमन्त्राः। यथा - ह्स्फ्रें हनुमते हृत्। ख्फ्रें रामभक्ताय (दूताय) शिरः। ह्स्रौं लक्ष्मणप्राणदात्रेशिखेत्यादि० ॥ ८२॥ पूर्ववद्द्वादशवर्णवत्॥ ८३॥

विमर्श - पञ्चकूट का स्वरूप - ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं ॥ ८०॥

इस मन्त्र के राम ऋषि, गायत्री छन्द तथा कपीश्वर देवता हैं ॥ ८१॥

विमर्श - विनियोगः - अस्य श्रीहनुमत् पञ्चकूट मन्त्रस्य रामचन्द्रऋषिः गायत्रीच्छन्दः कपीश्वरो देवता आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ ८१॥

पञ्चकूटात्मक बीज तथा समस्त मन्त्रों को क्रमशः - हनुमते रामदूताय लक्ष्मण प्राणदात्रे अञ्जनासुताय सीताशोकविनाशाय, लंकाप्रासादभञ्जनाय रूप चतुर्थ्यन्त शब्दों को प्रारम्भ में लगाने से इस मन्त्र का षडङ्गन्यास मन्त्र बन जाता है। इस मन्त्र का ध्यान (द्र० १३. ८) तथा पूजापद्धति (द्र० १३. १०-१३) पूर्ववत् है ॥ ८१-८३॥

विमर्श - षडङ्गन्यास - ह्स्फ्रें हनुमते हृदयाय नमः,
ख्फ्रें रामदूताय शिरसे स्वाहा, ह्स्रौं लक्ष्मणप्राणदात्रे शिखायै वषट्,

षडङ्गन्यासादिकथनम्

तारो वाक्कमलामाया दीर्घत्रयसमन्विताः ।
पञ्चकूटानि मन्त्रोऽयं[1] रुद्रार्णोऽभीष्टसिद्धिदः ॥ ८४ ॥
अर्चनात्पूर्ववच्चास्य परो मन्त्रोऽभिधीयते ।
हृदयं भगवान्ङेन्तं आञ्जनेयमहाबलौ ॥ ८५ ॥
तद्वद्वह्निप्रियान्तोऽयं मनुरष्टादशाक्षरः ।
मुनिरीश्वर एवास्यानुष्टुप्छन्दः समीरितम् ॥ ८६ ॥
हनूमान्देवता बीजं हुं शक्तिर्वह्निवल्लभा ।
आञ्जनेयो रुद्रमूर्तिर्वायुपुत्रस्तथैव च ॥ ८७ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **तार** इति । तार ॐ । वाक् ऐं । कमला श्रीं । मायादीर्घत्रयाद्या ह्रां ह्रीं ह्रूं । पञ्चकूटानि च इदानीमुक्तानि । रुद्रार्ण एकादशाक्षरः ॥ ८४ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **हृदयमिति** । तद्वत् । ङेन्तो नमो भगवत आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहेति । षडङ्गमाह – **आञ्जनेय** इति । आञ्जनेयाय हृत् । रुद्रमूर्तये शिर इत्यादि० ॥ ८५ ॥ * ॥ ८६–८८ ॥

ह्स्ख्फ्रें अञ्जनासुताय कवचाय हुम्, ह्सौं सीताशोक विनाशाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्त्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं लंकाप्रासादभञ्जनाय अस्त्राय फट् ॥ ८१-८३ ॥

तार (ॐ), वाक् (ऐं), कमला (श्रीं), माया दीर्घत्रयाद्या (ह्रां ह्रीं ह्रूँ), तथा पञ्चकूट (ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्त्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं) लगाने से ११ अक्षरों का अभीष्ट सिद्धिदायक मन्त्र बनता है । इस मन्त्र का ध्यान तथा पूजा पद्धति (१३. ८, १३. १०-१३) पूर्ववत् हैं ॥ ८४-८५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ ऐं श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्स्फ्रें ख्फ्रें ह्स्त्रौं ह्स्ख्फ्रें ह्सौं (११) ॥ ८४-८५ ॥

अब इस मन्त्र के अतिरिक्त **अन्य मन्त्र** कहते हैं - नमः, फिर भगवान् आञ्जनेय तथा महाबल का चतुर्थ्यन्त (भगवते, आञ्जनेयाय महाबलाय), इसके अन्त में वह्निप्रिया (स्वाहा) लगाने से अष्टादशाक्षर अन्य मन्त्र बन जाता है ॥ ८५-८६ ॥

अष्टादशाक्षर मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा ॥ ८५-८६ ॥

विनियोग एवं न्यास - उपर्युक्त अष्टादशाक्षर मन्त्र के ईश्वर ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, और हनुमान् देवता हैं, हुं बीज है तथा अग्निप्रिया (स्वाहा) शक्ति हैं ॥ ८६-८७ ॥

---

१. ॐ ऐं श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं हस्फ्रें ख्फ्रें हस्त्रौं हस्ख्फ्रें हसौं ।

अग्निगर्भो रामदूतो ब्रह्मास्त्रविनिवारणः ।
एतैर्ङेन्तैः षडङ्गानि कृत्वा ध्यायेत्कपीश्वरम् ॥ ८८ ॥

ध्यानकथनम्

दहनतप्तसुवर्णसमप्रभं
भयहरं हृदये विहिताञ्जलिम् ।
श्रवणकुण्डलशोभिमुखाम्बुजं
नमतवानरराजमिहाद्‌भुतम् ॥ ८६ ॥
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः ।
वैष्णवे पूजयेत् पीठे पूर्ववत्कपिनायकम् ॥ ६० ॥

हनूमन्मन्त्रान्तर-तद्विधिविविधप्रयोगवर्णनम्

जितेन्द्रियो नक्तभोजी प्रत्यहं साष्टकं शतम् ।
जपित्वा क्षुद्ररोगेभ्यो मुच्यते दिवसत्रयात् ॥ ६१ ॥

ध्यानमाह – **दहनेति** ॥ ८६–६० ॥ प्रयोगानाह – **जितेन्द्रिय** इति ॥ ६१ ॥ * ॥ ६२–६७ ॥

आञ्जनेय, रुद्रमूर्ति, वायुपुत्र, अग्निगर्भ, रामदूत तथा ब्रह्मास्त्रविनिवारण इनमें चतुर्थ्यन्त लगाकर षडङ्गन्यास कर कपीश्वर का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ॥ ८७-८८ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीहनुमन्मन्त्रस्य ईश्वरऋषिरनुष्टुप् छन्दः हनुमान् देवता हुं बीजं स्वाहा शक्तिरात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास विधि - ॐ आञ्जनेयाय हृदयाय नमः,
रुद्रमूर्तये शिरसे स्वाहा, वायुपुत्राय शिखायै वषट्, अग्निगर्भाय कवचाय हुम्, रामदूताय नेत्रत्रयाय वौषट्, ब्रह्मास्त्रविनिवारणाय अस्त्राय फट्॥ ८७-८८ ॥

अब **उक्त मन्त्र का ध्यान** कहते हैं - मैं तपाये गये सुवर्ण के समान, जगमगाते हुये, भय को दूर करने वाले, हृदय पर अञ्जलि बाँधे हुये, कानों में लटकते कुण्डलों से शोभायमान मुख कमल वाले, अद्‌भुत स्वरूप वाले वानरराज को प्रणाम करता हूँ ॥ ८६ ॥

पुरश्चरण - इस मन्त्र का १० हजार जप करना चाहिए । तदनन्तर तिलों से उसका दशांश होम करना चाहिए । वैष्णव पीठ पर कपीश्वर का पूजन करना चाहिए । पीठ पूजा तथा आवरण पूजा (१३. १०-१३) श्लोक में द्रष्टव्य है ॥ ६० ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं - साधक इस मन्त्र के अनुष्ठान करते समय इन्द्रियों को वश में रखे । केवल रात्रि में भोजन करे । जो साधक व्यवधान

भूतप्रेतपिशाचादिनाशायैवं समाचरेत् ।
महारोगनिवृत्त्यै तु सहस्रं प्रत्यहं जपेत् ॥ ६२ ॥
यतोशनोऽयुतं नित्यं जपन्ध्यायन्कपीश्वरम् ।
राक्षसौघं विनिघ्नन्तमचिराज्जयति द्विषम् ॥ ६३ ॥
सुग्रीवेण समं रामं संदधानं स्मरन्कपिम् ।
प्रजप्यायुतमेतस्य सन्धिं कुर्य्याद्विरुद्धयोः ॥ ६४ ॥
लंकां दहन्तं तं ध्यायन्नयुतं प्रजपेन्मनुम् ।
शत्रूणां प्रदहेद् ग्रामानचिरादेव साधकः ॥ ६५ ॥
प्रयाणसमये ध्यायन्हनूमन्तं मनुं जपन् ।
योयातिसोऽचिरात् स्वेष्टं साधयित्वागृहं व्रजेत् ॥ ६६ ॥
यः कपीशं सदा गेहे पूजयेज्जपतत्परः ।
आयुर्लक्ष्म्यौ प्रवर्द्धेते तस्य नश्यन्त्युपद्रवाः ॥ ६७ ॥

रहित म.त्र तीन दिन तक उस १०८ की संख्या में इस मन्त्र का जप करता है वह तीन दिन मे ही क्षुद्र रोगों से छुटकारा पा जाता है । भूत, प्रेत एवं पिशाच आदि को दूर करने के लिए भी उक्त मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए । किन्तु असाध्य एवं दीर्घकालीन रोगों से मुक्ति पाने के लिए प्रतिदिन एक हजार की संख्या में जप आवश्यक है ॥ ६१-६२ ॥

नियमित एक समय हविष्यान्न भोजन करते हुये जो साधक राक्षस समूह को नष्ट करते हुये कपीश्वर का ध्यान कर प्रतिदिन १० हजार की संख्या में जप करता है वह शीघ्र ही शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेता है ॥ ६३ ॥

सुग्रीव के साथ राम की मित्रता कराते हुये कपीश्वर का ध्यान करते हुये इस मन्त्र का १० हजार की संख्या में जप करने से शत्रुओं के साथ सन्धि करायी जा सकती है ॥ ६४ ॥

लंकादहन करते हुये कपीश्वर का ध्यान करते हुये जो साधक इस मन्त्र का दश हजार जप करता है, उसके शत्रुओं के घर अनायास जल जाते हैं ॥ ६५ ॥

जो साधक यात्रा के समय हनुमान् जी का ध्यान कर इस मन्त्र का जप करता हुआ यात्रा करता है वह अपना अभीष्ट कार्य पूर्ण कर शीघ्र ही घर लौट आता है ॥ ६६ ॥

जो व्यक्ति अपने घर में सदैव हनुमान् जी की पूजा करता है और इस मन्त्र का जप करता है उसकी आयु और संपत्ति नित्य बढ़ती रहती है तथा समस्त उपद्रव अपने आप नष्ट हो जाते है ॥ ६७ ॥

इस मन्त्र के जप से साधक की व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं से तथा तस्करादि उपद्रवी तत्वों से रक्षा होती है । इतना ही नहीं सोते समय इस मन्त्र के जप

शार्दूलतस्करादिभ्यो रक्षेन्मनुरयं स्मृतः।
प्रस्वापकाले चौरेभ्यो दुष्टस्वप्नादपि ध्रुवम् ॥ ९८ ॥

उदररोगनाशकमन्त्रकथनम्

पवनद्वितयं सद्यो जातयुक्तं हनूपदम्।
महाकालः शशांकाढ्यः कामिकाफलफः क्रिया ॥ ९९ ॥
सनेत्राणान्तमीनो गसात्वतोगित आयुरा।
षलोहितं रुडाहेति वेदनेत्राक्षरो मनुः ॥ १०० ॥

प्लीहारोगनाशकप्रयोगकथनम्

प्लीहारोगहरश्चास्य मुन्याद्यं पूर्ववन्मतम्।
प्लीहयुक्तोदरे स्थाप्यं नागवल्लीदलं शुभम् ॥ १०१ ॥
तदुपर्यष्टगुणितं वस्त्रमाच्छादयेत्ततः।
वंशजं शकलं तस्योपरि मुञ्चेत्कपिं स्मरन् ॥ १०२ ॥

ध्रुवं ओंकारः ॥ ९८ ॥ उदररोगनाशकमन्त्रमाह – **पवनेति** । सद्योजात ओंकारस्तद्युतपवनद्वयं यो यो । हनुस्वरूपं । शशांकाढ्यो महाकालः सबिन्दुर्मः मं । कामिका नः । फलफस्वरूपान्ते सनेत्रा क्रिया इयुतो लः लि । णान्तस्तः । मीनो धः । ग स्वरूपं । सात्वतो धः । गितायुराषस्वरूपं । लोहितं पः । रुडाहस्वरूपं वेदनेत्राक्षरः चतुर्विंशत्यर्णः । यथा – ॐ यो यो हनुमन्तं फलफलित धगधगितायुराषपरुडाहेति ॥ ९९–१०० ॥ प्लीहरोगः उदररोगः । तन्नाशकप्रयोगमाह – **प्लीहेति** ॥ १०१–१०२ ॥

से चोरों से रक्षा तो होती रहती ही है दुःस्वप्न भी दिखाई नहीं देते ॥ ९८ ॥

अब **प्लीहादिउदररोगनाशक मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - ध्रुव (ॐ), फिर सद्योजात (ओ) सहित पवनद्वय (य) अर्थात् 'यो यो', फिर 'हनू' पद, फिर 'शशांक' (अनुस्वार) सहित महाकाल (मं), कामिका (त) तथा 'फलफ' पद, फिर सनेत्रा क्रिया (लि), णान्त (त), मीन (ध) एवं 'ग' वर्ण, फिर 'सात्वत' (ध) तथा 'गित आयु राष', फिर लोहित (प) तथा रुडाह लगाने से २४ अक्षरों का मन्त्र बनता है ॥ ९९-१०० ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ यो यो हनूमन्तं फलफलित धग धगितायुराषपरुडाह' (२४) ॥ ९९-१०० ॥

प्रयोग विधि - इस मन्त्र के ऋषि आदि पूर्वोक्त मन्त्र के समान है । प्लीहा वाले रोगी के पेट पर पान रखे । उसको उसका आठ गुना कपड़ा फैलाकर आच्छादित करे, फिर उसके ऊपर हनुमान् जी का ध्यान करते हुये

आरण्यप्रस्तरोत्पन्ने वह्नौ यष्टिं प्रतापयेत्।
बदरीतरुसम्भूतां मन्त्रेणानेन सप्तशः॥ १०३ ॥
तया संताडयेद्वंशं शकलं जठरस्थितम्।
सप्तकृत्वः प्लीहरोगो नश्यत्येव नृणां क्षणात्॥ १०४ ॥

शत्रुविजयकरप्रयोगकथनम्

पुच्छाकारे सुवसने लेखिन्या कोकिलोत्थया।
अष्टगन्धैर्लिखेद्रूपं कपिराजस्य सुन्दरम्॥ १०५ ॥
तन्मध्येष्टादशार्णं तु शत्रुनामयुतं लिखेत्।
तेन मन्त्राभिजप्तेन शिरो बद्धेन भूमिपः॥ १०६ ॥
जयत्यरिगणं सर्वं दर्शनादेव निश्चितम्।
युद्धे जिगीषुर्नृपतिः पूर्वोक्तं लेखयेद् ध्वजे॥ १०७ ॥

आरण्यप्रस्तरोत्पन्ने वनपाषाणान्निष्कासितेऽग्नौ बदर्युत्थायष्टिं सप्तधा मूलमन्त्रेण तापयेत् ॥ १०३ ॥ तयोदरस्थिते वंशखण्डे ताडिते रोगो नश्यति ॥ १०४ ॥ प्रयोगान्तरमाह – **पुच्छेति** । पुच्छाकारे वस्त्रे कोकिलापिच्छ–लेखिन्याष्टगन्धैर्हनुमज्जपं कृत्वा तदुदरेऽष्टादशार्णं विलिख्याधिमन्त्रितेन शिरो

बाँस का टुकड़ा रखे, फिर जंगल के पत्थर पर उत्पन्न बेर की लकड़ियों से जलायी गई अग्नि में मूलमन्त्र का जप करते हुये ७ बार यष्टि को तपाना चाहिए । उसी यष्टि से पेट पर रखे बाँस के टुकड़े को सात बार संताडित करना चाहिए । ऐसा करने से प्लीहा रोग शीघ्र दूर हो जाता है ॥ १०१-१०४ ॥

हनुमतः स्वरूपम्

अब **विजयप्रद प्रयोग** कहते हैं - पूँछ जैसी आकृति वाले वस्त्र पर कोयल के पंखे से अष्टगन्ध द्वारा हनुमान् जी की मनोहर मूर्ति निर्माण करना चाहिए । उसके मध्य में शत्रु के नाम से युक्त अष्टादशाक्षर मन्त्र लिखना चाहिए । फिर उस वस्त्र को इसी मन्त्र से अभिमन्त्रित कर राजा शिर पर उसे

ध्वजमादायोपरागे संस्पर्शान्मोक्षणावधि।
मातृकां जापयेत्पश्चाद्दशांशेन च हावयेत्॥ १०८॥
सर्षपैस्तिलसंमिश्रैः संस्पर्शान्मोक्षणावधि।
गजस्थं तं ध्वजं दृष्ट्वा पलायन्तेऽरयो चिरात्॥ १०६॥

हनूमद्यन्त्रकथनम्

अथो हनुमतो यन्त्रं वक्ष्ये रक्षाविधायकम्।
लिखेदष्टदलं पद्मं साध्याख्यायुतकर्णिकम्॥ ११०॥
दलेष्वष्टार्णमालिख्य मालामन्त्रेण वेष्टयेत्।
तद् बहिर्मायया वेष्ट्य प्राणास्थापनमाचरेत्॥ १११॥
लिखितं स्वर्णलेखिन्या दले भूर्जतरोः शुभे।
रोचनाकुंकुमाभ्यां तु वेष्टितं कनकादिभिः॥ ११२॥

बद्धेन तेन अरीं जयति ॥ १०५ ॥ * ॥ १०६–१०६ ॥ यन्त्रमाह – **लिखेदिति** ॥ ११० ॥ अष्टार्णमालामन्त्रौ वक्ष्यमाणौ ॥ १११–११२ ॥

बाँधकर युद्धभूमि में जावे, तो वह अपने शत्रुओं को देखते देखते निश्चित ही जीत लेता है (अष्टादशाक्षर मन्त्र द्र० १३. १८) ॥ १०५-१०७ ॥

अब विजयप्रदध्वज कहते हैं - युद्ध में अपने शत्रुओं पर विजय चाहने वाला राजा शत्रु के नाम एवं अष्टादशाक्षर मन्त्र के साथ पूर्ववत् हनुमान् जी का चित्र ध्वज पर लिखे । उस ध्वज को लेकर ग्रहण के समय स्पर्शकाल से मोक्षकाल पर्यन्त मातृकाओं का जप करे, तथा तिलमिश्रित सरसों से स्पर्शकाल से मोक्षकालपर्यन्त दशांश होम करे, फिर उस ध्वज को हाथी के ऊपर लगा देवे तो हाथी के ऊपर लगे उस ध्वज को देखते ही शत्रुदल शीघ्र भाग जाता है ॥ १०७-१०६ ॥

अब **रक्षक यन्त्र** कहते हैं - अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में साध्य नाम (जिसकी रक्षा की इच्छा हो) लिखना चाहिए । तदनन्तर दलों में अष्टाक्षर मन्त्र लिखना चाहिए । तदनन्तर वक्ष्यमाण माला मन्त्र से उसे परिवेष्टित करना चाहिए । उसको भी महाबीज (ह्रीं) से परिवेष्टित कर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए ॥ ११०-१११ ॥

शुभ कमलदल को भोजपत्र पर सुर्वण की लेखनी से गोरोचन और कुंकुम मिलाकर उक्त यन्त्र लिखना चाहिए । संपात साधित होम द्वारा सिद्ध इस यन्त्र को स्वर्ण आदि से परिवेष्टित (सोने या चाँदी का बना हुआ गुटका में डालकर) भुजा या मस्तक पर उसे धारण करना चाहिए ॥ ११२-११३ ॥

सम्पातसाधितं यन्त्रं भुजे वा मूर्ध्नि धारयेत्।
रणे जयमवाप्नोति व्यवहारे दुरोदरे ॥ ११३ ॥
ग्रहैर्विघ्नैर्विषैः शस्त्रैश्चौरैर्नैवाभिभूयते।
रोगान्सर्वानपाकृत्य चिरञ्जीवति भाग्यवान् ॥ ११४ ॥

हनूमदष्टाक्षरमन्त्रः

वियदग्नियुतं दीर्घषट्काद्यं तारसम्पुटम्।
अष्टार्णो मन्त्र आख्यातो मालामन्त्रोऽयं कथ्यते ॥ ११५ ॥

दुरोदरे द्यूते ॥ ११३–११४॥ अष्टार्णमाह – **वियदिति** । वियत् हः । अग्नी रः । यथा – ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रैं ह्रौं हः ॐ इत्यष्टार्णः ॥ ११४ ॥

इसके धारण करने से मनुष्य युद्ध व्यवहार एवं जूए में सदैव विजयी रहता है ग्रह, विघ्न, विष, शस्त्र, तथा चौरादि उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते । वह भाग्यशाली तथा नीरोग रहकर दीर्घकालपर्यन्त जीवित रहता है ॥ ११३-११४ ॥

हनुमतो रक्षाविधायकयन्त्रं
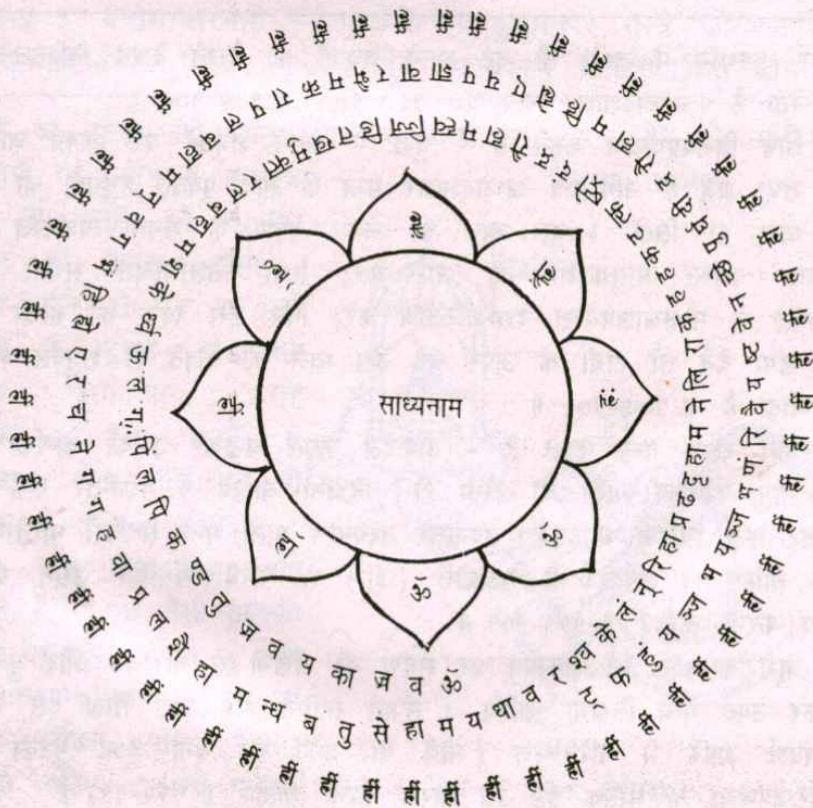
हनूमन्मालामन्त्रः

वज्रकायवज्रतुण्डकपिलेत्यथ पिङ्गला ।
ऊर्ध्वकेशमहावर्णबलरक्तमुखेति च ॥ ११६ ॥
तडिज्जिह्वमहारौद्रदंष्ट्रोत्कटकहद्वयम् ।
करालिने महादृढप्रहारिन्निति वर्णकाः ॥ ११७ ॥
लंकेश्वरवधायान्ते महासेतुपदं ततः ।
बन्धान्ते च महाशैलप्रवाहगगने चर ॥ ११८ ॥
एह्येहि भगवन्नन्ते महाबलपराक्रम ।
भैरवाज्ञापयैह्येहि महारौद्रपदं पुनः ॥ ११९ ॥
दीर्घपुच्छेन वर्णान्ते वेष्ट्यान्ते तु वैरिणम् ।
भञ्जयद्वितयं हुं फट् प्रणवादिसमीरितः ॥ १२० ॥

मालामन्त्रमाह – **वज्रेति** यथा – ॐ वज्रकाय वज्रतुण्ड कपिल पिङ्गल ऊर्ध्वकेशमहावर्णबलरक्तमुखतडिज्जिह्वमहारौद्रद्रंष्टोत्कटकहहकरालिने महादृढ प्रहारिन् लंकेश्वर वधाय महासेतुबन्ध महाशैलप्रवाहगगनेचर ऐह्येहि भगवन्महाबलपराक्रम भैरवाज्ञापय एह्येहि महारौद्र दीर्घपुच्छेन वेष्ट्य वैरिणं भञ्जय भञ्जय हुं फट् ॥ ११६–१२० ॥

अब अष्टाक्षर **मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - अग्नि (र्) सहित वियत् (ह्), इनमें दीर्घ षट्क (आं ईं ऊं ऐं औं अः) लगाकर उसे तार से संपुटित कर देने पर अष्टाक्षर मन्त्र निष्पन्न हो जाता है ॥ ११५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ॐ' ॥ ११५ ॥

अब **मालामन्त्र का उद्धार** कहते हैं - वज्रकाय वज्रतुण्ड कपिल, फिर पिङ्गल ऊर्ध्वकेश महावर्णबल रक्तमुख तडिज्जिस्व महारौद्रदंष्ट्रोत्कटक, फिर दो बार ह (ह ह), फिर 'करालिने महादृढप्रहारिन्' ये पद, फिर 'लंकेश्वरवधाय' के बाद 'महासेतु' एवं 'बन्ध', फिर 'महाशैल प्रवाह गगने चर एह्येहि भगवान्' के बाद 'महाबलपराक्रम भैरवाज्ञापय एह्येहि महारौद्रदीर्घपुच्छेन वेष्ट्य वैरिणं भञ्जय भञ्जय हुं फट्', इसके प्रारम्भ में प्रणव लगाने से १२५ अक्षरों का सर्वार्थदायक माला मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ११६-१२१ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ वज्रकाय बज्रतुण्डकपिल पिङ्गल ऊर्ध्वकेश् महावर्णबल रक्तमुख तडिज्जिह्व महारौद्र दंष्ट्रोत्कटक ह ह करालिने महादृढ़ प्रहारिन् लंकेश्वरवधाय महासेतुबन्ध महाशैलप्रवाह गगनेचर एह्येहिं भगवन् महाबल पराक्रम भैरवाज्ञापय

बाणनेत्रेन्दुवर्णोऽयं मालामन्त्रोऽखिलेष्टदः।
युद्धे जप्तो जयं दद्याद् व्याधौ व्याधिविनाशनः ॥ १२१ ॥

अष्टार्णमालामन्त्रयोः स्वतन्त्रत्वकथनम्

अष्टार्णमालामन्त्वोस्तु मुन्याद्यर्च्चा तु पूर्ववत्।
भूरिणा किमिहोक्तेन सर्वं दद्यात्कपीश्वरः ॥ १२२ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ हनुमन्मन्त्रकथनं नाम त्रयोदशस्तरङ्गः॥ १३ ॥

बाणनेत्रेन्दुवर्णः पञ्चविंशत्युत्तरशतार्णः ॥ १२१ ॥ अष्टार्णमाला मन्त्रौ स्वतन्त्राविति सूचयन्नाह अष्टार्णेति ॥ १२२ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां हनुमन्मन्त्रकथनं नाम त्रयोदशस्तरङ्गः ॥ १३ ॥

एह्येहि महारौद्र दीर्घपुच्छेन वेष्ट्य वैरिणं भञ्जय भञ्जय हुं फट् । रक्षायन्त्र के लिए विधि स्पष्ट है ॥ ८१६-१२१ ॥

युद्ध काल में मालामन्त्र का जप विजय प्रदान करता है तथा रोग में जप करने से रागों को दूर करता है ॥ १२१ ॥

अष्टाक्षर एवं मालामन्त्र के ऋषि छन्द तथा देवता पूर्ववत् हैं पूजा तथा प्रयोग की विधि पूर्ववत् है । इनके विषय में बहुत कहने की आवश्यकता नहीं है । कपीश्वर हनुमान् जी सब कुछ अपने भक्तों को देते हैं ॥ १२२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के त्रयोदश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशः तरङ्गः

अथ वक्ष्ये महाविष्णोर्मन्त्रान् सर्वार्थसाधकान् ।
ब्रह्माद्या यानुपास्याथ ससृजुर्विविधाः प्रजाः ॥ १ ॥

विष्णुमन्त्रकथनम्

मेरुः कृशानुसंयुक्तोऽनुग्रहेन्दुसमन्वितः ।

नरसिंहैकाक्षरमन्त्रकथनम्

एकाक्षरो नरहरेर्मन्त्रः कल्पद्रुमो नृणाम् ॥ २ ॥
त्र्यक्षरः सम्पुटः प्रोक्तो मायया प्रणवेन च ।
ऋषिरत्रिश्च गायत्रीछन्दो देवो नृकेसरी ॥ ३ ॥

---

* नौका *

विष्णुमन्त्रान् वक्तुं प्रतिजानीते – **अथेति** ॥ १ ॥ मन्त्रानाह – **मेरुरिति**। मेरुः क्षः । कृशानू रः । अनुग्रह औ । इन्दुर्बिन्दुः । तेन क्ष्रौं ॥ २ ॥ माया ह्रीं। तत्संपुटः प्रणवसंपुटश्चेति द्वौ त्र्यर्णौ ॥ ३–४ ॥

---

* अरित्र *

अब सर्वार्थसाधक महाविष्णु के मन्त्रों को कहता हूँ । जिनकी उपासना कर ब्रह्मादि देवताओं ने विविध प्रजाओं की सृष्टि की ॥ १ ॥

सर्वप्रथम **नृसिंह मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - मेरु (क्ष) एवं कृशानु (र्) इन दोनों को अनुग्रह (औ) तथा इन्दु (अनुस्वार) से समन्वित करने पर नृसिंह का एकाक्षर (क्ष्रौं) मन्त्र निष्पन्न होता हैं जो साधकों को कल्पपृक्ष के समान फलदायी है । वही माया बीज (ह्रीं) अथवा प्रणव से संपुटित करने पर तीन तीन अक्षर के मन्त्र बन जाते हैं ॥ २-३ ॥

विमर्श - एकाक्षर मन्त्र - क्ष्रौं । **प्रथम तीन अक्षर का मन्त्र** - ह्रीं क्ष्रौं ह्रीं । **द्वितीय तीन अक्षर का मन्त्र** - ॐ क्ष्रौं ॐ ॥ २ ॥

---

१. ह्रीं क्ष्रौं ह्रीं इति त्र्यक्षरः । २. ॐ क्ष्रौं ॐ इति त्र्यक्षरः ।

षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गानि समाचरेत् ।

त्र्यर्णमन्त्रद्वयकथनं तदृषिच्छन्दआदिकथनञ्च

त्र्यर्णे मायापुटेनैव तारसम्पुटितेन वा ॥ ४ ॥

तपनसोमहुताशनलोचनं
घनविरामहिमांशुसमप्रभम् ।
अभयचक्रपिनाकवरान्करै –
र्दधतमिन्दुधरं नृहरिं भजे ॥ ५ ॥

ध्यानमाह – तपनेति । सूर्येन्द्वग्निनेत्रं । घनविरामः शरत्त्रपो हिमांशुश्चन्द्रस्तत्तुल्यकान्तिः घनसमानलमिति पाठे नीलकण्ठं । शशि सप्रभमिति पाठान्तरे शशिना समाना प्रभा यस्य तम् । ऊर्ध्वयोर्दक्षवामयोश्चक्रपिनाकौ । अधस्थयोर्वराभये । इन्दुधरं शशिशेखरम् ॥ ५ ॥

अब **विनियोग तथा न्यास** कहते हैं - उक्त तीनों मन्त्रों के अत्रि ऋषि हैं । गायत्री छन्द है तथा नृसिंह देवता है । एकाक्षर मन्त्र में षड् दीर्घ सहित बीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए । तीन अक्षर वाले नृसिंह मन्त्र में माया बीज या प्रणव से संपुटित षड् दीर्घ सहित एकाक्षर नृसिंह बीज मन्त्र से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ३-४ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीनृसिंहमन्त्रस्य अत्रिर्ऋषि गायत्रीछन्दः श्रीनृसिंहो देवता आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

एकाक्षर मन्त्र के प्रयोग में षडङ्गन्यास -

क्ष्राँ हृदयाय नमः, क्ष्रीं शिरसे स्वाहा, क्ष्रूँ शिखायै वषट्,
क्ष्रैं कवचाय हुम्, क्ष्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, क्ष्रः अस्त्राय फट् ।

प्रथम त्र्यक्षर मन्त्र के प्रयोग में षडङ्गन्यास -

ह्रीं क्ष्रां ह्रीं हृदयाय नमः, ह्रीं क्ष्रीं ह्रीं शिरसे स्वाहा,
ह्रीं क्ष्रूं ह्रीं शिखायै वषट्, ह्रीं क्ष्रैं ह्रीं कवचाय हुम्,
ह्रीं क्ष्रौं ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रीं क्ष्रः ह्रीं अस्त्राय फट्

द्वितीय त्र्यक्षर मन्त्र के प्रयोग में षडङ्गन्यास -

ॐ क्ष्रां ॐ हृदयाय नमः, ॐ क्ष्रीं ॐ शिरसे स्वाहा,
ॐ क्ष्रूं ॐ शिखायै वषट्, ॐ क्ष्रैं ॐ कवचाय हुम्,
ॐ क्ष्रौं ॐ नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ क्ष्रः ॐ अस्त्राय फट् ॥ ३-४ ॥

अब श्री **नृसिंह मन्त्र का ध्यान** कहते हैं - तपन (सूर्य) सोम (चन्द्रमा) और अग्निरूपी नेत्रों वाले, शरत्कालीन चन्द्रमा के समान कान्तिमान् अपनी चार भुजाओं में क्रमशः अभय, चक्र, धनुष एवं वर मुद्रा धारण करने वाले तथा मस्तक

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं घृतपायसैः ।
जुहुयात्पूजयेत्पीठे विमलादिसमन्विते ॥ ६ ॥
केसरेष्वङ्गपूजास्याद्दिग्दलेषु खगेश्वरम् ।
शंकरं शेषनागं च शतानन्दं प्रपूजयेत् ॥ ७ ॥
श्रियं ह्रियं धृतिं पुष्टिं कोणपत्रेषु साधकः ।
द्वात्रिंशत्पत्रमध्येषु नृसिहांस्तावतोऽर्चयेत् ॥ ८ ॥

विमलादय उक्ताः ॥ ६ ॥ शतानन्दं ब्रह्माणम् ॥ ७ ॥ तावतो द्वात्रिंशत्

पर चन्द्रकला से विराजमान श्री नृसिंह का मैं भजन करता हूँ ॥ ५ ॥

उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर घृत एवं खीर से उसका दशांश होम करना चाहिए तथा विमला आदि शक्तियों से युक्त पीठ पर इनका पूजन करना चाहिए ॥ ६ ॥

विमर्श - पीठ पूजा का प्रकार - प्रथम वृत्ताकार कर्णिका, उसके बाद अष्टदल, फिर बत्तीस दल तथा भूपुर युक्त बने मन्त्र पर भगवान् नृसिंह का पूजन करना चाहिए । सामान्य विधि के अनुसार १४, ५ श्लोक में वर्णित श्री नृसिंह के स्वरूप का ध्यान कर, मानसोपचार से विधिवत् पूजन कर, अर्घ्य के लिए शंख स्थापित करे । फिर १३. १० की भाषा टीका में वर्णित 'पीठ मध्ये' से ले कर 'पूर्वादि दिक्षु' पर्यन्त 'ॐ विमलायै नमः' से ले कर 'पीठ मध्ये अनुग्रहायै नमः' पर्यन्त पीठ शक्तियों का पूजन करे ।

नृसिंहपूजनयन्त्रम्
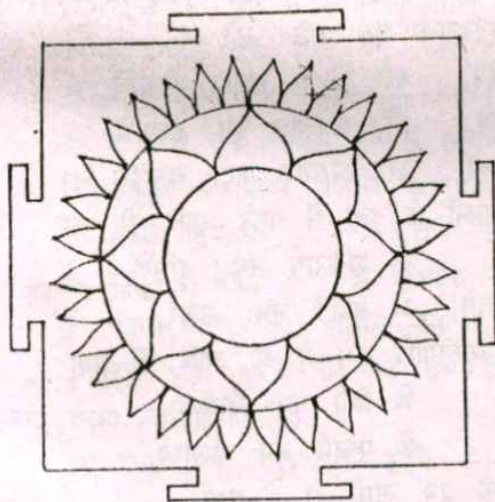
इस प्रकार पूजित पीठ पर आसन देकर, ध्यान, आवाहन आदि उपचारों से श्रीनृसिंह की पूजा कर, पञ्चपुष्पाञ्जलि समर्पित कर, आवरण पूजा की आज्ञा लेकर, आवरण पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए ॥ ६ ॥

अब नृसिंह के **आवरण पूजा की विधि** कहते हैं - केशरों में षडङ्गन्यास, तदनन्तर चारों दिशाओं के पत्रों में खगेश्वर (गरुड़), शंकर, शेषनाग एवं शतानन्द (ब्रह्मा), का पूजन करना चाहिए ॥ ७ ॥

फिर चारों कोनों के पत्रों में श्री, ह्रीं, घृति एवं पुष्टि का पूजन करना चाहिए । इसके बाद ३२ दलों में ३२ नामों से श्रीनृसिंह भगवान् की पूजा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

कृष्णो रुद्रो महाघोरो भीमो भीषण उज्ज्वलः।
करालो विकरालश्च दैत्यान्तो मधुसूदनः॥ ९॥
रक्ताक्षः पिङ्गलाक्षश्चाञ्जनसंज्ञस्त्रयोदशः।
दीप्ततेजाः सुघोणश्च हनुर्वै षोडशः स्मृतः॥ १०॥
विश्वाक्षो राक्षसान्तश्च विशालो धूम्रकेशवः।
हयग्रीवो घनस्वरो मेघनादस्तथापरः॥ ११॥
मेघवर्णः कुम्भकर्णः कृतान्तक इतीरितः।
तीव्रतेजा अग्निवर्णो महोग्रो विश्वभूषणः॥ १२॥
विघ्नक्षमो महासेनः सिंहो द्वात्रिंशदीरितः।
इन्द्रादीन् वज्रमुख्यांश्च पूजयेच्चतुरस्रके॥ १३॥

संख्याकान्॥ ८॥ तानाह॥ ९–१३॥

कृष्ण, रुद्र, महाघोर, भीम, भीषण, उज्ज्वल, कराल, विकराल, दैत्यान्तक, मधुसूदन, रक्ताक्ष, पिङ्गलाक्ष, आञ्जन, दीप्ततेज, सुघोण, हनू, विश्वाक्ष, राक्षसान्त, विशाल, धूम्र, केशव, हयग्रीव, घनस्वर, मेघनाद, मेघवर्ण, कुम्भकर्ण, कृतान्तक, तीव्रतेजा, अग्नि वर्ण, महोग्र, विश्वभूषण, विघ्नक्षम एवं महासेन ये नृसिंह जी के ३२ नाम हैं॥ ९-१३॥

फिर इन्द्रादि दिक्पालों का तदनन्तर उनके वज्रादि आयुधों का चतुरस्र में पूजन करना चाहिए॥ १३॥

विमर्श - नृसिंह यन्त्र में आवरण पूजा - सर्वप्रथम **आग्नेयादि चारों कोणों**, मध्य तथा चारों दिशाओं में षडङ्गपूजा इस प्रकार करे -

क्ष्रां हृदयाय नमः, आग्नेये, क्ष्रीं शिरसे स्वाहा, नैर्ऋत्ये,
क्ष्रूं शिखायै वषट्, वायव्ये, क्ष्रैं, कवचाय हुम्, ईशान्ये,
क्ष्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, मध्ये, क्ष्रः अस्त्राय फट्, चतुर्दिक्षु ।

फिर **अष्टदल में पूर्वादि चारों दिशाओं** के दलों में गरुड़ आदि की यथा -

ॐ गरुडाय नमः, पूर्वे, ॐ शंकराय नमः, दक्षिणे,
ॐ शेषनागाय नमः, पश्चिमे, ॐ ब्रह्मणे नमः, उत्तरे,

फिर **अष्टदल के चारों कोणों में** आग्नेयादि क्रम से श्री आदि की यथा -

ॐ श्रियै नमः आग्नेये, ॐ ह्रियै नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ धृत्यै नमः वायव्ये ॐ पुष्टयै नमः ऐशान्ये

इसके बाद **३२ दलों** में नृसिंह के ३२ नामों से - यथा

ॐ कृष्णाय नमः ॐ रुद्राय नमः, ॐ महाघोराय नमः,
ॐ भीमाय नमः ॐ भीषणाय नमः ॐ उज्ज्वलाय नमः,

एवं संसाधितो मन्त्रः प्रयोगेषु क्षमो भवेत् ।

उक्तमन्त्रप्रयोगविधिवर्णनम्

सहस्राष्टकसंख्यातैः शतपर्वात्रिकैस्तु यः ॥ १४ ॥
जुहुयादुदके तस्य सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः ।
महोत्पातहरोप्येष होमः सर्वेष्टदो नृणाम् ॥ १५ ॥
संस्थाप्य विधिवत्कुम्भं जपेदष्टसहस्रकम् ।
अभिषिञ्चेद्विषाक्रान्तं विषजार्तिनिवृत्तये ॥ १६ ॥

प्रयोगानाह – **सहस्रेति** । शतपर्वा दूर्वा ॥ १४–१७ ॥

ॐ करालाय नमः, ॐ विकरालाय नमः ॐ दैत्यान्तकाय नमः,
ॐ मधुसूदनाय नमः, ॐ रक्ताक्षाय नमः, ॐ पिङ्गलाक्षाय नमः,
ॐ अञ्जनाय नमः ॐ दीप्ततेजसे नमः ॐ सुघोणाय नमः
ॐ हनवे नमः ॐ विश्वाक्षाय नमः ॐ राक्षसान्ताय नमः,
ॐ विशालाय नमः, ॐ धूम्रकेशवाय नमः ॐ हयग्रीवाय नमः
ॐ घनस्वराय नमः ॐ मेघनादाय नमः ॐ मेघवर्णाय नमः
ॐ कुम्भकर्णाय नमः, ॐ कृतान्तकाय नमः ॐ तीव्रतेजसे नमः,
ॐ अग्निवर्णाय नमः, ॐ महोग्राय नमः, ॐ विश्वभूषणाय नमः
ॐ विघ्नक्षमाय नमः, ॐ महासेनाय नमः ।

इसके पश्चात् भूपुर में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से इन्द्रादि दश दिक्पालों का –
ॐ लं इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ रं अग्नये, ॐ यं यमाय नमः दक्षिणे,
ॐ क्षं निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये, ॐ वं वरुणाय नमः पश्चिमे,
ॐ यं वायवे नमः, वायव्ये, ॐ सं सोमाय नमः उत्तरे, ॐ हं ईशानाय नमः ऐशान्ये

फिर भूपुर के बाहर वज्रादि आयुधों का यथा पूर्वादिक्रम से –
ॐ वज्राय नमः ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डाय नमः,
ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अंकुशाय नमः,
ॐ गदायै नमः, ॐ शूलाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ चक्राय नमः,

आवरण पूजा करने के बाद धूप दीपादि उपचारों से नृसिंह भगवान् का पूजन करना चाहिए ॥ ६–१३ ॥

इस प्रकार के पुरश्चरण करने से सिद्ध किया गया मन्त्र काम्य प्रयोग करने के योग्य होता है ॥ १४ ॥

तीन गाँठ वाली (तीन पत्तों वाली) दूर्वा से जो साधक १००८ आहुतियाँ देता है वह सभी उपद्रवों से मुक्त हो जाता है । इस प्रकार से किया गया होम महान् उत्पातों को शान्त करता है तथा मनुष्यों को अभीष्टसिद्धि देता है ॥ १५ ॥

विचरन्विपिने चौरव्याघ्रसर्पाकुले नरः।
जपन्नमुं मन्त्रवरं न भयं प्रतिपद्यते॥ १७॥
ईक्षिते निशि दुःस्वप्ने जपन्मन्त्रं निशां नयेत्।
अवशिष्टं स्वप्नफलं सम्यगादिशति ध्रुवम्॥ १८॥
कर्णनेत्रशिरःकण्ठरोगान् मन्त्रो विनाशयेत्।
अभिचारकृतां पीडां मनुमन्त्रितभस्म च॥ १६॥
आत्मानं नृहरिं ध्यात्वा वैरिणं मृगबालकम्।
आदाय प्रक्षिपेद्यस्यां दिशि तस्यां स गच्छति॥ २०॥
स्वकुटुम्बं परित्यज्य न चैवावर्त्तते पुनः।
नृसिंहं संस्मरन्वादे रिपोः स्वस्य विनष्टये॥ २१॥

मन्त्रप्रभावाद्वैरिमरणे प्रायश्चित्तकथनम्

प्रजपेदयुतं मन्त्रं मारणोत्थाघनष्टये।
प्रसूनैर्बिल्ववृक्षोत्थैः फलैस्तत्काष्ठसम्भवैः॥ २२॥

निशि दुःस्वप्ने दृष्टे मन्त्रं जपेन्नवशिष्टां निशां नयेत् । स दुःस्वप्नः सुस्वप्नस्यैव फलं ददाति ॥ १८–२१ ॥ प्रसङ्गान् मारणप्रायश्चित्तमाह – **प्रजपेदिति** । अभिचारजातपापनिवृत्त्यै अयुतं जपेत् ॥ २२ ॥

विधिपूर्वक कलश स्थापित कर १००८ बार उक्त नृसिंह मन्त्र का जप करे फिर उस कलश के जल से विष पीडित व्यक्ति का अभिषेक करे तो रोगी की विषजन्य पीड़ा दूर हो जाती है ॥ १६ ॥

इस मन्त्र का जप करते हुये मनुष्य व्याघ्र, सर्पादि से संकुल घोर अरण्य में विचरण करते हुये भी भयभीत नहीं होता ॥ १७ ॥

यदि रात्रि में दुःस्वप्न दिखाई पड़ जाय तो इस मन्त्र का जप करते हुये जागरण पूर्वक रात्रि व्यतीत कर देने से दुःस्वप्न निश्चित ही सुस्वप्न का फल देता है ॥ १८॥

यह नृसिंह मन्त्र कर्णरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग तथा कण्ठगत रोगों को विनष्ट कर देता है । इस मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म का उद्धूलन अभिचार जनित पीड़ा को दूर कर देता है ॥ १९ ॥

स्वयं को नृसिंह तथा शत्रु को मृगशावक मानते हुये उसे पकड़कर जिस दिशा में फेंक दिया जाय वह अपने परिवार को छोड़कर उसी दिशा में चला जाता है और फिर कभी नहीं लौटता ॥ २०-२१ ॥

विवाद में शत्रु को मारने के लिए नृसिंह मन्त्र का जप करना चाहिए । किन्तु उसके मर जाने पर उस पाप को दूर करने के लिए पुनः इस मन्त्र का १० हजार जप करना चाहिए ॥ २१-२२ ॥

सहस्रं जुहुयाद् वह्नौ वाञ्छितश्रीसमृद्धये।
पुत्रजीवेद्धवह्नौ तु तत्फलैः पुत्रसम्पदे ॥ २३ ॥
ब्राह्मीं वचां वा मन्त्रेण मन्त्रितां शतसंख्यया।
संवत्सरमदन्प्रातर्विद्यापारङ्गतो भवेत् ॥ २४ ॥
किंबहूक्तेन नृहरिः सर्वेष्टफलदो नृणाम्।
अथोच्यते नरहरिर्भीतिहारीष्टसाधकः ॥ २५ ॥

नृसिंहाष्टाक्षरमन्त्रतद्विधिकथनम्

जयद्वयं श्रीनृसिंहेत्यष्टार्णो मनुरीरितः।
ऋषिर्ब्रह्मास्य गायत्रीछन्दो देवो नृकेसरी ॥ २६ ॥
शक्तिर्नेत्रं वियद्बीजमुभे चन्द्रसमन्विते।
वियतादीर्घयुक्तेन चन्द्राढ्येन षडङ्गकम् ॥ २७ ॥

पुत्रजीवेद्धवह्नौ पुत्रस्त्री वतरुकाष्ठैः दीप्तेग्नौ तत्फलः पुत्रजीवफलैः पुत्राप्त्यै जुहुयात् ॥ २३–२५ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **जयेति** । यथा – जय श्रीनृसिंहेति ॥ २६ ॥ नेत्रं इः शक्तिः । वियत् हः बीजम् । उभे शक्तिबीजे बिन्दुयुते । दीर्घयुतेन सबिन्दुना वियताहेन षडङ्गम् । हां हृत् हीं शिर इत्यादि० ॥ २७ ॥

अपनी इच्छानुसार श्री समृद्धि के लिए बेल के फूल एवं उसकी लकड़ी से इस मन्त्र द्वारा एक हजार आहुतियाँ देनी चाहिए ॥ २२-२३ ॥

पुत्र के दीर्घायुष्य के लिए तथा पुत्र रूप संपत्ति प्राप्त करने के लिए विल्व की लकड़ी में बिल्व फल से होम करना चाहिए ॥ २३ ॥

ब्राह्मी अथवा वचा को इस मन्त्र से १०० बार अभिमन्त्रित कर एक वर्ष तक प्रातःकाल लगातार खाने वाला व्यक्ति विद्या में पारङ्गत हो जाता है ॥ २४ ॥

इस विषय में विशेष क्या कहें भगवान् नृसिंह का मन्त्र साधकों के समस्त मनोरथों को पूर्ण करता है ॥ २५ ॥

अब **भयनाशक श्री नृसिंह मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - दो बार जय (जय जय) फिर श्री नृसिंह लगाने से ८ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ २५-२६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - जय जय श्रीनृसिंह (८)॥ २६ ॥

इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि है, गायत्री छन्द है तथा नृसिंह देवता है । अनुस्वार सहित नेत्र (इं) तथा अनुस्वार सहित वियत् (हं) क्रमशः शक्ति एवं बीज है । अनुस्वार एवं षड् दीर्घसहित वियत् (ह) वर्णों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ २६-२७ ॥

---

१. जय जय श्री नृसिंहेत्यष्टार्णः ।

श्रीमन्नृकेसरितनो जगदेकबन्धो
श्रीनीलकण्ठकरुणार्णवसामराज ।
वह्नीन्दुतीव्रकरनेत्रपिनाकपाणे
शीतांशुशेखर रमेश्वर पाहि विष्णो ॥ २८ ॥
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षाष्टकं तस्य दशांशतः।
जुहुयात्पायसेनाग्नौ पूजाद्यस्य तु पूर्ववत् ॥ २६ ॥

नृसिंहस्य एकाधिकत्रिंशदर्णमन्त्रः तद्विधिकथनम्

तारः पद्मा च ह्रल्लेखा जयलक्ष्मीप्रियाय च।
नित्यप्रमुदितान्ते तु चेतसेपदमीरयेत् ॥ ३० ॥
लक्ष्मीश्रितार्द्धदेहाय रमामाये नमः पदम्।
एकाधिकस्त्रिंशदर्णो मनुः पद्मभवो मुनिः ॥ ३१ ॥

ध्यानमाह – **श्रीमदिति** । साम्नां राजा ईशः । यद्वा सामसु राजते प्रकाशते स सामराजः । सामगाने कृते प्रत्यक्षो भवतीत्यर्थः । तीव्रकरो रविः । पिनाकपाणे इत्युपलक्षणं वराभयचक्राणाम् वामोर्ध्वादिदक्षोर्ध्वान्तं पिनाकाभय–वरचक्रधर इत्यर्थः ॥ २८ ॥ अस्य पूजादिप्रयोगादिकमेकार्णवत् ॥ २६ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **तार** इति । तार ॐ । पद्मा श्रीं । ह्रेल्लखा ह्रीं ॥ ३०॥ रमा माये श्रीं ह्रीं स्वरूपमन्यत् । यथा – ॐ श्रीं ह्रीं जयलक्ष्मीप्रियाय नित्यप्रमुदितचेतसे लक्ष्मीश्रितार्धदेहाय श्रीं ह्रीं नमः । पद्मभवो ब्रह्मा ॥ ३१ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य जयनृसिंहमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः गायत्रीच्छन्दः श्री नृसिंहो देवता आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - हां हृदयाय नमः, हीं शिरसे स्वाहा, हूँ शिखायै वषट्, हैं कवचाय हुम् हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, हः अस्त्राय फट् ॥ २६-२७ ॥

अब इस **जयनृसिंह मन्त्र का ध्यान** कहते हैं - हे नर और सिंह रूप उभयात्मक शरीर वाले, हे जगत् के एक मात्र बन्धो, हे नीलकण्ठ, हे करुणासागर, हे सामगान से प्रसन्न होने वाले, हे चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि स्वरूप तीन नेत्रों वाले, हे धनुर्धर, हे चन्द्रकला को मस्तक पर धारण करने वाले, हे रमा के स्वामी श्री विष्णो मेरी रक्षा कीजिये ॥ २८ ॥

इस प्रकार ध्यान कर उक्त मन्त्र का ८ लाख की संख्या में जप करना चाहिए । तदनन्तर विधिवत् स्थापित अग्नि में खीर का होम करना चाहिए । इनके पूजा आदि की विधि पूर्ववत् हैं ॥ २६ ॥

अब **लक्ष्मी नृसिंह मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - तार (ॐ), पद्म (श्रीं), हृल्लेखा (ह्रीं), फिर 'जयलक्ष्मी प्रियाय नित्यप्रमुदित' इतने पद के बाद 'चेतसे' कहना

छन्दोतिजगती प्रोक्तं देवः श्रीनरकेसरी ।
बीजं रमाद्रिजाशक्तिः श्रीबीजेन षडङ्गकम् ॥ ३२ ॥
क्षीराब्धौ वसुमुख्यदेवनिकरैरग्रादिसंवेष्टितः
शंखं चक्रगदाम्बुजं निजकरैर्बिभ्रंस्त्रिनेत्रः सितः ।
सर्पाधीशफणातपत्रलसितः पीताम्बरालंकृतो
लक्ष्म्याश्लिष्टकलेवरो नरहरिः स्तान्नीलकण्ठो मुदे ॥ ३३ ॥

अद्रिजा ह्रीं श्रीं बीजेन षड्दीर्घयुक्तेन श्रां श्रीं श्रूमित्यादिना ॥ ३२ ॥ ध्यानमाह – **क्षीराब्धाविति** । क्षीरसमुद्रगतश्वेतद्वीपे वस्वादिदेवौघैरग्रादियथावेष्टितः । अग्रे वसुभिः दक्षे रुद्रैः पश्चिम आदित्यैः वामे विश्वदेवैरित्यर्थः । अधो वामदक्षयोः शंखचक्रे । ऊर्ध्वयोर्गदापद्मे । सितश्चन्द्रवर्ण । शेषफणा एवातपत्रं तेन लसितो दीप्तः । ईदृङ् नृसिंहो मम मुदे हर्षाय स्तात् भूयात् ॥ ३३ ॥ * ॥ ३४–३७ ॥

चाहिए । फिर 'लक्ष्मीश्रितार्द्धदेहाय' कहकर रमा बीज (श्रीं), माया बीज (ह्रीं), इसके अन्त में 'नमः' पद लगाने से ३१ अक्षर का मन्त्र बनता है ॥ ३०-३१ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ श्रीं ह्रीं जयलक्ष्मीप्रियाय नित्यप्रमुदितचेतसे लक्ष्मीश्रितार्द्धदेहाय श्रीं ह्रीं नमः (३१) ॥ ३०-३१ ॥

इस मन्त्र के पद्मभव ऋषि हैं, अतिजगति छन्द है, श्रीनरकेसरी देवता हैं, रमा बीज है तथा अद्रिजा (ह्रीं) शक्ति है । षट् दीर्घ युक्त श्री बीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ३२ ॥

विमर्श - विनियोग - ॐ अस्य श्रीलक्ष्मीनृसिंहमन्त्रस्य पद्मोभवऋषिः अतिजगतीछन्दः श्रीनृकेसरीदेवता श्रीं बीजं ह्रीं शक्तिः आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - श्रां हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, श्रूं शिखायै वषट्, श्रैं कवचाय हुम्, श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, श्रः अस्त्राय फट् ॥ ३२ ॥

अब **लक्ष्मीनृसिंह मन्त्र का ध्यान** कहते हैं - क्षीरसागर में स्थित श्वेत द्वीप में वसु, रुद्र, आदित्य एवं विश्वेदेवों से क्रमशः अग्रभाग में, दाहिनी ओर, पीछे पश्चिम में तथा बाईं ओर से उनसे घिरे हुये, अपने चारों हाथों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण करने वाले, तीन नेत्रों से युक्त, शेषनाग के फण रूप छत्रों से सुशोभित पीताम्बरालंकृत, लक्ष्मी से आलिङ्गित शरीर वाले श्रीनीलकण्ठ नृसिंह भगवान् हमें हर्ष प्रदान करे ॥ ३३ ॥

ऐसा ध्यान कर उक्त मन्त्र का तीन लाख साठ हजार जप करे तदनन्तर घी, शर्करा एवं मधुमिश्रित मालती के फूलों से अग्नि में तीन

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षत्रयं षष्टिसहस्रकम्।
मध्वक्तैर्मल्लिकापुष्पैर्जुहुयाज्जातवेदसि ॥ ३४ ॥
षट्शतं त्रिसहस्राणि पीठे पूर्वोदिते यजेत्।
प्रथमावरणेऽङ्गानि परशक्तिरिमाः पुनः ॥ ३५ ॥
भास्वतीभास्करीचिन्ताद्युतिरुन्मीलिनी तथा।
रमाकान्तीरुचिश्चेति शक्राद्याहेतिसंयुताः ॥ ३६ ॥
इत्थं सिद्धे मनौ मन्त्री निग्रहानुग्रहक्षमः।
मल्लिकाकुसुमैर्होमादिष्टसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ३७ ॥

हजार छः सौ आहुतियाँ प्रदान करे । पूर्वोक्त (द्र० १३. १० श्लोक) वैष्णव पीठ पर इनका भजन करे ॥ ३४-३५ ॥

प्रथमावरण में अङ्गपूजा, द्वितीयावरण में इन शक्तियों का पूजन करना चाहिए । १. भास्वती, २. भास्करी, ३. चिन्ता, ४. द्युति, ५. उन्मीलिनी, ६. रमा, ७. कान्ति और ८. रुचि - ये ८ शक्तियाँ है । तदनन्तर अपने अपने आयुधों के साथ इन्द्रादि दिक्पालों का पूजन करना चाहिए ॥ ३५-३६ ॥

विमर्श - आवरण पूजा - वृत्ताकार कर्णिका, अष्टदल एवं भूपुर युक्त बने यन्त्र पर श्री सहित नृसिंह का पूजन करना चाहिए । सर्वप्रथम केसरों के आग्नेयादि कोणों के मध्य में तथा चारों दिशाओं में षडङ्गपूजा यथा -

श्रां हृदयाय नमः, आग्नेये, श्रीं शिरसे स्वाहा, नैर्ऋत्ये,
श्रृं शिखायै वषट्, वायव्ये, श्रैं कवचाय हुम्, ऐशान्ये,
श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, मध्ये, श्रः अस्त्राय फट्, चतुर्दिक्षु,

फिर अष्टदल में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से भास्वती आदि शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ भास्वत्यै नमः, पूर्वदले, ॐ भास्कर्यै नमः आग्नेयदले,
ॐ चिन्तायै नमः दक्षिणदले, ॐ द्युत्यै नमः, नैर्ऋत्यदले,
ॐ उन्मीलिन्यै नमः, पश्चिमदले, ॐ रमायै नमः वायव्यदले,
ॐ कान्त्यै नमः उत्तरदले, ॐ रुच्यै नमः ईशानदले ।

इसके बाद भूपुर में १४, ७ की भाषा टीका में लिखी गई रीति से दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार आवरण पूजा समाप्त कर मन्त्र पर धूप दीपादि उपचारों से श्रीलक्ष्मीनृसिंह का पूजन कर जप प्रारम्भ करना चाहिए ॥ ३५-३६ ॥

इस प्रकार पुरश्चरण से मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक निग्रह और अनुग्रह में सक्षम हो जाता है । मालती के पुष्पों से इस मन्त्र द्वारा आहुति देने से साधक अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ॥ ३७ ॥

नृसिंहनवनवत्यक्षरमन्त्र तद्विधिकथनम्

प्रणवो नृहरेर्बीजं नमो भगवतेपदम् ।
नरसिंहायतारश्च बीज मत्स्येति कीर्तयेत् ॥ ३८ ॥
रूपायतारो बीजं च कूर्मरूपायवर्णकाः ।
तारबीजे वराहार्णा रूपाय तारबीजके ॥ ३९ ॥
नृसिंहरूपायान्ते तु तारो बीजं च वामनम् ।
रूपाय त्रिस्तारबीजे रामायेतिपदं वदेत् ॥ ४० ॥
तारो बीजं च कृष्णाय तारो बीजं च कल्किने ।
जयद्वयं ततः शालग्रामदीर्घा सनेत्रका ॥ ४१ ॥
वासिने दिव्यसिंहाय स्वयम्भू ङेन्तिमः स्मृतः ।
पुरुषाय नमस्तारो बीजमित्युदितो मनुः ॥ ४२ ॥
हरेर्नवनवत्यर्णो मुनिरत्रिः किलास्य तु ।
छन्दोतिजगती देवो नृकेसर्यवतारवान् ॥ ४३ ॥

मन्त्रान्तरमाह – प्रणव इति । नृहरेर्बीज क्ष्रौं ॥ ३८–३९ ॥ त्रिः त्रि वारं तारबीजे ॥ ४० ॥ सनेत्रादीर्घा इयुतो नः नि ॥ ४१॥ ङेन्तिमश्चतुर्थ्यन्तः ॥ ४२ ॥ नवनवत्यर्ण एकोनशताक्षरः । मन्त्रो यथा – ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय ॐ

अब **दशावतार श्रीनृसिंह मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - प्रणव (ॐ), फिर नृसिंह बीज (क्ष्रौं), फिर 'नमो भगवते नरसिंहाय', फिर प्रणव एवं नृसिंह बीज, उसके बाद १. मत्स्यरूपाय, फिर प्रणव एवं उक्त बीज के बाद २. कूर्मरूपाय, फिर प्रणव एवं उक्त बीज के बाद ३. वराहरूपाय, फिर प्रणव एवं बीज उसके बाद ४. नृसिंहरूपाय, फिर प्रणव एवं बीज के बाद ५. वामन रूपाय, फिर तीन बार प्रणव के साथ तीन बार बीज मन्त्र, उसके बाद ६. रामाय, फिर प्रणव एवं बीज के बाद ७. कृष्णाय, फिर प्रणव एवं बीज के बाद ८. 'कल्किने', फिर दो बार 'जय' पद (जय जय) शालग्राम, सनेत्र दीर्घा (नि), फिर 'वासिने', फिर 'दिव्य सिंहाय' के बाद चतुर्थ्यन्त स्वयम्भू (स्वयंभुवे), फिर 'पुरुषाय नमः', तथा अन्त में पुनः तार (ॐ) और बीज (क्ष्रौं) लगाने से ९९ अक्षरों का दशावतार मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ३८-४२ ॥

विमर्श - दशावतार मन्त्र का स्वरूप - ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय, ॐ क्ष्रौं मत्स्यरूपाय, ॐ क्ष्रौं कूर्मरूपाय, ॐ क्ष्रौ वराहरूपाय, ॐ क्ष्रौ नृसिंहरूपाय, ॐ क्ष्रौ वामनरूपाय, ॐ क्ष्रौ ॐ क्ष्रौं ॐ क्ष्रौं रामाय, ॐ क्ष्रौं कृष्णाय, ॐ क्ष्रौं कल्किने, जय जय शालग्रामनिवासिने दिव्यसिंहाय स्वयंभुवे पुरुषाय नमः ॐ क्ष्रौं ॥ ३८-४२ ॥

९९ अक्षर वाले इस मन्त्र के अत्रि ऋषि हैं, अतिजगति छन्द है तथा अवतारवान् नृसिंह देवता हैं । पूर्वोक्त क्ष्रौं बीज तथा आद्या (ॐ) शक्ति है ॥ ४३-४४ ॥

बीजं पूर्वोदितं शक्तिराद्या बीजेन चागंकम् ।
कृत्वा षड्दीर्घयुक्तेन ध्यायेत्क्षीरोदधिस्थितम् ॥ ४४ ॥
सहस्रचन्द्रप्रतिमोदयालु-
र्लक्ष्मीमुखालोकनलोलनेत्रः ।
दशावतारैः परितः परीतो
नृकेसरी मङ्गलमातनोतु ॥ ४५ ॥
जपोयुतं दशांशेन हवनं पायसेन तु ।
पीठे पूर्वोदिते पूर्वमंगानि परिपूजयेत् ॥ ४६ ॥
दशावतारान्मत्स्यादीन्दिक्पालानायुधान्यपि ।
प्रयोगः पूर्ववत्प्रोक्ताः सर्वसिद्धिप्रदे मनौ ॥ ४७ ॥

क्ष्रौं मत्स्यरूपाय ॐ क्ष्रौं कूर्मरूपाय ॐ क्ष्रौं वराहरूपाय ॐ क्ष्रौं नृसिंहरूपाय ॐ क्ष्रौं वामनरूपाय ॐ क्ष्रौं ॐ क्ष्रौं ॐ क्ष्रौं रामाय ॐ क्ष्रौं कृष्णाय ॐ क्ष्रौं कल्किने जयजय शालग्रामनिवासिने दिव्यसिंहाय स्वयंभुवे पुरुषाय नमः ॐ क्ष्रौं । अवतारवान् दशावतारयुतो नृसिंहो देवता ॥ ४३ ॥ ॐ क्ष्रौं बीजम् ।
आद्येति । ॐ शक्तिः । क्ष्रां क्ष्रीमित्याद्यङ्गम् ॥ ४४ ॥ * ॥ ४५-४७ ॥

षड्दीर्घसहित पूर्वोक्त बीज से षडङ्गन्यास कर क्षीरसागर में स्थित श्रीनृसिंह भगवान् का ध्यान करना चाहिए ॥ ४४ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य दशावतारश्रीनृसिंहमन्त्रस्य अत्रिऋषिः अतिजगतीछन्दः अवतारवान्श्रीनृसिंहो देवता क्ष्रौंबीजं ॐशक्तिः आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ क्ष्रां हृदयाय नमः, ॐ क्ष्रीं शिरसे स्वाहा,
ॐ क्ष्रूं शिखायै वषट्, ॐ क्ष्रैं कवचाय हुम्,
ॐ क्ष्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् ॐ क्ष्रः अस्त्राय फट् ॥ ४४ ॥

अब **दशावतार श्रीनृसिंह मन्त्र का ध्यान** कहते है - अगणित चन्द्र समूहों के समान कान्तिपुञ्ज से युक्त, दयालु स्वभाव वाले, लक्ष्मी का मुख देखने के लिए पुनः पुनः आकुल नेत्रों वाले, चारों ओर से दशावतारों से घिरे हुये भगवान् नृसिंह हमारा मङ्गल करें ॥ ४५ ॥

उक्त मन्त्र का १० हजार की संख्या में जप करना चाहिए । खीर से उसका दशांश होम करना चाहिए । पूर्वोक्त पीठ पर प्रथम अङ्गपूजा, फिर मत्स्यादि दश अवतारों की पूजा, तदनन्तर दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए । सर्वसिद्धिदायक इस मन्त्र के काम्यप्रयोग पूर्वोक्त मन्त्र के समान हैं ॥ ४६-४७ ॥

अब **अभयप्रद श्रीनृसिंह मन्त्र** कहते हैं - तार (ॐ), फिर 'नमो भगवते नरसिंहाय' के बाद हृद (नमः), फिर 'तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख', के बाद

अभयनृसिंहमन्त्रकथनम्

तारो नमो भगवते नरसिंहाय हृच्चते ।
जस्तेजसेआविराविर्भववज्रनखां ततः ॥ ४८ ॥
वज्रदंष्ट्र च कर्मान्ते त्वाशयान् रन्धयद्वयम् ।
तमो ग्रसद्वयं वह्नेः कलत्रमभयं पुनः ॥ ४६ ॥
आत्मन्यन्ते च भूयिष्ठास्तारो बीजं मनुः स्मृतः ।
द्विषष्ट्यवर्णैः शुकः प्रोक्तो मुनिश्छन्दस्तु पूर्ववत् ॥ ५० ॥
अभयो नारसिंहस्तु देवतान्यत्तु पूर्ववत् ।

गोपालदशाक्षरमन्त्रकथनम्

अथ गोपालमनवः प्रोच्यन्ते स्वेष्टसाधकाः ॥ ५१ ॥
गोपीजनपदस्यान्ते वल्लभायाग्निसुन्दरी ।
दशाक्षरो मनुः प्रोक्तो मनोरथफलप्रदः ॥ ५२ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **तार** इति । हृन्नमः ॥ ४८ ॥ वह्नेः कलत्रं स्वाहा ॥ ४६ ॥ बीजं क्ष्रौं । यथा – ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनखवज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस स्वाहा अभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौमिति ॥ ५० ॥ अन्यत्पूजादि ॥ ५१ ॥ गोपालमन्त्रमाह –**गोपीति** । अग्निसुन्दरी स्वाहा । यथा – गोपीजनवल्लभाय स्वाहा ॥ ५२ ॥

'वज्रदंष्ट्रकर्माशयान्', फिर दो बार 'रन्धय' पद (रन्धय रन्धय), फिर 'तमो' के बाद दो बार 'ग्रस' पद (ग्रस ग्रस), फिर वह्निपत्नी (स्वाहा) तथा 'अभयमात्मनि भूयिष्ठा' फिर तार (ॐ) तथा बीज (क्ष्रौं) लगाने से ६२ अक्षरों का अभयप्रद मन्त्र बनता है ॥ ४८-५० ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ नमो भगवते नरसिंहाय, नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्रकर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस स्वाहा अभयभात्मनिभूयिष्ठा ॐ क्ष्रौं (६२) ॥ ४८-५० ॥

इस मन्त्र के शुक ऋषि हैं, देवता अभयनरसिंह हैं, अतिजगती छन्द है तथा न्यास, ध्यान एवं पूजा आदि पूर्वोक्त मन्त्र के समान समझना चाहिए ॥ ५०-५१ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्याभयनरसिंहमन्त्रस्य शुकऋषिरतिजगतीच्छन्दः अभयप्रद-नरसिंहो देवता आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थेजपे विनियोगः। षडङ्गन्यासादि पूर्ववत् है ॥ ५०-५१॥

अब अपना समस्त अभीष्ट सिद्ध करने वाले **श्रीगोपालकृष्ण के मन्त्रों** को कहता हूँ - 'गोपीजन' इस पद के कहने के बाद 'वल्लभाय', फिर अग्निसुन्दरी (स्वाहा) लगाने से मनोवाञ्छित फल देने वाला दश अक्षरों का मन्त्र बनाता हैं ॥ ५१-५३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - गोपीजनवल्लभाय स्वाहा (१०) ॥ ५१-५२ ॥

नारदोऽस्य विराट्कृष्णो मुनिपूर्वाः समीरिताः ।
बीजशक्ती तु विज्ञेये क्रमात्कामानलप्रिये ॥ ५३ ॥

पञ्चाङ्गन्यासवर्णन्यासध्यानकथनम्

आचक्रायहृदाख्यातं विचक्राय शिरोऽपि च ।
सुचक्राय शिखापश्चात्त्रैलोक्यरक्षणं ततः ॥ ५४ ॥
चक्राय कवचं प्रोक्तमसुरान्तकशब्दतः ।
चक्रायास्त्रमिदं कुर्यादङ्गानां पञ्चकं मनोः ॥ ५५ ॥
सर्वाङ्गे त्रिमनुं न्यस्य वर्णन्यासं समाचरेत् ।
मस्तके नेत्रयोः श्रुत्योर्नसोर्वक्त्रे हृदम्बुजे ॥ ५६ ॥
जठरे लिङ्गदेशे च जान्वोः पादयोरपि ।
वर्णांस्तारपुटान्न्यस्येद्बिन्द्वाढ्यान्नमसायुतान् ॥ ५७ ॥

विराट् छन्दः । क्लीं बीजं । स्वाहा शक्तिः ॥ ५३ ॥ पञ्चाङ्गमाह – आ चक्राय हृत् । विचक्राय शिरः । सुचक्राय शिखा । त्रैलोक्यरक्षणचक्राय कवचम् । असुरान्तकचक्राय अस्त्रम् ॥ ५४–५५ ॥ वर्णन्यासमाह – **मस्तक** इति ॥ ५६ ॥ **तारपुटानिति** । ॐ गों ॐ नमः मस्तके, ॐ पीं ॐ नमः नेत्रयोरित्यादि० ॥ ५७ ॥

इस मन्त्र के नारद ऋषि हैं, विराट् छन्द है, श्रीकृष्ण देवता हैं, काम (क्लीं) बीज तथा अनलप्रिया (स्वाहा) शक्ति कही गई हैं ॥ ५३ ॥

विमर्श – विनियोग – अस्य श्रीगोपालमन्त्रस्य नारदऋषिर्विराट्छन्दः श्रीकृष्णो देवता क्लीं बीजं स्वाहा शक्तिरात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ ५३ ॥

अब **पञ्चाङ्गन्यास** कहते हैं – आचक्राय से हृदय, विचक्राय से शिर, सुचक्राय से शिखा, फिर त्रैलोक्यरक्षणचक्राय से कवच, तथा असुरान्तकचक्राय से अस्त्रन्यास करना चाहिए । (पञ्चाङ्गन्यास में नेत्रन्यास वर्जित है) ॥ ५४-५५ ॥

विमर्श – पञ्चाङ्गन्यास विधि – आचक्राय हृदयाय नमः,
विचक्राय शिरसे स्वाहा, सुचक्राय शिखायै वषट्,
त्रैलोक्यरक्षणचक्राय कवचाय हुम्, असुरान्तकचक्राय अस्त्राय फट् ॥ ५४-५५ ॥

मूलमन्त्र को तीन बार पढ़कर तीन बार सर्वाङ्गन्यास करना चाहिए । फिर मस्तक, नेत्र, कान, नासिका, मुख, हृदय, उदर, लिङ्ग, जानु एवं दोनों पैरों में प्रणव संपुटित नमः सहित सानुस्वार मन्त्र के एक एक वर्णो से उक्त दशों स्थानों पर न्यास करना चाहिए ॥ ५६-५७ ॥

विमर्श – वर्णन्यास – ॐ गों ॐ नमः मस्तके, ॐ पीं ॐ नमः नेत्रयोः,

वृन्दारण्यगकल्पपादपतले सद्रत्नपीठेम्बुजे
शोणाभे वसुपत्रके स्थितमजं पीताम्बरालंकृतम्।
जीमूताभमनेकभूषणयुतं गोगोपगोपीवृतं
गोविन्दं स्मरसुन्दरं मुनियुतं वेणुं रणन्तं स्मरेत्॥ ५८॥

पीठपूजाप्रकारकथनम्

एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं दशांशं सरसीरुहैः।
जुहुयात्पूजयेत्पीठे वैष्णवे नन्दनन्दनम्॥ ५६॥
अग्न्यादिकोणेष्वभ्यर्च्य हृदाद्यङ्गचतुष्टयम्।
दिशास्वस्त्रं दलेष्वष्टौ महिषीः परिपूजयेत्॥ ६०॥
रुक्मिणीसत्यभामा च नग्नजित्तनयार्कजा।
मित्रविन्दालक्ष्मणा च जाम्बवत्यासुशीलका॥ ६१॥
महिष्योऽष्टौ सुवर्णाभा विचित्राभरणस्रजः।
दलाग्रे वसुदेवं च देवकीं नन्दगोपतिम्॥ ६२॥

ध्यानमाह – वृन्दावनगत कल्पवृक्षतले मणिपीठे रक्ताष्टपत्रे स्थितं ध्यायेत् । जीमूताभं मेघश्यामं स्मरादपि सुन्दरम्॥ ५८॥ *॥ ५६–६०॥ अर्कजा कालिन्दी॥ ६१॥ * ॥ ६२॥ गोपश्च गोपिकाश्च ताः॥ ६३॥ * ॥ ६४–६७॥

ॐ जं ॐ नमः कर्णयोः ॐ नं ॐ नमः नसोः,
ॐ वं ॐ नमः मुखे, ॐ ल्लं ॐ नमः हृदि,
ॐ भां ॐ नमः जठरे, ॐ यं ॐ नमः लिङ्गे
ॐ स्वां ॐ नमः जान्वोः ॐ हां ॐ नमः पादयोः॥ ५६-५७॥

अब **गोपाल का ध्यान** कहते हैं - वृन्दावन में कल्पवृक्ष के नीचे निर्मित सुन्दर मणिपीठ पर, रक्तवर्ण के अष्टदल कमल पर विराजमान, पीताम्बरालंकृत, बादलों के समान कान्ति वाले, अनेक आभूषणों को धारण किए हुये, गो, गोप एवं गोपियों से घिरे हुये, कामदेव से भी अधिक सुन्दर, मुनिगणों से संयुक्त वंशी बजाते हुये श्रीगोविन्द का स्मरण करना चाहिए ॥ ५८ ॥

इस प्रकार गोपाल का ध्यान कर एक लाख जप करना चाहिए । फिर कमल पुष्पों से उसका दशांश होम करना चाहिए तथा पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर नन्दनन्दन श्रीगोपालकृष्ण का पूजन करना चाहिए ॥ ५६ ॥

आग्नेयादि चार कोणों में हृदय आदि चार अङ्गो की, फिर दिशाओं में अस्त्र का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार पञ्चाङ्ग पूजा कर अष्टदल में गोपाल की ८ महिषियों का पूजन करना चाहिए । १. रुक्मिणी, २. सत्यभामा, ३. नाग्नजिती, ४. कालिन्दी, ५. मित्रविन्दा, ६. लक्ष्मणा, ७. जाम्ववती तथा ८.

यशोदां बलभद्रं च सुभद्रां गोपगोपिकाः ।
इन्द्रादीनपि वज्रादीन् पूजयेत्तदनन्तरम् ॥ ६३ ॥

सुशीला ये आठों श्री गोपाल जी की महिषी हैं, जो सुवर्ण जैसी आभावाली तथा विचित्र आभूषण एवं विचित्र मालाओं से अलंकृत रहती हैं । अष्टदल के अग्रभाग में वसुदेव, देवकी, गोपति श्रीनन्द, यशोदा, बलभद्र, सुभद्रा, गोप एवं गोपियों का पूजन करना चाहिए ॥ ६०-६३ ॥

गोपालपूजनयन्त्रम्

तदनन्तर इन्द्रादि दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए ॥ ६३ ॥

विमर्श - वृत्ताकार कर्णिका, अष्टदल एवं भूपुर सहित गोपाल यन्त्र का निर्माण करना चाहिए ।

पूजा की विधि - सर्वप्रथम १४. ५८ में वर्णित श्रीगोपाल के स्वरूप का ध्यान कर मानसोपचार से पूजा करे। फिर शंख का अर्घ्यपात्र स्थापित कर उक्त मन्त्र पर पूर्वोक्त रीति से पीठ देवताओं एवं पीठ शक्तियों का पूजन करे (द्र० १३. १०) । फिर आसन, ध्यान, आवाहनादि से लेकर पञ्च पुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त धूप, दीपादि उपचारों से गोपालनन्दन का पूजन कर, पुष्पाञ्जलि समर्पित कर, आवरण पूजा की आज्ञा माँगे । सर्वप्रथम केसरों के आग्नेयादि कोणों में पञ्चाङ्गपूजा इस प्रकार करे -
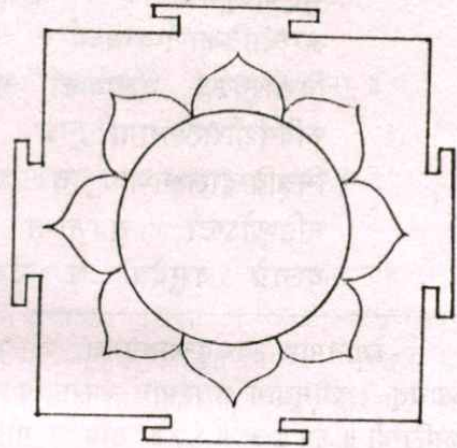
आचक्राय स्वाहा, आग्नेये, विचक्राय स्वाहा नैर्ऋत्ये,
सुचक्राय स्वाहा, वायव्ये, त्रैलोक्यरक्षणचक्राय स्वाहा, ऐशान्ये,
असुरान्तकाचक्राय स्वाहा, चतुर्दिक्षु ।

इसके बाद अष्टदल में पूर्वादि दलों के क्रम से अष्टमहिषियों की यथा -

ॐ रुक्मिण्यै नमः, पूर्वदले, ॐ सत्यभामायै नमः, आग्नेयदले,
ॐ नाग्नजित्यै नमः, दक्षिणदले, ॐ कालिन्द्यै नमः, नैर्ऋत्यदले,
ॐ मित्रविन्दायै नमः, पश्चिमदले, ॐ सुलक्षणायै नमः, वायव्यदले,
ॐ जाम्बवत्यै नमः, उत्तरदले, ॐ सुशीलायै नमः, ईशानदले

तत्पश्चात् पूर्वादि दलों के अग्रभाग में वसुदेव आदि की पूजा करे । यथा -

ॐ वसुदेवाय नमः ॐ देवक्यै नमः, ॐ नन्दाय नमः,
ॐ यशोदायै नमः ॐ बलभद्राय नमः, ॐ सुभद्रायै नमः,
ॐ गोपेभ्यो नमः, ॐ गोपीभ्यो नमः

इत्थं सिद्धे मनौ मन्त्री साधयेत्स्वमनीषितम्।

फलपरत्वेन प्रयोगान्तरकथनम्

गुडूचीशकलैरग्नौ जुहुयाज्ज्वरशान्तये ॥ ६४ ॥
कृष्णं द्वेषं प्रकुर्वन्तं बलदेवस्य रुक्मिणः।
द्यूतासक्तस्य संचिन्त्य गोमयोद्भवगोलकान् ॥ ६५ ॥
जुहुयाद्द्वेषसिद्ध्यर्थं नरयोः सुहृदोर्मिथः।
पिचुमन्दफलोत्पन्नतैलाभ्यक्तैः समिद्वरैः ॥ ६६ ॥
अक्षजैर्जुहुयाद्रात्रावयुतं शत्रुशान्तये।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रमात्मानं संस्मरन्हरिम् ॥ ६७ ॥
मञ्चस्रस्तगतप्राणाकृष्टकंसं रिपुं सुधीः।
शत्रुजन्मर्क्षवृक्षोत्थसमिदि्भरयुतं निशि ॥ ६८ ॥
जुहुयादित्थमुग्रोऽपि सपत्नो निधनं व्रजेत्।
पलाशकुसुमैर्लक्षं विद्यासिद्ध्यै जुहोतु ना ॥ ६९ ॥
तण्डुलैः सितपुष्पाद्यैराज्याक्तैः प्रत्यहं नरः।
हुत्वा सप्तदिनान्ते तद्भस्मभाले च मूर्द्धनि ॥ ७० ॥

मंचात् स्रस्तो गतप्राण आकृष्टश्चासौ कंसश्च तथाभूतं रिपुं स्मरन्। रिपुजन्मनक्षत्रवृक्षसमिद्भिर्जुहुयात्। नक्षत्रवृक्षा उक्ताः ॥ ६८ ॥ * ॥ ६९–७० ॥ तच्च यौवतं युवतिसमूहः पुरुषान् वशयेत् ॥ ७१ ॥ * ॥ ७२–७४ ॥

फिर पूर्ववत् इन्द्रादि दिक्पालों की तथा उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए ॥ ६०-६३ ॥

इस प्रकार के अनुष्ठान से मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक अपने सारे मनोरथों को पूर्ण करे ॥ ६४ ॥

काम्य प्रयोग - ज्वर से मुक्त होने के लिए गुडूची (गिलोय) के टुकड़ों से होम करे ॥ ६४ ॥

दो मित्रों में द्वेष कराने के लिए कृष्णद्वेषी तथा महाजुआरी रुक्म तथा बलभद्र का ध्यान कर गोबर के गोल गोल कण्डो से होम करना चाहिए ॥ ६५-६६ ॥

शत्रु को शान्त करने के लिए नीम के तेल में डुबोई बहेड़े की लकड़ी से रात्रि में १० हजार की संख्या में होम करना चाहिए ॥ ६६-६७ ॥

विद्वान् साधक स्वयं में कृष्ण की भावना कर तथा शत्रु में मञ्च से गिराये गये, चोटी पकड़कर खींचे जाते हुये गतप्राण कंस की भावना करते हुये इस मन्त्र का १० हजार की संख्या में जप करे तथा रात्रि में शत्रु के जन्मनक्षत्र के वृक्ष की समिधाओं से होम करना चाहिए। ऐसा करने से उग्रतम शत्रु भी मर जाता है ॥ ६८-६९ ॥

धारयन्वशयेत्सद्यो यौवतं तच्चपूरुषान् ।
पुष्पं वासोऽञ्जनं वापि ताम्बूलमथ चन्दनम् ॥ ७१ ॥
सहस्रं मनुनाजप्तं दद्याद्यस्मै नराय सः ।
वशमेत्यचिरादेव सपुत्रपाशुबान्धवः ॥ ७२ ॥
वृन्दावनस्थं गायन्तं गोपीभिः संस्मरन्हरिम् ।
अपामार्गसमिद्भिर्यो जुहुयाद्वशयेज्जगत् ॥ ७३ ॥
रासक्रीडागतं कृष्णं ध्यायन्योऽयुतमाजपेत् ।
षण्मासाद्वाञ्छितां कन्यामुद्वहेद् भक्तितत्परः ॥ ७४ ॥
जपेत्सहस्रं ध्यायन्ती या कदम्बस्थितं हरिम् ।
कन्यका वाञ्छितं नाथं मण्डलान्तर्लभेत सा ॥ ७५ ॥
पत्रैः फलैः समिद्भिर्वा बिल्वोत्थैर्मधुसंयुतैः ।
कमलैः शर्करायुक्तैर्होमाल्लक्ष्मीपतिर्भवेत् ॥ ७६ ॥
बहुना किमिहोक्तेन कृष्णाः सर्वार्थदो नृणाम् ।
अथ मन्त्रान्तरं वच्मि गोविन्दस्येष्टदं नृणाम् ॥ ७७ ॥

मण्डलम् एकोनपञ्चाशद् दिनानि तन्मध्ये वाञ्छितं प्रियं प्राप्नोति ॥ ७५ ॥ * ॥ ७६–७७ ॥

विद्या प्राप्ति हेतु पलाश के फूलों से एक लाख आहुतियाँ देनी चाहिए । राई मिश्रित चावल एवं श्वेत पुष्पादि द्वारा लगातार ७ दिन तक हवन कर उसका भस्म मस्तक में लगावे तो वह मनुष्य युवतियों के समूहों को तथा पुरुषों को अपने वश में कर लेता हैं ॥ ७०-७१ ॥

इस मन्त्र से एक हजार बार अभिमन्त्रित कर फूल, वस्त्र, अञ्जन, ताम्बूल या चन्दन जिस व्यक्ति को दिया जाय वह सपुत्र पशु एवं बान्धव सहित शीघ्र ही वशवर्ती हो जाता है ॥ ७१-७२ ॥

जो व्यक्ति वृन्दावन में गोपियों द्वारा गुणगान किए जाने वाले श्रीकृष्ण का स्मरण कर अपामार्ग की समिधाओं से हवन करता है वह सारे जगत् को अपने वश में कर लेता है ॥ ७३ ॥

जो व्यक्ति भक्ति में तत्पर हो रास लीला के मध्य में भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान कर उक्त मन्त्र का १० हजार जप करता है वह ६ महीनों के भीतर अपनी मन चाही कन्या से विवाह करता है ॥ ७४ ॥

जो कन्या कदम्ब वृक्ष पर बैठे श्रीकृष्ण का ध्यान कर प्रतिदिन एक हजार की संख्या में जप करती है वह ४९ दिन के भीतर मनोनुकूल पति प्राप्त करती है॥ ७५॥

मधु सहित विल्व वृक्ष का पत्र, फल या समिधाओं से अथवा शर्करा युक्त

द्वितीयगोपालाष्टवर्णमन्त्र तद्विधिपीठपूजाप्रकारकथनम्

कामो वियद्रेचिकाढ्यः पीतावामाक्षिसंयुता।
चक्रीझिण्टीशमारूढो बकोनन्तान्वितो मरुत्॥ ७८॥
हृदयान्तो मनुश्रेष्ठो वसुवर्णोऽखिलेष्टदः।
मुनिः सम्मोहनाद्योऽस्य नारदः परिकीर्तितः॥ ७९॥
गायत्रीछन्द इत्युक्तं देवस्त्रैलोक्यमोहनः।
कामबीजेन षड्दीर्घयुक्तेनाङ्गं समाचरेत्॥ ८०॥
कल्पानोकहमूलसंस्थितवयो राजोन्नतां सस्थितं
पौष्पं बाणमथेक्षुचापकमले पाशांकुशे बिभ्रतम्।
चक्रंशंखगदे करैरुदधिजा संश्लिष्टदेहं हरिं
नानाभूषणरक्तलेपकुसुमं पीताम्बरं संस्मरेत्॥ ८१॥

मन्त्रान्तरमाह – **काम** इति । कामः क्लीं । वियत् हः रेचिकाढ्यः ऋयुतः हृ । पीता षः वामाक्षिसंयुता ईयुता षी । चक्री कः झिंटीश ए तदारूढः के । वकः शः अनन्तान्वितः । आयुताः शाः । मरुत् यः॥ ७८॥ हृदयं नमः । यथा – क्लीं हृषीकेशाय नमः॥ ७९॥ षडङ्गमाह – **कामेति** । क्लां हृत् क्लीं शिर इत्यादि०॥ ८०॥ ध्यानमाह – **कल्पेति** । कल्पवृक्षमूलस्थित गरुडासन वाणपद्मांकुशशंखा दक्षेषुं ।अन्यान्यन्येषु॥ ८१॥

कमल पुष्पों का होम करने से व्यक्ति धनवान् हो जाता है, इस विषय में विशेष क्या कहें भगवान् गोपालकृष्ण का यह मन्त्र मनुष्यों की सारी कामनायें पूर्ण करता हैं॥ ७६-७७॥

अब मनुष्यों को अभीष्टफलदायक गोविन्द का एक और मन्त्र कहता हूँ -

गोविन्द मन्त्र का उद्धार - काम (क्लीं), रेचिका सहित वियत् (हृ), वामाक्षि (इ), संवृत पीता (षी), झिण्टीश सहित चक्री (के), अनन्त सहित बक (शा), मरुत् (य) तथा अन्त में हृदय 'नमः' लगाने से ८ अक्षर का सर्वाभीष्टप्रद मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ७७-७९ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - क्लीं हृषीकेशाय नमः ॥ ७७-७९ ॥

इस मन्त्र के संमोहन नारद ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा त्रैलोक्यमोहन देवता हैं । षड्दीर्घ सहित काम बीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ७९-८० ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीगोविन्दमन्त्रस्य त्रैलोक्यमोहनाख्य ऋषिर्गायत्री-छन्दः त्रैलोक्यमोहनो देवताऽऽत्मानोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ क्लां हृदयाय नमः, ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा,
ॐ क्लूँ शिखायै वषट्, ॐ क्लैं कवचाय हुम्,
ॐ क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ क्लः अस्त्राय फट् ॥ ७९-८० ॥

एवं ध्यात्वा जपेत्सूर्यलक्षं त्रिमधुरप्लुतैः ।
पलाशपुष्पैर्जुहुयात्तत्सहस्रं हुताशने ॥ ८२ ॥
तर्पयेत्सलिलैस्तावत्पीठे पूर्वोदिते यजेत् ।
पक्षिराजाय ठद्वन्द्वमनेन गरुडार्चनम् ॥ ८३ ॥
मुकुटं शिरसीष्ट्वाथ कर्णयोः कुण्डले यजेत् ।
करेषु चक्राद्यास्त्राणि श्रीवत्सं कौस्तुभं हृदि ॥ ८४ ॥
वनमालां गले श्रोणीदेशे पीताम्बरं श्रियम् ।
वामांगेभ्यर्च्य वह्न्यादिदिग्विदिक्ष्वंगपूजनम् ॥ ८५ ॥
दिक्षु प्रपूज्य चतुरो बाणान्कोणेषु पञ्चमम् ।
लक्ष्म्याद्याः शक्तयः पूज्याः शक्राद्या आयुधान्यपि ॥ ८६ ॥
लक्ष्मीः सरस्वती चापि रतिः प्रीतिश्चतुर्थिका ।
कीर्तिः कान्तिस्तुष्टिपुष्टी इतिलक्ष्म्यादयो मताः ॥ ८७ ॥

सूर्यलक्षं द्वादशलक्षम् ॥ ८२ ॥ ठद्वयं स्वाहा ॥ ८३ ॥ * ॥ ८४–८६ ॥

अब **त्रैलोक्यमोहन का ध्यान** कहते हैं - कल्पवृक्ष के नीचे गरुड़ के ऊंचे कन्धे पर विराजमान, अपने आठों हाथों में क्रमशः पुष्पबाण, इक्षुचाप, कमल, पाश, अंकुश, चक्र, शंख, और गदा धारण किए हुये, लक्ष्मी से आलिङ्गत शरीर वाले, अनेकानेक आभूषणों से विभूषित, रक्त चन्दन, पुष्प एवं पीताम्बरालंकृत श्री गोविन्दगोपाल का ध्यान करना चाहिए ॥ ८१ ॥

इस प्रकार ध्यान कर उक्त मन्त्र का १२ लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर, मधु, घी, शर्करा मिश्रित पलाश पुष्पों से १२ हजार की संख्या में अग्नि में आहुतियाँ देनी चाहिए ॥ ८२ ॥

फिर जल से १२ हजार तर्पण करना चाहिए । पूर्वोक्त पीठ पर पक्षिराजाय स्वाहा मन्त्र से गरुड़ का पूजन करना चाहिए ॥ ८३ ॥

विमर्श - पूर्वोक्त विमलादि पीठ पर शक्तियों का पूजन कर 'पक्षिराजाय स्वाहा' इस पीठ मन्त्र से गरुड़ को स्थापित कर पूजन करे । फिर गरुड़ पर श्रीगोविन्द का आवाहनादि उपचारों से लेकर पुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त विधिवत् पूजन कर पुनः पुष्पाञ्जलि प्रदान कर उनसे आवरण पूजा की आज्ञा ले आवरण पूजा प्रारम्भ करे ॥ ८२-८३ ॥

शिर पर मुकुट का पूजन कर कानों में कुण्डलों का पूजन करना चाहिए । इसी प्रकार हाथों में चक्रादि अस्त्रों का हृदय में श्रीवत्स और कौस्तुभमणि का, गले में वनमाला का तथा कटि में पीताम्बर की पूजा करनी चाहिए ॥ ८४-८५ ॥

वायीं ओर महालक्ष्मी का पूजन कर आग्नेयादि कोणों में, मध्य में तथा दिशाओं में अङ्गपूजा करनी चाहिए । दिशाओं में चार वाणों की तथा कोणों में

विजयापुष्पसंयुक्तैर्जलैः संतर्पयेच्छतम् ।
प्रातः प्रत्यहमेतस्य वाञ्छितं मासतो भवेत् ॥ ८८ ॥

पञ्चम बाण का पूजन करना चाहिए । फिर लक्ष्मी, आदि शक्तियों का, इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए । १. लक्ष्मी, २. सरस्वती, ३. रति, ४. प्रीति, ५. कीर्ति, ६. कान्ति, ७. तुष्टि और ८. पुष्टि - ये आठ उनकी शक्तियाँ कही गई हैं॥ ८५-८७ ॥

विमर्श - आवरण पूजा के लिए वृत्ताकार कर्णिका अष्टदल एवं भूपुर सहित यन्त्र लिखकर पूर्वोक्त विमलादि शक्तियों से युक्त पीठ पर भगवान् के आसनभूत गरुड़ को 'पक्षिराजाय नमः' इस मन्त्र से आवाहन तथा पूजन कर, गोविन्द के मूल मन्त्र से श्रीगोविन्द के विग्रह की भावना कर पूजा करनी चाहिए । फिर उनके शिर आदि अङ्गों में स्थित मुकुटादि का इस प्रकार पूजन करे । यथा - ॐ मुकुटाय नमः, शिरसि, ॐ कुण्डलाभ्यां नमः, कर्णयोः, ॐ शंखाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अंकुशाय नमः, ॐ इक्षुधनुषे नमः, ॐ पुष्पशरेभ्यो नमः, अष्टभुजासु । श्रीवत्साय नमः, कौस्तुभाय नमः, हृदि, वनमालायै नमः, कण्ठे, पीताम्बराय नमः, कटिप्रदेशे, श्रियै नमः, वामाङ्गे,

इसके पश्चात् आग्नेयादि कोणों में मध्य में तथा चतुर्दिक् में षडङ्गपूजा करे ।

क्लां हृदयाय नमः आग्नेये, क्लीं शिरसे स्वाहा नैर्ऋत्ये,
क्लूं शिखायै वषट् वायव्ये, क्लैं कवचाय हुम् ऐशान्ये,
क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट् मध्ये, क्लः अस्त्राय फट् चतुर्दिक्षु,

तदनन्तर पूर्वादि चारों दिशाओं तथा कोणों में पञ्चवाणों की यथा -

द्रां शोषणबाणाय नमः, पूर्वे, द्रीं मोहनबाणाय नमः, दक्षिणे,
क्लीं सन्दीपनबाणाय नमः, पश्चिमे, ब्लूं तापनबाणाय नमः उत्तरे,
सः मादनबाणाय नमः, कोणेषु ।

फिर अष्टदल में पूर्वादि अनुलोम क्रम से लक्ष्मी आदि शक्तियों की यथा -

ॐ लक्ष्म्यै नमः पूर्वदले, ॐ सरस्वत्यै नमः आग्नेयदले,
ॐ रत्यै नमः दक्षिणदले, ॐ प्रीत्यै नमः नैर्ऋत्यदले,
ॐ कीर्त्यै नमः पश्चिमदले, ॐ कान्त्यै नमः वायव्यदले,
ॐ तुष्ट्यै नमः उत्तरदले, ॐ पुष्ट्यै नमः ऐशान्यदले,

इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों की तथा उसके बाहर उनके वज्रादि आयुधों की पूर्ववत् पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार आवरण पूजा करने के पश्चात् पुनः त्रैलोक्यमोहन श्रीगोविन्द का धूप दीपादि उपचारों से पूजन करना चाहिए ॥ ८५-८७ ॥

अब इस मन्त्र से **काम्य प्रयोग** कहते हैं - साधक प्रतिदिन प्रातः काल में

अयुतं तु घृतेनाग्नौ हुत्वा सम्पातजं घृतम् ।
तावज्जप्तं प्रियाकान्तं भोजयेद्वशमेति सः ॥ ८६ ॥

स्त्रीवशीकारिगोपालमन्त्रकथनम्

कामबीजेऽपि विज्ञेयो परिचर्योक्तमन्त्रवत् ।
विशेषात्कामिनीवर्गमोहको मनुनायकः ॥ ६० ॥

गोपालद्वादशाक्षरमन्त्रकथनं तद्विधिश्च

रमाभवानीकन्दर्पः कृष्णायस्मृतिरो युता ।
विन्दायवह्निजायान्तो द्वादशार्णो मनुः स्मृतः ॥ ६१ ॥
मुनिर्ब्रह्मास्य गायत्रीछन्दः कृष्णोऽस्य देवता ।
धरैकचन्द्ररामाब्धिनेत्रार्णैरङ्गमीरितम् ॥ ६२ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **कामेति** । क्लीमिति गोपालमनुः । **परिचर्येति** । तत्पूजोक्ताष्टार्णवदित्यर्थः । अयं स्त्रीवशीकारी ॥ ६० ॥ मन्त्रान्तरमाह - **रमेति** । रमा श्रीं । भवानी ह्रीं । कंदर्पः क्लीं स्मृतिर्गः ओयुता गो । यथा – श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहेति ॥ ६१ ॥ षडङ्गमाह – **धरैकेति** । धरा एकः ॥ ६२ ॥ * ॥ ६३ ॥

विजयापुष्प मिश्रित जल से १०८ बार एक महीना पर्यन्त तर्पण करता है, उसे वाञ्छित फल की प्राप्ति होती है ॥ ८८ ॥

विधिवत् स्थापित अग्नि में इस मन्त्र द्वारा १० हजार आहुतियाँ देवे तथा हुत शेष घृत को प्रोक्षणी पात्र में छोड़ता रहे, पुनः उस संस्रव घृत को १० हजार बार इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर, पत्नी उस घृत को अपने पति को खिला दे, तो ऐसा करने से उसका पति वश में हो जाता है॥ ८६ ॥

'क्लीं' इस एकाक्षर मन्त्र के पूजन आदि की विधि उक्त मन्त्रों के समान है । यह मन्त्र विशेष रूप से स्त्री समुदाय को मोहित करने वाला है॥ ६० ॥

अब **द्वादशाक्षर गोपाल मन्त्र** कहते हैं - रमा (श्रीं), भवानी (ह्रीं), कन्दर्प (क्लीं), फिर 'कृष्णाय', इसके बाद ओ से युक्त स्मृति (गो), फिर 'विन्दाय' और अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) लगाने से १२ अक्षरों का गोपाल मन्त्र बनता है ॥ ६१ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय स्वाहा (१२) ॥ ६१ ॥

इस द्वादशाक्षर मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि, गायत्रीच्छन्द तथा भगवान् श्रीकृष्ण देवता हैं । १, १, १, ३, ४, एवं २ वर्णो से षडङ्गन्यास करना चाहिए । इस मन्त्र की पुरश्चरणादि विधि पूर्ववत् हैं ॥ ६२-६३ ॥

विमर्श - **विनियोग** - अस्य द्वादशार्ण श्रीगोपालमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः गायत्रीछन्दः

उपासनास्य मन्त्रस्य पूर्ववत्परिकीर्त्तिता।
अथ वक्ष्ये षोडशार्णं मनुं लोकविमोहनम् ॥ ६३ ॥

अथ रुक्मिणिवल्लभ मन्त्रः

तारो हृद्भगवतेन्ते रुक्मिणीङेन्तवल्लभः।
द्विठान्तः षोडशार्णोऽयं नारदो मुनिरस्य तु ॥ ६४ ॥
छन्दोनुष्टुब्देवता तु रुक्मिणीवल्लभो हरिः।
एकद्वियुगसप्ताक्षिवर्णैः पञ्चाङ्गमीरितम् ॥ ६५ ॥
चिन्ताश्मयुक्तनिजदोः पिररब्धकान्त-
मालिङ्गितं सजलजेन करेण पत्न्या ।
सौवर्णवेत्रयुतहस्तमनेकभूषं
पीताम्बरं भजत कृष्णमभीष्टसिद्ध्यै ॥ ६६ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **तार** इति । ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहेति ॥ ६४ ॥ पञ्चाङ्गमाह – **एकेति** ॥ ६५ ॥ ध्यानमाह – **चिन्तेति** । चिन्तामणियुतनिजहस्तेनालिंगिता कान्ता येन तम् । सपद्महस्तया पत्न्यालिंगितं । स्वर्णयष्टियुतदक्षकरम् ॥ ६६ ॥

श्रीकृष्णो देवताऽऽत्मनोभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - श्री हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा
क्लीं शिखायै वषट्, कृष्णाय कवचाय हुम्,
गोविन्दाय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्॥ ६२-६३ ॥

अब समस्त लोको को सम्मोहित करने वाले १६ अक्षरों के **रुक्मिणीवल्लभ मन्त्र** को कहता हूँ -

तार (ॐ), हृद् (नमः), फिर 'रुक्मिणी', उसके बाद चतुर्थ्यन्त 'वल्लभ' (वल्लभाय) और अन्त में ठद्वय (स्वाहा) लगाने से १६ अक्षरों वाला मन्त्र निष्पन्न होता है । इस मन्त्र के नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द तथा रुक्मिणीवल्लभ देवता हैं । मन्त्र के १, २, ४, ७, और दो अक्षरों से पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ६३-६५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा ।

विनियोग - अस्य श्रीरुक्मिणीवल्लभमन्त्रस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दः रुक्मिणीवल्लभहरिदेवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

पञ्चाङ्गन्यास - ॐ हृदयाय नमः, नमः शिरसे स्वाहा, भगवते शिखायै वषट्,
रुक्मिणीवल्लभाय कवचाय हुम्, स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ६३-६५ ॥

अब उक्त **षोडशाक्षर मन्त्र का ध्यान** कहते हैं - चिन्तामणि धारण किए

लक्षं जपेद् दशांशेन पद्मैर्होमं समाचरेत् ।
अङ्गैर्नारदवृत्रारिवज्राद्यैः पूजयेद्धरिम् ॥ ६७ ॥
नारदं पर्वतं विष्णुं निशठोद्धवदारुकान् ।
विष्वक्सेनं च शैनेयं दिक्ष्वग्रे विनतासुतम् ॥ ६८ ॥

अङ्गैर्नारदादिभिः । इन्द्रादिभिः वज्रादिभिः ॥ ६७ ॥ * ॥ ६८ ॥

हुये अपने हाथों से अपनी पत्नी रुक्मिणी देवी का आलिङ्गन करते हुये तथा अपने हाथ में कमल धारण की हुई अपनी पत्नी रुक्मिणी देवी से आलिंगित, अपने हाथ में सुर्वण निर्मित यष्टिका (छड़ी) लिए हुये अनेकानेक आभूषणों एवं पीताम्वर से शोभायमान भगवान् श्रीकृष्ण का स्वकीयाभीष्ट सिद्धि हेतु ध्यान करना चाहिए ॥ ६६ ॥

उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए तथा उसके दशांश की संख्या में कमलों से होम करना चाहिए । अङ्गो एवं नारदादि, इन्द्रादि तथा वज्रादि के साथ भगवान् का पूजन करना चाहिए । १. नारद, २. पर्वत, ३. विष्णु, ४. निशठ, ५. उद्धव, ६. दारुक, ७. विष्वक्सेन तथा ८. शैनेय का दिशाओं में तथा गरुड़ का अग्रभाग में पूजन करना चाहिए ॥ ६७-६८ ॥

विमर्श - आवरण पूजा विधि - साधक सर्वप्रथम १४. ६६ में वर्णित रुक्मिणीवल्लभ के स्वरूप का ध्यान करे, फिर मानसोपचार से उनका पूजन कर विधिवत् शंखपात्र में अर्घ्य स्थापित करे । फिर पूर्वोक्त मन्त्रों पर १४. ६ के विमर्श में कही गई रीति से पीठपूजा कर आवाहनादि उपचारों से पुनः भगवान् की विधिवत् पूजा कर, आवरण पूजा की अनुज्ञा लेकर आवरण पूजा प्रारम्भ करे । सर्वप्रथम केशर के आग्नेयादि कोणो में पञ्चाङ्ग पूजा करे । यथा -

ॐ हृदयाय नमः,　　ॐ नमः शिरसे स्वाहा,
ॐ भगवते शिखायै वषट्,　　ॐ रुक्मिणीवल्लभाय कवचाय हुम्,
ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ।

फिर अष्टदलों के पूर्वादि दिशाओं में नारदादि की यथा -

ॐ नारदाय नमः,　　ॐ पर्वताय नमः,　　ॐ विष्णवे नमः,
ॐ निशठाय नमः,　　ॐ उद्धवाय नमः,　　ॐ दारुकाय नमः,
ॐ विष्वक्सेनाय नमः, ॐ शैनेयाय नमः,

तदनन्तर पूर्वोक्त (द्र० १४. ७-१३) विधि से भूपुर में इन्द्रादि दिक्पालों की तथा उसके बाहर उनके वज्रादि आयुधों की पृजा करे ॥ ६७-६८ ॥

अब **अष्टाक्षरी मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - काम (क्लीं), फिर चतुर्थ्यन्त 'गोवल्लभ' (गोवल्लभाय), इसके अन्त में 'स्वाहा' लगाने से अष्टाक्षरी मन्त्र

अष्टाक्षरगोपालमन्त्रः तद्विधिकथनम्

कामो गोवल्लभो ङेन्तः स्वाहान्तोऽष्टाक्षरो मनुः।
गायत्रीकृष्णधातारश्छन्दो देवर्षयो मताः।
वर्णयुग्मैः समस्तेन पञ्चाङ्गविधिरीरितः॥ ६६ ॥
हरिं पञ्चवर्षं व्रजे धावमानं
स्वसौन्दर्यसम्मोहितं स्वर्गयोषम्।
यशोदासुतं स्त्रीगणैर्दृष्टकेलिं
भजे भूषितं भूषणैर्नूपुराद्यैः ॥ १०० ॥
अष्टलक्षं जपेदष्टसहस्रं ब्रह्मवृक्षजैः।
समिद्वरैः प्रजुहुयादङ्गार्चादिग्विदिक्ष्वथ ॥ १०१ ॥
वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः।
रुक्मिणीसत्यभामा च लक्ष्मणाजाम्बवत्यपि ॥ १०२ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **काम** इति । क्लीं गोवल्लभाय स्वाहेति । गायत्री छन्दः कृष्णो देवता । ब्रह्मा ऋषिः । पञ्चाङ्गमाह – **वर्णेति** । क्लीं गो, हृत् । वल्ल, शिरः, । भाय, शिखा । स्वाहा, वर्म । सर्वेणास्त्रम् ॥ ६६ ॥ ध्यानमाह – **पञ्चेति** । निजसौन्दर्य मोहिताप्सरसम् ॥ १००॥ ब्रह्मवृक्षजैः पलाशोत्थैः ॥ १०१ ॥ * ॥ १०२ ॥

बनता है । इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा कृष्ण देवता हैं। मन्त्र के दो दो वर्णों से तथा समस्त मन्त्र से पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ६६॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - क्लीं गोवल्लभाय स्वाहा ।

विनियोग - अस्याष्टाक्षरमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिर्गायत्रीच्छन्दः श्रीकृष्णो परमात्मा देवताऽऽत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

पञ्चाङ्गन्यास - क्लीं गों हृदयाय नमः वल्ल शिरसे स्वाहा
भाय शिखायै वषट् स्वाहा कवचाय हुम्
क्लीं गोवल्लभाय स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ६६ ॥

पाँच वर्ष की आयु वाले, ब्रज में क्रीडा करते हुये अपने सौन्दर्य से अप्सराओं को मोहित करते हुये, तथा ब्रजाङ्गनाओं से देखी जाने वाले क्रीडा वाले, नूपुर आदि आभूषणों से अलंकृत यशोदानन्दन श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥ १०० ॥

इस मन्त्र का ८ लाख जप करना चाहिए तथा घृताक्त पलाश की समिधाओं से ८ हजार आहुतियाँ देनी चाहिए ॥ १०१ ॥

फिर अङ्गपूजा कर दिशाओं में वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध का तथा कोणों में रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा और जाम्बवती का पूजन करना चाहिए ॥ १०२ ॥

संक्रन्दनादयः पूज्या वज्राद्यान्यायुधानि च।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री सम्पदामालयो भवेत्॥ १०३॥

चतुरक्षरः कृष्णमन्त्रः तद्विधिकथनम्

कामसम्पुटितं कृष्णपदं वेदाक्षरो मनुः।
गायत्रीनारदः कृष्णश्छन्दो मुनिरधीश्वरः॥ १०४॥
दीर्घारूढेन कामेन षडङ्गन्यासमाचरेत्।
कल्पद्रुमूलसंरूढपद्मस्थं चिन्तयेद्धरिम्॥ १०५॥

संक्रन्दनादयः इन्द्रादयः ॥ १०३ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **कामेनेति** । क्लीं कृष्ण क्लीमिति वेदाक्षरश्चतुर्वर्णः ॥ १०४ ॥ * ॥ १०५ ॥ ध्यानमाह – **कल्पेति** ।

फिर इन्द्रादि दिक्पालों का तथा उनके बज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए। इस प्रकार पूजन से सिद्धि प्राप्त साधक महान् संपत्तिशाली हो जाता है ॥ १०३ ॥

विमर्श - आवरण पूजा - प्रथम इस मन्त्र के पञ्चाङ्ग कां कर्णिका के मध्य तथा चारों दिशाओं में इस प्रकार पूजा करनी चाहिए । यथा -

क्लीं गो हृदयाय नमः मध्ये, वल्ल शिरसे स्वाहा पूर्वे,
भाय शिखायै वषट् दक्षिणे स्वाहा कवचाय हुम् पश्चिमे,
क्लीं गोवल्लभय स्वाहा उत्तरे ।

पुनः पूर्वादि चारों दिशाओं में वासुदेव आदि की पूजा करे । यथा -

ॐ वासुदेवाय नमः, पूर्वे, ॐ संकर्षणाय नमः, दक्षिणे,
ॐ प्रद्युम्नाय नमः, पश्चिमे, ॐ अनिरुद्धाय नमः, उत्तरे,

पुनः आग्नेयादि कोणो में रुक्मिणी आदि की पूजा करे । यथा -

ॐ रुक्मिण्यै नमः, आग्नेये, ॐ सत्यभामायै नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ लक्ष्मणायै नमः, वायव्ये, ॐ जाम्बवत्यै नमः ऐशान्ये ।

इसके बाद (१४. ७-१३) में प्रदर्शित विधि से भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उसके बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करे॥ १०१-१०३ ॥

काम (क्लीं) से संपुटित 'कृष्ण' पद यह ४ अक्षरों का मन्त्र है । इस मन्त्र के नारद ऋषि, गायत्रीच्छन्द तथा श्रीकृष्ण परमात्मा देवता हैं । षड्दीर्घ सहित काम बीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १०४-१०५ ॥

विमर्श - इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - क्लीं कृष्ण क्लीं ।

विनियोग - अस्य श्रीकृष्णमन्त्रस्य नारदऋषि गायत्रीच्छन्दः श्रीकृष्णपरमात्मा देवताऽऽत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - क्लां हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, क्लूं शिखायै वषट्, क्लैं कवचाय हुम्, क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, क्लः अस्त्राय फट् ॥ १०४-१०५ ॥

कल्पद्रोरतिरमणीयपल्लवेभ्यः
प्रोद्भूतैर्मणिनिकरैः प्रसिक्तमीशम्।
ध्यायेयं कनकनिभांशुके वसानं
भुञ्जानं दधिनवनीतपायसानि ॥ १०६ ॥
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं बिल्वसम्भवैः।
फलैः प्रजुहुयादग्नौ यजेदङ्गानि पूर्ववत् ॥ १०७ ॥
महापद्मं तथा पद्मं शङ्खं मकरकच्छपौ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च निधीन्दिक्षु समर्चयेत् ॥ १०८ ॥
इन्द्रादीन् वज्रपूर्वांश्च प्रयजेत्तदनन्तरम्।
इत्थं जपादिभिः सिद्धो मन्त्रो निधिरिवापरः ॥ १०६ ॥

कल्पद्रोः कल्पवृक्षस्य प्रसिक्तमभिषिक्तम् ॥ १०६ ॥ * ॥ १०७–११० ॥

कल्पवृक्ष के नीचे पद्मदल पर विराजमान श्रीकृष्ण का ध्यान करे । कल्पवृक्ष के अतिरमणीय पल्लवों से होने वाली रत्नवृष्टि से अभिषिक्त तथा सुवर्ण के समान जगमगाते वस्त्र धारण किए हुये, दही, मक्खन और खीर का भोजन करते हुये श्रीकृष्ण परमात्मा का ध्यान करना चाहिए ॥ १०५-१०६ ॥

इस मन्त्र का चार लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर विल्वफलों का अग्नि में उसका दशांश होम करना चाहिए तथा पूर्ववत् अङ्ग पूजन करना चाहिए ॥ १०७ ॥

फिर दिशाओं में महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द एवं नील इन निधियों का पूजन करना चाहिए । फिर इन्द्र आदि दश दिक्पालों का तथा उनके बज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए॥ १०८-१०९ ॥

इस प्रकार के पूजन के बाद किए गये जपादि से मन्त्र सिद्धि प्राप्त कर व्यक्ति निधि संपन्न हो जाता है ॥ १०९ ॥

विमर्श - आवरण पूजा - प्रथम यन्त्र के आग्नेयादि कोणों में मध्य में तथा चारों दिशाओं में षडङ्गपूजा करे । यथा -

क्लां हृदयाय नमः आग्नेये, क्लीं शिरसे स्वाहा, नैर्ऋत्ये,
क्लूं शिखायै वषट्, वायव्ये, क्लैं कवचाय हुम्, ऐशान्ये,
क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, मध्ये, क्लः अस्त्राय फट् चतुर्दिक्षु ।

फिर पूर्वादि दिशाओं में निधियों की पूजा करे -

ॐ महापद्माय नमः पूर्वे, ॐ पद्माय नमः आग्नेये,
ॐ शंखाय नमः दक्षिणे ॐ मकराय नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ कच्छपाय नमः, पश्चिमे ॐ मुकुन्दाय नमः वायव्ये
ॐ कुन्दाय नमः उत्तरे, ॐ नीलाय नमः ऐशान्ये ।

मन्त्रेष्वेषु दशार्णोक्तान्प्रयोगान्विदधीत च ।

पुत्रप्रदकृष्णमन्त्रः तद्विधिवर्णनम्

अथ पुत्रप्रदं वच्मिकृष्णमन्त्रमनुष्टुभम् ॥ ११० ॥
देवकीसुतवर्णान्ते गोविन्दपदमुच्चरेत् ।
वासुदेवपदं प्रोच्य सम्बुद्ध्यन्तं जगत्पतिम् ॥ १११ ॥
देहि मे तनयं प्रोच्य कृष्ण त्वामहमीरयेत् ।
शरणं गत इत्युक्तो मन्त्रो द्वात्रिंशदक्षरः ॥ ११२ ॥
नारदो मुनिरस्योक्तोऽनुष्टुप्छन्दः समीरितम् ।
देवः सुतप्रदः कृष्णः पादैः सर्वेण चाङ्गकम् ॥ ११३ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **देवकीति** । यथा –

देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते ।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ इति ॥ १११–११३ ॥

इसके बाद पूर्वोक्त विधि से इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए ॥ १०९ ॥

दशाक्षर मन्त्र के सन्दर्भ में कहे गये सभी काम्य प्रयोग इस मन्त्र से करने चाहिए ॥ ११० ॥

अब **सन्तानदायक श्रीकृष्ण मन्त्र** कहता हूँ - यह अनुष्टुप् छन्द में इस प्रकार है - प्रथम 'देवकी सुत', इसके बाद 'गोविन्द' पद, फिर 'वासुदेव' पद बोलकर संबुद्ध्यन्त जगत्पति (जगत्पते) ऐसा कहना चाहिए । इसके बाद तीसरे चरण में 'देहि में तनयं', तदनन्तर 'कृष्ण' पद, फिर 'त्वामहं' बोलकर अन्त में 'शरणागतः' ऐसा बोलना चाहिए ॥ ११०-११२ ॥

विमर्श - संतानगोपाल मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते । देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः ॥ ११०-११२ ॥

इस मन्त्र के नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द तथा सुतप्रद श्रीकृष्णदेवता कहे गये हैं । श्लोक के चार पादों में तथा संपूर्ण श्लोकों से पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ११३ ॥

विमर्श - विनियोग - ॐ अस्य सन्तानप्रदमन्त्रस्य नारदऋषिरनुष्टुप्छन्दः सुतप्रद श्रीकृष्णपरमात्मादेवताऽऽत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

पञ्चाङ्गन्यास - देवकीसुत गोविन्द हृदयाय नमः,
वासुदेव जगत्पते शिरसे स्वाहा, देहि मे तनयं कृष्ण शिखायै वषट्
त्वामहं शरणं गतः कवचाय हुम्, देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः अस्त्राय फट् ॥ ११३ ॥

विजयेनयुतोरथस्थितः प्रसमानीय समुद्रमध्यतः।
प्रददत्तनयान्द्विजन्मने स्मरणीयो वसुदेवनन्दनः॥ ११४॥
लक्षं जपोऽयुतं होमस्तिलैर्मधुरसंयुतैः।
अर्चापूर्वोदिता चैवं मन्त्रः पुत्रप्रदो नृणाम्॥ ११५॥

विषहरो गरुडमन्त्रः तद्विधिवर्णनम्

नृसिंहो माधवारूढो लोहितो निगमादिमः।
कृशानुभार्य्या पञ्चार्णो[1] मनुर्विषहरः परः॥ ११६॥
अनन्तपंक्तिपक्षीन्द्रा मुनिश्छन्दश्च देवता।
तारवह्निप्रिये बीजशक्ती मन्त्रस्य कीर्तिते॥ ११७॥

ध्यानमाह – **विजयेनेति** । अर्जुनेन युतोऽम्बुधिमध्यात्तनयानानीय द्विजाय ददत् ध्येयः॥ ११४–११५॥ हरिप्रसङ्गात्तद्वाहनस्य गरुडस्य मन्त्रमाह – **नृसिंह** इति । नृसिंहः क्षः माधवारूढः इयुतः क्षि । लोहितः प । निगमादिमः ॐ । कृशानुभार्या स्वाहा॥ १६॥ * ॥ १७॥

अर्जुन के साथ रथ पर बैठे हुये, हठात् समुद्र में प्रविष्ट हो कर वहाँ से ब्राह्मण पुत्र को ला कर, उसके पिता को समर्पित करते हुये भगवान् वासुदेव का ध्यान करना चाहिए ॥ ११४ ॥

इस मन्त्र का एक लाख जप करे । फिर मधु, घी, और शर्करा मिश्रित तिलों से १० हजार की संख्या में होम करे । इस मन्त्र के जप मे भी पूर्व प्रतिपादित विधि से भगवान् वासुदेव का पूजन करना चाहिए । ऐसा करने से यह मन्त्र मनुष्यों को पुत्र प्रदान करता है ॥ ११५ ॥

अब **विषनाशक गरुड़ मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - माधवारूढ़ नृसिंह (क्षि), फिर लोहित (प), फिर निगमादि (ॐ), फिर अन्त में कृशानुभार्या (स्वाहा) लगाने से विष नाशक मन्त्र बनता है॥ ११६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - क्षिप ॐ स्वाहा (५) ॥ ११६ ॥

उक्त मन्त्र के अनन्त ऋषि, पंक्ति छन्द तथा पक्षीन्द्र गरुड़ देवता कहे गये हैं । तार (ॐ) बीज तथा वह्निप्रिया (स्वाहा) यह शक्ति कही गई है ॥ ११७ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य गरुड़मन्त्रस्य अनन्त ऋषिः पंक्तिच्छन्दः पक्षीन्द्रो गरुड़ देवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ ११७ ॥

---

१. क्षिप ॐ स्वाहेति पञ्चार्णः ।

ज्वलज्वलमहामतिस्वाहाहृदयमीरितम् ।
गरुडेतिपदस्यान्ते चूडाननशुचिप्रिया ॥ ११८ ॥
शिरोमन्त्रो गरुडतः शिखेस्वाहाशिखामनुः ।
गरुडार्णानुदित्वान्ते प्रभञ्जययुगं वदेत् ॥ ११९ ॥
प्रभेदययुगं पश्चाद्वित्रासयविमर्दय ।
प्रत्येकं द्विस्ततः स्वाहाकवचो मनुरीरितः ॥ १२० ॥
उग्ररूपधरान्ते तु सर्वं विषहरेति च ।
भीषयद्वितयं प्रोच्य सर्वं दहदहेति च ॥ १२१ ॥
भस्मीकुरु कुरु स्वाहा नेत्रमन्त्रोऽयमीरितः ।
अप्रतिहतवर्णान्ते बलाप्रतिहतेति च ॥ १२२ ॥
शासनान्ते तथा हुं फट् स्वाहास्त्रमनुरीरितः ।
पादे कटौ हृदि मुखे मूर्ध्नि वर्णान्प्रविन्यसेत् ॥ १२३ ॥

षडङ्गमाह । **ज्वलेत्ति** । ज्वल ज्वल महामति स्वाहा हृत् । गरुडचूडानन स्वाहा शिरः ॥ ११८ ॥ गरुडशिखे स्वाहा शिखा । गरुड प्रभञ्जय प्रभञ्जय प्रभेदय प्रभेदय वित्रासय वित्रासय विमर्दय विमर्दय स्वाहा हुं ॥ ११९–१२० ॥ उग्ररूपधर सर्वविषहर भीषय भीषय सर्वं दह दह भस्मीकुरु कुरु स्वाहा नेत्रम् । अप्रतिहत–बलाप्रतिहतशासन हुं फट् स्वाहा अस्त्रम् । वर्णन्यासमाह – **पाद** इति ॥ १२१–१२३ ॥

अब **इस मन्त्र का षडङ्गन्यास** कहते हैं - 'ज्वल ज्वल महामति स्वाहा' यह हृदय का मन्त्र है । 'गरुड़' के बाद 'चूडानन' एवं शुचिप्रिया (स्वाहा), यह शिर का मन्त्र है । 'गरुड़' के बाद 'शिखे स्वाहा' यह शिखा का मन्त्र है । 'गरुड़' कहकर दो बार 'प्रभञ्जय', दो बार 'प्रभेदय', फिर दो - दो बार 'वित्रासय' एवं 'विमर्दय', और फिर 'स्वाहा' यह कवच का मन्त्र है । 'उग्ररूपधर' के बाद 'सर्व' 'विषहर', दो बार 'भीषय' फिर 'सर्व दहदह' 'भस्मी कुरुकुरु' तथा 'स्वाहा' - यह नेत्र मन्त्र कहा गया है । 'अप्रतिहत' पद के बाद 'बलाप्रतिहत' फिर 'शासन' एवं 'हुम् फट् स्वाहा' यह अस्त्र मन्त्र बतलाया गया है ॥ ११८-१२२ ॥

विमर्श - ज्वलज्वलमहामति स्वाहा हृदयाय नमः, गरुड़ चूडानन स्वाहा शिरसे स्वाहा, गरुड़ शिखे स्वाहा शिखायै वषट्, गरुड़ प्रभञ्जय प्रभञ्जय प्रभेदय प्रभेदय वित्रासय वित्रासय विमर्दय विमर्दय स्वाहा कवचाय हुम्, उग्ररूपधर सर्व विषहर भीषय भीषय सर्वं दह दह भस्मी कुरु कुरु स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्, अप्रतिहत बलाप्रतिहतशासन हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ११८-१२३ ॥

पैर, कटिप्रदेश, हृदय, मुख एवं शिर में मन्त्र के प्रत्येक वर्णो का न्यास करना चाहिए ॥ १२३ ॥

श्रीपक्षिराजगरुड ध्यानम्

तप्तस्वर्णनिभं फणीन्द्रनिकरैः क्लृप्तागंभूषं प्रभुं
स्मर्तॄणां शमयं तमुग्रमखिलं नृणां विषं तत्क्षणात्।
चंच्वग्रप्रचलद्भुजङ्गमभयं पाण्योर्वरं बिभ्रतं
पक्षोच्चारितसामगीतममलं श्रीपक्षिराजं भजे॥ १२४॥

पीठदेवतापूजाप्रकारः

पञ्चलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः।
पूजयेन्मातृकापद्मे गरुडं वेदविग्रहम्॥ १२५॥
चतुर्थ्यन्तः पक्षिराजः स्वाहापीठमनुः स्मृतः।
इष्ट्वाङ्ग कर्णिकामध्ये नागान्पत्रेषु पूजयेत्॥ १२६॥
अनन्तं वासुकिं चापि तृतीयं तक्षकं पुनः।
कर्कोटकं तथा पद्मं महापद्मं समर्चयेत्॥ १२७॥

ध्यानमाह – **तप्तेति** । स्मर्तॄणां नृणामुग्रं विषं तत्क्षणाच्छमयति । दक्षे वरम् । पक्षाभ्यामुच्चारिताः साम्नां बृहद्रथन्तरादीनां गीतयो येन तम् । बृहरद्रथन्तरे पक्षाविति श्रुतेः॥ १२४–१२५॥ पक्षिराजाय स्वाहेति पीठमन्त्रः॥ १२६–१२७॥

विमर्श - यथा - ॐ क्षिं नमः पादयोः, ॐ पं नमः कट्यां, ॐ ॐ नमः हृदि ॐ स्वां नमः मुखे ॐ हां नमः मूर्ध्नि ॥ १२३ ॥

अब उक्त **मन्त्र का ध्यान** कहते हैं - जिनके श्री अङ्गों की कान्ति तपाये गये सुवर्ण के सदृश जगमगा रही है, जिनके अङ्ग, प्रत्यङ्ग सर्प के आभूषणों से व्याप्त हैं, जो स्मरण मात्र से मनुष्यों के विष को शीघ्र हर लेते हैं तथा जिनके चोंच के अग्रभाग में चञ्चल सर्प और हाथों में अभय एवं वर मुद्रा विराज रही है । इस प्रकार के गरुड़ का जो अपने पंखो से सामवेद का गान कर रहे हैं मैं ध्यान करता हूँ ॥ १२४ ॥

इस मन्त्र का पाँच लाख जप करना चाहिए । फिर तिलों से दशांश होम करना चाहिए । मातृका पद्म पर वेदमूर्ति गरुड़ का पूजन करना चाहिए । 'पक्षिराजाय स्वाहा' यह पक्षिराज पीठ मन्त्र है ॥ १२५-१२६ ॥

कर्णिका के मध्य में अङ्ग पूजन, दलों पर आठ नागों का पूजन करे । १. अनन्त, २. वासुकि, ३. तक्षक, ४. कर्कोटक, ५. पद्म, ६. महापद्म, ७. शंखपाल एवं ८. कुलिक - ये आठ नागों के नाम हैं । फिर दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार की अनुष्ठानसिद्धि से साधक स्थावर एवं जङ्गम दोनों प्रकार के विषों को नष्ट कर देता है ॥ १२६-१२८ ॥

विमर्श - आवरण पूजा विधि - सर्व प्रथम कर्णिका के मध्य में षडङ्गपूजा यथा - ज्वलज्वलमहामतिस्वाहा हृदयाय नमः, गरुड़चूडानन स्वाहा शिरसे स्वाहा

शंखपालं च कुलिकमिन्द्रादीन्वज्रसंयुतान् ।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री नाशयेद् गरलद्वयम् ॥ १२८ ॥
विष्णुभक्तिपरो नित्यं यो भजेत्पक्षिनायकम् ।
शत्रून्सर्वान्पराभूय सुखी भोगसमन्वितः ॥ १२९ ॥
जीवेदनेकवर्षाणि सेवितोधरणीधवैः ।
कलेवरान्ते श्रीनाथसायुज्यं लभते तु सः ॥ १३० ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ विष्णूगरुडमन्त्र निरूपणं नाम चतुर्दशस्तरङ्गः ॥ १४ ॥

गरलद्वयं विषद्वयं स्थावरजङ्गमाख्यम् ॥ १२८-१२९ ॥ धरणीधवैर्भूपतिभिः सेवितश्चिरञ्जीवित्वात् तनुक्षये हरिसायुज्यं प्राप्नोति ॥ १३० ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां विष्णुमन्त्रकीर्तनं नाम चतुर्दशस्तरङ्गः ॥ १४ ॥

गरुड़ शिखे स्वाहा, शिखायै वषट्, गरुड़ प्रभञ्जय कवचाय हुम् उग्ररूपधर सर्वविषहर, नेत्रत्रयाय वौषट् अप्रतिहत बलाप्रतिहत० अस्त्राय फट् ।

इसके बाद अष्टदल में पूर्वादि क्रम से अष्ट नागों के नाम मन्त्र से यथा -

ॐ अनन्ताय नमः पूर्वदले, ॐ वासुकाये नमः, आग्नेय दले,
ॐ तक्षकाय नमः, दक्षिणदले, ॐ कर्कोटकाय नमः नैर्ऋत्यदले,
ॐ पद्माय नमः पश्चिम दले, ॐ महापद्माय नमः वायव्यदले,
ॐ पालाय नमः उत्तर दले ॐ कुलिकाय नमः ईशान दले ।

इसके बाद भूपुर में दशो दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों की तथा उसके बाहर उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए ॥ १२६-१२८ ॥

जो व्यक्ति विष्णुभक्ति में सदैव तत्पर हो कर पक्षिराज गरुड़ की उपासना करता है वह सब शत्रुओं को परास्त कर सुख भोग समन्वित सौ वर्षों तक भूपतियों से सेवित हो कर जीवित रहता है । फिर मरने के बाद विष्णु सायुज्य प्राप्त करता है ॥ १३०-१२९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के चतुर्दश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशः तरङ्गः

अथ वक्ष्ये रवेर्मन्त्रं रोगदारिद्र्यनाशनम्।

रोगदारिद्र्यनाशनो रविमन्त्रः

प्रणवो भुवनेशानीमेधारेचिकयान्विता ॥ १ ॥
उमाकान्तोक्षियुक्सर्गीसूर्यआदित्यइन्दिरा ।
दशवर्णो मनुर्देव[1] भागोऽस्य मुनिरीरितः ॥ २ ॥
गायत्रीछन्द उद्दिष्टं देवतादिवसेश्वरः।
मायाबीजं रमाशक्तिर्नियोगोऽभीष्टसिद्धये ॥ ३ ॥

* नौका *

रविमन्त्रमाह – **प्रणव** इति । प्रणव ॐ । भुवनेशानी ह्रीं । मेधा घः रेचिकयान्विता ऋयुता घृ ॥ १ ॥ अक्षियुक् इयुतः सर्गी च उमाकान्तो णः णिः । सूर्य आदित्यः स्वरूपम् । इन्दिरा श्रीं । ॐ ह्रीं घृणिः सूर्य आदित्यः श्रीं ॥ २ ॥ * ॥ ३ ॥

* अरित्र *

अब रोग एवं दरिद्रता को नष्ट करने वाले रवि मन्त्र को कहता हूँ - प्रणव (ॐ), भुवनेश्वरी (ह्रीं), रेचिका सहित मेधा (घृ), अक्षि सहित सर्गी उमाकान्त (णिः), फिर 'सूर्य आदित्यः' पद, इसके अन्त में इन्दिरा (श्रीं), लगाने से दश अक्षरों का दारिद्र्य नाशक मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १-२ ॥

इस मन्त्र के भृगु ऋषि हैं, गायत्री छन्द तथा सूर्य देवता कहे गये हैं । माया (ह्रीं) बीज है, रमा (श्रीं) शक्ति हैं । अभीष्टसिद्धि हेतु इसका विनियोग किया जाता है ॥ २-३ ॥

विमर्श - दारिद्र्य नाशक मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ ह्रीं घृणिः पूर्य आदित्यः श्रीं (१०)।

विनियोग - अस्य श्रीसूर्यमन्त्रस्य भृगुर्ऋषिः गायत्रीछन्दः भगवान् दिवाकरो

---

१. ॐ ह्रीं घृणिः सूर्य आदित्यः श्रीमितिदशार्णः ।

षडङ्गाष्टाङ्गपञ्चाङ्गवर्णमण्डलाग्नीषोमहंसग्रहात्मका अष्टन्यासाः

सत्येतिहृदयं ब्रह्मशिरो विष्णुशिखा स्मृता ।
रुद्रवर्माग्निनेत्रं स्यात् सर्वेत्यस्त्रमुदीरितम् ॥ ४ ॥
तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहान्ता मनवोऽङ्गजाः ।
भूयः षडङ्गं षड्वर्णाः कृत्वान्तःस्थैः शिवाश्रियोः ॥ ५ ॥

षडङ्गमाह – **सत्येति** । सत्यतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा, हृत् । ब्रह्मतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा, शिरः, । विष्णुतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा, शिखेत्यादि० भूय इति । शिवा श्रियोः ह्रीं श्रीं बीजयोर्मध्यस्थितैः षड्वर्णैः पुनः षडङ्गं कृत्वा शेषवर्णैश्चतुर्थ्यन्तैरुदरपृष्ठयोर्न्यसेत् । यथा – ह्रीं ॐ, हृत् । ह्रीं घृं श्रीं, शिरः, ह्रीं णिं श्रीं, शिखा, । ह्रीं सूं श्रीं, वर्म । ह्रीं यं श्रीं, नेत्रम् । ह्रीं आं श्रीं अस्त्रम् । ह्रीं दिं श्रीं उदराय नमः, उदरे । ह्रीं त्यं श्रीं पृष्ठाय नमः,

---

देवता ह्रीं बीजं श्रीं शक्तिरात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ २-३ ॥

(i) अब **षडङ्गन्यास** कहते हैं - सत्य से हृदय, ब्रह्म से शिर, विष्णु से शिखा, रुद्र से कवच, अग्नि से नेत्र तथा सर्व से अस्त्रन्यास करना चाहिए । अङ्गन्यास में कहे गये सभी मन्त्रों के अन्त में 'तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा' इतना और जोड़ देना चाहिए ॥ ४-५ ॥

विमर्श - षडङ्गन्यास विधि -

सत्यतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा हृदयाय नमः,
ब्रह्मतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा,
विष्णुतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट्,
रुद्रतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचाय हुम्,
अग्नितेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्,
सर्वतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ४ ॥

(ii) अब **अष्टाङ्गन्यास** कहते हैं - इसके बाद क्रमशः शिवा (ह्रीं) तथा श्री (श्रीं) के बीच में मन्त्र के ७ वर्णों में एक एक को रखकर पुनः षडङ्गन्यास करना चाहिए । शेष वर्णों से पुनः उसी प्रकार उदर और पृष्ठ में चतुर्थ्यन्त 'नमः' लगाकर उदर पृष्ठ में न्यास करना चाहिए ॥ ५-६ ॥

विमर्श - अष्टाङ्गन्यास विधि - ह्रीं ॐ श्रीं हृदयाय नमः,
ह्रीं घृं श्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रीं णिं श्रीं शिखायै वषट्,
ह्रीं सूं श्रीं कवचाय हुम्, ह्रीं यं श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्,
ह्रीं आं श्रीं अस्त्राय फट्, ह्रीं दिं श्रीं उदराय नमः उदरे,
ह्रीं त्यं श्रीं पृष्ठाय नमः पृष्ठे ॥ ५ ॥

शेषाणैर्जठरे पृष्ठे ङेन्तनाम्ना तयोर्न्यसेत्।
आदित्यं च रविं भानुं भास्करं सूर्यमेव च॥ ६॥
मूर्ध्नि वक्त्रे हृदि शिवे पादयोश्च प्रविन्यसेत्।
सद्यादिपञ्चह्रस्वाद्यांश्चतुर्थीनमसान्वितान् ॥ ७॥
माया रमागतानष्टौ वर्णमूर्धमुखे गले।
हृत्कुक्षिनाभिजंघे च पादयोश्च प्रविन्यसेत्॥ ८॥
स्वरान्सबिन्दूनुच्चार्यं ङेन्तं शीतांशुमण्डलम्।
शिखादिकण्ठपर्यन्तं विन्यसेत् संस्मरन्विधुम्॥ ९॥

पृष्ठे इत्यष्टाङ्गम् । पञ्चमूर्तिन्यासमाह – **आदित्यमिति** ॥ ४–६ ॥ सद्य ओंकारस्तदादिका विलोमेन पञ्चह्रस्वाः ॐ लृं ॠं उं इं अं एतदाद्यान्ङे नमोन्तानादित्यादीन् मूर्धादिषु न्यसेत् । यथा – ॐ लृं आदित्याय नमो मूर्ध्नि । ॐ ॠं रवये नमो मुखे । ॐ उं भानवे नमो हृदि । इं भास्कराय नमो लिङ्गे ॐ अं सूर्याय नमः पादयोः ॥ ७ ॥ वर्णन्यासमाह । **मायेति** । नमोन्वितानित्यपि बोध्यम् । यथा – ॐ ह्रीं यं ॐ श्रीं नमो मूर्ध्नि । ॐ ह्रीं घृं श्रीं नमो मुखे । ॐ ह्रीं णिं श्रीं नमो गले । ॐ ह्रीं सूं श्रीं नमो हृदि । ॐ ह्रीं यं श्रीं नमः कुक्षौ । ॐ ह्रीं आं श्रीं नमो नाभौ । ॐ ह्रीं दिं श्रीं नमो लिङ्गे । ॐ ह्रीं त्यं श्रीं नमः पादयोः ॥ ८ ॥

(iii) अब **पञ्चमूर्तिन्यास** कहते हैं - आदित्य, रवि, भानु, भास्कर एवं सूर्य के नाम के आगे चतुर्थ्यन्त तथा नमः लगाकर तथा आदि में प्रणवयुक्त विलोमक्रम से पञ्च ह्रस्व (लृ ॠं उं इं अं) लगाकर, क्रमशः शिर, मुख, हृदय, लिङ्ग, एवं पैरों में न्यास करे ॥ ६-७ ॥

विमर्श - पञ्चमूर्तिन्यास - ॐ लृं आदित्याय नमः शिरसि,
ॐ ॠं रवये नमः मुखे, ॐ उं भानवे नमः हृदि,
ॐ इं भास्कराय नमः लिङ्गे ॐ अं सूर्याय नमः पादयोः ॥ ६-७ ॥

(iv) अब **वर्णन्यास** कहते हैं - माया (ह्रीं) और रमा (श्रीं) के मध्य में उक्त मन्त्र के आठो वर्णों को एक एक के क्रम से स्थापित कर अन्त मे नमः लगाकर शिर, मुख, कण्ठ, हृदय, कुक्षि, नाभि, जंघा एवं पैरों में इस प्रकार न्यास करना चाहिए ॥ ८ ॥

विमर्श - **वर्णन्यास** की विधि -
ॐ ह्रीं ॐ श्रीं नमः मूर्ध्नि, ॐ ह्रीं घृं श्रीं नमः मुखे,
ॐ ह्रीं णिं श्रीं नमः कण्ठे, ॐ ह्रीं सूं श्री नमः हृदि
ॐ ह्रीं यं नमः कुक्षौ, ॐ ह्रीं आं श्रीं नमः नाभौ
ॐ ह्रीं दिं श्रीं नमः जंघ्योः ॐ ह्रीं त्यं श्रीं नमः पादयोः ॥ ८ ॥

स्पर्शान्सेन्दून्समुच्चार्य ङेन्तं भास्करमण्डलम् ।
कण्ठादिनाभिपर्यन्तं न्यसेद्ध्यायन्प्रभाकरम् ॥ १० ॥
यादीन्सेन्दूश्चतुर्थ्यन्तं वह्निमण्डलमुच्चरन् ।
नाभ्यादिपादपर्यन्तं विन्यसेत्पावकं स्मरन् ॥ ११ ॥
मण्डलत्रयविन्यासः प्रोक्तस्तेजोविधायकः ।
अकारादिठकरान्तवर्णाढ्यं सोमण्डलम् ॥ १२ ॥
ङे नमोन्तं न्यसेन्मन्त्री मूर्द्धादिचरणावधि ।
डकारादिक्षकारान्तं वर्णाद्यं वह्निमण्डलम् ॥ १३ ॥
हृदादिपादपर्यन्तं विन्यसेन्ङेनमोन्वितम् ।
अग्नीषोमात्मको न्यासः कथितः सर्वसिद्धिदः ॥ १४ ॥

मण्डलन्यासमाह – **स्वरानिति** । विधुं चन्द्रस्मरन् चन्द्रमण्डलं न्यसेत् । यथा – अं १६ सोममण्डलाय नमः शिखादिकण्ठान्तम् ॥ ६ ॥ स्पर्शान् कादीन् मान्तान् यथा –कं २५ सूर्यमण्डलाय नमः कण्ठादिनाभ्यन्तम् ॥ १० ॥ यादीनि । यं १० वह्निमण्डलाय नमो नाभ्यादिपादान्तम् ॥ ११ ॥ अग्नीषोमन्यासमाह – **अकारादीति** । अ – ठं २८ सोममण्डलाय नमो मूर्धादिहृदयान्तम् ॥ १२ ॥ ङे इति २३ डं–क्षं २३ वह्निमण्डलाय नमो हृदादिपादान्तम् ॥ १३–१४ ॥

(v) अब **मण्डलन्यास** कहते हैं - चन्द्रमा का स्मरण करते हुये सानुस्वार षोडशस्वरों का उच्चारण कर नमः शब्दान्त चतुर्थ्यन्त **सोममण्डल** का शिखा से कण्ठ पर्यन्त न्यास करना चाहिए ॥ ६ ॥

इसके बाद सूर्य का ध्यान करते हुये सानुस्वार २५ व्यञ्जनों का उच्चारण कर 'नमः' शब्द में चतुर्थ्यन्त **सूर्यमण्डल** का कण्ठ से नाभिपर्यन्त न्यास करना चाहिए ॥ १० ॥

पुनः अग्नि का स्मरण करते हुये सानुस्वार यकारादि १० व्यञ्जन वर्णों का उच्चारण करते हुये नमः शब्दान्त चतुर्थ्यन्त **वह्निण्डल** का नाभि से पैर पर्यन्त न्यास करना चाहिए । इस प्रकार से किया गया मण्डलत्रयन्यास तेजोवर्द्धक बताया गया है ॥ ११-१२ ॥

विमर्श – मण्डलन्यास विधि – अं आं .... अः सोममण्डलाय नमः शिखादि कण्ठान्तम्,
कं खं ...... मं सूर्यमण्डलाय नमः कण्ठादि नाभ्यन्तम्,
यं रं .... क्षं वह्निमण्डलाय नमः नाभ्यादि पादान्तम् ॥ ११-१२ ॥

(vi) अब **अग्नीषोमात्मक न्यास** कहते हैं - सानुस्वार अकारादि ठान्त समुदायात्मक वर्णों के साथ नमः शब्दान्त चतुर्थ्यन्त सोम मण्डल का शिर से पैर पर्यन्त न्यास करना चाहिए । डकारादि क्षान्त सानुस्वार व्यञ्जन वर्णों को प्रारम्भ में लगाकर नमः शब्दान्त चतुर्थ्यन्त वह्निण्डल का हृदय से पैर तक न्यास करना चाहिए। इस प्रकार किया गया अग्नीषोमात्मक न्यास सर्वसिद्धिप्रद माना गया है ॥ १२-१४ ॥

सबिन्दून्मातृकावर्णानजपांपुरुषात्मने ।
नमोन्तं व्यापकं न्यस्येद्धंसन्यासोऽयमीरितः ॥ १५ ॥
अष्टावष्टौ स्वरान्पञ्चपञ्चशः शेषवर्णकान् ।
उक्तादित्यमुखान्यस्येच्चतुर्भिश्च ग्रहान्नव ॥ १६ ॥
आधारलिङ्गनाभीहृत्कण्ठे च मुखमध्यतः ।
भ्रूमध्ये भालदेशे च ब्रह्मरन्ध्रे क्रमान्न्यसेत् ॥ १७ ॥
वदेत्खेचरनामान्ते पदं भगवते नमः ।
हंसाख्यमग्नीषोमाख्यं मण्डलत्रयसंज्ञकम् ।
पुनर्न्यासत्रयं कुर्यान्मूलेन व्यापकं चरेत् ॥ १८ ॥

हंसन्यासमाह – **सबिन्दूनिति** अं – क्षं ५१ हंसः पुरुषात्मने नमः । सर्वाङ्गे ॥ १५॥ ग्रहन्यासमाह – **अष्टावष्टाविति** । अं – ८ आदित्याय भगवते नमः आधारे । लृं ८ सोमाय भगवते नमः लिङ्गे । क – ५ अङ्गारकाय भगवते नमः नाभौ । चं ५ बुधाय भगवते नमः हृदि । टं – ५ बृहस्पतये भगवते नमः गले । तं – ५ शुक्राय भगवते नमः मुखमध्ये । पं – ५ शनैश्चराय भगवते नमः भ्रूमध्ये । यं – ४ राहवे भगवते नमः भाले । शं – ४ केतवे भगवते नमः ब्रह्मरन्ध्रे । खेचराग्रहास्तन्नमान्तो भगवते नमः इति पदं वदेत् । तच्च प्रयोगे लिखितम् । **हंसेति** । ग्रहन्यासानन्तरं हंसाग्नीषोममण्डलसंज्ञं न्यासत्रयं पुनः कुर्यात् । प्रथमकरणाद्वैपरीत्येनेत्यर्थः ॥ १६–१८ ॥

विमर्श – न्यास विधि - अं आं इं ... टं ठं सोममण्डलाय नमः मूर्धादि पादान्तम्, डं ढं णं ... क्षं वह्निण्डलाय नमः हृदयादि पादान्तम् ॥ १३-१४ ॥

(vii) अब **हंसन्यास** कहते हैं - स बिन्दु (सानुस्वार), मातृका वर्ण, फिर अजपा (हंस), पुरुषात्मने और अन्त में नमः लगाकर व्यापक न्यास करना चाहिए । इसे **हंसन्यास** कहा गया है ॥ १५ ॥

विमर्श - यथा - अं आं ई ... क्षं हंस पुरुषात्मने नमः इति सर्वाङ्गे ॥ १५॥

(viii) अब **ग्रहन्यास** कहते हैं - आठ आठ स्वरों से दो ग्रह, पाँच वर्गों से ५ ग्रह तथा शेष ४, ४ वर्णों से २ ग्रहों का भगवते नमोन्त मन्त्रों से क्रमशः आधार, लिङ्ग, नाभि, हृदय कण्ठ, मुख, भ्रूमध्य ललाट एवं ब्रह्मरंध्र में न्यास करना चाहिए ॥ १६-१८ ॥

विमर्श - ग्रहन्यास विधि - अं आं ... ॠं आदित्याय भगवते नमः आधारे,
लृं ॡं ... अः सोमाय भगवते नमः लिङ्गे,
कं खं गं घं डं अंगारकाय भगवते नमः नाभौ,
चं छं जं झं नं बुधाय भगवते नमः हृदि,

ध्यानावरणादिपूजाकथनम्

शोणाम्भोरुहसंस्थितं त्रिनयनं वेदत्रयीविग्रहं
दानाम्भोजयुगाभयानि दधतं हस्तैः प्रवालप्रभम्।
केयूराङ्गदहारकंकणधरं कर्णोल्लसत्कुण्डलं
लोकोत्पत्तिविनाशपालनकरं सूर्यं गुणाब्धिं भजे॥ १६॥
एवं ध्यायञ्जपेल्लक्षदशकं तद्दशांशतः।
पद्मैस्तिलैर्वा जुहुयात्तर्पयेद् भोजयेद् द्विजान्॥ २०॥
प्रयजेत्पीठपूजायां धर्माद्यष्टस्थलेष्विमान्।
प्रभूतं विमलं सारं समाराध्यं विदिक्ष्वथ॥ २१॥

ध्यानमाह - **शोणेति** । रक्तपद्मस्थां वेदत्रयीतनुं । सैषा त्रय्येव विद्यातपतीति श्रुतेः । ऊर्ध्वयोः वा०द० । पद्मद्वयम् । अधो वामदक्षयोर- भयदाने ॥ १६-२० ॥ पीठपूजायां धर्मादिकाष्टस्थानेषु पञ्चैवपूज्याः । प्रभूताय० । विमलाय० । साराय० समाराध्यायेति अग्न्यादिषु संपूज्य परममुखाय नमः इति मध्ये च संपूज्य पुनरनन्तादीन् पूर्ववत् प्रथमतरङ्गोक्तवत्। ते चाष्टावेव । ततः सोममण्डलाय० वह्निमण्डलायेत्यभ्यर्च्य । सूर्यमण्डलाय

टं ठं डं ढं णं बृहस्पतये भगवते नमः कण्ठे,
तं थं दं धं नं शुक्राय भगवते नमः मुखमध्ये,
पं फं बं भं मं शनैश्चराय भगवते नमः, भ्रूमध्ये,
यं रं लं वं राहवे भगवते नमः भाले,
शं षं सं हं केतवे भगवते नमः ब्रह्मरन्ध्रे ॥ १६-१८ ॥

इसके बाद पुनः हंसन्यास, अग्नीषोमात्मकन्यास तथा मण्डलन्यास करके मूलमन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिए ॥ १८ ॥

अब **ध्यान** कहते हैं - रक्त वर्ण के कमल पर आसीन, त्रिनेत्र, वेदत्रयमूर्ति अपने चारों हाथो में क्रमशः दान, कमल, पद्म एवं अभय धारण करने वाले, प्रवाल जैसी कान्ति से युक्त, केयूर, अङ्गद, हार, और कंकण धारण किए हुये, कानों में कुण्डल से उल्लसित सारे जगत् के उत्पत्ति, स्थिति, तथा पालन कर्ता गुणागार भगवान् सूर्य की उपासना करता हूँ ॥ १६ ॥

उक्त प्रकार का ध्यान करते हुये दश लाख जप करना चाहिए । कमल अथवा तिलों से दशांश हवन करना चाहिए । तदनन्तर दशांश तर्पण कर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए ॥ २० ॥

पीठ पूजा करते समय धर्मादि अष्टक के स्थान पर, कोणो में प्रभूत, विमल सार एवं समाराध्य का, तथा मध्य में परमसुख - इन पाँच का पूजन करना चाहिए ॥ २१ ॥

परमादिसुखं मध्येऽनन्तादीन्पूर्ववद्यजेत् ।
सोमाग्निमण्डले प्रोच्य रविमण्डलमर्चयेत् ॥ २२ ॥
ततोऽष्टदिक्षु मध्ये च पीठशक्तीरिमा नव ।
दीप्तासूक्ष्माजयाभद्राविभूतिर्विमला तथा ॥ २३ ॥
अमोघा विद्युता सर्वतोमुखीपीठशक्तयः ।
ह्रस्वत्रयक्लीवहीनस्वरान्वह्नीन्दुसंयुतान् ॥ २४ ॥
बीजानि पीठशक्तीनां तदाद्यास्ताः प्रपूजयेत् ।
ब्रह्मविष्णुशिवात्मान्ते कायसौराययो स्मृतिः ॥ २५ ॥
पीठात्मने नमस्तारपूर्वः पीठमनुः स्मृतः ।
तारसेन्दुवियत्कान्तौ बिन्दुमद् बिन्दुवर्जितौ ॥ २६ ॥
खोल्कायहृदयं मन्वो नवार्णो मूर्तिकल्पने ।
अनेन मूर्तौ क्लृप्तायां यजेत्प्रद्योतनं प्रभुम् ॥ २७ ॥

नम इति यजेत् ॥ २१–२२ ॥ एतानावाह्य एव पीठदेवानिष्ट्वा पीठशक्तीर्यजेत् । ता आह – **दीप्तेति** ॥ २३ ॥ तासां बीजान्याह – **ह्रस्वेति** ह्रस्वत्रयम् अइउ । क्लीबाः ऋ ॠ ऌ ॡ । एतद्व्यतिरक्तारेफबिन्दुयुताः स्वराः क्रमात् तासां बीजानि रां रीं रूं रें रैं रौं रं रः इति । तत्पूर्वास्ता यजेत् । रां दीप्तायै नमः । रीं सूक्ष्मायै इत्यादि० । पीठमन्त्रमाह – **ब्रह्मेति** । स्मृतिर्गः । ॐ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योगपीठात्मने नमः इति । मूर्तिकल्पने मन्त्रमाह – **तार** इति । तार ॐ । सेन्दुर्वियत् हं । बिन्दुयुतस्तद्रहितश्चेति द्वौ कान्तौ खौ खं खः ॥ २४–२६ ॥ खोल्काय स्वरूपं । हृदयं नमः ॥ २७ ॥

फिर पूर्वोक्त (१ तरंग) विधि से अनन्तादि का पूजन करना चाहिए। फिर सोमाग्निमण्डल की अर्चना कर रविमण्डल की अर्चना करे । तदनन्तर आठो दिशाओं में तथा मध्य में १. दीप्ता, २. सूक्ष्मा, ३. जया, ४. भद्रा, ५. विभूति, ६. विमला, ७. अमोघा, ८. विद्युता तथा ९. सर्वतोमुखी इन ९ पीठ शक्तियों का पूजन करे ॥ २२-२४ ॥

ह्रस्वत्रय (अ इ उ) तथा क्लीव (ॠ ॠ ॡ ॡ) स्वरों को छोड़कर शेष स्वरों को अनुस्वार तथा वह्नि (र) से युक्त करने पर इन शक्तियों के (रां रीं रूं रें रैं रों रौं रं रः) बीज मन्त्र बन जाते हैं । इन्हें प्रारम्भ में लगाकर उनका पूजन करना चाहिए ॥ २४-२५ ॥

'ब्रह्मविष्णुशिवात्म' के बाद 'काय सौराय यों', फिर स्मृति 'ग' पीठात्मने नमः, इसके प्रारम्भ में तार (ॐ) लगाने से सूर्य का पीठ मन्त्र बन जाता है ॥ २५-२६॥

तार (ॐ), सेन्दु वियत् (हं), बिन्दु सहित कान्त (खं), बिन्दु रहित कान्ता (ख), फिर 'खोल्काय' फिर हृदय (नमः), इस नवार्ण मन्त्र से सूर्य मूर्ति की

सूर्यपूजनयन्त्रम्

कल्पना कर लेनी चाहिए । तदनन्तर भगवान् सूर्य का पूजन करना चाहिए ॥ २६-२७ ॥

विमर्श - सूर्य पीठ पूजा विधि - सर्वप्रथम १५. १६ में वर्णित सूर्य के स्वरूप का ध्यान कर मानसोपचार से पूजन कर ताम्रपात्र में अर्घ्य स्थापित करे । फिर विधिवत् गुरुपंक्ति का पूजन कर वृत्ताकार कर्णिका, अष्टदल, और भूपुर सहित यन्त्र लिखे । तदनन्तर नाम मन्त्रों से पीठ देवताओं का इस प्रकार पूजन करे । यथा -

प्रथम पीठ मध्ये - ॐ मं मण्डूकाय नमः, ॐ कं कालाग्निरुद्राय नमः
ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ प्रकृत्यै नमः, ॐ कूर्माय नमः,
ॐ शेषाय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः ॐ क्षीरसमुद्राय नमः,
ॐ श्वेतद्वीपाय नमः, ॐ मणिमण्डपाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः,
ॐ मणिवेदिकायै नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः,

फिर आग्नेयादि कोणों में तथा मध्य में प्रभूत आदि की यथा -
प्रभूताय नमः आग्नेये, विमलाय नमः नैर्ऋत्ये, साराय नमः वायव्ये
समाराध्याय नमः, ऐशान्ये, परमसुखाय नमः मध्ये,

पुनः पीठ के मध्य में अनन्तादि नाम मन्त्रों से यथा -
ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः ॐ आनन्दकन्दाय नमः,
ॐ संविन्नालाय नमः, ॐ विकारमयकेसरेभ्यो नमः,
ॐ प्रकृत्यात्मकपत्रेभ्यो नमः, ॐ पञ्चाशद्वर्ण कर्णिकायै नमः,

पुनस्तत्रैव - ॐ उं षोडशकलात्मने सोममण्डलाय नमः,
ॐ रं दशकलात्मने वह्निण्डलाय नमः,
ॐ अं द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय नमः

इसके बाद केशरों में तथा मध्य में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से नव शक्तियों की यथा - रां दीप्तायै नमः, रीं सूक्ष्मायै नमः, रूं जयायै नमः
रें भद्रायै नमः, रैं विभूत्यै नमः रों विमलायै नमः,
रौं अमोघायै नमः रं विद्युतायै नमः रः सर्वतोमुख्यै नमः (मध्ये)

फिर 'ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाय सौराय योगपीठात्मने नमः' मन्त्र से सूर्य को आसन देकर 'ॐ हं खं खखोल्काय नमः' इस मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर

प्राग्वत्षडङ्गं सम्पूज्य दिक्ष्वष्टाङ्गं प्रपूजयेत् ।
आदित्यं मध्यतोऽभ्यर्च्य रविं भानुं च भास्करम् ॥ २८ ॥
सूर्यं दशासु सद्यादिपञ्चह्रस्वादिकान्यजेत् ।
उषां प्रज्ञां प्रभां सन्ध्यामाद्यर्णाद्या विदिक्ष्वपि ॥ २९ ॥
ब्राह्म्याद्या दिग्दलेष्वर्चेन्महालक्ष्मीस्थलेरुणम् ।
सोमं बुधं गुरुं शुक्रं दिक्ष्वाद्यर्णादिकान्यजेत् ॥ ३० ॥
अङ्गारकं शनिं राहुं केतुं कोणेषु पूजयेत् ।
इन्द्राद्यानायुधैर्युक्तान्पार्षदानर्चयेद्रवेः ॥ ३१ ॥

प्राग्वदिति । षडङ्गान्यग्न्यादिषु संपूज्य दिक्ष्वष्टाङ्गानि न्यासोक्तानि यजेत् । आदित्यादीन् पञ्चमध्ये दिक्षु च न्यासवत् ओंकारादिपञ्चह्रस्वाद्यान् **उषामिति** । आद्यर्णाद्याः ऊं उषायै नम इत्यादि० । अष्टम्या मातुः स्थानेऽरुणमेव यजेदित्यर्थः । सों सोमायेत्यादि पूर्ववत् । आद्यर्णाद्याः रविपार्षदेभ्यो नम इत्यादि ॥ २८–३१ ॥

उसी में विधिवत् आवाहनादि उपचारो से जगत्पति सूर्य की पूजा करनी चाहिए । तदनन्तर उनकी आज्ञा लेकर आवरण पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए ॥ २१-२७ ॥

अब **आवरण पूजा** कहते हैं - पूर्वोक्त विधि से केशरों में (द्र० १५. ४) षडङ्गपूजा कर दिशाओं में अष्टाङ्ग (द्र० १५. ५) पूजन करे । आदि में प्रणव, सद्य (लृ), आदि पञ्च ह्रस्व लगाकर आदित्य का मध्य में, तदनन्तर रवि भानु, भास्कर, और सूर्य का पूर्वादि दिशाओं मे पूजन करे ॥ २८-२९ ॥

तदनन्तर विदिशाओं (कोणों) में अपने आद्य वर्ण सहित उषा, प्रज्ञा, प्रभा, और संध्या का पूजन करे । तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं के दलों पर ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की पूजा करे । केवल महालक्ष्मी के स्थान पर अरुण की पूजा करे । पुनः दिशाओं में सोम, बुध, गुरु, और शुक्र का तथा कोणों में मङ्गल, शनि, राहु और केतु का पूजन करना चाहिए । फिर आयुध सहित इन्द्रादि दिक्पालों का तथा रवि के पार्षदों का पूजन करना चाहिए ॥ २९-३१ ॥

विमर्श - संक्षेप में **आवरण पूजा विधि** - सर्वप्रथम केशरों के आग्नेयादि कोणों में, मध्यम में, तथा चारों दिशाओं में षडङ्गपूजा करे । यथा -

ॐ सत्यतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा हृदयाय नमः,
ॐ ब्रह्मतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा,
ॐ विष्णुतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट्,
ॐ रुद्रतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचाय हुम्,
ॐ अग्नितेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्,

ॐ सर्वतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट्,

इसके बाद पूर्वादि दिशाओं में अनुलोम क्रम से अष्टाङ्गपूजा यथा -

ह्रीं ॐ श्रीं हृदयाय नमः, ह्रीं घृं श्रीं शिरसे स्वाहा,
ह्रीं णिं श्रीं शिखायै वषट्, ह्रीं सूं श्रीं कवचाय हुम्,
ह्रीं यँ श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रीं आं श्रीं अस्त्राय फट्,
ह्रीं दिं श्रीं उदराय नमः उदरे, ह्रीं त्यं श्रीं पृष्ठाय नमः पृष्ठे,

तत्पश्चात् मध्य में आदित्य का, पूर्वादि चारों दिशाओं के दलों में रवि आदि का तथा आग्नेयादि कोणों के दलों में उषा आदि का - यथा -

ॐ लृं आदित्याय नमः मध्ये, ॐ ऋ रवये नमः पूर्वदले,
ॐ उं भानवे नमः दक्षिणदले, ॐ इं भास्कराय नमः पश्चिमदले,
ॐ अं सूर्याय नमः उत्तरदले, ॐ उं उषायै नमः आग्नेयदले,
ॐ प्रं प्रज्ञायै नमः नैर्ऋत्यदले, ॐ प्रं प्रभायै नमः वायव्यदले,
ॐ सं सन्ध्यायै नमः ईशानदले ।

फिर अष्टदल के अग्रभाग में पूर्वादि दिशाओं के अनुलोम क्रम से ब्राह्मी आदि का यथा - ॐ ब्राह्म्यै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः,
ॐ कौमार्यै नमः, ॐ वैष्णव्यै नमः ॐ वाराह्यै नमः,
ॐ इन्द्राण्यै नमः, ॐ चामुण्डायै नमः, ॐ अरुणाय नमः

तत्पश्चात् मण्डल के बाहर पूर्वादि दिशाओं में सोमादि चार ग्रहो का तथा आग्नेयादि चार कोणो में अङ्गारकादि ग्रहों का यथा -

ॐ सों सोमाय नमः पूर्वे, ॐ बुं बुधाय नमः दक्षिणे,
ॐ गुं गुरवे नमः पश्चिमे, ॐ शुं शुक्राय नमः उत्तरे,
ॐ अं अङ्गारकाय नमः आग्नेये, ॐ शं शनये नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ रां राहवे नमः वायव्ये, ॐ कें केतवे नमः ऐशान्ये,

तदनन्तर भूपुर में अपनी अपनी दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों का

ॐ लं इन्द्राय नमः, ॐ रं अग्नये नमः, ॐ मं यमाय नमः,
ॐ क्षं निर्ऋतये नमः ॐ वं वरुणाय नमः ॐ यं वायवे नमः
ॐ सं सोमाय नमः, ॐ हं ईशानाय नमः, ॐ आं ब्राह्मणे नमः,
ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः, पुनः रविपार्षदेभ्यो नमः

फिर भूपुर के बाहर बज्रादि आयुधों का - ॐ वं वज्राय नमः,
ॐ शं शक्तये नमः, ॐ दं दण्डाय नमः, ॐ खं खड्गाय नमः,
ॐ पां पाशाय नमः, ॐ अं अंकुशाय नमः, ॐ गं गदायै नमः,
ॐ शूं शूलाय नमः, ॐ पं पद्माय नमः, ॐ चं चक्राय नमः,

इस प्रकार आवरण पूजन कर धूप दीप आदि उपचारों से भगवान् सूर्य का पूजन करे ॥ २८-३१ ॥

इत्थं सिद्धे मनौ दद्याद् भानवेऽर्घ्यं च तद्दिने ।

अर्घ्यदानप्रकारवर्णनम्

प्राणायमं षडङ्गं च कृत्वा न्यासान्पुरोदितान् ॥ ३२ ॥
स्वमण्डले यजेदर्कं मानसैरुपचारकैः ।
सुताम्रघटितं प्रस्थतोयग्राहिमनोहरम् ॥ ३३ ॥
मण्डले स्थापयेत्पात्रं रक्तचन्दनचर्चितम् ।
विलोमां मातृकां मूलं विलोमं च पठञ्जलैः ॥ ३४ ॥
रविमण्डलनिर्गच्छत्सुधाबुद्धिविभावितैः ।
त्रयोदशैव वस्तूनि प्रक्षिपेन्मूलमुच्चरन् ॥ ३५ ॥
तिलतण्डुलदर्भाग्रशालिश्यामाकराजिका ।
हयारिकुसुमं रक्तं चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ ३६ ॥
गोरोचनं कुंकुमं च जयां वेणुयवानिति ।
तज्जले पीठमभ्यर्च्य बाह्यभानुं स्वमण्डलात् ॥ ३७ ॥

अर्घविधिमाह – **प्राणेति** ॥ ३२ ॥ प्रस्थं षोडशपलानि ॥ ३३ ॥ मूलं विलोममेव ॥ ३४ ॥ सूर्यमण्डलान्निर्गच्छद्यदमृतं तद्धिया चिन्तितैः ॥ ३५ ॥ वस्तून्याह – **तिलेति** । रक्तं करवीरम् ॥ ३६ ॥ * ॥ ३७ ॥

इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक को उस दिन भगवान् भास्कर के लिए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार हैं - प्राणायाम षडङ्गन्यास तथा पूर्वोक्त अन्य सभी न्यास कर साधक को अपने मण्डल में भगवान् सूर्य का मानसोपचारों से पूजन करना चाहिए ॥ ३२-३३ ॥

प्रथम सुन्दर ताँबे का पात्र, जिसमें लगभग १ प्रस्थ (६४ तोला) जल अँट सके, उस मनोहर पात्र को रक्त चन्दन से विभूषित कर मण्डल में स्थापित करना चाहिए । फिर विलोम क्रम से मातृकाओं तथा विलोम क्रम से मूल मन्त्र को पढ़ते हुये जल में रवि मण्डल से निकलती हुई अमृत धारा की भावना कर उस ताम्र पात्र में उस जल को भर देना चाहिए ॥ ३३-३५ ॥

फिर मूल मन्त्र पढ़ते हुये उसमें १. तिल, २. तण्डुल, ३. कुशाग्रभाग, ४. शालि (साठी धान), ५. श्यामाक, ६. राई, ७. लाल कनेर का पुष्प, ८. लालचन्दन, ९. श्वेत चन्दन, १०. गोरोचन, ११. कुंकुम, १२. जौ और १३. वेणुजव ये १३ वस्तुयें छोड़नी चाहिए ॥ ३५-३७ ॥

फिर उस जल में पीठ पूजा (द्र० १५. २१ - २७) कर अपने मण्डल से उसमें वाह्य सूर्य का आवाहन कर समस्त उपचारों से उनका पूजन करना

अखिलैरुपचारैस्तं पूजयेदावृतीरपि ।
प्राणायामत्रयं कृत्वा षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥ ३८ ॥
चन्दनेन सुधाबीजं दक्षे करतले न्यसेत् ।
आच्छादयेदर्घपात्रं वामाक्रान्तेन तेन च ॥ ३९ ॥
अष्टोत्तरशतावृत्त्या मूलेनाम्भोभिमन्त्रयेत् ।
पुनः पञ्चोपचारैस्तं पूजयेन्मूलमन्त्रतः ॥ ४० ॥
पाणिभ्यां पात्रमादाय जानुनीभूतले न्यसेत् ।
आमूर्धं पात्रमुद्धृत्यदृष्टिं चाधाय मण्डले ॥ ४१ ॥
मनसा पूजयेत्तत्र भानुमावरणान्वितम् ।
अर्घ्यं दद्याद्रविं ध्यायन्रक्तचन्दनमण्डले ॥ ४२ ॥
ततः पुष्पाञ्जलिं दद्यान्मण्डलस्थाय भानवे ।
अष्टोत्तरशतं मूलं जपेदासनसंस्थितः ॥ ४३ ॥
प्रत्यर्कं प्रातरेवं यो दद्यादर्घ्यं विवस्वते ।
लक्ष्मीयशः सुतान्विद्यामैश्वर्यं सोऽधिगच्छति ॥ ४४ ॥
गायत्र्युपासनासक्तः सन्ध्यावन्दनतत्परः ।
दशवर्णं जपन्विप्रो नैव दुःखमवाप्नुयात् ॥ ४५ ॥

वेणुयवान् वंशोत्पन्नयवान् ॥ ३८ ॥ सुधाबीजं वमिति । तेन दक्षकरेण ॥ ३९–४५ ॥

चाहिए । तदनन्तर ३ बार प्राणायाम कर षडङ्गन्यास करे ॥ ३७-३८ ॥

चन्दन से सुधाबीज (वं) का दाहिने हाथ पर न्यास करे । बायें हाथ में अर्घ्यपात्र लेकर दाहिने हाथ से उसे ढंक कर १०८ बार मूलमन्त्र से उस जल को अभिमन्त्रित कर पुनः मूलमन्त्र से पञ्चोपचार पूजन करे ॥ ३९-४० ॥

फिर अर्घ्य पात्र को दोनो होथों में लेकर घुटनों के बल पृथ्वी पर बैठ कर पात्र को शिर पर्यन्त ऊँचा उठाकर रविमण्डल में अपनी दृष्टि लगाकर आवरण सहित सूर्य का ध्यान कर मानसोपचारों से सूर्य का पूजन करे ॥ ४१-४२ ॥

फिर रक्त चन्दन से विभूषित मण्डल में सूर्य नारायण को अर्घ्य प्रदान करे । तत्पश्चात् मण्डल में स्थित सूर्य को पुष्पाञ्जलि समर्पित कर आसन पर बैठकर एक सौ आठ बार मूल मन्त्र का जप करे ॥ ४२-४३ ॥

प्रतिदिन प्रातः काल के समय जो व्यक्ति इस विधि से सूर्य नारायण को अर्घ्य देता है वह लक्ष्मी, यश, पुत्र, विद्या, और ऐश्वर्य से पूर्ण हो जाता है ॥ ४४ ॥

गायत्री की निरन्तर उपासना करने वाला, सन्ध्यावन्दन में तत्पर और इस दशाक्षर मन्त्र का जप करने वाला ब्राह्मण कभी दुःखी नहीं होता ॥ ४५ ॥

सुतधनप्रदो मङ्गलमन्त्रस्तद्विधिवर्णनम्

अथ वच्मि धरासूनुमन्त्रं सुतधनप्रदम् ।
तारो वियद्दीर्घं बिन्दुयुक्तं चन्द्रांकितं पुनः ॥ ४६ ॥
भृगुर्विसर्गीचण्डीशौ क्रमाद्रात्रीशसर्गिणौ ।
षड्वर्णो[1] मनुराख्यातोऽभीष्टदायी ऋणापहः ॥ ४७ ॥
मुनिर्विरूपागायत्रीं छन्दो देवो धरात्मजः ।
षड्भिर्वर्णैः षडङ्गानि मनोः कुर्वीत साधकः ॥ ४८ ॥
जपाभं शिवस्वेदजं हस्तपद्मै–
र्गदाशूलशक्तीर्वरं धारयन्तम् ।
अवन्तीसमुत्थं सुमेषासनस्थं
धरानन्दनं रक्तवस्त्रं समीडे ॥ ४६ ॥

मङ्गलमन्त्रमाह – **तार** इति । तार ॐ । वियत् हः दीर्घबिन्दुयुतं हाम् । पुनस्तदेव वियत् चद्रांकितं हं ॥ ४६ ॥ विसर्गी भृगुः सः । रात्रीशसर्गिणौ बिन्दुयुतौ विसर्गयुतौ चण्डीशौ खौ – खं खः ॥ ४७ ॥ धरात्मजो भौमः ॥ ४८ ॥ देवताध्यानमाह – **जपाभमिति** । शूलवरौ दक्षयोः अन्ययोरितरे ॥ ४६ ॥

अब **पुत्र और धनदायक मङ्गल के मन्त्र का उद्धार** कहता हूँ -

तार (ॐ), दीर्घ बिन्दु सहित वियत् (हां), फिर चन्द्रांकित वियत् (हं), विसर्गी भृगु (स), फिर रात्रीश और विसर्ग सहित दो चण्डीश (ख), अर्थात् खं खः यह ६ अक्षरों वाला अभीष्टफलदायक तथा ऋणनाशक मङ्गल का मन्त्र कहा गया है - **विमर्श - मन्त्र का स्वरूप** ॐ हां हंसः खं खः ॥ ४६-४७ ॥

इस मन्त्र के विरूपा मुनि हैं, गायत्री छन्द है तथा धरात्मज (मङ्गल) देवता हैं । साधक को मन्त्र के ६ वर्णों से क्रमशः एक एक द्वारा षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ४८ ॥

विमर्श - विनियोग विधि - अस्य श्रीमङ्गलमन्त्रस्य विरूपाऋषिर्गायत्रीच्छन्दः धरात्मजो मङ्गलदेवताऽऽत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ हृदयाय नमः, हां शिरसे स्वाहा, हं शिखायै वषट्, सः कवचाय हुम् खं नेत्रत्रयाय वौषट् खः अस्त्रांय फट्॥ ४८ ॥

अब इस **मन्त्र का ध्यान** कहते हैं - शिव के स्वेद से उत्पन्न जिन मङ्गल के शरीर की कान्ति जपा कुसुम के समान है, जो अपने चारों हस्तकमलों में क्रमशः गदा, शूल, शक्ति और वरमुद्रा धारण किए हुये हैं, अवन्तिका देश में

---

१. ॐ हां हं सः खं खः ।

रसलक्षं जपो होमः समिद्भिः खदिरस्य च।
शैवे पीठे यजेद् भौमं प्रागङ्गानि प्रपूजयेत् ॥ २८ ॥
एकविंशतिकोष्ठेषु मङ्गलादीन्प्रपूजयेत्।
तद्बहिः ककुभां नाथान्कुलिशादींस्ततोर्चयेत् ॥ २९ ॥
इत्थं जपादिभिः सिद्धं स्वेष्टसिद्धौ प्रयोजयेत्।

रसलक्षं षड्लक्षम् । शैवे पीठे मृत्युञ्जयोक्ते ॥ ५० ॥ ककुभां नाथानिन्द्रादीन् । कुलिशादीन् वज्रादीन् ॥ ५१ ॥ * ॥ ५२ ॥

उत्पन्न, मनोहर मेष पर सवार, रक्त वस्त्र पहने हुये, ऐसे भूमिपुत्र मङ्गल की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ४९ ॥

भौमपूजनयन्त्रम्

उक्त मन्त्र का ६ लाख जप करना चाहिए तथा खैर की लकड़ी से उसका दशांश होम करना चाहिए । शैव-पीठ पर भौम की पूजा करनी चाहिए और सर्वप्रथम अङ्गपूजा करनी चाहिए ॥ ५० ॥

तदनन्तर २१ कोष्ठों में बने यन्त्र पर मङ्गल के भिन्न भिन्न नामों से पूजा करनी चाहिए । फिर उसके बाहर इन्द्रादि दश दिक्पालों की तथा उनके बज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार से मन्त्र सिद्ध कर अपने काम्य प्रयोगों में इसका उपयोग करना चाहिए ॥ ५१-५२ ॥

विमर्श - पीठ पूजा विधि - साधक को २१ कोष्ठात्मक त्रिकोण और उसके भूपुर का निर्माण करना चाहिए। उसी पर मङ्गल का पूजन करना चाहिए । श्लोक १५. ४९ में वर्णित मङ्गल के स्वरूप का ध्यान कर, मानसोपचार से पूजन कर, विधिवत् अर्घ्य स्थापित करे । फिर 'आधारशक्तये नमः' से 'ह्रीं ज्ञानात्मने नमः' पर्यन्त सामान्य पीठ पूजा के मन्त्रों से पीठ देवताओं का पूजन करे । फिर पूर्वादि आठ दिशाओं में तथा मध्य में वामादि ९ शक्तियों का इस प्रकार पूजन करे -

ॐ वामायै नमः पूर्वे, ॐ ज्येष्ठायै नमः आग्नेये,
ॐ रौद्र्यै नमः दक्षिणे ॐ काल्यै नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ कलविकरण्यै नमः पश्चिमे, ॐ बलविकरण्यै नमः वायव्ये
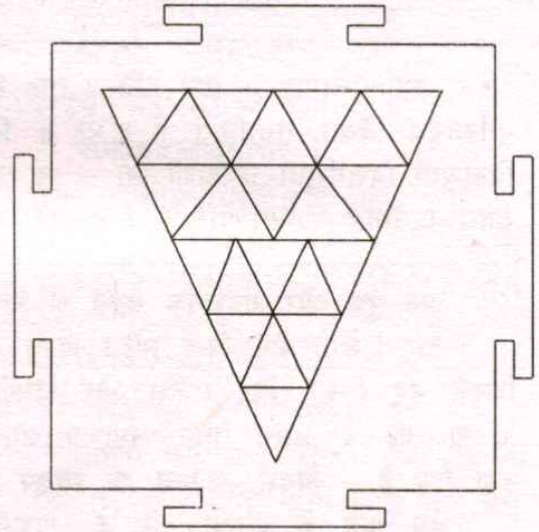
पुत्रप्राप्तिकरं भौमव्रतम्

नारीपुत्रमभीप्सन्ती भौमाहे तद्व्रतं चरेत् ॥ ५२ ॥
मार्गशीर्षेथ वैशाखे तस्यारम्भः प्रशस्यते ।
अरुणोदयवेलायामुत्थाय शुचिविग्रहा ॥ ५३ ॥

भौमव्रतमाह – **मार्गेति** । शुचिविग्रहाशरीरचिन्तानिवर्तनानन्तरं प्रक्षालित–पाणिपादमुखा ॥ ५३–५४ ॥

ॐ बलप्रमथिन्यै नमः उत्तरे ॐ सर्वभूतदमन्यै नमः ऐशान्ये,
ॐ मनोन्मन्यै नमः मध्ये (द्र० १६. २२-२४) ।

फिर 'ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्तानन्ताय योगपीठात्मने नमः' (द्र० १६. २५) इस मन्त्र से मन्त्र पर आसन देकर, मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर, ध्यान आदि उपचारों से पुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त विधिवत् मङ्गल देवता का पूजन करना चाहिए । इसके बाद आवरण की अनुज्ञा ले आवरण पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए ।

आवरण पूजा - प्रथम आग्नेयादि कोणों में मध्य में तथा चारों दिशाओं में यथा - ॐ हृदयाय नमः, आग्नेये, हां शिरसे स्वाहा, नैर्ऋत्ये,
हं शिखायै वषट्, वायव्ये, सः कवचाय हुं, ऐशान्ये,
खं नेत्रत्रयाय वौषट्, मध्ये, खः अस्त्राय फट्, चतुर्दिक्षु ।

इसके बाद त्रिकोणान्तर्गत २१ कोष्ठकों में मङ्गल के नाम मन्त्रों से यथा -
ॐ मङ्गलाय नमः ॐ भूमिपुत्राय नमः, ॐ ऋणहर्त्रे नमः,
ॐ धनप्रदाय नमः, ॐ स्थिरासनाय नमः ॐ महाकायाय नमः,
ॐ सर्वकर्मावरोधकाय नमः ॐ लोहिताय नमः, ॐ लोहिताक्षाय नमः,
ॐ सामगानां कृपाकराय नमः ॐ धरात्मजाय नमः, ॐ कुजाय नमः,
ॐ भौमाय नमः, ॐ भूतिदाय नमः, ॐ भूमिनन्दनाय नमः,
ॐ अङ्गारकाय नमः, ॐ यमाय नमः ॐ सर्वरोगापहारकाय नमः,
ॐ वृष्टिकर्त्रे नमः, ॐ वृष्टिहर्त्रे नमः, ॐ सर्वकामफलप्रदाय नमः,

फिर त्रिकोण के बाहर भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों की तथा उसके बाहर उनके बज्रादि आयुधों की पूजा करना चाहिए । इस प्रकार धूप, दीप आदि उपचारों से मङ्गल का पूजन सम्पन्न करना चाहिये ॥ ५०-५२ ॥

अब **पुत्रदायक भौमव्रत** कहते हैं - पुत्र चाहने वाली स्त्री को मङ्गलवार का व्रत करना चाहिए । मार्गशीर्ष अथवा वैशाख से इस व्रत का आरम्भ श्रेयस्कर माना गया हैं ॥ ५२-५३ ॥

अरुणोदय काल में उठकर हाथ मुह धोकर मौन हो कर अपामार्ग की दातून से मुख प्रक्षालन करना चाहिए । तदनन्तर नदी आदि के जल में स्नान

दन्तान् धावेदपामार्गसमिधामौनसेविनी ।
नद्यादिसलिले स्नात्वा धारयेद्रक्तवाससी ॥ ५४ ॥
नैवेद्यकुसुमालेपान्रक्तान्सम्पाद्य संयता ।
विधिज्ञं विप्रमाहूय भौममर्चेत्तदाज्ञया ॥ ५५ ॥
रक्तगोगोमयालिप्तं देशे पीठनिषेविणी ।
मङ्गलादीनि नामानि स्वप्रतीकेषु विन्यसेत् ॥ ५६ ॥
मङ्गलं विन्यसेदंघ्र्योर्भूमिपुत्रं तु जानुनोः ।
ऊर्ध्वोश्च ऋणहर्तारं कटिदेशे धनप्रदम् ॥ ५७ ॥
स्थिरासनं गुह्यदेशे महाकायमथोरसि ।
वामबाहौ ततो न्यस्येत्सर्वकर्मावरोधकम् ॥ ५८ ॥
लोहितं दक्षिणे बाहौ लोहिताक्षं गले न्यसेत् ।
वदने विन्यसेत्साध्वीं सामगानां कृपाकरम् ॥ ५९ ॥
धरात्मजं नसोरक्ष्णोः कुजं भौमं ललाटतः ।
भूतिदं तु भ्रूवोर्मध्ये मस्तके भूमिनन्दनम् ॥ ६० ॥
अङ्गारकं शिखादेशे सर्वाङ्गे विन्यसेद्यमम् ।
ततो बाहुद्वये न्यस्येत्सर्वरोगापहारकम् ॥ ६१ ॥

स्वप्रतीकेषु निजाङ्गेषु ॥ ५५–५६ ॥ न्यासमेवाह । **मङ्गलमिति** । ॐ मङ्गलाय नमः पादयोः इत्यादि० ॥ ५७–६८ ॥

कर दो रक्त वस्त्र, एक पहनने के लिए दूसरा उत्तरीय के लिए धारण करना चाहिए । तदनन्तर लाल पुष्प, लाल नैवेद्य, लाल आलेपनादि एकत्रित कर विधिवेत्ता ब्राह्मण बुला कर उसकी आज्ञा से मङ्गल देवता की अर्चना करनी चाहिए ॥ ५३-५५ ॥

लाल वर्ण वाली गौ के गोबर से लिपे पुते शुचि स्थान पर लाल रङ्ग के आसन पर बैठकर अपने शरीर पर मङ्गल आदि नामों का न्यास (द्र० १५. ५१) इस प्रकार करना चाहिए । दोनो पैरों में मङ्गल का, दोनो जानु में भूमिपुत्र का, दोनों ऊरु प्रदेश में ऋणहर्ता का, कटि में धनप्रद का, स्थिरासन का गुह्यप्रदेश में तथा महाकाय का हृद्देश में न्यास करना चाहिए ॥ ५६-५८ ॥

तदनन्तर सर्वकर्मावरोधक का बायें हाथ में, लोहित का दाहिने हाथ में, लोहिताक्ष का कण्ठ में न्यास करना चाहिए । फिर साध्वी स्त्री को मुख में सामगानकृपाकर का, नासिका में धरात्मज का, नेत्रों में कुज का, ललाट में भौम का, भ्रूमध्य में भूतिदायक का, मस्तक में भूमिनन्दन का, शिखाप्रदेश में अङ्गारक का, तदनन्तर सर्वाङ्ग में यम का न्यास करना चाहिए । फिर दोनों हाथों में

मूर्द्धादिपादपर्यन्तं वृष्टिकर्तारमङ्गके ।
विन्यसेद्वृष्टिहर्तारं मूर्धान्तं चरणादितः ॥ ६२ ॥
दिक्षु प्रविन्यसेदन्त्यं सर्वकामफलप्रदम् ।
आरं वक्रं भूमिजं च नाभौ वक्षसि मूर्द्धनि ॥ ६३ ॥
एवं न्यस्तशरीरोसौ ध्यायेद्धरणिनन्दनम् ।
अर्घं संस्थाप्य विधिवत्पूजयेदुपचारकैः ॥ ६४ ॥
एकविंशतिकोष्ठाढ्ये त्रिकोणे ताम्रपात्रगे ।
आवाह्य धरणीपुत्रं शोणैः पुष्पैश्च चन्दनैः ॥ ६५ ॥
अङ्गानि पूजयेत्प्राग्वदेकविंशतिकोष्ठके ।
मङ्गलादींस्त्रिकोणेषु वक्रमारं च भूमिजम् ॥ ६६ ॥

सर्वरोगापहारक का, शिर से पैर तक वृष्टिकर्ता का, पैरों से शिर तक वृष्टिहर्ता का तथा दिशाओं में २१ वें सर्वकामफलप्रद का न्यास करना चाहिए । फिर आर का नाभि स्थान में, वक्र का वक्षःस्थल में तथा भूमिज का मूर्द्धा में न्यास करना चाहिए ॥ ५६-६३ ॥

विमर्श – न्यास विधिः – ॐ मङ्गलाय नमः, पादयोः,
ॐ भूमिपुत्राय नमः, जानुनोः,
ॐ ऋणहर्त्रे नमः,
ॐ धनप्रदाय नमः, कटिप्रदेशे,
ॐ स्थिरासनाय नमः, गुह्ये,
ॐ महाकायाय नमः, उरसि,
ॐ सर्वकामावरोधकाय नमः वामबाहौ,
ॐ लोहिताय नमः, दक्षिणबाहौ,
ॐ लोहिताक्षाय नमः, कण्ठेः,
ॐ सामगानां कृपाकराय नमः, गुह्ये,
ॐ धरात्मजाय नमः, नसोः,
ॐ कुजाय नमः, नेत्रोः,
ॐ भौमाय नमः, ललाटे,
ॐ भूतिदाय नमः, भ्रूमध्ये,
ॐ भूमिनन्दाय नमः, मस्तके,
ॐ अङ्गारकाय नमः, शिखाप्रदेशे,
ॐ यमाय नमः, सर्वाङ्गे,
ॐ सर्वरोगापहारकाय नमः, हस्तद्वये,
ॐ वृष्टिकर्त्रे नमः, मूर्धादिपादान्तम्,
ॐ वृष्टिहर्त्रे नमः, पाददिमूर्धान्तम्,
ॐ सर्वकामफलप्रदाय नमः, दिक्षु,
ततश्च ॐ आराय नमः, नाभौ,
ॐ वक्राय नमः, वक्षःस्थले,
ॐ भूमिजाय नमः, मूर्ध्नि ॥ ५६-६३ ॥

अब **पूजा विधि** कहते हैं – इस प्रकार नाम मन्त्रों का शरीर पर न्यास कर साध्वी मङ्गल का ध्यान करे, तथा अर्घ्य स्थापित कर विविध उपचारों से उनका पूजन भी करे । उसकी **विधि** इस प्रकार है – २१ कोष्ठात्मक त्रिकोण युक्त ताम्रपात्र पर लाल पुष्पों से मङ्गल देव का आवाहन करे । लाल पुष्प एवं रक्त चन्दनादि से प्रथम उनके अक्षरों को पूजन करे । फिर २१ कोष्टकों में मङ्गल के २१ नामों का, फिर त्रिकोण में वक्र, आर और भूमिज का पूजन

ब्राह्म्याद्यामातृकाबाह्ये शक्रादीनायुधान्यपि ।
धूपदीपौ विधायाथ गोधूमान्नं निवेदयेत् ॥ ६७ ॥
जलपूर्णे ताम्रपत्रे गन्धपुष्पाक्षतान्विते ।
फलं निधाय मन्त्राभ्यां भौमायार्घ्यं निवेदयेत् ॥ ६८ ॥
भूमिपुत्रमहातेजः स्वेदोद्भवपिनाकिनः ।
सुतार्थिनी प्रपन्ना त्वां गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ६९ ॥
रक्तप्रवालसंकाश जपाकुसुमसन्निभ ।
महीसुत महाबाहो गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ७० ॥
एकविंशतिकृत्वोऽथ प्रणमेत्पूर्वनामभिः ।
प्रदक्षिणा विधातव्यास्तावत्यो वसुधात्मजे ॥ ७१ ॥
खदिराङ्गारकेनाथ कुर्याद्रेखात्रिकं समम् ।
वामपादेन मन्त्राभ्यामेताभ्यां तत्प्रमार्जयेत् ॥ ७२ ॥

रेखामार्जनमन्त्रकथनम्

दुःखदौर्भाग्यनाशाय पुत्रसन्तानहेतवे ।
कृतरेखात्रयं वामपादेनैतत्प्रमार्ज्म्यहम् ॥ ७३ ॥

अर्घ्यमन्त्रमाह – **भूमिपुत्रेति** ॥ ६९–७० ॥ पूर्वनामभिर्मङ्गलाद्यैः ॥ ७१–७२ ॥

करना चाहिए । त्रिकोण के बाहर ब्राह्मी आदि मातृकाओं का, इन्द्रादि दश दिक्पालों का, फिर उनके बज्रादि आयुधों का धूप, दीपादि तथा गोधूम निर्मित वस्तुओं का नैवेद्य निवेदित कर पूजा करनी चाहिए ॥ ६४-६७ ॥

इस प्रकार पूजनोपरान्त भूमिपुत्र को इस प्रकार अर्घ्य दान देवे । ताम्र पात्र में जल भर कर उसमें गन्ध, पुष्प और अक्षत तथा फल डालकर -

'भूमिपुत्र महातेजः स्वेदोद्भवपिनाकिनः ।
सुतार्थिनी प्रपन्ना त्वां गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥'
'रक्तप्रवालसंकाश जपाकुसुमसन्निभ ।
महीसुत महाबाहो गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥'

इन दो मन्त्रों से मङ्गल को अर्घ्य निवेदित करे ॥ ६८-७० ॥

इस प्रकार अर्घ्यदान दे कर पूर्वोक्त (द्र० १५. ५६-६२) २१ नामों में चतुर्थ्यन्त विभक्ति तथा अन्त में 'नमः' लगाकर २१ बार उन्हे प्रणाम कर उतनी ही प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥ ७१ ॥

फिर खैर की लकड़ी के अङ्गारे से तीन रेखायें समान रूप में खींचनी चाहिए । और उसे -

ऋणदुःखविनाशाय मनोऽभीष्टार्थसिद्धये ।
मार्जयाम्यसितारेखास्तिस्रो जन्मत्रयोद्भवाः ॥ ७४ ॥
ततः पुष्पाञ्जलिकरा स्तुवीत धरणीसुतम् ।
ध्यायन्ती चरणाम्भोजं पूजासाङ्गत्वसिद्धये ॥ ७५ ॥

स्तुतिकथनम्

धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्तेजः समप्रभम् ।
कुमारं शक्तिहस्तं च मङ्गलं प्रणमाम्यहम् ॥ ७६ ॥
ऋणहर्त्रे नमस्तुभ्यं दुःखदारिद्र्यनाशिने ।
नभसि द्योतमानाय सर्वकल्याणकारिणे ॥ ७७ ॥
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः ।
सुखं यान्ति यतस्तस्मै नमो धरणिसूनवे ॥ ७८ ॥
यो वक्रगतिमापन्नो नृणां दुःखं प्रयच्छति ।
पूजितः सुखसौभाग्यं तस्मै क्ष्मासूनवे नमः ॥ ७९ ॥

रेखामार्जनमन्त्रमाह – **दुःखेति** ॥ ७३–७५ ॥ स्तुतिमाह – **धरणीति** ॥ ७६ ॥ * ॥ ७७–८१ ॥

'दुःखदौर्भाग्यनाशाय पुत्रसन्तानहेतवे ।
कृतं रेखात्रयं वामपादेनैतत् प्रमार्ज्म्यहम् ॥
ऋणदुःखविनाशाय मनोऽभीष्टार्थसिद्धये ।
मार्जयाम्यसितारेखास्तिस्रो जन्मत्रयोद्भवाः ॥'

इन दो मन्त्रों को पढ़कर बायें पैर से मिटा देना चाहिए ॥ ७२-७४ ॥

तदनन्तर वह साध्वी स्त्री हाथों में पुष्पाञ्जलि लेकर पूजा की साङ्गतासिद्धि के लिए मङ्गल के चरणों का ध्यान कर 'धरणीगर्भसंभूतं' से 'धनं यशः' पर्यन्त ५ श्लोकों से प्रार्थना करे ॥ ७५ ॥

भूमि के गर्भ से उत्पन्न - बिजली के तेज के समान जगमगाते सदैव कुमारावस्था में रहने वाले, शक्ति धारण करने वाले मङ्गल को मैं प्रणाम करती हूँ ॥ ७६ ॥

ऋण को नष्ट करने वाले प्रभो! आप को नमस्कार हैं । दुःख एवं दारिद्र्य के नाशक आकाश में देदीप्यमान सबका कल्याण करने वाले आप मङ्गल को नमस्कार हैं ॥ ७७ ॥

जिनकी कृपा प्राप्त कर देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस एवं नाग सुखी हो जाते हैं उन भूमिपुत्र को हमारा नमस्कार है ॥ ७८ ॥

प्रसादं कुरु मे नाथ मङ्गलप्रदमङ्गल ।
मेषवाहनरुद्रात्मन् पुत्रान्देहि धनं यशः ॥ ८० ॥
एवं संस्तूय सम्पूज्य गृह्णीयाद्ब्राह्मणाशिषः ।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा भुञ्जीतान्नं निवेदितम् ॥ ८१ ॥
प्रति भौमदिने कुर्यादेवं सम्वत्सरावधि ।
तिलैस्संजुहुयाद्धोमं शतार्द्धं भोजयेद्द्विजान् ॥ ८२ ॥
माहेयमूर्तिंसौवर्णीमाचार्याय निवेदयेत् ।
मण्डलस्थो घटेभ्यर्च्य सुतसौभाग्यसिद्धये ॥ ८३ ॥
एवं व्रतपरा नारी प्राप्नुयात्सुभगान् सुतान् ।
धनाप्त्यै ऋणनाशाय व्रतं कुर्यात्पुमानपि ॥ ८४ ॥
अग्निर्मूर्द्धत्यपि मनुं वैदिकं ब्राह्मणो जपेत् ।
तथाङ्गारकगायत्रीं सर्वाभीष्टस्य सिद्धये ॥ ८५ ॥

उद्यापनमाह – तिलैरिति ॥ ८२ ॥ मण्डलस्थ इति । सर्वतोभद्रमण्डले कुम्भं संस्थाप्य तत्र भौममूर्तिसौवर्णीं मङ्गलप्रतिमां संपूज्याचार्याय दद्यात् ॥ ८३–८७ ॥

जो वक्रगति होने पर समस्त जनों को दुःख प्रदान करते है तथा पूजित होने पर सुख सौभाग्य प्रदान करते हैं उन धरापुत्र को नमस्कार है ॥ ७६ ॥

हे मङ्गलप्रद मङ्गल, हे नाथ, हे रुद्रात्मन्, हे मेष वाहन, मुझ पर प्रसन्न होइये तथा पुत्र, धन, एवं यश प्रदान कीजिये ॥ ८० ॥

इस प्रकार मङ्गल की पूजा तथा प्रार्थना करने के बाद ब्राह्मण का आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिए । इसके बाद गुरु को दक्षिणा देकर भोग लगाये गये नैवेद्य का स्वयं भक्षण करना चाहिए ॥ ८१ ॥

इस व्रत को निरन्तर एक वर्ष पर्यन्त प्रति मङ्गलवार को अनुष्ठित करना चाहिए । उसके बाद तिलों से होम करना चाहिए तथा ५० ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । गोलाकार चौके पर सुत एवं सौभाग्यादि प्राप्ति के लिए कलश स्थापित कर उस पर सुवर्णमयी ताम्र प्रतिमा का पूजन कर आचार्य को दान करना चाहिए । ऐसा करने से व्रत परायणा साध्वी स्त्री सौभाग्यशाली पुत्रों को प्राप्त करती है । धन प्राप्ति एवं ऋण के अपाकरण के लिए पुरुषों को भी यह व्रत करना चाहिए ॥ ८२-८४ ॥

अब मङ्गल का वैदिक मन्त्र एवं उनकी गायत्री कहते हैं –

ब्राह्मण को मङ्गल ग्रह की शान्ति के लिए 'अग्निर्मूर्धादिवः' इस मन्त्र का जप करना चाहिए तथा समस्त अभीष्ट सिद्धि हेतु अङ्गारक गायत्री का जप करना चाहिए ॥ ८५ ॥

अङ्गारकगायत्रीकथनम्

अङ्गारकायशब्दान्ते[1] विद्महेपदमुच्चरेत् ।
शक्तिहस्ताय च पदं धीमहीति ततो वदेत् ॥ ८६ ॥
तन्नो भौमः प्रचोवर्णान्दयादिति च कीर्तयेत् ।
एषाङ्गारकगायत्री जप्ताभीष्टप्रदायिनी ॥ ८७ ॥
माहेयोपासनं प्रोक्तं गुरुमन्त्र उदीर्यते ।

गुरुमन्त्रस्तद्विधिकथनं च

खड्गीशौ भारभूतिस्थौ तत्राद्यः क्रूरसंयुतः ॥ ८८ ॥
नभो भृगुर्लोहितस्थो हरिर्वायुर्भगान्वितः ।
हृदयान्तोऽष्टवर्णोऽयं मनुर्ब्रह्मामुनिः स्मृतः ॥ ८९ ॥
छन्दोनुष्टुप्सुराचार्यो देवताबीजमादिमम् ।
वराभ्यां दीर्घयुक्ताभ्यां षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥ ९० ॥

गुरुमन्त्रमाह – **खड्गीशाविति** । खड्गीशौ द्वौ बकारौ भारभूतिस्थौ ऋवर्णस्थौ । तयोराद्यः क्रूरेण बिन्दुनायुतः ॥ ८८ ॥ नभो हः । लोहितस्थो भृगुः पकारस्थः सकारः स्प । हरिस्तकारः भगान्वितो वायुः एयुतो यः ये । हृदयं नमः । यथा – बं बृहस्पतये नमः इति ॥ ८९ ॥ आदिमं बृमिति बीजम् । षडङ्गमाह – **वराभ्यामिति** । ब्रां हृत् ब्रीं शिर इत्यादि० ॥ ९० ॥

'अङ्गारकाय' इस पद के बाद 'विद्महे', फिर 'शक्तिहस्ताय' बोलकर 'धीमहि' बोलना चाहिए । फिर 'तन्नो भौमः प्रचोदयात्' यह बोलना चाहिए । यह अङ्गारक गायत्री जप करने पर अभीष्ट फल देती है ॥ ८६-८७ ॥

विमर्श - वैदिक मन्त्र - ॐ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्यामयम् अपां रेतांसि जिन्वति । **गायत्री** - ॐ अङ्गारकाय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि । तन्नो भौमः प्रचोदयात् ॥ ८६-८७ ॥

यहाँ तक हमने मङ्गल ग्रह की उपासना कही । अब **गुरु (बृहस्पति) मन्त्र का उद्धार** कहता हूँ -

भारभूतिस्थ दो ऋकार वर्ण से युक्त खड्गीशौ, दो वकार जिसमें प्रथम क्रूर से युक्त अर्थात् बृं बृ, इसके बाद नभ (ह), फिर लोहतस्थ भृगु पकार से युक्त सकार (स्प), फिर हरि (त), भगान्वित वायु (ये) और अन्त में हृदय लगाने से ८ अक्षरों का गुरु मन्त्र बनता है ।

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप निम्न है - बृं बृहस्पतये नमः ॥ ८८-८९ ॥

---

1. अङ्गारकाय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि । तन्नो भौमः प्रचोदयात् ।

रत्नाष्टापदवस्त्रराशिममलं दक्षात्किरन्तं–
करादासीनं विपणौ करनिदधतं रत्नादिराशौपरम् ।
पीतालेपनपुष्पवस्त्रमखिलालंकारसम्भूषितं
विद्यासागरपारगं सुरगुरुं वन्दे सुवर्णप्रभम् ॥ ६१ ॥
जपित्वाशीतिसाहस्त्रं हुत्वान्नेन घृतेन वा ।
धर्माधर्मादिपीठे तं पूजयेदङ्गदिग्भवैः ॥ ६२ ॥

ध्यानमाह – **रत्नेति** । दक्षहस्ताद्रत्नहेमवस्त्रराशीन्निक्षिपन्तम् । वामकरं रत्नादिसमूहे आरोपयन्तम् ॥ ६१ ॥ धर्माधर्मादिपीठे इति । पीठशक्तयो भवन्तीत्यर्थः ॥ ६२–६४ ॥

इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है तथा सुराचार्य बृहस्पति देवता हैं । आद्य बृं बीज है । षड् दीर्घ युक्त वकार रकार से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ६० ॥

विनियोग – अस्य श्रीबृहस्पतिमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिरनुष्टुप्छन्दः सुराचार्यो बृहस्पतिर्देवता बृं बीजमात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

न्यास - व्रां हृदयाय नमः व्रीं शिरसे स्वाहा, व्रूं शिखायै वषट्
व्रैं कवचाय हुम्, व्रौ नेत्रत्रयाय वौषट्, व्रः अस्त्राय फट् ॥ ६० ॥

अब **बृहस्पति का ध्यान** कहते हैं - अपने दाहिने हाथ से रत्न, सुवर्ण तथा वस्त्रों की राशि देते हुये तथा बायें हाथ को रत्नादि राशियों पर रखते हुये, बाजार में आसीन, पीले वस्त्र तथा पीला आलेपन लगाये हुये, पीत पुष्प एवं पीत आभूषणों से अलंकृत, विद्यारूपी सागर के पारगामी विद्वान् और सुवर्ण की तरह देदीप्यमान् देवगुरु की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ६१ ॥

उक्त मन्त्र का ८० हजार जप करे । फिर उसका दशांश अन्न अथवा घी से होम करे । धर्म और अधर्मादि शक्तियों वाले पीठ पर अङ्ग एवं दिक्पालों के साथ उनका पूजन करे ॥ ६२ ॥

विमर्श – पूजा विधि – (१५. ६१) श्लोक में वर्णित गुरु के स्वरूप का ध्यान कर मानसोपचार से उनका पूजन कर अर्घ्य स्थापित करे । सामान्य पूजा पद्धति के अनुसार 'आधारशक्तये नमः' इत्यादि मन्त्रों से पीठ देवताओं का पूजन करे । फिर धर्मादि पीठ शक्तियों का इस प्रकार पूजन करे - यथा

ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः,
ॐ ऐश्वर्याय नमः, ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः,
ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः ।

फिर पीठ मन्त्र से आसन देकर पीठ पर आवाहनादि उपचारों से पञ्च पुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त बृहस्पति की पूजा कर आवरण पूजा करनी चाहिए ।

सिद्धे मनौ प्रकुर्वीत प्रयोगानिष्टसिद्धये।
हरिद्राकुंकुमैर्हुत्वा घृताक्तैर्दिवसत्रयम् ॥ ६३ ॥
स विंशतिशतं मन्त्री वासांसि लभते मणीन्।
शत्रुरोगादिपीडासु स्वजने कलहोद्भवे ॥ ६४ ॥
जुहुयात्पिप्पलोत्थाभिः समिद्भिस्तन्निवृत्तये।

शुक्रमन्त्रस्तद्विधिश्च

तारो वस्त्रं भगीसूर्यो देहि शुक्राय ठद्वयम् ॥ ६५ ॥
एकादशाक्षरो मन्त्रो हेमवस्त्रप्रदायकः।
ब्रह्मामुनिर्विराट्छन्दो देवतादैत्यपूजितः ॥ ६६ ॥
बीजं तारोग्निभार्या तु शक्तिरस्य प्रकीर्तिता।
एकद्विचन्द्रनेत्राग्निनेत्रवर्णैः षडङ्गकम्।
मन्त्रवर्णैस्तु कृत्वाथ ध्यायेद्विद्यानिधिं सितम् ॥ ६७ ॥

शुक्रमन्त्रमाह – तार इति । तार ॐ । वस्त्रस्वरूपम् । भगी सूर्यः एयुतो मः मे । देहि शुक्राय स्वरूपम् । ठद्वयं स्वाहा ॥ ६४–६७ ॥

प्रथम आग्नेयादि कोणों में मध्य में, तथा चारों दिशाओं में षडङ्ग मन्त्रों से षडङ्गपूजा करनी चाहिए । यथा -

व्रां हृदयाय नमः, व्रीं शिरसे स्वाहा, व्रूं शिखायै वषट्,
व्रैं कवचाय हुम्, व्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, व्रः अस्त्राय फट्

इसके बाद पूर्ववत् दिक्पालों का एवं उनके आयुधों का पूजन कर पुनः धूप दीपादि उपचारों से बृहस्पति की विधिवत् पूजा करनी चाहिए ॥ ६२ ॥

इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेने पर अभीष्टसिद्धि हेतु काम्य प्रयोग करना चाहिए । घी मिश्रित हल्दी एवं कुंकुम से निरन्तर ३ दिन पर्यन्त १२० की संख्या में आहुतियाँ देने से साधक मणियों और वस्त्रों को प्राप्त करता है ॥ ६३-६४ ॥

शत्रु तथा रोग जन्य पीड़ा होने पर अथवा स्वजनों में कलह होने पर उसकी निवृत्ति के लिए पीपल की समिधाओं से होम करना चाहिए ॥ ६४-६५ ॥

अब **शुक्र मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - तार (ॐ), फिर 'वस्त्रं पद', फिर भगी सूर्य (ए से युक्त म) अर्थात् 'मे' के बाद 'देहि शुक्राय' पद, फिर ठ द्वय (स्वाहा) लगाने से ११ अक्षरों का सुवर्ण एवं वस्त्रदायक शुक्र मन्त्र निष्पन्न हो जाता है ॥ ६५-६६ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ वस्त्रं में देहि शुक्राय स्वाहा' ॥ ६५-६६ ॥

इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं । विराट् छन्द है । दैत्य पूजित शुक्र देवता है ।

श्वेताम्भोजनिषण्णमापणतटे श्वेताम्बरालेपनं
नित्यं भक्तजनाय सम्प्रददतं वासोमणीन्हाटकम्।
वामेनैवकरेण दक्षिणकरे व्याख्यानमुद्रांङ्कितं
शुक्रं दैत्यवरार्चितं स्मितमुखं वन्देसिताङ्गप्रभम् ॥ ९८ ॥
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयाद् घृतैः।
यजेद्धर्मादिपीठे तं नगेन्द्रादितदायुधैः ॥ ९९ ॥
सुगन्धैः श्वेतकुसुमैर्जुहुयाच्छुक्रवासरे।
एकविंशतिवारं यो लभतेसोंशुकं मणीन् ॥ १०० ॥

ध्यानमाह – **श्वेताम्भोजेति** । आपणतटे श्वेतपद्मस्थितम् ॥ ९८–१०० ॥

प्रणव बीज तथा स्वाहा शक्ति कही गई है । मन्त्र के १, २, १, २, ३, और २ अक्षरों से षडङ्गन्यास कर विद्या निधान शुक्र का ध्यान करना चाहिए ॥ ९६-९७ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीशुक्रमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिर्विराट्छन्दः दैत्यपूजित शुक्रो देवता ॐ बीजं स्वाहाशक्तिरात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ हृदयाय नमः, वस्त्रं शिरसे स्वाहा,
मे शिखायै वषट् देहि कवचाय हुम् शुक्राय नेत्रत्रयाय वौषट्
स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ९६-९७ ॥

अब **शुक्र का ध्यान** कहते हैं - बाजार के किसी एक स्थान् (दुकान) में सफेद वर्ण के कमल पर बैठे हुये, श्वेत वस्त्र एवं श्वेत चन्दन से अलंकृत, अपने बायें हाथ से भक्त जनों को वस्त्र, मणि तथा सुवर्ण देते हुये तथा दाहिने हाथ में व्याख्यान मुद्रा धारण किए, दैत्यराज से पूजित प्रसन्न, मुख तथा श्वेत कान्ति वाले शुक्र की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ९८ ॥

इस मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिए । फिर घी से उसका दशांश होम करना चाहिए तथा धर्मादि शक्तियों वाले पीठ पर अङ्गपूजा, दिक्पाल पूजा एवं उनके आयुधों की पूजा कर शुक्र का पूजन करना चाहिए ॥ ९९ ॥

विमर्श - आवरण पूजा विधान - श्लोक १५. ९८ में वर्णित शुक्र के स्वरूप का ध्यान कर मानसोपचार से पूजन कर अर्घ्यपात्र स्थापित करे । फिर १५. ९२ के विमर्श में कही गई रीति से पीठ देवताओं एवं धर्मादि शक्तियों का पूजन कर पीठ मन्त्र से आसन देकर उस पर ध्यान आवाहन से पुष्पाञ्जलि प्रदान पर्यन्त शुक्र का पूजन कर आवरण पूजा करनी चाहिए ।

सर्वप्रथम षडङ्गन्यास मन्त्रों से अङ्गपूजा, फिर दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों की तथा उनके आयुधों का पूजन करे । फिर शुक्र का विधिवत् पूजन करे ॥ ९९॥

काम्य प्रयोग - सुगन्धित श्वेत पुष्पों से जो व्यक्ति २१ शुक्रवारों को हवन करता है वह अवश्य ही वस्त्र एवं मणियों को प्राप्त करता है ॥ १०० ॥

मृत्युञ्जयपुटितेन सहितः व्यासमन्त्रः

बालः पवनदीर्घेन्दुयुक्तो झिण्टीशयुग्जलम् ।
अत्रिर्व्यासायहृदयं मनुरष्टाक्षरो मतः ॥ १०१ ॥
ब्रह्मानुष्टुम्मुनिश्छन्दो देवः सत्यवतीसुतः ।
आद्य बीजं नमः शक्तिर्दीर्घाढ्येनादिनाङ्गकम् ॥ १०२ ॥
व्याख्यामुद्रिकयालसत्करतलं सद्योगपीठस्थितं
वामे जानुतले दधानमपरं हस्तं सुविद्यानिधिम् ।
विप्रव्रातवृतं प्रसन्नमनसं पाथोरुहाङ्गद्युतिं
पाराशर्यमतीवपुण्यचरितं व्यासं स्मरेत्सिद्धये ॥ १०३ ॥
जपेदष्टसहस्राणि पायसैर्होममाचरेत् ।
पूर्वोक्तपीठे व्यासस्य पूर्वमङ्गानि पूजयेत् ॥ १०४ ॥

व्यासमन्त्रमाह – **बाल** इति । बालो वः पवनदीर्घेन्दुयुतः यकाराकारबिन्दुयुतः व्याम् । जलं झिटीशयुग् वकारएकारयुतः वे । अत्रिर्दः । व्यासाय स्वरूपम् । हृदयं नमः । यथा – व्यां वेदव्यासाय नम इति ॥ १०१–१०२ ॥ विप्रव्रातवृतं ब्राह्मणसमूहपरिवेष्टितम् । पाथोरुहाङ्गद्युतिं नीलेन्दीवरकान्तिम् ॥ १०३ ॥ पूर्वोक्तपीठे धर्मादिके ॥ १०४ ॥ * ॥ १०५–१०७ ॥

अब **व्यास मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - बाल (व), दीर्घेन्दुयुत् पवन (यां) अर्थात् (व्यां), फिर झिण्टीश (ए) सहित जल (व) अर्थात् (वे), फिर अत्रि (द), फिर 'व्यासाय' पद, उसमें हृदय (नमः) जोड़ने से ८ अक्षरों का व्यास मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १०१ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप निम्न है - व्यां वेदव्यासाय नमः ॥ १०१ ॥

इस व्यास मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, सत्यवती सुत व्यास देवता हैं, व्यां बीज तथा नमः शक्ति है । षड्दीर्घ सहित आद्य बीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १०२ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीव्यासमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिरनुष्टुप्छन्दः सत्यवतीसुतो देवता व्यां बीजं नमः शक्तिरात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - व्यां हृदयाय नमः, व्यीं शिरसे स्वाहा, व्यूं शिखायै वषट्
व्यै कवचाय हुम्, व्यौं नेत्रत्रयाय वौषट् व्यः अस्त्राय फट् ॥ १०२ ॥

अब **व्यास देव का ध्यान** कहते हैं - व्याख्यान मुद्रा से जिनके करतल सुशोभित हैं, जो मनोहर योगपीठ पर आसीन हैं, वाम जानु पर अपना दूसरा हाथ रखे हुये जो विद्यानिधान विप्रसमुदायों से परिवेष्टित हैं, जिनका मुख मण्डल प्रसन्न है एवं जिनके शरीर की कान्ति नील वर्ण की है, ऐसे पुण्यात्मा पुण्य चरित्र पराशर के

प्राच्यादिषु यजेत्पैलं वैशम्पायनजैमिनी ।
सुमन्तुं कोणभागेषु श्रीशुकं रोमहर्षणम् ॥ १०५ ॥
उग्रश्रवसमन्यांश्च मुनीन् सेन्द्रादिकायुधान् ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री कवित्वं शोभनाः प्रजाः ॥ १०६ ॥
व्याख्यानशक्तिं कीर्तिं च लभते सम्पदां चयम् ।
मृत्युञ्जयेन पुटितं यो व्यासस्य मनुं जपेत् ॥ १०७ ॥

पुत्र भगवान् व्यास का सिद्धि प्राप्ति हेतु स्मरण करना चाहिए ॥ १०३ ॥

इस मन्त्र का आठ हजार जप करना चाहिए । तदनन्तर खीर से उसका दशांश होम करना चाहिए ।

व्यासपूजनयन्त्रम्

पूर्वोक्त पीठ पर प्रथम व्यास के षडङ्गों की पूजा करनी चाहिए । फिर पूर्वादि दिशाओं में पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु का तथा कोणों में श्रीशुक, रोमहर्षण, उग्रश्रवस् और अन्य मुनीन्द्रों का, पुनः इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए ॥ १०४-१०६ ॥

इस प्रकार मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक को सुन्दर कवित्व शक्ति, उत्तम सन्तान, व्याख्यान-शक्ति, कीर्ति एवं सम्पत्ति का खजाना प्राप्त होता हैं ॥ १०६-१०७ ॥

विमर्श - पूजा विधि - सर्वप्रथम वृत्ताकार कर्णिका, अष्टदल तथा भूपुर सहित मन्त्र का निर्माण करना चाहिए । उसी पर भगवान् वेदव्यास का इस प्रकार पूजन करना चाहिए ।

१५. १०३ में वर्णित व्यास के स्वरूप का ध्यान कर मानसोपचारों से उनका पूजन कर अर्घ्य स्थापित करे । फिर १५. ६२ में कही गई विधि से पीठ देवताओं का, तदनन्तर धर्मादिकों का पूजन कर पीठ मन्त्र से यन्त्र पर आसन देकर, मूल मन्त्र से उस पर मूर्ति की कल्पना कर ध्यान, आवाहन से पुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त उपचारों से भगवान् व्यास का पूजन कर आवरण पूजन की आज्ञा ले इस प्रकार आवरण पूजा प्रारम्भ करे ।

कर्णिका के आग्नेयादि कोणों में मध्य में तथा चतुर्दिक्षु षडङ्गपूजा इस प्रकार करनी चाहिए । यथा -
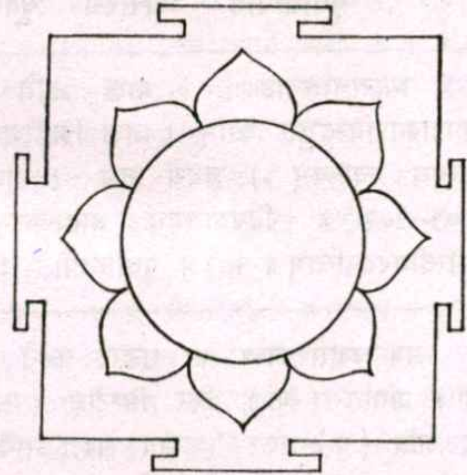
सर्वोपद्रवसंत्यक्तो लभते वाञ्छितं फलम् ।
तारः शूलीवामकर्णबिन्दुयुक्तः ससर्गसः ॥ १०८ ॥

मृत्युञ्जयमन्त्रमाह – **तार** इति । तार ॐ । वामकर्णबिन्दुयुतः ऊबिन्दुयुतः शूली जः जूम् । ससर्गः सः सः ॥ १०८ ॥

व्यां हृदयाय नमः आग्नेये, व्यीं शिरसे स्वाहा, नैर्ऋत्ये,
व्यूं शिखायै वषट्, वायव्ये, व्यैं कवचाय हुम्, ऐशान्यै,
व्यौं नेत्रत्रयाय वौषट्, मध्ये, व्यः अस्त्राय फट् चतुर्दिक्षु ।

इसके बाद पूर्वादि चारों दिशाओं में पैल आदि की निम्नलिखित मन्त्रों से पूजन करनी चाहिए । यथा – ॐ पैलाय नमः पूर्वे, ॐ वैशम्पायनाय नमः दक्षिणे,
ॐ जैमिन्यै नमः पश्चिमे, ॐ सुमन्तवे नमः दक्षिणे,

इसके बाद आग्नेयादि चारों कोणों में श्रीशुकादि की पूजा करे । यथा –
ॐ श्रीशुकाय नमः, आग्नेये, ॐ श्रीरोमहर्षणाय नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ उग्रश्रवसे नमः, वायव्ये, ॐ अन्यमुनीन्द्रेभ्यो नमः, ऐशान्ये

इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों की । यथा –
ॐ लं इन्द्राय नमः, पूर्वे, ॐ रं अग्नये नमः, आग्नेये,
ॐ मं यमाय नमः, दक्षिणे, ॐ क्षं निर्ऋतये नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ वं वरुणाय नमः, पश्चिमे ॐ यं वायवे नमः, वायव्ये
ॐ सं सोमाय नमः, उत्तरे ॐ हं ईशानाय नमः, ऐशान्ये,
ॐ आं ब्रह्मणे नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये,
ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः निर्ऋतिपश्चिमयोर्मध्ये

फिर भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं के क्रम से वज्रादि आयुधों की निम्नलिखित मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए – ॐ वं वज्राय नमः,
ॐ शं शक्तये नमः, ॐ दं दण्डाय नमः, ॐ खं खड्गाय नमः,
ॐ पां पाशाय नमः, ॐ अं अंकुशाय नमः ॐ गं गदायै नमः,
ॐ शूं शूलाय नमः, ॐ पं पद्माय नमः, ॐ चं चक्राय नमः,

इस प्रकार आवरण पूजा कर धूप दीपादि उपचारों से विधिवत् भगवान् वेदव्यास की पूजा करनी चाहिए ॥ १०४-१०७ ॥

अब **मृत्युञ्जय संपुटित व्यास मन्त्र की महिमा** कहते हैं –

जो व्यक्ति मृत्युञ्जय मन्त्र से संपुटित व्यास मन्त्र का जप करता है वह सभी उपद्रवों से मुक्त होकर वाञ्छित फल प्राप्त करता है ॥ १०७-१०८ ॥

विमर्श – मृत्युञ्जय पुटित व्यास मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ॐ जूं सः व्यां वेदव्यासाय नमः सः जूं ॐ ॥ १०७-१०८ ॥

मृत्युञ्जयस्य मन्त्रोऽयं त्रिवर्णो मृत्युनाशनः।
जप्तोऽयं केवलो नृणामिष्टसिद्धिं प्रयच्छति।
किंपुनस्तेन पुटितो[1] वेदव्यासमनूत्तमः ॥ १०६ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ सूर्य्यादि-
लघुमृत्युञ्जयव्यासमन्त्रनिरूपणं नाम
पञ्चदशस्तरङ्गः ॥ १५ ॥

केवलोऽप्ययं जप्तो नृणां मृत्युनाशनः । किंपुनस्तत्पुटितः । व्यासमन्त्रः। अस्य मन्त्रस्य कहोलऋषिः दैवीगायत्रीच्छन्दः मृत्युञ्जयो देवता जूं बीजं सः शक्तिः । दीर्घाढ्य सकारेण षडङ्गम् ॥ १०६ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां
सूर्य्यादिलघुमृत्युञ्जयव्यासमन्त्र निरूपणं
नाम पञ्चदशस्तरङ्गः ॥ १५ ॥

मृत्युञ्जय मन्त्र का उद्धार - तार (ॐ), वामकर्ण (ऊकार) एवं बिन्दु अनुस्वार सहितः शूली (ज), इस प्रकार (जूं), इसके आगे विसर्ग सहित सकार (सः), यह तीन अक्षर का मृत्युनाशक मृत्युञ्जय मन्त्र है ॥ १०८-१०६॥

केवल इसका ही जप करने से मनुष्य इष्ट सिद्धि प्राप्त कर लेता है, फिर इससे संपुटित व्यास मन्त्र का जप किया जाय तो इसके फल के विषय में क्या कहना है ? ॥ १०६ ॥

विमर्श - मृत्युञ्जय मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ जूं सः॥ १०६ ॥

विनियोग - अस्य श्रीमृत्युञ्जयमन्त्रस्य कहोलऋषिर्दैवीगायत्रीच्छन्दः मृत्युञ्जयो देवता जूं बीजं सः शक्तिरात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - सां हृदयाय नमः सीं शिरसे स्वाहा सूं शिखायै वषट्
सैं कवचाय हुम् सौं नेत्रत्रयाय वौषट् सः अस्त्राय फट्

---

१. ॐ जूं सः व्यां वेदव्यासाय नमः सः जूं ॐ ।

ध्यान - चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत् पाणिं हिमांशुप्रभम् ।
किरीटेन्दुगलत्सुधाप्लुततनुं हारादि भूषोज्ज्वलं
कान्त्या विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत् ॥

जिनके सूर्य, चन्द्र और अग्नि स्वरूप तीन नेत्र हैं, जिनका मुखमण्डल स्मित से युक्त है, जिनके शिरोभाग दो कमलों के मध्य स्थित हैं अर्थात् एक ऊर्ध्वमुख एवं उसके ऊपर विद्यमान दूसरा कमल अधोमुख रूप से विद्यमान हैं । जिन्होंने अपने हाथों में मुद्रा, पाश, मृग, अक्षमाला धारण किया है, जिनके शरीर की कान्ति चन्द्रमा के समान उज्ज्वल है, जिनका शरीर किरीट में जटित चन्द्र मण्डल से चूते हुए अमृतकणों से आप्लावित है और हारादि नाना प्रकार के भूषणों से उज्ज्वल है - ऐसे महामृत्युञ्जय पशुपति का ध्यान करना चाहिए जो अपनी कान्ति से विश्व को मोहित कर रहे हैं ॥ १०८-१०९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के पञ्चदश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १५ ॥

अथ षोडशः तरङ्गः

महामृत्युञ्जयमन्त्रः
सञ्जीविनीविद्या

महामृत्युञ्जयं वक्ष्ये दुरितापन्निवारणम् ।
यं प्राप्य भार्गवः शम्भोर्मृतान् दैत्यानजीवयत् ॥ १ ॥
तारः खं व्यापिनीचन्द्रयुक्तारश्चतुराननः ।
अर्घीशबिन्दुसंयुक्तो हंसः सर्गी च भूर्भुवः ॥ २ ॥
सकारो बालसर्गाढ्यस्त्र्यम्बकं वैदिको मनुः ।
भूर्भुवः स्वर्भुजङ्गेशस्तारी जूंसर्गवान् भृगुः ॥ ३ ॥

---

* नौका *

महामृत्युञ्जयमन्त्रमाह – **तार** इति । तारः ॐ । आं व्यापिनी चन्द्रयुक् औ बिन्दुयुतं खं हः हौं । तार ॐ । अर्घीशबिन्दुयुक्तश्चतुराननः ऊबिन्दुयुतो जः जूं । सर्गी हंसः सः । भूर्भुवः स्वरूपम् ॥ २ ॥ सकारो बाल विसर्गाढ्यो व विसर्गयुतः सकारः स्वः । त्र्यम्बकं वैदिको मन्त्रः यथा –

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ इति ।

भूर्भुवः स्वरूपम् । तारयुतो भुजङ्गेशो रः रों । जूं स्वरूपम् । सर्गवान् भृगुः सः ॥ ३ ॥

---

* अरित्र *

अब पाप तथा विपत्तियों को दूर करने वाले महामृत्युञ्जय मन्त्र को कहता हूँ, जिसे शुक्राचार्य ने भगवान् शंकर से प्राप्त कर मरे हुये दैत्यों को जिलाया था ॥ १ ॥

महामृत्युञ्जय मन्त्र का उद्धार - तार (ॐ), व्यापिनी चन्द्र युक्त (औ), बिन्दु सहित खं (ह), अर्थात् (हौं), फिर तार (ॐ), फिर अर्घीश (ऊकार), बिन्दु (अनुस्वार) से युक्त चतुरानन 'ज' अर्थात् (जूं), सर्गी हंसः (सः) इसके बाद 'भूर्भुवः', फिर वाल (व), विसर्ग युक्त सकार अर्थात् (स्वः), फिर 'त्र्यम्बकं यजामहे०' यह वैदिक मन्त्र, फिर 'भूर्भुवः स्वः', तारयुक्त भुजङ्गेश रों जूं,

आकाशो मनुबिन्द्वाढ्यः प्रणवान्तो मनूत्तमः।
महामृत्युञ्जयाख्योऽयं पञ्चाशद्वर्णनिर्मितः ॥ ४ ॥
वामदेवकहोलाख्यवसिष्ठा मुनयोऽस्य तु।
छन्दांस्युक्तानि रुद्रेण पंक्तिगायत्र्यनुष्टुभः ॥ ५ ॥
सदाशिवमहामृत्युञ्जयरुद्रोऽस्य देवता।
मायाशक्ती रमाबीजं विनियोगोऽर्थसिद्धये ॥ ६ ॥
मूर्ध्नि वक्त्रे हृदि शिवे पदो मुन्यादिकान्न्यसेत्।

मुनिन्यासवर्णादिन्यासविधिकथनम्

त्रिचतुर्वसुनन्देषु गुणवर्णाननुष्टुभः ॥ ७ ॥

मनुर्बिन्द्वाढ्यः आकाशः और्बिन्दुयुतो हः हौं । प्रणवान्तश्चायं मन्त्रः । यथा – ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ इतिपञ्चाशदर्णः ॥ ४–५ ॥ माया ह्रीं । रमा श्रीं ॥ ६ ॥ मुन्यादिका– नृष्यादीन् मूर्धादिषु न्यसेत् । शिवलिङ्गे । षडङ्गन्यासमाह – **त्रिचतुरिति** । चतुर्भिः अनुष्टुभः त्र्यम्बकमन्त्रस्य आदि वर्णान् । मूलादिनववर्णाद्यान् मूल– मन्त्रस्यादौ येन वर्णास्ताराद्यास्तान् । ॐ नमो भगवते रुद्रायेति मदान्वितान् तथा शूलपाणये इत्यादि प्रातिस्विकाङ्गमन्त्रयुतानुक्त्वा षडङ्गं कुर्यादित्यर्थः ।

फिर सर्गवान् भृगु (सः) मनु और बिन्दु सहित आकाश (ह) अर्थात् हौं, पुनः प्रणव जोड़ने से पचास अक्षरों का महामृत्युञ्जय संज्ञक श्रेष्ठतम मन्त्र बनता है ॥ २-४ ॥

विमर्श – महामृत्युञ्जय मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् भूर्भुवः स्वरों जूं सः हौं ॐ (५०) ॥ २-४ ॥

इस मन्त्र के वामदेव, कहोल एवं वशिष्ठ ऋषि हैं, भगवान् रुद्र ने इस मन्त्र का पंक्ति, गायत्री और अनुष्टुप् छन्द कहा है । सदाशिव महामृत्युञ्जय रुद्र इसके देवता हैं । माया (ह्रीं) शक्ति है, रमा (श्रीं) बीज है । अभीष्ट सिद्धि हेतु इसका विनियोग किया जाता है ॥ ५-६ ॥

विनियोग – अस्य श्रीमहामृत्युञ्जयमन्त्रस्य वामदेवकहोलवशिष्ठा ऋषयः पंक्तिर्गायत्र्यनुष्टुप्छन्दांसि सदाशिवमहामृत्युञ्जयरुद्रो देवता ह्रीं शक्तिः श्रीं बीजमात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास – शिर, मुख, हृदय, लिङ्ग, एवं पैरों पर ऋष्यादिन्यास करना चाहिए ॥ ७ ॥

तारो नमो भगवते रुद्रायेति पदान्वितान्।
मूलादिनववर्णाद्यानुक्त्वा कुर्यात् षडङ्गकम्॥ ८॥
शूलान्ते पाणये स्वाहा हृन्मन्त्रान्ते नियोजयेत्।
अमृतान्ते मूर्त्तये मां जीवयेति शिरोन्तिमम्॥ ६॥
शिखान्ते चन्द्रशिरसे जटिने वह्निवल्लभा।
त्रिपुरान्तकाय हां ह्रीं कवचान्ते मनुस्मृतः॥ १०॥
प्रवदेत्त्रिपदस्यान्ते लोचनाय पदं पुनः।
ऋग्यजुःसाममन्त्राय वर्णान्नेत्रमनोः पठेत्॥ ११॥
अग्नित्रयाय ज्वल च ज्वल मां रक्ष रक्ष च।
अघोरास्त्राय मन्त्रोऽयमस्त्रमन्त्रस्ततः स्मृतः॥ १२॥

यथा – ॐ हौं ॐ जूं सः भुर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा हृत् । ॐ यजामहे, ॐ अमृतमूर्तये मां जीवय, शिरः ॥ ७–६ ॥ ॐ सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं, ॐ चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा, शिखा । ॐ उर्वारुकमिव बन्धनात्, ॐ त्रिपुरान्तकाय हां ह्रीं, कवचम् ॥ १० ॥ ॐ हौं मृत्योर्मुक्षीय, ॐ नमों त्रिलोचनाय ऋग्यजुः साममन्त्राय, नेत्रम् ॥ ११ ॥ ॐ हौं मामृतात्, ॐ नमो० अग्नित्रयाय ज्वल ज्वल, मां रक्ष, ॐ अघोरास्त्राय, अस्त्रम् ॥ १२ ॥

विमर्श – यथा – वामदेवकहोलवशिष्ठऋषिभ्यो नमः शिरसि,
पंक्तिर्गायत्र्यनुष्टुप्छन्दोभ्यः नमः मुखे,
सदाशिवमहामृत्युञ्जयरुद्राख्यदेवतायै नमः हृदि,
ह्रीं शक्तये नमः लिङ्गे, श्रीं बीजाय नमः पादयोः ॥ ७ ॥

अब **षडङ्गन्यास** कहते है - अनुष्टुप् छन्द के ३, ४, ८, ६, ५, तथा ३ वर्णों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । उसकी **विधि** इस प्रकार है - प्रारम्भ में मूलमन्त्र के ६ अक्षरों के बाद त्र्यम्बकादि अक्षर लगाकर, फिर तार (ॐ), फिर 'नमो भगवते रुद्राय' पद, फिर क्रमशः 'शूलपाणये स्वाहा' पद से हृदय में, फिर 'अमृतमूर्तये मां जीवय' से शिर में, फिर 'चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा' से शिखा में, फिर 'त्रिपुरान्तकाय हां ह्रीं' से कवच में, फिर 'त्रिलोचनाय ऋग्यजुःसाममन्त्राय' से नेत्र में, फिर 'अग्नित्रयाय ज्वल ज्वल मां रक्ष रक्ष ॐ अघोरास्त्राय' से अस्त्र में लगाकर न्यास करे ॥ ७-१२ ॥

विमर्श - यथा - १. ॐ हौ ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा हृदयाय नमः, २. ॐ हौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अमृतमूर्तये मां जीवय शिरसे स्वाहा, ३. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा शिखायै वषट्,

द्वात्रिंशत् त्र्यम्बकाद्यर्णान्नमोन्ताम्बिन्दुसंयुतान्।
तारादिनववर्णाद्यानङ्गेष्वेषु प्रविन्यसेत्॥ १३॥
पूर्वपश्चिमयाम्योदङ्मुखेषूरसि कण्ठतः।
वदने नाभिहृत्पृष्ठे कुक्षौ लिङ्गे गुदे न्यसेत्॥ १४॥
ऊरुमूलोरुमध्ये च जानुनोर्जानुवृत्तयोः।
स्तनयोः पार्श्वयोरंघ्र्योः करयोर्नसिमूर्द्धनि॥ १५॥

वर्णन्यासमाह – **द्वात्रिंशदिति** । प्रणवादि नववर्णाद्यान् सबिन्दून्नमोन्तांस्त्र्यमित्यादि द्वात्रिंशद् वर्णान् पूर्ववक्त्रादिष्वङ्गेषु न्यसेत्, ॐ हौ ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यं नमः पूर्ववक्त्रादि०, ॐ हौं ... बं नमः पश्चिमवक्त्रे इत्यादि प्रयोगः॥ १३॥ अङ्गान्याह – **पूर्वेति** । पूर्ववक्त्रादिष्वेकैकं वर्णं न्यसेत्॥ १४॥ ऊरुमूलोरुमध्यचानुवृत्तस्तनपार्श्वकरनसि द्वौ द्वौ । मूर्धायेकैकम्॥ १५॥

---

४. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः उर्वारुकमिव बन्धनात् ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरान्तकाय हां ह्रीं कवचाय हुम्, ५. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिलोचनाय ऋग्यजुः साममन्त्राय नेत्रत्रयाय वौषट्, ६. ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मामृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय अग्नित्रयाय ज्वल ज्वल मां रक्ष रक्ष ॐ अघोरास्त्राय अस्त्राय फट्॥ ७-१२॥

अब उक्त मन्त्र का **वर्णन्यास** कहते है - प्रारम्भ में मूल मन्त्र के ९ वर्ण लगाकर फिर त्र्यम्बकादि ३२ अक्षरों के एक एक वर्ण पर बिन्दु तथा अन्त में नमः लगाकर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर पूर्वक मुख में, फिर उरःस्थल, कण्ठ, मुख, नाभि, हृदय, पीठ, कुक्षि, लिङ्ग और गुदा में न्यास करना चाहिए । फिर दोनो ऊरुओं के मूल और मध्य में, दोनों जानुओं में एवं दोनों जानुवृत्त में, स्तनों में, पार्श्वों में, पैरो में, हाथों में, नासिका, रन्ध्रों में तथा शिर इन ३२ स्थानों में इस प्रकार न्यास करना चाहिए॥ १३-१५॥

विमर्श - वर्णन्यास की विधि -

(१) ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यं नमः पूर्वमुखे,
(२) ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः वं नमः पश्चिममुखे,
(३) ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः कं नमः दक्षिणमुखे,
(४) ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यं नमः उत्तरमुखे,
(५) ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः जां नमः उरसि,
(६) ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मं नमः कण्ठे,
(७) ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः हें नमः मुखे,
(८) ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुं नमः नाभौ,

अथैकादशविन्यस्येत्पदानि शिरसि भ्रुवोः ।
नेत्रयोर्वदने गण्डे हृदये जठरे शिवे ॥ १६ ॥
ऊर्वोर्जानुप्रदेशे च पादयोः क्रमशः पुनः ।
त्रिवेदगुणबाणाब्धिद्विरामाक्षिगुणेन्दुभिः ॥ १७ ॥

पदन्यासमाह – **अथैकेति** । शिवलिङ्गे ॥ १६ ॥ पदेषु वर्णसंख्यामाह – **त्रिवेदेति** । त्र्यम्बकं शिरसि इत्यादि० ॥ १७–१८ ॥

---

(९) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः गं नमः हृदि,
(१०) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः धिं नमः पृष्ठे,
(११) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः पुं नमः कुक्षौ,
(१२) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः ष्टिं नमः लिङ्गे,
(१३) ॐ ह्रौ ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः वं नमः गुदे,
(१४) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः र्धं नमः दक्षिणोरुमूले,
(१५) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः नं नमः वामोरुमूले,
(१६) ॐ ह्रौ ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः ॐ नमः दक्षिणोरुमध्ये,
(१७) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः र्वा नमः वामोरुमध्ये,
(१८) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सं नमः दक्षिणजानुनि,
(१९) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः कं नमः वामजानुनि,
(२०) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मिं नमः दक्षिणजानुवृत्ते,
(२१) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः वं नमः वामजानुवृत्ते,
(२२) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः बं नमः दक्षिणस्तने,
(२३) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः न्धं नमः वामस्तने,
(२४) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः नां नमः दक्षिणपार्श्वे,
(२५) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृं नमः वामपार्श्वे,
(२६) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्यों नमः दक्षिणपादे,
(२७) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः र्मुं नमः वामपादे,
(२८) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः क्षीं नमः दक्षिणकरे,
(२९) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः यं नमः वामकरे,
(३०) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मां नमः दक्षिणनासापुटे,
(३१) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृं नमः वामनासापुटे,
(३२) ॐ ह्रौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः तां नमः मूर्ध्नि ॥ १३–१५ ॥

तदनन्तर ग्यारह पदों का शिर, भौह, नेत्र, मुख, गण्डस्थल, हृदय, उदर, लिङ्ग, ऊरु, जानु और दोनो पैरो में न्यास करना चाहिए । 'त्र्यम्बकं यजामहे' इत्यादि मन्त्र के ३, ४, ३, ५, ४, २, ३, २, ३, १, और ३ वर्णों से विद्वान्

त्रिभिर्वर्णैश्च विज्ञेया पदसंख्याक्रमाद् बुधैः।
मूलेन व्यापकं कृत्वा ततो ध्यायेत् त्रिलोचनम्॥ १८॥

त्रिलोचनध्यानवर्णनम्

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वांके सकुम्भौ करौ।
अक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्द्धस्थचन्द्रस्रवत्
पीयूषोऽत्रतनुं भजे सगिरिजं मृत्युञ्जयं त्र्यम्बकम्॥ १९॥

ध्यानमाह – **हस्तेति** । अष्ट हस्त विनियोगमाह – अंकस्थकरयो. कुम्भौ दधतं तदूर्ध्वस्थकरयोः कुम्भाभ्यां जलमुद्धृत्य करद्वयेन स्व शिरोभि सिञ्चतकरयोर्मृगाक्षमाले च दधतमिति । मूर्ध्नि स्थितो यश्चन्द्रस्तः स्त्रवतामृतेनोत्क्लिन्ना तनुर्यस्य । उन्दी क्लेदने इत्यस्य निष्ठायामुन्नेति रूपम् । सगिरिजं भवानीयुतम् । त्रीण्यम्बकानि नेत्राणि यस्य तम्॥ १९॥
मुद्रा आह – **मुष्टीति** ।

मुष्टिं दक्षिणहस्तेन विधायोर्ध्वं समुन्नयेत् ।
मुद्रा मुष्ट्यभिधाख्याता सर्वविघ्नविनाशिनी॥ इति मुष्टिमुद्रालक्षणम् ।
सारङ्गो मृगस्तन्मुद्रालक्षणं यथा –

दक्षस्यानामिकाङ्गुष्ठ मध्यमाग्राणि योजयेत् ।
शिष्टे द्वे उच्छ्रिते कुर्यान्मृगमुद्रेयमीरिता॥ इति
मुष्टीकरौ विधाय द्वौ वामस्योपरि दक्षिणम् ।

एक एक पद बना लें । फिर मूल मन्त्र से व्यापक न्यास कर भगवान् शंकर का ध्यान करना चाहिए ॥ १६-१८ ॥

विमर्श - एकादश पदन्यास । यथा - १. त्र्यम्बकं शिरसि, २. यजामहे भ्रुवोः ३. सुगन्धिं नेत्रयोः, ४. पुष्टिवर्धनम् मुखे, ५. उर्वारुकं गण्डयोः, ६. इव हृदये, ७, बन्धनात् जठरे, ८. मृत्योः लिङ्गे, ९. मुक्षीय उर्वोः, १०. मा जान्वोः, ११. अमृतात् पादयोः ॥ १६-१८ ॥

अब भगवान् शंकर द्वारा उपयोग में लाये गये हाथों का वर्णन करते हुए ध्यान कहते हैं - अपने अङ्कस्थ दो करों में अमृत कुम्भ धारण किए हुये, उसके ऊपर वाले दो हाथों से उस अमृत कुम्भ से सुधामय जल निकालते हुये, उसके ऊपर के दोनों हाथों से उस अमृत जल को शिर पर अभिषिक्त करते हुये, शेष दो हाथों में क्रमशः मृग और अक्षमाला धारण किए हुये, शिरःस्थित चन्द्रमण्डल से स्रवित अमृत धारा से अपने शरीर को आप्लावित करते हुये, पार्वती सहित त्रिनेत्र सदाशिव मृत्युञ्जय का मैं ध्यान करता हूँ ॥ १९ ॥

मुष्टिसारङ्गशक्त्याख्या लिङ्गपञ्चमुखाभिधाः।
मुद्राः प्रदर्श्य प्रजपेल्लक्षं तस्य दशांशतः॥ २०॥
दशद्रव्यैः प्रजुहुयात्तानि बिल्वफलं तिलाः।
पायसं सर्पिषा दुग्धं दधिदूर्वा च सप्तमी॥ २१॥
बटात्पलाशात् खदिरात्समिधो मधुरप्लुताः।
वामादिशक्तिसंयुक्ते पीठे शैवे यजेच्छिवम्॥ २२॥

कृत्वा शिरसि युञ्जीत शक्तिमुद्रेयमीरिता ॥ इति शक्तिमुद्रालक्षणम् ।

उच्छ्रितं दक्षिणाङ्गुष्ठे वामाङ्गुष्ठेन बन्धयेत् ।
वामाङ्गुलीर्दक्षिणाभिरङ्गुलीभिश्च बन्धयेत् ।
लिङ्गमुद्रेयमाख्याता शिवसान्निध्यकारिणी ॥ इति लिङ्गमुद्रा ।
मणिबन्धकरौ युक्तावङ्गुल्यग्राणि मेलयेत् ।
मुद्रापञ्चमुखाख्येयं दर्शिताशिवतोषिणी ॥

इति पञ्चमुखमुद्रालक्षणम् ॥ २० ॥ दशद्रव्याण्याह – **बिल्वेति** ॥ २१ ॥ पीठशक्तीराह – **वामेति** ॥ २२-२४ ॥

मुष्टि, सारङ्ग, शक्ति, लिङ्ग, एवं पञ्चमुख मुद्रायें प्रदर्शित कर एक लाख की संख्या में इस मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ २० ॥

विमर्श – मुष्टि मुद्रा - दाहिने हाथ की हथेली से मुष्टिका बना कर ऊपर की ओर प्रदर्शित करने से मुष्टि मुद्रा बनती है । यह मुद्रा सभी विघ्नों का विनाश करने वाली कही गई है ।

मृगमुद्रा - दहिने हाथ की अनामिका और अँगूठे को मिलाकर उस पर मध्यमा को भी रख्खे। शेष दो उँगलियों को ऊपर की ओर सीधा खड़ा करे। यह मृग मुद्रा है।

शक्ति मुद्रा - दोंनों हाथों से मुट्ठी बना कर बॉये हाथ की मुट्ठी के ऊपर दाहिने हाथ की मुट्ठी को रख कर शिर के ऊपर संयोजन करने से शक्ति मुद्रा निष्पन्न होती है ।

लिङ्गमुद्रा - दाहिने हाथ के अँगूठे को ऊपर उठाकर उसे बायें अँगूठे से बाँधे । उसके बाद दोंनों हाथों की उँगलियों को परस्पर बाँधे । यह शिवसान्निध्यकारक लिङ्गमुद्रा है ।

पञ्चमुखमुद्रा - दोंनों हाथों के मणिबन्धों को मिलाकर आगे की अंगुलियों को परस्पर मिलाना चाहिए । शिव को संतुष्ट करने वाली यह पञ्चमुख मुद्रा कही गई है ॥ २० ॥

जप करने के बाद दश द्रव्यों से दशांश होम करना चाहिए । १. बिल्वफल, २. तिल, ३. खीर, ४. घी, ५. दूध, ६. दही, ७. दूर्वा, ८. वट की समिधा, ९.

वामा ज्येष्ठा तथा रौद्रीकाली प्रोक्ता चतुर्थिका ।
कलादिका विकारिणी बलाद्याविकरण्यपि ॥ २३ ॥
बलप्रमथनी चान्या सर्वभूतदमन्यपि ।
मनोन्मनीति शर्वस्य नवोक्ताः पीठशक्तयः ॥ २४ ॥
तारो नमो भगवते सकलेति पदं ततः ।
गुणात्मशक्तियुक्ताय अनन्ताय वदेत्पदम् ॥ २५ ॥
योगापीठात्मने पीठमन्त्रः प्रोक्तो नमोन्तिकः ।
पीठे पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा मूर्तिमूलेन कल्पयेत् ॥ २६ ॥

आसनमन्त्रमाह – तार इति । ॐ नमो भगवते सकलगुणात्म–शक्तियुक्ताय अनन्ताय योगपीठात्मने नम इति ॥ २५-२६ ॥

पलाश की समिधा एवं १०. खैर की समिधायें दश द्रव्य कहे गये हैं । इन तीनों समिधाओं को घी, शहद और शक्कर में डुबोकर होम करना चाहिए ॥ २१-२२ ॥

अब **पीठ शक्तियाँ** कहते हैं - वामादि शक्तियों के साथ शैव पीठ पर शिव का पूजन करना चाहिए । १. वामा, २. ज्येष्ठा, ३. रौद्री, तथा ४. काली चौथी शक्ति कही गई है । इसके बाद ५. कलविकरणी, ६. बलविकरणी, ७. वलप्रमथनी, ८. सर्वभूतदमनी और ९. मनोन्मनी - ये शिव की ९ शक्तियाँ कही गई हैं ॥ २२-२४ ॥
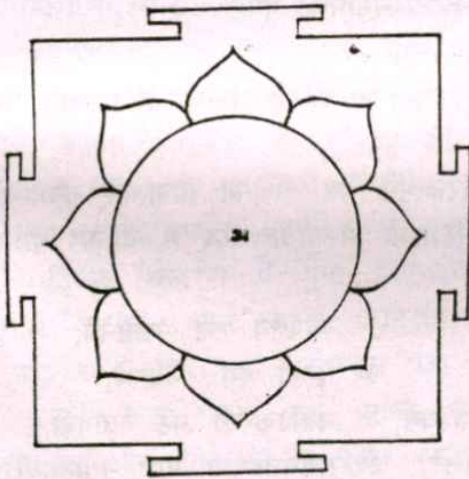
मृत्युञ्जयपूजनयन्त्रम्

तार (ॐ), फिर 'नमो भगवते सकल', फिर 'गुणात्मशक्तियुक्ताय अनन्ताय' पद, फिर 'योगपीठात्मने' पद और 'नमः' इस मन्त्र से पीठ पर पुष्पाञ्जलि देकर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करे यह पीठ मन्त्र कहा गया है ॥ २५-२६॥

विमर्श - पीठपूजा विधि - वृत्ताकार कर्णिका अष्टदल फिर भूपुर लिख कर यन्त्र बनाना चाहिए । उसी पर महामृत्युञ्जय भगवान् का पूजन करना चाहिए । सर्वप्रथम (१६. १९ में वर्णित) भगवान् मृत्युञ्जय के स्वरूप का ध्यान कर, मानसोपचार से पूजन कर, उनके लिए विधिवत् अर्घ्य स्थापित कर पीठदेवताओं का पीट के मध्य में इस प्रकार पूजन करना चाहिए - ॐ आधारशक्त्यै नमः, ॐ प्रकृत्यै नमः, ॐ कूर्माय नमः,

दशावरणपूजाप्रकारः

पाद्यादिकुसुमान्तोपचारान्ते त्वावृतीर्यजेत् ।
ईशानं शम्भुकोणे तु यजेदीशानमन्त्रतः ॥ २७ ॥

आवरणपूजाप्रकारमाह – **पाद्यादीति** । पाद्यार्घ्याचमनीयस्नान–वस्त्रोपवीतचन्दनपुष्पाणि दत्त्वावरणपूजां कुर्यात् । तत्रेशानकोणे ईशानः सर्वविद्यानामिति तैत्तिरीयशाखोक्तं मन्त्रं पठित्वेशानं यजेत् ॥ २७ ॥

ॐ शेषाय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः,
ॐ श्वेतद्वीपाय नमः, ॐ मणिमण्डपाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः,
ॐ मणिवेदिकायै नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः,

फिर आग्नेयादि कोणों में धर्म आदि का तथा पूर्वादि दिशाओं में अधर्म आदि का पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ धर्माय नमः, आग्नेये, ॐ ज्ञानाय नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ वैराग्याय नमः वायव्ये, ॐ ऐश्वर्याय नमः ऐशान्ये,
ॐ अधर्माय नमः पूर्वे, ॐ अज्ञानाय नमः दक्षिणे,
ॐ अवैराग्याय नमः पश्चिमे, ॐ अनैश्वर्याय नमः उत्तरे ।

पुनः पीठ के मध्य में अनन्त आदि का इस प्रकार पूजन करना चाहिए -

ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्मनाभाय नमः,
ॐ अं द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय नमः,
ॐ उं षोडशकलात्मने सोममण्डलाय नमः, ॐ रं दशकलात्मने वह्निण्डलाय नमः,
ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः,
ॐ आं आत्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

तत्पश्चात् केशरों में पूर्वादि ८ दिशाओं में तथा मध्य मे वामादि शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ वामायै नमः, पूर्वे, ॐ ज्येष्ठायै नमः, आग्नेये,
ॐ रौद्रयै नमः, दक्षिणे, ॐ काल्यै नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ कलविकरण्यै नमः, पश्चिमे, ॐ बलविकरण्यै नमः, वायव्ये,
ॐ बलप्रमथिन्यै नमः, उत्तरे, ॐ सर्वभूतदमन्यै नमः, (पीठमध्ये),

फिर 'ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्ताय अनन्ताय योगपीठात्मने नमः' इस मन्त्र से आसन देकर, मूल मन्त्र से मूर्ति का ध्यान कर, आवाहनादि उपचारों से पुष्पाञ्जलि पर्यन्त महामृत्युञ्जय का पूजन कर, उनकी अनुज्ञा ले आवरण पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए ॥ २२-२६ ॥

पाद्यादि उपचारों से आरम्भ कर पुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त मृत्युञ्जय का पूजन करने के बाद आवरण पूजा करनी चाहिए ॥ २७ ॥

तत्पुरुषमघोरं च वामदेवं तृतीयकम् ।
सद्योजातं यजेद्दिक्षु वेदोक्तस्वस्वमन्त्रतः ॥ २८ ॥
ईशानादिसमीपेषु निवृत्त्याद्याः कलाक्रमात् ।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्याशान्तिश्चतुर्थ्यपि ॥ २९ ॥
शान्त्यतीता पञ्चवीति ततोऽङ्गानि यजेच्च षट् ।
सूर्येन्दुक्षितितोयाग्निपवनाकाशयज्वनाम् ॥ ३० ॥
मूर्तयोऽष्टौ क्रमात् पूज्यास्तृतीयावरणस्थिताः ।
रमा राकाप्रभाज्योत्स्ना पूर्णोषापूरणीसुधा ॥ ३१ ॥
चतुर्थावरणे पूज्याः शक्तयो धवलप्रभाः ।
विश्वावन्द्यासिता प्रह्वा सारासंध्याशिवानिशा ॥ ३२ ॥
पञ्चमावरणेभ्यर्च्याः शक्तयः श्यामविग्रहाः ।
आर्य्याप्रज्ञाप्रभामेधा शान्तिः कान्तिर्धृतिर्मतिः ॥ ३३ ॥
षष्ठावरणगाह्यष्टौ संपूज्या अरुणप्रभाः ।
धरोमापावनीपद्माशान्ता मोघा जयाऽमला ॥ ३४ ॥

तत्पुरुषाय विद्महे अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः वामदेवाय नमः सद्योजातं प्रपद्यामि इत्यादिभिश्चतुर्भिर्मन्त्रैस्तत्पुरुषादीन् प्रागादिषु यजेत् । तेषां समीपे स्वनामभिर्निवृत्त्याद्याः कला द्वितीयावरणेऽङ्गानि तृतीये सूर्यादीनां मूर्तीः । सूर्य–

प्रथम आवरण में 'ईशानः सर्वविद्यानाम्०' इस (तैतिरीय संहितोक्त) मन्त्र से ईशान कोण में ईशान का, फिर 'तत्पुरुषाय विद्महे०', 'अघोरभ्योथ घोरेभ्यो०', 'वामदेवाय नमः' तथा 'सद्योजातं प्रपद्यामि०' इन वैदिक मन्त्रों से पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, और सद्योजात का पूजन करना चाहिए ॥ २७-२८ ॥

द्वितीय आवरण में पुनः ईशानादि के समीप में क्रमशः निवृत्ति आदि कलाओं का पूजन करना चाहिए । निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति एवं शान्त्यतीता - ये पाँच कलायें हैं । फिर षडङ्गन्यास पूजा करनी चाहिए ॥ २९-३० ॥

सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश एवं वायु, **तृतीयावरण** में स्थित इन आठ देवताओं का पूजन करना चाहिए ॥ ३०-३१ ॥

चतुर्थ आवरण में श्वेत आभा वाली रमा, राका, प्रभा, ज्योत्स्ना, पूर्णा, उषा, पूरणी एवं सुधा - इन ८ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ॥ ३१-३२ ॥

पञ्चम आवरण में विश्वा, वन्द्या, सिता, प्रह्वा, सारा, सन्ध्या, शिवा एवं निशा - इन श्याम शरीर वाली ८ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ॥ ३२-३३ ॥

षष्ठ आवरण में अरुण आभावाली आर्या, प्रज्ञा, प्रभा, मेघा, शान्ति, कान्ति घृति तथा मति - इन ८ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ॥ ३३-३४ ॥

दशावरणपूजाप्रकारः

पाद्यादिकुसुमान्तोपचारान्ते त्वावृतीर्यजेत् ।
ईशानं शम्भुकोणे तु यजेदीशानमन्त्रतः ॥ २७ ॥

आवरणपूजाप्रकारमाह – **पाद्यादीति** । पाद्यार्घ्याचमनीयस्नान–वस्त्रोपवीतचन्दनपुष्पाणि दत्त्वावरणपूजां कुर्यात् । तत्रेशानकोणे ईशानः सर्वविद्यानामिति तैत्तिरीयशाखोक्तं मन्त्रं पठित्वेशानं यजेत् ॥ २७ ॥

ॐ शेषाय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः,
ॐ श्वेतद्वीपाय नमः, ॐ मणिमण्डपाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः,
ॐ मणिवेदिकायै नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः,

फिर आग्नेयादि कोणों में धर्म आदि का तथा पूर्वादि दिशाओं में अधर्म आदि का पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ धर्माय नमः, आग्नेये, ॐ ज्ञानाय नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ वैराग्याय नमः वायव्ये, ॐ ऐश्वर्याय नमः ऐशान्ये,
ॐ अधर्माय नमः पूर्वे, ॐ अज्ञानाय नमः दक्षिणे,
ॐ अवैराग्याय नमः पश्चिमे, ॐ अनैश्वर्याय नमः उत्तरे ।

पुनः पीठ के मध्य में अनन्त आदि का इस प्रकार पूजन करना चाहिए -

ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पद्मनाभाय नमः,
ॐ अं द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय नमः,
ॐ उं षोडशकलात्मने सोममण्डलाय नमः, ॐ रं दशकलात्मने वह्निण्डलाय नमः,
ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः,
ॐ आं आत्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

तत्पश्चात् केशरों में पूर्वादि ८ दिशाओं में तथा मध्य मे वामादि शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ वामायै नमः, पूर्वे, ॐ ज्येष्ठायै नमः, आग्नेये,
ॐ रौद्र्यै नमः, दक्षिणे, ॐ काल्यै नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ कलविकरण्यै नमः, पश्चिमे, ॐ बलविकरण्यै नमः, वायव्ये,
ॐ बलप्रमथिन्यै नमः, उत्तरे, ॐ सर्वभूतदमन्यै नमः, (पीठमध्ये),

फिर 'ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मशक्तियुक्ताय अनन्ताय योगपीठात्मने नमः' इस मन्त्र से आसन देकर, मूल मन्त्र से मूर्ति का ध्यान कर, आवाहनादि उपचारों से पुष्पाञ्जलि पर्यन्त महामृत्युञ्जय का पूजन कर, उनकी अनुज्ञा ले आवरण पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए ॥ २२-२६ ॥

पाद्यादि उपचारों से आरम्भ कर पुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त मृत्युञ्जय का पूजन करने के बाद आवरण पूजा करनी चाहिए ॥ २७ ॥

तत्पुरुषमघोरं च वामदेवं तृतीयकम् ।
सद्योजातं यजेद्दिक्षु वेदोक्तस्वस्वमन्त्रतः ॥ २८ ॥
ईशानादिसमीपेषु निवृत्त्याद्याः कलाक्रमात् ।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्याशान्तिश्चतुर्थ्यपि ॥ २९ ॥
शान्त्यतीता पञ्चवीति ततोऽङ्गानि यजेच्च षट् ।
सूर्येन्दुक्षितितोयाग्निपवनाकाशयज्वनाम् ॥ ३० ॥
मूर्तयोऽष्टौ क्रमात् पूज्यास्तृतीयावरणस्थिताः ।
रमा राकाप्रभाज्योत्स्ना पूर्णोषापूरणीसुधा ॥ ३१ ॥
चतुर्थावरणे पूज्याः शक्तयो धवलप्रभाः ।
विश्वावन्द्यासिता प्रह्वा सारासंध्याशिवानिशा ॥ ३२ ॥
पञ्चमावरणेभ्यर्च्याः शक्तयः श्यामविग्रहाः ।
आर्य्याप्रज्ञाप्रभामेधा शान्तिः कान्तिर्धृतिर्मतिः ॥ ३३ ॥
षष्ठावरणगाह्यष्टौ संपूज्या अरुणप्रभाः ।
धरोमापावनीपद्माशान्ता मोघा जयाऽमला ॥ ३४ ॥

तत्पुरुषाय विद्महे अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः वामदेवाय नमः सद्योजातं प्रपद्यामि इत्यादिभिश्चतुर्भिर्मन्त्रैस्तत्पुरुषादीन् प्रागादिषु यजेत् । तेषां समीपे स्वनामभिर्निवृत्त्याद्याः कला द्वितीयावरणेऽङ्गानि तृतीये सूर्यादीनां मूर्तीः । सूर्य–

प्रथम आवरण में 'ईशानः सर्वविद्यानाम्०' इस (तैतिरीय संहितोक्त) मन्त्र से ईशान कोण में ईशान का, फिर 'तत्पुरुषाय विद्महे०', 'अघोरभ्योथ घोरेभ्यो०', 'वामदेवाय नमः' तथा 'सद्योजातं प्रपद्यामि०' इन वैदिक मन्त्रों से पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, और सद्योजात का पूजन करना चाहिए ॥ २७-२८ ॥

द्वितीय आवरण में पुनः ईशानादि के समीप में क्रमशः निवृत्ति आदि कलाओं का पूजन करना चाहिए । निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति एवं शान्त्यतीता - ये पाँच कलायें हैं । फिर षडङ्गन्यास पूजा करनी चाहिए ॥ २९-३० ॥

सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश एवं वायु, **तृतीयावरण** में स्थित इन आठ देवताओं का पूजन करना चाहिए ॥ ३०-३१ ॥

चतुर्थ आवरण में श्वेत आभा वाली रमा, राका, प्रभा, ज्योत्स्ना, पूर्णा, उषा, पूरणी एवं सुधा - इन ८ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ॥ ३१-३२ ॥

पञ्चम आवरण में विश्वा, वन्द्या, सिता, प्रह्वा, सारा, सन्ध्या, शिवा एवं निशा - इन श्याम शरीर वाली ८ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ॥ ३२-३३ ॥

षष्ठ आवरण में अरुण आभावाली आर्या, प्रज्ञा, प्रभा, मेधा, शान्ति, कान्ति धृति तथा मति - इन ८ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ॥ ३३-३४ ॥

सप्तमावृतिगाः पूज्याः शक्तयः काञ्चनप्रभाः ।
अनन्तसूक्ष्मसंज्ञश्च तृतीयस्तु शिवोत्तमः ॥ ३५ ॥
एकनेत्रैकरुद्रौ च त्रिमूर्तिः षष्ठ ईरितः ।
श्रीकण्ठोऽथ शिखण्डी च संपूज्या अष्टमावृतौ ॥ ३६ ॥
उत्तरादियजेत्पश्चादुमां चण्डेश्वरं पुनः ।
नन्दिनं च महाकालं गणेशं वृषभं पुनः ॥ ३७ ॥
यजेद् भृङ्गिरिटिस्कन्दं नवमावरणस्थितान् ।
ब्राह्म्याद्या मातरः पूज्या दशमावरणे ततः ॥ ३८ ॥
इन्द्रादयश्च वज्राद्या एवं सिद्धो भवेन्मनुः ।

मूर्तये नमं इत्यादि प्रयोगः। चतुर्थे रमादयः । पञ्चमे विश्वादयः। षष्ठे आर्यादयः। सप्तमेऽधराद्याः । अनन्तादयोऽष्टमे ॥ २८–३६ ॥ नवमे उत्तरदिशामारभ्योमादयः । दशमे मातरः इन्द्रादयश्च । प्रयोगानाह – **जन्मभ** इति ॥ ३७–३९ ॥

सप्तम आवरण में सोने जैसी आभा वाली धरा, उमा, पावनी, पद्मा, शान्ता, अमोघा, जया तथा अमला - इन आठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ।

फिर अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ तथा शिखण्डी, का **अष्टम आवरण** में पूजन करना चाहिए ॥ ३४-३६ ॥

फिर **नवम आवरण** में उत्तर आदि दिशाओं के क्रम से उमा एवं चण्डेश्वर का, नन्दि एवं महाकाल का, गणेश एवं वृषभ का, भृङ्गिरिटि एवं स्कन्द का पूजन करना चाहिए ।

तत्पश्चात् **दशम आवरण** में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं का पूजन करना चाहिए । फिर इन्द्रादि दश दिक्पालों का तथा उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार के पूजन से यह मन्त्र सिद्ध होता है ॥ २७-३९ ॥

विमर्श - आवरण पूजा - सर्वप्रथम कर्णिका के ईशान कोण में 'ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपति ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्माशिवो मे अस्तु सदाशिवोम्' इस वैदिक मन्त्र से **प्रथम आवरण** में ईशान देव का पूजन करना चाहिए ।

फिर पूर्व में - 'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्' इस वैदिक मन्त्र से तत्पुरुष का, इसके बाद दक्षिण दिशा में - 'अघोरेभ्यो अथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः' इस वैदिक मन्त्र से अघोर का, तत्पश्चात् 'ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमः' इस वैदिक मन्त्र से पश्चिम दिशा में वामदेव का, तदनन्तर 'ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः । भवेभवे नातिभवे भवस्य मां भवदेवाय नमः' इस वैदिक मन्त्र से सद्योजात का उत्तर दिशा में

पूजन करना चाहिए । फिर ईशानादि देवों के पास निवृत्ति आदि ५ कलाओं का निम्न मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । -

ॐ निवृत्यै नमः, ॐ प्रतिष्ठायै नमः, ॐ विद्यायै नमः,
ॐ शान्त्यै नमः ॐ शान्त्यतीतायै नमः ।

इस प्रकार प्रथम आवरण का पूजन कर **द्वितीयावरण** में षडङ्ग मन्त्रों का आग्नेयादि कोणो में, मध्य में तथा दिशाओं में निम्न मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । - ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा हृदयाय नमः, ॐ हौं ॐ जूं भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ रुद्राय अमृत मूर्तये याजीवय शिरसे स्वाहा, ॐ हौ ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं ॐ रुद्राय चन्द्र शिरसे जटिने स्वाहा शिखायै वषट्, ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः उर्वारुकमिव बन्धनात् ॐ रुद्राय त्रिपुरान्तकाय हां हीं कवचाय हुम्, ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ रुद्राय त्रिलोचनाय० नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ हौं ॐ जूं सः भूर्भुवः स्वः मामृतात् ॐ रुद्राय अग्नित्रयाय ज्वल० अस्त्राय फट् ।

फिर **तृतीय आवरण** में अष्टपत्र में पूर्व आदि दिशाओं में नाम मन्त्रों से सूर्य आदि अष्टमूर्तियों का इस प्रकार पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ सूर्यमूर्तये नमः, ॐ चन्द्रमूर्तये नमः, ॐ क्षितिमूर्तये नमः,
ॐ जलमूर्तये नमः, ॐ अग्निमूर्तये नमः, ॐ वायुमूर्तये नमः,
ॐ आकाशमूर्तये नमः, ॐ यज्ञमूर्तये नमः,

चतुर्थ आवरण में पूर्वादि ८ दिशाओं के क्रम से श्वेत आभावाली रमा आदि का निम्न प्रकार से पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ रमायै नमः, ॐ राकायै नमः, ॐ प्रभायै नमः,
ॐ ज्योत्स्नायै नमः, ॐ पूर्णायै नमः, ॐ उषायै नमः,
ॐ पूरण्यै नमः, ॐ सुधायै नमः,

पञ्चम आवरण में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से श्याम वर्ण वाली विश्वा आदि का निम्न मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ विश्वायै नमः, ॐ वन्द्यायै नमः, ॐ सितायै नमः,
ॐ प्रस्वायै नमः ॐ सारायै नमः, ॐ सन्ध्यायै नमः,
ॐ शिवायै नमः, ॐ निशायै नमः,

षष्ठ आवरण में पूर्वादि दिशाओं में अरुण आभा वाली आर्या आदि का निम्न मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ आर्यायै नमः, ॐ प्रज्ञायै नमः, ॐ प्रभायै नमः,
ॐ मेधायै नमः, ॐ शान्त्यै नमः, ॐ कान्त्यै नमः,
ॐ धृत्यै नमः, ॐ मत्यै नमः

सप्तम आवरण में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से स्वर्ण जैसी आभा वाली धरा आदि की इस प्रकार पूजा करनी चाहिए । यथा -

प्रयोगकथनम्

जन्मभे दशमे तस्मात्पुनश्चैकोनविंशके ॥ ३६ ॥

ॐ धरायै नमः, ॐ उमायै नमः, ॐ पावन्यै नमः,
ॐ पद्मायै नमः, ॐ शान्तायै नमः, ॐ अमोघायै नमः
ॐ जयायै नमः, ॐ अमलायै नमः,

अष्टम आवरण में पूर्वादि दिशओं के क्रम से अनन्त आदि ८ रुद्रों की निम्न मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ अनन्ताय नमः, ॐ सूक्ष्माय नमः, ॐ शिवोत्तमाय नमः
ॐ एकनेत्राय नमः, ॐ एकरुद्राय नमः, ॐ त्रिमूर्तये नमः,
ॐ श्रीकण्ठाय नमः, ॐ शिखण्डिने नमः,

नवम आवरण में उत्तर दिशा से विलोग क्रम द्वारा उमा आदि की निम्न मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ उमायै नमः, उत्तरे, ॐ चण्डेश्वराय नमः वायव्ये,
ॐ नन्दिने नमः पश्चिमे, ॐ महाकालाय नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ गणेशाय नमः दक्षिणे, ॐ वृषभाय नमः आग्नेये,
ॐ भृङ्गरिटिने नमः पूर्वे, ॐ स्कन्दाय नमः ऐशान्ये,

फिर **दशम आवरण** में पूर्व आदि दिशाओं में ब्राह्मी आदि मातृकाओं का निम्न मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ ब्राह्मचै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः, ॐ ॐ कौमार्यै नमः,
ॐ वैष्णव्यै नमः ॐ वाराह्यै नमः ॐ इन्द्राण्यै नमः,
ॐ चामुण्डायै नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः, ।

इसके बाद भूपुर में अपनी अपनी दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों का निम्न मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । यथा - ॐ लं इन्द्राय नमः

ॐ रं अग्नये नमः ॐ मं यमाय नमः ॐ क्षं निर्ऋत्ये नमः
ॐ वं वरुणाय नमः ॐ यं वायवे नमः ॐ सं सोमाय नमः उत्तरे,
ॐ ईशानाय नमः, ॐ आं ब्रह्मणे नमः, ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः

फिर भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं में वज्रादि आयुधों की इस प्रकार पूजा करनी चाहिए । यथा - ॐ वं वज्राय नमः,

ॐ शं शक्तये नमः, ॐ दं दण्डाय नमः, ॐ खं खड्गाय नमः,
ॐ पां पाशय नमः, ॐ अं अंकुशाय नमः, ॐ गं गदायै नमः,
ॐ शूं शूलाय नमः, ॐ चं चक्राय नमः, ॐ पं पद्माय नमः,

इस प्रकार आवरण पूजा करने के बाद धूप दीपादि उपचारों से विधिवत् भगवान् महामृत्युञ्जय का पूजन करना चाहिए ॥ २६-३६ ॥

जुहुयाद्यः सुधावल्याः समिधश्चतुरंगुलाः ।
सरोगान्त्सकलाञ्छत्रून् पराभूय श्रियायुतः ॥ ४० ॥
मोदते पुत्रपौत्राद्यैः शतवर्षाणि साधकः ।
समिद्भिः श्रीफलोत्थाभिर्होमः सम्पत्तिसिद्धये ॥ ४१ ॥
पलाशतरुजाभिस्तु ब्रह्मवर्चससिद्धये ।
वटोत्थाभिर्धनप्राप्त्यैखादिराभिस्तु कान्तये ॥ ४२ ॥
तिलैरधर्म नाशाय सर्षपैः शत्रुनष्टये ।
पायसेन कृतो होमः कान्तिश्रीकीर्तिदायकः ॥ ४३ ॥
कृत्या मृत्युक्षयकरो दध्ना संवादसिद्धिदः ।
होमसंख्या तु सर्वत्रायुतमानेन कीर्तिता ॥ ४४ ॥
अष्टोत्तरशतं दूर्वात्रिकहोमाद्रुजां क्षयः ।
स्वजन्मदिवसे यस्तु पायसैर्मधुरान्वितैः ॥ ४५ ॥
जुहोति तस्य वर्द्धन्तेमलारोग्यकीर्तयः ।
गुडूचीबकुलोत्थाभिः समिद्भिर्हवनं नृणाम् ॥ ४६ ॥

सुधावल्या गुडूच्याः । चतुरङ्गुलप्रमाणाः समिधः ॥ ४० ॥ श्रीफलं बिल्वः ॥ ४१ ॥ * ॥ ४२–४४ ॥ रुजां रोगाणाम् ॥ ४५ ॥ * ॥ ४६ ॥

काम्य प्रयोग - जन्म नक्षत्र से १० वें नक्षत्र में अथवा २१ वें नक्षत्र में गुडूची की चार अंगुल वाली समिधाओं से जो व्यक्ति हवन करता है वह अपने रोग एवं शत्रुओं का विनाश कर संपत्ति प्राप्त करता है और पुत्र पौत्रों के साथ आमोद पूर्वक सौ वर्ष तक जीवित रहता है ॥ ३९-४१ ॥

संपत्ति प्राप्त करने के लिए श्रीफल की समिधाओं से हवन करना चाहिए। ब्रह्मवर्चस् वृद्धि के लिए पलाश वृक्ष की लकड़ी से होम करना चाहिए । धन प्राप्ति के लिए बरगद की समिधाओं से तथा कान्ति बढ़ाने के लिए खदिर की समिधाओं से हवन करना चाहिए ॥ ४१-४२ ॥

अधर्म नाश के लिए तिलों से और शत्रुनाश के लिए सरसों का होम करना चाहिए । खीर का होम करने से कान्ति, लक्ष्मी तथा कीर्ति प्राप्त होती है। दही का होम परप्रयुक्त कृत्या एवं अपमृत्यु का नाश करता है तथा विवाद में सफलता मिलती है ॥ ४२-४४ ॥

इन सभी आहुतियों में होम की संख्या दश हजार कही गई है ॥ ४४ ॥

तीन पत्तों वाले तीन तीन दूर्वाओं के १०८ होम से रोग नष्ट होते है । जो व्यक्ति अपने वर्षगांठ के दिन त्रिमधुर (घी, मधु और शर्करा) मिश्रित खीर से होम करता है जीवन में उसकी लक्ष्मी, आरोग्य एवं कीर्ति का विस्तार

जन्म तारात्रयेरोगं मृत्यं चापि विनाशयेत्।
प्रत्यहञ्जुहुयाद् दूर्वा अपमृत्युविनष्टये ॥ ४७ ॥
किंबहूक्तेन सर्वेष्टं प्रयच्छति शिवो नृणाम्।
अपामार्गसमिद्भिश्च सिद्धान्नैर्ज्वरनष्टये ॥ ४८ ॥
दुग्धाक्तैरमृताखण्डैर्मासहोमोऽखिलाप्तये ।

रुद्रजपांगभूतोऽपरो दशार्णमन्त्रः

तारो हृद्भगवान्ङेन्तो रुद्रायेति दशाक्षरः ॥ ४६ ॥
बोधायनो मुनिः पंक्तिश्छन्दो रुद्रोऽस्य देवता।

रुद्रविधाने एकविंशतिऋचात्मकन्यासः

पञ्चन्यासान् प्रकुर्वीत स्वस्वरुद्रत्वसिद्धये ॥ ५० ॥
यजुर्वेदस्थितान् मन्त्रानेकत्रिंशत्स्थले न्यसेत्।
या ते रुद्रशिखादेशे ह्यस्मिन्महतिमस्तके ॥ ५१ ॥

जन्मतारात्रये जन्मनक्षत्रे ततो दशमेकोनविंशयोश्च ॥ ४७–४८ ॥ रुद्रजपाङ्गभूतं दशार्णमाह – **तार** इति । भगवान् रुद्रोऽपि ङेन्तः । पदद्वयं चतुर्थ्यन्तम् । यथा – ॐ नमो भगवते रुद्रायेति ॥ ४६ ॥ रुद्रविधानमाह – **पञ्चेति** ॥ ५० ॥ १. या ते रुद्रेत्यृचा शिखायां न्यसेत् । २. अस्मिन् महत्यर्णवे शिरसि ॥ ५१ ॥

होता है ॥ ४५-४६ ॥

जन्म नक्षत्र से तीन नक्षत्र पर्यन्त गुडूची एवं बकुल (माल श्रीं) की समिधाओं से होम करने से मनुष्यों का रोग एवं अपमृत्यु दूर हो जाता है ॥ ४६-४७ ॥

अपमृत्यु को नष्ट करने के लिए प्रतिदिन दूर्वाओं का होम करना चाहिए । इस विषय में हम विशेष क्या कहें भगवान् शिव उपासना से मनुष्यों को समस्त अभीष्ट फल देते हैं ॥ ४७-४८ ॥

ज्वर नष्ट करने के लिए अपामार्ग की समिधाओं का होम करना चाहिए । तथा समस्त अभिलषित प्राप्ति हेतु दुग्ध में डुबोये गये गिलोय के टुकड़ो से एक मास पर्यन्त होम करना चाहिए ॥ ४८-४६ ॥

अब **महामृत्युञ्जय के दशाक्षर मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

तार (ॐ), हृत् (नमः), चतुर्थ्यन्त भगवच्छब्द (भगवते), फिर 'रुद्राय' - यह दशाक्षर मन्त्र है ।

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ नमो भगवते रुद्राय' ॥ ४६ ॥

इस मन्त्र के बोधायन ऋषि हैं, पंक्ति छन्द तथा महारुद्र देवता है ॥ ४६॥

सहस्राणि ललाटे तु हंसः शुचि भ्रुवोर्न्यसेत्।
त्र्यम्बकं नेत्रयोः श्रुत्योर्नम स्रुत्याय विन्यसेत्॥ ५२॥
मानस्तोके नासिकायामवतत्यमुखे तथा।
नीलग्रीवा इति ऋचोर्द्वयं कण्ठे न्यसेद् बुधः॥ ५३॥
नमस्ते अस्त्वायुधेति मन्त्रमंसद्वये न्यसेत्।
या ते हेतिरिमां बाह्वोर्ये तीर्थानीति हस्तयोः॥ ५४॥
सद्योजातं प्रपद्यामीत्यृचमंगुष्ठयोर्न्यसेत्।
वामदेवाय तर्जन्योरघोरेभ्योऽथ मध्ययोः॥ ५५॥
तत्पुरुषाया नामायामीशानस्तु कनिष्ठयोः।
नमो वः किरिकेभ्यस्तु हृदि मन्त्रमिमं न्यसेत्॥ ५६॥
नमो गणेभ्यः पृष्ठे तु विन्यसेत्साधकोत्तमः।
ततः पार्श्वद्वये न्यस्येन्नमो हिरण्यबाहवे॥ ५७॥

---

३. सहस्राणि सहस्रशः भाले । ४. हंसः शुचिषत्० भ्रुवोः । ५. त्र्यम्बकं यजामहे० नेत्रयोः । ६. नमः स्त्रुत्याय च पथ्याय चेति कर्णयोः ॥ ५२ ॥ ७. मानस्तोके० नसोः । ८. अवतत्य धनुः मुखे । ६. 'नीलग्रीवाः शितिकण्ठादिवं', 'नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा' इति ऋग्द्वयं कण्ठे ॥ ५३ ॥ १०. नमस्ते अस्त्वायुधायानातताय० स्कन्धयोः । ११. याते हेति० बाहोः । १२. ये तीर्थानि० करयोः ॥ ५४ ॥ १३–१७. सद्यो जातमिति तैत्तिरीय शाखोक्तं मन्त्रपञ्चक-मङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीषु । १८. नमो वः किरिकेभ्यो देवानां हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षीणकेभ्यो नम आनिर्हतेभ्य इति हृदि ॥ ५५–५६ ॥ १६. नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नम इति पृष्ठे । २०. नमो हिरण्यवाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नम इति पार्श्वयोः ॥ ५७ ॥

इस मन्त्र में आये हुए अपने उन उन रुद्र स्वरूपों को बनाने के लिए यजुर्वेद में आये हुये मन्त्रों से शरीर के इकत्तीस स्थानों पर इस प्रकार पञ्च न्यास करना चाहिए ॥ ५०-५१ ॥

(i) 'याते रुद्र०' मन्त्र का शिखा पर, 'अस्मिन महति०' का शिर पर, 'सहस्राणि सहस्रश०' का ललाट पर, 'हंसः शुचिषत्०' का भौं पर, 'त्र्यम्बकं यजामहे०' का नेत्रों पर, 'नमः स्त्रुत्यायच०' का कर्ण पर, 'मानस्तोके०' का नाक पर, 'अवतत्यं धनुः०' का मुख पर, 'नीलग्रीवा०' इन दो ऋचाओं का कण्ठ पर न्यास करना चाहिए । 'नमस्तेअस्त्वायुधि०' इस मन्त्र का दोनों कन्घों पर, 'याते हेति०' इस मन्त्र से दोनों बाहु में, 'ये तीर्थानि०' इस मन्त्र का दोनों हाथों में, 'संद्योजातं प्रपद्यामि०' इस मन्त्र का दोनों अंगूठो में, 'वामदेवाय०' इस मन्त्र का

हिण्यगर्भो नाभौ च कट्योर्मीढुष्टमेति च।
ये भूतानामिमं गुह्ये मन्त्रं विन्यस्य साधकः ॥ ५८ ॥
अपाने शिरसा युक्तां जातवेदस इत्यृचम्।
मानो महान्तमित्यूर्वोरेषते जानुनोर्न्यसेत् ॥ ५६ ॥
ये पथां पादयोर्न्यस्याध्यवोचत् कवचे न्यसेत्।
मन्त्रं नमो बिल्मिने चेत्युपवर्मणि विन्यसेत् ॥ ६० ॥
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय तृतीयेऽक्षिणि साधकः।
प्रमुञ्च धन्वन इति मन्त्रेणाऽस्त्रं प्रविन्यसेत् ॥ ६१ ॥
इत्येकत्रिंशदङ्गानां न्यासः प्रथम ईरितः।
ततः कुर्वीत दिग्बन्धं य एतावन्त इत्यृचा ॥ ६२ ॥

---

२१. हिरण्यगर्भः नाभौ । २२. मीढुष्टम शिवाय नमः कट्योः । २३. ये भूतानामधिपतयः गुह्ये ॥ ५८ ॥ २४. जातवेदसे इमामृचं शिरोयुतां जातवेदसे सुनवाम सोम० तामग्निवर्णामित्यस्यान्त सुतरसितरसे नमः सुतरसितरसे नमः इति शिरोयुतामृग्द्वयमपाने । २५. मानो महान्तमूर्वोः । २६. एष ते रुद्रभागः जानुनोः ॥ ५६ ॥ २७. ये पथां पथिरक्षयः पदोः । २८. अध्यवोचदधिवक्ता कवचे । नमो बिल्मिने च कवचिने० । २६. इत्युपकवचे ॥ ६० ॥ ३०. नमो अस्तु नीलग्रीवाय० तृतीयनेत्रे । ३१. प्रमुञ्च धन्वन० अस्त्रे ॥ ६१ ॥ इति प्रथमोन्यासः । य एतावन्तश्च दिग्बन्धः ॥ ६२ ॥

दोनो तर्जनी में, 'अघोरेभ्य०' इस मन्त्र का दोनों मध्यमा में, 'तत्पुरुषाय०' इस मन्त्र का दोनों अनामिका में, 'ईशानः०' इस मन्त्र का दोनों कनिष्ठा में, 'नमो वः किरिकेभ्यः०' इस मन्त्र का हृदय में, 'नमो गणेभ्यः०' इस मन्त्र का पृष्ठ में, 'नमो हिरण्यबाहवे०' इस मन्त्र का दोनो पार्श्वभाग में, 'हिरण्यगर्भः०' इस मन्त्र का नाभि में, 'मीढुष्टम०' इस मन्त्र का दोनों कटिभाग में, 'ये भूता नाम०' इस मन्त्र का गुह्यस्थान में, 'जातवेद' से लेकर दो ऋचाओं का शिरः युक्त अपान में, 'मानो महान्तं०' इस मन्त्र का दोनो ऊरूप्रदेश में, 'एष ते रुद्रभगः०' इस मन्त्र का दोनो जानुओं में, 'ये पथामृ०' दोनों पैरो में, 'अध्यवोचदधिवक्ता०' का कवच में, 'नमो विल्मिने च कवचिने०' इस मन्त्र का उपकवच में, 'नमोस्तु नीलग्रीवाय०' नेत्रत्रय में, 'प्रमुञ्चधन्वनः०' का अस्त्र में न्यास करना चाहिए । इस प्रकार से उक्त अंगों में मन्त्रों का न्यास करना प्रथम न्यास कहा गया है ॥ ५१-६२ ॥

विमर्श - १. ॐ या ते रुद्र ... चाकशीहि (यजु०. १६. २) शिखायाम्,
२. ॐ अस्मिन् महति ... तन्मसि, (यजु०. १६. ५५) शिरसि,
३. ॐ सहस्राणि ... कृधि, (यजु०. १६. ५३) भाले,

४. ॐ हंसः ... शुचिषद्, (यजु०. १०. २४) भ्रुवोः,
५. ॐ त्र्यम्बकं ... मामृतात्, (यजु०. ३. ६०) नेत्रयाः,
६. ॐ नमः स्रुत्याय ... नमः, (यजु०. १६. ३७) कर्णयोः,
७. ॐ मानस्तोके ... हवामहे, (यजु०. १६. १६) नसोः,
८. ॐ अवतत्य ... भवः, (यजु०. १६. १३) मुखे,
६. ॐ नीलग्रीवाः ... क्षमाचराः, (यजु०. १६. ५६, ५७) कण्ठे,
१०. ॐ नमस्ते ... तवधन्वने, (यजु०. १६. १४) स्कन्धयोः,
११. ॐ या ते ... परिभुज, (यजु०. १६. ११) बाहोः,
१२. ॐ ये तीर्थानि ... तन्मसि, (यजु०. १६. ६१) हस्तयोः,
१३. ॐ सद्योजातं ... नमः, (तै० आ०. १०. ४३. १) अंगुष्ठयोः,
१४. ॐ वामदेवाय ... नमः, (तै० आ०. १०. ४४. १) तर्जन्यो,
१५. ॐ अघोरेभ्यः ... रुद्ररूपेभ्यः, (तै० आ०. १०. ४५. १) मध्यमयोः,
१६. ॐ तत्पुरुषाय ... प्रचोदयात्, (तै० आ०. १०. ४६. १) अनामिकयोः,
१७. ॐ ईशानः ... सदाशिवोम्, (तै० आ०. १०. ४७. १) कनिष्ठयोः,
१८. ॐ नमो वः ... नम आनिहंतेभ्यः, (यजु०. १६. ४६) हृदये,
१६. ॐ नमो गणेभ्यो ... नमो नमः, (यजु०. १६. २५) पृष्ठे,
२०. ॐ नमो हिरण्यबाहवे ... पतये नमः, (यजु०. १६. १७) पार्श्वयोः,
२१. ॐ हिरण्यगर्भः ... विधेम, (यजु०. १३. ४.) नाभौं,
२२. ॐ मीढुष्टम ... गहि, (यजु०. १६. ५१) कट्योः,
२३. ॐ ये भूतानाम ... तन्मसि, (यजु०. १६. ५६) गुह्ये,
२४. ॐ जातवेदसे ... दुरितात्यग्निः, (तै० आ०. १०. १. १६) तामग्निवर्णाम्० नमः ... (तै० आ०. १०. १. १) दो ऋचाओं से शिरोयुक्त अपाने,
२५. ॐ मानो महान्तं ... रीरिषः, (यजु०. १६. १५.) उर्वोः,
२६. ॐ एष ते ... पशुः, (यजु०. ३. ५७) जान्वाः,
२७. ॐ ये पथां ... तन्मसि, (यजु०. १६. ६०) पादयोः,
२८. ॐ अध्यवोचदधिवक्ता ... परासुव, (यजु०. १६. ५) कवचे,
२६. ॐ नमो बिल्मिने ... चाहन्याय च, (१६. ३५) उपकवचे,
३०. ॐ नमोस्तु ... नम, (यजु०. १६. ८) तृतीय नेत्रे,
३१. ॐ प्रमुञ्च ... भगवोवप, (यजु०. १६. ६) अस्त्रे,

उक्त मन्त्रों से शरीर के ३१ अङ्गों पर न्यास करने के बाद 'एतावन्तश्च भूयांसश्च दिशो रुद्रान्वितस्थिरे०' (यजु०. १६. ६३) मन्त्र से दिग्बन्ध करना चाहिए यहाँ तक प्रथमन्यास कहा गया ॥ ५१-६२ ॥

अक्षरादिन्यासकथनम्

मूलवर्णांस्ततो न्यस्येन्मस्तके नसि चालिके।
मुखे कण्ठे हृदि पुनर्हस्तयोर्दक्षवामयोः॥ ६३॥
नाभौ पदोरिति न्यासो दशाङ्गेषु द्वितीयकः।
पादोरुहृन्मुखे मूर्ध्नि सद्योजातमुखा ऋचः॥ ६४॥
विन्यस्य प्रत्यृचं ब्रूयाद्धंसहंसेति साधकः।
तृतीयन्यास इत्युक्तः कृते यस्मिञ्छिवो भवेत्॥ ६५॥

अक्षरन्यासमाह – **मूलेति** । १. ॐ नमः शिरसि – नं नमः नसोरित्यादि०। इति प्रथमो न्यासः ॥ ६३ ॥ २. ॐ शिरसे नमः – नां नासिकायै नमः । इति द्वितीयो न्यासः । ३. सद्योजातं प्रपद्यामीत्यादिकं मन्त्रपञ्चकं पादादिषु न्यस्येत् । हंस हंस इति वदेत् । इति तृतीयो न्यासः ॥ ६३–६५ ॥

(ii) अब **दशाक्षर मन्त्र का अक्षरन्यास** कहते है - मूल मन्त्र के वर्णों से क्रमशः मस्तक, नासिका, ललाट, मुख, कण्ठ, हृदय, दाहिना हाथ, बाया हाथ, नाभि एवं पैरों पर इस प्रकार कुल १० अङ्गो पर न्यास द्वितीय न्यास कहा जाता है ॥ ६३-६४ ॥

विमर्श - यथा - ॐ नमः मूर्ध्नि, नं नमः नासिकायाम्
मों नमः ललाटे, भं नमः मुखे, गं नमः कण्ठे,
वं नमः हृदये, तें नमः दक्षिणहस्ते, रुं नमः वामहस्ते,
द्रां नमः नाभौ, यं नमः पादयोः ॥ ६३-६४ ॥

(iii) अब इस **दशाक्षर मन्त्र का तृतीय न्यास** कहते हैं -
सद्योजातं प्रपद्यानि से लेकर - ईशानः सर्वविद्यानां पर्यन्त ५ ऋचाओं से क्रमशः पैर, ऊरू, हृदय, मुख और शिर पर न्यास करते समय साधक प्रत्येक ऋचा के अन्त में हंस हंस का उच्चारण करे । यह तृतीय न्यास है । इसके करने से वह साधक शिव स्वरूप बन जाता है ॥ ६४-६५ ॥

विमर्श - न्यास विधि -

ॐ सद्योजातं प्रपद्यानि ... नमः, हंस हंस (तै० आ० १०. ४३. १) पादयोः,
ॐ वामदेवाय ... नमः, हंस हंस (तै० आ० १६. ४. ४१) ऊर्वोः,
ॐ अघोरेभ्यो ... रुद्ररूपेभ्यः, हंस हंस (तै० आ० १०. ४५. १) हृदि,
ॐ तत्पुरुषाय ... प्रचोदयात्, हंस हंस (तै० आ० १०. ४६. १) मुखे,
ॐ ईशानः ... शिवोम्, हंस हंस (तै० आ० १०. ४०. १) मूर्ध्नि,
यहाँ तक तृतीय न्यास कहा गया ॥ ६४-६५ ॥

इस प्रकार तीनों न्यासों को करने के बाद संपुटीकरण करना चाहिए । दिशाओं

एवं न्यासत्रयं कृत्वा संपुटं रचयेत्ततः ।
दिक्षु वासवमुख्यानां न्यासः संपुट उच्यते ॥ ६६ ॥
त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण प्राच्यां न्यस्येद्बिडौजसम् ।
त्वन्नो अग्ने ऋचावह्निं सुगं न इत्यृचा यमम् ॥ ६७ ॥
असुन्वन्तनिर्ऋतिं च तत्त्वायामीति तोयपम् ।
आ न्रो नियुद्भिर्वायुं च वयं सोमेत्यृचा विधुम् ॥ ६८ ॥
तमीशानमितीशानमाग्नेयादिषु विन्यसेत् ।
अस्मे रुद्राविधिं चोर्ध्वं स्योनेति पृथिवीमधः ॥ ६९ ॥
एवं यः संपुटं कुर्यात् स स्यात्किल्विषवर्जितः ।
तं दीप्यमानमीक्षन्ते प्रेतचौराद्युपद्रवाः ॥ ७० ॥
न पराभवितुं शक्ताः पलायन्तेऽतिदूरतः ।
मनोजूतिर्न्यसेद् गुह्येऽबोध्यग्निर्जठरानले ॥ ७१ ॥

सम्पुटीकरणं कार्यामित्याह – **एवमिति** । संपुटं नाम त्रातारमिन्द्रमित्यादि मन्त्रैः पूर्वादिषु क्रमेण मुद्रिताञ्जलिदर्शनं तेषां नतयोऽपि कार्याः । एवं कृते तेजस्वीभवतीत्यर्थः ॥ ६६–७० ॥ इति संपुटीकरणं तत्फलं चोक्त्वा चतुर्थन्यासमाह – ४. मनोजूति० गुह्ये । अबोध्यग्निरुदरे ॥ ७१ ॥

में इन्द्रादि मुख्य देवताओं का न्यास **संपुट न्यास** कहा जाता है ॥ ६६ ॥

'त्रातारमिन्द्रं०' मन्त्र से पूर्व में इन्द्र का, 'त्वन्ने अग्ने०' इस मन्त्र से अग्निकोण में अग्नि का, 'सुगन्नु पन्था०' इस मन्त्र से दक्षिण में यम का न्यास, 'असुन्वन्तं०' इस मन्त्र से निर्ऋति का, 'तत्त्वायामि०' इस मन्त्र से पश्चिम में वरुण का, 'आनो नियुद्भिः०' इस मन्त्र से वायव्य में वायु का, 'वयं सोम०' इस ऋचा से उत्तर में सोम का, 'तमीशानम्०' इस ऋचा से ईशान में ईशानदेव का न्यास करना चाहिए । 'अस्मे रुद्रमेहना०' मन्त्र से ऊपर ब्रह्मदेव का तथा 'स्योना पृथिवी०' इस मन्त्र से नीचे पृथ्वी का न्यास करना चाहिए ॥ ६७-६९ ॥

इस प्रकार जो साधक संपुटन्यास करता है वह पाप रहित हो जाता है। उसके तेज से प्रेत और चौरादि उपद्रवी तत्त्व उसे धर्षित नहीं कर सकते । किन्तु स्वयं पराभूत हो कर उससे दूर भाग जाते हैं ॥ ७०-७१ ॥

विमर्श – सम्पुटीकरण प्रयोग –

ॐ त्रातारमिन्द्र ... मघवाधात्विन्द्रः (यजु०. २०. ५०) पूर्वे इन्द्रं न्यसामि,
ॐ त्वन्नोः अग्ने ... रक्षमाणस्तवव्रते, (यजु०. ३४. १३) आग्नेये अग्नि न्यसामि,
ॐ सुगन्नु पन्थां ... कृणोतु, (का० सं० २. १५) दक्षिणे यमं न्यसामि,
ॐ असुन्वन्तं ... तुभ्यमस्तु, (यजु०. १२. ६२) नैर्ऋत्ये निऋतिं न्यसामि,

मूर्द्धानं हृदये न्यस्येन्मुखे मर्माणि ते ऋचम् ।
जातवेदास्तु शिरसि न्यासः प्रोक्तश्चतुर्थकः ॥ ७२ ॥
हृदयं शिवसंकल्पं शिरः पुरुषसूक्तकम् ।
शिखाद्भ्यः संभृत इति वर्मप्रतिरथं मतम् ॥ ७३ ॥
विभ्राडिति स्मृतं नेत्रमस्त्रं तु शतरुद्रियम् ।
अयं तु पञ्चमो न्यासः कृतः सर्वेष्टसिद्धिदः ॥ ७४ ॥

मूर्धानं दिवो० हृदि । मर्माणि ते वर्मभिश्छाद० मुखे । जातवेदाय दिवापावकोऽसि० शिरसि । एवं पञ्चाङ्गेषु न्यासश्चतुर्थः ॥ ७२ ॥ षडङ्गमाह – **हृदयमिति** । ५. यज्जाग्रतः० इत् । सहस्त्रशीर्षा० शिरः । अद्भ्यः सम्भृतः० शिखा । आशुः शिशानः० कवचम् ॥ ७३ ॥ विभ्राट्० नेत्रम् । नमस्ते रुद्रमन्यवे इत्यादि शतरुद्रियम् अस्त्रम् । इति पञ्चमन्यासः ॥ ७४ ॥

ॐ तत्त्वायामि ... प्रमोषीः (यजु०. १८. ४६) पश्चिमे वरुणं न्यसामि,
ॐ आनो नियुद्भिः ... सदानः (यजु०. २७. २८) वायव्ये वायुं न्यसामि,
ॐ वयं ... सचेमहि (यजु०. ३. ५६) उत्तरे सोमं न्यसामि,
ॐ तमीशानं ... स्वस्तये (यजु०. २५. १८) ऐशान्ये ईशानं न्यसामि,
ॐ अस्मे रुद्रा ... अवन्तु देवाः, (यजु०. ३३. ५०) ऊर्ध्वे ब्रह्माणं न्यसामि,
ॐ स्योना ... शर्म्मसप्रथाः, (यजु०. ३५. २१)अधः पृथ्वीं न्यसामि ॥ ६७-७१ ॥

(iv) अब **चतुर्थ न्यास** कहते हैं - 'मनोजूतिर्' इस ऋचा का गुह्य में, 'अबोध्यग्नि' इस ऋचा का उदर में, 'मूर्धानं दिवो' इस ऋचा का हृदय में, 'मर्माणि ते' इस ऋचा का मुख में तथा 'जातवेदाः दिवा' इस ऋचा का शिर पर न्यास करना चाहिए । यह **चतुर्थन्यास** कहा जाता है ॥ ७१-७२ ॥

विमर्श - यथा - ॐ मनोजूतिर ... प्रतिष्ठ (यजु०. २. १३) गुह्ये,
ॐ अबोध्यग्निः ... (यजु०. १५-२४) उदरे,
ॐ मूर्द्धा ... देवाः (यजु०. ७. २४) हृदि,
ॐ मर्म्माणि ... मदन्तु (यजु०. १७. ४६) मुखे,
ॐ जातवेदाय ... (तै. ब्रा. ३. १०. ५. ६) शिरसि ॥ ७१-७२ ॥

(v) अब **पञ्चमन्यास** कहते हैं - 'यज्जाग्रतो०' इत्यादि शिवसंकल्प के ६ सूत्रों का हृदय पर, 'सहस्रशीर्षाः ... देवाः' इत्यादि १६ पुरुष सूक्तों का शिर पर, 'अद्भ्यः संभृतं' इत्यादि ६ मन्त्रों का शिखा पर, 'आशुः शिशानः' इत्यादि १२ मन्त्रों का कवच पर, 'विभ्राट्०' इत्यादि १७ मन्त्रों का नेत्र पर तथा 'नमस्ते रुद्रमन्यवे' इत्यादि शतरुद्रिय अध्याय का अस्त्र पर न्यास करना चाहिए । यह सर्वाभीष्टसाधक पञ्चम न्यास कहा गया है ॥ ७३-७४ ॥

रुद्रपूजनप्रकारः अष्टकानि च

एवं न्यस्य प्रणम्याऽथ ध्यायेदात्मनि शंकरम् ॥ ७५ ॥
कैलासाचलसन्निभं त्रिनयनं पञ्चास्यमम्बायुतं
नीलग्रीवमहीशभूषणधरं व्याघ्रत्वचाप्रावृतम् ।
अक्षस्रग्वरकुण्डिकाभयकरं चान्द्रीं कलां बिभ्रतं
गङ्गाम्भो विलसज्जटं दशभुजं वन्दे महेशं परम् ॥ ७६ ॥

एवमिति । इत्थं पञ्चाङ्गन्यासं कृत्वा प्रणम्याष्टाङ्गं नत्वात्मानं रुद्रस्वरूपं ध्यायेत् । नमस्कारश्चाष्टभिर्मन्त्रैर्विधेयः, मन्त्रो यथा – १. हिरण्यगर्भः० । २. यः प्राणतः० । ३. ब्रह्मजज्ञानं० । ४. महीद्यौः० । ५. उपश्वासय० । ६. अग्नेनय० । ७. या ते अग्ने० । ८. इमं यमः० । इमा अष्टावृचः पठन्नष्टाङ्गनमस्कुर्यात् । अष्टाङ्गानि यथा – उरसा । शिरसा दृष्टया मनसा श्रद्धयाऽपि च । पद्भ्यां कराभ्यां वाचा च प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः । इति ॥ ७५ ॥ ध्यानमाह – **कैलासेति** । अहीशावासुक्यादय एव भूषणानि यस्य तम्। अक्षमालावरौ दक्षयोरः । कुण्डिका कमण्डलुरभयं च वामयोः । परमान्नकैः पायसैः ॥ ७६–७७ ॥ * ॥ ७८ ॥

विमर्श - षडङ्गन्यास - ॐ यज्जाग्रतो०, येनकर्माणि०, यत्प्रज्ञान०, येनेदम्भूत०, यस्मिन्नृचः०, सुषारथिः०, (यजु०. १. ५-१०) हृदयाय नमः ।

ॐ सहस्त्रशीर्षा०, पुरुषऽएवेद०, एतावानस्य०, त्रिपादूर्ध्व०, ततोव्विराड०, तस्माद्यज्ञात् सर्व०, तस्माद्यज्ञात्सर्व०, तस्मादश्वा०, तं य्यज्ञं०, यत्पुरुषं०, ब्राह्मणो०, चन्द्रमा मनसो०, नाभ्याऽआसीद०, यत्पुरुषेण०, सप्तास्यासन्०, यज्ञेन०, (यजु०. २. १-१६) शिरसे स्वाहा।

ॐ अद्भयः संभृतं०, त्वेदाहमेतं०, प्रजापतिश्चरति०, यो देवेभ्यो०, रूचंम्ब्राह्म०, श्रीश्चते०, (यजु०. २. १७-२२) शिखायै वषट् ।

आशुः शिशानो०, संक्रन्दनेना०, सऽइषुहस्तै०, बृहस्पते परिदीया०, बल०, गोत्रमिदं०, अभिगोत्राणि०, इन्द्रऽआसान्नेता०, इन्द्रस्य०, उद्धर्षयम०, अस्माकमिन्द्रः०, अमीषां चित्त०, (यजु०, ३. १-१२) कवचाय हुम् ।

ॐ विभ्राट् वृहत्०, उदुत्यञ्जातवेद सं०, येनापावक०, देव्यावद्धवर्यू०, तम्प्रत्नवा पूर्व०, अयंव्वेनश्चोदय०, चित्रं देवाना०, आ इडाभि०, यदद्य०, तरणि०, तत्सूर्यस्य०, तन्मित्रस्य०, वण्णमहार०, वट सूर्य०, आयन्त इव०, अद्यादेवा०, आकृष्णेन०, (४, १-१७) नेत्रत्रयाय वौषट् ।

'ॐ नमस्ते रुद्रमन्यव तनेशाञ्जम्भेदद्ध्मः' (यजु०. ५. १-६६) अस्त्राय फट् । यहां रुद्राष्टाध्यायी की संख्या दी गई है ॥ ७३-७४ ॥

दशलक्षं जपेन्मन्त्रमयुतं परमान्नकैः ।
सघृतैर्जुहुयादग्नौ पीठे पूर्वोदिते यजेत् ॥ ७७ ॥
पूजायन्त्रमथो वक्ष्ये तथावरणदेवताः ।
अष्टपत्रं षोडशारं चतुर्विंशतिपत्रकम् ॥ ७८ ॥
दन्तपत्रं ततः कुर्याच्चत्वारिंशद्दलं ततः ।
तद्बहिर्भूपुरं कुर्यात् तत्र रुद्रं प्रपूजयेत् ॥ ७९ ॥
इष्ट्वा तं कर्णिकामध्ये सद्योजातादिकान् यजेत् ।
दिक्षु मध्ये ततोऽष्टारे नन्द्यादीनष्टसेवकान् ॥ ८० ॥

दन्तपत्रं द्वात्रिंशद्दलम् ॥ ७९ ॥ * ॥ ८०–८२ ॥

इस प्रकार षडङ्गन्यास कर प्रणाम करने के बाद अपनी आत्मा में भगवान् शंकर का ध्यान करना चाहिए ॥ ७५ ॥

इस मन्त्र के अनुष्ठान में **ध्यान का स्वरूप** कहते हैं - कैलाश पर्वत पर विराजमान त्रिनेत्र, पञ्चमुख, नीलकण्ठ, दशभुजाओं से युक्त पार्वती सहित परम शिव की मैं वन्दना करता हूँ, जो सर्पों की माला धारण किए हुये हैं, व्याघ्रचर्म का परिधान लपेटे हुये हैं, हाथों में क्रमशः अक्षमाला, वर, कुण्डिका, अभय मुद्रा और मस्तक पर चन्द्रकला धारण किए हुये, तथा जटाओं में स्थित गङ्गाजल से शोभित हो रहे हैं ॥ ७६ ॥

रुद्रपूजनयन्त्रम्

इस मन्त्र का दश लाख जप करना चाहिए । खीर एवं घी की १० हजार आहुतियाँ देनी चाहिए तथा पूर्वोक्त पीठ पर पूजन करना चाहिए (द्र० १६. २२-२५) ॥ ७७॥

अब मैं **भगवान् रुद्र के पूजा यन्त्र** तथा आवरण देवताओं को कहता हूँ -

सर्वप्रथम कार्णिका में अष्टदल, उसके ऊपर षोडशदल, पुनः चतुर्विंशति दल, द्वात्रिंशदल एवं चत्वारिंशदल बनाकर उसके बाहर भूपुर निर्माण कर रुद्र का पूजन करे ॥ ७८-७९ ॥

कर्णिका के मध्य में भगवान् रुद्र का पूजन कर चारों दिशाओं में तथा मध्य में क्रमशः सद्योजात, वामदेव, अघोर तत्पुरुष और ईशान देव का पूजन करें । फिर अष्टदल में उनके ८ सेवक नन्दी आदि का पूजन करे । १. नन्दी,
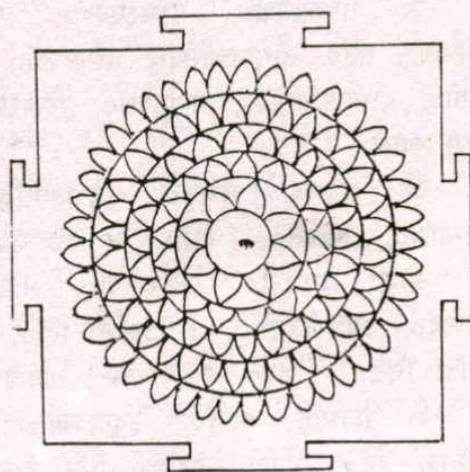
नन्दी महाकालसंज्ञो गणेशो वृषभस्तथा।
ततो भृङ्गीरिटिः स्कन्दउमाचण्डीश्वरोऽष्टमः ॥ ८१ ॥
ततस्तु षोडशदले द्वितीयावरणे स्थिताः।
अनन्तसूक्ष्मौ च शिव एकपादेकरुद्रकः ॥ ८२ ॥
ततस्त्रिमूर्तिश्रीकण्ठौ वामदेवोऽष्टमो मतः।
ज्येष्ठः श्रेष्ठो रुद्रकालौ कलाद्विकर्णाभिधः ॥ ८३ ॥
बलो बलाद्विकरणो बलप्रमथनस्तथा।
एतान् सम्पूज्य तार्तीये तत्त्वसंख्यान् सुरान्यजेत् ॥ ८४ ॥
सिद्ध्योऽष्टौ मातरोऽष्टौ भैरवाष्टकमित्यमून्।
ततश्चतुर्थावरणे भवान्नगान्नृपान्गिरीन् ॥ ८५ ॥
भवः शर्वस्तथेशानः पशुपो रुद्र एव च।
उग्रो भीमो महादेवः शिवाऽष्टकमुदाहृतम् ॥ ८६ ॥

कलाद्विकरणाभिधः कलविकरणः ॥ ८३ ॥ बलाद्विकरणो बलविकरणः । तार्तीये तृतीयावरणे तत्त्वावरणे तत्त्व संख्यांश्चतुर्विंशतिमितान् ॥ ८४ ॥ तानेवाह – **सिद्धय इति** । ता उक्ताः । भवान् अष्टौ । एवं नाग–नृपतिगिरयोऽपि प्रत्येकमष्टौ ॥ ८५ ॥ तानेवाह – **भव** इति ॥ ८६ ॥

---

२. महाकाल, ३. गणेश, ४. वृषभ, ५. भृङ्गीरिटी, ६. स्कन्द, ७. उमा और ८. चण्डीश्वर - ये आठ उनके सेवकगण कहे जाते हैं ॥ ८०-८१ ॥

फिर **द्वितीय आवरण** में षोडशदल स्थित देवताओं का पूजन करे । अनन्त, सूक्ष्म, शिव, एकपाद, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ, वामदेव, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, रुद्र, काल, कलविकरण, बल, बलविकरण एवं बलप्रमथन ये **१६ देव** कहे गये हैं ॥ ८२-८४ ॥

इसके बाद **तृतीय आवरण** में २४ दलों में स्थित २४ देवताओं का पूजन करे । अणिमा आदि ८ सिद्धियाँ, ब्राह्मी आदि ८ मातृकायें तथा अष्टभैरव - ये २४ तृतीय आवरण के देवता हैं ॥ ८४-८५ ॥

इसके बाद **चतुर्थ आवरण में** ३२ दलों में स्थित भव आदि ३२ देवताओं का, नागों, नृपों और पर्वतों का पूजन करना चाहिए । भव आदि ८ शिव, अनन्त आदि ८ नाग, वैन्य आदि ८ नृप तथा हिमवान् आदि ८ पर्वतों के नाम इस प्रकार है - **अष्ट शिव** - १. भव, २. शर्व, ३. ईशान, ४. पशुपति, ५. रुद्र, ६. उग्र, ७. भीम, एवं ८. महादेव । **अष्ट नाग** - १. अनन्त, २. वासुकि, ३. तक्षक, ४. कुलीरक, ५. कर्कोटक, ६. शंखपाल, ७. कम्बल तथा ८. अश्वतर - ये ८ नाग हैं । **अष्ट नृप** - १. वैन्य, २. पृथु, ३. हैहय, ४. अर्जुन, ५. शाकुन्तलेय, ६. भरत, ७. नल और ८. राम - ये ८ राजा हैं । **अष्ट पर्वत** - १. हिमवान्, २.

अनन्तो वासुकिश्चाऽथ तक्षकश्च कुलीरकः ।
कर्कोटकः शङ्खपालः कम्बलाश्वतरावपि ॥ ८७ ॥
इमे नागा वैन्यपृथूहैहयोऽर्जुनसंज्ञकः ।
शाकुन्तलेयो भरतो नलो रामो नृपाष्टकम् ॥ ८८ ॥
हिमवान्निषधो विन्ध्यो माल्यवान्पारियात्रकः ।
मलयो हेमकूटश्च गन्धमादन इत्यपि ॥ ८९ ॥
गिर्यष्टकं पञ्चमे तु चत्वारिंशत्सुरान् यजेत् ।
वासवादय इत्येषां शक्तयो ह्यायुधान्यपि ॥ ९० ॥
वाहनानि गजाश्चेति चत्वारिंशत्सुराः स्मृताः ।
इन्द्राग्नियमरक्षांसि वरुणानिलभाधिपाः ।
ईशान इति दिक्पालाः शचीस्वाहावराहजा ॥ ९१ ॥
खड्गिनीवारुणी चाऽपि वायवी च कुबेरजा ।

नागानाह – **अनन्त** इति ॥ ८७ ॥ नृपानाह – **वैन्योति** ॥ ८८ ॥ गिरीनाह – **हिमवानिति** ॥ ८९ ॥ वासवादय इति । प्रत्येकमष्टौ ॥ ९० ॥ तानाह – **इन्द्रेति** ॥ ९१–९२ ॥ * ॥ ९३–९४ ॥

निषधः, ३. विन्ध्य, ४. माल्यवान्, ५. पारियात्र, ६. मलय, ७. हेमकूट और ८. गन्धमादन ये ८ पर्वत हैं ॥ ८५-९० ॥

अब **पञ्चम आवरण** में पूजा के योग्य ४० देवताओं के नाम कहते हैं - इन्द्रादि ८ दिक्पाल, इन्द्राणी आदि ८ उनकी शक्तियाँ, वज्रादि उनके ८ आयुध, ऐरावत आदि उनके ८ वाहन तथा ८ दिग्गज ये ४० देवता हैं ॥ ९० ॥

इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर एवं ईशान ये ८ **दिक्पाल** है । शची, स्वाहा, वराहजा, खड्गिनी, वारुणी, वायवी, कुबेरजा एवं ईशानी ये ८ उनकी **शक्तियाँ** कही गई है । वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश अंकुश, गदा एवं शूलेय ८ उनके **आयुध** है । ऐरावत्, अज, महिष, प्रेत, मीन, पृषद् नर एवं वृषभ ये ८ उनके **वाहन** है । ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदन्त सार्वभौम और सुप्रतीक ये ८ **दिग्गज** है ॥ ९१-९४ ॥

इस प्रकार पञ्चावरण में तत्तदेवताओं की पूजा कर भूपुर में दिशाओं में विद्वान् साधक को पुनः दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए । यहाँ तक **षष्ठ आवरण** का पूजन कहा गया ॥ ९५ ॥

इसके बाद भूपुर के अग्नि कोण में विरूपाक्ष की, नैर्ऋत्य में विश्वरूप की, वायव्य में पशुपति की तथा ईशान कोण में ऊर्ध्वलिङ्ग का पूजन करना चाहिए । फिर भूपुर के बाहर ८ दिशाओं में आठ नागों का पूजन करना चाहिए । इस

ईशानीशक्तयः प्रोक्ताः कुलिशं शक्तिदण्डकौ ।
खड्गं पाशोंकुशं चैव गदाशूले च हेतयः ॥ ६२ ॥
ऐरावतोऽजमहिषो प्रेतमीनपृषन्नराः ।
वृषभो वाहनानि स्युर्दिक्पालानां क्रमादमी ॥ ६३ ॥
ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः ।
पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥ ६४ ॥
पञ्चाब्जान्येवमापूज्य भूगृहे दिक्षु दिक्पतीन् ।
पुनरभ्यर्चयेद्धीमान् षष्ठमावरणं स्मृतम् ॥ ६५ ॥
आग्नेयां भूगृहस्याऽथ विरूपाक्षं प्रपूजयेत् ।
विश्वरूपं यातुधानं वायव्यां तु पशोः पतिम् ॥ ६६ ॥
ऊर्ध्वलिङ्गमथैशान्यामथो भूसदनाद् बहिः ।
दिक्षु नागाष्टकं पूज्यमेवं सप्तावृतिर्यजिः ॥ ६७ ॥

नागानां वर्णजातिफणादिकथनम्

शेषाख्यस्तक्षकोऽनन्तो वासुकिः शंखपालकः ।
महापद्मः कम्बलश्च कर्कोटक इमेऽहयः ॥ ६८ ॥
श्वेतो नीलः कुंकुमाभः पीतकृष्णावथोज्ज्वलः ।
वर्णतः शेषमुख्याः स्युस्तेषां जातीः फणान् ब्रुवे ॥ ६६ ॥
विप्रो वैश्यस्तथाविप्रः क्षत्रियो वैश्यशूद्रकौ ।
शूद्रश्च क्रमतो ज्ञेयाः शेषाद्याः पूजने बुधैः ॥ १०० ॥

पञ्चाब्जानि पद्मानि ॥ ६५–६६ ॥ यजिः पूजासप्तावृतिः सप्तावरणयुता ॥ ६७ ॥ नागाष्टकमाह – **शेषाख्य** इति । अहयो नागाः ॥ ६८ ॥ तेषां वर्णानाह – **श्वेत** इति । पीतौ द्वौ वासुकिशंखपालौ । कृष्णौ महापद्मकम्बलौ ॥ ६६ ॥ जातीराह – **विप्र** इति ॥ १०० ॥

विधि से **सप्तम आवरण** की पूजा करनी चाहिए ॥ ६१-६७ ॥

शेष, तक्षक्र, अनन्त, वासुकि, शंखपाल, महायज्ञ, कम्बल और ककोर्टक ये ८ नागों के नाम है । इन नागों का वर्ण क्रमशः श्वेत, नीला, कुंकुम जैसा, पीला, काला तथा शेष तीनों का उज्ज्वल है ॥ ६८-६६ ॥

अब उन **नागों की जाति तथा फणों की संख्या** कहता हूँ - पूजा में शेष आदि नागों की जाति क्रमशः १. ब्राह्मण, २. वैश्य, ३. ब्राह्मण, ४. क्षत्रिय, ५. वैश्य, ६. शूद्र, तथा दो शूद्र हैं । उनके फणों की संख्या क्रमशः १ हजार, ५ सौ, एक हजार, ७ सौ, ७ सौ, ५ सौ, ३० तथा पुनः ३० बतलाई गई है ॥ ६६-१०१ ॥

दिग्बाणदशसप्ताद्रिशरसंख्यानि तु क्रमात्।
शतानि त्रिंशत्त्रिशच्च फणास्तेषां समीरिताः ॥ १०१॥

फणसंख्यामाह – दिगिति । शेषः सहस्त्रफणः । तक्षकः पञ्चशतफणः । अनन्तः सहस्रफणः । वासुकिशंखपालौ सप्तशतफणौ । महापद्मः पञ्चशतफणः। कम्बलककर्कोटकौ त्रिंशत्फणौ । तथा चैवं प्रयोगः – श्वेताय विप्रवर्णाय सहस्त्रफणाय शेषाय नम इत्यादिः ॥ १०१॥

विमर्श – आवरण पूजा विधि – सर्वप्रथम १६. ७६ में वर्णित भगवान् महामृत्युञ्जय के स्वरूप का ध्यान कर मानसोपचारों से उनका पूजन करे, पुनः विधिवत् अर्घ्य स्थापित कर पूर्ववत् पीठ शक्तियों का पूजन कर (द्र० १६. २१, २६) पीठ पर आसन देकर भगवान् महामृत्युञ्जय का धूप दीपादि उपचारों से पूजन करे। पुनः उनकी अनुज्ञा लेकर आवरणपूजा प्रारम्भ करे । आवरणपूजा के प्रारम्भ में १६. ५१-७४ पर्यन्त वर्णित पाँचों न्यास करे । तदनन्तर इस प्रकार आवरण पूजा करे –

कर्णिका के मध्य में मूल मन्त्र से भगवान् रुद्र का पूजन करे । फिर दिशाओं तथा मध्य में सद्योजात आदि पूजन करे । यथा – ॐ सद्योजाताय नमः, पूर्वे,
ॐ वामदेवाय नमः, दक्षिणे ॐ अघोराय नमः, पश्चिमे,
ॐ तत्पुरुषाय नमः, उत्तरे, ॐ ईशानाय नमः मध्ये

इसके बाद **प्रथमावरण** में अष्टदल में पूर्वादि दल के क्रम से नन्दी आदि का निम्न प्रकार से पूजन करना चाहिए – ॐ नन्दिने नमः पूर्वे,
ॐ महाकालाय नमः, आग्नेये, ॐ गणेशाय नमः, दक्षिणे,
ॐ वृषभाय नमः, नैर्ऋत्यदले, ॐ भृङ्गीरिटिने नमः, पश्चिमदले,
ॐ स्कन्दाय नमः, वायव्ये, ॐ उमायै नमः, उत्तरे,
ॐ चण्डीश्वराय नमः ऐशान्ये,

इसके पश्चात् **द्वितीयावरण** में षोडश दल में पूर्वादिदल के क्रम से अनन्तादि की पूजा करनी चाहिए – ॐ अनन्ताय नमः,
ॐ सूक्ष्माय नमः, ॐ शिवाय नमः, ॐ एकपादाय नमः,
ॐ एकरुद्राय नमः, ॐ त्रिमूर्तये नमः, ॐ श्रीकण्ठाय नमः,
ॐ वामदेवाय नमः, ॐ ज्येष्ठाय नमः ॐ श्रेष्ठाय नमः,
ॐ रुद्राय नमः, ॐ कालाय नमः, ॐ कलविकरणाय नमः,
ॐ बलाय नमः, ॐ बलविकरणाय नमः, ॐ बलप्रमथनाय नमः ।

तदनन्तर **तृतीयावरण** में चतुर्विंशति दलों में पूर्वादि दलों में अनुलोम क्रम से अणिमादि अष्ट सिद्धियों की, ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं की तथा अष्टभैरवों की निम्नलिखित मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए –
ॐ अणिमायै नमः, ॐ महिमायै नमः, ॐ लघिमायै नमः
ॐ गरिमायै नमः ॐ प्राप्त्यै नमः, ॐ प्राकाम्यै नमः,

ॐ ईशितायै नमः, ॐ वशितायै नमः, ॐ ब्राह्मयै नमः,
ॐ माहेश्वर्यै नमः, ॐ कौमार्यै नमः ॐ वैष्णव्यै नमः,
ॐ वाराह्यै नमः, ॐ इन्द्राण्यै नमः, ॐ चामुण्डायै नमः,
ॐ चण्डिकायै नमः, ॐ असिताङ्गभैरवाय नमः,ॐ रुरुभैरवाय नमः,
ॐ चण्डभैरवाय नमः, ॐ क्रोधभैरवाय नमः, ॐ उन्मत्तभैरवाय नमः,
ॐ कालभैरवाय नमः, ॐ भीषणभैरवाय नमः, ॐ संहारभैरवाय नमः ।

फिर **चतुर्थ आवरण** में ३२ दलों में भव आदि ८ शिवों की अनन्त आदि ८ नागों की वैन्य आदि ८ नृपों की तथा हिमवान् आदि ८ पर्वतों की पूजा करनी चाहिए - ॐ भवाय नमः, ॐ शर्वाय नमः, ॐ ईशानाय नमः,
ॐ पशुपतये नमः, ॐ रुद्राय नमः, ॐ उग्राय नमः,
ॐ भीमाय नमः, ॐ महादेवाय नमः ॐ अनन्ताय नमः,
ॐ वासुकये नमः, ॐ तक्षकाय नमः, ॐ कुलीरकाय नमः,
ॐ कर्कोटकाय नमः, ॐ शंखपालाय नमः, ॐ कम्बलाय नमः
ॐ अश्वतराय नमः ॐ वैन्याय नमः, ॐ पृथवे नमः,
ॐ हैहयाय नमः, ॐ अर्जुनाय नमः, ॐ शाकुन्तलेयाय नमः
ॐ भरताय नमः ॐ नलाय नमः, ॐ रामाय नमः
ॐ हिमवते नमः, ॐ निषधाय नमः, ॐ विन्ध्याय नमः,
ॐ माल्यवते नमः, ॐ पारियात्राय नमः, ॐ मलयाचलाय नमः,
ॐ हेमकूटाय नमः ॐ गन्धमादनाय नमः,

इसके बाद **पञ्चम आवरण** में चत्वारिंशदल में ८ दिक्पाल, उनकी ८ शक्तियाँ उनके ८ आयुध आठ वाहन तथा अष्ट दिग्गजों का पूजन करना चाहिए -
ॐ इन्द्राय नमः, ॐ अग्नये नमः, ॐ यमाय नमः,
ॐ निर्ऋतये नमः, ॐ वरुणाय नमः, ॐ वायवे नमः,
ॐ कुबेराय नमः, ॐ ईशानाय नमः, ॐ शच्यै नमः,
ॐ स्वाहायै नमः, ॐ वराहजायै नमः, ॐ खड्गिन्यै नमः,
ॐ वारुण्यै नमः, ॐ वायव्यै नमः, ॐ कुबेरजायै नमः,
ॐ ईशान्यै नमः, ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्त्यै नमः,
ॐ दण्डाय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः,
ॐ अंकुशाय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ शूलाय नमः,
ॐ ऐरावताय नमः, ॐ अजाय नमः, ॐ महिषाय नमः,
ॐ प्रेताय नमः, ॐ मीनाय नमः, ॐ पृषदे नमः,
ॐ नराय नमः, ॐ वृषभाय नमः, ॐ ऐरावताय नमः,
ॐ पुण्डरीकाय नमः, ॐ वामनाय नमः, ॐ कुमुदाय नमः,
ॐ अञ्जनाय नमः, ॐ पुष्पदन्ताय नमः,ॐ सार्वभौमाय नमः,
ॐ सुप्रतीकाय नमः ।

एवमर्चन्महादेवं पञ्चाङ्गन्यासपूर्वकम् ।
दशाक्षरजपासक्तो न सीदेत्त्स्वेष्टसाधने ॥ १०२ ॥
मनोहराणि गेहानि सुन्दर्यो वामलोचनाः ।
धनमिच्छापूरणान्तं लभते शिवसेवनात् ॥ १०३ ॥
प्रयोगान्पूर्वमन्त्रोक्तान् कुर्वीताऽत्र दशाक्षरे ।
दशाक्षरं भजन्विप्रो रुद्रजापी भवेत्सदा ॥ १०४ ॥

एवमिति । इत्थं पञ्चाङ्गन्यासं कृत्वा ॥ १०२-१०४ ॥

फिर **षष्ठ आवरण** में भूपुर में पूर्व आदि दिशाओं के क्रम से इन्द्रादि की निम्न मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए - ॐ लं इन्द्राय नमः,
ॐ रं अग्नये नमः, ॐ मं यमाय नमः, ॐ क्षं निर्ऋतये नमः,
ॐ वं वरुणाय नमः, ॐ यं वायवे नमः, ॐ सं सोमाय नमः,
ॐ हं ईशानाय नमः, ॐ आं ब्रह्मणे नमः, ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः ।

फिर **सप्तम आवरण** में भूपुर के आग्नेयादि कोणो में विरूपाक्ष आदि का पूजन करना चाहिए - ॐ विरूपाक्षाय नमः, आग्नेये, ॐ विश्वरूपाय नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ पशुपतये नमः वायव्ये, ॐ ऊर्ध्वलिङ्गाय नमः ऐशान्ये,

इसके बाद भूपुर के बाहर पूर्व आदि ८ दिशाओं में शेष आदि ८ नागों का उनके वर्ण, जाति, और फणो को आदि में लगाकर निम्न रीति से पूजन करना चाहिए - ॐ श्वेताय विप्रवर्णाय सहस्रफणाय शेषाय नमः,
ॐ नीलाय वैश्यवर्णाय पञ्चशतफणाय तक्षकाय नमः,
ॐ कुंकुमाभाय विप्रवर्णाय सहस्रफणाय अनन्ताय नमः,
ॐ पीताय क्षत्रियवर्णाय सप्तशतफणाय वासुकये नमः,
ॐ कृष्णाय वैश्यवर्णाय सप्तशतफणाय शंखपालाय नमः,
ॐ उज्ज्वलाय शूद्रवर्णाय पञ्चशतफणाय महापद्माय नमः,
ॐ उज्ज्वलाय शूद्रवर्णाय त्रिंशद्फणाय कम्बलाय नमः,
ॐ उज्ज्वलाय शूद्रवर्णाय त्रिंशद्फणाय कर्कोटकाय नमः ।

इस प्रकार आवरण पूजा निष्पन्न कर धूप दीपादि उपचारों से पुनः भगवान् रुद्र का पूजन करे ॥ १०१ ॥

इस प्रकार पञ्चाङ्गन्यास कर महादेव का पूजन करने वाला तथा दशाक्षर मन्त्र का जप करने वाला ब्राह्मण बिना कष्ट के अपनी इष्टसिद्धि कर लेता है । वह भगवान् सदाशिव की आराधना से सुन्दर मकान, साध्वी, पतिव्रता स्त्री तथा यथेष्ट धन प्राप्त करता है ॥ १०२-१०३ ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं - इस दशाक्षर मन्त्र में भी महामृत्युञ्जय के अनुष्ठान में बताये गये काम्य प्रयोगों की तरह काम्य प्रयोग अनुष्ठित

कुबेरमन्त्रस्तद्विधिश्च

अथ मन्त्रं कुबेरस्य वक्ष्ये सर्वसमृद्धिदम् ।
यक्षाय पदमुच्चार्य कुबेराय पदाच्च वै ॥ १०५ ॥
श्रवणाय धनार्णान्ते धान्याधिपतये धनम् ।
धान्यशब्दात्समृद्धिं मे देहि दापयठद्वयम् ॥ १०६ ॥
बाणरामाक्षरो मन्त्रो विश्रवामुनिरस्य तु ।
छन्दस्तु बृहती देवः शिवमित्रं धनेश्वरः ॥ १०७ ॥
त्रिचतुः पञ्चवस्वष्टमुनिवर्णैर्मनूद्भवैः ।
कृत्वा षडङ्गं धनदं चिन्तयेदलकागतम् ॥ १०८ ॥

कुबेरमन्त्रमाह – **यक्षायेति** । यथा – यक्षाय कुबेराय वैश्रवणाय धनधान्याधिपतये धनधान्यसमृद्धिं मे देहि दापय स्वाहेति । बाणरामाक्षरः पञ्चत्रिंशदर्णः ॥ १०५–१०७ ॥ षडङ्गमाह – **त्रीति** । यक्षाय हृदयाय नम इत्यादि० ॥ १०८ ॥

करना चाहिए । ब्राह्मण को दशाक्षर मन्त्र का जप करते हुये रुद्रजापी बनना चाहिए ॥ १०४ ॥

अब सब प्रकार की सिद्धि देने वाले **कुबेर के मन्त्र** को कहता हूँ -

'यक्षाय' पद बोलकर, 'कुबेराय', फिर 'वैश्रवणाय धन' इन पदों का उच्चारण कर 'धान्याधिपतये धनधान्य समृद्धिं मे देहि दापय', फिर ठद्वय (स्वाहा) लगाने से यह ३५ अक्षरों का कुबेर मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १०५-१०६ ॥

इस मन्त्र के विश्रवा ऋषि हैं, बृहती छन्द है तथा शिव के मित्र कुबेर इसके देवता है ॥ १०७ ॥

विमर्श - कुबेरमन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - यक्षाय कुबेराय वैश्रवणाय धनधान्याधिपतये धनधान्यसमृद्धिं मे देहि दापय स्वाहा (३५)।

विनियोग - अस्य श्रीकुबेरमन्त्रस्य विश्रवाऋषिर्बृहतीच्छन्दः शिवमित्रं धनेश्वरो देवताऽत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ १०५-१०७ ॥

मन्त्र के ३, ४, ५, ८, ८, एवं ७ वर्णों से षडङ्गन्यास करे । फिर अलकापुरी में विराजमान कुबेर का इस प्रकार ध्यान करे ॥ १०८ ॥

विमर्श - न्यास विधि - यक्षाय हृदयाय नमः, कुबेराय शिरसे स्वाहा,
वैश्रवणाय शिखायै वषट्, धनधान्याधिपतये कवचाय हुम्,
धनधान्यसमृद्धिं मे नेत्रत्रयाय वौषट्,
देहि दापय स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ १०८ ॥

मनुजवाह्यविमानवरस्थितं
गरुडरत्ननिभं निधिनायकम्।
शिवसखं मुकुटादिविभूषितं
वरगदे दधतं भज तुन्दिलम् ॥ १०६ ॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः।
धर्मादिपीठे प्रयजेदङ्गलोकपहेतयः ॥ ११० ॥
शिवालये जपेन्मन्त्रमयुतं धनवृद्धये।
बिल्वमूलोपविष्टेन जप्तो लक्षं धनर्द्धिदः ॥ १११ ॥

सर्वदारिद्र्यनाशनोऽपरः कुबेरमन्त्रः

आदौ तारपुटा लक्ष्मीस्ततो मायापुटा रमा।
ततः कामपुटा सैव ङेन्तो वित्तेश्वरो नमः ॥ ११२ ॥
षोडशाक्षरमन्त्रोऽयं सर्वदारिद्र्यनाशनः।
त्रिनेत्रनयनद्वीषु युग्मार्णैरङ्गकं मनोः।
ध्यानार्चनादिकं सर्वमस्य पूर्ववदाचरेत् ॥ ११३ ॥

ध्यानमाह – **मनुजेति** । गरुडरत्नं गारुडमणिः । वरगदे दक्षवामयोः ॥ १०६ ॥ धर्मादयः पीठशक्तयः उक्ताः ॥ ११०–१११ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **आदाविति**। सैव रमैव । यथा – ॐ श्रीं ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्लीं वित्तेश्वराय नम इति ॥ ११२ ॥ षडङ्गमाह – **त्रीति** । ॐ श्रीं ॐ ह्रत् ह्रीं श्रीं शिर इत्यादि० ॥ ११३ ॥

अब अलकापुरी में विराजमान **कुबेर का ध्यान** कहते हैं - मनुष्य श्रेष्ठ, सुन्दर विमान पर बैठे हुये, गारुड़मणि जैसी आभा वाले, मुकुट आदि आभूषणों से अलंकृत, अपने दोनो हाथो में क्रमशः वर और गदा धारण किए हुये, तुन्दिल शरीर वाले, शिव के मित्र निधीश्वर कुबेर का मैं ध्यान करता हूँ ॥ १०६ ॥

इस मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए । तिलों से उसका दशांश होम करना चाहिए तथा धर्मादि शक्ति वाले पूर्वोक्त पीठ पर षडङ्ग दिक्पाल एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए ॥ ११० ॥

अब **काम्य प्रयोग** कहते हैं - धन की वृद्धि के लिए शिव मन्दिर में इस मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिए । बेल के वृक्ष के नीचे बैठ कर इस मन्त्र का एक लाख जप करने से धन-धान्य रूप समृद्धि प्राप्त होती है ॥ १११ ॥

अब **कुबेर का सर्वदारिद्र्यनाशक अन्य मन्त्र** कहते हैं -

सर्वप्रथम तार (ॐ) से संपुटित लक्ष्मी (श्रीं) अर्थात् (ॐ श्रीं ॐ), फिर माया बीज से संपुटित रमा (श्रीं) (ह्रीं श्रीं ह्रीं) । तत्पश्चात् काम (क्लीं) बीज से पुटित लक्ष्मी (श्रीं) फिर चतुर्थ्यन्त वित्तेश्वर शब्द (वित्तेश्वराय) और अन्त में

गंगामन्त्रास्तद्विधिश्च

अथ शम्भोः शिरस्थायादेवसिन्धोर्मनून् ब्रुवे ।
प्रणवो हृदयं ङेन्ते शिवानारायणीपदे ।
तद्वद् दशहरागङ्गे वह्निजायानखाक्षरः ॥ ११४ ॥
मनुर्व्यासो मुनिश्छन्दः कृतिर्गङ्गास्य देवता ।
त्रिवह्निवेदबाणाग्निनेत्रवर्णैः षडङ्गकम् ॥ ११५ ॥

गङ्गामन्त्रमाह – **प्रणव** इति । शिवानारायणीति पदद्वयं ङेन्तम् । दशहरागङ्गेतिपदद्वयमपि चतुर्थ्यन्तम् । वह्निजाया स्वाहा । यथा – ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै स्वाहेति नखाक्षरो विंशत्यर्णः ॥ ११४–११५ ॥

नमः जोड़ने से १६ अक्षरों का कुबेर का अन्य मन्त्र बनता है । ३, २, २, २, ५, और २ वर्णों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । इस मन्त्र का विनियोग, ध्यान एवं पूजनादि की विधि पूर्ववत् है ॥ ११२-११३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ श्रीं ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्लीं वित्तेश्वराय नमः (१६)।

विनियोग - अस्य श्रीकुबेरमन्त्रस्य विश्रवाऋषिर्बृहतीच्छन्दः शिवमित्रधनेश्वरी देवताऽत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ श्रीं ॐ हृदयाय नमः, ह्रीं श्री शिरसे स्वाहा,
ह्रीं क्लीं शिखायै वषट्, श्रीं क्लीं कवचाय हुम्
वित्तेश्वराय नेत्रत्रयाय वौषट्, नमः अस्त्राय फट् ।

कुबेर के ध्यान के लिए द्र० १६. १०६ ॥ ११३ ॥

(i) अब भगवान् सदाशिव के शिर के ऊपर रहने वाली **गङ्गा के मन्त्रों** को कहता हूँ - सर्वप्रथम प्रणव, फिर हृदय (नमः), इसके बाद चतुर्थ्यन्त शिवा और नारायणी (शिवायै नारायण्यै), इसके बाद चतुर्थ्यन्त दशहरा और गङ्गा शब्द (दशहरायै गङ्गायै) और इसके अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) जोड़ने से २० अक्षरों का गङ्गा मन्त्र निष्पन्न होता है - ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै स्वाहा ॥ ११४ ॥

इस मन्त्र के व्यास ऋषि हैं, कृति छन्द तथा गङ्गा देवता है । मन्त्र के क्रमशः ३, ३, ४, ५, ३, एवं दो अक्षरों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ११५ ॥

विमर्श – **विनियोग** - अस्य श्रीगङ्गामन्त्रस्य वेदव्यासऋषिः कृतिश्छन्दः गङ्गादेवतात्मनोऽभिलषितसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यासः - ॐ ॐ नमः हृदयाय नमः, ॐ शिवायै शिरसे स्वाहा,
ॐ नारायण्यै शिखायै वषट्, ॐ दशहरायै कवचाय हुम्,
ॐ गङ्गायै नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ११५ ॥

उत्फुल्लामलपुण्डरीकरुचिरा कृष्णेश विध्यात्मिका
कुम्भेष्टाभयतोयजा निदधती श्वेताम्बरालंकृता ।
हृष्टास्या शशिशेखराखिलनदीशोणादिभिः सेविता
ध्येया पापविनाशिनी मकरगा भागीरथी साधकैः ॥ ११६ ॥
लक्षं जपेद्दशांशेन जुहुयात्सघृतैस्तिलैः ।
जयादिशक्तिभिर्युक्ते पीठे भागीरथीं यजेत् ॥ ११७ ॥
प्रयजेत्केसरेष्वङ्गं दले रुद्रं हरिं विधिम् ।
सूर्यं हिमाचलं मेनां भगीरथमपांपतिम् ॥ ११८ ॥
दलाग्रतो मीनकूर्ममण्डूकमकरानपि ।
हंसान्कारण्डवांश्चक्रवाकान् सारसकान्यजेत् ॥ ११९ ॥
चतुरस्रे शक्रमुख्यानायुधैः संयुतान्यजेत् ।
एवं संसाधितो मन्त्रोऽभीष्टं यच्छति मन्त्रिणाम् ॥ १२० ॥

ध्यानमाह – **उत्फुलेति** । इष्टो वरः । वरपद्मेदक्षयोः । कुम्भाभये वामयोः । मकरगा मकरवाहना ॥ ११६ ॥ जयादयः शक्तय उक्ताः ॥ ११७–१२१ ॥ * ॥ १२२ ॥

अब **मन्त्र का ध्यान** कहते हैं - फूले हुये अत्यन्त स्वच्छ कमल के समान मनोहर अंगो वाली, विष्णु, सदाशिव एवं ब्रह्मस्वरूपिणी, अपने हाथों में कुम्भ, वर, अभय, एवं कमल धारण किए हुये, श्वेत वस्त्रों से विभूषित, प्रसन्नवदना, मस्तक पर चन्द्रकलाओं से सुशोभित, मगर पर विराजमान, समस्त नदियों से आराधित, पापों को विनष्ट करने वाली भगवती भागीरथी का साधकों को ध्यान करना चाहिए ॥ ११६ ॥

उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए तथा तिलों से दशांश होम करना चाहिए । जया आदि से युक्त पीठ पर भगवती भागीरथी की पूजा करनी चाहिए । केसरों में अङ्गपूजा तथा अष्टदलों में १. रुद्र, २. हरि, ३. ब्रह्मा, ४. सूर्य, ५. हिमालय, ६. मेना, ७. भगीरथ एवं ८. सागर का पूजन करना चाहिए ॥ ११७-११८ ॥

दलों के अग्रभाग पर १. मीन, २. कूर्म, ३. मण्डूक, ४. मकर, ५. हंस ६. कारण्डव, ७. चक्रवाक और ८. सारसों का पूजन करना चाहिए । भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों का उनके आयुधों के साथ पूजन करना चाहिए । इस प्रकार उपासना किया गया मन्त्र साधकों को अभीष्ट फल देता है ॥ ११९-१२० ॥

विमर्श - पूजा विधि - वृत्ताकार कर्णिका, अष्टदल एवं भूपुर सहित यन्त्र का निर्माण करना चाहिए । सर्वप्रथम १६. ११६ में वर्णित भगवती गङ्गा के स्वरूप का ध्यान कर मानसोपचार से उनका पूजन कर अर्घ्य स्थापित कर पीठ पर पीठ देवताओं का इस प्रकार पूजन करे। यथा - पीठमध्ये - ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ प्रकृत्यै नमः,
ॐ कूर्माय नमः, ॐ शेषाय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः,

ॐ क्षीरसमुद्राय नमः, ॐ श्वेतद्वीपाय नमः ॐ मणिमण्डपाय नमः
ॐ कल्पवृक्षाय नमः, ॐ मणिवेदिकायै नमः ॐ रत्नसिंहासनाय नमः ।
तदनन्तर आग्नेयादि चारों कोणो में धर्म आदि का पूजन करना चाहिए -
ॐ धर्माय नमः, आग्नेये, ॐ ज्ञानाय नमः, नैर्ऋत्ये,
ॐ वैराग्याय नमः वायव्ये, ॐ ऐश्वर्याय नमः, ऐशान्ये,

गङ्गापूजनयन्त्रम्
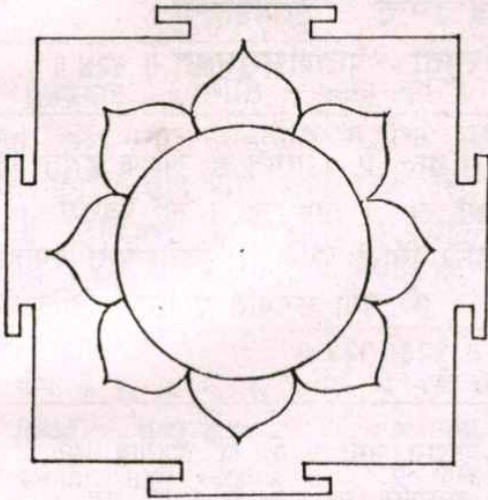
फिर पूर्वादि चारों दिशाओं में अधर्म आदि का निम्न विधि से पूजन करना चाहिए - ॐ अधर्माय नमः पूर्वे,
ॐ अज्ञानाय नमः, दक्षिणे,
ॐ अवैराग्याय नमः पश्चिमे,
ॐ अनैश्वर्याय नमः, उत्तरे,

फिर पीठ के मध्य में अनन्त आदि देवताओं का पूजन करना चाहिए । यथा - ॐ अनन्ताय नमः ॐ पद्माय नमः, ॐ द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय नमः, ॐ षोडशकलात्मने सोममण्डलाय नमः, ॐ दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नमः, ॐ सं सत्त्वाय नमः,
ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ आं आत्मने नमः,
ॐ अं अन्तरात्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः

फिर केसरों मे पूर्वादि दिशाओं में तथा मध्य में जयादि पीठशक्तियों की पूजा करनी चाहिए - ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अजितायै नमः,
ॐ अपराजितायै नमः, ॐ नित्यायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः,
ॐ दोग्ध्र्यै नमः, ॐ अघोरायै नमः, ॐ मङ्गलायै नमः पीठमध्ये

फिर १६. ११६ में वर्णित भगवती भागीरथी के स्वरूप का ध्यान कर, मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर 'ॐ सर्वशक्तिकमलासनाय नमः', इस मन्त्र से पीठ पर आसन देकर, सामान्य उपचारों से आवाहन से लेकर पुष्पाञ्जलि पर्यन्त विधिवत् पूजा कर, आवरण पूजा की अनुज्ञा लेकर आवरण पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए ।

आवरण पूजा विधि - सर्वप्रथम केसरों में **षडङ्गन्यास** के मन्त्रों से आग्नेयादि चारों कोणो में, मध्य में तथा चतुर्दिक् अङ्गपूजा करनी चाहिए । यथा -
ॐ नमः हृदयाय नमः, आग्नेये, ॐ शिवायै शिरसे स्वाहा नैर्ऋत्ये
ॐ नारायण्यै शिखायै वषट् वायव्ये ॐ दशहरायै कवचाय हुम् ऐशान्ये,
ॐ गङ्गायै नेत्रत्रयाय वौषट्, पीठ मध्ये, ॐ स्वाहा अस्त्राय फट् चतुर्दिक्षु,

फिर भूपुर के बाहर दिक्पालों के पास वज्रादि आयुधों की निम्नलिखित मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए । यथा - ॐ वं वज्राय नमः

ज्येष्ठशुक्लदशम्यां तां विशेषेण भजेद् बुधः ।
दद्याद्दशभ्यो विप्रेभ्यो दशप्रस्थमितांस्तिलान् ॥ १२१ ॥
जप्त्वा सहस्रं हुत्वा चोपोष्य तत्र विकल्मषः ।
सर्वभोगसमायुक्तो जायते मानवो भुवि ॥ १२२ ॥
तारो नमो भगवतिवाक्सदृग्गगनं हिलि ।
क्रियातन्द्रीपिनाकीशविषलाः सूक्ष्मसंयुताः ॥ १२३ ॥
गङ्गे मां पावयद्वन्द्वमन्ते हुतवहाङ्गना ।
गिरिनेत्राक्षरीविद्या स्मृता पातकसङ्घहृत् ॥ १२४ ॥

मन्त्रान्तरमाह – **तार** इति । वाक् ऐं । गगनं हः सदृक् इयुतः हि । क्रिया लः । तन्द्री मः । पिनाकीशो लः । विषं मः । लः स्वरूपं । एते सूक्ष्मसंयुता इयुताः । तेन हिलि हिलि मिलि मिलि । हुतवहाङ्गना स्वाहा । गिरिनेत्राक्षरी सप्तविंशत्यर्णा । यथा – ॐ नमो भगवति ऐं हिलि हिलि मिलि मिलि गङ्गे मां पावय पावय स्वाहेति ॥ १२३–१२४ ॥

ॐ शं शक्तये नमः, ॐ दं दण्डाय नमः, ॐ खं खड्गाय नमः,
ॐ पां पाशाय नमः, ॐ अं अंकुशाय नमः, ॐ गं गदायै नमः,
ॐ शूं शूलाय नमः, ॐ पं पद्माय नमः, ॐ चं चक्राय नमः ।

इस प्रकार आवरण पूजा कर पुनः धूप दीप नैवेद्यादि उपचारों से भगवती भागीरथी का विधिवत् पूजन करना चाहिए ॥ ११६-१२० ॥

गङ्गापूजन में दशहरा का विशेष महत्त्व प्रतिपदित करते हुये ग्रन्थकार कहते हैं -

विद्वान् साधक ज्येष्ठ शुक्ल दशमी (दशहरा) को विशेष रूप से भगवती भागीरथी की उपासना करे । इस दिन १० ब्राह्मणों को १० प्रस्थ तिल का दान करे । दश सहस्र उक्त मन्त्र का जप कर १ हजार की संख्या में तिलो की आहुति दे तथा उपवास करे । ऐसा करने से वह निष्पाप हो जाता है और संसार में सभी भोगों को प्राप्त करता है ॥ १२१-१२२ ॥

(ii) अब **गङ्गा के अन्य मन्त्रों का उद्धार** कहते हैं -

तार (ॐ), फिर 'नमो भगवति' फिर वाक् (ऐं), सदृग् इ से युक्त गगन और क्रिया (हिलि हिलि), तत्पश्चात् सूक्ष्म (इ) सहित तन्द्री (म), पिनाकीश (ल), विष (म) और ल, (मिलि मिलि), फिर 'गङ्गे मां' के बाद दो बार 'पावय' (पावय पावय), और अन्त में हुतवहाङ्गना (स्वाहा) जोड़ने से २७ अक्षरों का पातकसंघों को नष्ट करने वाला गङ्गा का अन्य मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १२३-१२४॥

विमर्श - गङ्गा मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ नमो भगवति ऐं हिलि हिलि मिलि मिलि गङ्गे मां पावय पावय स्वाहा (२७) ॥ १२३-१२४ ॥

रामवेदाङ्गवह्न्यङ्कनेत्रार्णैरङ्गमीरितम् ।
इयमादिमसप्तार्णत्यक्तोक्ता नखराक्षरी ॥ १२५ ॥
बाणवेदाग्निरामाग्निनेत्रार्णैरङ्गमीरितम् ।
तारो हिलिमिलिद्वन्द्वे गङ्गे देवि नमो मनुः ॥ १२६ ॥
तिथिवर्णो यमस्याग्निनेत्राक्ष्यक्षियुगाक्षिभिः ।
तारो मायारमाहार्दं ततो भगवतीति च ॥ १२७ ॥

षडङ्गमाह – **रामेति** । अंका नव । इयमेवविद्या । आदिमाः प्रथमे ये सप्तार्णाः ॐ नमो भगवतीति तद्धीना नखराक्षरी विंशतिवर्णा ॥ १२५ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **तार** इति । ॐ हिलि हिलि मिलि मिलि गङ्गे देवि नम इति ॥ १२६ ॥ तिथिवर्णः पञ्चदशार्णः । षडङ्गमाह – **अग्नीति** । मन्त्रान्तरमाह – तार इति । तार ॐ । माया ह्रीं । रमा श्रीं । हार्दं नमः ॥ १२७ ॥

मन्त्र के ३, ४, ६, ३, ६ एवं दो वर्णों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १२५ ॥

विमर्श – षडङ्गन्यास – ॐ नमो हृदयाय नमः, भगवति शिरसे स्वाहा ऐं हिलि हिलि मि शिखायै वषट्, लि मिलि कवचाय हुम्, गङ्गे मां पावय पावय नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ १२५ ॥

(iii) इस मन्त्र के आदि के ७ अक्षरों को निकाल देने से २० अक्षरों का अन्य गङ्गा मन्त्र बनता है ॥ १२५ ॥

विमर्श – गङ्गा मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ऐं हिलि हिलि मिलि मिलि गङ्गे मां पावय पावय स्वाहा (२०) ॥ १२५ ॥

इस मन्त्र के ५, ४, ३, ३, ३, और २ वर्णों से षडङ्गन्यास का विधान है ॥ १२६ ॥

विमर्श – यथा – ऐं हिलि हिलि हृदयाय नमः, मिलि मिलि शिरसे स्वाहा, गङ्गे मां शिखायै वषट्, पावय कवचाय हुम्, पावय नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ १२६ ॥

(iv) तार (ॐ), फिर 'हिलि मिलि' दो बार, फिर 'गङ्गे देवि नमः', यह १५ अक्षरों का एक अन्य गङ्गा का मन्त्र बनता है ॥ १२६-१२७ ॥

मन्त्र के ३, २, २, २, ४, एवं २ वर्णों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १२७ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है – ॐ हिलि हिलि मिलि मिलि गङ्गे देवि नमः (१५)।

षडङ्गन्यास – ॐ हिलि हृदयाय नमः हिलि शिरसे स्वाहा, मिलि शिखायै वषट् मिलि कवचाय हुम् गङ्गे देवि नेत्रत्रयाय वौषट् नमः अस्त्राय फट् ॥ १२६-१२७ ॥

गं स्मृत्ये त्रिसदृग्वायुस्ते नमो वर्मफड्मनुः।
त्रिनेत्रवेदपञ्चाक्षियुग्मार्णैरङ्गमीरितम् ॥ १२८ ॥
एषां चतुर्णां मन्त्राणामुपास्तिः पूर्ववन्मता।

मणिकर्णिकामन्त्रौ

वाङ्मायाकमलाकामवेदाद्यो विषमिन्दुयुक् ॥ १२९ ॥
मणिकर्णिभगीब्रह्मा हृदयं ध्रुवसम्पुटः।
मन्त्रः पञ्चदशार्णोऽस्य मुनिर्व्यासोऽतिशक्वरी ॥ १३० ॥
छन्दः श्रीमणिकर्णी तु देवता सुखपुत्रदा।
चन्द्रनेत्राक्षिनेत्रेषु वह्निवर्णैः षडङ्गकम् ॥ १३१ ॥

स्मृतिर्गः अत्रिर्दः सदृग्वायुः इयुतो यः यि । वर्म हुं । स्वरूपमन्यत् । यथा – ॐ ह्रीं श्रीं नमो भगवति गङ्गदयिते नमो हुं फट् इति अष्टादशार्णः । षडङ्गमाह – **त्रीति** ॥ १२८ ॥ उपास्तिः पूजा । पूर्ववद्विंशत्यर्णवत् । मणिकर्णिकामन्त्रमाह – **वागिति** । वाक् ऐं । माया ह्रीं । काम क्लीं । वेदाद्य ॐ । इन्दुयुक् विषं सबिन्दुर्मः मं ॥ १२९ ॥ मणिकर्णिस्वरूपम् । भगीब्रह्मा कः एयुतः के । हृदयं नमः । ध्रुवसम्पुट आद्यन्त प्रणवयुतः ॥ १३० ॥ षडङ्गमाह – **चन्द्रेति** । ॐ हृत् ऐं ह्रीं शिरः, श्रीं क्लीं शिखेत्यादि ॥ १३१ ॥

(v) **गङ्गा का अन्य मन्त्र** कहते हैं -

तार (ॐ), माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), हार्द (नमः) फिर 'भगवति गं', फिर स्मृति (ग), अत्रि (द), सदृग् वायु (यि), ते, फिर 'नमो', फिर वर्म (हुं) तथा अन्त में फट् लगाने से १८ अक्षरों का गङ्गा मन्त्र निष्पन्न होता है । मन्त्र के ३, २, ४, ५, २, और २ अक्षरों से **षडङ्गन्यास** करना चाहिए । इन चारों मन्त्रों की उपासना पद्धति पूर्वोक्त है ॥ १२७-१२९ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ ह्रीं श्रीं नमो भगवति गङ्गदयिते नमो हुं फट् (१८) ।

षडङ्गन्यास - ॐ ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः, नमो शिरसे स्वाहा, भगवति शिखायै वषट्, गङ्गदयिते कवचाय हुम् नमो नेत्रत्रयाय वौषट्, हुं फट् अस्त्राय फट् । ऊपर कहे गये चारों मन्त्रों की साधना विधि के लिए (द्र० १६. ११७-१२०) ॥ १२७-१२९ ॥

अब **मणिकर्णिका मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - वाग् (ऐं), माया (ह्रीं), कमला (श्रीं), काम (क्लीं) तथा वेदादि (ॐ), फिर इन्दुयुत् विष (मं), फिर 'मणिकर्णि' पद, फिर ब्रह्मा (के), तदनन्तर हृदय (नमः) इसे प्रणव से संपुटित करने पर १५ अक्षरों का मणिकर्णिका मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १२९-१३० ॥

फुल्लेन्दीवरनिर्मितां करतले मालामसव्ये करे
बीजापूरफलं सिताम्बुजमयीं मालां दधाना हृदि ।
श्वेतक्षौमवृता शरद्विधुनिभा त्र्यक्षा निबद्धाञ्जलि–
र्ध्यातव्या मणिकर्णिका रविसमा तोयेशकाष्ठामुखी ॥ १३२ ॥
लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं जुहूयात्तद्दशांशतः ।
पुण्डरीकैस्त्रिमध्वक्तैर्यजेत्तां गङ्गया समम् ॥ १३३ ॥
अयं मनुर्जनैर्जप्तो मोक्षलक्ष्मीं प्रयच्छति ।
सुखं समस्तं सन्तानं सौभाग्यं धनसञ्चयम् ॥ १३४ ॥

ध्यानमाह – **फुल्लेति** । असव्ये दक्षकरे इन्दीवरमालां दधती अपरे वामे बीजपूरम् । शरच्चन्द्रकान्तिः । तेजसा रवितुल्या । तोयेश काष्ठामुखी पश्चिमाभिमुखी ॥ १३२ ॥ पुण्डरीकैः सिताम्भोजैः गङ्गामन्त्रैरेवावरणपूजां कुर्यात् ॥ १३३–१३४ ॥

विमर्श - **मणिकर्णिका का मन्त्र** - ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ॐ मं मणिकर्णिके नमः ॐ (१५) ॥ १२९-१३० ॥

इस मन्त्र के वेद व्यास ऋषि हैं, अतिशक्वरी छन्द है, श्रीमणिकर्णी देवता हैं जो मनुष्यों को सुख तथा पुत्र देती है ॥ १३०-१३१ ॥

विमर्श - **विनियोग** - अस्य श्रीमणिकर्णिकामन्त्रस्य वेदव्यास ऋषिरतिशक्वरी च्छन्दः श्रीमणिकर्णिका देवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

मन्त्र के क्रमशः चन्द्र १, नेत्र २, अक्षि २, नेत्र २, ईषू ५, एवं वह्नि ३ अक्षरों से **षडङ्गन्यास** करना चाहिए ॥ १३१ ॥

षडङ्गन्यास - ॐ हृदयाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ श्रीं क्लीं शिखायै वषट्, ॐ मं कवचाय हुम्, ॐ मणिकर्णिके नेत्रत्रयाय वौषट् नमः, ॐ नमः ॐ अस्त्राय फट् ॥ १२९-१३१ ॥

अब **मणिकर्णिका भगवती का ध्यान** कहते हैं -

फूले हुये कमलों से बनी माला अपने दाहिने हाथ में तथा विजौरा का फल अपने बायें हाथों मे लिए, श्वेत कमलों की माला अपने गले में धारण किए, श्वेत वस्त्रों से अलंकृत, शरत्कालीन चन्द्रमा के समान शरीर की आभा वाली, त्रिनेत्रा, सूर्य के समान तेजस्विनी पश्चिमाभिमुखी अञ्जलि बाँधे हुई श्रीमणिकर्णिका भगवती का ध्यान करना चाहिए ॥ १३२ ॥

उक्त मन्त्र का ३ लाख जप तथा त्रिमधुर (शहद, घी एवं शर्करा) मिश्रित कमलों का दशांश होम करना चाहिए । गङ्गा के समान इनकी भी आवरण पूजा करनी चाहिए (द्र० १६. ११७ - १२०) ॥ १३३ ॥

प्रणवो बिन्दुयुङ्मोन्ते मण्यन्ते कर्णिकेप्रण।
वात्मिके हृदयं मन्त्रो मनुवर्णोऽस्य पूर्ववत्॥ १३५॥
विधेयोपासना सर्वा मणिकर्ण्या उपासकः।
कुदेशेऽपि मृतो याति ब्रह्मैवामलमव्ययम्॥ १३६॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ शिवादिमन्त्रकथनं नाम षोडशस्तरङ्गः॥ १६॥

तस्या एव मन्त्रान्तरमाह – **प्रणव** इति । मो बिन्दुयुक् मं । यथा – ॐ मं मणिकर्णिके प्रणवात्मिके नमः । मनुवर्णश्चतुर्दशार्णः । अस्योपासना पञ्चदशार्णावद्विधेया । मणिकर्णिकोपासकः कुदेशे मगधादौ मृतोऽपि ब्रह्मैव स्यात् ॥ १३५–१३६ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां शिवादिमन्त्रकथनं नाम षोडशस्तरङ्गः ॥ १६ ॥

मनुष्यों के द्वारा इस मन्त्र की साधना करने पर वह उन्हे मोक्ष, लक्ष्मी, समस्त सौभाग्य एवं सन्तानादि सभी सौख्य तथा अपार धन प्रदान करता है ॥ १३४ ॥

अब **मणिकर्णिका देवी का अन्य मन्त्र** कहते हैं - प्रणव (ॐ) बिन्दु युत म (मं) फिर 'मणि' के बाद 'कर्णिके प्रण वात्मिके' अन्त में हृदय (नमः) लगाने से १४ अक्षरों का मणिकर्णिका का एक अन्य मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १३५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - ॐ मं मणिकर्णिके प्रणवात्मिके नमः ॥ १३५ ॥

मणिकर्णिका की उपासना की महिमा - सभी लोगों को मणिकर्णिका की उपासना करनी चाहिए । क्योंकि इनकी उपासना के प्रभाव से मगध आदि निन्दित प्रदेश में मृत्यु होने पर भी साधक अमल, अव्यय तथा ब्रह्मत्व प्राप्त करता है ॥ १३६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के षोडश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशः तरङ्गः

अथेष्टदान् मनून् वक्ष्ये कार्तवीर्यस्य गोपितान्।
यः सुदर्शनचक्रस्यावतारः क्षितिमण्डले ॥ १॥

अभीष्टसिद्धिदः कार्तवीर्यार्जुनमन्त्रः

वह्नितारयुतारौद्रीलक्ष्मीरग्नीन्दुशान्तियुक् ।
वेधाधरेन्दुशान्त्याढ्यो निद्रार्घीशाग्निबिन्दुयुक् ॥ २॥
पाशो मायांकुशं पद्मावर्मास्त्रेकार्तवीपदम्।
रेफो वाय्वासनोऽनन्तो वह्निजौ कर्णसंस्थितौ ॥ ३॥

---

* नौका *

अथ कार्तवीर्यार्जुनमन्त्रान् वक्तुं प्रतिजानीते – **अथेति** । गोपितानन्यैराचार्यैः शंकराचार्यप्रभृतिभिरप्रकाशितान् ॥ १॥ मन्त्रराजमुद्धरति – वह्नीति । रौद्री फः । वह्नी रेफः तार ॐ ताभ्यां युता । तेन फ्रों । लक्ष्मी वः । अग्नीन्दु शान्तियुक रबिन्दुईयुतानेन व्रीं । वेधाः कः धरेन्दुशान्त्याढ्यः लबिन्दुईयुतः । तेन क्लीं । निद्राभः अर्घीशाग्नि बिन्दुयुक् ऊरबिन्दुयुतः । तेन भ्रूम् ॥ २॥ पाशम् आं । माया ह्रीं । अंकुशं क्रों । पद्मा श्रीं । वर्म हुं । अस्त्रं फट् 'कार्तवी' स्वरूपम् । वायवासनो ययुतः अनन्तो यायुतो रेफः । तेन र्या । वह्निजौ रेफजकारौ । कर्णसंस्थितौ उयुतौ । तेन र्जु ॥ ३॥

---

* अरित्र *

शंकराचार्य आदि आचार्यो के द्वारा अब तक अप्रकाशित अभीष्ट फलदायक कार्तवीर्य के मन्त्रों का आख्यान करता हूँ । जो कार्तवीर्यार्जुन भूमण्डल पर सुदर्शन चक्र के अवतार माने जाते हैं ॥ १ ॥

अब कार्तवीर्यार्जुन **मन्त्र का उद्धार** कहते है - वह्नि (र) एवं तार सहित रौद्री (फ) अर्थात् (फ्रों), इन्दु एवं शान्ति सहित लक्ष्मी (व) अर्थात् (व्रीं), धरा, (हल), इन्दु, (अनुस्वार) एवं शान्ति (ईकार) सहित वेधा (क) अर्थात् (क्लीं), अर्धीश (ऊकार), अग्नि (र) एवं बिन्दु (अनुस्वार) सहित निद्रा (भ) अर्थात् (भ्रूं), फिर क्रमशः पाश (आं), माया (ह्रीं), अंकुश (क्रों), पद्म (श्रीं), वर्म (हुं), फिर अस्त्र (फट्), फिर 'कार्तवी' पद, वायवासन्

मेषः सदीर्घः पवनो मनुरुक्तो हृदन्तिकः।
ऊनविंशतिवर्णोऽयं तारादिर्नखवर्णकः॥ ४॥

अस्य मन्त्रस्य न्यासकथनपूर्वकपूजाप्रकारः

दत्तात्रेयो मुनिश्चास्य च्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
कार्तवीर्यार्जुनो देवो बीजं शक्तिर्ध्रुवश्च हृत्॥ ५॥
शेषाद्यबीजयुग्मेन हृदयं विन्यसेद् बुधः।
शान्तियुक्त चतुर्थेन कामाढ्येन शिरोङ्गकम्॥ ६॥
इन्द्वाढ्यवामकर्णाढ्य माययार्घीशयुक्तया।
शिखामंकुशपद्माभ्यां सवाग्भ्यां वर्म विन्यसेत्॥ ७॥

मेषो नः सदीर्घः ना । पवनो यः । हृदन्तिको नमोन्तो मनुः कथितः । प्रणवादिर्विंशत्यर्णः ॥ ४॥ ध्रुव ॐ – बीजम् । नमः शक्तिः ॥ ५॥ षडङ्गमाह – **शेषेति** । शेष आ । तद्युतेनाद्यबीजद्वयेन हृत् आकारयुतत्वादन्यस्वरनिवृत्तिः । तेन आ फ्रों व्रीं हृदयाय नमः । **शान्तीति** । ईयुतेन चतुर्थबीजेन कामबीजाढ्येन शिरः । ई क्लीं भ्रूं शिरसे स्वाहा ॥ ६॥ **इन्द्वाढ्येति** । सबिन्दुर्वामकर्ण ऊकारस्तेन आढ्यो यस्या ईदृशा अर्घीशयुक्तया ऊयुतया मायया शिखाम् । हुं शिखायै वषट् । सवाग्भ्यामैयुताभ्यामंकुशपद्माभ्यां वर्म । क्रैं श्रैं कवचाय हुं ॥ ७॥

(य्), अनन्ता (आ) से युक्त रेफ (र) अर्थात् (र्या), कर्ण (उ) सहित वह्नि (र) और (ज्) अर्थात् (र्जु), सदीर्घ (आकार युक्त) मेष (न) अर्थात् (ना), फिर पवन (य) इसमें हृदय (नमः) जोड़ने से १९ अक्षरों का कार्तवीर्यार्जुन मन्त्र निष्पन्न होता है । इस मन्त्र के प्रारम्भ में तार (ॐ) जोड़ देने पर यह २० अक्षरों का हो जाता है ॥ २-४ ॥

विमर्श - ऊनविंशतिवर्णात्मक मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - (ॐ) फ्रों व्रीं क्लीं भ्रूं आं ह्रीं फ्रों श्रीं हुं फट् कार्तवीर्यार्जुनाय नमः ॥ २-४ ॥

इस मन्त्र के दत्तात्रेय मुनि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, कार्तवीर्यार्जुन देवता हैं, ध्रुव (ॐ) बीज है तथा हृद् (नमः) शक्ति है ॥ ५ ॥

बुद्धिमान पुरुष, शेष (आ) से युक्त प्रथम दो बीज आं फ्रों व्रीं हृदयाय नमः, शान्ति (ई) से युक्त चतुर्थ बीज भ्रूं जिसमें काम बीज (क्लीं) भी लगा हो, उससे शिर अर्थात् ईं क्लीं भ्रूं शिरसे स्वाहा, इन्दु (अनुस्वार) वामकर्ण उकार के सहित अर्घीश माया (ह) अर्थात् हुं से शिखा पर न्यास करना चाहिए । वाक् सहित अंकुश (क्रैं) तथा पद्म (श्रैं) से कवच का, वर्म और अस्त्र (हुं फट्) से अस्त्र न्यास करना चाहिए । तदनन्तर शेष - कार्तवीर्यार्जुनाय नमः - से व्यापक न्यास करना चाहिए ॥ ६-८ ॥

वर्मास्त्राभ्यामस्त्रमुक्तं शेषार्णैर्व्यापकं चरेत्।
हृदये जठरे नाभौ जठरे गुह्यदेशके॥ ८॥
दक्षपादे वामपादे सक्थिजानुनि जंघयोः।
विन्यसेद् बीजदशकं प्रणवद्वयमध्यगम्॥ ९॥
ताराद्यान् नवशेषार्णान् मस्तके च ललाटके।
भ्रुवोः श्रुत्योस्तथैवाक्ष्णोर्नसि वक्त्रे गलेंसके॥ १०॥
सर्वमन्त्रेण सर्वाङ्गे कृत्वा व्यापकमद्वयः।
सर्वेष्टसिद्धये ध्यायेत् कार्तवीर्यं जनेश्वरम्॥ ११॥

वर्मास्त्राभ्यामस्त्रम् । हुं फट् अस्त्राय फट् । शेषार्णैः कार्तवीर्यार्जुनाय नम इति व्यापकम् । वर्णन्यासमाह– **हृदय** इति । सक्थनोरूर्वोर्जानुनोर्जंघयोरे–कैकमेव प्रणवद्वयान्तःस्थं बीजं न्यसेत् । ॐ फ्रों ॐ हृदि, ॐ व्रीं ॐ जठर इत्यादि० ॥ ८–९ ॥

ताराद्यानिति । ॐ क्रां मस्तके । ॐ तं० ललाटे इत्यादि० ॥ १०–११ ॥

विमर्श – न्यासविधि – आं फ्रों व्रीं हृदयाय नमः, ईं क्लीं भ्रूं शिरसे स्वाहा, हुं शिखायै वषट् क्रैं श्रैं कवचाय हुम् हुँ फट् अस्त्राय फट्।

इस प्रकार पञ्चाङ्गन्यास कर कार्तवीर्यार्जुनाय नमः' से सर्वाङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ६-७ ॥

अब **वर्णन्यास** कहते हैं – मन्त्र के १० बीजाक्षरों को प्रणव से संपुटित कर यथाक्रम, हृदय, जठर, नाभि, गुह्य, दाहिने पैर बाँये पैर, दोनो सक्थि दोनो ऊरू, दोनों जानु एवं दोनों जंघा पर तथा शेष ९ वर्णों में एक एक वर्णों का मस्तक, ललाट, भ्रूं, कान, नेत्र, नासिका, मुख, गला, और दोनों कन्धों पर न्यास करना चाहिए ॥ ८-१० ॥

तदनन्तर सभी अङ्गों पर मन्त्र के सभी वर्णों का व्यापक न्यास करने के बाद अपने सभी अभीष्टों की सिद्धि हेतु राजा कार्तवीर्य का ध्यान करना चाहिए ॥ ११॥

विमर्श – न्यास विधि – ॐ फ्रों ॐ हृदये, ॐ व्रीं ॐ जठरे,
ॐ क्लीं ॐ नाभौ ॐ भ्रूं ॐ गुह्ये, ॐ आं ॐ दक्षपादे,
ॐ ह्रीं ॐ वामपादे, ॐ फ्रों ॐ सक्थ्नोः, ॐ श्रीं ॐ उर्वोः,
ॐ हुं ॐ जानुनोः ॐ फट् ॐ जंघयोः ॐ कां मस्तके,
ॐ र्त्तं ललाटे, ॐ वीं भ्रुवोः, ॐ र्यां कर्णयोः
ॐ र्जुं नेत्रयोः ॐ नां नासिकायाम् ॐ यं मुखे,
ॐ नं गले, ॐ मः स्कन्धे

इस प्रकार न्यास कर – ॐ फ्रों श्रीं क्लीं भ्रूं आं ह्रीं फ्रों श्रीं हुं फट्

उद्यत्सूर्यसहस्रकान्तिरखिलक्षोणीधवैर्वन्दितो
हस्तानां शतपञ्चकेन च दधच्चापानिषूंस्तावता।
कण्ठे हाटकमालया परिवृतश्चक्रावतारो हरेः
पायात् स्यन्दनगोरुणाभवसनः श्रीकार्तवीर्यो नृपः॥ १२॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः।
सतण्डुलैः पायसेन विष्णुपीठे यजेत्तु तम्॥ १३॥
वक्ष्यमाणे दशदले वृत्तभूपुरसंयुते।
सम्पूज्य वैष्णवीः शक्तीस्तत्रावाह्यार्चयेन् नृपम्॥ १४॥

ध्यानमाह – **उद्यदिति** । अखिलक्षोणीधवैः सर्वपार्थिवर्नतः । तावता हस्तशतपञ्चकेनेषून् बाणान् दधत् । हाटकमालया स्वर्णस्त्रजास्यन्दन-गोरथस्थितः॥ १२–१५॥

कार्तवीर्यार्जुनाय नमः सर्वाङ्गे - से व्यापक न्यास करना चाहिए ॥ ८-११ ॥

अब **कार्तवीर्यार्जुन का ध्यान** कहते हैं -

उदीयमान सहस्रों सूर्य के समान कान्ति वाले, सभी राजाओं से वन्दित अपने ५०० हाथों में धनुष तथा ५०० हाथो में वाण धारण किए हुये सुवर्णमयी माला से विभूषित कण्ठ वाले, रथ पर बैठे हुये, साक्षात् सुदर्शनावतार कार्तवीर्य हमारी रक्षा करें ॥ १२ ॥

कार्तवीर्य पूजन यन्त्रम्

इस मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिए । तिलों से तथा चावल मिश्रित पायस से उसका दशांश होम करे, तथा वैष्णव पीठ पर इनकी पूजा करे । वृत्ताकार कर्णिका, फिर वक्ष्यमाण दश दल तथा उस पर बने भूपुर से युक्त वैष्णव यन्त्र पर वैष्णवी शक्तियों का पूजन कर उसी पर इनका पूजन करना चाहिए ॥ १३-१४ ॥

विमर्श - कार्तवीर्य की पूजा षट्कोण युक्त यन्त्र में भी कही गई है । यथा - षट्कोणेषु षडङ्गानि ... (१७. १६) तथा दशदल युक्त यन्त्र में भी यथा - दिक्पत्रं विलिखेत् (१७. २२) । इसी का निर्देश १७. १४ 'वक्ष्यमाणे दशदले' में ग्रन्थकार करते हैं ।
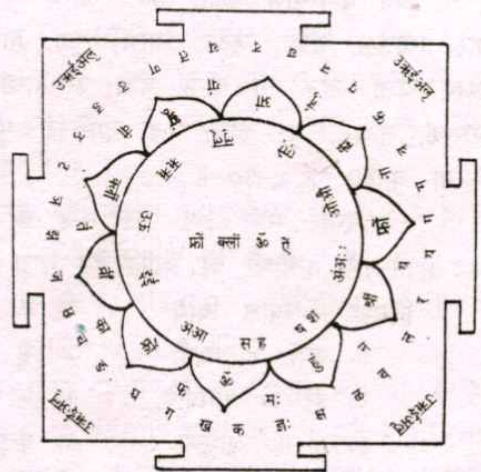
मध्येग्नीशासुरमरुत्कोणेषु हृदयादिकान् ।
चतुरङ्गं च सम्पूज्य सर्वतोऽस्त्रं ततो यजेत् ॥ १५ ॥
खड्गचर्मधराध्येयाश्चन्द्राभा अङ्गमूर्तयः ।
षट्कोणेषु षडङ्गानि ततो दिक्षु विदिक्षु च ॥ १६ ॥
चोरमदविभञ्जनं मारीमदविभञ्जनम् ।
अरिमदविभञ्जनं दैत्यमदविभञ्जनम् ॥ १७ ॥
दुःखनाशं दुष्टनाशं दुरितामयनाशकौ ।
दिक्ष्वष्टशक्तयः पूज्याः प्राच्यादिषु सितप्रभाः ॥ १८ ॥
क्षेमंकरी वश्यकरी श्रीकरी च यशस्करी ।
आयुष्करी तथा प्रज्ञाकरी विद्याकरी पुनः ॥ १९ ॥

दिक्षुचोरमदविभञ्जनादींश्चतुरः । विदिक्षु दुःखनाशादीन् ॥ १६–१७ ॥ दुरितामयनाशकौ दुरितनाशको रोगनाशकश्च ॥ १८ ॥ * ॥ १६–२१ ॥

केसरों में पूर्व आदि ८ दिशाओं में एवं मध्य में वैष्णवी शक्तियों की पूजा इस प्रकार करनी चहिए - ॐ विमलायै नमः, पूर्वे,
ॐ उत्कर्षिण्यै नमः, आग्नेये, ॐ ज्ञानायै नमः, दक्षिणे,
ॐ क्रियायै नमः, नैर्ऋत्ये, ॐ भोगायै नमः, पश्चिमे,
ॐ प्रह्व्यै नमः, वायव्ये, ॐ सत्यायै नमः, उत्तरे,
ॐ ईशानायै नमः, ऐशान्ये, ॐ अनुग्रहायै नमः, मध्ये,

इसके बाद वैष्णव आसन मन्त्र से आसन दे कर मूल मन्त्र से उस पर कार्तवीर्य की मूर्ति की कल्पना कर आवाहन से पुष्पाञ्जलि पर्यन्त विधिवत् उनकी पूजा कर उनकी अनुज्ञा ले आवरण पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए ॥ १३-१४ ॥

मध्य में आग्नेय, ईशान, नैर्ऋत्य, और वायव्यकोणों में हृदयादि चार अंगो की पुनः चारों दिशाओं में अस्त्र का पूजन करना चाहिए ॥ १५ ॥

तदनन्तर ढाल और तलवार लिए हुये चन्द्रमा की आभा वाले षडङ्ग मूर्तियों का ध्यान करते हुये षट्कोणों में षडङ्ग पूजा करनी चाहिए ।

इसके बाद पूर्वादि चारों दिशाओं में तथा आग्नेयादि चारों कोणो में १ चोरमदविभञ्जन, २ मारीमदविभञ्जन, ३. अरिमदविभञ्जन, ४. दैत्यमदविभञ्जन, ५. दुःख नाशक, ६. दुष्टनाशक़, ७. दुरितनाशक, एवं ८. रोगनाशक का पूजन करना चाहिए । पुनः पूर्व आदि ८ दिशाओं में श्वेतकान्ति वाली ८ शक्तियों का पूजन करना चाहिए ॥ १६-१८ ॥

१. क्षेमंकरी, २. वश्यकरी, ३. श्रीकरी, ४. यशस्करी ५. आयुष्करी, ६. प्रज्ञाकरी, ७. विद्याकरी, तथा ८. धनकरी ये ८ शक्तियाँ है । फिर आयुधों के

धनकर्यष्टमी पश्चाल्लोकेशा अस्त्रसंयुताः।
एवं संसाधितो मन्त्रः प्रयोगार्हः प्रजायते ॥ २० ॥

साथ दश दिक्पालों का पूजन करना चाहिए । इस प्रकार की साधना से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर वह काम्य प्रयोग के योग्य हो जाता है ॥ १९-२० ॥

विमर्श - आवरण पूजा विधि - सर्वप्रथम कर्णिका के आग्नेयादि कोणों में पञ्चाग पूजन यथा - आं फ्रों श्रीं हृदयाय नमः आग्नेये,
ई क्लीं भ्रूं शिरसे स्वाहा ऐशान्ये, हु शिखायै वषट् नैर्ऋत्ये,
क्रैं श्रैं कंवचाय हुम् वायव्ये, हुं फट् अस्त्राय सर्वदिक्षु ।

षडङ्गपूजा यथा - ॐ फ्रां हृदयाय नमः,
ॐ फ्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ फ्रूं शिखाये वषट् ॐफ्रै कवचाय हुम,
ॐ फ्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ फ्रः अस्त्राय फट्,

फिर अष्टदलों में पूर्वादि चारों दिशाओं में चोरविभञ्जन आदि का, तथा आग्नेयादि चारों कोणो में दुःखनाशक इत्यादि चार नाम मन्त्रों का इस प्रकार पूजन करना चाहिए - यथा -

ॐ चोरमदविभञ्जनाय नमः पूर्वे, ॐ मारमदविभञ्जनाय नमः दक्षिणे,
ॐ अरिमदविभञ्जनाय नमः पश्चिमे, ॐ दैत्यमदविभञ्जनाय नमः उत्तरे,
ॐ दुःखनाशाय नमः आग्नेये, ॐ दुष्टनाशाय नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ दुरितनाशानाय वायव्ये, ॐ रोगनाशाय नमः ऐशान्ये ।

तत्पश्चात् पूर्वादि दिशाओं के दलों के अग्रभाग पर श्वेत आभा वाली क्षेमंकरी आदि ८ शक्तियों का इस प्रकार पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ क्षेमंकर्यै नमः, ॐ व्रश्यकर्यै नमः, ॐ श्रीकर्यै नमः,
ॐ यशस्कर्यै नमः ॐ आयुष्कर्यै नमः, ॐ प्रज्ञाकर्यै नमः,
ॐ विद्याकर्यै नमः, ॐ धनकर्यै नमः

तदनन्तर भूपुर में अपनी अपनी दिशाओं में इन्द्रादि दश दिक्पालों का इस प्रकार पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ लं इन्द्राय नमः पूर्वे, ॐ रं अग्नये नमः आग्नेये,
ॐ मं यमाय नमः दक्षिणे ॐ क्षं निर्ऋतये नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ वं वरुणाय नमः पश्चिमें ॐ यं वायवे नमः वायव्ये,
ॐ सं सोमाय नमः उत्तरे, ॐ हं ईशानाय नमः ऐशान्ये,
ॐ आं ब्राह्मणे नमः पूर्वेशानयोर्मध्ये, ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः पश्चिमनैर्ऋत्ययोर्मध्ये।

फिर भूपुर के बाहर उनके वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए । यथा -
ॐ शूं शूलाय नमः, ॐ पं पद्माय नमः, ॐ चं चक्राय नमः, इत्यादि ।

इस प्रकार आवरण पूजा कर लेने के बाद धूप, दीप एवं नैवेद्यादि उपचारों से विधिवत् कार्तवीर्य का पूजन करना चाहिए ॥ १५-२० ॥

कार्तवीर्यार्जुनस्याथ पूजार्थं यन्त्र उच्यते ॥ २१ ॥

दशदलात्मके यन्त्रे बीजादिस्थापनम्

दिक्पत्रं विलिखेत्स्वबीजमदनश्रुत्यादिवाक्कर्णिकं
वर्मान्त प्रणवादिबीजदशकं शेषार्णपत्रान्तरम् ।
ऊष्माढ्यं स्वरकेसरं परिवृतं शेषैः स्वकोणोल्लसद्
भूतार्णक्षितिमन्दिरावृतमिदं यन्त्रं धराधीशितुः ॥ २२ ॥

यन्त्रमाह – **दिक्पत्रमिति** । दशदलं विलिख्य कर्णिकायां स्वबीजमदन–श्रुत्यादिवाचो लिखेत् । स्वबीजं फ्रों । मदनः क्लीं । श्रुत्यादिः ॐ । वाक् ऐं । स्वाबीजानि वागन्तर्लिखेत्[1] वर्मान्तानि प्रणवादीनि दशबीजानि दलेषु यस्य तत् । तथा शेषार्णाः फट् कार्तवीर्यार्जुनाय नम इति दशपत्रान्तरेषु यस्य तत् । ऊष्माणः शषसहास्तैराढ्याः स्वराः केसरेषु यस्य तत् । प्रतिकेसरं द्वौ द्वौ । शेषैः कादिभिरूष्महीनैर्वेष्टितम् । स्वकोणेषूल्लसन्तो भूतार्णाः पञ्चभूतवर्णाः यत्र तादृशं यत्क्षिति मन्दिरं चतुष्कोणं तेनावृतम् । तृतीयवर्गगाः कर्णवोललाः । कर्णौ उऊ । ॐ ललापार्थिवामता इत्यादि० । भूतानां वर्णस्त्रयोविंशते तरङ्गे वक्ष्यन्ते । तत्र स्तम्भने भूतवर्णा लेख्याः। शान्तावाद्याः । वश्ये तैजसाः । उच्चाटने वायवीयाः । विद्वेषणे तामसाः । मारणेऽपि तैजसाः । 'जलस्य मण्डलं प्रोक्तं' प्रशस्तं शान्ति–

अब **कार्तवीर्य की पूजा के लिए यन्त्र** कहता हूँ । काम्यप्रयोगों में कार्तवीर्यपूजन यन्त्र : –

कार्तवीर्यस्य काम्यप्रयोगार्थ पूजनयन्त्रम्
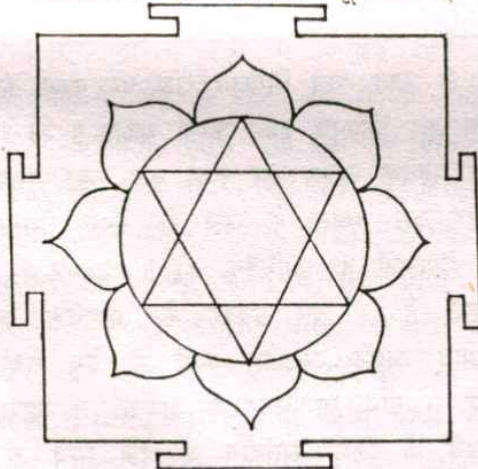
वृत्ताकार कर्णिका में दशदल बनाकर कर्णिका में अपना बीज (फ्रों), कामबीज (क्लीं), श्रुतिबीज (ॐ) एवं वाग्बीज (ऐं) लिखे, फिरे प्रणव से ले कर वर्मबीज पर्यन्त मूल मन्त्र के १० बीजों को दश दलों पर लिखना चाहिए । शेष सह सहित १६ स्वरों को केशर में तथा शेष वर्णों से दशदल को वेष्टित करना चाहिए । भूपुर के कोणों में पञ्चभूत वर्णों को लिखना चाहिए । यह कार्तवीर्यार्जुन पूजा का यन्त्र कहा गया है ॥ २१-२२ ॥

अब **काम्य प्रयोग में अभिषेक विधि** कहते है : -

---

१. कर्णिकान्तर्लिखेदित्यर्थः ।

शुद्धभूमावष्टगन्धैर्लिखित्वा यन्त्रमादरात् ।
तत्र कुम्भं प्रतिष्ठाप्य तत्रावाह्यार्चयेन्नृपम् ॥ २३ ॥
स्पृष्ट्वा कुम्भं जपेन्मन्त्रं सहस्रं विजितेन्द्रियः ।
अभिषिञ्चेत्तदम्भोभिः प्रियं सर्वेष्टसिद्धये ॥ २४ ॥

नानाप्रयोगसाधनम्

पुत्रान्यशो रोगनाशमायुः स्वजनरञ्जनम् ।
वाक्सिद्धिं सुदृशः कुम्भाभिषिक्तो लभते नरः ॥ २५ ॥
शत्रूपद्रवमापन्ने ग्रामे वा पुटभेदने ।
संस्थापयेदिदं यन्त्रमरिभीतिनिवृत्तये ॥ २६ ॥
सर्षपारिष्टलशुनकार्पासैर्मार्यते रिपुः ।
धत्तूरैः स्तंभ्यते निम्बैर्द्वेष्यते वश्यतेऽम्बुजैः ॥ २७ ॥
उच्चाट्यते विभीतस्य समिदिभः खदिरस्य च ।
कटुतैलमहिष्याज्यैर्होमद्रव्याञ्जनं स्मृतम् ॥ २८ ॥

कर्मणि इत्यादि वक्ष्यमाणत्वात् । इदं धराधीशितुः कार्तवीर्यस्य यन्त्रम् ॥ २२ ॥

अभिषेकमाह – **शुद्धेति** । अष्टगन्धैः चन्दनागुरुवालककुष्ठकुंकुमकर्पूर–रोचनाजटामांसीभिः । तत्र यन्त्रे तत्र कुम्भे ॥ २३–२४ ॥ स्वजनरञ्जनं जनवश्यताम् । सुदृशो नारीः ॥ २५ ॥ पुटभेदने नगरे ॥ २६ ॥ अरिष्टानि फेनिलफलानि । पद्मैर्वश्यते वशीक्रियते । हुतैरिति सर्वत्रान्वयः ॥ २७–२६ ॥

शुद्ध भूमि में श्रद्धा सहित अष्टगन्ध से उक्त यन्त्र लिखकर उस पर कुम्भ की प्रतिष्ठा कर उसमें कार्तवीर्यार्जुन का आवाहन कर विधिवत् पूजन करना चाहिए ॥ २३ ॥

फिर अपनी इन्द्रियों को वश में कर साधक कलश का स्पर्श कर उक्त मुख्य मन्त्र का एक हजार जप करे । तदनन्तर उस कलश के जल से अपने समस्त अभीष्टों की सिद्धि हेतु अपना तथा अपने प्रियजनों का अभिषेक करे ॥ २३-२४ ॥

अब उस **अभिषेक का फल** कहते हैं - इस प्रकार के अभिषेक से अभिषिक्त व्यक्ति पुत्र, यश, आरोग्य आयु अपने आत्मीय जनों से प्रेम तथा वाक्सिद्धि तथा उत्तम स्त्री प्राप्त करता है । गाँव या नगर में शत्रुओं के द्वारा उपद्रव होने पर उनके भय को दूर करने के लिए कार्तवीर्य के इस मन्त्र को संस्थापित करना चाहिए ॥ २५-२६ ॥

विविध कामनाओं में होम द्रव्य इस प्रकार है - सरसों, रीठा, लहसुन एवं कपास के होम से शत्रु का मारण होता है । धतूर के होम से शत्रु का स्तम्भन, नीम के होम से परस्पर विद्वेषण, कमल के होम से वशीकरण तथा बहेडा एवं खैर

यवैर्हुतैः श्रियः प्राप्तिस्तिलैराज्यैरघक्षयः।
तिलतण्डुलसिद्धार्थलाजैर्वश्यो नृपो भवेत्॥ २६॥
अपामार्गार्कदूर्वाणां होमो लक्ष्मीप्रदोऽघनुत्।
स्त्रीवश्यकृत्प्रियंगूणां पुराणां भूतशान्तिदः॥ ३०॥
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटबिल्ध्वसमुद्भवाः।
समिधो लभते हुत्वा पुत्रानायुर्धनं सुखम्॥ ३१॥
निर्मोकहेमसिद्धार्थलवणैश्चोरनाशनम्।
रोचनागोमयैः स्तम्भो भूप्राप्तिः शालिभिर्हुतैः॥ ३२॥
होमसंख्या तु सर्वत्र सहस्रादयुतावधि।
प्रकल्पनीया मन्त्रज्ञैः कार्यगौरवलाघवात्॥ ३३॥

दशमन्त्रभेदानां कथनम्

कार्तवीर्यस्य मन्त्राणामुच्यन्ते सिद्धिदाभिदाः।
कार्तवीर्यार्जुनं ङेन्तमन्ते च नमसान्वितम्॥ ३४॥

पुराणां गुग्गुलूनाम् ॥ ३०–३१॥ निर्मोकः सर्पकञ्चुकः । हेम धत्तूरः ॥ ३२॥ कार्यगौरवलाघवात् अधिककार्ये होमबाहुल्यमल्पेऽल्पम् ॥ ३३ ॥ मन्त्रभेदानाह – **कार्तेति** । दशस्वपि मन्त्रेषु ङेन्तं हृदन्तं चतुर्थीनमोन्तं कार्तवीर्यार्जुनं योजयेत्॥ ३४॥

की समिधाओं के होम से शत्रु का उच्चाटन होता है । जौ के होम से लक्ष्मी प्राप्ति, तिल एवं घी के होम से पापक्षय तथा तिल तण्डुल सिद्धार्थ (श्वेत सर्षप) एवं लाजाओं के होम से राजा वश में हो जाता है ॥ २७-२६ ॥

अपामार्ग, आक एवं दूर्वा का होम लक्ष्मीदायक तथा पाप नाशक होता है । प्रियंगु का होम स्त्रियों को वश में करता है । गुग्गुल का होम भूतों को शान्त करता है । पीपर, गूलर, पाकड़, बरगद एवं बेल की समिधाओं से होम कर के साधक पुत्र, आयु, धन एवं सुख प्राप्त करता है ॥ ३०–३१ ॥

साँप की केंचुली, धतूरा, सिद्धार्थ (सफेद सरसों) तथा लवण के होम से चोरों का नाश होता है । गोरोचन एवं गोबर के होम से स्तंभन होता है तथा शालि (धान) के होम से भूमि प्राप्त होती है ॥ ३२ ॥

मन्त्रज्ञ विद्वान् को कार्य की न्यूनाधिकता के अनुसार समस्त काम्य प्रयोगों में होम की संख्या १ हजार से १० हजार तक निश्चित कर लेनी चाहिए । कार्य बाहुल्य में अधिक तथा स्वल्पकार्य में स्वल्प होम करना चाहिए ॥ ३३ ॥

विमर्श - सभी कहे गये काम्य प्रयोगों में होम की संख्या एक हजार से दश हजार तक कही गई है, विद्वान् साधक जैसा कार्य देखे वैसा होम करे ॥ ३३ ॥

स्वबीजाढ्यो दशार्णोऽसावन्ये नवशिवाक्षराः।
आद्यबीजद्वयेनाऽसौ द्वितीयो मन्त्र ईरितः॥ ३५॥
स्वकामाभ्यां तृतीयोऽसौ स्वभ्रूभ्यां तु चतुर्थकः।
स्वपाशाभ्यां पञ्चमोंसौ षष्ठः स्वेन च मायया॥ ३६॥
स्वांकुशाभ्यां सप्तमः स्यात् स्वरमाभ्यामथाष्टमः।
स्ववाग्भवाभ्यां नवमो वर्मास्त्राभ्यां तथान्तिमः॥ ३७॥
द्वितीयादि नवान्ते तु बीजयोः स्याद् व्यतिक्रमः।
मन्त्रे तु दशमे वर्णा नववर्मास्त्रमध्यगाः॥ ३८॥

आद्यो दशवर्णः । अन्येन वैकादशवर्णाः । तानाह – **स्वेति** । फ्रों कार्तवीर्यार्जुनाय नमः इति प्रथमः । द्वितीयमाह – **आद्येति** । फ्रों व्रीं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः इति द्वितीयः ॥ ३५॥ फ्रों क्लीं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः इति तृतीयः । फ्रों भ्रूं कार्तवी० इति चतुर्थः । फ्रों आं कार्तवी० इति पञ्चमः । फ्रों ह्रीं कार्तवी० इति षष्ठः ॥ ३६॥ फ्रों क्रों कार्तवी० इति सप्तमः । फ्रों श्रीं कार्तवी० इत्यष्टमः । फ्रों ऐं कार्तवी० इति नवमः । हुं फट् कार्तवी० इति दशमः ॥ ३७॥ इमे दशमन्त्रा यदा प्रणवाद्यास्तदाद्य एकादशार्णः अन्येऽपि द्वादशार्णाः ॥ ३८–४०॥

अब सिद्धियों को देने वाले **कार्तवीर्यार्जुन के मन्त्रों के भेद** कहे जाते है -

अपने बीजाक्षर (फ्रों) से युक्त कार्तवीर्यार्जुन का चतुर्थ्यन्त, उसके बाद नमः लगाने से १० अक्षर का **प्रथम** मन्त्र बनता है । अन्य मन्त्र भी कोई ९ अक्षर के तथा कोई ११ अक्षर के कहे गये हैं ॥ ३४-३५ ॥

उक्त मन्त्र के प्रारम्भ में दो बीज (फ्रों व्रीं) लगाने से यह **द्वितीय** मन्त्र बन जाता है । स्वबीज (फ्रों) तथा कामबीज (क्लीं) सहित यह **तृतीय** मन्त्र बन जाता है । स्वबीज एवं 'भ्रूं' सहित **चतुर्थ** मन्त्र बन जाता है । स्वबीज एवं पाशबीज (आं) के सहित **पञ्चम** मन्त्र, स्व बीज एवं मायाबीज (ह्रीं) सहित **षष्ठ** मन्त्र, स्वबीज एवं अंकुश (क्रों) सहित **सप्तम**, स्वबीज एवं श्री बीज सहित **अष्टम** मन्त्र, स्वबीज एवं वाग्बीज (ऐं) सहित **नवम** मन्त्र और आदि में वर्म (हुं) तथा अन्त में अस्त्र (फट्) सहित **दशम** मन्त्र बन जाता है ॥ ३४-३७ ॥

विमर्श - कार्तवीर्यार्जुन के दश मन्त्र - १, फ्रों कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, २. फ्रों व्रीं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ३. फ्रों क्लीं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ४. फ्रों भ्रूं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ५. फ्रों आं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ६. फ्रों ह्रीं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ७. फ्रों क्रों कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ८. फ्रों श्रीं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, ९. फ्रों ऐं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः, १०. हुं कार्तवीर्यार्जुनाय नमः फट् ॥ ३४-३७ ॥

द्वितीय मन्त्र से लेकर नौवें मन्त्र तक बीजों का व्युत्क्रम से कथन है और दसवें मन्त्र में वर्म (हुं) और अस्त्र (फट्) के मध्य नौ वर्ण रख्खे गए हैं ॥ ३८॥

एतेषु मन्त्रवर्येषु स्वानुकूलं मनुं भजेत् ।
एषामाद्ये विराट्छन्दोऽन्येषु त्रिष्टुबुदाहृतम् ॥ ३९ ॥
दशमन्त्रा इमे प्रोक्ताः प्रणवादि पदानि च ।
तदादिमः शिवार्णः स्यादन्ये तु द्वादशाक्षराः ॥ ४० ॥
एवं विंशति मन्त्राणां यजनं पूर्ववन्मतम् ।
त्रिष्टुप्छन्दस्तदाद्येषु स्यादन्येषु जगतीमता ॥ ४१ ॥
दीर्घाढ्यमूलबीजेन कुर्यादेषां षडङ्गकम् ।
तारो हृत्कार्तवीर्यार्जुनाय वर्मास्त्रठद्वयम् ।
चतुर्दशार्णो मन्त्रोऽयमस्येज्या पूर्ववन्मता ॥ ४२ ॥

पूर्ववत् मन्त्रराजवत् । यजनं मतम् ॥ ४१ ॥ तेषां षडङ्गमाह – **दीर्घेति** । प्रां हृत् प्रीं शिर इत्यादि० चतुदशार्णमाह – **तार** इति । ॐ नमः कार्तवीर्यार्जुनाय हुं फट् स्वाहेति । इज्या पूजा ॥ ४२ ॥

इन मन्त्रों मे से जो भी सिद्धादि शोधन की रीति से अपने अनुकूल मालूम पड़े उसी मन्त्र की साधना करनी चाहिए ॥ ३९ ॥

इन मन्त्रों में प्रथम दशाक्षर का विराट् छन्द है तथा अन्यों का त्रिष्टुप् छन्द है ॥ ३९॥

विमर्श - दशाक्षर मन्त्र का विनियोग - अस्य श्रीकार्तवीर्यार्जुनमन्त्रस्य दत्तात्रेयऋषिविराट्छन्दः कार्तवीर्यार्जुनो देवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

अन्य मन्त्रों का विनियोग - अस्य श्रीकार्तवीर्यार्जुनमन्त्रस्य दत्तात्रेयऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः कार्तवीर्यार्जुनो देवतात्मनोऽभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः ॥ ३९ ॥

पूर्वोक्त १० मन्त्रों के प्रारम्भ में प्रणव लगा देने से प्रथम दशाक्षर मन्त्र एकादश अक्षरों का तथा अन्य ९ द्वादशाक्षर बन जाते हैं । इस प्रकार कार्तवीर्य मन्त्र के २० प्रकार के भेद बनते है । इनकी साधना पूर्वोक्त मन्त्रों के समान है । उक्त द्वितीय दश संख्यक. मन्त्रों में पहले त्रिष्टुप् तथा अन्यों का जगती छन्द है । इन मन्त्रों की साधना में षड् दीर्घ सहित स्वबीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ४०-४१॥

विनियोग - अस्य श्रीएकादशाक्षरकार्तवीर्यमन्त्रस्य दत्तात्रेयऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः कार्तवीर्यार्जुनों देवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ।

अन्य नवके - अस्य श्रीद्वादशाक्षरकार्तवीर्यमन्त्रस्य दत्तात्रेयऋषिर्जगतीच्छन्दः कार्तवीर्यार्जुनो देवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - फ्रां हृदयाय नमः, फ्रीं शिरसे स्वाहा, फ्रूं शिखायै वषट्, फ्रैं कवचाय हुम, फ्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, फ्रः अस्त्राय फट् ॥ ४१॥

तार (ॐ), हृत् (नमः), फिर 'कार्तवीर्यार्जुनाय' पद, वर्म (हुं), अ (फट्), तथा अन्त में ठद्वय (स्वाहा) लगाने से १४ अक्षर का मन्त्र बनता है इसकी साधना पूर्वोक्त मन्त्र के समान है ॥ ४२ ॥

भूनेत्र सप्तनेत्राक्षिवर्णैरस्याङ्गपञ्चकम्।
तारो हृद्भगवान्ङेन्तः कार्तवीर्यार्जुनस्तथा ॥ ४३ ॥
वर्मास्त्राग्निप्रियामन्त्रः प्रोक्तोष्टादशवर्णवान्।
त्रिवेदसप्तयुग्माक्षिवर्णैः पञ्चाङ्गकं मनोः ॥ ४४ ॥

मन्त्रान्तरकथनम्

नमो भगवते श्रीति कार्त्तवीर्यार्जुनाय च।
सर्वदुष्टान्तकायेति तपोबलपराक्रम ॥ ४५ ॥
परिपालित सप्तान्ते द्वीपाय सर्वरापदम्।
जन्यचूडामणान्ते ये सर्वशक्तिमते ततः ॥ ४६ ॥

पञ्चाङ्गमाह – **भूनेत्रेति** । अष्टादशार्णमाह – **तार** इति । हृत् नमः । कार्तवीर्यार्जुनस्तथेति । ङेन्तः । ॐ नमो भगवते कार्तवीर्यार्जुनाय हुं फट् स्वाहा इति ॥ ४३–४४ ॥ मन्त्रान्तरमाह – **नम** इति । यथा – नमो भगवते श्रीकार्तवीर्यार्जुनाय सर्वदुष्टान्तकाय तपोबलपराक्रमपरिपालितसप्तद्वीपाय सर्वराजन्य चूडामणये सर्वशक्तिमते सहस्रबाहवे हुं फट् (६३) इति ॥ ४५–४७ ॥

विमर्श - चतुर्दशार्ण मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ नमः कार्तवीर्यार्जुनाय हुं फट् स्वाहा (१४) ॥ ४२ ॥

मन्त्र के क्रमशः १, २, ७, २, एवं २ वर्णों से पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ४३॥

विमर्श - पञ्चाङ्गन्यास - ॐ हृदयाय नमः, नमः शिरसे स्वाहा, कार्तवीर्यार्जुनाय शिखायै वषट्, हुं फट् कवचाय हुम्, स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ४३॥

तार (ॐ), हृत् (नमः), तदनन्तर चतुर्थ्यन्त भगवत् (भगवते), एवं कार्तवीर्यार्जुन (कार्तवीर्यार्जुनाय), फिर वर्म (हुं), अस्त्र (फट्), उसमें अग्निप्रिया (स्वाहा) जोड़ने से १८ अक्षर का अन्य मन्त्र बनता है ॥ ४३-४४॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ नमो भगवते कार्तवीर्यार्जुनाय हुं फट् स्वाहा (१८) ॥ ४४ ॥

इस मन्त्र के क्रमशः ३, ४, ७, २, एवं २ वर्णों से पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ४४ ॥

पञ्चाङ्गन्यास - ॐ नमो हृदयाय नमः, भगवते शिरसे स्वाहा, कार्तवीर्यार्जुनाय शिखायै वषट्, हुं फट् कवचाय हुम्, स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ४४ ॥

नमो भगवते श्रीकार्तवीर्यार्जुनाय, फिर सर्वदुष्टान्तकाय, फिर 'तपोबल पराक्रम परिपालितसप्त' के बाद, 'द्वीपाय सर्वराजन्य चूडामणये सर्वशक्तिमते', फिर 'सहस्रबाहवे', फिर वर्म (हुं), फिर अस्त्र (फट्) लगाने से ६३ अक्षरों का मन्त्र बनता है, जो

सहस्रबाहवे प्रान्ते वर्मास्त्रान्तो महामनुः ।
त्रिषष्टिवर्णवान्प्रोक्तः स्मरणात्सर्वविघ्नहृत् ॥ ४७ ॥
राजन्यचक्रवर्त्ती च वीरः शूरस्तृतीयकः ।
माहिष्मतीपतिः पश्चाच्चतुर्थः समुदीरितः ॥ ४८ ॥
रेवाम्बुपरितृप्तश्च कारागेहप्रबाधितः ।
दशास्यश्चेति षड्भिः स्यात्पदैर्ङेन्तैः षडङ्गकम् ॥ ४६ ॥
सिंच्यमानं युवतिभिः क्रीडन्तं नर्मदाजले ।
हस्तैर्जलौघं रुन्धन्तं ध्यायेन्मत्तं नृपोत्तमम् ॥ ५० ॥
एवं ध्यात्वायुतं मन्त्रं जपेदन्यत्तु पूर्ववत् ।
पूर्ववत्सर्वमेतस्य समाराधनमीरितम् ॥ ५१ ॥

अस्य षडङ्गमाह – राजन्येति ङेन्तैश्चतुर्थ्यन्तैः पदैः षडङ्ग स्यात् ॥ यथा – राजन्य चक्रवर्तिने हृत् । वीराय शिरः । शूराय शिखा । माहिष्मतीपतये वर्म ॥ ४८ ॥ रेवाम्बुपरितृप्ताय नेत्रम् । कारागेह–प्रबाधित–दशास्यायास्त्रम् ॥ ४६–५० ॥ स्मरन्नयुतं जपेत् । अन्यत्प्रयोगादिकं पूर्ववच्चतुर्दशार्णवत् ॥ ५१ ॥

स्मरण मात्र से सारे विघ्नों को दूर कर देता है ॥ ४५-४७ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - नमो भगवते श्रीकार्तवीर्यार्जुनाय सर्वदुष्टान्तकाय, तपोबलपराक्रमपरिपालितसप्तद्वीपाय सर्वराजन्यचूडामणये सर्वशक्तिमते सहस्त्रबाहवे हुं फट् (६३)॥ ४५-४७ ॥

१. राजन्यचक्रवर्ती, २. वीर, ३. शूर, ४. महिष्मतीपति, ५. रेवाम्बुपरितृप्त, एवं ६. कारागेहप्रबाधितदशास्य - इन ६ पदों के अन्त में चतुर्थी विभक्ति लगाकर षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ४८-४६ ॥

विमर्श - षडङ्गन्यास का स्वरूप - राजन्यचक्रवर्तिने हृदयाय नमः, वीराय शिरसे स्वाहा, शूराय शिखायै वषट्, महिष्मतीपतये कवचाय हुम्, रेवाम्बुपरितृप्ताय नेत्रत्रयाय वौषट्, कारागेहप्रबाधितदशास्याय अस्त्राय फट् ॥ ४८-४६ ॥

नर्मदा नदी में जलक्रीडा करते समय युवतियों के द्वारा अभिषिच्यमान तथा नर्मदा की जलधारा को अवरुद्ध करने वाले नृपश्रेष्ठ कार्तवीर्यार्जुन का ध्यान करना चाहिए ॥ ५० ॥

इस प्रकार ध्यान कर उक्त मन्त्र का १० हजार जप करना चाहिए तथा हवन पूजन आदि समस्त कृत्य पूर्वोक्त कथित मन्त्र की विधि से करना चाहिए । इस मन्त्र साधना के सभी कृत्य पूर्वोक्त मन्त्र के समान कहे गये हैं ॥ ५१ ॥

अब **कार्तवीर्यार्जुन के अनुष्टुप् मन्त्र का उद्धार** कहता हूँ -

हृतनष्टलाभदोऽन्यो मन्त्रः

कार्तवीर्यार्जुनो वर्णान्नामराजापदं ततः।
उक्त्वा बाहुसहस्रान्ते वान्पदं तस्य संततः ॥ ५२ ॥
स्मरणादेववर्णान्ते हृतं नष्टं च सम्पठेत्।
लभ्यते मन्त्रवर्योऽयं द्वात्रिंशद्वर्णसंज्ञकः ॥ ५३ ॥
पादैः सर्वेण पञ्चाङ्ग ध्यानयोगादिपूर्ववत्।

कार्तवीर्यार्जुनगायत्री

कार्तवीर्याय शब्दान्ते विद्महेपदमीरयेत् ॥ ५४ ॥
महावीर्यायवर्णान्ते धीमहीति पदं वदेत्।
तन्नोऽर्जुनः प्रवर्णान्ते चोदयात्पदमीरयेत् ॥ ५५ ॥

आनुष्टुभं मन्त्रान्तरमाह – कार्तेति ।
कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान्।
तस्य संस्मरणादेव हृतं नष्टं च लभ्यत इति ॥ ५२–५३ ॥ गायत्रीमाह– कार्तवीर्याय विद्महे महावीर्याय धीमहि। तन्नोऽर्जुनःप्रचोदयादिति ॥ ५४–५६ ॥

'कार्तवीर्यार्जुनो' पद के बाद, नाम राजा कहकर 'बाहुसहस्र' तथा 'वान्' कहना चाहिए । फिर 'तस्य सं' 'स्मरणादेव' तथा 'हृतं नष्टं च' कहकर 'लभ्यते' बोलना चाहिए । यह ३२ अक्षर का मन्त्र है ।

इस अनुष्टुप् के १-१ पाद से, तथा सम्पूर्ण मन्त्र से पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिए । इसका ध्यान एवं पूजन आदि पूर्वोक्त मन्त्र के समान है ॥ ५२-५३ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है –

कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान् ।
तस्य संस्मरणादेव हृतं नष्टं च लभ्यते ॥

विनियोग – अस्य श्रीकार्तवीर्यार्जुनमन्त्रस्य दत्तात्रेयऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीकार्तवीर्यार्जुनो देवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

पञ्चाङ्गन्यास – कार्तवीर्यार्जुनो नाम हृदयाय नमः, राजा बाहुसहस्रवान् शिरसे स्वाहा, तस्य संस्मरणादेव शिखायै वषट्, हृतं नष्टं च लभ्यते कवचाय हुम्, कार्तवीर्यार्जुनों० अस्त्राय फट् ॥ ५२-५३ ॥

'कार्तवीर्याय' पद के बाद 'विद्महे', फिर 'महावीर्याय' के बाद 'धीमहि' पद कहना चाहिए । फिर 'तन्नोऽर्जुनः प्रचोदयात्' बोलना चाहिए । यह कार्तवीर्यार्जुन का गायत्री मन्त्र है । कार्तवीर्य के प्रयोगों को प्रारम्भ करते समय इसका जप करना चाहिए ॥ ५४-५६ ॥

गायत्र्येषार्जुनस्योक्ता प्रयोगादौ जपेत्तु ताम् ।
अनुष्टुभं मनुं रात्रौ जपतां चौरसञ्चयाः ॥ ५६ ॥
पालयन्ते गृहाद्दूरं तर्पणाद्वचनादपि ।

अखिलेप्सितदीपविधानकथनम्

अथो दीपविधिं वक्ष्ये कार्तवीर्यप्रियंकरम् ॥ ५७ ॥
वैशाखे श्रावणे मार्गे कार्तिकाश्विनपौषतः ।
माघफाल्गुनयोर्मासे दीपारम्भः प्रशस्यते ॥ ५८ ॥
तिथौ रिक्ताविहीनायां वारे शनिकुजौ विना ।
हस्तोत्तराश्विरौद्रेषु पुष्यवैष्णववायुभे ॥ ५९ ॥
द्विदैवते च रोहिण्यां दीपारम्भः प्रशस्यते ।
चरमे च व्यतीपाते धृतौ वृद्धौ सुकर्मणि ॥ ६० ॥
प्रीतौ हर्षे च सौभाग्ये शोभनायुष्मतोरपि ।
करणे विष्टिरहिते ग्रहणेर्द्धोदयादिषु ॥ ६१ ॥

दीपविधानमाह – **अथो** इति ॥ ५७ ॥ आरम्भे मासानाह – **वैशाख** इति ॥ ५८ ॥ रिक्ताश्चतुर्थी नवमी चतुर्दश्यस्तद्भिन्नतिथौ । नक्षत्राण्याह – **हस्तोत्तरेति** । रौद्रमार्द्रा । वैष्णवं श्रवणं । वायुभं स्वाती ॥ ५९ ॥

द्विदैवतं विशाखा । योगानाह – **चरम** इति । चरमे वैधृतौ ॥ ६०–६१ ॥ रात्रावखिलायां पूर्वाह्णे च ॥ ६२–६३ ॥

रात्रि में इस अनुष्टुप् मन्त्र का जप करने से चोरों का समुदाय घर से दूर भाग जाता है । इस मन्त्र से तर्पण करने पर अथवा इसका उच्चारण करने से भी चोर भाग जाते हैं ॥ ५६-५७ ॥

अब दीपप्रियः कार्तवीर्यः' इस विधि के अनुसार कार्तवीर्य को प्रसन्न करने वाली **दीपदान की विधि** कहता हूँ -

वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष, कार्तिक, आश्विन, पौष, माघ एवं फाल्गुन में दीपदान करना प्रशस्त माना गया है ॥ ५७-५८ ॥

चौथ, नवमी तथा चतुर्दशी - इन (रिक्ता) तिथियों को छोड़कर, दिनों में मङ्गल एवं शनिवार दिन छोड़कर, हस्त, उत्तरात्रय, अश्विनी, आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, स्वाती, विशाखा एवं रोहिणी नक्षत्र में कार्तवीर्य के लिए दीपदान का आरम्भ प्रशस्त कहा गया है ॥ ५९-६० ॥

वैधृति, व्यतिपात, धृति, वृद्धि, सुकर्मा, प्रीति, हर्षण, सौभाग्य, शोभन एवं आयुष्मान् योग में तथा विष्टि (भद्रा) को छोड़कर अन्य करणों में दीपारम्भ करना

एषु योगेषु पूर्वाह्णे दीपारम्भः कृतः शुभः ।
कार्तिके शुक्लसप्तम्यां निशीथेऽतीवशोभनः ॥ ६२ ॥
यदि तत्र रवेर्वारः श्रवणं भं तु दुर्लभम् ।
अत्यावश्यककार्येषु मासादीनां न शोधनम् ॥ ६३ ॥
आद्ये ह्युपोष्य नियतो ब्रह्मचारी शयीत कौ ।
प्रातः स्नात्वा शुद्धभूमौ लिप्तायां गोमयोदकैः ॥ ६४ ॥
प्राणानायम्य संकल्प्य न्यासान्पूर्वोदितांश्चरेत् ।
षट्कोणं रचयेद् भूमौ रक्तचन्दनतण्डुलैः ॥ ६५ ॥
अन्तः स्मरं समालिख्य षट्कोणेषु समालिखेत् ।
मन्त्रराजस्य षड्वर्णान्कामबीजविवर्जितान् ॥ ६६ ॥

विधिमाह – आद्य इति । कौ भूमौ ॥ ६४–६५॥ स्मरं क्लीं ॥ ६६ ॥

चाहिए । उक्त योगों में पूर्वाह्ण के समय दीपारम्भ करना प्रशस्त है ॥ ६०-६२ ॥

कार्तिक शुक्ल सप्तमी को निशीथ काल में इसका प्रारम्भ शुभ है । यदि उस दिन रविवार एवं श्रवण नक्षत्र हो तो ऐसा योग बहुत दुर्लभ है । आवश्यक कार्यों में महीने का विचार नहीं करना चाहिए ॥ ६२-६३ ॥

साधक दीपदान से प्रथम दिन उपवास कर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये पृथ्वी पर शयन करे । फिर दूसरे दिन प्रातः काल स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त होकर गोबर और शुद्ध जल से हुई भूमि में प्राणायाम कर, दीपदान का संकल्प एवं पूर्वोक्त न्यासों को करे ॥ ६४-६५ ॥

कार्तवीर्यदीपस्थापनयन्त्रम्

फिर पृथ्वी पर लाल चन्दन मिश्रित चावलों से षट्कोण का निर्माण करे । पुनः उसके भीतर काम बीज (क्लीं) लिख कर षट्कोणों में मन्त्रराज के कामबीज को छोड़कर शेष बीजो को (ॐ फ्रों व्रीं भ्रूं आं ह्रीं) लिखना चाहिए। सृणि (क्रों) पद्म (श्रीं) वर्म (हुं) तथा अस्त्र (फट्) इन चारों बीजों को पूर्वादि चारों दिशाओं में लिखना चाहिए । फिर ९ वर्णो को (कार्तवीर्यार्जुनाय नमः) से उन षड्कोणों को परिवेष्टित कर देना चाहिए । तदनन्तर उसके वाहर एक त्रिकोण निर्माण करना चाहिए ॥ ६५-६७ ॥
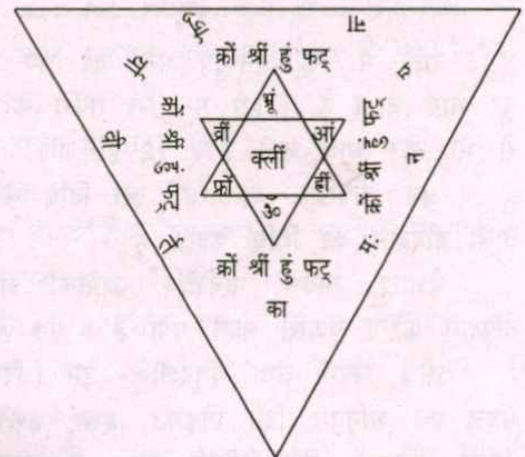
सृणिं पद्मां वर्मचास्त्रं पूर्वाद्याशासु संलिखेत्।
नवार्णैर्वेष्टयेत्तच्च त्रिकोणं तदबहिः पुनः ॥ ६७ ॥
एवं विलिखिते यन्त्रे निदध्याद् दीपभाजनम्।
स्वर्णजं रजतोत्थं वा ताम्रजं तदभावतः ॥ ६८ ॥
कांस्यपात्रं मृण्मयं च कनिष्ठं लोहजं मृतौ।
शान्तये मुद्गचूर्णोत्थं सन्धौ गोधूमचूर्णजम् ॥ ६९ ॥
बुध्नेषूद्ध्वं समानं तु पात्रं कुर्यात्प्रयत्नतः।
अर्कदिग्वसुषट् पञ्चचतुराभांगुलैर्मितम् ॥ ७० ॥
आज्यपलसहस्त्रं तु पात्रं शतपलैः कृतम्।
आज्येयुतपले पात्रं पलपञ्चशतीकृतम् ॥ ७१ ॥
पञ्चसप्ततिसंख्ये तु पात्रं षष्टिपलं मतम्।
त्रिसहस्त्रे घृतपले शरार्कपलभाजनम् ॥ ७२ ॥

षड्वर्णान् ॐ फ्रों व्रीं भ्रूं आं ह्रीमिति षट्कोणेषु स्वाग्रामारभ्य लिखेत् । क्रों श्रीं हुं फडिति दिक्षु । शेषैर्नवाक्षरैर्वेष्टयेत् ॥ ६७ ॥ * ॥ ६८–६९ ॥ पात्रमानमाह – **बुध्न** इति । बुध्ने मूले । ऊर्ध्वं च पात्रं कुर्यात् । कियत्तत्राह – **अर्केति** । मूले ऊर्ध्वं च द्वादशादिमानैरङ्गुलैः कायम् ॥ ७०–७१ ॥ शरार्कपलभाजनं पञ्चविंशत्युत्तरशतपलमितपात्रम् ॥ ७२ ॥

अब **दीपस्थापन एवं पूजन का प्रकार** कहते हैं -

इस प्रकार से लिखित मन्त्र पर दीप पात्र को स्थापित करना चाहिए । वह पात्र सोने, चाँदी या ताँबे का होना चाहिए । उसके अभाव में काँसे का अथवा उसके भी अभाव में मिट्टी का या लोहे का होना चाहिए । किन्तु लोहे का और मिट्टी का पात्र कनिष्ठ (अधम) माना गया है ॥ ६८-६९ ॥

शान्ति के और पौष्टिक कार्यों के लिए मूँग के आटे का तथा किसी को मिलाने के लिए गेहूँ के आँटे का दीप-पात्र बनाकर जलाना चाहिए ॥ ६९ ॥

ध्यान रहे कि दीपक का निचला भाग (मूल) एवं ऊपरी भाग आकृति में समान रूप का रहे । पात्र का परिमाण १२, १०, ८, ६, ५, या ४ अंगुल का होना चाहिए ॥ ७० ॥

सौ पल के भार से बने पात्र में एक हजार पल घी, ५०० पल के भार से बने पात्र में १० हजार पल घी, ६० पल के भार से बनाये गये पात्र में ७५ पल घी, १२५ पल भार से बनाये गये पात्र में ३ हजार पल घी, ११५ पल भार से बनाये गये दीप-पात्र में २ हजार पल घी, ३० पल भार से बनाये गये पात्र में ५० पल घी तथा ५२ पल भार से बनाये गये पात्र में १०० पल

द्विसहस्रे शरशिवं शतार्द्धे त्रिंशता मतम् ।
शतेक्षिशरसंख्यातमेवमन्यत्र कल्पयेत् ॥ ७३ ॥
नित्ये दीपे वह्निपलं पात्रमाज्यं पलं स्मृतम् ।
एवं पात्रं प्रतिष्ठाप्य वर्तीः सूत्रोत्थिताः क्षिपेत् ॥ ७४ ॥
एका तिस्रोऽथवा पञ्च सप्ताद्या विषमा अपि ।
तिथिमानाद्य सहस्रं तन्तुसंख्याविनिर्मिताः ॥ ७५ ॥
गोघृतं प्रक्षिपेत्तत्र शुद्धवस्त्रविशोधितम् ।
सहस्रपलसंख्यादिदशान्तं कार्यगौरवात् ॥ ७६ ॥
सुवर्णादिकृतां रम्यां शलाकां षोडशांगुलाम् ।
तदर्द्धां वा तदर्द्धां वा सूक्ष्माग्रां स्थूलमूलकाम् ॥ ७७ ॥
विमुच्चेद् दक्षिणे भागे पात्रमध्ये कृताग्रकाम् ।
पात्राद् दक्षिणदिग्देशे मुक्त्वांगुलचतुष्टयम् ॥ ७८ ॥
अधोऽग्रां दक्षिणाधारां निखनेच्छुरिकां शुभाम् ।
दीपं प्रज्वालयेत्तत्र गणेशस्मृतिपूर्वकम् ॥ ७९ ॥

द्वीति । सहस्रद्वयमिते घृते शरशिवपञ्चदशोत्तरशतपलं ताम्रपात्रम् । अक्षिशरसंख्यातं द्विपञ्चाशत्पलमितम् । अन्यत्रैवमेव घृतानुसारेण पात्रं कल्प्यम् ॥ ७३ ॥ वह्निपलं त्रिपलम् ॥ ७४ ॥ विषमवर्तिकाद्या एकोत्तरशतान्ता ज्ञेयाः । **तिथीति** । पञ्चदशादिसहस्रपर्यन्तं या तन्तुसंख्या तया विनिर्मिताः कृताः ॥ ७५–७६ ॥ तदर्धामष्टाङ्गुलां तदर्धा चतुरङ्गुलाम् ॥ ७७ ॥ पात्राद् दक्षिणे चतुरङ्गुलभूमिं त्यक्त्वा छुरिकां भूमौ निःक्षिपेत् ॥ ७८ ॥ अधोग्रं यस्यास्तां

घी डालना चाहिए । इस प्रकार जितना घी जलाना हो उसके अनुसार पात्र के भार की कल्पना कर लेनी चाहिए ॥ ७१-७३ ॥

नित्यदीप में ३ पल के भार का पात्र तथा १ पल घी का मान बताया गया है । इस प्रकार दीप-पात्र संस्थापित कर सूत की बनी बत्तियाँ डालनी चाहिए । १, ३, ५, ७, १५ या एक हजार सूतों की बनी बत्तियाँ डालनी चाहिए । ऐसे सामान्य नियमानुसार विषम सूतों की बनी बत्तियाँ होनी चाहिए ॥ ७४-७५ ॥

दीप-पात्र में शुद्ध-वस्त्र से छना हुआ गो घृत डालना चाहिए । कार्य के लाघव एवं गुरुत्व के अनुसार १० पल से लेकर १००० पल परिमाण पर्यन्त घी की मात्रा होनी चाहिए ॥ ७६ ॥

सुवर्ण आदि निर्मित पात्र के अग्रभाग में पतली तथा पीछे के भाग में मोटी १६, ८ या ४ अंगुल की एक मनोहर शलाका बनाकर उक्त दीप पात्र के भीतर दाहिनी ओर से शलाका का अग्रभाग कर डालना चाहिए । पुनः दीप पात्र से दक्षिण दिशा में ४ अंगुल जगह छोड़कर भूमि में अधोमुख एक छुरी या चाकू गाड़ना

दीपात् पूर्वे तु दिग्भागे सर्वतोभद्रमण्डले ।
तण्डुलाष्टदले वाऽपि विधिवत्स्थापयेद्धटम् ॥ ८० ॥
तत्रावाह्य नृपाधीशं पूर्ववत्पूजयेत् सुधीः ।
जलाक्षताः समादाय दीपं संकल्पयेत्ततः ॥ ८१ ॥
दीपसंकल्पमन्त्रोऽथ कथ्यते द्वीषु भूमितः ।
प्रणवः पाशमाये च शिखाकार्ताक्षराणि च ॥ ८२ ॥
वीर्यार्जुनाय माहिष्मतीनाथाय सहस्र च ।
बाहवे इति वर्णान्ते सहस्रपदमुच्चरेत् ॥ ८३ ॥
क्रतुदीक्षितहस्ताय दत्तात्रेयप्रियाय च ।
आत्रेयायानुसूयान्ते गर्भरत्नाय तत्परम् ॥ ८४ ॥
नभोग्नीवामकर्णेन्दुस्थितौ पाशद्वयं ततः ।
दीपं गृहाण त्वमुकं रक्ष रक्ष पदं पुनः ॥ ८५ ॥
दुष्टान्नाशय युग्मं स्यात्तथा पातय घातय ।
शत्रूञ्जहि द्वयं माया तारः स्वं बीजमात्मभूः ॥ ८६ ॥

दक्षिणस्यां धारा यस्यास्ताम् ॥ ७६–८१ ॥ द्वीषु भूमितो द्विपञ्चाशदुत्तरशता–रोदीपसंकल्पमन्त्रः । तमाह – **प्रणव** इति । पाश आं । माया ह्रीं । शिखा वषट् ॥ ८२ ॥ * ॥ ८३–८४ ॥ वामकर्णेन्दुस्थितौ नभौऽग्नीऊबिन्दुयुतौ हरौ तेन हूं । पाश आं । अमुकमिति पदस्थाने साध्यनामोच्चार्यम् ॥ ८५ ॥ माया ह्रीं । तार ॐ । स्वं बीजं फ्रों । आत्मभूः क्लीं ॥ ८६–८७ ॥

चाहिए । फिर गणपति का स्मरण करते हुये दीप को जलाना चाहिए ॥ ७७-७६ ॥

दीपक से पूर्व दिशा में सर्वतोभद्र मण्डल या चावलों से बने अष्टदल पर मिट्टी का घड़ा विधिवत् स्थापित करना चाहिए । उस घट पर कार्तवीर्य का आवाहन कर साधक को पूर्वोक्त विधि से उनका पूजन करना चाहिए । इतना कर लेने के बाद हाथ में जल और अक्षत लेकर दीप का संकल्प करना चाहिए ॥ ८०-८१ ॥

अब १५२ अक्षरों का **दीपसंकल्प मन्त्र** कहते हैं - यह (द्वि २ इषु ५ भूमि १ अंकानां वामतो गतिः) एक सौ बावन अक्षरों का माला मन्त्र है ।

प्रणव (ॐ), पाश (आं), माया (ह्रीं), शिखा (वषट्), इसके बाद 'कार्त', इसके बाद 'वीर्यार्जुनाय' के बाद 'माहिष्मतीनाथाय सहस्रबाहवे', इन वर्णों के बाद 'सहस्र' पद बोलना चाहिए। फिर 'क्रतुदीक्षितहस्ताय दत्तात्रेयप्रियाय आत्रेयानुसूयागर्भरत्नाय', फिर वाम कर्ण (ऊ), इन्दु (अनुस्वार) सहित नभ (ह) एवं अग्नि (र्) अर्थात् (हूँ) पाश आं, फिर 'इमं दीपं गृहाण अमुकं रक्ष रक्ष दुष्टान्नाशय नाशय', फिर २ वार 'पातय' और २ वार 'घातय' (पातय पातय घातय घातय), 'शत्रून् जहि जहि',

वह्निजाया अनेनाथ दीपवर्येण पश्चिमा।
भिमुखेनामुकं रक्ष अमुकान्ते वरप्रदा ॥ ८७ ॥
नायाकाश द्वयं वाम नेत्रचन्द्रयुतं शिवा।
वेदादिकामचामुण्डा स्वाहा तुःपुःसबिन्दुकौ ॥ ८८ ॥
प्रणवोऽग्नि प्रियामन्त्रो नेत्रबाणधराक्षरः।
दत्तात्रेयो मुनिर्मालामन्त्रस्य परिकीर्तितः ॥ ८९ ॥
छन्दोमितं कार्तवीर्यार्जुनो देवः शुभावहः।
चामुण्डया षडङ्गानि चरेत्षड्दीर्घयुक्तया ॥ ९० ॥

आकाशद्वयं ह्द्वयम् । वामनेत्र चन्द्रयुतं बिन्दुयुतं हीं हीं । शिवा हीं । वेदादिकामचामुण्डा ॐ क्लीं व्रीं । तुः पुः तर्वगपवर्गौ ॥ ८८ ॥ नेत्रबाणधराक्षरो द्विपञ्चाशदुत्तरशतार्णः । यथा – ॐ आं हीं वषट् कार्तवीर्यार्जुनाय माहिष्मतीनाथाय सहस्रबाहवे सहस्रक्रतुदीक्षितहस्ताय दत्तात्रेयप्रियाय आत्रेयानुसूयागर्भरत्नाय हूं आं इमं दीपं गृहाण अमुकं रक्ष रक्ष दुष्टान्नाशय नाशय पातय पातय घातय घातय शत्रूञ्जहि जहि हीं ॐ फ्रों क्लीं स्वाहा अनेन दीपवर्येण पश्चिमाभिमुखेन अमुकं रक्ष अमुकवरप्रदानाय हीं हीं हीं ॐ क्लीं व्रीं स्वाहा तं थं दं धं नं पं बं भं मं ॐ स्वाहा (१५२) इति मन्त्रः चामुण्डया व्रीमिति बीजेन व्रां व्रीं व्रूं व्रैं व्रौं व्रः इति षडङ्गम् ॥ ८९–९०॥

फिर माया (ह्रीं), तार (ॐ), स्वबीज (फ्रों), आत्मभू (क्लीं) और फिर वाह्निजाया (स्वाहा), फिर 'अनेन दीपवर्येण पश्चिमाभिमुखेन अमुकं रक्ष अमुकं वर प्रदानाय', फिर वामनेत्र (ई), चन्द्र (अनुस्वार) सहित २ बार आकाश (ह) अर्थात् (ह्रीं ह्रीं), शिवा (ह्रीं), वेदादि (ॐ), काम (क्लीं), चामुण्डा (व्रीं), 'स्वाहा', फिर सानुस्वार तवर्ग एवं पवर्ग (तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं), फिर प्रणव (ॐ) तथा अग्निप्रिया स्वाहा लगाने से १५२ अक्षरों का दीपदान मन्त्र बन जाता है ॥ ८२-८६॥

विमर्श - दीप संकल्प के मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ आं ह्रीं वषट् कार्तवीर्यार्जुनाय माहिष्मतीनाथाय सहस्रबाहवे, सहस्रक्रतुदीक्षितहस्ताय दत्तात्रेयप्रियाय आत्रेयानुसूयागर्भरत्नाय हूं आं इमं दीपं गृहाण अमुकं रक्ष रक्ष दुष्टान्नाशय नाशय पातय पातय घातय घातय शत्रून् जहि जहि ह्रीं ॐ फ्रों क्लीं स्वाहा अनेन दीपवर्येण पश्चिमाभिमुखेन अमुकं रक्ष अमुकवरप्रदानाय हीं हीं ह्रीं ॐ क्लीं व्रीं स्वाहा तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं ॐ स्वाहा (१५२) ॥ ८२-८६॥

इस मालामन्त्र के दत्तात्रेय ऋषि, अमित छन्द तथा कार्तवीर्यार्जुन देवता हैं । षड्दीर्घसहित चामुण्डा बीज से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ८६-९० ॥

विमर्श विनियोग - अस्य श्रीकार्तवीर्यमालामन्त्रस्य दत्तात्रेयऋषिरमितच्छन्दः कार्तवीर्यार्जुनो देवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ व्रां हृदयाय नमः, व्रीं शिरसे स्वाहा, व्रूं शिखायै वषट्,

ध्यात्वा देवं ततो मन्त्रं पठित्वान्ते क्षिपेज्जलम् ।
ततो नवाक्षरं मन्त्रं सहस्रं तत्पुरो जपेत् ॥ ६१ ॥
तारोऽनन्तो बिन्दुयुक्तो मायास्वं वामनेत्रयुक् ।
कूर्माग्नी शान्तिचन्द्राढ्यौ वह्निनार्यंकुशं ध्रुवः ॥ ६२ ॥
ऋषिः पूर्वः स्मृतोऽनुष्टुप्छन्दो ह्यन्यत्तु पूर्ववत् ।
सहस्रं मन्त्रराजं च जपित्वा कवचं पठेत् ॥ ६३ ॥
एवं दीपप्रदानस्य कर्ताऽऽप्नोत्यखिलेप्सितम् ।
दीपप्रबोधकाले तु वर्जयेदशुभां गिरम् ॥ ६४ ॥

ध्यात्वा पूर्वोक्त विधिना ॥ ६१ ॥ नवाक्षरमाह – **तार इति** । तार ॐ । अनन्तो बिन्दुयुतः आं । माया ह्रीं । स्वं वामनेत्रयुक् फ्रीं । कूर्माग्नीवरौ शान्तिचन्द्राढ्यौ ईबिन्दुयुतौ तेन व्रीं । वह्निनारी स्वाहा । अंकुशं क्रों ध्रुव ॐ ॥ ६२ ॥ पूर्वो दत्तात्रेयः । अन्यत् षडङ्गादिकम् । कवचं । हुं डामरोक्तम् ॥ ६३ ॥ दीपप्रारंभे शकुनमाह – **दीपप्रबोधेत्यादि** ॥ ६४–६५ ॥

व्रैं कवचाय हुम्, व्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् व्रः अस्त्राय फट् ॥ ८९-९०॥

दीप संकल्प के पहले कार्तवीर्य का ध्यान करे । फिर हाथ में जल ले कर उक्त संकल्प मन्त्र का उच्चारण कर जल नीचे भूमि पर गिरा देना चाहिए । इसके बाद वक्ष्यमाण नवाक्षर मन्त्र का एक हजार जप करना चाहिए ॥ ६१ ॥

नवाक्षर मन्त्र का उद्धार - तार (ॐ), बिन्दु (अनुस्वार) सहित अनन्त (आ) (अर्थात् आं), माया (ह्रीं), वामनेत्र सहित स्वबीज (फ्रीं), फिर शान्ति (ई) और चन्द्र (अनुस्वार) सहित कूर्म (व) और अग्नि (र) अर्थात् (व्रीं), फिर वह्निनारी (स्वाहा), अंकुश (क्रों) तथा अन्त में ध्रुव (ॐ) लगाने से नवाक्षर मन्त्र बनता है । यथा - ॐ आं ह्रीं फ्रीं व्रीं स्वाहा क्रों ॐ ॥ ६२ ॥

इस मन्त्र के पूर्वोक्त दत्तात्रेय ऋषि हैं । अनुष्टुप् छन्द है तथा इसके देवता और न्यास पूर्वोक्त मन्त्र के समान है । (द्र० १७. ८९-९०) इस मन्त्र का एक हजार जप कर कवच का पाठ करना चाहिए । (यह कवच डामर तन्त्र में हुं के साथ कहा गया है) ॥ ६३ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य नवाक्षरकार्तवीर्यमन्त्रस्य दत्तात्रेयऋषिः अनुष्टुप्छन्दः कार्तवीर्यार्जुनो देवतात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - व्रां हृदयाय नमः व्रीं शिरसे स्वाहा, व्रूं शिखायै वषट्
व्रैं कवचाय हुम्, व्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् व्रः अस्त्राय फट् ॥ ६३ ॥

इस प्रकार दीपदान करने वाला व्यक्ति अपना सारा अभीष्ट पूर्ण कर लेता है । दीप प्रज्वलित करते समय अमाङ्गलिक शब्दों का उच्चारण वर्जित है ॥ ६४ ॥

विप्रस्य दर्शनं तत्र शुभदं परिकीर्तितम् ।
शूद्राणां मध्यमं प्रोक्तं म्लेच्छस्य बधबन्धदम् ॥ ६५ ॥
आख्वोत्वोर्दर्शनं दुष्टं गवाश्वस्य सुखावहम् ।
दीपज्वालासमासिद्ध्यै वक्रा नाशविधायिनी ॥ ६६ ॥
सशब्दा भयदा कर्तुरुज्ज्वला सुखदा मता ।
कृष्णा तु शत्रुभयदा वमन्ती पशुनाशिनी ॥ ६७ ॥
कृते दीपे यदा पात्रं भग्नं दृश्येत दैवतः ।
पक्षादर्वाक् तदागच्छेद्यजमानो यमालयम् ॥ ६८ ॥
वर्त्यन्तरं यदा कुर्यात्कार्यं सिद्ध्येद्विलम्बतः ।
नेत्रहीनो भवेत्कर्ता तस्मिन्दीपान्तरे कृते ॥ ६६ ॥
अशुचिस्पर्शने त्वाधिर्दीपनाशे तु चौरभीः ।
श्वमार्जाराखुसंस्पर्शे भवेद् भूपतितो भयम् ॥ १०० ॥
यात्रारम्भे वसुपलैः कृतो दीपोऽखिलेष्टदः ।
तस्माद्दीपः प्रयत्नेन रक्षणीयोऽन्तरायतः ॥ १०१ ॥
आ समाप्तेः प्रकुर्वीत ब्रह्मचर्यं च भूशयम् ।
स्त्रीशूद्रपतितादीनां सम्भाषामपि वर्जयेत् ॥ १०२ ॥

आख्वोत्वोर्मूषकमार्जारयोः ॥ ६६ ॥ * ॥ ६७–१०० ॥ वसुपलैरष्टपलैः । अन्तरायतो विघ्नेभ्यः ॥ १०१ ॥ भूशयं भूमिशयनम् ॥ १०२ ॥

अब **दीपदान के समय शुभाशुभ शकुन** का निर्देश करते हैं -

दीप प्रज्वलित करते समय ब्राह्मण का दर्शन शुभावह है । शूद्रों का दर्शन मध्यम फलदायक तथा म्लेच्छ दर्शन बन्धनदायक माना गया है । चूहा और बिल्ली का दर्शन अशुभ तथा गौ एवं अश्व का दर्शन शुभकारक है ॥ ६४-६६ ॥

दीप ज्वाला ठीक सीधी हो तो सिद्धि और टेढी मेढी हो तो विनाश करने वाली मानी गई है । दीप ज्वाला से चट चट का शब्द भय कारक होता है । ज्योतिपुञ्ज उज्ज्वल हो तो कर्ता को सुख प्राप्त होता है । यदि काला हो तो शत्रुभयदायक तथा वमन कर रहा हो तो पशुओं का नाश करता है । दीपदान करने के बाद यदि संयोगवशात् पात्र भग्न हो जावे तो यजमान १५ दिन के भीतर यमलोक का अतिथि बन जाता है ॥ ६६-६८ ॥

अब **दीपदान के शुभाशुभ कर्तव्य** कहते हैं - दीप में दूसरी बत्ती डालने से कार्य सिद्धि में विलम्ब होता है, उस दीपक से अन्य दीपक जलाने वाला व्यक्ति अन्धा हो जाता है । अशुद्ध अशुचि अवस्था में दीप का स्पर्श करने से आधि व्याधि उत्पन्न होती है । दीपक के नाश होने पर चोरों से भय तथा कुत्ते, बिल्ली

जपेत्सहस्रं प्रत्येकं मन्त्रराजं नवाक्षरम्।
स्तोत्रपाठं प्रतिदिनं निशीथिन्यां विशेषतः ॥ १०३ ॥
एकपादेन दीपाग्रे स्थित्वा यो मन्त्रनायकम्।
सहस्रं प्रजपेद्रात्रौ सोऽभीष्टं क्षिप्रमाप्नुयात् ॥ १०४ ॥
समाप्य शोभने घस्त्रे सम्भोज्य द्विजनायकान्।
कुम्भोदकेन कर्तारमभिषिञ्चेन्मनुं स्मरन् ॥ १०५ ॥
कर्ता तु दक्षिणां दद्यात् पुष्कलां तोषहेतवे।
गुरौ तुष्टे ददातीष्टं कृतवीर्यसुतो नृपः ॥ १०६ ॥
गुर्वाज्ञया स्वयं कुर्याद्यदि वा कारयेद् गुरुम्।
कृत्वा रत्नादिदानेन दीपदानं धरापतेः ॥ १०७ ॥
गुर्वाज्ञामन्तरा कुर्याद्यो दीपं स्वेष्टसिद्धये।
प्रत्युतानुभवत्येष हानिमेव पदे पदे ॥ १०८ ॥

निशीथिन्यां रात्रौ ॥ १०३ ॥ * ॥ १०४–१०६ ॥ रत्नादि दानेन गुरुं वृत्वा धरापतेः कार्तवीर्यस्य दीपदानं कारयेदित्यन्वयः ॥ १०७–१०९ ॥

एवं चूहे आदि जन्तुओं के स्पर्श से राजभय उपस्थित होता है ॥ ९९-१०० ॥

यात्रा करते समय ८ पल की मात्रा वाला दीपदान समस्त अभीष्टों को पूर्ण करता है । इसलिए सभी प्रकार के प्रयत्नों से सावधानी पूर्वक दीप की रक्षा करनी चाहिए जिससे विघ्न न हो ॥ १०१ ॥

दीप की समाप्ति पर्यन्त कर्ता ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये भूमि पर शयन करे तथा स्त्री, शूद्र और पतितो से संभाषण भी न करे ॥ १०२ ॥

प्रत्येक दीपदान के समय से ले कर समाप्ति पर्यन्त प्रतिदिन नवाक्षर मन्त्र (द्र० १७. ९२) का १ हजार जप तथा स्तोत्र का पाठ विशेष रूप से रात्रि के समय करना चाहिए ॥ १०३ ॥

निशीथ काल में एक पैर से खड़ा हो कर दीप के संमुख जो व्यक्ति इस मन्त्रराज का १ हजार जप करता है वह शीघ्र ही अपना समस्त अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ॥ १०४ ॥

इस प्रयोग को उत्तम दिन में समाप्त कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन कराने के बाद कुम्भ के जल से मूलमन्त्र द्वारा कर्ता का अभिषेक करना चाहिए ॥ १०५ ॥

कर्ता साधक अपने गुरु को संतोषदायक एवं पर्याप्त दक्षिणा दे कर उन्हें संतुष्ट करे । गुरु के प्रसन्न हो जाने पर कृतवीर्य पुत्र कार्तवीर्यार्जुन साधक के सभी अभीष्टों को पूर्ण करते हैं ॥ १०६ ॥

यह प्रयोग गुरु की आज्ञा ले कर स्वयं करना चाहिए अथवा गुरु को रत्नादि

दीपदानविधिं ब्रूयात्कृतघ्नादिषु नो गुरुः।
दुष्टेभ्यः कथितो मन्त्रो वक्तुर्दुःखावहो भवेत् ॥ १०६ ॥
उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषीभवम्।
तिलतैले तु तादृक्स्यात्कनीयोऽजादिजं घृतम् ॥ ११० ॥
आस्यारोगे सुगन्धेन दद्यात्तैलेन दीपकम्।
सिद्धार्थसम्भवेनाथ द्विषतां नाशहेतवे ॥ १११ ॥
फलैर्दशशतैर्दीपे विहिते चेन्न दृश्यते।
कार्यसिद्धिस्तदात्रिस्तु दीपः कार्यो यथाविधि ॥ ११२ ॥
तदा सुदुर्लभं कार्यं सिद्ध्यत्येव न संशयः।
यथाकथंचिद्यः कुर्याद् दीपदानं स्ववेश्मनि ॥ ११३ ॥
विघ्नाः सर्वैररिभिः साकं तस्य नश्यन्ति दूरतः।
सर्वदा जयमाप्नोति पुत्रान् पौत्रान् धनं यशः ॥ ११४ ॥
यथाकथंचिद्यो दीपं नित्यं गेहे समाचरेत्।
कार्तवीर्यार्जुनप्रीत्यै सोऽभीष्टं लभते नरः ॥ ११५ ॥

अजादिघृतं कनीयोऽधमम् ॥ ११० ॥ * ॥ १११–११४ ॥ यथाकथंचिदिति । अनेन नित्यदीपे पूर्वोक्तस्य पात्रघृतनियमस्यानावश्यकतां दर्शयति । त्रिपलमिते पात्रे एकपलघृतेन नित्यं दीपो देयः । यथाकथंचिद्वा । सर्वथा दातव्य एवेति भावः॥ ११५॥

दान दे कर उन्हीं से कार्तवीर्याजुन को दीपदान कराना चाहिए । गुरु की आज्ञा लिए बिना जो व्यक्ति अपनी इष्टसिद्धि के लिए इस प्रयोग का अनुष्ठान करता है उसे कार्यसिद्धि की बात तो दूर रही, प्रत्युत वह पदे पदे हानि उठाता है ॥ १०७-१०८ ॥

कृतघ्न आदि दुर्जनों को इस दीपदान की विधि नहीं बतानी चाहिए । क्योंकि यह मन्त्र दुष्टों को बताये जाने पर बतलाने वाले को दुःख देता है । दीप जलाने के लिए गौ का घृत उत्तम कहा गया है, भैंस का घी मध्यम तथा तिल का तेल भी मध्यम कहा गया है । बकरी आदि का घी अधम कहा गया है। मुख का रोग होने पर सुगन्धित तेलों से दीप दान करना चाहिए । शत्रुनाश के लिए श्वेत सर्वप के तेल का दीप दान करना चाहिए । यदि एक हजार पल वाले दीप दान करने से भी कार्य सिद्धि न हो तो विधि पूर्वक तीन दीपों का दान्र करना चाहिए । ऐसा करने से कठिन से भी कठिन कार्य सिद्ध हो जाता है ॥ १०६-११२ ॥

जिस किसी भी प्रकार से जो व्यक्ति अपने घर में कार्तवीर्य के लिए दीपदान करता है, उसके समस्त विघ्न और समस्त शत्रु अपने आप नष्ट हो जाते हैं । वह सदैव विजय प्राप्त करता है तथा पुत्र, पौत्र, धन और यश प्राप्त करता है । पात्र, घृत, आदि नियम किए बिना ही जो व्यक्ति किसी प्रकार से प्रतिदिन घर में

दीपप्रियः कार्तवीर्यो मार्तण्डो नतिवल्लभः।

देवानां तोषकराणि नमस्कारादीनि

स्तुतिप्रियो महाविष्णुर्गणेशस्तर्पणप्रियः ॥ ११६ ॥
दुर्गाऽर्चनप्रिया नूनमभिषेकप्रियः शिवः।
तस्मात्तेषां प्रतोषाय विदध्यात्तत्तदादृतः ॥ ११७ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ कार्तवीर्यार्जुनमन्त्र-कथनं नाम सप्तदशस्तरङ्गः ॥ १७ ॥

दीपदानप्रियोऽर्जुनः । तत्प्रसङ्गादन्यदेवानां यद्वदति प्रियं तदाह – **दीपेति** । मार्तण्डः सूर्यो नमस्कारप्रियः ॥ ११६ ॥ दुर्गा सुन्दरी ॥ ११७ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां कार्तवीर्यार्जुनमन्त्र निरूपणं नाम सप्तदशस्तरङ्गः ॥ १७ ॥

कार्तवीर्यार्जुन की प्रसन्नता के लिए दीपदान करता है वह अपना सारा अभीष्ट प्राप्त कर लेता है ॥ ११३-११५ ॥

तत्तदेवताओं की प्रसन्नता के लिए क्रियमाण कर्तव्य का निर्देश करते हुये ग्रन्थकार कहते हैं -

कार्तवीर्यार्जुन को दीप अत्यन्त प्रिय है, सूर्य को नमस्कार प्रिय है, महाविष्णु को स्तुति प्रिय है, गणेश को तर्पण, भगवती जगदम्बा को अर्चना तथा शिव को अभिषेक प्रिय है । इसलिए इन देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उनका प्रिय संपादन करना चाहिए ॥ ११६-११७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के सप्तदश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशः तरङ्गः

कालरात्रिमथो वक्ष्ये सपत्नगण सूदनीम्।

कालरात्रिमन्त्रस्तद्विधिकथनं च

तारवाक्छक्तिकन्दर्परमाः काह्नेश्वरीति च ॥ १ ॥
सर्वजनमनोवर्णा हरिसर्वमुखान्ततः।
स्तम्भन्यन्ते सर्वराजवशंकरिपदं ततः ॥ २ ॥
सर्वदुष्टनिर्दलनि सर्वस्त्रीपुरुषार्णकाः।
कर्षिणीति ततो बन्दीशृंखलास्त्रोटयद्वयम् ॥ ३ ॥
सर्वशत्रून् भञ्जयद्विद्वेष्टृन्निर्दलयद्वयम्।
सर्वस्तम्भययुग्मं स्यान्मोहनास्त्रेण तत्परम् ॥ ४ ॥
द्वेषिणः पदमुच्चार्य तत उच्चाटयद्वयम्।
सर्ववशंकुरुद्वन्द्वं स्वाहा देहि युगं पुनः ॥ ५ ॥

---

* नौका *

अथ कालरात्रिमन्त्रमाह – **तारेति** । तार ॐ । वाक् ऐं । शक्तिः ह्रीं । कन्दर्पः क्लीं । रमा श्रीं । अग्रे स्वरूपम् । यथा – ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं काह्नेश्वरि सर्वजनमनोहरि सर्वमुखस्तंभनि सर्वराजवशंकरि सर्वदुष्टनिर्दलनि सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि बन्दीशृंखलास्त्रोटय त्रोटय सर्वशत्रून् भञ्जय भञ्जय

---

* अरित्र *

अब शत्रुसमुदाय को नष्ट करने वाली **कालरात्रि के मन्त्रों** को कहता हूँ -

तार (ॐ), वाक् (ऐं), शक्ति (ह्रीं), कन्दर्प (क्लीं) तथा रमा (श्रीं), फिर 'काह्नेश्वरि', फिर 'सर्वजनमनो', फिर 'हरि सर्वमुखस्तम्भिनि', 'सर्वराजवशंकरि सर्वदुष्टनिर्दलनि सर्वस्त्रीपुरुषा', इतने वर्णों के बाद 'कर्षिणि', फिर 'बन्दीश्रृंखलास्' के बाद दो बार त्रोटय (त्रोटय त्रोटय), फिर 'सर्वशत्रून्' के बाद दो बार 'भञ्जय भञ्जय', फिर 'द्वेष्टॄन्' के बाद दो बार निर्दलय पद (निर्दलय निर्दलय), फिर 'सर्व' के बाद दो बार स्तम्भय (स्तम्भय स्तम्भय), फिर 'मोहनास्त्रेण' के बाद 'द्वेषिणः' पद का उच्चारण कर दो बार उच्चाटय (उच्चाटय उच्चाटय), फिर 'सर्व वशं' के बाद

सर्वं च कालरात्रीति कामिनीति गणेश्वरी।
नमोऽन्तेऽयं महाविद्या गुणरामधराक्षरा॥ ६॥
ऋषिर्दक्षोतिजगती छन्दोलर्कनिवासिनी।
देवता कालरात्रिः स्यात् कालिकाबीजमीरितम्॥ ७॥
मायाराज्ञीति शक्तिः स्यान्नियोगः स्वेष्टसिद्धये।
पञ्चांगुलिषु ताराद्यं विन्यसेद् बीजपञ्चकम्॥ ८॥
हृदयं वेदनेत्रार्णैः शिरो बाणाक्षिवर्णकैः।
प्रोक्ता शिखैकविंशत्या वर्माष्टादशभिः स्मृतम्॥ ९॥

द्वेष्टॄन् निर्दलय निर्दलय सर्वस्तंभय स्तंभय मोहनास्त्रेण द्वेषिण उच्चाटय उच्चाटय सर्ववशं कुरु कुरु स्वाहा देहि देहि सर्वकालरात्रि कामिनि गणेश्वरि नम इति । गुणरामधराक्षरा त्रयस्त्रिंशदुत्तरशतार्णा ॥ १–६ ॥ कालिका बीजं क्रीं ॥ ७–८॥ वेदनेत्रार्णैश्चतुर्विंशतिवर्णैः । बाणाक्षिवर्णकः पञ्चविंशतिर्वर्णैः ॥ ९ ॥

दो बार कुरु (कुरु कुरु), फिर 'स्वाहा', इसके बाद दो बार देहि पद (देहि देहि), फिर 'सर्व कालरात्रि कामिनि' एवं 'गणेश्वरि' के बाद अन्त में नमः जोड़ने से १३३ अक्षरों की महाविद्या निष्पन्न होती है ॥ १-६ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं कात्स्नेश्वरि सर्वजनमनोहरि, सर्वमुखस्तम्भिनि सर्वराजवशंकरि सर्वदुष्टनिर्दलनि, सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि बन्दीशृंखलास्त्रोटय त्रोटय सर्वशत्रून् भञ्जय भञ्जय द्वेष्टॄन् निर्दलय निर्दलय सर्वस्तम्भय स्तम्भय मोहनास्त्रेण द्वेषिणः उच्चाटय उच्चाटय सर्ववशं कुरु कुरु स्वाहा देहि देहि सर्वकालरात्रि कामिनि गणेश्वरि नमः ॥ १-६ ॥

इस मन्त्र के दक्ष ऋषि, अतिजगती छन्द, अलर्कनिवासिनी कालरात्री देवता, कालिका (क्रीं) बीज तथा मायाराज्ञी (ह्रीं) शक्ति है तथा अपनी अभीष्टसिद्धि के लिये इस मन्त्र का उपयोग करना चाहिए ॥ ७-८ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य कालरात्रिमहाविद्यामन्त्रस्य दक्षऋषिरतिजगतीच्छन्दः अलर्कनिवासिनि कालरात्रीदेवता क्रीं बीजं मायाराज्ञी ह्रीं शक्तिः आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यासः - ॐ दक्षाय ऋषये नमः शिरसि, ॐ अतिजगतीच्छन्द से नमः मुखे, ॐ कालरात्रिदेवतायै नमः हृदिः क्रीं बीजाय नमः गुह्ये ॐ मायाराज्ञीशक्त्यै नमः पादयोः ॥ ७-८ ॥

पञ्चाङ्गुलियों में क्रमशः प्रणवादि पाँच बीजों का एक एक क्रम से न्यास करना चाहिए । फिर मन्त्र के २४ वर्णों का हृदय पर, उसके बाद के २५ वर्णों का हृदय पर, फिर बाद के २१ वर्णों का शिखा पर, उसके बाद के १० वर्णों

षड्विंशत्यानेत्रमस्त्रं नन्दचन्द्राक्षरैर्मतम् ।
विधायैव षडङ्गानि ध्यायेद्विश्वविमोहिनीम् ॥ १० ॥
उद्यन्मार्तण्डकान्तिं विगलितकबरीं कृष्णवस्त्रावृताङ्गीं–
दण्डं लिङ्गं कराब्जैर्वरमथ भुवनं सन्दधानां त्रिनेत्राम् ।
नानाकल्पौघभासां स्मितमुखकमलां सेवितां देवसंघै–
र्मायां राज्ञीं मनोभूशरविकलतनूमाश्रये कालरात्रिम् ॥ ११ ॥
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः ।
पयोरुहैर्वा विप्रेन्द्रान् सन्तर्प्य श्रेय आप्नुयात् ॥ १२ ॥

नन्दचन्द्राक्षरैरेकोनविंशत्यर्णैः ॥ १० ॥ ध्यानमाह – **उद्यदिति** । दण्डवरौ दक्षयोः । लिंगभुवने वामयोः । भुवनं ब्रह्माण्डम् । नानाकल्पैर्विभासां विविधाभरणसमूहशोभिताम् । मनोभूशरविकलतनूं कामबाणव्याकुलशरीराम् ॥ ११–१२ ॥

का कवच पर, २६ वर्णों का नेत्र पर तथा शेष १६ वर्णों का अस्त्र पर न्यास करना चाहिए । इस प्रकार न्यास कर लेने के बाद विश्वमाहिनी कालरात्रि महाविद्या का ध्यान करना चाहिए ॥ ८-१० ॥

विमर्श - न्यास विधि - ॐ अगुष्ठाभ्यां नमः, ऐं तर्जनीभ्यां नमः, ह्रीं मध्यमाभ्यां नमः, क्लीं अनामिकाभ्यां नमः, श्रीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः इस प्रकार पाँचों अंगुलियों पर ५ बीज मन्त्रों का न्यास कर हृदयादि षडङ्गन्यास करे । यथा -

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं कात्नेश्वरि सर्वजनमनोहरि सर्वमुखस्तम्मिनि हृदयाय नमः,
सर्वराजवशंकरि सर्वदुष्टनिर्दलनि, सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि शिरसे स्वाहा,
बन्दीशृंखलास्त्रोटय त्रोटय सर्वशत्रून् भञ्जय भञ्जय शिखायै वषट्,
द्वेष्टॄन् निर्दलय निर्दलय सर्वस्तम्भयं स्तम्भय कवचाय हुम्,
मोहनास्त्रेण द्वेषिणः उच्चाटय उच्चाटय सर्व वशं कुरु कुरु स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्,
देहि देहि सर्वकालरात्रि कामिनि गणेश्वरि नमः अस्त्राय फट् ॥ ८-१० ॥

अब **मायाराज्ञि कालरात्रि का ध्यान** कहते हैं - उदीयमान सूर्य के समान देदीप्यमान आभा वाली बिखरे हुये केशों वाली, काले वस्त्र से आवृत शरीर वाली, हाथों में क्रमशः दण्ड, लिङ्ग, वर तथा भुवनों को धारण करने वाली त्रिनेत्रा, विविधाभरणभूषिता, प्रसन्नमुखकमल वाली, देवगणों से सुसेविता कामबाण से विकल शरीरा मायाराज्ञी कालरात्रि स्वरूपा महाविद्या का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ११ ॥

इस मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिए । तिलों से अथवा कमलों से दशांश होम कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजनादि से संतुष्ट करना चाहिए । ऐसा करने से साधक श्रेय प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

तां यजेत्कालिकापीठे पूजार्थं यन्त्रमुच्यते ।

पूजायन्त्रप्रकारः आवरणदेवताश्च

बिन्दुत्रिकोणषट्कोणवृत्ताष्टदलवृत्तकम् ॥ १३ ॥
कलापत्रं पुनर्वृत्तं त्रिरेखं धरणीगृहम् ।
चतुर्द्वारयुतं कृत्वा बिन्दौ देवीमथार्चयेत् ॥ १४ ॥
तद्यन्त्रं विलिखेद् भूर्जे क्षीरद्रोः फलकेऽपि वा ।
शान्तयेत्वष्टगन्धेन लेखिन्या चम्पकोत्थया ॥ १५ ॥
कर्चूरागुरुकर्पूररोचनारक्तचन्दनम् ।
कुंकुमं चन्दनं चापि कस्तूरीत्यष्टगन्धकम् ॥ १६ ॥

कालिकापीठे जयादिशक्तियुते । पूजायन्त्रमाह – **बिन्द्विति** ॥ १३ ॥ कलापत्रषोडशदलम् । तिस्रो रेखा यस्य तत् धरणीगृहं चतुष्कोणम् ॥ १४ ॥ कामनाभेदाल्लेखनभेदमाह – **तद्यन्त्रमिति** । क्षीरद्रोः क्षीरवृक्षस्याश्वत्थोदुम्बर–प्लक्षवटान्यतमस्य ॥ १५–१६ ॥

कालिका पीठ पर देवी का पूजन करना चाहिए । अब पूजा के लिये यन्त्र कहता हूँ -

बिन्दु, उसके बाद त्रिकोण, उसके बाद षट्कोण, फिर वृत्त, अष्टदल, तदनन्तर पुनः वृत्त, तत्पश्चात् षोडशदल, पुनः वृत्त और उसके बाद तीन रेखा, जिसमें चार द्वार हों ऐसे चतुष्कोण, को भूपुर से आवृत कर देना चाहिए ॥ १३-१४ ॥

कालरात्रिपूजनयन्त्रम्
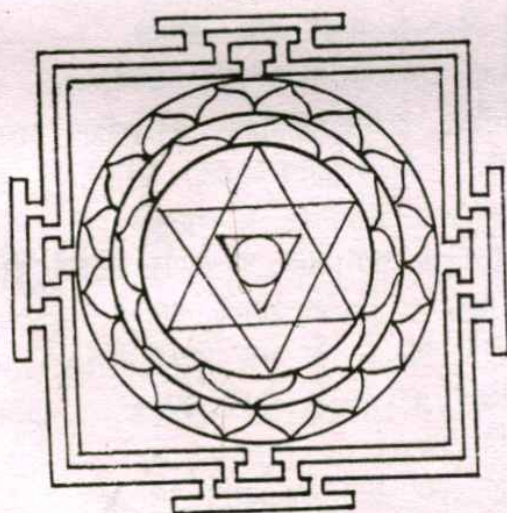
ऐसा यन्त्र लिखकर मध्य बिन्दु में देवी का पूजन करना चाहिए । यह यन्त्र भोजपत्र पर अथवा दूध वाले वृक्ष जैसे पीपल, पाकड़, गूलर या बरगद के पत्ते पर बनाना चाहिए । शान्तिक तथा पौष्टिक कर्म के लिये यन्त्र को अष्टगन्ध से तथा चम्पा की कलम द्वारा लिखना चाहिए ॥ १४-१५ ॥

कर्चूर अगुरु, कपूर, गोरोचन, रक्त चन्दन, कुंकुम, श्वेत चन्दन और कस्तूरी यह अष्टगन्ध कहा गया है ॥ १६ ॥

सिन्दूरहिंगुलाभ्यां च वश्याय विलिखेत्सुधीः।
सारसोद्भवलेखिन्या स्तम्भने कोकिलच्छदैः॥ १७॥
हरितालहरिद्राभ्यां मारणे वायसच्छदैः।
धत्तूरभानुनिर्गुण्डीखराश्वमहिषासृजा ॥ १८॥

स्तम्भने कोकिलपक्षैः॥ १७॥ हरितालहरिद्राभ्यामित्यन्वयः। मारणे वायसच्छदैः। धत्तूररसादिभिर्लिखेत् इत्यस्यान्वयः । भानुरर्करसः । खरादीनामसृजा रक्तेन॥ १८॥

वशीकरण के लिये सिन्दूर द्वारा हिंगुल (वनभण्टा) के कमल से लिखना चाहिए तथा स्तम्भन के लिये यह मन्त्र हरताल एवं हल्दी द्वारा कोयल के पंख से लिखना चाहिए। मारणकर्म के लिये धत्तूर, आक और निर्गुण्डी (सिन्दुवार) के रस में गदहा, घोड़ा तथा महिष के रक्त को मिश्रित कर कौए के पंखों से लिखना चाहिए॥ १७-१८॥

विमर्श - पीठ पूजा - सर्वप्रथम १८. ११ में उल्लिखित कालरात्रि के स्वरूप का ध्यान कर मानसोपचार से उनका पूजन कर अर्घ्य स्थापित करे । फिर पीठ देवताओं का इस प्रकार पूजन करे । यथा - **पीठमध्ये** -

ॐ आधारशक्त्यै नमः ॐ प्रकृत्यै नमः ॐ कूर्माय नमः,
ॐ शेषाय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ सुधाम्बुधये नमः,
ॐ मणिद्वीपाय नमः, ॐ चिन्तामणिगृहाय नमः,
ॐ श्मशानाय नमः, ॐ पारिजाताय नमः,

तदनन्तर **कर्णिका में** - ॐ रत्नवेदिकायै नमः, चतुर्दिक्षु,
ॐ मुनिभ्यो नमः, ॐ देवेभ्यो नमः, ॐ शिवाभ्यो नमः,
ॐ शिवकर्णिकोपरि नमः, ॐ मणिपीठाय नमः ।

पुनः **चतुष्कोण में और चतुर्दिक्षु में** - ॐ धर्माय नमः, आग्नेये,
ॐ ज्ञानाय नमः, नैर्ऋत्ये ॐ वैराग्याय नमः, वायव्ये,
ॐ ऐश्वर्याय नमः, ऐशान्ये, ॐ अधर्माय नमः, पूर्वे,
ॐ अज्ञानाय नमः, दक्षिणे, ॐ अवैराग्याय नमः, पश्चिमे,
ॐ अनैश्वर्याय नमः, उत्तरे,

इसके बाद **केसरो में** पूर्वादि दिशाओ में तथा मध्य में जयादि शक्तियों की निम्न मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए । यथा - ॐ जयायै नमः,
ॐ विजयायै नमः ॐ अजितायै नमः ॐ अपराजितायै नमः,
ॐ नित्यायै नमः ॐ विलासिन्यै नमः ॐ दोग्ध्र्यै नमः
ॐ अघोरायै नमः, ॐ मङ्गलायै नमः ।

इसके बाद 'ह्रीं कालिकायोगपीठात्मने नमः' मन्त्र से आसन देकर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर ध्यान से ले कर पुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त कालरात्रि की विधिवत् पूजाकर उनकी आज्ञा से आवरण पूजा प्रारम्भ करे ॥ १३-१८ ॥

एवं विलिखिते यन्त्रे कुर्यादावरणार्चनम् ।
त्रिकोणे देवतास्तिस्रो वामावर्तेन पूजयेत् ॥ १६ ॥
सम्मोहिनीं मोहिनीं च तृतीयां च विमोहिनीम् ।
षट्सु कोणेषु वह्न्यादिषडङ्गानि ततो यजेत् ॥ २० ॥
वृत्ते स्वराः समभ्यर्च्या मातरोऽष्टौ वसुच्छदे ।
कादिक्षान्ता हलो वृत्ते उर्वश्याद्याः कलादले ॥ २१ ॥
उर्वशीमेनकारम्भाघृताचीमंजुघोषया ।
सहजन्यासुकेशौस्यादष्टमीतु तिलोत्तमा ॥ २२ ॥
गन्धर्वी सिद्धकन्या च किन्नरीनागकन्यका ।
विद्याधरीकिम्पुरुषायक्षिणीीति पिशाचिका ॥ २३ ॥
पुनर्वृत्ते यजेन्मन्त्री देवतादशकं यथा ।
मन्त्रादिमं पञ्चबीजं स्वस्वदेवतयायुतम् ॥ २४ ॥
पञ्चबाणान् स्वबीजाद्यानित्युक्त्वा दशदेवताः ।
भूगृहान्तः समभ्यर्च्या अणिमाद्यष्टसिद्धयः ॥ २५ ॥

---

* ॥ १६–२० ॥ स्वरा अं नम इत्यादयः । हलोव्यञ्जनानि कं नम इत्यादीनि । कलादले षोडशपत्रे ॥ २१ ॥ मञ्जुघोषया सह घृताची ॥ २२–२३ ॥ **मन्त्रादिममिति** । मन्त्रादौ वर्तमानं बीजपञ्चकं स्वदेवतायुतं यजेत् । यथा ॐ परमात्मने नमः । ऐं सरस्वत्यै नमः । ह्रीं गौर्यै० । क्लीं कामायै० । श्रीं रमायै० इति ॥ २४ ॥ **पञ्चेति** । स्वबीजाद्यान् पञ्चबाणान् द्रां द्रावणबाणाय नमः इत्यादि पूर्वोक्तान् । अणिमादय उक्ताः ॥ २५–२६ ॥

उक्त प्रकार से लिखित मन्त्र पर आवरण पूजा इस प्रकार करनी चाहिए । **प्रथम त्रिकोण में** सम्मोहिनी, मोहिनी और विमोहिनी इन ३ देवताओं की वामावर्त से पूजा करनी चाहिए ॥ १६-२० ॥

फिर **षट्कोण में** आग्नेयादि कोणों के क्रम से षडङ्गन्यास वृत्त में अकारादि १६ स्वरों का तथा अष्टदल में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिए । **द्वितीय वृत्त** में अकार से लेकर क्षकार पर्यन्त ३४ व्यञ्जनो का, पुनः **षोडशदल में** १. उर्वशी, २. मेनका, ३. रम्भा, ४. घृताची, ५. मञ्जुघोषा के साथ ६. सहजनी, ७. सुकेशी और अष्टम ८. तिलोत्तमा, ९. गन्धर्वी, १०. सिद्धकन्या, ११. किन्नरी, १२. नागकन्या, १३. विद्याधरी, १४. किंपुरुषा, १५. यक्षिणी और १६. पिशाचिका का पूजन करना चाहिए ॥ २०-२३ ॥

फिर **तृतीय वृत्त** में ५ बीजों का अपने अपने देवताओं के साथ तथा अपने अपने बीजों के साथ पञ्चबाणों का इस प्रकार कुल १० देवताओं का

भूगृहस्य त्रिरेखासु सम्पूज्या नवदेवताः ।
इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति त्रयम् ॥ २६ ॥
आद्यरेखागतं पूज्यं द्वितीयायां शिवाजकाः ।
तृतीयायां तु रेखायां सत्त्वमुख्यं गुणत्रयम् ॥ २७ ॥
पूर्वादिषु चतुर्द्वार्षु गणेशं क्षेत्रपालकम् ।
बटुकं योगिनीश्चापि यजेदिन्द्रादिकानपि ॥ २८ ॥
एवं बाह्यार्चनं कृत्वा देवीपार्श्वगताः पुनः ।
देव्यो द्वादश सम्पूज्याः प्रतिदिक्त्रितयं त्रयम् ॥ २६ ॥
मायाद्या कालरात्रिश्च तृतीया वटवासिनी ।
गणेश्वरी च काह्नाख्या व्यापिकालार्कवासिनी ॥ ३० ॥
मायाराज्ञी च मदनप्रिया स्याद्दशमी रतिः ।
लक्ष्मीःकाह्नेश्वरी चेति देव्यो द्वादश कीर्तिताः ॥ ३१ ॥
नैवेद्यान्तार्चनं कृत्वा दद्यान्मद्यादिना बलिम् ।
एवं सम्पूजिता स्वेष्टं कालरात्रिः प्रयच्छति ॥ ३२ ॥

शिवाजका रुद्रविष्णुब्रह्माणः । सत्त्वमुख्यं सत्त्वरजस्तमांसि ॥ २७ ॥ * ॥ २८–३२ ॥

पूजन करना चाहिए ॥ २४-२५ ॥

फिर **भूपुर के भीतर** अणिमादि अष्टसिद्धियों का तथा भूपुर की तीनों रेखाओं मे ६ देवताओं का पूजन करना चाहिए । **पहली रेखा** में इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति का, **दूसरी रेखा** में रुद्र, विष्णु और ब्रह्मदेव का तथा **तीसरी रेखा** में सत्त्व, रज एवं तमो गुण का पूजन करना चाहिए ॥ २५-२७ ॥

फिर मन्त्र के पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक और योगिनियों का पूजन करना चाहिए । फिर इन्द्रादि दिक्पालों का भी पूजन करना चाहिए । इस रीति से बाह्य पूजा करने के पश्चात् देवी के पास चारों दिशाओ में तीन तीन के क्रम से १२ देवियों का पूजन करना चाहिए ॥ २८-२६ ॥

१. माया, २. कालरात्रि, ३. वटवासिनी, ४. गणेश्वरी, ५. काह्ना, ६.व्यापिका, ७. अलर्कवासिनी, ८. मायाराज्ञी, ६. मदनप्रिया, १०. रति, ११. लक्ष्मी एवं १२. काह्नेश्वरी - ये १२ देवियाँ है । इन देवियों को नैवेद्य समर्पणान्त पूजन कर अन्त में मद्य आदि की बलि देनी चाहिए । इस रीति से पूजन करने पर कालरात्रि साधक को अभीष्ट फल देती है ॥ ३०-३२ ॥

विमर्श - आवरण पूजा विधि - सर्वप्रथम त्रिकोण में वामावर्त क्रम से सम्मोहिनी आदि का निम्नलिखित रीति से पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ सम्मोहिन्यै नमः, ॐ मोहिन्यै नमः, ॐ विमोहिन्यै नमः

फिर षट्कोण में आग्नेयादि कोणों के क्रम से निम्न मन्त्रों से षडङ्गपूजा करनी चाहिए । यथा

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं कात्स्नेश्वरि सर्वजन मनोहरि सर्वमुखस्तम्भिनि हृदयाय नमः,
सर्वराजवशंकरि सर्वदुष्टनिर्दलिनि सर्वस्त्रीपुरुषाकर्षिणि शिरसे स्वाहा,
बन्दी श्रृखंलास्त्रोटय त्रोटय सर्वशत्रून् भञ्जय भञ्जय शिखायै वषट्,
द्वेष्टून् निर्दलय निर्दलय सर्वस्तम्भयं स्तम्भय कवचाय हुम्,
मोहनास्त्रेण द्वेषिणः उच्चाटय उच्चाटय सर्व वशं कुरु कुरु स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्,
देहि देहि सर्व कालरात्रि कामिनि गणेश्वरि नमः अस्त्राय फट्

तत्पश्चात् वृत्त में १६ स्वरों का पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ अं नमः, ॐ आं नमः, ॐ इं नमः ॐ ईं नमः,
ॐ उं नमः, ॐ ऊं नमः, ॐ एं नमः ॐ ऐं नमः,
ॐ ओं नमः, ॐ औं नमः ॐ अं नमः ॐ अः नमः।

फिर अष्टदल में ब्राह्मी आदि आठ अष्टमातृकाओं की नाममन्त्रों से पूर्वादि दलों के क्रम से पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ ब्राह्मयै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः, ॐ कौमार्यै नमः,
ॐ वैष्णव्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ इन्द्राण्यै नमः,
ॐ चामुण्डायै नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः,

फिर द्वितीय वृत्त में कं नमः, खं नमः इत्यादि मन्त्रों से ककार से ले कर क्षकार पर्यन्त व्यञ्जनों का पूजन कर षोडशदल में उर्वशी आदि का निम्न मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । यथा - ॐ उर्वश्यै नमः,

ॐ मेनकायै नमः, ॐ रम्भायै नमः, ॐ घृताच्यै नमः,
ॐ मञ्जुघोषायै नमः, ॐ सहजन्यायै नमः, ॐ सुकेश्यै नमः,
ॐ त्रिलोत्तमायै नमः, ॐ गन्धर्व्यै नमः, ॐ सिद्धकान्यायै नमः,
ॐ किन्नर्यै नमः, ॐ नागकन्यायै नमः, ॐ विद्याधर्यै नमः,
ॐ किं पुरुषायै नमः, ॐ यक्षिण्यै नमः, ॐ पिशाचिकायै नमः,

इसके बाद तृतीय वृत्त में मूलमन्त्र के ५ बीजों में एक एक बीज और उनके एक एक देवता का पूजन करना चाहिए । यथा - ॐ परमात्मने नमः,

ऐं सरस्वत्यै नमः, ह्रीं गौर्यै नमः, क्लीं कामायै नमः,
श्रीं रमायै नमः, द्रां द्रावणबाणय नमः, द्रीं क्षोभणबाणाय नमः,
क्लीं वशीकरणबाणाय नमः, ब्लूं आकर्षणबाणाय नमः, सः उन्मादन बाणाय नमः,

तत्पश्चात् भूपुर के भीतर अणिमा आदि ८ सिद्धियों का पूजन करना चाहिए । यथा - ॐ अणिमायै नमः, ॐ महिमायै नमः,

ॐ लघिमायै नमः, ॐ गरिमायै नमः, ॐ प्राप्त्यै नमः,
ॐ प्राकाम्यायै नमः, ॐ ईशितायै नमः, ॐ वशितायै नमः

वशीकरणांगत्वेन जलौकापूजनम्

शनिवारे तु सन्ध्यायां गच्छेद्रम्यं सरोवरम् ।
हरिद्राक्षतपुष्पैस्तन्मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ ३३ ॥

वशीकरणमाह – **शनिवार** इत्यादि । हरिद्राक्षतपुष्पैश्च मन्त्रेणानेन पूजयेदित्यन्तेन । स्प्रष्टुरिति शेषः ॥ ३३–३४ ॥

तदनन्तर भूपुर के तीन रेखाओं में क्रमशः प्रथम रेखा से तीन रेखाओं पर तीन-तीन देवताओं का निम्न रीति से पूजन करना चाहिए । यथा -

आद्यरेखा - ॐ इच्छाशक्त्यै नमः, ॐ क्रियाशक्त्यै नमः, ॐ ज्ञानशक्त्यै नमः,

द्वितीयरेखा - ॐ रुद्राय नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः,

तृतीयरेखा - ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः,

फिर पूर्व आदि चारों दिशाओं मे क्रमशः गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक एवं योगिनियों का पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ गं गणपतये नमः, ॐ क्षं क्षेत्रपालाय नमः,
ॐ वं वटुकाय नमः, ॐ यं योगिनीभ्यो नमः,

इसके बाद पूर्व आदि अपनी दिशाओं में सायुध इन्द्रादि का निम्नलिखित मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ लं इन्द्राय सायुधाय नमः, ॐ रं अग्नये सायुधाय नमः,
ॐ मं यमाय सायुधाय नमः, ॐ क्षं निर्ऋतये सायुधाय नमः,
ॐ वं वरुणाय सायुधाय नमः ॐ यं वायवे सायुधाय नमः,
ॐ सं सोमाय सायुधाय नमः, ॐ हं ईशानाय सायुधाय नमः,
ॐ आं ब्रह्मणे सायुधाय नमः ॐ ह्रीं अनन्ताय सायुधाय नमः

इस रीति से बाह्य पूजा समाप्त कर देवी के समीप पूर्वादि चारों दिशाओं में तीन तीन के क्रम से १२ देवियों का उनके नाम मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । यथा -

पूर्वे - ॐ मायायै नमः, ॐ कालरात्र्यै नमः ॐ वटवासिन्यै नमः,

दक्षिणे - ॐ गणेश्वर्ये नमः, ॐ काह्नायै नमः, ॐ व्यापिकायै नमः,

पश्चिमे - ॐ अलर्कवासिन्यै नमः, ॐ मायाराज्ञ्यै नमः, ॐ मदनप्रियायै नमः,

उत्तरे - ॐ रत्यै नमः ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ काह्नेश्वर्यै नमः,

इस प्रकार आवरण पूजा के पश्चात् धूप, दीप, नैवेद्यादि से विधिवत् देवी का पूजन कर मद्यादि पदार्थो से उन्हें बलि देनी चाहिए । इस प्रकार के पूजन से कालरात्रि प्रसन्न होकर साधक को अभीष्ट फल देती है ॥ १८-३२ ॥

अब **काम्यप्रयोग** कहते है - सर्वप्रथम वशीकरण का प्रयोग साधक शनिवार

तारो नमो जलौकायै द्वितयं सर्वतः परम् ।
जनं वशं कुरुद्वन्द्वं हुमन्तो मनुरीरितः ॥ ३४ ॥
गृहमागत्य गोत्रायां स्वप्याद्देवीं स्मरन्निशि ।
प्रातस्तत्रैव गत्वाथ जलौकाद्वितयं ततः ॥ ३५ ॥
गृहीत्वा तत्प्रशोष्याथ च्छायायां चूर्णयेत्पुनः ।
जलूका चूर्णयुक्तेन कृष्णकार्पाससूत्रतः ॥ ३६ ॥
वार्तं विधाय मुञ्चेत भाजने निर्मिते मृदा ।
कुलालचक्रोत्थितया तत्र तैलं पुनः क्षिपेत् ॥ ३७ ॥
तैलं यन्त्रात्समानीतं भ्रमतो निर्मलं शुचि ।
वारस्त्रीसदनाद् वह्निमानीय ज्वालयेत्तु तम् ॥ ३८ ॥
दारुभिः कोकिलाक्षस्य प्रकुर्यात्तत्र दीपकम् ।
वह्नेःपुरद्वयं क्षोणी पुरयन्त्रे निधापनम् ॥ ३६ ॥
निशारसेन रचिते मध्ये लाजासमन्विते ।
कालरात्रिं ततो दीपे समावाह्य प्रपूजयेत् ॥ ४० ॥

गोत्रायां भूमौ ॥ ३५ ॥ * ॥ ३६–३८ ॥ कोकिलाक्षस्य कुचिलावृक्षस्य । वह्नेः पुरं त्रिकोणम् । तद्द्वयं षट्कोणम् । क्षोणीपुरं चतुरस्रम् ॥ ३६ ॥ भूमिः ग्लौं । वसुसायकवर्णोऽष्टपञ्चाशदर्णः । प्रयोगो यथा – साधकः शनिवासरे संध्याकाले तडागं गत्वा ॐ नमो जलूकायै जलूकायै सर्वजनं वशं कुरु कुरु हुमिति मन्त्रेण हरिद्राक्ताक्षतपुष्पैर्जलं संपूज्य गृहं गत्वा देवीं स्मरन्निशि भूमौ शयीत । प्रातस्तस्मात् सरसो जलौकाद्वयमादाय च्छायाशुष्कं

के दिन सांयकाल किसी रमणीक सरोवर पर जावे । इसके बाद हल्दी, अक्षत एवं पुष्पों से तार (ॐ), फिर 'नमो' पद, फिर दो बार जलौकायै, फिर 'सर्व' पद के बाद 'जनं वशं' कह कर २ बार 'कुरु कुरु', फिर अन्त में हुं, अर्थात् - 'ॐ नमो जलौकायै जलौकायै सर्वजनं वशं कुरु कुरु हुं' इस मन्त्र से सरोवर का पूजन करे ॥ ३३-३४ ॥

फिर घर जा कर रात्रि में देवी का स्मरण करते हुये सो जावे । पुनः प्रातः उसी सरोवर पर जा कर वहाँ से २ जलौका (जोंक) ला कर छाया में सुखा कर उसका चूरा बना लें । इस चूरे को काले कपास की रूई में मिलाकर, बत्ती बना कर, कुम्हार के चाक पर से लाई गई मिट्टी का दीप बनाकर, उसमें वह बत्ती डाल देवे । फिर चलते हुये कोल्हू से निर्मल एवं शुद्ध तेल लाकर उसमें डाल देवे । तत्पश्चात् वेश्या (वारस्त्री) के घर से अग्नि लाकर कुचिला की लकड़ी जलाकर उसी से दीपक को प्रज्वलित करे ॥ ३५-३६ ॥

युक्तामावरणैः पश्चान्नवीनं खर्परं न्यसेत् ।
दीपोत्थपात्रपतितमादद्यात् कज्जलं सुधीः ॥ ४१ ॥
पश्चिमाभिमुखो मन्त्री कज्जलं तत्तु मन्त्रयेत् ।
वक्ष्यमाणेन मनुना शतत्रितय सम्मितम् ॥ ४२ ॥
तारो वाङ्मदनो मायारमाभूमिर्बलूं ह्सौः ।
नमः काह्नेश्वरि पदं सर्वान् मोहय मोहय ॥ ४३ ॥

कृत्वा सञ्चूर्ण्य तच्चूर्णयुक्तेन कृष्णकार्पाससूत्रेण वर्तिकां कृत्वा कुलाल चक्रानीतमृन्निर्मिते पात्रे तां निधाय भ्रमतस्तैलयन्त्रात्तिलतैलमादाय तत्र निःक्षिपेत् । वेश्यागृहादग्निमानीय कुचिला इति कान्यकुब्जभाषाप्रसिद्धतरोः काष्ठैस्तं प्रज्वाल्य तेन तत्पात्रे दीपं कृत्वा हरिद्रारसकृते त्रिकोणषट्कोण–चतुष्कोणात्मके यन्त्रे मध्ये लाजान् प्रक्षिप्य तदुपरि दीपपात्रं स्थापयित्वा दीपे कालरात्रिमावाह्य सावरणामिष्ट्वा खर्परं दीपोपरि धृत्वाञ्जनं पातयेत् । तदञ्जनमादाय पश्चिमाभिमुखः शतत्रयमनेन मन्त्रेण मन्त्रयेत् ॥ ४०–४२ ॥ मन्त्रो यथा – ॐ ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं ग्लौं ब्लूं ह्सौः नमः काह्नेश्वरि सर्वान्

फिर हल्दी के रस से त्रिकोण षट्कोण एवं भूपुर से बने यन्त्र पर बीच में लाजा रखकर उस दीपक को स्थापित कर देना चाहिए । ऐसा कर लेने के बाद उसी दीपक पर कालरात्रि का आवाहन कर आवरण सहित उनकी पूजा करे । फिर दीपक पर नवीन खप्पर रखकर दीपक की ज्योति से उत्पन्न काजल ले कर साधक पश्चिमाभिमुख बैठकर तीन सौ बार उक्त वक्ष्यमाण मन्त्र द्वारा उस काजल को अभिमन्त्रित करे ॥ ३९-४२ ॥

कालरात्रिदीपस्थापनयन्त्रम्

अब **अञ्जनाभिमन्त्रण मन्त्र** कहते हैं -

तार (ॐ), वाग् (ऐं), मदन (क्लीं), माया (ह्रीं), रमा (श्रीं), भूमि (ग्लौं), फिर 'ब्लूं ह्सौः नमः 'काह्नेश्वरि' के बाद 'सर्वान्मोहय मोहय कृष्ण', इसके बाद 'कृष्णवर्णे', फिर 'कृष्णाम्बरसमन्विते सर्वानाकर्षय आकर्षय', फिर 'शीघ्रं वशं' तथा २ बार कुरु कुरु,
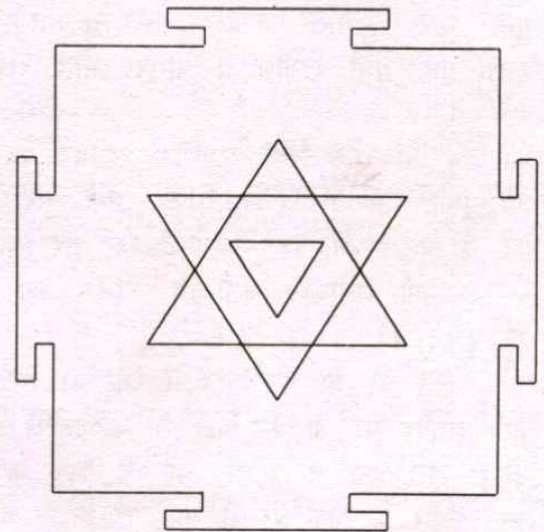
कृष्णेऽन्ते कृष्णवर्णे च कृष्णाम्बरसमन्विते ।
सर्वानाकर्षयद्वन्द्वं शीघ्रं वशं कुरुद्वयम् ॥ ४४ ॥
वाग्भवागिरिजाकामश्रीबीजान्तो महामनुः ।
वसुसायकवर्णोऽयमञ्जनस्याभिमन्त्रणे ॥ ४५ ॥
दीपादात्मनि संयोज्य देवतामञ्जनं पुनः ।
भौमवारे समभ्यर्च्य नवनीतेन मर्दयेत् ॥ ४६ ॥
मूलेनाऽष्टोत्तरशतं पुनर्होमं समाचरेत् ।
मधूककुसुमैः साष्टशतं वह्नौ सुसंस्कृते ॥ ४७ ॥
कुमारीं बटुकं नारीं भोजयेन्मधुरान्वितम् ।
तेनाञ्जनेन रचितं तिलको मन्त्रिसत्तमः ॥ ४८ ॥
दर्शनादेव वशयेन्नरनारीनरेश्वरान् ।
दुग्धेनादौ प्रदत्तं तन्नराणां वशकारकम् ॥ ४६ ॥
तेन स्पृष्टो नरो नूनं दासः स्प्रष्टुर्भवेत्सदा ।
वशीकरणमाख्यातं स्तम्भनं प्रोच्यतेऽधुना ॥ ५० ॥

मोहय मोहय कृष्णे कृष्णवर्णे कृष्णाम्बरसमन्विते सर्वानाकर्षय आकर्षय शीघ्रं वशं कुरु कुरु ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं इति ॥ ४३–४५ ॥ ततो दीपाद् देवीमात्मनि संयोज्य तत्कज्जलं भौमवारे नवनीतमर्दितं पात्रे संस्थाप्य तदग्रे वह्निं संस्थाप्य संस्कृत्य मधूकपुष्पैरष्टोत्तरशतं मूलेन हुत्वा कुमारी बटुकस्त्रियो भोजयेत् । तदञ्जनकृततिलको जगद्वशयेदित्यादि फलं स्पष्टम् ॥ ४६–५० ॥

फिर वाग् (ऐं), गिरिजा (ह्रीं), काम (क्लीं) एवं उसके अन्त में श्री बीज (श्रीं) लगाने से ५८ अक्षरों का अञ्जनाभिमन्त्रण का महामन्त्र बन जाता है ॥ ४३-४५ ॥

विमर्श – इस **मन्त्र का स्वरूप** इस प्रकार है - ॐ ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं ग्लौं ब्लूं ह्सौः नमः कात्स्नेश्वरि सर्वान्मोहय मोहय कृष्णे कृष्णवर्णे कृष्णाम्बरसमन्विते सर्वानाकर्षय आकर्षय शीघ्रं वशं कुरु कुरु ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं ॥ ४३-४५ ॥

इसके पश्चात् दीपक से दीप देवता को अपनी आत्मा में स्थापित कर, मङ्गलवार के दिन पुनः देवी एवं अञ्जन का पूजन कर अञ्जन को मक्खन से मर्दित करना चाहिए । तदनन्तर सुसंस्कृत अग्नि में मूल मन्त्र से १०८ आहुती, फिर मूल मन्त्र से महुआ के फूलों से एक सौ आठ आहुतियों द्वारा होम कर कुमारी, वटुक एवं स्त्रियों को मिष्ठान्न का भोजन कराना चाहिए ॥ ४६-४८ ॥

इस प्रकार निष्पन्न हुये अञ्जन का तिलक लगाकर साधक अपने दृष्टिपात मात्र से नर, नारी किं बहुना राजा को भी वशीभूत कर लेता है । दूध में मिलाकर पिलाने से पीने वाला पुरुष वशीभूत हो जाता है । किं बहुना ऐसा साधक जिसका

स्तम्भनकथनं मन्त्रश्च

हरिद्रारञ्जिते वस्त्रे लिखेद्यन्त्रमिदं शुभम्।
निशागोरोचनाकुष्ठाञ्जनैर्गोमूत्रमर्दितैः ॥ ५१ ॥
लिखेदष्टदलं पद्मं रिपुनामाढ्यकर्णिकम्।
दलेषु विलिखेत्तारद्वयं भूबीजयुग्मकम् ॥ ५२ ॥
चटद्वयं ततो यन्त्रं पीतसूत्रेण वेष्टयेत्।
कोकिलाख्यतरोः सप्तकण्टकैः परिकीलितम् ॥ ५३ ॥
भानुवृक्षदलैः सम्यग्वेष्टितं निःक्षिपेत् पुनः।
वल्मीकरन्ध्रे मेषस्य मूत्रेणोपरि पूरयेत् ॥ ५४ ॥
अश्मानं रन्ध्रवदने निधायाश्मस्थितः सुधीः।
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं निशाचरदिशामुखः ॥ ५५ ॥
निशया निर्मितैरक्षैः समन्त्रः प्रोच्यतेऽधुना।
प्रणवो गगनक्षोण्यौ चन्द्रदीर्घत्रयान्वितौ ॥ ५६ ॥

स्तम्भनमाह – **हरिद्रेति** ॥ ५१॥ गगनक्षोण्यौ हलौ । चन्द्रो बिन्दुः । तेन ह्लां ह्लीं ह्लूं इति । अन्तिमः क्षः । भगी एयुतः क्षे । यथा – रवौ हरिद्रारोचनाकुष्ठतगरैर्गोमूत्रपिष्टैर्हरिद्रारञ्जिते वस्त्रेऽष्टदलं कृत्वामुकं स्तंभयेति मध्ये – ॐ ॐ ग्लौं ग्लौं चट चटेति वर्णान् दलेषु च लिखेत् । तद्वस्त्र

स्पर्श करता है वह पुरुष सदैव उसका दास बना रहता है ॥ ४८-५० ॥

यहाँ तक वशीकरण की विधि कही गई। अब **स्तम्भनमन्त्र** कहा जा रहा है -

कालरात्रिस्तम्भन यन्त्रम्

अमुकं स्तंभय

हल्दी, गोरोचन कूट एवं तगर को गोमूत्र में पीस कर उससे हल्दी में रंगे वस्त्र पर अष्टदल निर्माण करना चाहिए । फिर उसकी कर्णिका में शत्रु का नाम (अमुकं स्तम्भय) तथा दलों में २ बार प्रणव तथा भूबीज (ग्लौं) दो बार और चार दलों में दो बार 'चट' शब्द लिखना चाहिए । फिर उस मन्त्र को पीले वस्त्र से वेष्टित करना चाहिए ॥ ५०-५३ ॥
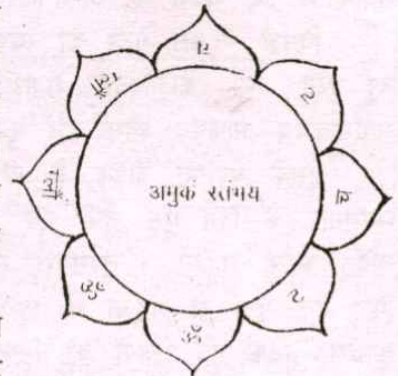
उसके बाद कुचिला की लकड़ी की सात कीलों से उसे विद्धकर आक के पत्ते में लपेट कर, उस यन्त्र को वल्मीक (बाँबी) में रखकर, उस बाँबी को भेंडे के मूत्र से भर देना चाहिए । फिर बाँबी के उपर पत्थर रखकर उस पर बैठकर साधक नैर्ऋत्य कोण की ओर मुख कर हरिद्रा से निर्मित माला द्वारा वक्ष्यमाण मन्त्र का

कामाक्षिमायावर्णोन्ते रूपिणीतिपदं ततः ।
सर्वान्ते च मनोहारिण्यन्ते स्तम्भययुग्मकम् ॥ ५७ ॥
रोधयद्वितयं पश्चान्मोहयद्वितयं पुनः ।
दीर्घत्रयाढ्यकामस्य बीजं कामोऽन्तिमो भगी ॥ ५८ ॥
काह्नेश्वरि ततो वर्मत्रयं पञ्चाशदक्षरः ।
प्रोक्तो मन्त्रः प्रजप्तेस्मिञ्छत्रूणां स्तम्भनं भवेत् ॥ ५९ ॥

मोहनं तस्य मन्त्रश्च

रवौ हरिद्रामानीय पिष्ट्वा दुग्धेन योषितः ।
तद्रसेन लिखेद् भूर्जे वृत्तमन्तः स्मरान्वितम् ॥ ६० ॥
तदवृत्तं वेष्टयेत्कामबीजैर्दशभिरादरात् ।
पुनर्वृत्तं प्रकल्प्याथ वेष्टयेदर्कमन्मथैः ॥ ६१ ॥

पीतवस्त्रं सूत्रेण संवेष्ट्य कोकिलतरोः सप्तकण्टकैर्विद्धर्कपत्रैः संवेष्ट्य वल्मीकरन्ध्रे प्रक्षिप्य मेषमूत्रमुपरि सिक्त्वा रन्ध्रोपरि शिलां संस्थाप्य तत्र स्थितोऽमुं मन्त्रं हरिद्रामणिभिः सहस्रं जपेन्नैर्ऋत्याभिमुखः । मन्त्रो यथा – ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं कामाक्षि मायारूपिणि सर्वमनोहारिणि स्तंभय स्तंभय रोधय रोधय मोहय मोहय क्लां क्लीं क्लूं कामाक्षे काह्नेश्वरि हुं हुं हुं इति । एवं कृते रिपुस्तम्भः ॥ ५२–५९ ॥ मोहनमाह – **रवाविति**। अर्कमन्मथैर्द्वादशकामबीजैः।

एक हजार की संख्या में जप करे ॥ ५३-५६ ॥

अब **जप का मन्त्र** कहते हैं - प्रणव (ॐ), चन्द्र एवं दीर्घत्रय सहित गगन एवं क्षोणी (ह्लां ह्लीं ह्लूं), फिर 'कामाक्षिमाया' एवं 'रूपिणि' पद के बाद 'सर्व' एवं 'मनोहारिणि' पद, फिर दो बार 'स्तम्भय', फिर दो बार 'रोधय', फिर दो बार 'मोहय', फिर दीर्घत्रय सहित कामबीज (क्लां क्लीं क्लूं), फिर 'कामा' पद, फिर भगी, अन्तिम (क्षे), फिर काह्नेश्वरि, तदनन्तर अन्त में वर्मत्रय (हुं हुं हुं) लगाने से ५० अक्षरों का (स्तम्भक) जप मन्त्र बनता है । इस मन्त्र का उपर्युक्त संख्या में जप करने से शत्रु का स्तम्भन होता है ॥ ५६-५९ ॥

विमर्श - इस मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'ॐ ह्लां ह्लीं ह्लूं कामाक्षि मायारूपिणि सर्वमनोहारिणि स्तम्भय स्तम्भय रोधय रोधय मोहय मोहय क्लां क्लीं क्लूं कामाक्षे काह्नेश्वरि हुं हुं हुम्' ॥ ५६-५९ ॥

अब **मोहन का विधान** कहते है - रविवार के दिन हल्दी ला कर उसे स्त्री के दूध में पीसकर बने रस से भोजपत्र पर एक वृत्त बनाकर उसमें कामबीज लिखना चाहिए । पुनः उस वृत्त को १० कामबीजों से वेष्टित करना चाहिए । इसके बाद उसके ऊपर एक वृत्त बनाकर उसे १२ कामबीज (क्लीं) से वेष्टित करना चाहिए ।

विरच्याथ पुनर्वृत्तं वेष्टयेत्षोडशस्मरैः ।
तस्योपरिष्टात्षट्कोणं कोणेषु मदनान्वितम् ॥ ६२ ॥
वाग्बीजमध्ये तत्सर्वं यन्त्रं मोहनकारकम् ।
उपविश्याथ तद्यन्त्रे दशवर्णं मनुं जपेत् ॥ ६३ ॥
ङेन्तः कामः कामबीजं कामिन्यै कामसम्पुटः ।
ताराद्यो दशवर्णोऽयं मनुर्लोकविमोहनः ॥ ६४ ॥
पञ्चाहं प्रजपेन्मन्त्रं प्रत्यहं क्रुद्धमानसः ।
तद्दशांशं प्रजुहुयात्तिलैराज्यपरिप्लुतैः ॥ ६५ ॥
होमोत्थभस्मना कुर्वंस्तिलकं नरसत्तमः ।
मोहयेदखिलं विश्वं तद्यन्त्रस्यापि धारणात् ॥ ६६ ॥

यथा – रविवारे हरिद्रां नारीदुग्धेन पिष्ट्वा तद्रसेन भूर्जपत्रमध्ये कामबीजयुतं वृत्तं कृत्वा दशकामबीजैः संवेष्ट्य पुनर्वृत्तं कृत्वा द्वादश कामबीजैः संवेष्ट्य पुनर्वृत्तं कृत्वा षोडशकामबीजैः संवेष्ट्योपरि कामबीजयुक् षट्कोणं कृत्वा सर्ववाग्बीजमध्यस्थं कुर्यात् । तद्यन्त्रोपरि स्थित्वा पञ्चदिनं प्रत्यहं सहस्रं दशाक्षरं जपेत् ॥ ६०–६३ ॥ मन्त्रो यथा – ॐ कामाय क्लीं क्लीं कामिन्यै क्लीमिति । जपदशांशेन तिलतैलेनैव जुहुयात् । तद्भस्मना तिलकेन तद्यन्त्रधारणेन च विश्वं मोहयेत् ॥ ६४–६६ ॥

फिर उसके ऊपर एक वृत्त और बना कर उसे सोलह कामबीजों से वेष्टित करना चाहिए । पुनः उसके ऊपर षट्कोण लिखकर उसके कोणों में काम बीज (क्लीं) लिखना चाहिए । फिर इस संपूर्ण यन्त्रको वाग्बीज (ऐं) के मध्य में करने से वह यन्त्र मोहन करने वाला हो जाता है ॥ ६०-६३ ॥

कालरात्रिमोहनयन्त्रम्

इसके बाद उस यन्त्र पर बैठकर क्रुद्ध मन से ५ दिन पर्यन्त सहस्र-सहस्र की संख्या में दशाक्षर मन्त्र का जप करे । चतुर्थ्यन्त काम (कामाय) फिर कामबीज (क्लीं) तदनन्तर काम सम्पुटित 'कामिन्यै' पद और प्रारम्भ में तार (ॐ) अर्थात् - 'ॐ कामाय क्लीं क्लीं कामिन्यै क्लीं' यह जगत् को मोहित करने वाला दशाक्षर मन्त्र बनता है ।
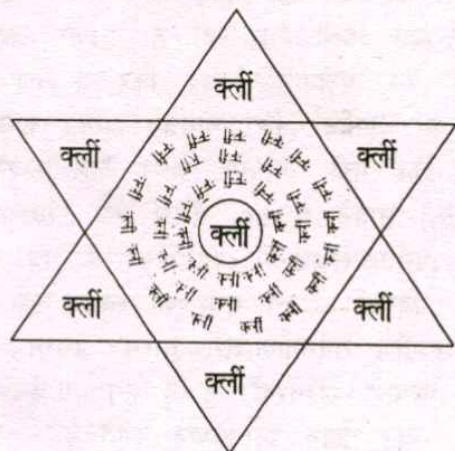
आकर्षणं तद्विधिकथनम्

उक्तं मोहनमाकर्षं वक्ष्ये कृष्णाष्टमीदिने ।
भूते वा भूमिजन्मार्कयुक्ते प्रातर्जलान्तरे ॥ ६७ ॥
नाभिदघ्ने स्थितो मूलं सहस्रं सशतं जपेत् ।
ततो गृहं समागत्य तैलाभ्यक्त कलेवरः ॥ ६८ ॥
पीठादावञ्जनैः कृत्वा स्त्र्याकारं वा नराकृतिम् ।
इष्ट्वा लज्जावतीपत्रैः प्रोक्षेत्तन्मूलजै रसैः ॥ ६९ ॥
तदग्रे प्रजपेच्चत्वारिंशदक्षरकं मनुम् ।
तारो नमः कालिकायै सर्वाकर्षपदं ततः ॥ ७० ॥
रतिवायू भौतिकस्थावमुकीमिति वर्णतः ।
आकर्षयद्वयं शीघ्रमानयद्वितयं ततः ॥ ७१ ॥

आकर्षणमाह – **उक्तमिति** । लज्जावती लज्जालुः। स्पर्शमात्रेण यत्पत्राणि संकुचन्ति सा लज्जालुः । रतिवायूणयौ भौतिकस्थौ ऐयुतौ । तेन ण्यै । आकर्षण मनुश्चत्वारिंशदर्णः । प्रयोगश्च – कृष्णाष्टम्यां कृष्णचतुर्दश्यां वा कुजरव्यन्तरयुक्तायां प्रातर्नाभिमात्रे जले स्थित्वा मूलमेकादशशतं प्रजप्य गृहमागत्य शरीरं तैलेनाभ्यज्यपीठेऽञ्जनैर्नराकारयोषिदाकारं वा विलिख्य लज्जा–वतीपत्रैस्तं संपूज्य लज्जावतीमूलरसेन संप्रोक्ष्य तदग्रेऽमुं मन्त्रं षष्ट्याधिकं शतं जपेत् । मन्त्रो यथा – ॐ नमः कालिकायै – सर्वाकर्षण्यै अमुकीमाकर्षय आकर्षय शीघ्रमानय आनय, आं ह्रीं क्रों भद्रकाल्यै नमः इति । ततः

तदनन्तर घृत मिश्रित तिलों से दशांश हवन करना चाहिए । इस प्रकार किये गये भस्म का तिलक लगाकर या उस यन्त्र को धारण कर साधक सारे विश्व को मोहित कर लेता है ॥ ६३-६६ ॥

यहां तक मोहन मन्त्र का विधान कहा गया। अब **आकर्षण का विधान** कहते हैं -

कृष्णपक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी को मङ्गल या रविवार का दिन होने पर प्रातः नाभिपर्यन्त जल में खड़े होकर मूलमन्त्र का ११ सौ जप करना चाहिये । फिर घर आ कर शरीर में तेल लगाकर पीठ पर अञ्जन से स्त्री की आकृति अथवा पुरुष की आकृति बनाकर उसकी लज्जावती के पत्तों से पूजा कर उसकी जड़ के रस से उस आकृति का प्रोक्षण करना चाहिए ॥ ६७-६९ ॥

फिर उसके आगे बैठकर वक्ष्यमाण ४४ अक्षरों वाले इस मन्त्र का जप करना चाहिए -

तार (ॐ), फिर 'नमः कालिकायै सर्वोत्कर्ष', उसके आगे भौतिकस्थ रति एवं वायु (ण्यै), फिर अम्रकीं, दो बार आकर्षय, उसके बाद पुनः दो बार शीघ्रमानय, फिर पाश (आं), माया (ह्रीं), अंकुश (क्रों), 'भद्रकाल्यै' पद तथा अन्त में हृद

पाशोमायांकुशं भद्रकाल्यै हृदयमन्ततः।
चत्वारिंशल्लिपिर्मन्त्रः प्रोक्त आकर्षणक्षमः॥ ७२॥
शतं षष्ट्याधिकं जप्त्वा लोहितैः करवीरजैः।
पञ्चाशत्प्रभितैर्मन्त्री पूजयेल्लिखिताकृतिम्॥ ७३॥
मातृकावर्णमेकैकं तन्नामाकर्षयद्वयम्।
नम इत्यभि सञ्जप्य पुष्पमेकैकमर्पयेत्॥ ७४॥
धूपदीपनिवेद्यानि कृत्वा होमं समाचरेत्।
चणकैराज्यसम्मिश्रैराकर्षमनुना शतम्॥ ७५॥
कृष्णकार्पाससूत्रस्य कुमारीनिर्मितस्य च।
गुणं देहमितं कृत्वा अष्टाविंशति तन्तुभिः॥ ७६॥
आकर्षमनुना दद्याद् ग्रन्थीनष्टोत्तरं शतम्।
तद्दोरके धृते शीघ्रमायाति स्त्रीनरोपि वा॥ ७७॥

पञ्चाशत्करवीरपुष्पैः अं अमुकीम् आकर्षय आकर्षय नमः, आं अमुकीमित्यादि पञ्चाशद्वर्णपूर्वकमेतज्जपंस्तमाकारं पूजयेत् ॥ ६७–७४ ॥ धूपदीपनैवेद्यं कृत्वा तदग्रेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य तत्राज्याक्तचणकैः शतमधुनोक्त मनुना हुत्वा कुमारीकर्तितेन कृष्णकार्पाससूत्रेणाष्टाविंशति तन्तुनिर्मितं स्वदेहमितं दोरकं कृत्वाकर्षमन्त्रेणाष्टोत्तरशतं ग्रन्थीन् दत्वा तद्धारणान्नरं नारीं चाकर्षति, इति ॥ ७५–७८ ॥

(नमः) जोड़ देने से ४४ अक्षरों का आकर्षण मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ७०-७२ ॥

विमर्श - आकर्षण मन्त्र का स्वरूप - ॐ नमः कालिकायै सर्वोकर्षण्यै अमुकीं अमुकं साध्य (स्त्री या पुरुष के नाम में द्वितीयान्त) आकर्षय आकर्षय शीघ्रमानय शीघ्रमानय आं ह्रीं क्रों भद्रकाल्यै नमः ॥ ७०-७२ ॥

इस मन्त्र का एक सौ साठ बार जप कर साधक ५० लाल कनेर के पुष्पों से पूर्वलिखित आकृति का पूजन करे । फिर वर्णमाला के एक-एक अक्षर का उच्चारण करते हुये साध्य का द्वितीयान्त नाम फिर २ बार 'आकर्षय' शब्द तथा अन्त में उसके आगे 'नमः' जोड़ कर बने मन्त्रों से एक एक पुष्प चढ़ाना चाहिए ॥ ७३-७४ ॥

विमर्श - पुष्प चढ़ाने का मन्त्र - ॐ अं अमुकीं अमुकं वा (साध्य स्त्री या पुरुष का द्वितीयान्त नाम) आकर्षय आकर्षय नमः ॐ आं अमुकीं अमुकं वा आकर्षय आकर्षय नमः इत्यादि ॥ ७३-७४ ॥

फिर धूप, दीप, नैवेद्यादि से उस आकृति का पूजन कर आकर्षण मन्त्र से घी मिश्रित चनों की १०० आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए । तत्पश्चात् कुमारी द्वारा काते गये काले सूतों के २८ धागे जिसमें एक एक अपने शरीर की

त्रिरात्राद् ग्राममध्यस्थोन्यदेश्यो नवरात्रतः।
उक्तमाकर्षणमिदमुच्चाटनमथोच्यते ॥ ७८ ॥

उच्चाटनमन्त्रस्तद्विधिकथनं च

शून्यागारे चतुर्दश्यां कृष्णायां कुक्कुटासनः।
यमाशावदनो मुक्तकचो नीलाम्बरावृतः ॥ ७६ ॥
ग्रन्थिसंयुतया मौंज्या रज्ज्वा मन्त्रमिमं जपेत्।
सहस्रद्वयसंख्यातं शबर्योदेवतां स्मरन् ॥ ८० ॥
तारो भूधरभृग्वर्कसम्वर्ताः क्रिययान्विताः।
प्रत्येकं दीपिकाचन्द्रयुक्ता बीजचतुष्टयम् ॥ ८१ ॥
कालरात्रिमहाध्वांक्षिपदान्तेऽमुकमुच्चरेत् ।
आशूच्चाटय युग्मं तु छिन्धि भिन्धि शुचिप्रिया ॥ ८२ ॥

उच्चाटनमाह – **शून्यात्** । कुक्कुटासनलक्षणमते वक्तव्यम् ॥ ७६–८० ॥ मन्त्रान्तरमाह – **तार** इति । भूधरो वः । भृगुः सः । अर्को मः । संवर्तं क्षः । एते चत्वारः प्रत्येकं क्रियया लकारेण युतास्तथा दीपिकाचन्द्रयुता ऊबिन्दुयुताश्चत्वारि बीजानि । तेन ब्लूं स्लूं म्लूं क्ष्लूं ॥ ८१ ॥ शुचिप्रिया स्वाहा ॥ ८२ ॥

लम्बाई के तुल्य हो उसमें आकर्षण मन्त्र से १०८ ग्रन्थि लगानी चाहिए । इस प्रकार के निर्मित गण्डे को धारण करने से अपने गाँव या नगर में रहने वाली स्त्री अथवा पुरुष ३ दिन के भीतर अन्यत्र रहने वाले स्त्री या पुरुष ६ दिन के भीतर शीघ्र आ जाते है ॥ ७५-७८ ॥

यहाँ तक आकर्षण प्रयोग कहा गया । अब **उच्चाटन की विधि** कहता हूँ -

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन किसी निर्जन मकान में दक्षिण की ओर मुख कर शिखा खोले, नीला वस्त्र पहन कर साधक कुक्कुटासन से बैठे । फिर शबरी देवता का स्मरण कर ग्रन्थियुक्त मूञ्ज की रस्सी की माला से वक्ष्यमाण मन्त्र का दो हजार जप करे ॥ ७८-८० ॥

तार (ॐ), फिर क्रमशः भूधर (व), भृगु (स), अर्क (मः), संवर्त (क्ष), इन चारों को प्रत्येक से क्रिया (लकार) से संयुक्त कर, फिर दीपिका (ऊकार) और चन्द्र (बिन्दु) से संयुक्त कर निष्पन्न ४ बीजाक्षरों (व्लूं स्लूं म्लूं क्ष्लूं) के बाद 'कालरात्रि महाध्वांक्षि' पद के बाद, अमुकं (साध्य नाम के आगे द्वितीयान्त) फिर दो बार 'आशूच्चाटय' पद, फिर दो बार छिन्धि, फिर भिन्धि, तदनन्तर शुचिप्रिया (स्वाहा), फिर प्रसादबीज (हौं), फिर 'कामाक्षि' पद इसके अन्त में सृणि (क्रों) लगाने से ३६ अक्षरों का मन्त्र निष्पन्न होता है

प्रासादबीजं कामाक्षिसृण्यन्तो मनुरीरितः।
षट्त्रिंशद्वर्णसंयुक्तः शीघ्रमुच्चाटको रिपोः॥ ८३॥
जपान्ते तद्दशांशेन सर्षपैर्जुहुयान्निशि।
ततः सर्षपपिण्याकैस्तत्तैलोदकसंयुतैः॥ ८४॥
बलिं प्रदद्यात्तेनैवं मनुना विशिखो भुवि।
एवं कृते सप्तरात्रं देशाद्दूरं व्रजेदरिः॥ ८५॥

विद्वेषणं तत्प्रयोगश्च

ययो विद्वेषमन्विच्छेत्तयोर्जन्मतरूद्भवम्।
फलकद्वितयं कृत्वा तत्राकारौ तयोर्लिखेत्॥ ८६॥
विषाष्टकेन वालेयीदुग्धाक्तेनाभिधान्वितम्।
तत्स्पृष्ट्वा प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रमधियामिनि॥ ८७॥

प्रासादबीजं हौं । सृणिः क्रों ॥ ८३ ॥ प्रयोगो यथा – कृष्णचतुर्दश्यां शून्यगृहं नीलवस्त्रावृतो मुक्तकच्छो मुक्तशिखो दक्षिणामुखः कुक्कुटासनेनोप-विश्य ग्रन्थियुक्तया मुञ्जरज्ज्वा निशि सहस्रद्वयममुं मन्त्रं जपेत् । मन्त्रो यथा – ॐ ब्लूं स्लूं म्लूं क्ष्लूं कालरात्रि महाध्वांक्षि अमुकमाशूच्चाटय उच्चाटय छिन्धि छिन्धि भिन्धि स्वाहा हौं कामाक्षि क्रोमिति । ततः शतद्वयमनेनैव मन्त्रेण सर्षपैर्हुत्वा तैलोदकयुतेन सर्षपपिण्याकेन तेन मनुना बलिं दद्यात् ॥ ८४ ॥ एवं सप्ताहं कृते उच्चाटनसिद्धिः ॥ ८५ ॥ विद्वेषणमाह – **ययोरिति** । जन्मतरवो जन्मवृक्षाः । ते उक्ताः ॥ ८६ ॥ विषाष्टकमन्ते वक्ष्यति । बालेयी रासभी । अधियामिनि रात्रौ ॥ ८७ ॥

जो शीघ्र ही शत्रुओं का उच्चाटन कर देता है ॥ ८१-८३ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - ॐ ब्लूं स्लूं म्लूं क्ष्लूं कालरात्रि महाध्वांक्षि अमुक-माशूच्चाटय आशूच्चाटय छिन्धि, छिन्धि भिन्धि स्वाहा हीं कामाक्षि क्रों ॥ ८१-८३ ॥

जप के बाद रात्रि में सरसों से दशांश होम करना चाहिए । फिर सरसों की खली तथा सरसों के तेल को जल में मिलाकर उक्त मन्त्र से अपनी शिखा खोलकर भूमि में बलि देनी चाहिए । इस क्रिया को ७ रात पर्यन्त लगातार करते रहने से शत्रु देश छोड़कर अन्यत्र भाग जाता है ॥ ८४-८५ ॥

जिन दो व्यक्तियों में विद्वेष कराना हो उनके जन्म नक्षत्र वाले वृक्ष की लकड़ी (द्र० ६. ५२) के दो फलक बना कर उस पर गधी के दूध में विषाष्टक (द्र० २५. ५७) मिलाकर उसी से उन दोनों के नाम सहित आकृति बनानी चाहिए । फिर उनका स्पर्श करते हुये अर्द्धरात्रि में वक्ष्यमाण मन्त्र का एक हजार जप करना चाहिए ॥ ८६-८७ ॥

वियत्पावकमन्विन्दुयुक्ग्लौं खं मनुहंसयुक्।
निद्राग्निमनुबिन्दुस्था भगवत्यन्ते तिदण्डधा ॥ ८८ ॥
रिण्यन्तेऽमुकममुकं शीघ्रं विद्वेषयद्वयम्।
रोधयद्वितयं पश्चाद् भञ्जयद्वितयं रमा ॥ ८६ ॥
मायाराज्ञी चतुर्थ्यन्ता प्रणवं कवचत्रयम्।
पञ्चाशदक्षरो मन्त्रस्तारादिः सर्वसिद्धिदः ॥ ६० ॥
जपान्ते फलकद्वन्द्वं बद्धा रज्ज्वा परस्परम्।
ख रसैरिभगन्धर्वपुच्छरोमसमुत्थया ॥ ६१ ॥
वल्मीकरन्ध्रे निखनेत्पुनस्तावज्जपेन्नरः।
सप्ताहाज्जायते वैरं तयोः प्रीतिमतोरपि ॥ ६२ ॥

मन्त्रमाह – **वियदिति** ॥ पावकमन्विन्दुयुक् रऔंबिन्दुयुतं वियत् हः हौं। ग्लौं । इन्दुयुक् मनु रौं हंसः सः तैर्युक्तं खं हं ह्सौं । अग्निमनुबिन्दुस्था निद्रा भः भ्रौं ॥ ८८॥ रमा श्रीं ॥ ८६॥ कवचं हुं ॥ ६० ॥ सैरिभो महिषः । गन्धर्वोऽश्वः ॥ ६१ ॥ प्रयोगः – प्रीतिमतो द्वयोर्जन्मवृक्षोत्थे फलकद्वये तत्र रासभीक्षीरमर्दितेन विषाष्टकेनोपरि नामयुक्तमाकारद्वयं विलिख्य तत्स्पृष्ट्वा निशि सहस्रममुं मन्त्रं जपेत् । मन्त्रो यथा – ॐ हौं ग्लौं हुं ह्सौं भ्रौं भगवति दण्डधारिणि अमुकममुकं

पावक (र), मनु (औ), इन्दु (बिन्दु) सहित वियत् (ह), इस प्रकार (ह्रौं), फिर ग्लौ, फिर खं (ह), फिर इन्दु एवं मनु सहित हंस (सौं), अर्थात् हसौं, फिर अग्नि, मनु एवं बिन्दुसहित निद्रा (भ्रौ), फिर 'भगव' पद के बाद 'तिदण्डधारिणी' पद, फिर अमुकममुकं (साध्य नाम का द्वितीयान्त), फिर शीघ्रं, फिर दो बार 'विद्वेषय', फिर दो बार 'रोधय', फिर २ बार 'भञ्जय', फिर रमा (श्रीं), माया (ह्रीं), फिर चतुर्थ्यन्त राज्ञी (राज्ञ्यै), प्रणव (ॐ) और इसके अन्त में ३ बार कवच (हुं), और इस मन्त्र के प्रारम्भ में तार (ॐ) लगाने से ५० अक्षरों का सर्वसिद्धिदायक मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ८८-६० ॥

विमर्श - विद्वेषण मन्त्र का स्वरूप - ॐ ह्रौं ग्लौं हसौं भ्रौं भगवति दण्डधारिणि अमुकममुकं शीघ्रं विद्वेषय विद्वेषय रोधय रोधय भञ्जय भञ्जय श्रीं ह्रीं राज्ञ्यै ॐ हुं हुं हुं ॥ ८८-६० ॥

जप करने के बाद उन दोनों फलकों को गदहा, भैंस, तथा घोड़े की पूँछ के बालों से बनी रस्सी बाँधकर बाँवी के भीतर गाड़कर एक हजार की संख्या में जप करना चाहिऐ । ऐसा करने से उन दोनो मे परस्पर प्रेम नष्ट होकर आपस में शत्रुता हो जाती है ॥ ६१-६२ ॥

मारणमन्त्रः पुत्तलीकरणविधिश्च

मारणं तु प्रकुर्वीत ब्राह्मणेतरविद्विषि।
तच्छुद्ध्यर्थं जपेन्मूलमन्त्रमष्टोत्तरं शतम्॥ ६३॥
कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यां गोपुराद्वा चतुष्पथात्।
श्मशानाद्वा समानीय मृदं तत्र विनिःक्षिपेत्॥ ६४॥
विडङ्गानि हयार्यर्ककुसुमान्यपि मन्त्रवित्।
तन्मृदापुत्तलीं कुर्याच्छ्मशाने निर्जनालये॥ ६५॥
उपविश्य शिखामुक्तो नीलवस्त्रावृतो निशि।
तद्वक्षसि रिपोर्नाम लिखित्वा स्थापयेदसून्॥ ६६॥
श्मशानवाससाच्छाद्य तैलाभ्यक्तामथार्च्चयेत्।
स्नापयेत्पुत्तलीं तां तु खराश्वमहिषासृजा॥ ६७॥
रक्तचन्दनधत्तूरकुसुमान्यर्पयेत्ततः।
मारणाख्येन मनुना कुर्याद्धोमं च पूजनम्॥ ६८॥

शीघ्रं विद्वेषय विद्वेषय रोधय रोधय भञ्जय भञ्जय श्रीं ह्रीं राज्यै ॐ हुं हुं हुं इति । ततः खरमाहिषाश्वपुच्छरोमकृतया रज्ज्वा तत्फलकद्वयं मिथो बद्ध्वा वल्मीकरन्ध्रे निखाय पुनर्मन्त्रं सहस्रं जपेत् । एवं विद्वेषणसिद्धिः ॥ ६२ ॥ मारणमाह – **मारणमिति** । तद्विप्रे निषिद्धम् ॥ ६३–६४ ॥ विडंगं कृमिघ्नम् । हयारिः करवीरः ॥ ६५–६८ ॥

मारण का प्रयोग तभी करना चाहिए जब ब्राह्मणेतर शत्रु हो, ब्राह्मण पर कभी मारण प्रयोग न करे, शास्त्र से निषिद्ध है । मारण प्रयोग करने पर शुद्धि के लिये मूल मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए ॥ ६३ ॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को जब मङ्गलवार का दिन हो तो गोपुर, चतुष्पथ या श्मशान से मिट्टी ला कर उसमें बायबिडङ्ग, कनेर और आक (मन्दार) का फूल मिला कर उससे पुतली का निर्माण करना चाहिए ॥ ६४-६५ ॥

फिर रात्रि के समय श्मशान में अथवा किसी शून्य घर में शिखा खोल कर, नीला वस्त्र पहन कर, बैठ कर पुतली की छाती पर शत्रु का नाम लिख कर, उसमें प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए । फिर उसको कफन से ढँक कर तेल में डुबो कर उसका पूजन करना चाहिए ॥ ६५-६६ ॥

तदनन्तर उस पुतली को गदहा, घोड़ा, और भैंस के रक्त से स्नान कराना चाहिए । फिर लालचन्दन और धतूरे के फूल चढ़ा कर मारण मन्त्र से होम कर पुनः उसका पूजन करना चाहिए ॥ ६७-६८ ॥

प्रथम **मारण मन्त्र का उद्धार** कहते है - दीर्घत्रय अग्नि (र) और

दीर्घत्रयाग्नि रात्रीशयुक्ता तन्द्रीमृतीश्वरि।
कृं कृत्यन्तेऽमुकं शीघ्रं मारयद्वितयं सृणिः ॥ ६६ ॥
त्रयोविंशत्यक्षराढ्यो ध्रुवादिर्मारणे मनुः।
अनेन मनुना पूजां कृत्वां होमं समाचरेत् ॥ १०० ॥
उग्रासर्षपभल्लातोन्मत्तबीजैः सुमिश्रितैः।
श्मशानाग्नौ शतं साग्रं च्छित्वा तत्प्रतिमा शिरः ॥ १०१ ॥
तदग्नौ प्रदहेन्मन्त्री पूर्णाहुतिमथाचरेत्।
एवं कृते त्रिसप्ताहाद्रिपुः स्यात्सूर्यजातिथिः ॥ १०२ ॥
कर्मस्वेवं विधेष्वादौ भैरवाय बलिं दिशेत्।
माषान्नपलमद्याद्यैरेवं सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥ १०३ ॥

मारणमन्त्रमाह – **दीर्घेति** । तन्द्री मः दीर्घत्रयम् अग्नी रः रात्रीशो बिन्दुस्तैर्युक्तः । तेन म्रां म्रीं म्रूं । सृणिः कों ॥ ६६ ॥ ध्रुवादिः प्रणवादिः ॥ १०० ॥ उग्रा वचा । उन्मत्तो धत्तूरः । सूर्यजातिथिर्यमाऽतिथिः स्यात् । म्रियते इत्यर्थः ॥ १०१–१०२ ॥ प्रयोगश्च – कुजवारयुतायां कृष्णचतुर्दश्यां पुरद्वारचतुष्पथश्मशानान्यतमस्मान्मृदमानीय विडंगकरवीरार्कपुष्पयुतां कृत्वा श्मशानस्थो विशिखो नीलवस्त्रो निशितया मृदा पुत्तलीं हृदि तन्नामयुतां कृत्वा प्राणान् प्रतिष्ठाप्य श्मशानवस्त्रेणाच्छाद्य तैलेनाभ्यज्य खराश्वमहिषरुधिरेण संस्नाप्य रक्तचन्दनेन विलिप्य धत्तूरपुष्पैः संपूज्य तदग्रे श्मशानाग्निं संस्थाप्य तदग्नौ वचासर्षपभल्लातकधत्तूरबीजमिश्रितैरष्टोत्तरशतं जुहुयान् मन्त्रेण । यथा – ॐ म्रां म्रीं म्रूं मृतीश्वरि कृं कृत्ये अमुकं शीघ्रमारय क्रों इति । ततः

रात्रीश (बिन्दु) सहित तन्द्री (म्) अर्थात् म्रां म्रीं म्रूं, फिर 'मृतीश्वरि' पद एवं 'कृं कृत्ये' पद के पश्चात् अमुकं (साध्य का द्वितीयान्त नाम), फिर 'शीघ्रं' पद, फिर दो बार 'मारय' पद तथा अन्त में सृणि (क्रों) और मन्त्र के प्रारम्भ में ध्रुव (ॐ) लगाने से २३ अक्षरों का मारण मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ६६-१०० ॥

विमर्श - मारण मन्त्र का स्वरूप - ॐ म्रां, म्रीं म्रूं मृतीश्वरि कृं कृत्ये अमुकं शीघ्रं मारय मारय क्रोम् (२३) ॥ ६४-१०० ॥

इस मन्त्र से पूजन कर वचा, सरसों, भिलावां और धतूरे के बीजों को एक में मिलाकर श्मशानाग्नि में १०१ आहुतियाँ देनी चाहिए । फिर पुतली का शिर काट कर उसी अग्नि में डाल देना चाहिए । तदनन्तर पूर्णाहुति करना चाहिए । २१ दिन पर्यन्त इस क्रिया को निरन्तर करते रहने से शत्रु मर जाता है ॥ १००-१०२ ॥

मारण प्रयोग करने के पहले उड़द से बने पदार्थ, मांस और मद्य आदि की बलि भैरव को देनी चाहिए । ऐसा करने से कार्य निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता

यो मन्त्री विदधातीदृक्कर्म तेन प्रयत्नतः ।
आत्मावनाय संसेव्यो नरसिंहो हरोऽपि वा ॥ १०४ ॥

अथ चण्डीविधानम्

अथो नवाक्षरं मन्त्रं वक्ष्ये चण्डीप्रवृत्तये ।
वाङ्माया मदनो दीर्घालक्ष्मीस्तन्द्री श्रुतीन्दुयुक् ॥ १०५ ॥
डायैसदृग्जलं कूर्मद्वयं झिण्टीशसंयुतम् ।
नवाक्षरोऽस्य ऋषयो ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ॥ १०६ ॥
छन्दांस्युक्तानि मुनिभिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभः ।
देव्यः प्रोक्ता महापूर्वाः काली लक्ष्मीः सरस्वतीः ॥ १०७ ॥
नन्दाशाकम्भरीभीमाः शक्तयोऽस्य मनोः स्मृताः ।
स्याद्रक्तदन्तिका दुर्गा भ्रामर्यो बीजसञ्चयः ॥ १०८ ॥

पुत्तलीशिरश्छित्वाऽग्नौ हुत्वा पूर्णाहुतिं कुर्यात् । एवमेकविंशति रात्र्यन्ते रिपुर्म्रियत इति । ततः प्रायश्चित्तं कुर्यात् ॥ १०३–१०४ ॥

सप्तशतीपाठांगभूतं चण्डीमन्त्रमाह – **वागिति** । वाक् ऐं । माया ह्रीं। मदनः क्लीं । दीर्घा लक्ष्मीश्चा । तन्द्री मः श्रुतीन्दुयुग् उबिन्दुयुक्तः मुं ॥ १०५ ॥ डायैस्वरूपम् । सदृग् जलं वि । कूर्मद्वयं च युग्मं झिण्टीश सयुतं एयुतं च्चे ॥ १०६ ॥ महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः ॥ १०७–१०८ ॥

है । जो मान्त्रिक ऐसे कृत्यों का अनुष्ठान करे उसे अपनी रक्षा के लिये भगवान् नृसिंह अथवा शिव की उपासना अवश्य करनी चाहिए ॥ १०३-१०४ ॥

विमर्श - बिना गुरु के मारण आदि विनाशकारी प्रयोगों को करने से स्वयं पर आघात हो जाता है । अतः मारणप्रयोग नहीं ही करना चाहिए ॥ ९३-१०४ ॥

अब **चण्डी विधान** कहते हैं - सर्वप्रथम चण्डी के अनुष्ठान में प्रयुक्त होने वाले **नवार्ण मन्त्र का उद्धार** कहता हूँ -

वाक् (ऐं), माया (ह्रीं), मदन (क्लीं), फिर दीर्घालक्ष्मी (चा), श्रुति उकार इन्दु (बिन्दु) सहित तन्द्री (म) अर्थात् (मुं), फिर 'डायै' पद, फिर सदृक्जल (वि), तदनन्तर झिण्टीश सहित कूर्म द्वय (च्चे), यह नर्वाण मन्त्र कहा गया है ॥ १०५-१०६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥ १०५-१०६ ॥

अब **विनियोग** कहते है - इस नवार्ण मन्त्र के ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ऋषि है । गायत्री, उष्णिग् और अनुष्टुप् छन्द मुनियों ने कहा है तथा महाकाली महालक्ष्मी एवं महासरस्वती ये देवियाँ इसकी देवता हैं, नन्दा, शाकम्भरी और

अग्निर्वायुर्भगस्तत्त्वं फलं वेदत्रयोद्भवम् ।
सर्वाभीष्टप्रसिद्ध्यर्थं विनियोग उदाहृतः ॥ १०६ ॥

नवार्णमन्त्रस्य देवतादिकथनम्

ऋषिश्छन्दो दैवतानि शिरो मुखहृदि न्यसेत् ।
शक्तिबीजानि स्तनयोस्तत्त्वानि हृदये पुनः ॥ ११० ॥

सारस्वताद्येकादशन्यासास्तेषां फलानि च

तत एकादशन्यासान् कुर्वीतेष्टफलप्रदान् ।
प्रथमो मातृकान्यासः कार्यः पूर्वोक्तमार्गतः ॥ १११ ॥
कृतेन येन देवस्य सारूप्यं याति मानवः ।
अथ द्वितीयं कुर्वीत न्यासं सारस्वताभिधम् ॥ ११२ ॥

भगः सूर्यः ॥ १०६–११०॥ एकादशन्यासानाह – **तत** इति। पूर्वोक्तमार्गतः प्रथमपटलोक्तविधिना ॥ १११ ॥ सारस्वतन्यासमाह – **अथेति** ॥ ११२ ॥

भीमा इसकी शक्तियाँ है । रक्तदन्तिका, दुर्गा और भ्रामरी बीज है । अग्नि, वायु और सूर्य तत्त्व है । वेदत्रय से उत्पन्न इसका फल है । इस प्रकार सर्वाभीष्ट सिद्धियों का हेतु इसका विनियोग कहा गया है ॥ १०६-१०६ ॥

विमर्श - विनियोग का स्वरूप - अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्माविष्णुरुद्रा ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवता नन्दाशाकम्भरीभीमाशक्तयः रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि ऋग्यजुःसामवेदाध्यानानि सर्वाभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः ॥ १०६-१०६ ॥

अब **ऋष्यादिन्यास** कहते हैं - ऋषियों का शिर, छन्दों का मुख तथा देवताओं का हृदय पर, शक्ति और बीज का क्रमशः दोनो स्तन पर तथा तत्त्वों का पुनः हृदय पर न्यास करना चाहिए ॥ ११० ॥

विमर्श - ऋष्यादिन्यास - ब्रह्माविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि,
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्देभ्यो नमः, मुखे,
महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि,
नन्दाशाकम्भरीभीमाशक्तिभ्यो नमः, दक्षिणस्तने,
रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामरीबीजेभ्यो नमः, वामस्तने,
अग्नीवायुसूर्यतत्त्वेभ्यो नमः, हृदि ॥ ११० ॥

एकादशन्यास - (i) शुद्धमातृकान्यास - इसके बाद समस्त अभीष्ट फल देने वाले एकादश न्यासों को करना चाहिए । सर्वप्रथम पूर्वोक्त

बीजत्रयं तु मन्त्राद्यं तारादि हृदयान्तिकम्।
क्रमादंगुलिषु न्यस्य कनिष्ठाद्यासु पञ्चसु॥ ११३॥
करयोर्मध्यतः पृष्ठे मणिबन्धे च कूर्परे।
हृदयादिषडङ्गेषु विन्यसेज्जातिसंयुतम्॥ ११४॥
अस्मिन्सारस्वते न्यासे कृते जाड्यं विनश्यति।

त्रैलोक्यविजयकरो भातृगणन्यासः

ततस्तृतीयं कुर्वीत न्यासं मातृगणान्वितम्॥ ११५॥

बीजेति । मन्त्रादिमं बीजत्रयं प्रणवादि नमोन्तं कनिष्ठादिनवस्थानेषु न्यस्य हृदयादिषु जातियुक्तं न्यसेत् । यथा – ॐ ऐ ह्रीं क्लीं नमः कनिंष्ठायामित्यादि० । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं हृदयाय नम इत्याद्यंगेष्वपि ॥ ११३–११४ ॥ फलमाह – **अस्मिन्निति** ॥ ११५ ॥

मार्ग से मातृकान्यास करना चाहिए जिसके करने से मनुष्य देवसदृश हो जाता है ॥ १११-११२ ॥

विमर्श – ॐ अं नमः शिरसि, ॐ आं नमः मुखे, इत्यादि मातृकान्यास के लिये द्रष्टव्य विधि - १. ८८-८१ पृ० १८ ॥ १११-११२ ॥

(ii) **सारस्वतन्यास** - इसके बाद सारस्वत संज्ञक द्वितीय न्यास करना चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है - मूल मन्त्र के प्रारम्भिक ३ बीजों के प्रारम्भ में प्रणव तथा अन्त में 'नमः' लगाकर कनिष्ठिका आदि पाँच अंगुलियों करतल, करपृष्ठ, मणिबन्ध एवं कोहिनी पर क्रमशः न्यास करना चाहिए । फिर हृदय आदि ६ अंगो पर जाति सहित न्यास करना चाहिए । इस सारस्वत न्यास के करने से जड़ता नष्ट हो जाती है ॥ ११२-११५ ॥

विमर्श – सारस्वतन्यास विधि -ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः कनिष्ठिकयोः,
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः अनामिकयोः,

इसी प्रकार मध्यमा, तर्जनी, अंगुष्ठ, करतल, करपृष्ठ, मणिबन्ध एवं कूर्पर स्थानों में द्विवचन का उहापोह कर न्यास कर लेना चाहिए । पुनः ॐकार सहित तीनों बीजों से हृदयादि स्थानों पर न्यास करना चाहिए । यथा -

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं हृदयाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं क्लीं शिरसे स्वाहा,
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं शिखायै वषट् ॐ ऐं ह्रीं क्लीं कवचाय हुम्
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ऐं ह्रीं क्लीं अस्त्राय फट् ॥ ११२-११५॥

(iii) इसके वाद **मातृकागण** संज्ञक तृतीयन्यास करना चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है

मायाबीजादिका ब्राह्मी पूर्वतः पातु मां सदा।
माहेश्वरी तथाग्नेय्यां कौमारी दक्षिणेऽवतु॥ ११६॥
वैष्णवी पातु नैर्ऋत्ये वाराही पश्चिमेऽवतु।
इन्द्राणीपावके कोणे चामुण्डा चोत्तरेऽवतु॥ ११७॥
ऐशाने तु महालक्ष्मीरूर्ध्वं व्योमेश्वारी तथा।
सप्तद्वीपेश्वरी भूमौ रक्षेत्कामेश्वरी तले॥ ११८॥
तृतीयेस्मिन्कृते न्यासे त्रैलोक्यविजयी भवेत्।
न्यासं चतुर्थं कुर्वीत नन्दजादि समन्वितम्॥ ११९॥
नन्दजा पातु पूर्वाङ्गं कमलांकुशमण्डिता।
खड्गपात्रकरा पातु दक्षिणे रक्तदन्तिका॥ १२०॥
पृष्ठे शाकम्भरी पातु पुष्पपल्लव संयुता।
धनुर्बाणकरा दुर्गा वामे पातु सदैव माम्॥ १२१॥

मायेति । ह्रीं ब्राह्मी पूर्वतो मां पातु इत्यादि० ॥ ११६–११८ ॥ एतत्फलमाह – **तृतीये** इति । चतुर्थन्यासमाह – **नन्दजेति** ॥ ११९–१२२ ॥

प्रारम्भ में मायाबीज (ह्रीं) लगाकर 'ब्राह्मी पूर्वतः मां पातु' से पूर्व, 'माहेश्वरी आग्नेयां मां पातु' से आग्नेय, 'कौमारी दक्षिणे मां पातु' से दक्षिण, 'वैष्णवी नैर्ऋत्ये मां पातु' से नैर्ऋत्य में, 'वाराही पश्चिमे मां पातु' से पश्चिम में, 'इन्द्राणि वायव्ये मां पातु' से वायव्य में, 'चामुण्डा उत्तरे मां पातु' से उत्तर में, 'महालक्ष्मी ऐशान्ये मां पातु' से ईशान में, 'व्योमेश्वरी ऊर्ध्व मां पातु' से ऊपर, 'सप्तद्वीपेश्वरी भूमौ मां पातु' से भूमि पर तथा 'कामेश्वरी पाताले मां पातु' से नीचे न्यास करना चाहिए । इस तृतीयन्यास के करने से साधक त्रैलोक्य विजयी हो जाता है ॥ ११५-११९ ॥

विमर्श - इसका न्यास 'ह्रीं ब्रह्मी पूर्वतः मां पातु पूर्वे', 'ह्रीं माहेश्वरी आग्नेयां मां पातु' इत्यादि प्रकार से करना चाहिए ॥ ११५-११९ ॥

(iv) **षड्देवीन्यास** - नन्दजा आदि पदों से युक्त मन्त्रों द्वारा चतुर्थन्यास इस प्रकार करना चाहिए -

'कमलाकुशमण्डिता नन्दजा पूर्वाङ्गं मे पातु' इस मन्त्र से पूर्वाङ्ग पर, 'खड्गपात्रकरा रक्तदन्तिका दक्षिणाङ्गं मे पातु' से दक्षिणाङ्ग पर, 'पुष्पपल्लवसंयुता शाकम्भरी पृष्ठाङ्गं मे पातु' से पृष्ठ पर, 'धनुर्बाणकरा दुर्गा वामाङ्गं मे पातु' से वामाङ्ग पर, 'शिरःपात्रकराभीमा मस्तकादि चरणान्तं मे पातु' से मस्तक से पैरों तक तथा 'चित्रकान्तिभृत् भ्रामरी पादादि मस्तकान्तं मे पातु' से पादादि मस्तक

शिरः पात्रकराभीमा मस्तकाच्चरणावधि।
पादादि मस्तकं यावद् भ्रामरीचित्रकान्तिभृत्॥ १२२॥
तुर्यं न्यासं नरः कुर्याज्जरामृत्यू व्यपोहति।
अथ कुर्वीत ब्रह्माख्यं न्यासं पञ्चममुत्तमम्॥ १२३॥
पादादिनाभिपर्यन्तं ब्रह्मा पातु सनातनः।
नाभेर्विशुद्धिपर्यन्तं पातु नित्यं जनार्दनः॥ १२४॥
विशुद्धेर्ब्रह्मरन्ध्रान्तं पातु रुद्रस्त्रिलोचनः।
हंसः पातुपदद्वन्द्वं वैनतेयः करद्वयम्॥ १२५॥
चक्षुषी वृषभः पातु सर्वांगानि गजाननः।
परापरौ देहभागौ पात्वानन्दमयो हरिः॥ १२६॥
कृतेऽस्मिन् पञ्चमे न्यासे सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
षष्ठं न्यासं ततः कुर्यान्महालक्ष्म्यादि संयुतम्॥ १२७॥

फलमाह – तुर्य्यमिति । पञ्चमं न्यासमाह – अथेति ॥ १२३–१२६ ॥ फलमाह – कृतेऽस्मिन्निति ॥ १२७ ॥

पर्यन्त न्यास करना चाहिए । इस चतुर्थन्यास के करने से मनुष्य वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त हो जाता है ॥ ११९-१२२ ॥

(v) इसके बाद न्यासों में उत्तम **ब्रह्मसंज्ञक** पञ्चमन्यास करना चाहिए। उसकी विधि इस प्रकार है -

'ॐ सनातनः ब्रह्मा पादादिनाभिपर्यन्तं मां पातु' से पैरों से नाभि पर्यन्त, 'ॐ जनार्दनः नाभेर्विशुद्धिपर्यन्तं नित्यं मां पातु' से नाभि से विशुद्धि चक्र पर्यन्त, 'ॐ रुद्रस्त्रिलोचनः विशुर्द्धेब्रह्मरंध्रान्तं मां पातु' से विशुद्धिचक्र से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त, 'ॐ हंसः पदद्वद्वं मे पातु' से दोनों पैरों पर, 'ॐ वैनतेयः करद्वयं मे पातु' से दोनों हाथों पर, 'ॐ वृषभः चक्षुषी मे पातु' से नेत्रों पर, 'ॐ गजाननः सर्वाङ्गानि मे पातु' से सभी अंगों पर और 'ॐ आनन्दमयो हरिः परापरौ देहभागौ मे पातु, से शरीर के दोनों भागों पर न्यास करना चाहिए । इस पञ्चमन्यास को करने से साधक के सभी मनोरथपूर्ण हो जाते हैं ॥ १२३-१२७ ॥

(vi) इसके बाद महालक्ष्मी आदि पद से संयुक्त मन्त्रों द्वारा **षष्ठन्यास** करना चाहिए । उसकी विधि इस प्रकार है -

षष्ठन्यास विधि - 'ॐ अष्टादशभुजान्विता महालक्ष्मी मध्यं मे पातु' - इस मन्त्र से मध्य भाग पर, 'ॐ अष्टभुजोर्जिता सरस्वती ऊर्ध्वं मे पातु' - इस मन्त्र से ऊर्ध्वं भाग पर, 'ॐ दशबाहुसमन्विता महाकाली अधः मे पातु' - इस मन्त्र से

मध्यं पातु महालक्ष्मीरष्टादशभुजान्विता।
ऊर्ध्वं सरस्वती पातु भुजैरष्टाभिरूर्जिता ॥ १२८ ॥
अधः पातु महाकाली दशबाहुसमन्विता।
सिंहो हस्तद्वयं पातु परं हंसोक्षियुग्मकम् ॥ १२९ ॥
महिषं दिव्यमारूढो यमः पातु पदद्वयम्।
महेशश्चण्डिकायुक्तः सर्वाङ्गनि ममाऽवतु ॥ १३० ॥
षष्ठेऽस्मिन्विहिते न्यासे सद्‌गतिं प्राप्नुयान्नरः।
मूलाक्षरन्यासरूपं न्यासं कुर्वीत सप्तमम् ॥ १३१ ॥
ब्रह्मरन्ध्रे नेत्रयुग्मे श्रुत्योर्नासिकयोर्मुखे।
पायौ मूलमनोर्वर्णास्ताराद्यान्नमसान्वितान् ॥ १३२ ॥
विन्यसेत्सप्तमे न्यासे कृते रोगक्षयो भवेत्।

अन्यो न्यासास्तेषां फलानि

पायुतो ब्रह्मरन्ध्रान्तं पुनस्तानेव विन्यसेत् ॥ १३३ ॥

षष्ठमाह – **मध्यमिति** । अष्टादशभुजा महालक्ष्मीर्मम मध्यं पात्वित्यादि प्रयोगः ॥ १२८–१३० ॥ सप्तम न्यासमाह – **मूलेति** । ॐ ऐं नमः ब्रह्मरन्ध्रे इत्यादि प्रयोगः ॥ १३१–१३२ ॥ एतन्न्यासफलं रोगक्षयः । पायुमारभ्य ब्रह्मरन्ध्रान्तं वर्णन्यासोऽष्टमः ॥ १३३ ॥

अधो भाग पर, 'ॐ सिंहो हस्तद्वयं मे पातु' - इस मन्त्र से दोनों हाथों पर, 'ॐ परंहंसो अक्षियुग्मं मे पातु' - इस मन्त्र से दोनों नेत्रों पर, 'ॐ दिव्यं महिषमारूढो यमः पदद्वयं मे पातु' - इस मन्त्र से दोनों पैरों पर, 'ॐ चण्डिकायुक्तो महेशः सर्वाङ्गानि मे पातु' - इस मन्त्र से सभी अङ्गों पर न्यास करना चाहिए । इस षष्ठ न्यास के करने से मनुष्य सद्‌गति प्राप्त करता है ॥ १२७-१३१ ॥

(vii) अब इसके बाद मूल मन्त्र के एक एक वर्णों से सप्तम न्यास करना चाहिए । इसे मूलाक्षर न्यास कहते है । इसकी विधि इस प्रकार है -

वर्णन्यास विधि - ब्रह्मरन्ध्र, दोनो नेत्र, दोनों कान, दोनो नासापुट, मुख और गुदा पर एक एक वर्णों के आदि में प्रणव तथा अन्त में 'नमः' लगाकर न्यास करना चाहिए । इस सप्तमन्यास के करने से साधक के सारे रोग नष्ट हो जाते है ॥ १३१-१३३ ॥

विमर्श - सप्तमन्यास विधि - ॐ ऐं नमः ब्रह्मरन्ध्रे, ॐ ह्रीं नमः दक्षिणनेत्रे, ॐ क्लीं नमः वामनेत्रे, ॐ चां नमः दक्षिणकर्णे, ॐ मुं नमः वामकर्णे,

कृतेऽस्मिन्नष्टमे न्यासे सर्वं दुःखं विनश्यति ।
कुर्वीत नवमं न्यासं मन्त्रव्याप्ति स्वरूपकम् ॥ १३४ ॥
मस्तकाच्चरणं यावच्चरणान्मस्तकावधि ।
पुरो दक्षे पृष्ठदेशे वामभागेंष्टशो न्यसेत् ॥ १३५ ॥
मूलमन्त्रकृतो न्यासो नवमो देवताप्तिकृत् ।
ततः कुर्वीत दशमं षडङ्गन्यासमुत्तमम् ॥ १३६ ॥

एतत्फलं दुःखनाशः ॥ १३४ ॥ नवममाह – **मस्तकेति** ॥ १३५ ॥ शिरसःपादान्तमष्टवारं मूलं विन्यसेत् । एवं पादाच्छिरो तमष्टशः एवं पुरो दक्षिणभागे पृष्ठं वामभागेऽप्येवं प्रत्यहमष्टशो मूलं न्यसेत् । एतत्फलं देवत्वप्राप्तिः ॥ १३६ ॥

ॐ डाँ नमः दक्षनासापुटे, ॐ यैं नमः वामनासापुटे, ॐ विं नमः मुखे, ॐ च्चें नमः मूलाधारे ॥ १३१-१३३ ॥

(viii) अब **विलोमक्रम वर्णन्यास** नामक **अष्टमन्यास** कहते हैं - इस न्यास में विलोम क्रम से गुदा से ब्रह्मरन्ध्रान्त पर्यन्त स्थानों पर विलोम पूर्वक मन्त्र के एक एक वर्णों के न्यास का विधान है । इस न्यास से साधक के समस्त दुःख दूर हो जाते है ॥ १३३-१३४॥

विमर्श - विलोमवर्णन्यास विधि - ॐ च्चें नमः, मूलाधारे ॐ विं नमः, मुखे, ॐ यैं नमः, वामनासापुटे, ॐ डां नमः, दक्षिणनासापुटे, ॐ मुं नमः, वामकर्णे, ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे, ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे, ॐ ह्रीं नमः, दक्षिण नेत्रे, ॐ ऐं नमः, ब्रह्मरन्ध्रे ॥ १३३-१३४ ॥

(ix) अब **मन्त्रव्याप्तिरूप** नामक **नवमन्यास** कहते हैं - उसकी विधि इस प्रकार है -

शिर से पाद पर्यन्त मूलमन्त्र का न्यास आठ बार करे । इसी प्रकार क्रमशः आगे, दाहिने भाग में एवं पृष्ठभाग में तथा उसी प्रकार वामभाग में मस्तक से पैरों तक तथा पैरों से मस्तक पर्यन्त प्रत्येक भाग में आठ बार मूल मन्त्र का न्यास करना चाहिए । इस नवम न्यास के करने से साधक को देवत्व की प्राप्ति होती है ॥ १३४-१३६ ॥

विमर्श - नवमन्यास विधि - 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे मस्तकाच्चरणान्तं' पूर्णाङ्गे (अष्टवारम्), 'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे पादाच्छिरोन्तम्' दक्षिणाङ्गे (अष्टवारम्), 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' पृष्ठे (अष्टवारम्), 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' वामाङ्गे (अष्टवारम्), 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे मस्तकाच्चरणान्तम्' (अष्टवारम्), 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं

मूलमन्त्रं जातियुक्तं हृदयादिषु विन्यसेत्।
कृतेऽस्मिन्दशमे न्यासे त्रैलोक्यं वशगं भवेत्॥ १३७॥
दशन्यासोक्तफलदं कुर्यादेकादशं ततः।
खड्गिनीशूलिनीत्यादि पठित्वा श्लोकपञ्चकम्॥ १३८॥
आद्यं कृष्णतरं बीजं ध्यात्वा सर्वाङ्गके न्यसेत्।
शूलेन पाहि नो देवीत्यादि श्लोकचतुष्टयम्॥ १३९॥
पठित्वा सूर्यसदृशं द्वितीयं सर्वतो न्यसेत्।
'सर्वस्वरूपे सर्वेशे' इत्यादिश्लोकपञ्चकम्॥ १४०॥
पठित्वा स्फटिकाभासं तृतीयं स्वतनौ न्यसेत्।
ततः षडंगं कुर्वीत विभक्तैर्मूलवर्णकैः॥ १४१॥

दशममाह – **मूलेति** । मूलं हृदयाय नमः इत्यादिकं जातियुक्तं षडङ्गेषु न्यसेत्। एतत्फलं जगद्वश्यत्वम्॥ १३७॥ एकादशमाह – **खड्गिनीति**॥ १३८–१४१॥

चामुण्डायै विच्चे चरणात् मस्तकावधि' (अष्टवारम्) ॥ १३४-१३६ ॥

(x) इसके बाद **दशम षडङ्गन्यास** रूपी न्यास करना चाहिए । मूल मन्त्र का जाति के साथ हृदयादि ६ अङ्गो पर न्यास करना चाहिए । इस दशम न्यास को करने से तीनों लोक साधक के वश में हो जाते हैं ॥ १३६-१३७ ॥

विमर्श - दशमन्यास विधि - 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे हृदयाय नमः, 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे शिरसे स्वाहा', (शिरसि), 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे शिखायै वषट्' (शिखायाम्), 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे कवचाय हुम्' (बाहौ), 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्' (नेत्रयोः), 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्' ॥ १३६-१३७ ॥

(xi) इन उक्त दश न्यासों को कर लेने के पश्चात् फलदायी **एकादश न्यास** इस प्रकार करना चाहिए -

'खड्गिनी शूलिनी घोरा' इत्यादि ५ श्लोकों को पढ़कर आद्य कृष्णतर बीज (ऐं) का ध्यान कर सर्वाङ्ग में न्यास करना चाहिए । 'शूलेन पाहि नो देवि' इत्यादि ४ श्लोकों का उच्चारण कर सूर्य सदृश आभा वाले द्वितीय बीज (ह्रीं) का ध्यान कर पुनः सर्वाङ्ग पर न्यास करना चाहिए । 'सर्वस्वरूपे सर्वेशे' इत्यादि ५ श्लोकों को पढ़कर स्फटिक जैसी आभा वाले तृतीय बीज (क्लीं) का ध्यान कर सर्वाङ्ग में न्यास करना चाहिए ॥ १३८-१४१ ॥

विमर्श - अथैकादशन्यास विधि -

ॐ खड्गनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।

शंखिनी चापिनी बाणभूशुण्डीपरिघायुधा ॥ १ ॥
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥ २ ॥
यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया ॥ ३ ॥
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥ ४ ॥
विष्णुःशरीर ग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान्भवेत ॥ ५ ॥

आद्यं ऐं बीजं कृष्णतरं ध्यात्वा सर्वाङ्गे विन्यसामि ॥

ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ १ ॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ २ ॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ ३ ॥
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥ ४ ॥

द्वितीयं ह्रीं बीजै सूर्यसृदर्श घ्यात्वा सर्वाङ्गे विन्यसामि ॥

ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥
एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।
पातु नः सर्वभूतेभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकाली नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥
हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥ ४ ॥
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥ ५ ॥

तृतीयं क्लीं बीजं स्फटिकाभं ध्यात्वा सर्वाङ्गे न्यसामि ॥ १३८—१४१ ॥

विद्वान् साधक को इस के बाद मूलमन्त्र के १, १, १, ४, २, वर्णों से तथा समस्त वर्णों से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १४१-१४२ ॥

विमर्श - मूलमन्त्र के वर्णों से षडङ्गन्यास विधि इस प्रकार है । यथा -
ऐं हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, क्लीं शिखायै वषट्

एकेनैकेन चैकेन चतुर्भिर्युगलेन च।
समस्तेन च मन्त्रेण कुर्यादंगानि षट् सुधीः ॥ १४२ ॥
शिखायां नेत्रयोः श्रुत्योर्नसोर्वक्त्रे गुदे न्यसेत्।
मन्त्रवर्णान्समस्तेन व्यापकं त्वष्टशश्चरेत् ॥ १४३ ॥

महाकाल्यादितिसृणां ध्यानानि

खड्गं चक्रगदेषु चापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शंखं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वांगभूषावृताम्।
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभं
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकाम् ॥ १४४ ॥

षडंगमाह – **एकनैकेनेति** ॥ १४२ ॥ वर्णन्यासमाह – **शिखायामिति** । नेत्रश्रुति नासासु द्वौ । अष्टशोऽष्टवारम् ॥ १४३ ॥ महाकालीध्यानमाह – **खड्गमिति** । खड्गचक्रबाणशिरःशंखान् दक्षेषु दधतीम् । इतराणि वामेषु । आस्य पाददशकां दशवक्त्रां दशपादां दशभुजां त्रिंशन्नेत्रामित्यर्थः । हरौ सुप्ते कमलासनो ब्रह्मामधुकैटभौ हं हुं यामस्तौत् तुष्टाव । हरेर्निद्रा वैष्णवीमायेत्यर्थः। तदुक्तम् – यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पातात्ति यो जगत् । सोऽपि निद्रावशं नीत इति ॥ १४४ ॥

चामुण्डायै कवचाय हुम् विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्
ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट् ॥ १४१-१४२ ॥

अक्षरन्यास - शिखा, दोनो नेत्र, दोनों कान, दोनों नासापुट, मुख एवं गुह्य स्थान में मन्त्र के एक एक अक्षर का न्यास करना चाहिए । फिर समस्त मन्त्र से आठ बार व्यापक न्यास करना चाहिए ॥ १४३ ॥

विमर्श - अक्षर न्यास विधि - ऐं नमः शिखायाम्, ह्रीं नमः दक्षिणनेत्रे, क्लीं नमः, वामनेत्रे, चां नमः दक्षिणकर्णे, मुं नमः वामकर्णे, डां नमः दक्षिणनासापुटे, यै नमः वामनासायाम् विं नमः मुखे, च्चें नमः गुह्ये, ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै नमः सर्वांगें ॥ १४३ ॥

अब **महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती का ध्यान** कहते हैं -

जिन्होने अपने १० भुजाओं में क्रमशः खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिध, त्रिशूल, भुशुण्डी, मुण्ड एवं शंख धारण किया है, ऐसी त्रिनेत्रा, सभी अंगों में आभूषणों से विभूषित, नीलमणि जैसी आभा वाली, दशमुख एवं दश पैरों वाली **महाकाली का ध्यान** करता हूँ जिनकी स्तुति मधु कैटभ का वध करने के लिये भगवान् विष्णु के सो जाने पर ब्रह्मदेव ने की थी ॥ १४४ ॥

अक्षस्रक्परशूगदेषु कुलिशं पदमं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्मजलजं घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रवालप्रभां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥ १४५ ॥
घण्टाशूलहलानि शंखमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशु तुल्य प्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा
पूर्वामत्र सरस्वतीमनु भजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ॥ १४६ ॥
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षचतुष्कं तद्दशांशतः ।
पायसान्नेन जुहुयात्पूजिते हेमरेतसि ॥ १४७ ॥

आवरणदेवताकथनं पूजनं च

जयादि शक्तिभिर्युक्ते पीठे देवीं यजेत्ततः ।
तत्त्वपत्रावृतत्र्यस्र षट्कोणाष्टदलान्विते ॥ १४८ ॥

महालक्ष्मीध्यानमाह – **अक्षस्रगिति** । कुण्डिकां कमण्डलुम् । जलजं शंखम् । अक्षमालापद्मबाणखड्गवज्रगदाचक्रकमण्डलुशंखा दक्षेषु । अन्ये वामेषु । सैरिभमर्दिनीं महिषासुरघातिनीं सरोजोद्भवां देवदेहनिर्गततेजः समुद्भवाम् ॥ १४५ ॥ महासरस्वतीध्यानमाह – **घण्टेति** । शंखमुसलचक्रबाणा दक्षेषु । घण्टाशूलहलधनूंषि वामेषु । **घनान्तेति** । शरच्चन्द्रसमप्रभाम् ॥ १४६ ॥ हेमरेतसि वह्नौ ॥ १४७॥ *॥ १४८–१५१ ॥

अपनी १८ भुजाओं में क्रमशः अक्षमाला, परशु, गदा, बाण, वज्र, कमल, धनुष, कमण्डलु, दण्ड, शक्ति, तलवार, ढाल, शंख, घण्टा, पानपात्र, त्रिशुल, पाश एवं सुदर्शन धारण करने वाली, प्रवाल जैसी शरीर की कान्तिवाली कमल पर विराजमान महिषासुरमर्दिनी **महालक्ष्मी का ध्यान** करता हूँ ॥ १४५ ॥

अपनी ८ भुजाओं में क्रमशः घण्टा, शूल, हल, शंख, मुषल, चक्र, धनुष एवं बाण धारण किये हुये, बादलों से निकलते हुये चन्द्रमा के समान आभा वाली, गौरी के देह से उत्पन्न त्रिलोकी की आधारभूता, शुम्भादि दैत्यों का मर्दन करने वाली श्री **महासरस्वती का ध्यान** करता हूँ ॥ १४६ ॥

इस प्रकार ध्यान कर उपर्युक्त नवार्ण मन्त्र का ४ लाख जप करना चाहिए । तदनन्तर विधिवत् पूजित अग्नि में खीर का दशांश होम करना चाहिए ॥ १४७ ॥

इसके बाद जयादि शक्तियों वाले पीठ पर तथा त्रिकोण, षट्कोण, अष्टदल एवं चतुर्विंशति दल, तदनन्तर भूपुर वाले यन्त्र पर देवी का पूजन करना चाहिए ॥ १४८॥

विमर्श - पीठ पूजा विधि - (१८. १४४-१४५) में वर्णित चण्डी के तीनों स्वरूपों का ध्यान कर मानसोपचारों से उनका पूजन कर अर्घ्य स्थापित करे । फिर पीठ देवताओं का इस प्रकार पूजन करे । पीठमध्ये -

चण्डीपूजनयन्त्रम्
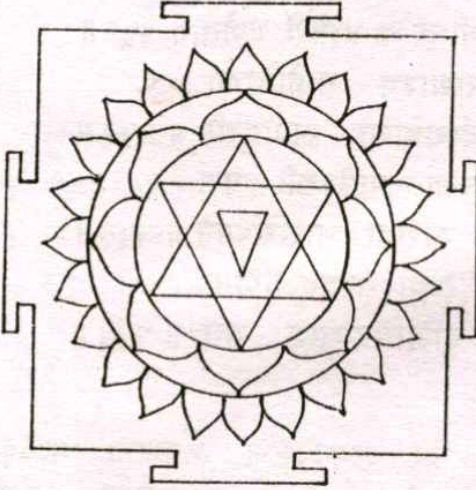
ॐ आधारशक्तये नमः,
ॐ प्रकृतये नमः, ॐ कूर्माय नमः
ॐ शेषाय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः,
ॐ सुधाम्बुधये नमः,
ॐ मणिद्वीपाय नमः,
ॐ चिन्तामणि गृहाय नमः,
ॐ श्मशानाय नमः,
ॐ पारिजात्याय नमः,
ॐ रत्नवेदिकायै नमः कर्णिकायाः मूले
ॐ मणिपीठाय नमः कर्णिकोपरि

ततश्चतुर्दिक्षु -

ॐ नानामुनिभ्यो नमः,
ॐ नानादेवेभ्यो नमः, ॐ शवेभ्यो नमः, ॐ सर्वमुण्डेभ्यो नमः,
ॐ शिवाभ्यो नमः ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः
ॐ वैराग्याय नमः ॐ ऐश्वर्याय नमः,

चतुष्कोणेषु - ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः,
ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः ।

मध्ये - ॐ आनन्दकन्दाय नमः, ॐ संविन्नालाय नमः
ॐ सर्वतत्त्वात्मकपद्माय नमः ॐ प्रकृतमयपत्रेभ्यो नमः,
ॐ विकारमयकेसरेभ्यो नमः, ॐ पञ्चाशद्बीजाढ्यकर्णिकायै नमः,
ॐ अं द्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय नमः, ॐ वं षोडशकलात्मने सोममण्डलाय नमः
ॐ सं दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नमः, ॐ सं सत्त्वाय नमः,
ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः,
ॐ आं आत्मने नमः, ॐ अं अन्तरात्मने नमः,
ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ।

इसके बाद पूर्वादि आठ दिशाओं में तथा मध्य में जयादि शक्तियों की इस प्रकार पूजा करनी चाहिए - ॐ जयायै नमः पूर्वे, ॐ विजयायै नमः, आग्नेये,
ॐ अजितायै नमः दक्षिणे, ॐ अपराजितायै नमः, नैर्ऋत्यें,
ॐ नित्यायै नमः पश्चिमे, ॐ विलासिन्यै नमः, वायव्ये,
ॐ दोग्ध्र्यै नमः उत्तरे, ॐ अघोरायै नमः ऐशान्ये
ॐ मङ्गलायै नमः मध्ये ।

त्रिकोणमध्ये सम्पूज्य ध्यात्वा तां मूलमन्त्रतः ।
पूर्वकोणे विधातारं सुरया सह पूजयेत् ॥ १४९ ॥
विष्णुं श्रिया च नैर्ऋत्ये वायव्ये तूमया शिवम् ।
उदग्दक्षिणयोः सिहं महिषं चक्रमाद्यजेत् ॥ १५० ॥
षट्सु कोणेषु पूर्वादिनन्दजां रक्तदन्तिकाम् ।
शाकम्भरीं तथा दुर्गां भीमां च भ्रामरीं यजेत् ॥ १५१ ॥
सबिन्दुनादाद्यर्णाद्यास्ताराद्याश्च नमोन्तिकाः ।
नन्दजाद्या यजेच्छक्तीर्वक्ष्यमाणा अपीदृशीः ॥ १५२ ॥
अष्टपत्रेषु ब्रह्माणी पूज्या माहेश्वरी परा ।
कौमारी वैष्णवी चाथ वाराही नारसिंह्यपि ॥ १५३ ॥
पश्चादैन्द्री च चामुण्डा तथा तत्त्वदलेष्विमाः ।
विष्णुमायाचेतना च बुद्धिर्निद्राक्षुधा ततः ॥ १५४ ॥

सबिन्द्विति । ॐ नन्दजायै नम इत्यादिरूपा वक्ष्यमाणाः अपीदृशीः सबिन्दुनादाद्यर्णाद्यास्ताराद्या नमोन्ता यजेत् । ॐ ब्रह्माण्यैर्नम इत्यादि० ॥ १५२–१५३ ॥ तत्तद्दलेषु चतुर्विंशति पत्रेषु विष्णु मायाद्याः ॥ १५४–१५८ ॥

इसके बाद 'ह्रीं चण्डिकायोगपीठात्मने नमः' इस पीठ मन्त्र से आसन देकर मूल मन्त्र से मूर्ति कल्पित कर ध्यान आवाहनादि उपचारों से पञ्चपुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त चण्डी की विधिवत् पूजा कर उनकी आज्ञा ले आवरण पूजा करनी चाहिए ॥ १४८ ॥

अब **आवरण पूजा का विधान** कहते है -

त्रिकोण के मध्य बिन्दु में देवी का ध्यान कर मूलमन्त्र से उनकी पूजा करनी चाहिए । फिर त्रिकोण के पूर्व वाले कोण में सरस्वती के साथ ब्रह्मा का, नैर्ऋत्य वाले कोण में महालक्ष्मी के साथ विष्णु का तथा वायव्य कोण में उमा के साथ शिव का पूजन करना चाहिए । उत्तर एवं दक्षिण दिशा में क्रमशः सिंह एवं महिष का पूजन करना चाहिए ॥ १४९-१५० ॥

षट्कोण में पूर्वादि ६ कोणों में क्रमशः नन्दजा, रक्तदन्तिका, शाकम्भरी, दुर्गा, भीमा एवं भ्रामरी का पूजन करना चाहिए । नन्दजा आदि शक्तियों के प्रारम्भ में प्रणव लगाकर उनके नामों के आदि अक्षर में अनुस्वार लगाकर अन्त में नमः लगाकर निष्पन्न मन्त्रों से पूजन करना चाहिए ॥ १५१-१५२ ॥

फिर अष्टदल में ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री तथा चामुण्डा का पूजन करना चाहिए ॥ १५३-१५४ ॥

छायाशक्तिः परा तृष्णा क्षान्तिर्जातिश्च लज्जया।
शान्तिः श्रद्धा कान्तिलक्ष्म्यौ धृतिर्वृत्तिः श्रुतिः स्मृति ॥ १५५ ॥
तुष्टिः पुष्टिर्दया माता भ्रान्तिः शक्तिरिति क्रमात्।
बहिर्भूगृहकोणेषु गणेशः क्षेत्रपालकः ॥ १५६ ॥
बटुकश्चापि योगिन्यः पूज्या इन्द्रादिका अपि।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री भवेत्सौभाग्यभाजनम् ॥ १५७ ॥

तदनन्तर चतुर्विंशति दलों में, विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति, जाति, लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, धृति, वृत्ति, श्रुति, स्मृति, तुष्टि, पुष्टि, दया, माता एवं भ्रान्ति का पूजन करना चाहिए ॥ १५४-१५६ ॥

भूपुर के बारह कोणो में गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक और योगिनियों का, तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों का भी पूजन करना चाहिए । इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर साधक सौभाग्यशाली बन जाता है ॥ १५६-१५७ ॥

विमर्श - आवरण पूजा विधि - त्रिकोण के मध्य बिन्दु पर देवी का ध्यान कर मूल मन्त्र से पूजन करने के बाद पुष्पाञ्जलि लेकर 'ॐ संविन्मये परे देवि परामृतरसप्रिये अनुज्ञां चण्डिके देहि परिवारार्चनाय में' इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर देवी की आज्ञा ले इस प्रकार आवरण पूजा करनी चाहिए । आवरण पूजा में सर्वप्रथम षडङ्गपूजा का विधान है । अतः त्रिकोण के बाहर आग्नेययादि कोणों में मध्य में तथा चतुर्दिक्षु इस प्रकार **प्रथमावरण** में षडङ्ग पूजा करनी चाहिए -

ऐं हृदयाय नमः, आग्नेये, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ऐशान्ये,
क्लीं शिखायै वषट्, नैर्ऋत्ये, चामुण्डायै कवचाय हुम्, वायव्ये,
विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्, मध्ये, ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट् चतुर्दिक्षु

इसके बाद पुष्पाञ्जलि लेकर 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्' - इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए ।

द्वितीयावरण में त्रिकोण के पूर्वादि कोणों में सरस्वती ब्रह्मादिक की पूजा निम्न रीति से करनी चाहिए । यथा - ॐ सरस्वतीब्रह्माभ्यां नमः पूर्वकोणे,
ॐ लक्ष्मीविष्णुभ्यां नमः, नैर्ऋत्यकोणे ॐ गौरीरुद्राभ्यां नमः, वायव्यकोणे,
ॐ सिं सिंहाय नमः, उत्तरे, ॐ मं महिषाय नमः दक्षिणे,

फिर पुष्पाञ्जलि लेकर मूलमन्त्र के साथ 'अभीष्टसिद्धिं ... द्वितीयावरणार्चनम्' पर्यान्त मन्त्र पढ़कर द्वितीय पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

इसके बाद तृतीयावरण में षट्कोणो में नन्दजा आदि ६ शक्तियों की निम्नलिखित मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए । यथा - ॐ नं नन्दजायै नमः, पूर्वे, ॐ रं रक्तदन्तिकायै नमः, आग्नेये, ॐ शां शाकम्भर्यै नमः, दक्षिणे, ॐ दुं दुर्गायै नमः, नैर्ऋत्ये, ॐ भीं भीमायै नमः, पशिचमे, ॐ भ्रां भ्रामर्यै नमः, वायव्ये ।

तदनन्तर पुष्पाञ्जलि दे कर मूल मन्त्र के साथ 'अभीष्टसिद्धिं ... तृतीयावरणार्चनम्' पर्यन्त मन्त्र बोल कर तृतीय पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए।

चतुर्थ आवरण में अष्टदल में पूर्वादि दल के क्रम से ब्रह्माणी आदि ८ मातृकाओं की निम्न नाम मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ ब्रं ब्रह्मण्यै नमः पूर्वदले, ॐ मां माहेश्वर्यै नमः आग्नेयदले,
ॐ कीं कौमार्यै नमः दक्षिणदले, ॐ वैं वैष्णव्यै नमः नैर्ऋत्यदले,
ॐ वां वाराह्यै नमः पश्चिमदले, ॐ नां नारसिंह्यै नमः वायव्यदले,
ॐ ऐं ऐन्द्र्यै नमः उत्तरदले, ॐ चां चामुण्डायै नमः, ऐशान्य दल

इसके पश्चात् पुष्पाञ्जलि लेकर मूल मन्त्र के साथ 'अभीष्टसिद्धिं ... चतुर्थावरणार्चनम्' पर्यन्त मन्त्र पढ़कर चतुर्थ पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

पञ्चम आवरण में चतुर्विंशति दल में पूर्वादि क्रम से विष्णु माया आदि २४ शक्तियों की इस प्रकार पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ विं विष्णुमायायै नमः, ॐ चे चेतनायै नमः ॐ बुं बुद्ध्यै नमः,
ॐ निं निद्रायै नमः ॐ क्षुं क्षुधायै नमः, ॐ छां छायायै नमः
ॐ शं शक्त्यै नमः ॐ तृं तृष्णायै नमः, ॐ क्षां क्षान्त्यै नमः,
ॐ जां जात्यै नमः, ॐ लं लज्जायै नमः ॐ शां शान्त्यै नमः
ॐ श्रं श्रद्धायै नमः, ॐ कां कान्त्यै नमः ॐ लं लक्ष्म्यै नमः
ॐ धृं धृत्यै नमः, ॐ वृं वृत्यै नमः ॐ श्रुं श्रुत्यै नमः
ॐ स्मृं स्मृत्यै नमः ॐ तुं तुष्ट्यै नमः ॐ पु पुष्ट्यै नमः
ॐ दं दयायै नमः ॐ मां मात्रे नमः ॐ भ्रां भ्रान्त्यै नमः

इसके बाद पुष्पाञ्जलि लेकर मूलमन्त्र के साथ 'अभीष्टसिद्धिं ... पञ्चमावरणार्चनम्' पर्यन्त मन्त्र पढ़कर पञ्चम पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

षष्ठ आवरण में भूपुर के बाहर आग्नेयादि कोणों में निम्न मन्त्रों से गणेश आदि का पूजन करना चाहिए । यथा -

गं गणपतये नमः, आग्नेये, क्षं क्षेत्रपालाय नमः, नैर्ऋत्ये,
बं बटुकाय नमः, वायव्ये, यों योगिनीभ्यो नमः, ऐशान्ये,

इसके बाद पुष्पाञ्जलि लेकर मूल मन्त्र के साथ 'अभीष्टसिद्धिं ... षष्ठावरणार्चनम्' पर्यन्त मन्त्र पढ़कर षष्ठ पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ।

सप्तम आवरण में भूपुर के पूर्वादि अपनी अपनी दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों का निम्नलिखित मन्त्रों से पूजन करना चाहिए । यथा -

ॐ लं इन्द्राय नमः पूर्वे, ॐ रं अग्नये नमः आग्नेये,
ॐ मं यमाय नमः दक्षिणे, ॐ क्षं निर्ऋतये नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ वं वरुणाय नमः, पश्चिमे ॐ यं वायवे नमः, वायव्ये,
ॐ सं सोमाय नमः उत्तरे, ॐ हं ईशानाय नमः ऐशान्ये,

चरित्रत्रयनित्यपठनस्य फलम्

मार्कण्डेयपुराणोक्तं नित्यं चण्डीस्तवं पठन् ।
पुटितं मूलमन्त्रेण जपन्नाप्नोति वाञ्छितम् ॥ १५८ ॥
आश्विनस्य सिते पक्षे आरभ्याग्नितिथिं सुधीः ।
अष्टम्यन्तं जपेल्लक्षं दशांशं होममाचरेत् ॥ १५६ ॥
प्रत्यहं पूजयेद्देवीं पठेत्सप्तशतीमपि ।
विप्रानाराध्य मन्त्री स्वमिष्टार्थं लभतेऽचिरात् ॥ १६० ॥
सप्तशत्याश्चरित्रे तु प्रथमे पद्मभूर्मुनिः ।
छन्दो गायत्रमुदितं महाकाली तु देवता ॥ १६१ ॥

अग्नितिथिं प्रतिपदम् ॥ १५६–१६० ॥ चण्डीस्तवस्य मार्कण्डेयपुराणोक्तस्य ऋष्यादीनाह – **सप्तशत्या** इति । प्रथमं चरित्रं मधुकैटभवधः ॥ १६१ ॥

ॐ अं ब्रह्मणे नमः पूर्वशानयोर्मध्ये, ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये

तदनन्तर पुष्पाञ्जलि लेकर मूलमन्त्र के साथ 'अभीष्टसिद्धिं ... सप्तमावरणार्चनम्' पर्यन्त मन्त्र बोल कर सप्तम् पुष्पाञ्जलि चढ़ानी चाहिए ।

अष्टम आवरण में भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं में दिक्पालों के वज्रादि आयुधों की पूजा करनी चाहिए । यथा - ॐ वं वज्राय नमः,
ॐ शं शक्तये नमः, ॐ दं दण्डाय नमः, ॐ खं खड्गाय नमः,
ॐ पां पाशय नमः, ॐ अं अंकुशाय नमः, ॐ गं गदायै नमः,
ॐ शूं शूलाय नमः, ॐ चं चक्राय नमः, ॐ पं पद्माय नमः

फिर पुष्पाञ्जलि लेकर मूल मन्त्र के साथ 'अभीष्टसिद्धिं ... अष्टमावरणार्चनम्' मन्त्र से अष्टम पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए । इस प्रकार आवरण पूजा के बाद महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती देवताओं की धूप दीपादि उपचारों से विधिवत् पूजा करनी चाहिए ॥ १४६-१५७ ॥

साधक मूलमन्त्र से संपुटित मार्कण्डेय पुराणोक्त चण्डी पाठ को करने से तथा नवार्ण मन्त्र का जप करने से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है ॥ १५८ ॥

आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से अष्टमी पर्यन्त मूल मन्त्र का एक लाख जप तथा उसका दशांश होम करना चाहिए ॥ १५६ ॥

प्रतिदिन देवी का पूजन तथा सप्तशती का पाठ और साधक को अन्त में ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । ऐसा करने से वह शीघ्र ही मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है ॥ १६० ॥

अंव प्रकरण प्राप्त सप्तशती के तीनों चरित्रों का विनियोग कहते है -

सप्तशती के प्रथम चरित्र के ब्रह्मा ऋषि है, गायत्री छन्द तथा

वाग्बीजं पावकस्तत्त्वं धर्मार्थे विनियोजनम् ।
मध्यमे तु चरित्रेऽत्र मुनिर्विष्णुरुदाहृतः ॥ १६२ ॥
उष्णिक्छन्दो महालक्ष्मीर्देवताबीजमद्रिजा ।
वायुस्तत्त्वं धनप्राप्त्यै विनियोग उदाहृतः ॥ १६३ ॥
उत्तरस्य चरित्रस्य ऋषिः शंकर ईरितः ।
त्रिष्टुप्छन्दो देवतास्य प्रोक्ता महासरस्वती ॥ १६४ ॥
कामबीजं रविस्तत्त्वं कामाप्त्यै विनियोजनम् ।
एवं संस्मृत्य ऋष्यादीन् ध्यात्वा पूर्वोक्तमार्गतः ॥ १६५ ॥
सार्थस्मृति पठेच्चण्डीस्तवं स्पष्टपदाक्षरम् ।
समाप्तौ तु महालक्ष्मीं ध्यात्वा कृत्वा षडङ्गकम् ॥ १६६ ॥

मध्यमं महिषासुरवधः ॥ १६२॥ अद्रिजा ह्रीं ॥ १६३॥ उत्तरं शुम्भनिशुम्भवधः ॥ १६४ ॥ कामः क्लीं ॥ १६५ ॥ सार्थस्मृति अर्थस्मरणपूर्वकम् ॥ १६६–१६७ ॥

महाकाली देवता हैं । वाग्बीज (ऐं) अग्नि तत्त्व तथा धमार्थ इसका विनियोग किया जाता है ॥ १६१-१६२ ॥

मध्यम चरित्र के विष्णु ऋषि, उष्णिक् छन्द तथा महालक्ष्मी देवता कही गई है । अद्रिजा (ह्रीं) बीज तथा वायुतत्त्व है तथा धन प्राप्ति हेतु इसका विनियोग होता है ॥ १६२-१६३ ॥

उत्तर चरित्र के रुद्र ऋषि कहे गये हैं, त्रिष्टुप् छन्द और महासरस्वती देवता हैं । काम (क्लीं) बीज तथा सूर्य तत्त्व हैं काम प्राप्ति हेतु इसका विनियोग होता है ॥ १६४-१६५ ॥

विमर्श - विनियोग विधि १. अस्य श्रीप्रथमचरित्रस्य ब्रह्माऋषिः गायत्रीच्छन्दः महाकालीदेवता ऐं बीजमग्निस्तत्त्वं धमार्थे जपे विनियोगः ।

२. अस्य श्रीमध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिरुष्णिक्छन्दः महालक्ष्मीदेवता ह्रीं बीजं वायुस्तत्त्वं धनप्राप्त्यै जपे विनियोगः ।

३. अस्य श्रीउत्तरचरित्रस्य रुद्रऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः महासरस्वतीदेवता क्लीं बीजं सूर्यस्तत्त्वं कामप्रदायै जपे विनियोगः ॥ १६१-१६५ ॥

अब **ऋष्यादिन्यास** तथा **सप्तशती के पाठ का विधान** कहते हैं -

इस प्रकार सप्तशती के ऋषि देवता तथा छन्दादि का विनियोग कर पूर्वोक्त (द्र० १८. १४४-१४६) मार्ग से देवी का ध्यान कर, उसके अर्थ का स्मरण करते हुये, पद एवं अक्षरों का स्पष्टरूप में उच्चारण करते हुये, सप्तशतीस्तव का पाठ करना चाहिए । पाठ की समाप्ति में महालक्ष्मी का ध्यान षडङ्गन्यास तथा

जपेदष्टशतं मूलं देवतायै निवेदयेत् ।
एवं यः कुरुते स्तोत्रं नावसीदति जातुचित् ॥ १६७ ॥
चण्डिकां प्रभजन्मर्त्यो धनैर्धान्यैर्यशश्चयैः ।
पुत्रैः पौत्रैरुतारोग्यैर्युक्तो जीवेद् बहूः समाः ॥ १६८ ॥

अथ शतचण्डीविधानम्

शतचण्डीविधानं तु प्रवक्ष्ये प्रीतये नृणाम् ।
नृपोपद्रव आपन्ने दुर्भिक्षे भूमिकम्पने ॥ १६९ ॥
अतिवृष्ट्यामनावृष्टौ परचक्रभये क्षये ।
सर्वे विघ्ना विनश्यन्ति शतचण्डीविधौ कृते ॥ १७० ॥
रोगाणां वैरिणां नाशो धनपुत्रसमृद्धयः ।
शंकरस्य भवान्या वा प्रासादान्निकटे शुभम् ॥ १७१ ॥
मण्डपद्वारवेद्याद्यं कुर्यात् सध्वजतोरणम् ।
तत्र कुण्डं प्रकुर्वीत प्रतीच्यां मध्यतोपि वा ॥ १७२ ॥

यशश्च यैः कीर्तिसमूहैः । समा वर्षाणि ॥ १६८ ॥ शतचण्डीविधानमाह – **शतेति** । तत्र निमित्तान्याह – **नृपोपद्रव** इति ॥ १६९–१७२ ॥ अथ प्रयोगः – शास्त्रोक्तविधिना शंकरालये भवान्यालये वा मण्डपं वेदिमध्ये निर्माय प्रतीच्यां कुण्डमध्ये वा कृत्वा कृतनित्यक्रियौमुककामः शतचण्डीविधानमहं करिष्य

मूलमन्त्र का १०८ बार जप करना चाहिए । फिर देवी को सारा जप निवेदन कर देना चाहिए ॥ १६५-१६७ ॥

इस विधि से जो व्यक्ति सप्तशती का पाठ करता है वह कभी भी दुःख नहीं प्राप्त करता है । चण्डिका की उपासना करने वाला व्यक्ति धन, धान्य, यश, पुत्र पौत्र और आरोग्य सहित बहुत वर्षो तक जीवित रहता है ॥ १६७-१६८ ॥

मनुष्यों के कल्याण के लिये **शतचण्डी का विधान** कहता हूँ -

शास्त्रोक्त विधान से शतचण्डी का अनुष्ठान करने से राजा के द्वारा उपद्रव दुर्भिक्ष, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शत्रु का आक्रमण तथा निरन्तर होने वाला विनाश ये सारे उपद्रव नष्ट हो जाते हैं । रोग एवं शत्रुओं का विनाश तो हो जाता है धन और पुत्रादि की अभिवृद्धि भी होती है ॥ १६९-१७१ ॥

अब **शतचण्डी अनुष्ठान का प्रयोग** कहते है -

शास्त्रोक्त विधि के अनुसार शिवालय अथवा किसी देवी मन्दिर के सन्निकट ध्वज एवं तोरण, वन्दनवारों से सजे हुए सुन्दर मण्डप, द्वार एवं मध्य में वेदी का और पश्चिम दिशा में अथवा मध्य में कुण्ड का निर्माण करे ॥ १७१-१७२ ॥

स्नात्वा नित्यकृतिं कृत्वा वृणुयाद्दशवाडवान्।
जितेन्द्रियान्सदाचारान्कुलीनान् सत्यवादिनः ॥ १७३ ॥
व्युत्पन्नांश्चण्डिकापाठरतॉंल्लज्जादयावतः ।
मधुपर्कविधानेन वस्त्रस्वर्णादिदानतः ॥ १७४ ॥
जपार्थमासनं मालां दद्यात्तेभ्योऽपि भोजनम्।
तेहविष्यान्नमश्नन्तो मन्त्रार्थगतमानसाः ॥ १७५ ॥
भूमौ शयानाः प्रत्येकं जपेयुश्चण्डिकास्तवम्।
मार्कण्डेयपुराणोक्तं दशकृत्वः सुचेतसः ॥ १७६ ।

इति संकल्पं विधाय मातृस्थापनं नान्दीश्राद्धं विधाय स्वस्तिवाचनं कृत्वा उक्तलक्षणां दशविप्रान् मधुपर्कवस्त्रहेमदानादिना वृणुयात् । ते च यजमानदत्तमालाभिः समाहिताः सुमनसो भगवतीं स्मरन्तः सप्तशतीमूलमन्त्रेण वेद्यां कुम्भं स्थापयित्वा तत्र दुर्गामावाह्य षोडशोपचारैः सम्पूज्य तदग्रे प्रत्येकं दशकृत्वः सप्तशतीमयुतं च नवार्णं जपेयुः । हविष्यभोजन ब्रह्मचर्यभूशयना-स्पृश्यास्पर्शादिनियमांश्च चरेयुः। यजमानश्च द्विवर्षाद्या उक्तलक्षणा अधिकांगी-मित्यादि दुर्लक्षणरहिताः कुमारी त्रिमूर्तिं कल्याणादिनाम्नीर्दशकन्या भोजन-वस्त्रहेमदानादिना मन्त्राक्षरमयीमित्यादि मन्त्रेणावाह्य जगत्पूज्येत्यादि स्वमन्त्रः पूजयेत् । एवं चत्वारि दिनानि जपं कुमारीपूजाञ्च समाप्य पञ्चमेऽह्नि कुण्डे आगमोक्तपूर्वविधिना वह्निं संस्थाप्य पायसान्नादिभिरुक्तैर्द्रव्यैर्जुहुयुः। सप्तशत्याः प्रतिश्लोकं दशवारं नवार्णेनायुतं च होमसंख्या । एकैको द्विजः सकृत् सप्त-शतीप्रतिश्लोकं सहस्रं मूलेन च जुहुयादित्यर्थः ॥ १७३–१७६ ॥ * ॥ १७७–२०० ॥

फिर स्नानादि नित्यक्रिया कर (मण्डप में पधार कर 'अमुक कामोऽहं शतचण्डी विधानमहं करिष्ये' इस प्रकार का संकल्प कर गणेश पूजनादि मातृस्थापन, नान्दीश्राद्ध, स्वस्ति वाचनादि कर्म कर) जितेन्द्रिय, सदाचारी, कुलीन, सत्यवादी, चण्डीपाठ में व्युत्पन्न लज्जालु, दयावान् एवं शीलवान् दश ब्राह्मणों का मधुपर्क विधान से वस्त्र, स्वर्ण और जप के लिये आसन और माला दे कर वरण करे और उन्हें भोजन कराए ॥ १७३-१७५ ॥

वे ब्राह्मण भी यजमान द्वारा प्रदत्त आसन पर बैठकर समाहित चित्त से देवी को स्मरण कर, सप्तशती के मूलमन्त्र से वेदी पर कलश स्थापित कर, उस पर देवों का आवाहन कर, षोडशोपचार से पूजन कर, उसी कलश के आगे बैठकर पूजन करें । उन ब्राह्मणों को हविष्यान्न का भोजन कराते हुए और भूमि में ब्रह्मचर्यपूर्वक शयन करते हुए मन्त्रों के अर्थों में मन लगाकर दश दश की संख्या में मार्कण्डेय पुराणोक्त सप्तशती का पाठ करना चाहिए (तथा प्रत्येक दश दश हजार की संख्या में

नवार्णं चण्डिकामन्त्रं जपेयुश्चायुतं पृथक् ।
यजमानः पूजयेच्च कन्यानां दशकं शुभम् ॥ १७७ ॥
द्विवर्षाद्या दशाब्दान्ताः कुमारीः परिपूजयेत् ।
नाधिकाङ्गी न हीनांगीं कुष्ठिनी च ब्रणांकिताम् ॥ १७८ ॥
अन्धां काणां केकरां च कुरूपां रोमयुक्तनुम् ।
दासीजातां रोगयुक्तां दुष्टां कन्यां न पूजयेत् ॥ १७९ ॥
विप्रां सर्वेष्टसंसिद्ध्यै यशसे क्षत्रियोद्भवाम् ।
वैश्यानां धनलाभाय पुत्राप्त्यै शूद्रजां यजेत् ॥ १८० ॥
द्विवर्षा सा कुमार्युक्ता त्रिमूर्तिर्हायनत्रिका ।
चतुरब्दा तु कल्याणी पञ्चवर्षा तु रोहिणी ॥ १८१ ॥
षडब्दा कालिका प्रोक्ता चण्डिका सप्तहायनी ।
अष्टवर्षा शाम्भवी स्याद् दुर्गा च नवहायनी ॥ १८२ ॥
सुभद्रा दशवर्षोक्तास्तामन्त्रैः परिपूजयेत् ।
एकाब्दायाः प्रीत्यभावो रुद्राब्दास्तु विवर्जिताः ॥ १८३ ॥
तासामावाहने मन्त्राः प्रोच्यन्ते शंकरोदिताः ।
मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातॄणां रूपधारिणीम् ॥ १८४ ॥

पृथक् पृथक् नवार्ण मन्त्र का जप करे तथा अस्पृश्य का स्पर्श न करना आदि समस्त वर्जित नियमों का भी पालन करे) ॥ १७५-१७७ ॥

अब **कुमारी पूजन का विधान** कहते हैं - इसके बाद यजमान अधिकाङ्ग हीनाङ्गादि दुर्लक्षणों से रहित २ वर्ष से लेकर १० वर्ष की आयु वाली बटुक सहित १० कन्याओं का पूजन करे ॥ १७७ ॥

कुण्ठ रोग ग्रस्त, व्रण वाली, अन्धी, कानी, केकराक्षी कुरूपा, रोगयुक्ता दासी पुत्री और दुष्टा कन्या का पूजन वर्जित है । अभीष्ट सिद्धि हेतु ब्राह्मणकन्या, यशोवृद्धि के लिये क्षत्रिय कन्या, धनलाभ के लिये वैश्य कन्या तथा पुत्र प्राप्ति के लिये शूद्र कन्या का पूजन करना चाहिए ॥ १७८-१८० ॥

दो वर्ष की कन्या - कुमारी, ३ वर्ष की - त्रिमूर्ति, ४ वर्ष की - कल्याणी, ५ वर्ष की - रोहिणी, ६ वर्ष की - कालिका, ७ वर्ष की - चण्डिका, ८ वर्ष की - शाम्भवी, ९ वर्ष की - दुर्गा तथा १० वर्ष की कन्या सुभद्रा कही जाती है । इनका मन्त्रों के द्वारा पूजन करना चाहिए ॥ १८१-१८३ ॥

१ वर्ष की कन्या में प्रीति का अभाव होने से पूजन मे अयोग्य तथा ११ वर्ष वाली कन्या पूजन में वर्जित है ॥ १८३-१८४ ॥

अब उनके **आवाहनादि के लिये शंकराचार्य द्वारा संप्रोक्त मन्त्र** कहता हूँ -

नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम् ।
कुमारिकादिकन्यानां पूजामन्त्रान्ब्रुवेऽधुना ॥ १८५ ॥

कन्यकापूजनप्रकारस्तासां मन्त्राश्च

जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वदेवस्वरुपिणी ।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥ १८६ ॥
त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिवर्गज्ञानरूपिणीम् ।
त्रैलोक्यवन्दितां देवीं त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम् ॥ १८७ ॥
कालात्मिकां कलातीतां कारुण्यहृदयां शिवाम् ।
कल्याणजननीं देवीं कल्याणी पूजयाम्यहम् ॥ १८८ ॥
अणिमादि गुणाधारामकाराद्यक्षरात्मिकाम् ।
अनन्तशक्तिकां लक्ष्मीं रोहिणीं पूजयाम्यहम् ॥ १८९ ॥
कामचारां शुभां कान्तां कालचक्रस्वरूपिणीम् ।
कामदां करुणोदारां कालिकां पूजयाम्यहम् ॥ १९० ॥
चण्डवीरां चण्डमायां चण्डमुण्डप्रभञ्जनीम् ।
पूजयामि महादेवीं चण्डिकां चण्डविक्रमाम् ॥ १९१ ॥
सदानन्दकरीं शान्तां सर्वदेव नमस्कृताम् ।
सर्वभूतात्मिकां देवीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम् ॥ १९२ ॥
दुर्गमे दुस्तरे कार्य्ये भवार्णवविनाशिनि ।
पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गांदुर्गार्तिनाशिनीम् ॥ १९३ ॥
सुन्दरीं स्वर्णवर्णाभां सुखसौभाग्यदायिनीम् ।
सुभद्रजननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम् ॥ १९४ ॥

'मन्त्राक्षरमयीं' से लेकर 'कन्यामावाह्याम्यहम्' पर्यन्त (द्र० १८. १८४-१८५) मन्त्र का उच्चारण करते हुये उन कुमारियों का आवाहन करना चाहिए ॥ १८५ ॥

फिर १. 'ॐ जगत्पूज्ये ... नमोस्तुते' पर्यन्त मन्त्र (द्र०. १९. १८६) से कुमारी का, २. 'ॐ त्रिपुरां त्रिपुराधाराम्' से त्रिमूर्ति का, ३. 'ॐ कालात्मिकाकलातीता' से कल्याणी का, ४. 'ॐ अणिमादिगुणाधराम्' से रोहिणी का, ५. 'ॐ कामचारां शुभां कान्ताम्' से कालिका का, ६. 'ॐ चण्डवीरां चण्डमायां०' से चण्डिका का, ७. 'ॐ सदानन्दकरीं शान्ताम्०' से शाम्भवी का, ८. 'ॐ दुर्गमे दुस्तरे कार्ये०' से दुर्गा का, ९. 'ॐ सुन्दरीं स्वर्णवर्णाभां०' से सुभद्रा का पूजन करना चाहिए ॥ १८६-१९४ ॥

एतैर्मन्त्रैः पुराणोक्तैः स्नातां कन्यां प्रपूजयेत् ।
गन्धैः पुष्पैर्भक्ष्यभोज्यैर्वस्त्रैराभरणैरपि ॥ १६५ ॥
वेद्यां विरचिते रम्ये सर्वतोभद्रमण्डले ।
घटं संस्थाप्य विधिवत्तत्रावाह्यार्च्चयेच्छिवाम् ॥ १६६ ॥
तदग्रे कन्यकाश्चापि पूजयेद् ब्राह्मणानपि ।
उपचारैस्तु विविधैः पूर्वोक्तावरणान्यपि ॥ १६७ ॥

पञ्चमदिने हवनकृत्यम्

एवं चतुर्दिनं कृत्वा पञ्चमे होममाचरेत् ।
पायसान्नैस्त्रिमध्वक्तैर्द्राक्षारम्भाफलैरपि ॥ १६८ ॥
मातुलिङ्गैरिक्षुखण्डैर्नारिकेलैः पुरैस्तिलैः ।
जातीफलैराम्रफलैरन्यैर्मधुरवस्तुभिः ॥ १६६ ॥
सप्तशत्या दशावृत्या प्रतिश्लोकं हुतं चरेत् ।
अयुतं च नवार्णेन स्थापिताग्नौ विधानतः ॥ २०० ॥
कृत्वावरण देवानां होमं तन्नाममन्त्रतः ।
कृत्वा पूर्णाहुतिं सम्यग्देवमग्निं विसर्ज्य च ॥ २०१ ॥

ततः आवरणदेवतानां नाममन्त्रैस्तारादिस्वाहान्तैरेकैकामाहुतिं हुत्वा पूर्णाहुतिं कृत्वा देवीं कुम्भस्थां सम्पूज्य बलिदानं विधाय ऋत्विग्भ्यः प्रत्येकं

पुराणोक्त इन इन मन्त्रों से स्नान की हुई कन्याओं का गन्ध, पुष्प, भक्ष्य, भोज्य, वस्त्र एवं आभूषणों से पूजन करना चाहिए ॥ १६५ ॥

अब **सर्वतोभद्रमण्डल पर घटस्थापन, पूजन एवं हवन का विधान** कहते हैं -

वेदी पर बनाये गये परम रमणीय सर्वतोभद्रमण्डल पर घटस्थापन कर भगवती का विधिवत् आवाहन एवं पूजन करना चाहिए । उसके आगे यथोपलब्ध विविध उपचारों से कन्या एवं ब्राह्मणों का विधिवत् पूजन करना चाहिए । तदनन्तर पूर्वोक्त (द्र०. १८. १४६-१५७) आवरण पूजा करनी चाहिए ॥ १६६-१६७ ॥

इस विधि से ४ दिन तक अनुष्ठान कर ५ वें दिन होम करना चाहिए । सप्तशती की १० आवृत्तियों से प्रत्येक श्लोक से मधुरत्रय (घृत, शक्कर, मधु) सहित खीर, अंगूर, केला, बिजौरा, उख के टुकड़े, नारियल, तिल, आम और अन्य मधुर वस्तुओं से होम करना चाहिए ॥ १६८-१६६ ॥

इसी प्रकार विधिवत् स्थापित अग्नि में नवार्ण मन्त्र से १० हजार आहुतियाँ भी देनी चाहिए । फिर आवरण देवताओं का उनके नाम मन्त्रों के आरम्भ में प्रणव तथा अन्त में 'स्वाहा' लगाकर एक एक आहुति देनी चाहिए । फिर

अभिषिञ्चेच्च यष्टारं विप्रौघः कलशोदकैः ।
निष्कं सुवर्णमथवा प्रत्येकं दक्षिणां दिशेत् ॥ २०२ ॥
भोजयेच्च शतं विप्रान् भक्ष्यभोज्यैः पृथग्विधैः ।
तेभ्योऽपि दक्षिणां दत्त्वा गृह्णीयादाशिषस्ततः ॥ २०३ ॥

शतचण्डीविधानस्य फलकथनम्

एवं कृते जगद्वश्यं सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः ।
राज्यं धनं यशः पुत्रानिष्टमन्यल्लभेत सः ॥ २०४ ॥

सहस्रायुतादिचण्डीविधानफलं च

एतद्दशगुणं कुर्याच्चण्डी साहस्रजं विधिम् ।
विद्यावतः सदाचारान् ब्रह्माणान् वृणुयाच्छतम् ॥ २०५ ॥

निष्कमशक्तौ सुवर्णमितं सुवर्णं दद्यात् ॥ २०१ ॥ ततो विप्राः कलशोदकेन यजमानं निगमपुराणोक्तमन्त्रैरभिषिञ्चेयुराशिषश्च दद्युः । ततः शतं विप्रान् नानाविधान्नैर्भोजयेत् । तेभ्योऽपि यथाशक्ति दक्षिणां दद्यात् । इति शतचण्डीविधिः ॥ २०२–२०३ ॥ शतचण्डीविधेः फलमाह – **एवं कृत** इति ॥ २०४ ॥ सहस्रचण्डीविधानमाह – **एतद्दशगुणम्** इति । शतचण्डीविधानदशगुणं सहस्रं चण्डीविधानमित्यर्थः । तत्र शतं विप्रवरणम् ॥ २०५ ॥

पूर्णाहुति कर विधिवत् देवताओं और अग्नि का विसर्जन करना चाहिए । कुम्भस्थ देवी का पूजन कर बलिदान प्रदान कर प्रत्येक ऋत्विजों को निष्क अथवा अशक्त होने पर सुवर्ण दक्षिणा देवे ॥ २००-२०१ ॥

अब **अभिषेक विधान एवं ब्राह्मण भोजन का प्रकार** कहते है -

होम के अनन्तर समस्त वरण किए गए ब्राह्मणो को चाहिए कि कलश के जल से यजमान का अभिषेक कर आशीर्वाद प्रदान करें । यजमान भी प्रत्येक ब्राह्मणों को निष्क अथवा सुवर्ण दक्षिणा देवे और विविध भक्ष्य भोज्यादि पदार्थों से सौ की संख्या में ब्राह्मणों को भोजन करावे । उन्हें भी यथाशक्ति दक्षिणा देवे और उनका आशीर्वाद भी ग्रहण करे ॥ २०२-२०३ ॥

ऐसा करने से संसार वश में हो जाता है । सारे उपद्रव नष्ट हो जाते हैं तथा राज्य, धन, यश, पुत्र की प्राप्ति एवं सारे मनोरथों की पूर्ति भी हो जाती है ॥ २०४ ॥

अब **सहस्रचण्डी का विधान** कहते हैं -

सहस्र चण्डी विधान में शतचण्डी विधान का दश गुना कार्य (पाठ, जप, होम,

प्रत्येकं चण्डिकापाठान् विदध्युस्ते दिशामितान्।
अयुतं प्रजपेयुस्ते प्रत्येकं नववर्णकम् ॥ २०६ ॥
पूर्वोक्ताः कन्यकाः पूज्याः पूर्वमन्त्रैः शतं शुभाः।
एवं दशाहं सम्पाद्य होमं कुर्युः प्रयत्नतः ॥ २०७ ॥
सप्तशत्याः शतावृत्त्या प्रतिश्लोकं विधानतः।
लक्षसंख्यं नवार्णेन पूर्वोक्तैर्द्रव्यसञ्चयैः ॥ २०८ ॥
होतृभ्यो दक्षिणां दत्त्वा पूर्वोक्तान्भोजयेद् द्विजान्।
सहस्रसम्मितान्साधून् देव्याराधनतत्परान् ॥ २०९ ॥
एवं सहस्रसंख्याके कृते चण्डीविधौ नृणाम्।
सिद्ध्यत्यभीप्सितं सर्वं दुःखौघश्च विनश्यति ॥ २१० ॥

ते शतविप्राः प्रत्येकं दश दश सप्तशतीपाठान् कुर्युः – अयुतमयुतं नवार्णजपं च कुर्युः ॥ २०६ ॥ शतकन्याश्च भोज्याः । एवं दशदिनेषु संपाद्य एकादशेऽह्नि सप्तशतीशतावृत्या प्रतिश्लोकं तल्लक्षसंख्यं नवार्णेन च होमः ॥ २०७–२०८ ॥ ऋत्विग्भ्योऽपि दश दश निष्कमितं सुवर्णदक्षिणां प्रत्येकं दद्यात् । शेषं पूर्वोक्तवत् । इति सहस्रचण्डीविधिः ॥ २०९ ॥ एतत्फलमाह – **एवं सहस्र संख्याक** इति । एतदयुत चण्डीविधानलक्षविधानयोरूपलक्षणम् । सहस्रचण्डी दशगुणोऽयुतचण्डीविधिः । स दशगुणो लक्षचण्डीविधिः । जपे

दक्षिणा, कन्या पूजन, ब्राह्मण वरण, और ब्राह्मण भोजन) करना चाहिए । इस अनुष्ठान में विद्वान् और सदाचारी १०० ब्राह्मणों का वरण करना चाहिए ॥ २०५ ॥

उनमें से प्रत्येक को १०-१० चण्डी पाठ तथा १०-१० हजार नवार्ण मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ २०६ ॥

इसी प्रकार पूर्वोक्त शुभ लक्षण वाली (द्र०. १८. १७७-१८३) सौ कन्याओं का पूर्वोक्त मन्त्रों से (द्र० १८. १८४-१९४) पूजन करना चाहिए । इस प्रकार १० दिन पर्यन्त कार्य करने के बाद विधिवत् होम करना चाहिए ॥ २०७ ॥

सप्तशती की १०० आवृत्तियों से, एक-एक श्लोक द्वारा तथा एक लाख नवार्ण मन्त्रों द्वारा विधिपूर्वक पूर्वोक्त द्रव्यों से हवन करना चाहिए । फिर ऋत्विजों को दक्षिणा देने के बाद पूर्वोक्त लक्षण युक्त (द्र० १८. १७३-१७६) एक हजार सज्जन और देवी की आराधना में तत्पर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ॥ २०८-२०९ ॥

इस प्रकार विधिवत् सहस्रचण्डी करने पर उपासक की सारी कामनायें पूरी होती है तथा समस्त दुःख और पाप नष्ट हो जाते है ॥ २१० ॥

मारी दुर्भिक्षरोगाद्या नश्यन्ति व्यसनोच्चयाः।
नेमं विधिं वदेद्दुष्टे खले चौरे गुरुद्रुहि ॥ २११ ॥
साधौ जितेन्द्रिये दान्ते वदेद्विधिमिमं परम्।
एवं सा चण्डिका तुष्टा वक्तृञ्छ्रोतॄंश्च रक्षति ॥ २१२ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ कालरात्रिचण्डीमन्त्र-
शतचण्ड्यादिनिरूपणं नाम अष्टादशस्तरङ्गः ॥ १८ ॥

होमे दक्षिणायां कन्यासु विप्रभोजने च दशगुणत्वम् ॥ २१०–२१२ ॥

॥ इति श्री मन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां कालरात्रि-
चण्डीमन्त्रशतचण्ड्यादिनिरूपणं नाम अष्टादशस्तरङ्गः ॥ १८ ॥

सहस्रचण्डी के पाठ से महामारि, दुर्भिक्ष, रोग तथा सभी प्रकार के दुर्व्यसनादि नष्ट हो जाते है । चण्डी का विधान दुष्ट, खल, चोर, गुरुद्रोही को नहीं बताना चाहिए ॥ २११ ॥

सज्जन, जितेन्द्रिय और संयमी को ही इस विधि का उपदेश करना चाहिए। इस प्रकार सत्पात्र को उपदेश करने से भगवती चण्डिका वक्ता और श्रोता दोनों की रक्षा करती हैं ॥ २१२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के अष्टादश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १८ ॥

अथ एकोनविंशः तरङ्गः

चरणायुधमन्त्रस्य विधानमभिधीयते ।
मन्त्री यद्विधिना कृत्वा साधयेत्स्वमनोरथान् ॥ १ ॥

कुक्कुटमन्त्रकथनम्

तीक्ष्णोर्घीशेन्दु संयुक्तः सद्योजातयुतो विधिः ।
पिनाकीसूक्ष्मयुग्वर्ण त्रयमेतत् पुनः पठेत् ॥ २ ॥
उत्कारीं दीर्घसंयुक्ता मायाबीजं ततो वदेत् ।
द्विरभ्यस्तं पुनर्वर्णत्रयं पूर्वोदितं पुनः ॥ ३ ॥
कूर्मः सकर्णो वो दीर्घो मन्त्रोऽयं समुदीरितः ।
पाशाद्योंकुशबीजान्तोऽष्टादशाक्षरसंयुतः ॥ ४ ॥

---

* नौका *

कुक्कुटमन्त्रं वक्तुं प्रतिजानीते – **चरणेति** ॥ १ ॥ मन्त्रमुद्धरति – **तीक्ष्ण** इति । तीक्ष्णः यकारः अर्घीशेन्दुयुक्तः । तेन यूम् । विधिः कः सद्योजातयुत ओयुतः को । पिनाकी लः सूक्ष्मयुक् इयुतः लि एतद्वर्णत्रयं पुनर्वारद्वयम् । यूंकोलियूंकोलीति ॥ २ ॥ उत्कारी वकारः दीर्घ आ । तेन संयुक्ता वा । मायाबीजं ह्रीं । पूर्वोदितं तथा वारद्वयं द्विरभ्यस्तं पुनर्वदेदित्यन्वयः ॥ ३ ॥ कूर्मः चः । सकर्ण उयुतः चु । दीर्घो वो वा । पाशाद्यः आं आद्यः ।

---

* अरित्र *

अब चरणायुध मन्त्र का विधान कहता हूँ जिस के करने से मन्त्रवेत्ता उस विधि से अनुष्ठान कर अपना सारा मनोरथ पूर्ण कर सकता है ॥ १ ॥

अब **चरणायुध मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

अर्घीश (ऊकार) एवं बिन्दु (अनुस्वार) सहित तीक्ष्ण (य), अर्थात (यूँ), संद्योजात (ओ) के साथ विधि (क) अर्थात् (को), सूक्ष्म (इकार) सहित पिनाकी (ल) अर्थात् (लि), इन तीनों (यू को लि) वर्णों को दो बार उच्चारण करना चाहिए । फिर दीर्घ (आ) संयुक्त उत्कारी (व) अर्थात् वां इसके बाद मायाबीज (ह्रीं), फिर दो बार (यूं को लि यूँ को लि), फिर

महारुद्रो मुनिश्चास्य च्छन्दोति जगतीरितम्।
मायाबीजं सृणिः शक्तिर्देवता चरणायुधः॥ ५॥
वेदरामाक्षिरामाग्नि वह्निवर्णैः षडङ्गकम्।
कृत्वा वर्णान्प्रविन्यस्येन्मूर्ध्नि भाले भ्रुवोर्द्वयोः॥ ६॥
अक्ष्णोः श्रुत्योर्नसोर्वक्त्रे कण्ठे कुक्षौ च नाभितः।
लिङ्गे गुदे जानुपादे न्यस्यैवं संस्मरेत् प्रभुम्॥ ७॥

अंकुशबीजान्तः क्रों अन्तः । यथा – आं यूंकोलि यूंकोलि वा ह्रीं यूंकोलि-यूंकोलि चु वा क्रों इति ॥ ४–५॥ षडङ्गमाह – **वेदेति** । आं यूं को लि हृदयाय नम इत्यादि० । वर्णन्यासमाह – **मूर्ध्नीति** । भ्रुवोरक्षिश्रुतिनासासु च द्वेद्वे । अन्यत्रैकैकम् ॥ ६ ॥ * ॥ ७ ॥

सकर्ण (उकार सहित) कूर्म च अर्थात् (चु) दीर्घ व (वा) इस मन्त्र के प्रारम्भ में पाश (आ) तथा अन्त में अंकुश (क्रों) लगाने से १८ अक्षर का चरणायुध मन्त्र बनता है ॥ २-४ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'आं यूँकोलि यूँकोलि वा ह्रीं यूँकोलि यूँकोलि चु वा क्रों' (१८) ॥ २-४ ॥

इस मन्त्र के महारुद्र ऋषि हैं, अति जगती छन्द है, माया (ह्रीं) बीज है, सृणि (क्रों) शक्ति है तथा चरणायुध देवता हैं ॥ ५ ॥

विनियोग विधि - अस्य चरणायुधमन्त्रस्य महारुद्रऋषिरतिजगतीच्छन्दः चरणायुधो देवता ह्रीं बीजं क्रों शक्तिरभीष्टसिद्धये जपे विनियोगः ॥ ५ ॥

अब इस मन्त्र का **षडङ्गन्यास** तथा **वर्णन्यास** कहते हैं - मन्त्र के वेद ४, राम ३, अक्षि २, राम ३, अग्नि ३, तथा वह्नि ३ वर्णों से षडङ्गन्यास कर मन्त्र के एक वर्ण से क्रमशः शिर, भाल, दोनों भ्रू, दोनों कान, दोनों नासिका, मुख, कण्ठ, कुक्षि, नाभि, लिङ्ग, गुदा, जाघँ और दोनों पैरों पर न्यास कर चरणायुध का ध्यान करना चाहिए ॥ ६-७ ॥

विमर्श - षडङ्गन्यास - आं यूँ कोलि हृदयाय नमः,
यूँ कोलि शिरसे स्वाहा, वा ह्रीं शिखायै वषट्,
यूँ कोलि कवचाय हुम्, यूँ कोलि नेत्रत्रयाय वौषट्,

वर्णन्यास - ॐ आं नमः मूर्ध्नि, ॐ यूं नमः ललाटे,
ॐ कों नमः दक्षिण भ्रुवि, ॐ लि नमः वामभ्रुवि,
ॐ यूं नमः दक्षिणनेत्रे, ॐ कों नमः वामनेत्रे,
ॐ लि नमः दक्षिणकर्णे, ॐ वां नमः वामकर्णे,
ॐ ही नमः दक्षिणनासापुटे, ॐ यूं नमः वामनासापुटे,

ध्यानवर्णनं बलिदानप्रकारश्च

सर्वालंकृति दीप्त कण्ठचरणौ हेमाभदेहद्युतिः
पक्षद्वन्द्वविधूननेति कुशलः सर्वामराभ्यर्च्चितः ।
गौरीहस्तसरोजगोरुणशिखः सर्वार्थसिद्धिप्रदो
रक्तं चञ्चुपुटं दधच्चलपदः पायान्निजान्कुक्कुटान् ॥ ८ ॥
एवं ध्यात्वा समासीनः शैलाग्रे सरितस्तटे ।
वृषशून्ये पश्चिमस्थे यद्वा शंकरसद्मनि ॥ ९ ॥
लक्षं जपेद्दशांशेन तिलैर्हवनमाचरेत् ।
शैवे पीठे यजेत् ताम्रचूडं गौरीकरस्थितम् ॥ १० ॥

ध्यानमाह – **सर्वेति** । सर्वालंकारैर्दीप्तः कण्ठश्चरणौ च यस्य निजान् सेवकान् पायाद् रक्षतु ॥ ८–९ ॥ शैवपीठे वामादि शक्तियुते ॥ १०–११ ॥

ॐ कों नमः मुखे, ॐ लि नमः कण्ठे, ॐ यूँ नमः कुक्षौ,
ॐ कों नमः नाभौ, ॐ लिं नमः लिगै, ॐ चुं नमः गुदे,
ॐ वां नमः जान्वोः, ॐ क्रों नमः पादयोः ॥ ६-७ ॥

अब **ध्यान** कहते हैं -

जिनके कण्ठ और चरण सभी प्रकार के अलंकारों से जगमगा रहे हैं, तथा जिनके शरीर की कान्ति सुवर्ण की आभा के समान है, जो अपने दोनों पंखों के फैलाने में अत्यन्त कुशल हैं तथा समस्त देव वर्गों से पूजित गौरी के हाथ में स्थित हैं। लाल कमल जैसी आभा के समान शिखा से युक्त, रक्त चञ्चु वाले, चञ्चल पैरों को धारण करने वाले हैं, ऐसे अपने साधकों के समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाले चरणायुध देवता अपने भक्तों की रक्षा करे ॥ ८ ॥

अब उक्त **मन्त्र की साधना के लिए स्थान का निर्देश** करते हैं -

उक्त प्रकार से ध्यान कर, पर्वत के शिखर पर, नदी के किनारे या जहाँ वृषभादि न हो, पश्चिम दिशा में अथवा किसी शिवालय में मन्त्र की साधना करनी चाहिए ॥ ९ ॥

अब **जप संख्या, होम तथा पूजा विधि** कहते हैं -

इस मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करना चाहिए और तिलों से उसका दशांश होम करना चाहिए । शैव पीठ पर, गौरी के हाथ में स्थित ताम्रचूड का पूजन करना चाहिए ॥ १० ॥

उसकी **विधि** इस प्रकार है --

सर्वप्रथम षडङ्ग पूजा कर, अष्टदल में शम्भु, गौरी, गणपति, कार्तिकेय, मन्दार,

आदावङ्गानि सम्पूज्य दलेषु प्रयजेदिमान् ।
शम्भुं गौरीं गणपतिं कार्तिकेयं ततः परम् ॥ ११ ॥
मन्दारं पारिजातं च महाकालं च बर्हिणम् ।
दलाग्रेषु सुराधीशप्रमुखानायुधान्वितान् ॥ १२ ॥
एवं कृते प्रयोगार्हो जायते मन्त्रनायकः ।

सुरधीशप्रमुखानिन्द्रादीन् ॥ १२–१३ ॥

पारिजात, महाकाल एवं बर्हि (मयूर) - इन देवताओं का पूजन करना चाहिए । दलाग्र में इन्द्रादि दिक्पालों का, तदनन्तर उनके आयुधों का पूजन करना चाहिए । ऐसा करने से यह मन्त्रराज काम्य प्रयोगों के योग्य हो जाता है ॥ ११-१३ ॥

विमर्श - यन्त्र निर्माण विधि - वृत्ताकार कर्णिका, अष्टदल एवं भूपुर सहित यन्त्र का निर्माण करना चाहिए । उसी पर चरणायुध का पूजन करना चाहिए ।

चरणायुधपूजनयन्त्रम्
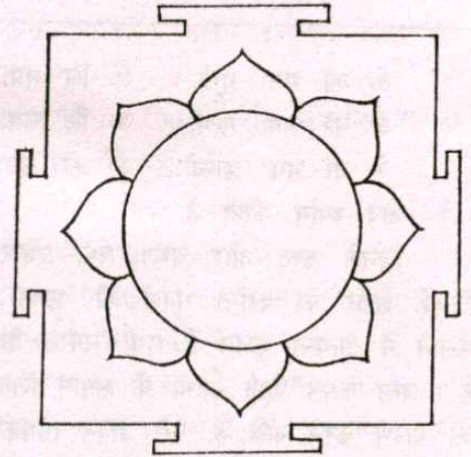
पीठ पूजा विधि - सर्वप्रथम (१६. ८ श्लोक में वर्णित चरणायुध का ध्यान कर मानसोपचार से उनका पूजन कर अर्घ्य स्थापित करे । फिर शैव पीठ पर देवताओं का पूजनादि क्रम. १६. २२-२५ पर्यन्त श्लोकों की टीका के अनुसार करना चाहिए । फिर - 'ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मकशक्ति युक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः' इस मन्त्र से आसन देकर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना कर ध्यान आवाहनादि उपचारों से पुष्पाञ्जलि पर्यन्त विधिवत् चरणायुध का पूजन कर उनकी अनुज्ञा ले आवरण पूजा इस प्रकार करनी चाहिए ।

आवरण पूजा विधि - सर्वप्रथम आग्नेयादि कोणों में चतुर्दिक्षु तथा मध्य में षडङ्गन्यास प्रोक्त मन्त्रों से अङ्गपूजा करनी चाहिए । यथा -

आं यूं कों लिं हृदयाय नमः, नैर्ऋत्ये यू कों लिं शिरसे स्वाहा,
वा ह्रीं शिखायै वषट् वायव्यं, वायव्ये, यूँ कों लिं कवचाय हुम्, ऐशान्ये,
यूं को लिं नेत्रत्रयाय वौषट् चतुर्दिक्षु, चुं वां क्रों अस्त्राय फट् पीठमध्ये,

फिर अष्टदल में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से शम्भु आदि ८ देवताओं की निम्न रीति से पूजा करनी चाहिए । यथा -

प्रयोगादौ प्रजप्योऽसावयुतं द्विशताधिकम् ॥ १३ ॥
दध्ना क्षीरेण मधुना चन्द्रेण सितयान्वितैः ।
दद्याद् बलिं सताम्बूलैः पायसैर्बलिमन्त्रतः ॥ १४ ॥
भोजनादौ भोजनान्ते लक्ष्मीसम्प्राप्तये सुधीः ।
बलिमेतत् प्रदत्त्वाथ कुबेरो धननाथताम् ॥ १५ ॥
शान्तौ पुष्टावपि बलिमेतमेव प्रदापयेत् ।
उक्तस्य वक्ष्यमाणस्य बलेर्मन्त्रोऽथ कथ्यते ॥ १६ ॥
वामकर्णेन्दुयुक्छूरः सबिन्दुश्चरमेऽद्रिजा ।
कुक्कुटद्वितयं पश्चादेह्येहीमं बलिं वदेत् ॥ १७ ॥

चन्द्रेण कर्पूरेण ॥ १४ ॥ * ॥ १५–१६ ॥ बलियन्त्रमाह – **वामेति** ।

ॐ शम्भवे नमः पूर्वदले, ॐ गौर्यै नमः आग्नेयदले,
ॐ गणपतये नमः दक्षिणदले, ॐ कार्तिकेयाय नमः नैर्ऋत्यदले,
ॐ मन्दाराय नमः पश्चिमदले, ॐ पारिजाताय नमः वायव्यदले,
ॐ महाकालाय नमः उत्तरदले, ॐ वर्हिणे नमः ईशानदले,

तत्पश्चाद्दलों के अग्रभाग में अपनी अपनी दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों की निम्नलिखित मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ इन्द्राय सायुधाय नमः पूर्वै, ॐ रं अग्नये सायुधाय नमः आग्नेये,
ॐ मं यमाय सायुधायनमः दक्षिणे, ॐ क्षं निर्ऋतये सायुधाय नमः नैर्ऋत्ये,
ॐ वं वरुणाय सायुधाय नमः पश्चिमे, ॐ यं वायवे सायुधाय नमः वायव्ये,
ॐ सं सोमाय सायुधाय नमः उत्तरे, ॐ हं ईशानाय सायुधाय नमः ऐशान्ये,
ॐ आं ब्रह्मणे सायुधाय नमः ऊर्ध्वम्, ॐ ही अनन्ताय सायुधाय नमः अधः,

इस रीति से आवरण पूजा करने के बाद धूप, दीप, नैवेधादि उपचारों से सविधि चरणायुध की पूजा करनी चाहिए ॥ ११-१२ ॥

काम्यप्रयोग में **जप संख्या** विधान -

काम्य-प्रयोगों में इस मन्त्र का दस हजार दो सौ १०२०० की संख्या में जप करना चाहिए । फिर दूध, दही, मधु, कपूर, और शक्कर मिश्रित पदार्थों की पान और खीर के साथ वक्ष्यमाण बलिमन्त्र से बलि देनी चाहिए । विद्वान् पुरुष लक्ष्मी प्राप्ति की इच्छा से भोजन के आदि तथा समाप्ति में बलि देवे । इसी बलि देने के प्रभाव से कुबेर धनाध्यक्ष हो गए । शान्तिक तथा पौष्टिक कर्मों में भी इसी प्रकार की बलि देनी चाहिए ॥ १३-१६ ॥

अब **पूर्वचर्चित वक्ष्यमाण मन्त्र को कहता हूँ** - वामकर्ण (ऊं), इन्दु (बिन्दु) सहित शूर (य) अर्थात् (यूं), सानुस्वार चरम (क्षं), फिर अद्रिजा

गृह्णयुग्मं गृह्णापय सर्वान् कामांश्च देहि च ।
वायुः सचन्द्रः कर्णेन्दुयुक्चक्रीगिरिनन्दिनी ॥ १८ ॥
यूं नमः कुक्कुटायेति मन्त्रो व्योम युगाक्षरः ।
बलिं दद्यादनेनोक्तं वक्ष्यमाणं च साधकः ॥ १६ ॥

नृपवश्यादिफलकथनम्

लाजैस्त्रिमधुरोपेतैर्दद्यान् मन्त्री बलिं निशि ।
वशयेदखिलं विश्वं त्रिदिनं वौदनैर्नृपम् ॥ २० ॥
दुग्धमिश्रितगोधूमपिष्टैः कुर्यादपूपकम् ।
आज्यकर्पूरयुक्तेन तेन दद्याद् बलिं निशि ॥ २१ ॥
त्र्यहमेवं बलौ दत्ते सुखी स्याद्वशयेज्जगत् ।
करवीरैर्बिल्वपत्रैः पीतपुष्पैः सुगन्धिभिः ॥ २२ ॥

वामकर्णेन्दुयुक् शूर ऊ बिन्दुयुतः यूं । चरमः क्षः सविन्दुः क्षं । अद्रिजा ह्रीं ॥ १७ ॥ वायुः यः सचन्द्रः सबिन्दु यं । कर्णेन्दुयुक् चक्री उ बिन्दुयुतः कः कुं । गिरिनन्दिनी ह्रीं ॥ १८ ॥ स्वरूपमन्यत् । यथा – यूं क्षं ह्रीं कुक्कुट कुक्कुट एह्येहि इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय सर्वान् कामान् देहि यं कुं ह्रीं यूं नमः कुक्कुटायेति व्योमयुग्माक्षरश्चत्वारिंशदर्णः । अनेन मन्त्रेण पूर्वोक्तं बलिं वक्ष्यमाणं च दद्यात् ॥ १६ ॥ ओदनैस्त्रिदिनं बलिं दत्वा नृपं वशयेत् ॥ २० ॥ * ॥ २१–२६ ॥

(ह्रीं), फिर दो बार कुक्कुट एह्येहि इयं बलिं, फिर दो बार गृह्ण फिर 'गृह्णापय सर्वान्कामांश्च देहि' फिर सचन्द्र वायु (यं) कर्ण (उकार) इन्दु सहित चक्री (क) अर्थात् (कुं) गिरिनन्दिनी (ह्रीं) तथा अन्त में यू नमः कुक्कुटाय जोडने से ४० अक्षर का बलि मन्त्र बनता है इसी मन्त्र से साधक को पूर्व तथा वक्ष्यमाण प्रयोगों में कुक्कुटेश्वर को बलि देनी चाहिए ॥ १६-१६ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - यूं क्षं ह्रीं कुक्कुट कुक्कुट एह्येहि इयं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय सर्वान्कामान्देहि यं कुं ह्रीं यूं नमः कुक्कुटाय (४०) ॥ १६-१६ ॥

विविध प्रयोगों में बलिदान की विधि - रात्रि में त्रिमधुर (घी दूध शक्कर) मिश्रित लावाओं की बलि देकर साधक सारे विश्व को वश में कर लेता है ॥ २० ॥

तीन दिन पर्यन्त भात की बलि देने से राजा वशीभूत हो जाता है । दुग्धमिश्रित गैंहू के आटे का मालपूआ बनाना चाहिए, उसमें घी और कपूर मिला कर तीन दिन पर्यन्त रात्रि में बलि देने से साधक सुखी हो जाता है तथा जगत् को वश में कर लेता है ॥ २०-२२ ॥

सहस्रसंख्यैः प्रत्येकं पूजयित्वा जपेन्मनुम् ।
सहस्रं निशि सप्ताहं यमुद्दिश्य जनं सुधीः ॥ २३ ॥
स याति दासतां तस्य मनो वचनकर्मभिः ।
छागलाबकयोर्मांसैः सप्ताहं वितरेद् बलिम् ॥ २४ ॥
सहस्रं प्रत्यहं जप्त्वा वशयेदखिलं जगत् ।
नृपोत्थिते सपत्नोत्थे भये जाते च संकटे ॥ २५ ॥
आपद्यपि तथा न्यस्यां बलिं दद्यात्सुखाप्तये ।
गोपनीयो विधिरयं बलेः कथ्यो न दुर्मतौ ॥ २६ ॥
मुक्तकेशउदावक्त्रो जपेद् भानुसहस्रकम् ।
प्रत्यहं वसुघस्रान्तं यमुद्दिश्याधियामिनि ॥ २७ ॥
तमाकर्षति दूरस्थमपि किं निकटस्थितम् ।
जातीफलैलाः सञ्चूर्ण्य कर्पूरं मध्यतः क्षिपेत् ॥ २८ ॥
अभिमन्त्र्यार्कसाहस्रं सिन्दूरराजसायुतम् ।
ऊष्णीकृत्याग्नितापेन क्लेदयेद् गाङ्गपाथसा ॥ २९ ॥

वसुघस्रान्तम् अष्टदिनपर्यन्तम् । अधियामिनि रात्रौ ॥ २७ ॥ * ॥ २८–२९ ॥

एक एक हजार कनेर के फूल, बिल्वपत्र तथा सुगन्धित पीले फूलों से पूजन कर एक सप्ताह पर्यन्त रात्रि में एक एक हजार इस मन्त्र का जप करना चाहिए । साधक जिस व्यक्ति का मन में ध्यान कर यह प्रयोग करता है वह व्यक्ति मनसा वचसा और कर्मणा उसके वश में हो जाता है ॥ २२-२४ ॥

प्रतिदिन मूलमन्त्र का एक एक हजार जप एक सप्ताह पर्यन्त कर बकरा और लावक (गौरेया) पक्षी के मांस की बलि देने से साधक सारे जगत् को अपने वश में कर लेता है ॥ २३-२५ ॥

राजभय, शत्रुभय, संकट या अन्य आपत्ति प्राप्त होने पर सुख प्राप्ति हेतु इस प्रकार की बलि देनी चाहिए । बलिदान के लिए बताई गई यह विधि अत्यन्त गोपनीय है इसे दुष्टों को नहीं बताना चाहिए ॥ २५-२६ ॥

रात्रि के समय शिखा खोल कर उत्तराभिमुख हो कर जो साधक जिस व्यक्ति का ध्यान कर लगातार ८ दिन तक प्रतिदिन १२ हजार की संख्या मे जप करता है वह व्यक्ति चाहे दूर हो अथवा सन्निकट अवश्य ही साधक के वश में हो जाता है ॥ २७-२८ ॥

जायफल और इलायची को एक में पीस कर, उसमें कपूर और सिन्दूर मिला कर बारह हजार मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित कर आग पर तपावे । फिर

स्थापयेदायसे पात्रे तत्स्पृष्टस्तम्भितो भवेत् ।

शत्रूच्चाटनं प्रयोगान्तरकथनम्

कर्मारसद्मनो वह्निमानीयायसभाजने ॥ ३० ॥
स्थापयित्वेन्धयेत् काष्ठैः करवीरसमुद्भवैः ।
जुहुयात्तत्र धत्तूरबीजानि शतसंख्यया ॥ ३१ ॥
सिद्धार्थतैललिप्तानि विषकर्णयुतानि च ।
सप्ताह एवं कृत्वारिं स्थानादुच्चाटयेद् ध्रुवम् ॥ ३२ ॥
पक्षं देशान्तरगतं मासं सम्प्रापयेन्मृतिम् ।

प्रयोगान्तराणि

तालपत्रं नराकारं कृत्वात्र स्थापयेदसून् ॥ ३३ ॥
जपेदष्टसहस्रं तत्तीक्ष्णतैलविलेपितम् ।
तस्य खण्डानि पञ्चाशत् कृत्वा पितृवनोत्थिते ॥ ३४ ॥

प्रयोगान्तरमाह – **कर्मरेति** । लोहकारकगृहाद् वह्निमानीय । लौहपात्रे संस्थाप्य करवीरकाष्ठैः संदीप्य तत्र सर्षपतैलाक्तानि विषचूर्णयुतानि धत्तूरबीजानि शतं शतं सप्ताहं हुत्वा शत्रुमुच्चाटयेत् ॥ ३०–३२ ॥ एवं पक्षकृत्यां तं दशान्तरं नयेत् । मासकृत्वा मारयत् । प्रयोगान्तरमाह – **तालेति** । नराकारं तालपत्रं कृत्वा तत्र शत्रोः प्राणान् संस्थाप्य भल्लातकतैलेन विलिप्य अष्टाधिकं सहस्रमभिमन्त्र्य तस्य पञ्चाशत्खण्डानि कृत्वा धत्तूरकाष्ठदीप्ते श्मशानाग्नौ त्रिदिनं हुत्वारिं मारयेन्मोहयेच्च ॥ ३३ ॥ * ॥ ३४–३५ ॥

गङ्गाजल से आर्द्र कर लोहपात्र में रखना चाहिए तो उसे स्पर्श करने वाला व्यक्ति स्तम्भित हो जाता है ॥ २८-३० ॥

लोहार के घर से अग्नि लाकर, लोह पात्र में रखकर, कनेर की लकड़ी से उसे प्रज्वलित कर, उसमें सरसों के तेल तथा विषचूर्ण मिश्रित धतूरे के बीजों से १०० आहुतियाँ देनी चाहिए । एक सप्ताह पर्यन्त इस प्रयोग को करने से शत्रु का अपने स्थान से निश्चय ही उच्चाटन हो जाता है ॥ ३०-३२ ॥

निरन्तर पन्द्रह दिन पर्यन्त इस प्रयोग को करने से शत्रु देश छोड़ कर भाग जाता है और एक मास तक इस प्रयोग को करने से वह मृत्यु को प्राप्त करता है ॥ ३३ ॥

ताड़ पत्र से मनुष्य की आकृति बना कर, उसमें शत्रु की प्राण प्रतिष्ठा कर, भिलावे के तेल का लेप कर आठ हजार मन्त्र का जप करे । फिर उसका ५०

उन्मत्ततरुसन्दीप्ते जुहुयाज्जातवेदसि ।
एवं प्रकुर्वंस्त्रिदिनं मारयेन्मोहयेदरिम् ॥ ३५ ॥
साध्यर्क्षतरुकाष्ठेन कृत्वा पुत्तलिकां शुभाम् ।
तस्यामसून् प्रतिष्ठाप्य सहस्रं प्रजपेन्मनुम् ॥ ३६ ॥
चिताकाष्ठस्य कीलेन तां स्पृष्ट्वा पितृकानने ।
छिन्द्याद्यदङ्गं शस्त्रेण तदङ्गं तस्य नश्यति ॥ ३७ ॥
वैरिमूत्रयुतां मृत्स्नां तत्पादरजसा सह ।
कुलालमृद्युतां कृत्वा पुत्तलीं रचयेत्तथा ॥ ३८ ॥
तस्या हृदि पदे मूर्ध्नि नामकर्मान्वितं मनुम् ।
लिखेच्छ्मशानजाङ्गारैरसून् संस्थापयेत्ततः ॥ ३९ ॥
जप्तां सहस्रं मन्त्रेण तीक्ष्णतैलविलेपिताम् ।
शस्त्रेण शतधा कृत्वा जुहुयात्पितृभूवसौ ॥ ४० ॥
विभीतकाष्ठसन्दीप्ते यमाशावदनो निशि ।
शत्रोर्निधनतारायां कृत्वैवं मारयेदरिम् ॥ ४१ ॥

प्रयोगान्तरमाह – **साध्येति** । नक्षत्रवृक्षा उक्ताः । चिताकाष्ठकीलेन तां पुत्तलीं स्पृष्ट्वा मनुं जपेदिति पूर्वेण सम्बधः ॥ ३६ ॥ तस्याः प्रतिमाया यदङ्गं शस्त्रेण च्छिन्द्यात्तदङ्गं तस्य शत्रोर्नश्यति ॥ ३७ ॥ प्रयोगान्तरमाह – **वैरीति** ॥ ३८–३९ ॥ पितृभूवसौ श्मशानाग्नौ ॥ ४० ॥ यमाशावदनो दक्षिणदिङ्मुखः । निधनतारा जन्मनक्षत्रात् सप्तमनक्षत्रं षोडशं पञ्चविंशं च ॥ ४१ ॥

टुकड़ा कर धतूरे की लकड़ी से प्रज्वलित श्मशान की अग्नि में होम करना चाहिए । इस प्रकार निरन्तर ३ दिन पर्यन्त करते रहने से साधक शत्रु को मार देता है अथवा उसे मोहित कर लेता है (अथवा पागल बना देता है) ॥ ३३-३५ ॥

साध्य व्यक्ति के जन्म नक्षत्र के वृक्ष की लकड़ी (द्र० ६. ५२) की सुन्दर प्रतिमा बना कर, उसमें शत्रु की प्राण प्रतिष्ठा कर, चिता के काष्ठ की बनी कील से उसे स्पर्श करते हुये श्मशान में एक हजार जप करना चाहिए । फिर उस प्रतिमा का जो अङ्ग शस्त्र से काटा जाता है शत्रु का वही अङ्ग नष्ट हो जाता है ॥ ३६-३७॥

शत्रु के मूत्र से मिली मिट्टी और उसके पैर की मिट्टी दोनों को कुम्भकार की मिट्टी में मिला कर पुतली बनानी चाहिए, उस पुतली के हृदय, पैर और शिर पर क्रमशः साध्य का नाम और कर्म का नाम मूल मन्त्र पढ़कर चिता के कोयले से लिखाना चाहिए । फिर उसमें प्राण प्रतिष्ठा कर भिलावे के तेल का लेप कर एक हजार की संख्या में जप करने के बाद शस्त्र से उस पुतली के १०० टुकडे कर, बहेड़ा की लकड़ी से

शत्रोर्गोमयमूर्तिकरणप्रयोगः

निधाय गोमयं भूमौ प्रकुर्यात्प्रतिमां रिपोः ।
तालपत्रे समालिख्यं मनुं नाम्ना विदर्भितम् ॥ ४२ ॥
तत्पत्रं निक्षिपेत्तस्या हृदि तत्प्रतिमोपरि ।
मृज्जं वा राजतं कुम्भं गोमयोदकपूरितम् ॥ ४३ ॥
मनुं नामयुतं तालपत्रेणाढ्यं निधापयेत् ।
तदसून् स्थापयेत् कुम्भे त्रिसन्ध्यं प्रजपेन्मनुम् ॥ ४४ ॥
प्रत्यहं शतसंख्याकं छायायावद्भवेद्रिपोः ।
गोमयाम्भसि दृष्टायां तच्छायायां तु साधकः ॥ ४५ ॥

प्रयोगान्तरमाह – **निधायेति** । गोमयेन शत्रोः प्रतिमां कृत्वा नामविदर्भितं मन्त्रं तालपत्रे विलिख्य तत्तालपत्रं गोमयप्रतिमाहृदि निक्षिप्य प्रतिमोपरि रूप्यताम्रमृदामन्यतमनिर्मितं घटं संस्थाप्य गोमयोदकाभ्यामापूर्य तत्रापि नामविदर्भितं मन्त्रलेखयुतं तालपत्रं निक्षिप्य तत्र शत्रोः प्राणस्थापनं कृत्वा प्रत्यहं त्रिसन्ध्यं शतं मन्त्रं कुम्भं स्पृष्ट्वा जपेत् । यावत् शत्रोः प्रतिबिम्बं घटे दृश्यते तावत्कालं जपेत् ॥ ४२–४४ ॥ घटोदके शत्रुप्रतिबिम्बे दृष्टे घटाधःस्थाया गोमयप्रतिमाया यदङ्गं छिद्यते तद्रिपोर्नश्यति । हृदिगले विच्छिन्ने तन्मृतिः ॥ ४५ ॥

प्रज्वलित श्मशनाग्नि में रात्रि के समय दक्षिणाभिमुख हो होम करना चाहिए। यह कर्म शत्रु के निधन नक्षत्र (जन्म नक्षत्र से ७वें, १६वें अथवा २५वें नक्षत्र) के दिन करे तो वह शत्रु मर जाता है ॥ ३८-४१ ॥

भूमि में गोमय रखकर उससे शत्रु की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए । फिर ताड़पत्र पर शत्रु के नाम के सहित मूल मन्त्र लिखकर उसे प्रतिमा के हृदय स्थान पर स्थापित कर देना चाहिए । फिर उस पर गोबर और जल से भरा हुआ मिट्टी या चाँदी का कलश रखना चाहिए ॥ ४२-४३ ॥

उसमें भी ताड़पत्र पर शत्रु के नाम के साथ मन्त्र लिखकर डाल देना चाहिए । फिर कुम्भ में शत्रु के प्राणों की प्रतिष्ठा कर प्रतिदिन तीनों काल की सन्ध्याओं में कुम्भ का स्पर्श करते हुये मूल मन्त्र का १०० बार जप करना चाहिए ॥ ४३-४४ ॥

गोबर मिले जल में शत्रु की आकृति दिखलाई पड़ते ही साधक कुम्भ के नीचे बनी उसकी प्रतिमा का स्वाभिलषित अङ्ग शस्त्र से काट देवे । ऐसा करने से शत्रु का वह अङ्ग नष्ट हो जाता है ॥ ४५-४६ ॥

अधस्थायाः प्रतिकृतेश्छिन्द्यादङ्गमभीप्सितम् ।
शस्त्रेण तस्य नाशाय मृतये हृदयं गलम् ॥ ४६ ॥
प्रविद्धे कण्टकैर्मूर्ध्नि शिरो रोगो भवेद्रिपोः ।
आधयो हृदये विद्धे पदोः पादव्यथा भवेत् ॥ ४७ ॥
दारुणा कुक्कुटं कृत्वा तत्रास्य स्थापयेदसून् ।
ते स्पृष्ट्वा पूर्ववद् ध्यात्वा जपेद्रविसहस्रकम् ॥ ४८ ॥
उपचारैः समभ्यर्च्य च्छादयेद्रक्तवाससा ।
रथे संस्थाप्य तं देवं दिक्षु योधान्निधापयेत् ॥ ४६ ॥
चतुरो वर्म संवीतानश्वारूढानुदायुधान् ।
तत्संयुतो रणे गच्छेज्जेतुं बलवतो रिपून् ॥ ५० ॥
वीराढ्यं कुक्कुटं दृष्ट्वा पलायन्ते रणेऽरयः ।
भीता दशदिशः सर्वे हर्यक्षं करिणो यथा ॥ ५१ ॥
ताम्रचूडस्य मन्त्रेण मोदकाद्यभिमन्त्रितम् ।
यस्मै ददीत भक्षाय स वशो मन्त्रिणो भवेत् ॥ ५२ ॥

प्रतिमामूर्ध्नि कंटकविद्धे शिरोरोगः हृदिविद्धे मनःपीडा पादयुग्मे कंटकविद्धे पादरोग इत्यादि० ॥ ४६–४७ ॥ दारुणत्यारभ्य हर्यक्षकरिणो यथेत्यन्तमेकः प्रयोगः ॥ ४८ ॥ * ॥ ४६–५० ॥ हर्यक्षं केसरी ॥ ५१ ॥ * ॥ ५२ ॥

किं बहुना प्रतिमा का हृदय, गला काटने पर शत्रु मर जाता हे । प्रतिमा के शिर में काँटा चुभाने से शत्रु के शिर में भी पीड़ा होती है । हृदय में काँटा चुभाने से मानसिक पीड़ा तथा पैर में काँटा चुभाने से पैर में दर्द होता है ॥ ४६-४७ ॥

लकड़ी का कुक्कुट बनाकर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए । फिर उसका स्पर्श कर पूर्ववत् (द्र० १६. ८) ध्यान कर १२ हजार जप करना चाहिए । फिर विविध उपचारों से उन चरणायुध का पूजन कर लाल कपड़े से उसे ढँक देना चाहिए । फिर देव को रथ में स्थापित कर उनके चारों ओर कवचधारी अश्वारोही ४ योद्धाओं को नियुक्त कर उसे साथ लेकर शत्रु को जीतने के लिए रणभूमि में जाना चाहिए ॥ ४८-५० ॥

फिर तो वीरों से घिरे उस कुक्कुट को देखते ही शत्रु सेना भयभीत होकर चारों ओर भाग जाती है जैसे सिंह को देख कर हाथियों के झुण्ड भाग जाता है ॥ ५१ ॥

ताम्रचूड मन्त्र से अभिमन्त्रित मोदक जिसे दिया जाय वह मालिक के वश में हो जाता है । गोरोचन, चन्दन, कुंकुम, कस्तूरी एवं कर्पूर से बने चन्दन का

अष्टोत्तरं शतं जप्त्वा रोचनाचन्दनादिभिः ।
विदधत्तिलकं भाले दर्शनाद्वशयेज्जनान् ॥ ५३ ॥

उपासकसमृद्धिदः शास्तृमन्त्रस्तद्विधिश्च

अथ वक्ष्ये शास्तृमन्त्रमुपासकसमृद्धिदम् ।
शास्तारं मृगयेत्युक्त्वा श्रान्तमश्वाग्निरूयुतः ॥ ५४ ॥
ढंगणावृतमित्युक्त्वा पानीयार्थं वना च दे ।
त्यशास्त्रेते ततो रैवते नमो मन्त्र ईरितः ॥ ५५ ॥
द्वात्रिंशदर्णोऽस्य ऋषी रैवतः परिकीर्तितः ।
पंक्तिश्छन्दो देवता तु महाशास्ताऽखिलेष्टदः ॥ ५६ ॥
पादैः सर्वेण पञ्चाङ्गं कृत्वात्मनि विभुं स्मरेत् ।
साध्यं स्वपाशेन विबन्ध्य गाढं
निपातयन्तं खलु साधकस्य ।
पादाब्जयोर्दण्डधरं त्रिनेत्रं
भजेत शास्तारमभीष्टसिद्ध्यै ॥ ५७ ॥

क्षदनादिभिरित्यादि शब्दात् कुंकुम कस्तूरी कर्पूरज मदाः ॥ ५३ ॥ शास्तृमन्त्रमाह – **अथेति** । शास्ता शम्भोर्गणविशेषः । अग्निः रेफः ऊयुतः रू ॥ ५४ ॥ यथा – शास्तारं मृगया श्रान्तमश्वारूढं गणावृतम् । पानीयार्थं वनादेत्य शास्त्रे ते रैवते नम इति श्लोकरूपो मन्त्रः ॥ ५५ ॥ * ॥ ६६–६१ ॥

इस मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित कर तिलक लगाने से उसे देखने वाले वशीभूत हो जाते हैं ॥ ५२-५३ ॥

अब उपासकों को समृद्धि प्रदान करने वाला **शास्ता मन्त्र** को कहता हूँ -

उद्धार - 'शास्तारं मृगया' कहकर 'श्रान्तमश्वा' कहे, फिर ऊकार युक्त अग्नि (र) अर्थात् रू, फिर 'ढं गणावृतम्', फिर 'पानीयार्थं वना', फिर 'देत्य शास्त्रे ते', फिर 'रैवते नमः' कहने से मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ ५४-५५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - शास्तारं मृगयामश्वारूढं गणावृतम् ।
पानीयार्थं वनादेत्य शास्त्रे ते रेवते नमः ॥ ५४-५५ ॥

यह ३२ अक्षरों को मन्त्र है, इसके ऋषि रैवत माने गये है, इसका छन्द पङ्क्ति है तथा सर्वाभीष्टदायक महाशास्ता इसके देवता हैं ॥ ५६ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीशास्तामन्त्रस्य रैवतऋषिः पंक्तिछन्दः महाशास्तादेवता स्वकीयाऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ ५६ ॥

उक्त श्लोक के एक एक चरणों से तथा समस्त मन्त्र से पञ्चाङ्ग न्यास करे । फिर अपनी आत्मा में शास्ता प्रभु का इस प्रकार ध्यान करे । जो

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः।
शैवे पीठे यजेद्देवमादावङ्गानि पूजयेत्॥ ५८॥
दलेष्वष्टसु गोप्तारं पिङ्गलाक्षं ततः परम्।
वीरसेनं शाम्भवं च त्रिनेत्रं शूलिनं तथा॥ ५९॥
दक्षं च भीमरूपं च दिक्पालानस्त्रसंयुतान्।
एवं सिद्धो मनुः सर्वमभीष्टं मन्त्रिणेऽर्पयेत्॥ ६०॥

साध्य को अपने पाश में जकड़ कर साधक के पैरों में गिराने वाले हैं ऐसे दण्डधारी त्रिनेत्र शास्ता प्रभु का अभीष्टसिद्धि हेतु मैं ध्यान करता हूँ ॥ ५७ ॥

विमर्श - पञ्चाङ्गन्यास - शस्तारं मृगयाश्रान्तं हृदयाय नमः, अश्वारूढं गणावृत् शिरसे स्वाहा, पानीयार्थं वनादेत्य शिखायै वषट्, शास्त्रे ते रैवते नमः कवचाय हुम्, शस्तारं ... रैवते नमः अस्त्राय फट् ॥ ५७॥

इस मन्त्र का एक लाख जप तथा तिलों से उसका दशांश होम करना चाहिए । शैव पीठ पर शास्ता का पूजन करना चाहिए । आवरण पूजा में सर्वप्रथम पञ्चाङ्ग का पूजन, फिर अष्टदल में गोप्ता, पिंगलाक्ष, वीरसेन, शाम्भव, त्रिनेत्र, शूली, दक्ष एवं भीमरूप का पूजन करे । तदनन्तर आयुधों के साथ दिक्पालों का पूजन करना चाहिए । इस विधि से सिद्ध किया गया मन्त्र साधक को समस्त अभीष्टफल प्रदान करता है ॥ ५८-६० ॥

विमर्श - यन्त्र - वृत्ताकार कर्णिका, अष्टदल एवं भूपुर युक्त यन्त्र पर महाशास्ता का पूजन करना चाहिए । इनका पूजन मन्त्र चरणायुध पूजन के समान है । महाशास्ता की पीठ पूजा विधि - पूर्वोक्त है । द्र० १६. २२-२५ की टीका ।

आवरणपूजाविधि - प्रथम आग्नेयादि कोणों में पञ्चाङ्ग पूजा करनी चाहिए । यथा - शस्तारं मृगयाश्रान्तं हृदयाय नमः, आग्नेये,
अश्वारूढं गणावृतं शिरसे स्वाहा, नैर्ऋत्ये,
पानीयार्थं वनादेत्य शिखायै वषट्, वायव्ये,
शास्त्रे ते रैवते नमः, ऐशान्ये,
शास्तारं ... शास्त्रे ते रैवते नमः, चतुर्दिक्षु ।

इसके बाद अष्टदल में पूर्वादिदल के क्रम से योद्धा आदि की पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ गोप्त्रे नमः पूर्वदले, ॐ पिङ्गलाय नमः आग्नेयदले,
ॐ वीरसेनाय नमः दक्षिणदले, ॐ शाम्भवाय नमः नैर्ऋत्यदले,
ॐ त्रिनेत्राय नमः पश्चिमदले, ॐ शूलिने नमः वायव्यदले,
ॐ दक्षाय नमः उत्तरदले, ॐ भीमरूपाय नमः ऐशान्ये,

मध्याह्नेञ्जलिना तस्मै जलं दत्वा जलार्थिने।
गोप्त्रादिभ्यस्तद् गणेभ्यो दद्यादष्टौ जलाञ्जलीन्॥ ६१॥
जलसन्तर्पितः शास्ता सगणोऽभीष्टदो भवेत्।
निशि तस्मै बलिं दद्याद् गायत्र्या चाभिमन्त्रितम्॥ ६२॥
तदग्रे प्रजपेन्मूलमष्टोत्तरशतं सुधीः।
भूताधिपाय शब्दान्ते विद्महे पदमीरयेत्॥ ६३॥
महादेवाय च ततो धीमहीति पदं वदेत्।
तन्नः शास्ता प्रचो वर्णा दयादिति च कीर्तयेत्॥ ६४॥
गायत्र्येषोदिता शास्तुः सर्वाभीष्टप्रदा नृणाम्।

पार्थिवलिङ्गविधानं बालगणेश्वरमन्त्रश्च

अथ पार्थिवलिङ्गस्य विधानमभिधीयते॥ ६५॥
स्नातो नित्यं विधायादौ गत्वा शुद्धां भुवं सुधीः।
उपरिष्टामपाकृत्य षडर्णेनाधिमन्त्रयेत्॥ ६६॥

गायत्र्या भूताधिपायेत्यादिकया ॥ ६२ ॥ * ॥ ६३–६५ ॥ पार्थिवलिङ्ग–विधानमाह – **स्नात्यादि** ॥ ६६ ॥

इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि सायुध दिक्पालों की पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पूर्ववत् पूजन करना चाहिए (द्र०. १६. १०-१२) । इस प्रकार आवरण पूजा पूर्ण करनी चाहिए ॥ ५८-६० ॥

मध्याह्न काल होने पर पिपासित शास्ता देव को अञ्जलि से जल देना चाहिए। फिर गोप्ता आदि उनके ८ गणों को भी ८ अञ्जलि जल प्रदान करना चाहिए । इस प्रकार जल से तर्पित गणों के सहित शास्ता अभीष्ट प्रदान करते हैं ॥ ६१ ॥

रात्रि के समय वक्ष्यमाण शास्ता गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित बलि भी देनी चाहिए । इसके बाद बुद्धिमान साधक को मूल मन्त्र का १०८ की संख्या में जप करना चाहिए । 'भूताधिपाय' के बाद 'विद्महे', फिर 'महादेवाय' के बाद 'धीमहि' पद बोलना चाहिए । तदनन्तर 'तन्नः शास्ता प्रचोदयात्' कहना चाहिए । इस प्रकार का महाशस्ता गायत्री मन्त्र समस्त अभीष्टदायक कहा गया है॥ ६२-६५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - भूताधियाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नः शास्ता प्रचोदयात् ॥ ६२-६४ ॥

अब **पार्थिवेश्वर के पूजन की विधि** कहता हूँ -

बुद्धिमान् साधक स्नान आदि नित्य क्रिया करने के पश्चात् किसी शुद्धभूमि पर जा कर ऊपर से ८ अंगुल मिट्टी हटाकर वक्ष्यमाण षडक्षर मन्त्र से भूमि

आकाशः पृथिवीशेषस्थितो बिन्दुसमन्वितः।
पृथिवी तु चतुर्थ्यन्ता नमोऽन्तः स्यात्षडर्णकः॥ ६७॥
ततो मृदमुपादाय कृत्वा निःशर्करां ततः।
पात्रे निदध्यात् संशुद्धे प्रत्यहं पूजनाय ताम्॥ ६८॥
सुदिने सद्गुरोर्मन्त्रौ गणेश्वरकुमारयोः।
हराद्यांश्च मनून्सप्त गृह्णीयाद्यागसिद्धये॥ ६९॥
अथार्चनं शुभे घस्त्रे आरभेतेष्टसिद्धये।
कृत नित्यक्रियः शुद्धः प्रदायार्घ्यं विवस्वते॥ ७०॥
मृदमादाय तोयेन सुधया मन्त्रितेन च।
आसिञ्च्य पिण्डये स्वेष्टमानां पात्रे निधापयेत्॥ ७१॥
ततः कालमनुस्मृत्य कामनामपि हृद्गताम्।
लिङ्गानि पार्थिवानीह पूजयेऽमुकसंख्यया॥ ७२॥

षडर्णमाह – **आकाश** इति । आकाशो हः । पृथिवीशेषस्थितः लआयुतः बिन्दुयुतश्च हलां । चतुर्थ्यन्ता पृथिवी पृथिव्य इति ॥ ६७ ॥ * ॥ ६८ ॥ गणेश्वरकुमारयोर्मन्त्रौ वक्ष्यमाणौ । हराद्यांश्च सप्तमन्त्रान्वक्ष्यमाणान् ॥ ६९॥ विवस्वते सूर्यायार्घ्यं पूर्वोक्तम् ॥ ७० ॥ सुधया वमिति बीजमन्त्रितजलेन मृदमासिञ्च्येत्यन्वयः ॥ ७१ ॥ * ॥ ७२–७३ ॥

को आमन्त्रित करे । पृथ्वी (ल), शेष (आ) एवं बिन्दु से युक्त आकाश (ह) अर्थात् (ह्लां), फिर पृथ्वी का चतुर्थ्यन्त पृथिव्यै, इसके बाद नमः लगाने से षडक्षर मन्त्र निष्पन्न होता है. ॥ ६५-६७ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - ह्लां पृथिव्यै नमः ॥ ६५-६७ ॥

इस प्रकार मिट्टी लेकर उसे कूट पीसकर किसी ताम्र पात्र में रख लेना चाहिए । पार्थिव पूजन के लिए साधक को किसी उत्तम मूहूर्त में सद्गुरु के पास जा कर गणेश, कुमार तथा हर आदि के वक्ष्यमाण ७ मन्त्रों की दीक्षा लेनी चाहिए ॥ ६८-६९ ॥

किसी शुभ मुहूर्त्त में इष्ट सिद्धि के लिए पार्थिवेश्वर का पूजन प्रारम्भ करना चाहिए। नित्य कर्म करने के बाद शुद्ध होकर पार्थिव पूजन से पहले साधक को पूर्वोक्त विधि से सूर्य नारायण को अर्घ्य देना चाहिए (द्र० १५. ३२-४४)। फिर मिट्टी ले कर सुधा बीज (वं) से अभिमन्त्रित जल से आर्द्र कर अपेक्षित मात्रा में (अंगुष्ठ मात्र) मिट्टी का गोला बना बना कर किसी पात्र में रख देवे ॥ ७०-७१ ॥

उसके बाद देश काल और मानसिक कामना का स्मरण करते हुये 'अमुक संख्यकं पार्थिवशिवलिङ्गमर्चयिष्ये' इस प्रकार का संकल्प करना चाहिए ॥ ७२ ॥

संकल्प्यैवं मृदः पिण्डादादायाल्पां मृदं सुधीः ।
एकादशार्णमन्त्रेण कुर्याद् बालगणेश्वरम् ॥ ७३ ॥
मायागणेशभूबीजैर्ङेन्तो गणपतिः पुटः ।
एकादशार्णमन्त्रोऽयं स्मृतो बालगणेशितुः ॥ ७४ ॥
वराभयलसत्पाणिपद्मं बालगणेश्वरम् ।
निर्माय स्थापयेत् पीठे लिङ्गानि रचयेत्ततः ॥ ७५ ॥

लिङ्गमानकथनं कुमारमन्त्रश्च

हरमन्त्रेण गृह्णीयादक्षमात्राधिकां मृदम् ।
महेश्वरस्य मन्त्रेण लिङ्गं कुर्यात्तया शुभम् ॥ ७६ ॥
अंगुष्ठमानादधिकं वितस्त्यवधिसुन्दरम् ।
पार्थिवं रचयेल्लिङ्गं न न्यूनं नाधिकं च तत् ॥ ७७ ॥

बालगणेश्वरमन्त्रमाह – **मायेति** । माया ह्रीं । गणेश गम् । भूबीजं ग्लौं । ह्रीं गं ग्लौं गणपतये ग्लौं गं ह्रीमिति ॥ ७४ ॥ * ॥ ७५ ॥ हरमन्त्रेण – ॐ नमो हरायेति । अक्षं विभीतकफलम् । ॐ नमो महेश्वरायेति मन्त्रेण लिङ्गं कुर्यात् ॥ ७६ ॥ लिङ्गमानमाह – **अङ्गुष्ठेति** । अङ्गुष्ठादि द्वादशाङ्गुलान्तं यथेष्टं कुर्यात् ॥ ७७ ॥

विमर्श - संकल्पविधि - ॐ अद्येत्यादि देशकालो संकीर्त्यामुक गोत्रोत्पन्नोऽमुक शर्मा वर्मा गुप्ताहममुक कामनयाऽमुक कालपर्यन्तममुकसंख्यकानि पार्थिवशिवलिङ्गानि अर्चयिष्ये ॥ ७०-७२ ॥

इस प्रकार संकल्प करने के बाद साधक मिट्टी के गोले से थोड़ी मिट्टी लेकर वक्ष्यमाण एकादशाक्षर मन्त्र से बालगणेश्वर की मूर्ति बनावे ॥ ७३ ॥

बालगणेश्वर मन्त्र का उद्धार - माया (ह्रीं), फिर गणेश (गं) तथा भू बीज (ग्लौं) इन तीन बीजों से संपुटित चतुर्थ्यन्त गणपति इस प्रकार कुल ११ अक्षरों का बाल गणेश मन्त्र बनता है ॥ ७४ ॥

विमर्श - बालगणेश्वरमन्त्र का स्वरूप - 'ह्रीं गं ग्लौ गणपतये ग्लौं गं ह्रीं ॥ ७४ ॥

वर और अभय मुद्रा हाथों में धारण करने वाले गणेश्वर की मूर्ति बनाकर पूजा पीठ पर स्थापित करना चाहिए । फिर लिङ्ग निर्माण करना चाहिए ॥ ७५ ॥

हर मन्त्र (ॐ नमो हराय) से वहेड़े के फल से कुछ अधिक परिमाण की मिट्टी लेकर माहेश्वर मन्त्र (ॐ नमो महेश्वराय) मन्त्र से अंगुष्ठ मात्र से लम्बाई में अधिक तथा बितस्ति से स्वल्प (१२ अंगुल) परिमाण का सुन्दर लिङ्ग निर्माण करना चाहिए । पार्थिवेश्वर के समस्त लिङ्ग की एक समान आकृति होनी चाहिए, न्यूनाधिक नहीं ॥ ७६-७७ ॥

शूलपाणेस्तु मन्त्रेण लिङ्गं पीठे निधापयेत् ।
एवमन्यानि कुर्वीत यथा संकल्पमादरात् ॥ ७८ ॥
अवशिष्टमृदा कुर्यात्कुमारं तस्य मन्त्रतः ।
स्थापयेल्लिङ्गपंक्त्यन्ते स्वमन्त्रेणार्च्चयेच्च तम् ॥ ७६ ॥
वाग्वर्मकर्णबिन्द्वाढ्यश्चरमो मीनकेतनः ।
कुमाराय नमोन्तोऽयं गुहमन्त्रो दशाक्षरः ॥ ८० ॥
मन्त्रेणावाहयेद्देवं प्रतिलिङ्गं पिनाकिनः ।
ततो लिङ्गस्थितं ध्यायेत्सुप्रसन्नं महेश्वरम् ॥ ८१ ॥

धान्यं पूजाविधिः आवरणदेवताश्च

दक्षांकस्थं गजपतिमुखं प्रामृशन्दक्षदोष्णा
वामोरुस्थागपति तनयांके गुहं चापरेण ।
इष्टाभीतिपरकरयुगे धारयन्निन्दुकान्तिः
सोव्यादस्मांस्त्रिभुवननतो नीलकण्ठस्त्रिनेत्रः ॥ ८२ ॥

ॐ नमः शूलपाणये इति मन्त्रेण पीठे लिङ्गं स्थापयेत् ॥ ७८॥ * ॥ ७६ ॥ कुमारमन्त्रमाह – **वागिति** । वाक् ऐं । कर्णबिन्द्वाढ्यः उबिन्दुयुतः चरमः क्षः क्षुम् । मीनकेतनः क्लीं । स्पष्टमन्यत् ॥ ८० ॥ ॐ नमः पिनाकिने इति लिङ्गे शिवमावाहयेत् ॥ ८१ ॥ ध्यानमाह – **दक्षेति** । दक्षदोष्णा दक्षिणबाहुना

फिर 'ॐ शूलपाणये नमः' इस शूलपाणि मन्त्र से लिङ्ग को पीठ पर स्थापित करना चाहिए । इसी प्रकार संकल्पोक्त अन्य सभी लिङ्गों का निर्माण कर पीठ पर स्थापित करना चाहिए ॥ ७८ ॥

ऊपर बालगणेश्वर और पार्थिवेश्वर शिव लिङ्ग के निर्माण तथा पीठ पर स्थापन प्रकार कह कर कुमार रचना का प्रकार कहते हैं ।

शेष मिट्टी से वक्ष्यमामाण कुमार मन्त्र द्वारा षण्मुख कुमार का निर्माण करना चाहिए । फिर उन्हें लिङ्ग की पंक्ति के अन्त में स्थापित कर उनके मन्त्र से उनका पूजन करना चाहिए ॥ ७६ ॥

कुमार कार्तिकेय मन्त्र का उद्धार - वाग् (ऐं) वर्म (हुं) कर्ण एवं बिन्दु सहित चरम (क्षुं) फिर मीनकेतन (क्लीं) अन्त में 'कुमाराय नमः' यह १० अक्षर का कुमार मन्त्र कहा गया है ॥ ७६-८० ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - ऐं हुं क्षुं क्लीं कुमाराय नमः ॥ ७६-८० ॥

'ॐ नमः पिनाकिने' इस मन्त्र से प्रत्येक लिङ्ग में शिव का आवाहन कर लिङ्ग में स्थित प्रसन्न मुख भगवान् सदाशिव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ॥ ८१ ॥

एवं ध्यात्वा पशुपतेर्मन्त्रेण स्नापयेच्छिवम्।
शिवमन्त्रेण गन्धादीनर्पयेद्वसुरेतसे ॥ ८३ ॥
प्रागादिवामावर्तेन दिक्ष्वष्टौ परिपूजयेत्।
शर्वं भवं रुद्रमुग्रं भीमं पशुपतिं तथा ॥ ८४ ॥
महादेवमथेशानं क्रमात्क्षित्यादिमूर्तिकान्।
क्षित्यप्तेजोनिलाकाशयजमानेन्दुभास्कराः ॥ ८५ ॥
क्षित्यादयः स्युः शर्वाद्यास्तत इन्द्रादिकान्यजेत्।
धूपदीपनिवेद्यानि नमस्कारप्रदक्षिणाः ॥ ८६ ॥

दक्षिणोत्सवसङ्गस्थं गणेशं प्रामृशन् । अपरेण वामबाहुना वामोरुस्थिताया अगपतितनयायाः पार्वत्या उत्सङ्गे वर्तमानं गुहं कुमारं च प्रमृशन् । इष्टाभीती वराभये कराभ्यां दक्षवामाभ्यां धारयन् ॥ ८२ ॥ ॐ नमः पशुपतये इति मन्त्रेण स्नापयेत् । ॐ नमः शिवायेति मन्त्रेण वह्निरेतसे शंकरायगन्धपुष्पधूपदीप–नैवेद्यान्यर्पयेत् ॥ ८३ ॥ आवरणार्चनमाह – **प्रागादीति** । क्षित्यादिमूर्तिकान् शर्वादीन् । प्रागादिषु च वामावर्तेन पूजयेत् । क्षित्यादीनाह – **क्षित्यप्तेज** इत्यादि। यथा – शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः, पूर्वे। भवाय जलमूर्तये नमः, ईशाने। रूद्राय तेजोमूर्तये नमः, उत्तरे। उग्राय वायुमूर्तये नमो वायौ। भीमायाकाशमूर्तये नमः, पश्चिमे। पशुपतये, यजामानमूर्तये नमो नैर्ऋत्ये। महादेवाय चन्द्रमूर्तये नमो दक्षिणे। ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः, आग्नेये इति ॥ ८४ ॥ * ॥ ८५–८६ ॥

दाहिनी गोद में स्थित गणपति के मुख को अपनी दाहिनी भुजा से तथा वामाङ्ग मे विराजमान पार्वती की गोद में बैठे कुमार को अपनी बायीं भुजा से स्पर्श करते हुये अन्य दोनों हाथों में वर एवं अभयमुद्रा धारण किए हुये, चन्द्रमा जैसी गौर आभा वाले, त्रिलोक पूजित, त्रिनेत्र नीलकण्ठ भगवान् सदाशिव हमारी रक्षा करें ॥ ८२ ॥

इस प्रकार ध्यान कर पशुपति मन्त्र - 'ॐ नमः पशुपतये नमः' इस मन्त्र से शिव को स्नान कराना चाहिए । तदनन्तर - 'ॐ नमः शिवाय' इस शिवमन्त्र से गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, एवं नैवेद्य आदि उपचारों से भगवान् सदाशिव का पूजन करना चाहिए ॥ ८३ ॥

पूर्वादि ८ दिशाओं में वामावर्त्त के क्रम से क्षित्यादि मूर्तियों वाले शर्व आदि ८ देवताओं का पूजन करना चाहिए ।

१. शर्व, २. भव, ३. रुद्र, ४. उग्र, ५. भीम, ६. पशुपति, ७. महादेव एवं ८. ईशान ये क्रमशः १. क्षिति, २. आप, ३. तेज, ४. अनिल, ५. आकाश, ६. यजमान, ७. इन्द्र और ८. भास्कर की मूर्तियां हैं । इनके पूजन के पश्चात् इन्द्रादि दिक्पालों का पूजन करना चाहिए ॥ ८४-८६ ॥

जपं च कृत्वा विसृजेन्महादेवस्य मन्त्रतः ।

हरादिमन्त्रकथनम्

तारनत्यादिका ङेन्ता हराद्या मनवोद्रयः ॥ ८७ ॥

जपं कृत्वा ॐ नमो महादेवायेति विसृजेत् । हरादि मन्त्रानाह – **तारेति** । प्रणव नम आद्याश्चतुर्थ्यन्ता हराद्याः अद्रयः सप्तसंख्याकामन्त्राः ॐ नमो हरायेत्यादयो मयोक्ताः ॥ ८७ ॥ एकमेकं संपूज्यापरं पूजयेत् । अल्पकाले

विमर्श – श्लोक १६. ८२ में वर्णित पार्थिव शिव का ध्यान कर पाद्यादि उपचारों से पुष्पाञ्जलि पर्यन्त विधिवत् लिङ्ग पूजन कर आवरण पूजा करनी चाहिए । आवरण पूजा में पूर्वादि दिशाओं में वामावर्त क्रम से शर्वादि अष्ट मूर्तियों की पूजा करनी चाहिए ।

आवरण पूजा - ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः पूर्वे,
ॐ भवाय जलमूर्तये नमः ईशाने, ॐ रुद्राय तेजोमूर्तये नमः उत्तरे,
ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः वायव्ये, ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नमः पश्चिमे,
ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः नैर्ऋत्ये, ॐ महादेवाय चन्द्रमूर्तये नमः दक्षिणे,
ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः आग्नेये,

तत्पश्चात् इन्द्रादि दिक्पालों का पूर्वादि क्रम से पूर्ववत् पूजन करना चाहिए (द्र० १६. १२ की टीका) ॥ ८६ ॥

अब **उत्तरपूजा तथा विसर्जन विधि** कहते है - आवरण पूजा के बाद धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार एवं प्रदक्षिणा आदि करनी चाहिए । फिर सदाशिव मन्त्र (ॐ नमः शिवाय) का जप कर महादेव मन्त्र (ॐ नमो महादेवाय) से विर्सजन करना चाहिए ॥ ८६-८७ ॥

विमर्श - विनियोग - ॐ अस्य श्रीसदाशिवमन्त्रस्य वामदेवऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः श्रीसदाशिवो देवता ॐ बीजं नमः शक्तिः शिवायेति कीलकं आत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास - ॐ वामदेवाय ऋषये नमः शिरसि,
ॐ पङ्क्तिश्छन्दसे नमः मुखे, ॐ श्रीसदाशिवदेवतायै नमः हृदि
ॐ बीजाय नमः गुह्ये ॐ नमः शक्तये नमः पादयोः
ॐ शिवाय कीलकाय नमः सर्वाङ्गे ।

कराङ्गन्यास - ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ नं तर्जनीभ्यां नमः,
ॐ मं मध्यमाभ्यां नमः ॐ शिं अनामिकाभ्यां नमः ॐ वां कनिष्ठिकाभ्यां नमः,
ॐ यं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवमेव हृदयादि न्यासं कुर्यात्,

इसके बाद सदाशिव का ध्यान इस प्रकार करे -

प्रतिलिङ्गं यजेदेवमखिलानि सहैव वा ।
पूजितौ निजमन्त्राभ्यां विसृजेद्गणराड्गुहौ ॥ ८८ ॥
धनपुत्रादिकामैस्तु शिवोर्च्यः प्रोक्तलक्षणः ।
विद्याकामैश्चिन्तनीयः परशुं हरिणं वरम् ॥ ८६ ॥
ज्ञानमुद्रां दधद्धस्तैर्वटमूलमुपाश्रितः ।
पुंसोर्विरुद्धयोः सन्धौ कुर्याल्लिङ्गानि साधकः ॥ ६० ॥

बहुकरणपक्षे बहूनि सहैव पूजयेत् । गणेशागुहौ स्वमन्त्राभ्याग्ने वाखिलोपचारैः संपूज्य विसर्जयेत् ॥ ८८ ॥ कामनाभेदेन ध्यानान्याह – **परशुमिति** । वटमूलाश्रितो दक्षिणामूर्तिः । वरज्ञानमुद्रे दक्षयोः । परशुहरिणौ वामयोः । संधौ अर्द्ध हरिहरो ध्येयः । शंखपद्मौ हरिहस्तयोः । नागशूले हरहस्तयोः । इन्द्रनीलनिभो हरिः शरच्चन्द्रनिभो हरः ॥ ८६–६२ ॥ * ॥ ६३ ॥

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीति हस्तं प्रसन्नम् ।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥ ८६-८७ ॥

हर आदि के ७ मन्त्र - प्रारम्भ में प्रणव, फिर 'नमः', उसके बाद हर आदि का चतुर्थ्यन्त रूप (हराय) लगाने से पार्थिवेश्वर पूजन में प्रयुक्त ७ मन्त्र निष्पन्न होते हैं ॥ ८७ ॥

विमर्श – मन्त्र का स्वरूप - १. ॐ नमो हराय, २. ॐ नमो महेशाय, ३. ॐ नमः शूलपाणये, ४. ॐ नमः पिनाकिने, ५. ॐ नमः पशुपतये, ६. ॐ नमः शिवाय, ७. ॐ नमो महादेवाय ॥ ८७ ॥

प्रत्येक लिङ्ग का इस विधि से पूजन करे अथवा समस्त लिङ्गो का एक साथ उक्त विधि से पूजन करे । बालगणेश्वर एवं कुमार कार्तिकेय का भी उनके पूजन के बाद विर्सजन कर देवे ॥ ८८ ॥

अब **विविध कामनाओं के लिए विविध पार्थिवेश्वर का ध्यान** कहते हैं -

धन एवं पुत्रादि की कामना करने वाले लोगों को पूर्वोक्त विधि से शिव का पूजन करना चाहिए । विद्या की कामना वालों को वट के मूल में स्थित अपने चारों हाथों में परशु, हरिण, वर एवं ज्ञान मुद्रा धारण करने वाले **भगवान् दक्षिणामूर्ति** का ध्यान करना चाहिए ॥ ८६-६० ॥

दो विरोधियों में सन्धि कराने के लिए नदी के दोनों किनारों की मिट्टी लाकर, उससे शिव लिङ्ग बनाकर, उसका पूजन करना चाहिए । इस प्रयोग में शंख, पद्म, सर्प एवं शूलधारी **हरिहर** की उभयात्मक मूर्ति का ध्यान

नदीतीरद्वयानीतमृदा तानि च पूजयेत् ।
तत्र ध्येयो हरिहरः शंखपद्माहिशूलभृत् ॥ ६१ ॥
इन्द्रनीलशरच्चन्द्रनिभो भूषणपुञ्जवान् ।
दम्पत्योरविरोधार्थमर्द्धनारीश्वरः स्मृतः ॥ ६२ ॥
पीयूषपूर्णकलशं दधत् पाशांकुशावपि ।

उच्चाटनादिषु ध्यानकथनं

उच्चाटे मारणे द्वेषे ध्यातव्यः पुनरीदृशः ॥ ६३ ॥
कालीहस्ताम्बुजालम्बः शूलप्रोतद्विषच्च यः ।
मुण्डमालालसत्कण्ठो राववित्रासिताखिलः ॥ ६४ ॥
इत्थं तु कामनाभेदाद् ध्यानभेदाः प्रकीर्तिताः ।
पूजयेत्कार्यवशतो लक्षावधिसहस्रतः ॥ ६५ ॥

लक्षलिङ्गपूजाफलकथनम्

लक्षपार्थिवलिङ्गानां पूजनाद् भुवि मुक्तिभाक् ।
लक्षं तु गुडलिङ्गानां पूजनात् पार्थवो भवेत् ॥ ६६ ॥

उच्चाटनादिषु ध्यानमाह - कालीति । शूलप्रोतः शत्रुसमूहो येन। कार्यवशतः अल्पे कार्येऽल्पानां पूजाकार्यगौरवे बहूनां पूजाकार्या ॥ ६४ ॥ * ॥ ६५–६६ ॥

करना चाहिए ॥ ६०-६१ ॥

इन्द्रनील जैसी आभा वाले श्री हरि तथा शरच्चन्द्र के समान हर का ध्यान करना चाहिए । आभूषणों से अलंकृत इन दोनों में ऐक्य की भावना करते हुये शिवलिङ्ग पूजन करना चाहिए ॥ ६२ ॥

पति और पत्नी में अविरोध के लिए (प्रेम संपादनार्थ) अर्द्धनारीश्वर का ध्यान कर पार्थिव पूजा करनी चाहिए । जिनके चारों हाथों में क्रमशः अमृतकुम्भ, पूर्णकम्भ, पाश एवं अंकुश है ॥ ६३ ॥

उच्चाटन, मारण एवं विद्वेषण आदि में काली के कर का अवलम्बन कर अपने त्रिशूल से प्रचण्ड शत्रु समूह को छिन्न-भिन्न करते हुये मुण्डमाला धारी अपने प्रचण्ड अट्टाहस से सबको भयभीत करते हुये भगवान् सदाशिव का ध्यान कर लिङ्ग पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार विविध कामनाओं के भेद से भिन्न भिन्न ध्यान बतलाए गए हैं ॥ ६३-६५ ॥

छोटे एवं बड़े कार्यों के भेद से १००० से लेकर एक लाख तक की संख्या मे पार्थिव पूजन करना चाहिए ॥ ६५ ॥

या नारी गुडलिङ्गानि सहस्रं पूजयेत्सती।
भर्तुः सुखमखण्डं सा प्राप्यान्ते पार्वती भवेत् ॥ ९७ ॥
नवनीतस्य लिङ्गानि सम्पूज्येष्टमवाप्नुयात्।
भस्मनो गोमयस्यापि बालुकायास्तथा फलम् ॥ ९८ ॥
क्रीडन्ति पृथुका भूमौ कृत्वा लिङ्गं रजोमयम्।
पूजयन्ति विनोदेन तेऽपि स्युः क्षितिनायकाः ॥ ९९ ॥

लिङ्गपूजाया नानाफलानि

प्रातर्गोमयलिङ्गानि नित्यं यस्त्रीणि पूजयेत्।
बृहतीबिल्वयोः पत्रैर्नैवेद्यं गुडमर्पयेत् ॥ १०० ॥
एवं मासत्रयं कुर्वन्ननल्पं लभते धनम्।
एकादशैवलिङ्गानि गोमयोत्थानि यो यजेत् ॥ १०१ ॥

धनप्रापकं प्रयोगमाह – **प्रातरिति** ॥ १०० ॥ सम्पदावहं प्रयोगमाह – **एकादशेति** । प्रत्यहं कालचतुष्टये एकादशैकादश पूजयेत् ॥ १०१ ॥ * ॥ १०२–१०३ ॥

एक लाख की संख्या मे शिव लिङ्ग पूजन करने से पृथ्वी पर मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है । गुड़ निर्मित एक लाख लिङ्गों के पूजन से साधक राजा बन जाता है ॥ ९६ ॥

जो स्त्री पातिव्रत्य धर्म का पालन करते हुये गुड़ निर्मित एक हजार लिङ्गों की पूजा करती है, वह पति का सुख तथा अखण्ड सौभाग्य प्राप्त कर अन्त में पार्वती के स्वरूप में मिल जाती है ॥ ९७ ॥

नवनीत निर्मित लिगों का पूजन कर मनुष्य अभीष्ट वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है । भस्म, गोमय एवं बालुका बने लिङ्गो के पूजन का भी यही फल कहा गया है ॥ ९८ ॥

जो लड़के धूलि का लिङ्ग बनाकर उससे खेलते है एवं विनोद में उसकी पूजा करते हैं । वे इसके प्रभाव से राजा हो जाते हैं ॥ ९९ ॥

अब **धन के लिए लिङ्ग पूजन प्रयोग** कहते हैं -

जो व्यक्ति प्रातःकाल तीन महीने तक गोमय निर्मित तीन लिङ्गो का पूजन करता है और उस पर भटकटैया तथा बिल्वपत्र चढ़ाकर गुड़ का नैवेद्य अर्पित करता है वह प्रचुर संपत्ति प्राप्त करता है ॥ १००-१०१ ॥

जो व्यक्ति गोमय निर्मित एकादश लिङ्गो का छः मास पर्यन्त प्रातः, मध्याह्न सायंकाल और अर्धरात्रि - इस प्रकार काल-चतुष्टय में निरन्तर पूजन करता है

प्रातर्मध्याह्नयोः सायं निशीथे प्रतिवासरम् ।
स सर्वाः सम्पदो यायात् षण्मासा देवमाचरन् ॥ १०२ ॥
एकादश यजेन्नित्यं शालिपिष्टमयानि सः ।
लिङ्गानि मासमात्रेण सकल्मषं च यं दहेत् ॥ १०३ ॥
स्फाटिकं पूजितं लिङ्गमेनोनिकरनाशकम् ।
सर्वकामप्रदं पुंसामुदुम्बरसमुद्भवम् ॥ १०४ ॥
रेवाश्मजं सर्वसिद्धिप्रदं दुःखविनाशनम् ।
यथाकथञ्चिल्लिङ्गस्य पूजा नित्यं कृतेष्टदा ॥ १०५ ॥
यो यजेत् पिचुमन्दोत्थैः पत्रैर्गोमयजं शिवम् ।
क्रुद्धं महेश्वरं ध्यायन् स पराजयते रिपून् ॥ १०६ ॥
यो लिङ्गं पूजयेन्नित्यं शिवभक्तिपरायणः ।
मेरुतुल्योऽपि तस्याशु पापराशिर्लयं व्रजेत् ॥ १०७ ॥
दोग्धीणां तु गवां लक्षं यो दद्याद्वेदपाठिने ।
पार्थिवं योऽर्चयेल्लिङ्गं तयोर्लिङ्गार्चको वरः ॥ १०८ ॥

एनो निकरः पापौघस्तस्य नाशनम् उदुम्बरसमुद्भवताम्रमयम् ॥ १०४–१०५ ॥ पिचुमन्दो निम्बः ॥ १०६ ॥ * ॥ १०७–१०९ ॥

वह सब प्रकार की संमृद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ १०१-१०२ ॥

अब **पापराशि को नष्ट करने के लिए प्रयोग** कहते हैं -

जो साठी के चावल के पिष्ट का एकादश लिङ्ग बनाकर एक मास पर्यन्त नित्य (बिना व्यवधान के) पूजन करता है, वह अपनी सारी पापराशि जला देता है ॥ १०३॥

स्फटिक के लिङ्ग की पूजा से साधक के सभी पाप दूर हो जाते हैं । तांबे से बना लिङ्ग साधक की सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करता है । नर्मदेश्वर लिङ्ग के पूजन से सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा सारे दुःखों का नाश होता है । चाहे जिस किसी भी प्रकार से हो प्रतिदिन लिङ्ग का पूजन अभीष्टफलदायक कहा गया है ॥ १०४-१०५ ॥

जो व्यक्ति गोबर का शिवलिङ्ग बनाकर क्रुद्ध महेश्वर का ध्यान करते हुये नीम की पत्तियों से उनका पूजन करता है वह शत्रुओं का विनाश कर देता है ॥ १०६ ॥

जो व्यक्ति भगवान् शिव की भक्ति में तत्पर हो कर प्रतिदिन लिङ्ग का पूजन करता है उसके सुमेरु तुल्य भी महान् पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १०७ ॥

जो व्यक्ति वेदपाठियों को एक लाख दुधारू सवत्सा गौ का दान करे और जो दूसरा साधक पार्थिवशिवलिङ्ग का पूजन करे तो उन दोनों में पार्थिवशिवलिङ्ग का पूजन करने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ है ॥ १०८ ॥

चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पौर्णमास्यां विधुक्षये।
पयसा स्नापयेल्लिङ्गं धरादानफलं व्रजेत्॥ १०६॥
लिङ्गपूजां विधायाऽग्रे स्तोत्रं वा शतरुद्रियम्।
प्रजपेत्तन्मना भूत्वा शिवे स्वं विनिवेदयेत्॥ ११०॥
यत्संख्याकं यजेल्लिङ्गं तन्मितं होममाचरेत्।
आज्यान्वितैस्तिलैरग्नौ घृतैर्वा पायसेन वा॥ १११॥
शिवमन्त्रेण तस्यान्ते ब्राह्मणान् भोजयेच्छतम्।
एवं कृते समस्तेष्टसिद्धिर्भवति निश्चितम्॥ ११२॥

नरकरोधकरो यमधर्ममन्त्रः ध्यानादि च

प्रणवांकुशहृल्लेखापाशाः कम्भौतिकेन्दुमत्।
वैवस्वताय धर्मान्ते राजावर्णाः प्रभञ्जनः॥ ११३॥

शतरुद्रियम् । नमस्ते रुद्रमन्यव इति प्रपाठकं यजुर्वेदोक्तम् । स्वामात्मानं शिवे निवेदयेत् ॥ ११० ॥ शिवमन्त्रेण – ॐ नमः शिवायेति षडक्षरेण ॥ १११ ॥ यममन्त्रमाह – **प्रणवेति** । प्रणव ॐ । अंकुशः क्रों । हृल्लेखा ह्रीं । पाशः आम् । कं जलं वः भौतिकेन्दुमत् ऐं बिन्दुयुतं वैं । प्रभञ्जनो यः स्पष्टमन्यत् । यथा – ॐ क्रों ह्रीं आं वैं वैवस्वताय धर्मराजाय भक्तानुग्रहकृते नमः । शमनदैवतो यमदेवताकः ॥ ११३–११४ ॥

चतुर्दशी, अष्टमी, पौर्णमासी तथा अमावस्या को दुग्ध से शिव लिङ्ग को स्नान कराने वाला व्यक्ति पृथ्वीदान के समान फल प्राप्त करता है ॥ १०६ ॥

अब **लिङ्ग पूजन के बाद का उत्तर कर्म** कहते हैं –

लिङ्ग पूजा के बाद उनके संमुख यजुर्वेदोक्त 'नमस्ते रुद्र' इत्यादि किसी स्तोत्र का अथवा शतरुद्रिय इत्यादि का पाठ करना चाहिए । फिर स्वयं को भगवान् सदाशिव में अपने को समर्पित कर देना चाहिए ॥ ११० ॥

जितनी संख्या में लिङ्गो का पूजन करे, उतनी ही संख्या में घृत मिश्रित तिलों से, अथवा घृत से, अथवा मात्र पायस से, विधिवत् स्थापित अग्नि में - ॐ नमः शिवाय - इस मन्त्र से होम करना चाहिए । इसके बाद १०० ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । ऐसा करने से साधक के सभी मनोरथ निश्चित रूप से पूर्ण हो जाते हैं ॥ १११-११२ ॥

अब **धर्मराज मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

प्रणव (ॐ), अङ्कुश (क्रों), हृल्लेखा (ह्रीं), पाश (आं), कं जलबीज (वं), जो भौतिक ए और बिन्दु से युक्त हो अर्थात् (वैं) फिर 'वैवस्वताय धर्म' पद

भक्तानुग्रहवर्णान्ते कृते नम उदीरितः ।
चतुर्विंशति वर्णात्मा मन्त्रः शमनदैवतः ॥ ११४ ॥
त्रिनेत्रपञ्चबाणाद्रियुग्मार्णैरङ्गकं मनोः ।
विधाय सावधानेन मनसा चिन्तयेद्यमम् ॥ ११५ ॥
पान्थःसंयुत मेघसन्निभतनुः प्रद्योतनस्यात्मजो
नृणां पुण्यकृतां शुभावहवपुः पापीयसां दुःखकृत् ।
श्रीमद्दक्षिणदिक्पतिर्महिषगोभूषाभरालंकृतो
ध्येयः संयमिनीपतिः पितृगणस्वामी यमो दण्डभृत् ॥ ११६ ॥
अभ्यस्तोऽयं सिद्धमन्त्रः सकलापद्विनाशनः ।
नरकप्राप्तिरोद्धास्याद्रिपुभीतिनिवर्तकः ॥ ११७ ॥

षडङ्गमाह – **त्रिनेत्रेति** । ॐ क्रों ह्रीं हृदयाय नम इत्यादि० । आं वैं शिर इत्यादि० ॥ ११५ ॥ ध्यानमाह – **पान्थ** इति । सजलमेघा भः । प्रद्योतनो रविस्तस्य पुत्रः । पुण्यवतां सौम्यः । पापीयसां भीषणः ॥ ११६ ॥

के बाद 'राजा' पद तथा प्रभञ्जन (य) फिर 'भक्तानुग्रह' शब्द के बाद कृते 'नमः' जोड़ने से २४ अक्षरों का धर्मराजमन्त्र निष्पन्न हो जाता है ॥ ११३-११४ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - ॐ क्रों ह्रीं आं वैं वैवस्वताय धर्मराजाय भक्तानुग्रहकृते नमः (२४) ॥ ११३-११४ ॥

अब **षडङ्गन्यास** कहते हैं - मन्त्र के ३, २, ५, ५, अद्रि ७ एवं २ वर्णों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । तदनन्तर मनोयोग पूर्वक धर्मराज का ध्यान करना चाहिए ॥ ११५॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीधर्मराजमन्त्रस्य वामदेवऋषिर्गायत्रीच्छन्दः शमनोदेवता ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ क्रों ह्रीं हृदयाय नमः, आं वैं शिरसे स्वाहा,
वैवस्वताय शिखायै वषट्, धर्मराजाय कवचाय हुम्,
भक्तानुग्रहकृते नेत्रत्रयाय वौषट्, नमः अस्त्राय फट् ।

ध्यान - जिन सूर्यपुत्र का सजलमेघ के समान श्याम शरीर है, जो पुण्यात्माओं को सौम्य रूप में तथा पापियों को दुःखदायक भयानक रूप में दिखाई पड़ते हैं, जो ऐश्वर्य सम्पन्न दक्षिणदिशा के अधिपति, महिष पर सवारी करने वाले, अनेक आभूषणों से अलंकृत संयमिनी नगरी के तथा पितृगणों के स्वामी, प्राणियों का नियमन करने वाले तथा दण्ड धारण करने वाले हैं इस प्रकार के धर्मराज का ध्यान करना चाहिए ॥ ११६॥

अभ्यास करने से सिद्ध हुआ यह मन्त्र साधक की सारी आपत्तियों का नाश करता है, नरक जाने से रोकता है तथा शत्रुभय का निवर्तक है ॥ ११७ ॥

चित्रगुप्तमन्त्रस्तद्विधिश्च

प्रणवो हृद्विचित्राय धर्मान्ते लेखकाय च ।
यमवान्ते हिकाधीतिकारिणे पदमुच्चरेत् ॥ ११८ ॥
क्षुधातन्द्री क्रियोत्कारी वह्निनयार्घीशसंयुताः ।
यामिनीशयुता मूर्ध्नि जन्मसम्पत्पदं ततः ॥ ११६ ॥
प्रलयं कथय द्वन्द्वं स्वाहाऽष्टात्रिंशदक्षरः ।
मन्त्रोऽयं चित्रगुप्तस्य सर्वदुःखौघनाशनः ॥ १२० ॥
सप्तषण्णव वस्वङ्गैर्नेत्रार्णैर्मनुसम्भवैः ।
प्रविधाय षडङ्गानि चिन्तयेत् कर्मलेखकम् ॥ १२१ ॥

सिद्धमन्त्रत्वादृष्यादि पूजाभावः ॥ ११७ ॥ चित्रगुप्तमन्त्रमाह – **प्रणव** इति ॥ ११८ ॥ क्षुधा यः । तन्द्री मः । क्रिया लः । उत्कारी वः । वह्नी रः । यं स्वरूपम् । एते अर्घीशसंयुता ऊयुताः । मूर्ध्नि यामिनीशयुता बिन्दुयुता । तेन य्म्ल्व्र्यूं इति पिण्डम् । स्वरूपमन्यत् । मन्त्रो यथा – ॐ नमो विचित्राय धर्मलेखकाय यमवाहिकाधिकारिणे य्म्ल्व्र्यूं जन्मसंपत्प्रलयं कथय कथय स्वाहेति ॥ ११६–१२० ॥ षडङ्गमाह – **सप्तेति** । वसवोऽष्टौ । अङ्गानि षट् ॥ १२१ ॥

अब **चित्रगुप्त के मन्त्र का उद्धार** कहते हैं - प्रणव (ॐ), फिर हृद् (नमः), फिर 'विचित्राय धर्म' 'लेखकाय यमवाहिकाधिकारिणे' पद का उच्चारण करना चाहिए । फिर क्षुधा (य), तन्द्री (म), क्रिया (ल), उत्कारी (ब), वह्नि (र) एवं (य) इन वर्णों में अर्घीश एवं इन्दु लगाने से निष्पन्न य्म्ल्व्र्यूं, फिर 'जन्म सम्पत्प्रलयं' पद का उच्चारण कर २ बार कथय और अन्त में 'स्वाहा' जोड़ने से ३८ अक्षरों का चित्रगुप्त मन्त्र बनता है जो सारे पापों एवं दुःखों को दूर करने वाला है ॥ ११८-१२० ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - ॐ नमः विचित्राय धर्मलेखकाय यमवाहिकाधिकारिणे य्म्ल्व्र्यूं जन्मसंपत्प्रलयं कथय कथय स्वाहा (३८) ।

षडङ्गन्यास - मन्त्र के ७, ६, ६, ८, ६, एवं २ वर्णों से षडङ्गन्यास करना चाहिए । फिर सबके कर्मों का लेखा जोखा रखने वाले चित्रगुप्त का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ॥ १२१ ॥

विमर्श - विनियोग पूर्ववत् है केवल 'धर्मराजमन्त्रस्य' के स्थान पर 'चित्रगुप्तमन्त्रस्य' कहना चाहिए ।

षडङ्गन्यास विधि - ॐ नमः विचित्राय हृदयाय नमः,
धर्मलेखकाय शिरसे स्वाहा यमवाहिकाधिकारिणे शिखायै वषट्

किरीटोज्ज्वलं वस्त्रभूषाभिरामं
चित्रासनासीनमिन्दुप्रभास्यम् ।
नृणां पापपुण्यानि पत्रे लिखन्तं
भजे चित्रगुप्तं सखायं यमस्य॥ १२२॥
सिद्धमन्त्रमिमं पुंसां जपतां चित्रगुप्तकः।
प्रसन्नो गणयेत् पुण्यं नैव पापं कदाचन॥ १२३॥

आसुरीमन्त्रः ध्यानं तद्विधिश्च

वक्ष्याम्यथर्ववेदोक्तमासुरीविधिमुत्तमम् ।
कटुके कटुकान्ते तु पत्रेन्ते सुभगे पदम्॥ १२४॥
अनन्तसुरिरक्तेन्ते पदं स्याद्रक्तवाससे।
अथर्वणस्य दुहिते केशवोघोभगीबली॥ १२५॥
अघोरकर्मशब्दान्ते कारिके अमुकस्य च।
गतिं दहद्वयं कर्णोः पविष्टस्य गुदं दह॥ १२६॥

ध्यानमाह – **किरीटोज्ज्वलमिति** ॥ १२२ ॥ * ॥ १२३ ॥ आसुरीमन्त्रमाह – **कटुके** इति ॥ १२४ ॥ अनन्त आ केशवः अ । बली रः भगी एयुतः रे ॥ १२५ ॥ कर्ण उ ॥ १२६ ॥

य्म्ल्व्र्यूं जन्मसंपत्प्रलयं कवचाय हुम्
कथयं कथय नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ १२१ ॥

ध्यान - किरीट के प्रकाश से उज्ज्वल तथा वस्त्र एवं आभूषण से मनोहर, चन्द्रिका के समान प्रसन्न मुख वाले, विचित्र आसन पर बैठ कर सारे मनुष्यों के पाप और पुण्यों को बही के पत्र पर लिखते हुये, यमराज के सखा चित्रगुप्त का मैं भजन करता हूँ ॥ १२२ ॥

इस सिद्धमन्त्र का जप करने वाले मनुष्यों से प्रसन्न हुये चित्रगुप्त केवल उनके पुण्यों का ही लेखा जोखा करते हैं पापों का नहीं ॥ १२३ ॥

अब **अर्थववेदोक्त आसुरी विद्या के प्रयोगों की श्रेष्ठतम विधि** कहता हूँ -

'कटुके कटुक' के बाद 'पत्रे सुभगे', फिर अनन्त (आ), फिर 'सुरिरक्ते' के बाद 'रक्तवाससे अथर्वणस्य दुहिते' पद, तदनन्तर केशव (अ), फिर 'घो' भगी बली (रे) तथा 'अधोर कर्म' पद के बाद 'कारिके' 'अमुकस्य' साध्य नाम षष्ठ्यन्त, फिर 'गतिं', फिर २ बार दह, फिर कर्ण (उ), फिर 'पविष्टस्य गुदं', फिर दो बार दह, फिर 'सुप्तस्य', फिर तन्द्री (म), 'नो' तथा २ बार 'दह' फिर 'प्रबुद्ध' स बाली भृगु

दहसुप्तस्य तन्द्रीनो दहयुग्मं प्रबुद्ध च।
भृगुः सवालीहृदयं दहद्वन्द्वं हनद्वयम् ॥ १२७ ॥
पचयुग्मं तावदन्ते दहतावत् पचेति च।
यावन्मे वशमायाति वर्मास्त्रे वह्निवल्लभा ॥ १२८ ॥
तारादिरासुरीमन्त्रो दशोत्तरशताक्षरः।
अङ्गिरास्तु ऋषिश्छन्दो विराड् दुर्गासुरी मता ॥ १२९ ॥
देवता प्रणवो बीजं शक्तिः पावकनायिका।
ह्रन्नवार्णैः शिरोङ्गार्णैः शिखासप्ताक्षरैर्मता ॥ १३० ॥
वर्माष्टभिर्नेत्रमीशैरस्त्रं बाणरसाक्षरैः।
हुं फट् स्वाहेति सर्वत्र पठेदङ्गेषु साधकः ॥ १३१ ॥

तन्द्री मः, भृगुः सः, बाली ययुतः स्यः। अन्यत्स्वरूपम् । मन्त्रो यथा – ॐ कटुके कटुकपत्रे सुभगे आसुरिरक्ते रक्तवाससे अथर्वणस्य दुहिते अघोरे अघोर–कर्मकारिकेऽमुकस्य गतिं दह दह उपविष्टस्य गुदं दह दह सुप्तस्य मनो दह दह प्रबुद्धस्य हृदयं दह दह हन हन पच पच तावद्दह तावत्पच यावन् मे वशमायाति हुं फट् स्वाहेति। आसुरी संज्ञा दुर्गादेवता ॥ १२७–१२९ ॥ पावक–नायिका स्वाहा। षडङ्गमाह – **ह्रन्नेति** ॥ १३० ॥ ईशैरेकादशार्णैः। बाणरसाक्षरः पञ्चषष्ट्यर्णः हुं फट् स्वाहेति चत्वारो वर्णाः सर्वेष्वङ्गेषूक्तवर्णान्ते वाच्याः॥ १३१ ॥

(स्य) हृदयं, फिर २ बार 'दह', २ बार 'हन' तथा दो बार 'पच', फिर 'तावत्' 'दह' 'तावत्' 'पच' यावन्मे वशमायाति', फिर वर्म (हुं), अस्त्र (फट्) तथा अन्त में वह्निवल्लभा (स्वाहा) और प्रारम्भ में तार (ॐ) लगाने से ११० अक्षरों का आसुरी मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १२४-१२९ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - ॐ कटुके कटुकपत्रे सुभगे आसुरिरक्ते रक्तवाससे अथर्वणस्य दुहिते अघौरे अघोरकर्मकारिके अमुकस्य गतिं दह दह उपविष्टस्य गुदं दह दह सुप्तस्य मनो दह दह प्रबुद्धस्य हृदयं दह दह हन हन पच पच तावद्दह तावत्पच यावन् मे वशमायाति हुं फट् स्वाहा। (आसुरी दुर्गा की संज्ञा है) ॥ १२४-१२९॥

विनियोग एवं षडङ्गन्यास - इस मन्त्र के अंगिरा ऋषि हैं, विराट् छन्द तथा आसुरी दुर्गा देवता है, प्रणव बीज तथा स्वाहा शक्ति है ॥ १२९-१३० ॥

विमर्श - विनियोग विधि - ॐ अस्य आसुरीमन्त्रस्य अंगिरा ऋषिर्विराट् छन्दः, आसुरीदुर्गादेवता ॐ बीजं स्वाहा शक्तिरात्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ॥ १२९-१३० ॥

मन्त्र के ९ वर्णों से हृदय पर, ६ वर्णों से शिर, ७ वर्णों से शिखा, ८ वर्णों से कवच, ११ वर्णों से नेत्र तथा ६५ वर्णों से अस्त्र पर न्यास करना

शरच्चन्द्रकान्तिर्वराभीतिशूलं
सृणिं हस्तपद्मैर्दधानाम्बुजस्था ।
विभूषां वराढ्यादियज्ञोपवीता–
मुदोथर्वपुत्री करोत्वासुरी नः ॥ १३२ ॥
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ।
घृताक्तराजिकां वह्नौ ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥ १३३ ॥

अस्य मन्त्रस्यनानाफलानि

पञ्चाङ्गामासुरीं मन्त्री गृहीत्वा मन्त्रयेच्छतम् ।
तया धूपितमात्मानं यो जिघ्रेत् स वशो भवेत् ॥ १३४ ॥

ध्यानमाह – **शरदिति**। अभयांकुशे वामयोः। जयादिशक्तियुते पीठेर्गेन्द्रायुधैः पूजा बोध्या ॥ १३२–१३३ ॥ पञ्चाङ्गं मूलशाखापत्रपुष्पफलानि ॥ १३४ ॥

चाहिए । सभी अङ्गो पर न्यास करते समय साधक को मन्त्र के अन्त में 'हुं फट् स्वाहा' इतना और पढ़ना चाहिए ॥ १३०-१३१ ॥

विमर्श - ऋष्यादिन्यास - ॐ अङ्गिरसे ऋषये नमः, शिरसि,
ॐ विराट् छन्दसे नमः मुखे, ॐ आसुरीदुर्गादेवतायै नमः हृदि,
ॐ ॐ बीजाय नमः गुह्ये ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयोः

षडङ्गन्यास - ॐ कटुके कटुकपत्रे हुं फट् स्वाहा हृदयाय नमः,
सुभगे आसुरि हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा,
रक्तेरक्तवाससे हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट्,
अथर्वणस्य दुहिते हुं फट् स्वाहा कवचाय हुम्,
अघोरे अघोरकर्मकारिके हुं फट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्,
अमुकस्यं गति ..... यावन्मेवशमायाति हुँ फट् स्वाहा, अस्त्राय फट् ॥ १३०-१३१॥

अब **अथर्वापुत्री भगवती आसुरी दुर्गा का ध्यान** कहते हैं -

जिनके शरीर की आभा शरत्कालीन चन्द्रमा के समान शुभ है, अपने कमल सदृश हाथों में जिन्होंने क्रमशः वर, अभय, शूल एवं अंकुश धारण किया है । ऐसी कमलासन पर विराजमान, आभूषणों एवं वस्त्रों से अलंकृत, सर्प का यज्ञोपवीत धारण करने वाली अथर्वा की पुत्री भगवती आसुरी दुर्गा मुझे प्रसन्न रखें ॥ १३२ ॥

इस मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिए । तदनन्तर घी मिश्रित राई से दशांश होम करने पर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है । (जयादि शक्ति युक्त पीठ पर दुर्गा की एवं दिशाओं में सायुध सशक्तिक इन्द्रादि की पूजा करनी चाहिए) ॥ १३३ ॥

अब **काम्य प्रयोग का विधान** कहते हैं - राई के पञ्चाङ्गों (जड़ शाखा पत्र. पुष्प एवं फलों) को लेकर साधक मूलमन्त्र से उसे १०० बार अभिमन्त्रित

मध्वक्तमासुरीं हुत्वा सहस्रं वशयेज्जगत्।
राजिकाप्रतिमां कृत्वा दक्षाङ्घ्रेर्मस्तकावधि ॥ १३५ ॥
अष्टोत्तरशतं खण्डाञ्जुहुयादसिनादितान्।
नार्याः प्रतिकृतेर्वामपादादिहवनं चरेत् ॥ १३६ ॥
एवं प्रकुर्यात्सप्ताहं राजीन्धनचितेऽनले।
स सपत्नोऽपि मृत्यन्तं दासो जायेत मन्त्रिणः ॥ १३७ ॥
स्त्रीलिङ्गोहः प्रकर्तव्यो मन्त्रे नारी वशीकृतौ।
कटुतैलान्वितां राजीं निम्बपत्रयुतां रिपोः ॥ १३८ ॥
नामयुङ्मनुना हुत्वा ज्वरिणं कुरुते रिपुम्।
एवं राजीं सलवणां हुत्वा स्फोटो भवेदरेः ॥ १३९ ॥
अर्कदुग्धाक्त तद्धोमान्नेत्रे नाशयते रिपोः।
पालाशेन्धन दीप्तेऽग्नौ सप्ताहं घृतसंयुताम् ॥ १४० ॥

मध्वक्तां खण्डघृतक्षौद्रयुताम् ॥ १३५–१३६ ॥ सपत्नोऽपि शत्रुरपि देहान्तपर्यन्तं दासः स्यात् । किमुतान्यः ॥ १३७ ॥ स्त्रीलिङ्गो ह इति । नार्या वशीकरणे प्रतिमाहोमादौ मन्त्रे स्थितानाम् । अमुकस्य उपविष्टस्येत्यादीनां षष्ठ्यन्तानां पदानां स्थाने देवदत्ताया उपविष्टायाः सुप्ताया इत्याद्यूहो विधेयः ॥ १३८–१३९ ॥ **अर्केति** । अर्कदुग्धाक्तराजीहोमाद् रिपुनेत्रनाशः ॥ १४० ॥

करे, तदनन्तर उससे स्वयं को धूपित करे तो जो व्यक्ति उसे सूँघता है वही वश में हो जाता है । मधु युक्त राई की उक्त मन्त्र से एक हजार आहुति देकर साधक जगत् को अपने वश में कर सकता है ॥ १३४-१३५ ॥

अब **वशीकरण आदि अन्य प्रयोग** कहते हैं -

स्त्री या पुरुष जिसे वश में करना हो उसकी राई की प्रतिमा बना कर पुरुष के दाहिने पैर से मस्तक तक, स्त्री के बायें पैर से मष्तक तक, तलवार से १०८ टुकड़े कर, प्रतिदिन विधिवत् राई की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में निरन्तर एक सप्ताह पर्यन्त इस मन्त्र से हवन करे, तो शत्रु भी जीवन भर स्वयं साधक का दास बन जाता है । स्त्री को वश में करने के लिए साध्य में (देवदत्तस्य उपविष्टस्य के स्थान पर देवदत्तायाः उपविष्टायाः इसी प्रकार देवदत्तायाः सुदामा आदि) शब्दों का ऊह कर उच्चारण करना चाहिए ॥ १३६-१३८ ॥

सरसों का तेल तथा निम्ब पत्र मिला कर राई से शत्रु का नाम लगा कर मूलमन्त्र से होम करने से शत्रु को बुखार आ जाता है ॥ १३८-१३९ ॥

इसी प्रकार नमक मिला कर राई का होम करने से शत्रु का शरीर फटने लगता है । आक के दूध में राई को मिश्रित कर होम करने से

साधको राजिकां हुत्वा ब्राह्मणं वशयेद्ध्रुवम् ।
क्षत्रियं तु गुडाभ्यक्तां वैश्यं दधियुतां च ताम् ॥ १४१ ॥
शूद्रं लवणसंयुक्तां हुत्वा तां साष्टकं शतम् ।
आसुरी समिधो हुत्वा मध्वक्ता लभते निधिम् ॥ १४२ ॥
तोयपूर्णे घटे मन्त्री राजिकापल्लवान्विते ।
आवाह्य तां पूजयित्वा शतं मूलेन मन्त्रयेत् ॥ १४३ ॥
तेनाभिषिक्तं मनुजमलक्ष्मीराधयो रुजः ।
उपसर्गाः पलायन्ते परित्यज्यातिदूरतः ॥ १४४ ॥
आसुरी कुसुमं शीतं प्रियंगुर्नागकेसरः ।
मनःशिला च तगरमेतत्सर्वं विचूर्णितम् ॥ १४५ ॥
शताभिमन्त्रितं साध्यमूर्ध्नि क्षिप्तं वशंवदम् ।
निम्बकाष्ठसमिद्धेऽग्नावासुरीं सर्षपान्विताम् ॥ १४६ ॥
अष्टोत्तरशतं हुत्वा सप्ताहं दक्षिणामुखः ।
विदध्यादचिराच्छत्रुं सूर्यसूनुगृहातिथिम् ॥ १४७ ॥

गुडयुतां राजीं हुत्वा क्षत्रियं वशयेत् । दध्यक्तां हुत्वा वैश्यम् ॥ १४१ ॥ होममानमष्टोत्तरशतं सर्वत्र ॥ १४२–१४३ ॥ उपसर्गा उपद्रवाः ॥ १४४ ॥ शीतं चन्दनम् ॥ १४५ ॥ वशंवदं वशकृत ॥ १४६ ॥ सूर्यसूनुगृहातिथिं मृतमित्यर्थः ॥ १४७॥

शत्रु अन्धा हो जाता है ॥ १३९-१४० ॥

पलाश की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में एक सप्ताह तक घी मिश्रित राई का १०८ बार होम करने से साधक ब्राह्मण को, गुड़मिश्रित राई का होम करने से क्षत्रिय को, दधिमिश्रित राई के होम से वैश्य को तथा नमक मिली राई के होम से शूद्र को वश में कर लेता है । मधु सहित राई की समिधाओं का होम करने से व्यक्ति को जमीन में गड़ा हुआ खजाना प्राप्त होता है ॥ १४०-१४२ ॥

जलपूर्ण कलश में राई के पत्ते डाल कर उस पर आसुरी देवी का आवाहन एवं पूजन कर साधक मूलमन्त्र से उसे १०० बार अभिमन्त्रित करे । फिर उस जल से साध्य व्यक्ति का अभिषेक करे तो साध्य की दरिद्रता, आपत्ति, रोग एवं उपद्रव उसे छोड़कर दूर भाग जाते है ॥ १४३-१४४ ॥

राई का फूल, चन्दन, प्रियंगु, नागकेशर, मैनसिल एवं तगार इन सबको पीसकर मूलमन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित करे । फिर उस चन्दन को साध्य व्यक्ति के मस्तक पर लगा दे तो साधक उसे अपने वश में कर लेता है ॥ १४५-१४६ ॥

किंकुर्यान्नृपतिः क्रुद्धः किंकुर्यू रिपवोऽखिलाः ।
क्रुद्धःकालोऽपि किंकुर्यादासुरी चेदुपासिता ॥ १४८ ॥

ग्रन्थकर्तुर्मत्रकथनोपसंहार विषयकप्रार्थना

ग्रन्थाननेकानालोक्य मन्त्रागुप्ततमा मया ।
हिताय सुधियां ख्याता विस्तरादुपरम्यते ॥ १२६ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ ताम्रचूडकार्तवीर्यासुर्या मन्त्रादिनिरूपणं नाम एकोनविंशस्तरङ्गः ॥ १६ ॥

किंकुर्यादिति – आसुर्यामुपासितायां नृपादयो वशवर्तिनः स्युरित्यर्थः । कालेनाप्यासुर्युपासको न पराभूयते किमुतान्यैः । अथर्ववेदोक्तोऽयं सर्वोपद्रवशान्तिकृन्मन्त्रः ॥ १४८ ॥ ग्रन्थविस्तरभयान् मन्त्रकथनमुपसंहरति – **ग्रन्थानिति** ॥ १४६ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरकृतायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां 'नौकायां' ताम्रचूड–कार्तवीर्यासुर्या मन्त्रादिनिरूपणं नाम एकोनविंशस्तरङ्गः ॥ १६ ॥

नीम की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में एक सप्ताह तक दक्षिणाभिमुख सरसों मिश्रित राई की प्रतिदिन १०० आहुतियाँ देकर साधक अपने शत्रुओं को यमलोक का अतिथि बना देता है ॥ १४६-१४७ ॥

यदि इस आसुरी विद्या की विधिवत् उपासना कर ली जाय तो क्रुद्ध राजा समस्त शत्रु किं बहुना क्रुद्ध काल भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता ॥ १४८ ॥

मन्त्र शास्त्र के अनेक ग्रन्थों का अवलोकन कर मैने विद्वानों के हित के लिए गुप्ततम मन्त्र इस अध्याय में कहे हैं । ग्रन्थ विस्तार के भय से अब आगे न कह कर यहीं उपसंहार करता हूँ ॥ १४६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के एकोनविंश तरङ्ग कीमहाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १६ ॥

अथ विंशः तरङ्गः

अथ प्रवक्ष्ये यन्त्राणि गदितानि पुरारिणा।

यन्त्राणां कथनं तत्र यन्त्रसाधारणीक्रिया

शुभे दिने समाराध्य स्वेष्टदेवं यतात्मवान्॥ १॥
स्वप्यात्त्रिदिवसं भूमौ हविष्याशी जपे रतः।
इदं मे लिखितं यन्त्रमिष्टं तत्कीदृशं प्रभो॥ २॥
इति पृष्टवा निजं देवं प्रत्यहं तं समर्चयेत्।
तृतीये दिवसे रात्रौ स्वप्नं सम्प्राप्नुयान्नरः॥ ३॥
सिद्धं साध्यं सुसिद्धं वा शत्रुभूतमथो इदम्।
शत्रुयन्त्रं लिखेन्नैव तदा तदितरल्लिखेत्॥ ४॥

---

* नौका *

यन्त्राणि वक्तुमुपक्रमते – **अथेति** । पुरारिणा शिवेन गौरीं प्रति कथितानि । पूर्वप्रक्रियामाह – **शुभ** इति ॥ १ ॥ * ॥ २–६ ॥

---

* अरित्र *

अब यन्त्रों के विषय में कहने के लिये उपक्रम आरम्भ करते है । अब सदाशिव ने जिन यन्त्रों का आख्यान भगवती गौरी से किया था। उन यन्त्रों को कहता हूँ -

साधक शुभ मुहूर्त में अपने इष्टदेव का पूजन कर उनके यन्त्रों को स्मरण करते हुये हविष्यान्न भोजन करते हुये तीन दिन पर्यन्त लगातार भूमि पर शयन करते हुये इष्टदेव से इस प्रकार प्रार्थना करे कि -

हे प्रभो! मेरे द्वारा लिखा गया अमुक यन्त्र कैसा होगा? - इष्टदेव से नित्य प्रति ऐसा पूछकर उनका पूजन करता रहे, तो तीसरे दिन साधक को स्वप्न आता है, जिसमें यन्त्र के सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और अरि विषयक स्वप्न होते हैं ॥ १-४ ॥

स्वप्नाभावेऽपि तद्धित्वा परं यन्त्रं लिखेत्सुधीः ।
अथ सम्प्रोच्यते सर्वयन्त्रसाधारणीक्रिया ॥ ५ ॥
स्नातः शुद्धाम्बरधरः पुष्पचन्दनभूषितः ।
द्रव्यैः समुदितैरुक्तस्थले यन्त्रं लिखेद्रहः ॥ ६ ॥
षष्ठ्यन्तं साधकपदं मध्यबीजोपरि स्मृतम् ।
द्वितीयान्तं साध्यमधः पार्श्वयोः कुरुयुग्मकम् ॥ ७ ॥

यन्त्रावयवाः गायत्रीकथनं च

वियद्भृग्वौसर्गबीजं मध्यभागादधो लिखेत् ।
ईशानादि चतुष्कोणे हंसः सोऽहमसून् पुनः ॥ ८ ॥
नेत्रे श्रोत्रे पार्श्वयुग्मे दिक्पबीजानि दिक्षु च ।
यन्त्रगायत्रिका वर्णान्प्रतिकाष्ठं त्रयं त्रयम् ॥ ९ ॥

षष्ठ्यन्तमिति । देवदत्तस्य इष्टं कुरु कुर्विति ॥ ७ ॥ **वियदिति** । वियत् हः भृगुः सः ह्सौः इति बीजं यन्त्रस्य जीवः । हंसः सोऽहमिति वर्णान् यन्त्रस्यासून् प्राणभूतान् कोणेषु ॥ ८ ॥ नेत्रे इ ई । श्रोत्रे उ ऊ ।

शत्रु यन्त्र को नहीं लिखना चाहिए । इसके अतिरिक्त अन्य सिद्ध, साध्य एवं सुसिद्ध यन्त्र लिखना चहिये । स्वप्न के न आने पर भी शत्रु यन्त्र को छोड़कर अन्य यन्त्र लिखना चाहिए ॥ ४-५ ॥

अव सभी देवताओं के यन्त्रों के लिखने के लिये सामान्यतया की जाने वाली प्रक्रिया कहता हूँ -

स्नान कर शुद्ध वस्त्र धारण कर अपने को चन्दन और पुष्प माला से विभूषित कर यन्त्र लिखने के लिये निर्दिष्ट स्याही एवं भोजपत्रादि वस्तुओं को लेकर सर्वथा एकान्त स्थल में बैठकर यन्त्र का लेखन करे ॥ ५-६ ॥

यन्त्र में मध्य बीज के ऊपर साधक का षष्ठचन्त नाम, फिर नीचे साध्य के नाम के आगे द्वितीयान्त विभक्ति लगाकर साध्य (व्यक्ति या उसका कार्य) का नाम, तदनन्तर दोनों ओर दो बार कुरु शब्द लिखना चाहिए ॥ ७ ॥

विमर्श - यथा - साधकस्य (देवदत्तस्य इष्टं कुरु कुरु) साध्यं (यज्ञदत्तं वशं कुरु कुरु इत्यादि) ॥ ७ ॥

औ तथा विसर्ग सहित वियत् (ह), भृगु (स) अर्थात् ह्सौः इस बीज को जो यन्त्र का बीज कहा गया है, उसे मध्य भाग से नीचे की ओर लिखना चाहिए । फिर 'हंसः सोऽहं' जो यन्त्र का प्राण माना गया है, उसे ईशानादि चारों कोणों में लिखना चाहिए ॥ ८ ॥

यन्त्रराजाय शब्दान्ते विद्महे वर तत्परम्।
प्रदाय धीमहीत्यन्ते तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात् ॥ १० ॥
एषोक्ता यन्त्र गायत्री स्मृता सर्वेष्टसिद्धिदा।
बहिः प्राणप्रतिष्ठायां मनुं सर्वत्र वेष्टयेत् ॥ ११ ॥
स्थलानुक्तौ भूर्जपत्रे क्षौमे वा ताडपत्रके।
यन्त्रं विलिख्य घुटिकां बध्वा सूत्रेण वेष्टयेत् ॥ १२ ॥
लाक्षयाच्छादिते स्वर्णे रूप्ये ताम्रेऽथवा क्षिपेत्।
मध्यबीजेन सम्पूज्य देवं मातृकयापि वा ॥ १३ ॥
सञ्जप्य हुत्वा सम्पातसिक्तं कृत्वा नियोजयेत्।
मूर्ध्नि बाहौ गले वापि तत्तदिदष्टार्थसिद्धये ॥ १४ ॥

दिक्पालबीजानीन्द्रादिबीजानि लं रं मं क्षं वं यं सं हं आं ह्रीं इत्युक्तानि । पूर्वादिषु । प्रतिकाष्ठं प्रतिदिशम् ॥ ६ ॥ गायत्रीमाह – **यन्त्रेति** ॥ १०–१२ ॥ मध्यबीजेन यद्देवताकं यन्त्रं तद्बीजेन तदज्ञाने मातृकया ॥ १३ ॥ संपातो हुतशेषस्तेन सिक्तम् ॥ १४ ॥

यन्त्र के दोनों ओर क्रमशः नेत्र (इ ई), श्रोत्र (उ ऊ) लिखने चाहिए। फिर यन्त्र के दशो दिशाओं में दश दिक्पालों के बीज लं रं मं क्षं वं यं सं हं आं ह्रीं लिखना चाहिए । यन्त्र गायत्री के ३, ३, वर्णो को आठों दिशाओं में लिखना चाहिए ॥ ६ ॥

अब **यन्त्र गायत्री** बतलाते हैं -

'यन्त्रराजाय' पद के बाद 'विद्महे' पद, फिर 'प्रदाय धीमहि' पद तथा अन्त में 'तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्' लगाने से यन्त्र गायत्री निष्पन्न होती है, जो स्मरण करने मात्र से सारे अभीष्ट प्रदान करती है ॥ १०-११ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - 'यन्त्रराजाय विद्महे वरप्रदाय धीमहि तन्नो यन्त्रः प्रचोदयात्' ॥ १०-११ ॥

यन्त्र के बाहर प्राण प्रतिष्ठा के मन्त्र लिखकर उसे वेष्टित करना चाहिए।

जिन यन्त्रों को लिखने के लिये वस्तुओं का निर्देश नहीं किया गया है उन यन्त्रों को भोजपत्र, रेशमी वस्त्र अथवा ताड़पत्र पर लिखकर उसे समेटकर चारों ओर धागे से बाँध देना चाहिए ॥ ११-१२ ॥

जिस देवता का यन्त्र लिखा जाय उस देवता के बीज अक्षर से युक्त मातृकाओं द्वारा उसका पूजन कर, उस देवता के मन्त्र का जप कर, हुतशेष घी में उस यन्त्र को डुबोकर, फिर उसे सोने चाँदी या ताँबे के बने ताबीज में रखकर उसके मुख पर लाख चिपका देना चाहिये । इस प्रकार निर्मित यन्त्र को अपने

भूतलिपिकथनम्

यन्त्रसेवनसक्तेनोपास्या भूतलिपिः परा।
ययोपासितया सर्वं यन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥ १५ ॥

भूतलिपिरुपास्या जप्या । सा यथा – अं इं उं ऋं लृं एं ऐं ओं औं हं यं रं वं लं ङं कं खं घं गं ञं चं छं झं जं णं टं ठं ढं डं नं तं थं धं दं मं पं फं भं बं शं षं सं इति द्विचत्वारिंशद्वर्णा भूतलिपिः । तदुक्तं शारदायां –

पञ्चह्रस्वाः सन्धिवर्णा व्योमेरोग्निजलन्धरा ॥
अन्त्यमाद्यं द्वितीयं च चतुर्थं मध्यमं क्रमात् ।
पञ्चवर्गाक्षराणिस्युर्वान्तं श्वेतेन्दुभिः सह ॥ इति

(शारदातिलके ७. २–३)

अस्या दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः गायत्रीछन्दः वर्णेश्वरीदेवता । हं यं रं वं लं हृत् । ङं कं खं घं गं शिरः । ञं चं छं झं जं शिखा । णं टं ठं ढं

उद्‌देश्य की सिद्धि के लिये शिर, भुजा या गले में धारण करना चाहिए ॥ १३-१४ ॥

यन्त्र के बनाने वाले को अथवा धारण करने वाले को पराभूतलिपि की उपासना करनी चाहिए। जिसकी उपासना मात्र से समस्त यन्त्र सिद्ध हो जाते हैं ॥ १५ ॥

विमर्श – भूतलिपिः शारदातिलके यथा - इस भूतलिपि में नववर्ग तथा ४२ अक्षर होते हैं - इसका विवरण इस प्रकार है - पाँच ह्रस्व, (अ इ उ ऋ लृ) यह प्रथम वर्ग, पञ्च सन्धि वर्ण (ए ऐ ओ औ) चार द्वितीयवर्ग, (ह य र व ल) यह तृतीय वर्ग (ङ क ख घ ग) यह चतुर्थ वर्ग इसी प्रकार (ञ च छ झ ज) यह पञ्चम वर्ग ण (ट ठ ढ ण) यह षष्ठ वर्ग (न त थ ध द) यह सप्तम वर्ग, (म प फ भ ब) यह अष्टमवर्ग, वान्त (श) श्वेत (ष) इन्द्र (स) यह नवमवर्ग है ।

विनियोग - अस्या भूतलिपेर्दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः गायत्रीच्छन्दः वर्णेश्वरीदेवता आत्मनोअभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

भूतलिपि - अं इं उं ऋं लृं ऐं ऐं ओं औं हं यं रं वं लं ङं कं खं घं गं ञं चं छं झं जं णं टं ठं ढं डं नं तं थं धं दं मं पं फं भं बं शं षं सं ।

षडङ्गन्यास - १. हं यं रं वं लं हृदयाय नमः,
२. ङं कं खं घं गं शिरसे स्वाहा ३. चं छं झं जं शिखायै वषट्
४. णं टं ठं ढं डं कवचाय हुम् ५. नं तं थं धं दं नेत्रत्रयात् वौषट्,
६. मं पं फं बं अस्त्राय फट् ।

वर्णन्यास - ॐ अं नमः गुदे, ॐ इं नमः लिङ्गे,
ॐ उं नमः नाभौ ॐ ऋं नमः हृदि, ॐ लृं नमः कण्ठे
ॐ ऐं नमः भ्रूमध्ये, ॐ ऐं नमः ललाटे ॐ ओं नमः शिरसि,

डं वर्म । नं तं थं धं दं नेत्रम् । मं पं फं भं बं अस्त्रम् । गुदालिङ्गनाभिहृत्कण्ठ भ्रूमध्यकेशान्त शिरो ब्रह्मरन्ध्रेषु नवस्वरान् न्यस्योर्ध्व–प्राग्दक्षिणोदक्पश्चिमवक्त्रेषु हादिपञ्चकं करयोरग्रेमूलकूर्पराङ्गुलिसन्धिमणिबन्धेषु ङादिवर्गञादिवर्गौ पादयोरग्रमूलजान्वङ्गुली संधिगुल्फेषु णादिनादिवर्गौ उदरपार्श्वद्वयनाभिपृष्ठेषु मादिवर्गं गुह्यहृद्भ्रूमध्येषु शषसान् न्यसेत् । एवं वर्णान् न्यस्य चन्द्रशेखरां त्रिनेत्रां वराक्षमालापुस्तककपालकरः सुरामत्तां ध्यायेत् एवं ध्यात्वा लक्षं प्रजप्यायुतं तिलैर्हुत्वा सिद्धमन्त्रो भवति । एवं भूतलिपिसेवया वक्ष्यमाण यन्त्रसिद्धिः । श्री विद्ययोराधारता च ॥ १५ ॥

ॐ औं नमः ब्रह्मरन्ध्रे, ॐ हं नमः ऊर्ध्वमुखे, ॐ यं नमः पूर्वमुखे,
ॐ रं नमः दक्षिणमुखे, ॐ वं नमः उत्तरमुखे, ॐ लं नमः पश्चितमुखे,
ॐ ङं नमः हस्ताग्रे ॐ कं नमः दक्षहस्तमूले, ॐ खं नमः दक्षकूपरे,
ॐ घं नमः हस्ताङ्गुलिसन्धी, ॐ गं नमः दक्षमणिबन्धे,
ॐ ञं नमः वामहस्ताग्रे, ॐ चं नमः वामहस्तमूले
ॐ छं नमः दक्षकूर्परे ॐ झं नमः वामहस्ताङ्गुलि सन्धौ,
ॐ जं नमः वाममणिबन्धे ॐ णं नमः दक्षपादाग्रे,
ॐ टं नमः दक्षपादमूले, ॐ ठं नमः दक्षिणजानौ
ॐ ढं नमः दक्षपादाङ्गुलिसन्धौ, ॐ डं नमः दक्षिणपादगुल्फे,
ॐ नं नमः वामपादाग्रे, ॐ तं नमः वामपादगुल्फे,
ॐ थं नमः वामजानौ, ॐ धं नमः वामपादाङ्गुलिसन्धौ,
ॐ दं नमः वामगुल्फे, ॐ मं नमः उदरे
ॐ पं नमः दक्षिणपार्श्वे, ॐ फं नमः वामपार्श्वे,
ॐ भं नमः नाभौ, ॐ बं नमः पृष्ठे,
ॐ शं नमः गुह्ये, ॐ षं नमः हृदि, ॐ सं नमः भ्रूमध्ये' ।

ध्यान - अक्षरस्रजं हरिणपोतमुदग्रटंकं,
विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम् ।
अर्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दरामां
वर्णेश्वरीं प्रणमतस्तनभारनम्राम् ॥

इस भूतलिपि की एक लाख का संख्या में जप करना चाहिए । तत्पश्चात् तिलों की १० हजार आहुतियाँ देने से भूतलिपि सिद्ध हो जाती है । भूतलिपि को सिद्ध कर लेने पर बनाये गये सारे यन्त्र अपना प्रभाव पूर्णरूप से दिखलाते हैं । इसलिये यन्त्र निर्माणकर्त्ता विद्वानों को यन्त्र सिद्धि हेतु सर्वप्रथम भूतलिपि की उपासना करनी चाहिए । इसकी सिद्धि के बिना बनाये गये कोई भी यन्त्र अपना चमत्कार या प्रभाव का फल नहीं प्रगट करते ॥ १५ ॥

वश्यकरयन्त्रकथनम्

अथ वश्यकरं यन्त्रमुच्यते क्षिप्रसिद्धिदम् ।
भस्मादिशोधिते कांस्यभाजनेऽष्टदलं लिखेत् ॥ १६ ॥
गोरोचनाकुङ्कुमाभ्यां लेखन्या जातिजातया ।
कर्णिकासाध्यनामाढ्यं वर्गयुक्ताष्टपत्रकम् ॥ १७ ॥
तद्वेष्टयेत्स्वराढ्याष्ट युग्मपत्राम्बुजन्मना ।
तद् वेष्टयेत्त्रिभिर्वृत्तैः पूजयेत्सप्तवासरान् ॥ १८ ॥
नृपादिपुरुषाः सर्वे योषितोऽपि वशा ध्रुवम् ।
मोहनाख्ये महायन्त्रे पूजिते स्युर्न संशयः ॥ १९ ॥
भूर्जादौ लिखितं लोहवेष्टितं शिरसाधृतम् ।
नृपाणां दुष्टसत्वानां वशीकरणमुत्तमम् ॥ २० ॥

यन्त्रमाह – **अथेति** ॥ १६ ॥ * ॥ १७ ॥ स्वरैराढ्यानि युक्तानि अष्टयुग्म पत्राणि षोडशदलानि यस्येदृशेनाम्बुजन्मना पद्मेन तदष्टदलं वेष्टयेत् । लोहानि हैमरूप्यताम्राणि । अत्र मातृकादेवता ॥ १८ ॥ * ॥ १९–२० ॥

(i) अब शीघ्र सिद्धिप्रद **वशीकरण यन्त्र** कहता हूँ –

वश्यकरं यन्त्रम्

राख आदि से शुद्ध किये गये कॉसे के पात्र में गोरोचन एवं कुंकुम से चमेली की लेखनी द्वारा अष्टदल लिखना चाहिए । उसकी कर्णिका में साध्य का नाम (जिसे वश में करना हो) तथा आठों दलों में क्रमशः आठो वर्गाक्षरों को लिखना चाहिए ॥ १६-१७ ॥

इस प्रकार लिखे गये अष्टदलों को क्रमशः षोडशदलों से परिवेष्टित करना चाहिए, और उस पर १६ स्वर वर्ण लिखना चाहिए । उसे भी ३ वृत्तों से वेष्टित करना चाहिए । इस प्रकार बने यन्त्र का मातृकामन्त्र से ७ दिन पर्यन्त पूजन करना चाहिए ॥ १८ ॥

इस प्रकार उक्त मोहन संज्ञक महायन्त्र पर पूजन करने से राजा आदि सभी पुरुष एवं स्त्रियाँ निश्चित रूप से वश में हो जाती है इसमें संशय नहीं है ॥ १९॥

उक्त यन्त्र भोजपत्र आदि पर लिख कर त्रिलौह (सोने, चाँदी एवं ताँबे) के बने ताबीज में डालकर शिर पर धारण करने से राजा एवं
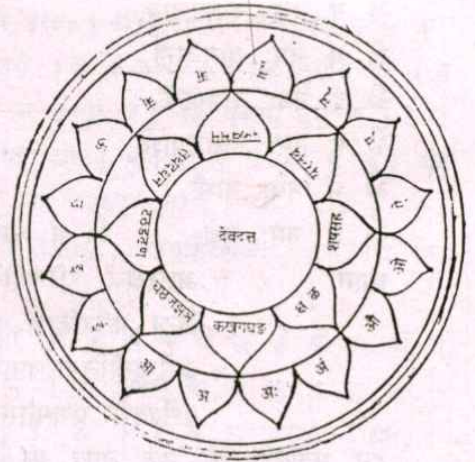
वशीकरणं द्वितीयं तृतीयं यन्त्रम्

मायासम्पुटितां साध्याभिधामादौ समालिखेत् ।
तस्या उपर्यधश्चापि मायाबीजचतुष्टयम् ॥ २१ ॥
तद् वेष्टयेद् भूपुरेण रेखाद्वितयसंयुतम् ।
भूर्जपत्रे विलिखितं रोचनाशीतकुंकुमैः ॥ २२ ॥
अनामारक्तसम्मिश्रैः पूजितं वशकृन्मतम् ।
कुमारीर्वाडवान्नारीः सम्भोज्य वितरेद् बलिम् ॥ २३ ॥
रक्तपुष्पान्नपललैर्वशीकरणसिद्धये ।
सर्वस्वमपहर्तुं वा निबद्धुं वाञ्छतीश्वरे ॥ २४ ॥
यन्त्रं बाहौ विधृत्येदं गच्छेद् भूमिपतिं नरः ।
क्रोधाक्रान्तमनाभूपः शान्तकोपस्तमर्चयेत् ॥ २५ ॥

द्वितीयमाह – मायेति । रेखाद्वयकृतेन भूपुरेण चतुष्कोणेन । शीतं चन्दनम् ॥ २१ ॥ * ॥ २२ ॥ वाडवान् विप्रान् ॥ २३ ॥ पललं मांसम् ॥ २४ ॥ अत्र गौरी देवता ॥ २५ ॥

दुष्टजनों को भी वश में कर देता है ॥ २० ॥

(ii) अब **बीज संपुट वशीकरण यन्त्र** कहते हैं –

वश्यकरं यन्त्रम्

सर्वप्रथम मायाबीज से संपुटित साध्यनाम फिर उसके ऊपर और नीचे ४, ४ माया बीज लिखना चाहिए । फिर उसे दो रेखाओं वाले भूपुर से परिवेष्टित करना चाहिए । उक्त यन्त्र गोरोचन, चन्दन एवं केशर से भोजपत्र पर चमेली की कलम से लिखकर अनामिका के रक्त से मिश्रित कुंकुमादि द्वारा गौरीमन्त्र या उसके बीजाक्षरों से उसकी पूजा करनी चाहिए, तो वह वशीकरण हो जाता है ॥ २१-२३ ॥

फिर कुमारी, ब्राह्मण एवं स्त्रियों को भोजन कराकर वशीकरण की सिद्धि के लिए लाल पुष्प, अन्न तथा मांस की बलि देनी चाहिए ॥ २३-२४ ॥

बीजं सम्पुटनामेदं यन्त्रमुक्तं मनीषिभिः ।
दक्षिणोत्तरगं कुर्याद्रेखाद्वितयमुत्तमम् ॥ २६ ॥
तन्मध्ये विलिखेत्साध्यं तार पद्मालयापुटम् ।
रेखाग्रयोः स्थिते कोष्ठद्वये सर्गिणमन्तिमम् ॥ २७ ॥
रेखाद्वयापर्यधश्च कोष्ठानां त्रितयं लिखेत् ।
मध्यकोष्ठे ससर्ग क्षं श्रीं बीजं पार्श्वकोष्ठयोः ॥ २८ ॥
एतद्रोचनया भूर्जे लिखित्वा वह्निना दहेत् ।
शरावसम्पुटस्थं तत्ततो भस्मसमुद्धरेत् ॥ २९ ॥

तृतीयमाह – **दक्षिणोत्तरेति** । दक्षिणोत्तराय तं रेखाद्वयं कृत्वा मध्ये नाम विलिखेत् ॥ २६॥ तारपद्मालयापुटं प्रणवश्रीपुटितम् । ॐ श्रीं देवदत्तं श्रीं ॐ इति ॥ २७ ॥ रेखाद्वयोपर्यधश्च कोष्ठत्रये श्रीं क्षः श्रीमिति रेखाग्रकोष्ठयो–रन्तिमक्षं सर्गिणं विसर्गयुतं क्षः ॥ २८॥ शरावयोर्मध्ये दहेत् । अत्र श्रीर्देवता ॥ २९॥

राजा द्वारा सर्वस्व अपहरण की स्थिति में, अथवा उसके कारागार में डाले जाने की स्थिति में इस यन्त्र को भुजा में धारण कर साधक यदि राजा के पास जावे तो अत्यन्त क्रुद्ध भी राजा शान्त हो कर उसका आदर करता है । मनीषियों ने इस यन्त्र को **बीजसम्पुटयन्त्र** कहा है ॥ २४-२६ ॥

(iii) अब **स्वामी वशीकरण यन्त्र** कहते हैं –

दक्षिणोत्तर क्रम से दो रेखाओं को लिखकर उसके बीच में तार (ॐ), पद्मालया (श्रीं) से संपुटित साध्य व्यक्ति का नाम लिखे । रेखाओं के अग्रभाग के मिलने से बने दो कोष्ठों में विसर्ग सहित अन्तिम वर्ण (क्षः) लिखना चाहिए । फिर दोनों रेखाओं के ऊपर तथा नीचे ३, ३, कोष्ठक बनाकर मध्य के कोष्ठ में विसर्ग सहित क्ष (क्षः) तथा उसके पार्श्ववर्ती दोनो कोष्ठकों में श्री बीज (श्रीं) लिखना चाहिए ॥ २६-२८ ॥

स्वामीवशीकरणयन्त्रम्
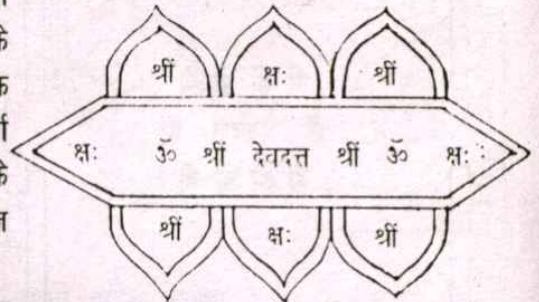
इस यन्त्र को भोजपत्र पर गोरोचन से चमेली की कलम द्वारा लिख कर, दो सकोरों के मध्य स्थापित कर, अग्नि में जला देना चाहिए । इस प्रकार जलाये गये यन्त्र का भस्म दूध में मिलाकर पीने से स्वामी को निश्चित रूप से वह दूध साधक के वश में कर देता है । इसके देवता श्री हैं ॥ २९-३० ॥

दुग्धेन सह पीतं तत्स्वामिवश्यकरं परम् ।

चतुर्थस्तम्भनयन्त्रम्

दिक्षु मायाचतुष्काढ्यं साध्यं षट्कोणमध्यतः ॥ ३० ॥
कोणेषु कोणमध्येषु मायाबीजं समालिखेत् ।
रोचनाकुंकुमाभ्यां तु भूर्जपत्रे मनोहरे ॥ ३१ ॥
तच्छरावस्थितं पूज्यं जपेन्मायां तदग्रतः ।
शरावात्तत्समादाय बद्ध्वा मूर्द्धनि मानवः ॥ ३२ ॥
अग्नितोयादि दिव्येषु शुचिर्दाहादिवर्जितः ।
जयमाप्नोति तद्रात्रौ कर्ता तस्य प्रभावतः ॥ ३३ ॥
दिव्यस्तम्भनसंज्ञं च यन्त्रमुत्तममीरितम् ।

चतुर्थं दिव्यं स्तम्भनमाह – **दिक्ष्विति** ॥ ३० ॥ * ॥ ३१–३२ ॥ पापकर्तापि दिव्ययन्त्रधारणाज्जयति । गौरी देवता ॥ ३३ ॥ राजमोहनं पञ्चममाह – **मायेति** । अष्टदलं कृत्वा मध्ये ह्रीं सः ह्रीं देवदत्त सः ह्रीं इति विलिख्य दलेषु ह्रीं सः ह्रीं इति लिखेत् । उपरिभूपुरम् । गौरीदेवता ।

(iv) अब **दिव्यस्तम्भन यन्त्र** कहते हैं - षट्कोण के मध्य में साध्य नाम और उसके चारों ओर ४ माया बीजों (ह्रीं) को लिखना चाहिए । फिर कोणों के ६ कोणों में तथा उसके बीच में ६, ६ माया बीजों को लिखना चाहिए ॥ ३०-३१ ॥
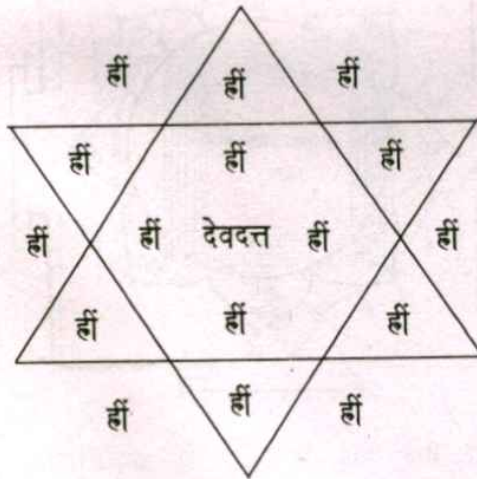
दिव्यस्तम्भनाख्यं यन्त्रम्

यह यन्त्र मनोहर भोजपत्र पर, गोरोचन एवं कुंकुम से चमेली की कलम द्वारा लिख कर, उसे सकोरे में स्थापित कर, उसका विधिवत् पूजन करना चाहिए । फिर उसके आगे बैठकर, माया बीज (ह्रीं) का जप करना चाहिए । फिर सकोरे से उसे निकालकर साधक अपने सिर में बाँधे तो वह अग्नि, जल आदि में न जल सकता है और न डूब सकता है, उस रात में वह उस दिव्य यन्त्र के प्रभाव से चाहे पापी भी क्यों न हो सर्वत्र विजय प्राप्त करता है । यह **दिव्य स्तम्भन यन्त्र** कहा गया है । (इसके गौरी देवता हैं) ॥ ३१-३४ ॥

पञ्चमं राजमोहनयन्त्रम्

माया विसर्गिसार्णाभ्यां पुटितं नाममध्यतः ॥ ३४ ॥
दलेष्वष्टसु सर्गाढ्यौ सौमायापुटितौ लिखेत् ।
चतुरस्रेण तत्पद्मं वेष्टयेद् भूर्जपत्रके ॥ ३५ ॥
रोचनाकुंकुमाभ्यां तु लिखित्वा तच्छरावयोः ।
प्रक्षिप्य पूजयेत्सप्तरात्रं मायां जपेन्नरः ॥ ३६ ॥
राममोहननामेदं यन्त्रं नृपरुषं हरेत् ।

षष्ठं मृत्युञ्जययन्त्रम्

क्रुद्धाज्जिघांसोर्नृपतेरात्मरक्षा विधित्सया ॥ ३७ ॥

मृत्युञ्जयं षष्ठमाह – **क्रुद्धादिति** । सप्तरेखात्मक चतुष्कोणोऽमुकस्य मृत्युं वशयेति विलिख्योपरि द्वादशदले ऋॠऌॡरहितान् स्वरान् लयुतान् कृत्वा त्रिशूलाकितकोणेन चतुरस्रेण वेष्टयेत् । यन्त्रद्वयमध्ये इदं यन्त्रं संयोज्य कौ पृथिव्यां निखनेत् । मातृकादेवता ॥ ३४ ॥ * ॥ ३५–४२ ॥

(v) अब **राजमोहन यन्त्र** कहते हैं –

राजमोहनयन्त्रम्

अष्टदल के मध्य में मायाबीज (ह्रीं) तथा विसर्ग सहित स अर्थात् (सः) इन दो बीजाक्षरों से पुटित साध्य नाम लिखकर आठों दलों में माया से पुटित विसर्ग सहित दो स अर्थात् (ह्रीं सः सः ह्रीं) लिखना चाहिए । फिर भूपुर से इसे वेष्टित कर देना चाहिए ॥ ३४-३५ ॥

भोजपत्र पर गोरोचन एवं कुंकुम से उक्त यन्त्र लिखकर, दो सकोरों में रखकर, सात रात तक मायाबीज (ह्रीं) का जप करते हुये उसका पूजन करते रहना चाहिए ॥ ३५-३६ ॥

राजमोहन नामक यह यन्त्र धारण करने से राजा या मनुष्य की कठोरता को दूरकर उनको साधक के वश में कर देता है । (इसके गौरी देवता हैं) ॥ ३७ ॥

(vi) अब क्रुद्ध एवं हत्यारे राजा से आत्मरक्षार्थ **मृत्युञ्जय यन्त्र** कहता हूँ – सर्वप्रथम द्वादशदल युक्त कमल का निर्माण करे । उसके भीतर सात चतुर्भुज
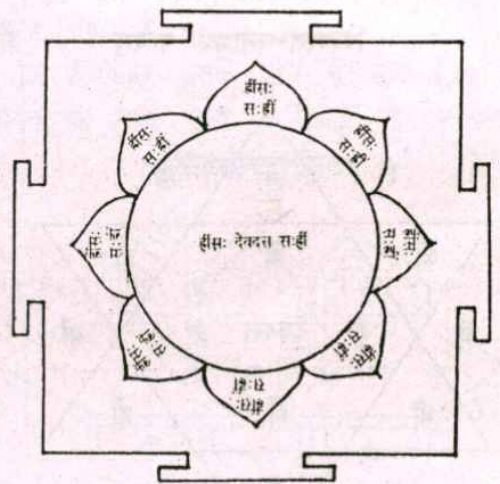
वक्ष्ये मृत्युञ्जयं यन्त्रं पद्ममर्कदलं लिखेत् ।
कर्णिकायां चतुष्कोणे लिखेन्नामक्रियान्वितम् ॥ ३८ ॥
सप्तरेखात्मकं कार्यं तच्चतुष्कोणमुत्तमम् ।
ईशादि द्वादशदलेष्वक्लीबस्वरसंयुतान् ॥ ३९ ॥
कर्णान्विलिख्य तत्पद्मं चतुरस्रेण वेष्टयेत् ।
चतुरस्रस्य कोणेषु त्रिशूलानि समालिखेत् ॥ ४० ॥
भूर्जपत्रद्वये चैतद्यन्त्रं कृत्वा पृथक्पुनः ।
यन्त्रद्वयपुटं कृत्वा स्थापयेत्कावुदङ्मुखः ॥ ४१ ॥
तस्योपरिशिला न्यस्य तत्स्थितो मातृकां जपेत् ।
एवं कृते साधकः स्याद्वीतत्रासो यमादपि ॥ ४२ ॥
सर्वरोगसमूहाच्च किंपुना राजमण्डलात् ।

विवादे जयावहं सप्तममाह – **लिखेदिति** । गौरीदेवता ॥ ४३–४४ ॥

रेखाओं से आहत चतुष्कोण में क्रिया सहित साध्य नाम अर्थात् उसके आगे 'मृत्युं वशय' यह लिखना चाहिए । फिर उससे ऊपर द्वादश दल में ईशान कोण से लेकर (ऋ ॠ लृ लॄ) इत्यादि क्लीव स्वरों को छोड़कर अन्य स्वरों के साथ कर्ण (लकार अर्थात् ल ला लि ली इत्यादि बारह स्वर) लिख कर उस दल को भी चतुस्त्र से वेष्टित कर देना चाहिए तथा उस चतुरस्त्र के कोणों पर भी त्रिशूल निर्माण करना चाहिए ॥ ३७-४० ॥
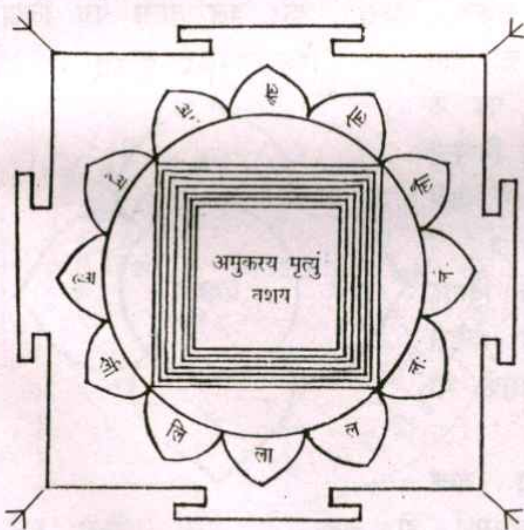
मृत्युञ्जयाख्यं मृत्युदूरकरयन्त्रं

इस यन्त्र को दो भोजपत्रों पर पृथक् पृथक् चमेली की कलम से अष्टगन्ध द्वारा लिखकर, पुनः उन्हे आमने सामने से मिला कर उत्तराभिमुख हो पृथ्वी में गाड़ देना चाहिए ॥ ४१ ॥

उसके ऊपर शिला रख कर उस पर बैठ कर मातृका मन्त्र का जप करना चाहिए । (इस यन्त्र की मातृका देवता हैं) ॥ ४२ ॥

ऐसा करने से साधक मृत्यु के भय से तथा सभी प्रकार के रोगों के भय से भी मुक्त हो जाता है, फिर राजा के भय की बात तो दूर रही ॥ ४२-४३॥

जयावहसप्तमयन्त्रकथनम्

लिखेच्चतुर्दलं पद्मं साध्याख्यायुक्तकर्णिकम् ॥ ४३ ॥
रोचनाकुंकुमाभ्यां तु भूर्जे मायायुतच्छदम् ।
तद्यन्त्रं पयसि न्यस्य विवादं वादिना चरेत् ॥ ४४ ॥
जयमाप्नोति गदितं विवादविजयाभिधम् ।

धनिवश्यकराष्टमयन्त्रकथनम्

धनिके याचति द्रव्यं दानाशक्तऽधमर्णके ॥ ४५ ॥
धनिकस्य वशीकृत्यै यन्त्रं भूर्जदले लिखेत् ।
रोचनाकुंकुमाभ्यां तु षट्कोणं साध्यकर्णिकम् ॥ ४६ ॥
कोणाग्रे कोणमध्येषु कामान्द्वादशसंलिखेत् ।
तद्वृत्तेन च सम्वेष्ट्य माययावेष्टयेद् बहिः ॥ ४७ ॥

धनिकवश्यकरमष्टममाह – **धनिक** इति । भूर्जदले भूर्जपत्रे । गौरीदेवता ॥ ४५ ॥ * ॥ ४६–४६ ॥

(vii) अब **विवाद में विजयप्रद यन्त्र** कहते हैं -

भोजपत्र पर गोरोचन एवं कुंकुम द्वारा चार दल वाला पद्म लिख कर उसकी कर्णिका में साध्य व्यक्ति का नाम (जिससे विवाद हो) लिखना चाहिए । पद्म के चारों दलों पर मायाबीज (ह्रीं) लिखकर निष्पन्न उस यन्त्र को दूध में डालकर मुकदमें में वादी के साथ विवाद करना चाहिए ॥ ४३-४४ ॥

विवादजयकरं यन्त्रम्

इस यन्त्र के प्रभाव से साधक विवाद में वादी पर विजय प्राप्त कर लेता है । इसे **विवाद-विजयप्रद यन्त्र** कहते हैं । (इसके भी गौरी देवता हैं) ॥ ४५ ॥
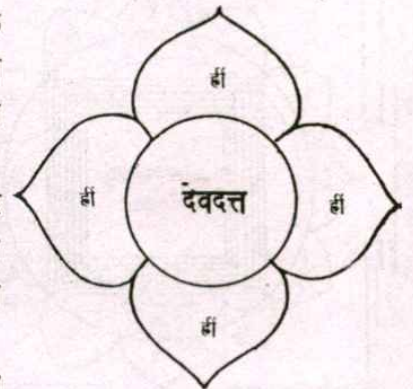
(viii) अब **धनिकवशीकरण यन्त्र** कहते हैं - जो प्रथम ऋण लेकर अधमर्ण हो चुका है, ऐसे उपकृत धनी से माँगने पर धन न देने पर उसे वश में करने के लिये वक्ष्यमाण यन्त्र भोजपत्र पर लिखना चाहिए ॥ ४५-४६ ॥

गोरोचन एवं कुंकुम से भोजपत्र पर चमेली की कलम से षट्कोण लिखकर उसकी कर्णिका में साध्य व्यक्ति का नाम लिखना चाहिए । फिर षट्कोणों में तथा कोणों के मध्य में एक एक के क्रम से १२ कामबीजों (क्लीं) को लिखना

पुनर्वृत्तेन सम्वेष्ट्य पूजयेत्सप्त वासरान् ।
पठेत्सप्तशतीं नित्यमन्ते होमं शताधिकम् ॥ ४८ ॥
कृत्वा सम्भोजयेत्कन्यां धरेद्यन्त्रं गले स्वके ।
एवं धनीवशमितो न याचति ददात्यपि ॥ ४६ ॥

दुष्टमोहने नवयन्त्रकथनम्

दुष्टाराजसमीपस्थाः पैशुन्यं कुर्वते यदा ।
तदा यन्त्रं प्रकुर्वीत दुष्टमोहनसंज्ञकम् ॥ ५० ॥
लिखेदष्टदलं पद्मं भूर्जे चक्रीवतोसृजा ।
कर्णिकागत साध्याख्यं मायायुक्तककुब्दलम् ॥ ५१ ॥

दुष्टमोहनं नवममाह – **दुष्टा** इति ॥ ५० ॥ भूर्जे खररक्तेन साध्य-गर्भमष्टदल विलिख्य दिग्दलेषु मायां विदिग्दलेषु सः इति विलिख्य वृत्तद्वयेन संवेष्ट्य प्राणान् संस्थाप्य संपूज्य दुग्धे क्षिप्तं वश्यकरम् । गौरीदेवता ।

चाहिए । तदनन्तर उसे वृत्त से वेष्टित कर उस वृत्त को भी माया बीज (ह्रीं) से वेष्टित कर देना चाहिए॥ ४६-४७॥

धनीवश्यकरं यन्त्रम्

क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं
देवदत्त
ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं

फिर उन माया बीजों को भी वृत्त से वेष्टित कर ७ दिन तक उसका पूजन करते रहना चाहिए । प्रतिदिन सप्तशती का पाठ भी करते रहना चाहिए । अन्तिम दिन नवार्ण मन्त्र से १०८ आहुतियाँ देकर कन्याओं को भोजन कराना चाहिए ॥ ४८-४६ ॥

इस प्रकार बने यन्त्र को अपने गले में धारण करने से धनिक साधक के वशीभूत होकर बिना माँगे ही धन देता है और उसके वश में हो जाता है । (इसके भी गौरी देवता है) ॥ ४६ ॥

(ix) अब **दुष्ट मोहन यन्त्र** कहते हैं -

राजा के समीप रहने वाले दुष्ट कर्मचारी यदि पिशुनता (चुगुलखोरी) करें तो इस दुष्ट मोहन यन्त्र को बनाना चाहिए ॥ ५० ॥

भोजपत्र पर गर्दभ के खून से चमेली के कलम द्वारा अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में साध्य का नाम, फिर पूर्वादि चारों दिशाओं के दलों

सर्गान्तभृगुयुक्कोणं वृत्तद्वितयवेष्टितम् ।
कृतासुस्थापनं यन्त्रं सम्पूज्य पयसि क्षिपेत् ॥ ५२ ॥
एकविंशतिरात्रेण दुष्टाः स्युर्वशवर्तिनः ।

जयदं दशमयन्त्रकथनम्

चतुरस्रे विषानन्तगतं मायापुटं भृगुम् ॥ ५३ ॥
लिखित्वा तस्य कोणेषु ककुप्स्वपि दलाष्टकम् ।
रोहरोधस्तम्भक्षोभदिग्दलेषु क्रमाल्लिखेत् ॥ ५४ ॥
कोणेषु सर्गिचरमं भूर्जे रोचनयोत्तमे ।
शरावद्वयमध्यस्थं मध्ये साध्याभिधान्वितम् ॥ ५५ ॥
पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैर्दिक्पतिभ्यो बलि हरेत् ।
व्यवहारे विवादे च वशकृद्राजवेश्मनि ॥ ५६ ॥

जयदं दशममाह – **चतुरस्त्र** इति । विषं मः । अनन्तः अः । भृगुः सः । चतुर्दले ह्रीं स ह्रीं इति विलिख्य तदुपर्यष्टदलं कृत्वा दिक्पत्रेषु रोह रोधस्तम्भक्षोभ इतिवर्ण द्वन्द्वं विदिक्पत्रेषु 'क्षः' इति चरमः । गौरीदेवता ॥ ५१ ॥ * ॥ ५२–५६ ॥

में मायाबीज (ह्रीं) तथा कोणों के चारों दलों में सर्गान्तभृगु (सः) लिख कर उसे दो वृत्तों से वेष्टित कर देना चाहिए । फिर इस यन्त्र में प्राण प्रतिष्ठा कर विधिवत् (त्रैलोक्य मोहन गौरी मन्त्र) से पूजन कर उसे (काले पात्र में स्थित) दूध में छोड़ देना चाहिए । ऐसा करते रहने से २१ दिन के भीतर पिशुनकारी दुष्ट वश में हो जाता है ॥ ५१-५३ ॥

दुष्टमोहनाख्यं मोहनयन्त्रम्
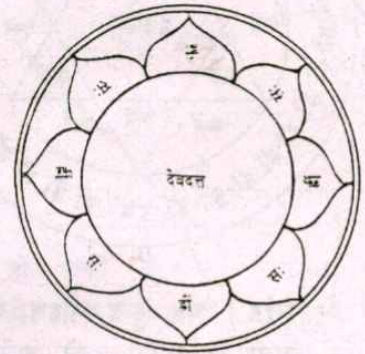
(X) अब **विजयप्रद यन्त्र** का विधान करते हैं - गोरोचन से भोजपत्र पर चतुर्भुज के मध्य में विष (म) अनन्त (अ) सहित भृगु स् अर्थात् (स्मः) इसे माया से संपुटित कर (ह्रीं स्मः ह्रीं) लिखे, फिर चारों कोणों में 'ह्रीं सः ह्रीं' लिखकर उसके ऊपर अष्टदल बनाना चाहिए । उसके दिशाओं के दलों में क्रमशः रोहः, रोधः, स्तम्भः एवं क्षोभः लिखना चाहिए । फिर कोणों के दलों में सर्गी विसर्ग सहित चरम (क्ष) अर्थात् 'क्षः' लिखकर

यन्त्रमेतत्समाख्यातं जयदं मानवर्द्धनम्।

एकादशं गणेशयन्त्रकथनम्

यावज्जीवं वशीकर्तुं नरं यन्त्रं तथोच्यते ॥ ५७ ॥
अनामा सृग्गजमदरोचनालक्तकैर्लिखेत्।
भूर्जं जातीयलेखन्या चतुरस्त्रं मनोहरम् ॥ ५८ ॥
तत्राद्यपंक्तौ संलेख्य मायाबीजस्य सप्तकम्।
द्वितीयायां सृणिर्मायाकामौ नामगसम्पुटम् ॥ ५९ ॥

गणेशयन्त्रमेकादशमाह – **यावदिति** ॥ ५७ ॥ चतुरस्त्रं कृत्वा मध्ये पंक्तिचतुष्टयं कार्यम् । आद्यायां मायासप्तकम् । द्वितीयायां क्रों ह्रीं क्लीं गं देवदत्तं वशय गमिति । तृतीयायां क्रों ह्रीं क्रों ह्रीं क्लीं ह्रीं इति । चतुर्थ्यां मायाचतुष्कम् । चतुरस्त्राद्बहिर्दक्षिणदिशं हित्वा तिसृषु दिक्षु गंबीजस्य दशकं दशकं तदुपर्यपि चतुष्कोणम् । एतद्यन्त्रं कृष्णमृत्कृतगणेशोदरे न्यस्य तं सम्पूज्य देवदेवेति संप्रार्थ्य हस्तमात्रे गर्ते निखाय पूरयेदिति । गणपतिर्देवता ॥ ५८–६३ ॥

सर्वत्रजयदं यन्त्रम्
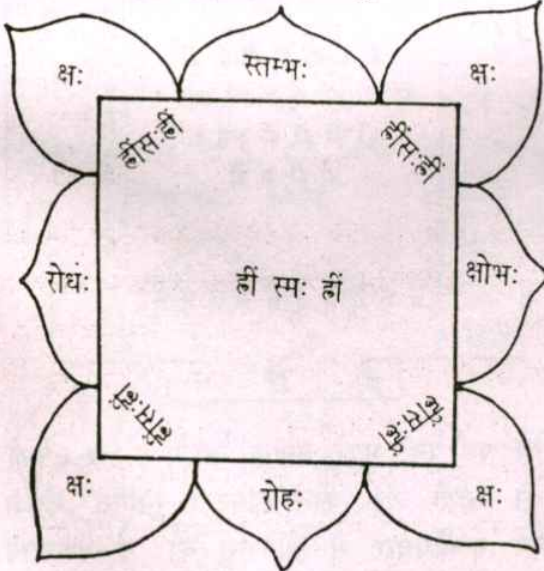
उसी भोजपत्र पर गोरोचन से चतुर्भुज मध्य में साध्य नाम लिखे। इसे दो सकोरों के मध्य में स्थापित कर गन्ध पुष्पादि उपचारों से पूजन करे। फिर दिक्पालों को (उनके मन्त्रों से) बलि देवे ॥ ५३-५६ ॥

यह विजयप्रद यन्त्र व्यवहार एवं विवाद में विजय देता है और राजद्वार पर मान-सम्मान बढ़ाता है ॥ ५७ ॥

विमर्श - विजयप्रद यन्त्र को भोजपत्र पर अनार की कलम से लिखना चाहिए । त्रैलोक्यमोहन गौरी मन्त्र से इसके पूजन का विधान कहा गया है ॥ ५३-५७ ॥

(xi) अब **गणेश यन्त्र** कहते हैं, जो जीवन भर मनुष्य को वश में करने वाला है -

भोजपत्र पर अनामिका का खून, गजमद, गोरोचन एवं आलता से, चमेली

तृतीयायां सृणिपुटा मायया सम्पुटः स्मरः ।
लेख्यं पंक्तौ चतुर्थ्यां तु मायाबीजचतुष्टयम् ॥ ६० ॥
चतुरस्राद् बहिर्दिक्षु दशबीजं गणेशितुः ।
विलेख्य दक्षिणां हित्वा कुर्याद् भूयोऽपि भूपुरम् ॥ ६१ ॥
एतद्यन्त्रं गणपतेरुदरान्तः प्रविन्यसेत् ।
विर्निर्मितस्य सुक्षेत्रादात्तया कृष्णया मृदा ॥ ६२ ॥
पञ्चोपचारैर्गणपं सम्पूज्यामुं मनुं पठेत् ।
देवदेव गणाध्यक्ष सुरासुर नमस्कृत ॥ ६३ ॥
देवदत्तं ममायत्तं यावज्जीवं कुरु प्रभो ।
हस्तमात्रे धरागर्ते तं विन्यस्य गणाधिपम् ।
सम्पूरयेन्मृदागर्तमेवं वश्यो भवेन्नरः ॥ ६४ ॥

यावज्जीववश्यकरं यन्त्रम्

की कलम से, चतुर्भुज बनाकर मध्य में प्रथम पंक्ति में सात माया बीज (ह्रीं) तथा द्वितीय पंक्ति में क्रमशः सृणि (क्रों), माया (ह्रीं), काम (क्लीं), एवं गं से संपुटित साध्य नाम लिखना चाहिए । फिर तृतीय पंक्ति में क्रों से संपुटित मायाबीज तथा माया बीज (ह्रीं) से संपुटित काम (क्लीं) लिख कर चतुर्थ पंक्ति में ४ माया बीज (ह्रीं) लिखना चाहिए । फिर चतुरस्त्र के बाहर दक्षिण दिशा में छोड़कर अन्य दिशाओं में १०-१० की संख्या में गणेश बीज (गं) लिखकर उस पर पुनः भुपूर बनाना चाहिए ॥ ५७-६१ ॥

तदनन्तर किसी पवित्र स्थान से लायी गई काली मिट्टी निर्मित गणेश प्रतिमा के पेट में इस यन्त्र को रखकर पञ्चोपचार से श्रीगणेश की 'गं गणपतये नमः' इस मन्त्र से पूजन कर वक्ष्यमाण मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥ ६२ ॥

'देवदेव गणाध्यक्ष सुरासुर नमस्कृत । देवदत्त ममायत्तं यावज्जीवं कुरु प्रभो'' उक्त श्लोक में कहे गये देवदत्त के स्थान पर साध्य नाम उच्चारण करना चाहिए । फिर पृथ्वी में एक हाथ लम्बा चौड़ा गड्ढ़ा खोदकर उसमें गणेश
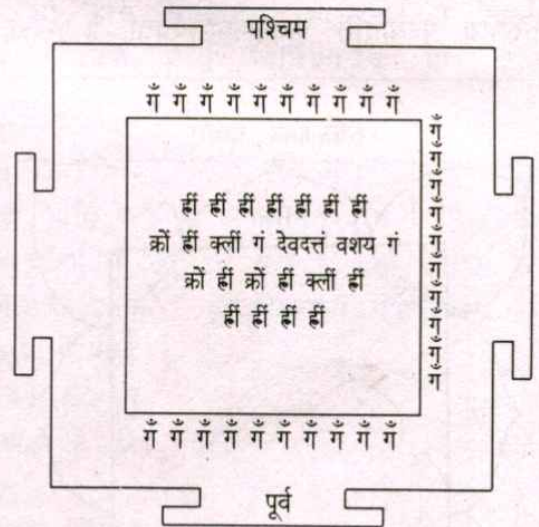
द्वादशं नृपवश्यकरयन्त्रकथनम्

पद्मं चतुर्दलं कृत्वा साध्याख्यं नेत्रकर्णिकम् ।
तारो नम इमान् वर्णांल्लिखेद्दलचतुष्टये ॥ ६५ ॥
अजिते इत्यपि लिखेद्दक्षिणोत्तरपत्रयोः ।
भूर्जे गोरोचनाचन्द्रकेसराऽगुरुभिः पुनः ॥ ६६ ॥
त्रिदिनं नियतो यन्त्रं सम्पूज्याह्नि चतुर्थके ।
एकं सम्भोज्य विप्रेन्द्रं यन्त्रं बाहौ विधारयेत् ॥ ६७ ॥
हेमादिसंस्थितं भूपो वशकृद्दर्शनादपि ।

भृत्यवशंकर–दुष्टवशंकरयन्त्रश्च

चतुर्दलान्तर्विलिखेद् भृत्यनामक्रियान्वितम् ॥ ६८ ॥

नृप वश्यकरं द्वादशमाह – **पद्ममिति** । चतुर्दले इयुतं नाम । ॐ नम इति प्रतिदलम् । अजिते इति दक्षिणोत्तरदलयोरधिकं लिखेत् । अजिता देवता ॥ ६५–६७ ॥ भृत्यवश्यकरं त्रयोदशमाह – **चतुर्दलान्तरिति** । क्रिया वशयेति तद्युतम् । गौरीदेवता ॥ ६८–६९ ॥

प्रतिमा स्थापित कर मिट्टी से उस गढ्ढ़े को भर देना चाहिए । ऐसा करने से साध्य साधक के वश में हो जाता है ॥ ६३-६४ ॥

(xii) **राजा को वश में करने का यन्त्र** - चार दल वाले कमल को लिखकर कर्णिका में इ तथा साध्य नाम लिखना चाहिए । फिर चारों पद्मदलों में पूर्व पश्चिम के दलों में 'ॐ नमः' लिखना चाहिए । शेष उत्तर और दक्षिण दलों में 'ॐ नमः' के बाद 'अजिते' इतना और अधिक लिखना चाहिए ॥ ६५-६६ ॥
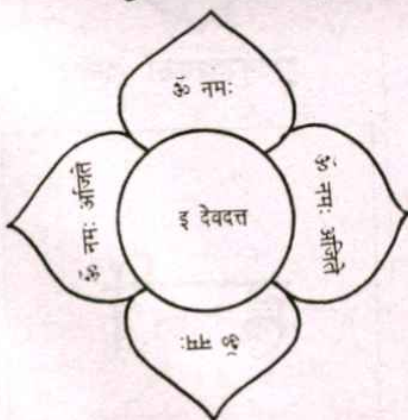
नृपवश्यकरं यन्त्रम्

भोजपत्र पर गोरोचन, कपूर, केशर एवं अगर से उक्त यन्त्र लिखकर ३ दिन पर्यन्त (अजिता मन्त्र से) विधिवत् पूजन कर, चौथे दिन किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को भोजन कराने के बाद, इस यन्त्र को सुवर्ण निर्मित ताबीज में भर कर, अपनी भुजा पर धारण करना चाहिए । इस यन्त्र का ऐसा प्रभाव है कि राजा भी उस व्यक्ति को देखते ही वश में हो जाता है । (इसके अजिता देवता हैं) ॥ ६५-६८ ॥

दलेषु मायाबीजानि भूर्जे रोचनया सुधीः ।
दध्नि क्षिप्ते तद्यन्त्रे भृत्यआज्ञाकरो भवेत् ॥ ६६ ॥
चतुरस्रे लिखेत् साध्यनामर्णान्गिरिजायुतान् ।
भूर्जे रोचनाया मन्त्री दुष्टप्रभुवशीकृतौ ॥ ७० ॥
शत्रुप्रतिकृते यन्त्रं हृदये तत्प्रविन्यसेत् ।
कृता याराजिका पिष्टैः शत्रुपादरजोयुतैः ॥ ७१ ॥
प्रतिमां पूजयित्वा तां चुल्लीपार्श्वे निखानयेत् ।
अजासृग्युक्तभक्तेन कृष्णभूते बलिं हरेत् ॥ ७२ ॥

दुष्टवश्यकरं चतुर्दशमाह – **चतुरस्त्र** इति । मायाबीजगतान्नामार्णां-श्चतुरस्त्रे विलिख्य दुष्टपादरजोयुक्त राजिकापिष्टकृततत्प्रतिमायां हृदि न्यस्य तां चुल्लीं निखाय कृष्णचतुर्दश्यां महाकालायारुणपुष्पाज्येन युक्तमजाया रक्तयुक्तभक्तेन बलिं दद्यात् । उक्त फलसिद्धिः । गौरीदेवता ॥ ७०–७३ ॥

(xiii) अब **सेवक को वश में करने का यन्त्र** कहते हैं - चतुर्दल कमल के भीतर (कर्णिका), भृत्य नाम एवं क्रिया (वशय) लिखना चाहिए । तदनन्तर चारों दलों में माया बीज (ह्रीं) लिखना चाहिए । साधक गोरोचन से भोज पत्र पर लिखकर इस यन्त्र को दही में डाल देवे तो सेवक आज्ञाकारी हो जाता है । (इसके गौरी देवता हैं) ॥ ६८-६९ ॥

भृत्यवश्यकरं यन्त्रम्
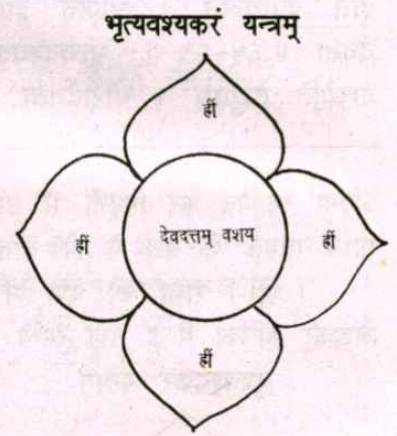
(xiv) अब **दुष्टों को वश में करने वाला यन्त्र** कहते हैं- चतुरस्र के मध्य में माया बीज (ह्रीं) के भीतर (ह के बाद किन्तु ई के पहले) साध्य का नाम लिखना चाहिए । दुष्ट राजा को वश में करने के लिये भोजपत्र पर गोरोचन से चमेली की कलम द्वारा इस यन्त्र को लिखना चाहिए । उस दुष्ट व्यक्ति के पैर की धूलि में, राई का चूर्ण मिलाकर, उसकी प्रतिमा बनाकर, उस प्रतिमा के हृदय स्थान में उक्त यन्त्र को रखना चाहिए ॥ ७०-७१ ॥

दुष्टनृपवश्यकरं यन्त्रम्
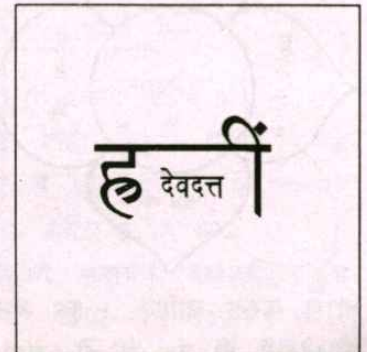
फिर उस प्रतिमा का (त्रैलोक्य मोहन गौरी मन्त्र से) पूजन कर उसे चूल्हे के पास गाड़ देना

महाकालायदिक्पेभ्योऽरुणपुष्पाज्यसंयुतम् ।
एवं कृते भवेद्वश्यो नृपो दुष्टोऽपि तत्क्षणात् ॥ ७३ ॥

ललितायन्त्रकथनम्

दौर्भाग्यशमनं भर्तृवशकृद्यन्त्रमुच्यते ।
नारीणामीप्सितप्राप्तिकरं सौभाग्यवर्द्धनम् ॥ ७४ ॥
कुर्यादष्टदलं पद्मं चतुष्कोणाढ्यकर्णिकम् ।
चतुष्कोणे लिखेन्मायाबीजानां त्रितयं शुभम् ॥ ७५ ॥
ततः स्वनाथनामार्णान्मायाबीजत्रयं पुनः ।
दिक्पत्रे त्रिर्गिरिसुतां विदिक्पत्रेष्वथैकशः ॥ ७६ ॥

ललितायन्त्र पञ्चदशमाह – **दौर्भाग्येति** । शुक्लत्रयोदश्यां भूर्जे रोचनाकस्तूरीकुंकुमैश्चतुष्कोणगर्भमष्टदलं कृत्वा मायात्रयपुटित भर्तृ नमोन्तं विलिख्य दिक्पत्रेषु मायात्रयं कोणदले एकां कृत्वोत्तरदिग्वक्त्रो रात्रावर्चेत् । ललिता देवता ॥ ७४–७६ ॥

चाहिए । इसके बाद कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को बकरी के खून से मिश्रित चरु से लाल पुष्प तथा घी से महाकाल एवं दिक्पालों को बलि देनी चाहिए । ऐसा करने से दुष्ट राजा सद्यः वशीभूत हो जाता है । (इसके गौरी देवता हैं)॥ ७२-७३ ॥

(XV) **दुर्भाग्यनाशक तथा पति को वश में करने वाला ललिता यन्त्र** – अब दुर्भाग्यनाशक पति को वश में करने वाला, स्त्रियों को अभिमत फलदायक एवं सौभाग्यवर्धक यन्त्र कहता हूँ ।

ललिताख्यपतिवश्यकरं यन्त्रम्
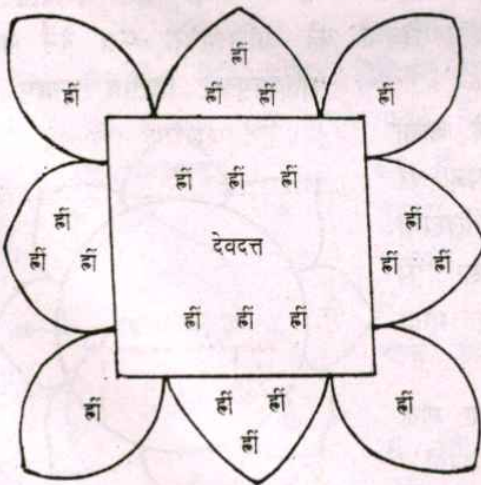
चतुर्भुज कर्णिका सहित अष्टदल कमल को लिखकर चतुर्भुज के मध्य में ३ मायाबीज (ह्रीं) लिखकर अपने पति का नाम लिखें, फिर ३ मायाबीजों को लिखे । दिशाओं के चारो दलों पर तीन-तीन मायाबीज तथा कोणों के दलों पर १-१ माया बीज लिखें । यह यन्त्र शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि को भोजपत्र पर गोरोचन, कस्तूरी एवं कुंकुम से अनार की कलम द्वारा लिखना चाहिए ।

फिर रात्रि में ७ दिन पर्यन्त उत्तराभिमुख होकर ललिता मन्त्र से उसका पूजन करना चाहिए । इसके

भूर्जे सितत्रयोदश्यां रोचनानाभिकुंकुमैः ।
विलिख्योत्तरदिग्वक्त्रो निश्यर्चेत्सप्तवासरान् ॥ ७७ ॥
तदन्ते भोजयेत्सप्त पतिपुत्रान्विताः स्त्रियः ।
ललिताप्रीतये पश्चाद्यन्त्रं धातुगतं धृतम् ॥ ७८ ॥
रूपसौभाग्यसम्पत्तिकरं प्रियवशंवदम् ।
सम्प्रोक्तं ललितायन्त्रं कामिनीनामभीष्टदम् ॥ ७९ ॥
गोरोचनाकुंकुमाभ्यां भूर्जेऽष्टदलमालिखेत् ।
साकारपुटितं नामकर्णिकायां दलेऽद्रिजा ॥ ८० ॥
दिनद्वयं निशास्विष्ट्वा भोजयित्वाङ्गना त्रयम् ।
कण्ठे धृतं भर्तृवश्यकारकं यन्त्रमुत्तमम् ॥ ८१ ॥

सुन्दरीयन्त्रमाकर्षणयन्त्रं च

भृग्वाकाशविधिक्ष्माखवह्नीञ्छान्तीन्दुभूषितान् ।
लिखेदष्टारपद्मस्य कर्णिकायां दलेष्वपि ॥ ८२ ॥

षोडशमाह – **गोरोचनेति** । सा देवदत्त सा इति मध्ये । पत्रेषु ह्रीं । गौरी देवता ॥ ८०–८१ ॥ बीजयन्त्रं सप्तदशमाह – **भृग्वेति** । भृगुः सः ।

बाद ललिता की प्रसन्नता हेतु पति एवं पुत्रवती सात स्त्रियों को भी भोजन कराना चाहिए । तदनन्तर उक्त यन्त्र को सोने, चाँदी या ताँबे की ताबीज में डाल कर कण्ठ या भुजा में धारण करना चाहिए । इस यन्त्र के धारण करने से स्त्रियों को रूप, सौभाग्य एवं संपत्ति प्राप्त होती है तथा पति वशवर्ती हो जाता है । इस प्रकार का ललिता यन्त्र स्त्रियों को अभिलषित फल देने वाला कहा गया है ॥ ७४-७९ ॥

पतिवश्यकरं द्वितीयं यन्त्रम्

सा देवदत्त सा

(xvi) **पति को वश में करने वाला यन्त्र** - गोरोचन एवं कुंकुम से भोजपत्र पर चमेली की कलम से अष्टदल लिखना चाहिए । फिर उसकी कर्णिका में 'सा' से संपुटित पति का नाम तथा दलों पर माया बीज लिखना चाहिए ॥ ८० ॥

दो दिन तक निरन्तर रात्रि में माया बीज से इसका पूजनकर ३ स्त्रियों को भोजन करावे । इस प्रकार बने श्रेष्ठ यन्त्र को धारण करने से स्त्री का पति उसके वश में हो जाता है । (इसके गौरी देवता हैं) ॥ ८१ ॥
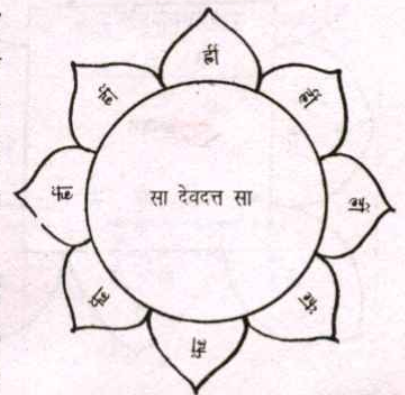
गोरोचना चन्दनाभ्यां भूर्जेऽभ्यर्चेद्दिनत्रयम्।
धृतं हेमगतं कण्ठे नार्या बाह्वोर्नरेण वा ॥ ८३ ॥
सौभाग्यदं बीजयन्त्रं प्रोक्तं दौर्भाग्यनाशनम्।
चतुर्दलं लिखेद् भूर्जे स्वासृग्युग्रक्तचन्दनैः ॥ ८४ ॥
कर्णिकायां साध्यनाम क्रोधबीजदलेष्वपि।
तद्यन्त्रं पूजयित्वाज्ये क्षिप्तमावृष्टिकृद्भवेत् ॥ ८५ ॥

आकाशो हः । विधिः कः । क्षमा लः । खं हः । वह्नी रः । एतान् शान्तीन्दुविभूषितान् ई बिन्दुयुतान् । तेन षट् कूट सीं हीं कीं लीं हीं रीं इति । सुन्दरी देवता ॥ ८२–८३ ॥ आकर्षणयन्त्रमष्टादशमाह – **चतुर्दल–** मिति । स्वरुधिरयुक्तरक्तचन्दनै क्रोधबीजं हुं । रुद्रो देवता ॥ ८४–८५ ॥

(xvii) **सौभाग्यप्रद एवं दुर्भाग्यनाशक बीजयन्त्र** - भृगु (स्), आकाश (ह्), विधि (क), क्षमा (ल्), ख (ह्) वह्नि (र्) इन वर्णो को शान्ति (ई) इन्दु अनुस्वार से युक्त करे (इस प्रकार निष्पन्न कूट 'सीं हीं कीं लीं हीं रीं' इन ६ वर्णो को अष्टदल की कार्णिका में तथा उसके प्रत्येक दलों पर भी लिखना चाहिए ॥ ८२ ॥
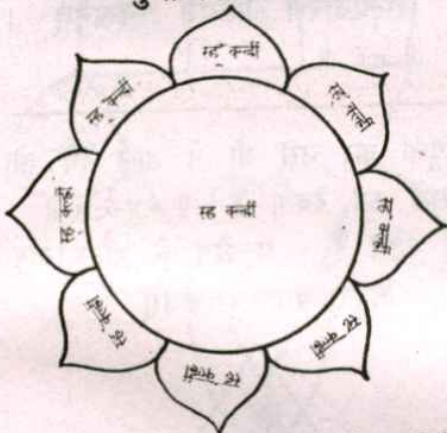
दुर्भाग्यनाशकबीजयन्त्रं

भोजपत्र पर गोरोचन एवं चन्दन से चमेली की कलम द्वारा यह यन्त्र लिखना चाहिए । तदनन्तर (सुन्दरी मन्त्र से) इस यन्त्र की तीन दिन पर्यन्त विधिवत् पूजा करनी चाहिए । फिर सोने की ताबीज में इसे डालकर स्त्री अपने कण्ठ में तथा पुरुष अपनी भुजा में धारण करे तो यह बीज यन्त्र सौभाग्य देता है और दुर्भाग्य का नाश करता है । (इस यन्त्र के सुन्दरी देवता हैं) ॥ ८२-८४ ॥
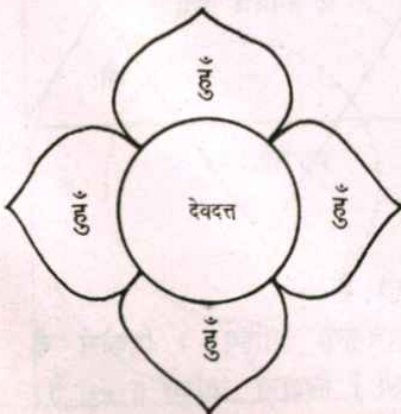
आकर्षणयन्त्रम्

(xviii) अब **आकर्षण के लिये यन्त्र** कहता हूँ -

अपने रक्त से मिश्रित लाल चन्दन से भोजपत्र पर चतुर्दल कमल का निर्माण करे । उसकी कर्णिका में साध्य का नाम लिखे तथा चारों दलों में क्रोध बीज (हुं) लिखे ॥ ८४-८५ ॥

त्रिपुरायन्त्रं मुखमुद्रणयन्त्रं च

षट्कोणे विलिखेन्नामवाङ्मनोभवमध्यतः ।
कोणेषु भृगुरौसर्गी भूर्जे रोचनयार्पितम् ॥ ८६ ॥
पूजितं त्रिपुरायन्त्रं घृतान्तर्विनिवेशितम् ।
इष्टस्याकर्षणं तेन भवेत्सप्ताह मध्यतः ॥ ८७ ॥
हरिद्रया लिखेदष्टदलं वह्न्यस्त्रकर्णिकम् ।
शिलायां मध्यतो नाम भूबीजं दलमध्यतः ॥ ८८ ॥
तदभ्यर्च्य पिधायाथ शिलया निखनेत्क्षितौ ।
वादे विवादे जायेत प्रतिवाद्यास्य मुद्रणम् ॥ ८९ ॥

त्रिपुरायन्त्रमेकोनविंशमाह – **षट्कोण** इति । वाक् ऐं । मनोभवः क्लीं । भृगुः सः औ सर्गी सौः । त्रिपुरा देवता ॥ ८६–८७ ॥ मुखमुद्रण–विंशमाह – **हरिद्रयेति** । हरिद्रया शिलायां त्रिकोणमध्यमष्टदलं कृत्वा त्रिकोणे नामनिर्माय दलेषु ग्लौं विलिख्य सम्पूज्य शिलान्तरेण पिधाय निखनेत् । उक्त फलसिद्धिः । भूमिर्देवता ॥ ८८ ॥ * ॥ ८९ ॥

फिर (दशाक्षर रुद्र मन्त्र से) उसकी पूजा कर उसे घी में डाल देवे तो यह साध्य को अवश्य आकृष्ट करता है (इसके रुद्र देवता हैं) ॥ ८४-८५ ॥

(xix) अब **आकर्षणकारक त्रिपुरा यन्त्र** कहते है - षट्कोण के भीतर वाग् बीज (ऐं) एवं कामबीज (क्लीं) के बीच में साध्य का नाम तथा षट्कोणों में औ एवं विसर्ग सहित भृगु (सौः) लिखना चाहिए ।

त्रिपुराख्यमाकर्षणयन्त्रम्

उक्त यन्त्र भोज पत्र पर गोरोचन से लिखकर, त्रिपुरा बाला अथवा त्रिपुरा भैरवी मन्त्र (द्र० ८. २-३) से इसका पूजन करने के बाद इसे घी में डाल देना चाहिए । ऐसा करने से एक सप्ताह के भीतर अभीष्ट व्यक्ति आकर्षित हो जाता है ॥ ८६-८७ ॥

(xx) अब **मुखमुद्रण यन्त्र** का विधान करते हैं -

शिला पर हल्दी से त्रिकोणगर्भित अष्टदल बनाना चाहिए । त्रिकोण के भीतर साध्य नाम तथा आठो दलों में भूबीज (ग्लौं) लिखना चाहिए ॥ ८८ ॥
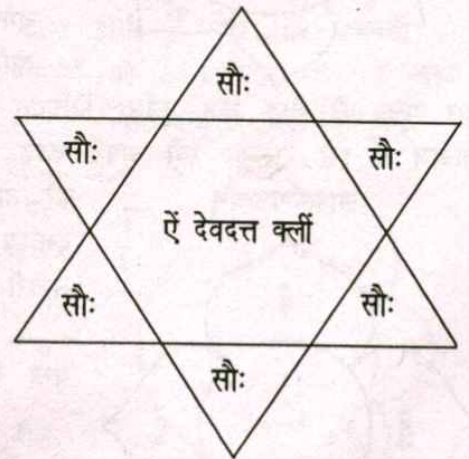
एकविंशतितममग्निभयहरयन्त्रं

वृत्ते नाम समालिख्य क्रियाकर्मसमन्वितम्।
दिक्षु वृत्ताद् बहिर्लेख्यं वकाराणां चतुष्टयम्॥ ६०॥
वेष्टितं चतुरस्रेण यन्त्रमेतत्सुसाधितम्।
गोरोचना चन्दनाभ्यां भूर्जे लिखितमुत्तमम्॥ ६१॥
एतद्यन्त्रं वृतं लोहत्रयेण भुजया धृतम्।
निवर्तयेदग्निभयं सदनेऽपि च संस्थितौ॥ ६२॥

अग्निभयहरमेकविंशमाह – **वृत्त** इति । क्रियेति 'अमुकस्याग्निभयहर' इति॥ ६०–६१॥ भुजया बाहुना । मातृका देवता॥ ६२॥

मुखमुद्रणं यन्त्रम्
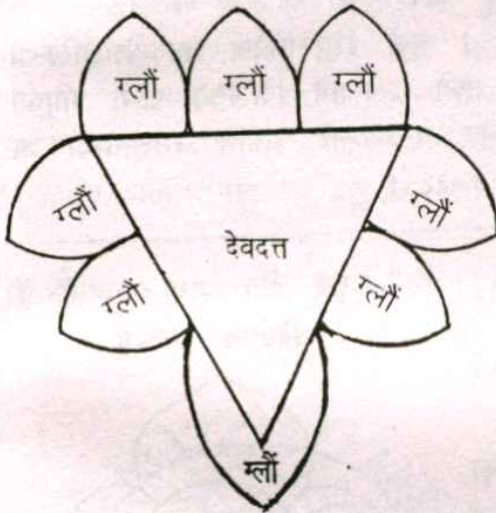
अग्निभयहरं यन्त्रम्
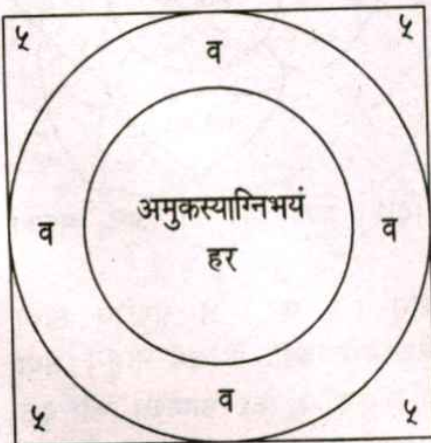
फिर भूबीज से उसका पूजन कर किसी दूसरी शिला से उसे ढँक कर भूमि में गाड़ देना चाहिए । ऐसा करने से वाद-विवाद में प्रतिवादी का मुख बन्द हो जाता है। (भूमि देवता हैं)॥ ८६॥

(xxi) अब **अग्निभयहरण यन्त्र** लिखने का विधान करते हैं -

वृत्त के भीतर नाम कर्म क्रिया (यथा देवदत्तस्य अग्निभयं हर) लिख कर वृत्त के बाहर चारों ओर चार 'वकार' लिखना चाहिए । फिर इस यन्त्र को चतुरस्त्र से वेष्टित कर देना चाहिए॥ ६०-६१॥

भोजपत्र पर गोरोचन एवं चन्दन से उक्त यन्त्र को लिख कर (मातृका मन्त्र से) पूजा कर त्रिलौह (सोने, चाँदी एवं ताँबे) से बने ताबीज में रखकर भुजा पर धारण करने से न केवल घर की प्रत्युत् अन्य स्थान में भी लगी अग्नि का भय दूर हो जाता है। (मातृका देवता हैं)॥ ६१-६२॥

(xxii) अब दो व्यक्तियों में परस्पर **विद्वेषण के हेतु यन्त्र** कहते हैं -

भोजपत्र पर शत्रु के खून से, कौवे

विद्वेषणयन्त्रकथनम्

माया पुटितमंकारं नामकर्मयुतं लिखेत् ।
चतुर्दलेऽब्जे लेखन्या वायसच्छदजातया ॥ ६३ ॥
दलेष्वपि तथा लेख्यं विरोधिक्षतजेन तत् ।
निशि संपूज्य तद्यन्त्रमोदनं विनिवेदयेत् ॥ ६४ ॥
अजारुधिरसंयुक्तं नारीमेकां च भोजयेत् ।
ततः श्मशाने शर्वस्य गेहे वा शून्यमन्दिरे ॥ ६५ ॥
निखातं तद्द्विषोर्द्वेषं जनयेदचिराद् ध्रुवम् ।
विद्वेषणमिदं यन्त्रमथो मारणमुच्यते ॥ ६६ ॥

मारणोच्चाटने यन्त्रे

लिखेदष्टदले पद्मे नामवर्मास्त्रसम्पुटम् ।

विद्वेषणं द्वाविंशमाह – **मायेति** । भूर्जे रिपुरुधिरेण काकपक्षलेखिन्या चतुर्दले 'ह्रीं अं ह्रीं' अमुकौ द्वेषयेति मध्ये दलेष्वपि विलिख्य रात्रौ संपूज्य मेषीरुधिरयुक्तमोदनं निवेद्यैकनारीं संभोज्य यन्त्रशम्भोः सद्मनि श्मशानादौ वा निखाते द्वेषसिद्धिः । गौरी देवता ॥ ६३–६६ ॥

के पंख की लेखनी बनाकर चतुर्दल लिखे । फिर उसके भीतर तथा चतुर्दलों में मायाबीज से सम्पुटित अकार अर्थात् (ह्रीं अं ह्रीं) लिखकर साध्य नाम तथा कर्म (अमुकौ विद्वेषय) लिखना चाहिए ।

विद्वेषकरं यन्त्रम्

फिर रात्रि में (मायाबीज) से इसका विधिवत् पृजन कर, बकरी के खून से मिश्रित भात का भोग लगाकर, एक स्त्री को भोजन कराना चाहिए । फिर श्मशान, निर्जन स्थान अथवा शिवालय में इसे गाड़ देवे तो निःसन्देह उन दोनो मित्र व्यक्तियों में शीघ्र ही परस्पर विद्वेष हो जाता है ॥ ६३-६६ ॥

(xxiii) यहाँ तक विद्वेषण की विधि कही गई । अब **मारण (और उच्चाटन) यन्त्र** कहता हूँ -

अष्टदल के भीतर वर्म और अस्त्र अर्थात् (हुं फट्) से संपुटित साध्य नाम लिखना चाहिए । फिर चारों दिशाओं के चारों दलों में वर्म (हुं) तथा कोणों के चारों दलों में अस्त्र (फट्) लिखना चाहिए । फिर अष्टदल को वृत्त
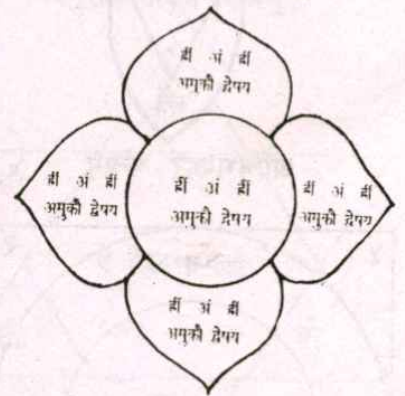
दिग्दलेष्वथ वर्मैव विदिग्दलगमस्त्रकम् ॥ ९७ ॥
वृत्तेन पद्मं सम्वेष्ट्य वर्मणा वेष्टयेच्च तत् ।
श्मशानाङ्गारमेषासृग्विषैः काकच्छदोत्थया ॥ ९८ ॥
लेखन्या लिखितं यन्त्रं कपालनरसम्भवे ।
सञ्छाद्य भस्मना तस्योपरि प्रज्वालयेद्वसुम् ॥ ९९ ॥
प्रत्यहं प्रदहेत्स्तोकं स्तोकं विंशद्दिनावधि ।
विंशेहन्यखिलं दग्धं शत्रोर्लोकान्तरप्रदम् ॥ १०० ॥
चतुर्दले लिखेन्नामदलगं सर्गिमारुतम् ।
उलूककाकरक्तेन भूर्जे भूतदिने निशि ॥ १०१ ॥

मारणं त्रयोविंशमाह – **लिखेदिति** । चिताङ्गारमेषरक्तविषैः काकपक्षलेखिन्या नरकपालेऽष्टदलान्तः हुं फट् देवदत्त फट् हुं इति विलिख्य दिग्दलेषु हुं कोणदलेषु फट् ततः पद्मं वृत्तेन तच्च वर्मणा वेष्ट्य सम्पूज्य भस्मनि प्रक्षिप्योपरि स्वल्पं स्वल्पमग्निं प्रत्यहं प्रज्वालयेद्यथादिन विंशत्या सर्वकपालस्य दाहः । एवमुक्तफलसिद्धिः । अस्त्रं देवता ॥ ९७–१०० ॥ उच्चाटनं चतुर्विंशमाह – **चतुर्दल** इति । मारुतो यः ॥ १०१ ॥ * ॥ १०२ ॥

से वेष्टित कर उसे वर्म (हुं) लिख कर वेष्टित कर देना चाहिए ॥ ९६-९८ ॥

मारणयन्त्रम्
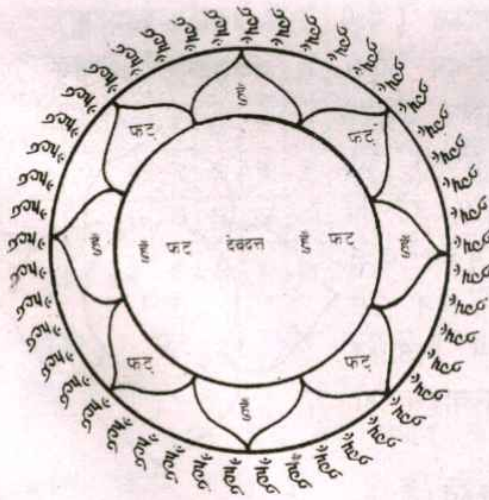
यह यन्त्र कौवे के पंख की लेखनी से तथा चिता के अङ्गार, भेंड़ के खून एवं विष मिश्रित स्याही से नर-कपाल पर लिखना चाहिए । फिर अस्त्र बीज (हुं) से इसका पूजन कर कपाल को भस्म में रखकर उसके ऊपर अग्नि प्रज्वलित कर देनी चाहिए ; इस प्रकार २० दिन तक थोड़े-थोड़े इन्धन से उसे थोड़ा-थोड़ा जलाते रहना चाहिए । २० वें दिन उसे संपूर्ण जला देना चाहिए । ऐसा करने से शत्रु भी बीस दिन के भीतर मर जाता है ॥ ९८-१०० ॥

(xxiv) अब **उच्चाटन यन्त्र** का प्रकार कहते हैं -

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन रात्रि में, साधक लाल वस्त्र पहन कर, मस्तक में लाल चन्दन लगाकर तथा गले में लाल पुष्पों की माला धारण कर,

रक्तवस्त्रधरो रक्तपुष्पमाल्यानुलेपनः ।
लिखित्वा पूजयेद्यन्त्रं रक्तैः पुष्पैश्च चन्दनैः ॥ १०२ ॥
कुमारीं भोजयेन्नित्यं दद्यात्तस्यै च दक्षिणाम् ।
एवं विंशतिघस्त्रान्तं विधाय चरमे दिने ॥ १०३ ॥
यन्त्रं तत्खण्डशः कृत्वा क्षिपेदुच्छिष्टओदने ।
दत्तं तस्मिन्वायसेभ्य उच्चाटो जायते रिपोः ॥ १०४ ॥

शान्तिकरं पञ्चविंशतितमं यन्त्रकथनम्

रोचनामृगकर्पूरकुंकुमैः शोभने दिने ।
भूर्जे प्रविलिखेद्यन्त्रं लेखन्या जातिजातया ॥ १०५ ॥
प्राक्प्रत्यग्दक्षिणोदक्च कुर्याद्रेखाष्टकं समम् ।
एवमेकोनपञ्चाशज्जायन्ते कोष्ठकास्ततः ॥ १०६ ॥

चरमेऽन्त्ये ॥ १०३ ॥ तस्मिन् यन्त्रखण्डयुक्तोच्छिष्टोदने काकेभ्यो दत्ते फलम् । वायुर्देवता ॥ १०४ ॥ शान्तिकरं पञ्चविंशमाह – **रोचनेति** । भूर्जे रोचनादिभिः पूर्वापराय तं दक्षिणोत्तराय तं च रेखाष्टकं कृत्वा तत्र बहिः कोष्ठपंक्तिष्वीशानादिष्वकारादिजकारान्तांस्तदन्तः पंक्तिषु सकारादि–भकारान्तान् । तदन्तः पंक्तिषु मकारादिसकारान्तान् मध्ये हं विलिख्य

भोजपत्र पर उल्लू और कौवे के पंख के खून से चतुर्दल पद्म के भीतर साध्य नाम तथा चारों दलों में विसर्ग सहित मारुत (यः) लिखे ॥ १०१-१०२ ॥

उच्चाटनकरं यन्त्रम्

इस यन्त्र को बना कर लाल चन्दन और लाल फूलों से (वायुबीज यं से) प्रतिदिन उसका पूजन करे और प्रतिदिन एक-एक कुमारी को भोजन करा कर उसे दक्षिणा भी देता रहे । इस प्रकार निरन्तर २० दिन पर्यन्त पूजन तथा कुमारी को भोजन करा कर, अन्तिम दिन उस यन्त्र के टुकड़े-टुकड़े कर, जूठे भात में मिलाकर कौओं को खिला दे तो शत्रु का उच्चाटन हो जाता है ॥ १०२-१०४ ॥
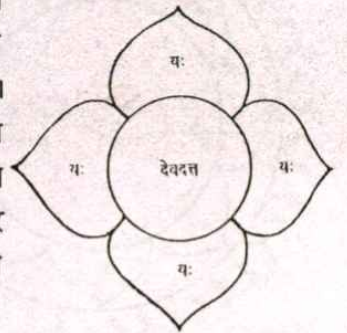
(XXV) अब **शान्तिकारक यन्त्र** कहते हैं -

किसी शुभ मुहूर्त में गोरोचन, कस्तूरी, कपूर और कुंकुम से चमेली की कलम से भोजपत्र पर यह यन्त्र इस प्रकार लिखे - पूर्व से पश्चिम तथा दक्षिण से उत्तर ८, ८, रेखाएं बनानी चाहिए । ऐसा करने से ४६

दिग्गतान्तिम पंक्तिस्थांश्चतुर्विंशतिवर्णकान् ।
अकारादि जकारान्तांल्लिखेच्चन्द्रसमन्वितान् ॥ १०७ ॥
तदन्तर्गत पंक्तिस्थाञ्झादिभान्तांश्च षोडश ।
तदन्तःस्थान्मादि सान्तान् हकारं शिष्टकोष्ठके ॥ १०८ ॥
रेखाग्रेषु त्रिशूलानि कुर्वीत रदसंख्यया ।
उपर्यधस्त्रिशूलान्तर्ह्रल्लेखासप्तकं लिखेत् ॥ १०९ ॥
एवं विलिख्य तद्यन्त्रं पूजयेद्दिवसत्रयम् ।
चण्डीपाठकरो विप्रभोजको भूमिशायकः ॥ ११० ॥
ततो लोहत्रयाविष्टं धारयेद्दोष्णि वा गले ।
उपसर्गाः कलिः कृत्याः शमं यान्ति विधारणात् ॥ १११ ॥

रेखाग्राणि संवर्ध्य त्रिशूलकाराणि यन्त्रपूर्वभाग पश्चिमत्रिशूलमध्यभागेषु सप्तसु ह्रींसप्तकं कृत्वोक्तविधिना पूजितं दोष्णि बाहौ धृतमुक्तफलदम् । मातृका देवता ॥ १०५ ॥ * ॥ १०६–१११ ॥

कोष्ठक बनते हैं । फिर ईशान कोण से आरम्भ कर पुनः ईशान पर्यन्त कोष्ठकों में अकार से ले कर जकार पर्यन्त सानुस्वार चौबीस वर्णों को लिखना चाहिए ॥ १०५-१०७ ॥

शान्तिकरं यन्त्रम्

ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं
अं	आं	इं	ईं	उं	ऊं	ऋं
जं	झं	ञं	टं	ठं	डं	ॠं
छं	भं	मं	यं	रं	ढं	ॡं
चं	बं	सं	हं	लं	णं	ऌं
ङं	फं	षं	शं	वं	तं	एं
घं	पं	नं	धं	दं	थं	ऐं
गं	खं	कं	अः	अं	औं	ओं
ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं	ह्रीं

फिर उसके नीचे वाली पंक्तियों के कोष्ठकों में अनुस्वार सहित झकार से भकार पर्यन्त १६ वर्णों को लिखे तथा उससे नीचे की पंक्तियो के कोष्ठकों में अनुस्वार सहित मकार से सकार पर्यन्त ८ वर्णों को लिखना चाहिए । तदनन्तर शेष मध्य कोष्टक में सानुस्वार हकार वर्ण लिखना चाहिए । पुनः रेखाओं के अग्रभाग में ३२ त्रिशूल बनाने चाहिए । फिर पूर्व और पश्चिम दिशा के त्रिशूलों में सात-सात मायाबीज (ह्रीं) लिखना चाहिए ॥ १०८-१०९ ॥

इस प्रकार यन्त्र का निर्माण कर साधक तीन दिन पर्यन्त चण्डीपाठ और ब्राह्मण भोजन कराते हुये भूमि पर शयन करे तथा प्रतिदिन उक्त यन्त्र का पूजन करता रहे । फिर लौहत्रय (सोना, चाँदी या ताँबे) से बने ताबीज में इस यन्त्र को रखकर भुजा या गले में धारण करे तो सभी प्रकार के उपद्रव, क्लेश एवं परकृत अभिचार, कृत्या आदि शान्त हो जाते हैं । (इसके मातृका देवता हैं) ॥ १०५-१११ ॥

शाकिनीनिवर्तकयन्त्रम्

पूर्वोक्तविधिना कुर्यात् पद्मष्टदलान्वितम् ।
मध्ये नाम्नायुतं सर्गी भृगुणाष्टदलेष्वपि ॥ ११२ ॥
पूर्ववत्पूजितं चैतत् बद्धं कण्ठे भुजे शिशोः ।
शाकिनीभूतवेताल ग्रहान् सद्यो निवर्तयेत् ॥ ११३ ॥

ज्वरहरं सप्तविंशं यन्त्रम्

धत्तूररसतो लेख्यं पितृकान्तारवाससि ।
कृष्णे वसुतिथौ भूते पुटितं भूपुरद्वयम् ॥ ११४ ॥

शाकिनीनिवर्तकं षडविंशमाह – **पूर्वोक्तेति** । पूर्वोक्तविधिना रोचनादिभिर्भूर्जे जातीलेखिन्या भृगुणा सकारेण ॥ ११२॥ **पूर्ववदिति** । दिनत्रयं चण्डीपाठादिना । मातृका देवता॥ ११३॥ ज्वरहरं सप्तविंशतिमाह – **धत्तूरेति** । कृष्णाष्टम्यां कृष्णचतुर्दश्यां वा श्मशानवस्त्रे धत्तूररसेन परस्परव्यतिभिन्नं चतुष्कोणद्वयं कृत्वाऽष्टसु कोणेषु तन्मध्येष्वपि रमिति विलिख्य मध्ये रंवेष्टितं नाम कृत्वा पूजितं श्मशाने निखातं ज्वरहरम् । अग्निर्देवता ॥ ११४ ॥

(xxvi) अब **शाकिनीनिवर्तक यन्त्र** के निर्माण का प्रकार कहते हैं -

अष्टदल पद्म के भीतर साध्य नाम जिस पर शाकिनी का उपद्रव हो तथा दलों पर विसर्ग युक्त सकार (सः) पूर्वोक्त विधि से भोजपत्र पर गोरोचन, कस्तूरी, कपूर, केशर और चन्दन से चमेली की कलम द्वारा लिखना चाहिए ॥ ११२ ॥

शाकिनीनिवर्तकं यन्त्रम्

फिर पूर्वोक्त विधि से चण्डीपाठ, ब्राह्मण भोजन तथा भूमि पर शयन करते हुये विधिवत् यन्त्र का पूजन करते रहना चाहिए । तीन दिन पर्यन्त इस विधि का संपादन करे । फिर शिशु के गले में अथवा उसकी भुजा में उक्त यन्त्र को बाँधना चाहिए । इस यन्त्र के प्रभाव से शाकिनी, भूत, वेताल और बालग्रहादि सारी बाधायें दूर हो जाती हैं ॥ ११३ ॥

(xxvii) अब **ज्वरनिवर्तक यन्त्र** कहते हैं -

कृष्णपक्ष की अष्टमी वा चतुर्दशी तिथि में श्मशान के वस्त्र पर धतूरे के
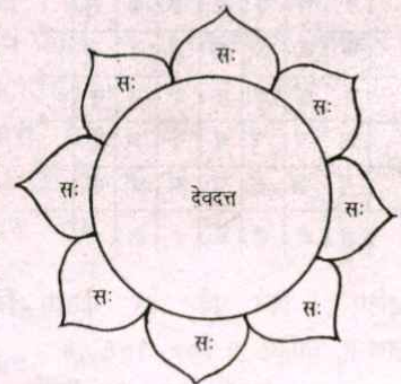
कोणान्तराले कोणेषु रेफषोडशकं लिखेत्।
दिक्षु रेफचतुष्कोणयुतं नामापि मध्यतः॥ ११५॥
पूजितं तत्पितृवने निखातं ज्वरशान्तिकृत्।

सर्पभयहरमष्टाविंशतितमं यन्त्रम्

भूर्जे सुगन्धैर्विलिखेत् पद्ममष्टदलान्वितम्॥ ११६॥
नामान्वितं कर्णिकायां दलेष्वजययायुतम्।
पूजितं विधृतं बाहौ सर्पभीतिनिवारकम्॥ ११७॥

सर्पभयहरमष्टाविंशमाह – **भूर्ज** इति । रोचनादिना भूर्जेष्टदलं कृत्वा मध्ये नामदलेषु हंस इति लिखेत् । हंसो देवता ॥ ११५–११७ ॥

ज्वरनिवर्तकयन्त्रम्
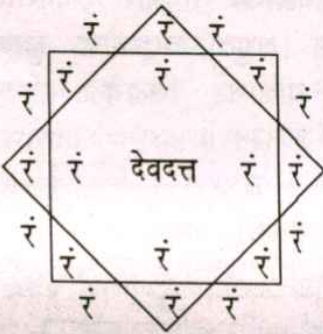
रस से परस्पर विरुद्ध दिशा में दो चतुर्भुज लिख कर उनके आठ कोणों में तथा चारों दिशा के कोणों एवं उसके दोनो ओर कुल सोलह 'रं' लिख कर, मध्य में रं वेष्टित साध्य नाम लिखे । तदनन्तर (अग्नि बीज से) उसका पूजन कर श्मशान में उसे गाड़ देवे तो ज्वर शान्त हो जाता है । (इसके अग्नि देवता हैं) ॥ ११४-११५ ॥

(xxviii) अब **सर्पभयनाशक यन्त्र** का विधान करते हैं -

सर्पभयहरं यन्त्रम्
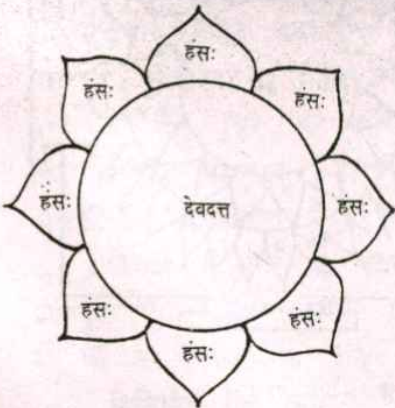
भोजपत्र पर गोरोचन आदि सुगन्धित अष्टगन्ध से अष्टदल लिखना चाहिए । उसके मध्य में साध्य का नाम तथा दलों पर अजपा मन्त्र (हंसः) लिखना चाहिए ॥ ११६-११७ ॥

फिर (अजपा मन्त्र से) इसका विधिवत् पूजन कर भुजा पर धारण करे तों यह यन्त्र सर्प से होने वाली बाधा को दूर कर देता है। (इसके हंस देवता हैं) ॥ ११६-११७॥

(xxix) अब **बन्दीमोचन यन्त्र** कहते हैं - गोरोचन, चन्दन, कपूर एवं केशर से षोडशदल कमल लिखकर दलों में सोलह स्वरों को तथा कर्णिका में मायाबीज (ह्रीं) लिखे । फिर उसके ऊपर

बन्धमोक्षकृदेकोनत्रिंशं यन्त्रम्

रोचनाहिमकर्पूरकुंकुमैः पद्ममालिखेत् ।
षोडशारं स्वरैर्युक्तं दलं मायाद्यकर्णिकम् ॥ ११८ ॥
तस्योपरिष्टाद् द्वात्रिंशद्दलं व्यञ्जनयुग्दलम् ।
पद्मं दिग्विदिशाहक्षयुक्तं क्ष्मापुरवेष्टितम् ॥ ११९ ॥
एतद्यन्त्रं कांस्यपत्रे लिखितं सप्तवासरान् ।
पूजितं भूर्जलिखितं धृतं वा बद्धमोक्षकृत् ॥ १२० ॥

सिद्धयन्त्रेषु मातृकादीनां पूजाविधिः

पूर्वोक्ताखिलयन्त्राणां सिद्धिकामेन मन्त्रिणा ।
उपास्या मातृकादेवी यद्वा भूतलिपिः परा ॥ १२१ ॥

बन्धमोक्षकृतमेकोनत्रिंशमाह – **रोचनेति** । हिमचन्दनम् । कांस्यपात्रे रोचनादिना षोडशदले मायाम् । दलेषु स्वरान् विलिख्य तदुपरि ककारादि सकारान्तार्णयुक्तं द्वात्रिंशद्दलं तदुपरि कोणेषु ह क्षयुतं चतुष्कोणं कृत्वा सप्ताहपूजितं बन्धहरम् ॥ ११८–१२० ॥ उक्तं यन्त्राणां सिद्धये मातृका भूतलिपिभैरवाणामन्यतम उपास्यः । तत्र द्वे उक्ते ॥ १२१ ॥

बन्धमोक्षकरं यन्त्रम्

बत्तिस दलों का पद्म बनाकर ककार से सकार पर्यन्त ३२ व्यञ्जन वर्णों को लिखना चाहिए । फिर इस पद्म के चारों ओर बने भूपुर के भीतर चारों दिशाओं में क्रमशः ह और चारों कोणों में क्ष लिखना चाहिए ।

इस यन्त्र को काँसे की थाली पर लिखना चाहिए तथा (मातृका मन्त्र) से ७ दिन पर्यन्त पूजन करे अथवा भोजपत्र पर लिखकर भुजा पर धारण करे तो बन्दी कारागार आदि बन्धन से शीघ्र मुक्त हो जाता है ॥ ११८-१२० ॥

अब **यन्त्रसिद्धि की उपासना विधि** कहते है -

पूर्वोक्त समस्त यन्त्रों की सिद्धि चाहने वाले साधकों को मातृका देवी या भूत लिपि की उपासना करनी चाहिए । (द्र० २०. १५) अथवा यन्त्र लिखते
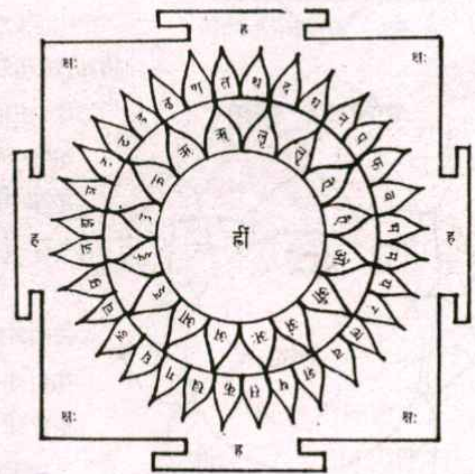
यद्वोपास्ये लेखकाले स्वर्णाकर्षणभैरवः ।

स्वर्णाकर्षणभैरवमन्त्रः

प्रणवो वाग्भवं कामशक्ती दीर्घत्रयान्विते ॥ १२२ ॥
सर्गी भृगुर्भया सेन्दुरापदुद्धारणाय च ।
अजामलान्ते बद्धाय ङेन्तो लोकेश्वरस्तथा ॥ १२३ ॥
स्वर्णाकर्षणभैरान्ते दीर्घो बालः प्रभञ्जनः ।
मम दारिद्र्य विद्वेषणायान्ते प्रणवो रमा ॥ १२४ ॥
ङेन्तो महाभैरवान्ते हृदयं कीर्तितो मनुः ।
अष्टपञ्चाशदर्णाद्यो मुनिरस्य चतुर्मुखः ॥ १२५ ॥
पंक्तिश्छन्दो देवतोक्ता स्वर्णाकर्षणभैरवः ।
नन्दाष्टार्कनवाशादिग्वर्णैरङ्गमनोः स्मृतम् ॥ १२६ ॥

भैरवमाह – **प्रणव** इति ॥ १२२ ॥ भृगुः सः भया वः ॥ १२३ ॥ दीर्घो बालः वा प्रभञ्जनो यः । रमा श्रीः ॥ १२४ ॥ हृदयं नमः । मन्त्रो यथा – ॐ ऐ क्लां क्लीं क्लूं ह्रां ह्रीं ह्रूं सः वं आपदुद्धारणाय अजामलबद्धाय लोकेश्वराय स्वर्णाकर्षणभैरवाय मम दारिद्र्य विद्वेषणाय ॐ श्रीं महाभैरवाय नम इति ॥ १२५ ॥ षडङ्गमाह – **नन्देति** । नन्दा नव । आशा दश ॥ १२६ ॥

समय स्वर्णाकर्षण भैरव की उपासना करनी चाहिए ॥ १२१-१२२ ॥

अब प्रकरण प्राप्त **स्वर्णाकर्षण भैरव मन्त्र का उद्धार** कहते हैं -

प्रणव (ॐ), वाग्भव (ऐ), फिर दीर्घत्रय सहित कामबीज (क्लां क्लीं क्लूं), तथा दीर्घत्रय सहित शक्तिबीज (ह्रां ह्रीं ह्रूं), फिर सर्गी विसर्ग सहित भृगु (सः), इन्दु सहित भया (वं), फिर 'आपदुद्धारणाय', 'अजामल', 'बद्धाय', फिर चतुर्थ्यन्त लोकेश्वर (लोकेश्वराय), 'स्वर्णाकर्षणभैर', फिर दीर्घबाल (वा), फिर प्रभञ्जन (य), फिर 'मम दारिद्र्य विद्वेषणाय' के बाद प्रणव (ॐ), रमा (श्रीं), फिर चतुर्थ्यन्त महाभैरव (महाभैरवाय) और अन्त में हृदय (नमः) जोड़ने से ५८ अक्षरों का स्वर्णाकर्षण भैरव मन्त्र निष्पन्न होता है ॥ १२२-१२५ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - ॐ ऐं क्लां क्लीं क्लूं ह्रां ह्रीं ह्रूं सः वं आपदुद्धारणाय अजामलबद्धाय लोकेश्वराय स्वर्णाकर्षणभैरवाय मम दारिद्र्यविद्वेषणाय ॐ श्रीं महाभैरवाय नमः (५८) ॥ १२२-१२५ ॥

विनियोग एवं न्यास - इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि हैं, पंक्ति छन्द है तथा स्वर्णाकर्षण भैरव देवता हैं । मन्त्र के क्रमशः ६, ८, १२, ६, १०, और १० वर्णों से षडङ्गन्यास कहा गया है अथवा षड्दीर्घ सहित कामबीज (क्लीं) और

अथवा कामशक्तिभ्यां दीर्घाढ्याभ्यां षडङ्गकम् ।
पारिजातद्रुकान्तारे स्थिते माणिक्यमण्डपे ।
सिंहासनगतं ध्यायेद् भैरवं स्वर्णदायिनम् ॥ १२७ ॥
गाङ्गेयपात्रं डमरुं त्रिशूलं
वरं करैः संदधतं त्रिनेत्रम् ।
देव्यायुतं तप्तसुवर्णवर्णं
स्वर्णाकृषं भैरवमाश्रयामः ॥ १२८ ॥
लक्षं जपेद्दशांशेन पायसैर्जुहुयात्सुधीः ।
शैवे पीठे यजेद्देवमङ्गदिक्पालहेतिभिः ॥ १२६ ॥

अथवेति । क्लां ह्रां हृत् क्लीं ह्रीं शिर इत्यादि । ध्यानमाह – **पारिजातेति**। पारिजातवनमध्यगतमाणिक्यमण्डपे हेमासनगतं ध्यायेत् । गाङ्गेयपात्रं हेमभाजनं वरं च दक्षयोः । त्रिशूलडमरुवामयोः ॥ १२७–१२८ ॥ हेतयो वज्राद्याः ॥ १२६ ॥

शक्ति बीज (ह्रीं) से षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १२५-१२७ ॥

विनियोग - अस्य श्रीस्वर्णाकर्षणभैरवमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः पंक्तिच्छन्दः स्वर्णाकर्षणभैरवो देवताऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ॐ ऐं क्लां क्लीं क्लूं ह्रां ह्रीं ह्रूं सः हृदयाय नमः, वं आपदुद्धारणाय शिरसे स्वाहा, अजामलवद्धाय लोकेश्वराय शिखायै वषट्, स्वर्णाकर्षण भैरवाय कवचाय हुम्, मम दारिद्र्यविद्वेषणाय नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रीं महाभैरवाय नमः अस्त्राय फट्,

षडङ्गन्यास की दूसरी विधि - क्लां ह्रां हृदयाय नमः,
क्लीं ह्रीं शिरसे स्वाहा, क्लूं ह्रूं शिखायै वषट्,
क्लैं ह्रैं कवचाय हुम्, क्लौं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्,
क्लाः ह्रः अस्त्राय फट् ॥ १२५-१२७ ॥

अब **स्वर्णाकर्षण भैरव का ध्यान** कहते हैं -

पारिजात वृक्षों के वन में स्थित माणिक्य निर्मित मण्डप में रत्न सिंहासन पर विराजमान स्वर्ण प्रदान करने वाले स्वर्ण भैरव का ध्यान करना चाहिए ॥ १२७ ॥

अपने चारों हाथों में क्रमशः गाङ्गेय पात्र (स्वर्णपात्र), डमरु, त्रिशूल और वर धारण किये हुये, त्रिनेत्र, तप्तसुवर्ण जैसी आभा वाले, अपनी देवी के साथ विराजमान स्वर्णाकर्षण भैरव का मैं आश्रय लेता हूँ ॥ १२८ ॥

पुरश्चरण - विद्वान् साधक उक्त स्वर्णाकर्षण मन्त्र का एक लाख जप करे । फिर खीर से दशांश होम करे । शैव पीठ पर अङ्ग पूजा, दिक्पालों और उनके आयुधों के साथ आवरण पूजा करे ॥ १२६ ॥

विमर्श - यन्त्र निर्माण विधि - स्वर्णाकर्षण भैरव के पूजन के लिये षट्कोण कर्णिका तथा भूपुर सहित यन्त्र का निर्माण करना चाहिए ।
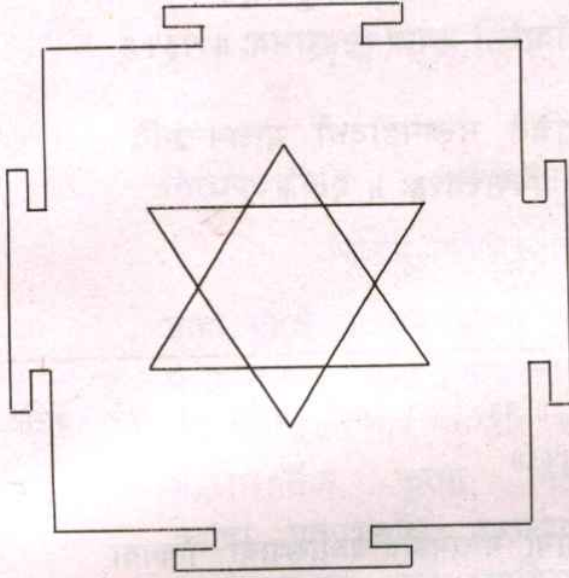
स्वर्णाकर्षणभैरवपूजनयन्त्रम्

पीठ-पूजाविधि - सर्वप्रथम २०. १२७-१२८ में वर्णित स्वर्णाकर्षण भैरव का ध्यान कर मानसोपचार से पूजन कर विधिवत् अर्घ्यस्थापन कर 'ॐ आधारशक्तये नमः' से 'ह्रीं ज्ञानात्मने नमः' पर्यन्त सामान्य विधि से पीठ देवताओं का पूजन कर 'वामा' आदि पीठ शक्तियों का पूजन करना चाहिए । (द्र० १६. २२-२६)

इसके बाद 'ॐ नमो भगवते सकलगुणात्मकशक्तियुक्तायानन्ताय योगपीठात्मने नमः' इस पीठ मन्त्र से आसन देकर मूलमन्त्र से मूर्ति स्थापित कर ध्यान आवाहनादि उपचारों से पूजन कर पुष्पाञ्जलि समर्पण पर्यन्त सारी विधि संपादन करनी चाहिए ।

अब **आवरण पूजा का विधान** कहते हैं - सर्वप्रथम कर्णिका के आग्नेयादि कोणों में मध्य में तथा चतुर्दिक्षु में षडङ्गपूजा करनी चाहिए । यथा -

क्लां ह्रां हृदयाय नमः क्लीं ह्रीं शिरसे स्वाहा,
क्लूं ह्रूं शिखायै वषट् क्लैं ह्रैं कवचाय हुम,
क्लौं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् क्लः ह्रः अस्त्राय फट्

पश्चात् भूपुर के पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों की निम्न रीति से पूजा करनी चाहिए । यथा -

ॐ लं इन्द्राय नमः पूर्वे
ॐ रं अग्नये नमः आग्नेये, ॐ मं यमाय मनः दक्षिणे,
ॐ क्षं निर्ऋतये नमः नैर्ऋत्ये, ॐ वं वरुणाय नमः पश्चिमे
ॐ यं वायवे नमः वायव्ये, ॐ सं सोमाय नमः उत्तरे
ॐ हं ईशानाय नमः ऐशान्ये, ॐ आं ब्रह्मणे नमः ऊर्ध्वम्
ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः अधः ।

फिर भूपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं में दिक्पालों के आयुधों की पूजा करनी चाहिए । यथा - ॐ वं वज्राय नमः, ॐ शं शक्तये नमः,
ॐ दं दण्डाय नमः, ॐ खं खड्गाय नमः, ॐ पां पाशाय नमः,
ॐ अं अंकुशाय नमः, ॐ गं गदायै नमः, ॐ शूं शूलाय नमः

सिद्ध मनुं जपेन्नित्यं त्रिशतीं मण्डलावधि।
दारिद्र्यं दूरमुत्क्षिप्य जायते धनदोपमम् ॥ १३० ॥
जपादिभिर्मनौ सिद्धे यन्त्रेभ्यः सिद्धिमाप्नुयात्।
सुवर्णमेधते गेहे नैवारेः स्यात् पराभवः ॥ १३१ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ यन्त्रमन्त्रादि निरूपणं नाम विंशस्तरङ्गः ॥ २० ॥

मण्डलमेकोनपञ्चाशद्दिनानि ॥ १३० ॥ एधते वर्द्धते । अरेः शत्रोः सकाशात् पराभवो न स्यात् ॥ १३१ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां यन्त्रमन्त्रादिकथनं नाम विंशस्तरङ्गः ॥ २० ॥

ॐ चं चक्राय नमः ॐ पं पद्माय नमः

इस प्रकार आवरण पूजा कर पुनः धूप, दीपादि उपचारों से स्वर्णाकर्षण भैरव की विधिवत् पूजा कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिए ॥ १२९ ॥

उक्त विधि से जो साधक ४९ दिन पर्यन्त ३०० की संख्या में जप करता है उसकी दरिद्रता दूर हो जाती है तथा वह कुबेर तुल्य वैभवशाली बन जाता है ॥ १३० ॥

जप आदि के द्वारा यन्त्रों के सिद्ध हो जाने पर यन्त्रों से भी सिद्धि प्राप्त हो जाती है । भैरवाकर्षण यन्त्र के जप के प्रभाव से घर में सुवर्ण की वृद्धि होती है तथा शत्रु से कभी पराभव नहीं प्राप्त होता ॥ १३१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के बीसवें तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २० ॥

अथ एकविंशः तरङ्गः

नित्यपूजाविधिं सर्वदेवसाधारणं ब्रुवे ।

नित्यपूजाविधिकथनम्

ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय कृत्वा शौचादिकं सुधीः ॥ १ ॥
परिधायाम्बरं शुद्धं मन्त्रस्नानं विधाय च ।
प्रविश्य देवतागारं कुर्यात् सम्मार्जनादिकम् ॥ २ ॥
मङ्गलारार्तिकं कृत्वा निर्माल्यमपसारयेत् ।
दद्यात् पुष्पाञ्जलिं दन्तधावनाचमने अपि ॥ ३ ॥
नमस्कृत्यासने शुद्धे उपविश्य गुरुं स्मरेत् ।
शिरःस्थशुक्लपद्मस्थं प्रसन्नं द्विभुजाक्षिकम् ॥ ४ ॥

---

* नौका *

एवं मन्त्रजातं कथयित्वा देवतानां कामनाविशेषेण यन्त्राणि च निरूप्य सर्वदेवसाधारणं पूजाविशेषं वक्तुमुपक्रमते – **नित्येति** ॥ १–३ ॥ द्वौ भुजौ द्वे अक्षिणी च यस्य स द्विभुजाक्षिकः तम् ॥ ४–५ ॥ * ॥ ६–७ ॥

---

* अरित्र *

यहाँ तक मन्त्र समूहों का तथा कामना विशेष में प्रयुक्त किये जाने वाले मन्त्रों का निरूपण कर ग्रन्थकार **सर्वदेव साधारण पूजा विधान** कहने का उपक्रम करते हैं ।

अब मैं **देवताओं की सामान्य रूप से की जाने वाली पूजा विधि** को कहता हूँ -

बुद्धिमान् साधक ब्राह्म मुहूर्त में उठ कर शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र धारण कर, मन्त्र स्नान करके देव पूजा गृह में प्रवेश करे और देवतागार का सम्मार्जन आदि कार्य करे । तदनन्तर मङ्गला आरती करके निर्माल्य को हटा कर दूर करे । फिर देवता को पुष्पाञ्जलि समर्पित कर उन्हें दन्तधावन तथा आचमनार्थ जल प्रदान करे ॥ १-३ ॥

फिर अपने इष्टदेव को नमस्कार कर शुद्ध आसन पर बैठकर अपने गुरु का स्मरण करे । प्रसन्नता की मुद्रा में शिरःस्थ श्वेत कमल पर आसीन दो

अहं ब्रह्मास्मि सद्रूपं नित्यमुक्तं न शोकभाक्।
गुरुदेवात्मनामित्थमैक्यं स्मृत्वार्चयेत तम् ॥ ५॥

श्लोकद्वयेनेष्टदेवताप्रार्थनम्

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव
श्रीनाथविष्णो भवदाज्ञयैव ।
प्रातः समुत्थाय तवप्रियार्थं
संसारयात्रा - मनुवर्तयिष्ये ॥ ६ ॥
जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति-
र्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥ ७ ॥
एतच्छ्लोकद्वयेनेष्टदेवतां प्रार्थयेद् बुधः ।
श्रीनाथविष्णो स्थाने तु कार्य ऊहोऽन्य दैवतः ॥ ८ ॥
देवतागुणनामादि स्मरन् स्नातुमथो व्रजेत् ।
स्नानमान्तरबाह्याख्यं द्विविधं कथितं बुधैः ॥ ९ ॥

श्रीनाथविष्णो इत्यस्य स्थले विश्वेश शम्भो भवदाज्ञयैवेति शिवोपासकेन भवानि दुर्गे इत्यम्बोपासकेनोहो विधेयः ॥ ८-९ ॥

भुजा और दो नेत्रों वाले 'अहं ब्रह्मास्मि' इस प्रकार की भावना में लीन, नित्यमुक्त सर्वथा शोकरहित गुरुदेव का स्मरण कर पुनः उनके स्वरूप में अपनी एकता की भावना कर उनका पूजन करे ॥ ४-५ ॥

तदनन्तर - त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव ।
प्रातः समुत्थाय तवप्रियार्थ संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥
जानामि धर्म न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्म न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन यथानियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥

इन दो श्लोकों से अपने इष्टदेव की प्रार्थना करे । प्रार्थना में जिसके इष्टदेव विष्णु हों उसे इसी प्रकार की प्रार्थना करनी चाहिये ॥ ६-८ ॥

किन्तु शिवोपासक को 'श्रीनाथविष्णो' की जगह 'विश्वेश शम्भो भवदाज्ञयैव' दुर्गोपासक को 'भवानि दुर्गे भवदाज्ञयैव' इसी प्रकार छन्दोनुकूल ऊह कर अपने इष्टदेव का संबुद्ध्यन्त तत्तत्पदों का उच्चारण कर प्रार्थना करनी चाहिये ॥ ८ ॥

इसके बाद अपने इष्टदेव के नाम और गुणों का स्मरण करते हुये स्नानार्थ नदी, कूप, अथवा तडागादि में जाना चाहिये । विद्वानों ने आभ्यन्तर

आन्तरबाह्यस्नानकथनम्

कोटिसूर्यप्रतीकाशं निजभूषायुधैर्युतम् ।
शिरःस्थं संस्मरेद्देवं तत्पादोदकधारया ॥ १० ॥
विशन्त्या ब्रह्मरन्ध्रेण निजं देहं विशुद्धया ।
प्रक्षाल्यान्तर्गतं पापं विरजो जायते नरः ॥ ११ ॥
एवं कृत्वाऽऽन्तरं स्नानं स्नायाद्वेदोक्तमार्गतः ।
अघमर्षणसूक्तं च स्मरेदन्तर्जले सुधीः ॥ १२ ॥

आन्तरं स्नानमाह – **कोटीति** ॥ १०–११ ॥ वेदोक्तमार्गतः स्वशाखोक्तविधिना तत्तच्छाखानां भिन्नत्वान्न लिखितः । अघमर्षणसूक्तम् – ऋतं च सत्यं चेत्यादिकानामृचां समूहविशेषः । अघमर्षणदृष्टमनुष्टुपच्छन्दस्कं भाववृत्तदेवताकम् ॥ १२ ॥ * ॥ १३ ॥

और बाह्य भेद से स्नान के दो भेद कहे हैं ॥ ९ ॥

प्रथम **आभ्यन्तर स्नान का विधान** कहते हैं - करोड़ो सूर्य के समान तेजस्वी अपने दिव्य आभूषणों एवं आयुधों को धारण किये शिरःस्थ सहस्त्रदल पर आसीन अपने इष्टदेव का स्मरण करते हुये ब्रह्मरन्ध्र से आती हुई उनके चरणोदक की धारा से अपने शरीर के समस्त पापों को धो कर बहा देना और पाप रहित हो जाना यह आन्तर स्नान कहा जाता है ॥ १०-११ ॥

इस प्रकार आभ्यन्तर स्नान कर वैदिक मार्ग से अपनी अपनी शाखा के अनुसार बाह्य स्नान करे । फिर जल में अघमर्षण सूक्त का जप करे ॥ १२ ॥

विमर्श - वैदिक शाखाओं के अनेक भेद होने से उस प्रकार के स्नान के अनेक भेद हैं । अतः ग्रन्थ विस्तार के भय से उसका निर्देश आवश्यक नहीं है ।

संकल्प - जल में तीर्थावाहन, मृत्तिका प्रार्थना, मृत्तिका द्वारा अङ्ग लेपन 'ॐ आपो हिष्ठा मयो भुवः', इत्यादि मन्त्रों से जल द्वारा शिरः प्रोक्षण, तदनन्तर सूर्याभिमुख नाभि मात्र जल में स्नान, पुनः 'ॐ चित्पतिर्मा पुनातु' इत्यादि मन्त्रों से शरीर का पवित्रीकरण करने के पश्चात् अघमर्षण सूक्त का जप करना चाहिये ।

अघमर्षण का विनियोग - ॐ अघमर्षणसूक्तस्य अघमर्षणऋषिरनुष्टुप्छन्दः भाववृतो देवता अघमर्षणे विनियोगः ।

अघमर्षण सूक्त - यथा - ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोध्यजायत ततो रात्र्यजायत, ततः समुद्रो अर्णवः, समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत, अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी सूर्याच्चन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ १२ ॥

मन्त्रस्नानकथनम्

मन्त्रस्नानं ततः कुर्यात् तत्प्रकारोऽधुनोच्यते ।
प्राणानायम्य मूलेन कृत्वा न्यासं षडङ्गकम् ॥ १३ ॥
आदित्यमण्डलात्तीर्थान्याह्वयेत् सृणिमुद्रया ।
मन्त्रत्रयेणाम्बुमध्ये विलिखेत् तन्मनुत्रयम् ॥ १४ ॥
ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे ।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर ॥ १५ ॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥ १६ ॥
आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिहसुन्दरि ।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते ॥ १७ ॥
ततो वमिति बीजेन योजयेत् तानि तज्जले ।
अग्न्यर्केग्लौमण्डलानि तत्र सञ्चिन्तयेत्पुनः ॥ १८ ॥
मन्त्रयेत् तेन मन्त्रेण रविवारं ततो जलम् ।
कवचेनावगुण्ठ्याथ रक्षेदस्त्रेण तत् पुनः ॥ १९ ॥

सृणिमुद्रांकुशमुद्रा प्रोक्ता ॥ १४ ॥ ब्रह्माण्डेत्यादि श्लोकत्रयं पुराणोक्तं तीर्थावाहनमन्त्राः ॥ १५–१७ ॥ ग्लौः चन्द्रः ॥ १८ ॥ तेन मन्त्रेण वं इति बीजेन । कवचेन हुं इति बीजेन । अस्त्रेण फडिति मन्त्रेण ॥ १९ ॥

अघमर्षण सूक्त के बाद मन्त्र स्नान करना चाहिये वह इस प्रकार है - प्रथम प्राणायाम करे फिर मूल मन्त्र से षडङ्गन्यास करे ॥ १३ ॥

फिर अंकुश मुद्रा दिखा कर निम्न तीन मन्त्रों से जल में तीर्थों का आवाहन करना चाहिये -

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे ।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर ॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेस्मिन्सन्निधिं कुरु ॥
आवाहयामि त्वां देवि स्नानार्थमिहसुन्दरि ।
एहि गङ्गे नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते ॥ १४-१७ ॥

तत्पश्चात् 'वं' इस सुधाबीज को पढ़कर उस तीर्थजल में मिला देना चाहिये । तदनन्तर उस जल में अग्नि, सूर्य और ग्लौं अर्थात् चन्द्रमण्डलों का उस जल में ध्यान करना चाहिये । फिर 'वं' इस मन्त्र को १२ बार पढ़कर उस जल में मिलाकर कवच (हुं) इस मन्त्र से जल को गोंठ देना चाहिये, तदनन्तर अस्त्र मन्त्र (फट्)

मूलमन्त्रेणेशवारमभिमन्त्र्य नमेज्जलम् ।
मन्त्रेण वक्ष्यमाणेन देवतां मनसि स्मरन् ॥ २० ॥
आधारः सर्वभूतानां विष्णोरतुलतेजसः ।
तद्रूपाश्च ततो जाताश्चापस्ताः प्रणमाम्यहम् ॥ २१ ॥
मज्जेज्जले स्मरंस्तत्र मूलं वै देवतां तथा ।
उन्मज्ज्य सिञ्चेत् कं सप्तकृत्वः कलशमुद्रया ॥ २२ ॥
मूलेनाथ चतुर्मन्त्रैरभिषिञ्चेन्निजां तनुम् ।
लिख्यन्ते तेऽथ चत्वारो मन्त्राः शंकरभाषिताः ॥ २३ ॥
सिसृक्षोर्निखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजापतेः ।
मातरः सर्वभूतानामापो देव्यः पुनन्तु माम् ॥ २४ ॥
अलक्ष्मीं मलरूपां यां सर्वभूतेषु संस्थिताम् ।
क्षालयन्ति निजस्पर्शादापो देव्यः पुनन्तु माम् ॥ २५ ॥

ईशानवारमेकादशवारं वक्ष्यमाणेन आधार इत्यादिना । देवताकृति ध्यानोक्तम् । कं शिरः । कलशमुद्रया कुम्भमुद्रया । हस्तद्वयेन सावकाशिकमुष्टिकरेण कुम्भमुद्रा ॥ २०–२३ ॥ * ॥ २४–२८ ॥

इस मन्त्र से जल की रक्षा करनी चाहिये ॥ १८-१९ ॥

फिर मूल मन्त्र से ११ बार उस जल का अभिमन्त्रण कर नमन करे और 'आधारः' इस वक्ष्यमाण मन्त्र से जल देवता की आकृति का ध्यान कर उन्हें प्रणाम करना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

फिर उस जल में देवताओं का स्मरण करते हुये मूल मन्त्र से स्नान करना चाहिये । तदनन्तर जल से ऊपर आ कर कलश मुद्रा दिखाकर ७ बार अपने शिर पर अभिषेक करना चाहिये ॥ २२ ॥

विमर्श - कलशमुद्रा - यथा - हस्तद्वयेन सावकशिकमुष्टिकरेण कुम्भमुद्रा ॥

दोनों हाथ की मुट्ठी में अवकाश रखकर एक में मिलाने से कलश मुद्रा निष्पन्न होती है ॥ २२ ॥

फिर मूल मन्त्र के साथ निम्न चार मन्त्रों को पढ़कर अपने शरीर पर जल का अभिषेक करना चाहिये । आचार्य शंकर द्वारा कहे गए इन चारों मन्त्रों को अब कहते हैं - सिसृक्षोर्निखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजापतेः ।
मातरः सर्वभूतानामापो देव्यः पुनन्तु माम् ॥ १ ॥
अलक्ष्मीं मलरूपां यां सर्वभूतेषु संस्थिताम् ।
क्षालयन्ति निजस्पर्शादापो देव्यः पुनन्तु माम् ॥ २ ॥
यन्मे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ।

यन्मे केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु वो नमः॥ २६॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम्।
सन्तोषः क्षान्तिरास्तिक्यं विद्या भवतु वो नमः॥ २७॥
विप्रपादोदकं पीत्वा शालग्रामशिलाजलम्।
शङ्खेन त्रिः परिभ्राम्य प्रक्षिपेन्निजमस्तके॥ २८॥

देवमनुष्यपितृतर्पणम्

ततो देवान्मनुष्यांश्च संक्षेपात्तर्पयेत् पितॄन्।
वस्त्रं सम्पीड्य संक्षाल्य सक्थिनी वाससी धरेत्॥ २९॥

देवमनुष्यान् पितृंश्च संक्षेपात्तर्पयेत् – ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम् – सनकादयो मनुष्यास्तृप्यन्ताम् – काव्यवाडनलादयः पितरस्तृप्यन्ताम् – तर्पणार्हा अस्मत्पितरस्तृप्यन्तामिति संक्षेपतर्पणम् । सक्थिनी ऊरू ॥ २९–३० ॥

ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद् घ्नन्तु वो नमः ॥ ३ ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम् ।
सन्तोषः क्षान्तिरास्तिक्यं विद्या भवतु वो नमः ॥ ४ ॥ ॥ २३-२७ ॥

फिर ब्राह्मण का चरणोदक शालिग्रामशिला चरणामृत पीकर शंख स्थित जल को शालिग्राम शिला के चारों ओर ३ बार घुमाकर अपने शिर को अभिषिक्त करना चाहिये ॥ २८ ॥

फिर देवमनुष्य एवं पितरों का संक्षेप में तर्पण करना चाहिये । फिर स्नान किये गये वस्त्र का प्रक्षालन कर उसे निचोड़ कर रख देना चाहिए और दोनों घुटनों तक धौत वस्त्र धारण कर पश्चात् उत्तरीय वस्त्र धारण करना चाहिये ॥ २९ ॥

विमर्श – संक्षेप में तर्पण विधि – नाभिमात्र जल में खड़े हो कर 'ॐ ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्' से देवताओं का, 'गौतमादयो ऋषयस्तृप्यन्ताम्' से एक एक अञ्जलि जल देकर, 'सनकादयः मनुष्यास्तृप्यन्ताम्' इस मन्त्र से दो अञ्जलि जल प्रदान कर देवता, ऋषि और मनुष्यों का तर्पण करे । फिर 'कव्यवाडनलादयो देवपितरस्तृप्यन्ताम्' अमुक गोत्राः अस्मत्पितापितामहप्रपितामहाः सपत्नीकास्तृप्यन्ताम् अमुकगोत्राः अस्मन्मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकाः तृप्यन्ताम् – से देव पितरों एवं स्वपितरों को तीन तीन अञ्जलि जल प्रदान कर –

'आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥

श्लोक से समस्त पितरों को तीन तीन अञ्जलि जल प्रदान करे । इस

तीर्थाभावात् स्वसदने स्नायादुष्णेन वारिणा।
अल्पा एव प्रवक्तव्यास्तत्र मन्त्रा यथोचिताः ॥ ३० ॥
हस्तयोरप आदाय कुर्यात्तत्राघमर्षणम्।
भस्मना गोरजोभिर्वा स्नायान्मन्त्रेण वाक्षमः ॥ ३१ ॥

वैष्णवशैवयोस्तिलकविधिः

तत आचम्य पीठस्थस्तिलकं रचयेत्सुधीः।
केशवाद्यभिधानैस्तु स्थानेषु द्वादशस्वपि ॥ ३२ ॥
ललाटोदरहृत्कण्ठदक्षपार्श्वांसके ततः।
वामपार्श्वांसकर्णे च पृष्ठदेशे ककुद्यपि ॥ ३३ ॥
ललाटे तु गदां कुर्याद्धृदये नन्दकं पुनः।
शङ्खचक्रं भुजद्वन्द्वे शार्ङ्गबाणं च मूर्द्धनि ॥ ३४ ॥
इत्थं तु वैष्णवः कुर्याच्छैवः कुर्यात् त्रिपुण्ड्रकम्।
अग्निहोत्रोत्थितं भस्मादायाग्निरिति मन्त्रतः ॥ ३५ ॥

अक्षमो रोगादिना ॥ ३१ ॥ * ॥ ३२–३३ ॥ नन्दकं खड्गम् ॥ ३४ ॥ अग्निरिति मन्त्रेण भस्मादाय गृहीत्वा । स यथा – अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वं ह वा इदं भस्मम् एतानि

प्रकार संक्षेप में पितृतर्पण विधि कही गई ॥ २६ ॥

यदि तीर्थ न मिल सके तो घर पर ही गर्म जल से स्नान करना चाहिये । घर पर स्नान करते समय यथोचित स्वल्प मन्त्र का ही प्रयोग करना चाहिये तथा हाथ में जल लेकर अघमर्षण मन्त्र पढ़ना चाहिये (द्र० २१. १२) ज्वरादि रोगों के कारण स्नान करने में असमर्थ होने पर भस्म अथवा गोधूलि से ही स्नान कर लेना चाहिये ॥ ३०-३१ ॥

तदनन्तर बुद्धिमान साधक आसन पर बैठकर आचमन करे, फिर केशव आदि १२ नामों से शरीर के १२ अङ्गो पर तिलक लगावे । ललाट, उदर, हृदय, कण्ठ, दक्षिणपार्श्व, दाहिना कन्धा, वामपार्श्व, बाया कन्धा, दाहिना कान, वाँया कान पीठ एवं ककुद् - ये १२ अङ्ग तिलक लगाने के लिये कहे गये हैं । ललाट पर गदा, हृदय पर खड्ग दोनों भुजाओं पर शंख एवं चक्र, शिर पर धनुष बाण की आकृति इस प्रकार **वैष्णवों को तिलक लगाने का विधान** कहा गया है ॥ ३२-३४ ॥

शैवों के त्रिपुण्ड लगाने का विधान इस प्रकार है - 'अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म, जलमिति भस्म, स्थलमिति भस्म, व्योमेति भस्म सर्वं ह वा इदं भस्मम् एतानि चक्षूंषि तस्माद् व्रतमेतत्पाशुपतं यद् भस्मनाङ्गानि संस्पृशेत्' इस मन्त्र

अभिमन्त्र्य त्र्यम्बकेन कुर्यात् पञ्चत्रिपुण्ड्रकम्।
क्रमात्तत्पुरुषाघोरसद्योवामेशनामभिः ॥ ३६ ॥
फलांसोदरवक्षस्तु ऋग्भिस्तेषामथापि वा।
कृत्वा सन्ध्यां स्वशाखोक्तां मन्त्रसन्ध्यां समाचरेत् ॥ ३७ ॥

मन्त्रसन्ध्याविधिः

प्राणायामषडङ्गे च कृत्वादाय करे जलम्।
त्रिर्जप्त्वा मूलमन्त्रेण त्वाचमेत्त्रिर्जपन्मनुम् ॥ ३८ ॥
पुनर्दक्षकरेणाम्भो गृहीत्वा वामहस्ततः।
निधाय तस्माच्योतद्भिर्बिन्दुभिः सप्तधा तनुम् ॥ ३६ ॥
सम्मार्ज्य मूलमन्त्रेणावशिष्टं तत्पुनर्जलम्।
दक्षहस्ते समादाय नासिकान्तिकमानयेत् ॥ ४० ॥

चक्षूंषि तस्माद्व्रतमेतत्पाशुपतं यद्भस्मनांगानि संस्पृशेदिति ॥ ३५ ॥ ततस्त्र्यम्बकं यजामह इति पूर्वोक्त मन्त्रेणाभिमन्त्र्य क्रमाद् भालादिषु तत्पुरुषादिनामभिः पञ्चत्रिपुण्ड्रकं कुर्यात् । यथा – तत्पुरुषाय नमो भाले । अघोराय नमो दक्षांसे। सद्योजाताय नमो वामांसे । वामदेवाय नमो जठरे । ईशानाय नमो वक्षसि । यद्वा तत्पुरुषादिनामस्थले तत्पुरुषाय विद्महे०, अघोरेभ्यः०, सद्योजात प्रपद्यामि०, वामदेवाय नमः०, ईशानः सर्वविद्याना० – इति पञ्चभिरेव मन्त्रैस्त्रिपुण्ड्रकाणि विधेयानि ॥ ३६–३७ ॥ मन्त्रसंध्यामाह – **प्राणायामेति** ॥ ३८–४१ ॥

से अग्निहोत्र की भस्म लेकर 'ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्' -

इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित करे। पश्चात् 'तत्पुरुषाय नमः' इस मन्त्र से मस्तक में, 'अघोराय नमः' इस मन्त्र से दाहिने कन्धे में, 'सद्योजाताय नमः' इस मन्त्र से बायें कन्धे में, 'वामदेवाय नमः' इस मन्त्र से जठर में, 'ईशानाय नमः' इस मन्त्र से वक्षःस्थल में त्रिपुण्ड लगाये,अथवा उपर्युक्त नामों के स्थान पर तत्पुरुषाय विद्महे अघोरेभ्यः सद्योजातं प्रपद्यामि०, वामदेवाय नमः०, ईशानः सर्वविद्यानाम्० इन पाँच ऋचाओं से उपर्युक्त पाँचों स्थानों में त्रिपुण्ड लगावे । फिर अपनी शाखा के अनुसार वैदिकसन्ध्या करके मन्त्रसन्ध्या करनी चाहिये ॥ ३५-३७ ॥

अब मन्त्र संध्या की विधि कहते है -

प्राणायाम एवं षडङ्गन्यास कर हाथ में जल लेकर मूल मन्त्र का जप करते हुए तीन बार आचमन करना चाहिये । पुनः दाहिने हाथ से जल लेकर बायें हाथ में रखकर उसे दाहिने हाथ से ढककर, उससे गिरते हुये जल बिन्दुओं से

ईडयान्तः समाकृष्य तद्धौतैः पापसञ्चयैः ।
कृष्णवर्णं पिङ्गलया रेचितं प्रविचिन्त्य तत् ॥ ४१ ॥
क्षिपेदस्त्रेण पुरतः कल्पितेभिदुरोपले ।
अघमर्षणमेतद्धि निखिलाघनिवारणम् ॥ ४२ ॥
पुनरञ्जलिनादाय जलमर्घ्यं दिशेत्ततः ।
त्रिवारं मूलमन्त्रान्ते षोडशार्णमनुं जपन् ॥ ४३ ॥
रविमण्डलसंस्थाय देवायार्घ्यं पदं वदेत् ।
कल्पयामीति दद्याच्च मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः ॥ ४४ ॥
सूर्यमण्डलगं ध्यायन्निष्टदेवमनन्यधीः ।
प्रजपेन्मन्त्र गायत्रीं मूलं चाष्टोत्तरं शतम् ॥ ४५ ॥
अष्टाविंशतिवारं वा तर्पयेत्तावदम्भसि ।
दत्त्वार्घ्यं दिननाथाय तीर्थं संहारमुद्रया ॥ ४६ ॥

भिदुरोपले वज्रपाषाणम् । पापयुक्तं जलं क्षिपेत् । एतदघमर्षणम् ॥ ४२ ॥ मूलमन्त्रमुक्त्वा रविमण्डल संस्थाय देवायार्घ्यं कल्पयामीति षोडषार्णं मन्त्रं जपन् देवायार्घ्यं दद्यात् ॥ ४३–४५ ॥ संहारमुद्रया तीर्थं विसृज्य द्वौ हस्तौ विमुखौ संयोज्य तयोरंगुलीः परस्परसंश्लिष्टाः कृत्वा हस्तौ संमुखौ कुर्यादिति संहारमुद्रा ॥ ४६ ॥ * ॥ ४७ ॥

मूल मन्त्र पढ़ते हुये ७ बार शरीर का मार्जन कर शेष जल को पुनः दाहिने हाथ में लेकर उसे नासिका के पास ले जाना चाहिये ॥ ३८-४० ॥

पश्चात् ईडा नाडी से उसे भीतर खींच कर उसके द्वारा देहगत पापों को धो कर कृष्णवर्ण पाप पुरुष के साथ पिङ्गला द्वारा निकलने की भावना कर अपने सामने कल्पित वज्र शिला पर 'फट्' इस अस्त्र मन्त्र से फेंक देना चाहिये । इस प्रकार से किया गया अघमर्षण साधक के सारे सञ्चित पापों को दूर कर देता है ॥ ४१-४२ ॥

इतना कर लेने के पश्चात् अञ्जलि में जल ले कर मूल मन्त्र के साथ षोडशार्ण मन्त्र का उच्चारण कर अर्घ्य देना चाहिये । 'रविमण्डलसंस्थाय देवायार्घ्यं कल्पयामि' यह षोडशाक्षर मन्त्र है ॥ ४३-४४ ॥

अर्घ्यदान के पश्चात् साधक अपने इष्टदेव का सूर्यमण्डल में एकाग्रचित्त से ध्यान कर गायत्री मन्त्र तथा मूल मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करे और २८ बार जल से तर्पण करे । इस प्रकार भगवान् सूर्य को अर्घ्य देने के बाद संहारमुद्रा से समस्त तीर्थों का विसर्जन कर सूर्यदेव एवं लोकपालों को प्रणाम कर अपने इष्टदेव की स्तुति करे । पश्चात् यज्ञशाला में जा कर पैर धोकर आचमन

विसृज्यार्कं लोकपालान्नत्वा देवस्तुतिं पठन् ।
यागस्थानं तथागत्य प्रक्षात्यांघ्री तथाचमेत् ॥ ४७ ॥
गार्हपत्यादिकानग्नीन् हुत्वोपस्थाय तानपि ।
देवतागारमागत्य समाचामेद्यथाविधि ॥ ४८ ॥
केशवनारायण माधवैः पीत्वा जलं त्रिधा ।
करौ गोविन्द विष्णुभ्यां क्षालयेन्मधुसूदनात् ॥ ४६ ॥
त्रिविक्रमेण चाप्योष्ठौ वामनाच्छ्रीधरान्मुखम् ।
हृषीकेशेन हस्तं च चरणौ पद्मनाभतः ॥ ५० ॥
दामोदरेण मूर्द्धानं प्रोक्ष्य संकर्षणादिकान् ।
मुखादिषु करांगुल्या वेदादिप्रीणने न्यसेत् ॥ ५१ ॥
मुखे संकर्षणं वासुदेवप्रद्युम्नकौ नसोः ।
अनिरुद्धं च पुरुषोत्तममक्ष्णोः प्रविन्यसेत् ॥ ५२ ॥

सत्यग्निहोत्रे आवसथ्ये च तयोर्होममुपस्थानं च कृत्वा देवपूजागृहमागत्य वैष्णवाचमनं कुर्यात् ॥ ४८ ॥ तदेवाह – **केशवेति** । ॐ केशवाय नमः ॐ नारायणाय नमः ॐ माधवाय नमः इति त्रिर्जलं पीत्वा गोविन्दाय नमः विष्णवे नम इति द्वाभ्यां करौ प्रक्षाल्य मधुसूदनाय नमः त्रिविक्रमाय नम इति द्विरोष्ठौ प्रक्षाल्य वामनाय नमः श्रीधराय नमः इति मुखं हृषीकेशाय नमः इति दक्षहस्तं पद्मनाभाय नम इति पादौ च प्रक्षाल्य ॥ ४६–५० ॥ दामोदराय नमः इति शिरः प्रोक्ष्य संकर्षणाय नम इति मुखं वासुदेवाय नमः प्रद्युम्नाय नम इति नासा चांगुष्ठप्रादेशिनीभ्यां स्पृष्ट्वा अनिरुद्धाय० पुरुषोत्तमाय० इत्यक्षिणी ॥ ५१–५२ ॥

करे । फिर सविधि गार्हपत्य अग्नि में होम कर सभी अग्नियों का उपस्थान करे, और देव मन्दिर में जाकर यथाविधि आचमन करे ॥ ४५-४८ ॥

अब **आचमन का प्रकार** कहते हैं -

वैष्णव आचमन विधि - 'ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः' - इन तीन मन्त्रों से हाथ का प्रक्षालन कर 'मधुसूदनाय नमः', 'त्रिविक्रमाय नमः' - इन दो मन्त्रों से ओष्ठ प्रक्षालन करे । फिर 'वामनाय नमः, श्रीधराय नमः' - इन दो मन्त्रों से मुख, फिर 'हृषीकेशाय नमः' से दाहिना हाथ, फिर 'पद्मनाभाय नमः' इस मन्त्र से पादप्रक्षालन करना चाहिये ॥ ४६-५० ॥

फिर 'दामोदराय नमः' से मस्तक का प्रोक्षण कर संकर्षणादि के चतुर्थ्यन्त रूपों के प्रारम्भ में वेदादि (ॐ) तथा अन्त में 'नमः' लगाकर हाथ की अङ्गुलियों से मुख आदि अङ्गो पर क्रमशः इस प्रकार न्यास करना चाहिये -

'ॐ संकर्षणाय नमः' से मुख पर, 'ॐ वासुदेवाय नमः, ॐ प्रद्युम्नाय नमः'

अधोक्षजं नृसिंहं च कर्णयोर्नाभितोऽच्युतम् ।
जनार्दनं हृदि न्यस्येदुपेन्द्रमपि मूर्द्धनि ॥ ५३ ॥
अंसयोश्च हरिं विष्णुं वैष्णवाचमनं त्विदम् ।
केशवाद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोन्ताः प्रणवादिकाः ॥ ५४ ॥
आस्ये नसोः प्रदेशिन्यां नामया नेत्रकर्णयोः ।
कनिष्ठया नाभिदेशेऽङ्गुष्ठः सर्वत्र संयुतः ॥ ५५ ॥
तलेन हृदये न्यस्येत् सर्वाभिर्मस्तकेंसयोः ।
आत्मविद्या शिवैस्तत्त्वैः स्वाहान्तैः प्रपिबेदपः ॥ ५६ ॥
हां ह्रीं हूं आदिमैः शैवे शाक्ते वाग्बीजपूर्वकैः ।
क्षालनादिकमङ्गुल्या स्पर्शोऽपि स्यादमन्त्रकः ॥ ५७ ॥

अधोक्षजाय० नृसिंहाय० इति कर्णौ चांगुष्ठानादिकाभ्यां स्पृशेत् । अच्युताय० इति अंगुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां नाभिम् ॥ ५३ ॥ जनार्दनाय० इति करतलेन हृदयम् । उपेन्द्राय० इति शिरः । हरये० कृष्णाय० इत्यसौ च सर्वाभिः स्पृशेत् । इति वैष्णवाचमनम् । शैवाचमनमाह – **आत्मेति** । हां आत्मतत्त्वाय स्वाहा ह्रीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा हूं शिवतत्त्वाय स्वाहेति त्रिर्जलं पीत्वा करक्षालनाद्यं सस्पर्शान्तं उक्तांगुलीभिस्तूष्णीमेव कुर्यात् । इति शैवम् । शाक्ते तु हां इत्यादि स्थाने वाग्बीजमेव ॥ ५३–५७ ॥

से दोनो नासिका पर, 'ॐ अनिरुद्धाय नमः, ॐ पुरुषोत्तमाय नमः' से दोनो नेत्रों पर, 'ॐ अधोक्षजाय नमः ॐ नृसिंहाय नमः' से दोनों कानों पर, 'ॐ अच्युताय नमः' से नाभि पर, 'ॐ जनार्दनाय नमः' से हृदय पर, 'ॐ उपेन्द्राय नमः' से शिर पर तथा 'ॐ हरये नमः, ॐ विष्णवे नमः' से दोनों कन्धों पर न्यास करना चाहिये । यह वैष्णव आचमन की विधि है ॥ ५१-५४ ॥

केशवादि चतुर्थ्यन्त नामों के प्रारम्भ में प्रणव तथा अन्त में नमः लगाकर मुख नासिका पर प्रदेशिनी से, नेत्र एवं कानों पर अनामिका से, नाभि पर कनिष्ठिका से तथा सभी अङ्गुलियों से अङ्गूठा मिलाकर सर्वत्र न्यास करना चाहिये । हृदय पर हथेली से तथा मस्तक तथा दोनों कन्धों पर सभी अङ्गुलियों से न्यास करना चाहिये ॥ ५४-५६ ॥

अब **शैवों की आचमन विधि** कहते हैं -

'हां आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ह्रीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा, हूं शिवतत्त्वाय स्वाहा' इन मन्त्रों से शैवों को तीन बार आचमन करना चाहिये तथा 'ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ह्रीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा, क्लीं शिवतत्त्वाय स्वाहा' इन मन्त्रों से शाक्तों को आचमन करना चाहिये । हाथों का प्रक्षालन तथा

एवमाचम्य सामान्यार्घ्येण द्वारं प्रपूजयेत् ।
तारखं वह्निसर्गाढ्यं द्वारार्घ्यं साधयामि च ॥ ५८ ॥
उक्त्वास्त्र मनुनापाशं क्षालयेत् पूरयेद्धृदा ।
तीर्थान्यावाह्य गन्धादीन्निक्षिपेन्निगमादिना ॥ ५६ ॥
धेनुमुद्रां दर्शयित्वा मूलेनाप्यभिमन्त्रयेत् ।
सामान्यार्घ्यविधिः प्रोक्तस्तेनोक्ता द्वारदेवताः ॥ ६० ॥

द्वारपालपूजनम्

इष्ट्वार्च्चेद्द्वारपालांश्च ते कथ्यन्ते पृथग्विधाः ।
नन्दः सुनन्दश्चण्डश्च प्रचण्डो बलसंज्ञकः ॥ ६१ ॥

सामान्यार्घ्यमाह – **तारमिति** । तार ॐ । खं हः वह्निसर्गाढ्यं रेफविसर्गयुतं ह्रः ॥ ५८ ॥ निगमादिना प्रणवेन ॥ ५६ ॥ यथा – ॐ ह्रः द्वारार्घ्यं साधयामीत्युक्त्वा फडिति पात्रं प्रक्षाल्य नम इति जलेनापूर्य गंगे चेति तीर्थान्यावाह्य प्रणवेन गन्धपुष्पे निक्षिप्य धेनुमुद्रां प्रदर्श्याष्टकृत्वो मूलेन मन्त्रयेत् इति सामान्यार्घ्यविधिः । तेनार्घ्यजलेनोक्ताः प्रथमतरंगो द्वारदेवताः गणेशमहा–लक्ष्मीसरस्वतीविघ्नक्षेत्रपालगंगायमुनाधातृविधातृशंखपद्मनिधिलक्षणाः यथा स्थानं संपूज्य वक्ष्यमाणान् यथास्वं द्वारपालान् पूजयेत् ॥ ६० ॥ वैष्णवान् द्वारपालानाह – **नन्द** इति । शैवानाह – **नन्दिसंज्ञ** इति । ब्रह्माद्यामातरः शक्तेर्द्वारपालाः स्मृताः पूर्वोक्ता बोध्याः ॥ ६१–६३ ॥

अङ्गुलियों से अङ्गों के स्पर्श की प्रक्रिया उपांशु (बिना मन्त्र के मौन हो कर) करनी चाहिये ॥ ५५-५७ ॥

इस प्रकार आचमन कर लेने के पश्चात् सामान्य अर्घ्य (पूजा सामग्री) से देवतागार के द्वार का पूजन करना चाहिये ॥ ५८ ॥

तार (ॐ), विसर्ग सहित वह्नि (र) और ख (ह) अर्थात् (ह्रः), फिर द्वारार्घ्य साधयामि' इतना कह कर अस्त्र मन्त्र (फट्) से अर्घ्य पात्र का प्रक्षालन करना चाहिये । फिर हृद् (नमः) मन्त्र से जल भर कर 'गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्र से उसमें तीर्थों का आवाहन करना चाहिये । तदनन्तर निगम (प्रणव) मन्त्र से उसमें गन्धादि डालना चाहिये । फिर धेनुमुद्रा दिखाकर मूलमन्त्र से उसे अभिमन्त्रित करना चाहिये ॥ ५८-६० ॥

यहाँ तक सामान्यार्घ्य की विधि कही गई । इस प्रकार के अर्घ्य से द्वारदेवताओं का पूजन कर द्वारपालों का पूजन करना चाहिये । ये द्वारपाल सांप्रदायिक दष्टि से भिन्न-भिन्न कहे गये है ॥ ६०-६१ ॥

प्रबलो भद्रसंज्ञश्च सुभद्रा वैष्णवा मताः ।
नन्दिसंज्ञो महाकालो गणेशो वृषभस्तथा ॥ ६२ ॥
भृंगिरिट्यभिधः स्कन्दः पार्वतीशाभिधो परः ।
चण्डेश्वर इमे शैवाः शाक्तेया मातरः स्मृताः ॥ ६३ ॥
वक्रतुण्डश्चैकदंष्ट्रौ महोदरगजाननौ ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्नराजश्च सप्तमः ॥ ६४ ॥
धूम्रराजो गणपतेर्द्वारपाला इमे स्मृताः ।
इन्द्रो यमोऽथ वरुणः कुबेरस्त्रैपुराः स्मृताः ॥ ६५ ॥
ईशः कृशानुरक्षांसि वायुश्चैवाष्टमः स्मृतः ।
द्वारपूजां विधायेत्थं विघ्नानुत्सारयेत्त्रिधा ॥ ६६ ॥
आत्मानं शंकरं ध्यात्वा दृष्ट्या दिव्यान्निवारयेत् ।
नभस्थानमर्घ्यपानीयैः पार्ष्णिघातैर्धरागतान् ॥ ६७ ॥
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥ ६८ ॥

गणेशानाह – वक्रेति ॥ ६४ ॥ * ॥ ६५ ॥ त्रिधा त्रिप्रकारान् दिव्यन्तरिक्ष–भूमिस्थान् ॥ ६६॥ अर्घ्यपानीयैः सामान्यार्घजलैरन्तरिक्षस्थान् ॥ ६७॥ *॥ ६८–६६॥

नन्द, सुनन्द, चण्ड, प्रचण्ड, बल, प्रबल, बलभद्र तथा सुभद्रा - ये **विष्णु के द्वारपाल** कहे गये हैं । नन्दी, महाकाल, गणेश, वृषभ, भृंगिरिटि, स्कन्द, पार्वतीश एवं चण्डेश्वर - ये **शिव के द्वारपाल** हैं । ब्राह्मी आदि अष्टमातृकायें **शक्ति की द्वारपाल** कही गई हैं । वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज एवं धूम्रराज - ये **गणपति के द्वारपाल** हैं । इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, ईशान, अग्नि, निर्ऋति एवं वायु - ये **त्रिपुरा के द्वारपाल** कहे गये हैं ॥ ६१-६६ ॥

इस क्रम से सांप्रदायिक द्वारपूजा करने के बाद दिव्य, अन्तरिक्ष एवं भौम इन त्रिविध विघ्नों का उत्सारण करना चाहिये ॥ ६६ ॥

अब **विघ्नोत्सारण का विधान** कहते हैं -

स्वयं को ध्यानस्थ शंकर मानकर दिव्य दृष्टि से विघ्नों का, अर्घ्य जल से अन्तरिक्षस्थ विघ्नों का तथा पैर से भूमिगत विघ्नों का उत्सारण करना चाहिये ।

तदनन्तर - अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥ १ ॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम् ।
सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्मसमारभे ॥ २ ॥

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्।
सर्वेषामविरोधेन ब्रह्माकर्मसमारभे ॥ ६६ ॥
विनिवार्याखिलान् विघ्नानिदं मन्त्रद्वयं पठन्।
अवकाश प्रदानायान्तरायाणां विनिर्यताम् ॥ ७० ॥
संकोचयन्वाममङ्गं गृहं दक्षपदा विशेत्।
क्षेत्रपालं विधातारं नैर्ऋत्यां दिशि पूजयेत् ॥ ७१ ॥

पूजागृहप्रवेशोत्तरमासनादिविधिः

अनन्तं विमलं पद्मं ङेन्तासननमोन्वितम्।
जपन्निधाय दर्भास्त्रीन् कुशचर्माम्बरासने ॥ ७२ ॥
काष्ठपल्लववंशाश्मगोशकृत्तृणमृण्मयम् ।
विषमं कठिनं मन्त्री त्यजेदासनमाधिदम् ॥ ७३ ॥
पृथ्वि त्वयेति मन्त्रेण प्रागुदग्वा समाविशेत्।
कुर्यात्स्वस्तिकपाथोज वीरादिष्वेकमासनम् ॥ ७४ ॥

विनिर्यतां गृहान्निर्गच्छताम् अन्तरायाणां विघ्नानामवकाशदानाय वामांगं संकोचयन् दक्षिणपादेन गृहं प्रविशेत् ॥ ७०–७१ ॥ कुशासनव्याघ्रचर्मवस्त्राणा–मुपर्युपरिस्थापितानामुपरि अनन्तासनाय नमः विमलासनाय नमः पद्मासनाय नमः इति मन्त्रत्रयेण त्रीन् दर्भान्निदध्यात् ॥ ७२ ॥ आधिदं मानसपीडाप्रदम् ॥ ७३ ॥ प्रागुदग्वा प्राङ्मुखउदङ्मुखो वा । पाथोजं पद्मम् । स्वस्तिकासनपद्मासनवीरासनेष्वन्यतममासनं कुर्य्यात् ।

स्वस्तिकासनलक्षणं यथा –

जानूर्वोरन्तरं कृत्वा सम्यक्पादतले उभे ।
ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥

इन दो मन्त्रों को पढ़कर सभी प्रकार के विघ्नों का उत्सारण करना चाहिये । जाते हुये विघ्नों को अवकाश देने के लिये अपना वामाङ्ग संकुचित कर लेना चाहिये ।

फिर दाहिना पैर आगे रख कर गृह में प्रवेश करना चाहिये तथा नैर्ऋत्य कोण में क्षेत्रपाल एवं विधाता का पूजन करना चाहिये ॥ ६७-७१ ॥

अब **आसन पर बैठने का विधान** कहते हैं -

प्रथम कुशासन उसके ऊपर व्याघ्रचर्म उसके ऊपर रेशमी वस्त्र इस क्रम से रखकर साधक - अनन्तासनाय नमः, विमलासनाय नमः, पद्मासनाय नमः - इन तीन मन्त्रों को पढ़कर तीन कुशा स्थापित करे । काष्ठ, पत्ता एवं कठिन बाँस,

अर्घ्यपाद्याचमनीयमधुपर्काचमस्य च ।
पञ्चपात्राणि पुष्पादीन् स्थापयेत्स्वीय दक्षिणे ॥ ७५ ॥

पद्मासनं यथा –

'ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक्पादतले उभे ।
अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः ॥
पद्मासनमिति प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम्' ॥ इति ॥

अत्र हस्ताभ्यां पादाङ्गुष्ठनिबन्धनं तु योगाभ्यासान्वितं बोध्यम् । योगिनां हृदयङ्गममिति विशेषणोपादानात् । जपादौ तु पादतलयोरूर्वोरुपरि न्यासमात्रं पद्मासनम् ॥

वीरासनलक्षणं यथा –

एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योरौ तथेतरम् ।
ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमितीरितम् ॥ इति शारदातिलके॥

आदिशब्दात्षट्कर्मोक्तमपि ॥ ७४ ॥ * ॥ ७५ ॥

पत्थर, तृणगोशकृत् एवं मिट्टी से बने आसन विषम होते हैं । अतः पीड़ादायक होने के कारण इन आसनों को वर्जित कर देना चाहिये ॥ ७२-७३ ॥

ॐ पृथ्वी त्वया धृता लोका देवित्वं विष्णुनाधृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥

इस मन्त्र को विनियोगपूर्वक पढ़कर पूर्व या उत्तर की ओर मुख कर स्वस्तिक, पद्मासन अथवा वीरासन से बैठना चाहिये ।

विमर्श - आसन पर बैठने का **विनियोग** - ॐ पृथ्वीतिमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनोपवेशेने विनियोगः ।

आसनों के लक्षण इस प्रकार हैं -

स्वस्तिकासन - पैर के दोनों जानु और दोनों ऊरू के बीच दोनों पादतल को अर्थात् दक्षिण पाद के जानु और ऊरू के मध्य वाम पादतल एवं वामपाद के जानु और ऊरू के मध्य दक्षिण पादतल को स्थापित कर शरीर को सीधे कर बैठने का नाम स्वस्तिकासन है ।

पद्मासन - दोंनों ऊरू के ऊपर दोनों पादतल को स्थापित कर व्युत्क्रम पूर्वक (हाथों को उलट कर) दोनों हाथों से दोनों हाथ के अंगूठे को बींध लेने का नाम पद्मासन कहा गया है ।

वीरासन - एक पैर को दूसरे पैर के नितम्ब के नीचे स्थापित करे तथा दूसरे पादतल को नितम्ब के नीचे स्थापित किए गए पैर के ऊरू पर रक्खे तथा शरीर को सीधे रक्खे तो वह वीरासन कहा जाता है ॥ ७४ ॥

वामेम्बुपात्रं व्यजनं छत्रमादर्शचामरे।
कृताञ्जलिर्वामदक्षे गुरून् गणपतिं नमेत् ॥ ७६ ॥
न्यस्यास्त्रं करयोस्तालत्रयं दिग्बन्धनं चरेत्।
अङ्गुष्ठयुक्त तर्जन्या सुर्दशनमनुं जपन् ॥ ७७ ॥

सुदर्शनमन्त्रः

प्रणवो हृदयं ङेन्तं सुदर्शनपदं पुनः।
अस्त्राय च फडित्युक्तो मन्त्रो द्वादशवर्णवान् ॥ ७८ ॥
विधाय वह्निप्राकारं भूताजेयो भवेत्सुधीः।
भूतशुद्धिं तथा प्राणप्रतिष्ठां मातृकास्थितिम् ॥ ७६ ॥
पञ्चधोक्तां प्रकुर्वीत ततोऽन्यान् मातृकां चरेत्।
श्रीकण्ठाद्याञ्छम्भुभक्तो वैष्णवः केशवादिकान् ॥ ८० ॥
गणेशाद्यांस्तु तत्सेवी शक्तिभाङ्मातृकाः कलाः।
ताः क्रमेणैव कथ्यन्ते मुन्यादिन्यासपूर्विकाः ॥ ८१ ॥

वामे गुरून् दक्षे गणेशम् ॥ ७६ ॥ करयोरस्त्रं न्यस्योपर्युपरि तालत्रयं कृत्वाङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां शब्दं कुर्वन् सुदर्शनमन्त्रेण दिग्बन्धनं चरेत् ॥ ७७ ॥ सुदर्शनमन्त्रमाह – **प्रणव** इति । ॐ नमः सुदर्शनाय अस्त्राय फडिति ॥ ७८–७६ ॥ पञ्चधा मातृकास्थितिः। सृष्टिस्थितिसंहारसृष्टिस्थितिलक्षणं पञ्चविधं मातृकान्यासम्। उक्तां प्रथमतरंगे । अन्यान् । श्रीकण्ठाद्यान् ॥ ८०॥

अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क एवं पुनराचमनीय के पाँचों पात्र तथा पुष्पादि अपनी दाहिनी ओर रखना चाहिये और जलपात्र, व्यजन (पंखा), छत्र, आदर्श (शीशा) एवं चमर बायीं ओर स्थापित करना चाहिये ॥ ७५-७६ ॥

साधक अञ्जलि बाँध कर अपनी बायीं ओर गुरु को तथा दाहिनी ओर गणपति को प्रणाम करे । दोनों हाथ पर अस्त्र (फट्) मन्त्र से न्यास कर तीन बार ताली बजाकर अङ्गूठा एवं तर्जनी से शब्द करते हुये सुदर्शन मन्त्र पढ़कर दिग्बन्धन करना चाहिये ॥ ७६-७७ ॥

प्रणव (ॐ), हृदय (नमः), चतुर्थ्यन्त सुदर्शन (सुदर्शनाय), और फिर 'अस्त्राय फट्', यह १२ अक्षरों का मन्त्र कहा गया है ॥ ७८ ॥

इस मन्त्र से अपने चारों ओर अग्नि का प्राकार बनाकर साधक भूतों से अजेय हो जाता है । इसके पश्चात् भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा एवं पञ्चविध (सृष्टि, स्थिति, संहार, सृष्टि, स्थिति) मातृकान्यासों को करना चाहिये । तदनन्तर अन्य मातृका न्यास करना चाहिये ॥ ७६-८० ॥

मुनिः स्याद्दक्षिणामूर्तिर्गायत्रीछन्द ईरितम् ।
अर्द्धाद्रिजाहरो देवो नियोगः सर्वसिद्धये ॥ ८२ ॥
हलो बीजानि गुह्ये तु स्वराञ्छक्तीः पदोर्न्यसेत् ।
हसाभ्यां दीर्घयुक्ताभ्यां कृत्वाङ्गं शङ्करं स्मरेत् ॥ ८३ ॥

ध्यानादिकथनम्

पाशांकुशवराक्षस्रक्पाणिशीतांशुशेखरम् ।
त्र्यक्षं रक्तसुवर्णाभमर्द्धनारीश्वरं भजेत् ॥ ८४ ॥

तत्सेवी गणेशसेवी ॥ ८१ ॥ * ॥ ८२–८३ ॥ ध्यानमाह – **पाशेति** । पाशांकुशौ वामयोः । रक्ताभो हरांशः । सुवर्णाभो देव्यंशः ॥ ८४ ॥

यथा - शैवों को श्रीकण्ठ मातृकान्यास, वैष्णवों को केशवादि कीर्तिन्यास, गाणपत्यों को गणेशकलान्यास तथा शाक्तों को शक्तिकलान्यास करना चाहिये ॥ ८०-८१ ॥

अब इन **न्यासों के ऋषि** आदि को क्रमशः कहता हूँ -

प्रथम **श्रीकण्ठ न्यास का विनियोग एवं षडङ्गन्यास** कहते हैं - इस श्रीकण्ठ मातृकान्यास के दक्षिणामूर्ति ऋषि हैं, गायत्री छन्द हैं और अर्द्धनारीश्वर देवता हैं। सब सिद्धियों के लिये इसका विनियोग किया जाता है । हल बीज है तथा स्वर शक्ति है । इससे क्रमशः गुप्ताङ्ग एवं पैरों पर न्यास करना चाहिये । षड्दीर्घ सहित (ह्स) से षडङ्गन्यास कर शंकर का ध्यान करना चाहिये ॥ ८१-८३ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीकण्ठमातृकामन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषि गायत्रीच्छन्दः अर्द्धनारीश्वरों देवता हलो बीजानि स्वरा शक्तयः सर्वकार्य सिद्ध्यर्थे न्यासे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास - ॐ दक्षिणामूर्ति ऋषये नमः, शिरसि,
ॐ गायत्रीछन्दसे नमः, मुखे, ॐ अर्द्धनारीश्वरो देवतायै नमः, हृदि,
ॐ हल्भ्योः बीजेभ्यो नमः, गुह्ये, ॐ स्वरशक्तिभ्यो नमः, पादयोः,
ॐ विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

षडङ्गन्यास - ह्सां हृदयाय नमः, ह्सीं शिरसे स्वाहा,
ह्सूं शिखायै वषट्, ह्सैं कवचाय हुम,
ह्सौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्सः अस्त्राय फट् ॥ ८२-८३ ॥

अब **अर्द्धनारीश्वर का ध्यान** कहते हैं -

जिनके चार हाथों में पाश, अंकुश, वर और अक्षमाला शोभित हो रहे हैं मस्तक पर चन्द्रकला धारण किये हुये त्रिनेत्र ऐसे सुवर्ण की कान्ति वाले भगवान् अर्द्धनारीश्वर का ध्यान करना चाहिये ॥ ८४ ॥

एवं ध्यायञ्छम्भुशक्ती चतुर्थ्यन्तनमोन्विते ।
ह्सौं बीजं मातृका पूर्वं विन्यसेन्मातृकास्थले ॥ ८५ ॥

मातृकान्यासकथनम्

श्रीकण्ठपूर्णोदर्यौ चानन्तो विरजयान्वितः ।
सूक्ष्मेशः शाल्मलीयुक्तो लोलाक्षीयुक्त्रिमूर्तिकाः ॥ ८६ ॥
अमरेशो वर्तुलाक्षावर्घीशो दीर्घघोणया ।
भारभूतिर्दीर्घमुखी तिथीशो गोमुखीयुतः ॥ ८७ ॥
स्थाण्वीशो दीर्घजिह्वायुग्धरः कुम्भोदरीयुतः ।
झिण्टीशश्चोर्ध्वकेशी भौतिको विकृतमुख्यपि ॥ ८८ ॥
सद्यो ज्वालामुखी चानुग्रह उल्कामुखीयुतः ।
अक्रूरः श्रीमुखी महासेनो विद्यामुखीयुतः ॥ ८९ ॥
क्रोधीशश्च महाकाल्या चण्डेशश्च सरस्वती ।
पञ्चान्तकः सर्वसिद्धि गौरीयुक्तः प्रकीर्तितः ॥ ९० ॥
शिवोत्तमेशो विन्यस्यो युक्तस्त्रैलोक्यविद्यया ।
एकरुद्रो मन्त्रशक्तिः कूर्मेशश्चात्मशक्तियुक् ॥ ९१ ॥
एकनेत्रो भूतमात्रायुक्तः स्याच्चतुराननः ।
लम्बोदर्यायुतः प्रोक्तो ह्यजेशो द्राविणीयुतः ॥ ९२ ॥

मातृकास्थले ललाटादौ पूर्वोक्ते ॥ ८५ ॥ प्रयोगो यथा – ह्सौं अं श्रीकण्ठेशपूर्णोदरिभ्यां नमः ललाटे। ह्सौं आं अनन्तेशविरजाभ्यां नमो मुखवृत्ते इत्यादि० ॥ ८६ ॥ * ॥ ८७–८८ ॥ सद्यः सद्योजाता ॥ ८९ ॥ * ॥ ९०–९९ ॥

अब **श्रीकण्ठ मातृकान्यास का प्रकार** कहते हैं -

उक्त प्रकार से अर्द्धनारीश्वर भगवान् का ध्यान कर शिवशक्ति के चतुर्थ्यन्त द्विवचन रूपों के आगे नमः लगा कर प्रारम्भ में ह्सौं एवं मातृकावर्णो को लगाकर यथा क्रमेण मातृका स्थलों में न्यास करना चाहिये ॥ ८५ ॥

श्रीकण्ठ एवं पूर्णोदरी, अनन्त एवं विरजा, सूक्ष्मेश एवं शाल्मली, त्रिमूर्तीश एवं लोलाक्षि, अमरेश एवं वर्तुलाक्षी, अर्घीश एवं दीर्घघोणा, भारभूति एवं दीर्घमुखी, तिथीश एवं गोमुखी, स्थाण्वीश एवं दीर्घजिह्वा, हर एवं कुम्भोदरी, झिण्टीश एवं ऊर्ध्वकेशी, भौतिकेश एवं विकृतमुखी, सद्योजात एवं ज्वालामुखी, अनुग्रहेश एवं उल्कामुखी, अक्रूरेश एवं श्रीमुखी, महासेनेश एवं विद्यामुखी, क्रोधीश एवं महाकाली, चण्डेश एवं सरस्वती, पञ्चान्तक एवं सर्वसिद्धिगौरी, शिवोत्तमेश एवं त्रैलोक्यविद्या, एकरूद्र एवं मन्त्रशक्ति, कूर्मेश एवं आत्मशक्ति, एकनेत्रेश एवं

सर्वेशो नागरी युक्तः सोमेशश्चापि खेचरी ।
लाङ्गलीश्च मञ्जर्या दारकेशश्च रूपिणीं ॥ ६३ ॥
अर्द्धनारीशवीरिण्यावुमाकान्तः पुनर्युतः ।
काकोदर्या तथाषाढी पूतनायुक्त ईरितः ॥ ६४ ॥
चण्डीशो भद्रकालीयुगन्त्रीशो योगिनीयुतः ।
मीनेशः शङ्खिनीयुक्तो मेषेशस्तर्जनीयुतः ॥ ६५ ॥
लोहितः कालरात्रिश्च शिखीशः कुब्जनायुतः ।
छगलण्डः कपर्दिन्या द्विरण्डेशश्च वज्रया ॥ ६६ ॥
महाकालो जयायुक्तो बालीशः सुमुखेश्वरी ।
भुजङ्गो रेवतीयुक्तः पिनाकी माधवीयुतः ॥ ६७ ॥
खड्गीशो वारुणीयुक्तो बकेशो वायवीयुतः ।
श्वेतो रक्षोविदारिण्या भृगुः सहजयायुतः ॥ ६८ ॥
नकुलीशश्च लक्ष्मीयुक्छिवेशो व्यापिनीयुतः ।
सम्वर्तको महामाया प्रोक्ता श्रीकण्ठमातृका ॥ ६६ ॥
यत्र त्वीशपदं नोक्तं श्रीकण्ठादिषु नामसु ।
तत्र सर्वत्र वक्तव्यं शक्तिभ्यां हृत् ततो वदेत् ॥ १०० ॥

श्री कण्ठानन्तत्रिमूर्त्यादौ पदे यत्रेशपदं नास्ति श्रीकण्ठेशेत्यत्रेव तत्राऽपि ज्ञेयम् । शक्तिभ्यां पूर्णोदरी प्रभृतिभ्यां चतुर्थी द्विवचनम् । हृन्नमः । तथा प्रयोग उक्तः ॥ १०० ॥

भूतमातृ, चतुराननेश एवं लम्बोदरी, अजेश एवं द्रावणी, सर्वेश एवं नागरी, सोमेश एवं खेचरी, लाङ्गलीश एवं मञ्जरी, दारकेश एवं रूपिणी, अर्धनारीश एवं वीरिणी, उमाकान्त एवं काकोदरी, आषाढीश एवं पूतना, चण्डीश एवं भद्रकाली, अन्त्रीश एवं योगिनी, मीनेश एवं शंखिनि, मेषेश एवं तर्जनी, लोहितेश एवं कालरात्रि, शिखीश एवं कुब्जिनी, छगलण्डेश एवं कपर्दिनी, द्विरण्डेश एवं वज्रा, महाकाल एवं जया, बालीश एवं सुमुखेश्वरी, भुजङ्गेश एवं रेवती, पिनाकीश एवं माधवी, खड्गीश एवं वारुणी, बकेश एवं वायवी, श्वतेश एवं रक्षोविदारिणी, भृग्वीश एवं सहजा, नकुलीश एवं लक्ष्मी, शिवेश एवं व्यापिनी तथा संवर्तक एवं महामाया - इतने श्रीकण्ठादि तथा मातृकायें कही गई हैं ॥ ८६-६६ ॥

श्रीकण्ठ आदि नामों में जहाँ ईश पद नहीं कहा गया है वहाँ सर्वत्र ईश पद जोड़ लेना चाहिये । जैसे श्री कण्ठेश, अनन्तेश आदि । शक्ति के अन्त में चतुर्थ्यन्त द्विवचन बोल कर नमः पद जोड़ देना चाहिये ॥ १०० ॥

त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राण्यसून् वदेत्।
शक्तिं क्रोधं तथात्मभ्यामन्तान्यादि दशस्वपि ॥ १०१ ॥

त्वगिति यादिदशवर्णेषु त्वगादीनात्मभ्यामित्यन्तान् वदेत् । यथा – ह्सौं यं त्वगात्मभ्यां बालीशसुमुखेश्वरीभ्यां नमः हृदि । ह्सौं रं असृगात्मभ्यां भुजङ्गेशरेवतीभ्यां नमो दक्षांस इत्यादि० ॥ १०१ ॥

अन्त के यकारादि दश वर्णो के साथ, त्वग्, असृङ्, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, प्राण, शक्ति एवं क्रोध के साथ आत्मभ्यां जोड़ देना चाहिये । तथा सर्वत्र आदि में ह्सौं यह बीज जोड देना चाहिये । इसका स्पष्टीकरण आगे वक्ष्यमाण न्यास में द्रष्टव्य हैं ॥ १०१ ॥

विमर्श – न्यास विधि -

ॐ ह्सौं अं श्रीकण्ठेशपूर्णोदरीभ्यां नमः ललाटे । ॐ ह्सौं आं अनन्तेशविरजाभ्यां नमः, मुखवृत्ते । ॐ ह्सौं इं सूक्ष्मेशशाल्मलीभ्यां नमः, दक्षनेत्रे । ॐ ह्सौं ईं त्रिमूर्तीशलोलाक्षीभ्यां नमः, वामनेत्रे । ॐ ह्सौं उं अमरेशवर्तुलाक्षीभ्यां नमः दक्षकर्णे, ॐ ह्सौं ऊं अर्घीशदीर्घघोणाभ्यां नमः वामकर्णे, ॐ ह्सौं ऋं भारभूतेशदीर्घमुखाभ्यां नमः दक्षनासापुटे, ॐ ह्सौं ॠं तिथीशगोमुखीभ्यां नमः वामनासापुटे, ॐ ह्सौं ऌं स्थाण्वीशदीर्घजिह्वाभ्यां नमः दक्षगण्डे, ॐ ह्सौं ॡं हरेशकुण्डोदरीभ्यां नमः वामगण्डे, ॐ ह्सौं एं झिण्टीशऊर्ध्वकेशीभ्यां नमः ऊर्ध्वोष्ठे, ॐ ह्सौं ऐं भौतिकेशविकृतमुखीभ्यां नमः अधरोष्ठे, ॐ ह्सौं ओं सद्योजातज्वालामुखीभ्यां नमः, ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ, ॐ ह्सौं औं अनुग्रहेशकाममुखीभ्यां नमः अधोदन्तपंक्तौ, ॐ ह्सौं अं अक्रूरेशश्रीमुखीभ्यां नमः शिरसि, ॐ ह्सौं अः महासेनेशविद्यामुखीभ्यां नमः मुखे, ॐ ह्सौं कं क्रोधीशमहाकालीभ्यां नमः जिह्वाग्रे, ॐ ह्सौं खं चण्डीशसरस्वतीभ्यां नमः कण्ठदेशे, ॐ ह्सौं गं पञ्चान्तकेशसर्वसिद्धिगौरीभ्यां नमः दक्षबाहुमूले, ॐ ह्सौं घं शिवोत्तमेशत्रैलोक्यविद्याभ्यां नमः दक्षकूर्परे, ॐ ह्सौं ङं एकरुद्रेशमन्त्रशक्तिभ्यां नमः दक्षमणिबन्धे, ॐ ह्सौं चं कूर्मेशआत्मशक्तिभ्यां नमः दक्षहस्ताङ्गुलिमूले, ॐ ह्सौं छं एकनेत्रेशभूतमातृभ्यां नमः दक्षहस्ताङ्गुल्यग्रे, ॐ ह्सौं जं चतुराननेशलम्बोदारीभ्यां नमः वामबाहुमूले, ॐ ह्सौं झं अजेशद्रावणीभ्यां नमः वामकूर्परे, ॐ ह्सौं ञं सर्वेशनागरीभ्यां नमः वाममणिबन्धे, ॐ ह्सौं टं सोमेशखेचरीभ्यां नमः वामहस्ताङ्गुलिमूले, ॐ ह्सौं ठं लाङ्गलीशमञ्जरीभ्यां नमः वामहस्ताङ्गुल्यग्रे, ॐ ह्सौं डं दारकेशरूपिणीभ्यां नमः दक्षपादमूले, ॐ ह्सौं ढं अर्धनारीशवीरिणीभ्यां नमः दक्षजानूनि, ॐ ह्सौं णं उमाकान्तेशकाकोदरीभ्यां नमः दक्षगुल्फे, ॐ ह्सौं तं आषाढीशपूतनाभ्यां नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, ॐ ह्सौं थं चण्डीशभद्रकालीभ्यां नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे, ॐ ह्सौं. दं अन्त्रीशयोगिनीभ्यां नमः वामपादमूले, ॐ ह्सौं धं मीनेशशंखिनीभ्यां नमः वामजानौ, ॐ ह्सौं नं

केशवादि मातृकायां साध्यनारायणो मुनिः ।
अमृताद्या तु गायत्रीच्छन्दो लक्ष्मीर्हरिः सुरः ॥ १०२ ॥

षडङ्गन्यासः

द्विरुक्तैः शक्तिश्रीकामैः षडङ्गानि समाचरेत् ।

विष्णुध्यानादिकथनम्

शंख चक्र गदापद्म कुम्भादर्शाब्जपुस्तकम् ॥ १०३ ॥

केशवादिमातृकामाह – **केशवादीति** ॥ १०२ ॥ षडङ्गमाह – **द्विरुक्तैरिति** । ह्रीं हृत् । श्रीं शिरः क्लीं शिखा । ह्रीं वर्म । श्रीं नेत्रम् । क्लीं अस्त्रम् । ध्यानमाह – **शंखेति** । शंखादीनि दक्षे । कुम्भादीनि वामे। मेघा भो हर्यंशः । चपला विद्युत् । तन्निभो लक्ष्म्यंशः ॥ १०३–१०४ ॥

मेषेशतर्जनीभ्यां नमः वामगुल्फे, ॐ ह्सौं पं लोहितेशकालरात्रीभ्यां नमः वामपादाङ्गुलिमूले, ॐ ह्सौं फं शिखीशकुब्जिनीभ्यां नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे, ॐ ह्सौं बं छागलण्डेशकपर्दिनीभ्यां नमः दक्षपार्श्वे, ॐ ह्सौं भं द्विरण्डेशवज्राभ्यां नमः वामपार्श्वे, ॐ ह्सौं मं महाकालेशजयाभ्यां नमः पृष्ठे, ॐ ह्सौं यं त्वगात्मभ्यां बालीशसुमुखेश्वरीभ्यां नमः उदरे, ॐ ह्सौं रं असृगात्मभ्यां भुजङ्गेशरेवतीभ्यां नमः हृदि, ॐ ह्सौं लं मांसात्मभ्यां पिनाकीशमाधवीभ्यां नमः दक्षांसे, ॐ ह्सौं वं मेदात्मभ्यां खड्गीशवारुणीभ्यां नमः ककुदि, ॐ ह्सौं शं अस्थ्यात्मभ्यां बकेशवायवीभ्यां नमः वामांसे, ॐ ह्सौं षं मज्जात्मभ्यां श्वेतेशरक्षोविदारिणीभ्यां नमः हृदयादिदक्षहस्तान्तम्, ॐ ह्सौं सं शुक्रात्मभ्यां भृग्वीशसहजाभ्यां नमः हृदयादिवामहस्तान्तम्, ॐ ह्सौं हं प्राणात्मभ्यां नकुलीशलक्ष्मीभ्यां नमः हृदयादिदक्षपादान्तम्, ॐ ह्सौं लं शक्त्यात्मभ्यां शिवेशव्यापिनीभ्यां नमः हृदयादिवामपादान्तम्, ॐ ह्सौं क्षं क्रोधात्मभ्यां संवर्तकेशमहामायाभ्यां नमः हृदयादिमस्तकान्तम् ॥ ८६-१०१ ॥

अब **केशवादि मातृकाओं का विनियोग** कहते हैं -

केशवमातृका मन्त्र के नारायण ऋषि हैं, अमृतगायत्री छन्द है तथा लक्ष्मी एवं हरि देवता हैं । शक्तिबीज, श्रीबीज एवं कामबीज की दो आवृत्तियाँ कर षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ १०२-१०३ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य केशवमातृकान्यासस्य नारायण ऋषिरमृतगायत्रीच्छन्दः लक्ष्मीहरीदेवते न्यासे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास - ह्रीं हृदयाय नमः, श्रीं शिरसे स्वाहा, क्लीं शिखायै वषट्, ह्रीं कवचाय हुम्, श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, क्लीं अस्त्राय फट् ॥ १०२-१०३ ॥

बिभ्रतं मेघचपलावर्ण लक्ष्मीहरिं भजे ।
एवं ध्यात्वा जपेच्छक्तिं श्रीकामपुटिताक्षराम् ॥ १०४ ॥
भ्यामन्तविष्णुशक्त्यन्तां नमोन्तां प्रणवादिकाम् ।
केशवः कीर्तिसंयुक्तः कान्तिर्नारायणान्विता ॥ १०५ ॥
माधवस्तुष्टि संयुक्तो गोविन्दः पुष्टिसंयुतः ।
विष्णुस्तु धृतिसंयुक्तः शान्तियुङ्मधुसूदनः ॥ १०६ ॥
त्रिविक्रमः क्रियायुक्तो वामनो दययान्वितः ।
श्रीधरो मेधयायुक्तो हृषिकेशश्च हर्षया ॥ १०७ ॥
पद्मनाभयुक्ता श्रद्धा लज्जादामोदरान्विता ।
वासुदेवश्च लक्ष्मीयुक्संकर्षणसरस्वती ॥ १०८ ॥
प्रद्युम्नः प्रीतिसंयुक्तोऽनिरुद्धो रतिसंयुतः ।
चक्रीजयागदीदुर्गा शार्ङ्गी तु प्रभयान्वितः ॥ १०६ ॥
खड्गीतु सत्ययायुक्तः शङ्खीचण्डासमन्वितः ।
हलीवाणी समायुक्तो मुसली च विलासिनी ॥ ११० ॥

भ्यामन्ते ययोरीदृशौ विष्णुशक्तीः अन्ते यस्यास्ताम् । तथा नमोन्ते यस्याः सा नमोन्ता । प्रणव आदौ यस्याः सा प्रणवादिका । सा च सा च ताम् । यथा – ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अं क्लीं श्रीं ह्रीं केशवकीर्तिभ्यां नमः इत्यादि० ॥ १०५ ॥ * ॥ १०६–११६ ॥

अब **लक्ष्मी और हरि का ध्यान** कहते हैं- अपने हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म, कुम्भ, आदर्श, कमल एवं पुस्तक धारण किये हुये, मेघ एवं विद्युत जैसी कान्ति वाले लक्ष्मी और हरि का मैं ध्यान करता हूँ ॥ १०३-१०४ ॥

इस प्रकार ध्यान कर शक्ति (ह्रीं) श्री (श्रीं) तथा काम (क्लीं) से संपुटित अकारादि वर्ण, फिर विष्णु एवं उनकी शक्ति के नाम के अन्त में चतुर्थी द्विवचन तथा अन्त में नमः तथा प्रारम्भ में प्रणव लगा कर न्यास करना चाहिए ॥ १०४-१०५ ॥

केशव मातृकाएं - केशव एवं कीर्त्ति, नारायण एवं कान्ति, माधव एवं तुष्टि, गोविन्द एवं पुष्टि, विष्णु एवं धृति, मधुसूदन एवं शान्ति, त्रिविक्रम एवं क्रिया, वामन एवं दया, श्रीधर एवं मेधा, हृषीकेश एवं हर्षा, पद्मनाभ एवं श्रद्धा, दामोदर एवं लज्जा, वासुदेव एवं लक्ष्मी, संकर्षण /तथा सरस्वती, प्रद्युम्न और प्रीति, अनिरुद्ध एवं रति, चक्री एवं जया, गदी एवं दुर्गा, शाङ्गी एवं प्रभा, खड्गी एवं सत्या, शंखी एवं चण्डा, हली एवं वाणी, मुसली एवं विलासिनी, शूली एवं विजया, पाशी एवं विरजा, अंकुशी

शूली विजयया युक्तः पाशी विरजयान्वितः।
अंकुशी विश्वया युक्तो मुकुन्दो विनदायुतः॥ १११॥
नन्दजः सुनदायुक्तो नन्दीसत्यासमन्वितः।
नरऋद्धीनरकजित् समृद्धीशुद्धियुग्घरिः॥ ११२॥
कृष्णबुद्धी सत्यभुक्ती सात्वतो मतिसंयुतः।
सौरिक्षमे शूररमे जनार्दनउमान्वितः॥ ११३॥
भूधरः क्लेदिनीयुक्तो विश्वमूर्तिश्च क्लिन्नया।
वैकुण्ठो वसुधायुक्तो वसुदापुरुषोत्तमौ॥ ११४॥
बली तु परयायुक्तो बलानुजपरायणे।
बालसूक्ष्मे वृषघ्नस्तु सन्ध्यायुक्प्रज्ञया वृषः॥ ११५॥
हंसः प्रभासमायुक्तो वराहो निशयान्वितः।
विमलो मेधयायुक्तो नृसिंहो विद्युतायुतः॥ ११६॥
केशवाद्या मातृकोक्तायादियोगश्च पूर्ववत्।

एवं विश्वा, मुकुन्द एवं विनदा, नन्दज एवं सुनदा, नन्दी एवं सत्या, नर एवं ऋद्धि, नरकजित् एवं समृद्धि, हरि एवं शुद्धि, कृष्ण एवं बुद्धि, सत्य एवं भुक्ति, सात्वत एवं मति, सोरि एवं क्षमा, शूर एवं रमा, जनार्दन एवं उमा, भूधर एवं क्लेदिनी, विश्वमूर्त्ति एवं क्लिन्ना, वैकुण्ठ एवं वसुधा, पुरुषोत्तम एवं वसुदा, बली एवं परा, बलानुज एवं परायणा, बाल एवं सूक्ष्मा, वृषघ्न एवं सन्ध्या, वृष एवं प्रज्ञा, हंस एवं प्रभा, वराह एवं निशा, विमल एवं मेघा तथा नृसिंह एवं विद्युता, - इतनी केशव मातृकाएं कही गई हैं ॥ १०५-११७ ॥

विमर्श - इस केशवमातृका न्यास में भी अन्तिम यकारादि दश वर्णों के साथ त्वगात्मभ्यामित्यादि पूर्वोक्त रीति के अनुसार लगाकर न्यास करना चाहिये ।

न्यास विधि - न्यास विधि -

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अं क्लीं श्रीं ह्रीं केशवकीर्तिभ्यां नमः ललाटे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं आं क्लीं श्रीं ह्रीं नारायणकान्तिभ्यां नमः, मुखवृत्ते,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं इं क्लीं श्रीं ह्रीं माधवतुष्टिभ्यां नमः, दक्षनेत्रे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईं क्लीं श्रीं ह्रीं गोविन्दपुष्टिभ्यां नमः, वामनेत्रे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं उं क्लीं श्रीं ह्रीं विष्णुधृतिभ्यां नमः, दक्षकर्णे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऊं क्लीं श्रीं ह्रीं मधुसूदनशान्तिभ्यां नमः, वामकर्णे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऋं क्लीं श्रीं ह्रीं त्रिविक्रमक्रियाभ्यां नमः, दक्षनासायाम,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ॠं क्लीं श्रीं ह्रीं वामनदयाभ्यां नमः, वामनासायाम्,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं लृं क्लीं श्रीं ह्रीं श्रीधरमेधाभ्यां नमः, दक्षगण्डे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं लॄं क्लीं श्रीं ह्रीं हृषीकेशहर्षाभ्यां नमः, वामगण्डे,

गणेशमातृकान्यासः

गणेशमातृकायास्तु मुनिर्गणक ईरितः ॥ ११७ ॥

यादियोगश्च पूर्ववदिति । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं यं क्लीं ह्रीं त्वगात्मभ्यां पुरुषोत्तम वसुदाभ्यां नमो हृदीत्यादि० । गणेशमातृकामाह – **गणेश** इति ॥ ११७ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं एं क्लीं श्रीं ह्रीं पद्नाभश्रद्धाभ्यां नमः, ओष्ठे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं दामोदरलज्जाभ्यां नमः, अधरे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ओं क्लीं श्रीं ह्रीं वासुदेवलक्ष्मीभ्यां नमः, ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं औं क्लीं श्रीं ह्रीं संकर्षणसरस्वतीभ्यां नमः, अधोदन्तपंक्तौ,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अं क्लीं श्रीं ह्रीं प्रद्युम्नप्रीतिभ्यां नमः, मस्तके,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अः क्लीं श्रीं ह्रीं अनिरुद्धरतिभ्यां नमः, मुखे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कं क्लीं श्रीं ह्रीं चक्रीजयाभ्यां नमः, दक्षबाहुमूले,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं खं क्लीं श्रीं ह्रीं गदीदुर्गाभ्यां नमः, दक्षकूर्परे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं गं क्लीं श्रीं ह्रीं शार्ङ्गीप्रभाभ्यां नमः, दक्षमणिबन्धे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं घं क्लीं श्रीं ह्रीं खड्गीसत्याभ्यां नमः, दक्षाङ्गुलिमूले,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ङं क्लीं श्रीं ह्रीं शंखीचण्डाभ्यां नमः, दक्षाङ्गुल्यग्रे
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं चं क्लीं श्रीं ह्रीं हलीवाणीभ्यां नमः, वामबाहुमूले,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं छं क्लीं श्रीं ह्रीं मुसलीविलासिनीभ्यां नमः, वामकूर्परे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जं क्लीं श्रीं ह्रीं शूलीविजयाभ्यां नमः, वाममणिबन्धे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं झं क्लीं श्रीं ह्रीं पाशीविरजाभ्यां नमः, वामाङ्गुलिमूले,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ञं क्लीं श्रीं ह्रीं अंकुशीविश्वाभ्यां नमः, वामाङ्गुल्यग्रे
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं टं क्लीं श्रीं ह्रीं मुकुन्दविनदाभ्यां नमः, दक्षपादमूले,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ठं क्लीं श्रीं ह्रीं नन्दजसुनदाभ्यां नमः, दक्षजानुनि,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं डं क्लीं श्रीं ह्रीं नन्दीसत्याभ्यां नमः, दक्षगुल्फे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ढं क्लीं श्रीं ह्रीं नरऋद्धिभ्यां नमः, दक्षपादाङ्गुलिमूले,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं णं क्लीं श्रीं ह्रीं नरकजित्समृद्धिभ्यां नमः, दक्षपादाङ्गुल्यग्रे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं तं क्लीं श्रीं ह्रीं हरशुद्धिभ्यां नमः, वामपादमूले,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं थं क्लीं श्रीं ह्रीं कृष्णबुद्धिभ्यां नमः, वामजानुनि,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं दं क्लीं श्रीं ह्रीं सत्यमुक्तिभ्यां नमः, वामगुल्फे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं धं क्लीं श्रीं ह्रीं सात्वतमतिभ्यां नमः, वामपादाङ्गुलिमूले,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नं क्लीं श्रीं ह्रीं सौरिक्षमाभ्यां नमः, वामपादाङ्गुल्यग्रे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं पं क्लीं श्रीं ह्रीं शूररमाभ्यां नमः, दक्षपार्श्वे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं फं क्लीं श्रीं ह्रीं जनार्दनोमाभ्यां नमः, वामपार्श्वे,

निचृद्गायत्रिकाछन्दो देवः शक्तिविनायकः ।
स्मृत्या दीर्घाढ्यायाचाङ्गकृत्वाध्यायेद् गजाननम् ॥ ११८ ॥

षडङ्गमाह – **स्मृत्येति** । दीर्घयुक्तगकारेणाङ्गम् । गां गीं गूं गैं गौं गः इति ॥ ११८ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं बं क्लीं श्रीं ह्रीं भूधरक्लेदिनीभ्यां नमः, पृष्ठे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं भं क्लीं श्रीं ह्रीं विश्वमूर्तिक्लिन्नाभ्यां नमः, नाभौ,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं मं क्लीं श्रीं ह्रीं वैकुण्ठवसुधाभ्यां नमः, उदरे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं यं क्लीं श्रीं ह्रीं त्वगात्मभ्यां पुरुषोत्तमवसुदाभ्यां नमः, हृदि,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं रं क्लीं श्रीं ह्रीं असृगात्मभ्यां बलीपराभ्यां नमः, दक्षांसे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं लं क्लीं श्रीं ह्रीं मांसात्मभ्यां बालानुजपरायणाभ्यां नमः, कुकुदि,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वं क्लीं श्रीं ह्रीं मेदसात्मभ्यां बालसूक्ष्माभ्यां नमः, वामांसे,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं शं क्लीं श्रीं ह्रीं अस्थ्यात्मभ्यां वृषघ्नसन्ध्याभ्यां नमः, हृदादिदक्षकरान्तम्,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं षं क्लीं श्रीं ह्रीं मज्जात्मभ्यां वृषप्रज्ञाभ्यां नमः, हृदादि वामकरान्तम्,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सं क्लीं श्रीं ह्रीं शुक्रात्मभ्यां हंसप्रभाभ्यां नमः, हृदादिदक्षपादान्तम्,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं हं क्लीं श्रीं ह्रीं प्राणात्मभ्यां वराहनिशाभ्यां नमः, हृदादिवामपादान्तम्,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ळं क्लीं श्रीं ह्रीं शक्त्यात्मभ्यां विमलमेघाभ्यां नमः, हृदादिउदरान्तम्,
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्षं क्लीं श्रीं ह्रीं क्रोधात्मभ्यां नृसिंहविद्युताभ्यां नमः, हृदादिमुखपर्यन्तम् ॥ १०४-११७ ॥

अब **गणेश मातृका न्यास का विनियोग एवं न्यास का प्रकार** कहते हैं – इस गणेशमातृकान्यास मन्त्र के गणक ऋषि निचृद्गायत्री छन्द तथा शक्ति विनायक देवता है । षड्दीर्घ सहित गकार से षडङ्ग न्यास करने के पश्चात् 'गणेश' का ध्यान करना चाहिये ॥ ११७-११८ ॥

विमर्शः – **विनियोग** – अस्य श्रीगणेशमातृकान्यासमन्त्रस्य गणकऋषिर्निचृद् गायत्रीच्छन्दः शक्तिविनायको देवता न्यासे विनियोगः ।

षडङ्गन्यास – ॐ गां हृदयाय नमः, ॐ गीं शिरसे स्वाहा,
ॐ गूं शिखायै वषट्, ॐ गैं कवचाय हुम्
ॐ गौं नेत्रत्रायाय वौषट् ॐ गः अस्त्राय फट् ॥ ११७-११८ ॥

गणेशध्यानादिकथनम्

गुणांकुशवराभीतिपाणिं रक्ताब्जहस्तया ।
प्रिययालिंगितं रक्तं त्रिनेत्रं गणपं भजे ॥ ११६ ॥
एवं ध्यात्वा न्यसेत् स्वीयबीजपूर्वाक्षरान्वितम् ।
विघ्नेशो ह्रींसमायुक्तो विघ्नराजः श्रियायुतः ॥ १२० ॥
विनायकः पुष्टियुतः शान्तियुक्तः शिवोत्तमः ।
विघ्नकृत्स्वस्तिसंयुक्तो विघ्नहर्ता सरस्वती ॥ १२१ ॥
गणस्तु स्वाहया युक्त एकदन्तः सुमेधया ।
द्विदन्तः कान्तिसंयुक्तो गजवक्त्रश्च कामिनी ॥ १२२ ॥
निरञ्जनो मोहिनीयुक्कपर्दी तु नटीयुतः ।
दीर्घजिह्वः पार्वतीयुक्छंकुकर्णश्च ज्वालिनी ॥ १२३ ॥
वृषभध्वजनन्दौ च सुरेशगणनायकौ ।
गजेन्द्रः कामरूपिण्या सूपकर्णस्तथोमया ॥ १२४ ॥
त्रिलोचनस्तेजवत्या लम्बोदरस्तु सत्यया ।
महानन्दश्च विघ्नेशी चतुर्मूर्तिः सुरुपिणी ॥ १२५ ॥

ध्यानमाह – गुणेति । गुणस्त्रिशूलम् । अङ्कुशवरौ दक्षयोः ॥ ११६ ॥ स्वीयबीजपूर्वाणि यान्यक्षराणि अकारादीनि तैर्युताङ्गः अं विघ्नेशह्रींभ्यां नम इत्यादिभिः ॥ १२० ॥ * ॥ १२१–१३२ ॥

अब **गणपति का ध्यान** कहते हैं - अपने हाथों में त्रिशूल, अंकुश, वर और अभय धारण किये हुये, अपनी प्रियतमा द्वारा रक्तवर्ण के कमलों के समान हाथों से आलिंगित, त्रिनेत्र गणपति का मैं ध्यान करता हूँ ॥ ११६ ॥

गणेश मातृकाएं - उक्त प्रकार से ध्यान कर लेने के पश्चात् अपने बीजाक्षरों को पहले लगाकर तदनन्तर 'विघ्नेश ह्रीं' आदि में चतुर्थ्यन्त द्विवचन, फिर 'नमः' लगा कर गणेश मातृका न्यास करना चाहिये ॥ १२० ॥

विघ्नेश एवं ह्रीं, विघ्नराज एवं श्री, विनायक एवं पुष्टि, शिवोत्तम एवं शान्ति, विघ्नकृत् एवं स्वस्ति, विघ्नहर्त्ता एवं सरस्वती, गण एवं स्वाहा, एकदन्त एवं सुमेधा, द्विदन्त एवं कान्ति, गजवक्त्र एवं कामिनी, निरञ्जन एवं मोहिनी, कपर्दी एवं नटी, दीर्घजिस्व एवं पार्वती, शंकुकर्ण एवं ज्वालिनी, वृषभध्वज एवं नन्दा, सुरेश एवं गणनायक, गजेन्द्र एवं कामरूपिणी, सूर्पकर्ण और उमा, त्रिलोचन और तेजोवती, लम्बोदर एवं सत्या, महानन्द एवं विघ्नेशी, चतुर्मूर्ति एवं सुरूपिणी, सदाशिव एवं कामदा, आमोद एवं मदजिस्वा, दुर्मुख एवं भृति,

सदाशिवः कामदायुगामोदो मदजिह्वया।
दुर्मुखो भूतिसंयुक्तः सुमुखो भौतिकायुतः॥ १२६॥
प्रमोदः सितयायुक्त एकपादो रमायुतः।
द्विजिह्वोमहिषीयुक्तः शूरश्चापि तु भञ्जिनी॥ १२७॥
वीरो विकर्णया युक्तः षण्मुखो भृकुटीयुतः।
वरदो लज्जया वामदेवः स्याद् दीर्घघोणया॥ १२८॥
धनुर्धरावक्रतुण्डौ द्विरदो यामिनीयुतः।
सेनानी रात्रिसंयुक्तः कामान्धो ग्रामणीयुतः॥ १२६॥
मत्तः शशिप्रभायुक्तो विमत्तो लोललोचना।
मत्तवाहनचञ्चले जटी दीप्तिसमन्वितः॥ १३०॥
मुण्डी सुभगयायुक्तः खड्गीदुर्भागया तथा।
वरेण्यश्च शिवा युक्तो भगायुग्वृषकेतनः॥ १३१॥
भक्तप्रियश्च भगिनी गणेशो भोगिनीयुतः।
मेघनादश्च सुभगा व्यासीस्यात्कालरात्रियुक्॥ १३२॥
गणेश्वरः कालिकेति प्रोक्ता विघ्नेशमातृका।
त्वगादियोगो यादीनां पूर्ववत्परिकीर्तितः॥ १३३॥

त्वगादियोग इति। गं यं त्वगात्मभ्यां जटिदीप्तिभ्यां नम इत्यादि० ॥ १३३–१३४ ॥

सुमुख एवं भौतिक, प्रमोद एवं सिता, एकपाद एवं रमा, द्विजिह्वा एवं महिषी, शूर एवं भञ्जिनी, वीर एवं विकर्णा, षण्मुख एवं भृकुटी, वरद एवं लज्जा, वामदेव एवं दीर्घघोण, वक्रतुण्ड एवं धनुर्धरा, द्विरद एवं यामिनी, सेनानी एवं रात्रि, कामान्ध एवं ग्रामणी, मत्त एवं शशिप्रभा, विमत्त एवं लोललोचन, मत्तवाहन एवं चंचला, जटी एवं दीप्ति, मुण्डी एवं सुभगा, खड्गी एवं दुर्भगा, वरेण्य एवं शिवा, वृषकेतन एवं भगा, भक्तप्रिय एवं भगिनी, गणेश एवं भोगिनी, मेघनाद एवं सुभगा, व्यासी एवं कालरात्रि और गणेश्वर एवं कालिका - इतनी (५१) गणेशमातृकाये हैं ॥ १२०-१३३ ॥

यकारादिवर्णो के साथ त्वगात्मभ्यामित्यादि का योग पूर्वोक्त रीति से कर लेना चाहिए ॥ १३३ ॥

विमर्श - न्यास विधि -

ॐ अं विघ्नेशह्रीभ्यां नमः ललाटे, ॐ आं विघ्नराजश्रीभ्यां नमः मुखवृत्ते, ॐ इं विनायकपुष्टिभ्यां नमः दक्षनेत्रे, ॐ ईं शिवोत्तमशान्तिभ्यां नमः वामनेत्रे, ॐ उं

कलायुङ्मातृकायास्तु प्रजापतिऋषिः स्मृतः ।
छन्द उक्तं तु गायत्री देवता शारदाभिधा ॥ १३४ ॥

विघ्नकृत्स्वस्तिभ्यां नमः दक्षकर्णे, ॐ ऊं विघ्नहर्तृसरस्वतीभ्यां नमः वामकर्णे, ॐ ऋं गणस्वाहाभ्यां नमः दक्षनासायाम्, ॐ ॠं एकदन्तसुमेधाभ्यां नमः वामनासायाम्, ॐ लृं द्विदन्तकान्तिभ्यां नमः दक्षगण्डे, ॐ लॄं गजवक्त्रकामिनीभ्यां नमः वामगण्डे, ॐ एं निरञ्जनमोहिनीभ्यां नमः ओष्ठे, ॐ ऐं कपर्दीनटीभ्यां नमः अधरे, ॐ ओं दीर्घजिह्वपार्वतीभ्यां नमः ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ, ॐ औं शङ्कुकर्णज्वालिनीभ्यां नमः अधः दन्तपंक्तौ, ॐ अं वृषमध्वजनन्दाभ्यां नमः शिरसि, ॐ अः सुरेशगणनायकाभ्यां नमः मुखे ॐ कं गजेन्द्रकामरूपिणीभ्यां नमः दक्षबाहुमूले, ॐ खं सूर्पकर्णोमाभ्यां नमः दक्षकूर्परे, ॐ गं त्रिलोचनतेजोवतीभ्यां नमः दक्षमणिबन्धे, ॐ घं लम्बोदरसत्याभ्यां नमः दक्षाङ्गुलिमूले, ॐ ङं महानन्दविघ्नेशीम्यां नमः दक्षहस्ताङ्गुल्यग्रे, ॐ चं चतुर्मूर्तिसुरूपिणीभ्यां नमः वामबाहुमूले, ॐ छं सदाशिवकामदाभ्यां नमः वामकूर्परे, ॐ जं आमोदमदजिह्वाभ्यां नमः वाममणिबन्धे, ॐ झं दुर्मुखभूतिभ्यां नमः वामबाहु अङ्गुल्यग्रे, ॐ ञं सुमुखभौतिकाभ्यां नमः वामबाहु अङ्गुल्यग्रे, ॐ टं प्रमोदसिताभ्यां नमः दक्षपादमूले, ॐ ठं एकपादरमाभ्यां नमः दक्षजानौ ॐ डं द्विजिह्वमहिषीभ्यां नमः दक्षगुल्फे, ॐ ढं शूरभञ्जनीभ्यां नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, ॐ णं वीरविकर्णाभ्यां नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे, ॐ तं षण्मुख-भ्रुकुटीभ्यां नमः वामपादमूले, ॐ थं वरदलज्जाभ्या नमः वामजानौ, ॐ दं वामदेवदीर्घघोणाभ्यां नमः वामगुल्फे, ॐ धं वक्रतुण्डधनुर्धराभ्यां नमः वामपादाङ्गुलिमूले, ॐ नं द्विरदयामिनीभ्यां नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे, ॐ पं सेनानीरात्रिभ्यां नमः दक्षपार्श्वे, ॐ फं कामान्धग्रामणीभ्यां नमः वामपार्श्वे, ॐ बं मत्तशशिप्रभाम्यां नमः पृष्ठे, ॐ भं विमललोललोचनाभ्यां नमः नाभौ, ॐ मं मत्तवाहनचञ्चलाभ्यां नमः उदरे, ॐ यं त्वगात्मभ्याञ्जटीदीप्तिभ्यां नमः हृदि, ॐ रं असृगात्मभ्यां मुण्डीसुभगान्यां नमः दक्षांसे, ॐ लं मांसात्मभ्यां खड्गीदुर्भगाभ्यां नमः ककुदि, ॐ वं मेदात्मभ्यां वरेण्यशिवाभ्यां नमः वामांसे, ॐ शं अस्थ्यात्मभ्यां वृषकेतनभगाभ्यां नमः हृदयादिदक्षहस्तानाम्, ॐ षं मज्जात्मभ्यां भक्तप्रियभगिनीभ्यां नमः हृदयादिवामहस्तान्तम्, ॐ सं शुक्रात्मभ्यां गणेशभोगिनीभ्यां नमः हृदयादिदक्षपादान्तम्, ॐ हं प्राणात्मभ्यां मेघनादसुभगाभ्यां नमः हृदयादिवामपादान्तम्, ॐ ळं शक्त्यात्मभ्यां व्यासिकालरात्रिभ्यां नमः हृदयादिउदरान्तम्, ॐ क्षं क्रोधात्मभ्यां गणेश्वरकालिकाभ्यां नमः हृदयादिमस्तकान्तम् ॥ १२०-१३३ ॥

अब **कलामातृका का विनियोगादि** कहते हैं –

कलामातृका मन्त्र के प्रजापति ऋषि हैं, गायत्री छन्द है तथा 'शारदा' देवता हैं ॥ १३४ ॥

कलामातृकाषडङ्गन्यासकथनम्

तारैः षडङ्गं कुर्वीत ह्रस्वदीर्घान्तरस्थितैः।
शङ्खचक्राब्जपरशुकपालान्यक्षमालिकाम् ॥ १३५॥
पुस्तकामृतकुम्भौ च त्रिशूलं दधतीं करैः।
सितपीतासितश्वेतरक्तवर्णैस्त्रिलोचनैः ॥ १३६॥
पञ्चास्यैः संयुतां चन्द्रसकान्तिं शारदां भजे।
ध्यात्वैवं तारपूर्वां तां न्यसेन्डेन्तकलान्विता॥ १३७॥
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्याशान्तिस्तथेन्धिका।
दीपिका रेचिका चापि मोचिका च पराभिधा॥ १३८॥

कलामातृकायाः षडङ्गमाह - **तारैरिति** । यथा - अं ॐ आं हृत्० । इं ॐ ईं शिरः । उं ॐ ऊं शिखा । एं ॐ ऐं वर्म । ओं ॐ औं नेत्रम् । अं ॐ अः अस्त्रम् । ध्यानमाह - **शंखेति** । शंखपरशुक-पालाक्षमालामृतकुम्भा दक्षहस्तेषु । अन्यान्यन्येषु । मध्ये प्राग्दक्षिण-पश्चिमोत्तरैर्मुखैः क्रमात्सितपीतकृष्णश्वेतरक्तैर्युताम् । तारपूर्वामिति । ॐ अं निवृत्यै नम इत्यादि० ॥ १३५ ॥ * ॥ १३६–१४५ ॥

प्रणव के प्रारम्भ में तथा अन्त में दोनो ओर ह्रस्व तथा दीर्घस्वरों को लगाकर षडङ्गन्यास का विधान किया गया है ॥ १३५ ॥

विमर्श - विनियोग - अस्य श्रीकलामातृकान्यासस्य प्रजापतिर्ऋषिः गायत्री छन्दः शारदादेवता हलोबीजानि स्वरा शक्तयः न्यासे विनियोगः ।

ऋष्यादिन्यास - ॐ प्रजापतिर्ऋषये नमः, शिरसि,
ॐ गायत्रीछन्दसे नमः मुखे, ॐ शारदादेवतायै नमः हृदि,
ॐ हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः गुह्ये, ॐ स्वरशक्तिभ्यो नमः पादयोः
ॐ विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

षडङ्गन्यास - अं ॐ आं हृदयाय नमः इं ॐ ईं शिरसे स्वाहा,
उं ॐ ऊं शिखायै वषट्, एं ॐ ऐं कवचाय हुम्
ओं ॐ औं नेत्रत्रयाय वौषट् अं ॐ अः अस्त्राय फट् ॥ १३४-१३५ ॥

अब **शारदा देवी का ध्यान** कहते हैं -

अपने हाथों में शंख, चक्र, कमल, परशु, कपाल, अक्षमाला, पुस्तक, अमृतकुम्भ और त्रिशूल धारण की हुई श्वेत, पीत, कृष्ण, श्वेत तथा रक्त वर्ण के पञ्चमुखों से युक्त त्रिनेत्रा तथा चन्द्रमा जैसी शरीर की आभा वाली शारदा देवी का मैं ध्यान करता हूँ ॥ १३५-१३७ ॥

सूक्ष्मासूक्ष्मामृताज्ञानामृता चाप्यायनी ततः ।
व्यापिनी व्योमरूपा चानन्तासृष्टिः सत्रृद्धिका ॥ १३६ ॥
स्मृतिर्मेधाततःकान्तिर्लक्ष्मीद्युतिः स्थिरास्थितिः ।
सिद्धिर्जरापालिनी च क्षान्तिरीश्वरिका रतिः ॥ १४० ॥
कामिकावरदा चाथाह्लादिनी प्रीतिसंयुता ।
दीर्घातीक्ष्णा तथा रौद्रीभयानिद्रा च तन्द्रिका ॥ १४१ ॥
क्षुधास्यात्क्रोधिनीपश्चात्क्रियोत्कारी समृत्युका ।
पीताश्वेतारुणापश्चादसितानन्तयान्विता ॥ १४२ ॥

इस प्रकार ध्यान कर प्रारम्भ में प्रणव फिर चतुर्थ्यन्त कला लगा कर कलान्यास करना चाहिये ॥ १३७ ॥

अब **कलामातृकाओं का न्यास** का प्रकार कहते हैं -

निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रेचिका, मोचिका, पराभिधा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मामृता, ज्ञानामृता, आप्यायनी, व्यापिनी, व्योमरूपा, अनन्ता, सृष्टि, ऋद्धिका, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिरा, स्थिति, सिद्धि, जरा, पालिनी, क्षान्ति, ईश्वरिका, रति, कामिका, वरदा, आह्लादिनी, प्रीति, दीर्घा, तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्रिका, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रिया, उत्कारी, समृत्युका, पीता, श्वेता, अरुणा, सिता और अनन्ता ये ५१ कलाएं कही गई हैं ॥ १३८-१४२ ॥

विमर्श - न्यासविधि - ॐ अं निवृत्यै नमः ललाटे,
ॐ आं प्रतिष्ठायै नमः मुखवृत्ते, ॐ इं विद्यायै नमः दक्षनेत्रे,
ॐ ई शान्त्यै नमः वामनेत्रे ॐ उं इन्धिकायै नमः दक्षकर्णे,
ॐ ऊं दीपिकायै नमः वामकर्णे ॐ ऋं रेचिकायै नमः दक्षनासापुटे
ॐ ॠं मोचिकायै नमः वामनासापुटे, ॐ लृं पराभिधायै नमः दक्षगण्डे
ॐ ॡं सूक्ष्मायै नमः वामगण्डे, ॐ एं सूक्ष्मामृतायै नमः ओष्ठे,
ॐ ऐं ज्ञानामृतायै नमः अधरे, ॐ ओं आप्यायिन्यै नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ,
ॐ औं व्यापिन्यै नमः अधःदन्तपंक्तौ ॐ अं व्योमरूपायै नमः शिरसि,
ॐ अः अनन्तायै नमः मुखे ॐ कं सृष्ट्यै नमः जिस्वाग्रे,
ॐ खं ऋद्धिकायै नमः कण्ठदेशे ॐ गं स्मृत्यै नमः दक्षबाहुमूले,
ॐ घं मेधायै नमः दक्षकूर्परे ॐ ङं कान्त्यै नमः दक्षमणिबन्धे,
ॐ चं लक्ष्म्यै नमः दक्षहस्ताङ्गुलिमूले, ॐ छं द्युत्यै नमः दक्षहस्ताङ्गुल्यग्रे,
ॐ जं स्थिरायै नमः वामबाहुमूले, ॐ झं स्थित्यै नमः वामकूर्परे,
ॐ ञं सिद्ध्यै नमः वाममणिबन्धे ॐ टं जरायै नमः वामहस्तांगुलिमूले,
ॐ ठं पालिन्यै नमः वामहस्ताङ्गुल्यग्रे ॐ डं क्षान्त्यै नमः दक्षपादमूले,
ॐ ढं ईश्वरिकायै नमः दक्षजानौ ॐ णं रत्यै नमः दक्षगुल्फे,

उक्ता कलामातृकैवं तत्तद्भक्तः समाचरेत् ।
ततः स्वमूलमन्त्रस्य न्यासान्कल्पोदितांश्चरेत् ॥ १४३ ॥
ऋषिश्छन्दोदैवतानि मूर्ध्नि वक्त्रेहृदि न्यसेत् ।
बीजं गुह्ये पदोः शक्तिमङ्गानि करयोरपि ॥ १४४ ॥
अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु करस्य तत्त्वपृष्ठयोः ।
अङ्गुष्ठाभ्यां तर्जनीभ्यां नमइत्यादिकं वदेत् ॥ १४५ ॥
हृदयादिष्वथाङ्गानि जातियुक्तानि विन्यसेत् ।
स्वस्वमुद्राभिरधुना प्रोच्यन्ते जातयश्च ताः ॥ १४६ ॥

ॐ तं कामिकायै नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले ॐ थं वरदायै नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे,
ॐ दं आह्लादिन्यै नमः वामपादमूले, ॐ धं प्रीत्यै नमः वामजानौ,
ॐ नं दीर्घायै नमः वामगुल्फे, ॐ पं तीक्ष्णायै नमः वामपादाङ्गुलिमूले,
ॐ फं रौद्र्यै नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे ॐ बं भयायै नमः दक्षपार्श्वे,
ॐ भं निद्रायै नमः वामपार्श्वे ॐ मं तन्द्रिकायै नमः पृष्ठे,
ॐ यं क्षुधायै नमः उदरे ॐ रं क्रोधिन्यै नमः हृदि,
ॐ लं क्रियायै नमः दक्षांसे, ॐ वं उत्कार्यै नमः ककुदि,
ॐ शं समृत्युकायै नमः वामांसे,
ॐ षं पीतायै नमः हृदयादिदक्षहस्तान्तम्
ॐ सं श्वेतायै नमः हृदयादिवामहस्तान्तम्
ॐ हं अरुणायै नमः हृदयादिदक्षपादान्तम्
ॐ ळं सितायै नमः हृदयादिवामपादान्तम्,
ॐ क्षं अनन्तायै नमः हृदयादिमस्तकान्तम् ॥ १३७-१४२ ॥

इस प्रकार विविध देवताओं का कलामातृका न्यास कहा गया । अतः कही गई विधि के अनुसार साधकों को अपने अपने इष्ट देवताओं का कलान्यास करना चाहिये । तदनन्तर कल्पग्रन्थों में कही गई विधि के अनुसार अपने अपने मूलमन्त्र के न्यासों को भी करना चाहिये ॥ १४३ ॥

अब **ऋष्यादिन्यास** कहते हैं -

मूल मन्त्र के ऋषि का शिर पर, छन्द का मुख पर, देवता का हृदय पर, बीज का गुह्य में तथा शक्ति का पैरों पर न्यास करना चाहिये । फिर अङ्गन्यास तथा करन्यास भी करना चाहिये ॥ १४४ ॥

अब **करन्यास विधि** कहते हैं -

अङ्गुष्ठादि अङ्गुलियों पर तथा करतल करपृष्ठ पर न्यास करते समय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, तर्जनीभ्यां नमः, मध्यमाभ्यां नमः, अनामिकाभ्यां नमः, कनिष्ठकाभ्यां नमः एवं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ऐसा कहना चाहिये ॥ १४५ ॥

हृदयाय नमश्चेति शिरसे स्वाहया युतम्।
शिखायैवषडङ्गं च कवचाय हुमित्यपि ॥ १४७ ॥
नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडितीरितम्।
जातिषट्कं द्विनेत्रे तु नेत्राभ्यां वौषडुच्चरेत् ॥ १४८ ॥
पञ्चाङ्गे नेत्रसन्त्यागो मुद्राङ्गानामथोच्यते।

विष्णवाद्यङ्गमुद्राकथनम्

प्रसारितमनङ्गुष्ठं तर्जन्यादि चतुष्टयम् ॥ १४९ ॥
हृदिमूर्ध्नि हि चाङ्गुष्ठहीनोमुष्टिः शिखातले।
स्कन्धमारभ्य नाभ्यन्ता दशाङ्गुल्यस्तु वर्मणि ॥ १५० ॥
तर्जन्यादित्रयं नेत्रत्रये नेत्रद्वये द्वयम्।
प्रसारिताभ्यां हस्ताभ्यां कृत्वा तालत्रयं सुधीः ॥ १५१ ॥
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरग्रे स्फालयन्बन्धयन्दिशः।
एषास्त्रमुद्रा श्रीविष्णोरङ्गमुद्रा उदीरिताः ॥ १५२ ॥

स्वस्वमुद्राभिर्जातियुक्तान्यंगानि हृदयादिषु न्यसेत् । तामुद्राजातयश्चोच्यन्ते ॥ १४६–१४८ ॥ विष्णोरंगमुद्रा आह – **प्रसारितमिति** । हृदि मूर्द्धनि च तर्जन्यादि चतुष्टयमेव । शक्तेः षडङ्गमुद्रा आह – **हृदीति** ॥ १४९ ॥ * ॥ १५०–१५२ ॥

अब **अङ्गन्यास का विधान** करते हैं -

अपनी अपनी मुद्रा एवं जातियों के साथ हृदयादि अङ्गों पर न्यास करना चाहिये । अब उन उन मुद्राओं को तथा जातियों को कहा जा रहा है ॥ १४६॥

हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट् कवचाय हुम्, नेत्रत्रयाय वौषट् तथा अस्त्राय फट् से ६ जाति कही जाती है । दो नेत्रवाले देवता के न्यास में 'नेत्राभ्यां वौषट्' ऐसा कहना चाहिये । जहाँ पञ्चागन्यास करना हो वहाँ नेत्रन्यास वर्जित हैं ॥ १४७-१४९ ॥

अब **अङ्गन्यास की मुद्रायें** कहते हैं -

अङ्गूठे के अतिरिक्त शेष तर्जनी आदि ४ अङ्गुलियों को फैला कर हृदय और शिर पर, पुनः अङ्गूठा रहित मुट्ठी से शिखा पर तथा कन्धे से लेकर नाभि पर्यन्त, दश अङ्गुलियों से कवच पर, तीन नेत्र वाले देवता के न्यास में तर्जनी आदि ३ अङ्गुलियाँ तथा दो नेत्र वाले देवता के न्यास में तर्जनी और मध्यमा इन दो अङ्गुलियों से न्यास करना चाहिये । हाथ को फैलाकर ३ बार ताली बजाकर साधक तर्जनी और अङ्गूठे के अग्रभाग को फैलाते हुये दिग्बन्धन करे - यह अस्त्र मुद्रा

हृद्यङ्गुलित्रयं न्यस्येत्तर्ज्जन्यादिद्वयं तुके ।
शिखाप्रदेशेथाङ्गुष्ठं दशाङ्गुल्यस्तु वर्मणि ॥ १५३ ॥
हृद्वन्नेत्रं पूर्वमस्त्रं शक्तेरङ्गस्य मुद्रिकाः ।
मुष्टीविनिर्गताङ्गुष्ठौ संयुक्तौ हृदि विन्यसेत् ॥ १५४ ॥
निस्तर्जनी तादृशी तु शिरस्यथ शिखातले ।
निरङ्गुष्ठकनिष्ठौ तौ निरङ्गुष्ठप्रदेशिनी ॥ १५५ ॥
मुष्टीपृथक्कृतौ स्कन्धाद्धृदन्तं वर्मणि स्मृतौ ।
तर्ज्जन्यादित्रयं नेत्रे तलास्फोटोऽस्त्रमीरितम् ॥ १५६ ॥
शैवी षडङ्गमुद्रोक्ता वर्णन्यासमथाचरेत् ।
जप्त्वा चाप्यफलामन्त्रा विघ्नदा न्यासमन्तरा ॥ १५७ ॥

के शिरसि ॥ १५३ ॥ अस्त्रं पूर्वं विष्णोरस्त्रतुल्यम् । शिव षडङ्गमुद्रा आह – **मुष्टी** इति ॥ १५४ ॥ निर्गता तर्जनीयाभ्यां तौ निस्तर्जनी तादृशावङ्गुष्ठौ संयुक्तौ च मुष्टी शिरसि । निरङ्गुष्ठकनिष्ठौ तौ संयुक्तौ मुष्टी शिखायाम् । अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां हीनौ मुष्टीकवचे । तलास्फोटः करतलास्फालनम् ॥ १५५–१५६ ॥ न्यासं विना मन्त्रा अफला विघ्नदास्ततो मूलमन्त्रस्य वर्णादिन्यासं कुर्यात् ॥ १५७ ॥

कही गई है । ये विष्णु के अङ्गन्यास की मुद्रायें कही गई हैं ॥ १४६-१५२ ॥

तर्जनी आदि तीन अङ्गुलियों को फैलाकर हृदय पर, दो अङ्गुलियों से शिर पर, अङ्गूठे से शिखा पर, दशों अङ्गुलियों से वर्म पर, हृदय के समान ही नेत्र पर तथा पूर्ववत् विष्णु के न्यास के समान अस्त्र पर न्यास करना चाहिये । यहाँ तक शक्ति न्यास की मुद्रायें कही गईं ॥ १५३-१५४ ॥

अङ्गूठे को बाहर निकाल कर बनी मुष्टि की मुद्रा से हृदय पर, तर्जनी और अङ्गूठा के अतिरिक्त शेष अङ्गुलियों को मिलाकर मुट्ठी बनाकर शिर पर न्यास करना चाहिये । अङ्गूठा और कनिष्ठा रहित मुट्ठियों से शिखा पर, अङ्गूठा और तर्जनी रहित मुट्ठियों से कवच पर तथा तर्जनी आदि ३ अङ्गुलियों से नेत्र पर न्यास करना चाहिये । दोनो हथेली को बजा देने से अस्त्र मुद्रा बन जाती है ये शिव के षडङ्गन्यास की मुद्रायें कही गईं ॥ १५४-१५७ ॥

इसके बाद **वर्णन्यास** करना चाहिये । न्यास किये बिना मन्त्र का जप निष्फल और विघ्नदायक कहा गया है ॥ १५७ ॥

पीठ देवताओं के न्यास करने के लिये अपने शरीर को ही पीठ मान लेना चाहिए । साधक को मूलाधार पर मण्डूक का, स्वाधिष्ठान पर कालाग्नि का, नाभि पर कच्छप का तथा हृदय में आधार शक्ति से आरम्भ कर (कूर्म, अनन्त,

पीठन्यासकथनम्

पीठस्य देवतान्यासाद्देहे पीठं प्रकल्पयेत् ।
न्यसेन्मण्डूकमाधारे स्वाधिष्ठाने ततः सुधीः ॥ १५८ ॥
कालाग्निरुद्रं नाभौ तु कच्छपं हृदये ततः ।
आधारशक्तिमारभ्य हेमपीठावधि न्यसेत् ॥ १५९ ॥
दक्षवामांसवामोरुदक्षोरुषु यथाक्रमात् ।
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं विन्यसेत्ततः ॥ १६० ॥
वदने वामपार्श्वे च नाभौ दक्षिणपार्श्वके ।
अधर्मादीन्प्रविन्यस्य हृद्यनन्तमितोऽम्बुजम् ॥ १६१ ॥
पद्मे सूर्येन्दुवह्नींश्च तेष्वर्णाद्यानिजाः कलाः ।
तत्तन्नामादि वर्णाद्यान्सत्त्वाद्यांस्त्रीन्गुणान्न्यसेत् ॥ १६२ ॥
तत्रात्मत्रयमाद्यर्णपूर्वं तुर्यं परादिकम् ।
मायातत्त्वं कलातत्त्वं विद्यातत्त्वं ततो न्यसेत् ॥ १६३ ॥

पीठन्यासमाह – न्यसेदिति ॥ १५८ ॥ आधारशक्तिकूर्मोऽनन्तपृथिवी–सागररत्नद्वीपप्रासादहेमपीठादीनि हृदि ॥ १५९ ॥ दक्षांसादिषु धर्मादयः पीठपादाः । ते च वृषकेसरि भूतगजरूपाः ॥ १६० ॥ मुखादिस्वधर्मादयः पीठगात्राणि । तेऽपि वृषादिरूपाः । इतोऽनन्तोऽम्बुजं पद्मम् ॥ १६१ ॥ तेषु सूर्यादिषु वर्णाद्याः सूर्यादिकलाः कं भं तपिन्यै नम इत्यादि द्वादशकलाः सूर्ये। अं अमृतायै नम इत्याद्या षोडशेन्दौ । यं धूम्रार्चिषे नम इत्याद्या दशवह्नौ । नामादि वर्णाद्यान् संसत्त्वाय नम इत्यादि० ॥ १६२ ॥ आत्मत्रयमादयः अउमावर्णास्तत्पूर्वम् । अं आत्मने० । उं अन्तरात्मने० । मं परमात्मने० । तुर्यं – ज्ञानात्मने० । परादिकं – ह्रींपूर्वम् ॥ १६३ ॥ * ॥ १६४–१६७ ॥

पृथ्वी, सागर, रत्नद्वीप, प्रासाद एवं) हेमपीठ तक का न्यास करना चाहिये (द्र० १.५०-५६) ॥ १५८-१५९ ॥

फिर दाहिने कन्धे, बायें कन्धे, वाम ऊरु एवं दक्षिण ऊरु पर क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य का न्यास करना चाहिये और मुख, वाम पार्श्व, नाभि एवं दक्षिण पार्श्व पर क्रमशः अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, और अनैश्वर्य का न्यास करना चाहिये ॥ १६०-१६१ ॥

इसके बाद पुनः हृदय में (अनन्त से पद्म तक तत्पाकार अनन्त, आनन्दकन्द, सविन्नाल, पद्म, प्रकृतिमय पत्र, विकारमय केसर तथा रत्नमय पञ्चाशद्बीजाढ्य कर्णिका का) न्यास कर, पद्म पर सूर्य की (तपिनी आदि १२) कलाओं का, चन्द्रमण्डल की (अमृता आदि १६) कलाओं का तथा वह्निमण्डल की (धूम्रार्चिष् आदि १०) कलाओं का नाम तथा उन कलाओं के आदि में वर्णो के प्रारम्भ के अक्षरों को

परतत्त्वं च नामादिवर्णपूर्वाणि विन्यसेत् ।
स्वपीठशक्तिर्विन्यस्य न्यसेत्पीठमनुं निजम् ॥ १६४ ॥
हृदि न्यस्यानन्तमुखं देवानामुत्तरोत्तरम् ।
प्रत्याधारत्वमुदितं पूर्वपूर्वस्य सत्तमैः ॥ १६५ ॥

लगाकर न्यास करना चाहिये । फिर अपने नाम के आद्यक्षर सहित सत्वादि तीन गुणों का न्यास करना चाहियै । तत्पश्चात् अपने नाम के आदि वर्ण सहित आत्मा अन्तराल और परमात्मा का तथा आदि में परा (ह्रीं) लगाकर ज्ञानात्मा का न्यास करना चाहिये ॥ १६१-१६३ ॥

पुनः माया तत्त्व, कलातत्त्व, विद्यातत्त्व और परतत्त्व का भी अपने नाम के आदि वर्ण सहित न्यास करना चाहिये । तदनन्तर पीठ शक्तियों का न्यास कर अपने पीठ मन्त्र का भी न्यास करना चाहिये । हृदय में अनन्त आदि देवों को उत्तरोत्तर एक दूसरे का आधार माना गया है (द्र० १. ५०-५६) क्योंकि सज्जनों ने पूर्व पूर्व का उत्तरोत्तर आधार कहा है ॥ १६३-१६५ ॥

विमर्श - पीठन्यास - प्रयोगविधि - अपने संप्रदाय में (वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य एवं सौर) कल्पोक्त करन्यास, अङ्गन्यास तथा वर्णन्यासों के करने के बाद अपने शरीर को इष्टदेवता का पीठ मानकर उसके विविध अङ्गो पर पीठ देवताओं का इस प्रकार न्यास करना चाहिये - ॐ मण्डूकाय नमः मूलाधारे, ॐ कालाग्निरुद्राय नमः स्वाधिष्ठाने, ॐ कच्छपाय नमः नाभौ, ॐ आधारशक्त्यै नमः हृदि, ॐ प्रकृतये नमः हृदि, ॐ कूर्माय नमः हृदि, ॐ अनन्ताय नमः हृदि, ॐ पृथिव्यै नमः हृदि ॐ क्षीरसागराय नमः हृदि ॐ रत्नद्वीपाय नमः हृदि ॐ मणिमण्डपाय नमः, हृदि, ॐ कल्पवृक्षाय नमः हृदि, ॐ मणिवेदिकायै नमः हृदि, ॐ हेमपीठाय नमः हृदि ।

पुनः धर्म आदि का तत्तत्स्थानों में इस प्रकार न्यास करना चाहिए । यथा - ॐ धर्माय नमः दक्षिणस्कन्धे, ॐ ज्ञानाय नमः वामस्कन्धे, ॐ वैराग्याय नमः वामोरौ, ॐ ऐश्वर्याय नमः दक्षिणोरौः ॐ अधर्माय नमः मुखे, ॐ अज्ञानाय नमः वामपार्श्वे, ॐ अवैराग्याय नमः नाभौ, ॐ अनैश्वर्याय नमः दक्षिणपार्श्वे ।

तदनन्तर हृदय में अनन्त आदि देवताओं का निम्नलिखित मन्त्रों से न्यास करना चाहिए । यथा - ॐ तल्पाकारायानन्ताय नमः हृदि,
ॐ आनन्दकन्दाय नमः हृदि ॐ संविन्नालाय नमः हृदि,
ॐ सर्वतत्त्वात्मकपद्माय नमः हृदि, ॐ प्रकृतमयपत्रेभ्यो नमः हृदि
ॐ विकारमयकेसरेभ्यो नमः हृदि, ॐ पञ्चाशद्बीजाढ्यकर्णिकायै नमः हृदि
ॐ अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः
पुनः हृत्पद्म पर - ॐ कं भं तपिन्यै नमः ॐ खं बं तापिन्यै नमः
ॐ गं फं धूम्रायै नमः ॐ घं पं मरीच्यै नमः ॐ ङं नं ज्वालिन्यै नमः,
ॐ चं धं रुच्यै नमः, ॐ छं दं सुषुम्णायै नमः, ॐ जं थं भोगदायै नमः,

स्वागताद्युपचारैर्मानसपूजाविधिकथनम्

इति देहमये पीठे ध्यायेत्स्वाभीष्टदेवताम् ।
तत्तन्मुद्रां प्रदर्श्याथ कुर्यान्मानसपूजनम् ॥ १६६ ॥
अथार्चयेत्ततो देवं मन्त्रेणानेन तन्मनाः ।
स्वागतं देवदेवेश सन्निधौ भव केशव ॥ १६७ ॥
गृहाण मानसीं पूजां यथार्थपरिभाविताम् ।
केशवेतिपदस्थाने कार्य ऊहोन्यदैवते ॥ १६८ ॥

ॐ झं तं विश्वायै नमः ॐ त्रं णं बोधिन्यै नमः,
ॐ टं ढं धारिण्यै नमः ॐ ठं डं क्षमयै नमः ।
पुनस्तत्रैव - ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः
ॐ अं अमृतायै नमः, ॐ आं मानदायै नमः, ॐ इं पूषायै नमः
ॐ ईं तुष्ट्यै नमः ॐ उं पुष्ट्यै नमः ॐ ऊं रत्यै नमः
ॐ ऋं धृत्यै नमः ॐ ॠं शशिन्यै नमः ॐ लृं चण्डिकायै नमः
ॐ लॄं कान्त्यै नमः ॐ एं ज्योत्स्नायै नमः ॐ ऐं श्रियै नमः
ॐ ओं प्रीत्यै नमः ॐ औं अङ्गदायै नमः ॐ अं पूर्णायै नमः
ॐ अः पूर्णामृतायै नमः ।
पुनस्तत्रैव - ॐ रं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः,
ॐ यं धूम्रार्चिषे नमः, ॐ रं ऊष्मायै नमः, ॐ लं ज्वलिन्यै नमः
ॐ वं ज्वालिन्यै नमः ॐ शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, ॐ षं सुश्रियै नमः,
ॐ सं स्वरूपायै नमः ॐ हं कपिलायै नमः, ॐ ळं हव्यवाहनायै नमः
पुनस्तत्रैव - ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः,
ॐ तं तमसे नमः, ॐ आं आत्मने नमः, ॐ अं अन्तरात्मने नमः,
ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, ॐ मां मायातत्त्वाय नमः,
ॐ कं कलातत्त्वाय नमः, ॐ विं विद्यातत्त्वाय नमः, ॐ पं परतत्त्वाय नमः ।

उपर्युक्त रीति से सभी न्यास सभी देवताओं की उपासना में विहित है । इसके बाद हृत्पद्म के पूर्वादि केसरों पर तत्तद्देवताओं की कल्पोक्त पीठ शक्तियों का न्यास करना चाहिये। तदनन्तर पुनः हृदय के मध्य में पीठमन्त्र से न्यास करना चाहिये ॥ १५८-१६५॥

इस प्रकार अपने देहमय पीठ पर अपने इष्ट देवता का ध्यान करना चाहिये । तदनन्तर उनकी मुद्रायें प्रदर्शित कर मानस पूजा भी करनी चाहिये ॥ १६६ ॥

मानस पूजा करते समय तन्मय हो कर इन मन्त्रों से इष्टदेव का पूजन भी करना चाहिये ।

स्वागतं देवदेवेश सन्निधो भव केशव ।
गृहाण मानसीं पूजां यथार्थपरिभाविताम् ॥

मनसा पूजयित्वैवं क्षणं तद्गतमानसः ।
स्थित्वामूलमनुं विद्वाञ्जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥ १६६ ॥
जपं निवेद्य देवाय स्थापयेदर्घ्यमुत्तमम् ।
बाह्यसंपूजनायाथ तत्प्रकारो निगद्यते ॥ १७० ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ देवस्य स्नानादिनिरूपणं नामैकविंशस्तरङ्गः ॥ २१ ॥

अन्य दैवते ऊहः – शंकर पार्वतीत्यादि० ॥ १६८–१७० ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां देवस्य स्नानादिनिरूपणं नामैकविंशस्तरङ्गः ॥ २१ ॥

इसी प्रकार अन्य देवताओं के मानस पूजन में केशव के स्थान में शंकर, पार्वती, गणेश, दिनेश, आदि पद का ऊह कर के उच्चारण करना चाहिये ॥ १६७-१६८ ॥

मानस पूजा विधि - सर्वप्रथम अपने इष्टदेव के स्वरूप का ध्यान कर उनकी मुद्रा प्रदर्शित करे । तदनन्तर तन्मय हो कर 'स्वागतं' आदि मन्त्र से उनका स्वागत कर सन्निधिकरण करे । फिर मानसोपचारों से उनका पूजन करे । इस प्रकार मानस पूजा करने के बाद साधक कुछ क्षणों के लिये तन्मय हो इष्टदेव के मूल मन्त्र का १०८ बार जप करे ॥ १६९ ॥

तदनन्तर देवता को जप समर्पित कर विशेषार्घ्य भी स्थापित करना चाहिये । यहाँ तक मानस पूजा का प्रकार कहा गया । अब बाह्य पूजा के लिये उसकी विधि निरूपण करता हूँ ॥ १७० ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के एकविंश तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशः तरङ्गः

नित्यार्चनविधिवर्णनम्

स्ववामाग्रे तु षट्कोणवृत्तभूपुरवेष्टितम् ।
कृत्वा त्रिकोणमूर्ध्वाग्रं स्तम्भयेच्छखमुद्रया ॥ १ ॥
पुष्पाक्षतैः षडङ्गानि तत्राग्न्यादिषु पूजयेत् ।
अस्त्रक्षालितमाधारं तत्रादध्यान्मनुं जपन् ॥ २ ॥

---

* नौका *

अर्घ्यस्थापनमाह – **स्वेति** । स्ववामाग्रे त्रिकोणषट्कोणवृत्तचतुरस्राणि कृत्वा शङ्खमुद्रया स्तम्भयेत् । शंखमुद्रालक्षणं यथा –

वामाङ्गुष्ठं तु सङ्गुह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना ।
कृत्वोत्तानं तथा मुष्टिमङ्गुष्ठं तु प्रसारयेत् ॥
वामाङ्गुल्यस्तथाश्लिष्टाः संयुताः सुप्रसारिताः ।
दक्षिणाङ्गुष्ठकेलग्ना मुद्राशंखस्य भूतिदा ॥ इति ॥ १ ॥

ततः पुष्पाक्षतैरग्न्यादिषु षडङ्गानि संपूज्यास्त्रक्षालितमाधारं (ॐ) मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने देवार्घ्यपात्रासनाय नमः – इत्याधारं त्रिकोणे

---

* अरित्र *

अब पूर्वप्रतिज्ञात **अर्घ्यस्वरूप** कहते हैं - अपने वामाग्र भाग में त्रिकोण, उसके बाद षट्कोण, फिर वृत्त तदुपरि चतुरस्त्र रूप मन्त्र लिखकर शङ्खमुद्रा से उसे स्तम्भित करना चाहिए ॥ १ ॥

विमर्श - शङ्खमुद्रा का लक्षण - बायें हाथ के अंगूठे को दाहिनी मुट्ठी में रक्खे, दाहिनी मुटठी को ऊर्ध्वमुख रखकर उसके अंगूठे को फैलाए । बायें हाथ की सभी उंगलियों को एक दूसरे के साथ सटा कर फैला दे । अब बायें हाथ की फैली उंगलियों को दाहिनी ओर घुमा कर दाहिने हाथ के अंगूठे का स्पर्श करे तब यह शङ्ख मुद्रा कहलाती है ॥ १ ॥

उस यन्त्र के आग्नेयादि कोणों में पुष्प तथा अक्षतों से षडङ्ग पूजा करनी चाहिए । फिर 'फट्' इस अस्त्र मन्त्र से प्रक्षालित आधार पात्र को वक्ष्यमाण मन्त्र

घटस्थापनप्रकारवर्णनम्

मं वह्निमण्डलायेति ततो दशकलात्मने।
अमुकार्घ्येति पात्रान्ते सनाय नम इत्यपि॥ ३॥
चतुर्विंशति वर्णोऽयमाधारस्थापने मनुः।
आधारे पूर्वकाष्ठादि दशार्चेत्पावकीः कलाः॥ ४॥
स्वमन्त्रक्षालितं शङ्खं स्थापयेन्मनुमुच्चरन्।
अं सूर्यमण्डलायान्ते द्वादशेति कलात्मने॥ ५॥
अमुकार्घ्येति पात्राय नमोन्तस्त्र्यक्षिवर्णवान्।
शङ्खस्थापनमन्त्रोऽयं तारः कामो महाजलः॥ ६॥
चराय वर्मफट् स्वाहा पाञ्चजन्याय हृन्मनुः।
शङ्खस्य विंशत्यर्णाढ्यस्तेन प्रक्षालयेत्तु तम्॥ ७॥
कलाद्वादश सूर्यस्य शङ्खोपरि यजेत् क्रमात्।
विलोमां मातृकां मूलं विलोमं च पठञ्जलैः॥ ८॥

स्थापयेत् । तत्राग्नेः कलाधूम्रार्चिराद्याः पूजयेत् ॥ २–४ ॥ **स्वमन्त्रेति** । शंखं मन्त्रक्षालितं शंखम् (ॐ) अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने देवार्घ्यपात्राय नमः इति आधारे स्थापयेत् ॥ ५ ॥ त्र्यक्षिवर्णवांस्त्रयोविंशतिवर्णः अमुकपदस्थाने इष्ट देवतानामोच्चार्य रामार्घ्येत्यादि० । शंखमन्त्रमाह – **तार** इति । कामः क्लीं। ॐ क्लीं महाजलचराय हुं फट् स्वाहा पाञ्चजन्याय नम इति ॥ ६–७ ॥ तत्रार्ककलास्तपिन्याद्याः संपूज्य विलोमेन मूलमातृके जपन् जलैस्तं संपूज्य – ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने देवार्घ्यामृताय नम इत्यर्घ्यं संपूज्य तत्र

का उच्चारण करते हुये त्रिकोण पर स्थापित कर देना चाहिए । '(ॐ) मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने देवार्घ्यपात्रासनाय नमः' । यह २४ अक्षर का आधारपात्र स्थापित करने का मन्त्र है ॥ २-४ ॥

तदनन्तर आधारपात्र पर पूर्वादिदिशाओं में (धूम्रार्चिष् आदि) अग्निकलाओं का तत्तन्नामों द्वारा पूजन करना चाहिए । फिर आधारपात्र के ऊपर अस्त्र मन्त्र से प्रक्षालित शङ्ख को '(ॐ) अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने देवार्घ्यपात्राय नमः', इस २३ अक्षरों के मन्त्र से स्थापित करना चाहिए ॥ ४-६ ॥

अमुक देव के स्थान पर अपने इष्ट देवता का चतुर्थ्यन्त नाम (राम, कृष्ण, दुर्गा, गणेश, शिव आदि का चतुर्थ्यन्त) उच्चारण करना चाहिए । पुनः तार (ॐ), काम (क्लीं), एवं 'महाजलचराय हुं फट् स्वाहा पाञ्चजन्याय नमः', इस २० अक्षर के मन्त्र से शङ्ख को प्रक्षालित कर देना चाहिए ॥ ६-७ ॥

आपूर्य मनुनेष्ट्वा तं तत्रार्च्चेदैन्दवीः कला।
ॐ सोममण्डलायान्ते षोडशान्ते कलात्मने ॥ ६ ॥
अमुकार्घ्यामृतायेति हृन्मनुश्चार्घ्यपूजने।
आवाह्येत्तत्र तीर्थानि तन्मन्त्रैः सृणिमुद्रया ॥ १० ॥
रविमण्डलतः स्वीयहृदो देवमथाह्वयेत्।
अष्टकृत्वो जपेन्मन्त्रं स्पृष्ट्वा जलमनन्यधीः ॥ ११ ॥
अप्सु विन्यस्य चाङ्गानि हृदा संपूजयेदपः।
मूलं जपेदष्टशतं च्छादयन् मत्स्यमुद्रया ॥ १२ ॥
संरक्षेदस्त्रमन्त्रेण च्छोटिकामुद्रया जलम्।
मुद्रया चावगुण्ठिन्या वर्मणा त्ववगुण्ठयेत् ॥ १३ ॥
अमृतीकृत्य गोमुद्रां कुर्वन्नमृतबीजतः।
संरोधिन्या सन्निरुध्य तत्र मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥ १४ ॥

तन्मन्त्रं सृणिमुद्रया गङ्गे चेत्यादि तीर्थमन्त्रेणाङ्कुशमुद्रयाऽर्कमण्डलातीर्थमावाह्य स्वहृदो देवमावाहयेत् । अङ्कुशमुद्रा लक्षणमुक्तम् । मत्स्यमुद्रोक्ता ॥ ८–१२ ॥ अङ्गुष्ठतर्जनीस्फोटं – छोटिकामुद्रा । वाममुष्टि–निर्गत–तर्जनीकं कृत्वा शङ्खोपरि भ्रमणम् – अवगुण्ठिनीमुद्रा । वर्मणा हुं बीजेन ॥ १३ ॥ गोमुद्रां धेनुमुद्राम् । सा यथा – 'वामाङ्गुलीनां मध्येषु दक्षिणाङ्गुलीकास्तथा ।
संयोज्य तर्जनीं दक्षां मध्यमानामयोस्तथा ॥
दक्षमध्यमयोर्वामां तर्जनीं च नियोजयेत् ।

तदनन्तर शङ्ख के ऊपर (तापिनी आदि) द्वादश सूर्यकलाओं का पूजन करना चाहिए । पश्चात् विलोम मातृकाओं एवं विलोम मूल मन्त्र 'ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने देवार्घ्यामृताय नमः' बोलते हुये उसमें जल भर कर इस मन्त्र से जल का पूजन कर उसमें चन्द्रमा की अमृतादि १६ कलाओं का पूजन करना चाहिए ॥ ८-९ ॥

पुनः उस अर्घ्यादिक में अंकुश मुद्रा प्रदर्शित कर 'गङ्गे च यमुने चैव' इस मन्त्र से तीर्थो का आवाहन करना चाहिए । इसी प्रकार अपने हृदय में भी इष्टदेव का आवाहन करना चाहिए । फिर जल का स्पर्श करते हुये एकाग्रचित्त हो ८ बार मूलमन्त्र का जप करना चाहिए । पश्चात् जल में अङ्गन्यास कर हृदय (नमः) मन्त्र से पुनः उसका पूजन करना चाहिए । फिर मत्स्य मुद्रा से उसे आच्छादित कर १०८ बार मूल मन्त्र का जप करना चाहिए ॥ १०-१२ ॥

फिर अस्त्र (फट्) मन्त्र से छोटिका मुद्रा द्वारा उसकी रक्षा करनी चाहिए । वर्म (हुं) मन्त्र से अवगुण्ठनी मुद्रा द्वारा उसे गोंठ देना चाहिए । पुनः धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करने के बाद अमृत बीज (वं) मन्त्र से संरोधिनी मुद्रा प्रदर्शित करते

शङ्खमौसल चक्राख्या परमीकृत्य तत्पुनः ।
महामुद्रां विरचयन्योनि मुद्रां च दर्शयेत् ॥ १५ ॥
कृष्णमन्त्रे गालिनीं च रामे गरुडमुद्रिकाम् ।
शङ्खाद् दक्षिण दिग्भागे प्रोक्षणीपात्रपूरणम् ॥ १६ ॥
कृत्वार्घ्याम्ब्वत्र निक्षिप्य तेनोक्षेत्त्रिर्निजां तनुम् ।
प्रजपन् मूलगायत्रीं पूजावस्तु च यं तथा ॥ १७ ॥
पाद्याचमनपात्रे च दध्यादर्घ्यस्तथोत्तरे ।
एवमर्घ्यविधिः प्रोक्तः सर्वसाधारणो मया ॥ १८ ॥

वामयानामया दक्षकनिष्ठां च नियोजयेत् ॥
दक्षयाऽनामया वामां कनिष्ठां च नियोजयेत् ।
विहिताधोमुखी चैषा धेनुमुद्रा प्रकीर्तिता' ॥ इति ॥
अमृतबीजतः वमिति बीजेन संरोधिन्या मुद्रया । सा यथा –
'अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव संनिरोधे समीरिता' ॥ इति ॥
अङ्गुष्ठगर्भ मुष्टिद्वयमित्यर्थः । तत्रार्घ्य मुद्राः शङ्खाद्याः ॥ १४ ॥
शङ्खमुसलचक्रमुद्रा उक्ताः । महामुद्रां कुर्वन् परमीकृत्य करयोरङ्गुलीः सङ्ग्रथ्य करौ वियोजयेति । महामुद्रोक्ता ॥ १५॥ कराङ्गुल्यग्राणि वक्रीकृत्यं समुखं योजितानि गालिनी मुद्रा । गरुडमुद्रा यथा –
'संमुखौ तु करौ कृत्वा ग्रन्थयित्वा कनिष्ठिके ।
पुनश्चाधोमुखे कृत्वा तर्जन्यौ योजयेत्तयोः ॥
मध्यमानामिके द्वे तु पक्षाविव विचालयेत् ।
मुद्रैषा पक्षिराजस्य सर्वविघ्ननिवारिणी' ॥ १६ ॥
तेन प्रोक्षणीजलेन निजाङ्गमुक्षेत्सिञ्चेत् । मूलगायत्र्या पूजोपकरणानि च उक्षेत् ॥ १७–१८ ॥

हुये संरोधन कर शङ्ख, मुशल एवं चक्र मुद्रायें प्रदर्शित कर महामुद्रा से परमीकरण करना चाहिए । तदनन्तर योनि मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ १३-१५ ॥

कृष्ण मन्त्र के अनुष्ठान में गालिनी मुद्रा तथा राम मन्त्र के अनुष्ठान में गरुड़ मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ १६ ॥

शङ्ख के दक्षिण दिशा में प्रोक्षणी पात्र में जल भर कर अर्घ्य पात्र से उसमें थोड़ा जल डाल कर अपने शरीर का तीन बार प्रोक्षण करना चाहिए । फिर मूलमन्त्र एवं गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुये पूजा सामग्री को भी प्रोक्षित करना चाहिए । उस स्थापित अर्घ्यपात्र की उत्तर दिशा में पाद्य एवं आचमन पात्र स्थापित करना चाहिए ॥ १६-१८ ॥

विहाय शंकरं सूर्यमर्घ्ये शङ्खः प्रशस्यते ।

यहाँ तक सभी देवताओं के पूजन में प्रयुक्त विशेषार्घ्य स्थापन की सामान्य विधि मैने कही ॥ १८ ॥

भगवान् शंकर एवं सूर्यदेव को छोड़कर अन्य समस्त देवताओं के अर्घ्य के लिए शङ्ख पात्र प्रशस्त माना गया है ॥ १९ ॥

पात्रस्थापनयन्त्रम्

विमर्श - अर्घ्य पात्र स्थापन की संक्षेप विधि -

पूर्व में आधार पात्र स्थापन की विधि २२. १-३ में कह आये हैं । उस स्थापित आधार पात्र के पूर्वादि दश दिशाओं में अग्नि की १० कलाओं का इस प्रकार पूजन करना चाहिए । यथा - ॐ रं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः । ॐ यं धूम्रार्चिषे नमः, ॐ रं ऊष्मायै नमः, ॐ लं ज्वलिन्यै नमः, ॐ वं ज्वालिन्यै नमः, ॐ शं विस्फुलिंगिन्यै नमः, ॐ षं सुश्रियै नमः ॐ सं स्वरूपायै नमः, ॐ हं कपिलायै नमः, ॐ ळं हव्यवाहायै नमः

फिर 'ॐ क्लीं महाजलचराय हुं फट् स्वाहा पाञ्चजन्याय नमः' इस मन्त्र से सामान्यार्घ्यक जल से शङ्ख को प्रक्षालित करना चाहिए । तदनन्तर 'अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने अमुकार्घ्यपात्राय नमः' इस मन्त्र से आधार पात्र पर शङ्ख को स्थापित करना चाहिए ।

फिर उस शङ्ख पर सूर्य की द्वादश कलाओं का तत्तन्नामों से इस प्रकार पूजन करना चाहिए । यथा - ॐ कं भं तपिन्यै नमः, ॐ खं बं तापिन्यै नमः,

ॐ गं फं धूम्रायै नमः ॐ घं पं मरीच्यै नमः,
ॐ ङं नं ज्वालिन्यै नमः ॐ चं धं रूच्यै नमः
ॐ छं दं सुषुम्णायै नमः ॐ जं थं भोगदायै नमः
ॐ झं तं विश्वायै नमः, ॐ ञं णं बोधिन्यै नमः,
ॐ टं ढं धारिण्यै नमः ॐ ठं डं क्षमायै नमः

तत्पश्चात् क्षं ळं हं शं ... आं अं पर्यन्त विलोग मातृका से तथा विलोम मूलमन्त्र बोलते हुये शङ्ख में जल भर कर 'ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने अमुकार्घ्यामृताय नमः', मन्त्र से लाल चन्दन एवं पुष्पादि से उस जल का पूजन करना चाहिए ।
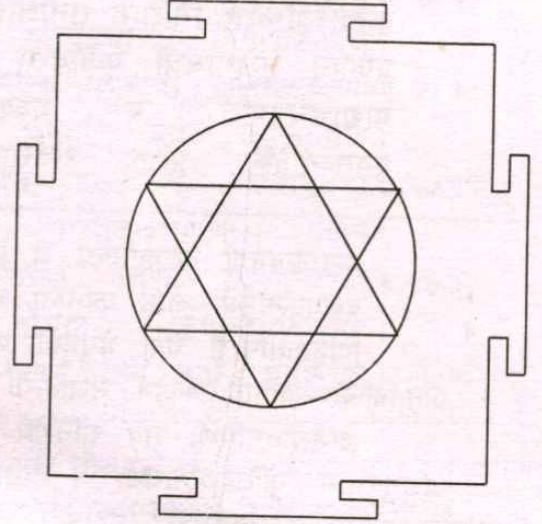
फिर चन्द्रमा की १६ कलाओं का नाम उनके मन्त्रों से इस प्रकार पूजन करना चाहिए । यथा - ॐ अं अमृतायै नमः, ॐ आं मानदायै नमः,
ॐ इं पूषायै नमः, ॐ ईं तुष्ट्यै नमः, ॐ उं पुष्ट्यै नमः,
ॐ ऊं रत्यै नमः, ॐ ऋं धृत्यै नमः, ॐ ॠं शशिन्यै नमः,
ॐ लृं चण्डिकायै नमः, ॐ ॡं कान्त्यै नमः, ॐ एं ज्योत्स्नायै नमः,
ॐ ऐं श्रियै नमः, ॐ ओं प्रीत्यै नमः, ॐ औं अङ्गदायै नमः,
ॐ अं पूर्णायै नमः, ॐ अः पूर्णामृतायै नमः

तदनन्तर - ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥
ॐ ब्रहाण्डोदरतीर्थानि करस्पृष्टानि ते रवे ।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर ॥

इस मन्त्र को पढ़कर अंकुश मुद्रा द्वारा सूर्य मण्डल से अर्घ्योदक में तीर्थों का आवाहन कर हृदय में भी अपने इष्टदेवता का आवाहन करना चाहिए । फिर जल का स्पर्श कर एकाग्रचित्त से ८ बार मूलमन्त्र का जप कर जल में षडङ्गन्यास कर 'नमः' मन्त्र से जल का पूजन करना चाहिए ।

फिर मत्स्य मुद्रा से उसे आच्छादित कर मूलमन्त्र का १०८ बार जप करना चाहिए । शेष श्लोकार्थ में स्पष्ट है । अब विशेषार्घ्य स्थापन के प्रसङ्ग में आई हुई मुद्राओं का लक्षण प्रदर्शित करते हैं -

शङ्ख मुद्रा का लक्षण - द्रष्टव्य २२. १-२ ।

अंकुशमुद्रा - दोनों मध्यमाओं को सीधा रखते हुए दोनों तर्जनियों को मध्य पोर के पास परस्पर बाँधे । अब तर्जनियों को थोड़ा झुकाकर एक दूसरे को खींचे । यह अंकुश मुद्रा है ।

मत्स्यमुद्रा - बाई हथेली को दाहिने हाथ के पृष्ठ भाग पर रक्खे और फिर दोनों अङ्गूठों को हथेली को पार करते हुए मिलाए । यह मत्स्य मुद्रा है।

छोटिकामुद्रा - तर्जनी एवं अङ्गूठे के घर्षण से चुटकी बजाने को छोटिका मुद्रा कहते है ।

अवगुण्ठनमुद्रा - दायें हाथ की मुट्ठी बाँध कर तर्जनी को अधोमुख करके पुनः उसे नियमित रूप से आगे-पीछे करने से 'अवगुण्ठन मुद्रा' बनती है ।

धेनुमुद्रा - बायें हाथ की मध्यमा को दाहिने हाथ की तर्जनी से और बायें हाथ की अनामिका को दाहिने हाथ की कनिष्ठिका से मिलाये । इस प्रकार मिली अनामिका और कनिष्ठा को अङ्गूठे से दबा कर उनसे बायें कन्धों का स्पर्श करे । यह धेनु मुद्रा है ।

सन्निरोधन मुद्रा - दोनों हाथों की मुट्ठी को एक साथ आश्लिष्ट कर

हेमरूप्योदुम्बराब्जरीतिदारुमृदुद्भवम् ॥ १६ ॥
पालाशं पद्मपत्रं वा स्मृतं पाद्यादिभाजनम् ।
अशक्तावन्यपात्रेण पाद्यादीनि निवेदयेत् ॥ २० ॥

उदुम्बरं ताम्रम् । रीतिः पित्तलम् ॥ १६-२१ ॥

सन्निधान में दोनों अङ्गूठों को ऊपर करना तन्त्रवेत्ताओं के द्वारा सन्निरोधन मुद्रा कही गई है । वही सन्निरोधनी 'अङ्गुष्ठगर्भिणी' भी कही गई है ।

मुसलमुद्रा - दोनों हाथों की मुठ्ठी बाँधे फिर दाहिनी मुट्ठी को बायें पर रक्खे । इसे मुसल मुद्रा कहते हैं ।

चक्रमुद्रा - दोनों हाथों को इस प्रकार सम्मुख रक्खे कि दोनों हथेलियाँ ऊपर हों । फिर दोनों हाथों की उंगलियों को मोड़ कर मुट्ठियाँ बना लेवे । अब दोनों अङ्गूठों को झुका कर परस्पर स्पर्श कराये और दोनों तर्जनियों को छोड़ कर दोनों हाथों की उंगलियों को फैला दे । अंगूठे की ही भाँति दोनों तर्जनियाँ भी एक दूसरे का स्पर्श करती रहे । इसे चक्र मुद्रा कहते हैं ।

महामुद्रा - दोनों अंगूठों को एक दूसरे के साथ ग्रथित करके दोनों हाथों की उँगलियों को प्रसारित कर देने से परमीकरण के लिए विद्वानों के द्वारा महामुद्रा कही गई है ।

योनिमुद्रा - दोनों कनिष्ठिकाओं को, तथा तर्जनी और अनामिकाओं को बाँधे । अनामिका को मध्यमा से पहले किञ्चित मिलाये और फिर उन्हें सीधा कर दे । अब दोनों अंगूठों को एक दूसरे पर रक्खे । यह योनि मुद्रा है ।

गालिनीमुद्रा - दोनों हथेलियों को एक दूसरे पर रक्खे । कनिष्ठिकाओं को इस प्रकार मोड़े कि वे अपनी-अपनी हथेलियों का स्पर्श करें । तर्जनी, मध्यमा और अनामिका उँगलियाँ सीधी और परस्पर मिली रहें । यह शङ्ख बजाने की गालिनी मुद्रा है ।

गरुड़मुद्रा - दोनों हाथों के पृष्ठ भाग को एक दूसरे से मिला लें । अब नीचे की ओर लटके हुए दोनों हाथों की तर्जनी और कनिष्ठिका को एक दूसरे के साथ ग्रथित करे । इसी स्थिति में दोनों हाथों की अनामिका और मध्यमाओं को उल्टी दिशाओं में किसी पक्षी के पंखों की भाँति ऊपर नीचे जब किया जाय तब विष्णु का सन्तोषवर्धन करने वाली गरुड़ मुद्रा होती है ॥ १८ ॥

अब **पाद्यादि पात्रों का वर्णन** करते हैं -

सुवर्ण चाँदी ताँबा शङ्ख पीतल पलाश के पत्ते अथवा कमल के पत्तों से बने पाद्य आदि के पात्र श्रेष्ठ कहे गये है । अशक्त होने पर अन्य पाद्य पात्र अपने इष्ट देवता को निवेदन करना चाहिए ॥ १६-२० ॥

देहमयपीठेऽन्तर्यागकरणविधिः

अन्तर्यागं ततः कुर्यात् पीठे देहमये सुधीः ।
न्यासस्थानेषु मण्डूकमुख्यान्गन्धादिभिर्यजेत् ॥ २१ ॥
पीठमन्त्रान्तमन्त्रेण हृदये स्वेष्टदेवताम् ।
कुण्डलीमथ चोत्थाप्य द्वादशान्ते परं नयेत् ॥ २२ ॥
तदुत्थामृतधाराभिः प्रीणयेत् स्वेष्टदेवताम् ।
जपं कृत्वा निवेद्यास्मै मनसा न विसर्जयेत् ॥ २३ ॥
मूर्द्धहृत्पादगुह्येषु तनौ पुष्पाञ्जलीन् क्षिपेत् ।
अन्तर्यागं विधायेत्थं बाह्यपूजनमाचरेत् ॥ २४ ॥

बाह्यपूजने पीठादिपूजाविधिवर्णनम्

अन्तर्यागबहिर्यागौ गृहस्थः सर्वमाचरेत् ।
आद्यमेव ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ २५ ॥
वर्द्धन्यां प्रक्षिपेत् किञ्चिदर्घोदकमनन्यधीः ।
प्राणानायम्य मूलेन वामे गुरुचयं नमेत् ॥ २६ ॥

कुण्डलीमथेति । आधारचक्रात् कुण्डलिनीमुत्थाप्य द्वादशान्ते ब्रह्मरन्ध्रे वर्तमाने परब्रह्म नयेत् ॥ २२–२४ ॥ ब्रह्मचारिवानप्रस्थयतय आद्यमन्तर्यागमेव । तेषां द्रव्याभावाद् बहिर्यागेनाधिकारः ॥ २५–२७ ॥

अब **अन्तर्याग की प्रक्रिया** कहते हैं - विद्वान् साधक को अपने देहमय पीठ पर अन्तर्याग करना चाहिए । पीठ न्यास में कहे गये स्थानों पर (द्र० २१. १५८-१६५) मण्डूकादि देवताओं का गन्धादि उपचारों से पूजन करना चाहिए। फिर पीठ मन्त्र से अपने हृदय में इष्ट देवता का पूजन करना चाहिए ॥ २१-२२ ॥

तदनन्तर आधार चक्र से कुण्डलिनी को ऊपर उठाकर ब्रह्मरन्ध्र में वर्तमान परब्रह्म के पास ले जाना चाहिए और वहाँ से टपकती हुई अमृत धारा से इष्टदेव को तृप्त करना चाहिये, और जप कर उन्हें सारा जप समर्पित करना चाहिए । मन से उनका कभी विर्सजन नहीं करना चाहिए ॥ २२-२३ ॥

फिर शिर, हृदय, पैर, गुदाङ्ग एवं समग्र शरीर पर पुष्पाञ्जलियाँ प्रत्यर्पित करनी चाहिए । इस तरह अन्तर्याग करके वाह्यपूजन करना चाहिए । इस प्रकार गृहस्थ को अन्तर्याग और बहिर्याग दोनों करने का अधिकार है । किन्तु ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यति को मात्र अन्तर्याग ही करना चाहिए ॥ २४-२५ ॥

बाह्य पूजा विधि - सर्वप्रथम साधक एकाग्र होकर अर्घ्यादिक का जल वर्द्धनी में डाले, फिर मूलमन्त्र से प्राणायाम कर अपनी बायीं ओर गुरुपंक्ति को

दक्षिणे च गणेशानं पीठपूजामथाचरेत् ।
स्वर्णादिनिर्मिते यन्त्रे यद्वा चन्दननिर्मिते ॥ २७ ॥
मण्डूकात्परतत्त्वान्तं दिङ्मध्ये पीठशक्तयः ।
पृथिव्यनन्तरं पूज्यः क्षीराब्धिर्माधवे श्रिया ॥ २८ ॥
इक्षुसिन्धु गणेशेस्यादन्यत्रामृतसागरः ।
अग्निराक्षसवाय्वीशकोणे धर्मादयः स्मृताः ॥ २९ ॥
इन्द्रकीनाशवरुणसोमाशासु नञादिकाः ।
धर्मादिपूजने प्रांची तथैवावरणार्चने ॥ ३० ॥
पूजकस्य पुरः कल्प्याः शक्रादिषु यथास्वकम् ।

पीठशक्तिध्यानकथनम्

श्वेताकृष्णारुणापीता श्यामा रक्तासितासिता ॥ ३१ ॥
रक्ताम्बराऽभयधरा ध्येयाः स्युः पीठशक्तयः ।
शालग्रामे मणौ यन्त्रे नित्यपूजां समाचरेत् ॥ ३२ ॥

मण्डूकादयः परतत्त्वान्ताः पीठदेवता उक्ताः ॥ २८–२९ ॥ कीनाशो यमः। नञादिका अधमादयः ॥ ३० ॥ शक्रादिषु यथा स्वकं प्रसिद्धैव प्राची । पीठशक्तीनां ध्यानमाह – **श्वेतेति** । यथाविधि स्थापितायां विधिना प्रतिष्ठितायाम् । योर्ध्वदृक् अधोदृक् वक्रा च तान् पूज्याः ॥ ३१–३८ ॥

तथा दाहिनी ओर गणपति को प्रणाम कर पीठ पूजा प्रारम्भ करे ॥ २६-२७ ॥

स्वर्ण आदि से निर्मित अथवा चन्दन लिखित यन्त्र पर मण्डूक से परतत्वान्त देवताओं का पूजन कर आठो दिशाओं में तथा मध्य में पीठशक्तियों का पूजन करे ॥ २७ ॥

लक्ष्मी के साथ विष्णु पूजन करते समय क्षीर सागर का, गणेश पूजन काल में इक्षुसागर का तथा अन्य देवताओं के पूजन में अमृत सागर का पूजन करे ॥ २८-२९॥

फिर यन्त्र के आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान कोणों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य का पूजन करे तथा फिर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं में अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य का पूजन करना चाहिए । साधक को धर्मादि की पूजा तथा आवरण पूजा में प्राची दिशा से आरम्भ करनी चाहिए । 'पूज्य पूजकयोर्मध्ये प्राचीकल्पः' - ऐसा धर्मशास्त्र का वचन है, जिस प्रकार इन्द्रादि दिक्पालों की पूजा प्रांची से प्रारम्भ होती है ॥ २९-३१ ॥

फिर श्वेत, कृष्ण, अरुण, पीत, श्याम, रक्त, श्वेत, कृष्ण और रक्त वस्त्र धारण किये हुये तथा अभय मुद्रा वाली पीठ शक्तियों का ध्यान करना चाहिए ॥ ३१-३२ ॥

हेमादिप्रतिमायां वा स्थापितायां यथाविधि ।
अङ्गुष्ठादि वितस्त्यन्त प्रमाणा प्रतिमा गृहे ॥ ३३ ॥
पूज्यानदग्धा भिन्ना वा नोद्ध्र्वाधोदृड् न वक्रिका ।
लिङ्गं वा लक्षणोपेतं तत्रावाहनमाचरेत् ॥ ३४ ॥
मूलमुच्चार्य हृदयात्सुषुम्नावर्त्मना सह ।
द्वारेण ब्रह्मारन्ध्रस्य नासारन्ध्रे विनिर्गतम् ॥ ३५ ॥
पुष्पाञ्जलौ मातृकाब्जे योजयित्वा विनिक्षिपेत् ।
मूर्त्तौ पुष्पाञ्जलिं चैतदावाहनमुदीरितम् ॥ ३६ ॥
शालग्रामे स्थिरायां वा नावाहनविसर्जने ।
आह्वानाद्युपचारेषु श्लोकाञ्छम्भूदितान् पठेत् ॥ ३७ ॥
आत्मसंस्थमजं शुद्धं त्वामहं परमेश्वर ।
अरण्यामिव हव्यांशं मूर्तावावाहयाम्यहम् ॥ ३८ ॥

पञ्चायतनपूजाविधिवर्णनम्

पञ्चायतनपक्षे तु मध्ये विष्णुं समर्चयेत् ।
अग्निनिर्ऋतिवायव्येशानेषु गणनायकम् ॥ ३९ ॥

पञ्चायतनपूजामाह – **पञ्चेति** ॥ ३९ ॥ * ॥ ४२ ॥

शालग्राम में, मणि में तथा यन्त्र में नित्यपूजा का विधान है । सुवर्णादि निर्मित प्रतिमा अथवा सविधि स्थापित प्रतिमा का भी प्रतिदिन पूजन करना चाहिए । अंगूठे से लेकर १ बालिश्त की प्रतिमा का घर में भी पूजन किया जा सकता है । जली, टूटी, ऊँची - नीची दृष्टि वाली तथा वक्र आकृति की प्रतिमा का पूजन निषिद्ध है ॥ ३२-३४ ॥

सर्वलक्षण संयुक्त शिव लिङ्ग का पूजन घर में करना चाहिए और उसमें आवाहन भी करना चाहिए ॥ ३४ ॥

मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये हृदय से सुषुम्ना मार्ग द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में स्थित इष्टदेव को, नासारन्ध्र से पुनः उन्हें निकाल कर, मातृका यन्त्र पर स्थापित पुष्पाञ्जलि में एकीकृत कर उन्हें मूर्ति पर समर्पित कर देना चाहिए । इस क्रिया को आवाहन कहते हैं ॥ ३५-३६ ॥

शालग्राम शिला में अथवा अचल प्रतिष्ठित मूर्ति में न तो आवाहन करना चाहिए और न तो विर्सजन ही करना चाहिए । मूर्ति में आवाहनादि उपचारों से पूजा करते समय शंकर जी द्वारा कहे गये इस श्लोक का उच्चारण करना चाहिए - आत्मसंस्थमजं शुद्धं त्वामहं परमेश्वर ।

रविं शिवां शिवं मध्ये गणेशश्चेच्छिवं शिवाम् ।
रविं विष्णुं रवौ मध्ये विघ्नाजनगजेश्वरान् ॥ ४० ॥
भवान्यां मध्य संस्थायामीशविघ्नार्कमाधवान् ।
हरे मध्यगते सूर्यगणेशगिरिजाच्युतान् ॥ ४१ ॥
सम्पूज्यादौ मध्यगतं गणेशादि ततो यजेत् ।
गणेशे मध्यसंस्थे तु पूजयेद् भास्करादितः ॥ ४२ ॥
काण्डानुसमयेनात्र पूजा प्रोक्ता मनीषिभिः ।

काण्डानुसमयेनेति । काण्डानुसमयः पदार्थानुसमयश्चेति विधौ प्रकारद्वयम् । एकस्य पूजा काण्डं समाप्यापरार्चनं काण्डानुसमयः । प्रतिपदार्थं सर्वेषां पूजा पदार्थानुसमयः । ततोऽत्र काण्डानुसमयेन पूजा । आवाहनमुद्रया आवाहनम् । सा यथा – 'अनामामूलसंलग्नाङ्गुष्ठाग्राञ्जलिरीरिता ।
देवाह्वानकरी चैषा मुद्रावाहनसंज्ञिका' ॥ इति॥
आवाहनमुद्राधोमुखी – संस्थापनी ॥ ४३–४४ ॥

अरण्यमिव हव्यांशं मूर्तावावाहयाप्यहम् ॥ ३७-३८ ॥

अब **पञ्चायतन में देवताओं के स्थापन का क्रम** कहते है -

पञ्चायतन के पक्ष में, मध्य में विष्णु की पूजा होती है । फिर आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान कोण में क्रमशः गणेश, रवि, शक्ति और शिव का स्थापन कर पूजा करनी चाहिए ॥ ३९-४० ॥

मध्य में **गणेश** को स्थापित कर पूजा करनी हो तो उक्त कोणों में क्रमशः शिव, शक्ति, रवि और विष्णु का, **रवि** मध्य में हो तो उक्त कोणों में गणेश, विष्णु, शक्ति और शिव का, **शक्ति** मध्य में हो तो उक्त कोणों में शिव, गणेश, सूर्य और विष्णु का तथा **शिव** मध्य में होने पर क्रमशः रवि, गणेश, शक्ति और अच्युत का पूजन करना चाहिए ॥ ४०-४१ ॥

सर्वप्रथम मध्यगत देव का पूजन करने के बाद ही गणेशादि की पूजा करनी चाहिए । मध्य में गणेश होने पर उनका पूजन कर पुनः रवि आदि के

पञ्चायतनस्थापनक्रमः

गणेश रवि	शिव रवि	गणेश विष्णु	शिव गणेश	रवि गणेश
विष्णु	गणेश	रवि	शक्ति	शिव
शिव शक्ति	विष्णु शक्ति	शिव शक्ति	विष्णु रवि	विष्णु शक्ति

आवाहनाद्युपचारमन्त्रमुद्रादिकथनम्

विधायावाहनं चेत्थमावाहन्या तु मुद्रयाः ॥ ४३ ॥
संस्थापिन्या स्थापयेत्तु मूलान्ते श्लोकमुच्चरन् ।
तवेयं महिमा मूर्तिस्तस्यां त्वां सर्वगं प्रभो ॥ ४४ ॥
भक्तिस्नेहसमाकृष्टं दीपवत्स्थापयाम्यहम् ।
ऊहः कार्यो भवान्यादौ श्लोकेष्वावाहनादिषु ॥ ४५ ॥
मूलश्लोको पठन् कुर्यादासनं चोपवेशनम् ।
सर्वान्तर्यामिणे देव सर्वबीजमयं शुभम् ॥ ४६ ॥
स्वात्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम् ।
अस्मिन्वरासने देव सुखासीनोऽक्षरात्मक ॥ ४७ ॥

आत्मसंस्थामजां शुद्धमित्याद्यूहः ॥ ४५–४६ ॥

पूजन का विधान है । यहाँ प्राचीन मनीषियों ने काण्डानुसमय विधि से पूजा बतलाई है - एक देवता का पूजाकाण्ड समाप्त कर दूसरे देवता का अर्चनकाण्ड 'काण्डानुसमय' कहा जाता है ॥ ४२-४३ ॥

अब **पूजा का क्रम** कहते है -

आवाहनी मुद्रा से इस प्रकार इष्टदेव का आवाहन कर मूल मन्त्र के साथ

'तवेयं महिमामूर्तिस्तस्यां त्वां सर्वगं प्रभो ।
भक्तिस्नेहसमाकृष्टं दीपवत्स्थापयाम्यहम्' ।।

इस श्लोक को बोलते हुये संस्थापनी मुद्रा से मूर्ति स्थापित करनी चाहिए। अपने इष्टदेव का पूजन करते समय आवाहनादि के लिए भवानी, गणेश, रवि तथा विष्णु का ऊहापोह कर लेना चाहिए ॥ ४३-४५ ॥

विमर्श - आवाहन मुद्रा - दोनों हाथों से अञ्जलि बाँध कर दोनों अंगूठों को अपनी-अपनी अनामिकाओं के मूल पर्वों पर निक्षिप्त करना चाहिए । विद्वज्जन इसे आवाहनी मुद्रा कहते हैं ।

स्थापनी मुद्रा - उक्त आावहनी मुद्रा बनाकर उसे अधोमुख कर देने से स्थापनी मुद्रा निष्पन्न होती है ॥ ४३-४५ ॥

अब **आसनदान तथा उपवेशन** कहते हैं - मूलमन्त्र के साथ **'सर्वान्तर्यामिणे देव सर्वबीजमयं शुभम्, स्वात्मस्थाय पदं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम्'** - यह श्लोक बोलकर आसन देना चाहिए । पुनः मूलमन्त्र के साथ

'अस्मिन्वरासने देव सुखसीनोऽक्षरात्मक प्रतिष्ठितो भवेश त्वं प्रसीद परमेश्वर' यह श्लोक बोलकर उपवेशन कराना चाहिए ॥ ४६-४७ ॥

प्रतिष्ठितो भवेश त्वं प्रसीद परमेश्वर ।
मूलं श्लोकं ततः कुर्यात् सन्निधानं स्वमुद्रया ॥ ४८ ॥
अनन्या तव देवेश मूर्तिशक्तिरियं प्रभो ।
सान्निध्यं कुरु तस्यां त्वं भक्तानुग्रहतत्परः ॥ ४६ ॥
पठन्मूलं तथा श्लोकं सन्निरुध्यात् स्वमुद्रया ।
आज्ञया तव देवेश कृपाम्भोधेगुणाम्बुधे ॥ ५० ॥
आत्मानन्दैक तृप्तं त्वां निरुणध्मि पितर्गुरो ।
मुद्रया सम्मुखी कुर्यान्मूलं श्लोकं च संपठन् ॥ ५१ ॥
अज्ञानाद् दुर्मनस्त्वाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च ।
यदपूर्णं भवेत् कृत्य तदप्यभिमुखो भव ॥ ५२ ॥
कुर्वीत मूलश्लोकाभ्यां प्रार्थन्या मुद्रयार्चने ।
दृशापीयूषवर्षिण्या पूरयन्यज्ञविष्टरम् ॥ ५३ ॥
मूर्तौ वा यज्ञसंपूर्तेः स्थिरो भव महेश्वर ।
न्यसेत् षडङ्गं देवाङ्गे सकलीकरणं सुधीः ॥ ५४ ॥

स्वमुद्रया सन्निधानमुद्रया । उत्तानाङ्गुष्ठौ मुष्टी – सन्निधानमुद्रा । स्वमुद्रया सन्निरोधिन्या । सोक्ता ॥ ५० ॥ मुद्रया संमुखीकरिण्या उत्तानौ मुष्टी – संमुखीकरणी ॥ ५१–५२ ॥ हृद्यञ्जलिनिबन्धनं – प्रार्थनीमुद्रा ॥ ५३–५४ ॥

सन्निधान मूल मन्त्र के साथ - **'अनन्या तव देवेश मूर्तिशक्तिरियं प्रभो सान्निध्यं कुरु तस्यां त्वं भक्तानुग्रहतत्परः'** - इस श्लोक को बोलकर सन्निधान मुद्रा से सन्निधान करना चाहिए ॥ ४८-४६ ॥

विमर्श - सन्निधानमुद्रा का लक्षण - तन्त्रवेत्ताओं के द्वारा दोनों मुट्ठियों को एकसाथ मिलाना और दोनों अंगूठों को ऊपर उठाना सन्निधान मुद्रा कही गई है ॥ ४८-४६ ॥

अब **सन्निरोधन** कहते हैं - मूल मन्त्र के साथ 'आज्ञया तव ... निरुणध्मि पितर्गुरो' पर्यन्त श्लोक बोलते हुये सन्निरोधमुद्रा द्वारा सन्निरोधन करना चाहिए ॥ ५०॥

विमर्श - सन्निरोधमुद्रा - (द्र० २२. १६) ॥ ५० ॥

सम्मुखीकरण - मूलमन्त्र के साथ **'अज्ञानाद् दुर्मनस्त्वाद्वा ... भव'** पर्यन्त श्लोक पढ़कर सम्मुखी मुद्रा द्वारा संम्मुखीकरण करना चाहिए ॥ ५१-५२ ॥

विमर्श - सम्मुखीकरणमुद्रा - हृदय पर बंधी हुई अञ्जली रखना सम्मुखीकरणमुद्रा कही गयी है ॥ ५१-५२ ॥

अब **सकलीकरण** कहते है - मूलमन्त्र के साथ **'दृशापीयूष ... महेश्वर'** पर्यन्त श्लोक पढ़ते हुये प्रार्थिनी मुद्रा द्वारा इष्टदेव का पूजन करना चाहिए । देवता के

मूलं श्लोकं पठन् कुर्यादवगुण्ठं स्वमुद्रया।
अव्यक्तवाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रदूरामितद्युते ॥ ५५ ॥
स्वतेजः पञ्जरेणाशु वेष्टितो भव सर्वतः।
गोमुद्रयामृतीकृत्य विदध्यात् परमाकृतिम् ॥ ५६ ॥
महामुद्रां विरचयंस्ततः स्वागतमाचरेत्।
मूलमन्त्रं तथा श्लोकं पठंस्तद्गतमानसः ॥ ५७ ॥
यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवाः स्वाभीष्टसिद्धये।
तस्मै ते परमेशाय स्वागतं स्वागतं च ते ॥ ५८ ॥
ततः सुस्वागतं कुर्यान्मूलश्लोकौ समुच्चरन्।
कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम ॥ ५९ ॥
आगतो देवदेवेश सुस्वागतमिदं पुनः।

पाद्यद्रव्यकथनम्

श्यामाकविष्णुक्रान्ताब्जदूर्वाः पाद्यजले क्षिपेत् ॥ ६० ॥
मूलश्लोकनमोमन्त्रैः पाद्यं पादाम्बुजेऽर्पयेत्।
यद्भक्तिलेश सम्पर्कात् परमानन्दविग्रहम् ॥ ६१ ॥

स्वमुद्रयाऽवगुण्ठिन्या । सोक्ता ॥ ५५ ॥ गोमुद्रोक्ता ॥ ५६ ॥ महामुद्राप्युक्ता ॥ ५७–५९ ॥ पाद्यद्रव्याण्याह – **श्यामाकेति** ॥ ६०–६१ ॥

अङ्गो में षडङ्गन्यास को विद्वान् लोग सकलीकरण कहते है ॥ ५३-५४ ॥

अब **अवगुण्ठन** कहते हैं - मूलमन्त्र के साथ **'अव्यक्त ... सर्वतः'** पर्यन्त श्लोक पढ़ते हुये अवगुण्ठन करना चाहिए ॥ ५५ ॥

विमर्श - अवगुण्ठन मुद्रा - (द्र० २२. १९)॥ ५५ ॥

अमृतीकरण एवं परमीकरण - धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करने के बाद महामुद्रा प्रदर्शित करते हुये परमीकरण करना चाहिए । फिर इष्टदेव का स्वागत करना चाहिए ॥ ५६ ॥

विमर्श - धेनुमुद्रा, महामुद्रा - (द्र० २२. १९)॥ ५६ ॥

स्वागत एवं सुस्वागत मूल मन्त्र के साथ **'यस्य ... स्वागतं च तें'** पर्यन्त श्लोक पढ़ते हुये निज इष्ट देव का स्वागत करना चाहिये । फिर मूल मन्त्र के साथ - **'कृतार्थो ... सुस्वागतमिदं पुनः'** पर्यन्त (द्र० ५९, ६०) श्लोक पढ़ते हुये इष्टदेव का सुस्वागत करना चाहिए ॥ ५७-५९ ॥

पाद्यसमर्पण विधि - श्यामाक, विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), कमल एवं दूर्वा पाद्य जल में मिलाना चाहिए । फिर मूल मन्त्र के साथ **'यद्भक्तिलेशशुद्धाय**

तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्पये।

आचमनीयद्रव्यकथनम्

लवङ्गजातिकंकोलं प्रक्षिप्याचमनीयके॥ ६२॥
दद्यादाचमनं वक्त्रे मूलश्लोकसुधाक्षरैः।
वेदानामपि वेद्याय देवानां देवतात्मने॥ ६३॥
आचामं कल्पयामीश शुद्धानां शुद्धिहेतवे।

अर्घ्यद्रव्यकथनम्

अर्घ्यपात्रे क्षिपेद् दूर्वास्तिलदर्भाग्रसर्षपान्॥ ६४॥
यवपुष्पाक्षतान्गन्धं तेनार्घ्यं मूर्ध्नि चाचरेत्।
मूलश्लोकशिरोमन्त्रैः देवस्य मनुवित्तमः॥ ६५॥
तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्।
तापत्रय विनिर्मुक्तं तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम्॥ ६६॥

मधुपर्कद्रव्यकथनम्

पात्रे तु मधुपर्कस्य दध्याज्यमधु च क्षिपेत्।
मूलश्लोकसुधामन्त्रैर्दद्यात्तं वदने प्रभोः॥ ६७॥
सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुखात्मने।
मधुपर्कमिदं देव कल्पयामि प्रसीद मे॥ ६८॥

आचमनीयद्रव्याण्याह – लवङ्गेति । कंकोलं सुगन्धद्रव्यं मरिचोऽयम् ॥ ६२–६४ ॥ शिरो मन्त्रः स्वाहा ॥ ६५–६६ ॥

कल्पये' पर्यन्त (द्र० २२. ६१) श्लोक पढ़ के अन्त में नमः जोड़ कर इष्टदेव के चरण कमलों में पाद्य समर्पित करना चाहिए ॥ ६०-६२ ॥

आचमन विधि - लवंग, जायफल और कंकोल ये तीन वस्तुयें आचमनीय जल में मिलाना चाहिए । फिर मूल मन्त्र पढ़कर **'वेदानामपि ... शुद्धिहेतवे'** पर्यन्त (द्र० २२. ६३) श्लोक कहकर इष्टदेव को आचमन देना चाहिए ॥ ६२-६४ ॥

अर्घ्यदान विधि - अर्घ्यपात्र में दूर्वा, तिल, कुशा का अग्रभाग, सर्षप, यव, पुष्प, अक्षत एवं कुंकुम डालना चाहिए । फिर मूल मन्त्र के साथ **'तापत्रयहरं'** से **'कल्पयाम्यहम्'** (द्र० २२. ६६) पर्यन्त श्लोक के अन्त में स्वाहा पढ़कर देवता को शिर पर अर्घ्य देना चाहिए ॥ ६४-६६ ॥

मधुपर्कदान विधि - मधुपर्क के पात्र में दही, घी, एवं शहद डालना चाहिए फिर मूल मन्त्र के साथ **'सर्वकालुष्य ... प्रसीद मे'** (द्र० २२. ६८) पर्यन्त

पुनराचमनं दद्यान्मूलश्लोकान्तरं पठन्।
उच्छिष्टोप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः ॥ ६६ ॥
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम्।

स्नानवस्त्राभरणाद्युपचारकथनम्

स्नानवस्त्रोपवीतान्ते नैवेद्यान्तेऽपि तत्स्मृतम् ॥ ७० ॥
पाद्यादिवस्त्वभावे तु तत्स्मरन्नक्षतान्क्षिपेत्।
गन्धतैलं ततो दद्यान्मूलश्लोकं पठन्सुधीः ॥ ७१ ॥
स्नेहं गृहाण स्नेहेन लोकनाथ महाशय।
सर्वलोकेषु शुद्धात्मन् ददामि स्नेहमुत्तमम् ॥ ७२ ॥
हरिद्राद्यैस्तमुद्वर्त्य स्नापयेदुभयं पठन्।
परमानन्दबोधाब्धि निमग्ननिजमूर्त्तये ॥ ७३ ॥
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीशते।
ततः सहस्रं शङ्खेन शतं वाशक्तितोऽपि वा ॥ ७४ ॥

स्नानवस्त्रोपवीतनैवेद्येषु दत्तेष्वाचमनीयं दद्यात् ॥ ७०–७२ ॥ उभयं मूलश्लोकौ ॥ ७३–८१ ॥

श्लोक पढ़कर अन्त में 'वं' यह सुधा बीज बोलते हुये इष्टदेव के मुख में मधुपर्क समर्पित करना चाहिए ॥ ६७-६८ ॥

पुनराचमन विधि - मूल मन्त्र के साथ **'उच्छिष्टो ... पुनराचमनीयकम्'** पर्यन्त (द्र० २२. ६६-७०) श्लोक पढ़कर पुनराचमनीय समर्पित करना चाहिए । इसी प्रकार स्नान, वस्त्र तथा यज्ञोपवीत एवं नैवेद्य के बाद भी पुनराचमनीय देना चाहिए । पाद्य आदि वस्तुओं के अभाव में उनका स्मरण कर मात्र अक्षत चढ़ा देना चाहिए ॥ ६६-७१ ॥

तैल उद्वर्तन एवं स्नान विधि - मूल मन्त्र के साथ **'स्नेहं गृहाण ... स्नेहमुत्तमम्'** (द्र० २२. ७२) पर्यन्त श्लोक पढ़कर सुगन्धित तेल लगाना चाहिए ॥ ७१-७२ ॥

फिर हरिद्रा लेपन करने के बाद निज इष्टदेव को मूल मन्त्र के साथ **'परमानन्द ... कल्पयाम्यमीशते'** पर्यन्त (द्र० २२. ७३-७४) श्लोक पढ़कर स्नान कराना चाहिए ॥ ७१-७३ ॥

अभिषेक विधि - इसके बाद एक हजार अथवा १ सौ अथवा यथा शक्ति शङ्ख से सुगन्धित जल से मूल मन्त्र बोलते हुये इष्ट देवता का अभिषेक करना चाहिए ॥ ७४ ॥

गन्धयुक्तोदकैरीशमभिषिञ्चेन्मनुं स्मरन्।
पठन्मूलं ततः श्लोकौ दद्याद्वस्त्रोत्तरीयके ॥ ७५ ॥
मायाचित्र पटच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे।
निरावरणविज्ञानवासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥ ७६ ॥
यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा।
तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥ ७७ ॥
पीतं विष्णौ सितं शम्भौ रक्तं विघ्नार्कशक्तिषु।
सच्छिद्रं मलिनं जीर्णं त्यजेत्तैलादिदूषितम् ॥ ७८ ॥
उपवीतं भूषणानि प्रयच्छेदुभयं पठन्।
यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोतमखिलं जगत् ॥ ७९ ॥
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये।
स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते ॥ ८० ॥
भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमरार्चितम्।
मूलमन्त्रेण पुटितमेकैकं मातृकाक्षरम् ॥ ८१ ॥
विन्यसेद् देवताङ्गेषु योगोऽयं लोकमोहनः।
कनिष्ठया पात्रसंस्थं पूर्ववद् गन्धमर्पयेत् ॥ ८२ ॥

पूर्ववन्मूलश्लोकौ पठन् गन्धमर्पयेत् ॥ ८२–८३ ॥

वस्त्र एवं उत्तरीय दान विधि - मूलमन्त्र के साथ 'मायाचित्र' से 'कल्पयाम्यहम्' पर्यन्त (द्र० २२. ७६) श्लोक पढ़ते हुये वस्त्र प्रदान करना चाहिए । फिर मूल मन्त्र के साथ **यमाश्रित्य....उत्तरीयकम्** पर्यन्त (द्र० २२. ७७) श्लोक पढ़कर इष्टदेव को उत्तरीय प्रदान करना चाहिए । विष्णु को पीतवर्ण का, सदाशिव को श्वेत वर्ण का, गणपति, सूर्य एवं शक्ति को रक्त वर्ण का वस्त्र प्रिय है । फटा हुआ, मैला, पुराना एवं तैलादि दूषित वस्त्र पूजा में सर्वथा त्याज्य हैं ॥ ७५-७८ ॥

उपवीत एवं आभूषण समर्पण विधि - मूलमन्त्र के साथ **'यस्य...यज्ञसूत्रं प्रकल्पये'** पर्यन्त(द्र० २२. ७९-८०)श्लोक पढ़कर यज्ञोपवीत चढ़ाना चाहिए । इसके बाद पुनः मूलमन्त्र के साथ **'स्वभाव...कल्पयाम्यमरार्चितम्'** पर्यन्त(द्र० २२. ८०-८१) श्लोक पढ़कर इष्टदेव को विविध आभूषण समर्पित करना चाहिए ॥ ७९-८० ॥

लोकमोहन न्यास विधि - मूलमन्त्र से संपुटित मातृकाक्षरों (वर्णमाला) के एक एक अक्षर का देवता के अङ्गो पर न्यास करना चाहिए । इसे लोकमोहन न्यास कहते हैं ॥ ८१ ॥

गन्धदान विधि - मूल मन्त्र के साथ 'परमानन्दसौभाग्य ... कृपया परमेश्वर' पर्यन्त (द्र० २२. ८३) श्लोक बोलते हुये कनिष्ठा अंगुली से पात्र में

परमानन्दसौभाग्यपूरिपूर्णदिगन्तरम् ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ॥ ८३ ॥
ततः कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां गन्धमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
मूलंश्लोकं पठन्नानापुष्पाणि विनिवेदयेत् ॥ ८४ ॥
तुरीयवनसंभूतं नानागुणमनोहरम् ।
अमन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम् ॥ ८५ ॥
तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोगेन पुष्पमुद्रां प्रदर्शयेत् ।

विहितनिषिद्धपुष्पपूजाकथनम्

अक्षतानार्कधत्तूरौ विष्णौ नैवार्पयेत्सुधीः ॥ ८६ ॥
बन्धूकं केतकीं कुन्दं केसरं कुटजं जपाम् ।
शंकरे नार्पयेद्विद्वान्मालतीं यूथिकामपि ॥ ८७ ॥
शक्तौ दूर्वार्कमन्दारान् मालूरं तगरं रवौ ।
विनायके तु तुलसीं नार्पयेज्जातुचिद् बुधः ॥ ८८ ॥
श्वेतं पीतं हरेरिष्टं रक्तं रविगणेशयोः ।
निर्गन्धं केशकीटादि दूषितं चोग्रगन्धकम् ॥ ८९ ॥

अङ्गुष्ठौ कनिष्ठामूललग्नौ – गन्धमुद्रा ॥ ८४–८५ ॥ तर्जन्यावङ्गुष्ठ– मूललग्ने – पुष्पमुद्रा । पुष्पाध्यायमाह – **अक्षतानित्यादिना** । अक्षतान् तण्डुलादीन्। तिलकोपर्यर्पणेन दोषः ॥ ८६–८७ ॥ शक्तौ दूर्वादयो निषिद्धाः महालक्ष्म्यास्तु दूर्वा प्रशस्ता । मालूरं बिल्वम् । तगरं गन्धतगरम् । तगर इति कान्यकुब्जभाषायाम् । जातु कदाचिदपि ॥ ८८ ॥ निषिद्धान्याह – **निर्गन्धमिति** ॥ ८९ ॥

रखे गए गन्ध ले कर गन्ध समर्पण करना चाहिए । फिर कनिष्ठा और अंगूठा मिलाकर गन्ध मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ८२-८४ ॥

पुष्पसमर्पण विधि - मूल मन्त्र के साथ **'तुरीयवन संभूतं ... गृह्यतामिदमुत्तमम्** पर्यन्त' (द्र० २२. ८५) श्लोक पढ़कर नानाविध पुष्प समर्पित करना चाहिए । फिर तर्जनी एवं अंगूठे को मिलाकर पुष्प मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ ८४-८५ ॥

अब तत्तद्देवताओं के **पूजन में वर्जित पुष्प** कहते हैं - बुद्धिमान् साधक विष्णु को अक्षत्, आक एवं धतूरा का पुष्प न चढ़ावे । बन्धूक (दुपहरिया), केतकी, कुन्द, मौलिसिरी, कुटज (कौरैया), जयपर्ण, मालती, एवं जूही के पुष्प शिव को न चढ़ावे। दूब, धतूरा, मन्दार, हरसिङ्गार, बेल दुर्गा पर नहीं चढ़ाना चाहिए । इसी प्रकार सूर्य को तगर और गणपति को तुलसी पत्र कभी भी न समर्पित करे । श्वेत तथा पीत

मलिनं तुच्छसंस्पृष्टमाघ्रातं स्वविकासितम्।
अशुद्धभाजनानीतं स्नात्वानीतं च याचितम् ॥ ६० ॥
शुष्कं पर्युषितं कृष्णं भूमिगं नार्पयेत्सुमम्।
चंपकं कमलं त्यक्त्वा कलिकामपि वर्ज्जयेत् ॥ ६१ ॥
कुरण्टकं काञ्चनारं वर्जयेद् बृहतीयुगम्।
पुष्पं पत्रं फलं देवे न प्रदद्यादधोमुखम् ॥ ६२ ॥
पुष्पाञ्जलौ न तद्दोषस्तथा पर्युषितस्य च।
तुलसीबकुलो वृक्षश्चम्पकश्च सरोजिनी ॥ ६३ ॥
बिल्वकल्हारदमनास्तथामरुबकः कुशः।
दूर्वाहिवल्यपामार्गविष्णुक्रान्तामुनिद्रुमाः ॥ ६४ ॥
धात्रीयुतानामेतेषां पत्रैः कुर्यात्सुरार्चनम्।
जम्बूदाडिमजम्बीरतिंतिणी बीजपूरकाः ॥ ६५ ॥

तुच्छ संस्पृष्टं शरीरलग्नम् । स्वविकासितं बलादात्मना विकासितम् ॥ ६० ॥ पर्युषितं दिनान्तरानीतम् । सुमं पुष्पम्, चंपककमलयोः कलिका अपि प्रशस्ताः ॥ ६१ ॥ पुष्पपत्र – फलान्यधोमुखानि नार्पयेद् यथोत्पन्नं तथैवार्पयेदित्यर्थः ॥ ६२ ॥ पुष्पाञ्जलौ अधोमुखपर्युषितयोर्न दोषः ॥ ६३ ॥ अहिवल्ली नागवल्ली । मुनिद्रुमोऽगस्त्यः ॥ ६४ ॥ धात्री आमलकी ।

वर्ण के पुष्प विष्णु को प्रिय है । रक्त वर्ण के पुष्प सूर्य एवं गणेश जी के लिए प्रशस्त माने गये हैं ॥ ८५-८६ ॥

अब **निषिद्ध पुष्प** कहते हैं - गन्धरहित, केश एवं कीट दूषित, उग्रगन्धि, मलिन, नीच व्यक्ति से संस्पृष्ट, आघ्रात, अपने प्रयत्न से विकास को प्राप्त, अशुद्धपात्र में रखे गये, स्नान कर आर्द्र वस्त्र से लाये गये, याचित, सूखे हुये, वासी, काले वर्ण के, पृथ्वी पर नीचे गिरे हुये फूलों को देवता पर नहीं चढ़ाना चाहिए ॥ ८६-६१ ॥

चम्पा और कमल की कलियों को छोड़कर अन्य पुष्पों की कलियाँ पूजा में वर्जित हैं । कुरण्टक, कचनार और दोनों प्रकार के बृहती पुष्प भी पूजा में वर्जित माने गये हैं । पुष्प, पत्र और फल अधोमुख कर देवता को नहीं चढ़ाना चाहिए । पुष्पाञ्जलि में पर्युषित तथा अधोमुख पुष्पों का दोष नही माना जाता ॥ ६१-६३ ॥

पूजा में ग्राह्य पत्र, तुलसी, मौलसिरी, चम्पा, कमलिनी, बेल, कल्हार (श्वेत कमल), दमनक, महुआ, कुशा, दूर्वा, नागवल्ली, अपामार्ग, विष्णुकान्ता, अगस्त्य तथा आँवला इनके पत्तों से देवताओं की पूजा प्रशस्त कही गई है ॥ ६३-६४ ॥

अब **प्रशस्त फलों** को कहते हैं - जामुन, अनार, नींबू, इमली, बिजौरा, केला, आँवला, वैर, आम तथा कटहल के फलों से देव पूजा करनी चाहिए ।

रम्भाधात्री च बदरीरसालः पनसोऽपि च ।
एषां फलैर्यजेद्देवं तुलसी तु हरेः प्रिया ॥ ९६ ॥
सुर्वणपुष्पं तुलसी नैवनिर्माल्यतां व्रजेत् ।
पुष्पपूजा विधायेत्थं कुर्यादावरणार्चनम् ॥ ९७ ॥
अङ्गादि दिक्पहेत्यन्तं ततो धूपादिकं चरेत् ।
अग्निनैर्ऋतिवाय्वीशकोणेषु हृदयं शिरः ॥ ९८ ॥
शिखां कवचमाराध्य नेत्रमग्रे प्रपूजयेत् ।
दिक्ष्वस्त्रमङ्गदेव्यस्ता ध्यातव्या वामलोचनाः ॥ ९९ ॥
सिताश्वेतासितास्तिस्रो रक्ताइष्टाभयान्विताः ।
स्वदिक्षु प्रयजेद् दिक्पाञ्जातिहेत्यादि संयुतान् ॥ १०० ॥

तुलस्यादीनां पत्रैरपि पूजा । जाम्बादीनां पत्रैरपि फलैश्च ॥ ९५ ॥ रसालः आम्रः ॥ ९६ ॥ * ॥ ९७ ॥ दिक्पहेत्यन्तमिति। दिक्पालायुधपर्यन्तमावरणपूजा इदं सांप्रदायिकम् । क्वचिदङ्गपूजातः प्रागपि वज्राद्यूर्ध्वमप्यावरणानि सति । अङ्गपूजा स्थानमाह – अग्नीति ॥ ८ ॥ अङ्गदेवता ध्यानमाह – वामलोचनाः स्त्रीरूपाः ॥ ९९ ॥ तिस्रः कवचनेत्रास्त्ररूपाः रक्ता इष्टाभयान्विता वराभययुताः । स्वदिक्षु प्रसिद्धास् दिक्पालानिन्द्रादीन् । जातिहेत्यादि संयुतान् । जातयः सुरादयः हेतयो वज्रादयः । आदिशब्दाद्वाहनशक्ती ॥ १०० ॥

तुलसी तो विष्णुप्रिया है, अतः अमलतास का पुष्प तथा तुलसी ये दोनों कभी निर्माल्य नहीं होते ॥ ९५-९७ ॥

अब **आवरणार्चन का विधान** कहते हैं - इस प्रकार पुष्प पूजा करने के बाद षडङ्गपूजा से प्रारम्भ कर दिक्पाल तथा उनके आयुधों की पूजापर्यन्त आवरण पूजा करनी चाहिए । इसके बाद धूप, दीप आदि उपचारों से अपने इष्टदेव का पूजन करना चाहिए । आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य तथा ईशान कोणों में हृदय, शिर, शिखा एवं कवच का पूजन कर अग्रभाग में नेत्र तथा दिशाओं में अस्त्र पूजा करनी चाहिए । अङ्गपूजा करते समय ३ श्वेत वर्ण वाली तथा ३ रक्तवर्ण वाली इस प्रकार कुल ६ अङ्ग देवियों का ध्यान करना चाहिए । ये अङ्ग देवियाँ अत्यन्त मनोहर स्त्री वेष में सुशोभित है और हाथों में वर तथा अभय धारण किये हुये हैं । इसके बाद अपनी अपनी दिशाओं में जाति (वाहन) और आयुधों के साथ दिक्पालों का पूजन करना चाहिए । इनके पूजा मन्त्रों के प्रारम्भ में तार (ॐ) तथा अपने अपने बीजाक्षरों (लं रं मं क्षं वं यं सं हं ह्रीं आं) को लगाना चाहिए ॥ ९७-१०१ ॥

आवरणपूजाप्रकारप्रयोगकथनम्

तारादि निजबीजाद्यांस्तत्प्रयोगोऽधुनोच्यते।
तारं बीजमथेन्द्रायामुकाधिपतये ततः॥ १०१॥
सायुधाय सवाहान्ते नायसान्ते परीति च।
वारायान्ते सशक्तीतिकायामुकपदं ततः॥ १०२॥
पार्षदाय नमोन्तोऽयं दिक्पालानां मनुः स्मृतिः।
इन्द्रायेति पदस्थाने वह्न्यादिपदमुच्चरेत्॥ १०३॥
आद्यामुकपदस्थाने क्रमाज्जातीर्वदेत्सुधीः।
सुरतेजः प्रेतरक्षः सलिलप्राणतारकाः॥ १०४॥
भूताहिलोका विज्ञेया आशापालकजातयः।
पार्षदात् पूर्वममुकस्थाने स्यात्स्वेष्टदेवता॥ १०५॥
बीजानि पूर्वमुक्तानि वाहनान्यायुधान्यपि।
या तु तोयपयोर्मध्येऽनन्तं पूर्वेशयोऽस्तु कम्॥ १०६॥
प्रत्यावृत्ति क्षिपेद् देवे पुष्पं मन्त्रमिमं जपन्।
अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल॥ १०७॥
भक्त्या समर्पये तुभ्यमिदमावरणार्चनम्।
आह्वानाद्युपचारेषु प्रत्येकं पुष्पपाथसी॥ १०८॥

प्रणवादिनि यानि निजबीजानीन्द्रादिबीजानि पूर्वमुक्तानि लं रं मं क्षं बं यं सं हं ह्रीं आं इत्यादीनि । प्रयोगमाह – **तारमिति** ॥ १०१ ॥ * ॥ १०२--१०३ ॥ आद्येति अधिपतय इत्येतस्मात्पूर्वस्यामुकपदस्य स्थाने सुरादिजातीर्वदेत् ॥ १०४ ॥ * ॥ १०५ ॥ बीजादीति दिक्पालाश्च पूर्वमुक्ताः । या तु तोय पयोर्निर्ऋतिवरुणयोः । कं ब्राह्मणम् । यथा - ॐ लं इन्द्राय सुराधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय ममामुकेष्टदेवता पार्षदाय नमः । ॐ रं अग्नये तेजोधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय ममामुकेष्टदेवता पार्षदाय नमः । ॐ मं यमाय प्रेताधिपतये० । ॐ क्षं नैर्ऋतये रक्षोधिपतये० । ॐ वं

उसकी **प्रयोग विधि** इस प्रकार है - तार (ॐ), फिर अपना बीजाक्षर, फिर इन्द्राय इत्यादि, फिर 'अमुकाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय' के बाद 'अमुक पदाय', फिर 'अमुकपार्षदाय', इसके अन्त में नमः लगाने से दिक्पालों के पूजा मन्त्र बन जाते है । इन्द्राय के बाद अन्य दिक्पालों की पूजा करते समय उसके स्थान में आग्नेय आदि पद का ऊहापोह कर लेना चाहिए । अमुक पद के स्थान में उनकी जाति बोलनी चाहिए । सुरतेज, प्रेत,

दत्वा प्रक्षाल्य च करमुपचारान्तरं चरेत् ।

धूपदीपविधिविशेषकथनम्

धूपपात्रस्थिताङ्गारे क्षिप्त्वागुरुपुरादिकम् ॥ १०९ ॥
पात्रमस्त्रेण सम्प्रोक्ष्य हृदा पुष्पं समर्पयेत् ।
संस्पृशन्वामतर्जन्या मूलश्लोकं च संपठेत् ॥ ११० ॥

वरुणाय जलाधिपतये० । ॐ यं वायवे प्राणाधिपतये० । ॐ सं सोमाय नक्षत्राधिपतये० । ॐ हं ईशानाय भूताधिपतये० । ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये० । ॐ आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय ममामुकेष्टदेवता पार्षदाय नमः - इति प्रयोगः ॥ १०६ ॥ * ॥ १०७ ॥ पुष्पपाथसी पुष्पोदके दत्वा । धूपमाह - **धूपपात्रेति** । पुरो गुग्गुलुः । आदिशब्दात् घृतकर्पूरशर्कराः । अग्नावगुर्वादिप्रक्षिप्य फडिति प्रोक्ष्य नम इति पुष्पं समर्प्य वामतर्जन्या संस्पृश्य मूलश्लोकान्ते साङ्गाय सपरिवाराय रामाय धूपं समर्पयामीति शंखोदकं क्षिपेत् । तर्जनीमूलयोरङ्गुष्ठयोगो - धूपमुद्रा । स्वमन्त्रतः घण्टामन्त्रतः ॥ १०८-११४ ॥

रक्ष, जल, प्राण, नक्षत्र, भूत, नाग और लोक ये १० दिक्पालों की जातियाँ है । पार्षदाय के पहले आये अमुक के स्थान पर अपने इष्टदेव का नाम उच्चारण करना चाहिए । इनके बीज, वाहन और आयुध पहले कह आये हैं । निर्ऋति और वरुण के बीच में अनन्त का तथा पूर्व और ईशान के मध्य में ब्रह्मा के पूजन से दश दिक्पाल संख्या पूर्ण हो जाती है ॥ १०१-१०८ ॥

विमर्श - दिक्पालों की पूजा के मन्त्र - ॐ लं इन्द्राय सुराधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय ममामुकेष्टदेवता पार्षदाय नमः । ॐ रं अग्नये तेजोधिपतये सायु० सवाह० सपरि० सशक्ति० ममामुकेष्टदेवता पार्षदाय नमः । ॐ मं यमाय प्रेताधिपतये ... नमः । ॐ क्षं निर्ऋतये रक्षोधपितये ... नमः । ॐ वं वरुणाय जलाधिपतये ... नमः । ॐ यं वायवे प्राणाधिपतये ... नमः । ॐ सं सोमाय नक्षत्राधिपतये ... नमः । ॐ हं ईशानाय भूताधिपतये ... नमः । ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये ... नमः । ॐ आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये ... नमः ॥ ९७-१०८ ॥

प्रत्येक देवता के आवाहनादि प्रत्येक उपचार में जल तथा पुष्प चढ़ाना चाहिए । फिर हाथ धो कर अन्य उपचारों से पूजा करनी चाहिए ॥ १०८ ॥

धूपदान विधि - धूप पात्र में स्थित अङ्गार पर अगर तथा गुग्गुल रख कर 'फट्' मन्त्र से पात्र का प्रक्षालन कर 'नमः' मन्त्र से पुष्प समर्पित करना चाहिए । फिर बायें हाथ की तर्जनी से धूप पात्र का स्पर्श करते हुये मूल मन्त्र

वनस्पतिरसोपेतो गन्धाढ्यः सुमनोहरः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताताम् ॥ १११ ॥
साङ्गाय सपरीत्यन्ते वाराय ङेन्तदेवता।
धूपं समर्पयामीति नमोन्तं मन्त्रमुच्चरन् ॥ ११२ ॥
शङ्खाम्बु प्रक्षिपेद् भूमौ धूपमुद्रां प्रदर्शयेत्।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन घण्टामर्चेत् स्वमन्त्रतः ॥ ११३ ॥
जयध्वनि मन्त्रमातः स्वाहान्तः सदशाक्षरः।
वादयन्वामहस्तेन कीर्तयन्देवतागुणान् ॥ ११४ ॥
धूपयेद् दक्षहस्तेन देवतानाभिदेशतः।
जलं पुष्पाञ्जलिं दद्याद्दीपदानमपीदृशम् ॥ ११५ ॥
वाममध्यया स्पर्शो मूलश्लोकस्य कीर्तनम्।
सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः ॥ ११६ ॥
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।
धूपस्थाने दीपपदं मध्यमाङ्गुष्ठयोगतः ॥ ११७ ॥

विशेषमाह – **धूपयेदिति** । ईदृशं दीपदानमपि । प्रोक्षणप्रयोगश्च तद्वत् ॥ ११५ ॥ **वामेति** ॥ ११६–११७ ॥

के साथ 'वनस्पतिरसोपेतो गन्धाढ्यः सुमनोहरः' । आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्' - इस मन्त्र को पढ़कर 'साङ्गाय', 'सपरिवाराय' 'अमुक देवतायै धूपं सर्मपयामि नमः' - इस मन्त्र को बोलते हुये शङ्ख के जल को भूमि पर छोड़ना चाहिए तथा दाहिने हाथ की तर्जनी और अंगूठे को मिलाकर धूप मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए । फिर अपने मन्त्र से घण्टा का पूजन करना चाहिए । तदनन्तर धूप देना चाहिए ॥ १०६-११३ ॥

'जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा' - इस दशाक्षर मन्त्र से घण्टा का पूजन करना चाहिए । फिर बायें हाथ से घण्टा बजाते हुये, इष्टदेव की स्तुति करते हुये दाहिने हाथ से देवता की नाभि के पास धूप देनी चाहिए । फिर शङ्ख का जल तथा पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए । दीप दान में भी इसी प्रकार प्रोक्षणादि क्रिया करनी चाहिए ॥ ११४-११५ ॥

अब **दीपदान में विशेष** कहते हैं - बायें हाथ की मध्यमा अंगुलि से दीप स्पर्श करते हुये मूल मन्त्र के साथ 'सुप्रकाशो महादीपः ... प्रतिगृह्यताम्' पर्यन्त (द्र० २२. ११६-११७) मन्त्र पढ़कर, पूर्वोक्त धूप मन्त्र के धूप के स्थान पर 'दीप' पद लगाकर 'साङ्गाय सपरिवाराय 'अमुक देवतायै दीपं दर्शयामि नमः' से दीप प्रदर्शित

दीपमुद्रा दर्शनं च तद्दानं नेत्रदेशतः।
भूरिपक्षे तु वर्तीनां विषमावर्तिका मताः ॥ ११८ ॥
घृतदीपो दक्षिणे स्यात् तैलदीपस्तु वामतः।
सितवर्तियुतो दक्षे वामाङ्गे रक्तवर्तिकः ॥ ११६ ॥
अत्रान्यद्धूपवज्ज्ञेयं ततो नैवेद्यमर्पयेत्।

नैवेद्यसमर्पणविधिवर्णनम्

स्वर्णादिभाजने साज्यं पायसं शर्करादिकम् ॥ १२० ॥
परिवेष्य यथाशक्ति प्रोक्षेत् कैरस्त्रमन्त्रितैः।
चक्रमुद्रामथारच्य प्रोक्षेत्तन्मन्त्रितैर्जलैः ॥ १२१ ॥
वायुबीजेनार्कवारं ततस्तज्जातमारुतैः।
नैवेद्यदोषं संशोष्य चिन्तयेद् दक्षिणे करे ॥ १२२ ॥

मध्यमामूलयोरङ्गुष्ठयोगो – दीपमुद्रा । दीपदानं नेत्रप्रदेशे । वर्तीनां भूरिपक्षे बहुत्व पक्षेऽविषमास्त्याज्याः ॥ ११८ ॥ सितवर्तियुत तैलदीपो दक्षिणतः। रक्तवर्तियुतो घृतदीपो वामत इत्यर्थः ॥ ११६ ॥ अन्यज्जलप्रक्षेपादि ॥ १२० ॥ कैर्जलैः। चक्रमुद्रोक्ता। वायुबीजेन द्वादशवारं मन्त्रितैर्जलैस्तं नैवेद्यं प्रोक्षेत् ॥ १२१ ॥ वायुबीजोत्थमारुतैर्नैवेद्यदोषसंशोष्य दक्षिणकरे रं बीजं विचिन्त्य दक्षकरपृष्ठे वामकरं दत्वा नैवेद्यं प्रदर्श्याग्निबीजोत्थाग्निना दोषं दग्ध्वा वामकरे वं बीजं ध्यात्वा तत्पृष्ठे दक्षहस्तं दत्त्वा नैवेद्यं प्रदर्श्यामृतबीजोत्थामृतप्लुतं स्मृत्वा मूलेन

करना चाहिए । तदनन्तर मध्यमा और अंगूठे को मिलाकर दीप-मुद्रा दिखानी चाहिए । देवता के नेत्रों के पास तक दीप को उँचा उठाकर दीपक प्रदर्शित करने का विधान है । दीपक में अनेक बत्ती होने पर उनकी संख्या विषम होनी चाहिए । घृत का दीपक दाहिने भाग में तथा तेल का दीपक बायें भाग में स्थापित करना चाहिए । दक्षिण के दीप में सफेद बत्ती तथा बायें भाग के दीपक में रक्त वर्ण की बत्ती लगानी चाहिए । इसमें भी जल प्रक्षेपादि सारी क्रिया धूप की ही तरह करनी चाहिए । इसके बाद नैवेद्य समर्पित करना चाहिए ॥ ११६-१२० ॥

नैवेद्य समर्पण विधि - सुवर्ण आदि पात्र में यथाशक्ति घी के साथ पायस और शर्करादि पदार्थ परोस कर 'फट्' मन्त्र से जल द्वारा प्रोक्षण करना चाहिए ॥ १२०-१२१ ॥

फिर चक्रमुद्रा बना कर मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित विशेषार्घ्य के जल से अभिमन्त्रित कर वायुबीज (यं) से द्वादश बार जल से पुनः उस नैवेद्य का प्रोक्षण करना चाहिए । इस प्रकार नैवेद्य के दोषों का शोषण कर दहिने हाथ के

अग्निबीजं तस्य पृष्ठे वामं करतलं न्यसेत्।
तं दर्शयित्वा नैवेद्येतदुत्थेनाग्निनाखिलम्॥ १२३॥
नैवेद्यदोषं सन्दह्या ध्यायेद्वामकरेऽमृतम्।
तत्पृष्ठे दक्षिणं हस्तं कृत्वा तत्र प्रदर्शयेत्॥ १२४॥
आप्लावितं स्मरेद् भोज्यं बीजोत्थामृतधारया।
प्रोक्ष्य मूलेन तत्स्पृष्ट्वाऽष्टशो मूलमनुं जपन्॥ १२५॥
दर्शयित्वा धेनुमुद्रां गन्धपुष्पैस्तदर्चयेत्।
देवे पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा तेजो देवमुखोत्थितम्॥ १२६॥
विचिन्त्य वामाङ्गुष्ठेन स्पृशेन्नैवेद्यभाजनम्।
दक्षहस्ते जलं धृत्वा मूलश्लोकं शिरः पठेत्॥ १२७॥
सत्पात्रसिद्धं सुहविर्विविधानेकभक्षणम्।
निवेदयामि देवेश सानुगाय गृहाण तत्॥ १२८॥
साङ्गायेत्यादिकं प्रोच्य जलमुत्सृज्य भूतले।
नैवेद्यमुद्रामङ्गुष्ठनामिकाभ्यां प्रदर्शयेत्॥ १२९॥

प्रोक्ष्य तत्स्पृष्ट्वाऽष्टवारं मूलं प्रजप्य धेनुमुद्रां प्रदर्श्य संपूज्य देवे पुष्पं दत्त्वा देवस्योद्गतं तेजः स्मृत्वा वामाङ्गुष्ठस्पृष्टं नैवेद्यं सजलदक्षहस्तेन मूलश्लोक–सहित स्वाहान्ते साङ्गायेति पठन्नैवेद्यमुद्रां प्रदर्शयत्। अनामामूलयोरङ्गुष्ठयोगो नैवेद्यमुद्रा ॥ १२२–१२९॥ सपुष्पकराभ्यां पात्रमुद्धरन्निवेदयामीति पठेत् ॥ १३० ॥

तलवे पर अग्निबीज (रं) का ध्यान करना चाहिए ॥ १२१-१२२ ॥

फिर उस करतल पर अपना बायाँ हाथ रखना चाहिए । इस मुद्रा को दिखा कर उससे उत्पन्न अग्नि द्वारा नैवेद्य के सारे दोषों को जलाकर, फिर बायीं हथेली में अमृत बीज (वं) का ध्यान करना चाहिए, तथा उस हथेली के पीछे हाथ रखकर, नैवेद्य दिखाकर, उस अमृत बीज से उत्पन्न अमृतधारा से नैवेद्य को आप्लावित करना चहिये ॥ १२३-१२५ ॥

फिर ८ बार मूल मन्त्र का जप करते हुये, नैवेद्य का स्पर्श कर, धेनुमुद्रा प्रदर्शित कर, गन्ध और पुष्प चढ़ाना चाहिए । इस प्रकार इष्टदेव को पुष्पाञ्जलि समर्पित कर, उनके मुख से निकले हुये तेज का ध्यान कर, बायें अंगूठे से नैवेद्य पात्र का स्पर्श करना चाहिए । अब दाहिने हाथ में जल लेकर, मूल मन्त्र के साथ **'सत्पात्र सिद्धं ... गृहाण तत्'** पर्यन्त (द्र० २२. १२८) श्लोक पढ़कर 'साङ्गाय सपरिवाराय अमुकदेवतायै नैवेद्यं निवेदयामि नमः' - कहकर, भूमि पर जल छोड़कर, अंगूठा और अनामिका मिलाकर नैवेद्य मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ १२५-१२९ ॥

सपुष्पाभ्यां कराभ्यां त्रिः प्रोद्धरन्भक्ष्यभाजनम् ।
निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरे ॥ १३० ॥
षोडशार्णानिमान् प्रोच्य ग्रासमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
वामहस्तेन पद्माभां प्राणाद्या दक्षिणेन तु ॥ १३१ ॥
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्मुद्रा प्राणस्य कीर्तिता ।
तर्जनी मध्यमाङ्गुष्ठैरपानस्य तु सा स्मृता ॥ १३२ ॥
अनामा मध्यमाङ्गुष्ठैरुदानस्य च मुद्रिका ।
तर्जन्यनामामध्याभिः साङ्गुष्ठाभिश्चतुर्थिका ॥ १३३ ॥
सर्वाभिः ससमानस्य प्राणाद्यान् ङेद्विठान्वितान् ।
तारपूर्वाञ्जपन्मुद्राः प्राणादीनां प्रदर्शयेत् ॥ १३४ ॥
ततो जवनिकां कृत्वा ब्रह्मेशाद्यैरिदं पठेत् ।
पद्यं शालेर्भक्तमिति मूलमन्त्रं च सप्तधा ॥ १३५ ॥

पद्माभो वामहस्तो – ग्रासमुद्रा ॥ १३१ ॥ प्राणादिमुद्रा आह – **कनिष्ठेति** ॥ १३२ ॥ चतुर्थिका व्यानमुद्रा ॥ १३३ ॥ सर्वांगुलीभिः समानमुद्रा । द्वि ठं स्वाहा । ॐ प्राणाय स्वाहेत्यादि० ॥ १३४ ॥ जवनिका तिरस्करिणी तां धृत्वा 'शालेर्भक्तं' 'ब्रह्मेशाद्यैरिति' पद्यद्वयं पठेत् ॥ यथा –

'ब्रह्मेशाद्यैः परित ऊरुभिः सूपविष्टैः समेतै–
लक्ष्म्याशिञ्जद्वलयकरया सादरं वीज्यमानः ।
लीलानर्मप्रहसनमुखैर्व्याप्नुवन्पंक्ति मध्यं
भुङ्क्ते पात्रेकनकघटिते षड्रसं श्रीरमेशः' ॥ १ ॥
'शालेर्भक्तं सुपक्वं शिशिररसितं पायसापूपसूपं

फिर हाथ में फूल ले कर नैवेद्य को ३ बार ऊपर उठाते हुये 'निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरे' इस षोडशाक्षर मन्त्र का उच्चारण करते हुये बायें हाथ से कमल जैसी ग्रास मुद्रा और दाहिने हाथ से प्राण आदि मुद्रायें प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ १३०-१३१ ॥

अब **प्राणादि मुद्राओं** को कहते हैं - कनिष्ठिका, अनामिका एवं अंगूठे को मिलाने से **प्राणमुद्रा**, तर्जनी मध्यमा एवं अंगूठा मिलाने से **अपान मुद्रा**, अनामिका, मध्यमा और अंगूठे को मिलाने से **उदान मुद्रा**, तर्जनी, अनामिका मध्यमा, और अंगूठा को मिलाने से **समान मुद्रा** बनती है, चतुर्थ्यन्त प्राण आदि (प्राणय, अपानाय, उदानाय, व्यानाय तथा समानाय) के अन्त में स्वाहा तथा प्रारम्भ में प्रणव लगाने से बने मन्त्रों का जप करते हुये प्राणादि मुद्रायें प्रदर्शित करनी चाहिए ॥ १३२-१३४ ॥

प्रतिसीरामपाकृत्य दद्याच्छ्लोकं पठञ्जलम् ।
समस्तदेव देवेश सर्वतृप्तिकरं परम् ॥ १३६ ॥
अखण्डानन्द सम्पूर्ण गृहाण जलमुत्तमम् ।
स्थण्डिलेग्निमुपाधाय वैश्वदेवक्रियां चरेत् ॥ १३७ ॥
मूलेन वीक्ष्य चास्त्रेण कृत्वा प्रोक्षणताडने ।
कुशैस्तद्वर्मणाभ्युक्ष्य पूर्ववत्स्थापयेच्छुचिम् ॥ १३८ ॥
तन्मन्त्रेण तमभ्यर्च्याहूय तत्रेष्टदेवताम् ।
पूजयेद् गन्धपुष्पैस्तां महाव्याहृतिभिस्ततः ॥ १३६ ॥
हुत्वा व्यस्त समस्ताभिराहुतीनां चतुष्टयम् ।
अन्नैर्मूलेन जुहुयात्पञ्चविंशति संख्यया ॥ १४० ॥

लेह्यं पेयं च चोष्यं सितममृतफलं पूरिकाद्यं सुखाद्यम् ।
आज्यं प्राज्यं सभोज्यं नयनरुचिकरं राजिकैलामरीच –
स्वादीयः शाकराजी परिकरममृताहार जोषञ्जुषस्व' ॥ २ ॥

इति पद्यद्वयम् ॥ रमेशपदे स्थाने देवताभेदेऽन्य देवतानामूहः कार्यः । लक्ष्म्येति पदस्थानेऽपि गौर्या पार्वत्येत्यादि पद सन्निवेश ऊह्यः ॥ १३५ ॥ प्रतिसीराञ्जवनिकाम् ॥ १३६–१३७ ॥ शुचिं वह्निं पूर्ववत् प्रथमतरङ्गोक्त–विधिना ॥ १३८ ॥ तन्मन्त्रेण वैश्वानरमन्त्रेण पूर्वोक्तेन ॥ १३६–१४२ ॥

फिर पर्दा खींचकर 'ब्रह्मेशाद्यैः परित ऊरुभिः सूपविष्टैः समेतैर्लक्ष्म्याशिञ्जद्वलयकरया सादरं वीज्यमानः लीलानर्मप्रहसनमुखैर्व्याप्नुवन्पंक्ति मध्यं भुङ्क्ते पात्रेकनकघटिते षड्रसं श्रीरमेशः । शालेर्भक्तं सुपक्वं शिशिररसितं पायसापूपसूपं लेह्यं पेयं च चोष्यं सितममृतफलं पूरिकाद्यं सुखाद्यम् आज्यं प्राज्यं सभोज्यं नयनरुचिकरं राजिकैलामरीच स्वादीयः शाकराजी परिकरममृताहार जोषञ्जुषस्व' । इसके बाद पर्दा ऊपर हटा कर **'समस्त देव देवेश सर्वतृप्तिकरं परम् । अखण्डानन्द संपूर्ण गृहाण जलमुत्तमम्'** - इस श्लोक से आचमनीय के लिए जल देना चाहिए ॥ १३५-१३७ ॥

स्थण्डिल (वेदी) पर अग्निस्थापन कर वैश्वदेव क्रिया करनी चाहिए । मूल मन्त्र से अग्नि को देखकर अस्त्र (फट्) मन्त्र से प्रेक्षण एवं कुशाओं से ताड़न करना चाहिए (द्र० १. १११-११२) 'हुम्' मन्त्र से सेचन कर पूर्ववत् वहाँ अग्नि की स्थापना करनी चाहिए (द्र० १. ११३. १२२-१२४) ॥ १३७-१३८ ॥

उस 'वैश्वानर' मन्त्र से उनका पूजन करना चाहिए (द्र० १. १२६) फिर इष्टदेव का आवाहन कर गन्ध एवं पुष्पों से उनका भी पूजन करना चाहिए । फिर महाव्याहृति से होम कर व्यस्त (अलग-अलग) और समस्त (एक साथ) व्याहृतियों से ४ आहुतियाँ देनी चाहिए । इसके बाद मूल मन्त्र से अन्न की २५

पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा मूर्तौ देवं नियोजयेत्।
वह्निं विसृज्य देवाय दद्यादाचमनोदकम् ॥ १४१ ॥
तेजः संयोज्य देवस्य निर्गतं देववक्त्रतः।
नैवेद्यांशं तदुच्छिष्टभोजिने विनिवेदयेत् ॥ १४२ ॥

उच्छिष्टभोजिदेवताकथनम्

विष्वक्सेनो हरेरुक्तश्चण्डेश्वर उमापतेः।
विकर्तनस्य चण्डांशुर्वक्रतुण्डो गणेशितुः ॥ १४३ ॥
शक्तेरुच्छिष्टचाण्डाली स्मृता उच्छिष्टभोजिनः।

आर्तिकताम्बूलाद्युपचारकथनम्

ततो लवणमुत्तार्य कुर्यादारार्तिकं सुधीः ॥ १४४ ॥
अथो निवेद्य ताम्बूलं दर्शयेच्छत्रचामरे।
पठेद् देवमना भूत्वा सार्द्धश्लोकचतुष्टयम् ॥ १४५ ॥
बुद्धिः सवासनाक्लृप्ता दर्पणं मङ्गलानि च।
मनोवृत्तिर्विचित्रा ते नृत्यरूपेण कल्पिता ॥ १४६ ॥

उच्छिष्टभोजिन आह । विश्वक्सेन इत्यादिना विकर्तनस्य रवः ॥ १४३–१४४ ॥ सार्धश्लोकचतुष्टयं शिवोक्तम् ॥ १४५ ॥ तदेवाह – **बुद्धिरिति** ॥ १४६॥

आहुतियाँ देनी चाहिए ॥ १३९-१४० ॥

फिर व्याहृतियों से होमकर इष्टदेव की मूर्ति में इष्टदेव को नियोजित करना चाहिए फिर अग्नि का विसर्जन कर इष्टदेव को आचमन के लिए जल देना चाहिए ॥ १४१॥

इष्टदेव के मुख से निकले हुये तेज को नैवेद्य में संयोजित कर उसका कुछ भाग उच्छिष्ट भोजी को दे देना चाहिए ॥ १४२ ॥

अब तत्तद् देवताओं के **उच्छिष्ट भोजियों** का नाम कहते हैं -

विष्णु के विष्वक्सेन, शिव के चण्डेश्वर, रवि के चण्डांशु, गणेश के वक्रतुण्ड और शक्ति के उच्छिष्टचाण्डाली उच्छिष्टभोजी कहे गये हैं ॥ १४३-१४४ ॥

आरती एवं ताम्बूल - इसके बाद साधक को आरती करनी चाहिए । फिर ताम्बूल देकर छत्र एवं चामर दिखाना चाहिए तथा तन्मय होकर '**बुद्धि सवासना ... तवोपकरणात्मना**' पर्यन्त ४ श्लोक १४६-१४८ पढ़कर देवाधिदेव की स्तुति करनी चाहिए ॥ १४४-१४५ ॥

स्तुति श्लोकों का अर्थ - हे प्रभो मै बुद्धिरूप दर्पण तथा वासना रूप मङ्गल एवं अपने विचित्र विचित्र मनोवृत्तियों को नृत्यरूप में आप को समर्पित

ध्वनयो गीतरूपेण शब्दवाद्यप्रभेदतः।
छत्राणि नवपद्मानि कल्पितानि मया प्रभो ॥ १४७ ॥
सुषुम्णा ध्वजरूपेण प्राणाद्याश्चामरात्मना।
अहंकारो गजत्वेन वेगः क्लृप्तोरथात्मना ॥ १४८ ॥
इन्द्रियाण्यश्वरूपाणि शब्दादिरथवर्त्मना।
मनः प्रग्रहरूपेण बुद्धिः सारथिरूपतः ॥ १४९ ॥
सर्वमन्यत्तथा क्लृप्तं तवोपकरणात्मना।
श्लोकानेतान् पठित्वा तु मूलमन्त्रमनन्यधीः ॥ १५० ॥
यशाशक्ति जपित्वा तं मन्त्रेण विनिवेदयेत्।
क्षिपन्नर्घस्य पानीयं देवता दक्षिणे करे ॥ १५१ ॥
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थितिः ॥ १५२ ॥
कीर्तितः श्लोकरूपोऽयं मन्त्रो जपनिवेदने।
दत्त्वापराङ्मुखं चार्घ्यं पुष्पैः शङ्खं प्रपूजयेत् ॥ १५३ ॥
दण्डवत्प्रणिपत्येशं देवे कुर्यात्प्रदक्षिणाः।

देवपरत्वेन प्रदक्षिणासंख्याकथनम्

अजेश शक्ति गणपभास्कराणां क्रमादिमाः ॥ १५४ ॥

मन्त्रेण गुह्यातिगुह्येत्यादिना तं जपं देवदक्षकरेऽर्घजलेनार्पयेत् ॥ १५१–१५३ ॥ प्रदक्षिणासंख्यामाह – **अजेति** । अजे विष्णौ वेदाश्चतस्रः प्रदक्षिणाः ।

करता हूँ । शब्द रूपी बाजे के साथ विविध ध्वनि रूप गीत, नवीन विकसित पद्म रूप छत्र, सुषुम्ना रूप ध्वज आप को तथा अपने पञ्च प्राणों को देव रूप से आप को समर्पित करता हूँ ॥ १४६-१४८ ॥

अपने अहंकार रूप गज के मन के वेग रूपी रथ को जिसमें इन्द्रियों के घोड़े जुते हुये है जो शब्दादि रूप मार्ग में चलने वाले है जिनमें मन का लगाम, तथा बुद्धि रूप सारथी जुड़े हुये है उन्हे भी मैं आप को समर्पित करता हूँ । इसके अतिरिक्त और भी मेरा जो सर्वस्व है उन सभी को उपकरण रूप में आप को समर्पित करता हूँ ॥ १४८-१५० ॥

इन श्लोकों से स्तुति करने के पश्चात् साधक तन्मय हो कर मूलमन्त्र का यथाशक्ति जप कर देवता के दाहिने हाथ में विशेषार्घ्य का जल देकर 'गुह्याति .. त्वयि स्थितिः' पर्यन्त (द्र० २२. १५२) श्लोक पढ़कर जप निवेदन करे । फिर पीछे की ओर अर्घ्य देकर शङ्ख का पूजन करना चाहिए ॥ १५१-१५३ ॥

वेदार्द्धचन्द्रवह्न्यन्त्यद्रि संख्याः स्युः सर्वसिद्धये ।
स्तुत्वा ब्रह्मार्पणाख्येन मनुनाऽऽत्मानमर्पयेत् ॥ १५५ ॥

ब्रह्मार्पणमन्त्रकथनम्

इतः पूर्वं प्राणबुद्धि देहधर्माधिकारतः ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यन्तेऽवस्थासु मनसा वदेत् ॥ १५६ ॥
वाचा च हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्नतस्ततः ।
मेषोनन्तान्वितो यत्स्मृतं यदुक्तं च यत्कृतम् ॥ १५७ ॥
तत्सर्वं प्रोच्य ब्रह्मार्पणं भवत्वग्निवल्लभा ।
मां मदीयं च सकलं हरये ते समर्पये ॥ १५८ ॥
तारस्तत्सदिति प्रोक्तो ब्रह्मार्पणमनुर्बुधैः ।
प्रणवादिर्द्वयशीत्यर्णो देवतात्मसमर्पणे ॥ १५९ ॥

ईशेर्द्धम् । शक्तावेका । गणेशस्य तिस्रः । रवेः सप्त ॥ १५४–१५५ ॥
ब्रह्मार्पणमन्त्रमाह – **इत इति** । बकः शः मेषोऽनन्तान्वितः नः आयुतः श्न ।
यथा – ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्नेन यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा मां मदीयं च सकलं हरये ते समर्पये ॐ तत्सदिति ॥ १५६–१५९ ॥

प्रदक्षिणाविधि - अपने इष्टदेव को दण्डवत् प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा करनी चाहिए । विष्णु की चार, शिव की आधी, शक्ति की एक, गणेश की तीन एवं सूर्यनारायण की सात परिक्रमायें सर्वसिद्धिलाभ के लिए करनी चाहिए ॥ १५४-१५५ ॥

इसके बाद स्तुति कर ब्रह्मर्पण मन्त्र से आत्म निवेदन करना चाहिए । 'इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ने' के बाद अनन्तान्वित (ए) से युक्त मेष (न), फिर 'यं यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा', फिर 'मां मदीयं च सकलं हरये ते समर्पये' तथा अन्त में तार (ॐ) तथा तत्सत् एवं प्रारम्भ में प्रणव लगाने से ८२ अक्षरों का ब्रह्मार्पण मन्त्र देवता को आत्मसमर्पण करने के लिए कहा गया है ॥ १५५-१५९ ॥

विमर्श - ब्रह्मार्पण मन्त्र का स्वरूप - ॐ इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेह धर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्नेन यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा मां मदीयं च सकलं हरये ते समर्पये ॐ तत्सत् (८२ अक्षर न होकर ८४ है) ॥ १५५-१५९ ॥

देवस्य संहारमुद्रया हृदये स्थापनम्

संहारमुद्रया देवं संहरेर्द्धृदये निजे ।
अन्यस्मिन्दैवते कार्यं ऊहो हरिपदे बुधैः ॥ १६० ॥

ब्रह्मायज्ञपूर्वकयोगक्षेमादिकथनम्

एवं सम्पूज्य देवेशं ब्रह्मायज्ञं समाचरेत् ।
योगक्षेमं ततः कृत्वा मध्याह्ने स्नानमाचरेत् ॥ १६१ ॥

पूजाया आवश्यकत्वादिकथनम्

स्मार्तं तान्त्रं च पूर्वोक्तं सन्ध्यातर्पणमप्यथ ।
सम्पूज्य पूर्ववद्देवं वैश्वदेवादिकं चरेत् ॥ १६२ ॥
देवप्रसादं भुञ्जीत सम्भोज्य ब्राह्मणोत्तमान् ।
आचम्य देवं संस्मृत्य पुराणं श्रृणुयात्सुधीः ॥ १६३ ॥
सन्ध्याहोमं निर्वृत्य देवं सम्पूज्य पूर्ववत् ।
शयीतशुद्धशय्यायां भुक्त्वाल्पं देवतां स्मरन् ॥ १६४ ॥

संहारमुद्रोक्ता । हरये इत्यत्र ईशानाय गौर्यै इत्याद्यूहः ॥ १६०॥ ब्रह्मा–यज्ञं वेदाध्ययनम् । अलब्धस्य लाभो योगः । लब्धस्य परिपालनं क्षेमः ॥ १६१ ॥ तान्त्रं स्नानम् । पूर्वोक्तं प्रथमतरङ्गोक्तम् ॥ १६२–१६५ ॥

इसके बाद संहारमुद्रा दिखाकर अपने इष्टदेव को हृदय में स्थापित करे । अन्य देवता के ब्रह्मार्पण में 'हरये' के स्थान पर उस देवता का चतुर्थ्यन्त ऊह कर लेना चाहिए ॥ १६० ॥

इष्टदेव का पूजन करने के बाद ब्रह्म यज्ञ (वेदाध्ययन) करना चाहिए। फिर योगक्षेम (व्यावसायिक एवं घर के कार्य) करने के बाद मध्यास्न में स्नान करना चाहिए ॥ १६१ ॥

फिर पूर्वोक्त रीति से स्मार्त्त एवं तान्त्रिक (स्नान द्र० १.३) सन्ध्या एवं तर्पण बलि-वैश्वदेव आदि सारा कार्य करना चाहिए । तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन करा कर देवतानिवेदित प्रसाद का स्वयं भोजन करना चाहिए । तत्पश्चात् आचमनादि एवं देव स्मरण कर पुराणों का पाठ एवं श्रवण करना चाहिए ॥ १६२-१६३ ॥

अब **सायं पूजन** का **विधान** करते है -

सन्ध्याकाल का हवन संपादन कर पुनः पूर्वोक्त विधि से इष्टदेव का पूजन कर, थोड़ा भोजन कर, देवता का स्मरण करे । फिर शुद्ध शय्या पर सो जाना चाहिए ॥ १६४ ॥

एवं यः पूजयेद् देवं त्रिकालं धर्ममाचरन्।
न जातुवैरिभिर्दुःखै पीड्यते हरिरक्षितः ॥ १६५ ॥
त्रिकालं पूजनाशक्तैः कार्यं द्विःसकृदप्यदः।
विशेषेण यजेद्देवं संक्रान्त्यादिषु पर्वसु ॥ १६६ ॥
दशभिः पञ्चभिर्वापि पूजयेदुपचारकैः।
अशक्तः कारयेत्पूजां दद्यादर्चनसाधनम् ॥ १६७ ॥
दानाशक्तः समर्चंस्तं पश्येत्तत्परमानसः।

साधनाभाविनीत्रासीदौर्बोधीसूतक्यातुरीभेदेन
पञ्चप्रकारपूजाकथनम्

साधनाऽभाविनी त्रासी दौर्बोधी सौतकी तथा ॥ १६८ ॥
आतुरी पञ्चधोक्तासौ पूजा सा कीर्त्यते क्रमात्।

अन्दः पूजनम् ॥ १६६ ॥ दशभिरुपचारैरावाहनासनस्नानाचमनवस्त्र-चन्दनपुष्पं धूपदीपनैवेद्यैः । पञ्चभिर्गन्धाद्यैः ॥ १६७ ॥ पञ्चप्रकारां पूजामाह – **साधनाऽभाविनीति** । साधनानां पूजोपकरणानामभावो यस्याः सा साधनाभाविनी । त्रासो यस्याः सा तत्कृता त्रासी । दुर्बोधानामियं दौर्बोधी । सूतके कृता सौतकी ॥ १६८ ॥

जो व्यक्ति इस प्रकार धर्माचरण करते हुये त्रिकाल देव पूजन करता है वह कभी भी शत्रुओं एवं दुःखों से पीड़ित नहीं होता उसके इष्टदेव स्वयं उसकी रक्षा करते है ॥ १६५ ॥

त्रिकाल पूजा में असमर्थ होने पर व्यक्ति को मात्र प्रातः एवं सायं द्विकाल ही देवता का पूजन करना चाहिए । संक्रान्ति आदि पर्वो पर विशेष रूप से त्रिकाल पूजन करना चाहिए । असमर्थ व्यक्ति को दशोपचार अथवा पञ्चोपचार से पूजन करना चाहिए । अथवा सर्वथा अशक्त होने पर उपचार सामग्री दूसरों को देकर उसी से पूजा करा लेनी चाहिए । यदि उपचार देने में भी असमर्थ हो तो एकाग्रचित्त हो दूसरे के द्वार पर होने वाली पूजा स्वयं देखना चाहिए ॥ १६६-१६८ ॥

विमर्श - दशोपचार - पाद्यार्घ्याचमनीयं च मधुपर्काचमनस्तथा ।
गन्धादयो नैवेद्यान्ता उपचारा दशात्मकाः ॥

पञ्चोपचार - गन्धपुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ।
प्रदद्यात्परमेशानि पूजा पञ्चोपचारिका ॥ १६६-१६८ ॥

साधानाभेद और लक्षण - अभाविनी, त्रासी, दौर्बोधी, सौतिकी तथा आतुरी इन भेदों से साधना के ५ भेद कहे गये है । अब **इनके लक्षण** कहते हैं -

पूजासाधनवस्तूनामभावान्मनसैव या ॥ १६६ ॥
पूजाम्भसा साधनं यत्साधनाभाविनी तु सा।
त्रस्तः सम्पूजयेद्देवं यथालब्धोपचारकैः ॥ १७० ॥
मानसैर्वापि सा त्रासी ज्ञेया सम्पूर्णसिद्धिदा।
बालावृद्धाः स्त्रियो मूर्खादुर्बोधास्तत्कृता तु या ॥ १७१ ॥
यथाज्ञानं परार्चासौ दौर्बोधी कीर्तिता बुधैः।
सूतकी तु नरः स्नात्वा सन्ध्यां स्वां मानसीं चरेत् ॥ १७२ ॥
मानसैर्वार्चयेत्कामी निष्कामः सर्वमाचरेत्।
सौतक्युक्ताऽऽतुरी रोगान्नस्नायान्न च पूजयेत् ॥ १७३ ॥
विलोक्य मूर्तिं देवस्य यदि वा सूर्यमण्डलम्।
सकृन्मूलमनु जप्त्वा तत्र पुष्पं विनिक्षिपेत् ॥ १७४ ॥
ततो रोगे गते स्नात्वा पूजयित्वा गुरून्द्विजान्।
पूजाविच्छेददोषो मे मास्त्विति प्रार्थयेत तान् ॥ १७५ ॥
तेभ्यश्चाशिषमादाय देवेशं पूर्ववद्यजेत्।
आतुरी कीर्तिता पूजाः पञ्चैवं नारदोदिताः ॥ १७६ ॥

आतुरस्येयमातुरी ॥ १६६ ॥ क्रमाल्लक्षणमाह – **पूजेति** । त्रासीमाह – **त्रस्त** इति ॥ १७० ॥ दौर्बोधीमाह – **बाला** इति ॥ १७१ ॥ सौतकीमाह – **सूतकीत्विति** ॥ १७२ ॥ आतुरीमाह – **आतुरेति** ॥ १७३–१७८ ॥

१-२. पूजा के उपकरणों के अभाव में मन से अथवा जल मात्र से जो पूजा की जाती है उसे **अभाविनी साधना** कहते है । त्रस्त व्यक्ति तत्कालोपलव्ध अथवा मानसोपचारों से जो पूजा करता है उसे **त्रासी साधना** कहते हैं । ऐसी साधना सब प्रकार की सिद्धि देती है ॥ १६८-१७१ ॥

३. बालक,वृद्ध, स्त्री, मूर्ख एवं अनजान व्यक्तियों के द्वारा उनकी जानकारी के अनुसार यथाशक्ति की जाने वाली पूजा **दौर्बोधी साधना** कही जाती है। सूतक में पड़ा हुआ व्यक्ति स्नान कर केवल मानसिक सन्ध्या करे ॥ १७१-१७२ ॥

४. सकाम होने पर मानसिक पूजन करे, निष्काम होने पर सव कार्य करे - यह **सौतिकी साधना** है । रोगी व्यक्ति को स्नान एवं पूजा दोनों वर्जित है । वह देवता की मूर्ति अथवा सूर्यमण्डल का दर्शन कर एक बार मूल मन्त्र का जप कर केवल पुष्प चढ़ा देवे ॥ १०३-१७४ ॥

५. फिर रोग की समाप्ति होने पर स्नान कर पश्चात् गुरु एवं ब्राह्मणों की पूजा कर 'पूजा विच्छेद का दोष मुझे न लगे' ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए । उन

स्वयं सम्पाद्य सर्वाणि श्रद्धया साधनानि यः ।
पूजयेत्तत्परो देवं स लभेताखिलं फलम् ॥ १७७ ॥
पूजनेन फलार्द्धं स्यादन्यदत्तैस्तु साधनैः ।
तस्मात्स्वयं समानीय साधनान्यर्चनं चरेत् ॥ १७८ ॥
देवपूजाविहीनो यः स नरो नरके पचेत् ।
यथाकथञ्चिद्देवार्च्चा विधेया श्रद्धयान्वितैः ॥ १७६ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ देवार्चानिरूपणं नाम द्वाविंशस्तरङ्गः ॥ २२ ॥

सुरार्चाया नित्यतामाह – **देवेति** ॥ १७६ ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां देवार्चानिरूपणं नाम द्वाविंशस्तरङ्गः ॥ २२ ॥

गुरुजनों से आशीर्वाद ग्रहण कर पूर्वोक्त विधि से अपने इष्टदेव का यजन करना चाहिए । इस साधना को **आतुरी साधना** कहते हैं । ये पाँचों साधनायें ब्रह्मर्षि नारद के द्वारा कही गई है ॥ १७५-१७६ ॥

पूजा की सारी सामग्री स्वयं एकत्रित कर जो व्यक्ति तन्मय होकर अपने इष्टदेव की पूजा करता है उसे संपूर्ण फल प्राप्त होता है । अन्य व्यक्तियों द्वारा सङ्गृहित उपचारों से पूजा करने पर साधक को मात्र आधा फल प्राप्त होता है । इसलिए पूजा की सारी सामग्री का संभार स्वयं ला कर पूजा करनी चाहिए ॥ १७७-१७८ ॥

क्योंकि देवपूजा न करने पर नरक की प्राप्ति होती है अतः व्यक्ति को देवता के प्रति आस्था एवं श्रद्धा रख कर देव पूजन करनी ही चाहिए ॥ १७६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के बाईसवें तरङ्ग की महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २२ ॥

अथ त्रयोविंशः तरङ्गः

वक्ष्येऽथो सर्वदेवानां पवित्रदमनार्पणम्।

पवित्रदमनार्चनविधिवर्णनम्

पवित्रैः श्रावणे पूजा चैत्रे दमनकैरपि ॥ १ ॥
प्रत्यब्दं विधिवत्कुर्याद्वर्षार्च्चा फलसिद्धये।
चैत्रे शुक्लचतुर्दश्यां दमनैः पूजयेद्धरिम् ॥ २ ॥
नारायणं तु द्वादश्यामष्टम्यां गिरिनन्दिनीम्।
सप्तम्यां भास्करं देवं चतुर्थ्यां गणनायकम् ॥ ३ ॥
एवं तत्तिथौ तं तं पवित्रैः श्रावणेऽर्चयेत्।
पूर्वाह्णे दमनार्चायाः कृत्वा नित्यार्चनं विभोः ॥ ४ ॥
गत्वा दमनकारामं गृह्णीयात्तं क्रयार्पणात्।
उपविश्य शुचौ देशे मनुनानेन चार्पयेत् ॥ ५ ॥

---

* नौका *

पवित्रदमनार्चनं वक्तुमुपक्रमते – **वक्ष्येऽथो** इति ॥ १ ॥ * ॥ २–३ ॥ **पूर्वाह्णे** पूर्वदिने ॥ ४ ॥

---

* अरित्र *

अब सभी देवताओं के लिए **पवित्र एवं दमनक के अर्पण की विधि** कहता हूँ। वर्ष भर की पूजा की फल प्राप्ति के लिए पवित्री श्रावण में तथा दमनक चैत्र में समर्पित कर विधिवत् विष्णु देव का पूजन करना चाहिए ॥ १-२ ॥

पवित्र एवं दमनक के अर्पण की तिथि -

चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को दमनक से श्रीविष्णु का, चैत्र शुक्ल द्वादशी को नारायण का, अष्टमी को पार्वती का, सप्तमी को सूर्य का तथा चतुर्थी को श्री गणेश का पूजन करना चाहिए। इसी प्रकार श्रावण की उक्त तिथियों में पवित्रक से तत्तदेवताओं का पूजन करना चाहिए ॥ २-४ ॥

दमनक पूजाविधि - दमनक पूजा से एक दिन पहले अपने इष्टदेव की पूजा कर दमनक (अशोक) के उपवन में जा कर मूल्य दे कर दमनक का क्रय

अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशन ।
शोकार्तिं हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे ॥ ६ ॥
इति सम्प्रार्थ्य तत्रार्चेद्रतिकामौ स्वमन्त्रतः ।

तत्र कामरतिमन्त्रकथनम्

कामदेवाय कामादि हृदन्तोऽष्टाक्षरो मनुः ॥ ७ ॥
कामास्य मायारत्यै हृत्पञ्चार्णस्तु रतेर्मनुः ।
इष्टदेवस्य पूजार्थं नेष्यामि त्वामिति ब्रुवन् ॥ ८ ॥
उत्पाट्य पञ्चगव्येनाभिषिच्य क्षालयेज्जलैः ।
गन्धादिभिर्हृदाभ्यर्च्य च्छादयेत् पीतवाससा ॥ ६ ॥
निधाय वंशपात्रे तं गीतवादित्रनिःस्वनैः ।
गृहमानीय तद्देशे स्थापयेद् देवतां स्मरन् ॥ १० ॥
ततो देवस्य पुरतः कृत्वाष्टदलमम्बुजम् ।
सितकृष्णरक्तपीतवर्णैः सम्पूरयेत्तु तम् ॥ ११ ॥

क्रयार्पणान् मूल्यदानेन ॥ ५ ॥ * ॥ ६ ॥ क्लीं कामदेवाय नम इति कामस्य मनुः । ह्रीं रत्यै नम इति रतेः ॥ ७–८ ॥ * ॥ ६–१४ ॥

करना चाहिए । फिर शुद्ध स्थान पर बैठकर 'अशोकाय नमस्तुभ्यं' से 'जनयस्व मे' पर्यन्त (द्र० २३.६) श्लोक पढ़कर प्रार्थना कर उस पर रति एवं काम का उनके अपने अपने मन्त्रों से पूजन करना चाहिए ॥ ४-७ ॥

अब **कामदेव का मन्त्र** कहते हैं - प्रारम्भ में काम (क्लीं) फिर कामदेवाय उसके अन्त में हृदय (नमः) लगाने से ८ अक्षरों का कामदेव मन्त्र बनता है । माया (ह्रीं) फिर रत्यै और अन्त में हृदय (नमः) लगाने से ५ अक्षरों का रतिमन्त्र बनता है ॥ ७-८ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप - कामदेव का मन्त्र - क्लीं कामदेवाय नमः, **रति का मन्त्र** - ह्रीं रत्यै नमः ॥ ७-८ ॥

इसके पश्चात् 'इष्टदेवस्य पूजार्थं त्वां नेष्यामि' ऐसा कह कर उखाड़कर पञ्चगव्य से अभिषेक कर जल से प्रक्षालित करना चाहिए । तदनन्तर गन्ध आदि से (गन्धं समर्पयामि नमः) पूजा कर उसे पीले कपड़े से ढ़क कर, बाँस की टोकरी में स्थापित कर, गाते-बजाते घर ले जाकर, इष्टदेव का स्मरण करते हुये पूजा स्थान में इस प्रकार स्थापित करना चाहिए ॥ ८-१० ॥

इसके बाद इष्टदेव के सामने अष्टदल कमल बनाकर श्वेत, काले, रक्त एवं पीत वर्णों से उसे रंग देना चाहिए । उसके बाद भूपुर बनाकर उसे पीले

भूपुरं तद्बहिः कृत्वा पीतवर्णेन पूरयेत्।
सितरक्तपीतवर्णं तद्बहिर्वर्तुलत्रयम् ॥ १२ ॥
रक्तवर्णेन तद्बाह्ये विदध्याच्चतुरस्रकम्।
एवं विरचिते रम्ये मण्डले सार्वकामिके ॥ १३ ॥
यदि वा सर्वतोभद्रे मुञ्चेद्दमनभाजनम्।
सायंकालीनपूजान्ते कुर्यात्तस्याधिवासनम् ॥ १४ ॥
ताराद्याभ्यां कामरतिमन्त्राभ्यां तत्र तौ यजेत्।
दलेष्वष्टसु रत्याद्यानष्टौ कामान्पृथग्विधैः ॥ १५ ॥

कामनामकथनम्

कामो भस्मशरीरश्च ततोऽनङ्गश्च मन्मथः।
वसन्तसखसंज्ञश्च स्मर इक्षुधनुर्धरः ॥ १६ ॥
पुष्पबाण इमे कामास्तान् यजेन्नामभिर्निजैः।
प्रणवानङ्गबीजाद्यैश्चतुर्थी हृदयान्वितैः ॥ १७ ॥

ताराद्याभ्य प्रणवादिकाभ्यां कामरतिमन्त्राभ्यामुक्ताभ्यां तत्र मण्डल मध्यस्थदमने तौ रतिकामौ ॥ १५ ॥ कामानाह – **काम** इति ॥ १६ ॥ **प्रणवेति** । ॐ क्लीं कामाय नम इत्यादिभिः ॥ १७ ॥

रङ्ग से रंग देना चाहिए। पुनः उसके ऊपर सफेद लाल एवं पीले रङ्ग के तीन वृत्तों का निर्माण करना चाहिए । फिर उसके बाहर चतुरस्र बनाकर लाल रङ्ग से भर देना चाहिए ॥ ११-१३ ॥

दमनपूजने यन्त्रम्

इस प्रकार से निर्मित रम्य सार्वकामिक मण्डल पर अथवा सर्वतोभद्र मण्डल पर दमनक की पिटारी को रख देना चाहिए ॥ ११-१३ ॥

अधिवास का विधान -

सांयकालीन पूजा के बाद दमनक का इस प्रकार अधिवासन करना चाहिए । प्रणव सहित काम मन्त्र (ॐ क्लीं कामदेवाय नमः) एवं रतिमन्त्र (ह्रीं रत्यै नमः) से उन दोनों का पूजन कर तदनन्तर रति सहित कामदेव के आठ नामों के मन्त्र से अष्टदलों में पृथक् रूप से पूजन करना चाहिए ॥ १४-१५ ॥
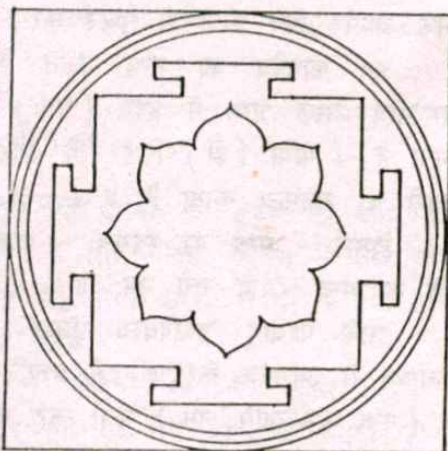
पूजाद्रव्यकथनम्

कर्पूररोचनान्यंकुनाभिजाऽगुरुकुंकुमैः ।
धात्रीफलैश्चन्दनेन पुष्पैः कामान् क्रमाद्यजेत् ॥ १८ ॥
दमनं गन्धपुष्पाद्यैरभिपूज्याभिमन्त्रयेत् ।
अष्टोत्तरशतं कामगायत्र्या मन्त्रवित्तमः ॥ १६ ॥

कामगायत्रीकथनम्

कामदेवाय वर्णान्ते विद्महेपदमुच्चरेत् ।
पुष्पबाणाय च पदं धीमहीति ततो वदेत् ॥ २० ॥
तन्नोऽनङ्गः प्रचोवर्णाद् दयादिति मनोभुवः ।
गायत्र्येषा बुधैरुक्ता जप्ता जनविमोहिनी ॥ २१ ॥

पूजाद्रव्याण्याह – **कर्पूरेति** । न्यंकुनाभिजा कस्तूरी । तत्र कर्पूरेण कामपूजा । रोचनया भस्मशरीरपूजा कस्तूर्याऽनंगपूजेत्यादिक्रमः ॥ १८ ॥ * ॥ १६ ॥ कामगायत्रीमाह – **कामदेवायेति** । जनविमोहिनीत्युक्तत्वात् स्वतन्त्राप्येषा ॥ २० ॥ * ॥ २१–२४ ॥

---

१. काम, २. भस्मशरीर, ३. अनङ्ग, ४. मन्मथ, ५. बसन्तसखा, ६. स्मर, ७. इक्षुधनुर्धर एवं ८. पुष्पबाण - ये कामदेव के आठ नाम कहे गये हैं ॥ १६-१७ ॥

इन नामों के चतुर्थ्यन्त रूपों के प्रारम्भ में प्रणव सहित कामबीज और अन्त में हृदय (नमः) लगाकर नाम मन्त्रों से कर्पूर, गोरोचन, कस्तूरी, अगर, कुंकुम, आँवला, चन्दन, एवं पुष्पों से उक्त आठ कामों का पूजन करना चाहिए ॥ १७-१८ ॥

फिर गन्ध , पुष्पादि द्वारा दमनक का पूजन कर मन्त्रवित् साधक काम गायत्री के मन्त्र से उसे १०८ बार अभिमन्त्रित करे ॥ १६ ॥

अब **कामदेव गायत्री** कहते हैं -

'कामदेवाय' पद के बाद 'विद्महे' कहना चाहिए । फिर 'पुष्पबाणाय' पद के अनन्तर 'धीमहि' पद का उच्चारण करना चाहिए । तत्पश्चात् 'तन्नोऽनङ्गः प्रचो' तथा 'दयात्' वर्णों को कहना चाहिए । यह कामगायत्री हैं, जो जप करने मात्र से लोगों को मोहित करती हैं, ऐसा विद्वानों का कथन है ॥ २०-२१ ॥

विमर्श - मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है - 'कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि । तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्' ॥ २०-२१ ॥

हृदापुष्पाञ्जलिं दत्वा मनुनानेन तं नमेत्।
नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदानन्दकारिणे ॥ २२ ॥
मन्मथाय जगन्नेत्ररतिप्रीतिप्रदायिने।
ततो निमन्त्रयेद् देवमनेन मनुना सुधीः ॥ २३ ॥
आमन्त्रितोऽसि देवेश प्रातःकाले मया प्रभो।
कर्तव्यं तु यथालाभं पूर्णं स्यात्तु तवाज्ञया ॥ २४ ॥
देवे पुष्पाञ्जलिं दत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च।
दमने वर्मणास्त्रेण विदध्यादवगुण्ठनम् ॥ २५ ॥
रक्षणं च क्रमादेतदधिवासनमीरितम्।
ततो जागरणं कुर्याद्देवं गायंस्तुवञ्जपन् ॥ २६ ॥
सर्वाधिवासनं चापि कुर्यान्नर्तनजागरौ।
प्रातः स्नानादिनिर्वर्त्य कृत्वा नित्यार्चनं विभोः ॥ २७ ॥
संकल्पं दमनार्चाया विदध्याद्देवताज्ञया।
गृहीत्वा दमनस्याथ हस्ताभ्यां मञ्जरीं शुभाम् ॥ २८ ॥

वर्मणाऽवगुण्ठनम् अस्त्रेण रक्षणं कुर्यात् ॥ २५–२७ ॥ देशकालावुच्चार्य वर्षपूजा सांगत्याय दमनार्चां करिष्य इति संकल्पः ॥ २८ ॥ * ॥ २६–३७ ॥

फिर नमः मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर **'नमोऽस्तु पुष्पबाणय ... रतिप्रीतिप्रदायिने'** पर्यन्त मन्त्र (द्र० २३. २२-२३) पढ़कर उन्हे प्रणाम करे ॥ २२-२३ ॥

फिर **'आमन्त्रितोसि देवेश ... तवाज्ञया'** पर्यन्त मन्त्र (द्र० २३.२४) पढ़कर इष्ट देवता को निमन्त्रित करे ॥ २३-२४ ॥

तदनन्तर पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर, दण्डवत् प्रणाम कर, वर्म (हुं) मन्त्र से दमन का अवगुण्ठन कर, अस्त्र (फट्) मन्त्र से उनका संरक्षण करे । उपर्युक्त समस्त विधियों को **दमनक का अधिवासन** कहा जाता है ॥ २५-२६ ॥

फिर इष्टदेव के गुणों का गान करते हुये तथा उनके मन्त्रों का जप करते हुये जागरण करे । सभी प्रकार के अधिवासन में नृत्य और जागरण करना चाहिए - ऐसा विधान है ॥ २६-२७ ॥

विमर्श - आठ कामों के नाममन्त्रों से पूजा विधि -

ॐ क्लीं कामाय नमः, ॐ क्लीं भस्मशरीराय नमः,
ॐ क्लीं अनङ्गाय नमः, ॐ क्लीं मन्मथाय नमः,
ॐ क्लीं वसन्तसखाय नमः, ॐ क्लीं स्मराय नमः,
ॐ क्लीं इक्षुधनुर्धराय नमः, ॐ क्लीं पुष्पबाणाय नमः ।

कामदेव की गायत्री स्पष्ट है ॥ १४-२७ ॥

हृदाभिमन्त्रयेन्मन्त्री ततः श्लोकमिमं पठेत् ।
सर्वरत्नमयीं दिव्यां सर्वगन्धमयीं शुभाम् ॥ २९ ॥
गृहाण मञ्जरीं देव नमस्तेऽस्तु कृपानिधे ।
मूलमन्त्रेण घण्टादिघोषैर्देवस्य मस्तके ॥ ३० ॥
समर्प्य तां ततः कुर्यान्मालां दमननिर्मिताम् ।
हृदाभिमन्त्र्य चानेन श्लोकेनाप्यभिमन्त्रयेत् ॥ ३१ ॥
सर्वरत्नमयीं नाथ दामनीं वनमालिकाम् ।
गृहाण देवपूजार्थं सर्वगन्धमयीं विभो ॥ ३२ ॥
मूलमन्त्रं जपन्देव मुकुटे तां समर्पयेत् ।

दमनेन देवपूजाविधिकथनम्

दमनेनेष्टदेवस्य परिवारान् समर्चयेत् ॥ ३३ ॥
ततो नैवेद्यताम्बूले दत्वा नत्वा च दण्डवत् ।
दमनार्चां कृतां तस्मै श्लोकेन विनिवेदयेत् ॥ ३४ ॥
देव देव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक ।
कृत्स्नान् पूरय मेत्वर्थं कामान् कामेश्वरीप्रिय ॥ ३५ ॥
जप्त्वा मूलमनुं वह्निं हुत्वा देवं विसृज्य च ।
गुरुं गत्वा दमनकैर्यजेत्तं तोषयेद्धनैः ॥ ३६ ॥

दमन पूजा - प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त हो कर इष्टदेव की नियमित पूजा समाप्त करने के बाद उनकी आज्ञा ले कर 'वर्षपूजा साङ्गत्याय दमनार्चा करिष्ये' ऐसा संकल्प करना चाहिए ॥ २७-२८ ॥

फिर दोनों हाथों में दमनक की शुभ मञ्जरी ले कर 'नमः' मन्त्र से अभिमन्त्रित कर - **'सर्वरत्नमयीं दिव्यां ... नमस्तेऽस्तु कृपानिधे** - पर्यन्त श्लोक (द्र० २३. २९-३०) पढ़कर मूल मन्त्र से घण्टा आदि जयघोष के साथ उन मञ्जरियों को देवता के शिर पर चढ़ाकर दमनक की बनी माला 'नमः' पद के साथ - **'सर्वरत्नमयीं नाम ... विभो'** पर्यन्त (द्र० २३. ३२) मन्त्र पढ़कर अभिमन्त्रित करनी चाहिए ॥ २८-३२ ॥

इसके पश्चात् इष्टदेव के परिवार की भी दमनक द्वारा पूजा करनी चाहिए । फिर नैवेद्य एवं ताम्बूल समर्पित कर दण्डवत् प्रणाम कर **'देव देव जगन्नाथ ... कामेश्वरीप्रिय** - पर्यन्त श्लोक (द्र० २३. ३५) पढ़ते हुये पूजित दमनक को देवाधिदेव के लिए निवेदित करनी चाहिए ॥ ३३-३५ ॥

फिर मूल मन्त्र का जप कर अग्नि में होम कर देवता का विसर्जन कर गुरु के पास जा कर दमनक से उनकी भी पूजा करनी चाहिए और धन दे कर

विप्रान् सम्भोज्य भुञ्जीत स्वदेवाय निवेदितम् ।
एवं कृते कृतार्थः स्याद्वर्षार्चा फलभाङ् नरः ॥ ३७ ॥
कथिता दमनार्चैषा पवित्रयजनं ब्रुवे ।

पवित्रविधिकथनम्

पवित्रयजनाहात्तु पूर्वस्मिन्वासरे सुधीः ॥ ३८ ॥
विदध्यान्नित्यपूजान्ते पवित्राणि यथाविधि ।
हेमदुर्वर्णताम्रोत्थतन्तुभिः पट्टसूत्रतः ॥ ३९ ॥
यद्वा कार्पाससूत्रैस्तु निर्मितैर्विप्रभार्यया ।
अन्यया वा सधवया सदाचारप्रसक्तया ॥ ४० ॥
कर्तितैस्तानि कुर्वीत न पुंश्चल्यादिर्निर्मितैः ।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य निर्मायान्नवसूत्रिकाम् ॥ ४१ ॥
तां प्रोक्ष्य पञ्चगव्येन क्षालयेदुष्णवारिणा ।
प्रणवेनाभिषिञ्चेत्तां मूलेनाऽष्टोत्तरं शतम् ॥ ४२ ॥
मन्त्रयेन्मूलगायत्र्याः तावदेव ततः सुधीः ।
रचयेन्नवसूत्रीभिरष्टोत्तरशतेन च ॥ ४३ ॥

पवित्रविधिमाह – **पवित्रेति** ॥ ३८ ॥ दुर्वर्णं रूप्यम् ॥ ३९ ॥ *॥ ४०–४२ ॥ अष्टोत्तरशतनवसूत्र्या ज्येष्ठं चतुःपञ्चाशता मध्यमं सप्तविंशत्या कनिष्ठं पवित्रं कुर्यात् ॥ ४३–४४ ॥

उन्हें संतुष्ट करना चाहिए ॥ ३६ ॥

पश्चात् ब्राह्मण भोजन करा कर स्वयं इष्टदेव का प्रसाद ग्रहण करना चाहिए । ऐसा करने से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है और उसे पूरे वर्ष की पूजा का फल प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

इस प्रकार दमनक पूजा कही गई । अब **पवित्रपूजा का क्रम** कहता हूँ -

पवित्र पूजा करने के एक दिन पहले साधक नित्य पूजा संपादन कर विधिवत् पवित्राओं का निर्माण कर सोना, चाँदी, ताँबा, रेशम, अथवा ब्राह्मणों के द्वारा अथवा अन्य सदाचारिणी सधवा स्त्री के हाथ से काते हुये कपास के सूत का पवित्रक वनाना चाहिए । व्यभिचारिणी, वेश्यादि द्वारा काते गये सूत का पवित्रक कभी न बनावे । तीन धागों को तीन गुनाकर इस प्रकार नवसूत्रिका निर्माण कर पञ्चगव्य से उसका प्रोक्षण कर ऊष्ण जल से उसे प्रक्षालित करना चाहिए ॥ ३८-४२ ॥

फिर प्रणव से उनका अभिषेक करे तथा १०८ इष्टदेव के मूलमन्त्र एवं उनकी १०८ गायत्री से उसे अभिमन्त्रित करना चाहिए ॥ ४२-४३ ॥

तदर्द्धेन तदर्द्धेन जानूरुनाभिमानतः ।
देवेशस्य पवित्राणि शुचौ देशे प्रसन्नधीः ॥ ४४ ॥
ज्येष्ठ–मध्य–कनिष्ठानि तेषु ग्रन्थीन् दधीत च ।
षट्त्रिंशत्तत्त्वमार्तण्डमिताञ्ज्येष्ठादिषु क्रमात् ॥ ४५ ॥
अष्टोत्तरसहस्रेण नवसूत्र्या विनिर्मितम् ।
अष्टोत्तरशतग्रन्थीन् वनमालापवित्रकम् ॥ ४६ ॥
कृत्वातान् रञ्जयेद् ग्रन्थीन् रोचनाकुंकुमादिभिः ।
वैष्णवे पटले तानि सञ्छाद्य सितवाससा ॥ ४७ ॥
स्थापयित्वा विनिर्मायादन्यान्यावरणार्चने ।
सप्तविंशत्यष्टि रवि नवसूत्रीकृतानि तु ॥ ४८ ॥
अद्रिनेत्रमिताभिस्तु कुर्याद् गुरुपवित्रकम् ।
तावतीभिः कृशानोस्तत्षड्विंशत्या तदात्मनः ॥ ४६ ॥
तत्रग्रन्थीन् यथाशोभं दत्त्वा संरञ्जयेदपि ।
तानि पात्रान्तरे न्यस्य कुर्याद् गन्धपवित्रकम् ॥ ५० ॥

ज्येष्ठं षट्त्रिंशद् ग्रन्थियुतम् । मध्यमं चतुर्विंशति ग्रन्थियुतम् । कनिष्ठं द्वादशग्रन्थियुतम् ॥ ४५–४७ ॥ अष्टिः षोडश ॥ ४८ ॥ अद्रिनेत्रमिताभिः सप्तविंशतिसंख्याभिस्ताभिर्नवसूत्रीभिर्गुरुपवित्रं तावतीभिस्ताभिः सप्तविंशत्यैतच्छुचे-रग्नेस्तत्पवित्रं षड्विंशत्या स्वपवित्रं च कुर्यात् । तत्र ग्रन्थयः स्वेच्छया देयाः ॥ ४६–५० ॥

फिर किसी शुद्ध स्थान पर प्रसन्नता पूर्वक बैठकर १०८, या उसके आधे ५४, या उसके आधे २७ नवसूत्रिकाओं से जानुपर्यन्त, ऊरू पर्यन्त अथवा नाभि पर्यन्त प्रमाण वाली पवित्रा का निर्माण करना चाहिये ॥ ४३-४४ ॥

ये क्रमशः ज्येष्ठ, मध्यम एवं कनिष्ठ संज्ञक होती है। फिर इनमें क्रमशः ३६, २४, एवं १२ गाँठ लगाना चाहिए । एक हजार आठ से बनी नवसूत्रिका में १०८ गाँठों के द्वारा निर्मित पवित्रा को वनमाला कहते हैं ॥ ४५-४६ ॥

उक्त प्रकार से पवित्रा का निर्माण कर उनकी उनकी ग्रन्थियों को गोरोचन के शर आदि से रङ्गना चाहिए । फिर वैष्णव पटल पर उन्हें श्वेत वस्त्र से ढ़क कर स्थापित कर पुनः २७, १६, एवं १२ नवसूत्रिकाओं से आवरण पूजा के लिए अन्यान्य पवित्रियाँ बनानी चाहिए । गुरु के लिए २७ नवसूत्रिका की, अग्नि के लिए भी उतनी ही संख्या की तथा २६ नव सूत्रिकाओं को अपने लिए भी पवित्री निर्माण करनी चाहिए ॥ ४७-४६ ॥

द्वादश ग्रन्थि तिग्मांशु नवसूत्री विनिर्मितम्।
निर्मायैवं पवित्राणि कुर्यात् पूजार्थमण्डलम्॥ ५१॥
पंकजं षोडशदलं पूरयेदष्टवर्णकैः।
नीलहारिद्रशोणाह्वमाञ्जिष्ठश्वेतसंज्ञकैः ॥ ५२॥
सिन्दूरधूम्रकृष्णाख्यैस्तद् बहिर्मण्डलत्रयम्।
सूर्यसोमाग्निसंज्ञं तत्सितपीतारुणं क्रमात्॥ ५३॥
तद्बाह्याष्टदलं कुर्यादरुणं यदिवासितम्।
एवं मण्डलमालिख्य पूजयेत्कुसुमादिभिः॥ ५४॥
तस्योपरि निबध्नीयाद्वितानसमलंकृतम्।
मण्डले स्थापयेद्देवं प्रतिमां यदि वा घटम्॥ ५५॥
तत्रेष्टदेवं सम्पूज्य पायसं विनिवेदयेत्।
देवताग्रे पवित्राणां पात्रे न्यस्याधिवासयेत्॥ ५६॥

तिग्मांशुर्द्वादश ॥ ५१॥ *॥ ५२–५५॥ पात्रे देवपवित्रपात्रेणावरणपवित्रपात्रे

इन पवित्राओं में जितनी ग्रन्थि शोभा के लिए अपेक्षित हो उतनी ग्रन्थि लगानी चाहिए तथा उन्हें भी उक्त प्रकार से रङ्गना चाहिए । तदनन्तर उन्हे किसी पात्र में स्थापित कर १२ नव सूत्रिकाओं की जिसमें १२ ग्रन्थियाँ लगी हो उसकी एक अन्य गन्धपवित्रा बनानी चाहिए । इस रीति से पवित्रा निर्माण कर पूजन के लिए मण्डल बनाना चाहिए ॥ ५०-५१ ॥

अब पवित्र पूजा के लिए **मण्डल (यन्त्र) निर्माण का विधान** कहते हैं -

षोडशदल का कमल बना कर उसमें नीला, पीला, लाल, भूरा, सफेद, सिन्दूरी, धूम्रवर्ण, तथा काला रङ्ग भर देना चाहिए । उसके ऊपर क्रमशः श्वेत पीत, तथा लाल रङ्ग के सूर्य, सोम एवं अग्नि-संज्ञक तीन वृत्त निर्मित करना चाहिए । तदनन्तर उसके बाहर लाल अथवा श्वेत रङ्ग से रङ्गे हुये अष्टदल कमल का निर्माण करना चाहिए ॥ ५२-५४ ॥

पवित्र पूजन यन्त्रम्

यन्त्र पर इष्टदेव के पूजन का प्रकार कहते हैं -

उक्त प्रकार का यन्त्र निर्माण करने के पश्चात् पुष्पादि द्वारा उसका पूजन
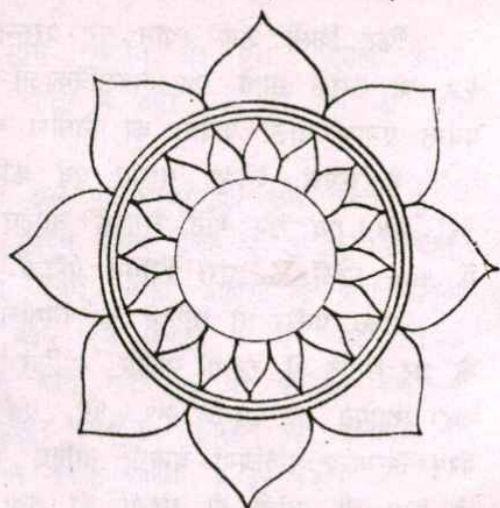
उक्तसंख्यस्य सूत्रस्यालाभे तानि यथारुचि।
ज्येष्ठादीनि पवित्राणि विदध्यात्सर्वथा सुधीः॥ ५७॥

अधिवासनकथनम्

तत्र द्वाविंशतिर्देवानाहूय प्रतिपूजयेत्।
ब्रह्मविष्णुमहेशानास्त्रिसूत्र्या देवताः स्मृताः॥ ५८॥
ओंकारचन्द्रमो वह्निब्रह्मानागशिखिध्वजाः।
सूर्यः सदाशिवो विश्वे नवसूत्र्यधिदेवताः॥ ५६॥
क्रिया च पौरुषी वीरा चतुर्थी त्वपराजिता।
विजया जयया युक्ता मुक्तिदा च सदाशिवा॥ ६०॥
मनोन्मनी तु नवमी दशमी सर्वतोमुखी।
एताः पवित्रग्रन्थीनां देवताः परिकीर्तिताः॥ ६१॥

पवित्रकेण भगवदाराधनविधिवर्णनम्

आवाहन्यादि मुद्राभिर्नवभिः साधकोत्तमः।
तदाह्वानादिकं तत्र कृत्वार्च्चेच्चन्दनादिभिः॥ ६२॥

च ॥ ५६–५७ ॥ अधिवासनमाह – **तत्रेति** ॥ ५८॥ शिखिध्वजः कार्तिकेयः । विश्वे विश्वेदेवाः ॥ ५६ ॥ * ॥ ६०–६१ ॥ आवाहनीस्थापनीसन्निधापिनीसन्निरोधिनीसम्मुखीकरणीसकलीकरण्यवगुण्ठिन्यमृतीकरणीपरमीकरण्यो नवाऽऽवाहन्यादि मुद्राः । ता उक्ताः ताभिस्तदाह्वानादिकं पवित्रदेवतानां ब्रह्मादीनां

कर उसके ऊपर सुन्दर वितान बाँध देना चाहिए । तदनन्तर उस मण्डल पर निज इष्टदेव की प्रतिमा अथवा सचित्र पट स्थापितकर फिर उसका पूजन कर खीर का नैवेद्य समर्पित करना चाहिए ॥ ५४-५६ ॥

फिर देवता के आगे पवित्रियों के दोनो पात्र रखकर अधिवासित करना चाहिए । पूर्वोक्त संख्या के सूत्र न मिलने पर जितना प्राप्त हो उसी से ज्येष्ठ आदि पवित्राओं का निर्विकल्प निर्माण कर लेना चाहिए ॥ ५६-५७ ॥

अब **पवित्री के अधिवासन का प्रकार** कहते है -

दोनों पात्रों में स्थापित पवित्राओं पर वक्ष्यमाण २२ देवताओं का आवाहन कर उनका पूजन करना चाहिए । ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश - ये तीन सूत्रीय देवता हैं । ॐकार, चन्द्रमा, अग्नि, ब्रह्मा, नाग, कार्तिकेय, सूर्य, सदाशिव एवं विश्वेश्वर - ये नव सूत्रिका के अधिदेवता है, क्रिया, पौरुषी, वीरा, अपराजिता, विजया, जया, मुक्तिदा, सदाशिवा और ९ वीं मनोन्मनी दशवीं सर्वतोमुखी - ये पवित्री के ग्रन्थियों की देवता कही गई हैं ॥ ५८-६१ ॥

एवं पवित्राण्यभ्यर्च्य दद्याद् गन्धपवित्रकम्।
तद्धूपयित्वा तारेण हृदयेनाभिमन्त्रयेत् ॥ ६३ ॥
प्रणम्य प्रार्थयेद्देवं श्लोकयुग्ममिदं पठन्।
आमन्त्रितोऽसि देवेश सार्द्धं देव्या गणेश्वरैः ॥ ६४ ॥
मन्त्रेशैर्लोकपालैश्च सहितः परिवारकैः।
आगच्छ भगवन्नीश विधि सम्पूर्तिकारक ॥ ६५ ॥
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सान्निध्यं कुरु केशव।
ततो गन्धपवित्रं तत्पादयोर्विन्यसेत्प्रभोः ॥ ६६ ॥
केशवेतिपदस्थाने कार्य ऊहोऽन्यदैवतः।
भगवत्याः पदेष्वत्र लिङ्गोहो मन्त्रवित्तमैः ॥ ६७ ॥

पदार्थानुसमयेन काण्डानुसमयेन चाऽऽवाहनादि च हुत्वा गन्धादिनाऽर्चयेत् ॥ ६२ ॥ * ॥ ६३–६६ ॥ केशवपदस्थाने ऊहः शंकरः भास्करः विघ्नराडित्यादि रूप इति । भगवत्यां पवित्रारोपणे तु तत्पदेषु लिंगोहोऽपि कार्यः । यथा – आमन्त्रितासि देवेशि आगच्छ त्वं भवानीशोविधि संपूर्तिकारिके ... सान्निध्यं कुरुपार्वतीत्यादि रीत्या लिंगपदानाम् ऊहः ॥ ६७॥ *॥ ६८ ॥

उत्तम साधक आवाहनी आदि पूर्वोक्त ९ मुद्राओं (आवहनी स्थापनी, सन्निधापनी, सन्निरोधिनी, संमुखीकरण, सकलीकरण, अवगुण्ठनी, अमृतीकरण, परमीकरण और धेनुमुद्रा । द्र० २२. ४५-५६) से आवाहनादि कर चन्दन आदि से उनका पूजन करे । इसी प्रकार पवित्राओं का गन्धादि द्वारा भी पूजन करे और उसे प्रणव से धूप दिखाकर 'नमः' से अभिमन्त्रित करना चाहिए ॥ ६२-६३ ॥

फिर इष्टदेव को प्रणाम कर **'आमन्त्रितोऽसि देवेश०** से ले कर ... **सान्निध्यं कुरु केशव** - पर्यन्त (द्र० २३. ६४-६६) दो श्लोकों को पढ़कर निज इष्टदेव की प्रार्थना करनी चाहिए ॥ ६४-६६ ॥

इसके बाद गन्ध पवित्रा को निज इष्टदेव के चरणों में चढ़ा देना चाहिए। प्रार्थना के इस श्लोक में यदि यदि इष्ट देव शंकर, गणेश, शक्ति या भास्कर हों तो उनके नामों का ऊहापोह कर सन्निविष्ट कर लेना चाहिए ॥ ६६-६७ ॥

विमर्श - पूजाविधि - सर्वप्रथम सूत्र के प्रथम द्वितीय और तृतीय धागे में निम्न मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए । यथा - ॐ ब्रह्मणे नमः प्रथमदोरके,
ॐ विष्णवे नमः द्वितीयदोरके, ॐ महेशाय नमः तृतीयदोरके ।

इसके बाद नवसूत्रिका के प्रत्येक धागे में इस रीति से पूजा करनी चाहिए । यथा - ॐकाराय नमः प्रथमसूत्रे,
ॐ चन्द्रमसे नमः द्वितीयसूत्रे, ॐ वह्नये नमः, तृतीयसूत्रे,

अधिवासं विधायेत्थं निशि जागरणं चरेत् ।
देवस्य स्तुतिनामानि वदन्गायंश्च तद्गुणान् ॥ ६८ ॥

पवित्रधारणविधिकथनम्

प्रातर्नित्यार्चनं कृत्वा मूलेनाष्टोत्तरं शतम् ।
कनिष्ठाख्यं पवित्रं तद्गृहीत्वा चाभिमन्त्रयेत् ॥ ६६ ॥
घण्टावादित्रवेदानां कारयन्घोषमुत्तमम् ।
जयशब्दांश्च देवस्य कण्ठे मूलेन चार्पयेत् ॥ ७० ॥
एवमेवार्पयेदन्यं पवित्रे मध्यमोत्तमे ।
श्वेतं रक्तं क्रमात्पीतं ध्यायेद् देवं तदर्पणे ॥ ७१ ॥

कनिष्ठपवित्रारोपणे देवे श्वेतं ध्यायेत् । मध्यमारोपणे रक्तं ज्येष्ठारोपणे पीतमिति ॥ ६६ ॥ * ॥ ७०–७१ ॥

ॐ ब्रह्मणे नम, चतुर्थसूत्रे, ॐ नागेभ्यो नमः पञ्चमसूत्रे,
ॐ कार्तिकेयाय नमः, षष्ठसूत्रे, ॐ सूर्याय नमः सप्तमसूत्रे,
ॐ सदाशिवाय नमः, अष्टमसूत्रे, ॐ विश्वेभ्यो देवभ्यो नमः, नवमसूत्रे,
इसके बाद ग्रन्थिस्थ देवताओं की निम्न मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए । यथा - ॐ क्रियायै नमः प्रथमग्रन्थौ, ॐ पौरुष्यै नमः, द्वितीयग्रन्थौ,
ॐ वीरायै नमः, तृतीयग्रन्थौ, ॐ अपराजितायै नमः, चतुर्थग्रन्थौ,
ॐ विजयायै नमः पञ्चमग्रन्थौ, ॐ जयायै नमः षष्ठग्रन्थौ,
ॐ मुक्तिदायै नमः, सप्तमग्रन्थौ, ॐ सदाशिवायै नमः अष्टमग्रन्थौ,
ॐ मनोन्मन्यै नमः नवमग्रन्थौ, ॐ सर्वतोमुख्यै नमः दशमग्रन्थौ ॥ ५८-६७॥

उक्त प्रकार से पवित्रा का अधिवासन कर निज इष्ट देवता के नाम एवं गुणादि द्वारा स्तुति कर जागरण करना चाहिए ॥ ६८ ॥

अब **पवित्रक पूजा का विधान** कहते हैं -

प्रातःकालिक नित्य पूजा करने के बाद पवित्रा को हाथ में ले कर मूल मन्त्र से एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित करना चाहिए । फिर घण्टा, वाद्य, वेद ध्वनि एवं जय-जयकार के घोषों के साथ मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये उस पूजित पवित्रा को निज इष्टदेव के कण्ठ में पहना देना चाहिए ॥ ६६-७० ॥

मध्यम एवं कनिष्ठ प्रकार की पवित्राओं के चढ़ाने की भी यही विधि है । किन्तु कुछ विशेषता इस प्रकार है - कनिष्ठ पवित्रा चढ़ाते समय श्वेत वर्ण वाले, मध्यम चढ़ाते समय रक्त वर्ण वाले तथा ज्येष्ठ पवित्रा चढ़ाते समय पीतवर्ण वाले निज इष्टदेवता का ध्यान करना चाहिए ॥ ७१ ॥

वनमालापवित्रं तु तावन्मूलेन मन्त्रितम् ।
अर्पयेदिष्टदेवस्य मुकुटे मूलमुच्चरन् ॥ ७२ ॥
ततः सुवर्णकुसुमैः पुष्पैः शतमितैः सह ।
मूलाभिमन्त्रितं देवमूर्ध्नि मूलेन चार्पयेत् ॥ ७३ ॥
हृदान्यपटलस्थानि पवित्राण्यभिमन्त्र्य च ।
तत्तन्नाम्ना नमोन्तेन परिवारान् सुरान् यजेत् ॥ ७४ ॥
एवं पवित्रैः सम्पूज्य धूपादीनि प्रकल्पयेत् ।
पावके देवमावाह्य नित्यहोमं विधाय च ॥ ७५ ॥
मूलेनाग्निपवित्रं तदर्पयेद्देवतां स्मरन् ।
मूर्तौ देवं समुद्वास्य वह्निं संयोज्य चात्मनि ॥ ७६ ॥
पुष्पाञ्जलिं विधायेशे कर्मान्ते विनिवेदयेत् ।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं कृपानिधे ॥ ७७ ॥
पूजनं पूर्णतामेतु पवित्रेणार्पितेन ते ।
इति सम्प्रार्थ्य देवेशं योजयेद्धृदये निजे ॥ ७८ ॥
गुर्वन्तिकं ततो गत्वा दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं गुरौ ।
स्वाङ्गे षडङ्गं विन्यस्य गुरुदेहेपि विन्यसेत् ॥ ७९ ॥

तावदष्टोत्तरशतम् ॥ ७२ ॥ * ॥ ७३–८१ ॥

वनमाला संज्ञक पवित्रा को मूल मन्त्र से एक सौ आठ बार अभिमन्त्रित कर मूलमन्त्र से इष्टदेव के मुकुट पर उसे समर्पित करना चाहिए । तदनन्तर मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित अमलतास के १०० पुष्पों को मूलमन्त्र से देवता के मस्तक पर चढ़ाना चाहिए ॥ ७२-७३ ॥

पटल पर विद्यमान् पवित्राओं को 'नमः' मन्त्र से अभिमन्त्रित् करे, तथा उसे आवरण देवताओं के चतुर्थ्यन्त नामों के साथ 'नमः' लगाकर निष्पन्न मन्त्रों से आवरण देवताओं पर चढ़ाना चाहिए ॥ ७४ ॥

इस प्रकार पवित्राओं से देव पूजन कर धूप, दीप, नैवेद्य आदि से उनका पूजन करना चाहिए । तदनन्तर अग्नि में निज इष्टदेव का आवाहन कर नित्य होम संपादन कर देवस्मरण करते हुये मूलमन्त्र से उनको अग्निपवित्रा चढ़ानी चाहिए ॥ ७५-७६ ॥

उसकी **पूजा विधि** इस प्रकार है -

मूर्तिस्थ देवता में अपनी आत्मा को अग्नि से संयुक्त कर इष्टदेव को पुष्पाञ्जलि देकर कर्म की समाप्ति करे । **'मन्त्रहीनं ... पवित्रेणार्पितेन ते** (द्र० २३. ७७-७८) पर्यन्त श्लोक का उच्चारण कर इष्टदेव की प्रार्थना करनी चाहिए, और उन्हे अपने हृदय में स्थापित करना चाहिए ॥ ७६-७८ ॥

पवित्रार्पणकालनिर्णयः

पाद्यं दत्त्वा तथैवार्घ्यं वस्त्रालंकारचन्दनम् ।
पुष्पैः सम्पूज्य मूलेन पवित्रं तद्गलेऽर्पयेत् ॥ ८० ॥
स्वशक्त्या दक्षिणां दत्त्वा दण्डवत्प्रणमेद् गुरुम् ।
अन्येभ्यः शिष्टवृद्धेभ्यः पवित्राणि ददीत च ॥ ८१ ॥
सर्वथैव गुरोः पूजा कर्तव्या मन्त्रिणा सदा ।
अपूजिते गुरौ सर्वा पूजा भवति निष्फला ॥ ८२ ॥
गुरोरभावे तत्पुत्रं तदभावे तदात्मजम् ।
दौहित्रं तदभावेन्यं पूजयेद् गुरुगोत्रजम् ॥ ८३ ॥
ततो धृत्वा पवित्रं स्वं भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ।
भुञ्जीत तदनुज्ञातो बन्धुभिस्तनयैः सह ॥ ८४ ॥
यथाकथञ्चित्कुर्वीत पवित्राणि सुरार्चने ।
विधेरुक्तस्य चाशक्त्या पूजासम्पूर्तिहेतवे ॥ ८५ ॥

सर्वथा गुरुवंशाभावे कञ्चिच्छिष्टं संपूज्य तस्य पवित्रं समर्प्य दक्षिणां च दत्त्वा पवित्रपूजा पूर्णास्त्विति तद्वचनं प्रार्थयेत् ॥ ८२–८५ ॥

इसके बाद निज गुरुदेव के पास जा कर उन्हें पुष्पाञ्जलि निवेदति कर अपने अङ्गों में षडङ्गन्यास कर पश्चात गुरुदेव के शरीर में षडङ्गन्यास करना चाहिए ॥ ८३॥

फिर. उन्हें पाद्य और अर्घ्य देकर मूल मन्त्र से वस्त्र, अलंकार, चन्दन एवं पुष्पों से उनका पूजन कर उनके कण्ठ में पवित्रा पहना देनी चाहिए । अपनी शक्ति के अनुसार गुरु को दक्षिणा देकर दण्डवत् प्रणाम करना चाहिए ॥ ८०-८१ ॥

इसी प्रकार अपने संप्रदाय के अन्य विशिष्ट एवं वयोवृद्ध लोगों के भी गले में पवित्रा पहना देनी चाहिए । साधक को सदैव अपने गुरु का पूजन करना चाहिए । ऐसा न करने पर सारी पूजा निष्फल हो जाती है ॥ ८१-८२ ॥

गुरु के अभाव में उनके पुत्र की, उनके भी न होने पर पौत्र की, उसके भी अभाव में उनके दौहित्र की तथा उसके भी न होने पर गुरु के कुटुम्ब एवं गोत्र के व्यक्तियों की पूजा करनी चाहिए ॥ ८३ ॥

इतना कर लेने के पश्चात् स्वयं पवित्रा धारण कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन करा कर उनकी आज्ञा से अपने बन्धुओं तथा पुत्रों के साथ स्वयं भोजन करे ॥ ८४ ॥

उक्त विधि से पवित्रार्पण करने में असमर्थ व्यक्ति वार्षिक पूजा की पूर्ति हेतु जिस किसी भी तरह पवित्राओं से इष्टदेव का अर्चन करे । यदि पूर्वोक्त

यस्यां कस्यां तिथौ कुर्यात् तिथावुक्ते कृतं न चेत् ।
सर्वथा श्रावणे चैव पवित्रं तु निवेदयेत् ॥ ८६ ॥
प्रत्यब्दं यः पवित्रेण पूजां कुर्वीत दैवते ।
ऐश्वर्यारोग्यसंयुक्तो नैकवर्षाणि जीवति ॥ ८७ ॥
सम्पूर्णहायनं पूजा देवतानां कृता तु या ।
सर्वा सम्पूर्णतामेति पवित्रदमनार्पणात् ॥ ८८ ॥

देवोत्सवविशेषमासकालकथनम्

अन्येष्वप्युपरागार्द्धोदयसौम्यायनादिषु ।
कुर्यादलभ्ययोगेषु विशेषाद् देवतार्च्चनम् ॥ ८६ ॥
यथायथेष्ट देवेषु नृणां भक्तिः समेधते ।
प्राप्यते तदयत्नेन मनोभीष्टं तथा तथा ॥ ६० ॥
शुचौ तत्तदहे कुर्याद् देव प्रस्थापनोत्सवम् ।
ऊर्जे तथैव देवानामुत्थापनविधिं सुधीः ॥ ६१ ॥

यस्यामिति । उक्ततिथौ करणासंभवे सर्वथा श्रावणे पवित्रपूजा चैत्रे दमनार्चा च नित्यत्वेनावश्यं कार्येत्यर्थः ॥ ८६ ॥ * ॥ ८७–८८ ॥ **अन्येष्वप्युपेति**। उपरागश्चन्द्रसूर्यग्रहणम् । अर्धोदयलक्षणं तु – 'अमार्कपात श्रमणयुक्ता वेत्पौषमाघयोः । अर्धोदयः सविज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः' इति । सौम्यायनं मकरसंक्रान्तिः । आदिशब्दाद्युगादयो मन्वादयः श्रवणद्वादशीप्रमुखा ग्राह्याः । तत्रेष्टदेव महोत्सवो महापूजा च विधेया ॥ ८६॥ तत्र हेतुमाह – **यथेति** ॥ ६० ॥

निर्धारित तिथि में पवित्रा पूजा न की जा सके तो जिस किसी भी उत्तम तिथि में पवित्रार्पण कर देना चाहिए । किन्तु श्रावण मास में तो निश्चित रूप से ही पवित्र्रापण करना ही चाहिए ॥ ८५-८६ ॥

जो व्यक्ति इस प्रकार प्रति वर्ष पवित्राओं से देव-पूजन करता है, वह आरोग्य एवं ऐश्वर्य के साथ अनेक वर्षो तक जीवित रहता है । देवता की पूरे वर्ष की पूजा पवित्रा एवं दमनक के चढ़ाने से पूर्ण हो जाती है ॥ ८७-८८ ॥

अब **इष्टदेव के महोत्सव का काल** कहते हैं - सूर्य एवं चन्द्रमा का ग्रहण पूष और माघ के महीनों में जब रविवार को अमावस्या तिथि को हो उस अर्धादय काल में, मकर संक्रान्ति में तथा अन्य अलभ्य योगों, युगादि एवं मन्वादि तिथियों से विशेष रूप से अपने इष्टदेव का महोत्सव करना चाहिए ॥ ८६ ॥

जिस जिस क्रम से अपने इष्टदेव में मनुष्यों की भक्ति बढ़ती है उसी उसी क्रम से अनायास उनके मनोरथ भी सफल होते हैं ॥ ६० ॥

माघकृष्णचतुर्दश्यां विशेषाच्छिवपूजनम्।
आश्विनाद्य नवाहेषु दुर्गापूज्या यथाविधि ॥ ६२ ॥
गोपालं पूजयेद्विद्वान्नभः कृष्णाष्टमीदिने।
रामं चैत्रसिते पक्षे नवम्यामर्चयेत् सुधीः ॥ ६३ ॥
वैशाखाद्य चतुर्दश्यां नरसिंह प्रपूजयेत्।
यजेच्छुक्लचतुर्थ्यां तु गणेशं भाद्रमाघयोः ॥ ६४ ॥
महालक्ष्मीं यजेद्विद्वान् भाद्रकृष्णाष्टमीदिने।
माघस्य शुक्लसप्तम्यां विशेषाद्दिननायकम् ॥ ६५ ॥
या काचित्सप्तमी शुक्ला रविवारयुता यदि।
तस्यां दिनेशं सम्पूज्य दद्यादर्घ्यं पुरोदितम् ॥ ६६ ॥
तत्तत्कल्पोदितानन्यान् देवताप्रीतिवर्द्धनान्।
विशेषनियमाञ् ज्ञात्वा भजेद्देवमनन्यधीः ॥ ६७ ॥

शुचावाषाढे तत्तदहे चतुर्थ्यादौ गणेशादीनाम् । ऊर्जे कार्तिके ॥ ६१ ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रौ शिवपूजाप्रकारः शिवागमाद् बोध्यः । नवरात्रे दुर्गार्चनविधिरपि तदागमादेव शुक्लपक्षादिमासाभिप्रायेण एवमग्रेऽपि । ग्रन्थगौरवभयात्तन्नोच्यते ॥ ६२ ॥ * ॥ ६३–६७ ॥

विद्वान् को आषाढ़ में तत्तद्देवताओं की शयन तिथियों में उन-उन देवताओं का शयनोत्सव तथा कार्तिक की उन-उन तिथियों में देवोत्थान का महोत्सव मनाना चाहिए ॥ ६१ ॥

माघ कृष्णा चतुर्दशी (अमान्त मास के गणनानुसार) शिव रात्रि को विशेषरूप से **भगवान् सदाशिव** का पूजन करना चाहिए । आश्विन मास के प्रारम्भिक ९ दिनों (नवरात्रों) में **भगवती दुर्गा** का विधिवत् पूजन करना चाहिए ॥ ६२ ॥

श्रावण कृष्णाष्टमी (जन्माष्टमी) के दिन विद्वान् को **श्रीगोपाल** का पूजन करना चाहिए । चैत्र शुक्ला नवमी को **श्रीराम** का पूजन करना चाहिए ॥ ६३ ॥

वैशाख कृष्णा चतुर्दशी (नृसिंह चतुर्दशी) को **श्रीनृसिंह का**, भाद्र शुक्ल चतुर्थी (गणेश चतुर्थी) तथा माघ शुक्ल चतुर्थी को **गणपति** का, भाद्र कृष्ण अष्टमी के दिन विद्वान् व्यक्ति को **महालक्ष्मी** का पूजन करना चाहिए । इसी प्रकार माघ शुक्ल सप्तमी को विशेष रूप से **सूर्य** का पूजन करना चाहिए । शुक्लपक्ष की जिस किसी महीने की सप्तमी को रविवार का दिन हो तो उस दिन भी **भगवान् भास्कर** को पूर्वोक्त रीति से अर्घ्य दान देना चाहिए ॥ ६४-६६ ॥

देवताओं में उपासना सम्बन्धी प्रीति बढ़ाने वाले अन्यान्य कल्प भी तत्तद् ग्रन्थों में प्रतिपादित है । अतः साधकों को उन-उन नियमों को जान कर अनन्य

आषाढीकार्तिकीमध्ये किञ्चिन्नियममाचरेत् ।
देवसम्प्रीतये विद्वान् जपपूजादितत्परः ॥ ९८ ॥
एवं यो भजते विष्णुं रुद्रं दुर्गां गणाधिपम् ।
भास्करं श्रद्धया नित्यं स कदाचिन्न सीदति ॥ ९९ ॥
स धर्ममाचरन्नित्यं देवपूजापरायणः ।
जितेन्द्रियोऽखिलान् भोगान् प्राप्येहानन्ततां व्रजेत् ॥ १०० ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचिते मन्त्रमहोदधौ दमन–पवित्रार्चन–
निरूपणं नाम त्रयोविंशस्तरंगः ॥ २३ ॥

आषाढीति । चातुर्मास्येऽवश्यं तत्तद्देशलभ्य स्वेष्टं किञ्चिद्वस्तु वर्जयेत् । 'यो विना नियमं मर्त्यो व्रतं वा जाप्यमेव वा ।
चातुर्मास्यं नयेन्मूढो जीवन्नपि मृतो हि सः' ॥
इत्यादि निन्दाश्रवणात् ॥ ९८–१०० ॥

॥ इति श्रीमन्महीधरविरचितायां मन्त्रमहोदधिव्याख्यायां नौकायां दमन
पवित्रार्चननि रूपणं नामत्रयोविंशस्तरंगः ॥ २३ ॥

भक्ति से उनकी उपासना करनी चाहिए ॥ ९७ ॥

आषाढ़ की पूर्णिमा से लेकर कार्तिक मास की पूर्णिमा पर्यन्त अर्थात् चातुर्मास्य में किसी विशेष नियम का पालन करना चाहिए । उस समय विद्वान् साधक जप और पूजा में तत्पर रह कर अपने इष्टदेव को प्रसन्न करे ॥ ९८ ॥

इस रीति से जो मनुष्य भगवान् विष्णु, रुद्र, दुर्गा, गणेश अथवा सूर्यदेव की श्रद्धापूर्वक सदैव उपासना करता है वह कभी भी दुःखी नहीं रहता ॥ ९९ ॥

धर्माचरण करने वाला और देवपूजा में परायण रहने वाला तथा जितेन्द्रिय व्यक्ति इस लोक में समस्त भोगों को प्राप्त कर अन्त में अनन्त में लीन हो जाता है ॥ १०० ॥

॥ इस प्रकार श्रीमन्महीधर विरचित मन्त्रमहोदधि के तेइसवें तरङ्ग की महाकवि
पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय
कृत 'अरित्र' नामक हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशः तरङ्गः

साधकानां शीघ्र सिद्ध्यै मन्त्रशुद्धिमथो ब्रुवे ।

मन्त्रशुद्धिप्रकरणम्

साधकस्य तु नामादिवर्णमारभ्य शोधयेत् ॥ १ ॥
मन्त्राद्यक्षरपर्यन्तं चक्रे सिद्धादिके क्रमात् ।
जन्मर्क्षोत्थं प्रसिद्धं वा नामग्राह्यं विशोधने ॥ २ ॥

सिद्धादिचक्रकथनम्

ऊर्ध्वगाः पञ्चरेखाः स्युः पञ्चतिर्यग्गताः पुनः ।
कोष्ठानि तत्र जायन्ते षोडशैवात्र संलिखेत् ॥ ३ ॥
भूरामशिवनन्दाक्षिवेदार्कदिग्रसाष्टभिः ।
कलामनुशरैरद्रितिथिविश्वैर्मितेषु च ॥ ४ ॥

* नौका *

मन्त्रशुद्धिं वक्तुमाह – **साधकानामिति** ॥ १–२ ॥ अकथहचक्रमाह – **ऊर्ध्वगा** इति । षोडशकोष्ठान् विधाय तत्रैकत्र्येकादश नवद्विचतुर्द्वादश दशषडष्टषोडशचतुर्दश–पञ्चसप्तपञ्चदशत्रयोदशेषु कोष्ठेषु क्रमादकारादिवर्णान् पुनः पुनर्विलिख्य कोष्ठचतुष्के सिद्धसाध्यादि विचिन्त्य पुनश्चतुष्के सिद्धादिगणनं

* अरित्र *

इसके बाद अब साधकों को शीघ्र सिद्धि की प्राप्ति के लिए **मन्त्र शोधन का प्रकार** कहता हूँ -

पूर्वोक्त सिद्धादि चक्रों में साधक को अपने नाम के प्रथमाक्षर से मन्त्र के प्रथमाक्षर पर्यन्त गणना कर साधन में प्रवृत्त होना चाहिए । मन्त्र शोधन की प्रक्रिया में जन्म नक्षत्र के अनुसार नाम अथवा प्रसिद्ध नाम ग्राह्य होता है ॥ १-२ ॥

अब उसके लिए **अकथह नामक चक्र** कहते हैं -

५ ऊर्ध्वाधर और फिर ५ तिर्यक् रेखा खींचने से १६ कोष्ठक बनते हैं । फिर इनमें १, ३, ११, ९, २, ४, १२, १०, ६, ८, १६, १४, ५, ७, १५, तथा १३,

कोष्ठेषु मातृकावर्णांस्तत्र नामादितः क्रमात् ।
सिद्धः साध्यः सुसिद्धोरिर्ज्ञेयो मन्वक्षरावधि ॥ ५ ॥
यस्मिंश्चतुष्के नामार्णस्तत्स्यात्सिद्धचतुष्टयम् ।
प्रादक्षिण्याद् द्वितीयं स्यात्साध्याख्यं तत्तृतीयकम् ॥ ६ ॥
सुसिद्धाख्यं चतुर्थं तु सपत्नाख्यं स्मृतं बुधैः ।
एककोष्ठे द्वयोर्वर्णः सिद्धसिद्धः प्रकीर्तितः ॥ ७ ॥
तद् द्वितीये मन्त्रवर्णे सिद्धसाध्य उदाहृतः ।
तृतीये सिद्धसुसिद्धः सिद्धारिः स्याच्चतुर्थके ॥ ८ ॥
नामादियुक्चतुः कोष्ठान् मन्वर्णश्चेद् द्वितीयके ।
चतुष्के तत्र पूर्वं तु यत्र नामाक्षरं स्थितम् ॥ ९ ॥
तत्र तत्कोष्ठमारभ्य गणयेत्पूर्ववत्क्रमात् ।
साध्यसिद्धः साध्यसाध्यस्तत्सुसिद्धश्च तद्रिपुः ॥ १० ॥

कार्यम् । तत्र प्रथमचतुष्के यस्यां विदिशि नामार्ण द्वितीयादिचतुष्केषु तद्विदिशमारभ्य सिद्धादि गणयेत् । एवंगणने (i) – १. सिद्धसिद्धः, २. सिद्धसाध्यः, ३. सिद्धसुसिद्धः, ४. सिद्धारिः ॥ ३–९ ॥ (ii) ५. साध्यसिद्धः, ६. साध्यसाध्यः, ७. साध्यसुसिद्धः, ८. साध्यारिः ॥ १० ॥

संख्या वाले कोष्ठक में क्रमशः समस्त मातृका वर्णों को भर देना चाहिए ॥ ३-५ ॥

इस चक्र में नाम के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर पर्यन्त क्रमशः सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और अरि नामक योग जानना चाहिए ॥ ५ ॥

जिन चार कोष्ठकों में साधक के नाम का प्रथम अक्षर हो उन्हें **सिद्धचतुष्टय**, फिर प्रदक्षिण क्रम से उस नाम के अगले वाले द्वितीय चार कोष्ठकों को **साध्यचतुष्टय**, उसके आगे वाले तृतीय चार कोष्ठकों को **सुसिद्धचतुष्टय**, तदनन्तर अन्तिम चार कोष्ठकों को विद्वान् **शत्रुचतुष्टय** नामक कोष्ठ कहते हैं ॥ ६-७ ॥

(i) साधक एवं मन्त्र इन दोनों के नाम का प्रथमाक्षर यदि एक ही कोष्ठक में हो तो **सिद्धसिद्ध योग** कहलाता है । साधक के नाम के प्रथमाक्षर वाले कोष्ठक से दूसरे कोष्ठक में मन्त्राक्षर पड़ने पर **सिद्ध साध्य**, उससे तीसरे कोष्ठक में होने पर **सिद्धसुसिद्ध** तथा उससे चौथे कोष्ठक में मन्त्राद्याक्षर होने पर **सिद्धारि** योग कहा जाता है ॥ ७-८ ॥

नाम के अक्षर वाले ४ कोष्ठकों से अग्रिम ४ कोष्ठक पर्यन्त मन्त्र का प्रथमाक्षर हो तो जिस कोष्ठक में नामाक्षर हो उसकी पंक्ति वाले कोष्ठक से प्रारम्भ कर पूर्ववत् गणना करनी चाहिए ॥ ९-१० ॥

(ii) प्रथम कोष्ठक में मन्त्राक्षर होने पर **साध्यसिद्ध**, द्वितीय कोष्ठक में

एवं ज्ञेयस्तृतीये चेच्चतुष्के मन्त्रवर्णकाः।
तदा पूर्वोक्तया रीत्या क्रमाज्ज्ञेया विचक्षणैः॥ ११॥
सुसिद्धसिद्धस्तत्साध्यस्तत्सुसिद्धश्च तद्रिपुः।
चतुर्थे तु चतुष्के स्यादरिसिद्धारिसाध्यकः॥ १२॥
तत्सुसिद्धोर्यरिः पश्चादेवं मन्त्रं विचारयेत्।

सिद्धादिकोष्ठफलकथनम्

सिद्धसिद्धो यथोक्तेन द्विगुणात्सिद्धसाध्यकः॥ १३॥
सिद्धसिद्धोर्द्धजपात्सिद्धारिर्हन्ति बान्धवान्।
साध्यसिद्धो द्विगुणितः साध्यसाध्यो निरर्थकः॥ १४॥
द्विगुणाज्जपात्सुसिद्धः साध्यारिर्हन्ति गोत्रजान्।
सुसिद्धसिद्धोर्द्धजपात्तत्साध्यो द्विगुणाज्जपात्॥ १५॥

(iii) ९. सुसिद्धसिद्धः, १०. सुसिद्धसाध्यः, ११. सुसिद्धसुसिद्धः, १२. सुसिद्धारिः, (iv) १३. अरिसिद्धः, १४. अरिसाध्यः, १५. अरिसुसिद्धः, १६. अर्यरिः, इति षोडशभेदा भवन्ति ॥ ११–१३ ॥ तेषां फलमाह – **सिद्धसिद्धो यथोक्तेनेत्यादि** । यथोक्तेन कल्पोक्तेन जपादिना सिद्धो भवतीत्यर्थः ॥ १३–१४ ॥ द्विगुणात्कल्पोक्त द्वैगुण्यात्तत्सुसिद्धः साध्यसुसिद्धः ॥ १५–१६ ॥

होने पर **साध्यसाध्य**, तृतीय में होने पर **साध्यसुसिद्ध** और चतुर्थ कोष्ठक में मन्त्राक्षर होने पर उस मन्त्र को **साध्यशत्रु** जानना चाहिए । इसी प्रकार यदि तीसरे और चौथे कोष्ठकों में मन्त्राद्याक्षर पड़े तो पूर्वोक्त विधि से ही विद्वानों को गणना कर विचार करना चाहिए ॥ १०-११ ॥

(iii) तीसरे चारों कोष्ठकों में मन्त्राद्याक्षर होने पर क्रमशः सुसिद्धसिद्ध, सुसिद्धसाध्य, सुसिद्धसुसिद्ध तथा सुसिद्ध शत्रु योग कहा जाता है । (iv) इसी प्रकार चौथे चारों कोष्ठों में मन्त्राद्याक्षर होने पर वही क्रमशः अरिसिद्ध, अरिसाध्य, अरिसुसिद्ध एवं अरि-अरि योग होता है ॥ १२ ॥

चारों प्रकार के योंगों के फल - (i) इसके पश्चात् मन्त्र सिद्धि के विषय में इस प्रकार विचार करना चाहिए । सिद्धसिद्ध मन्त्र यथोक्त काल में, सिद्धसाध्य मन्त्र उससे दूने काल में, सिद्धसुसिद्ध मन्त्र निर्धारित संख्या से आधे जप करने पर सिद्ध हो जाता है । किन्तु सिद्धारि योग साधक के समस्त बन्धु बान्धवों का विनाश कर देता है ॥ १३-१४ ॥

(ii) साध्यसिद्ध मन्त्र दूना जप करने पर सिद्ध हो जाता है । साध्यसाध्य निरर्थक होता है । साध्यसुसिद्ध भी दूने जप से सिद्ध होता है ।

तत्सुसिद्धग्रहादेव सुसिद्धारिः कुटुम्बहा ।
अरिसिद्धः सुतं हन्यादरिसाध्यस्तु कन्यकाम् ॥ १६ ॥
तत्सुसिद्धस्तु पत्नीघ्नस्तदरिः साधकापहः ।

प्रकारान्तरेण सिद्धादिशोधनकथनम्

नाम्नो मन्त्रस्य वर्णांश्च लिखित्वा प्रतिवर्णकम् ॥ १७ ॥
सिद्धादिगणनाकार्या यावन्मन्त्रसमापनम् ।
नाम्नो यदि समाप्तिः स्यात्पुनर्नाम लिखेत्सुधीः ॥ १८ ॥

प्रकारान्तरेण सिद्धादिशोधनमाह – **नाम्न** इति ॥ १७ ॥ * ॥ १८ ॥

किन्तु साध्यारि मन्त्र योग साधक के अपने समस्त गोत्रों का विनाश करने वाला होता है ॥ १४-१५ ॥

(iii) सुसिद्धसिद्ध आधे जप से, सुसिद्ध साध्य दूने जप से, सुसिद्ध एवं सुसिद्ध मन्त्र साधक के दीक्षाग्रहण मात्र से सिद्ध हो जाता है किन्तु सुसिद्धारि मन्त्र साधक के समस्त कुटुम्बियों का विनाशक होता है ॥ १५-१६ ॥

(iv) अरिसिद्ध मन्त्र पुत्र का, अरिसाध्य कन्या का, अरिसुसिद्ध पत्नी को तथा अरि-अरि मन्त्र का योग साधक का ही विनाश कर देता है ॥ १६-१७ ॥

विमर्श – उदाहरणतः यदि देवदत्त को 'ऐं' आद्याक्षर वाले किसी मन्त्र को ग्रहण करना है। उक्त कोष्ठ में देवदत्त नाम का प्रथम अक्षर द ३ संख्या के कोष्ठक में तथा मन्त्र का आद्य अक्षर ऐं १४ संख्या के कोष्ठक में पड़ता है जो गणना करने पर सुसिद्ध चतुष्टय के चतुर्थ कोष्ठक में पड़ने से सुसिद्धारि योग है, अतः त्याज्य है ॥ १७ ॥

अकथह चक्रम्

अ क १ थ ह	उ ङ प २	आ ख ३ द क्ष	ऊ च फ ४
ओ ड ब ५	लृ झ म ६	औ ढ श ७	लॄ ञ य ८
ई घ न ९ ज्ञ	ॠ ज भ १०	इ ग ध ११ त्र	ऋ छ व १२
अः त स १३	ऐ ठ ल १४	अं ण ष १५	ए ट र १६

अब **अकथह चक्र में ही सिद्धादिशोधन की दूसरी विधि** कहते हैं –

साधक का नाम तथा गृह्यमाण मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिख कर जब तक मन्त्र समाप्त न हो सिद्धादि गणना करनी चाहिए । यदि मन्त्राक्षरों के पहले नाम के वर्ण समाप्त हो जाँय तो पुनः मन्त्र पर्यन्त नाम लिख लेना चाहिए ॥ १७-१८ ॥

एवं संशोधितेषु स्युर्भूरि वै साध्यवैरिणः ।
अल्पाः सिद्धसुसिद्धाश्चेदशुभं व्युत्क्रमाच्छुभम् ॥ १९ ॥
मतमित्थं तु केषाञ्चित्तदपि प्राज्ञसम्मतम् ।
अथवान्यप्रकारेण सिद्धादीनां विशोधनम् ॥ २० ॥

अकडमचक्रकथनम्

द्वादशारे लिखेच्चक्रे वर्णान्पूर्वोदितान्क्रमात् ।
ईशानान्तमकाराद्यान्हान्तान् षण्ढविवर्जितान् ॥ २१ ॥

व्युत्क्रमात् सिद्धसुसिद्धानां बहुत्वे साध्यारीणामल्पत्वे शुभमित्यर्थः ॥ १९ ॥ इदं मतं प्राज्ञसम्मतं शिष्टसम्मतम् ॥ २० ॥ अकडमचक्रमाह – **द्वादशार** इति । षण्ढा ऋ ॠ लृ ॡ इति तान् ॥ २१–२२ ॥

इस प्रकार संशोधन करने पर साध्य एवं शत्रु अधिक हो तथा सिद्ध एवं सुसिद्ध कम हो तो साधक के लिए मन्त्र अशुभ होता है । इसके विपरीत यदि सिद्ध एवं सुसिद्ध अधिक हो तथा साध्य एवं अरि कम हो तो वह मन्त्र शुभावह होता है ऐसा कुछ तत्त्वविदों का मत है । प्राचीन तन्त्र के आचार्यों ने इसे स्वीकार भी किया है ॥ १९-२० ॥

विमर्श - उदाहरणतः यदि साधक देवदत्त गणेश के 'वक्रतुण्डाय हुम्' इस मन्त्र को ग्रहण करना चाहता है तो देवदत्त के नाम के अक्षर - द व द त त, तथा मन्त्र के अक्षर - व क र त ड य ह - हुए । यहाँ साधक नाम के प्रथम अक्षर 'द' ३ कोष्ठक में है उससे मन्त्र का प्रथम अक्षर 'व' १२वाँ होने के कारण अरि है।

इसी प्रकार साधक नाम के दूसरे अक्षर 'व' से मन्त्र का दूसरा अक्षर 'क' सिद्ध है । तीसरे अक्षर 'द' से मन्त्र का तीसरा अक्षर 'र' साध्य है । चौथे वर्ण 'त' से मन्त्र का चौथा अक्षर 'त' सिद्ध है, तथा पाँचवें वर्ण 'त' से 'ड' सुसिद्ध है । पुनः 'द' से 'य' सिद्ध तथा 'व' से 'ह' भी सिद्ध है ।

इस प्रकार नाम एवं मन्त्र के वर्णों से विचार करने पर साध्य एवं अरि की संख्या दो तथा सिद्ध एवं सुसिद्धों की संख्या ५ (अर्थात् ३ अधिक) होने से उक्त मन्त्र देवदत्त के लिए शुभदायक होगा ॥ १७-२० ॥

अब **अकडम चक्र** कहते हैं - अकडम अथवा अन्य प्रकार से भी सिद्धादिकों के शोधन का विधान है ।

द्वादश दल चक्र में ऋ ॠ लृ ॡ इन नपुंसक स्वरों को छोड़कर अकार से हकार पर्यन्त मातृका वर्णों को पूर्वोक्त विधि से प्रदक्षिण क्रम से (द्र० २४. ४-५) लिखना चाहिए ॥ २१ ॥

तत्र नामार्णमारभ्य मन्त्राद्यर्णावधि क्रमात् ।
गणयेत्सिद्धसाध्यादि फलं तेषां विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥
सिद्धः सिध्यति कालेन साध्यस्तु जपहोमतः ।
सुसिद्धः प्राप्तिमात्रेण साधकं भक्षयेदरिः ॥ २३ ॥
सिद्धो नवैकबाणेषु साध्यो रसदिशाक्षिषु ।
सुसिद्धस्त्रिमुनीशेषु रिपुर्वेदाष्टभानुषु ॥ २४ ॥
अन्योऽपीह प्रकारोऽस्ति सिद्धसाध्यादिशोधने ।
चतुःकोष्ठेषु विलिखेदादिवर्णान् पुनः पुनः ॥ २५ ॥
नामार्णात्सिद्धसाध्यादि ज्ञेयं मन्वक्षरावधि ।
चतुर्थोऽपि प्रकारोऽस्ति सिद्धादीनां विशोधने ॥ २६ ॥

जपहोमतः जपहोमाधिक्येन ॥ २३ ॥ स्पष्टार्थमाह – **सिद्धो नवैकादश–बाणेष्विति** ॥ २४–२६ ॥

अकडमचक्रम्

इस चक्र के नाम के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर तक सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और अरि इस क्रम से गणना करनी चाहिए तथा उसका फल इस प्रकार कहना चाहिए - सिद्ध मन्त्र निर्धारित काल में, साध्य मन्त्र अधिक जप एवं होम करने से तथा सुसिद्ध मन्त्र दीक्षा मात्र से सिद्ध हो जाता है । किन्तु अरि मन्त्र साधक को खा जाता है ।
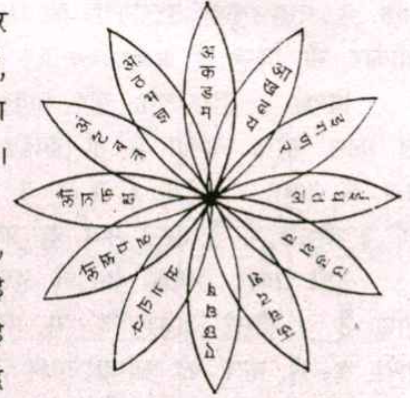
नाम के प्रथमाक्षर वाले कोष्ठ से १, ५, ९, कोष्ठक में पड़ने वाला मन्त्राद्याक्षर सिद्ध है २, ६, १०वें कोष्ठक में पड़ने वाला साध्य है ३, ७, ११वें कोष्ठक में पड़ने वाला सुसिद्ध तथा ४, ८, १२वें कोष्ठक में पड़ने वाला मन्त्राद्याक्षर अरि होता है ॥ २२-२४ ॥

विमर्श - उदाहरणतः देवदत्त नामक साधक को यदि आदि में एकार वर्ण वाले किसी मन्त्र की दीक्षा लेनी है, तो उक्त चक्र में देवदत्त के नाम के प्रथम अक्षर 'द' से मन्त्राक्षर 'ऐं' तीसरे स्थान में पड़ता है इसलिए देवदत्त के लिए यह मन्त्र सुसिद्ध कोटि में आ गया, अतः ग्राह्य है ॥ २०-२४ ॥

अब **सिद्धादिशोधन की तीसरी विधि** कहते है -

सिद्धादिशोधन का एक और भी प्रकार है - चार कोष्ठकों में अकारादि वर्णों को बराबर लिख लेना चाहिए । फिर नाम के प्रथमाक्षर से मन्त्र के प्रथमाक्षर तक सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और अरि योगों की गणना करनी चाहिए ॥ २५-२६ ॥

प्रकारान्तरकथनम्

नाम्नो मन्त्रस्य वर्णौघं चतुर्भिर्विभजेत् सुधीः।
एकादिशेषे सिद्धादिक्रमाज्ज्ञेयं विचक्षणैः॥ २७॥
सिद्धादिशोधनं प्रोक्तमथ वच्मि भशोधनम्।

नक्षत्रेषु वर्णविभागकथनम्

नेत्रभूगुणवेदक्ष्माधरानयनभूभुजाः ॥ २८॥

प्रकारान्तरमाह – **नाम्न** इति । नाममन्त्रयोर्वर्णानेकीकृत्य चतुर्भक्ते एकशेषो सिद्धः द्विशेषे साध्यः त्रिशेषे सुसिद्धः शून्येऽरिरिति फलं पूर्वोक्तम् ॥ २७ ॥ भशोधनं नक्षत्रशोधनम् । तत्र नक्षत्रेषु वर्णविभागमाह – **नेत्रेति** ॥ २८ ॥ उडुषु नक्षत्रेषु ॥ २६ ॥ पौष्णभागे रेवत्यंशे ॥ ३०–३२ ॥

साध्यारिशोधने तृतीय चक्रम्

अ उ लृ ओ क ङ झ ड थ प म व ह	आ ऊ लॄ औ ख च ञ ढ द फ य श ळ
ई ॠ ऐ अः घ ज ठ त न भ ल स ज्ञः	इ ऋ ए अं ग छ ट ण ध ब र ष क्षः

विमर्श - पूर्वोक्त उदाहरण के अनुसार देवदत्त को एकारादि मन्त्र ग्रहण करना है । तो उक्त चक्र में देवदत्त के प्रथमाक्षर 'द' से मन्त्राक्षर 'ए' तीसरे स्थान में पड़ता है । नियमानुसार देवदत्त के लिए यह मन्त्र सुसिद्ध हुआ जो दीक्षा ग्रहण मात्र से सिद्ध हो जायगा ॥ २५-२६ ॥

अब **सिद्धादिशोधन** की **चौथी विधि** कहते हैं -

विद्वान् साधक को नाम एवं मन्त्र के वर्णों को जोड़कर, ४ का भाग देना चाहिए । १ शेष होने पर मन्त्र सिद्ध, २ शेष होने पर साध्य, ३ शेष होने पर सुसिद्ध तथा ४ शेष होने पर शत्रु समझना चाहिए ॥ २६-२७ ॥

विमर्श - उदाहरणतः यदि देवदत्त को १६ अक्षरों वाले वागीश्वरी मन्त्र - 'ऐं नमो भगवति वद वद वाग्देवि स्वाहा' को ग्रहण करना है । यहाँ देवदत्त के नाम के ४ अक्षर तथा मन्त्र के १६ अक्षरों को जोड़ने से २० संख्या हुई, जिसमें ४ का भाग दिया तो शेष ४ बचता है, अतः उक्त नियमानुसार यह मन्त्र देवदत्त के लिए शत्रुयोग कारक होने से अग्राह्य है ॥ २७ ॥

यहाँ तक सिद्धादिशोधन का प्रकार कहा गया । अब **नक्षत्र शोधन की विधि** कहते हैं ॥ २८ ॥

द्विचन्द्रभुजबाह्वक्षिभूनेत्रत्रिधरागुणाः ।
एकैकं भूभुजे द्व्यक्षिरामचन्द्रानुड्डुष्वथ ॥ २९ ॥
अश्विन्यादिषु विज्ञेया आदिवर्णाः क्रमाद् बुधैः ।
क्षान्ताबिन्दुविसर्गौ तु पौष्णभागे व्यवस्थितौ ॥ ३० ॥
जन्मसम्पद्विपत्क्षेमप्रत्यरिः साधको वधः ।
मैत्रं परममैत्रं च गणनीयं स्वनामभृत् ॥ ३१ ॥
विपद्वधः प्रत्यरिश्च त्याज्या अन्यदुड्डूत्तमम् ।

ऋणधनशोधनवर्णनम्

अथर्णधनसंशुद्धिः कथ्यते सिद्धिदायिनी ॥ ३२ ॥
सप्ततिर्यग्लिखेद् रेखा द्वादशैवोर्ध्वगाः पुनः ।
एवं कृते तु जायन्ते कोष्ठाः षट्षष्टिसम्मिताः ॥ ३३ ॥

अश्विनी अ से लेकर रेवती तक के नक्षत्रों के २७ कोष्ठकों में अकारादि, २, १, ३, ४, १, १, २, १, २, २, १, २, २, २, १, २, ३, १, ३, १, १, १, २, २, २, एवं ३ तथा रेवती में क्ष अं अः व्यवस्थित रूप से लिखने चाहिए ॥ २८-३० ॥

तदनन्तर अपने नाम नक्षत्र से प्रारम्भ कर अग्रिम नक्षत्र क्रमशः जन्म, सम्पत्, विपद्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मित्र एवं परममित्र संज्ञक समझना चाहिए । इनमें विपद्, प्रत्यरि एवं वध योग सर्वथा त्याज्य हैं । शेष नक्षत्र उत्तम कहे गए हैं ॥ ३१-३२ ॥

विमर्श – उदाहरण स्वरूप यदि देवदत्त को 'ऐं नमः' इत्यादि मन्त्र ग्रहण करना है तो नक्षत्रशोधन की रीति से देवदत्त का नक्षत्र अनुराधा तथा मन्त्र का नक्षत्र आर्द्रा हुआ । अनुराधा से उन नक्षत्रों की गणना करने पर जन्म संज्ञक नक्षत्र हुआ जो सर्वथा ग्रहण करने योग्य हैं ॥ २८-३२ ॥

नक्षत्रशोधन चक्रम्

अ अ आ	भ इ	कृ ई उ ऊ	रो ऋ ॠ ऌ ॡ	मृ ए	आ ऐ	पु ओ औ	पु क	अ ख ग
म घ ङ	पू च	उ छ ज	ह झ ञ	चि ट ठ	स्वा ड	वि ढ ण	अ त थ द	ज्ये ध
मू न प फ	पू ब	अ भ	श्र म	ध य र	श ल	पू व श	उ ष स ह	रे क्ष अं अः

आद्यपङ्क्तौ लिखेदङ्कांस्ते कथ्यन्ते यथाक्रमम्।
मनुनक्षत्रनेत्रार्क तिथिषड्वेदवह्नयः॥ ३४॥
सायकावसवो नन्दाः कोष्ठेषु क्रमतः स्थिताः।
द्वितीयपङ्क्तौ संलेख्याः पञ्चदीर्घोज्झिताः स्वराः॥ ३५॥
तृतीयपङ्क्तौ काद्यर्णाष्टकारान्ताः शिवैर्मिताः।
ठादिफान्ताश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यां बादिहान्तिमाः॥ ३६॥
षष्ठ्यां पङ्क्तौ क्रमाल्लेख्या अङ्काः कथ्यन्त एव ते।
दिक्चन्द्रमुनिवेदाष्टगुणसप्तेषु सागराः॥ ३७॥
रसाश्च रामसंख्याता एवमङ्का उदीरिताः।
मन्त्रवर्णान् पृथक्कुर्यात् स्वरव्यञ्जनरूपतः॥ ३८॥

ऋणधनशोधनमाह – सप्तेति । तिर्यक्सप्तरेखा ऊर्ध्वं द्वादशकृत्वा ॥ ३३ ॥ आद्यपङ्क्तौ चतुर्दशाद्यङ्काः द्वितीयायाम् – आ ई ऊ ॠ ॡ हीनाः स्वरा एकादश । तृतीयायाङ्कादि टान्ताः । चतुर्थ्यां ठादि फान्ताः । पञ्चम्यां बादि हान्ताः । षष्ठ्यां दशाद्यंका लेख्याः ॥ ३४ ॥ * ॥ ३५–३८ ॥

अब **सिद्धिदायक ऋण धन शुद्धि का प्रकार** कहते हैं -

७ तिरछी एवं १२ खड़ी रेखा लिखनी चाहिए, जिससे ६६ कोष्ठक निष्पन्न होते है । इसकी प्रथम पंक्ति में १४, २७, २, १२, १५, ६, ४, ३, ५, ८, अंक तथा दूसरी पंक्ति में ५ दीर्घ स्वरों (आ ई ऊ ॠ एवं ॡ) स्वरों को छोड़कर शेष ११ स्वरों को तीसरी पंक्ति में ककार से टकार पर्यन्त ११ व्यञ्जन वर्ण चतुर्थ पंक्ति में ठकार से फकार तक ११ वर्ण पञ्चम पंक्ति में बकार से हकार तक ११ वर्ण तथा षष्ठ पंक्ति में १०, १, ७, ४, ८, ३, ७, ५, ४, ६, एवं पुनः ३ अंक के लेखन का प्रकार कहा गया है ॥ ३२-३८ ॥

ऋणधनशोधन चक्रम्

१४	२७	२	१२	१५	६	४	३	५	८	९
अ	इ	उ	ऋ	ऌ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
१०	१	७	४	८	३	७	५	४	६	३

कोष्ठे यावतिवर्णः स्याद् गणयेत्तावदङ्ककम्।
कोष्ठोपरिस्थेनाङ्केन सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥ ३६ ॥
दीर्घाक्षराणामङ्कास्तु ज्ञेया लघ्वक्षरस्थिताः।
एकीकृत्याखिलानङ्कानष्टभिर्विभजेत् पुनः ॥ ४० ॥
शेषोङ्को मन्त्रराशिः स्यान्नामवर्णेष्वयं विधिः।
अधः पङ्क्तिस्थितैरङ्कैर्गुणनीयास्तु तेऽखिलाः ॥ ४१ ॥
अधमर्णोधिको राशिरूनो राशिर्धनी स्मृतः।
मन्त्रो यदाधमर्णः स्यात्तदा ग्राह्यो धनी न तु ॥ ४२ ॥

कोष्ठे यावतीति । यावतितमेकोष्ठे वर्णस्तंमंकमुपर्यङ्केन गुणयेत् । यथा – प्रथमकोष्ठस्थ अकारश्चतुर्दशगुणितश्चतुर्दशैव । द्वितीयकोष्ठस्थ इकारः सप्तविंशत्यागुणितश्चतुःपञ्चाशत् । एवं तृतीयकोष्ठस्थः उकारः सद्वाभ्यां गुणितः षट् । एवमग्रेपि । साधक नामवर्णास्तु दिगादिभिरेवं गुणनीयाः । साध्यस्याङ्कानेकीकृत्याऽष्टभिर्भक्ते शेषः साध्यराशिः । एवं साधकांकान् गुणितानेकीकृत्याष्टभक्ते शेषः साधकराशिः ॥ ३६–४१ ॥

इसके बाद मन्त्र के व्यञ्जनो और स्वरों को अलग-अलग कर लेना चाहिए। फिर जिन जिन कोष्ठकों में जो जो अक्षर आवें उनके ऊपर वाले कोष्ठकों का अंक ग्रहण करना चाहिए । मन्त्र में आये हुये ५ दीर्घ स्वरों के स्थान से ह्रस्व स्वरों के अंक ग्रहण करना चाहिए ॥ ३८-४० ॥

इस प्रकार सभी अक्षरों (स्वर व्यञ्जनों) के अंको को जोड़कर ८ का भाग देना चाहिए । जो शेष बचता है उसे **'मन्त्र की राशि'** कहते हैं । नाम के स्वर और व्यञ्जनो को इसी प्रकार पृथक् कर उसके नीचे वाली पंक्ति के अंक ग्रहण कर दोनों का योग करना चाहिए । इस योग में ८ का भाग देने से जो शेष बचे वह **'नाम राशि'** कही गई है ॥ ४०-४१ ॥

इसमें अधिक राशि वाला ऋणी तथा कम राशि वाला धनी कहा जाता है जब मन्त्र ऋणी हो तो उसे ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा नहीं ॥ ४१-४२ ॥

विमर्श - उदाहरणतः देवदत्त को यदि 'क्लीं गो वल्लभाय स्वाहा' यह अष्टाक्षर मन्त्र ग्रहण करना है तो **नामाक्षर एवं अंक** - द ७, ए ३, व ७, अ १०, द ७, अ १० त् ८, त् ८, अ १० कुल संख्याओं का योग ७० हुआ । इसमें ८ का भाग देने पर शेष ६ नामराशि हुई । **मन्त्राक्षर एवं अंक** - क १४ ल ६, ई २७, म् २, ग् २, ओ ३, व् १४, अ १४, ल् ६, ल ६, भ् २७, आ १४, य् १२, अ १४, स् ८, व ४, आ १४ ह ६, आ १४, कुल योग २१० हुआ । इसमें ८ का भाग देने से २ शेष बचे जो नाम राशि की

एवं धनर्णं सम्प्रोक्तमन्यथा प्रोच्यते पुनः।

प्रकारान्तरेण ऋणशोधनम्

नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिमाक्षरम्॥ ४३॥
गणयेन्मातृकाद्यर्णं क्रमेण गुणयेत्त्रिभिः।
विभक्ते सप्तभिः शिष्टो नामराशिरुदीरितः॥ ४४॥
एवं मन्त्रार्णमारभ्य यावन्नामादिमाक्षरम्।
गणयित्वा त्रिभिर्हत्वा विभजेत्सप्तभिः सुधीः॥ ४५॥
मन्त्रराशिः स्मृतः शिष्टः पूर्ववद्धनितर्णता।

पुनः प्रकारान्तरवर्णनम्

यद्वा मन्त्राक्षराणीह स्वरव्यञ्जनरूपतः॥ ४६॥

मन्त्रराशिरधिकश्चेद् ग्राह्यः ॥ ४२ ॥ प्रकारान्तरेण ऋणधनशोधनमाह – **नामादीति** । धनिता ऋणिता च पूर्ववत् । अधिकशेष ऋणी ऊनो धनीत्यर्थः ॥ ४३–४५ ॥ प्रकारान्तरमाह – **यद्वेति** । तादृशैः स्वरव्यञ्जनरूपेण पृथक्कृतैः साधकनामाक्षरैर्योजयेत् ॥ ४६–४८ ॥

अपेक्षा कम होने से धनी योग में आता है । फलतः अग्राह्य है ॥ ३२-४२ ॥

इस प्रकार ऋण धन शोधन की एक विधि बतलाई गई अब **दूसरी विधि** कहता हूँ -

नाम के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर तक वर्ण माला के क्रम से गणना करे । जो संख्या आवे, उसमें तीन का गुणा कर, सात का भाग देवे, जो शेष बचे वह **'नाम राशि'** कही जाती है ॥ ४३-४४ ॥

इसी प्रकार मन्त्र के प्रथम अक्षर से वर्णमाला के क्रम से गणना कर जितनी संख्या आवे, उसमें भी ३ का गुणा कर ७ का भाग देवे, जो शेष आवे वह **'मन्त्र राशि'** कही जाती है । पूर्वोक्त नियमानुसार अधिक राशि वाला **'ऋणी'** तथा अल्पराशि वाला **'धनी'** कहा जाता है ॥ ४३-४६ ॥

विमर्श - उदाहरणतः देवदत्त को यदि 'क्लीं गोवल्लभाय स्वाहा' यह अष्टाक्षर मन्त्र ग्रहण करना है । देवदत्त के आद्याक्षर 'द' से 'क' तक वर्ण माला के गणना करने पर ३७ संख्या हुई । उसमें ३ का गुणा किया, तो १११ हुआ । उसमें ७ का भाग दिया तो ६ शेष हुआ जो **'नाम राशि'** हुई । इसी प्रकार मन्त्राद्याक्षर 'क' से 'द' तक गणना करने पर १८ हुआ । उसमें ३ का गुणाकर ७ का भाग दिया, जो शेष ५ बचे वो **'मन्त्र राशि'** की संख्या हुई, जो नाम राशि की अपेक्षा स्वल्प

पृथक्कृत्य द्विगुणयेद्योजयेत्साधकाक्षरैः।
तादृशैरष्टभिर्भक्तैर्मन्त्रराशिरुदाहृतः ॥ ४७ ॥
एवं नामार्णसङ्घोऽपि द्विगुणीकृत्य योजितः।
मन्त्रवर्णैरष्टभक्तो नामराशिः स्मृतो बुधैः ॥ ४८ ॥
ऋणिता धनिता चात्र पूर्ववत्परिकीर्तिता।
उक्तान्यतममार्गेण शोधनीयमृणं धनैः ॥ ४६ ॥

मन्त्रस्य ऋणित्वे हेतुकथनम्

यो मन्त्रः पूर्वजनुषि सेवितो नाददात् फलम्।
पापात् पापक्षये जाते फलावाप्तिरनेहसि ॥ ५० ॥

ऋणिताधनिता च पूर्ववत् ऋणीत्यादि प्रागुक्तरीत्या ॥ ४६ ॥ मन्त्रस्य ऋणित्वे हेतुमाह – **यो मन्त्र** इति । पूर्वजन्मन्युपासनसमये पापसद्भावात्

होने से धनी योग में आता है । फलतः अग्राह्य है ॥ ४३-४५ ॥

अब **ऋण धन के प्रकार से संशोधन की तीसरी विधि** कहते हैं -

मन्त्र के स्वर एवं व्यञ्जनों को पृथक्-पृथक् कर उनका योग करे । फिर उसमें २ का गुणा कर, गुणनफल में साधक के नामाक्षरों के भी स्वर व्यञ्जन को पृथक् कर, उसमें जोड़ देना चाहिए । इस योगफल में ८ का भाग देने से जो शेष बचे वह **'मन्त्र राशि'** हुई ॥ ४६-४७ ॥

इसी प्रकार नाम के स्वर व्यञ्जनों को पृथक्-पृथक् कर, उनके योग में २ का गुणाकर गुणनफल में मन्त्र के स्वर व्यञ्जनों को पृथक्-पृथक् कर उसमें जोड़ देना चाहिए । फिर योगफल में ८ का भाग देने से जो शेष बचे वह **'नाम राशि'** हुई ॥ ४८ ॥

यहाँ पर भी ऋणिता तथा धनिता को पूर्वोक्त नियमानुसार ग्रहण करना चाहिए । उक्त तीनों प्रकारों में से किसी एक रीति से ऋण धन का शोधन करना चाहिए ॥ ४६ ॥

विमर्श - उदाहरणतः देवदत्त के नाम के स्वर और व्यञ्जनों का योग (द ए व द आ द अ त् त् अ) ६ है, तदनन्तर उसका दुगुना १८ है, इस में मन्त्राक्षर का योग (क् ल् ई अं ग् ओं व् अ ल् ल् अ भ् आ य् अ स् व आ ह् आ) २० जोड़ने पर कुल योग ३८ हुआ । इसमें ८ का भाग दिया । ६ शेष रहा । यह **'नाम राशि'** हुई ।

इसी प्रकार मन्त्र के स्वर व्यञ्जनों का योग २० है । उसका द्विगुणित ४० है । उसमें नामाक्षरों का योग ६ जोड़ देने पर ४६ हुआ । इसमें ८ का भाग देने से १ शेष रहा । यह **'मन्त्र राशि'** हुई, जो नाम राशि की अपेक्षा स्वल्प होने से धनिक योग में आता है अतः अग्राह्य है ॥ ४६-४६ ॥

आयुः क्षयाद्गतो नाशं साधकोऽस्य भवान्तरे ।
ऋणित्वात् प्राप्तिमात्रेण मन्त्रोऽभीष्टं प्रयच्छति ॥ ५१ ॥
समांकौ यद्युभौ राशी तदा संसेवनात्फलम् ।
धनीमन्त्रस्तु सम्प्राप्तः फलत्यधिकसेवया ॥ ५२ ॥

प्रकारान्तरेण मन्त्रशोधनवर्णनम्

मन्त्राणां शोधने चैतत्प्रकारन्तरमुच्यते ।
षट्कोणे विलिखेत्पूर्वकोणाद्येकैकवर्णकान् ॥ ५३ ॥
अकारादिहकारान्तान् नपुंसकविवर्जितान् ।
नामाद्यक्षरमारभ्य मन्त्रार्णावधि शोधयेत् ॥ ५४ ॥

पापक्षयं कुर्वन्नान्यत्फलं ददौ । ततः पापक्षये कृते फलदानकाले उपासितुरायुःक्षयो जातः समन्त्रः फलादानाज्जन्मान्तरे ऋणी जातः । सप्राप्तिमात्रेणेष्टफलदो भवतीत्यर्थः । अनेहसि काले ॥ ५० ॥ * ॥ ५१–५३ ॥ नपुंसकता ऋ ॠ लृ ॡवर्णाः ॥ ५४ ॥ * ॥ ५५–५६ ॥

मन्त्रों के ऋणी और धनी **होने** की **फलश्रुति** करते हैं -

यदि पूर्वजन्म में उपासना के समय पापाधिक्य होने के कारण साधक (उपासक) की आयु समाप्त हो गई और मन्त्र अपना फल न दे सका, तो वह उपासक का ऋणी ही रहा । अतः इस जन्म में वह मन्त्र ग्रहण करने पर साधक को अभीष्ट फल देने के लिए उन्मुख है ॥ ५०-५१ ॥

यदि नाम राशि और मन्त्र राशि के अंग समान हो तो भी उपासक को उसकी उपासना का फल मिलेगा । इतना अवश्य है कि धनी मन्त्र अत्यधिक साधना से फलोन्मुख होगा ॥ ५२ ॥

मन्त्रशोधन चक्रम्

अ
ए क छ
ड ध म प ष

ऊ अः च ठ
द भ श
ज्ञः

आ ऐ ख ज
ढ न य
स

उ
अं ङ ट
थ त ब व क्ष

इ
ओ ग झ
ण प र ह

ई औ घ ञ
त फ ल
ळ

अब **मन्त्र संशोधन की एक और विधि** का प्रतिपादन करते है -

षट्कोण चक्र में पूर्व से आरम्भ कर नपुंसक (ऋ ॠ लृ ॡ) स्वरों को छोड़कर अकार से हकार पर्यन्त एक एक वर्णों को क्रमशः लिखना चाहिए । तदनन्तर नाम के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर तक इस प्रकार संशोधन करना चाहिए ॥ ५३-५४ ॥
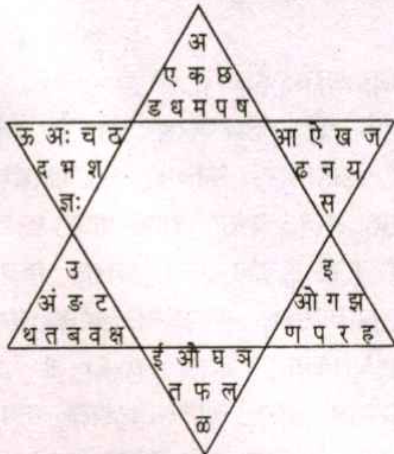
प्रथमे सम्पदां प्राप्तिर्द्वितीये धनसंक्षयः ।
तृतीये धनसम्प्राप्तिश्चतुर्थे बन्धुविग्रहः ॥ ५५ ॥
पञ्चमे तु भवेदाधिः षष्ठे सर्वस्य संक्षयः ।
एवं संशोधितं मन्त्रं दद्याच्छिष्याय मान्त्रिकः ॥ ५६ ॥

शोधनानपेक्षमन्त्रकथनम्

येषां मनूनां सिद्धादिशोधनं नास्ति तान् ब्रुवे ।
एकवर्णस्त्रिवर्णो वा पञ्चार्णो रसवर्णकः ॥ ५७ ॥
सप्तार्णो नववर्णश्च रुद्रार्णो रदनाक्षरः ।
अष्टार्णो हंसमन्त्रश्च कूटो वेदोदितो ध्रुवः ॥ ५८ ॥
स्वप्नलब्धः स्त्रियाप्राप्तो मालामन्त्रो नृकेसरी ।
प्रासादो रविमन्त्रश्च वाराहो मातृकापरा ॥ ५९ ॥
त्रिपुराकाममन्त्रश्चाज्ञासिद्धः पक्षिनायकः ।
बौद्धमन्त्रा जैनमन्त्रा नैवसिद्धादिशोधनम् ॥ ६० ॥
एतद्भिन्नेषु मन्त्रेषु शुद्धिरावश्यकी मता ।
विद्यां मन्त्रं स्तवं सूक्तमरिभूतं त्यजेद् ध्रुवम् ॥ ६१ ॥

रसवर्णः षडर्णः ॥ ५७ ॥ रदनाक्षरो द्वात्रिंशदर्णः । कूटो व्यञ्जनसमूहः । ध्रुवः प्रणवः ॥ ५८॥ परा ह्रीं ॥ ५९॥ पक्षिनायको गरुडमन्त्रः ॥ ६०॥ *॥ ६१–६२॥

नाम के प्रथमाक्षर से मन्त्राक्षर पहले कोष्ठ में हो तो संपत्ति का लाभ, दूसरे में हो तो धन हानि, तीसरे में हो तो धन लाभ, चौथे में हो तो बन्धुओं से कलह, पाँचवें में हो तो आधिव्याधि, छठें कोष्ठक में हो तो सर्वस्वनाश होता है ॥ ५५-५६ ॥

मन्त्रवेत्ता गुरु को चाहिए कि वह इस प्रकार से संशोधित करके ही अपने शिष्य को मन्त्र दे ॥ ५६ ॥

अब मन्त्र शोधन के अपवाद का प्रतिपादन करते हैं -

अब जिन जिन मन्त्रों के लिए सिद्धादिशोधन की आवश्यकता नहीं है उन्हे कहता हूँ - एकाक्षर, त्र्यक्षर, पञ्चाक्षर, षडक्षर, सप्ताक्षर, नवाक्षर, एकादशाक्षर, द्वात्रिंशदक्षर, अष्टाक्षर, हंस मन्त्र, कूट मन्त्र, वेदोक्त मन्त्र, प्रणव, स्वप्न-प्राप्त मन्त्र, स्त्रीद्वारा प्राप्त, माला मन्त्र, नरसिंह मन्त्र, प्रसाद (हौं) रवि मन्त्र, वाराह मन्त्र, मातृका मन्त्र, परा (ह्रीं), त्रिपुरा काम मन्त्र, आज्ञासिद्ध, गरुड़मन्त्र, बौद्ध एवं जैन मन्त्र इन सभी मन्त्रों में सिद्धादि शोधन नहीं किया जाता ॥ ५७-६० ॥

इनके अतिरिक्त अन्य सभी मन्त्रों में सिद्धादिशोधन करना चाहिए । विद्या मन्त्र, स्तव, सूक्त तथा अरि मन्त्र हों तो उन्हें निश्चित रूप में त्याग देना चाहिए ॥ ६१ ॥

अरिमन्त्रो गृहीतश्चेदज्ञानवशतस्तदा।
तस्य त्यागः प्रकर्तव्यस्तत्प्रकारोऽधुनोच्यते ॥ ६२ ॥

अरिमन्त्रत्यागप्रकारकथनम्

सुदिने स्थापयेत्कुम्भं सर्वतोभद्रमण्डले।
विलोमं सञ्जपन्मन्त्रं पूरयेत्तं सुपाथसा ॥ ६३ ॥
तत्र देवं समावाह्य यजेदावरणान्वितम्।
तदग्रे स्थण्डिलं कृत्वा प्रतिष्ठाप्यानलं ततः ॥ ६४ ॥
जुहुयान्मूलमन्त्रेण विलोमेन शतं घृतैः।
दिक्पतिभ्यो बलिं दद्यात् पायसान्नैर्घृतान्वितैः ॥ ६५ ॥
पुनः सम्पूज्य देवेशं प्रार्थयेन्मनुनामुना।
आनुकूल्यमनालोच्य मया तरलबुद्धिना ॥ ६६ ॥
यदुपात्तं पूजितं च प्रभो मन्त्रस्वरूपकम्।
तेन मे मनसः क्षोभमशेषं विनिवर्तय ॥ ६७ ॥
पापं प्रतिहतं चास्तु भूयाच्छ्रेयः सनातनम्।
तनोतु मम कल्याणं पावनी भक्तिरस्तु ते ॥ ६८ ॥
एवं सम्प्रार्थ्य देवेशं कर्पूरागरुचन्दनैः।
विलोमं विलिखेन्मन्त्रं ताडपत्रे तदर्चयेत् ॥ ६९ ॥

अरिमन्त्रत्यागप्रकारमाह – सुदिन इति । सुपाथसा शोभनोदकेन ॥ ६३ ॥ * ॥ ६४–६९ ॥

अब **अरिमन्त्र के त्याग का प्रकार** कहते हैं -

यदि अज्ञान वश अरि मन्त्र की दीक्षा ले ली गई हो तो उसके त्याग की विधि कहता हूँ -

शुभ मुहूर्त में सर्वतोभद्रमण्डल पर कलश स्थापित करना चाहिए तथा विलोम मन्त्र का जप करते हुये उसमें पवित्र जल भरना चाहिए । फिर मन्त्र देवता का आवाहन कर आवरण सहित उनका पूजन करना चाहिए ॥ ६२-६४ ॥

उसके सामने स्थण्डिल बनाकर विधिवत् अग्नि की प्रतिष्ठा कर विलोम मन्त्र से घी की १०० आहुतियाँ देनी चाहिए । फिर खीर एवं घी मिश्रित अन्न से दिक्पालों को बलि देकर पुनः पूजन कर - '**आनुकूल्य ... भक्तिरस्तुते**' (द्र० २४. ६६-६८) पर्यन्त मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करनी चाहिए ॥ ६५-६८ ॥

इस प्रकार की प्रार्थना कर ताड़पत्र पर कपूर, अगर एवं चन्दन से विलोम मन्त्र लिख कर, उसका पूजन कर, अपने शिर पर बाँध कर, कुम्भ के जल से

प्रबध्य निजमूर्ध्न्येतत्स्नायात्कुम्भस्थितैर्जलैः ।
पुनः सम्पूर्य तं तोयैस्तस्यास्ये मन्त्रपत्रकम् ॥ ७० ॥
सम्पूज्य कुम्भे सरिति तडागे वा विनिक्षिपेत् ।
विप्रान् सम्भोज्य मुच्येत पीडयासौ मनूत्थया ॥ ७१ ॥
अनेकधा शोधने चेच्छुद्धो न प्राप्यते मनुः ।
मायां कामं श्रियं चादौ दद्यात्तद्दोषमुक्तये ॥ ७२ ॥
यद्वा दुष्टो मनुर्जप्तः सिध्येत्प्रणवसम्पुटः ।
यद्वा क्रमोत्क्रममया प्रजप्तो वर्णमालया ॥ ७३ ॥
मन्त्रे यस्य भवेद् भक्तिर्विशेषः समनूत्तमः ।
वैरिकोष्ठमनुप्राप्तः सिद्धिदस्तस्य जायते ॥ ७४ ॥

मन्त्रत्रैविध्यकथनम्

बीजमन्त्रास्तथा मन्त्रा मालामन्त्रास्तथापरे ।
त्रिधा मन्त्रगणाः प्रोक्ता बुधैरागमवेदिभिः ॥ ७५ ॥

तं कुम्भं जलैरापूर्य तत्र कुम्भे मन्त्रयुक्तं तालपत्रं क्षिपेत् । क्रमोत्क्रमगतया वर्णमालया रामाय नमः आं इत्यादि लान्तं प्रजप्य तत आरभ्य पुनरकारपर्यन्तं गणयेत् । एवं जप्तोऽरि मन्त्रोऽपि सिद्धिदः ॥ ७० ॥ * ॥ ७१–७४ ॥ त्रिविधान्मन्त्रानाह – **बीजेति** ॥ ७५ ॥ नखावधि । विंशत्यर्णावधि ॥ ७६ ॥

स्नान करना चाहिए । तत्पश्चात् कुम्भ में पुनः जल भर कर उसके भीतर मन्त्र लिखा हुआ ताड़पत्र डाल कर, कुम्भ का पूजन कर, उसे नदी या तालाब में डाल देना चाहिए । इसके बाद ब्राह्मणों को भोजन करा कर साधक अरिमन्त्र की बाधा से मुक्त हो जाता है ॥ ६९-७१ ॥

अनेक बार शोधन करने पर भी यदि शुद्ध मन्त्र न मिले तो मन्त्र के पहले माया (ह्रीं) काम (क्लीं) तथा श्री (श्रीं) बीज लगाकर ग्रहण करने से मन्त्र का दोष समाप्त हो जाता है । अथवा सदोष मन्त्र को प्रणव से संपुटित करने मात्र से वह शुद्ध हो जाता है । अथवा क्रमपूर्वक एवं व्युत्क्रमपूर्वक वर्णमाला से जप करने पर मन्त्र का संशोधन हो जाता है । जिस व्यक्ति की जिस मन्त्र में विशेष निष्ठा हो वह मन्त्र उसके लिए श्रेष्ठतम होता है । ऐसा मन्त्र अरिवर्ग में होने पर भी साधक को सिद्धिदायक होता है ॥ ७२-७४ ॥

अब **सभी मन्त्रों के तीन प्रकार के भेदों का निरूपण** करते है -

आगमवेत्ता विद्वानों ने १. बीजमन्त्र, २. मन्त्र-मन्त्र तथा ३. माला मन्त्र -

बीजमन्त्रादशार्णान्तास्ततो मन्त्रानखावधि ।
विंशत्यधिकवर्णा ये मालामन्त्रास्तु ते स्मृताः ॥ ७६ ॥

बाल्यतारुण्यवार्द्धक्येषु सिद्धिदामन्त्राः

बाल्ये वयसि सिद्ध्यन्ति बीजमन्त्रा उपासितुः ।
मन्त्रा सिद्धा यौवने तु मालामन्त्राश्च वार्द्धके ॥ ७७ ॥
उक्तान्यस्यामवस्थायामभीष्टप्राप्तये सुधीः ।
बीजमन्त्रादिमन्त्राणां द्विगुणं जपमाचरेत् ॥ ७८ ॥
स्वकुलान्यकुलाख्योऽथ मन्त्राणां भेद उच्यते ।
प्रकृतिः पञ्चभूतात्मा ततो जाता तु मातृका ॥ ७९ ॥
तस्माद्वर्णास्तु पञ्चाशत्पञ्चभूतमया यतः ।

वर्णानां जलाग्नेयादिसंज्ञाः

तृतीयावर्गगाः कर्णा वोलळाः पार्थिवा मताः ॥ ८० ॥
नासयौवर्गतुर्याश्च वसौवर्णाः स्मृता अपाम् ।
नेत्रे द्वितीयावर्गाणामैरक्षापावकात्मकाः ॥ ८१ ॥

---

*॥ ७७–७९ ॥ वर्गगाः तृतीयाः गजडदबाः । कर्णो उ ऊ । ओ ल ळ एते भूवर्णाः ॥ ८० ॥ नासयौ ऋ ॠ औ घ झ ढ ध भ व स एते जलवर्णाः । **नेत्रे** इति । इ ई ख छ ठ थ फ ऐ र क्ष – एते आग्नेयाः ॥ ८१ ॥

मन्त्रों के ये तीन भेद बतलाए हैं । दश अक्षर पर्यन्त मन्त्र **'बीज मन्त्र'**, ११ से २० अक्षरों के **'मन्त्र मन्त्र'** तथा बीस अक्षरों से अधिक मन्त्रों की **'माला मन्त्र'** की संज्ञा है ॥ ७५-७६ ॥

अब **विविध अवस्थाओं में सिद्धिदायक मन्त्र** कहते हैं - उपासक को बाल्यावस्था में **'बीज मन्त्र'** सिद्ध होते हैं । युवावस्था में **'मन्त्र मन्त्र'** सिद्ध होते हैं, तथा वृद्धावस्था में **'माला मन्त्र'** सिद्ध होते हैं । उक्त अवस्थाओं से भिन्न अवस्थाओं में अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए साधक को तत्तद् बीज मन्त्रादि मन्त्रों का द्विगुणित जप करना चाहिए ॥ ७७-७८ ॥

अब **कुलाकुल का विचार** कहते हैं - यतः सारी प्रकृति पञ्चभूतात्मक है उनसे मातृकायें उत्पन्न हुई फिर उससे ५० वर्णों की उत्पत्ति हुई । अतः वे भी पञ्चभूतमय है । वर्ग के तृतीयाक्षर (गजडदब) कर्ण (उ ऊ), ओ ल एवं ळ वर्ण भूसंज्ञक हैं । नासा (ऋ ॠ), औ वर्ग के चतुर्थ अक्षर (घ, झ, ढ़, ध, भ), व एवं स वर्ण जलसंज्ञक हैं । नेत्र (इ ई) वर्गों के द्वितीय अक्षर ख,